॥ श्रीः ॥

भिषग्वर श्री गोविन्ददाससेनकृता–

भैषज्य रत्नावली।

भाषाटीकासहिता।

अनेक ग्रंथोंके टीकाकार व रचयिता स्वर्गीय वैद्य शंकरलालजी द्वारा परिवर्धित, संशोधित और हिन्दी भाषानुवाद विभूषित।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष–'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

★

संवत् २००९, सन् १९५२.

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

भूमिका।

भैषज्यरत्नावली आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रन्थोंमें एक उत्कृष्ट और प्रामाणिक चिकित्सा ग्रन्थ समझा जाता है । वैद्य समाजमें आज कल इसका बड़ा आदर है। कारण इसके रचयिता श्रीगोविन्ददाससेनने इसमें अनेक अनुभूत योगोंका संग्रह बड़ी सुन्दर और सरल रीतिसे किया है। इसमें क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, आसव, अरिष्ट आदि वनस्पति प्रयोग और रसधातु आदिके द्वारा सिद्ध किये रसायन प्रयोग, इस प्रकार दोनों प्रकारके योगोंका समावेश होनेके कारण इसके द्वारा सभी श्रेणीके वैद्य उत्तमरीतिसे लाभ उठा सकते हैं। इसका प्रत्येक प्रयोग अत्यन्त गुणकारक और आशुफलप्रद होनेसे यह ग्रन्थ वैद्योंको अल्प समयमें ही अत्यन्त आदरणीय हो गया है। अब तक इसके कलकत्ता, लखनऊ, लाहौर आदिमें कई संस्करण हो चुके हैं। पर हमने इसको और भी अधिक उपयोगी बनानेके लिये इसमें दूसरे कई प्राचीन और नवीन ग्रन्थोंके अनेक उत्तम योगोंका संग्रह कर इसको अधिक परिवर्द्धित कर दिया है किन्तु इसमें अन्य ग्रन्थोंके प्रयोगोंके संकलनसे पूज्यपाद वैद्य श्रीगोविन्ददाससेनजीकी धवल कीर्तिमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं होगी। बल्कि इससे उनकी उज्ज्वल कीर्ति और भी प्रसारित होगी, ऐसी आशा है । महामान्य कविराज श्रीगोविन्ददाससेनने इसग्रन्थकी अबसे कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले रचना की थी। सेन उपाधिसे जान पड़ता है कि वे वंगदेश निवासी थे । पर किस स्थानमें उनका जन्म हुआ था, इसका कुछ ठीक पता नहीं लग सका। पहले इस ग्रन्थका बङ्गालमें अधिक प्रचार हुआ। फिर धीरे धीरे सारे भारतवर्षमें इसका समादर होने लगा। केवल हिन्दी भाषा जाननेवाले वैद्योंके लिये हमने इसके प्रत्येक श्लोकका सरल हिन्दी अनुवाद किया है। हमें इस ग्रन्थके अनुवाद तथा सम्पादन और परिवर्द्धन करनेमें चरक, अष्टांगहृदय, भावप्रकाश, वङ्गसेन, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त, योगरत्नाकर आदि कितने ही ग्रन्थोंके सिवाय कविराज श्रीहरलाल गुप्त कविभूषणकी भैषज्यरत्नावलीसे अधिक सहायता मिली है, इसलिये हम उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रगट करते हैं। तथा कविराज विनोदलालसेनके ग्रन्थद्वारा भी हमें उस कार्यमें थोड़ी बहुत सहायता लेनी पड़ी है, इसलिये हम उनके भी कृतज्ञ हैं, हमने यथा शक्ति इस ग्रन्थको भली प्रकार देख भाल कर पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किया है, यदि कोई त्रुटि दृष्टिदोष आदिसे रह गई हो तो कृपया उसको पाठकगण सुधार तथा सूचित कर अनुगृहीत करें। आगामी संस्करणमें वे सब ठीक कर दी जायँगी।

भवदीय-

१६-४-३६

वैद्य-शङ्करलाल हरिशङ्कर-

आयुर्वेदोद्धारक-कार्यालय, मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

भैषज्यरत्नावली-विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठ.
मंगलाचरणम्	... १
आयुर्वेदके लक्षण, आयुर्वेदकी निरुक्ति	... २
आयुर्वेदकी उत्पत्ति	... "
चिकित्साप्रकरणम् ।	
मानकी परिभाषा	... १०
ज्वरकी चिकित्सा	... १३
षडङ्गपानीय	... १७
षडङ्गादि साधन	... १८
माँड आदिके लक्षण	... १९
अन्नादि साधन, ज्वरमें पथ्य	... "
ज्वरकी तीन अवस्था, जीर्णज्वरके लक्षण	... २१
ज्वररोगीकी कषाय पिलानेका नियम	... "
आमज्वरके लक्षण	... "
कषायादि औषधियोंके सेवनका निषेध	... २२
अभुक्त अवस्थामें औषध सेवनके गुण	... "
जीर्णाजीर्ण-औषधिके लक्षण	... २३
मात्राका निरूपण	... "
सामान्य ज्वरकी चिकित्सा	२४
धान्य-पटोलक्वाथ, वृश्चीरादि-क्षीरपान	... २४
गुडूच्यादि	... "
आरग्वधादि, पथ्यादि	... २५
मुस्तपर्पटकादि	... "
नागरादि, मुस्तादि	... "
नागरादि, किराततिक्तकादि	... २६
वातज्वरकी चिकित्सा	"
बिल्वादि, भूनिम्बादि, विश्वादि	... "
पञ्चमूल्यादि, कणादि	... २७
शालपर्णी आदि, शतपुष्पादि	... "
किरातादि, पिप्पल्यादि, बृहद्गुडूच्यादि	... २८
गुडूच्यादि, द्राक्षादि	... "
रास्नादि, गुडूच्यादि, दशमूलादि	२९
पित्तज्वरकी चिकित्सा	"
तिक्तादि	... "
कट्फलादि, पर्पटादि	... ३०
द्राक्षादि, पटोलादि	... "
ह्रीबेरादि, कलिंगादि, विश्वादि	... ३१
गुडूच्यादि, किरातादि	... "
महाद्राक्षादि, यवपटोल	... ३३
नागरादि, अमृतादि	... "
विदारिकादि, धान्यशर्करा	... ३३
श्रीपर्ण्यादि, पर्पटादि	... "
गुडूच्यादि, भूनिम्बादि, धन्याकक्वाथ	... ३४
मृद्वीकादि, दुरालभादि	... "
त्रायमाणादि	... ३५
कफज्वरकी चिकित्सा	"
मधुपिप्पली, चतुर्भद्रावलेह	... "
सिन्धुवारक्वाथ	... "
सप्तच्छदादि, वासादि, निम्बादि	३६
मरिचादि, त्रिफलादि	... "
मुस्तादि, कटुत्रिकादि	... ३७
पिप्पल्यादिगण, सारिवादि	... "
आमलक्यादि, हरिद्रादि, अभयादि	... ३८
व्याघ्र्यादि, पटोलादि	... "
भूनिम्बादि	... ३९
वात-पित्तज्वरकी चिकित्सा	"
नवाङ्ग क्वाथ, निदिग्धिकादि	... "

विषय.	पृष्ठ.
गुडूच्यादि, बृहद्गुडूच्यादि ...	३९
घनचन्दनादि, त्रिफलादि ...	४०
पञ्चभद्र, मधुकादि ...	"
मुस्तादि, किराताादि ...	४१
पित्तकफज्वरकी चिकित्सा	"
कण्टकार्यादि, भाङ्ग्र्यादि ...	"
अमृतादि, पटोलादि ...	४२
अमृताष्टक, चातुर्भद्रक ...	"
वासास्वरस, नागरादि, गुडूच्यादि	४३
भाङ्ग्र्यादि, पटोलादि ...	"
भद्रमुस्तादि, द्राक्षादि,	"
बृहद्गुडूच्यादि ...	४४
पञ्चतिक्तकषाय, पटोलादि ...	"
वातश्लेष्मज्वरकी चिकित्सा	४५
रूक्षस्वेदाद्युपचार ...	"
पञ्चकोल, निम्बादि ...	४६
क्षुद्रादि, दशमूलीकषाय ...	"
दार्व्यादि, आरग्वधादि ...	४७
त्रिफलादिकषाय, मुस्तादि ...	"
बृहत्पिप्पल्यादि क्काथ ...	"
किरातादिक्काथ ...	४८
सन्निपातज्वरकी चिकित्सा	"
लंघनाद्युपचार ...	"
लंघन, स्वेद ...	४९
नस्य ...	५०
निष्ठीवन, अष्टाङ्गावलेह ...	५१
अञ्जन, दशमूल ...	५२
द्वादशाङ्ग, चतुर्दशाङ्ग, अष्टादशाङ्ग	५३
भूनिम्बादि, अष्टादशाङ्ग ...	"
मुस्तादिगण, द्वात्रिंशाङ्ग ...	५४
बृहत्यादिगण शठ्यादिगण ...	५५
बृहत्कट्फलादि ...	"
वाताधिक्यसन्निपातज्वरकी चि०	५६
बृहत्पञ्चमूलक्काथ, कट्फलादि ...	"
पित्ताधिक्यसन्निपातज्वरकी चि०	५७
पटोलकादि, चन्दनादिक्काथ ...	"
किरातादि सप्तक ...	"
श्लेष्मोल्बणसन्निपातज्वरकी चि०	।
बृहत्यादिक्काथ ...	५७
वातपित्ताधिक्यसन्निपात-	
ज्वरकी चिकित्सा	५८
पञ्चमूलीक्काथ ...	"
वातकफाधिक्यसन्निपातज्वरकी०	"
चातुर्भद्रकक्काथ ...	"
पित्तकफोल्बणसन्निपातज्वरकी०	"
पर्पटादिक्काथ ...	"
त्रिदोषोल्बणसन्निपातज्वरकी०	"
योगराजक्काथ ...	"
शीताङ्ग सन्निपातज्वरकी	
चिकित्सा ।	५९
भास्वन्मूलादि ...	"
प्रलापकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।	
तगरादि ...	"
रक्तष्ठीवनसन्निपातज्वरकी	
चिकित्सा	६०
रोहिषादि, पद्मकादि ...	"
जिह्वकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।	
शुण्ठ्यादि ...	"
रुग्दाहसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।	
उशीरादि ...	"
चित्तविभ्रमसन्निपातज्वरकी चि०	६१
मृद्वीकादि ...	"
कर्णकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।	
भाङ्ग्र्यादि ...	"

विषय.	पृष्ठ.
कण्ठकुब्जसन्निपातज्वरकी चि०	६१
भूषणादि ...	"
किरातादि ...	६२
तन्द्रिकसान्निपातज्वरकी चिकित्सा	"
क्षुद्रादि ...	"
भुग्ननेत्रसन्निपातज्वरकी चिकित्सा	"
अश्वगन्धादिनस्य ...	"
सन्धिकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा	"
वचादि ...	"
मुस्तादि ...	६३
अभिन्यासज्वरकी चिकित्सा	"
कारव्यादि, मातुलुंगादि ...	६५
आगन्तुकज्वरकी चिकित्सा	"
सर्वगन्ध ...	६६
विषमज्वरकी चिकित्सा	६७
महौषधादि, पटोलादि ...	"
मधुकादि, मुस्तादि, महाबलादि...	६८
स्वल्पभाङ्गर्यादि ...	"
मध्यभाङ्गर्यादि, बृहद्भाङ्गर्यादि ...	६९
दारव्यादि ...	"
दार्व्यादि ...	७०
ऐकाहिकज्वरमें पटोलादिक्काथ ...	७१
गुडूच्यादि, सन्ततज्वरमें कलिंगादिक्काथ ...	"
संततज्वरमें पटोलादिकाथ ...	७२
अन्येद्युष्कज्वरमें निम्बादिकाथ ...	"
तृतीयकज्वरमें किरातादिकाथ ...	"
महौषधादिक्काथ, उशीरादिक्काथ...	"
चातुर्थिकज्वरमें वासादिक्काथ ...	७३
मुस्तादिकाथ, पथ्यादिक्काथ ...	"
अम्भोधरादिक्काथ ...	"
मूलिकाधारणादिकप्रयोग ...	७७
अष्टांगधूप, अपराजिताधूप, माहेश्वरधूप ...	७८

विषय.	पृष्ठ.
जीर्णज्वरकी चिकित्सा	७९
निदिग्धिकादि क्काथ ...	८०
रात्रिज्वरमें गुडूच्यादिक्काथ, द्राक्षादि ...	८१
प्लीहज्वरमें निदिग्धिकादि ...	"
चूर्णप्रकरणम् ।	
सुदर्शनचूर्ण ...	८२
ज्वरभैरवचूर्ण ...	८३
ज्वरनागमयूरचूर्ण ...	८५
रसप्रकरणम् ।	
हिंगुलेश्वर, बृहद्धिंगुलेश्वर, शीतभंजीरस ...	८८
तरुणज्वरारि, स्वच्छन्दभैरव ...	८९
द्वितीयस्वच्छन्दभैरवरस ...	"
नवज्वरेभांकुश, नवज्वरेभसिंह ...	९०
नवज्वरहरवटी ...	"
नवज्वरारि रस, सर्वाङ्गसुन्दररस	९१
त्रिपुरभैरवरस, ज्वरधूमकेतु, मृत्युञ्जयरस ...	९२
श्रीरामरस, नवज्वरांकुश, प्रचण्डेश्वर ...	९४
वैद्यनाथवटी, अग्निकुमाररस ...	९५
जयावटी ...	९६
जयन्तीवटी ...	९७
योगवाहिका जया जयन्ती वटी ...	"
अमृतमञ्जरी, ज्वरनृसिंहरस ...	९९
त्रैलोक्यडुम्बुरस, गदमुरारि ...	१००
ज्वरहरीवटी ...	"
रत्नगिरिरस ...	१०१
प्रतापमार्त्तण्डरस, चण्डेश्वररस ...	१०२
उदकमञ्जरीरस अचिन्त्यशक्तिरस	१०३
सान्निपातादिज्वरोंमें–	
मोहान्धसूर्यरस, कुलवधूवटी, नस्यभैरव ...	१०५

विषय.	पृष्ठ.
उन्मत्तरस, अञ्जनभैरव, सौभाग्यवटी	... १०६
श्रीवेतालरस, चक्री	... १०७
द्वितीय चक्री, ब्रह्मरन्ध्ररस	... १०८
आनन्दभैरवीवटी, त्रैलोक्यसुन्दररस	... १०९
मृतोत्थापनरस, मृतसंजीवनरस	... ११०
सन्निपातभैरवरस	... १११
सूचिकाभरणरस	... ११२
पुनः सूचिकाभरणरस	... "
बृहत्सूचिकाभरणरस, पानीयवटिका	... ११३
सिद्धफलापानीयवटिका	... ११६
चिन्तामणिरस	... ११८
द्वितीय चिन्तामणिरस	... ११९
रसराजेन्द्र	... १२०
पंचपित्तयुक्त रसका बलवत्व	... १२१
पञ्चवक्त्ररस	... "
त्रिदोषनीहारसूर्यरस, सन्निपातसूर्यरस	... १२२
अघोरनृसिंहरस	... "
प्रतापतपनरस, प्राणेश्वररस	... १२४
सन्निपातभैरव	... १२५
द्वितीय सन्निपातभैरवरस	... १२६
मृत्युञ्जयरस	... १२७
श्रीसन्निपातमृत्युञ्जय रस	... १२८
प्रभावरस	... १२९
कालाग्निभैरवरस	... १३०
त्रैलोक्यचिन्तामणिरस	... १३१
रसेश्वर	... १३२
वडवानल, बृहद्वडवानलरस	... १३३
सन्निपातवडवानलरस, स्वच्छन्दनायकरस	... १३४
सिंहनाद रस	... १३५
स्वल्पकस्तूरीभैरव रस	... १३६
मध्यमकस्तूरीभैरव रस, बृहत्कस्तूरीभैरवरस	... "
कस्तूरीभूषणरस	... १३७
अर्कमूर्त्ति, त्रिदोषदावानलरस	... १३८

विषय.	पृष्ठ.
त्रिदोषदावानलकालमेघ	... "
श्रीप्रतापलंकेश्वररस	... १३९
कफकेतु, अन्य कफकेतु	... १४२
मध्यजीर्ण विषमज्वरादिमें–	
श्लेष्मकालानलरस	... १४३
ज्वरमातंगकेसरीरस, ज्वर-मुरारि रस	१४४
श्रीज्वरमुरारि	... १४५
ज्वरकेसरी, ज्वरभैरवरस	... १४६
विद्याधररस, पञ्चाननरस	... १४७
चन्द्रशेखररस, अर्द्धनारीश्वररस	... १४८
मृतसंजीवनरस	... १४९
श्रीरसराज, मुद्राघोटकरस	... १५०
शीतारिरस, पर्णखण्डेश्वररस	... १५१
शीतभञ्जी रस	... १५२
स्वल्पज्वरांकुशरस, द्वितीयज्वरांकुश	१५३
तृतीयज्वरांकुशरस, मध्यमज्वरांकुशरस	... १५४
सर्वज्वरांकुश, बृहज्ज्वरांकुशरस	... १५५
महाज्वरांकुश रस	... १५६
चूडामणिरस	... १५७
बृहच्चूडामणिरस	... १५८
बृहज्ज्वरचूडामणि रस	... १५९
भानुचूडामणिरस	... "
चिन्तामणिरस	... १६०
द्वितीय चिन्तामणिरस	... "
बृहज्ज्वरचिन्तामणिरस	... १६१
बृहच्चिन्तामणिरस, ऐकाहिकारिरस	१६२
चातुर्थिकारिरस, विश्वेश्वररस	... १६३
विक्रमकेसरीरस, ज्वरकाल-केतुरस	१६४
त्रिपुरारिरस	... "
मेघनादरस, शीतारिरस	... १६५
स्वच्छन्दभैरव रस	... १६६
ज्वरारिरस ज्वराशनिरस	... १६७
ज्वरान्तकरस, वातपित्तान्तकरस	१६८
श्रीजयमंगलरस	... १६९
ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस	... १७०
विषमवल्लभरस	... १७१

विषय.	पृष्ठ.
शीतारिरस, ज्वरशूलहररस	... १७२
षडाननरस	... १७३
कल्पतरुरस	... १७४
तालाङ्करस, पर्पटीरस	... १७५
त्रैलोक्यचिन्तामणिरस	... १७६
महाराजवटी	... १७७
सर्वतोभद्ररस	... १७८
ज्वरारि-अभ्रक	... १७९
जीवनानन्दाभ्र, चन्दनादिलोह	... १८०
विषमज्वरान्तकलोह	... १८१
बृहद्विषमज्वरान्तकलोह	... ,,
पुटपक्व विषमज्वरान्तकलोह	... १८२
सर्वज्वरहरलोह	... १८३
बृहत्सर्वज्वरहरलोह	... १८४
द्वितीय बृहत्सर्वज्वरहरलोह	... १८५
बृहज्ज्वरान्तकलोह	... १८६
लोहासव	... १८८

घृतप्रकरणम्।

विषय.	पृष्ठ.
पिप्पल्यादिघृत	... १९०
क्षीरषट्पलकघृत, दशमूलषट्पलकघृत	... १९१
वासाद्यघृत, गुडूच्यादिघृत	... १९२

तैलप्रकरणम्।

विषय.	पृष्ठ.
अंगारकतैल, बृहदङ्गारकतैल	... १९३
लाक्षादितैल, महालाक्षादितैल	... ,,
षट्कट्वरतैल	... १९४
महाषट्कट्वरतैल, बृहत् पिप्पल्यादितैल	... १९५
किरातादितैल	... १९६
बृहत्किरातादितैल	... १९७
ज्वरभैरवतैल	... १९८
घीको मूर्च्छित करनेकी विधि	... १९९
तैलकी साधारणमूर्च्छाविधि	... २००
कटुतैलकी मूर्च्छाविधि	... ,,
एरण्डतैलकी मूर्च्छाविधि	... २०१
तिलके तेलकी मूर्च्छाविधि	... २०१
तैलादिके पकानेका समय	... २०२
पाकसिद्धिलक्षण	... ,,
जीर्णज्वरमें पेयादि देनेकी अवधि	,,
ज्वरमें संशोधन	... ,,
ज्वरमें वमन, ज्वरमें विरेचन	... २०३
ज्वरमें क्षीणहुए मनुष्यको वमन विरेचनकी विधि	... ,,
ज्वरमें शिरोविरेचन	... ,,
ज्वरमें शिरपीडानिवारक लेप	... २०४

दुग्धप्रकरणम्।

विषय.	पृष्ठ.
क्षीरपाकविधि, नानाज्वरमें आहारविरचन	... २०५
गन्धककज्जलीविधि	... २०६
ज्वरबलि	... २०७
नक्षत्रजानितरोगफल	... २०८
ज्वरमुक्तके लक्षण	... २०९
ज्वरमुक्तरोगीको वर्जनीय पदार्थ	,,

पथ्यापथ्यविधिः।

विषय.	पृष्ठ.
नवीनज्वरमें अपथ्य, मध्यज्वरमें पथ्य	... २१०
पुरानेज्वरमें पथ्य	... ,,
ज्वरमें अपथ्य	... २११
आरोग्यस्नानकाल	... २१२

ज्वरातिसार–चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
ह्रीवेरादि	... २१३
पाठादि, नागरादि, उशीरादि	... २१४
शुण्ठीदशमूल, गुडूच्यादि	... ,,
कालिङ्गादि, घनजलादि	... २१५
धान्यनागरापि, विल्वादि, कुटजादि	... ,,
पाठादि, किरातादि, विडङ्गादि	... २१६
शुण्ठ्यादि, वत्सकादि, भूनिम्बादि	,,
कणादि, पञ्चमूल्यादि, बृहत्पञ्चमूल्यादि	२१७
धान्यशुण्ठी, बिल्वपञ्चक	... २१८

विषय.	पृष्ठ.
उत्पलषट्क, उत्पलाद्यचूर्ण	... २१८
व्योषाद्यचूर्ण, कलिंगादिगुटिका	... २१९
कुटजावलेह	... २२०
द्वितीय कुटजावलेह	... २२१
सिद्धप्राणेश्वर रस, कनकसुन्दररस	२२२
बृहत्कनकसुन्दररस, गगनसुन्दररस	२२३
कनकप्रभावटी	... ,,
मृतसंजीवनी वटी, आनन्द-भैरवरस	... २२४
अमृतार्णवरस, कारुण्यसागररस	... २२५
मृतसञ्जीवनरस	... २२६
प्राणेश्वररस	... २२७
अभ्रवटिका	... २२८

अतिसार-चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
आम और पक्कके लक्षण	... २२९
आम और पक्कके अन्य लक्षण	... २३०
आम और पक्कातिसारकी चिकित्सा	... ,,
आमातिसार-चिकित्सा	,,
धान्यपञ्चक और धान्यचतुष्क	... २३३
स्वल्प शालपर्ण्यादि, बृहच्छाल-पर्ण्यादि	... ,,
वत्सकादि, पथ्यादि	... ,,
यमान्यादि, कलिङ्गादि, कञ्चटादि	२३४
कुटजादि	... ,,
त्र्यूषणादिचूर्ण, शुण्ठ्यादिचूर्ण	... २३५
वातातीसार-चिकित्सा	,,
पूतकादि	... ,,
पथ्यादि, वचादि	... २३६
पित्तातीसार-चिकित्सा	,,
मधुकादि, बिल्वादि	... ,,
कट्फलादि, किराततिक्तकादि	... ,,
अतिविषादि	... २३७
श्लेष्मातीसार-चिकित्सा	,,
पथ्यादि, चव्यादि	... ,,
पाठादिचूर्ण, हिंग्वादिचूर्ण	... ,,
पथ्यादिचूर्ण	... २८३
द्वन्द्वजातीसार-चिकित्सा	,,
वातपित्तातिसार-चिकित्सा ।	
कलिङ्गादि	... ,,
पित्तश्लेष्मातिसार-चिकित्सा	,,
मुस्तादि, समङ्गादि	... ,,
कुटजादि	... २३९
वातश्लेष्मातिसार-चिकित्सा	,,
चित्रकादि	... ,,
त्रिदोषातिसार-चिकित्सा	,,
समङ्गादि-कषाय	... ,,
पञ्चमूली-बलादि	... २४०
पुटपक्कौषधप्रयोगविधि, कुटज-पुटपाक	... ,,
श्योनाकपुटपाक, दाडिमपुटपाक	... २४१
कुटज-लेह	... ,,
कुटजाष्टकावलेह	... २४२
दुग्ध-पानविधि	... २४३
शोथातीसार-चिकित्सा	,,
भय-शोकज अतीसार चिकित्सा	,,
पृश्निपर्ण्यादि	... ,,
रक्तातीसार-चिकित्सा	२४४
रसाञ्जनादिचूर्ण, नारायणचूर्ण	... २४७
गुदपाकमें विधि	... २४८
साधारणातिसार-चिकित्सा	,,
बिल्वादि, पटोलादि, प्रियंग्वादि	... ,,
जम्ब्वादि	... ,,
वत्सकादि, नाभिप्रलेप	... २४९
प्रवाहिका-चिकित्सा	,,
अहिफेनयोग, अहिफेनवटिका	... २५०
जातीफलादिवटी, पूर्णचन्द्रोदयरस	२५१
बृहद्गगनसुन्दररस, लोकनाथरस	... २५२
बृहच्चिन्तामणिरस, भुवनेश्वररस	२५३

विषय.	पृष्ठ.
जातीफलरस	... २५४
अभयनृसिंहरस, आनन्दभैरवरस	... २५५
कर्पूररस, बब्बूराद्यरिष्ट, कुटजारिष्ट	२५६
अहिफेनासव	... २५७
अतीसारमें वर्ज्जनीय, अतीसारमें पथ्य	... २५८
अतीसारमें अपथ्य	... २५९

ग्रहणीरोगकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
नागराद्यचूर्ण, पाठाद्यचूर्ण	... २६१
कपित्थाष्टकचूर्ण, स्वल्प--गङ्गाधर-चूर्ण	... २६२
मध्यम—गङ्गाधरचूर्ण, बृहद्गङ्गाधर-चूर्ण	... २६३
बृद्धगङ्गाधरचूर्ण	... २६४
स्वल्पलवंगाद्यचूर्ण बृहल्लवंगाद्यचूर्ण	२६५
महालवंगाद्यचूर्ण	... २६७
स्वल्पनायिकाचूर्ण, मध्यमनायिकाचूर्ण	२६८
बृहन्नायिकाचूर्ण	... २६९
ग्रहणीशार्दूलचूर्ण	... २७०
जातीफलाद्यचूर्ण, जीरकाद्यचूर्ण	... २७१
मार्कण्डेयचूर्ण	... २७२
कञ्चटावलेह, दशमूलगुड	... २७३
कल्याणगुड	... २७४
कूष्माण्डगुडकल्याण	... २७५
कामेश्वरमोदक	... २७७
मदनमोदक	... २७८
मेथीमोदक	... २७९
बृहन्मेथीमोदक	... २८०
मुस्तकादिमोदक	... २८१
जीरकादिमोदक	... २८२
बृहज्जीरकादिमोदक	... २८३
अग्निकुमारमोदक	... २८५
हंसपोट्टली, ग्रहणीकपर्द्दपोट्टली	... २८६
अग्निकुमाररस	... २८७
स्वल्पग्रहणीकपाटरस १-५	... "
ग्रहणीवज्रकपाटरस	... २९०
बृहद्ग्रहणीवज्रकपाट	... २९०
संग्रहग्रहणीकपाटरस	... २९१
ग्रहणीगजेन्द्रवटिका	... २९२
जातीफलाद्यवटिका	... २९३
बृहज्जातीफलाद्यवटिका	... "
बडवामुख रस	... २९४
ग्रहणीशार्दूलरस	... २९५
महागन्धक और सर्वाङ्गसुन्दररस	... २९६
वैद्यनाथवटी	... २९७
खसर्पणवटी	... २९८
रसाभ्रवटी, महाभ्रवटी	... २९९
पीयूषवल्लीरस	... ३०१
पानीयभक्तवटी	... ३०२
श्रीनृपतिवल्लभरस	... ३०४
बृहन्नृपवल्लभ	... ३०५
महाराजनृपतिवल्लभ	... ३०६
महाराजनृपवल्लभ	... ३०७
रसपर्पटी	३०८
लौहपर्पटी	... ३१५
स्वर्णपर्पटी	... ३१६
पञ्चामृतपर्पटी	... ३१७
विजयपर्पटी	... ३१८
दूसरी विजयपर्पटी	... ३२१
हिरण्यगर्भपोट्टली रस	... ३२२
स्वल्पचुक्र, बृहच्चुक्र	... ३२३
आयामकाञ्जिक	... ३२४
अष्टपलघृत	... ३२५
बिल्वादिघृत, बिल्वगर्भघृत	... ३२६
शुण्ठीघृत, नागरघृत, चित्रकघृत.	... "
चाङ्गेरीघृत, मरिचाद्यघृत	... ३२७
महाषट्पलकघृत, त्रिलवतैल	... ३२८
ग्रहणीमिहिरतैल	... ३३०
बृहद्ग्रहणीमिहिरतैल	... ३३१

विषय.	पृष्ठ.
तक्रारिष्ट, पिप्पल्याद्यासव ...	३३२
अर्शोरोगचिकित्सा	३३३
रक्तार्शश्चिकित्सा	३३३
लवणोत्तमादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण ...	३३९
व्योषादिचूर्ण ...	"
विजयचूर्ण, शूरणपिण्डी ...	३४०
भल्लातकादिमोदक, नागरादिमोदक ...	३४१
स्वल्पशूरणमोदक ...	"
बृहच्छूरणमोदक ...	३४२
श्राङ्कायनमोदक, माणिभद्रमोदक	३४३
प्राणदा गुटिका ...	३४४
नागार्ज्जुनयोग ...	३४५
कुटजलेह ...	३४७
कुटजरसक्रिया ...	३४८
दशमूल-गुड, बाहुशाल गुड ...	३४९
गुडभल्लातक ...	३५१
अन्य-गुडभल्लातक, माणशूरणादिलोहू ...	३५२
अग्निमुखलोह ...	३५३
चन्द्रप्रभागुटिका ...	३५४
रसगुडिका, तीक्ष्णमुखरस ...	३५६
अर्शकुठाररस, चक्राख्यरस ...	३५७
कञ्चुकुठाररस ...	"
चक्रेश्वररस. शिलागन्धकवटी ...	३५८
जातीफलादिवटी, पञ्चाननवटी ...	३५९
नित्यदित रस, अष्टाङ्गरस ...	३६०
उदकषट्पलकघृत. ...	"
व्योषाद्यघृत, चव्याद्यघृत ...	३६१
कुटजाद्यघृत, सिद्धमृतघृत ...	"
सुनिषण्णक-चांगेरीघृत ...	३६२
कासीसाद्यतैल, बृहत्कासीसाद्यतैल	३६३
पिप्पल्याद्यतैल, दन्त्यरिष्ट ...	३६४
क्षार ...	३६५
क्षारपाकविधि ...	३६६
अर्शरोगमें पथ्य, अर्शोरोगमें अपथ्य	३६७
अग्निमान्द्यचिकित्सा।	
तीक्ष्णाग्निचिकित्सा	३६९
आमाजीर्णचिकित्सा	३७०
चित्रकगुडिका ...	"
विदग्धाजीर्णचिकित्सा	३७१
विष्टब्धरसशेषाजीर्णचिकित्सा	"
पथ्यात्रिक ...	३७२
विशिष्टद्रव्याजीर्णकी विधि ...	"
विषूचिकाकी चिकित्सा	३७४
अलसकचिकित्सा	३७५
उदरकी पीडाकी चिकित्सा	"
सैन्धवाद्यचूर्ण १-२ ...	३७६
हिंग्वष्टकचूर्ण, वडवामुखचूर्ण ...	३७७
स्वल्पाग्निमुखचूर्ण ...	"
बृहदग्निमुखचूर्ण ...	३७८
अग्निमुखलवण ...	३७९
भास्करलवण ...	३८०
श्रीरामबाणरस अग्नितुण्डीरस ...	३८२
अमृतकल्पवटी, अमृतवटी ...	३८२
क्षुधासागर रस ...	"
लवङ्गादिवटी, बृहल्लवंगादिवटी ...	३८३
अजीर्णकण्टकरस, महोदधिवटी	३८४
बृहन्महोदधिवटी	"
अग्निकुमाररस बृहदग्निकुमाररस	३८५
हुताशनरस, बृहद्धुताशन रस ...	३८६
जातीफलादिवटी, भास्कररस ...	३८७
अग्निसन्दीपन रस ...	३८८
त्रिफलालोह, प्रदीपनरस, विजयरस ...	३८९
अग्निरस, टङ्कणादि वटी, रस-राक्षस ...	३९०
पञ्चामृतवटी, ज्वालानलरस ...	३९१
भक्तविपाकवटी, बृहद्भक्तपाकवटी...	३९२

विषय.	पृष्ठ.
पाशुपतरस	... ३९३
अजीर्णबलकालानलरस	... ३९५
शंखवटी	... ३९६
द्वितीय-शंखवटी	... ३९७
तृतीय बृहच्छंखवटी	... ,,
चतुर्थ-शंखवटी और महाशंखवटी	३९८
पंचम-महाशंखवटी, षष्ठ-महाशंखवटी	... ३९९
वज्रक्षार	... ४००
क्रव्यादरस	... ४०१
विश्वोद्दीपकाभ्र	... ४०२
वीरभद्राभ्रक	... ४०३
लवङ्गाद्यमोदक, सुकुमारमोदक	... ४०४
त्रिवृदादिमोदक, हरीतकीप्रयोग	... ४०५
अमृता-हरीतकी, शार्दूलकाञ्जिक	... ४०६
मुस्तकारिष्ट	... ४०७
चित्रकगुड, क्षारगुड	... ४०८
मस्तुषट्पलघृत, अग्निघृत	... ४०९
बृहदग्निघृत	... ४१०
अग्निमान्द्यरोगमें पथ्य	... ४११
अग्निमान्द्यरोगमें अपथ्य	... ४१२

कृमिरोग—चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
पारसीयादिचूर्ण	... ४१५
कृमिकालानल रस	... ४१६
कृमिधूलिजलप्लव रस	... ,,
कृमिकाष्ठानल रस, लाक्षादिवटी	... ४१७
कृमिमुद्गर रस, कीटारिरस	... ४१८
कीटमर्दरस	... ,,
कृमिघातिनी गुटिका, कृमिविनाशरस	... ४१९
कृमिहररस, कृमिरोगारिरस	... ४२०
कृमिघ्नरस	... ,,
विडंगलौह, हरिद्राखण्ड	... ४२१
त्रिफलाद्यघृत, विडंगघृत	... ४२२
विडंगतैल, धुस्तूरतैल	... ४२३
कृमिरोगमें पथ्य	... ४२३
कृमिरोगमें अपथ्य	... ४२४

पाण्डु—कामला हलीमककी चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
कामला—चिकित्सा	४२६
कुम्भकामलाकी चिकित्सा	... ४२७
हलीमककी—चिकित्सा	,,
फलत्रिकादि-कषाय, वासादि-कषाय	... ४२८
नवायसलौह	... ,,
निशालौह, धात्रीलौह, विडंगादि-लौह	... ४२९
दार्व्यादिलौह, त्रिकत्रयाद्यलौह	... ४३०
कामलान्तकलौह	... ४३१
पञ्चामृतलौह-मंडूर	... ४३२
वज्रवटकमण्डूर, पुनर्नवादिमण्डूर	४३३
त्र्यूषणादिमण्डूर	... ४३४
चन्द्रसूर्यात्मकरस	... ४३५
प्राणवल्लभरस	... ४३६
पञ्चाननवटी, पाण्डुसूदनरस	... ४३७
आनन्दोदयरस, त्रैलोक्यसुन्दररस	४३८
योगराज	... ४३९
धात्र्यरिष्ट, हरिद्रादिघृत	... ४४०
द्राक्षाघृत, मूर्वाद्यघृत, व्योषाद्यघृत	४४१
पाण्डुरोगमें पथ्य, पाण्डुरोग-में अपथ्य	... ४४२

रक्तपित्त—चिकित्सा ४४३

विषय.	पृष्ठ.
ह्रीबेरादि, वासकादि	... ४४८
धान्यकादि, अटरूषकादि	... ४४९
उशीरादिचूर्ण, एलादिगुटिका	... ,,
अर्केश्वररस, रक्तपित्तान्तकरस	... ४५०
रसामृतरस, सुधानिधिरस	... ४५१
कपर्द्दकरस, समशर्कर लौह	... ४५२
शतमूल्यादिलौह, शर्कराद्यलौह	... ४५३
रक्तपित्तान्तकलौह	... ,,

विषय.	पृष्ठ.
खण्डकाद्यलौह	... ४५४
कूष्माण्डखण्ड	... ४५५
वासाकूष्माण्डखण्ड	... ४५६
वासाखण्ड	... ४५७
बृहत्कूष्माण्डावलेह	... ४५८
त्रिवृत्तादिमोदक	... ४५९
वासाद्यघृत, दूर्वाद्यघृत	... ४६०
सप्तप्रस्थघृत, शतावरीघृत	... ४६१
बृहच्छतावरीघृत	... ४६२
कामदेवघृत	... ४६३
उशीरासव	... ४६४
रक्तपित्तमें पथ्य	... ४६५
रक्तपित्तमें अपथ्य	... ४६७

यक्ष्मरोग–चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
दशमूलक्वाथ, अश्वगन्धादिक्वाथ	... ४७०
त्रयोदशाङ्गक्वाथ	... ,,
बलादिचूर्ण, लवंगाद्यचूर्ण	... ४७१
शृङ्ग्यर्जुनाद्य चूर्ण	... ,,
सितोपलादिलेह, वासावलेह	... ४७२
बृहद्वासावलेह १-२	... ४७३
च्यवनप्राश	... ४७५
द्राक्षारिष्ट, विन्ध्यवासियोग	... ४७७
यक्ष्मारि लौह, यक्ष्मान्तकलौह	... ४७८
शिलाजत्वादिलौह	... ,,
रजतादिलौह, क्षयकेसरी १-२	... ४७९
रसेन्द्रगुटिका, बृहद्रसेन्द्रगुटिका	... ४८१
कल्याणसुन्दराभ्ररस	... ४८३
बृहच्चन्द्रामृतरस, कुमुदेश्वररस	... ४८४
कांचनाभ्ररस, बृहत्काञ्चनाभ्ररस	... ४८५
स्वल्पमृगांकरस मृगांकरस	... ४८६
राजमृगांकरस	... ४८७
महामृगांकरस	... ४८८
लोकेश्वरपोट्टलीरस	... ४८९
हेमगर्भपोट्टलीरस, रत्नगर्भपोट्टलीरस	... ४९१
कनकसुन्दररस	... ४९२
सर्वाङ्गसुंन्दररस	... ४९३
सर्पिर्गुड	... ४९४
एलादिमन्थ	... ४९५
पिप्पलीघृत, निर्गुण्डीघृत	... ४९६
बलाद्यघृत १-२, नागबलाघृत	... ४९७
बलागर्भघृत, पाराशरघृत	... ४९८
अजापञ्चक घृत, छागलाद्यघृत १-२	४९९
जीवन्त्याद्यघृत	... ५००
अमृतप्राशघृत १-२	... ५०१
महाचन्दनादितैल	... ५०३
यक्ष्मारोगमें पथ्य	... ५०५
यक्ष्मारोगमें अपथ्य	... ५०६

कासरोगकी चिकित्सा ५०७

विषय.	पृष्ठ.
पञ्चमूलीक्वाथ	... ५०९
पिप्पल्यादिक्वाथ	... ५१०
कण्टकार्यादिक्वाथ, मरिचाद्यचूर्ण	... ,,
समशर्कर चूर्ण	... ५११
तालीशाद्यचूर्ण और मोदक	... ,,
कासान्तक, कासान्तकरस	... ५१२
कासकुठार, पित्तकासान्तकरस	... ,,
पुरन्दरवटी, पञ्चामृतरस	... ५१३
अमृतार्णवरस, श्रीचन्द्रामृतरस	... ५१४
श्रीडामरानन्दाभ्रक	... ५१५
महाकालेश्वररस	... ५१६
विजयभैरवरस	... ५१७
काससंहारभैरव रस	... ५१८
बृहद्रसेन्द्रगुटिका	... ५१९
महोदधि रस, तरुणानन्दरस	... ५२०
समशर्करलौह	... ५२२
श्रीचन्द्रामृतलौह, भागोत्तरगुटिका	५२३
लक्ष्मीविलासरस	... ५२४

विषय.	पृष्ठ.
शृङ्गाराभ्र	... ५२५
सार्वभौमरस	... ५२६
बृहच्छृङ्गाराभ्र	... ५२७
नित्योदय रस	... ५२८
वसन्ततिलक रस, व्याघ्रीहरीतकी	५२९
वासावलेह	... ५३०
कण्टकार्यवलेह, कण्टकारीघृत	... ५३१
दशमूलषट्पलक घृत	... ,,
छागलाद्यघृत	... ५३२
कुंकुमाद्यघृत	... ५३३
चन्दनाद्यतैल, वासा-चन्दनाद्यतैल	५३४
कासरोगमें पथ्य	... ५३५
कासरोगमें अपथ्य	... ५३६

हिक्का-श्वासरोगकी चि० ५३७

विषय.	पृष्ठ.
दशमूलादि, शठ्यादि, वासादि काथ	... ५४०
शुण्ठीभार्ङ्गी काथ, हरिद्रादिचूर्ण...	,,
शृङ्ग्यादिचूर्ण, विजयवटी	... ५४१
डामरेश्वराभ्र	... ,,
महाश्वासारिलोह	... ५४२
पिप्पल्याद्यलोह, श्वासकुठाररस...	५४३
महाश्वासकुठार रस	... ,,
श्वासभैरवरस, श्वासचिन्तामणि...	५४४
श्वासकासचिन्तामणि, बृहद् मृगाङ्कवटी	... ५४५
कनकासव	... ५४६
शृङ्गीगुडघृत	... ५४७
भार्ङ्गीशर्करा	... ५४८
भार्ङ्गीगुड	... ५४९
कुलत्थगुड	... ५५०
अगस्त्यहरीतकी, हिंस्राद्यघृत	... ५५१
तेजोवत्याद्यघृत, चन्दनाद्यतैल	... ५५२
बृहच्चन्दनाद्यतैल	... ५५३
हिक्कारोगमें पथ्य	... ५५४
हिक्कारोगमें अपथ्य	... ५५५
श्वासरोगमें पथ्य, श्वासरोगमें अपथ्य	... ५५६

स्वरभंगकी चिकित्सा ५५७

विषय.	पृष्ठ.
चव्यादिचूर्ण, त्र्यम्बकाभ्र	... ५५८
भैरवरस, किन्नरकण्ठरस	... ५५९
निदिग्धिकावलेह	... ५६०
व्याघ्रीघृत, सारस्वतघृत(ब्राह्मीघृत)	५६१
भृंगराजाद्यघृत, स्वरभंगमें पथ्य	... ५६२
स्वरभंगमें अपथ्य	... ५६३

अरोचकचिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
यमानीषाडव, कलहंस कांजी	... ५६५
तिन्तिडीपानक, रसाला	... ५६६
रसकेसरी, सुधानिधि रस	... ५६७
सुलोचनाभ्रक	... ५६८
अरोचकमें पथ्य	... ५६९
अरोचकमें अपथ्य	... ५७०

छर्दि (वमन) चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
एलादिचूर्ण	... ५७२
रसेन्द्र, वृषध्वजरस, पद्मकाद्यघृत	५७३
छर्दिरोगमें पथ्य	... ५७४
छर्दिरोगमें अपथ्य	... ५७५

तृषाकी चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
रसादिचूर्ण, महोदधिरस	... ५७९
तृष्णारोगमें पथ्य	... ,,
तृष्णारोगमें अपथ्य	... ५८०

मूर्च्छारोगकी चिकित्सा ५८१

विषय.	पृष्ठ.
मूर्च्छान्तकरस, अश्वगन्धारिष्ट	... ५८३
मूर्च्छारोगमें पथ्य	... ५८४
मूर्च्छारोगमें अपथ्य	... ५८५

मदात्ययरोग-चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
फलत्रिकाद्यचूर्ण, एलाद्यमोदक	... ५८७
महाकल्याणवटी, पुनर्नवाद्यघृत	... ५८८
मदात्ययरोगमें पथ्य	... ,,
मदात्ययरोगमें अपथ्य	... ५८९

विषय.	पृष्ठ.
दाहकी चिकित्सा ।	
चन्दनादि क्वाथ, पर्पटादि क्वाथ ...	५९०
दाहान्तकरस ...	,,
सुधाकररस ...	५९१
कुशाद्यतैल और घृत, दाहरोगमें पथ्य ...	,,
दाहरोगमें अपथ्य ...	५९३
उन्मादरोगकी चिकित्सा ।	
अञ्जन ...	५९५
निम्बधूप, महाधूप, सारस्वत चूर्ण	५९६
उन्मादपर्पटीरस, उन्मादभञ्जिनी ...	५९७
उन्मादगजकेसरी, उन्मादगजांकुश	५९८
उन्मादभञ्जनरस, भूतांकुश रस ...	५९९
चतुर्भुजरस ...	६००
हिंग्वाद्यघृत, लशुनाद्यघृत ...	६०१
पानीयकल्याणघृत ...	६०२
क्षीरकल्याणघृत, महाकल्याणघृत	६०३
स्वल्पचैतसघृत ...	,,
महापैशाचिकघृत, शिवाघृत ...	६०४
शिवातैल ...	६०६
उन्मादरोगमें पथ्य ...	६०७
उन्मादरोगमें अपथ्य ...	६०८
अपस्माररोगकी चिकित्सा ।	
सूतभस्मप्रयोग, इन्द्रब्रह्मवटी ...	६१०
भूतभैरव रस, वातकुलान्तक ...	६११
कूष्माण्डघृत, ब्राह्मीघृत ...	६१२
स्वल्पपञ्चगव्य घृत ...	,,
बृहत्पञ्चगव्य घृत ...	,,
महाचैतसघृत ...	६१३
पलंकषाद्यतैल ...	६१४
अपस्माररोगमें पथ्यापथ्यविधि ...	६१५
वातव्याधिकी चिकित्सा ।	
कोष्ठगत-वातकी चिकित्सा ...	६१६
आमाशयगत-वातकी चिकित्सा ...	६१६
पक्वाशयगत-वातकी चिकित्सा ...	,,
बस्त्यादिगत-वातकी चि० ...	,,
स्नायुसन्ध्यस्थिगत-वातकी चि०...	,,
त्वग्गत वातकी चि० ...	६१७
रक्तगत-वातकी चि० ...	,,
मांसमेदोगत वातकी चि० ...	,,
अस्थिमज्जागत-वातकी चि० ...	,,
शुक्रगत-वातकी चि० ...	,,
शुष्कगर्भकी चि० ...	,,
शिरोगत-वातकी चि० ...	६१८
व्यादितकी चि० ...	,,
अर्दितकी चि० ...	,,
मन्यास्तम्भकी चि० ...	,,
ग्रीवास्तम्भकी चि० ...	६१९
जिह्वास्तम्भकी चि० ...	,,
कुब्जकी चि० ...	,,
आध्मानकी चि० ...	,,
अष्ठीला और प्रत्यष्ठीलाकी चि०	,,
गृध्रसीकी चि० ...	६२०
वातकण्टककी चि० ...	,,
खल्वकी चि० ...	,,
शिराग्रहकी चि० ...	,,
अपतानककी चि० ...	६२१
पक्षाघातकी चि० ...	,,
अपतन्त्रककी चि० ...	,,
खञ्ज और पंगुताकी चि० ...	६२२
क्रोष्टुशीर्षकी चि० ...	,,
कलायखञ्जकी चि० ...	,,
बाह्यान्तरायामकी चि० ...	,,
त्रिकशूलकी चि० ...	,,
पाददाहकी चि० ...	६२३
पादहर्षकी चि० ...	,,

विषय.	पृष्ठ.
दशमूलादिक्काथ, बलादिक्काथ	... ६२३
एरण्डादिक्काथ	... "
सिंहास्यादिक्वाथ, रास्नासप्तकक्वाथ	६२४
माषादिक्वाथ, गोक्षुरादिक्वाथ	... "
माषबलादिक्वाथ	... "
कल्याणलेह, शाल्वणस्वेद	... ६२५
वातगजांकुश	... ६२६
बृहद्वातगजांकुश, महावातगजांकुश	६२७
लघुआनन्दरस	... "
गगनादिवटी, कुब्जविनोद रस	... ६२८
सर्वाङ्गकम्पारिरस, चिन्तामणिरस	६२९
चिन्तामणिचतुर्मुख, बृहद्वात-चिन्तामणि	... ६३०
चतुर्मुखरस	... ६३१
लक्ष्मीविलासरस, योगेन्द्ररस	... ६३२
वातारिरस	... ६३३
अनिलारिरस	... ६३४
सर्वाङ्गसुन्दररस, शीतारिरस	... ६३५
तालकेश्वररस, वातविध्वंसनरस	... ६३६
वातनाशनरस, वातकण्टकरस	... ६३७
त्रैलोक्यचिन्तामणिरस	... ६३८
स्वल्परसोनपिण्ड, त्रयोदशांगगुग्गल	६४०
दशमूलाद्यघृत, अश्वगन्धाद्यघृत	... ६४१
नकुलाद्यघृत	... "
छागलाद्यघृत	... ६४२
बृहच्छागलाद्यघृत	... ६४३
हंसाद्यघृत	... ६४६
रसोनाद्य तैल, मूलकाद्यतैल	... ६४७
वायुच्छायासुरेन्द्रतैल	... "
महाबलातैल	... ६४९
अश्वगंधातैल	... ६५०
श्रीगोपालतैल	... ६५१
विष्णुतैल	... ६५२
बृहद्विष्णुतैल	... ६५४
नारायणतैल	... ६५५
मध्यमनारायणतैल	... ६५६
महानारायणतैल	... ६५७
पुष्पराजप्रसारिणीतैल	... ६६०
हिमसागरतैल	... ६६१
सिद्धार्थकतैल	... ६६२
नकुलतैल	... ६६३
महाकुक्कुटमांसतैल	... ६६५
माषतैल १-२, लघुमाषतैल	... ६६६
बृहन्माषतैल	... ६६७
सप्तप्रस्थमहामाषतैल	... ६६८
महामाषतैल	... ६६९
निरामिषमहामाषतैल	... ६७०
माषबलादितैल	... ६७१
कुब्जप्रसारिणीतैल	... ६७२
त्रिशतीप्रसारणीतैल	... "
सप्तशतिकप्रसारणी	... ६७४
एकादशशतिकप्रसारणीतैल	... ६७६
अष्टादशशतिकप्रसारणीतैल	... ६७८
महाराजप्रसारिणीतैल	... ६८०
महासुगन्धितैल और लक्ष्मी-विलासतैल	... ६८४
वातव्याधिमें पथ्य	... ६८५
वातव्याधिमें अपथ्य	... ६८७

पित्तरोगकी चिकित्सा ६८८

धात्रीलोह	... ६८९
पित्तान्तकरस, महापित्तान्तकरस	... ६९०
गुडूचीतैल, पित्तरोगमें पथ्य	... ६९१
पित्तरोगमें अपथ्य	... "

कफरोगकी चिकित्सा ६९२

कफचिन्तामणिरस, बृहत्कफ-केतुरस	... ६९३
महाश्लेष्मकालानलरस	... ६९४
श्लेष्मशैलेन्द्ररस (रसेन्द्रगुडिका)	"
महालक्ष्मीविलास	... ६९६

विषय.	पृष्ठ.
धुस्तूरतैल	... ६९७
कनकतैल	... ६९८
तप्तराजतैल	... ६९९
कफरोगमें पथ्य, कफरोगमें अपथ्य	७००
वातरक्तरोगकी चिकित्सा	**७०१**
अमृतादि, सिंहास्यादि पटोलादि	७०३
मञ्जिष्ठादि, त्रिवृतादि, नवकार्षिक	७०४
निम्बादिचूर्ण	... "
वातरक्तान्तकरस	... ७०५
अन्य प्रकार वातरक्त चिकित्सा	**७०६**
विश्वेश्वररस	... "
द्वादशायस	... ७०७
गुडूच्यादिलौह, पित्तान्तकलौह	... ७०८
लांगलाद्यलौह	... "
योगसारामृत	... ७०९
तालभस्म	... ७१०
महातालेश्वर रस, अमृतागुग्गुल	... ७११
रसाभ्रगुग्गुल	... ७१२
कैशोरकगुग्गुल	... ७१३
पुनर्नवा-गुग्गुल	... ७१४
गुडूचीघृत, शतावरीघृत	... ७१५
अमृताद्यघृत	... ७१६
मध्यमगुडूचीतैल, बृहद्गुडूचीतैल	... ७१७
महारुद्रगुडूचीतैल	... ७१८
महापिण्डतैल	... ७१९
विषतिन्दुकतैल	... ७२०
रुद्रतैल	... ७२१
महारुद्रतैल	... ७२२
वातरक्तमें पथ्य, वातरक्तमें अपथ्य	७२३
ऊरुस्तम्भकी चिकित्सा	**७२४**
भल्लातकादि, पिप्पल्यादि	... ७२५
गुञ्जाभद्ररस, अष्टकट्वरतैल कुष्ठाद्यतैल	... ७२६
महासैन्धवाद्यतैल, ऊरुस्तम्भमें पथ्य	... ७२७
ऊरुस्तम्भमें अपथ्य	... ७२८
आमवातकी चिकित्सा ।	
एरण्डादि, शठ्यादि	... ७३०
रसोनादि, रास्नापञ्चक, रास्नासप्तक	७३१
रास्नादशमूलक, मध्यमरास्नादि	... "
महारास्नादि	... ७३२
शतपुष्पाद्यचूर्ण, हिंग्वाद्यचूर्ण	... ७३३
अलम्बुषाद्यचूर्ण १-२	... "
वैश्वानरचूर्ण, शंकरस्वेद	... ७३४
प्रसारणीसंधान, आमवातारिवटिका	७३५
आमवातारिरस, आमवातेश्वररस	७३६
वातगजेन्द्रसिंह	... ७३८
आमप्रमाथिनी वटिका	... ७३९
आमवाताद्रिवज्ररस	... "
त्रिफलादिलौह, विडङ्गादिलौह	... ७४०
पञ्चाननरसलौह	... ७४१
अजमोदादिवटक	... ७४३
आमवातगजसिंह मोदक	... ७४४
रसोनपिण्ड	... ७४५
महारसोनपिण्ड	... ७४६
वातारिगुग्गुल	... ७४७
योगराजगुग्गुल	... ७४८
बृहद्योगराजगुग्गुल	... ७४९
व्याधिशार्दूलगुग्गुल	... ७५०
बृहत्सिंहनाद-गुग्गुल	... ७५१
शुण्ठीघृत	... ७५२
शृङ्गवेराद्यघृत, प्रसारणीतैल	... ७५३
सैन्धवाद्यतैल	... "
बृहत्सैन्धवाद्यतैल	... ७५४
विजयभैरवतैल	... ७५५
महाविजय-भैरवतैल, आमवातमें पथ्य	... ७५६
आमवातमें अपथ्य	... ७५७

विषय.	पृष्ठ.

शूलरोगकी चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
वातिक-शूलचिकित्सा	... ७५७
पैत्तिक-शूलचिकित्सा	... ७६०
श्लैष्मिक-शूलचिकित्सा	... ७६१
आम-शूलचि०	... ७६२
वातपैत्तिक-शूलचि०	... "
पित्तश्लैष्मिक-शूलचि०	... "
त्रिदोषज-शूलचि०	... ७६३
परिणाम-शूलचि०	... "
नारिकेलक्षार, शंखादिचूर्ण, सामुद्राद्यचूर्ण	... ७६५
शम्बूकादिगुडिका, शंखरसगुटिका	७६६
शूलहरयोग	... ७६७
शूलगजकेसरी, शूलवज्रिणीवटी	... ७६८
शूलान्तकरस	... ७६९
त्रिगुणाख्यरस, श्रीविद्याधराभ्र	... ७७०
बृहद्विद्याधराभ्र	... ७७१
त्रिफलालौह, शर्कराद्यलौह	... ७७२
सप्तामृतलौह	... "
शूलराजलौह, वैश्वानरलौह	... ७७३
चतुःसमलौह	... ७७४
धात्रीलौह	... ७७५
बृहद्धात्रीलौह	... ७७६
क्षीरमण्डूर, रसमण्डूर	... ७७७
कोलादिमण्डूर, चतुःसममण्डूर	... ७७८
भीमवटकमण्डूर, तारामंडूरगुड	... ७७९
शतावरीमण्डूर	... ७८०
बृहच्छतावरीमण्डूर १-२	... ७८१
हरीतकीखण्ड	... ७८२
पूगखण्ड १-२	... ७८३
खण्डामलकी	... ७८५
नारिकेलखण्ड	... ७८६
बृहन्नारिकेलखण्ड	... ७८७
नारिकेलामृत	... ७८८
गुडपिप्पलीघृत	... ७८९
पिप्पलीघृत, बीजपूराद्यघृत	... ७९०
शूलगजेन्द्रतैल, शूलरोगमें पथ्य	... ७९१
शूलरोगमें अपथ्य	... ७९२

उदावर्त्त, आनाहकी चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
नाराचचूर्ण	... ७९६
फलवर्त्ति, त्रिकट्वादिवर्ति	... ७९७
नाराचरस	... "
वैद्यनाथवटी, बृहदिच्छाभेदीरस	... ७९८
गुडाष्टक, शुष्कमूलाद्यघृत	... ७९९
स्थिराद्यघृत	... "
उदावर्त्तमें पथ्य, उदावर्त्तमें अपथ्य	८००
आनाहमें पथ्य और अपथ्य	... "

गुल्मरोगकी चिकित्सा ८०१

विषय.	पृष्ठ.
वातगुल्मचिकित्सा	... ८०३
पित्तगुल्मचि०	... ८०४
कफगुल्मचि०	... ८०५
द्वन्द्वजगुल्म-चि०	... ८०६
सान्निपातिकगुल्म-चि०	... "
रक्तगुल्म-चि०	... ८०७
हिंग्वादिचूर्ण १-२	... ८०८
वचादिचूर्ण, लवंगादिचूर्ण	... ८०९
कांकायनगुडिका	... ८१०
पञ्चाननरस, शिखिवाडवरस	... ८११
नागेश्वरस, गुल्मकालानलरस	... ८१२
बृहद्गुल्मकालानलरस	... ८१३
महागुल्मकालानलरस	... "
गुल्मशार्दूलरस, सर्वेश्वररस	... ८१४
गुल्मवज्रिणीवटिका, रसायनामृतलौह	... ८१५
दन्तीहरीतकी	... ८१६
पञ्चपलकघृत, भल्लातकाद्यघृत	... ८१७

विषय.	पृष्ठ.
त्रायमाणाद्यघृत	... ८१७
नाराचघृत	... ८१८
हबुषाद्यघृत, क्षीरषट्पलकघृत	... ८१९
धात्रीषट्पलकघृत	... "
द्राक्षाद्यघृत, गुल्मरोगमें पथ्य	... ८२०
गुल्मरोगमें अपथ्य	... ८२१
हृद्रोगकी चिकित्सा ।	
रसायन, नागार्जुनाभ्र	... ८२५
हृदयार्णवरस, पञ्चाननरस	... ८२६
प्रभाकरवटी	... "
चिन्तामणिरस, विश्वेश्वररस	... ८२७
शङ्करवटी	... ८२८
कल्याणसुन्दररस, वल्लभघृत	... ८२९
श्वदंष्ट्राद्यघृत	... "
बलाद्यघृत, अर्जुनघृत	... ८३०
हृदयरोगमें पथ्य	... "
हृदयरोगमें अपथ्य	... ८३१
मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।	
तृणपञ्चमूल, पञ्चतृणक्षीर, त्रिकण्टकादि	... ८३४
धान्यादि, बृहद्धान्यादि	... ८३५
अमृतादि, शतावर्यादि	... "
हरीतक्यादि, तारकेश्वररस	... ८३६
त्रिनेत्राख्यरस	... "
मूत्रकृच्छ्रान्तकरस १-२	... ८३७
शतावरीघृत और क्षीर	... ८३८
त्रिकण्टकाद्य घृत, मूत्रकृच्छ्रमें पथ्य	"
मूत्रकृच्छ्रमें अपथ्य	... ८३९
मूत्राघातकी चिकित्सा ।	
धान्यगोक्षुरकघृत मूत्राघातमें पथ्य	८४१
मूत्राघातमें अपथ्य	... ८४२
अश्मरीकी चिकित्सा ।	
वरुणादि, बृहद्वरुणादि	... ८४३
शुंठ्यादि, एलादि	... ८४३
वीरतर्वादिगण, आनन्दयोग	... ८४४
बृहद्गोक्षुराद्यवलेह	... ८४५
पाषाणभिन्न	... ८४६
पाषाणवज्ररस, वरुणाद्यलौह	... ८४७
कुलत्थाद्यघृत, वरुणघृत	... ८४८
पाषाणाद्यघृत	... ८४९
भद्रावहघृत, विदारीघृत	... ८५०
वरुणाद्य तैल, शिलोद्भिदादितैल	... ८५२
उशीराद्य तैल	... "
अश्मरीरोगमें पथ्य	... ८५३
अश्मरीरोगमें अपथ्य	... ८५४
प्रमेहकी चिकित्सा ।	
फलत्रिकादि	... ८५६
विडङ्गादि, मुस्तादि, शिलाजतुप्रयोग	... ८५७
कुशावलेह	... ८५८
शालसारादिलेह, वङ्गावलेह	... ८५९
विडंगादिलौह, मेहकालानलरस	... ८५९
पञ्चाननरस, चन्द्रकला, मेहमुद्गरवटिका	... ८६०
शुक्रमातृकावटी	... ८६१
वेदविद्यावटी	... ८६२
वंगाष्टक, मेहवज्र	... ८६३
चन्द्रप्रभागुडिका, चन्द्रप्रभावटी	... ८६४
स्वर्णवंग, मेहकेशरी	... ८६६
मेहान्तकरस, सर्वेश्वररस	... ८६७
वंगेश्वररस १-२	... ८६८
बृहद्वङ्गेश्वररस १-२	... "
हरिशङ्कररस	... ८६९
बृहद्धरिशङ्कररस, मेहकुञ्जरकेशरीरस	... ८७०
अपूर्व मालिनीवसन्त	... ८७१
बृहत्कामचूडामणिरस	... "
प्रमेहचिन्तामणि	... ८७२
शाल्मलीघृत, दाडिमाद्यघृत	... "

विषय.	पृष्ठ.
बृहद्दाडिमाद्यघृत	... ८७४
महादाडिमाद्यघृत	... ८७५
मेहमिहिरतैल	... ८७६
प्रमेहमिहिरतैल	... ८७७
देवदार्वाद्यरिष्ट	... ८७८
चन्दनासव	... ८७९
प्रमेहमें पथ्य	... ८८०
प्रमेहमें अपथ्य	... ८८१

सोमरोगकी चिकित्सा ।

तारकेश्वररस	... ८८३
गगनादिलौह, सोमनाथरस	... ८८४
बृहत्सोमनाथरस	... ८८५
सोमेश्वररस	... ८८६
बहुमूत्रान्तकरस १-२	... ८८७
हेमनाथरस, मालतीकुसुमाकर	... ८८८
वसन्तकुसुमाकररस	... ८८९
कस्तूरीमोदक	... ८९०
धात्रीघृत, बृहद्धात्रीघृत	... ८९१
कदल्यादिघृत	... ८९२

मेदोरोगकी चिकित्सा ८९३

व्योषाद्य सक्तुप्रयोग	... ८९५
विडङ्गाद्यलौह	... ८९६
त्र्यूषणादिलौह, लौहरसायन	... ८९७
नवकगुग्गुलु, अमृताद्यगुग्गुलु	... ८९९
त्रिफलाद्यतैल	... ,,
मेदोरोगमें पथ्य	... ९००
मेदोरोगमें अपथ्य	... ९०१

उदररोगकी चिकित्सा ।

मानमण्ड	९०३
सामुद्राद्यचूर्ण, इच्छाभेदीरस १-३	९०४
भेदिनीवटी, नाराचरस	... ९०५
जलोदरारिरस	... ९०६
दस्तको बन्द करनेके उपाय, वह्निरस	९०६
चुलिकावटी, श्रीवैद्यनाथादेशवटिका	९०७
अभयावटी	... ९०८
शोथोदरारिलौह	... ९०९
वज्रक्षार	... ९१०
बिन्दुघृत, महाबिन्दुघृत,	... ९११
नाराचघृत	... ९१२
बृहन्नाराचघृत उदररोगमें पथ्य	... ९१३
उदररोगमें अपथ्य	... ९१४

प्लीहा और यकृत्की चिकित्सा ।

यमानिकादि चूर्ण	... ९१५
गुडूच्यादिचूर्ण, रोहितकाद्यचूर्ण	... ९१६
मानकादिगुटिका	... ,,
बृहन्मानादिगुटिका	... ९१७
अर्कलवण, अभयालवण	... ९१८
वर्द्धमानपिप्पली	... ९१९
गुडपिप्पली	... ९२०
बृहद्गुडपिप्पली	... ९२१
रसराज, प्लीहान्तकरस	... ९२२
वासुकिभूषणरस, विद्याधररस	... ९२३
लोकनाथरस १-२	... ,,
बृहल्लोकनाथरस, प्लीहारिरस	... ९२५
लौहमृत्युञ्जयरस	... ९२६
रोहीतकलौह, चित्रकादिलौह	... ९२७
यकृत्प्लीहारिलौह, यकृदरिलौह	... ९२८
महामृत्युञ्जयलौह	... ९२९
सर्वेश्वरलौह	... ९३०
यकृत्प्लीहोदरहरलौह	... ९३१
शंखद्रावरस	... ९३२
शंखद्रावक, महाशंखद्रावक	... ९३४
महाद्रावक १-२	... ९३६
चित्रकघृत, पिप्पलीघृत	... ९४०
चित्रकपिप्पलीघृत, रोहीतकघृत	... ९४१

विषय.	पृष्ठ.
महारोहीतकघृत	... ९४१
रोहितकारिष्ट	... ९४२
शोथकी चिकित्सा	**९४३**
सिंहास्यादि, पटोलादि, त्रिफलादि	९४५
पथ्यादि, पुनर्नवाष्टक	... "
शुण्ठी-पुनर्नवादि	... "
पुनर्नवा-दशक, पुनर्नवापुटस्वेद	... ९४६
पुनर्नवादिचूर्ण	... "
शोथारिचूर्ण, पुनर्नवादिलेह	... ९४७
त्रिनेत्राख्यरस	... "
त्रिकटूवादिलौह, शोथारिलौह	... ९४८
शोथांकुशरस	... "
पञ्चामृतरस, शोथकालानलरस	... ९४९
क्षेत्रपालरस	... ९५०
कल्पलतावटी, दुग्धवटी १--२	... ९५१
तक्रवटी, दधिवटी	.... ९५२
शोथभस्मलोह	... ९५४
सुधानिधि	... ९५५
अग्निमुखमण्डूर, शोथारिमण्डूर	... ९५६
तक्रमण्डूर, रसाभ्रमण्डूर	... ९५७
पुनर्नवादि गुग्गुलु, दशमूलहरीतकी	९५९
शुण्ठीघृत, स्वल्प पुनर्नवाद्यघृत	... ९६०
पुनर्नवाद्यघृत१-२, माणकघृत	... "
चित्रकाद्यघृत, शुष्कमूलकाद्यतैल	९६१
बृहच्छुष्कमूलकाद्यतैल १-२	... "
शोथशार्दूल तैल	... ९६३
पुनर्नवाद्यतैल	... ९६४
शैलेयाद्यतैल, समुद्रशोषणतैल	... ९६५
पुनर्नवाद्यरिष्ट	... ९६६
शोथमें पथ्य	... ९६७
शोथमें अपथ्य	... ९६८
वृद्धिरोगकी चिकित्सा।	
ब्रध्नलक्षण	... ९७०
रास्नादि, त्रिकटूवादि	... ९७२
बिल्वादिचूर्ण, भक्तोत्तरीयचूर्ण	... ९७३
शशिशेखररस, वातारिरस	... ९७४
वृद्धिबाधिकावटी, रसराजेन्द्र	... ९७५
शतपुष्पाद्यघृत	... ९७६
त्रिवृतादिघृत, बृहद्दंतीघृत	... ९७७
गन्धर्वहस्तकतैल	... ९७८
वृद्धिरोगमें पथ्य, वृद्धिरोगमेंअपथ्य	९७९
गलगण्डादिकी चिकित्सा।	
गण्डमालाकी चिकित्सा	९८१
अपचीकी चिकित्सा	९८३
ग्रन्थिकी चिकित्सा	९८४
अर्बुदकी चिकित्सा	९८५
रौद्ररस, काञ्चनारगुटिका	... ९८८
काञ्चनारगुग्गुलु, सिन्दूरादितैल	... ९८९
तुम्बीतैल, अमृतादितैल, छुछुंदरीतैल	९९०
शाखोटकतैल, बिम्बादितैल, निर्गुण्डीतैल	"
व्योषाद्यतैल, चन्दनाद्यतैल, गुञ्जाद्यतैल	९९१
गलगण्डादिरोगोंपर पथ्य	... "
गलगण्डादिरोगोंपर अपथ्य	... ९९२
श्लीपदरोगकी चिकित्सा।	
वृद्धदारकचूर्ण पिप्पल्यादिचूर्ण	... ९९५
श्लीपदारि, श्लीपदगजकेशरी	... ९९६
नित्यानन्दरस	... "
कृष्णाद्यमोदक	... ९९७
सौरेश्वरघृत	... ९९८
विडङ्गादितैल, श्लीपदरोगमेंपथ्य	... ९९९
श्लीपदरोगमें अपथ्य	... "
विद्रधिकी चिकित्सा	**१०००**
वरुणादिघृत, विद्रधिरोगमें पथ्य	१००२
विद्रधिरोगमें अपथ्य	१००३

विषय.	पृष्ठ.
व्रणशोथकी चिकित्सा	**१००३**
त्रिफला-गुग्गुलु, तिलाष्टक ...	१००७
सप्ताङ्ग-गुग्गुलु ...	१००८
जात्याद्यघृत और तैल ...	"
बृहज्जातीकाद्यतैल ...	१००९
गौराद्यघृत और तैल	"
विपरीतमल्लतैल ...	१०१०
व्रणराक्षसतैल बृहद्व्रणराक्षसतैल	१०११
विडङ्गारिष्ट ...	१०१२
व्रणरोगमें पथ्य ...	१०१३
व्रणरोगमें अपथ्य ...	१०१४
सद्योव्रणकी चिकित्सा	**१०१५**
अग्निदग्धव्रणकी चिकित्सा ...	"
जीरकघृत, पाटलीतैल ...	१०१७
मंजिष्ठाद्यतैल ...	"
भग्नकी चिकित्सा	**१०१८**
लाक्षागुग्गुलु, आभागुग्गुलु ...	१०२०
गन्धतैल ...	"
भग्नरोगमें पथ्य, भग्नरोगमें अपथ्य	१०२२
नाडीव्रणकी चिकित्सा	**१०२३**
गुणवतीवर्त्ति ...	१०२५
सप्तांगगुग्गुलु, श्यामाघृत ...	१०२६
स्वर्जिकाद्यतैल, कुम्भीकाद्यतैल	"
भल्लातकाद्यतैल, निर्गुण्डीतैल ...	१०२७
हंसपदीतैल, नरास्थितैल ...	"
भगन्दरकी चिकित्सा	**१०२८**
नारायणरस ...	१०२९
चित्रविभाण्डकरस, ताम्रप्रयोग...	१०३०
नवकार्षिक गुग्गुलु ...	१०३१
सप्तविंशतिकगुग्गुलु ...	"
विष्यन्दनतैल ...	१०३२

विषय.	पृष्ठ.
करवीराद्यतैल, निशाद्यतैल ...	१०३३
सैन्धवाद्यतैल, भगन्दररोगमें पथ्य	"
भगन्दररोगमें अपथ्य ...	१०३४
उपदंशकी चिकित्सा।	
धूप, धूम ...	१०३६
लेप ...	१०३७
भैरवरस ...	१०३८
रसगुग्गुलु ...	१०४०
सारिवाद्यवलेह ...	१०४१
रसशेखर ...	१०४२
करञ्जाद्यघृत, भूनिम्बाद्यघृत ...	१०४३
अनन्ताद्यघृत, आगारधूमाद्यतैल	१०४४
उपदंशरोगमें पथ्य ...	"
उपदंशरोगमें अपथ्य ...	१०४५
शूकदोषकी चिकित्सा।	
दार्वीतैल, शूकदोषमें पथ्य ...	१०४७
शूकदोषमें अपथ्य ...	१०४८
कुष्ठरोगकी चिकित्सा।	
आरग्वधादि, लघुमञ्जिष्ठादि ...	१०५६
मध्यमञ्जिष्ठादि, बृहन्मञ्जिष्ठादि...	१०५७
पञ्चनिम्ब १--२ ...	१०५८
श्वेतारि, तालकेश्वररस ...	१०६०
तालकेश्वर ...	१०६१
महातालकेश्वर ...	१०६२
उदयभास्कर, अमृतांकुरलौह ...	१०६३
पाकलक्षण, रसमाणिक्य ...	१०६५
अमृतभल्लातक ...	१०६६
महाभल्लातकगुड ...	१०६८
अमृतागुग्गुलु ...	१०७०
वज्रकघृत ...	१०७१
तिक्तकघृत, महातिक्तकघृत ...	१०७२
सोमराजीघृत ...	१०७३

विषय.	पृष्ठ.
पञ्चतिक्तघृत ...	१०७४
पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु ...	१०७५
महाखदिरकघृत ...	१०७६
श्वेतकरवीराद्यंतैल ...	"
कृष्णसर्पतैल, कुष्ठराक्षसतैल ...	१०७७
कुष्ठराक्षसतैल ...	"
षड्बिन्दुतैल, उन्मत्ततैल ...	१०७८
मरिचाद्यतैल, बृहन्मरिचाद्यतैल	१०७९
सोमराजीतैल ...	१०८०
बृहत्सोमराजीतैल ...	१०८१
विषतैल, श्वित्रपञ्चाननतैल ...	१०८२
आरग्वधाद्यतैल, वासाचन्दनतैल ...	१०८३
कन्दर्पसारतैल ...	१०८४
खदिरारिष्ट ...	१०८६
कुष्ठरोगमें पथ्य ...	१०८७
कुष्ठरोमें अपथ्य ...	१०८८
शीतपित्त उदर्द और कोठ-रोगकी चिकित्सा	**१०८९**
हरिद्राखण्ड ...	१०९०
बृहद्धरिद्राखण्ड ...	१०९१
शीतपित्तोदर्दकोठरोगोंमें पथ्य ...	"
शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगोंमें अपथ्य ...	१०९२
अम्लपित्तकी चिकित्सा ।	
दशांग, पञ्चनिम्बादिचूर्ण ...	१०९५
अविपत्तिकरचूर्ण, लीलाविलास	१०९६
अम्लपित्तान्तकरस, भास्करामृताभ्र	१०९७
सर्वतोभद्रलौह ...	१०९८
पानीयभक्तवटिका ...	१०९९
पञ्चाननगुटिका ...	११००
लघुक्षुधावतीगुटिका १--२ ...	११०१
बृहत्क्षुधावतीगुटिका ...	११०३
खण्डकूष्माण्डकावलेह ...	११०५

विषय.	पृष्ठ.
अम्लपित्तान्तकमोदक ...	११०५
सौभाग्यशुण्ठीमोदक ...	११०६
सितामण्डूर ...	११०७
शुण्ठीखण्ड, पिप्पलीखण्ड ...	११०९
बृहत्पिप्पलीखण्ड ...	१११०
जीरकाद्यघृत, शतावरीघृत ...	११११
नारायणघृत ...	"
अम्लपित्तरोगमें पथ्य ...	१११२
अम्लपित्तरोगमें अपथ्य ...	"
विसर्पकी चिकित्सा ।	
अमृतादि ...	१११३
नवकषाय गुग्गुलु, कालाग्निरुद्ररस	१११४
वृषाद्यघृत करञ्जतैल ...	१११५
विसर्परोगमें पथ्य, विसर्परोगमें अपथ्य	"
विस्फोट--चिकित्सा	**१११६**
व्रणारिगुग्गुलु, पञ्चतिक्तकघृत ...	१११७
विस्फोटरोगमें पथ्य ...	"
विस्फोटरोगमें अपथ्य ...	१११८
मसूरिकाकी चिकित्सा ।	
पटोलादि, अमृतादि ...	११२३
इन्दुकलावटिका ...	"
मसूरिकारोगमें पथ्य ...	"
मसूरिकारोगमें अपथ्य ...	११२४
क्षुद्ररोगोंकी चिकित्सा ।	
अजगल्लिका-चिकित्सा	११२५
अनुशयी विवृतेन्द्रविद्धादि रोगोंकी चिकित्सा	"
विदारिका पनसिकादि क्षुद्ररोगोंकी चिकित्सा	११२६
पाषाणगर्दभकी चिकित्सा	"
वल्मीकरोगकी चिकित्सा	"

विषय.	पृष्ठ.
पाददारी (बिवाई) की चि०	११२७
उपोदिकाक्षारतैल	... ११२८
अलसकी चिकित्सा	,,
कदरकी चिकित्सा	,,
चिप्पकी चिकित्सा	११२९
अंगुलीवेष्टककी चिकित्सा	,,
पद्मिनीकण्टककी चिकित्सा	,,
जालगर्दभकी चिकित्सा	,,
अहिपूतनककी चिकित्सा	११३०
गुदभ्रंशकी चिकित्सा	,,
चाङ्गेरीघृत, मूषिकाद्यतैल	... ११३१
वर्णकघृत, द्विहरिद्राद्यतैल	... ११३४
कुंकुमाद्यतैल	... ११३५
अरुंषिकाकी चिकित्सा	११३६
त्रिफलाद्यतैल	... ,,
दारुणककी चिकित्सा	,,
इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा	११३७
केशरञ्जकयोग	... ११३८
भृङ्गराजघृत, महाभृङ्गराजतैल	... ११४१
आदित्यपाकगुडूचीतैल	... ११४२
चन्दनाद्यतैल, महानीलतैल	... ,,
कच्छू और अहिपूतनकी चिकित्सा	११४४
शूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा	,,
शय्यामूत्रकी चिकित्सा	,,

मुखरोगकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
ओष्ठगत-मुखरोगकी चि०	११४५
दन्तगत-मुखरोगकी चि०	११४६
जिह्वागत-मुखरोगकी०	११५०
तालुगत-मुखरोगकी०	११५२
कण्ठगत-मुखरोगकी०	११५२
सर्वसरमुखरोगकी चिकित्सा	११५४
सप्तच्छदादि	... ११५६
पटोलादि, कालकचूर्ण, पीतकचूर्ण	११५७
दशनसंस्कारचूर्ण	... ,,
दन्तरोगाशनिचूर्ण, क्षारगुटिका	... ११५८
स्वल्पखदिरवटिका, बृहत्खदिर वटिका	... ११५९
मुखरोगहररस	... ११६०
महासहचरतैल, बकुलाद्यतैल	... ११६१
मुखरोगमें पथ्य	... ,,
मुखरोगमें अपथ्य	... ११६२

कर्णरोगकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
दीपिकातैल, स्वर्जिकाद्यतैल	.... ११६७
लशुनाद्य तैल, शम्बूकतैल	... ११६८
कुष्ठाद्यतैल, क्षारतैल	... ,,
कर्णरोगमें पथ्य	... ११६९
कर्णरोगमें अपथ्य	... ११७०

नासारोगकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
चित्रक-हरीतकी	... ११७३
पाठाद्यतैल, व्याघ्र्याद्यतैल	... ११७४
त्रिकट्वाद्यतैल, चित्रकतैल	... ,,
नासारोगमें पथ्य, नासारोगमें अपथ्य	... ११७५

नेत्ररोगकी चिकित्सा ११७६

विषय.	पृष्ठ.
वासकादि	... ११९७
बृहद्वासकादि, कज्जल	... ११९८
श्रीनागार्ज्जुनाञ्जन	... ,,
व्योषाद्यञ्जन, त्रिकट्वाद्यञ्जन	... ११९९
व्रणशुक्रहरीवर्त्ति, दन्तवर्त्ति	... १२००
सुखावतीवर्त्ति	... ,,
चन्द्रोदयवर्त्ति, कुमारिकावर्त्ति	... १२०१
दृष्टिप्रदावर्त्ति	... ,,
नयनसुखावर्त्ति, चन्द्रप्रभावर्त्ति	... १२०२

विषय.	पृष्ठ.
पञ्चशतिकावर्त्ति	... १२०२
सप्तामृतलौह	... १२०३
नयनामृतलौह, नेत्राशनिरस	... १२०४
पटोलाद्यघृत	... १२०५
शशकाद्यघृत, त्रिफलाद्यघृत १--२	१२०६
महात्रिफलाद्यघृत	... १२०७
नृपवल्लभतैल और घृत	... १२०९
भृङ्गराजतैल, नेत्ररोगमें पथ्य	... १२१०
नेत्ररोगमें अपथ्य	... १२११

शिरोरोगकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
सूर्यावर्त्तकी चिकित्सा	१२१२
अर्द्धावभेदककी चिकित्सा	१२१३
अनन्तवातकी चिकित्सा	१२१४
शङ्खककी चिकित्सा	,,
शिरोवस्ति	... १२१५
अर्द्धनाडीनाटकेश्वर, चन्द्रकान्तरस	१२१६
शिरःशूलादिवज्ररस	... ,,
महालक्ष्मीविलास	... १२१७
मयूराद्यघृत, षड्बिन्दुतैल	... १२१८
दशमूलतैल १--२	... १२१९
मध्यमदशमूलतैल	... १२२०
बृहद्दशमूलतैल १-२	... ,,
महादशमूलतैल	... १२२२
महाकनकतैल, रुद्रतैल	... १२२३
तप्तराजतैल	... १२२४
कुमारीतैल	... १२२५
शिरोरोगमें पथ्य	... १२२६
शिरोरोगमें अपथ्य	... १२२७

प्रदररोगकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
दार्व्यादि, चंदनादिचूर्ण	... १२३०
पुष्यानुगचूर्ण	... १२३१
उत्पलादि, मधुकाद्यवलेह	... १२३२
प्रदरान्तकरस	... १२३३
प्रदरारिलौह, सर्वाङ्गसुन्दररस	... १२३४
रत्नप्रभावटिका	... १२३५
सितकल्याणघृत	... १२३६
न्यग्रोधाद्यघृत	... १२३७
विश्ववल्लभघृत, अशोकघृत	... १२३८
अशोकारिष्ट	... १२३९
प्रदरमें पथ्यापथ्यविधि	... १२४०

योनिव्यापदकी चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठ.
रजःप्रवर्त्तक योग	... १२४०
रजःप्रवर्त्तिनीवटी, गर्भजनक-भेषज	१२४५
नष्टपुष्पान्तकरस	... १२४६
फलघृत	... १२४७
कफकल्याणघृत	... १२४८
सोमघृत	... १२४९
कुमारकल्पद्रुमघृत	... १२५०

लोमशातनविधि १२५३

विषय.	पृष्ठ.
आरग्वधाद्यतैल	... १२५४
क्षारतैल	... १२५५

वन्ध्याकी चिकित्सा १२५६

गर्भिणीरोगकी चिकित्सा १२५८

विषय.	पृष्ठ.
उभयपंचदशक, उभयत्रिंशक कोष्ठ	१२६६
प्रसवमंत्र	... ,,
एरण्डादि, मधूकादि	... १२६८
लवङ्गादिचूर्ण, गर्भविलासरस	.. १२६९
गर्भविनोदरस	... ,,
गर्भचिन्तामणि	... १२७०
गर्भचिन्तामणिरस	... ,,
बृहद्गर्भचिन्तामणिरस, इन्दुशेखररस	१२७१
गर्भिणीरोगमें पथ्य	... १२७२
गर्भिणीरोगमें अपथ्य	... ,,

सूतिकारोगकी चिकित्सा १२७३

विषय.	पृष्ठ.
दशमूलक्काथ, अमृतादि	... १२७४
सहचरादि १--२	... "
सूतिकादशमूल, बृहद्दुहीबेरादि	... १२७५
देवदार्वादि	... "
वज्रकाञ्जिक, भद्रोत्कटाद्यवलेह	... १२७६
सौभाग्यशुण्ठी १--२	... १२७७
बृहत्सौभाग्यशुण्ठी	... १२७९
पञ्चजीरकगुड	... १२८१
जीरकाद्यमोदक	... १२८२
सूतिकाविनोदरस	... "
बृहत्सूतिकाविनोदरस	... १२८३
सूतिकारिरस	... "
सूतिकाघ्नरस	... "
सूतिकाहररस	... १२८४
रसशार्दूल	... "
महारसशार्दूल	... १२८५
महाभ्रवटी	... "
सूतिकारिरस	... १२८६
भद्रोत्कटाद्य घृत	... "
सूतिकादशमूलतैल	... १२८७

स्तनरोगचिकित्सा १२८८

विषय.	पृष्ठ.
काशीशाद्यतैल	... १२८९
श्रीपर्णीतैल	... १२९०

बालरोगकी चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
सारिवादि	... १३००
मुस्तकादि	... "
हरिद्रादि	... १३०१
भद्रमुस्तादि	... "
समङ्गादि	... "
नागरादि	... "
बिल्वादि	... "
पटोलादि	... १३०२
पञ्चमूलादि	... १३०२
बिल्वादि	... "
शृङ्ग्यादि	... "
रजन्यादि	... "
कर्कटादि	... १३०३
बालचतुर्भद्रिका	... "
धातक्यादि	... "
पुष्करादि	... "
बालरोगान्तकरस	... १३०४
कुमारकल्याणरस	... १३०५
अश्वगन्धाघृत	... "
बालचाङ्गेरीघृत	... "
अष्टमङ्गलघृत	... १३०६
कुमारकल्याणघृत	... "
लाक्षादितैल	... १३०७

विषकी चिकित्सा १३०७

रसायनाधिकारः १३१४

विषय.	पृष्ठ.
ऋतुहरीतकी	... १३१८
भृङ्गराजादिचूर्ण	... "
अमृतवर्तिका	... १३१९
श्रीसिद्धमोदक	... १३२१
निर्गुण्डीकल्प	... १३२२
कार्श्यहरलौह	... १३२३
अमृतार्णवरस	... १३२४
नीलकण्ठरस	... "
महानीलकण्ठरस	... १३२५
मकरध्वजरसायन	... १३२६
बृहत्पूर्णचन्द्ररस	... १३२७
महालक्ष्मीविलासरस	... १३२८
वसन्तकुसुमाकररस	... १३३०

वाजीकरणाधिकारः १३३१

विषय.	पृष्ठ.
गोक्षुराद्यचूर्ण	... १३३१

विषय.	पृष्ठ.
नरसिंह चूर्ण	... १३३६
कामदीपक	... १३३८
कामधेनु	... "
हरशशांक	... "
लक्ष्मणालौह	... १३३९
सिद्धशाल्मलीकल्प	... "
पञ्चशर	... १३४०
कामिनीमदभञ्जन	... "
कामिनीदर्पघ्न	... १३४१
पुष्पधन्वा	... "
पूर्णचन्द्ररस	... "
अनङ्गकुसुमाकर	... १३४२
हेमसुन्दररस	... "
अनङ्गसुन्दररस	... १३४३
गन्धामृतरस	... "
सिद्धसूत	... "
मकरध्वजवटी	... "
श्रीमन्मथाभ्ररस	... १३४५
श्रीकामदेवरस	... १३४६
मकरध्वजरस	... १३४७
महेश्वररस	... १३४९
स्वर्णसिंदूर	... १३५०

विषय.	पृष्ठ.
स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज	... १२०७
बृहच्चन्द्रोदयमकरध्वज	... १३५१
खण्डाम्रक	... १३५२
गुडकूष्माण्ड	... १३५४
कामेश्वरमोदक	... १३५५
अन्य कामेश्वरमोदक	... १३५६
रतिवल्लभमोदक	... १३५७
कामाग्निसन्दीपनमोदक	... १३५९
बृहच्छतावरीमोदक	... १३६०
महाकामेश्वरमोदक	... १३६२
श्रीमदनानन्दमोदक	... १३६४
अभिमन्त्रणमन्त्र	... १३६६
मृत्युसञ्जीवनी सुरा	... १३६७
दशमूलारिष्ट	... १३६९
गोधूमाद्यघृत	... १३७१
बृहदश्वगन्धाघृत	... १३७२
अमृतप्राशघृत	... १३७३
बृहच्छागलाद्यघृत	... १३७५
भल्लातकाद्यतैल	... १३७८
अश्वगन्धातैल	... "
वीर्यस्तम्भनाधिकारः	"

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

भैषज्यरत्नावली

भाषाटीकासहिता ।

मंगलाचरणम ।

भक्त्या नतत्रिदशराजकिरीटकोटि-
रत्नावलीकिरणराजिविराजमानम् ।
श्रीमत्करीन्द्रवदनस्य पदारविन्द-
द्वन्द्वं सदा जयति सिद्धिकरं क्रियाणाम् ॥ १ ॥

टीकाकारोक्त-मंगलाचरण ।

नमः श्रीपूर्ववैद्याय भवरोगनिवृत्तये ।
भैषज्यरत्नावल्याश्च भाषाटीका विरच्यते ॥

भक्तिके साथ नम्र हुए देवराज इन्द्रके किरीटमें सुशोभित रत्नावलीकी किरणोंसे शोभायमान, सम्पूर्ण कार्य्योंके सिद्धिदाता ऐसे श्रीगणेशजीके चरणकमल निर्विघ्नतापूर्वक इस ग्रन्थकी समाप्ति करें ॥ १ ॥

वन्देऽम्बिकाचन्द्रचूडौ जननीजनकावुभौ ।
निपत्य धरणौ भक्त्या प्रत्यूहव्यूहशान्तये ॥ २ ॥

सकल विघ्नोंकी शान्तिके लिये भक्तिसहित जगत्‌के माता और पिता जो पार्वती शिव उनको मैं (ग्रन्थकार) साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

श्रीगोविन्दपदारविन्दयुगलं वन्दारुवृन्दारक-
श्रेणीनम्रशिरःकिरीटवलिभिर्नीलोत्पलेन्दिन्दिरम् ।
नत्वा सद्भिषजां मुदे वितनुते गोविन्ददासोऽधुना
नानाग्रन्थमहाब्धिलब्धसग्गुणां भैषज्यरत्नावलीम् ॥ ३ ॥

स्तुति करतेहुए देवताओंके नम्रहुए शिरोंके किरीटसे शोभायमान और नीलकमलकी कान्तिको लज्जित करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलको प्रणामकर मैं गोविन्ददास (ग्रन्थकार) सद्वैद्योंकी प्रसन्नताके लिये अनेक ग्रन्थरूपी समुद्रोंको मथकर निकालेहुए नानाप्रकारके गुणोंसे युक्त इस "भैषज्यरत्नावली" नामक ग्रन्थको प्रकाशित करता हूँ ॥ ३ ॥

यदि प्रियतमा न स्याद् वृद्धानां भिषजामियम् ।
तथाऽपि नव्या नव्यानामानुकूल्यं विधास्यति ॥ ४ ॥

यद्यपि मेरा संग्रह कियाहुआ यह नवीन ग्रन्थ वृद्धवैद्योंको अतिप्रिय न होगा तथापि यह नवीन वैद्योंका विशेष उपकार करेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥

आयुर्वेदके लक्षण।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥ ५ ॥

जिस शास्त्रके द्वारा आयुका हित व अहित एवं रोगोंका निदान और रोग नाश करनेके उपाय मालूम हों, उसको आयुर्वेद कहते हैं ॥ ५ ॥

आयुर्वेदकी निरुक्ति।

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥ ६ ॥

इस शास्त्रके द्वारा दीर्घायु प्राप्त होती है और आयुर्विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये महर्षियोंने इसको आयुर्वेद कहा है ॥ ६ ॥

आयुर्वेदकी उत्पत्ति।

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन् ॥
तेऽग्निवेशादिकाँस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ७ ॥

सबसे प्रथम ब्रह्माने दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेदकी शिक्षा दी; फिर दक्षने दोनो अश्विनीकुमारोंको, अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको, इन्द्रने आत्रेय आदि मुनियोंको और उन्होंने अग्निवेशादि मुनियोंको आयुर्वेदकी शिक्षा दी। फिर उन अग्निवेशादि मुनियोंने संसारके हितके लिये अपने अपने नामोंसे पृथक पृथक् तन्त्रोंकी रचना की ॥ ७ ॥

चिकित्सा-प्रकरणम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥ ८ ॥

आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग प्राप्तिका प्रधान कारण है और रोग उस आरोग्यता, सुख और जीवनको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

व्याधयो द्विविधाः प्रोक्ताः शारीरा मानसास्तथा ।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्या उन्मादाद्या मनोभवाः ॥ ९ ॥

व्याधियाँ दो प्रकारकी होती हैं—एक शारीरिक और दूसरी मानसिक; ज्वर, कुष्ठ आदिको शारीरिक और उन्माद आदिको मानसिक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

दोषाणां साम्यमारोग्यं वैषम्यं व्याधिरुच्यते ।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥ १० ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी साम्य अवस्था (अर्थात् तीनों दोषोंका समानरूपसे रहना) को आरोग्य कहते हैं । और विषम अवस्था (तीनों दोषोंमेंसे किसीएक दोषका कुपित होकर न्यूनाधिक होना) को रोग कहते हैं । अतः; आरोग्यका नाम सुख और रोगका नाम दुःख है ॥ १० ॥

साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधाऽतोऽपि पुनर्द्विधा ।
सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ॥११॥
याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् ।
जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥ १२ ॥
याप्याः केचित् प्रकृत्यैव केचिद्याप्या उपेक्षया ।
प्रकृत्या व्याधयोऽसाध्याः केचित्केचिदुपेक्षया ॥ १३ ॥

रोग दो प्रकारके होते हैं. जैसे—साध्य और असाध्य । साध्यरोग भी दो प्रकारके होते हैं—सुखसाध्य और. कष्टसाध्य । असाध्य रोग भी दो ही प्रकारके होते हैं. जैसे—याप्य और अचिकित्स्य (अर्थात् त्याज्य—औषधादिके द्वारा जिनका प्रतीकार न हो सके) । जो रोग सहजमें आरोग्य होजाते हैं, उनको सुखसाध्य कहते हैं । एवं जो रोग कठिनतासे आराम होते हैं, उनको कष्टसाध्य कहते हैं । ये दो प्रकारके रोग साध्य हैं । जो रोग औषधादिके द्वारा कुछ शान्त हो जाते हैं, उनको याप्य

कहते हैं और जो रोग औषधके द्वारा शान्त नहीं होते, उनको असाध्य कहते हैं। याप्य और असाध्य ये दोनों प्रकारके रोग असाध्य हैं। उपर्युक्त समयमें चिकित्सा न करनेसे साध्यरोगभी याप्य हो जाते हैं और याप्यरोग असाध्य हो जाते हैं और असाध्य रोग जीवनको शीघ्र नष्ट करदेते हैं। याप्यरोग दो प्रकारसे उत्पन्न होते हैं। कितनेएक रोग स्वभावसे ही याप्य और कितनेएक चिकित्साके अभावसे याप्य हो जाते हैं। किन्तु स्वभावसे जो रोग याप्य होते हैं वे असाध्य और चिकित्साके अभावसे जो रोग याप्य होते हैं, उनमेंसे कोई चिकित्साद्वारा साध्य होजाते हैं॥११-१३॥

तत्रैकः पापजो व्याधिरपरः कर्मजो मतः।
पापजः प्रशमं याति भैषज्यसेवनादिना॥ १४॥
यथाशास्त्रविनिर्णीतो यथा व्याधिश्चिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्म्मजो बुधैः॥ १५॥
न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते।
अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगो निवार्यते॥ १६॥

पापज और कर्मज—इन भेदोंसे रोग दो प्रकारके होते हैं। पापजरोग औषधादिके सेवनसे शान्त होजाते हैं। एवं शास्त्रोक्त औषधादिके सेवनसे भी जो रोग दूर नहीं होते, उनको कर्मज व्याधि कहते हैं। इस पृथ्वीपर कोई भी जीव अमर होकर नहीं जन्मा, एक न एक दिन निश्चयही मृत्यु होगी। इसलिये मृत्युको कोई भी नहीं रोक सकता. किन्तु औषधादिके द्वारा रोग दूर किया जा सकता है॥ १४-१६॥

एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम्।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः॥१७॥
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः।
जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति॥ १८॥
पीडितं रोगसर्पौघैरपि धन्वन्तरिः स्वयम्।
सुस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनम्॥ १९॥

मनुष्यकी एकसौ एक प्रकारसे मृत्यु हो सकती हैं। उनमें एक कालमृत्यु और सौ आगन्तुक मृत्युयें हैं। आगन्तुक मृत्यु—औषध और जप, होमादिके द्वारा शमन

होती है; किन्तु कालमृत्यु किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकती । कालमृत्युके मुखमें पतितहुए व्यक्तिको किसीभी रोगसे ग्रसित होनेपर या सर्पादिके द्वारा काटनेपर स्वयं धन्वन्तरि भी आरोग्य नहीं कर सकते ॥ १७-१९ ॥

आयुषे कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दूयते मया ।
नौषधानि न मंत्राश्च न होमा न पुनर्जपाः ॥ २० ॥
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम् ।
वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः ॥
विक्रियाऽपि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥ २१ ॥

आयुकर्मके क्षय होनेपर मृत्यु मनुष्योंको पीड़ित करती है । उस समय औषध, मंत्र, होम और जप ये मनुष्यको जरा और मृत्युसे नहीं बचा सकते । जिस प्रकार तेल और बत्तीके होनेपर भी दीपक बुझ जाता है, उसीप्रकार आयुके होनेपर भी किसी विशेष कारणसे कभी कभी मनुष्यका प्राण नाश हो जाता है ॥ २० ॥ २१ ॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥२२॥

रोगके तत्त्वको समझना और पीड़ाको दूर करना—यह हीं वैद्यकी वैद्यता है । किन्तु वैद्य आयुका स्वामी नहीं है ॥ २२ ॥

यादृच्छिको मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ।
वैरी च वैद्यविद्वेषी श्रद्धाहीनः सशंकितः ॥ २३ ॥
भिषजामनियम्यश्च नोपक्रम्यो भिषग्विदा ।
एतानुपाचरन् वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

स्वेच्छाचारी, मरनेकी इच्छा करनेवाला, इन्द्रियशक्तिहीन (काना, लूला, लंगडा इत्यादि), वैरी, वैद्यसे द्वेष रखनेवाला, श्रद्धाहीन, संदिग्धचित्त और चिकित्सासम्बन्धी नियमोंको न पालनेवाला ऐसे मनुष्योंकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । यदि वैद्य लोभवश ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करता है तो वह अपयशको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

यावत्कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्ति निरिन्द्रियः ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गतिः ॥२५॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ।
वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ २६ ॥
यथा स्वल्पेन यत्नेन च्छिद्यते तरुणस्तरुः ।
स एवातिप्रवृद्धस्तु च्छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः ॥ २७ ॥

जबतक प्राण कण्ठमें रहें और इन्द्रियोंकी शक्तिका लोप न हो तबतक चिकित्सा करनी चाहिये । कारण—कालकी गति कुटिल है । रोगके उत्पन्न होते ही चिकित्सा आरम्भ करदेनी चाहिये । रोगको सामान्य समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । कारण—सामान्यरोग अल्प होनेपर भी अग्नि, शस्त्र और विषकी तरह अत्यन्त प्रबल होजाते हैं । जिस प्रकार तरुणवृक्ष सहजमें ही काटा जासकता है और बड़ा हो जानेपर उसका काटना कठिन हो जाता है ॥ २५-२७ ॥

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम् ।
ते भेषजानां वीर्याणि हरन्ति बलवन्त्यपि ॥
प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पश्चात्कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ २८ ॥

सूर्य्यादि ग्रहोंके प्रतिकूल होनेपर किसी भी ओषधिका ठीक २ फल नहीं मालूम होता । कारण ग्रह अतिवीर्य्यवान् ओषधिके भी प्रभावको नष्ट करदेते हैं इसलिये प्रथम ग्रहशान्ति करके फिर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म्म तद्भिषजां मतम् ॥ २९ ॥

जिस क्रियाके द्वारा शरीरकी धातुयें समान अवस्थामें रहती हैं, उसको चिकित्सा कहते हैं और वह ही वैद्योंका कर्म्म है ॥ २९ ॥

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता ।
शस्त्रैः कषायैर्होमाद्यैः क्रमेणान्त्या सुपूजिता ॥ ३० ॥

चिकित्सा तीन प्रकारकी है. जैसे—आसुरी, मानुषी और दैवी । अस्त्रादिद्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह आसुरी चिकित्सा है; ओषधियोंके क्काथादिके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है वह मानुषी और जप, होमादिके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है वह दैवी चिकित्सा कहलाती है ॥ ३० ॥

कचिद्धर्म्मः कचिन्मैत्री कचिदर्थः कचिद्यशः ।
कर्म्माभ्यासः कचिच्चापि चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥३१॥

चिकित्साद्वारा कहीं धर्म्म, कहीं मित्रता, कहीं धन, कहीं यशोलाभ और कहीं चिकित्साकर्ममें अभ्यास ही होता है, इसलिये चिकित्सा कहीं भी निष्फल नहीं होती ॥ ३१ ॥

भिषग् द्रव्यमुपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥ ३२ ॥

वैद्य, औषध, परिचारक (अर्थात् जो आदमी रोगीकी सेवा शुश्रूषा करता है) और रोगी ये चिकित्साके चारों पाद गुणवान् होनेपर रोग आरोग्य होनेके लिये प्रधान कारण हैं ॥ ३२ ॥

श्रुतेः पर्य्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्म्मता ।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥

आयुर्वेदशास्त्रमें कहा है कि-पारदर्शिता, बहुदर्शिता, निपुणता और पवित्रता ये चार गुण वैद्यमें होने आवश्यक हैं ॥ ३३ ॥

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ।
अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥
उद्भिज्जमपरिक्षुण्णं शुद्धं धात्वादिकं तथा ।
समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं परमं मतम् ॥ ३४ ॥

प्रशस्त देश (अच्छे स्थान) में उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाडी हुई, थोडी मात्रावाली, अत्यन्त वीर्यसम्पन्न एवं गन्ध, वर्ण और रसविशिष्ट तथा कीडे आदिके द्वारा खराब न की हुई, वृक्ष-लतादिसे उत्पन्न हुई, शोधित धातु आदि जो यथासमयमें प्रयोग की गयी हों, उनको उत्कृष्ट औषधि कहते हैं ॥ ३४ ॥

उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागं च भर्तरि ।
शौचं चेति चतुर्थोऽयं गुणः परिचरे जने ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य रोगीकी सेवा-शुश्रूषा अच्छे प्रकार करनी जानता हो सब कामोंमें निपुण स्वामीभक्त और शुद्धाचारी हो, ऐसा मनुष्य परिचारक होना चाहिए ॥३५॥

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापि च।
ज्ञापकत्वं च रोगाणामातुरस्य गुणा मताः॥ ३६॥

जो रोगी वैद्यके सामने रोगका पूर्ववृत्तान्त स्मरण करके अच्छे प्रकार कह सकता है और डरता नहीं है तथा रोगकी वर्त्तमान अवस्थाको भी विशेष रूपसे कह सकता है ऐसा रोगीही चिकित्साका उपयुक्त पात्र है। ये रोगीके लक्षण हैं॥ ३६॥

मृद्दण्डचक्रसूत्राद्याः कुम्भकारादृते यथा।
नावहन्ति गुणं वैद्यादृते पादत्रयं तथा॥ ३७॥

जिस प्रकार कुम्हारके विना मृत्तिका, दण्ड, चक्र और सूत्रादि उपकरणोंके होनेपरभी घट आदि कोई पात्र नहीं बन सकता, उसी प्रकार औषध, परिचारक और रोगी इन तीनों पदोंके होनेपर भी एक सुचिकित्सकके विना रोग शमन नहीं होसकता। अत एव उक्त चारों पादोंमें वैद्यही मुख्य है॥ ३७॥

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥ ३८॥
यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः।
साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता॥३९॥
दृष्टकर्म्मा च शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात्सिद्धिभागसौ।
एकाङ्गहीनो न श्लाध्य एकपक्ष इव द्विजः॥ ४०॥

जो वैद्य, रोगको अच्छे प्रकार न जानकर चिकित्सा आरंभ करदेता है वह औषधि विधानको अच्छे प्रकारसे जानता भी है तो भी उसको चिकित्सा कार्यमें सिद्धि प्राप्त होना अनिश्चित या दैवाधीन है। और जो वैद्य सर्व प्रकारके रोगोंके तत्त्वको जानता है, सब प्रकारकी औषधियोंको जानता है, एवं औषधिप्रयोगमें चतुर और रोगके साध्यासाध्य लक्षणोंको जानता है, उसके आगे सिद्धि सदैव हाथ जोडे खडी रहती है। दृष्टकर्मा और आयुर्वेद शास्त्रका ज्ञाता वैद्यही चिकित्साकार्यमें सिद्धि प्राप्त करनेका भागी हो सकता है। जिसमें उपर्युक्त गुण होते हैं वह ही वैद्य श्रेष्ठ होता है। इन गुणोंमेंसे एक गुणके न होनेपरभी वैद्यको एक पंखवाले पक्षीकी समान अकर्म्मण्य कहा है॥ ३८–४०॥

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत्।
यः कर्म्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः॥ ४१॥

नाभिज्ञाय तु शास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक् ।
यम एव स विज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥ ४२ ॥
कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा यदि ॥ ४३ ॥
नाडीजिह्वास्यमूत्राणां कोष्ठादीनां च सर्वथा ।
परीक्षां यो न जानाति स वैद्यो यम एव हि ॥ ४४ ॥

जो वैद्य गुरुके पास आयुर्वेद शास्त्रको पढ़कर और उसको बारम्बार विचारकर चिकित्साकार्यमें प्रवृत्त होता है, वह ही प्रकृष्ट वैद्य है। और दूसरे तो केवल धनको हरण करनेवाले तस्कर हैं और जो वैद्य आयुर्वेद शास्त्रको विना अध्ययन किये चिकित्सा करना आरम्भ करता है, वह मनुष्योंके लिये मानवरूपधारी यमके समान है । मलिन वस्त्रधारी, कठोर बोलनेवाला, जड़ (रोगके सम्बन्धमें किसीप्रकारका विवेचन न कर सकनेवाला), बुरे ग्राममें रहनेवाला और बिना बुलाये अपने आप आनेवाला ऐसे पाँच प्रकारके वैद्य धन्वन्तरिके समान भी हों तो सम्मानको प्राप्त नहीं हो सकते । जिस वैद्यको नाड़ी, जिह्वा, मुख, मूत्र और कोष्ठादिकी परीक्षा मालूम नहीं है, वह वैद्य भी यमके समान है ॥ ४१–४४ ॥

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् ।
आयुर्वेदप्रसादेन किं न दत्तं भवेद्भुवि ॥ ४५ ॥
कपिलाकोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम् ।
फलं तत्कोटिगुणितमेकातुरचिकित्सया ॥ ४६ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं कारणं यतः ।
तस्मादारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदः ॥ ४७ ॥
अप्येकं नीरुजीकृत्य व्याधितं भेषजैर्नरः ।
प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥ ४८ ॥

आयुर्वेदके प्रसादसे यदि किसी मनुष्यको आरोग्य कियाजाय तो पृथ्वीमें उस (जीवनदाता) ने कौनसा दान नहीं किया । करोडों गौओंको दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे करोड गुना अधिक फल रोगीको रोगसे मुक्त करनेमें होता है । इसकारण आरोग्यताही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग प्राप्तिका

एकमात्र कारण है । इसलिये आरोग्य दान करनेपर सभी दान हो जाते हैं । एक रोगीको आरोग्य करनेसे, उस पुण्यके प्रभावसे वैद्य अपने सात कुलोंके साथ ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ ४५-४८ ॥

चिकित्सितशरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ।
स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ ४९ ॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य आरोग्य होकर वैद्यसे उऋण नहीं होता, वह मनुष्य जो कुछ सत्कर्म करता है वे सब वैद्यको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधेर्ज्ञानं त्रिधा मतम् ।
दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नाडिकादिभिः ॥
प्रश्नैर्दूतादिवचनादिति त्रेधा समुच्यते ॥ ५० ॥

दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न इन तीन प्रकारसे रोगकी परीक्षा करनी चाहिये । अर्थात् मूत्र और जिह्वादिका दर्शन, नाडी आदिका स्पर्शन एवं रोगी और दूत आदिसे रोगसम्बन्धी विषयको पूछना-इस प्रकार रोगपरीक्षाके ये तीन प्रकार कहेगये हैं॥५०॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ५१ ॥

सबसे प्रथम वैद्य रोगकी परीक्षा (अर्थात् कौनसा रोग है ?) उसका निदान पूर्वरूप और रूपादिके द्वारा निर्द्धारित करना और वह निर्दिष्ट रोग साध्य वा असाध्य इत्यादिका निर्धारित करना और इसके पश्चात् औषधि-परीक्षा करे, फिर विधिपूर्वक चिकित्सामें प्रवृत्त होवे ॥ ५१ ॥

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥ ५२ ॥

विना जानी हुई औषधि प्रयोग करनेपर-विष, अस्त्र, अग्नि और वज्रकी समान अनिष्टकारी होती है, किन्तु ओषधिके गुणोंको जानलेनेपर उसका प्रयोग करनेसे वह अमृतके समान हितकारी होती है ॥ ५२ ॥

मानकी परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्य्यार्थं मानमत्रोच्यतेऽधुना ॥ ५३ ॥

मान (तोल) के विना द्रव्यों (औषधियों) की युक्ति ठीक नहीं होती; इस कारण प्रयोगोंके कार्यके लिये यहाँ मानपरिभाषा कही जाती है ॥ ५३ ॥

षड्सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका तु यवैस्त्रिभिः ॥
माषस्तु पञ्चभिः षड्भिस्तथा सप्तभिरष्टभिः ॥ ५४ ॥
दशभिर्द्वादशभिश्च रक्तिभिः षड्विधो मतः ।
चरकस्य तु माषस्तु दशगुञ्जाभिरेव च ॥ ५५ ॥
चरकस्य तु चार्द्धेन सुश्रुतस्य तु माषकः ।
माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ५६ ॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ।
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ ५७ ॥

छः सरसोंका एक जौ होता है । तीन जौकी एक गुंजा होती है । पांच रत्तीका, छः रत्तीका, सात रत्तीका, आठ रत्तीका, दश रत्तीका अथवा बारह रत्तीका एक मासा होता है । इस प्रकार देशभेदोंसे मासा छः प्रकारका होता है, चरकके मतसे मासा दश रत्तीका होता है और सुश्रुतके मतसे पांच रत्तीका मासा होता है । चार मासेका एक शाण होता है। उस शाणको धरण तथा टक भी कहते हैं । दो शाणका एक कोल होता है । क्षुद्रक, वटक और द्रंक्षण ये कोलके ही नाम हैं ॥ ५४–५७ ॥

कोलद्वयं तु कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ।
अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ५८ ॥
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ।
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ५९ ॥
उदुम्बरं च पर्य्यायैः कर्षमेव निगद्यते ।
स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ ६० ॥
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ६१ ॥

दो कोलका एक कर्ष होता है । पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्पाणि, तिन्दुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और

उदुम्बर ये सब कर्षके नाम हैं। दो कर्षका अर्द्धपल होता है। शुक्ति और अष्टमिका ये अर्द्धपलके पर्याय हैं। दो शुक्तियोंका एक पल होता है। मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी ओर बिल्व ये पलके नाम हैं॥ ५८–६१॥

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतं च निगद्यते।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः॥ ६२॥
अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः॥ ६३॥
शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाऽऽढकः।
भाजनं कांस्यपात्रं च चतुष्षष्टिपलश्च सः॥ ६४॥

दो पलकी एक प्रसृति होती है, प्रसृतिको प्रसृतभी कहते हैं। दो प्रसृतिकी एक अञ्जलि होती है। कुडव, अर्द्धशराव और अष्टमान ये अञ्जलिके नाम हैं। दो अंजलिकी एक मानिका होती है। शराव और अष्टपल ये मानिकाके नाम हैं। दो शरावका एक प्रस्थ होता है। चार प्रस्थका एक आढक होता है। भाजन, कांस्यपात्र और चतुःषष्टिपल ये आढकके नाम हैं॥ ६२–६४॥

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः।
उन्मानं च घटो राशिर्द्रोणपर्य्यायसंज्ञितः॥ ६५॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः।
शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता॥ ६६॥
द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा॥ ६७॥
पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः।
तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ ६८॥

चार आढकका एक द्रोण होता है। कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोणके नाम हैं। दो द्रोणका एक शूर्प होता है। कुम्भ और चतुःषष्टि शरावक ये शूर्पके नाम हैं। दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है। वाह और गोणी ये द्रोणीके नाम हैं। चार द्रोणोकी खारी होती है। यह खारी ४०९६ पलकी होती है। २००० पलका एक भार होता है। और १०० पलकी एक तुला होती है। ऐसा सब ग्रन्थोंका निश्चय है॥ ६५–६८॥

६ सरसोंका	१ जौ	२ प्रसृतिका	१ कुडव
३ जौ या		२ कुडवका	१ शराव
४ धानकी	१ गुंजा, रत्ती	२ शरावका	१ प्रस्थ
१० रत्तीका	१ मासा	४ प्रस्थका	१ आढक
४ माशेका	१ शाण	४ आढकका	१ द्रोण
२ शाणका	१ कोल	२ द्रोणका	१ कुंभ
२ कोलका	१ कर्ष	२ कुंभकी	१ गोणी
२ कर्षकी	१ शुक्ति	४ गोणीका	१ खारी
२ शुक्तिका	१ पल	१०० पलकी	१ तुला
२ पलकी	१ प्रसृति	२०० पलका	१ भार

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ६९ ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥ ७० ॥
मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ७१ (मा०मा०)

गुंजासे लेकर कुडवतक पतले पदार्थोंको, गीले पदार्थोंको और सूखे पदार्थोंको समान भाग लेवे । किन्तु, द्रव (पतले) पदार्थ और गीले पदार्थोंको प्रस्थसे लेकर दूने लेने चाहिये । किंतु तुलाका मान दूना न करे ॥ ६९-७१ ॥

ज्वरकी चिकित्सा ।

पूर्वरूपे प्रयुञ्जीत ज्वरस्य लघुभोजनम् ।
लंघनं च यथादोषं विरेकं वातिके पुनः ॥ ७२ ॥
पाययेत् सर्पिरेवाच्छं पैत्तिके तु विरेचनम् ।
मृदुप्रच्छर्दनं तद्वत् कफजे तु विधीयते ॥
द्वन्द्वजेषु द्वयं कुर्यात् बुद्ध्वा सर्वं तु सर्वजे ॥ ७३ ॥

ज्वरके पूर्वरूपमें यथा दोषानुसार (अर्थात्-दोषोंकी अलपता व प्रबलताके अनुसार) लघु आहार, लंघन (उपवास) और विरेचन करावे । वातज्वरके पूर्वरूपमें स्वच्छ घृत पान करावे । पित्तज्वरके पूर्वरूपमें केवल विरेचन (दस्त) ही कराना चाहिये

और कफज्वरके पूर्वरूपमें मृदु वमनकारक औषध सेवन करानी चाहिये एवं द्वन्द्वज (अर्थात् वात-पित्तजज्वर, पित्त-कफजज्वर और वात-कफज) ज्वरोंके पूर्वरूपमें दोनों दोषोंकी मिश्रित और सन्निपातज्वरमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायाँश्च विवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नान, तैल आदिका मलना, अन्नका आहार, स्त्रीप्रसंग, क्रोध, प्रबल व पूर्वकी तीव्र वायुका सेवन, परिश्रम और क्वाथ इनको त्यागदेना चाहिये ॥ ७४ ॥

कषायं यः प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे ।
स सुप्तं कृष्णसर्पं तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ ७५ ॥
न कषायं प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे ।
कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुष्कराः ॥ ७६ ॥
चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणाम्भसा ।
स कषायः कषायः स्यात्स वर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ ७७ ॥

जो वैद्य नवीन ज्वरमें क्वाथ (काढ़े) को प्रयोग करता है, वह सोतेहुए काले साँपको हाथसे छूकर जगाता है । इसलिये नवीन ज्वरमें कषाय (क्वाथ) कभी नहीं प्रयोग करना चाहिये । कारण, क्वाथके प्रयोगसे दोष आकुलित होकर इतने प्रबल हो जाते हैं कि, उनको जीतना अत्यन्त कठिन हो जाता है । क्वाथकी एक छटाँक औषधियोंको एक सेर जलमें पकाकर चौथाई भाग जल शेष रहनेपर नीचे उतारकर छानलेवे । इसको कषाय(क्वाथ-पाचन)कहते हैं । यह नवीन ज्वरमें वर्जित है ॥७५-७७॥

न द्विरद्यान्न पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन ।
न नक्तं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी ॥ ७८ ॥
परिषेकान् प्रदेहाँश्च स्नानं संशोधनानि च ।
दिवास्वप्नं व्यवायं च व्यायामं शिशिरं जलम् ॥ ७९ ॥

क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी ।
शोषच्छर्दिमदं मूर्च्छा-भ्रम तृष्णारोचकान् ॥
प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिषेकादिसेवनात् ॥ ८० ॥

नवीन ज्वरवाला रोगी दो वार भोजन न करे । अर्थात् प्रातःकाल और रात्रिको भोजन न करे । एवं कफकारक और गुरुपाकी पदार्थोंका भोजन भी नहीं करे । शरीरपर जलका सेचन, चन्दनादिका प्रलेप, तैलादिकी मालिश, स्नान, संशोधन (वमन, विरेचनादि), दिनमें सोना, स्त्रीसंसर्ग, परिश्रम, शीतल जलपान, क्रोध, वायुका सेवन और अन्नादिका भोजन नवीन ज्वरमें त्यागदेवे । इनका परित्याग न करनेसे मुखशोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा और अरुचि आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ७८-८० ॥

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् ।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ ८१ ॥

धातुक्षय, यक्ष्मारोग, निरामवायु, भय, क्रोध, काम. शोक और परिश्रम इन कारणोंको छोडकर और किसी भी कारणसे ज्वर होनेपर पहले उपवास करना चाहिये ॥ ८१ ॥

आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान् पिधापयेत् ।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ ८२ ॥
अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् ।
ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ८३ ॥
प्राणाविरोधिना चैनं लंघनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ८४ ॥
तत्तु मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ।
कार्य्यं न बाले नो वृद्धे न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥ ८५ ॥

सामदोष (अपक्व रसयुक्त वात, पित्त, कफ) आमाशयमें स्थित होकर पहले अग्निको मन्द करते हैं । फिर पसीनेको बहानेवाले और रस बहानेवाले और स्रोतोंको वन्द करके ज्वर उत्पन्न करते हैं । इसलिये ज्वरकी प्रथम अवस्थामें लंघन कराने चाहिये । सामदोषोंसे अग्नि मन्द होकर ज्वर होनेपर लंघन करानेसे सामदोषोंका परिपाक, ज्वरका नाश, अग्निकी वृद्धि, भोजनकी इच्छा, भोजनमें रुचि और शरीरमें

हल्कापन मालूम होता है। लंघन अत्यंत हितकर होनेपर भी इस प्रकार कराने चाहिये, जिससे रोगीका शरीर अधिक दुर्बल न होजाय। कारण—आरोग्यताके लिये ही यह सारा क्रियाक्रम है और बल ही उस आरोग्यताका एकमात्र प्रधान कारण है। अर्थात् बलके विना आरोग्य होना असम्भव है। इसलिये—वातप्रकृतिवाले, क्षुधा तृषासे पीडित, मुखशोष और भ्रमयुक्त मनुष्योंको एवं बालक, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री और दुर्बल मनुष्यको लंघन नहीं कराने चाहिये ॥ ८२ ॥

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे।
हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ ८६ ॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये।
कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ८७ ॥
पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च।
क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥८८॥
मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्ध्ववातस्तमो हृदि।
देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत् ॥ ८९ ॥

उत्तम प्रकार (जबतक लंघन करानेकी आवश्यकता हो) से लंघन करानेसे मल-मूत्र और अपान वायुका निकलना, शरीरमें लघुता और हृदयका भारीपन दूर होता है। एवं उद्गार (डकार) शुद्ध आती है, कण्ठ और मुख शुद्ध होता है। विशेषकर तन्द्रा और ग्लानि दूर होती है। पसीना आता है, भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है। क्षुधा और तृषा उत्पन्न होती हैं, एवं चित्त प्रसन्न होता है। इन सब लक्षणोंके प्रगट होनेपर फिर ज्वरमें लंघन नहीं कराने चाहिये। कारण—अधिक लंघन करानेसे पर्वभेद, सन्धियोंमें तोड़ने सरीखी पीड़ा, अङ्गोंमें पीड़ा, खाँसी, मुखशोष, भूँखका न लगना, अरुचि, तृषा, नेत्र और कर्णशक्तिका ह्रास, चित्तमें भ्रम, ऊर्ध्ववात, हृदयमें अन्धकार, शरीर, अग्नि और बलकी हानि होती है ॥ ८६-८९ ॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते।
वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ ९० ॥
कफप्रधानानुत्क्लिष्टान् दोषानामाशये स्थितान्।
बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ ९१ ॥

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे।
हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ ९२ ॥
तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे।
मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ ९३ ॥
दीपनं पाचनं चैव ज्वरघ्नमुभयं च तत्।
स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ ९४ ॥

वाग्भटमें लिखा है कि-यदि भोजनके पश्चात् तत्काल ज्वर होजाय वा सन्तर्पण (रसादि धातुओंकी वृद्धि करनेवाले पदार्थोंके) द्वारा ज्वर होजाय तब वमनके योग्य व्यक्तिको वमन करानी चाहिये। किन्तु, रोगी वमनके योग्य है वा नहीं यह बात पहले ही देखलेनी चाहिये। यदि आमाशयमें स्थित दोषोंमें कफकी अधिकता हो और वमनकी इच्छा होनेसे यह दोष मानो अपने आप ही निकल जायँगे-ऐसा मालूम हो तो क्या नवीन ज्वरवाले, क्या जीर्ण ज्वरवाले वमनयोग्य मनुष्यको वमन करानी चाहिये. किन्तु, नवीन ज्वरमें इन सब लक्षणोंके प्रगट न होनेपर वमन करानेसे हृदयरोग, श्वास, आनाह (मल-मूत्रका अवरोध) और अत्यन्त मोह उत्पन्न होता है। वातज्वर कफज्वर और वातकफज्वरमें-गरम जल पान, कराना चाहिये। मद्यपानजन्य ज्वरमें और पित्तज्वरमें-तिक्त ओषधियोंके द्वारा सिद्ध कियेहुए जलको शीतल करके पान करावे। इस प्रकारका जलपान करनेसे अग्निकी वृद्धि, अपक्व रसका परिपाक, ज्वरका नाश, मल-मूत्र और पसीने आदिके द्वारा स्रोतोंकी शुद्धि, बलकी वृद्धि और भोजनमें रुचि होती है एवं पसीना आने लगता है ॥ ९०-९४ ॥

षडङ्गपानीय।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
शृतशीतं जलं देयं पिपासाज्वरशान्तये ॥ ९५ ॥

तृषा और ज्वरको शान्त करनेके लिये-नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ सब ओषधियोंको समानभाग मिलीहुई दो तोले लेकर एकत्र कूटकर ४ सेर जलमें पकावे। जब पककर दो सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर शीतल होजानेपर यह जल रोगीको थोड़ा थोड़ा पान करावे ॥ ९५ ॥

मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणज्वरे।
तोयपेयादिसंस्कारैर्निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ ९६ ॥

तरुण ज्वरमें—एक सप्ताहतक प्रधान ओषधि नहीं देनी चाहिये। किन्तु पूर्वोक्त नागरमोथादि छः द्रव्योंके द्वारा सिद्ध कियेहुए अप्रधानौषधरूप षडंग जलको सेवन करानेमें कोई हानि नहीं है। जल और मण्डादिके संस्कारके लिये जो ओषधियाँ व्यवहार की जाती हैं, उनको अप्रधान ओषधि कहते हैं। यह अप्रधान ओषधिही प्रथम सप्ताहमें सेवन करायी जासकती हैं। किंतु ज्वरनाशक मुख्य ओषधियाँ सप्ताहके भीतर नहीं सेवन करानी चाहिये ॥ ९६ ॥

षडङ्गादि साधन।

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थकेऽम्भसि ॥ ९७ ॥
अर्द्धं शृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ।
लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः शृताम् ॥ ९८ ॥
पिबेज्ज्वरी ज्वरहरां क्षुद्वानल्पाग्निरादितः।
पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्वबस्तिशिरोरुजि ॥ ९९ ॥
श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत्।
षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता ॥ १०० ॥

षडंग जल बनाना हो या यूष, यवागू, मंड, पेया आदि बनाना हो तो षडंगादि ओषधियोंको एक कर्ष (दो तोले) लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे। जब पककर आधा जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर शीतल होनेपर पान और पेयादिमें प्रयोग करे। पीपल और सोंठके काथके द्वारा सिद्ध की हुई खीलोंकी पेया ज्वरनाशक है और सहजमें परिपक्व होनेके कारण मन्दाग्निवाला पुरुष अल्प क्षुधामें भी सेवन कर सकता है। ज्वर रोगीके पसली मूत्राशय और शिरमें पीडा होनेपर गोखरू और कटेरीके द्वारा बनाई हुई लाल शालि धानोंकी पेया सेवन करानी चाहिये। यह पेया ज्वरको दूर करती है। षडंगजलकी परिभाषाके अनुसारही प्रायः पेयादि सिद्ध की जाती है ॥ ९८–१०० ॥

यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ॥ १०१ ॥

यवागूकी मात्रा स्वभावसे जितने परिमाणमें चावल खानेका अभ्यास हो, उसके चौथाई भाग कुटे हुए चावलोंके द्वारा मांड, पेया और विलेपी प्रस्तुत करानी चाहिये ॥ १०१ ॥

मॉंड आदिके लक्षण ।

सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता ।
यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥ २ ॥

जिसमें एक भी सीत न रहे (अर्थात् सब कण गल जायँ) उसे मण्ड कहते हैं । जिसमें कुछ सीत रहजायँ उसको पेया कहते हैं । और जिसमें बहुतसे सीत हों उसको यवागू और जिसमें पतलापन हो,उसको विलेपी कहते हैं ॥ २ ॥

अन्नादिसाधन ।

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे ।
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ॥
अष्टादशगुणे तोये यूषः शार्ङ्गधरेरितः ॥ ३ ॥

भात सिद्ध करना हो तो चावलोंको पचगुने जलमें पकावे । विलेपीको चौगुने जलमें, मांडको चौदह गुने जलमें, यवागूको ६ गुने जलमें और यूषको १८ गुने जलमें पकावे. ऐसा शार्ङ्गधरने कहा है ॥ ३ ॥

ज्वरमें पथ्य ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः ।
मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमन्विते ॥ ४ ॥
स एव सितया युक्तः शीतपित्तज्वरे हितः ।
रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह ॥ ५ ॥
यवाग्वोदनलाजार्थं ज्वरितानां ज्वरापहाः ।
मुद्गान्मसूरांश्चणकान् कुलित्थान् समकुष्ठकान् ॥ ६ ॥
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ।
पटोलपत्रं वार्ताकुं कुलकं कारवेल्लकम् ॥ ७ ॥
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ।
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

परिश्रम, लंघन और वायुके प्रकोपसे उत्पन्नहुए ज्वरमें मांसरसके साथ भात खाना हितकारी है । कफज्वरमें-मूँगके यूषके साथ और पित्तज्वरमें-भातमें मिश्री मिलाकर ठंडे मूँगके यूषके साथ सेवन करे. ज्वररोगीको पुराने लाल शालिधान और साँठी

आदि धानोंके द्वारा प्रस्तुत की हुई यवागू, भात और खीलें हितकर और ज्वरनाशक हैं। मूँग, मसूर, चना, कुलथी और मोठ आदिका यूष और परवल, बैंगन, मरसा, करेला, ककोडा, पित्तपापडा, गोजिया, कच्चीमूली और गिलोयके पत्ते आदिका शाक ज्वररोगीको देवे ॥ ४–८ ॥

ज्वरितो हितमश्नीयाद् यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ।
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपिवा ॥ ९ ॥
सातत्यात् स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् ।
कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ १० ॥

ज्वररोगीको, भोजनमें अरुचि होनेपर भी हितकर पदार्थोंका भोजन करावे, कारण–जो रोगी नियमित समयमें हितकर भोजन नहीं करता, उसका शरीर क्रमशः क्षीण होजाता है अथवा मृत्यु होजाती है। यदि निरन्तर एक ही प्रकारके पदार्थोंके आहारसे वा पदार्थोंके स्वादु न होनेसे रोगीको भोजनमें अरुचि हो तो उसकी रुचि के अनुसार नानाप्रकारके पथ्योंकी कल्पना करके दे ॥ ९ ॥ १० ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु ।
श्लेष्मक्षये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ११ ॥

ज्वर होनेपर अथवा ज्वरके उतरजानेपर सायंकालमें रोगीको हलका भोजन देना चाहिये क्योंकि उस समय कफके क्षीण होनेसे अग्नि-दीपन और बलवती होती है ॥ ११ ॥

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथंचन ।
नहि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ॥ १२ ॥

ज्वररोगी–भारी और अभिष्यन्दि (शरीरके स्रोतोंको बन्द करनेवाले) पदार्थों का अथवा असमयमें कदापि भोजन न करे। क्योंकि अहितकर पदार्थोंका भोजन करनेसे आयु और सुखका नाश होताहै ॥ १२ ॥

लंघनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः ।
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणज्वरे ॥ १३ ॥

नवीन ज्वरमें–लंघन, स्वेदन (शरीरको बफारा देकर पसीना निकालना), काल (आठ दिन), यवागू (मांड, पेया और विलेपी) और तिक्त पदार्थोंका रस ये सब अपक्वादि दोषोंको पचानेवाले हैं ॥ १३ ॥

ज्वरकी तीन अवस्था ।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ॥ १४ ॥

ज्वर तीन प्रकारका होता है । जैसे—तरुणज्वर, मध्यमज्वर और पुरातनज्वर । ज्वरोत्पत्तिसे लेकर सात दिनतक तरुणज्वर, आठवें दिनसे लेकर बारह दिनतक मध्यम ज्वर और १२ वें दिनसे लेकर आगेको जो ज्वर स्थायी रूपसे रहता है, उसको पुरातन ज्वर कहते हैं ॥ १४ ॥

जीर्णज्वरके लक्षण ।

त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥ १५ ॥

तीन सप्ताह (२१ दिन) बीतनेपर जब ज्वरका वेग कम होकर प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि और मन्दाग्नि होजाता है तब उसे जीर्णज्वर कहते हैं ॥ १५ ॥

ज्वररोगीको कषाय पिलानेका नियम ।

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नंप्रतिभोजितम् ।
पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥ १६ ॥
सप्ताहात्परतोऽस्तब्धे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे ।
निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ १७ ॥

ज्वरके ६ दिन बीत जानेपर सातवें दिन रोगीको हलका भोजन (यवागू आदि) कराकर आठवें दिन पाचन व शमनरूप कषाय पान करावे । किन्तु सात दिनके पश्चात् यदि ' लाला प्रसेकादि ' आमज्वरके लक्षण हों और मलमूत्रादिका विबन्ध न हो तो शरीरशुद्धिके लिये पाचन ओषधि सेवन करावे । और निराम अवस्थामें शमनकारक ओषधि प्रयोग करे । यदि रस आमावस्थामें हो और मल-मूत्रका विबन्ध हो सप्ताहके पश्चात् तो पाचन या शमन ओषधियोंका प्रयोग न करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ।
तन्द्रालस्यविपाकास्यवैरूप्यं गुरुगात्रता ॥ १८ ॥

क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः ।
आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ १९ ॥
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ।
मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ।
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ १२० ॥

मुखसे लारका गिरना, उबकाई आना, हृदयपर बोझसा मालूम होना, अरुचि, तंद्रा, आलस्य, भोजनका न पचना, मुखमें विरसता, शरीरमें भारीपन मालूम होना, भूँख न लगना, मूत्रकी अधिकता, शरीरमें जडता और ज्वरकी प्रबलता ये सब आमज्वरके लक्षण हैं। इन लक्षणोंसे युक्त आमज्वरमें औषधिका प्रयोग नहीं करना चाहिये। कारण, आमज्वरमें आमरसका परिपाक न होनेपर औषधि प्रयोग करनेसे ज्वरका वेग और भी बढ़जाता है और आमदोषके पच जानेपर ज्वरकी कमी, शरीरमें लघुता, वात-पित्त और कफकी समता और मल-मूत्रादिकी प्रवृत्ति इन सब लक्षणोंके प्रकट होनेपर औषध देनी चाहिये॥ १८-१२० ॥

कषायादि ओषधियोंके सेवनका निषेध।

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः ।
न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत ॥ २१ ॥

जलपान करनेके पश्चात्, उपवासके अन्तमें, क्षीणावस्थामें, अजीर्ण रोगमें भोजन करनेके पश्चात् और प्यासके समय मनुष्यको संशोधन (वमन, विरेचन आदि) अथवा किसी प्रकारकी ओषधि सेवन नहीं करनी चाहिये ॥ २१ ॥

अभुक्त अवस्थामें औषधसेवनके गुण।

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ।
तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं
ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयं च ॥ २२ ॥
शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।

प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ २३ ॥
औषधशेषे भुक्तं तथौषधं सशेषेऽन्ने ।
न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगाँश्च ॥२४॥

अन्नहीन (अर्थात् खालीपेट सेवन की हुई) औषध अधिक वीर्यवाली होती है वह रोगको शीघ्रही नष्ट करती है । किन्तु बालक, वृद्ध, स्त्री और कोमल प्रकृतिवाले मनुष्योंको बिना भोजन (अर्थात् खाली पेट) सेवन करनेसे उनके शरीरमें ग्लानि होती है और बलका क्षय होता है । इसलिये इन सबको भोजनसे कुछ समय पहले औषध सेवन करानी चाहिये । कारण, वह औषध आहारसे ढकजानेके कारण मुखसे बारबार नहीं निकलती, बलकी हानि भी नहीं करती और शीघ्र पचजाती है । औषधके न पचनेपर आहार करनेसे अथवा भोजनके बिना पचे औषध सेवन करनेसे औषध रोगको नष्ट नहीं करती, किन्तु अन्यान्य रोगोंको उत्पन्न करदेती है ॥ २२-२४ ॥

जीर्णाजीर्ण-औषधिके लक्षण ।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता ।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ २५ ॥
क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रमो मूर्च्छा शिरोरुजा ।
अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ २६ ॥

औषधके उत्तमप्रकारसे परिपक्व होजानेपर ये लक्षण होते हैं-वायुकी अनुलोमता (अर्थात् वायुका अपने मार्गमें स्वाभाविक रूपसे गमन करना) शरीरका स्वस्थ होना, क्षुधा और तृषाका लगना, मनमें प्रसन्नता इन्द्रियोंमें हलकापन और डकारका शुद्ध आना । और औषधिके न पचनेपर शरीरमें ग्लानि, दाह, शिथिलता, भ्रम, मूर्च्छा, शिरमें पीडा, मनमें खेद, अस्वस्थता और बलका क्षय होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

मात्राका निरूपण ।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।
व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥

ओषधिकी मात्राका कोई नियम स्थिर नहीं है। अतएव दोष (वात-पित्तकफ) जठराग्नि, बल, अवस्था, रोग, औषध (उष्णवीर्य, मध्यवीर्य, और मृदुवीर्य आदि) और कोष्ठ इन सब बातोंको उत्तमप्रकारसे विचारकर औषधिकी मात्रा निर्द्धारित करनी चाहिये। मात्राकी न्यूनाधिकता होनेसे रोगके दूर होनेमें व्याघात होता है ॥ २७ ॥

सामान्य ज्वरकी चिकित्सा।

धान्य-पटोलक्काथ।

दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोमनम्।
ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटोलयोः ॥ २८ ॥

धनियाँ और परवलका क्काथ-ज्वरनाशक, आमादि दोषोंको पचानेवाला, भेदक (दस्तावर) अग्निप्रदीपक, कफनाशक और वात-पित्तका अनुलोमन करनेवाला है। इसलिये यह क्काथ सम्पूर्ण सामान्य ज्वरोंमें दिया जा सकता है ॥ २८ ॥

वृश्चीरादि-क्षीरपान।

वृश्चीरबिल्ववर्षाभूपयः सोदकमेव च।
पचेत् क्षीरावशेषं तु पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ २९ ॥

सफेद पुनर्नवा, बेलकी छाल आर लाल पुनर्नवा-सबको समान भाग और सब मिलाकर २ तोले लेकर आधपाव दूध और आधसेर जलमें मिलाकर पकावे। जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उसे उतारकर रोगीको पान करावे। इससे सर्व प्रकारका ज्वर दूर होता है ॥ २९ ॥

गुडूच्यादि।

गुडूचीधान्यकारिष्टः पद्मकं रक्तचन्दनम्।
एष सर्वान् ज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ १२० ॥

गिलोय, धनियाँ, नीमकी छाल, पद्माख और लालचन्दन इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर यथाविधिसे बनाया हुआ क्काथ-सर्व प्रकारके ज्वर, उबकाई, अरुचि, वमन, प्यास और दाहको नष्ट करता है। गुडूच्यादि क्काथ अग्निप्रदीपक है ॥ १२० ॥

आरग्वधादि ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः क्थितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातपित्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ ३१ ॥

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका यथाविधि बनाया हुआ क्वाथ–आमदोष शूल और सर्वाङ्ग–पीडासे युक्त त्रिदोषज ज्वरमें पान करना चाहिये । यह अग्निप्रदीपक और पाचक है ॥ ३१ ॥

पथ्यादि ।

पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामलकैः शृतं तोयम् ।
पाचनसारकमुक्तं मुनिभिर्जीर्णज्वरे सामे ॥ ३२ ॥

हरड, अमलतास, कुटकी, निसोथ और आमले इनका बनाया हुआ क्वाथ आम-युक्त जीर्णज्वरमें पाचक और सारक कहागया है ॥ ३२ ॥

मुस्तपर्पटकादि ।

पक्त्वा ज्वरे कषायं वा मुस्तपर्पटकं पिबेत् ।
सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुरालभम् ॥ ३३ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा अथवा सोंठ, पित्तपापडा अथवा धमासा और पित्तपापडा इन तीनोंमेंसे किसी एक क्वाथको बनाकर पीनेसे ज्वर नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

नागरादि ।

नागरं देवकाष्ठं च धन्याकं बृहतीद्वयम् ।
देयं पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ३४ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियाँ, बडी कटेरी और छोटी कटेरी इनका क्वाथ सर्वप्रकारके नवीन ज्वरवाले रोगीको पानकरानेसे ज्वर दूर होता है ॥ ३४ ॥

मुस्तादि ।

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्याशीरचन्दनैः ।
शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ ३५ ॥

तृषा, दाह और ज्वरको शान्त करनेके लिये नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्ध-वाला, धनियाँ, खस और लालचन्दन इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके रोगीको पान करावे ॥ ३५ ॥

नागरादि।

नागरं देवकाष्ठं च ध्यामकं बृहतीद्वयम्।
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितेभ्यो ज्वरापहम्॥ ३६॥

ज्वररोगीको सोंठ, देवदारु, लामज्जक तृण (अभावमें खस), बडी कटेरी और छोटी कटेरी इनका क्वाथ सेवन करानेसे ज्वर नष्ट होता है॥ ३६॥

किराततिक्तकादि।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूचीं विश्वभेषजम्।
पाठामुशीरं सोदीच्यं पिबेद्वा ज्वरशान्तये॥ ३७॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, खस और सुगन्धवाला इनका क्वाथ पान करनेसे सम्पूर्ण ज्वर शान्त होते हैं॥ ३७॥

वातज्वरकी चिकित्सा।

बिल्वादि।

बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे।
पाचनः पिप्पलीमूलगुडूचीविश्वजोऽथवा॥ ३८॥

वातज्वरमें-बेल, शोनापाठा, अरलू, कुम्भेर, पाढल और अरणी इनकी छालका क्वाथ अथवा पीपलामूल, गिलोय और सोंठ इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर देना चाहिये॥ ३८॥

भूनिम्बादि।

भूनिम्बमुस्ताजलकण्टकारीद्वयामृतागोक्षुरनागराणाम्।
सशालपर्णीद्वयपौष्कराणां क्वाथं पिबेद्वातभवज्वरार्त्तः॥ ३९॥

वातज्वरसे पीडित रोगी चिरायता, नागरमोथा, सुगन्धवाला, कटेरी, बडी कटेरी, गिलोय, गोखरू, सोंठ, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और पोहकरमूल इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करे तो वातसम्बन्धी ज्वर शमन होते हैं॥ ३९॥

विश्वादि।

विश्वामृताग्रंथिकसिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात्पिबतः कुतोऽयम्।
क्वाथोऽथकुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र चारु॥ १४०॥

सोंठ, गिलोय और पीपलामूल इनका क्वाथ पान करनेसे अथवा धनियाँ देवदारु, कटेरी और सोंठ इनका क्वाथ पान करनेसे वातज्वर नष्ट होता है॥ १४०॥

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूलीबलारास्नाकुलत्थैः सहपौष्करैः ।
क्वाथो हन्याच्छिरःकम्पं पर्वभेदं मरुज्ज्वरम् ॥ ४१ ॥

बृहत् पञ्चमूल (बेल, अरलू, कुम्भेर, पाढल और अरणी), खिरैंटी, रायसन, कुलथी और पोहकरमूल—इन औषधियोंका यथाविधि सिद्ध किया हुआ क्वाथ पान करनेसे शिरःकम्प, सन्धिस्थानोंकी पीडा और वातज्वर नाश होता है ॥४१ ॥

कणादि ।

कणारसोनामृतवह्लिविश्वानिदिग्धिकासिन्दुकभूमिनिंबैः ।
समस्तकैराचरितःकषायो हिताशिनां हन्ति गदानिमांस्तु॥
ज्वरं मरुद्दुष्टिसमुद्भवं च बलासजं चानलमन्दतां च ।
कण्ठावरोधं हृदयावरोधं स्वेदं च हिक्कां च हिमत्वमोहान्४३

पीपल, लहसन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सिम्हालू, चिरायता और नागरमोथा—इनका विधिपूर्वक सिद्ध कियाहुआ क्वाथ—पथ्य पदार्थोंका भोजन करनेवाले मनुष्योंके वातज्वर, कफज्वर, अग्निकी मन्दता, कण्ठ और हृदयका अवरोध, अधिक पसीना आना, हिचकी, शरीरकी शीतलता और मूर्च्छा आदि रोगोंको दूर करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

शालपर्णी-आदि ।

शालपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा ।
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ ४४ ॥

शालपर्णी, खिरैंटी, गिलोय और सारिवा (अनन्तमूल) इनके मन्दोष्ण क्वाथको पान करनेसे तीव्र वातज्वर नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

शतपुष्पादि ।

शतपुष्पा वचा कुष्ठं देवदारु हरेणुका ।
कुस्तुम्बुरूणि नलदं मुस्तं चैवाशु साधयेत् ॥
क्षौद्रेण सितया चापि युक्तः क्वाथोऽनिलात्मके ॥ ४५ ॥

सोंफ, वच, कूठ, देवदारु, रेणुका, धनियाँ, खस और नागरमोथा इनके क्वाथको शहद और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वातज्वरमें शीघ्र लाभ होता है ॥ ४५ ॥

किरातादि।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः।
सस्थिराकलसीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ ४६ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगन्धवाला, कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और सोंठ इनका क्वाथ वातज्वरनाशक है ॥ ४६ ॥

पिप्पल्यादि।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः।
कृतः कषायः सगुडो हन्यात् श्वसनजं ज्वरम् ॥ ४७ ॥

पीपल, अनन्तमूल, दाख, सोंफ और रेणुका इनके क्वाथमें पुराना गुड डालकर पान करनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ ४७ ॥

बृहद्गुडूच्यादि।

गुडूची चन्दनं पद्मानागरेन्द्रयवासकम्।
अभयारग्बधोदीच्यपाठाधान्याब्दरोहिणी ॥ ४८ ॥
कषायं पाययेदेतत् पिप्पलीचूर्णसंयुतम्।
कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनम्।
विण्मूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ ४९ ॥

गिलोय, लालचन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवास, हरड, अमलतास, सुगन्धवाला, पाठ, धनियाँ, नागरमोथा, और कुटकी, इनका क्वाथ उत्तम प्रकारसे बनाकर उसमें जरासा पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर, प्यास, दाह और मल-मूत्र तथा वायुका अवरोध आदि विकार नष्ट होते हैं। यह क्वाथ सन्निपात ज्वरमें भी प्रयोग कियाजाता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

गुडूच्यादि।

गुडूची सारिवा द्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा।
सगुडोऽयं कषायः स्याद्वातज्वरविनाशनः ॥ १५० ॥

गिलोय, अनन्तमूल, दाख, सोंफ और पुनर्नवा इनके क्वाथमें पुराना गुड डालकर पान करनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ १५० ॥

द्राक्षादि।

द्राक्षागुडूचीकाश्मर्य्यत्रायमाणाः सशारिवाः।
निष्क्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ५१ ॥

दाख, गिलोय, कुम्भेर, त्रायमाण और सारिवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुड डालकर सेवन करनेसे वातज्वर नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

रास्नादि ।

रास्ना वृक्षादनी दारु सरलं सैलबालुकम् ।
कोष्णं सगुडसर्पिष्कं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ५२ ॥

रायसन, बँदा, देवदारु, धूपसरल और एलबालुक इनके मन्दोष्ण क्वाथमें गुड और घृत मिलाकर पान करनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ ५२ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूची शतपुष्पा च प्लक्षो रास्ना पुनर्नवा ।
त्रायमाणा कषायश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥ ५३ ॥

गिलोय, सोंफ, पाखर, रास्ना, पुनर्नवा और त्रायमाण इनके क्वाथमें गुड डालकर पान करनेसे वातज्वर नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

दशमूलादि ।

श्रीफलः सर्वतोभद्रः कामदूती च श्योनकः ।
तर्कारी गोक्षुरः क्षुद्रा बृहती कलसी स्थिरा ॥ ५४ ॥
रास्ना कणा कणामूलं कुष्ठं शुण्ठी किरातकः ।
मुस्ता बलाऽमृता बाला द्राक्षा यासः शताह्विका ॥ ५५ ॥
एषां क्वाथो निहन्त्येव प्रभञ्जनकृतं ज्वरम् ।
सोपद्रवं च योगोऽयं सर्वयोगवरः स्मृतः ॥ ५६ ॥

बेलकी छाल, कुम्भेर, पाढल, अरलू, अरणी, गोखुरू, कटेरी, बडी कटेरी, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, रास्ना, पीपल, पीपलामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, खिरैंटी, गिलोय, सुगन्धवाला, दाख, जवासा और सोया इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित वातज्वर नाश होता है। यह योग समस्त योगोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५४-५६ ॥

पित्तज्वरकी चिकित्सा ।

तिक्तादि ।

तिक्तामुस्तायवैः पाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम् ।
पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ५७ ॥

पित्तज्वरमें-कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाढ, कायफल, और सुगन्धवाला इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करे यह क्वाथ दोष पचानेवाला है ॥ ५७ ॥

कट्फलादि ।

कट्फलेन्द्रयवाम्बष्ठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ।
पाचनं दशमेऽह्नि स्यात्तीव्रपित्तज्वरे नृणाम् ॥ ५८ ॥

तीव्र पित्तज्वरमें-दोषोंके परिपाकके लिये दशवें दिन कायफल, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी और नागरमोथा इनके द्वारा बनायाहुआ क्वाथ रोगीको पान करानेसे विशेष लाभ होता है ॥ ५८ ॥

पर्पटादि ।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ५९ ॥

केवल इकके पित्तपापडेका क्वाथ ही पित्तज्वरको नष्ट करनेके लिये उत्कृष्ट औषध है । यदि इसके साथ लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ-इनका क्वाथ बनाकर पान करायाजाय तो क्या ही कहना है ? ॥ ५९ ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षा हरीतकी मुस्ता कटुका कृतमालकः ।
पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ १६० ॥
मुखशोषप्रलापान्तर्दाहमूर्च्छाभ्रमप्रणुत् ।
पिपासारक्तपित्तानां शमनो भेदनो मतः ॥ ६१ ॥

दाख, हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापडा-इनका बनाया हुआ क्वाथ-पित्तज्वर, मुखशोष, प्रलाप, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और तृषाको दूर करता है । यह रक्तपित्तको शान्त करनेवाला और भेदक है ॥ १६० ॥ ६१ ॥

पटोलादि ।

पटोलयवधन्याकमधुकं मधुसंयुतम् ।
हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णां चातिप्रमाथिनीम् ॥६२॥

परवल, इन्द्रजौ, धनियाँ और मुलहठी इनके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे पित्तज्वर, दाह और अतिप्रबल तृषा नष्ट होती है ॥ ६२ ॥

हीवेरादि ।

ह्रीवेरचन्दनोशीरघनपर्पटसाधितम् ।
दद्यात्तु शीतलं वारि तृड्वृद्धिज्वरदाहनुत् ॥ ६३ ॥

सुगन्धवाला, लालचन्दन, खस, नागरमोथा और पित्तपापडा इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके पीनेसे पित्तज्वर, दाह और अधिक तृषा शान्त होती है ॥ ६३ ॥

कालिंगादि ।

कलिङ्गं कट्फलं मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ६४ ॥

पैत्तिकज्वरमें—इन्द्रजौ, कायफल, नागरमोथा, पाढ और कुटकी इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे दोषोंका परिपाक होता है ॥ ६४ ॥

विश्वादि ।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम् ।
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ६५ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, खस, नागरमोथा और लालचन्दन—इनका शीतल क्वाथ पान करनेसे तृषा, वमन, पित्तज्वर और दाह दूर होते हैं ॥ ६५ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूचीभूमिनिम्बश्च बालं वीरणमूलकम् ।
लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः ॥ ६६ ॥
एषां क्वाथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम् ।
सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥ ६७ ॥

गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला, खस, अगर, नागरमोथा, निसोथ, आमले, दाख, अडूसा और पित्तपापडा इनके क्वाथमें शहदको मिलाकर प्रातःकाल पान करनेंसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित पित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

किरातादि ।

किराताम्रृतधन्याकचन्दनोशीरपर्पटैः ।
सपद्मकैः कृतः क्वाथो हन्ति पित्तभवं ज्वरम् ॥ ६८ ॥

चिरायता, गिलोय, धनियाँ, लालचन्दन, खस, पित्तपापडा और पद्माख इनके द्वारा बनायाहुआ क्वाथ पान करनेसे पित्तज्वर नाश होता है ॥ ६८ ॥

महाद्राक्षादि।

द्राक्षाचन्दनपद्मानि मुस्ता तिक्ताऽमृताऽपि च।
धात्री बालमुशीरं च लोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ ६९ ॥
परूषकं प्रियङ्गुश्च यवासो वासकस्तथा।
मधुकं कुलकं चापि किरातो धान्यकं तथा ॥ ७० ॥
एषां क्वाथो निहन्त्येव ज्वरं पित्तसमुत्थितम्।
तृष्णां दाहं प्रलापं च रक्तपित्तं भ्रमं क्लमम् ॥ ७१ ॥
मूर्च्छां छर्दिं तथा शूलं मुखशोषमरोचकम्।
कासं श्वासं च हृल्लासं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ७२ ॥

दाख, लालचन्दन, पद्माख, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, सुगन्धवाला, खस, लोध, इन्द्रजौ, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु, जवासा, अडूसा, मुलहठी, पटोलपत्र, चिरायता और धनियाँ इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पान करनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, क्लम, मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष अरुचि, खाँसी, श्वास, उबकाई इत्यादि उपद्रव निश्चय दूर होते हैं ॥ ६९–७२ ॥

यवपटोल।

पटोलयवनिष्क्वाथो मधुना मधुरीकृतः ॥।
तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशकः ॥ ७३ ॥

परवल और जौ दोनोंको २ तोले लेकर आधसेर जलमें पकावे। जब पकते २ आधपाव जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें ६ मासे शहद डालकर पान करनेसे दारुण पित्तज्वर, तृषा और दाह नाश होते हैं ॥ ७३ ॥

नागरादि।

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी।
धान्यकानां क्वाथ एष पित्तज्वरविनाशनः ॥ ७४ ॥

सोंठ, खस, नागरमोथा, लालचन्दन, कुटकी और धनियाँ इनका क्वाथ सेवन करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

अमृतादि।

अमृतापर्पटाधात्रीक्वाथः पित्तज्वरं हरेत्।
सितारग्वधयोर्वापि काश्मर्य्यस्याथवा पुनः ॥ ७५ ॥

द्राक्षा पर्पटकं तिक्ता पथ्यारग्वधमुस्तकैः ।
क्वाथस्तृष्णाभ्रान्तिदाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥ ७६ ॥

(१) गिलोय, पित्तपापडा और आमले, (२) अमलतास, कुम्भेर, मिश्री (३) अथवा दाख, पित्तपापडा, कुटकी, हरड, अमलतास और नागरमोथा । इन तीनों प्रयोगोंमेंसे किसी एकका क्काथ बनाकर सेवन करनेसे तृषा, भ्रम, दाह आदि उपद्रवोंसहित पित्तज्वर दूर होता है ॥ ७५-७६ ॥

विदारिकादि ।

विदारिकालोध्रकपित्थकानां
स्यान्मातुलुंगस्य च दाडिमानाम् ।
यथानुभावेन च मूलपत्रं
निहन्ति तृड्दाहसमूर्च्छनं च ॥ ७७ ॥

विदारीकन्द, लोध, कैथ, बिजौरानींबू और अनार इनकी जड और पत्तोंका यथाविधि क्काथ बनाकर सेवन करनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह और मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ ७७ ॥

धान्यशर्करा ।

व्युषितं धन्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करम् ।
पुंसामन्तर्दाहं शमयत्यचिराद् दूरप्ररूढमपि ॥ ७८ ॥

एक तोले धनियेको कूटकर रात्रिमें ५ तोले जलमें भिगोदेवे फिर प्रातःकाल छानकर उसमें दो तोले मिश्री डालकर पान करनेसे मनुष्योंका पित्तज्वर और अत्यन्त प्रबल आभ्यन्तरिक दाह तत्काल शमन होती है ॥ ७८ ॥

श्रीपर्ण्यादि ।

श्रीपर्णीचन्दनोशीरपरूषकमधूकजः ।
शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ ७९ ॥

कुम्भेर, लालचन्दन, खस, फालसे और महुआ इनके क्काथमें मिश्री डालकर पान करनेसे पैत्तिक ज्वर दूर होता है ॥ ७९ ॥

पर्पटादि ।

पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः ।
प्रियंगुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः ॥
पिपासादाहपित्तास्रयुतं पित्तज्वरं हरेत ॥ १८० ॥

पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, जवासा और फूलप्रियंगु इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे पिपासा, दाह और रक्तपित्तयुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥ १८० ॥

गुडूच्यादि।

गुडूच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः।
पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशोथभ्रमान्वितम् ॥ ८१ ॥

गिलोय, आमले और पित्तपापडा इनका क्वाथ अथवा केवल पित्तपापडेका क्वाथ दाह, शोथ और भ्रमयुक्त पित्तज्वरको शीघ्र हरता है ॥ ८१ ॥

भूनिम्बादि।

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृताः।
बालकं धान्यकं बिल्वं कषायो माक्षिकान्वितः ॥
विड्भेदश्वासकासांश्च रक्तपित्तज्वरं हरेत् ॥ ८२ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजौ, गिलोय, सुगन्धवाला, धनियाँ, बेलकी छाल इनके क्वाथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे मलभेद, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है ॥ ८२ ॥

धन्याकक्वाथ।

ससितो निशि पर्युषितः प्रातर्धन्याकक्वाथः।
पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ८३ ॥

धनियेके बासी क्वाथको मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे अन्तर्दाह और पित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८३ ॥

मृद्वीकादि।

मृद्वीका मधुकं निम्बं कटुका रोहिणी समा।
अवश्यायस्थितं पाकमेतत्पित्तज्वरापहम् ॥ ८४ ॥

दाख, मुलहठी, नीमकी छाल और कुटकी सब ओषधियोंको समान भाग लेकर सन्ध्याके समय विधिपूर्वक क्वाथ बनावे उसको रात्रिमें ओसमें रखकर अगले दिन प्रातःकाल पान करनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ ८४ ॥

दुरालभादि।

दुरालभावासकपर्पटानां प्रियंगुनिम्बकटुरोहिणीनाम्।
किराततिक्तं क्वथितं कषायं सशर्कराढ्यं क्वथितं च पाचनम्।
सदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोथविकारयुक्तम् ॥८५

धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, नीमकी छाल, कुटकी और चिरायता इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे दाह, तृषा, भ्रम और शोथयुक्त पित्त-ज्वर शीघ्र नष्ट होता है. यह क्वाथ पाचक है ॥ ८५ ॥

त्रायमाणादि ।

त्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव च ।
किराततिक्तकं मुस्तं मधूकं सविभीतकम् ॥ ८६ ॥
सशर्करं पीतमेतत्पित्तज्वरविनाशनम् ॥ ८७ ॥

त्रायमाण, मुलहठी, पीपलामूल, चिरायता, नागरमोथा, महुवेके फूल और बहेडा इनके क्वाथको मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज्वर नाश होता है ॥ ८६॥८७॥

कफज्वरकी चिकित्सा ।

मधुपिप्पली ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः ।
प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानां चापि शस्यते ॥ ८८ ॥

कफज्वरमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास, खाँसी, कफज्वर, प्लीहा, हिचकी आदि उपद्रव नष्ट होते हैं । यह योग बालकोंके लिये भी हितकारी है ॥ ८८ ॥

चतुर्भद्रावलेह ।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह ।
श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ८९ ॥
ऊर्द्धजत्रुगरोगघ्नी सायं स्यादवलेहिका ।
अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता ॥ १९० ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी और पीपल इनके समानभाग चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खाँसी और कफज्वर दूर होता है । ऊर्ध्वजत्रुरोगवाला मनुष्य इस अवलेहको सायङ्कालमें और अधोजत्रुगत रोगी प्रातःकाल भोजनसे पहले सेवन करे तो उक्तरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८९-१९० ॥

सिन्धुवारक्वाथ ।

सिन्धुवारदलक्वाथं सोपणं कफजे ज्वरे ।
जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत् ॥ ९१ ॥

कफजन्यज्वरमें-जंघाओंमें दुर्बलता और श्रवणशक्तिके ह्रास होनेपर सिंहालूके पत्तोंके क्वाथमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे लाभ होता है ॥ ९१ ॥

सप्तच्छदादि ।

सप्तच्छदं गुडूचीं च निम्बस्फूर्जकमेव च ।
क्वाथयित्वा पिबेत्क्वाथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ९२ ॥

सतौनेकी छाल, गिलोय, नीमकी छाल और तेंदूकी छाल इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे कफज्वर दूर होता है ॥ ९२ ॥

वासादि ।

वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहृत् ॥ ९३ ॥

अडूसा कटेरी और गिलोय इनके क्वाथमें शहद मिलाकर पान करनेसे ज्वर और खाँसी दूर होती है ॥ ९३ ॥

निम्बादि ।

निम्बविश्वामृतादारुशठीभूनिम्बपौष्करम् ।
पिप्पल्यौ बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ ९४ ॥

नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, चिरायता, पोहकरमूल, पीपल, बडी पीपल और बडी कटेरी इनका क्वाथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ९४ ॥

मरिचादि ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं कारवी कणा ।
चित्रकं कट्फलं कुष्ठं वसुगन्धि वचा शिखा ॥ ९५ ॥
कण्टकारी जटा शृङ्गी यमानी पिचुमर्दकः ।
एषां क्वाथो हरत्येष ज्वरं सोपद्रवं कफम् ॥ ९६ ॥

कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, काला जीरा, पीपल, चीता, कायफल, कूठ, नागरमोथा, वच, हरड, कटेरी, बालछड, काकडासिंगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका क्वाथ पान करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित कफज्वर नष्ट होता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

त्रिफलादि ।

त्रिफलापटोलवासाच्छिन्नरुहातिक्तरोहिणीषड्ग्रन्थाः ।
मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः ॥ ९७ ॥

हरड, बहेडा, आमला, परवल, अडूसा, गिलोय, कुटकी और वच इनके क्वाथको अथवा दशमूल और अडूसेके क्वाथको शहदके साथ पान करनेसे कफ-ज्वर दूर होता है ॥ ९७ ॥

मुस्तादि ।

मुस्तं वत्सकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी ।
परूषकाणि च क्वाथः कफज्वरविनाशनः ॥ ९८ ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, हरड, बहेडा आमला, कुटकी और फालसे इनका क्वाथ कफज्वरनाशक है ॥ ९८ ॥

कटुत्रिकादि ।

कटुत्रिकं नागपुष्पं हरिद्रा कटुरोहिणी ।
कौटजं च फलं हन्यात्सेव्यमानं कफज्वरम् ॥ ९९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, नागकेशर, हल्दी, कुटकी और इन्द्रजौ इनका क्वाथ सेवन करनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ ९९ ॥

पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली ।
नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाऽजमोदिका ॥ २०० ॥
सर्षपो हिङ्गु भार्ङ्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः ।
महानिम्बं वचा मूर्वा विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ १ ॥
पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः ।
गुल्मशूलज्वरहरो दीपनस्त्वामपाचनः ॥ २ ॥

पीपल, पीपलामूल, मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारङ्गी, पाढ, इन्द्रजौ, जीरा, बकायन, वच, मूर्वा, अतीस, कुटकी और वायविडङ्ग यह पिप्पल्यादि गण है । यह कफ, वात, गुल्म, शूल और ज्वरको नष्ट करता है। अग्निको दीपन और आमको पचाता है। इसका कफज्वरमें यथाविधि क्वाथ बनाकर विशेष रूपसे सेवन करना चाहिये॥ २००–२ ॥

सारिवादि ।

सारिवाऽतिविषाकुष्ठपुराख्यैः सदुरालभैः ।
मुस्तेन च कृतः क्वाथः पीतो हन्यात्कफज्वरम् ॥ ३ ॥

सारिवा, अतीस, कूठ, गूगल, धमासा और नागरमोथा इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करनेसे कफज्वर दूर होता है ॥ ३ ॥

आमलक्यादि।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः।
सर्वज्वरकफातङ्को भेदी दीपनपाचनः ॥ ४ ॥

आमले, हरड, पीपल और लालचीतेकी जड इनका क्वाथ पान करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर और विशेषकर कफज्वर दूर होता है। यह क्वाथ मलभेदक, अग्निप्रदीपक और पाचक है। ॥ ४ ॥

हरिद्रादि।

हरिद्रा चित्रकं निम्बमुशीरातिविषे वचा।
कुष्ठमिन्द्रयवा मूर्वा पटोलं चापि साधितम् ॥
पिबेन्मरीचमिलितं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ५ ॥

हल्दी, लालचीतेकी जड़, नीमकी छाल, खस, अतीस, वच, कूठ, इन्द्रजौ, मूर्वा और परवल इनके क्वाथमें काली मिरचोंका चूर्ण और शहद डालकर पान करनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अभयादि।

अभयाऽऽमलकी कृष्णा षड्ग्रन्था चित्रकस्तथा।
मलभेदी कफातङ्कज्वरनाशनदीपनः ॥ ६ ॥

हरड, आमले, पीपल, वच और चीतेकी जड इनका क्वाथ कफज्वरनाशक, भेदक और अग्निप्रदीपक है ॥ ६ ॥

व्याघ्र्यादि।

व्याघ्री सिंही दुरालम्भा लोध्रं कुष्ठं पटोलकम्।
ज्वरे कफात्मके चैतत्पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥ ७ ॥

कटेरी, बडी कटेरी, धमासा, लोध, कूठ और परवल इनका क्वाथ कफज्वरमें उत्तम पाचन है ॥ ७ ॥

पटोलादि।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः।
क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥ ८ ॥

परवल, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, कचूर, अडूसेकी छाल और गिलोय इनका क्वाथ शहदके साथ पान करनेसे कफज्वर दूर होता है ॥ ८ ॥

भूनिम्बादि।

भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शठी शुण्ठी शतावरी।
गडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात्कफज्वरम् ॥ ९ ॥

चिरायता, नीमकी छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय, बडी कटेरी इनका क्वाथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

वात-पित्तज्वरकी चिकित्सा।

नवाङ्ग क्वाथ।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः।
कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ २१० ॥

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू इनका क्वाथ वातपित्तजन्यज्वरको तत्काल नष्ट करता है ॥ २१० ॥

निदिग्धिकादि।

निदिग्धिकाबलारास्नात्रायमाणामृतायुतैः।
मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ११ ॥

कटेरी, खिरैंटी, रायसन, त्रायमाण, गिलोय और अनन्तमूल इनका क्वाथ वात-पित्तज्वरको दूर करता है ॥ ११ ॥

गुडूच्यादि।

गुडूची निम्बधन्याके पद्मकं रक्तचन्दनम्।
एषां सर्वान् ज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ १२ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियाँ, पद्माख और लालचन्दन इनका क्वाथ सर्व प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है। यह गुडूच्यादि क्वाथ अत्यन्त अग्निप्रदीपक एवं उबकाई, अरुचि, वमन, तृषा और दाहको नाश करनेवाला है ॥ १२ ॥

बृहद्गुडूच्यादि।

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम्।
अभयारग्वधोदीच्यपाठाधन्याब्दरोहिणी ॥ १३ ॥
कषायं पाययेदेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्।
कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनः ॥
विण्मूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ १४ ॥

गिलोय, लालचन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरड, अमलतास, सुगन्धवाला, पाढ, धनियाँ, नागरमोथा और कुटकी इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर, प्यास और दाह नष्ट होते हैं। मल-मूत्र और वायुका अवरोध होनेपर और सन्निपातज्वरमें भी इस क्वाथको पान करानेसे लाभ होता है ॥ १३-१४ ॥

घनचन्दनादि ।

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं त्वमृणालपटोलदलं सजलम् ।
शृतशीतसितायुतपित्तहरं ज्वरछर्दितृषारुचिदाहहरम् १५ ॥

नागरमोथा, लालचन्दन, पित्तपापडा, कुटकी, खस, पटोलपत्र (परवल और सुगन्धवाला इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके उसमें मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज्वर, वमन, तृषा, अरुचि और दाह ये सब विकार दूर होते हैं ॥ १५ ॥

त्रिफलादि ।

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः ।
शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ १६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, सेमलकी जड, रायसन, अमलतास और अडूसा इनका क्वाथ पान करनेसे वातपित्तजन्यज्वर तत्काल दूर होता है ॥ १६ ॥

पञ्चभद्र ।

गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ १७ ॥

वातपित्तज्वरमें-गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर देना चाहिये । यह योग उक्तज्वरमें विशेष उपयोगी है ॥ १७ ॥

मधुकादि ।

मधुकं शारिवे द्राक्षां मधूकं चन्दनोत्पलम् ।
काश्मरीं पद्मकं लोध्रं त्रिफलां पद्मकेशरम् ॥ १८ ॥
परूषकं मृणालं च क्षिपेदुत्तमवारिणि ।
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥
वातपित्तज्वरं दाहतृष्णामूर्च्छावमिभ्रमान् ॥ १९ ॥

मुलहठी, सारिवा, अनन्तमूल, दाख, महुआ, लालचन्दन, कमल, कुम्भेर, पद्माख, लोध, त्रिफला, कमलकेशर, फालसे और कमलकी नाल इनको समान-

भाग लेकर रात्रिके समय चावलोंके जलमें भिजोदेवे । फिर अगले दिन प्रातःकाल छानकर उसमें शहद, मिश्री और खीलोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे वातपित्त-ज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, वमन और भ्रमरोग दूर होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

मुस्तादि ।

मुस्तपर्पटकोत्पलकिरातोशीरचन्दनात्कर्षः ।
शर्करया च दीयते वातपित्तज्वरे बहुधा दृष्टफलः ॥ २२० ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, कमल, चिरायता, खस और लालचन्दन इन सबको एककर्ष परिमाण लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनावे । फिर उसमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे वातपित्तज्वरमें प्रायः तत्काल लाभ होता है ॥ २२० ॥

किरातादि ।

किराततिक्तामलकीशठीनां द्राक्षोषणानागरकामृतानाम् ।
क्वाथः सुशीतो गुडसंयुतः स्यात्सपित्तवातज्वरनाशहेतुः॥ २१

चिरायता, आमले, कचूर, दाख, कालीमिरच, सोंठ और गिलोय इनको शीतल कियेहुए क्वाथमें गुड डालकर पान करनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होता है ॥२१॥

पित्तकफज्वरकी चिकित्सा ।

कण्टकार्यादि ।

कण्टकार्यमृताभार्ङ्गीनागरेन्द्रयवासकम् ।
भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ २२ ॥
कषायं पाययेदेतं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत्पार्श्वशूलनुत ॥ २३ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, परवल और कुटकी इनका क्वाथ पान करनेसे पित्त-कफज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन, खाँसी, हृदयरोग और पार्श्वशूल ये सब व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

भार्ङ्ग्यादि ।

भार्ङ्गीगुडूचीघनदारुसिंहीशुण्ठीकणापुष्करजः कषायः ।
ज्वरं निहन्ति श्वसनं क्षिणोति क्षुधां करोति प्ररुचिं तनोति॥२४

भारंगी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, कटेरी, सोंठ, पीपल और पोहकरमूल इनका क्वाथ श्वासयुक्त ज्वरको नष्ट करता है। क्षुधा और रुचिको बढ़ाता है॥ २४॥

अमृतादि।

अमृतामुस्तकवासापर्पटविश्वाजलेन क्वाथः।
पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्याच्च भद्रमुञ्जः॥ २५॥

गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, पित्तपापडा, सोंठ, सुगन्धवाला और रामशर (सरपता-मूँज) इनका क्वाथ पान करनेसे वातपित्तजन्यज्वर दूर होता है॥ २५॥

पटोलादि।

पटोलं चन्दनं मूर्वा तिक्ता पाठाऽमृता गणः।
पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः॥ २६॥

परवल, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ और गिलोय इन ओषधियोंका क्वाथ पित्त-कफज्वरनाशक एवं अरुचि, वमन, ज्वर, खुजली और विषदोषको दूर करनेवाला है॥ २६॥

अमृताष्टक।

अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्॥ २७॥
अमृताष्टक इत्येष पित्तश्लेष्मज्वरापहः।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः॥ २८॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, परवल, कुटकी, सोंठ, लालचन्दन और नागरमोथा इन ओषधियोंके समूहको अमृताष्टक कहते हैं। इस अमृताष्टकके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे पित्तकफज्वर, उबकाई, अरुचि, वमन प्यास और दाह नाश होता है॥ २७॥ २८॥

चातुर्भद्रक।

किरातं नागरं मुस्तं गुडूचीं च कफाधिके।
पाठोदीच्यमृणालैस्तु सह पित्ताधिके पिबेत्॥ २९॥

पित्तश्लेष्मजज्वरमें—यदि कफकी अधिकता हो तो चिरायता, सोंठ, नागरमोथा और गिलोय इनका क्वाथ पान करे और पित्तकी अधिकता हो तो उक्त चारों औषधियोंके साथ पाढ, सुगन्धवाला और खस इन तीनों ओषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करनेसे विशेष लाभ होता है॥ २९॥

वासास्वरस ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ।
कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रपित्तं सकामलम् ॥ २३० ॥

पत्ते, तथा फूलोंके सहित अडूसेका रस निकालकर उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्त और कामला (कमलवाय) सहित कफपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २३० ॥

नागरादि ।

नागरोशीरबिल्वाब्दधान्यमोचरसाम्बुभिः ।
कृतः क्वाथो भवेद्ग्राही पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३१ ॥

सोंठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियाँ, मोचरस और सुगन्धवाला इनका क्वाथ ग्राही (मलरोधक) और पित्तकफज्वरनाशक है ॥ ३१ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूची निम्बधन्याकं चन्दनं कटुरोहिणी ।
गुडूच्यादिरयं क्वाथः पाचनो दीपनः स्मृतः ॥
तृष्णादाहारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३२ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियाँ, लालचन्दन और कुटकी इनका क्वाथ पाचक अग्निप्रदीपक एवं तृषा, दाह, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वरको दूर करनेवाला है ॥ ३२ ॥

भाङ्‌र्यादि ।

भाङ्गीवचापर्पटकधान्यहिंग्वभयाघनैः ।
काश्मर्यनागरैः क्वाथः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तजे ॥ ३३ ॥

भारङ्गी, बच, पित्तपापडा, धनियाँ, हींग, हरड, नागरमोथा, कुम्भेर और सोंठ इनके क्वाथको शहदके साथ पित्तकफज्वरमें पान करनेसे लाभ होता है ॥ ३३ ॥

पटोलादि ।

पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं बला ।
साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मोद्भवज्वरे ॥ ३४ ॥

परवल, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, मुलहठी और खिरैंटी इनके द्वारा सिद्ध कियेहुए क्वाथको पित्तकफज्वरमें पान करनेसे विशेष लाभ होता है ॥ ३४ ॥

भद्रमुस्तादि ।

भद्रमुस्ता नागरं वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ।
पाठामृणालोदीच्यानि क्वाथः पित्तज्वरे कफे ॥ ३५ ॥

पित्तकफजन्यज्वरमें-नागरमोथा और सोंठ या गिलोय और आमले अथवा पाढ, खस और सुगन्धवाला इनमेंसे किसी एक योगको बनाकर क्वाथ पान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षामृतावासकनिम्बकानि भूमिम्बतिक्तेन्द्रयवाः पटोलम् ।
मुस्तासभार्ङ्गी क्वथितः कषायः सश्लेष्मपित्तज्वरनाशनाय ॥३६

दाख, गिलोय, अडूसा, नीमकी छाल, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, परवल, नागरमोथा और भारंगी इनका बनाया हुआ क्वाथ पित्तकफज्वरको नष्ट करनेके लिये उत्तम औषध है ॥ ३६ ॥

बृहद्गुडूच्यादि ।

गुडूचिका निम्बकवासकं च शठी किरातं मगधा बृहत्यौ ।
दार्वी पटोलं क्वथितं कषायं पिबेन्नरः पित्तकफज्वरे च ३७॥

गिलोय, नीमकी छाल, अडूसा, कचूर, चिरायता, पीपल, कटेरी, बडी कटेरी, दारुहल्दी और परवल इनका क्वाथ पित्तकफज्वरमें पान करना चाहिये ॥३७॥

पञ्चतिक्तकषाय ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपौष्करं चैव किराततिक्तम् ।
पिबेत्कषायं त्विह पंचतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं समुग्रम् ३८

कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इन पाँचों ओषधियोंको एकत्र बनाकर क्वाथ पान करनेसे अत्यन्त उग्र आठों प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

पटोलादि ।

पटोलयवधन्याकं मुद्गामलकचन्दनम् ।
पैत्तिके श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे तृट्छर्दिदाहनुत् ॥ ३९ ॥

परवल, जौ, धनियाँ, मूँग, आमले और लालचन्दन इनके क्वाथको पित्तजज्वर और पित्तकफजन्य-ज्वरमें पान करनेसे ज्वर, तृषा, वमन, दाह आदि विकार दूर होते हैं ॥ ३९ ॥

वातश्लेष्मज्वरकी चिकित्सा ।

रूक्षस्वेदाद्युपचार ।

कफवातज्वरे स्वेदान् कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ॥
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ २४० ॥
खर्परभृष्टस्थितकाञ्जिकसितो हि वालुकास्वेदः ।
शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ४१ ॥
वीक्ष्य स्वेदविधिं कुर्य्यात्स्वेदनं वालुकादिभिः ।
सर्वाङ्गे यदि वा यत्र वेदना संप्रजायते ॥ ४२ ॥
शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।
सञ्जातमार्दवे स्वेदे स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ४३ ॥

वातश्लेष्म ज्वरमें—रोगीको रूक्ष पदार्थोंका स्वेद देना चाहिये, स्वेद देनेसे समस्त स्रोतोंमें मृदुता होती है, जठराग्नि प्रज्वलित होती है एवं कफ और वातका साम्य (जडता) नष्ट होकर ज्वर दूर होता है । एक मिट्टीके खीपरेमें वालुको भस्म करके फिर कपडेकी पोटलीमें बाँधकर उसके ऊपर काँजी छिडक छिडककर स्वेद देवे । यह वालुकास्वेद वातश्लेष्मजनित पीडा, शिरकी पीडा, अङ्गोंका टूटना आदि विकारोंको शमन करता है । यदि सम्पूर्ण शरीरमें या किसी अङ्गविशेषमें पीडा हो तो उस स्थानमें वालुकास्वेद देना चाहिये । शीत, शूल, स्तब्धता, और शरीरकी पीडाके निवारण होजानेपर एवं स्रोतोंमें लघुता आजानेपर स्वेद बन्द करदेना चाहिये ॥ २४०–४३ ॥

आमज्वरे वातबलासजे वा कफोत्थिते मारुतसम्भवे वा ।
त्रिदोषजे स्वेदमुदाहरन्ति स्तम्भप्रमोहाङ्गरुजाप्रशान्त्यै ॥४४

आमज्वर, वातकफज्वर, कफजज्वर, वातज और सन्निपातजज्वरमें स्वेद देनेसे स्तब्धता, मूर्च्छा और शरीरकी पीडा शान्त होती है ॥ ४४ ॥

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम् ।
वातश्लेष्मविकारघ्नं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ ४५ ॥

पीपलका क्वाथ पान करनेसे शरीरके स्रोत शुद्ध होते हैं, अग्नि दीपन होती है, वात और कफके रोग और प्लीहायुक्त ज्वर नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

मुस्तनागरभूनिम्बत्रयमेतत् त्रिकार्षिकम् ।
कफवातामशमनं पाचनं ज्वरनाशनम् ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इन तीनोंको २ कर्ष परिमाण लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे कफ, वात और आमदोष शमन होता है । एवं दोषोंका परिपाक होता है और ज्वरका नाश होता है ।

पञ्चकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
दीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ ४७ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ इनके द्वारा बनाया हुआ क्वाथ–कफ और वातसे उत्पन्नहुए रोगोंको दूर करता है एवं अग्निको दीपन करता है ॥ ४७ ॥

निम्बादि ।

निम्बामृताविश्वदारुकट्फलं कटुका वचा ।
कषायं पाययेदाशु वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥
पर्वभेदशिरःशूलकासारोचकपीडितम् ॥ ४८ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल, कुटकी और वच इनका क्वाथ पान करनेसे वातश्लेष्मज्वर शीघ्र नष्ट होता है । एवं सन्धियोंकी पीडा, शिरका शूल, खाँसी, अरुचि आदि उपद्रव तत्काल दूर होते हैं ॥ ४८ ॥

क्षुद्रादि ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे ।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुग्ज्वरे ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल इनका क्वाथ वातश्लेष्मज्वर, सन्निपातज्वर, श्वास खाँसी, अरुचि और पार्श्वशूलयुक्त ज्वरमें सेवन करना उपयोगी है ॥ ४९ ॥

दशमूलीकषाय ।

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले ।
अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥ २५० ॥

वात–कफज्वरमें यदि वातादिदोषोंका उत्तम प्रकारसे परिपाक न हुआ हो एवं निद्राकी अधिकता हो तथा पार्श्वशूल, श्वास और खाँसी हो तो दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करना चाहिये ॥ २५० ॥

दार्व्वादि ।

दारुपर्पटभार्ङ्गर्यब्दवचाधान्यककट्फलैः ।
साभयाविश्वपूतीकैः क्वाथो हिंगुमधूत्कटैः ॥ ५१ ॥
कफवातज्वरे पीतो हिक्काशोषगलग्रहान् ।
श्वासकासप्रसेकांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥ ५२ ॥

देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियाँ, कायफल, हरड, सोंठ और दुर्गन्धकरंजइनके क्वाथमें हींग और शहद मिलाकर पान करनेसे कफवात-जज्वर, हिचकी, शोष, गलेकी पीडा, श्वास, खाँसी और मुँहसे पानीका गिरना ये सब रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे-वज्रपातसे वृक्ष तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

आरग्वधादि ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्तहरीतकीभिः कथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥५३॥

अमलतास, पीपलामूल, नागमोथा, कुटकी और हरड इनका क्वाथ आम और शूलयुक्त वातकफज्वरमें हितकारी है एवं अग्निप्रदीपक और पाचक है ॥ ५३ ॥

त्रिफलादिकषाय ।

त्रिफला त्रायमाणा च मृद्वीका कटुरोहिणी ।
वातश्लेष्म हरत्येष कषायो ह्यानुलोमिकः ॥ ५४ ॥

हरड, बहेडा, आमला, त्रायमाण, दाख और कुटकी इनका क्वाथ वातश्लेष्म-ज्वरको हरता है और वायुका अनुलोमन करता है ॥ ५४ ॥

मुस्तकादि ।

मुस्ता गुडूची सह नागरेण वासाजलं पर्पटकं च पथ्या ।
क्षुद्रा च दुःस्पर्शयुतः कषायः पाने हितो वातकफज्वरस्य ५५ ॥

नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, अडूसा, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, हरड, कटेरी और धमासा इनका क्वाथ पान करनेसे वातश्लेष्मज्वर नाश होता है ॥ ५५ ॥

बृहत्पिप्पल्यादि क्वाथ ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।
वचा सातिविषाऽजाजी पाठा वत्सकरेणुका ॥ ५६ ॥
किराततिक्तको मूर्वा सर्षपो मरिचानि च ।
कट्फलं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम् ॥ ५७ ॥

अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा।
दीप्यकश्चाजमोदा च शुकनासः सहिंगुका॥ ५८॥
एतानि समभागानि गण एकोऽष्टविंशतिः।
एषां क्वाथो निपीतः स्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः॥ ५९॥
हन्ति वातं तथा शीतं प्रस्वेदमतिवेपथुम्।
प्रलापं चातिनिद्रां च रोमहर्षारुची तथा॥ २६०॥
महावातेऽपतन्त्रे च शूले च सर्वगात्रजे।
पिप्पल्यादिमहाक्वाथो ज्वरे सर्वत्र पूजितः॥ ६१॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, वच, अतीस, कालाजीरा, पाढ, इन्द्रजौ, रेणुका, चिरायता, मूर्वा (चुरनहार), सरसों, काली मिरच, कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकडासिंगी, आककी जड, बडी कटेरी, रायसन, धमासा, अजवायन, अजमोद, अरलू और हींग इन समान भाग मिली हुई २८ औषधियोंको बृहत् पिप्पल्यादिगण कहते हैं। इसका क्वाथ पान करनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर तथा वात, शीत पसीनेका अधिक आना, शरीरमें कम्प होना, प्रलाप, निद्राकी अधिकता रोमाञ्च होना और अरुचि आदि समस्त उपद्रव नष्ट होते हैं। इस बृहत्पिप्पल्यादि क्वाथको महावात, अपतन्त्रक, समस्त शरीरगत शूल और सर्वप्रकारके ज्वरोंमें प्रयोग करना श्रेष्ठ है॥ ५६–२६१॥

किरातादिक्वाथ।

किरातविश्वामृतवल्लिसिंही-
कणाकणामूलरसोनसिन्दुकैः।
कृतः कषायो विनिहन्ति शीघ्रं
ज्वरं सवातं सकफात्समुत्थितम्॥ ६२॥

चिरायता, सोंठ, गिलोय, बडी कटेरी, पीपल, पीपलामूल, लहसुन और सिम्हालू इनका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे दोषोंका परिपाक होता है और वातकफज्वर शीघ्र नष्ट होता है॥ ६२॥

सन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

लघनाद्युपचार।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवन तथा।
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे॥ ६३॥

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत्पित्तमारुतौ ॥ ६४ ॥

सन्निपातज्वरमें पहले लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन (कुल्ले कराना), अवलेह और अञ्जन आदि प्रयोग करने चाहिये । एवं सन्निपातज्वरमें प्रथम आम और कफनाशक चिकित्सा करे पश्चात् कफके क्षीण हो जानेपर वातपित्तको शमन करनेवाली चिकित्सा करे ॥ ६३–६४ ॥

लंघन ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ।
लघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ६५ ॥
दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ।
नहि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनादिकम् ॥ ६६ ॥

सन्निपातज्वरमें-तीन दिन, पांच दिन, दश दिन अथवा जबतक आरोग्य लाभ न हो तबतक लंघन कराने चाहिये । जबतक दोष बलवान् रहते हैं तभीतक रोगी लंघनोंको सहन करसकता है और दोषोंका क्षय होनेपर कोई भी रोगी लंघनादिकको नहीं सहन कर सकता ॥ ६५–६६ ॥

स्वेद ।

न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति ।
तस्मान्मुहुर्मुहुः कार्यं स्वेदनं सन्निपातिनाम् ॥ ६७ ॥
सन्निपाते जलमयो नराणां विग्रहो भवेत् ।
विना वह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं क्षमः ॥ ६८ ॥
प्रयोगा बहवः सन्ति सविषा निर्विषा अपि ।
वह्न्यूष्माणं विना प्रायो न वीर्यं दर्शयन्ति ते ॥ ६९ ॥
प्रतिक्रिया विधावेवं यस्य संज्ञा न जायते ।
पादतले ललाटे वा दहेल्लौहशलाकया ॥ २७० ॥

सन्निपातज्वरमें कफकी प्रधानता होनेके कारण विना स्वेदक्रियाके वह शान्त नहीं होता, इसलिये सन्निपातवाले रोगीको बारम्बार स्वेद देना चाहिये. सन्निपातज्वरमें-रोगीका शरीर जलमें डूबा हुआसा प्रतीत होता है, इस कारण स्वेदक्रियाके विना उस जलको और कोई शोषण नहीं कर सकता । यद्यपि सन्निपातज्वरमें सविष और

निर्विष बहुतसी औषधियोंके प्रयोग देखे जाते हैं, किन्तु वे सब विना स्वेदक्रियाके प्रायः अपने प्रभावको नहीं प्रकट कर सकते। तथा स्वेद देनेपर भी जिस सन्निपात-रोगीको चैतन्य (होश) न हो तो उसके पाँवके तलुवे अथवा ललाटमें लोहेकी शलाकासे दाग देना चाहिये॥ ६७–२७०॥

नस्य।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च
बस्तमूत्रेण संपिष्य नस्यं तन्द्राविनाशनम्॥ ७१॥

सैंधानमक, सहिंजनेके बीज, सरसों और कूठ इनको समान भाग लेकर बकरीके मूत्रमें पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा दूर होती है॥ ७१॥

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम्॥ ७२॥

महुवेका सार, सैंधानमक, वच, काली मिरच और पीपल इनको सम भाग लेकर गरम जलके साथ बारीक पीसकर उसकी नस्य देनेसे रोगी तत्काल होशमें होजाता है॥ ७२॥

षड्ग्रन्थिसैन्धवकणाः समधूकसाराः
पिष्ट्वा समेन मरिचेन जलैः कदुष्णैः।
नस्यं निवारयति शीघ्रमचेतनत्वं
तन्द्राप्रलापसहितं शिरसो गुरुत्वम्॥ ७३॥

पीपलामूल, सैंधानमक, पीपल और महुवेका सार इनको समानभाग लेकर पीसकर बारिक चूर्ण बनालेवे, फिर समस्त चूर्णकी बराबर कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर कुछ गरम जलके साथ पीस करके उसका नस्य देनेसे बेहोशी, तन्द्रा, प्रलाप और शिरका भारीपन ये सब उपद्रव शीघ्र दूर होते हैं॥ ७३॥

लशुनं मरिचं पिष्टं नस्यं स्यात् श्लेष्मनाशनम्।
शितिकुक्कुटिकाण्डजजलपानान्नस्यादप्यञ्जनाच्च।
दुस्साधनसन्निपातः प्रबलोऽप्याश्वेत्र शममेति॥ ७४॥

लहसुन और कालीमिरचोंको समानभाग लेकर बारीक पीसकरके नस्य देनेसे कफका नाश होता है। काली मुर्गीके अण्डेके भीतरकी जरदी (द्रव पदार्थ) को

पान करनेसे अथवा उसका नस्य लेनेसे या उसको आँखोंमें आँजनेसे प्रबल और दुःसाध्य सन्निपात भी शीघ्र शमन होता है ॥ ७४ ॥

निष्ठीवन ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् ।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ ७५ ॥
तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात् ।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते ॥७६॥
पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राकासगलामयाः ।
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेदश्चोपशाम्यति ॥ ७७ ॥
सकृद् द्विस्त्रिश्चतुः कुर्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ७८ ॥

सैंधानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर कण्ठतक मुखमें भरकर वारंवार कुल्ले करे । इससे रोगीके हृदयमेंसे तथा मन्यानाड़ी, पार्श्व, शिर और गलमेंसे जमाहुआ व सूखा कफ निकल जाता है । शरीरमें हलकापन होताजाता है । एवं कफके कारण उत्पन्नहुई सन्धियोंकी पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, खाँसी, गलेके रोग, मुख और नेत्रोंका भारीपन, शरीरकी जड़ता और ग्लानि ये सब विकार शान्त होते हैं । दोषोंका बलाबल देखकर एक, दो, तीन या चार निष्ठीवन (कुल्ले) कराने चाहिये । सन्निपातरोगियोंके लिये यह उत्कृष्ट औषध है ॥ ७५–७८ ॥

अष्टाङ्गावलेह ।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ७९ ॥
एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
हिक्कां श्वासं च कासं च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ ८० ॥
ऊर्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्मणि ।
विरोध्युष्णे मधु त्यक्त्वा कार्यैषाऽऽर्द्रकजे रसैः ॥ ८१ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा और कालाजीरा इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चटावे ।

यह अवलेह दारुण सन्निपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और कण्ठके रोगोंको नष्ट करता है । ऊर्ध्वगत श्लेष्माको नष्ट करनेके लिये स्वेदादि उष्णक्रिया करनी होती है, उस समय उष्णताके विरोधी होनेके कारण शहदके बदले उक्त ओषधियोंके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि शहद और उष्णता दोनोंही परस्पर विशेष विरोधी हैं ॥ ७९–२८१ ॥

अञ्जन ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ८२ ॥

शिरसके बीज, पीपल, काली मिरच, सैंधानमक, लहसुन, मैनसिल और वच इनको गोमूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे रोगी तत्काल होशमें हो जाता है –८२॥

असुराह्वपतङ्गस्य विट्चूर्णं मधुसंयुतम् ।
अञ्जनाद्बोधयेन्मुग्धं तन्द्रितं सन्निपातिनम् ॥ ८३ ॥

असुराह्वपतंग (तेलियाकीड़ों) की बीटको पीसकर शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मूर्च्छा और तन्द्रायुक्त सन्निपात रोगीको जल्दी चैतन्य हो जाता है ॥ ८३ ॥

दशमूल ।

बिल्वश्योनाकगाम्भारीपाटलागणकारिकाः ।
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ८४ ॥
शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
वातपित्तापहं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ ८५ ॥
उभयं दशमूलं हि सन्निपातज्वरापहम् ।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥ ८६ ॥

बेल, शोनापाला (अरलू), कुम्भेर, पाढल और अरणी इन पाँचोंको बृहत् पञ्चमूल कहते हैं । यह अग्निप्रदीपक और वात–कफनाशक है । शालपर्णी पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेरी, कटेरी और गोखुरू इनको लघु पञ्चमूल कहते हैं । यह वातपित्तनाशक और वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है । इन दोनों पञ्चमूलोंको दशमूल कहते हैं, इस दशमूलके क्राथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे सन्निपातज्वर, खाँसी, श्वास, तन्द्रा, पार्श्वशूल, कण्ठ और हृदयकी पीड़ा ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ८३–८६ ॥

द्वादशाङ्ग ।

दशमूलीकषायस्तु सपौष्करकणान्वितः ।
सन्निपाते ज्वरे देयः श्वासकाससमन्विते ॥ ८७ ॥

श्वास और खाँसी युक्त सन्निपातज्वरमें दशमूल, पोहकरमूल और पीपलका क्वाथ अथवा दशमूलके क्वाथमें पोहकरमूल और पीपलका चूर्ण डालकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ८७ ॥

चतुर्दशाङ्ग ।

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ।
किराततिक्तादिगणःप्रयोज्यःशुद्धयर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ८८

पुराने ज्वरमें अथवा वात-कफाधिक्य ज्वरमें या सन्निपातज्वरमें दशमूल और किराततिक्तादिगण (चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ) की औषधियोंका क्वाथ प्रयोग करना चाहिये. विरेचनकी आवश्यकता होनेपर रोगीको उक्त क्वाथमें निसोथका चूर्ण डालकर पान करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अष्टादशाङ्ग ।

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् ।
भार्ङ्गी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ८९ ॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ २९० ॥

दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, परवल और कुटकी इनको अष्टादशाङ्ग कहते हैं । इसका क्वाथ पान करनेसे सन्निपातज्वर, खाँसी, हृदय और पसलीकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन ये सब रोग दूर होते हैं ॥ ८९–२९० ॥

भूनिम्बादि अष्टादशाङ्ग ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-
तिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः ।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह-
श्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ ९१ ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियाँ और गजपीपल इनका बनाया हुआ क्वाथ तंद्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह और श्वासादि समस्त उपद्रवोंसहित ज्वरको तत्काल नष्ट करता है ॥ ९१ ॥

मुस्तादिगण।

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम्।
त्रिफलाधन्वयासश्च नीली कम्पिल्लकस्त्रिवृत् ॥ ९२ ॥
किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी
मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ ९३ ॥
अष्टादशाङ्गमुदितमेतद्वा सन्निपातनुत्।
पित्तोत्तरे सन्निपाते हितं चोक्तं मनीषिभिः ॥
मन्यास्तम्भ उरोघाते उरःपार्श्वशिरोग्रहे ॥ ९४ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला, धमासा, नील, कबीला, निसोथ, चिरायता, पाढ, खिरैंटी, कुटकी, मुलहटी और पीपलामूल इनको मुस्तादिगण कहते हैं और अष्टादशाङ्ग भी कहते हैं। इसका क्वाथ सेवन करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है। एवं पित्ताधिक्य सन्निपातज्वर, मन्यानाडीका जकडजाना, उरोघात, हृदय और पसलीकी पीडा और शिरकी पीडामें यह क्वाथ विशेष उपयोगी है॥९२-९४॥

द्वात्रिंशाङ्ग।

भार्ङ्गीभूनिम्बनिम्बाघनकटुकवचाव्योषवासाविशाला-
रास्नानन्तापटोलीसुरतरुरजनीपाटलातिन्दुकैश्च।
ब्राह्मीदार्वीगुडूचीत्रिवृतमतिविषापुष्करत्रायमाणै-
र्व्याघ्रीसिंहीकलिङ्गैस्त्रिफलशठियुतैः कल्पितस्तुल्यभागैः ॥
क्वाथो द्वात्रिंशनामा त्रिभिरधिकदशान् सन्निपातान्निहन्ति
शूलं कासादिहिक्काश्वसनगदरुजाध्मानविध्वंसकारी॥९५॥

भारंगी, चिरायता, नीमकी छाल, नागरमोथा, कुटकी वच, सोंठ, मिरच, पीपल, अडूसा, इन्द्रायनकी जड, रायसन, अनन्तमूल, परवल, देवदारु, हल्दी, पाढल, तेन्दु, ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निसोथ, अतीस, पोहकरमूल, त्रायमाण, कटेरी, बडीकटेरी, इन्द्रजौ, हरड, बहेडा, आमला और कचूर इसको द्वात्रिंशाङ्ग क्वाथ कहते हैं। सब ओषधियोंको समानभाग लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर प्रयोग करे। यह क्वाथ तेरह प्रकारके सन्निपातज्वर, शूल, खाँसी, हिचकी, श्वास और आध्मान आदि संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है॥ ९५ ॥

बृहत्यादिगण ।

बृहत्यौ पुष्करं भार्ङ्गी शठी शृङ्गी दुरालभा ।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ ९६ ॥
बृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ।
कासादिषु च सर्वेषु देयः सोपद्रवेषु च ॥ ९७ ॥

बडीकटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, परवल और कुटकी यह बृहत्यादि गण है। इसका क्वाथ सन्निपातज्वरनाशक और खाँसी आदि सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूर करता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

शठ्यादिगण ।

शठी पुष्करमूलं च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा ।
गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ ९८ ॥
एष शठ्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तितन्द्राश्वासे च शस्यते ॥ ९९ ॥

कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकडासिंगी, धमासा, गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता और कुटकी यह शठ्यादि गण है। इसका क्वाथ सन्निपातज्वरनाशक, एवं खाँसी, हृदयरोग, पसलीकी पीडा, तन्द्रा और श्वासरोगमें सेवन करना अत्यन्त हितकर है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

बृहत्कट्फलादि ।

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्पटम् ।
शृङ्गीकलिङ्गधन्याकं शठीभृंगकणाह्वयम् ॥ २०० ॥
तिक्ताभयाम्बुकैरातं भार्ङ्गीरामठकं बला ।
दशमूलीकणामूलं निष्क्वाथ्य क्वाथमुत्तमम् ॥ १ ॥
हिङ्ग्वार्द्रकरसोपेतं सन्निपातविनाशनम् ।
गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं गलामयान् ॥ २ ॥
कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्याद्धनुगुलामयान् ॥
कफवातज्वरं कासं तथा हन्ति शिरोगदान् ।
शिरोगुरुत्वं बाधिर्यं निहन्ति कफवातिकम् ॥ ३ ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाढ, पोहकरमूल, कालाजीरा, पित्तपापडा, काकडासिंगी, इन्द्रजौ, धनियाँ, कचूर, भाँगरा, पीपल, कुटकी, हरड, सुगन्धवाला, चिरायता, भारङ्गी, हींग, खिरैंटी, दशमूल और पीपलामूल इनका उत्तम प्रकारसे क्वाथ बनाकर उसमें हींग और अदरखका रस डालकर पान करनेसे सन्निपातज्वर, गलगण्ड, गण्डमाला, स्वरभंग, गलेके रोग, कानकी जडमें उत्पन्नहुई सूजन, ठोडी व मुखके रोग, कफवातज्वर, खाँसी, शिरोरोग, शिरका भारीपन, कफ और बातसे उत्पन्नहुई बधिरता ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३००-३०३ ॥

वाताधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

बृहत्पञ्चमूलक्वाथ ।

पञ्चमूलीकषायं च दद्याद्वातोत्तरे ज्वरे ।
भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥ ४ ॥

वाताधिक्यसन्निपातज्वरमें दोषोंके बलाबलको विचारकर अत्यन्त उष्ण वा मन्दोष्ण (सुहाता २) बृहत्पञ्चमूलका क्वाथ पान करना चाहिये ॥ ४ ॥

कट्फलादि ।

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्पटैः ।
देवदार्वभयाशृङ्गीकणाभूनिम्बनागरैः ॥ ५ ॥
भार्ङ्गीकलिङ्गकटुकाशठीकट्तृणधान्यकैः ।
समांशैः साधितः क्वाथो हिंग्वार्द्रकरसैर्युतः ॥ ६ ॥
कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति मन्यागलाश्रयम् ।
कफवातज्वरं श्वासं कासं हिक्कां हनुग्रहम् ॥ ७ ॥
गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं कफात्मकम् ।
शिरोगुरुत्वं बाधिर्यं वृद्धिं च कफमेदसोः ॥ ८ ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाढ, पोहकरमूल, कालाजीरा, पित्तपापडा, देवदारु, हरड, काकडासिंगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारंगी, इन्द्रजौ, कुटकी, कचूर, गन्धेजघास और धनियाँ इन समानभागमिश्रित औषधियोंका क्वाथ बनाकर उसमें हींग और अदरखका रस मिलाकर सेवन करनेसे कानकी जडकी सूजन, मन्यास्तम्भ, गलेके रोग, कफवातज्वर, श्वास, खाँसी, हिचकी, हनुग्रह, गलगण्ड, गण्डमाला, कफजन्य स्वरभेद, शिरका भारीपन, बधिरता, कफ और मेदकी वृद्धि दूर होती है ॥ ५-८ ॥

पित्ताधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

परूषकादि ।

परूषकाणि त्रिफला देवदारु सकट्फलम् ।
चन्दनं पद्मकं चैव तथा कटुकरोहिणी ॥ ९ ॥
पृश्निपर्णीं शृतैस्त्वेभिरुषित शीतलं जलम् ।
पित्तोत्तरे नृणामेतत् सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ १० ॥

फालसे, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, कायफल, लालचन्दन, पद्माख, कुटकी और पृश्निपर्णी इनको समानभाग लेकर रात्रिमें शीतल जलमें भिजोदेवे, फिर प्रातःकाल क्वाथ बनाकर शीतल करके सेवन करावे, पित्ताधिक्य सन्निपातज्वरमें यह अत्युत्तम औषध है ॥ ९ ॥ १० ॥

चन्दनादिक्वाथ ।

चन्दनं पद्मकं चैव तथा कटुकरोहिणी ।
पृथक्पर्णीं समं सिद्धमुषितं शीतलं जलम् ।
पित्तोत्तरे नृणामेतत् सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ ११ ॥

लालचन्दन, पद्माख, कुटकी और पिठवन इन सबको समानभाग लेकर सायंकालके समय जलमें भिजोकर रख देवे. फिर प्रातःकाल क्वाथ बनाकर शीतल करके सेवन करे. यह भी पित्ताधिक्य सन्निपातज्वरमें उपयोगी है ॥ ११ ॥

किरातादि सप्तक ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ।
पाठोदीच्यं मृणालं च शृतं पित्ताधिके पिबेत् ॥ १२ ॥

पित्तप्रधान सन्निपातज्वरमें चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, सुगन्धवाला और खस इनका क्वाथ बनाकर पान करना चाहिये ॥ १२ ॥

श्लेष्मोल्बणसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

बृहत्यादिक्वाथ ।

बृहत्यौ पौष्करं भार्ङ्गी शठी शृङ्गी दुरालभा ।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ १३ ॥
बृहत्यादिगणः शस्तः सन्निपाते कफोत्तरे ।
श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेऽपि च ॥ १४ ॥

बडीकटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, परवल और कुटकी इनको बृहत्यादिगण कहते हैं। इसका क्वाथ श्वास कासादि सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित कफाधिक्य सन्निपातज्वरमें विशेष उपकारी है ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥

वातपित्ताधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

पञ्चमूलीक्वाथ।

वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम्।
तत्क्वाथो मधुना हन्ति वातपित्तोल्बणं ज्वरम् ॥ १५ ॥

लघुपञ्चमूलका क्वाथ-वातपित्तनाशक और वृष्य है। उसमें शहद मिलाकर पान करनेसे वातपित्ताधिक्य सन्निपातज्वर नष्ट होता है ॥ १५ ॥

वातकफाधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

चातुर्भद्रकक्वाथ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम्।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मोल्बणे ज्वरे ॥ १६ ॥

वातकफाधिक्य सन्निपातज्वरमें—चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनका क्वाथ उपयोगी है। इसको चातुर्भद्रक क्वाथ कहते हैं ॥ १६ ॥

पित्तकफोल्बणसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

पर्पटादिक्वाथ।

पर्पटं कट्फलं कुष्ठमुशीरं चन्दनं जलम्।
नागरं मुस्तकं शृङ्गी पिप्पल्येषां शृतं हितम्।
तृष्णादाहाग्निमान्द्येषु पित्तश्लेष्मोल्बणे ज्वरे ॥ १७ ॥

पित्तपापड़ा, कायफल, कूठ, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकडासिंगी और पीपल इनका क्वाथ तृष्णा दाह और मन्दाग्नियुक्त पित्त-कफाधिक्य सन्निपातज्वरमें हितकर होता है ॥ १७ ॥

त्रिदोषोल्बणसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

योगराजक्वाथ।

नागरं धान्यकं भार्ङ्गी पद्मकं रक्तचन्दनम्।
पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं बला ॥ १८ ॥

शर्करा कटुका मुस्ता गजाह्वा व्याधिघातकः।
किराततिक्तममृता दशमूली निदिग्धिका ॥ १९ ॥
योगराजो निहन्त्येष सन्निपातमशेषतः।
सन्निपातसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥२२०॥

सोंठ, धनियाँ, भारंगी, पद्माख, लालचन्दन, परवल, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, मुलहठी, खिरैंटी, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, चिरायता, गिलोय, दशमूल और कटेरी इनके क्वाथमें मिश्री डालकर पीनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है। यह योगराजनामक क्वाथ-सन्निपातसे उत्पन्नहुई मृत्युको भी दूर करता है ॥ १८-२२० ॥

शीताङ्ग सन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

भास्वन्मूलादि।

भास्वन्मूलं जीरकव्योषभार्ङ्गी
व्याघ्रीशुण्ठी पुष्करं गोजलेन।
सिद्धं सद्यः शीतगात्रार्त्तिमोह-
श्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहन्ति ॥ २१ ॥

आककी जड, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, भारंगी, कटेरी, सोंठ और पोहकरमूल इनका गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे शरीरकी शीतलता व पीडा, मोह, श्वास, कफका उद्रेक, खाँसी आदि विकार शीघ्र नाश होते हैं ॥ २१ ॥

प्रलापकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

तगरादि।

सतगरवरतिक्ता रेवताम्भोदतिक्ता
नलदतुरगगन्धा भारती हारहूरा।
मलयजदशमूली शङ्खपुष्पी सुपक्वाः
प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात् ॥ २२ ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, खस, असगन्ध, ब्राह्मी, दाख, लालचन्दन, दशमूल और शंखपुष्पी इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे प्रलापक सन्निपातज्वर तत्काल नष्ट होता है ॥ २२ ॥

रक्तष्ठीवनसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

रोहिषादि ।

रोहिषधन्वयवासकवासापर्पटगन्धलताकटुकाभिः ।
शर्करया सममेव कषायः क्षतजष्ठीवन उद्धदुपायः ॥ २३ ॥

रोहिषतृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु और कुटकी इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे क्षतोत्पन्न रुधिरकी वमन सहित सन्निपातज्वर नष्ट होता है । यह प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है ॥ २३ ॥

पद्मकादि ।

पद्मकचन्दनपर्पटमुस्तं जाती जीरकचन्दनवारि ।
क्लीतकनिम्बयुतं परिपक्वं वारि भवेदिह शोणितहारि ॥ २४ ॥

पद्माख, लालचन्दन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेलीके फूल, जीरा, लालचन्दन, सुगन्धवाला, मुलहठी और नीमकी छाल इनका बनाया हुआ क्वाथ सन्निपातज्वरमें होनेवाली रक्तकी वमनको दूर करता है ॥ २४ ॥

जिह्वकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

शुण्ठ्यादि ।

विश्वावर्मविभावरीयुगवरावत्सादनीवारिद-
व्याघ्रीनिम्बपटोलपुष्करजटामास्यादितेयद्रुमैः ।
एभिर्जिह्वकसंनिपातहरणः क्काथः कृतः सेव्यता-
मित्याज्ञा भिषजामनुग्रहपुरस्सारिण्यहो रोगिषु ॥ २५ ॥

सोंठ, पित्तपापडा, हल्दी, दारुहल्दी, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, नीमकी छाल, परवल, पोहकरमूल, बालछड और देवदारु इनका क्वाथ पान करनेसे जिह्वकसन्निपातज्वर दूर होता है ॥ २५ ॥

रुग्दाहसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

उशीरादि ।

उशीरचन्दनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ।
शृतं शीतं जलं दद्याद्दाहतृड्ज्वरशान्तये ॥ २६ ॥

खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, दाख, आमले और पित्तपापडा इन ओषधियोंका क्वाथ बनाकर शीतल करके दाह और तृषायुक्त ज्वरको शमन करनेके लिये प्रयोग करे ॥ २६ ॥

चित्तविभ्रमसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

मृद्वीकादि ।

मृद्वीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्यामृताः
पथ्यारेवतरामसेनकरजोराजीफलैः संयुताः ।
हन्युश्चित्तरुजोऽथ दर्दुरपलापाठापटोलीपयः-
पथ्यापर्पटराजवृक्षकटुकाशम्बूकपुष्प्यः शृताः ॥२७॥

दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले, गिलोय, हरड, अमलतास, चिरायता, पित्तपापडा, और परवल इन सबका बनाया हुआ क्वाथ अथवा ब्राह्मी, पाढ, पटोलपात, सुगन्धवाला, हरड, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी और शंखपुष्पी इन सब औषधियोंका बनायाहुआ, क्वाथ पान करनेसे चित्तभ्रमयुक्त सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ २७ ॥

कर्णकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

भाङ्गर्यादि ।

भार्ङ्गीजयापौष्करकण्टकारी-
कटुत्रिकोग्राघनकुण्डलीभिः ।
कुलीरशृंगीकटुकारसाभिः
कृतः कषायः किल कर्णकघ्नः ॥ २८ ॥

भारंगी, अरणी, पोहकरमूल, कटेरी, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, काकडसिंगी, कुटकी और रास्ना इन ओषधियोंका बनाया हुआ क्वाथ कर्णकसंनिपातज्वरको अवश्य नष्ट करता है ॥ २८ ॥

कण्ठकुब्जसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

त्र्यूषणादि क्वाथ ।

त्र्यूषणफलत्रिकमुस्तकट्वी-
कलिङ्गसिंहाननशर्वरीभिः ।
क्वाथः कृतः कृन्तति कण्ठकुब्जं
कण्ठीरवः कुब्जकमाशु तद्वत् ॥ २९ ॥

हरड, बहेडा. आमला, सोंठ. मिरच, पीपल, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हल्दी इन ओषधियोंका काढा बनाकर सेवन करनेसे कण्ठकुब्ज सन्निपातज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९ ॥

किरातादिक्वाथ ।

किरातकटुकाकणाकुटजकण्टकारीशठी-
कलिद्रुकिलिमाभयाकटुककट्फलाम्भोधरैः ।
विषामलकपुष्करानलकुलीरशृङ्गीवृषै-
र्महौषधसखैरयं जयति कण्ठकुब्जं गणः ॥ ३३० ॥

चिरायता, कुटकी, पीपल, कुडेकी छाल, कटेरी, कचूर, बहेडा, देवदारु, हरड, काली मिरच, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमले, पोहकरमूल, चीता, काकडासिंगी, अडूसा, और सोंठ इन सबको समानभाग लेकर, काढा बनाकरके सेवन करनेसे कण्ठकुब्ज सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ ३३०॥

तन्द्रिकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

क्षुद्रादि ।

क्षुद्रामृतापौष्करनागराणि
शृतानि पीतानि शिवायुतानि ।
शुण्ठीकणागस्तिरसोषणानि
नस्येन तन्द्राविलयोल्बणानि ॥ ३१ ॥

कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर उसमें हरडका चूर्ण डालकर पीनेसे अथवा सोंठ, पीपल और मिरच इनके चूर्णको अगस्तियाके पत्तोंके रसमें या क्वाथमें पीसकर नस्य लेनेसे तन्द्रिकसन्निपातज्वर दूर होता है ॥ ३१॥

भुग्ननेत्रसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

अश्वगंधादिनस्य ।

तुरंगगन्धालवणोग्रगन्धामधूकसारोषणमागधीभिः ।
बस्ताम्बुशुंठीलशुनान्विताभिर्नस्यं कृशां भुग्नदृशं करोति ॥

असगन्ध, सैंधानमक, वच, महुवेका सार, मिरच, पीपल, सोंठ, और लहसुन इन ओषधियोंके चूर्णको बकरीके मूत्रमें मिलाकर नस्य देनेसे भुग्ननेत्र सन्निपातज्वर नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

सन्धिकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

बचादि ।

वचाकवचकच्छुरासहचरामृताभंगुरा-
सुराह्वघननागराऽतरुणदारुरास्नापुराः ।

वृषातरुणभीरुभिः सह भवन्ति सन्धिग्रहो-
रुजोरुपरिसंक्रमभ्रमणपक्षघाता रुजाः ॥ ३३ ॥

बच, पित्तपापड़ा, धमासा, पियाबाँसा, गिलोय, अतीस, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, विधारा, दारुहल्दी, रास्ना, गूगल, अडूसा, अण्ड़की जड़ और शतावर इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर पान करनेसे सन्धिस्थानोंकी पीड़ा, जंघाओंका स्तम्भित होना, क्लान्ति (शिथिलिता), भ्रम, पक्षाघात ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥

मुस्तादि

मुस्तैरण्डः प्राणदा बाणदारुच्छिन्ना रास्ना भीरुकर्चूरतिक्ता ।
वासा विश्वापञ्चमूलाश्वगन्धा हन्यान्मन्यास्तम्भसंधिग्रहार्त्तीः ॥

नागरमोथा, अण्डकी जड़, हरड, नीली कटसरैया, देवदारु, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ, लघुपञ्चमूल और असगन्ध इन ओषधियोंका क्वाथ मन्यास्तम्भ (नाड़ीका जकड़ जाना) और सन्धियोंकी पीड़ा सहित सन्निपात ज्वरको दूर करता है ॥ ३४ ॥

अभिन्यासज्वरकी चिकित्सा ।

निद्रोपेतमभिन्यासक्षीणं विद्याद्धतौजसम् ।
सन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्तं न बृंहयेत् ॥ ३५ ॥
तृष्णादाहाभिभूतेषु न दद्याच्छीतलं जलम् ।
वातपित्तोल्बणे चैव घृतं योज्यं पुरातनम् ॥ ३६ ॥
अभ्यंगात् शमयत्याशु सन्निपातं सुदारुणम् ।
स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः ॥ ३७ ॥

सन्निपातज्वरमें अधिक निद्राका आना, बलका क्षीण होना, ओजका नाश होना, रोगीके शरीरमें कम्प और प्रलाप करना आदि लक्षणोंके होनेपर अभिन्यास-ज्वर जानना चाहिये। इस ज्वरमें बृंहणक्रिया नहीं करनी चाहिये। और रोगीके अत्यन्त तृषा वा दाहके होनेपर शीतल जल नहीं देना चाहिये। अभिन्यासज्वरमें वात-पित्तकी अधिकता होनेपर पुराने घृतकी शरीरपर मालिश करनी चाहिये। यदि इस ज्वरमें पसीना अधिक आता हो तो भुनी हुई कुलथीका चूर्ण मलना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा
ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः
क्रमेण साध्यः खलु कृच्छ्रसाध्य-
स्ततस्त्वसाध्यः कथितो भिषग्भिः ॥ ३९ ॥

रक्तावसेचनैः पूर्वं सर्पिः पानैश्च तं जयेत् ।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ ३४० ॥

कुलत्थकट्फलैः शुण्ठी कारवी च समांशकैः ।
सुखोष्णैर्लेपनं दद्यात् कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानके मूलमें भयंकर सूजन उत्पन्न होनेपर हो (कनबर निकलनेपर) तो उससे कदाचित् कोई रोगी आरोग्य होता है । ज्वरके आदिमें, ज्वरके मध्यमें और ज्वरके अन्तमें इस तरह तीन प्रकारका कर्णशोथ होता है । इसको क्रमसे साध्य, कष्टसाध्य और असाध्य जानना चाहिये, ऐसा आयुर्वेदज्ञ महर्षियोंने कहा है । कर्णमूलशोथमें प्रथम जोंक आदिके द्वारा रुधिरस्राव कराना चाहिये । फिर रोगीको पंचतिक्त आदि घृतपान कराना चाहिये । अथवा कफ-पित्तनाशक ओषधियोंके द्वारा वमन और कवल धारण कराके इन्हीं ओषधियोंके कल्कका शोथपर लेप करना चाहिये । या कुलथी, कायफल, सोंठ और काला-जीरा इनको समानभाग लेकर जलके साथ पीसलेवे, फिर गरम करके कनपटीपर वारम्वार सुहाता २ लेप करे ॥ ३८-४१ ॥

गैरिकं पांशुजः शुण्ठी वचा कट्फलकांजिकैः ।
कर्णशोथहरो लेपः सन्निपाते ज्वरे नृणाम् ॥ ४२ ॥

सुखोष्णदशमूलेन प्रलेपोऽतिमहाफलः ।
बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थं तथैव च ॥ ४३ ॥

सनागरं देवदारुचव्यचित्रकपेषितम् ।
प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गलश्वयथुनाशनम् ॥ ४४ ॥

गेरू, पांशुलवण (रेह), सोंठ, वच और कायफल इन ओषधियोंको समान भाग लेकर उसका चूर्ण बनाकर काँजीमें पीसकर गरम करके लेप करे ।

यह लेप सन्निपातज्वरमें मनुष्योंके कानकी मूलमें उत्पन्नहुई सूजनको दूर करता है। दशमूलकी औषधियोंके कल्कका सुहाता २ लेप करनेसे भी उत्तम फल होता है। बिजौरे नींबूकी जड, अरणी, सोंठ, देवदारु, चव्य और, चीतेकी जड इन सबको समभाग लेकर जलमें पीसकर गरम करके लेप करे। यह प्रलेप गलेकी सूजनको दूर करनेके लिये उपयोगी है ॥ ४२-४४ ॥

कारव्यादि।

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृताः।
दशमूलीशठीशृङ्गीवासाभार्ङ्गीपुनर्नवाः ॥ ४५ ॥
तुल्यामूत्रेण निष्क्वाथ्य पीताः स्रोतोविशोधनाः।
अभिन्यासं ज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ ४६ ॥

काला जीरा, पुहकरमूल, अण्डकी जड, त्रायमाण, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, भारंगी और पुनर्नवा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पकाकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला है और घोर अभिन्यासज्वरको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ४५-४६ ॥

मातुलुंगादि।

मातुलुङ्गाश्मभिद्बिल्वव्याघ्रीपाठोरुबूकजः।
क्वाथो लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासानाहशूलनुत् ॥ ४७ ॥

बिजौरे नींबूकी जड, पाषाणभेद, बेलगिरी, कटेरी, पाढ और अण्डकी जड इन ओषधियोंका गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानमक डालकर पान करनेसे अभिन्यासज्वर, अनाह और शूलरोग नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

आगन्तुकज्वरकी चिकित्सा।

अभिघातज्वरे युंज्यात् क्रियामुष्णविवर्जिताम्।
कषायं मधुरं स्निग्धं यथादोषमथापि वा ॥ ४८ ॥

अभिघात (चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें उष्णक्रियाको छोडकर शीतलक्रिया करनी चाहिये। एवं वातादि दोषोंके अनुसार कषैले, मधुर और स्निग्ध पदार्थ भोजनमें देने चाहिये ॥ ४८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत्।
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ४९ ॥

अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं) से और अभिशाप (देव, ब्राह्मण, सिद्ध, गुरुजन आदिके शाप) से उत्पन्नहुए ज्वर हवन, यज्ञ आदि क्रियाओंके

करनेसे तथा अनेक प्रकारके भयंकर उत्पात ग्रहबाधासे उत्पन्न हुए ज्वर दान, शान्ति-पाठ, स्वस्तिवाचन और अतिथिपूजन आदि सत्कर्मोंके द्वारा दूर होते हैं ॥ ४९ ॥

ओषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबाधनैः ।
जयेत्कषायैर्मतिमान् सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ३५० ॥

वैद्य ओषधिकी गन्धसे और विषसे आगन्तुक उत्पन्नहुए ज्वरोंको विष और पित्तको शमन करनेवाली ओषधियोंके क्वाथ एवं सर्वगन्ध ओषधियोंके क्वाथके द्वारा शमन करे ॥ ५० ॥

सर्वगन्ध।

चातुर्जातककर्पूरं कंक्कोलागुरुकुंकुमम् ।
लवंगसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ५१ ॥

चातुर्जात (दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर), कपूर, कंकोल, अगर, केशर और लौंग इन सबको सर्वगन्ध कहते हैं ॥ ५१ ॥

क्रोधजे पित्तजित् काम्या अर्थाः सद्वाक्यमेव च ।
आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ५२ ॥
हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ।
कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः ॥ ५३ ॥
याति ताभ्यामुभाभ्यां च भयशोकसमुद्भवः ॥ ५४ ॥

क्रोधजनित ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये। तथा काम्य(इच्छित पदार्थ) और अर्थ प्रदान एवं सद्वचनोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। काम, शोक और भयजनित ज्वर आश्वासन देने, इष्ट वस्तुके प्राप्त होने, वातनाशक उपचारोंके करने और हर्षजनक क्रियाओंके करनेसे शमन होते हैं। कामसे क्रोधज्वर, क्रोधसे कामज्वर और काम तथा क्रोध इन दोनोंके द्वारा भय व शोकजनितज्वर दूर होते हैं ॥५२-५४॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः ।
जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःशान्तैश्च मानसम् ॥५५ ॥

भूताभिषंग अर्थात् भूत, प्रेत, यक्ष आदिकी बाधासे उत्पन्नहुए ज्वरको भूतविद्यामें कहीहुई बन्धन, आवेशन, ताडन आदि क्रियाओंके द्वारा दूर करें और मानसिक (मनसे उत्पन्नहुए) ज्वरको मनको शान्त करनेवाले उपायोंके द्वारा शमन करे ॥५५॥

विषमज्वरकी चिकित्सा ।

विषमाश्च ज्वराः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः ।
अथोल्बणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम् ॥ ५६ ॥

सब प्रकारके विषमज्वर सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये जिस २ विषम ज्वरमें जिस जिस दोषकी प्रबलता हो, उसी दोषको शमन करनेका उपाय करना चाहिये ॥ ५६ ॥

वातप्रधानं सर्पिर्भिर्वस्तिभिः सानुवासनैः ।
विरेचनं च पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च ॥ ५७ ॥
विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ।
वमनं पाचनं रूक्षमन्नपानं च लङ्घनम् ॥
कषायोष्णं च विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे ॥ ५८ ॥

घृतपान और अनुवासनवस्तिके द्वारा वातप्रधान विषमज्वरको शमन करे, पित्त-प्रधान विषमज्वरमें प्रथम विरेचक (दस्तावर) ओषधियोंके द्वारा सिद्ध कियेहुए दुग्ध अथवा घृतका पान कराकर विरेचन करावे, फिर तिक्त और शीतल ओषधियोंके उपचारद्वारा पित्तजनित विषमज्वरकी चिकित्सा करे । कफाधिक्य विषमज्वरमें वमनकारक, पाचक और स्वच्छ अन्नपान एवं उष्ण ओषधियोंका क्वाथ देना और लंघन कराना उपयोगी है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

महौषधादि ।

महौषधग्रन्थिकतालपर्णीमार्कण्डिकारग्वधबालपथ्याः ।
सक्षारमेषां विषमज्वरे च हितं शृतं पाचनरेचनं च ॥ ५९ ॥

सोंठ, पीपलामूल, मुसली, भुंई खखसा, अमलतास, सुगन्धवाला और हरड इन ओषधियोंका क्वाथ बनाकर उसमें जवाखार डालकर पान करावे । यह क्वाथ पाचक रेचक और विषमज्वरमें हितकारी है ॥ ५९ ॥

पटोलादि ।

पटोलयष्टीमधुतिक्तरोहिणीघनाभयाभिर्विषमज्वरघ्नः ।
कृतः कषायस्त्रिफलामृतावृषैः पृथक्पृथग्वा विषमज्वरापहः ॥

परवल, मुलहठी, कुटकी, नागरमोथा और हरड इन ओषधियोंका क्वाथ अथवा हरड, बहेडा, आमला, गिलोय और अडूसा इन सबका क्वाथ बनाकर अथवा

उक्त सम्पूर्ण औषधियोंको मिलाकर बनाया हुआ क्वाथ विषमज्वरको दूर करता है ॥ ३६० ॥

मधुकादि।

मधुकं चन्दनं मुस्तं धात्री धान्यमुशीरकम्।
छिन्नोद्भवं पटोलं च क्काथः समधुशर्करः ॥ ६१ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सन्तताद्यं सुदारुणम्।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ६२ ॥

मुलहठी, लालचन्दन, नागरमोथा, आमले, धनियाँ, खस, गिलोय और परवल इनका क्वाथ शहद और खाँड मिलाकर पीनेसे सन्तत आदि आठ प्रकारके दारुण विषम ज्वरोंको तथा वात, पित्त, कफ इन भिन्नभिन्न तीनों दोषोंसे अथवा सान्निपातसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मुस्तादि।

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथः।
पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥ ६३ ॥

नागरमोथा, आमले, गिलोय, सोंठ और कटेरी इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद डालकर पान करनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

महाबलादि।

महाबलामूलमहौषधाभ्यां क्काथो निहन्याद्विषमज्वरं च।
शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद् द्वित्रदिनप्रयुक्तः ॥ ६४ ॥

सहदेईकी जड़ और सोंठ दोनोंको समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर पान करनेसे दो तीन दिनमें शीत, कम्प और दाहसहित विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

स्वल्पभाङ्ग्र्यादि।

भार्ङ्ग्यब्दपर्पटकधान्ययवासविश्व-
भूनिम्बकुष्ठकणसिंह्यमृताकषायः।
जीर्णज्वरं सततसन्ततकं निहन्या-
दन्येद्युभवं त्रितयमाशु चतुर्थकं च ॥ ६५ ॥

भारंगी, नागरमोथा, पित्तपापडा, धनियाँ, धमासा, सोंठ, चिरायता, कूठ, पीपल, बडीकटेरी और गिलोय इन ओषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करनेसे जीर्णज्वर, सततज्वर, सन्ततज्वर, अन्येद्युष्कज्वर, तृतीयक (तिजारी) और चतुर्थक (चौथिया) ज्वर दूर होता है ॥ ६५ ॥

मध्यभार्ङ्ग्यादि ।

भार्ङ्ग्यब्दपर्पटकपुष्करशृंगबेर-
पथ्याकणाह्वदशमूलकृतः कषायः ।
सद्यो निहन्ति विषमज्वरसन्निपात-
जीर्णज्वरश्वयथुशीतकवह्निसादान् ॥ ६६ ॥

भारंगी, नागरमोथा, पित्तपापडा, पुहकरमूल, सोंठ, हरड, पीपल और दशमूल इन ओषधियोंका बनायाहुआ क्वाथ पान करनेसे विषमज्वर, सान्निपातज्वर, जीर्णज्वर, सूजन, शीत और मन्दाग्नि इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ६६ ॥

बृहद्भार्ङ्ग्यादि ।

भार्ङ्गी पथ्या कटू कुष्ठं पर्पटं मुस्तकं कणा ।
अमृता दशमूलं च नागरं क्वाथयेद्भिषक् ॥ ६७ ॥
हन्ति धातुगतं सर्वं बहिःस्थं शीतसंयुतम् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं श्वयथुं च विनाशयेत ॥
एष भार्ङ्ग्यादिको नाम सर्वज्वरहरः परः ॥ ६८ ॥

भारंगी, हरड, कुटकी, कूठ, पित्तपापडा, नागरमोथा, पीपल, गिलोय, दशमूल, और सोंठ इन सबको समानभागलेकर क्वाथ बनाकर पान करनेसे सब प्रकारके धातुगतज्वर, बाहरीत्वचामें रहनेवाले और शीतयुक्त विषमज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म और सूजनयुक्त ज्वर तथा सान्निपातादिज्वर नष्ट होते हैं । यह भार्ङ्ग्यादिक्वाथ सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

दास्यादि ।

दासीदारुकलिङ्गलोहितलताश्यामाकपाठाशठी-
शुण्ठ्योशीरकिरातकुञ्जरकणात्रायन्तिकापद्मकैः ।
वज्रीधान्यकनागराब्दसरलैः शिग्र्वम्बुसिंहीशिवा-
व्याघ्रीपर्पटदर्भमूलकटुकानन्तामृतापुष्करैः ॥ ६९ ॥
धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं द्व्याहिकं
कामैः शोकसमुद्भवं च विविधं यच्छर्दियुक्तं नृणाम् ।
पीतो हन्ति क्षयोद्भवं सततकं चातुर्थिकं भूतजं
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितो जीर्णज्वरे दुस्तरे ॥ ७० ॥

नीला पियाबाँसा, देवदारु, इन्द्रजौ, मंजीठ, श्यामाकघास, पाढ, कचूर, सोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाणा, पद्माख, थूहरकी जड, धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, धूपसरल, सहिंजनेकी छाल, सुगन्धवाला, बड़ी कटेरी, हरड, कटेरी, पित्तपापडा, कुशाकी जड़, अनन्तमूल, गिलोय और पुहकरमूल इन समस्त ओषधियोंका काढा बनाकर सेवन करनेसे मनुष्योंके धातुगत ज्वर, विषमज्वर, त्रिदोषजनितज्वर तथा ऐकाहिक, द्व्याहिक अथवा काम, क्रोध, शोक, आदिसे उत्पन्न, होनेवाले विविधप्रकारके ज्वर, वमनयुक्त ज्वर, क्षयजनित ज्वर, सततज्वर, चातुर्थिकज्वर और भूतबाधाजन्य ज्वर ये सब प्रकारके ज्वर नाशको प्राप्त होते हैं। इस प्रयोग को पूर्वकालमें मुनियोंने वर्णन किया है। यह दारुण जीर्णज्वरमें भी विशेष उपकार करता है॥ ६९॥ ३७०॥

दार्व्यादि।

दार्वीकलिङ्गमञ्जिष्ठाव्याघ्रीदारुगुडूचिकाः।
भूधात्री पर्पटं श्यामा तगरं करिपिप्पली॥ ७१॥
क्षुद्रा निम्बं घनं व्याधि नागरं पद्मकं शठी।
रामाटरूषः सरलं त्रायमाणास्थिसन्धिकम्॥ ७२॥
भूनिम्बारुष्करं पाठा कुशाकटुकरोहिणी।
मागधी धान्यकं चेति क्वाथं मधुयुतं पिबेत्॥७३॥

दारुहल्दी, इन्द्रजौ, मंजीठ, बड़ी कटेरी, देवदारु, गिलोय, भुईआमला, पित्तपापडा, अनन्तमूल, तगर, गजपीपल, कटेरी, नीमकी छाल, नागरमोथा, कूठ, सोंठ, पद्माख, कचूर, रामवाँसा, धूपसरल, त्रायमाणा, हडसंहारी, चिरायता, भिलावे, पाढ, कुशाकी जड़, कुटकी, पीपल और धनियाँ इन सब ओषधियोंका यथाविधि क्वाथ बनाकर शहद डालकर पान करे॥ ७१-७३॥

वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्द्वजं विषमं घोरं सतताद्यं सुदारुणम्॥ ७४॥
अन्तःस्थं च बहिस्थं च धातुस्थं च विशेषतः।
सर्वज्वरं निहन्त्याशु तथा वै दैर्घ्यरात्रिकम्॥ ७५॥
ग्रहणीमतिसारं च कासं श्वासं सकामलम्।
शोषं हन्यात्तथा शोथं मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥ ७६॥

शूलमष्टविधं हन्ति प्रमेहानपि विंशतिम् ।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च हलीमकम् ॥ ७७ ॥
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ७८ ॥

यह क्वाथ—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, द्विदोषज, सतत, अत्यन्त विषम, आभ्यन्तर, बाह्य और धातुगतज्वर, विशेषकर दैर्घ्यरात्रिक (बहुतदिनोंतक रहनेवाला) ज्वर इन सब प्रकारके ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है । तथा संग्रहणी, अतिसार, खाँसी, श्वास, कामला, शोष, शोथ, मन्दाग्नि, अरुचि, आठ प्रकारका शूल, बीसप्रकारका प्रमेह, प्लीहा, अग्रमांस, यकृद्रोग, हलीमक, वातादि भिन्नभिन्न दोषोंसे होनेवाले विविध प्रकारके ज्वर और सब प्रकारके विषमज्वरोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ७४-७८ ॥

ऐकाहिकज्वरमें पटोलादिक्वाथ ।

पटोलारिष्टमृद्वीकाः श्यामाकं त्रिफला वृषम् ।
क्वाथ ऐकाहिकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥ ७९ ॥

परवल, नीमकी छाल, दाख, अनन्तमूल, त्रिफला और अडूसा इनका क्वाथ खांड और शहद मिलाकर पान करनेसे ऐकाहिकज्वर दूर होता है ॥ ७९ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूचीमुस्तधात्रीणां कषायं वा समाक्षिकम् ।
प्रातःकालनिषेवेण विषमज्वरनाशनम् ॥ ३८० ॥

गिलोय, नागरमोथा और आमले इनका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे विषमज्वर दूर होता है ॥ ३८० ॥

सन्ततज्वरमें कलिंगादिक्वाथ ।

कलिङ्गकं पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ।
पिबेत् सन्ततके नित्यं किञ्चित्क्षौद्रेण संयुतम् ॥ ८१ ॥

सन्ततज्वरमें—इन्द्रजौ, पटोलपात और कुटकी इनके क्वाथको थोड़ासा शहद मिलाकर पान करनेसे विशेष लाभ होता है ॥ ८१ ॥

सततज्वरमें पटोलादिक्वाथ ।

पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
क्वाथं कृत्वा पिबेत्प्रातर्ज्वरी सततपीड़ितः ॥ ८२ ॥

सततज्वरसे पीड़ित रोगीको प्रतिदिन प्रातःकाल परवल, अनन्तमूल, नागरमोथा, पाढ और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर पीना चाहिये ॥८२॥

अन्येद्युष्कज्वरमें निम्बादिक्वाथ ।

निम्बं पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ ।
एषां क्वाथोऽन्येद्युष्कज्वरहारी विनिश्चितः ॥ ८३ ॥

नीमके पत्ते, परवल, हरड, बहेडा, आमला, दाख, नागरमोथा और इन्द्रजौ इन ओषधियोंका क्वाथ अन्येद्युष्क (दूसरे दिन आनेवाले) ज्वरको निस्सन्देह दूर करता है ॥ ८३ ॥

तृतीयकज्वरमें किरातादिक्वाथ ।

किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम् ।
क्वाथमेषां पिबेत्प्रातस्तृतीयज्वरनाशनम् ॥ ८४ ॥

चिरायता, गिलोय, लालचन्दन और सोंठ इनका काढा बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करनेसे घोर तृतीयक (तिजारी) ज्वर नष्ट होता है ॥ ८४ ॥

महौषधादिक्वाथ ।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः ।
क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥ ८५ ॥

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, लालचन्दन, खस और धनियाँ इन ओषधियोंके द्वारा बनायाहुआ क्वाथ खाँड़ और शहद डालकर पीनेसे तृतीयक ज्वरको दूर करता है ॥ ८५ ॥

उशीरादिक्वाथ ।

उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम् ।
अम्भसा क्वथितं पेयं शर्करामधुयोजितम् ॥
ज्वरे तृतीयके देयं तृष्णादाहसमन्विते ॥ ८६ ॥

तृतीयकज्वरमें तृषा और दाहके होनेपर खस, लालचन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियाँ और सोंठ इन ओषधियोंका क्वाथ बनाकर खाँड़ और शहद मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ८६ ॥

चातुर्थिकज्वरमें वासादिक्वाथ ।

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः ।
सितामधुयुतः क्वाथश्चातुर्थिकविनाशनः ॥ ८७ ॥

अडूसेकी छाल, आमले, शालपर्णी, देवदारु, हरड और सोंठ इनके द्वारा सिद्ध कियाहुआ क्वाथ मिश्री और शहद मिलाकर सेवन करनेसे चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर नष्ट होता है ॥ ८७ ॥

मुस्तादिक्वाथ ।

मुस्तापाठाशिवाक्वाथश्चातुर्थिकज्वरापहः ।
दुग्धेन त्रिफला पीता हन्ति चातुर्थिकं ज्वरम् ॥ ८८ ॥

नागरमोथा, पाढ और हरड इन तीनोंका क्वाथ चातुर्थिकज्वरको दूर करता है । अथवा दूधके साथ त्रिफलेका क्वाथ पान करनेसे चातुर्थिक ज्वर दूर होता है ॥८८॥

पथ्यादिक्वाथ ।

पथ्यास्थिरानागरदेवदारुधात्रीवृषैरुत्क्वथितः कषायः ।
सितोपलामाक्षिकसम्प्रयुक्तश्चातुर्थिकं हन्त्यचिरेणपीतः॥८९॥

हरड, शालपर्णी, सोंठ, देवदारु, आमले और अडूसा इन सबका क्वाथ बनाकर मिश्री और शहद डालकर पानकरनेसे चातुर्थिक ज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ ८९ ॥

अम्भोधरादिक्वाथ ।

अम्भोधरं छिन्नरुहा क्वाथश्चामलकी तथा ।
चातुर्थिकं ज्वरं घोरं नाशयेदेष निश्चयः ॥ ३९० ॥

नागरमोथा; गिलो । आर आमले इनका क्वाथ भयकर चातुर्थिक ज्वरको निश्चय दूर करता है ॥ ३९० ॥

अजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी ।
अग्निसादं जयेत्सम्यग् वातरोगांश्च नाशयेत् ॥ ९१ ॥

जीरेका चूर्ण छः माशे, पुराना गुड छः माशे दोनोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर मन्दाग्नि और समस्त वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ९१ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्तः ।
विमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण वातामयश्चापि सुघोररूपैः ९२

यदि विषमज्वरका रोगी प्रतिदिन लहसुनके कल्कको तिलके तेलमें भूनकर सेवन करे तो वह अल्पकालमें ही विषमज्वर और घोर वातरोगसे मुक्त हो जाता है ॥९२॥

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ॥ ९३ ॥

अथवा विषमज्वरवाला मनुष्य हरड, बहेडा, आमला इनके समानभाग चूर्णको पुराने गुडमें मिलाकर सेवन करे तो विषमज्वर दूर होता है ॥ ९३ ॥

मूलिकाधारणादिकप्रयोग ।

काकजङ्घा बला श्यामा ब्रह्मदण्डी कृताञ्जलिः ।
पृश्निपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृङ्गरजोऽष्टमम् ॥ ९४ ॥
एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः ।
रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमैकाहिकं जयेत् ॥ ९५ ॥

काकजंघा (मसी), खिरैंटी, अनन्तमूल, ब्रह्मदण्डी, लज्जावन्ती, पिठवन, चिरचिटा और भाँगरा इन आठोंमेंसे किसी एककी जड़को पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर लालडोरेमें बाँधकर हाथमें या गलेमें बाँधनेसे ऐकाहिक (रोजआनेवाला) ज्वर दूर होता है ॥ ९४-९५ ॥

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः ।
बद्ध्वा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ ९६ ॥

रविवारके दिन चिरचिटेकी जड़को उखाड़कर लालरंगके सात डोरोंसे बाँधकर कमरमें बाँधनेसे तृतीयकज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ ९६ ॥

उलूकदक्षिणं पक्षं सितसूत्रेण वेष्टयेत् ।
बध्नीयाद्वामकर्णे तु हरत्यैकाहिकं ज्वरम् ॥ ९७ ॥

उल्लूके दहने पंखको सफेद डोरेसे बाँधकर बायें कानमें बाँधनेसे ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ९७ ॥

कर्कटस्य बिलोद्भूतमृदा तत्तिलकं कृतम् ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ९८ ॥

कैंकड़के बिलकी मिट्टीको लेकर उसका तिलक लगानेसे ऐकाहिकज्वर निस्सन्देह दूर होता है ॥ ९८ ॥

कर्णस्य मलजालेन वर्तिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
ज्वालयेत्तिलतैलेन कज्जलं ग्राहयेच्छनैः ॥
अञ्जयेन्नेत्रयुगलं त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥ ९९ ॥

कानके मैलकी बत्ती बनाकर उसे तिलके तेलमें भिजोकर जलावे । फिर उसका कज्जल बनाकर नेत्रोंमें आँजे, इससे तृतीयकज्वर शान्त होता है ॥ ९९ ॥

मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम् ॥ ४०० ॥

सफेद अरणीकी जड़को सिरमें बाँधनेसे सब प्रकारके पुराने ज्वर दूर होते हैं ॥ ४०० ॥

शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः ।
नस्यं सर्पिःसमायोगात् ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥
चातुर्थिकहरं नस्यं मुनिद्रुमदलाम्बुना ॥ ४०१ ॥

सिरसके फूलोंके स्वरसमें हल्दी और दारुहल्दीका चूर्ण मिलाकर और उसमें थोड़ा घी डालकर नस्य देनेसे चातुर्थिकज्वर दूर होता है । अथवा अगस्तियाके पत्तोंके स्वरसका नस्य देनेसे चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ ४०१ ॥

शैलूषमण्डनरजः पुरुषानुरूपं
शुक्लाङ्गवत्ससुरभीपयसा निपीतम् ।
आदित्यवारभवपालिदिने नराणां
चातुर्थिकं हरति कष्टमपि क्षणेन ॥ २ ॥

रविवारके दिन ज्वरकी बारी होनेपर रोगीकी अवस्थानुसार शुद्ध हरतालके चूर्णको सफेद बछडेवाली गायके दूधके साथ सेवन करावे । इससे दुस्साध्य भी चातुर्थिकज्वर क्षणभरमें शान्त होजाता है ॥ २ ॥

श्वेतार्ककरबीजस्य चाश्विन्यां मूलमुद्धरेत् ।
पीतं तण्डुलतोयेन पृथक् चातुर्थनाशनम् ॥ ३ ॥

अश्विनीनक्षत्रमें सफेद आक अथवा सफेद कनेरकी जड़को उखाड़कर चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे चातुर्थिक (चौथिया) दूर होता है । ये दोनों औषधि विषैली हैं. इसलिये एक रत्ती या आधी रत्तीसे अधिक एकमात्रामें नहीं देनी चाहिये. विशेषकर सफेद कनेरका व्यवहार तो बड़ी सावधानीसे करना चाहिये ॥ ३ ॥

अम्लोटजसहस्रेण दलेन सुकृतां पिबेत्।
पेयां घृतप्लुतां व्याधिचातुर्थिकहरीं त्र्यहम् ॥ ४ ॥

अम्लोट (अमरूत) के एक हजार पत्तोंके साथ दुगुने चावलोंकी पेया बनाकर उसमें घृत डालकर तीन दिनतक पान करनेसे चातुर्थिकज्वर शमन होता है ॥ ४ ॥

काकमाचीभवं मूलं कर्णे बद्धं निशाज्वरम्।
निहन्ति नात्र सन्देहो यथा सूर्योदयस्तमः ॥ ५ ॥

मकोयकी जड़को कानमें बाँधनेसे रात्रिमें आनेवाला ज्वर इस प्रकार निस्सन्देह दूर होजाता है, जैसे सूर्यका उदय होनेसे अन्धकार ॥ ५ ॥

मूलकं केशराजस्य कृत्वा तत्सप्तखण्डकम्।
आर्द्रकैः सह भुञ्जीत सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ६ ॥

भाँगरेकी जड़के सात टुकडे करके उनमेंसे एक एक टुकड़ा अदरखके साथ खानेसे सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

कृष्णाम्बरदृढाबद्धगुग्गुलूलूकपुच्छजः।
धूपश्चातुर्थिकं हन्यात् तमः सूर्य इवोदितः ॥ ७ ॥

भाँगरेके रसमें कपड़ेको काला रंगकर उसमें गूगल और उल्लूकी पूँछको दृढतासे बाँधकर उसकी धूप देनेसे चातुर्थिक ज्वर सूर्योदयसे अन्धकारके समान शीघ्र दूर होजाता है ॥ ७ ॥

" गङ्गाया उत्तरे तीरे अपुत्रस्तापसो मृतः।
तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्वैकाहिको ज्वरः ॥ "
एतन्मंत्रेण चाश्वत्थपत्रहस्तेन तर्पयेत् ॥ ८ ॥

"गंगाया उत्तरे तीरे–गंगाके उत्तर तटपर जो पुत्रहीन तपस्वी मरगया है, उसके लिये तिलाञ्जलि देवे" इस मंत्रसे पीपलका पत्ता हाथमें लेकर तर्पण करे इससे ऐकाहिक ज्वर दूर होता है ॥ ८ ॥

" ॐ बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभे।
जातोऽसौ सुमहावीर्यो मुञ्चत्वैकाहिको ज्वरः ॥ "
लिखित्वाऽश्वत्थपत्रे तु बाहौ मंत्रं प्रधापयेत् ॥ ९ ॥

" ॐ बाणयुद्धे " इत्यादि मंत्रको पीपलके पत्तेपर लिखकर पाठ करनेके पश्चात बाहुमें बाँधनेसे ऐकाहिकज्वर दूर होता है ॥ ९ ॥

" समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः । "
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ॥ ४१० ॥

" ओंम् समुद्रस्य " इत्यादि मन्त्रको पीपलके पत्तेपर लिखकर जो मनुष्य देखता है तो उसका ऐकाहिक ज्वर नष्ट होजाता है ॥ ४१० ॥

कर्म साधारणं जह्यात् तृतीयकचतुर्थकौ ।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥ ११ ॥

साधारण कर्म करने अर्थात् जप, होम, स्तुतिपाठ आदि मांगलिक कार्य करनेसे और क्वाथ आदि औषधियोंके सेवनसे तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर दूर होता है । क्योंकि, विषमज्वर प्रायः आगन्तुक (भूतादिकी बाधा) से हुआ करता है इसलिये दैविक क्रियाद्वारा विषमज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

" ॐ नमो भगवते छिन्धि छिन्धि अमुकस्य
ज्वरस्य शिरः प्रज्वलितपरशुपाणये पुरुषाय फट् ॥ "
भूर्जे विलिख्य बाहौ तु धारणात्क्षणमात्रतः ।
एतन्मन्त्रस्य महात्म्यात् ज्वरः सर्वो विनश्यति ॥ १२ ॥

इस मन्त्रको भोजपत्रपर लिखकर हाथमें बाँधनेसे सब प्रकारका ज्वर क्षणभरमें ही दूर होता है ॥ १२ ॥

" ॐ विद्युदानन ह्रीं फट् स्वाहा " ॥ १३ ॥
एतन्मन्त्रं चूर्णलिप्ते ताम्बूलीपत्रे लिखित्वा तत्पत्रं संचर्व्य भक्षयतो दिनत्रयाभ्यन्तरे ज्वरशान्तिर्भवति ॥ १४ ॥

उक्त मन्त्रको चूनेसे लिप्त ताम्बूल पत्रपर लिखकर उस पानको खूब चबाकर खानेसे तीनदिनमें ज्वर शान्त होजाता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ।
पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ १५ ॥
विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरं सर्वं व्यपोहति ॥ १६ ॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्ष्यं हिमाचलम् ।
गङ्गां मरुद्गणांश्चेष्टान्न पूजयेज्जयति ज्वरम् ॥ १७ ॥

भक्त्या मातुः पितुश्चैव गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्येण तपसा पुराणश्रवणेन च ॥ १८ ॥
जपहोमप्रदानेन सत्येन नियमेन च।
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च ॥ १९ ॥

नन्दी, भृङ्गी आदि अनुचरवर्ग, चन्द्रमा और षोडशमातृकाओंसहित शिव और पार्वतीका भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य विषमज्वरसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। तथा चराचरके स्वामी सहस्रशीर्ष विष्णुभगवान्‌का षोडषोपचार पूजन करने और विष्णुसहस्रनामका पाठ करनेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होजाते हैं। एवं ब्रह्मा, अश्विनी-कुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमालय, गङ्गा, मरुद्गण और अपने इष्टदेवका अर्चन करनेसे और माता, पिता, गुरु आदि पूज्य पुरुषोंका भक्तिपूर्वक सत्कार तथा सेवा शुश्रूषादि पूजन करनेसे ज्वर दूर होता है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यधारण करने, तप करने, पुराणादि धर्मशास्त्रोंका श्रवण करने, जप, होम, दान, सदनुष्ठान, और साधु महात्माओंका दर्शन करनेसे भी ज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ १८-१९ ॥

अष्टाङ्गधूप।

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी।
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ ४२० ॥

गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूठ, हरड, सफेद सरसों, जौ और घी इन सबकी धूप बनाकर देनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ४२० ॥

अपराजिताधूप।

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः।
सर्वज्वरहरो धूपः कार्योऽयमपराजितः ॥ २१ ॥

गूगल, गन्धेजघास, वच, राल, नीमके पत्ते, आक, अगर, देवदारु इन सबको एकत्र करके धूप देवे तो सम्पूर्ण ज्वर दूर होजाते हैं। यही अपराजिता धूप है ॥ २१ ॥

माहेश्वरधूप।

हिङ्गुलं देवकाष्ठं च श्रीवेष्टं घृतमेव च।
गव्यास्थीनि तथाऽऽध्यामं निर्माल्यं कटुरोहिणी ॥ २२ ॥
सर्षपं निम्बपत्राणि पिच्छाहिकंचुकं तथा।
मार्जारविष्ठा गोशृङ्गं मदनस्य फलानि च ॥ २३ ॥

द्वे बृहत्यौ वचा चैव कार्पासास्थि तुषास्तथा ।
छागगोमायुविट् चैव हस्तिदन्तस्तथैव च ॥ २४ ॥
एतत्सर्वं समाहृत्य छागमूत्रेण भावयेत् ।
उलूखले तु संकुटय स्थापयेन्मृन्मये शुभे ॥ २५ ॥

सिंगरफ, देवदारु धूप, सरल, (लोबान) गायका घी, गौकी अस्थि, सुगन्धतृण, शिवका निर्माल्य, कुटकी, सफेद सरसों, नीपक पत्ते, मोरका पंख, साँपकी कैंचली, बिलावकी विष्ठा, गौका सींग, मैनफल, कटेरी, बडी कटेरी, वच, कपासके बीज (बिनौले), धानोंकी भूसी, बकरेकी और गीदडकी विष्ठा और हाथीदाँत इन सबको एकत्र करके बकरेके मूत्रमें भावना देवे । फिर ओखलीमें कूटकर मिट्टीके उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ २२-२५ ॥

" ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये सम्पन्नाय
नन्दिकेश्वराय " इति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ॥
घ्राणमात्रेण धूपोऽयं दीयते यत्र वेश्मनि ।
न तत्र सर्पास्तिष्ठन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ॥ २६ ॥
एष माहेश्वरो धूपः सर्वज्वरविनाशनः ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥
एवमादीन् ज्वरान्सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४२७ ॥

पश्चात् " ॐ नमो भगवते रुद्राय " इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके इसकी धूप देने मात्रसेही उस घरमेंके समस्त साँप, पिशाच, राक्षस, भूतप्रेत आदि भाग जाते हैं । यह माहेश्वर धूप ऐकाहिक, द्व्याहिक, तिजारी, चौथिया आदि सब प्रकारके ज्वरोंको निस्सन्देह दूर करती है ॥ ४२६-४२७ ॥

इति सामान्यज्वरचिकित्सा ।

जीर्णज्वरकी चिकित्सा ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः ।
जीर्णज्वरकफध्वंसी पंचमूलीकृतोऽथवा ॥ १ ॥

गिलोयके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर अथवा बृहत्पंचमूल (बेलकी छाल, सोनापाठेकी छाल, कुम्भेरकी छाल, पाढलकी छाल और अरणीकी छाल) के काढेमें पीपलका चूर्ण डालकर पानकरनेसे पुराना ज्वर और कफ दूर होता है ॥ १ ॥

पिप्पलीमधुसम्मिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत्।
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ २ ॥

गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पान करनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा (तिल्ली), खाँसी, अरुचि आदि सब रोग दूर होते हैं ॥ २ ॥

अस्थिकर्कटपञ्चाङ्गं शुंठ्या चिरज्वरप्रणुत् ॥ ३ ॥
" अस्थिकर्कटस्य मूलवल्कलपत्रपुष्पफलं संक्षुद्य पोटलीं वद्ध्वा दग्ध्वा रसं गृहीत्वा शुण्ठ्या पेयः । "

अस्थिकर्कट वृक्षके पंचांग (जड, छाल, पत्ते, फल, पुष्प) इस पंचाङ्गको एकत्र कूटकर उसको कपडेकी पोटलीमें बाँधकर पुटपाककी विधिसे अग्निमें पकावे। उसमेंसे जो रस निकले उसको लेकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे बहुत कालका पुराना जीर्णज्वर दूर होता है ॥ ३ ॥

गुडूचीपर्पटो भेकपर्णी च हिलमोचिका।
पटोलं पुटपाकेन रस एषां मधुप्लुतः ॥ ४ ॥
वातपित्तज्वरं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम्।
मधुना सर्वज्वरनुच्छेफालीदलजो रसः ॥ ५ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, मण्डूकपर्णी, हुलहुल और परवल इन सबको एकत्र पुटपाककी विधिसे पकाकर और उसका रस निकालकर शहद डालकर पान करे। यह प्रयोग बहुत पुराने और दारुण वातपित्तजन्य ज्वरको नष्ट करता है। इसी प्रकार हारसिंगारके पत्तोंके रसमें शहद डालकर पान करनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ४-५ ॥

निदिग्धिकादि क्वाथ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम्।
जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु॥ ६ ॥
हन्त्यूर्द्धनामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते।
एतद्रात्रिज्वरे सायमन्यथा प्रातरिष्यते ॥
पित्तानुबन्धे सन्त्यज्य पिप्पलीं प्रक्षिपेन्मधु ॥ ७ ॥

कटेरी, सोंठ और गिलोय इन तीनों ओषधियोंका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास,

मन्दाग्नि, अर्दित और पीनस रोगमें विशेष उपकार होता है । इस क्वाथको प्रायः ऊर्ध्वगत रोगोंमें सायंकाल सेवन करना चाहिये । और उसी प्रकार रात्रिज्वरमें इस क्वाथको सायङ्कालमें सेवन करना चाहिये तथा अन्यान्य रोगोंमें प्रातःसमय सेवन करना चाहिये और पित्तप्रधानरोगोंमें इसमें पीपलके चूर्णको न डालकर केवल शहद डालकर पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

रात्रिज्वरमें गुडूच्यादिक्वाथ ।

गुडूची मुस्तभूनिम्बं धात्री क्षुद्रा च नागरम् ।
बिल्वादिपञ्चमूलं च कटुकेन्द्रयवासकम् ॥ ८ ॥
निशाभवं ज्वरं वातकफपित्तसमुद्भवम् ।
चिरोत्थं द्वन्द्वजं हन्ति सकणं मधुसंयुतम् ॥ ९ ॥

गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, आमले, कटेरी, सोंठ, बेलकी छाल, शोनापाठे की छाल, कुम्भेरकी छाल, पाढलकी छाल, अरणीकी छाल, कुटकी इन्द्रजौ और जवासा इन ओषधियोंके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पान करनेसे वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज और चिरकालसे उत्पन्न हुआ रात्रिज्वर निवृत्त होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षाऽमृता शठी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् ।
नागरं कटुका पाठा भूनिम्बः सदुरालभः ॥ १० ॥
उशीरं धान्यकं पद्मं बालकं कण्टकारिका ।
पुष्करं पिचुमर्दश्च दशाष्टाङ्गमिदं स्मृतम् ॥
जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयथुनाशनम् ॥ ११ ॥

दाख, गिलोय, कचूर, काकडासिंगी, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढ, चिरायता, धमासा, खस, धनियाँ, पद्माख, सुगन्धबाला, कटेरी, पुहकरमूल और नीमकी छाल, इन ओषधियोंको अष्टादशाङ्ग कहते हैं । इनका बनायाहुआ क्वाथ जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास, खाँसी, सूजन आदि रोगोंको दूर करता है ॥ १० ॥ ११ ॥

प्लीहज्वरमें निदिग्धिकादि ।

निदिग्धिकागणः पथ्या तथा रोहितको मतः ।
क्वाथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारं कणायुतम् ॥

एतस्य पानमात्रेण प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ १२ ॥
(निदिग्धिकागणः--स्वल्पपञ्चमूलम् ।)

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखुरु, हरड और रोहिडा वृक्षकी छाल इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर उसमें जवाखार और पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे प्लीहज्वर (तिल्ली) दूर होता है (निदिग्धिकादि गणको लघु पंचमूल कहते हैं) ॥ १२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां चिकित्साप्रकरणम् ।

अथ चूर्णप्रकरणम् ।

सुदर्शनचूर्ण ।

कालीयकं तु रजनी देवदारु वचा घनम् ।
अभया धन्वयासश्च शृङ्गीक्षुद्रामहौषधम् ॥ १ ॥
त्रायन्ती पर्पटं निम्बं ग्रन्थिकं बालकं शठी ।
पौष्करं मागधी मूर्वा कुटजं मधुयष्टिका ॥ २ ॥
शिग्रूत्पलं सेन्द्रयवं वरी दार्वी कुचन्दनम् ।
पद्मकं सरलोशीरं त्वचं सौराष्ट्रिका स्थिरा ॥ ३ ॥
यमान्यतिविषा बिल्वं मरिचं गन्धपत्रकम् ।
धात्री गुडूची कटुकं सचित्रकपटोलकम् ॥ ४ ॥
कलसी चैव सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।
सर्वद्रव्यस्य चार्धं तु कैरातं संप्रकल्पयेत् ।
एतत्सुदर्शनं नाम-

काली अगर, हल्दी, देवदारु, वच, नागरमोथा, हरड, धमासा, काकडासिंगी, कटेरी, सोंठ, त्रायमाण, पित्तपापडा, नीमकी छाल, पीपलामूल, सुगन्धवाला, कचूर, पुहकरमूल, पीपल, मूर्वा, कुडेकी छाल, मुलहठी, सहिंजनेके बीज, कुमुद, इन्द्रजौ, शतावर, दारुहल्दी, लालचन्दन, पद्माख, धूपसरल, खस, दालचीनी, गोपीचंदन, शालपर्णी, अजवायन, अतीस, बेलकी छाल, मिरच, गन्धेजघास, आमले, गिलोय, कुटकी, चीता, पटोलपात, और, पृश्निपर्णी इन सब ओषधियोंको समान भाग लेवे और सबसे आधाभाग चिरायता लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके कपडेमें छानलेवे इसको सुदर्शनचूर्ण कहते हैं ॥ १–९ ॥

ज्वरान् हन्ति न संशयः ।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ६ ॥
प्राकृतं वैकृतं चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ।
अन्तर्गतं बहिःस्थं च निरामं साममेव च ॥ ७ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
नानादेशोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा ॥ ८ ॥
विरुद्धभेषजैर्भूतं ज्वरमाशु व्यपोहति ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्य न संशयः ॥ ९ ॥
यथा सुदर्शनं चक्रं दानवानां निषूदनम् ।
तथा ज्वराणां सर्वेषामिदमेव निगद्यते ॥ १० ॥

इस चूर्णको नित्य ३–४ माशे परिमाण सेवन करनेसे ये सब प्रकारके ज्वरोंको निस्सन्देह दूर करता है । वात, कफ आदि पृथक्क् पृथक्क् दोषोंसे अथवा सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्नहुए सर्व प्रकारके विषमज्वर तथा प्राकृत, वैकृत, सौम्य अथवा तीक्ष्णज्वर, आभ्यन्तरज्वर, बाह्यज्वर, निराम और आमयुक्तज्वर इन आठों प्रकारके ज्वरोंको यह चूर्ण नष्ट करदेता है, चाहे यह ज्वर साध्य हों अथवा असाध्य हों तथा देशदेशान्तरोंके दोषसे होनेवाले अथवा जलके दोषसे होनेवाले और प्रकृति व देश काल विरुद्ध ओषधियोंके सेवनसे होनेवाले ज्वरोंको शीघ्र शमन करता है । प्लीहा, यकृत, गुल्मादि रोगोंको भी निस्सन्देह दूर करदेता है । जैसे–सुदर्शनचक्र दैत्यदानवोंका सहार करनेके लिये प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यह सुदर्शनचूर्ण भी सम्पूर्ण ज्वरोंका विघातक कहाजाता है ॥ ६–१० ॥

ज्वरभैरवचूर्ण ।

नागरं त्रायमाणा च पिचुमर्दो दुरालभा ।
पथ्या मुस्तं वचा दारु व्याघ्री शृङ्गी शतावरी ॥ ११ ॥
पर्पटी पिप्पलीमूलं विशाला पुष्करं शठी ।
मूर्वा कृष्णा हरिद्रे द्वे लोध्रचन्दनमुष्ककम् ॥ १२ ॥
कुटजस्य फलं वल्कं यष्टीमधुकचित्रकम् ।
शोभाञ्जनं बला चातिविषा च कटुरोहिणी ॥ १३ ॥

मुशली पद्मकाष्ठं च यमानी शालपर्णिका ।
मरिचं चामृता बिल्वं बालं पङ्कस्य पर्पटी ॥ १४ ॥
तेजपत्रं त्वचं धात्री पृश्निपर्णी पटोलकम् ।
गन्धकं पारदं लौहमभ्रकं च मनःशिला ॥ १५ ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ।
तदर्द्धं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं भूनिम्बसम्भवम् ॥ १६ ॥

सोंठ, त्रायमाणा, नीमकी छाल, धमासा, हरड, नागरमोथा, वच, देवदारु, कटेरी, काकडासिंगी, शतावर, पित्तपापडा, पीपलामूल, इन्द्रायनकी जड, पुहकरमूल, कचूर, मूर्वा, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, रक्तचन्दन, मोखावृक्ष, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, मुलहठी, चीता, सहिंजनेके बीज, खिरैंटी, अतीस, कुटकी, मुसली, पद्माख, अजवायन, शालपर्णी, कालीमिर्च, गिलोय, बेलकी छाल, सुगन्धवाला, पङ्कपर्पटी, तेजपात, दारचीनी, आमले, पृश्निपर्णी, पटोलपात, गन्धक और पारेकी कज्जली, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और मैनसिलकी भस्म इन सब ओषधियों को समानभाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे और उसमें समस्त चूर्णसे आधाभाग चिरायतेका चूर्ण मिलाकर सबको बारीक पीसकर कपडछान करके रखलेवे॥ ११-१६॥

मात्रामस्य प्रयुञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
चूर्णं भैरवसंज्ञं तु ज्वरान् हन्ति न संशयः ॥ १७ ॥
पृथग् दोषांश्च विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ।
द्वन्द्वजान् सन्निपातोत्थान् मानसानपि नाशयेत् ॥ १८ ॥
प्राकृतं वैकृतं चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ।
अन्तर्गतं बहिःस्थं च निरामं साममेव च ॥१९॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ।
नानादेशोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा ॥ २० ॥
विरुद्धभेषजैर्जातं ज्वरमाशु व्यपोहति ।
अग्निमान्द्यं यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमरोचकम् ॥ २१ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च रक्तपित्त त्वगामयम् ।
श्वयथुं च शिरःशूलं वातामयरुजापहम् ॥
ज्वरभैरवसंज्ञं तु भैरवेण कृतं शुभम् ॥ २२ ॥

इस चूर्णको दोषोंका बलाबल देखकर उचित मात्रासे प्रयोग करना चाहिये यह भैरवनामक चूर्ण सर्व प्रकारके ज्वरों अर्थात् वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, विषमज्वर, जीर्णज्वर और मानसिक ज्वरको नष्ट करता है तथा प्राकृत, वैकृत, सौम्य, तीक्ष्ण अन्तर्गत, बहिर्गत निराम, साम इन आठों प्रकारके ज्वरोंको तथा साध्यासाध्य ज्वरोंको भी यह अवश्य दूर करता है तथा अनेक देशोंके जलवायुके दोषसे उत्पन्न हुए और विरुद्ध औषधियोंको सेवन करनेसे उत्पन्नहुए ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है एवं मन्दाग्नि, यकृत् विकार, प्लीहावृद्धि, पाण्डुरोग, अरुचि, उदरसम्बन्धीरोग, अन्त्रवृद्धि, रक्तपित्त, त्वचाके रोग, सूजन, शिरकी पीडा और सर्व प्रकारके वातरोगोंको भी नष्ट करता है । इस उत्तम, चूर्णको श्रीभैरवाचार्यने निर्माण किया है ॥ १७-२२ ॥

ज्वरनागमयूरचूर्ण ।

लौहाभ्रटङ्कणं ताम्रं तालकं वङ्गमेव च ।
शुद्धसूतं गन्धकं च शिग्रुबीजं फलत्रिकम् ॥ २३ ॥
चन्दनातिविषा पाठा वचा च रजनीद्वयम् ।
उशीरं चित्रकं देवकाष्ठं च सपटोलकम् ॥ २४ ॥
जीवकर्षभकाजाज्यस्तालीशं वंशलोचना ।
कण्टकार्याः फलं मूलं शठी पत्रं कटुत्रयम् ॥ २५ ॥
गुडूचीसत्त्वधन्याकं कटुकाक्षेत्रपर्पटी ।
मुस्तकं बालकं बिल्वं यष्टीमधु समं समम् ॥ २६ ॥
भागाच्चतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम् ।
तत्समं तालपुष्पं च चूर्णं दण्डोत्पलाभवम् ॥ २७ ॥
कैरातं तत्समं देयं तत्समं चपलाभवम् ।
एतच्चूर्णं समाख्यातं ज्वरनागमयूरकम् ॥ २८ ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, ताम्रभस्म, हरतालभस्म, वंगभस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धककी कज्जली, सहिंजनेके बीज, त्रिफला, लालचन्दन, अतीस, पाढ, वच, दारुहल्दी, हल्दी, खस, चीतेकी जड, देवदारु, पटोलपात, जीवक, ऋषभक, कालाजीरा, तालीसपत्र, वंशलोचन, कटेरीके फल, कटेरीकी जड, कचूर, तेजपात, त्रिकुटा, गिलोयका सत्त्व, धनियाँ, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, बेलकी छाल और मुलहठी इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण

करके कपडेमें छानलेवे। फिर इस चूर्णमें कालेजीरेका चूर्ण, ताडकी जटाओंका क्षार, श्वेतदण्डोत्पल, चिरायता और भाँग इन प्रत्येकका चूर्ण उपर्युक्तचूर्णसे चौगुना मिलाकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको ज्वरनागमयूरचूर्ण कहते हैं॥ २३-२८॥

प्रतिमाषमितं खाद्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्।
सन्ततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः॥ २९॥
क्षयोद्भवं च धातुस्थं कामशोकोद्भवं ज्वरम्।
भूतावेशज्वरं चैवमभिचारसमुद्भवम्॥ ३०॥
दाहशीतज्वरं घोरं चातुर्थ्यादिविपर्ययम्।
जीर्णं च विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा॥ ३१॥
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं हन्ति न संशयः।
भ्रमं तृष्णां च कासं च शूलानाहौ क्षयं तथा॥ ३२॥
यकृतं गुल्मशूलं च आमवातं निहन्ति च।
त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वानां शूलनाशनम्॥
अनुपानं शीतजलं न देयमुष्णवारिणा॥ ३३॥

इस चूर्णको प्रतिदिन एक-एक माशा परिमाण अथवा दोषोंके बलाबलके अनुसार मात्रामें युक्तिपूर्वक न्यूनाधिकता करके सेवन करे। इसपर शीतलजलका अनुपान करे, उष्ण जलका इसपर कदापि अनुपान न करे। यह चूर्ण साध्य अथवा असाध्य सन्तत आदि ज्वर, क्षयोत्पन्नज्वर, धातुगत अथवा काम शोकादिसे उत्पन्नहुए ज्वर, भूतबाधा या अभिचार आदिजन्यज्वर, घोर दाह और शीतयुक्त-ज्वर, चातुर्थिकज्वर, जीर्णज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर तथा प्लीहा रोग, उदर-रोग, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, भ्रम, तृषा, खाँसी, शूल, आनाह, क्षय, यकृत्-रोग, गुल्मशूल, आमवात एवं त्रिकस्थान, पृष्ठवंश, कमर, जानु और पार्श्वभाग (पसली) इन स्थानोंकी पीडा इत्यादि समस्त रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है॥ २९-३३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां चूर्णप्रकरणम्।

अथ रसप्रकरणम् ।

नवज्वरआदिमें रसोंका प्रयोग ।

न दोषाणां न रोगाणां न पुंसां च परीक्षणम् ।
न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्सिते ॥ १ ॥

रसद्वारा चिकित्सा करनेपर वातादिदोष, रोग, रोगी मनुष्य, देश और काल इनका कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो न जानाति रसं यथा ।
सर्वं तस्योपहासाय धर्महीनो यथा बुधः ॥ २ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मको भलीभाँति जानता है, किन्तु रसचिकित्सासे अनभिज्ञ है, वह धर्महीन पण्डितके समान हास्यास्पद होता है ॥ २ ॥

अनुपाने रसा योज्या देशकालानुसारिभिः ।
दोषघ्नैर्मधुना वापि केवलेन जलेन वा ॥ ३ ॥

रसादि ओषधियोंको देश, काल, पात्र और दोषोंके बलाबलके अनुसार दोषनाशक द्रव्योंके अनुपानके साथ अथवा शहद या केवल शीतल जलके अनुपानसे सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना ।
जलसेकावगाहाद्यैर्बलिनस्ते तु नान्यथा ॥ ४

जो रस मत्स्य आदिके पित्तकी भावना देकर सिद्ध किये हैं, उनके सेवन करनेके पश्चात् जलसेचन (जलका सींचना) और अवगाहन (नदी आदिमें स्नान करना) आदि क्रियाओंके करनेसे उनके गुण बढजाते हैं और इन क्रियाओंके न करनेसे वे रस प्रायः गुणहीन हो जाते हैं ॥ ४ ॥

रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः
तरुणदधि सिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ ५ ॥

रसोंके सेवनसे दाह उत्पन्न होनेपर शरीरपर शीतजलका अभिषेक, श्रीखण्ड, चन्दन, कपूर आदिका प्रलेप, शीतल मन्द वायुका सेवन, मिश्री मिलाकर ताजे दधिका

सेवन, नारियलके कच्चेफलका जलपान, मधुर और शीतल ऐसे पदार्थोंका सेवन और इसी प्रकार अन्यान्य शीतोपचार करने उपयोगी हैं ॥ ५ ॥

हिंगुलेश्वर।

तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे पिप्पलीं हिङ्गुलं विषम्।
द्विगुञ्जा मधुना देया वातज्वरनिवृत्तये ॥ ६ ॥

पीपल, सिंगरफ और शुद्ध मीठा तेलिया इन तीनोंको समान भाग लेकर खरलमें डालकर जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली शहदके साथ देनेसे वातजज्वर निवृत्त होता है ॥ ६ ॥

बृहद्धिंगुलेश्वर।

हिङ्गुलं च विषं व्योषं टङ्कणं नागराह्वयम्।
जयपालसमायुक्तं सद्योज्वरविनाशनम् ॥ ७ ॥

शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, सोंठ और जमालगोटा सबको समानभाग लेकर जलके योगसे खरलकरके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको शीतलजलके अनुपानसे सेवन करनेपर नवीनज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शीतभंजीरस।

रसहिङ्गुलगन्धं च जैपालं सम्मितं त्रिभिः।
दन्तीक्काथेन सम्मर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ ८ ॥
आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम्।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रतः ॥ ९ ॥
शर्करादधिभक्तं च पथ्यं देयं प्रयत्नतः।
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ॥
शीतभञ्जी रसो नाम्ना सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ १० ॥

पारा, गन्धक और सिंगरफ ये प्रत्येक एक तोला और शुद्ध जमालगोटा तीन तोले लेकर सबको दन्तीके क्काथके साथ खूब खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक एक गोली अदरखके स्वरसके या मधुके साथ देनेसे सब प्रकारका नवीन ज्वर दूर होता है। यह रस अत्यन्त भयंकर नवीनज्वरको एक प्रहरमें ही दूर करदेता है। इस रसको सेवन करनेके पश्चात् दही और मिश्री मिलाकर भातका पथ्य देना चाहिये तथा इसपर शीतलजल, ईखका रस तथा मूँगका यूष पान

करना अत्यन्त हितकर है । यह शीतभंजीनामक रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको समूल नष्ट करनेवाला है ॥ ८-१० ॥

तरुणज्वरारि ।

जैपालगन्धं विषपारदं च तुल्यं कुमारीस्वरसेन मर्द्यम् ।
अस्य द्विगुञ्जा हि सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तरुणज्वरारिः ॥
दातव्य एषोऽहनि पञ्चमे वा षष्ठेऽथवा सप्तम एव वापि ।
जाते विरेके विगतज्वरः स्यात् पटोलमुद्गाम्बुनिषेवणेन ॥ १२ ॥

जमालगोटा, गन्धक, शुद्ध मीठातेलिया और पारा सबको समानभाग लेकर घीग्वारके रसमें खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली मिश्रीके शर्बतके साथ सेवन करनी चाहिये । इस रसको ज्वर आनेके पाँचवें, छठें अथवा सातवें दिन देना चाहिये । इसको सेवन करनेसे दस्त होकर ज्वर दूर हो जाता है । इसपर परवल और मूँगके यूषका पथ्य देना चाहिये ॥ ११-१२ ॥

स्वच्छन्दभैरव ।

ताम्रभस्म विषं हेम्नः शतधा भावितं रसैः ।
गुञ्जार्द्धं सन्निपातादिनवज्वरहरं परम् ॥ १३ ॥
आर्द्राम्बुशर्करासिन्धुयुतः स्वच्छन्दभैरवः ।
इक्षुद्राक्षासितोर्वारु दधि पथ्यं रुजौ ददेत् ॥ १४ ॥

ताम्रभस्म और शुद्ध वत्सनाभ दोनोंको समान भाग लेकर धतूरेके रसमें सौवार भावना देकर आधी आधी रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस स्वच्छन्दभैरव रसको अदरखके रस चीनी और सैंधेनमकके साथ सेवन करनेसे नवीनज्वर और सन्निपातादिजन्यज्वर दूर होते हैं । इसपर रोगीको ईखका रस, दाख, मिश्री, ककडी और दही आदिका पथ्य देवे ॥ १३-१४ ॥

द्वितीयस्वच्छन्दभैरवरस ।

पिप्पलीं जातिकोषं च पारदं गन्धकं विषम् ।
वारिणा मर्दयेत्खल्ले रक्तिकार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥
स्वच्छन्दभैरवो नाम भैरवेण विनिर्मितः ।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १६ ॥

पीपल, जायफल, पारा, गन्धक और शुद्ध वत्सनाभ विष इन ओषधियोंको जलके साथ खूब खरल करके आधी आधी रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रयोग करे । इस

स्वच्छन्दभैरवरसको भैरवाचार्यने निर्माण किया है। यह रस अत्यन्त भयंकर नवीन ज्वरको निस्सन्देह नष्ट करता है॥ १५-१६॥

नवज्वरेभांकुश।

सगन्धटङ्कं रसतालकं च विमर्द्य सम्भावय मीनपित्तैः।
दिनद्वयं वल्लमितं प्रदद्याद् वृन्ताकतक्रौदनमेत्र पथ्यम्॥
नवज्वरेभाङ्कुशनामधेयः क्षणेन घर्मोद्गममातनोति॥ १७॥

सुहागा, गन्धक, पारा और हरताल इन चारोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके रोहूमछलीके पित्तेमें दो दिनतक भावना देवे. इस रसको एक एक अथवा दो दो रत्ती परिमाणमें दे और इसपर बैंगन, मट्ठा और भातका पथ्य देवे। इसके सेवनकरनेपर क्षणभरमें ही पसीना आकर ज्वर दूर हो जाता है। यह रस नवज्वररूपी हाथीके लिये अंकुशके समान है, इसलिये इसको नवज्वरेभांकुश कहते हैं॥ १७॥

नवज्वरेभसिंह।

शुद्धसूतं तथा गन्धं लौहं ताम्रं च सीसकम्।
मरिचं पिप्पली विश्वं समभागानि कारयेत्॥ १८॥
अर्द्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद्वासरद्वयम्।
शृङ्गवेराम्बुपानेन दद्याद् गुञ्जाद्वयं भिषक्॥ १९॥
नवज्वरे महाघोरे धातुस्थे ग्रहणीग
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वज्वरकुलान्तकृत्॥ २०॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसेकी भस्म, मिरच, पीपल, और सोंठ ये प्रत्येक एक एक भाग और शुद्ध विष १।२ भाग लेकर सबको जलके योगसे दो दिनतक खरल करे। इस रसको घोर नवीनज्वर, धातुगतज्वर और संग्रहणी आदि रोगोंमें दो दो रत्तीकी मात्रासे अदरखके रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिये। यह रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको नाश करनेवाला है॥ १८-२०॥

नवज्वरहरवटी।

रसगन्धौ विषं शुण्ठी पिप्पलीमरिचानि च।
पथ्या विभीतकं धात्री दन्तीबीजं च शोधितम्॥ २१॥
चूर्णमेषां समांशानां द्रोणपुष्पीरसैः पुटेत्।
वटीं माषनिभां कुर्याद् भक्षयेत्तरुणज्वरे॥ २२॥

पारा, गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, बहेडा, आमला और शुद्ध दन्तीके बीज (जमालगोटा) इन सब ओषधियोंके समान भाग लेकर चूर्ण करके द्रोणपुष्पी (गूमा) के रसमें खरल करके पुट देवे। फिर उडदकी बराबर गोलियाँ बनाकर नवीन ज्वरमें सेवन करे । यह रस नवज्वरकी परमोत्तम औषध है ॥ २१ ॥ २२ ॥

नवज्वरारि रस ।

एकभागो रसो भागद्वय च शुद्धगन्धकम् ।
गरलस्य त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमावती ॥ २३ ॥
जैपालकः पञ्चभागो निम्बूद्रवविमर्दितः ।
कृमिघ्नप्रमिता वट्यः कार्याः सर्वज्वरच्छिदः ॥ २४ ॥
शृङ्गवेरेण दातव्या वटिकैका दिने दिने ।
जीर्णज्वरे तथाऽजीर्णे समे वा विषमेऽपि वा ॥
निहन्त्यसौ ज्वरं घोरं दावो वनमिवानलः ॥ २५ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, वत्सनाभ ३ भाग, सत्यानाशी कटेरी ४ भाग और जमालगोटे ५ भाग ले सबको एकत्र पीसकर नीम्बूके रसमें खरल करके वायविडंगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके रसके साथ देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । इन गोलियोंको सम अथवा विषमज्वर, जीर्णज्वर और अजीर्ण रोगमें भी प्रयोग करना चाहिये। यह रस सब प्रकारके भयंकर ज्वरोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है, जैसे दावाग्नि वनको तत्काल भस्म करदेती है ॥ २३–२५ ॥

सर्वाङ्गसुन्दररस ।

शुद्धसूतं च गन्धं च विषं च जयपालकम् ।
कटुत्रयं च त्रिफला टङ्कणं च समांशकम् ॥ २६ ॥
अस्य मात्रा प्रयोक्तव्या गुञ्जात्रयसमा ततः ।
सर्वेषु ज्वररोगेषु सामवाते विशेषतः ॥ २७ ॥
नाशयेच्छ्वासकासौ च ह्यग्निसादं विशेषतः ।
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ २८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध जमालगोटे, त्रिकुटा, त्रिफला और सुहागा सबको समान भाग लेकर एकत्र बारीक पीसकर और जलके साथ

खरल करके तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे. सब प्रकारके ज्वर विशेषकर आमयुक्त ज्वरमें इसकी एक एक गोली प्रतिदिन सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है। यह रस श्वास खाँसी और मन्दाग्निको भी नष्ट करता है। इस सर्वाङ्गसुन्दर रसको पूर्वकाल में ब्रह्माजीने निर्माण किया था ॥ २६-२८ ॥

त्रिपुरभैरवरस ।

विषटङ्कबलिम्लेच्छदन्तीबीजं क्रमाद्वृद्धु ।
दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुरभैरवः ॥ २९ ॥
वल्लं व्योषेण चार्द्रस्य रसेन सितयाऽथवा ।
दत्तो नवज्वरं हन्ति मान्द्यमानिलशोथहा ॥ ३० ॥
हन्ति शूलं सविष्टम्भमर्शांसि कृमिजान् गदान् ।
पथ्यं तक्रेण भोक्तव्यं रसेऽस्मिन् रोगहारिणि ॥ ३१ ॥

शुद्ध वत्सनाभ १ तोला, सुहागा २ तोले, गन्धक ३ तोले, ताम्रभस्म ४ तोले और जमालगोटे ५ तोले ले सबको एकत्र दन्तीके क्वाथमें एक प्रहरतक खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली त्रिकुटेके चूर्ण, अदरखके रसके अथवा मिश्रीमें मिलाकर देनेसे नवीनज्वर, शीघ्र नष्ट होता है तथा अग्निकी मन्दता, आमवात, और शोथ दूर होता है यह रस आठ प्रकारके शूल, विष्टम्भ, अर्श और कृमिरोगको नष्ट करता है। इस रसके सेवन करनेपर तक्रके साथ भातका भोजन करना चाहिये॥ २९-३१ ॥

ज्वर

भवेत्समं सूतसमुद्रफेनहिंगूलगन्धौ परिमर्द्य यत्नात् ।
नवज्वरे वल्लमितं त्रिघस्रमार्द्राम्बुनाऽयं ज्वरधूमकेतुः ॥३२॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ तोले, समुद्रफेन और सिंगरफ ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर सबको एकत्र अदरखके रसके साथ तीन दिनतक यत्नपूर्वक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर एक एक गोली अदरखके स्वरसके साथ सेवन करे। यह ज्वरधूमकेतुरस नवीनज्वरमें विशेष उपकार करता है ॥ ३२ ॥

मृत्युञ्जयरस ।

विषस्यैकस्तथा भागो मरिचं पिप्पलीकणः ।
गन्धकस्य तथा भागो भागः स्याट्टङ्कणस्य वै ॥ ३३ ॥

सर्वत्र समभागः स्यात् द्विभागं हिङ्गुलं भवेत्।
जम्बीरस्य रसेनात्र हिङ्गुलं भावयेद्भिषक् ॥ ३४ ॥
रसश्चेत्समभागः स्यात् हिङ्गुलं नेष्यते तदा।
गोमूत्रशोधितं चात्र विषं सौरविशोषितम् ॥ ३५ ॥
चू येत् खल्वमध्ये तु मुद्गमात्रां वटीं चरेत्।
मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥

शुद्ध वत्सनाभविष, मिरच, पीपलके चावल, शुद्धगन्धक और भुनाहुआ सुहागा ये प्रत्यक एक एक भाग और सिंगरफ २भाग लेवे प्रथम सिंगरफको जम्बीरी नींबूके रसमें भावना देकर शुद्ध करलेवे। यदि इस रसमें पारे और गन्धककी दो भाग कज्जली डालीजाय तो सिंगरफको नहीं डालना चाहिये और विषको गोमूत्रमें शुद्ध करके धूपमें सुखाकर लेना चाहिये। फिर सब औषधियोंको एकत्र खरलमें जलके साथ उत्तम प्रकारसे खूब खरल करके मूँगके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली शहदके साथ खानेसे सब प्रकारके ज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ३३-३६ ॥

दध्युदकानुपानेन वातज्वरनिबर्हणः।
आर्द्रकस्य रसैः पानं दारुणे सान्निपातिके ॥ ३७ ॥
जम्बीररसयोगेन ह्यजीर्णज्वनाशनः।
अजाजीगुडसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ३८ ॥
जीर्णज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते।
पूर्णमात्रा प्रदातव्या पूर्णं वटिचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥
अतिक्षीणेऽतिवृद्धे च शिशौ चाल्पवयस्यपि।
तुर्यमात्रा प्रदातव्या व्यवस्था सारनिश्चिता ॥ ४० ॥
नवज्वरे प्रदानेन यामैकान्नाशयेज्ज्वरम्।
अक्षीणे च कफाभावे दाहे च वातपैत्तिके ॥ ४१ ॥
सितां दद्यात्प्रयत्नेन नारिकेलाम्बु निर्भयम्
अयं मृत्युञ्जयो नामः रसः सर्वज्वरापहः ॥
अनुपानप्रभेदेन निहन्ति सकलान् गदान् ॥ ४२ ॥

इसको दहीके पानीके साथ सेवन करनेसे वातज्वर और अदरखके रसके साथ सेवनकरनेसे दारुण सन्निपातज्वर दूर होता है। जम्बीरी नींबूके रसके साथ सेवन

करनेसे अजीर्णजनित ज्वर तथा कालाजीरा और गुडमें मिलाकर खानेसे विषमज्वर दूर होता है। अत्यन्त भयंकर जीर्णज्वरमें पूर्णवयस्क पुरुषको इस रसकी पूर्णमात्रा देनी चाहिये । इसकी पूर्णमात्रा ४ गोलियोंकी है। किन्तु अत्यन्त क्षीणशरीरवाले, अत्यन्त वृद्ध अवस्थावाले व्यक्तिओं और बहुत छोटे बालकोंको इसकी चौथाई मात्रा एक गोली देनी चाहिये या उससे भी कम मात्रा। इस रसको नवीन ज्वरमें सेवन करानेसे एक प्रहरमें ही ज्वर नष्ट होजाता है । यदि रोगी क्षीण न हो और उसके कफकी अधिकता न हो तथा दाहयुक्त वातपैत्तिक ज्वर हो तो नारियलके जलमें मिश्री मिलाकर पिलाना। यह मृत्युञ्जयनामक रस सब प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है और अनुपानभेदसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है ॥ ३७–४२ ॥

श्रीरामरस।

गन्धकं पारदं तुल्यं मरिचं च त्रिभिः समम् ।
बीजं नैकुम्भकं मर्द्यं दन्तीक्राथेन यामकम् ॥
द्विगुञ्जः शूलविष्टम्भानिलमामज्वरं जयेत् ॥ ४३ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा और मिरच ये प्रत्येक एक एक भाग और जमालगोटे ३ भाग लेकर सबको एकत्र करके दन्तीकी जडके काढेके साथ एक प्रहरतक खरल करे, फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सेवन करते ही शूलरोग, विष्टम्भवात और आमयुक्त ज्वरको दूर करता है ॥ ४३ ॥

नवज्वरांकुश ।

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धहिङ्गुलान्
नैकुम्भबीजान्यथ दन्तिवारिणा ।
पिष्ट्वाऽस्य गुञ्जाऽभिनवज्वरापहा
जलेन सार्द्धं सितया प्रयोजिता ॥ ४४ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सिंगरफ ३ भाग और जमालगोटे ४ भाग लेकर इन सबको दन्तीकी जडके काढेके साथ घोटकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर रखलेवे। प्रतिदिन एक गोली मिश्रीमें मिलाकर खाय और ऊपरसे जलका अनुपान करे तो नवीनज्वर नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

प्रचण्डेश्वर ।

अमृतं पारदं गन्धं मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
सिन्दुवाररसैः पश्चात् भावयेदेकविंशतिम् ॥ ४५ ॥

तिलप्रमाणं दातव्यं नवज्वरविनाशनम्।
उद्वेगे मस्तके तैलं तक्रं चापि प्रदापयेत् ॥
अनुपानं चार्द्ररसः प्रचण्डेश्वरसंज्ञकः ॥ ४६ ॥

शुद्ध विष एक भाग, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धककी कज्जली दो भाग लेकर सबको दो प्रहरतक खरल करे फिर निर्गुण्डीके पत्तोंके रसमें २१ वार भावना देकर तिलकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस रसको सेवन करनेसे नवीनज्वर दूर होता है। इसके सेवन करनेपर यदि शरीरमें गरमी मालूम हो तो शिरपर सुगन्धित तेलकी मालिश करनी चाहिये और तक्रपान करना चाहिये। इसपर अदरखके रसका अनुपान करे। इसको प्रचण्डेश्वर रस कहते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

वैद्यनाथवटी।

शाणं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा द्वयोः कज्जलीं
तिक्ताचूर्णमथाक्षमेन सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत्।
पश्चात्तत्सुषवीरसेन न तु वा क्वाथेऽमले त्रैफले ॥
सशोष्या गुटिका कलायसदृशी कार्या बुधैर्यत्नतः ॥४७॥
ज्ञात्वा दोषबलं रसेन सुषवीपत्रस्य पर्णस्य वा।
एकद्वित्रिचतुः क्रमेण वटिकां दद्यात्कदुष्णाम्बुना ॥४८॥
हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं पाण्डुतामरुचिशोथसंचयम्।
रेचने च दधिभक्तभोजनं वैद्यनाथसुकुमाररेचनम् ॥ ४९ ॥

शुद्धगन्धक ४ माशे और शुद्ध पारा ४ माशे लेकर दोनोंकी कजली बना लेवे। उसमें दो तोले कुटकीका और बहेडेका चूर्ण मिलाकर करेलेक पत्तोंके रसमें अथवा त्रिफलेके काढेमें धूपमें रखके तीनवार भावना देवे। फिर सुखाकर मटरके बराबर गोलियाँ बनालेवे। रोगीके दोषोंका बलाबल विचारकर इनमेंसे एकसे चारतक गोली करेलेके पत्तोंके रसके साथ अथवा पानके रसके साथ देवे और उष्णजलका अनुपान करावे। यह वटी सब प्रकारके शूलरोग, नवीनज्वर, पाण्डुरोग, अरुचि और शोथको नष्ट करता है। इन गोलियोंके खानेपर जब विरेचन होजाय तब दही और भातका भोजन करना चाहिये यह श्रीवैद्यनाथजीका कहाहुआ मृदुविरेचन है ॥ ४७-४९ ॥

अग्निकुमाररस।

मरिचोग्राकुष्ठमुस्तैः सर्वैरेव समं विषम्।
पिष्ट्वा चार्द्ररसेनैव वटिका रक्तिकामिता ॥५०॥

आमज्वरे प्रथमतः शुण्ठ्या च मधुपिष्टया।
आर्द्रकस्य रसेनापि निर्गुण्ड्याश्च कफज्वरे ॥ ९१ ॥
पीनसे च प्रतिश्याये आर्द्रकस्य च वारिणा।
अग्निमान्द्ये लवङ्गेन शोथे सदशमूलकः ॥ ९२ ॥
ग्रहण्यां सह शुण्ठ्या च मुस्तकेनातिसारके
सामे च धान्यशुण्ठीभ्यां पक्के च कुटजं मधु ॥ ९३ ॥
सन्निपातज्वरारम्भे पिप्पल्यार्द्रकवारिणा।
कण्टकार्या रसैः कासे श्वासे तैलगुडान्वितम् ॥ ९४ ॥
पीत्वा वटीद्वयं रोगी स्वास्थ्यं समुपगच्छति ॥ ९५ ॥
सर्वेषामेव रोगाणामामदोषप्रशान्तये।
अग्निवृद्धिकरो नाम्ना विख्यातोऽग्निकुमारकः ॥ ९६ ॥

मिरच, वच, कूठ और नागरमोथा ये प्रत्येक एक एक माशे और शुद्ध बत्सनाभ ४ माशे लेकर सबको अदरखके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसको आमयुक्त ज्वरकी प्रथमावस्थामें सोंठके चूर्ण और शहदके साथ, कफज्वरमें अदरखके रस या निर्गुण्डीके पत्तोंके रसके साथ, पीनस और प्रतिश्यायरोगमें केवल अदरखके रसके साथ, मन्दाग्निमें लौंगके चूर्णके साथ, शोथमें दशमूलके काढेके साथ, संग्रहणीमें सोंठके चूर्णके साथ, अतिसारमें नागरमोथेके चूर्णके साथ तथा आमातिसारमें धनियाँ और सोंठके क्काथके साथ और पक्कातिसारमें कुडेकी छालके क्काथ और शहदके साथ, सन्निपातज्वरकी प्रथमावस्थामें मधु, पीपलके चूर्ण और अदरखके रसके साथ, खांसीमें कटेरीके रस और श्वासमें सरसोंके तेल और पुराने गुडमें मिलाकर सेवन करे तो रोगी उक्त सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ होजाता है। इसकी मात्रा २ वटीकी है। आमयुक्तदोष और सब प्रकारके रोगोंको शमन करने तथा जठराग्निको प्रदीप्त करनेके लिये यह अग्निकुमार रस प्रसिद्ध है ॥ ९०-९६ ॥

जयावटी।

विषं त्रिकटुकं मुस्तं हरिद्रा निम्बपत्रकम्।
विडङ्गमष्टमं चूर्णं छागमूत्रैः समं समम् ॥
चणकाभा वटी कार्या स्याज्जया योगवाहिका ॥ ९७ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, हल्दी, नीमके पत्ते और वायविडंग इन आठों औषधियोंके समानभाग चूर्णको और सब चूर्णके बराबर अरणीकी जडके चूर्णको लेकर बकरेके मूत्रमें खरलकरके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ अत्यन्त योगवाही हैं । अनुपानभेदसे ज्वरादि विविध प्रकारके रोगोंको दूर करती हैं ॥ ५७ ॥

जयन्तीवटी ।

विषं पाठाऽश्वगन्धा च वचा तालीशपत्रकम् ।
मरिचं पिप्पली निम्बमजामूत्रेण तुल्यकम् ।
वटिका पूर्ववत्कार्या जयन्ती योगवाहिका ॥ ५८ ॥

शुद्ध वत्सनाभ, पाढ, असगन्ध, वच, तालीशपत्र, मिरच, पीपल और नीमके पत्ते ये प्रत्येक औषधि समानभाग और अरणीकी जड सबके बराबर भाग लेकर समस्त औषधियोंको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको बकरीके मूत्रमें खरलकरके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह जयन्ती-वटी भी योगवाही है । यह भी अनुपानभेदसे सर्वरोगोंको नष्ट करती है ॥ ५८ ॥

योगवाहिका जया जयन्ती वटी ।

जयन्ती वा जया वाऽथ क्षीरैः पित्तज्वरापहा ।
मुद्गामलकयूषेण पथ्यं देयं घृतं विना ॥ ५९ ॥

जयन्ती वटी अथवा जया वटीको गोदुग्धके साथ सेवन करनेसे पित्तज्वर शीघ्र दूर होता है । इसपर मूंगके यूषका अथवा आमलोंके यूषका पथ्य देवें, किन्तु घृत डालकर न दे ॥ ५९ ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ सक्षौद्रा मरिचान्विता ।
सन्निपातज्वरं हन्ति रसश्चानन्दभैरवः ॥ ६० ॥

जयावटी अथवा जयन्तीवटी या आनन्दभैरवरसको कालीमिरचोंके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है ॥ ६० ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ विषमज्वरनुद् घृतैः ।
सर्वज्वरं मधुव्योषैर्गवां मूत्रेण शीतकम् ।
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तज्वरापहा ॥ ६१ ॥

जयन्ती अथवा जया वटी घृतके साथ सेवन करनेसे विषमज्वर, मधु और त्रिकु-टेके चूर्णके साथ खानेसे सब प्रकारके ज्वर, गोमूत्रके अनुपानसे शीतज्वर और चन्दनके काढेके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त ज्वर दूर होते हैं ॥ ६१ ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ माक्षिकेण च कासजित् ।
जयन्ती वा जया वाऽथ क्षीरैः पाण्डुविनाशिनी ॥ ६२ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ तण्डुलोदकपानतः ।
अश्मरीं हन्ति नो चित्रं मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ॥ ६३ ॥

मधुके साथ सेवन करनेसे खाँसी, दूधके साथ पाण्डुरोग, चावलोंके जलके साथ पथरीरोग और दारुण मूत्रकृच्छ्ररोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

जयन्तीं वा जयां वाऽथ गोमूत्रेण युतां पिबेत् ।
हन्त्याशु काकणं कुष्ठं तल्लेपेन च तद् ध्रुवम् ॥ ६४ ॥

जया अथवा जयन्तीवटीको गोमूत्रके साथ सेवन करने अथवा गोमूत्रके साथ पीसकर उसका लेप करनेसे काकणनामक कुष्ठ शीघ्र दूर होता है ॥ ६४ ॥

द्विनिष्कं केतकीमूलं पिष्ट्वा तोयेन पाययेत् ।
जयन्ती वा जया वाऽथ मेहं हन्ति सुराह्वयम् ॥ ६५ ॥

आठ माशे केतकी (केवडे) की जडको पानीमें पीसकर उस पानीके साथ जया अथवा जयन्ती वटीको सेवन करनेसे सुरामेह शमन होता है ॥ ६५ ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ मधुना सर्वमेहजित् ॥ ६६ ॥
लोध्रं मुस्ताऽभया तुल्यं कट्फलं च जलैः सह ।
क्वाथयित्वा पिबेच्चानु मधुना सर्वमेहनुत् ॥ ६७ ॥

मधुके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं अथवा उक्त औषधि सेवन करनेके पश्चात् लोध, नागरमोथा, हरड और कायफल इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे भी सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ गुडैः कोष्णजलैः सह ।
त्रिदोषोत्थं हरेद् गुल्मं रसो वाऽऽनन्दभैरवः ॥ ६८ ॥

जया अथवा जयन्तीवटी या आनन्दभैरव रसको गुडमें मिलाकर उष्णजलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषजनित गुल्मरोग दूर होता है ॥ ६८ ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ हन्ति शुण्ठ्या भगन्दरम् ।
जयन्ती वा जया वाऽथ तक्रेण ग्रहणीप्रणुत् ॥ ६९ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ रसश्चानन्दभैरवः ।
रक्तपित्ते त्रिदोषोत्थे शीततोयेन पाययेत् ॥ ७० ॥

जया अथवा जयन्तीवटी सोंठके चूर्णके साथ भगन्दररोगको, तक्रके साथ ग्रहणी को और यह वटी अथवा आनन्दभैरवरस शीतल जलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोष रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

जयन्ती वा जया वाऽथ भृङ्गद्रावैर्निशान्ध्यनुत् ।
जयन्ती वा जया वाऽथ घृष्ट्वा स्तन्येन चाञ्जनम् ।
स्रावणं सर्वदोषोत्थं मांसवृद्धिं च नाशयेत् ॥ ७१ ॥

इसी प्रकार जया अथवा जयन्तीवटी कुकुरभांगराके रसके साथ सेवन करनेसे रात्र्यन्धता (रतौंधा) और स्त्रीके दूधमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ नेत्रस्रावरोग और मांसवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ७१ ॥

अमृतमञ्जरी ।

हिङ्गुलं मरिचं टङ्कं पिप्पली विषमेव च ।
जातीकोषं समं सर्वं जम्बीराद्भिर्विमर्दितम् ॥ ७२ ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वाऽपि प्रदेयं सान्निपातिके ।
कासश्वासौ जयत्याशु सर्वज्वरविनाशनः ॥ ७३ ॥

सिंगरफ, मिरच, भुना हुआ सुहागा, पीपल, शुद्ध वत्सनाभ और जायफल इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके दो दो या तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे. इन गोलियोंको सेवन करनेसे सान्निपातज्वर, खाँसी, श्वास और अन्यान्य सब प्रकारके ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

ज्वरनृसिंहरस ।

पारदं गन्धकं तालं भल्लातकस्तथैव च ।
वज्रीक्षीरसमायुक्तमेकत्र च विमर्दयेत् ॥ ७४ ॥
मृत्तिकाभाजने स्थाप्यं मुद्रितव्यं विचक्षणैः ।
अग्निं प्रज्वालयेत्तत्र प्रहरद्वयसंख्यया ॥ ७५ ॥
शीतलं खल्लयेत्तत्र भावना च प्रदीयते ।
भृङ्गराजरसैरत्र गण्डदूर्वाभवै रसैः ॥ ७६ ॥
चित्रकस्य रसेनापि भावना दीयते पुनः ।
पश्चात्तच्चूर्णयेद्यत्नात् कूपिकायां च धारयेत् ॥ ७७ ॥
ज्वरोऽनूत्पद्यते यस्य चतुर्थे चापरे पुनः ।

माषैकश्च रसो देयस्तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरम् ॥
ज्वरे शान्ते परं पथ्यं देयं मुद्गौदनं पयः ॥ ७८ ॥

पारा, गन्धक, हरताल और भिलावोंकी गिरी चारोंको सम भाग लेकर थूहरके दूधमें एकत्र खरल करके एक मिट्टीके पात्रमें भरकर उसके ऊपर मुद्रा करके दो प्रहरतक मन्द २ अग्नि देवे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकाल कर भाँगरा, गाँडरदूब और चीतेके रसमें क्रमसे एक एक दिन खरल करके भावना देवे फिर उसको बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे । चातुर्थिक ज्वरमें और दूसरे दिन आनेवाले ज्वरमें इस रसको एक एक माशा परिमाण प्रयोग करे, यह ज्वरको तत्काल नष्ट करता है । ज्वरके शान्त होनेपर मूँगका यूष, भात और दूधका पथ्य देना चाहिये ॥ ७४–७८ ॥

त्रैलोक्यडुम्बुररस ।

सूतार्कगन्धचपला जयपालतिक्ते
पथ्या त्रिवृच्च विषतिन्दुकजं समांशम् ।
सम्मर्द्य वज्रिपयसा मधुना द्विगुञ्ज-
स्त्रैलोक्यडुम्बुररसोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ ७९ ॥

पारा, ताँबा, गंधक, पीपल, जमालगोटे, कुटकी, हरड, निसोत और कुचला सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको मधुके साथ सेवन करनेसे नवीन ज्वर नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

गदमुरारि ।

रसबलिशिललौहव्योषताम्राणि तुल्या-
न्यथ सदरदनागं भागमेतत्प्रदिष्टम् ।
भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जाद्वयं वै
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ॥ ८० ॥

पारे और गन्धककी कज्जली दो तोले, मैनसिल, लोहभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल ताँबा, सिंगरफ और सीसेकी भस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको सेवन करनेसे शीघ्रही पुराना आमज्वर दूर होता है ॥ ८० ॥

ज्वरहरीवटी ।

सीसकं रससिन्दूरं हरितालं विषं समम् ।
एकत्र मर्दयेत्सर्वं सर्षपाभां वटीं चरेत् ॥ ८१ ॥

ज्वरविच्छेदकाले च सितया सह योजयेत् ।
द्वित्रगोलीप्रयोगेण ज्वरशान्तिर्न संशयः ॥ ८२ ॥

सीसेकी भस्म, रससिन्दूर हरताल और शुद्ध वत्सनाभ इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ एकत्र खरल करके सरसोंके बराबर गोलियाँ बनालेवे. ज्वरके उतरजानेपर एक दिनमें दो तीन गोलियाँ मिश्रीके साथ देनेसे ज्वर शमन होता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

रत्नगिरिरस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रहाटकम् ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात्सूतार्द्धं मृतलोहकम् ॥ ८३ ॥
लोहार्द्धं मृतवैक्रान्तं मर्दयेद्भृङ्गजद्रवैः ।
पर्पटीरसवत् पाच्यं चूर्णितं भावयेत्पृथक् ॥ ८४ ॥
शिग्रूवासकनिर्गुण्डीवचाग्निभृङ्गमुण्डिकैः।
क्षुद्रामृताजयन्तीभिर्मुनिब्राह्मीसुतिक्तकैः ॥ ८५ ॥
कन्यायाश्च द्रवभाग्यं प्रतिवारं त्रिधा त्रिधा ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं वालुकायन्त्रमध्यगम् ॥ ८६ ॥
यन्त्रं निरुध्य यत्नेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
चूर्णं नवज्वरे देयं माषमात्रं रसस्य वै ॥ ८७ ॥
कृष्णाधान्यसमायुक्तं मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम् ।
अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य वाहकः ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धककी कज्जली दो दो तोले, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और स्वर्णभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला, लोहभस्म ६ माशे और वैक्रान्त मणिकी भस्म ३ माशे लेवे । सबको एकत्र भाँगरेके रसमें खरल करके पर्पटीके समान पाक करे । फिर उसका चूर्ण करके उसको सहिंजना, अडूसा, निर्गुण्डी, वच, चीता, भाँगरा, गोरखमुण्डी, कटेरी, गिलोय, अरणी, अगस्तियाके फूल, ब्राह्मी, चिरायता और घीकुँवार इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे पृथक् २ तीन तीन बार भावना देवे, पश्चात् एक उत्तम मूषामें बन्द करके वालुकायन्त्रमें रखकर लघुपुटमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर मूषामेंसे औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे, इस रसको नवीनज्वरमें एक माशा परिमाण दिनमें तीनबार पीपल तथा धनियेके क्काथके अनुपानके साथ सेवन करावे । यह रस ज्वरको क्षणभरमें नष्ट करदेता है और योगवाही होनेसे भिन्नभिन्न

अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंमें हितकारी है ॥ ८३–८८ ॥

प्रतापमार्त्तण्डरस ।

विषहिङ्गुलजैपालटङ्कणं क्रमवार्द्धितम् ।
रसः प्रतापमार्त्तण्डः सद्यो ज्वरविनाशनः ॥ ८९ ॥

शुद्ध वत्सनाभ १ भाग, सिंगरफ २ भाग, जमालगोटा ३ भाग और सुहागा ४ भाग इन चारोंको जलके साथ एकत्र मर्दन ककरे दो-दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसको सेवन करनेसे ज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ ८९ ॥

चण्डेश्वररस ।

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेदेकयामकम् ।
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत्सप्तवारकम् ॥ ९० ॥
निर्गुण्ड्याः स्वरसे पश्चान्मर्दयेत्सप्तवारकम् ।
गुञ्जैकार्द्ररसेनैव दत्तो हन्ति ज्वरं क्षणात् ॥ ९१ ॥
वातजं पित्तजं श्लैष्मं द्विदोषजमपि क्षणात् ।
सुशीतलजले स्नान तृषार्ते क्षीरभोजनम् ॥ ९२ ॥
आम्रं च पनसं चैव चन्दनागुरुलेपनम् ।
एतत्समो रसो नास्ति वैद्यानां हृदयङ्गमः ॥
एष चण्डेश्वरो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत ॥ ९३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया और ताम्रभस्म सबको समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे, फिर उसमें अन्य औषधियोंको मिलाकर एक प्रहरतक खरल करे। पश्चात् अदरखके स्वरसमें सातवार और फिर निर्गुण्डीके रसमें सातवार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक एक गोली अदरखके रस और मधुके साथ देनेसे वातज, पित्तज, श्लैष्मिक और द्विदोषजनितज्वर तत्काल नष्ट होता है। इसके सेवन करनेपर यदि गरमी अधिक मालूम हो तो शीतल जलसे स्नान करना चाहिये और रोगीके क्षुधा और तृषासे व्याकुल होनेपर दूध भात, शीतलजल, आम, कटहल आदि पदार्थ सेवन कराने चाहिये तथा चन्दन, अगर आदिका शरीरपर लेप करना चाहिये। वैद्योंको इस रसके समान अन्य कोई रस प्रिय नहीं है। यह चण्डेश्वरनामक रस सब प्रकारके ज्वरोंको समूल नष्ट करता है ॥ ९०–९३ ॥

उदकमञ्जरीरस ।

सूतो गन्धष्टङ्कणः सोषणः स्या-
देतैस्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः ।
भूयोभूयो भावयेच्च त्रिरात्रं
वल्लो देयः शृङ्गवेरस्य वारि ॥ ९४ ॥
सम्यक्तापे वारि भक्तं सतक्रं
वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम् ।
अह्ना चोग्रं हन्ति सामं प्रभावात्
पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि वारिप्रयोगः ॥ ९५ ॥

पारा और गन्धककी कज्जली, सुहागा और मिरच ये सब समान भाग और सबके बराबर शुद्ध मीठा तेलिया लेकर समस्त औषधियोंको एकत्र पीसकर रोहू-मछलीके पित्तमें तीन दिनतक बारबार भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इसकी एक एक गोली अदरखके रस और मधुके अनुपानसे सेवन करानी चाहिये। यदि औषधि सेवन करनेपर रोगीको अधिक गरमी माल्हम हो तो तक्रके साथ भातका माँड और बैंगनोंके शाकका पथ्य देवे। पित्तकी अधिकता होनेपर सिरपर शीतल जलकी धारा छोडे । इस प्रकार इस रसको सेवन करनेसे आमयुक्त उग्रज्वर एक दिनमें ही नष्ट होजाताहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अचिन्त्यशक्तिरस

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं प्रत्येकं माषकद्वयम् ।
भृङ्गकेशाख्यनिर्गुण्डी मण्डूकीपत्रसुन्दरः ॥
श्वतापराजितामूलं शालिं च कणमारिषम् ॥ ९६ ॥
सूर्यावर्त्तः सितश्चैषां चतुर्माषकसम्मितैः ।
प्रत्येकं स्वरसैः खल्वे शिलायामवधानतः ॥
स्वर्णमाक्षिकमाषं च दत्त्वा मरिचमाषकम् ॥ ९७ ॥
नैपालताम्रदण्डेन घृष्ट्वा तत्कज्जलद्युति ।
वटी मुद्गोपमा कार्या छायाशुष्का तु रक्षिता ॥ ९८ ॥

२ शर्करा-अत्र विषम् ।

पारा और गन्धक प्रत्येक दो दो माशे लेकर कज्जली करलेवे। उस कज्जलीको भाँगरा, कुकुरभाँगरा, सिह्लाल्ह, ब्राह्मी, ग्रीष्मसुन्दर, हुरहुर, श्वेत अपराजिताकी जड, शान्तिशाक, चौलाईका शाक और श्वेत हुलहुल इन प्रत्येकके चार चार माशे स्वरसके साथ पत्थरके खरलमें उत्तम प्रकारसे घोटे फिर उसमें सोनामाखी १ माशा और काली मिरचोंका चूर्ण १ माशा मिलाकर ताँबेके पात्रमें डालकर ताँबेकी मूसलीसे खूब अच्छे प्रकारसे खरल करे, जब औषधि घुटकर कज्जलके समान कान्तियुक्त होजाय तब मूँगके बराबर गोलियाँ बनाकर और छायामें सुखाकर शीशीमें भरकर रखदेवे ॥ ९६-९८ ॥

प्रथमे वटिकास्तिस्रः कृत्वा नवशरावके ।
ततः खसर्पणं सूर्य्यं पूजयित्वा प्रणम्य च ॥
वारिणा गोलयित्वा तु पातुं देयं च रोगिणे ॥ ९९ ॥
स्वेदोपवासचरिते क्लान्ते चाल्पबले तथा ।
द्वितीयेऽह्नि वटीयुग्मं वटीमेकां तृतीयके ।
यावन्त्यो वटिका देयास्तावज्जलशरावकम् ॥ १०० ॥
तृषायां च रसं दद्याज्जाङ्गलानां जलं तृषि ।
लुलायदधिसंयुक्तं भक्तं योज्यं यथेप्सितम् ॥ १ ॥
लावपक्षिरसो देयः संस्कृतः सैन्धवादिभिः ।
पथ्यमग्निबलं वीक्ष्य वारिभक्तरसं तथा ॥
शिरश्चलनशूलादौ तैलं नारायणादि च ॥ २ ॥

इनमेंसे पहले दिन तीन गोलियोंको एक नये सकोरेमें रखकर आकाशमें भ्रमण करनेवाले सूर्यदेवका पूजन और प्रणाम करके गोलियोंको शीतल जलमें घोलकर रोगीको पान करनेके लिये देवे। अत्यन्त स्वेद निकलने और उपवास करनेसे क्लान्त और बलहीन होनेपर रोगीको दूसरे दिन दो गोली और तीसरे दिन एक गोली उक्त विधिसे सेवन करावे,रोगीको जितनी गोलियाँ सेवन करावे उतने ही सकोरे शीतलजल पिलावे और तृषा लगनेपर जाङ्गलजीवोंका मांसरस और शीतलजल पान करावे। इसपर भैंसके ताजे दहीके साथ भातका आहार यथेच्छरूपसे देवे और सैंधानमक आदि मसालोंके द्वारा संस्कार कियाहुआ लावापक्षीका मांसरस तथा भातका माँड जठराग्निके बलाबलको विचारकर पथ्यरूपसे देवे। शिरःकम्प और शिरःशूल आदि उपद्रवोंके होनेपर शिरपर नारायणतेल आदिकी मालिश करावे ॥ ९८-१०२ ॥

सन्निपातादिज्वरोंमें-

मोहान्धसूर्यरस ।

गन्धेशौ लशुनाम्भोभिर्मर्दयेद्याममात्रकम् ।
तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत्प्रतिबोधयेत् ॥
मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम् ॥ १०३ ॥

गन्धक और पारा दोनोंको समान भाग लेकर लहसुनके रसमें एक प्रहरतक घोटे उसको लहसुनके रसमें मिलाकर नस्य (देवे) तो सन्निपातज्वरमें चैतन्यलाभ होता है और इसको मिरचोंके चूर्णके साथ मिलाकर नस्य देनेसे तन्द्रा तथा प्रलाप दूर होता है ॥ १०३ ॥

कुलवधूवटी ।

शुद्धसूतं मृत नागं मृतं ताम्रं मनःशिलाम् ।
तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ १०४ ॥
रसैश्चोत्तरवारुण्याश्चणमात्रा वटी कृता ।
सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् ॥
एषा कुलवधूर्नाम जले घृष्ट्वा प्रदापयेत् ॥ १०५ ॥

शुद्ध पारा, सीसेकी भस्म, ताम्रभस्म, मैनसिल और तूतिया सबको समान भाग लेकर इन्द्रायनके रसमें एक दिनतक खरल करके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको जलमें घिसकर नस्य देनेसे दारुण सन्निपातज्वर शीघ्र दूर होता है । इसको कुलवधूवटी कहते हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

नस्यभैरव ।

मृतसूतार्कतीक्ष्णाग्निं टङ्कणं खर्परं समम् ।
सव्योषमर्कदुग्धेन दिनं सम्मर्दयेद् दृढम् ॥
अर्कक्षीरयुतं नस्यं सन्निपातहरं परम ॥ १०६ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म, चीता, सुहागा, खपरिया, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर एक दिनतक आकके दूधमें उत्तम प्रकारसें खरल करके और आकके दूधमें मिलाकर इसकी नस्य देवे तो सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ १०६ ॥

उन्मत्तरस।

रसं गन्धं च तुल्यांशं धुस्तूरफलजैर्द्रवैः।
मर्दयेद्दिनमेकं तु तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत्॥
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्सन्निपातजित् १०७॥

पारे और गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करके धतूरेके फलोंके रसमें एक दिनतक घोटे फिर उसमें समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलालेवे। यह उन्मत्तरस नस्यके द्वारा प्रयोग करनेपर सन्निपातज्वरको दूर करता है॥ १०७॥

अञ्जनभैरव।

सूततीक्ष्णकणागन्धमेकांशं जयपालकम्।
सर्वैस्त्रिगुणितं जम्भवारिणा च सुपेषितम्॥
नेत्राञ्जनेन हन्त्याशु सर्वोपद्रवमुद्धतम्॥ १०८॥

पारा, लोहा, पीपल और गन्धक ये प्रत्येक एक एक भाग और जमालगोटा ३ भाग लेकर सबको जम्बीरीनींबूके रसमें अच्छे प्रकारसे खरल करके नेत्रोंमें आँजनेसे सर्वप्रकारके उपद्रवोंसहित सन्निपातज्वर शीघ्र निवृत्त होता है॥ १०८॥

सौभाग्यवटी।

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाभयाक्षामला-
निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत्।
निर्गुण्डीयुगभृंगराजकवृषापामार्गपत्रोल्लसत्-
प्रत्येकस्वरसेन सिद्धवटिका हन्ति त्रिदोषोदयम्॥ ९॥

सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ, जीरा, सैंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, साँभरनमक, विडनमक, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला और चन्द्रिकारहित अभ्रककी भस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग और पारे, गन्धककी कज्जली दो भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके निर्गुण्डी, भाँगरा, कुकुरभाँगरा, अडूसा और चिराचिटा इन प्रत्येकके पत्तोंके स्वरसमें क्रमसे भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे॥ १०९॥

येषां शीतमतीव देहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रीकृतं
निद्रा घोरतरा समस्तकरणव्यामोहमूढं मनः।
शूलश्वासबलासकाससहितं मूर्च्छारुचिस्तृड्ज्वरं
तेषां वै परिहृत्य जीवितमसौ गृह्णाति मृत्योर्मुखात्॥१०॥

जिन मनुष्योंका समस्त शरीर अत्यन्त शीतल हो और जिसको अधिक पसीना आनेसे देह अत्यन्त आर्द्र होजाताहो घोर निद्रा हो और सम्पूर्ण इन्द्रियोंसहित मनः विक्षुब्ध होगया हो, ऐसे मनुष्योंको इस औषधिकी एक एक गोली उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करावे। यह सौभाग्यवटी शूल, श्वास, कफ, खाँसी, मूर्च्छा, अरुचि, तृषा आदि उपद्रवोंसहित सन्निपात ज्वरको दूर करके रोगीको मृत्युके मुखसे बचाकर नवजीवन प्रदान करती है॥ ११०॥

श्रीवेतालरस।

रसं गन्धं विषं चैव मरिचालं समांशकम्।
मर्दयेच्छिलया तावद्यावज्जायेत कज्जलम्॥ ११॥
गुञ्जामात्रप्रमाणेन हरेद् द्वादशसंज्ञकम्।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम्॥ १२॥
ग्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहग्रस्तेषु देहिषु।
दातुमर्हति वेतालो यमदूतनिवारकः॥ १३॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, मिरच और हरताल ये सब औषधियाँ समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले, फिर सबको एकत्र मिलाकर पत्थरके खरलमें जलके साथ इतना घोटे कि, घुटते २ औषधि काजलके समान काली और चिकनी होजाय। फिर उसकी एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके सेवन करनेसे साध्य व असाध्य बारह प्रकारका दारुण सन्निपात शीघ्र नष्ट होता है। रोगीके शरीरमें अधिक ग्लानि होनेपर तथा पसीनेके आनेसे आर्द्रता होनेपर और अत्यन्त मोह बेहोशीके होनेपर भी यह रस देना चाहिये यह वेतालरस यमदूतको भी निवारण करनेवाला है॥ ११-१३॥

चक्री।

रसं गन्ध विषं चैव धत्तूरं मरिचं तथा।
शोधितं च तथा तालं माक्षिकं च समांशकम्॥ १४॥
दन्तीक्वाथेन सम्भाव्य गुञ्जामात्रा तु चक्रिका।
साध्यासाध्यान्निहन्त्याशु सन्निपातांस्त्रयोदश॥ १५॥

पारे और गन्धककी कज्जली, शुद्ध वत्सनाभ, धतूरेके बीज, मिरच, शुद्ध हरताल और सोनामाखी सबको समान भाग ले दन्तीके काढेमें खरल करके एकएक रत्तीकी

गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ साध्य और असाध्य तेरहों प्रकारके सन्निपातज्वरोंको शीघ्र नष्ट करती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

द्वितीय चक्री ।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं तालं तथा पारदं
देवीबीजयुतं सुशोधितमितं जैपालबीजोत्तमम् ।
दन्तीमूलयुतं समागधिफलं सर्वं समांशं नयेत्
तत्सर्वं परिमर्द्य चार्द्रकरसैर्गुञ्जाप्रमाणं रसम् ॥ १६ ॥
दद्याद् घोरतरे त्रयोदशविधे दोषे च चक्र्याह्वयं
तन्द्रादाहसमन्वितेच तृषया सम्पीडिते मानवे ॥१७॥

शुद्ध वत्सनाभ विष, मिरच, हरताल, पारा और गन्धककी कज्जली, शुद्ध जमालगोटे, दन्तीकी जड और पीपल इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर अदरखके रसमें खरलकरके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । अत्यन्त उग्र तेरहोंप्रकारके सन्निपातज्वर, दोषोंकी उल्बणता, तन्द्रा, दाह और तृषायुक्त ज्वरमें भी यह रस रोगीको सेवन कराना चाहिये । इसके सेवनसे उक्त सब विकार शान्त होतेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

ब्रह्मरन्ध्ररस ।

रसाभ्रगन्धकं तालं हिङ्गुलं मरिचं तथा ।
टङ्कणं सैन्धवोपेतं सर्वांशममृतं तथा ॥ १८ ॥
सर्वपादसमोपेतं महिषीपित्तमर्दितम् ।
ब्रह्मरन्ध्रे प्रयोक्तव्यं संन्यासज्ञानसंगमे ॥ १९ ॥
सहस्रकलशैः स्नानं लेपनं चन्दनादिभिः ।
इक्षुमुद्गरसं भोज्यं तक्रभक्तं यथेप्सितम् ॥ १२० ॥

पारा और गन्धककी कज्जली दो भाग, अभ्रक, हरताल, सिंगरफ, मिरच, सुहागा और सैंधानमक ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग और शुद्ध वत्सनाभ सबके बराबर भाग लेवे । इन समस्त ओषधियोंसे चौथाई भाग भैंसका पित्त लेकर उसमें इन सबको खूब अच्छेप्रकारसे खरल करके सन्निपातज्वरकी अज्ञानावस्थामें रोगीके ठीक ब्रह्मरन्ध्रकी जगह मस्तकमें अस्त्रद्वारा बडी सावधानीसे किंचित् क्षत करके उसमें इस रसको भरदेवे । इसके पश्चात् रोगीको शीतल जलसे हजार कलशोंसे स्नान करावे और उसके शरीरपर चन्दन आदिका लेप करे और इसपर ईखका रस, मूँगका

यूष, तक्र और भातका यथेच्छरूपसे पथ्य देवे ॥ १८-१२० ॥

आनन्दभैरवीवटी ।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्कणं मृतशुल्बकम् ।
धत्तूरस्य च बीजानि हिङ्गुलं नवमं स्मृतम् ॥ २१ ॥
एतानि समभागानि दिनैकं विजयारसैः ।
मर्दयेच्चणकाभा तु वटिकाऽऽनन्दभैरवी ॥ २२ ॥
भक्षयित्वा पिबेच्चानु रविमूलकषायकम् ।
सव्योषं हन्ति नो चित्रं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ २३ ॥

शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, सुहागा, तांबेकी भस्म, धतूरेके बीज और सिंगरफ इन सबको समान भाग लेकर एक दिनतक भांगके रसमें घोटकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनको आनन्दभैरवीवटी कहतेहैं । इनमेंसे एक गोली खाकर ऊपरसे त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर आककी जडका काढा पीवे तो दारुण सन्निपातज्वर दूर होताहै ॥ २१-२३ ॥

त्रैलोक्यसुन्दररस

रसगन्धकयोर्माषौ प्रत्येकं कज्जलीकृतौ ।
शक्रं च मुसली चैव धत्तूरः केशराजकम् ॥ २४ ॥
देवदाली जयन्ती च तथा मण्डूकपर्णिका ।
एषां पत्ररसैः शाणैः शिलायां खल्लयेत्पुनः ॥ २५ ॥
शोषयित्वा वटी कार्या त्वनेका राजिकोपमा ।
त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति तथा प्रबलकोष्ठकम् ॥ २६ ॥
तत्र तु नारिकेलस्य जलं देयं प्रयत्नतः ।
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम सन्निपातहरो रसः ॥ २७ ॥

पारा और गंधक प्रत्येक दो दो माशे लेकर कज्जली करलेवे । फिर उसको कुडेकी छाल, मुसली धतूरा, कुकुरभांगरा, बंदाल, अरणी और मण्डूकपर्णी इन औषधियोंके पत्तोंके चार चार माशे रसके साथ पत्थरके खरलमें खूब खरल करके सरसोंके बराबर गोलियाँ बनाकर सुखालेवे. यह त्रैलोक्यसुन्दररस सेवन करनेसें कोष्ठगत त्रिदोषज्वर और सब प्रकारके सन्निपातज्वर दूर होते हैं । इसके सेवन करनेसे यदि रोगीको गरमी माळुम होवे तो नारियलका जल पीनेको देना चाहिये ॥ २४-२७ ॥

मृतोत्थापनरस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिला च विषहिङ्गुलम्।
मृतकान्ताभ्रताम्रायस्तालकं माक्षिकं समम्॥ २८॥
अम्लवेतसजम्बीरचाङ्गेरीणां रसेन च।
निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोश्च द्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम्॥ २९॥
रुद्ध्वा तु भूधरे पाच्यं दिनान्ते तत्समुद्धरेत्।
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेत्प्रहरद्वयम्॥ १३०॥
माषमात्रं प्रदातव्यं हिङ्गुव्योषार्द्रकद्रवैः।
सकर्पूरानुपानं स्यान्मृतस्योत्थापने रसे॥ ३१॥
पीडितं सन्निपातेन गतं वापि यमालयम्।
तत्क्षणाज्जीवयत्येष पथ्यं क्षीरैः प्रयोजयेत्॥ ३२॥

शुद्ध पारा एकभाग, शुद्ध गन्धक दो भाग एवं मैनसिल, शोधित वत्सनाभ, सिंगरफ, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हरताल और स्वर्णमाक्षिककी भस्म इन सब औषधियोंको एकएक भाग लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके अम्लवेंत जम्बीरीनिंबू, चूका, निर्गुण्डी और हाथीशुण्डी इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे तीन तीन दिनतक खरल करके घडियामें रखकर फिर एकदिनतक भूधरयन्त्रमें पकावे, उत्तम प्रकारसे पकजानेपर औषधिको निकालकर चीतेकी जडके काढेमें दो प्रहरतक खरल करे इसकी मात्रा एसएक उडदके बराबर देनी चाहिये और इस तरह ऊपरसे हींग सोंठ, मिरच, पीपल, अदरखका रस और कपूरका जल इनका अनुपान करना चाहिये। यह रस सन्निपातज्वरसे पीडित और मृतप्राय व्यक्तिको भी तत्काल जीवित करता है। इसपर दूधका पथ्य देवे॥ २८-३२॥

मृतसंजीवनरस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले तत्कज्जलीकृतम्।
अभ्रलोहकयोर्भस्म ताम्रभस्म समं समम्॥ ३३॥
विषतालवराटी च शिलाहिङ्गुलचित्रकम्।
हस्तिशुण्डी चातिविषा त्र्यूषणं हेममाक्षिकम्॥ ३४॥
चूर्णं विमर्दयेद्द्रावैरार्द्रकस्य दिनत्रयम्।
निर्गुण्डीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत्पुनः॥ ३५॥

काचकुप्यां निवेश्याथ वालुकायन्त्रके पचेत् ।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ३६ ॥
मृतसंजीवनो नाम रसोऽयं शंकरोदितः ।
मृतोऽपि सन्निपातार्तो जीवत्येव न संशयः ॥ ३७ ॥
नातः परतरः कश्चित् सन्निपातहरो रसः ।
अघोरमन्त्रमुच्चार्य पूजां रक्षां च कारयेत् ॥ ३८ ॥

पारा एकभाग और गन्धक दोभाग दोनोंको एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे एवं अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, वत्सनाभ, हरताल, कौडीकी भस्म, मैनसिल, सिंगरफ, सोनामाखी चीतेकी जड़, हाथीशुण्डीकी जड, अतीस, सोंठ, मिरच और पीपल ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग लेकर सबको एकत्र बारीक खरलकर अदरखके रसमें तीन दिनतक और निर्गुण्डी और भाँगके रसमें क्रमसे तीन तीन दिनतक खरल करके काँचकी आतसी शीशीमें भरकर वालुकायन्त्रमें पकावे । दो प्रहरके पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकरके अदरखके रसमें खरल करके सुखालेवे । यह श्रीशंकरमहाराजका कहा हुआ मृतसंजीवननामक रस है । इसके सेवन करनेसे मृतप्राय सन्निपातरोगी भी जीवित होजाताहै । सन्निपातको नष्ट करनेवाला इससे उत्तम और कोई रस नहीं है । इस रसको सेवन करानेसे प्रथम अघोर मंत्रके द्वारा शिवजीका पूजन और रसको अभिमंत्रित करके सुरक्षित करलेना चाहिये ॥ ३३–३८ ॥

सन्निपातभैरव रस ।

हिङ्गुलस्य विशुद्धस्य सार्द्धतोलचतुष्टयम् ।
गन्धकस्य विषस्यापि प्रत्येकं तोलकद्वयम् ॥ ३९ ॥
समाषकद्वयं चैव कनकात्तोलकत्रयम् ।
माषैकाधिकतोलैकं टङ्कणस्य तथैव च ॥ १४० ॥
सम्मर्द्य जम्बीररसैर्वटीं छायाविशोषिताम् ।
गुञ्जैकापरिमाणां तु कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ४१ ॥
एकां तु भक्षयेत्तासां गोलयित्वाऽऽर्द्रकद्रवैः ।
घोरे त्रिदोषे दातव्यः सन्निपातकभैरवः ॥ ४२ ॥

" ॐ अघोरेभ्यश्च घोरेभ्यश्च घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः । सर्वेभ्यो नमोस्तु रुद्ररूपेभ्यः । " इति मन्त्रेण रक्षणं पूजनं च । अघोरमन्त्रेण अन्यत्रापि रसकार्यमन्यथा दोषोऽस्ति ॥

शुद्ध सिंगरफ साढेचार तोले, शुद्ध गन्धक दो तोले दो मासे, शुद्ध वत्सनाभ २ तोले २ मासे, धतूरेके बीज ३ तोले और सुहागा एक तोला एक माशा इन सबको जम्बीरीनींबूके रसमें खरलकरके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इनमेंसे घोर सन्निपातज्वरमें एक एक गोली अदरखके रसमें मिलाकर रोगीको सेवन कराना चाहिये । यह रस सन्निपातज्वरको नष्ट करनेके लिये विशेष उपयोगी है ॥ ३९-१४२ ॥

सूचिकाभरणरस ।

रसगन्धकनागं च विषं स्थावरजङ्गमम् ।
मात्स्यवाराहमायूरच्छागपित्तैश्च भावयेत् ॥ ४३ ॥
सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।
सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातकुलान्तकः ।
"सर्षपमात्रया आर्द्रकस्वरसेन खादेत्" ॥ ४४ ॥

पारे गन्धककी कज्जली २ भाग, एवं सीसेकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया और काले साँपका विष ये प्रत्येक एकएक भाग लेकर सबको रोहू मछली, सूअर, मोर और बकरे इनके पित्तमें क्रमसे एकएक दिनतक खरल करे तो सूचिकाभरणरस तैयार होता है । इसको सुईके अग्रभागसे लेकर १ सरसोंतककी मात्राको अदरखके रस और मधुके अनुपानसे सेवन करावे । यह रस सब प्रकारके सन्निपातज्वरोंको नष्ट करदेता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पुनः सूचिकाभरणरस ।

अमृतं गरलं दारु सर्वतुल्यं च हिङ्गुलम् ।
पञ्चपित्तेन संमर्द्य सर्षपाभां वटीं चरेत् ॥ ४५ ॥
वटिका सूचिकाग्रेण सन्निपातकुलान्तकृत् ।
शैत्यार्थं तिलतैलं च भोजनं दधिभक्तकम् ॥ ४६ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, काले साँपका विष और सोमल विष ये प्रत्येक एक एक भाग और सिंगरफ तीन भाग लेकर सबको एकत्र पञ्चपित्तों (रोहू मछली, सूअर भैंसा, बकरा, और मोर इन पाँचोंके पित्तों) में क्रमसे एकएक दिनतक खरल करके सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एक एक गोली सुईके अग्रभागसे उठाकर नारियलके जलके साथ सेवन करावे । सेवनके पश्चात् रोगीके शरीरपर तिलके तेलकी मालिश करावे और दही, भातका पथ्य देवे । यह रस भी सम्पूर्ण सन्निपातज्वरको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

बृहत्सूचिकाभरणरस ।

रसगन्धकनागाभ्रं विषं स्थावरजङ्गमम् ।
मात्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ ४७ ॥
सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।
दातव्यः सूचिकाग्रेण पयःपेटीरसेन च ॥ ४८ ॥
त्रयोदशसन्निपाते विषूच्यामतिसारके ।
त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत्कुशलो भिषक् ॥ ४९ ॥
पयःपेटीशतं दद्यात् भोजनं दधिभक्तकम् ।
तथा सुभर्जितं मांसं लेपनं तिलचन्दनैः ॥
रोगिणो यत्प्रियं द्रव्यं तस्मै तच्च प्रदापयेत् ॥ १५० ॥

पारा और गन्धककी कज्जली, सीसा, अभ्रक, स्थावरविष और जंगम (कृष्ण सर्पका) विष प्रत्येक समान भाग लेकर रोहूमछली, भैंसा, मोर और बकरेके पित्तमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना देके सरसोंकी समान गोलियां बनाकर सुईकी नोकसे उठाकर इसको नारियलके जलके साथ सेवन करावे । इस रसको तेरह प्रकारके सन्निपातज्वर, विषूचिका, अतिसार और त्रिदोषजनित कासरोग आदिमें सेवन कराना चाहिये. इसपर १०० नारियलोंका जल, दहीभात और घृतमें भुना हुआ मांस तथा जो वस्तु रोगीको प्रिय लगे वह उसको सेवन करनेके लिये दे और रोगीके शरीरपर तिलके तेल और चन्दनादिका प्रलेप करना चाहिये ॥१४७-१५०॥

पानीयवटिका ।

रसमाषकचत्वारि इष्टकागुण्डके ग्रहः ।
शोषयित्वा ततः शोध्य तीक्ष्णपर्णे तथाऽऽर्द्रके ॥ ५१ ॥
स्वर्णधुस्तूरसत्त्वे च वृद्धदारद्रवे तथा ।
कन्यकानिजसत्त्वे च रसशोधनमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
गन्धकं रसतुल्यं तु प्रक्षाल्य तण्डुलाम्बुना ।
कृत्वा तैलसमं दार्व्यां निर्वाप्य चित्रकद्रवे ॥ ५३ ॥
द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा लौहचूर्णस्य माषकम् ।
सुवर्णमाक्षिकं चापि तत्र लौहसमं ददेत् ॥ ५४ ॥

कृत्वा कण्टकवेध्यं तु ताम्रं कज्जललेपितम् ।
मुहूर्तमध्यतस्ताम्रं द्रुतं चूर्णत्वमाप्नुयात् ॥ ९५ ॥
एकीकृत्य तु तत्सर्वं ततः प्रस्तरभाजने ।
मर्दयेत्ताम्रदण्डेन दत्त्वा चैषां निजद्रवम् ॥ ९६ ॥

पारा ४ माशे लेकर ईंटके चूर्णके साथ मिलाकर खूब घोटे, फिर उस समस्त चूर्णको निकालकर और उसमेंसे पारेको अलग करके कमरख, अदरख, काले धतूरेके पत्ते, विधारेकी जड और घीग्वार इन प्रत्येकके स्वरसमें क्रमसे मर्दन करके सुखाताजाय; पारेको शुद्ध करनेकी यह क्रिया सर्वोत्तम है। इसके पश्चात् ४ माशे गन्धक लेकर प्रथम चावलोंके जलमें धोवे, फिर उसको लोहेकी करछीमें रखकर अग्निपर तपावे, जब वह पिघलकर तेलकी समान पतली हो जाय तब उसे चीतेके काढेमें छोडदेवे। इस प्रकार शुद्ध कियेहुए पारे और गन्धकको लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करलेवे। फिर शुद्ध ताँबेके कण्टकवेधी सूक्ष्मपत्रोंपर उस कज्जलीका लेप करके उन पत्रोंको हाँडीमें बन्दकर चूल्हेपर रखकर अग्नि देवे। इस प्रकारसे मुहूर्त्त-भरमें ही ताँबेकी उत्तम भस्म हो जाती है। उक्त विधिसे तैयार की हुई ताम्रभस्म १ माशा, लोहभस्म १ माशा और स्वर्णमाक्षिकभस्म १ माशा लेकर तीनोंको पत्थरके खरलमें डालकर निम्नलिखित ओषधियोंके रसके साथ ताँबेकी मुसलीसे खरल करे ॥ १५१-१५६ ॥

प्रथमे केशराजश्च द्वितीये ग्रीष्मसुन्दरः ।
तृतीये भृङ्गराजश्च चतुर्थे भेकपार्णिका ॥ ९७ ॥
पञ्चमे च निसुन्दारःषष्ठे च रसपूर्त्तिका ।
सप्तमे पारिभद्रश्च अष्टमे रक्तचित्रकः ॥ ९८ ॥
शक्रासनं च नवमे दशमे काकमाचिका ।
एकादशे तथा नीला द्वादशे हस्तिशुण्डिका ॥ ९९ ॥
अमीषामोषधीनां तु प्रत्येकं तु पलद्रवम् ।
मर्दयेत्तु प्रयत्नेन द्वादशाहेन साधकः ॥ १६० ॥

पहले दिन कुकुरभाँगरेके रसमें, दूसरे दिन ग्रीष्मसुन्दर (शालिशाक), तीसरे दिन भाँगरा, चौथे दिन मण्डूकपर्णी, पाँचवें दिन सिंहालू, छठे दिन मालकाँगनी, सातवें दिन फरहद, आठवें दिन लालचीता, नववें दिन भाँग, दसवें दिन मकोय, ग्यारहवें दिन नीलीवृक्ष और बारहवें दिन हाथीशुण्डी इन ओषधियोंका चार चार

तोले रस डालकर इस प्रकार बारह दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करे॥५७-६०॥

ततः पारदमानं तु दत्त्वा त्रिकटुगुण्डकम् ।
वटिकां राजिकातुल्यां छायाशुष्कां समाचरेत् ॥ ६१ ॥
ततः शम्बुकजे पात्रे कर्त्तव्यावटिका त्वियम् ।
शरावे शङ्खपात्रे वा कृत्वा सलिलगोलितम् ॥ ६२ ॥
अत्यन्तदोषदुष्टाय ज्ञानशून्याय रोगिणे ।
ऊर्ध्वयोनिं समभ्यर्च्य प्रदद्याद्वटिकाद्वयम् ॥ ६३ ॥
ढक्कयेत्तं ततः पश्चान्नरं स्थूलपटादिभिः ।
मलमूत्रागमात्सद्यः स साध्यो भवति द्रुतम् ॥ ६४ ॥

फिर उसमें चार माशे त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर राईकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इन गोलियोंमेंसे दो दो गोली लेकर घोंघा, शंख, सीप या शराब (सकोरा) में रखकर, जलमें घोलकर और ब्रह्माका यथाविधि पूजन करके रोगीको सेवन करावे । जिस सन्निपातज्वरमें रोगीके वातादि दोष अत्यन्त दुष्ट होगये हों और जो बिलकुल ज्ञानशून्य हो ऐसे रोगीको यह औषध सेवन कराकर तत्काल मोटा और गरम कपडा उढाकर ढकदेवे । इसके पश्चात् यदि रोगी शीघ्रही मलमूत्रका त्याग करे तो उसको साध्य समझना चाहिये ॥ ६१-६४ ॥

दध्यन्नं तु ततो दद्यात्पिबेद्वारि यथेच्छया ।
दद्याद्वातहरं तैलमभ्यङ्गाय सदैव हि ॥
चिरज्वरे पिबेद्वारि पञ्चमूलीप्रसाधितम् ॥ ६५ ॥
ग्रहण्यां रक्तपाते च पिबेदतिविषां गदी ।
पिबेत् पर्पटजं वारि घोरे कम्पज्वरे तथा ॥
तथा ज्वरातिसारे च जीरकस्य जलं पिबेत् ॥ ६६ ॥
मन्दाग्नौ कामलायां च संग्रहग्रहणीगदे ।
कासे श्वासे सदा कार्या पानीयवटिका त्वियम् ॥ ६७ ॥

तदनन्तर रोगीको दहीभातका भोजन और यथेच्छ जलपान करावे । तथा वातनाशक महानारायणादि तेलोंकी शरीरपर मालिश करावे । इसपर पुराने

ज्वरमें पंचमूलके काढेका, संग्रहणी और रक्तातिसाररोगमें अतीसके क्वाथ, घोर कम्पज्वरमें पित्तपापडेके क्वाथ और ज्वरातिसार, मन्दाग्नि, कामला, संग्रहणी, खाँसी, श्वास आदि रोगोंमें जीरेके क्वाथका अनुपान करना चाहिये। इस रसको पानीयवटिका कहते हैं ॥ ६५-१६७ ॥

सिद्धफलापानीयवटिका ।

अनाथनाथो जगदेकनाथस्त्रिलोकनाथः प्रथमं प्रसन्नः ।
जगाद पानीयवटीं सुपट्वीं तामेव वक्ष्यामि गुरुप्रसादात्॥१६८

जयार्कस्वरसं चैव निर्गुण्डीवासकं तथा ।
वाटचालकं करञ्जं च सूर्यावर्त्तकचित्रकौ ॥ ६९ ॥
ब्राह्मीं वनं सर्षपं च भृङ्गराजं विनिक्षिपेत् ।
दन्ती च त्रिवृता चैव तथाऽऽरग्वधपत्रकम् ॥ १७० ॥
सहदेवामरं भण्डी तथा त्रिपुरभण्डिका ।
मण्डूकपर्णी पिप्पल्यौ द्रोणपुष्पकवायसी ॥ ७१ ॥
गुञ्जाकिनी केशराजस्तथा योजनमल्लिका ।
आसारणेति विख्यातो धुस्तूरः कनकस्तथा ॥ ७२ ॥
त्रैलोक्यविजया चैव तथा श्वेताऽपराजिता ।
प्रत्येकं कार्षिकं चैव रसमाकृष्य भाजने ॥ ७३ ॥
एकैकं च रसं दत्त्वा मर्दयेल्लोहदण्डतः ।
चण्डातपे च संशोष्य क्षीरं तत्र पुनः क्षिपेत् ॥ ७४ ॥
स्नुहीक्षीरं चार्कदुग्धं वटदुग्धं तथैव च ।
प्रत्येकं कार्षिकं दत्त्वा मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥ ७५ ॥
सुमर्दितं च तं ज्ञात्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ।
द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वस्त्रपूतानि कारयेत् ॥ ७६ ॥

अनाथोंके नाथ, जगत्पति, त्रिलोकीनाथ भगवान्ने प्रसन्न होकर पूर्वकालमें जिस सर्वरोगापहारिणी और सर्वसिद्धिप्रदायिनी पानीयवटीको वर्णन किया है, उसीको मैं श्रीगुरुमहाराजके चरणोंकी कृपासे वर्णन करताहूँ—अरणी, आक, सिंहालू, अडूसा, खिरैंटी, छोटीकरंज, हुलहुल, चीता, ब्राह्मी, वनसरसों, भाँगरा, दन्ती, निसोत, अमलतासके पत्ते, सहदेई, अमरकन्द, मञ्जीठ, त्रिपुर-

भण्डिका (बङ्गदेशप्रसिद्ध बडभाँट), मण्डूकपर्णी, पीपल, गजपीपल, गूमा, मकोय, घुँघुची, कुकुरभाँगरा, मदनमाली (एक प्रकारका सुगन्धितपुष्प), आसारण, स्वर्ण धतूरा, भाँग और श्वेत अपराजिता इन समस्त औषधियोंके रसको एक एक कर्ष परिमाण लेकर प्रत्येकके रसको क्रमसे पत्थरके खरलमें डालकर लोहेकी मूसलीसे खरल करे। फिर सबको प्रचण्ड धूपमें सुखाकर उसमें थूहरका दूध, आकका दूध, और बडका दूध प्रत्येक एक एक कर्ष डालकर अच्छेप्रकारसे मर्दन करके गोलासा बनालेवे। इसके पश्चात् उसमें निम्नलिखित औषधियोंको खूब बारीक पीसकर कपड़छान करके डाले ॥ ६८-१७६ ॥

दग्धहीरं चातिविषां कोचिलामभ्रकं तथा ।
पारदं शोधितं चैव गन्धकं विषमाधुरम् ॥ ७७ ॥
हरितालं विषं चैव माक्षिकं च मनःशिला ।
प्रत्येकं च चतुर्माषं सर्वं चूर्णीकृतं च तत् ॥ ७८ ॥
प्रक्षिप्य मर्दयेत्सर्वं शोषयित्वा पुनः पुनः ।
सुमर्दितं च तद् दृष्ट्वा चाङ्गेरीस्वरसेन च ॥ ७९ ॥
उत्थाप्य भेषज दृष्ट्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ।
तिलप्रमाणा गुटिकाः कारयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १८० ॥

हीरेकी भस्म, अतीस, कुचला, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली, शुद्ध मीठातेलिया, हरताल, सर्पविष, सोनामाखी और मैनसिल, इन सबको चार चार माशे परिमाण मिलाकर बारम्बार खरलकरे और धूपमें सुखावे। जब औषधि उत्तमप्रकारसे घुटकर तैयार होजाय तब उसको चूका शाकके रसमें घोटे। घुटते २ जब उसका गोलासा बनजाय तब उसकी तिलकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ७७-१८० ॥

त्रिदोषजनितो वैद्यमुक्तोऽपि बहुसम्मतः ।
लंघनैर्वालुकास्वेदैः प्रक्रान्तो दीनदर्शनः ॥ ८१ ॥
सम्पूज्य करुणाधारं प्रणम्य च खसर्पणम् ।
शरावे वारिणा घृष्ट्वाऽऽविंशतिं वटिकां पिबेत् ॥ ८२ ॥
पीतं तद्भेषजं पश्चाद्वस्त्रैराच्छादयेन्नरम ॥
रसलग्नं वपुर्ज्ञात्वा दद्याद्वारि सुशीतलम् ॥ ८३ ॥

शरावप्रमितं वारि पातव्यं च पुनः पुनः।
सन्निपातज्वरं चैव दाहं चैव सुदारुणम् ॥ ८४ ॥
कासं श्वासं च हिक्कां च विड्ग्रहं चाश्मरीं जयेत्।
मूत्ररोगविबन्धे तु दातव्यं क्षीरसंयुतम् ॥ ८५ ॥
पञ्चतृणकृतं क्वाथं दातव्यं च पुनः पुनः।
पानीयवटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्मिता ॥
लोकानामुपकाराय सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ८६ ॥

जो रोगी घोर सन्निपातज्वरमें बेहोश पडा हो, जिसको वैद्योंने असाध्य जानकर त्याग दिया हो, जिसको लंघन वालुकास्वेद आदि उपचारोंके द्वारा भी कुछ लाभ न हुआ हो और जो अत्यन्त दीन दशामें हो ऐसे रोगीको प्रथम करुणानिधान शंकर भगवान्का पूजन और सूर्यदेवको प्रणाम करके फिर इस रसकी दो या तीन गोलियाँ सकोरेमें पानीके साथ घिसकर सेवन करावे। यदि रोगकी अधिक प्रबलता प्रतीत हो तो २० गोलीतक इसी विधिसे सेवन करानी चाहिये और रोगीको औषध सेवन कराकर तत्काल गरम व मोटे वस्त्रसे ढकदेना चाहिये। जब औषधि रोगीके शरीरमें व्याप्त होजाय तब उसको थोडी २ देर पीछे एक एक सकोरा शीतलजल पान करावे। यह रस इस प्रकार सेवन करनेपर घोर सन्निपातज्वर, अत्यन्त प्रबलदाह खाँसी, श्वास, हिचकी, मलका, अवरोध और अश्मरी (पथरी) इन सब रोगोंको नष्ट करता है। मूत्रकृच्छ्ररोगमें इस रसको दूधके साथ सेवन कराकर पञ्चतृणमूल (कुश, काँस, रामसर, कालीईख और शालिधान इन औषधियों) का क्वाथ बारम्बार पान कराना चाहिये। सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करानेवाली इस पानीयवटीको जगत्का उपकार करनेके निमित्त श्रीशंकरभगवान्ने निर्माण किया है ॥ १८१-१८६ ॥

चिन्तामणिरस।

सूतं गन्धकमभ्रकं सुविमलं सूतार्द्धभागं विषं
तत्र्यंशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम्।
पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं
दत्त्वा कुक्कुटसंज्ञकं सह दलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥ ८७ ॥
भागार्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं
गुञ्जा त्र्यूषणसिन्धुचित्रकयुता सर्वाञ्ज्वरान्नाशयेत्।

शूलं संग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनां
तापे सेचनकारिणां गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः ॥
"अयमेव रसो देयो मृतकल्पे गदातुरे" ॥ ८८ ॥

पारा, गन्धक दोनोंकी कज्जली और अभ्रकभस्म प्रत्येक एक एक तोला, शुद्धमीठा तेलिया ६ माशे और जमालगोटा डेढ तोला सबको जम्बीरी नींबूके रसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके गोलासा बनालेवे । उस गोलेको नागरबेलके तीन पानोंमें लपेटकर और मिट्टीकी मूषामें रखकर कपरौटी कर देवे । पश्चात् भूमिमें गड्ढा खोदकर उसमें संपुटको रखकर कुक्कुटपुट देवे । स्वाँगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर पानोंसहित चूर्ण करलेवे । फिर उसमें जमालगोटे ६ माशे और शुद्ध वत्सनाभ ६ माशे डालकर अदरखके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक एक गोली सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक और चीतेके समानभाग चूर्णके साथ अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करे । यह रस सर्वप्रकारके ज्वर, शूल, संग्रहणी और समस्त उदररोगोंको नष्ट करताहै । इस रसपर दही और भातका पथ्य सेवन करे और शरीरमें अधिक ताप होनेपर जलसेचन आदि शीतल उपचार करे । यह रस मृतप्राय रोगीको भी दिया जा सकताहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

द्वितीय चिन्तामणिरस ।

रसविषगन्धकटङ्कणताम्रयवक्षारं व्योषम् ।
जयपालस्य बीजं च क्षौद्रं दत्त्वा शतं वारान् ॥ ८९ ॥
सम्मर्द्य रक्तिकमिता वटिकाः कुर्याद्भिषक् प्राज्ञः ।
शुण्ठीपिष्टेन सममेका द्वे वाऽथवा तिस्रः ॥ १९० ॥
संप्राश्य नारिकेलीजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत ।
भेदानन्तरमेव प्रक्षालितभक्तं तक्रमुपयोज्यम् ॥ ९१ ॥
शेषात्सैन्धवजीरं तक्रं भक्तं प्रयोक्तव्यम् ।
प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथाऽजीर्णं विषमं च ॥ ९२ ॥
प्लीहानं चाध्मानं कासं श्वासं च वह्निमान्द्यं च ।
चिन्तामणी रसोऽयं किल नियतं भैरवेण निर्दिष्टः ॥ ९३ ॥

शुद्ध वत्सनाभ, सुहागा, ताम्रभस्म, जवाखार, पारे और गन्धककी कज्जली दो भाग, सोंठ, मिरच, पीपल और जमालगोटा प्रत्येक औषधि एक एक भाग

इन सबको एकत्र मधुके साथ सौवार खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक या दो अथवा तीन गोली सोंठके चूर्ण और मधुके साथ रोगीको सेवन कराकर नारियलके जलका अनुपान करावे। औषध सेवनके पश्चात् विरेचन होजानेपर रोगीको तक्रके साथ भातका माँड सेवन करावे। फिर सैंधानमक और जीरेका चूर्ण डालकर तक्रके साथ भातका भोजन करावे। इस प्रकार इस रसको सेवन करनेसे सन्निपातज्वर, अजीर्ण, विषमज्वर, प्लीहा, अफारा, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि आदि समस्त व्याधियाँ शीघ्र शमन होती हैं। इस चिन्तामणिरसको श्रीभैरवजीने निर्दिष्ट किया है ॥ ८९-१९३ ॥

रसराजेन्द्र।

पलं शुद्धस्य सूतस्य पलं ताम्रमयोरजः।
अभ्रं नागं पलं वङ्गं पलं गन्धकतालकम् ॥ ९४ ॥
पलं शुद्धविषं चूर्ण सर्वमेकत्र कारयेत्।
मर्दयेत काकमाच्याश्च तत्र साररसेन च ॥ ९५ ॥
मात्स्यवाराहमायूरच्छागमाहिषपित्तकैः।
मर्दयेद्भिन्नभिन्नैश्च त्रिकटोरम्बुभिस्तथा ॥ ९६ ॥
आर्द्रकस्वरसैः पश्चात् शतवारान्मुहुर्मुहुः।
सिद्धोऽयं रसराजेन्द्रो धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥ ९७ ॥
गुञ्जामात्रं रसं दद्यात् सुरसारससंयुतम्।
मेघधाराप्रवाहेण धारितं वारि मस्तके ॥ ९८ ॥
अनिवार्यो यदा दाहस्तदा देया च शर्करा।
भोजन दधिसंयुक्तं वारमेकं तु दापयेत् ॥ ९९ ॥
ईश्वरेण हतः कामः केशवेन च दानवाः।
पावकेन हतं शीतं सन्निपातं रसस्तथा ॥ २०० ॥

शुद्ध पारा एक पल, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रक, सीसा, वङ्ग, हरताल, शुद्धगन्धक और शुद्ध वत्सनाभ ये प्रत्येक ओषधि एकएक पल लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले, फिर सबको कज्जलीसहित एकत्र खरल करके मकोयके स्वरसमें घोटे, पश्चात् रोहूमछली, सूकर, मोर, बकरा और भैंसा इन पाँचोंके पित्तमें पृथक् पृथक् क्रमसे मर्दन करके त्रिकुटेके क्राथमें खरल करे। फिर अदरखके स्वरसमें सौवार घोटे तो यह रस सिद्ध होता है। इसको

श्रीधन्वन्तरिभगवान्ने प्रकाशित किया है । यह रस एक एक रत्ती परिमाण तुलसीके रसके साथ सेवन करावे । इसके सेवन करनेके पश्चात् सिरपर मूसलधार वर्षाके समान शीतल जलकी धारा छोड़े । जब इस प्रकारसे भी शरीरकी ज्वाला शान्त न हो तब कभी कभी खाँडका शर्बत देवे और एकवार दही भातका भोजन करावे । जैसे शिवजीने कामदेवको और विष्णुने दानव समूहको नष्ट करदिया था और जैसे अग्निके द्वारा शीत तत्काल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार यह रस सन्निपातज्वरको नष्ट करदेता है ॥ ९४–२०० ॥

पंचपित्तयुक्त रसका बलवत्त्व ।

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना ।
जलसेकावगाहाद्यैर्बलिनस्ते तु नान्यथा ॥ १ ॥
रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः ।
तरुणदधि सिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ २ ॥

जो रसादि ओषधियाँ शिवजीने पित्तयुक्त कही हैं अर्थात् जिनमें पित्तकी भावना दी जाती है उन ओषधियोंको सेवन करानेके पश्चात् रोगीके शरीरपर तैलका मर्दन, जलसेचन आदि शीतोपचार करनेसे वे अधिक बलवती होकर विशेष गुण करती हैं । अन्यथा कुछ फलप्रद नहीं होती । रसादि ओषधियोंके सेवनसे शरीरमें दाह होनेपर देहपर शीतल जलका सेचन, चन्दन, कपूर आदिका लेपन, शीतल मन्द सुगन्ध वायुका सेवन, दही और मिश्री मिलाकर भातका भोजन, नारियलका जलपान करना मधुर और शीतल द्रव्योंका भक्षण और इसी प्रकार औरभी तरह तरहके शीतल उपचार करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

पञ्चवक्त्ररस ।

गन्धेशटङ्कमरिचं विषं धुस्तूरजैर्द्रवैः ।
दिनं विमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्त्रो भवेद्रसः ॥
द्विगुञ्जमार्द्रनीरेण त्रिदोषज्वरहृत्परः ॥ ३ ॥

पारे, गन्धककी कज्जली २ भाग, सुहागा, मिरच और शुद्ध वत्सनाभ ये प्रत्येक एक एक भाग लेकर सबको धतूरेके पत्तोंके रसमें एक दिनतक खरल करके सुखा-

लेवे। इसको पञ्चवक्र रस कहते हैं। इसकी मात्रा दो रत्ती परिमाण, अनुपान अदरखका रस। यह रस सन्निपातज्वरको हरनेके लिये अत्युत्तम है॥ ३॥

त्रिदोषनीहारसूर्यरस।

रसेन गन्धं द्विगुणं कृशानुरसैर्विमर्द्याष्टदिनानि घर्मे।
रसाष्टभागं त्वमृतं च दद्याद् विमर्दयेद्वह्निरसेन किंचित्॥
पित्तैस्तु सम्भावित एष देयस्त्रिदोषनीहारविनाशसूर्य्यः॥४॥

शुद्धपारा १ भाग और शुद्धगन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके चीतेके रसमें ९ दिनतक घोंटे, फिर धूपमें सुखावे। इसके पश्चात् उसमें पारेसे अष्टमांश शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर चीतेके थोड़े रसमें खरलकरके उक्त पाँचों पित्तोंकी भावना देवे तो यह रस सिद्ध होता है। यह रस सन्निपातरूप कुहरेको विनाश करनेके लिये सूर्यके समान है॥ ४॥

सन्निपातसूर्यरस।

हिङ्गुलं गन्धक ताम्रं मरिचं पिप्पली विषम्।
शुण्ठी कनकबीजं च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ५॥
विजयापत्रतोयेन त्रिदिनं भावयेत्सुधीः।
द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन चार्कक्वाथं पिबेदनु॥ ६॥
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान्घोरान्सुदारुणान्।
वातिक पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं च विशेषतः॥ ७॥

सिंगरफ, गन्धक, ताँबा, मिरच, पीपल, वत्सनाभ, सोंठ और धतूरेके बीज इन ओषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको भाँगके पत्तोंके रसमें तीन दिनतक भावना देवे। इस रसको दो दो रत्ती परिमाण पानमें रखकर भक्षण करे और ऊपरसे आकके क्वाथका अनुपान करे। यह रस अत्यन्त दारुण और घोर सन्निपातज्वर, विशेषकर वातज, पित्तज और श्लैष्मिक ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है॥ ५–७॥

अघोरनृसिंहरस।

भागैकं मृतताम्रस्य द्विभागं मृतलोहकम्।
त्रिभागं मृतवङ्गं च चतुर्भागं मृताभ्रकम्॥ ८॥

माक्षिकं रसगन्धौ च तथा शुद्धा मनःशिला ।
चत्वार्येतानि ताम्रस्य प्रत्येकं तुल्यमेव च ॥ ९ ॥
गरलं चाभ्रतुल्यं स्यात् त्रिकटुश्चाभ्रतुल्यकः ।
एतत्सर्वं समं देयं विषमाख्यं तथैव च ॥ २१० ॥
एतत्सर्वस्य द्रव्यस्य द्विगुणं कालकूटकम् ।
मात्स्यमाहिषमायूरघृष्टिपित्तैर्विभावयेत् ॥ ११ ॥
चित्रकस्य द्रवेणैवं प्रत्येकं याममात्रकम् ।
सर्षपाभा वटी कार्या शोषयेदातपे ततः ॥ १२ ॥

ताँबेकी भस्म १ तोला, लोहभस्म २ तोले, वङ्गभस्म ३ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, एकतोला पारद और एक तोला गन्धककी कज्जली, शुद्ध मैनसिल एक तोला काले साँपका विष ४ तोले, त्रिकुटा ४ तोले इन सबकी बराबर अर्थात् २२ तोले कुचला और इन समस्त औषधियोंसे दुगुना अर्थात् ८८ तोले शुद्ध मीठा तेलिया लेवे सम्पूर्ण औषधियोंको एकत्र पीसकर रोहू मछली, भैंसा, मोर और सूकर इन चारोंके पित्तमें पश्चात् चीतेके रसमें क्रम २ से एक एक प्रहरतक भावना देवे, फिर सरसोंके बराबर गोलियाँ बनाकर धूपमें सुखालेवे ॥ ८–२१२ ॥

दापयेद्वटिकामेकां पयःपेटीरसेन च ।
त्रयोदशे सन्निपाते विषूच्यामतिसारके ॥ १३ ॥
त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत्कुशलो भिषक् ।
पयःपेटीशतं दद्याद्भोजनं दधिभक्तकम् ॥ १४ ॥
तथा भर्जितमत्स्यं च लेपनं तिलचन्दनैः ।
रोगी वाञ्छति यद्द्रव्यं तत्सर्वं परिदापयेत् ॥
अघोरनृसिंहो नाम रसानामुत्तमो रसः ॥ १५ ॥

इनमेंसे वैद्यको एक एक गोली नारियलके जलके साथ सेवन करानी चाहिये । ये गोलियाँ तेरह प्रकारके सन्निपातज्वर, विषुचिका, अतिसार और त्रिदोषजनित खाँसी आदि रोगोंमें विशेष उपकार करती हैं । इस रसको सेवन कराकर रोगीको सौ नारियलोंका जल वारंवार पान करावे । दही और भात एवं भुनी मछलीका भोजन करावे और उसके शरीरपर तिल और चन्दन आदिका लेप करावे । रोगीकी

जिस २ वस्तुको खानेकी इच्छा हो वही वस्तु उसको देवे। यह अघोरनृसिंहनामक रस सम्पूर्ण रसोंमें उत्तम है॥ १३–१५॥

प्रतापतपनरस।

गन्धकं हिङ्गुल तालं सूतकं लौहटङ्कणम्।
खर्परं सार्जिकाक्षारं माञ्जिष्ठं हिंगुलं समम्॥ १६॥
रसेन मर्दितं पिण्डं निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोः।
अष्टयामं पचेत्कुप्यां निरुध्य सिकताह्वये॥ १७॥
ततः सिद्धं समादाय रक्तिकामार्द्रकेण च।
सन्निपातविनाशाय प्रतापतपनो रसः॥
दधिभक्तं तथा दुग्धं छागमांसं च भोजयेत्॥ १८॥

समानभाग पारे और गन्धककी कज्जली २ भाग, सिंगरफ, हरताल, लोह, सुहागा, खपरिया, सज्जीखार और मंजीठका चूर्ण ये प्रत्येक एक एक भाग ले कर सबको निर्गुण्डी और हाथीशुण्डीके रसमें क्रमसे मर्दन करके गोलासा बनालेवे। उस गोलेको आतसीशिशीमें भरकर कपरौटीकरके आठ प्रहरतक वालुकायन्त्रमें पकावे। जब वह उत्तमप्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करले। इस रसको एक एक रत्ती परिमाण अदरखके रसके साथ सेवन करावे और दही भात, दूध तथा बकरीके मांसका पथ्य देवे। यह प्रतापतपनरस सन्निपातज्वरको विनाश करनेके लिये परमोपयोगी है॥ १६–१८॥

प्राणेश्वररस।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं विषसंयुतम्।
समं सम्मादतं तालमूलीपीरैरुयहं बुधः॥ १९॥
पूरयेत्कूपिकान्ते च मुद्रयित्वा च शोषयेत्।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा च शोषयेत्॥ २२०॥
पुटेत्कुण्डप्रमाणेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
गृहीत्वा कूपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः॥ २१॥
अजाजीजीरकं हिंगुसर्जिकाटणङ्कं जगत्।
गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका॥ २२॥
मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं रसमानतः।
एषां कषायेण पुनर्भावयेत्सप्तधाऽऽतपे॥ २३॥

शुद्ध पारा, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म और शुद्ध मीठातेलिया चारों ओषधियोंको समान भाग लेकर मुसलीके रसमें तीन दिनतक खरल करे। फिर उसको आतसी शीशीमें भरकर उसके ऊपर मुद्रा करके धूपमें सुखावे। तदनन्तर सातवार कपरमिट्टी करे और प्रत्येक बार धूपमें सुखावे। फिर पुटपाक करे और स्वांगशीतल होनेपर ओषधिको शीशीमेंसे निकालकर एक दिनतक खरल करे। इसके पश्चात् कालाजीरा, जीरा, हींग, सज्जी, सुहागा, गोपीचन्दन (सौराष्ट्रदेशकी मिट्टी), गूगल, पाँचोंनमक, जवाखार, अजवायन, मिरच और पीपल ये प्रत्येक ओषधि पारेकी बराबर लेकर इनके क्वाथमें पृथक्क् पृथक्क् सात सात बार भावना देदेकर धूपमें सुखावे ॥१९-२२३॥

नागवल्लीदलयुतं पंचगुञ्जं रसेश्वरम् ।
दद्यान्नवज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिबेदनु ॥ २४ ॥
प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपातप्रकोपनुत् ।
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मशूले त्रिदोषजे ॥ २५ ॥
वाञ्छितं भोजनं दद्यात्कुर्याच्चन्दनलेपनम् ।
तापोद्रेकस्य शमनं बलाधिष्ठानकारकम् ॥
भवेन्नैवात्र सन्देहः स्वास्थ्यं च लभते नरः ॥ २६ ॥

इस रसको अत्यन्त उग्र नवीनज्वरमें पाँच रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करावे और ऊपरसे मन्दोष्ण जल पान करावे। यह प्राणेश्वर नामक रस सन्निपातके प्रकोपको शीघ्र नष्ट करता है। जिस ज्वरमें पहले दाह होकर फिर शीतका प्रकोप हो उस ज्वरमें तथा गुल्म, शूल और अन्यान्य त्रिदोषजनित रोगोंमें यह प्राणेश्वर रसही सेवन कराना चाहिये। इसको सेवन करानेके पश्चात् रोगीको यथेच्छ भोजन देवे और उसके शरीरपर चन्दनादिका प्रलेप करावे। इससे तापका उद्रेक शान्त होता है और बलकी वृद्धि होती है। इसके द्वारा मनुष्य निस्सन्देह आरोग्यलाभ करता है ॥ २२४-२२६ ॥

सन्निपातभैरव ।

पारदं गन्धकं तालं वत्सनाभं त्रिभिः समम् ।
दारुमूषं च गरलं सर्वस्य समहिङ्गुलम् ॥ २७ ॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक् ।
सन्निपाते वटीमेकामार्द्रद्रावैः प्रदापयेत् ॥
रसो महाप्रभावोऽयं सन्निपातस्य भैरवः ॥ २८ ॥

पारा, गन्धक, और हरताल प्रत्येक एक एक तोला, वत्सनाभ विष ३ तोले, काष्ठविष १ तोला, सर्पविष १ तोला और सबकी बराबर अर्थात् ८ तोले सिंगरफ लेकर सबको जलके साथ एकत्र खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे एक गोली अदरखके रसके साथ सन्निपातज्वरमें देवे। यह रस सन्निपातज्वरको विनाश करनेके लिये अत्यन्त प्रभावशाली है ॥ २७ ॥ २८ ॥

द्वितीय सन्निपातभैरवरस।

रसं विषं गन्धकं च हरतालं पलत्रयम्।
जयपालं त्रिवृत्स्वर्णं ताम्रसीसाभ्रलौहकम् ॥ २९ ॥
अर्कक्षीरं लाङ्गली च स्वर्णमाक्षिकमेव च।
समं कृत्वा रसेनैषां त्रिंशद्वारं च मर्दयेत् ॥ ३० ॥
अर्कश्वेतोऽलम्बुषा च सूर्यावर्त्तश्च कारवी।
काकजङ्घा श्योणकश्च कुष्ठं व्योषविकङ्कतम् ॥ ३१ ॥
रवेर्मणिश्चन्द्रकान्तो निर्गुण्डी च महाजटा।
धुस्तूरदन्तीपिप्पल्यो दशाष्टाङ्गमिदं शुभम् ॥ ३२
रसतुल्यं प्रदातव्यं दत्त्वा तोयं चतुर्गुणम्।
शिष्टैकगुणतोयेन भावनाविधिरिष्यते ॥ ३३ ॥
भावनायां भावनायां शोषणं मुहुरिष्यते।
ततश्च वटिकां कृत्वा भैरवाय बलिं ददेत् ॥ ३४ ॥

"सर्वचूर्णसमं कृत्वा अर्कमूलादिपिप्पलीमूलान्तानामष्टदशानां मिलित्वा रसादिसामग्रीतुल्यानां चतुर्गुणजलैकगुणावशिष्टक्वाथेन त्रिंशद्वारमातपे भावनीयम्, प्रतिवारं यत्नेन शोषयित्वा कलायप्रमाणां वटिकां कृत्वा व्याध्यनुरूपमार्द्रकस्वरसेन ज्वरिणे दद्यात् ॥"

शोधितपारा, वत्सनाभ, गन्धक, हरताल, त्रिफला, जमालगोटे, निसोत, धतूरेके बीज, ताँबा, सीसा, अभ्रक, लोह, आकका दूध, कलिहारीकी जड़ और सोनामाखी इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल कर लेवे। फिर सफेद आक, लज्जावन्ती, हुलहुल, कालाजीरा, काकजंघा, सोनापाठा, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, कंटाई, सूर्यमणि और चन्द्रकान्तमणिके पुष्प, सिम्हालू, रुद्रजटा, धतूरा, दन्तीकी जड और पीपल इन अठारहों ओषधियोंको अष्टादशाङ्ग कहते हैं। इनको पारद आदि रसोंके बराबर भाग लेकर चौगुने जलमें डालकर पकावे, चतुर्थांश जल शेष

रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस क्वाथमें उक्त औषधिको ३० बार भावना देवे और प्रत्येक भावनाके पश्चात् सुखाता जाय । फिर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रथम श्रीभैरवजीको बलि प्रदान करके फिर इस रसकी एक एक गोली रोगके बलाबलके अनुसार रोगीको अदरखके रसके साथ सेवन करावे ॥ २९-२३४ ॥

रसोऽयं श्रीसन्निपातभैरवो ज्वरनाशनः ।
सर्वोपद्रवसंयुक्तं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ३५ ॥
सन्निपातज्वरं हन्ति जीर्णं च विषमं तथा ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च चातुर्थकमपि ध्रुवम् ॥ ३६ ॥
ज्वरं च जलदोषोत्थं सर्वदोषसमाकुलम् ।
भैरवस्य प्रसादेन जगदानन्दकन्दकः ॥ ३७ ॥
"विरेकानन्तरं शुण्ठीजीरकतोयप्रक्षालितान्नं दद्यात् ।
अजाते विरेके पुनरपि रसं दद्यात् । व्याधिनिवृत्तौ
कदाचित् वातपीडायां वातचिकित्सा कार्या ॥ ३८ ॥"

यह सन्निपातभैरवरस सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित सन्निपातज्वरको तथा जीर्णज्वर, विषमज्वर, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, चौथियाज्वर, जलदोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर और समस्त दोषोंसे युक्त ज्वरको निस्सन्देह नष्ट करता है । इस रसको सेवन करनेके पश्चात् विरेचन होनेपर रोगीको सोंठ और जीरेके जलसे सिद्धकिये हुए भातका भोजन देवे । यदि विरेचन न हो तो फिर यह रस सेवन करावे । इसके सेवनसे रोगके दूर हो जानेपर यदि वातकी पीडा होजाय तो वातव्याधिकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३५-३८ ॥

मृत्युञ्जयरस ।

सूतं गन्धकटङ्कणं शुभविषं धुस्तूरबीजं कटू
नीत्वा भागमथोत्तरद्विगुणितं चोन्मत्तमूलाम्बुना ।
कुर्यान्माषवटीं सुखातिसुखदां सर्वाञ्ज्वरान्नाशये-
देष श्रीशिवशासनात्प्रजनितः सूतश्च मृत्युञ्जयः ॥ ३९ ॥
नारिकेलसितायुक्तं वातपित्तज्वरं जयेत् ।
मधुना श्लेष्मपित्तोत्थं ज्वरं संनाशयेद् ध्रुवम् ॥
सन्निपातज्वरं घोरं नाशयेदार्द्रनीरतः ॥ ४० ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा ४ भाग, शुद्ध वत्सनाभ ८ भाग, धतूरेके बीज १६ भाग और त्रिकुटा ३२ भाग लेकर सबको एकत्र चूर्ण करके धतूरेकी जडके काथमें घोटकर उडदकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करती हैं। यह मृत्युञ्जयरस श्रीशिवजी महाराजने वर्णन किया है। इस रसको नारियलके जल और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वात-पित्तज्वर, मधुके साथ खानेसे कफ-पित्तज्वर और अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे घोर सन्निपातज्वर अवश्य नष्ट होता है॥ ३९-२४० ॥

श्रीसन्निपातमृत्युञ्जय रस ।

विष सूतकगन्धौ च पित्तं मत्स्यवराहयोः ।
आजमायूरपित्त च माहिषं चापि योजयेत् ॥ ४१ ॥
हरतालं च सव्योषं वानरीबीजसंयुतम् ।
अपामार्गं चित्रमूलं जयपालं च कल्कयेत ॥ ४२ ॥
एतत्सर्वं समांशेन अजामूत्रेण मर्दयेत् ।
माषेण सदृशी कार्या वटिका सद्भिषग्वरैः ॥ ४३ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, पारा, गन्धक, मछली, सूकर, बकरा, मोर और भैंसा इन पाँचोंका पृथक् २ पित्त, हरताल, सोंठ, मिरच, पीपल, कौंचके बीज, चिरचिटा, चीतेकी जड और जमालगोटे सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर बकरीके मूत्रमें खरल करके उडदकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ४१-४३ ॥

महाज्वरे महाशीते महाशीतज्वरेऽपि च ।
मज्जागते सन्निपाते विषूच्यां विषमज्वरे ॥ ४४ ॥
असाध्ये मानवे युञ्ज्यादेकाहज्वरनाशिनी ।
जलोदरे शैथिलाङ्गे नासास्रावे च पीनसे ॥ ४५ ॥
अजीर्णे मूर्च्छनाभावे श्लेष्मभावेऽतिदुर्जये ।
शोथकामलपाण्डवादिसर्वरोगापहारकः ॥ ४६ ॥

यह रस-अत्यन्त भयंकर ज्वर, अत्यन्त शी शीतज्वर, मज्जागतज्वर सन्निपातज्वर, विषूचिका, असाध्य विषमज्वर, ऐकाहिकज्वर, जलोदर, अङ्गोंकी शिथिलता, नासास्राव, पीनस, अजीर्ण, मूर्च्छा, कफकी अधिकता, शोथ, कामला, पाण्डु आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४४-४६ ॥

सन्निपातमृत्युञ्जयो ज्ञानज्योतिःप्रकाशितः ।
भृङ्गराजरसेनायं रसराजः प्रदीयते ॥ ४७ ॥
निर्वाते निर्जनस्थाने बहुवस्त्रसमावृते ।
प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते चिह्नमीदृशम् ॥ ४८ ॥
मूर्च्छितः पतितो भूमौ दह्यमानः पुनः पुनः ।
एवं चिह्नं समालोक्य वदेन्नैरुज्यमातुरे ॥ ४९ ॥
पथ्यं यद् याचते रोगी तत्तदेयं प्रयत्नतः ।
दध्योदनं शीतजलं दातव्यं तद्विचक्षणैः ॥ २५० ॥
एवं महारसः श्रेष्ठः शम्भुना प्रेरितो भुवि ।
कृपया सर्वभूतानां ज्ञानज्योतिःप्रकाशितः ॥ ५१ ॥

यह श्रीसन्निपातमृत्युञ्जयरस सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश करनेवाला है और ज्ञानकी ज्योतिके समान प्रकाश करनेवाला है । इस रसकी एक एक गोली भाँगरेके रसके साथ सेवन करावे । रोगीको बात रहित एकान्तस्थानमें बहुत गरम और मोटे कपडे उढाकर रक्खे । इससे तत्काल रोगीको पसीना आता है । जब रोगी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरपडे और बारबार शरीरमें दाह हो तो रोगीको आरोग्य हुआ समझना चाहिये । ऐसी अवस्थामें रोगीकी जिस वस्तुकी अभिलाषा हो वही वस्तु पथ्यरूपसे सेवन करानी चाहिये । विशेषकर दही भात और शीतल जल सेवन कराना सर्वोत्तम है । ज्ञानज्योतिके समान प्रकाशित इस परमोत्कृष्ट रसको श्रीशंकर भगवान्‌ने सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करके पृथ्वीपर विस्तृत किया है ॥ ४७-२५१ ॥

प्रभाकर ।

रसेन गन्ध द्विगुणं कृशानुरसैर्विमर्द्याष्टदिनं सुघर्मे ।
रसाष्टभागं ह्यमृतं च दद्याद्विपाचयेद्वह्निरसेन किंचित् ॥ ५२॥
पित्तैश्च सम्भावित एष देयस्त्रिदोषनीहारविनाशसूर्यः ।
" अत्र भैरवं रुधिरवर्णं ध्यायेत् " ॥ ५३ ॥

पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करके उसको आठ दिनतक चीतेके रसमें खरल करकरके धूपमें सुखावे । फिर उसमें पारेसे अठगुना शुद्ध वत्सनाभ डालकर थोडेसे चीतेके रसमें कुछ देरतक पकावे, पश्चात्

रोहूमछलीके पित्तमें एकबार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस पित्तप्रधान सन्निपातज्वरमें प्रयोग करना चाहिये । यह सन्निपातरूपी कोहरेको विनाश करनेके लिये सूर्यके समान है । इसको सेवन करनेके पहले रक्तवर्ण भैरवजीका ध्यान करना चाहिये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

कालाग्निभैरवरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्दयेद्गोक्षुरद्रवैः ।
भावितं च विशोष्याथ चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ ५४ ॥
चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रं ताम्रादष्टांशकं विषम् ।
हिङ्गुलं रसभागं च द्वौ भागौ कनकस्य च ॥ ५५ ॥
बाणभागोऽत्र गोदन्तो बाणभागा मनःशिला ।
टङ्कणं नेत्रभागं च ऋतुभागं च खर्परम् ॥ ५६ ॥
ब्रह्मभागं च जैपालं नेत्रभागं हलाहलम् ।
माक्षिकं चाग्निभागं च लौहं वङ्गं च भागकम् ॥ ५७ ॥
सर्वान् खल्लोदरे क्षिप्त्वा क्षीरेणार्कस्य मर्दयेत् ।
दशमूलकषायेण मर्दयेद् याममात्रकम् ॥ ५८ ॥
पञ्चमूलकषायेण तथैव च विमर्दयेत् ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥ ५९ ॥
ज्वरं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
पूर्ववद्दापयेत्पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ॥ २६० ॥
पथ्यं शाल्योदनं ज्ञेयं दधिभक्तसमन्वितम् ।
कालाग्निभैरवो नाम रसोऽयं भुवि पूजितः ॥ ६१ ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके गोखरूके काथमें भावना दे और धूपमें सुखाकर खूब बारीक और चिकना चूर्ण करलेवे । उस चूर्णकी बराबर ताम्रभस्म, ताम्रभस्मसे अठगुना शुद्ध वत्सनाभ तथा सिंगरफ १ भाग, धतूरेके बीज २ भाग, गोदन्ती हरताल ५ भाग, मैनसिल ५ भाग, सुहागा २ भाग, खपरिया ६ भाग, जमालगोटा १ भाग, काले साँपका विष २ भाग, सोनामाखी ३ भाग, लोहभस्म १ भाग और वङ्ग १ भाग लेवे कज्जलीसहित इन सबको खरलमें डालकर आकके दूधके साथ घोटे फिर दशमूलके काढेमें और पञ्चमूलके काढेमें क्रमसे एक एक प्रहरतक खरल

करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियाँको रोगीकी अवस्था और बलाबलका विचार करके उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना चाहिये। यह रस अत्यन्त दारुण सन्निपातज्वरको भी नष्ट कर देता है। इसपर शालिधानोंके चावलोंका भात और दहीका पथ्य देना चाहिये और पूर्ववत् शीतलोपचार करना चाहिये। यह रस पृथ्वीपर अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २५४–२६१ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस।

रसभस्म त्रयो भागा द्विभागं च भुजङ्गमम्।
कालकूटं च षड्भागं भागैकं तालकं तथा ॥ ६२ ॥
गोदन्तं गगनं तुत्थं शिलागन्धकटङ्कणम्।
जयपालोन्मत्तदन्ती करबीजं च लाङ्गली ॥ ६३ ॥
पलाशमूलजैर्नीरैः सप्तधा भावितं दृढम्।
चित्रमूलकषायेण चार्द्रकस्य च वारिणा ॥ ६४ ॥
मात्स्यमाहिषमायूरच्छागवाराहडौण्डुभम्।
प्रत्येकं दशधा मर्द्यं शिलाखण्डे च संक्षयात् ॥
धान्यद्वयां वटीं कृत्वा शुद्धवस्त्रेण धारयेत् ॥ ६५ ॥

रससिन्दूर ३ तोले, काले साँपका विष २ तोले, वत्सनाभ विष ६ तोले, हरताल १ तोला, गोदन्ती हरताल, अभ्रकभस्म, तूतिया, मैनसिल, गन्धक, सुहागा, जमालगोटा, धतूरेके बीज, दन्तीकी जड, कनेरकी जड और कलिहारीकी जड़ ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला लेवे। सबको एकत्र कूटपीस कर ढाककी जडके क्वाथमें सातबार भावना दे और खरल करे। फिर चीतेका जडके काढेमें और अदरखके रसमें तथा रोहूमछली, भैंसा, मोर, बकरा, सूअर और जलसर्प इन प्रत्येकके पित्तमें क्रमसे दस दस बार भावना देवे। पश्चात् पत्थरके खरलमें उत्तमप्रकारसे खरल करके दो दो धानकी बराबर गोलियाँ बनाकर और सुखाकर स्वच्छवस्त्रमें बाँधकर रखदेवे ॥ ६२–६५ ॥

दातव्यं चानुपानेन नारिकेलोदकेन च।
ताम्बूलं च ततो दद्याद् भक्ष्यं शीतोपचारकम् ॥ ६६ ॥
तिलतैले सदा स्नानं घृतमत्स्यादिभोजनम्।
शीताम्लदधिसंयुक्तं पुराणान्नं च भक्षयेत् ॥ ६७ ॥

इनमेंसे एक गोली नारियलके जलके साथ रोगीको सेवन कराकर ऊपरसे ताम्बूल भक्षण करावे। औषध सेवन करानेके पश्चात् रोगीके शरीरपर तिलके तेलकी मालिश कराकर शीतल जलसे स्नान करावे। इसके अतिरिक्त अन्यान्य शीतल उपचार करे। एवं घृत, मत्स्य, अम्ल, शीतल और दहीसहित पुराने चावलोंका भात इत्यादि पदार्थोंका भोजन करावे। इस प्रकार इस रसके सेवनसे सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

रसेश्वर।[1]

रसेन गन्धं द्विगुणं गृहीत्वा तत्पादतुल्यं रविहेमतालम्।
भस्मीकृतं योजय मर्दयेत्तु दिनत्रयं वह्निरसेन घर्मे ॥ ६८ ॥
विषं च दत्त्वाऽत्र कलाप्रमाणमजादिपित्तैः परिभावयेच्च।
रक्तिद्वयं चास्य ददीत वह्निकटुत्रयेणार्द्ररसप्रयुक्तम् ॥ ६९ ॥

पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला और हरतालभस्म १ तोला इन सबको चीतेके रसमें तीन दिनतक खरलकरके धूपमें सुखालेवे। फिर उसमें समस्त औषधिसे १६ वां भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर बकरा, मछली, भैंसा, मोर और सूअर इन पांचोंके पित्तमें क्रमसे भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एकएक गोली चीतेकी जडके क्काथ, त्रिकुटेके क्काथ और अदरखके रसमें मिलाकर रोगीको सेवन करावे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

तैलेन चाभ्यक्तवपुश्च कुर्यात्स्नानं जलेनैव सुशीतलेन।
यावद्भवेद्दुःसहमस्य शीतं मूत्रं पुरीषं च शरीरकम्पः ॥ ७० ॥
पथ्यं यदीच्छा परिजायतेऽस्य मरीचखण्डं दधिभक्तकं च।
अल्पं ददीतार्द्रकमत्र शाकं दिनाष्टकं स्नानमिदं च पथ्यम् ७१

औषधसेवनके पश्चात् रोगीके शरीरपर तेलकी मालिश कराकर इस प्रकार शीतल जलसे स्नान करावे, जिससे रोगीको असह्य शीत, शरीरमें कम्प और मूत्र व पुरीषके त्यागनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। फिर रोगीकी इच्छानुसार

---

१ रसेश्वरादयः कालमेघान्ता रसा वातोल्वणे संनिपाते प्रयोज्या इति रत्नकौमुद्यां माधवः ॥

रसेश्वररससे लेकर त्रिदोषदावानल कालमेघ रसतक जितने रस वर्णन कियेगये हैं वे वैद्योंको वातोल्वण-संनिपातज्वरमें प्रयोग करने चाहियें। ऐसा श्रीमाधवाचार्यने अपनी "रत्नकौमुदी" में कहा है ॥

पथ्य देवें; किन्तु दही और कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर भातका भोजन कराना चाहिये । इसपर थोडासा अदरखका शाक सेवन कराना चाहिये । उक्त स्नान, पथ्य आदिकी क्रियाओंको आठ दिनपर्यन्त करना चाहिये ॥ २७० ॥ ७१ ॥

वडवानल ।

कान्तं च सूतं हरितालगन्धं समुद्रफेनं लवणानि पञ्च ।
नीलाञ्जनं तुत्थकमेव रूप्य भस्म प्रवालानि वराटिकाश्च ७२ ॥
वैक्रान्तशम्बूकसमुद्रशुक्तिः सर्वाणि चैतानि समानि कुर्यात् ।
सूतं भवेद्द्वादशभागकं च स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्दयेच्च ॥ ७३ ॥
दिनत्रयं वह्निरसैस्ततश्च निवेशयेत्ताम्रजसम्पुटे तत् ।
मृदा च संलिप्य रसं पुटेत्तद्रसस्ततः स्याद्वडवानलाख्यः ॥
तत्पादभागेन विषं नियोज्य कृशानुतोयेन पचेत् पुनस्तत् ७४
वातप्रधाने च कफप्रधाने नियोजयेत् त्र्यूषणचित्रयुक्तम् ॥
दोषत्रयोत्थेऽपि च सन्निपाते वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः ॥७५

कान्तलोह, पारा, हरताल, गन्धक, समुद्रफेन, पाँचों नमक, कालासुरमा, नीलाथोथा, रौप्यभस्म प्रवालभस्म, कौडीकी भस्म, वैक्रान्तमणिकी भस्म, शंख और सीपीकी भस्म इन सबको एक एक भाग लेकर एकत्र मर्दन करके उसमें १२ भाग पारा मिलावे और थूहरके दूध तथा आकके दूधमें क्रमसे तीन तीन दिनतक खरल करे । फिर चीतेके रसमें तीन दिनतक खरल करके गालासा बनाकर उसको ताँबेकी मूषामें बन्द करके ऊपरसे उसके अच्छेप्रकार कपरौटी करके पुट देवे । स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधिको निकाल ले, इसको वडवानल रस कहते हैं । फिर इसमें समस्त ओषधियोंको चतुर्थांश शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर चीतेके रसके द्वारा फिर थोडी देर पकावे । बारीक चूर्ण करके इस रसको वाताधिक्य, कफाधिक्यज्वरमें अथवा त्रिदोषजनित सन्निपातज्वरमें दो दो रत्तीकी मात्रासे सोंठ मिरच पीपलके चूर्ण और चीतेके क्वाथके साथ सेवन कराना चाहिये । यह वडवानलरस वाताधिक्य सन्निपातज्वरके लिये विशेषोपयोगी कहागया है ॥ ७२-७५ ॥

बृहद्वडवानलरस ।

सूतकं गन्धकं चैव हरितालं मनःशिला ।
अभ्रकं वत्सनाभं च दारुजङ्गमजं विषम् ॥ ७६ ॥

जैपालात्सार्द्धशतकं सर्वं संचूर्ण्य मर्दयेत् ।
मात्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ ७७ ॥
वटिकां शीततोयेन कुर्याद् गुञ्जाप्रमाणतः ।
वडवानलनामाऽयं नारिकेलजलेन वै ।
भक्षयेत्सन्निपातार्त्तो मृत्युस्तस्यामुखी भवेत् ॥ ७८ ॥

पारा, गन्धक, हरताल, मैनासिल, अभ्रक, वत्सनाभ, सोमल विष, कृष्णसर्पका विष ये प्रत्येक एक एक तोला और जमालगोटे १५० तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर रोहूमछली, भैंसा, मोर और बकरा इनके पित्तमें क्रमसे भावना देकर शीतल जलके साथ खरलकरके एकएक रत्तीकी गोलियां बनालेवे । इसकी एक एक गोली नारियलके जलके साथ सन्निपातरोगीको सेवन करानेसे उसकी मृत्युतक दूर हो जाती है ॥ ७६–७८ ॥

सन्निपातवडवानलरस

रसोऽष्टावमृतं सप्त स्यात्षष्ठो गन्धतालयोः ।
दन्तीबीजानि षड् भागाः पञ्चभागं तु टङ्कणम् ॥ ७९ ॥
चत्वारि धूर्त्तबीजस्य व्योषस्य त्रितयो भवेत् ।
एतानि वह्निमूलस्य क्काथेन परिमर्दयेत् ॥ २८० ॥
आर्द्रकस्य रसेनाथ देयं गुञ्जाद्वयं हितम् ।
वडवानलसंज्ञोऽयं सन्निपातहरः परः ॥ २८१ ॥

पारा ८ भाग, वत्सनाभ विष ७ भाग, गन्धक ६ भाग, हरताल ६ भाग, जमालगोटे ६ भाग सुहागा ५ भाग, धतूरेके बीज ४ भाग और त्रिकुटा ३ भाग इन सबको चीतेकी जडके काढेमें अच्छे प्रकारसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करावे । यह वडवानलरस सन्निपातज्वरको हरनेके लिये परमोपयोगी है ॥ ७९–२८१ ॥

स्वच्छन्दनायकरस ।

सूतगन्धकलौहानि रौप्यं सम्मर्दयेत् त्र्यहम् ।
सूर्यावर्त्तश्च निर्गुण्डी तुलसी गिरिकर्णिका ॥ ८२ ॥
अग्निवल्ल्यार्द्रकं वह्निर्विजया जयया सह ।
काकमाचीरसैरेषां पञ्चपित्तैश्च भावयेत ॥ ८३ ॥

अन्धमूषागतं पश्चाद्वालुकायन्त्रगं दिनम् ।
विपचेच्चूर्णितं खादेन्माषैकं चार्द्रकद्रवैः ॥ ८४ ॥
निर्गुण्डीदलमूलानां कषायं सोषणं पिबेत् ।
अभिन्यासं निहन्त्याशु रसः स्वच्छन्दनायकः ॥
छागीदुग्धेन मुद्गं च पथ्यमत्र प्रयोजयेत् ॥ ८५ ॥

पारा, गन्धक, लोहा और चाँदीकी भस्म इनको समानभाग लेकर तीन दिनतक खरल करे. फिर हुलहुल, सिम्हालू, तुलसी, अपराजिता (विष्णुक्रान्ता), श्वेतचीतेकी जड, अदरख, लालचीतेकी जड, भांग, अरणी, मकोय इन औषधियोंके रसोंकी और पाँचों पित्तोंकी क्रमसे एक एक दिनतक भावना देवे । पश्चात् उसको अन्धमूषामें बन्दकरके एक दिनतक वालुकायन्त्रमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको एकएक माशे परिमाण अदरखके रसके साथ सेवन कर ऊपरसे सिम्हालूके पत्तों और जडके क्वाथमें कालीमिरचोंका चूर्ण डालकर पान करे । यह रस अभिन्यासज्वरको शीघ्र नष्ट करता है । इसपर बकरीका दूध और मूँगकी दालके यूषका पथ्य देना चाहिये ॥ ८२-८५ ॥

सिंहनाद रस ।

लौहपात्रगते गन्धे द्राविते तत्र निक्षिपेत् ।
शुद्धसूतं समं चाभ्रं भार्ङ्गीद्रावं तयोः समम् ॥ ८६ ॥
निर्गुण्ड्याः पल्लवोत्थं च तुल्यं तुल्यं प्रदापयेत् ।
पचेन्मृद्वग्निना तावद्यावच्छुष्कं द्रवं द्वयम ॥ ८७ ॥
विषपादयुतः सोऽयं सिंहनादरसोत्तमः ।
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यः सन्निपातज्वरान्तकः ॥
अनुपानं पिबेद् व्याघ्रीक्वाथं पुष्करचूर्णितम् ॥ ८८ ॥

दो तोले गन्धकको लोहेके पात्रमें अग्निपर पिघलाकर उसमें शुद्ध पारा २ तोले, अभ्रक २ तोले, भारंगीका रस ४ तोले और निर्गुण्डीके पत्तोंका रस ४ तोले डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । पकते २ जब सब रस शुष्क होजाय तब नीचे उतारकर उसमें ३ माशे शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर खूब बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको एकएक रत्ती परिमाण देना चाहिये और इसपर पुहकरमूलका चूर्ण डालकर कटेरीका क्वाथ पान कराना चाहिये । यह सिंहनाद रस सन्निपातज्वरको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है ॥ ८६-८८ ॥

स्वल्पकस्तूरीभैरव रस ।

हिङ्गुलं च विषं टङ्कं जातीकोषफलं तथा ।
मरिचं पिप्पली चैव कस्तूरी च समांशिका ॥
रक्तिद्वयं ततः खादेत्व सन्निपाते सुदारुणे ॥ ८९ ॥

सिंगरफ, वत्सनाभ विष, सुहागा, जावित्री, जायफल, मिरच, पीपल और कस्तूरी इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । दारुण सन्निपातज्वरमें इसकी एकएक गोली सेवन करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ८९ ॥

मध्यमकस्तूरीभैरव रस ।

मृगमदशशिसूर्या धातकी शूकशिम्बी
कनकरजतमुक्ता विद्रुमं लौहपाठाः ।
कृमिरिपुघनविश्वावारितालाभ्रधात्री--
रविदलरसपिष्टः कस्तूरीभैरवोऽयम् ॥ २९० ॥
कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः ।
आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः ॥ ९१ ॥
द्वन्द्वजान्भौतिकान्वापि ज्वरान्कामादिसम्भवान् ।
अभिचारकृतांश्चैव तथा शत्रुकृताञ्ज्वरान् ॥
निहन्याद्भक्षणादेव डाकिन्यादियुताँस्तथा ॥ ९२ ॥

कस्तूरी, कपूर, ताँबा, धायके फूल, कौंचके बीज, सोना, चाँदी, मोती, मूँगा, लोहा, पाढ, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, सुगन्धवाला, हरताल, अभ्रक और आमले इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके आकके पत्तोंके रसमें खरल करलेवे । इस प्रकार यह कस्तूरीभैरवरस सिद्ध होता है । यह सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवाला है । इसको एक एक रत्ती परिमाण अदरखके रस और मधुमें मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर दूर होता है । एवं द्वन्द्वज, त्रिदोषज, कामक्रोधादिजनित, अभिचारकृत, शत्रुकृत और डाकिनी शाकिनी आदिकी बाधासे उत्पन्नहुए ज्वरोंको यह रस भक्षण करतेही नष्ट करदेता है ॥ २९-९२ ॥

बृहत्कस्तूरीभैरवरस ।

मृतं वङ्गं खर्परं च स्वर्णं कस्तूरितारकम् ।
एतेषां समभागेन कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९३ ॥

मृतं कान्तं पलं देयं हेमसारं द्विकार्षिकम् ।
रसभस्म लवङ्गं च जातिकाफलमेव च ॥ ९४ ॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ।
द्रोणपुष्परसैर्वापि नागवल्ल्या रसेन च ॥
द्विचन्द्रस्त्रिकटुर्देयो यत्नतो वटिकां चरेत् ॥ ९५ ॥

वंगभस्म, खपरिया भस्म, स्वर्णभस्म, कस्तूरी और रौप्यभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला, कान्तलोहभस्म ४ तोले एवं सोनामाखीकी भस्म, रससिन्दूर, लौंग और जायफल ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबको एकत्र खरल करके द्रोणपुष्पी (गूमा) के पत्तोंके रसमें और पानोंके रसमें क्रमसे सात सात दिनतक भावना देवे। फिर उसमें कपूर और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये प्रत्येक ओषधि चार-चार तोले मिलाकर उत्तमप्रकारसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे॥९३-९५

वातात्मके सन्निपाते महाश्लेष्मगदेषु च ।
त्रिदोषजनिते घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥ ९६ ॥
नष्टगर्भे नष्टशुक्रे प्रमेहे विषमज्वरे ।
कासे श्वासे क्षये गुल्मे महाशोथे महागदे ॥ ९७ ॥
युवतीनां शतं गच्छेन्न च शुक्रक्षयो भवेत् ।
रोगान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९८ ॥

इस रसको वातोल्बण सन्निपात, अत्यन्तप्रबल कफके विकार, त्रिदोषजनित भयंकर सन्निपात, नष्टगर्भ, शुक्रक्षय, प्रमेह, विषमज्वर, खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्मरोग, अत्यन्त शोष और अन्यान्य भयंकर रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। इसके सेवन करनेपर सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेपर भी वीर्य क्षीण नहीं होता। यह रस जैसे सूर्योदयके होनेपर अन्धकार नष्ट होजाता है, उसी प्रकार उक्त समस्त रोगोंको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ ९६-९८ ॥

कस्तूरीभूषणरस ।

रसाभ्र टङ्कण शुण्ठी कस्तूरी पिप्पली तथा ।
दन्तीमूलं जयाबीजं कर्पूरं मरिचं समम् ॥ ९९ ॥
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत् सप्तवारकम् ।
आर्द्रकस्वरसैर्युक्तं योजयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ १०० ॥

वातश्लेष्मणि मन्देऽग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च ।
त्रिदोषजनिते घोरे कासे श्वासे क्षये तथा ॥ १ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, सुहागा, सोंठ, कस्तूरी, पीपल, दन्तीकी जड, भाँगके बीज कपूर और मिरच इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रसमें सात बार मर्दन करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली अदरखके स्वरसके साथ सेवन करनेसे वात और कफके विकार, मन्दाग्नि, पित्त और कफकी अधिकता और त्रिदोषजनित भयंकर ज्वर तथा खाँसी, श्वास और क्षयादिरोग दूर होते हैं ॥ ९९–३०१ ॥

अर्कमूर्त्ति, त्रिदोषदावानलरस ।

लौहाष्टकं मारितमर्कभागं सूतं द्विभागं द्विगुणं च गन्धम् ।
विमर्दयेद्वह्निरसेन तापे दिनत्रयं चात्र विषं कलांशम् ॥ २ ॥
निक्षिप्य पित्तैः परिभावितोऽयं रसोऽर्कमूर्तिर्भवति त्रिदोषे ।
ताम्रस्य पात्रे तु दिनैकमात्रं निम्बूरसेनापि च पित्तवर्गैः ॥ ३ ॥
क्षुद्रार्द्रकोत्थेन रसेन सूतस्त्रिदोषदावानल एष सिद्धः ।
गुञ्जाद्वयं त्र्यूषणयुक्तमस्य ददीत चित्रार्द्ररसेन वापि ॥
नासापुटे चापि नियोजनीया गुञ्जाऽस्य शुण्ठीमरिचेन युक्ता ४

लोहभस्म १ तोला, लोहेका आठवां भाग-तथा ताम्रभस्म और पारा दो तोले तथा गन्धक ४ तोले लेकर सबको एकत्र चीतेके रसमें तीनदिनतक खरल करे और प्रतिदिन धूपमें सुखाताजाय, फिर उसमें समस्त औषधिसे १६ वाँ भाग शुद्ध मीठातेलिया मिलाकर पाँचों पित्तोंकी पृथक् पृथक् भावना देवे । इसको अर्कमूर्तिरस कहते हैं । इसी औषधको यदि ताँबेके पात्रमें डालकर नींबूके रसमें, पाँचों पित्तोंमें, कटेरीके क्वाथ और अदरखके रसमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना दीजाय तो यही त्रिदोषदावानलरस सिद्ध होजाता है । इस रसको दो दो रत्ती परिमाण लेकर त्रिकुटेके चूर्ण और अदरखके तथा चीतेके रसमें मिलाकर सेवन करावे अथवा इस रसको एक रत्ती परिमाण लेकर सोंठ और मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर नस्य देवे तो सन्निपातज्वर नष्ट होता है । उक्त दोनों रसोंकी मात्रा और सेवनविधि एकही प्रकार की है ॥ २–४ ॥

त्रिदोषदावानलकालमेघ ।

तालेन वङ्गं शिलया च नागं रसैः सुवर्णं रवितारपत्रम् ।
गन्धेन लौहं दरदेन सर्व पुटे मृतं योजय तुल्यभागम् ॥ ५ ॥

तत्तुल्यसूतं द्विगुणं च गन्धं तुत्थं च गन्धेन समानभागम्।
निम्बूत्थतोयेन विमर्द्य सर्वं गोलं प्रकृत्याथ मृदा विलिप्य ॥ ६
पुटं च दत्त्वाथ विमर्द्य चैनं गन्धेन तुल्येन कृशानुनीरैः।
विषं च दत्त्वाथ कलाप्रमाणमीषत्कृशानूत्थरसैः पचेत्तत् ॥ ७ ॥
पित्तैस्तथा भावित एष सूतस्त्रिदोषदावानलकालमेघः।
वल्लं ददीतास्य च पूर्वयुक्त्या दाहोत्तरे तं मधुपिप्पलीभिः ॥
मुद्गैश्च शाल्यन्नमिह प्रशस्तं पथ्यं भवेत्कोष्णमिदं दिनान्ते ॥ ८

हरतालके द्वारा कीहुई वंगभस्म, मैनासिलके द्वारा कीहुई सीसेकी भस्म, पारेके द्वारा की हुई स्वर्णभस्म, ताँबेकी भस्म और चाँदीकी भस्म, गन्धकके द्वारा कीहुई लोहभस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र मिश्रित करके पश्चात् उसको सिंगरफके द्वारा पुटपाक विधिसे पकावे फिर उसमें पारा एकभाग, गन्धक २ भाग और तूतिया २ भाग मिलाकर बिजौरेनींबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवे फिर उस गोलेको सम्पुटमें बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर पुटपाक करे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर खरल करलेवे। फिर उसमें समानभाग गन्धक मिलाकर चीतेके रसमें घोटे, पश्चात् गन्धकका १६ वां भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर और थोड़ासा चीतेका रस डालकर कुछ देरतक पाक करे। पश्चात् उपर्युक्त पाँचों पित्तोंमें पृथक् पृथक् भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियां बनालेवे। इस प्रकार यह त्रिदोषदावानलकालमेघरस सिद्ध होता है। इसकी एक एक गोली पूर्वोक्त विधिके अनुसार मधु और पीपलके चूर्णके साथ दाहयुक्तज्वरमें सेवन करावे और अपराह्णकालमें रोगीको मूँगके यूष और शालिचावलोंके भातका मन्दोष्ण पथ्य देवे ॥ ९-८ ॥

श्रीप्रतापलंकेश्वररस।

अपामार्गस्य मूलानां चूर्णं चित्रकमूलजैः।
वल्कलैर्मर्दयित्वाऽथ रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ९ ॥
तेन सूतसमं गन्धमभ्रकं पारदं विषम्।
टङ्कणं तालकं चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ २१० ॥
त्रिदिन मुसलीकन्दैर्भावयेद्धर्मरक्षितम्।
मूषां च गोस्तनाकारामापूर्योपरि ढक्कयेत् ॥ २११ ॥

सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु।
रसतुल्य लौहभस्म मृतवङ्गमहिस्तथा ॥ १२ ॥
मधूकसारजलदं रेणुकं गुग्गुलुं शिलाम्।
चाम्पेयं च समांशं स्याद्भागार्द्धं शोधितं विषम् ॥ १३ ॥
तत्सर्वं मर्दयेत्खल्ले भावयेद्भिषनीरतः।
आतपे सप्तधा तीव्रे मर्दयेद्घटिकाद्वयम् ॥ १४ ॥

चिरचिटेकी जड और चीतेकी जडकी छालको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके जलके साथ पीस लेवे, फिर कपडेमें बाँधकर उसका रस निचोड लेवे। पश्चात् पारा, गन्धक, अभ्रक, वत्सनाभ, सुहागा और हरताल इन सबको उक्त रसके बराबर लेकर उसीरसमें सात दिनतक खरल करे। फिर तीन दिनतक मुसलीके काथमें भावना देकर धूपमें सुखालेवे। इसके पश्चात् इसको गोस्तनाकारवाली मूषामें रखकर मूषाका अच्छे प्रकार मुख बन्द करके उसपर सातवार कपरौटी करे और सुखाकर लघुपुटमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर चूर्ण करलेवे पश्चात्, लोहभस्म, वंगभस्म, अफीम, महुएका सार, नागरमोथा, रेणुका, गूगल, मैनसिल और नागकेसर ये प्रत्येक ओषधि पारेके बराबर भाग तथा शुद्धवत्सनाभ पारेसे आधा भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकारस खरल करे ॥ ९–३१४ ॥

कटुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च।
फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च ॥ १५ ॥
समुद्रफेननीरेण विजयापत्रवारिणा।
चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्या रसेन च ॥
प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वत्पित्तैश्च पंचभिः ॥ १६ ॥
सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत्।
विमर्द्य भक्षयित्वा च रक्षयेत्कूपिकोदरे ॥ १७ ॥

फिर सिंगिया विषके काथमें सातवार भावना देकर दो घड़ीतक धूपमें रखकर घोटे। पश्चात् त्रिकुटा, धतूरा, त्रिफला, अगस्तियाके फूल, समुद्रफेन, भाँग, चीता और कलिहारी इन समस्त ओषधियोंके रस वा काथोंमें और पांचों पित्तोंमें क्रमसे सात सात दिनतक पृथक्‌ पृथक्‌ भावना देवे। फिर उसमें सम्पूर्ण ओषधिके समानभाग शुद्ध मीठातेलिया मिलाकर खूब बारीक खरल करके पश्चात् इस

ओषधिको पूर्वोक्त पारदादिरसमें मिलाकर अच्छे प्रकारसे मर्दन करके कपडेमें छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे ॥ १५-१७ ॥

गुञ्जैकं वह्निनीरेण शृङ्गवेररसेन वा ।
दद्याच्च रोगिणे तीव्रमौढ्यविस्मृतिशान्तये ॥ १८ ॥
क्षुरेण तालुमाहत्य घर्षयेदार्द्रनीरतः ।
नोद्धटन्ते यदा दन्तास्तदा कुर्यादमुं विधिम् ॥
सेचयेन्मन्त्रविद्वैद्यो वारां कुम्भशतैर्नरम् ॥ १९ ॥
भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणः परम् ।
दध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ॥ २० ॥
पाने पानं सिताजातं यदीच्छेत ददीत तत् ।
एवं कृतेन शान्तिः स्यात् तापस्य च रुजस्य च २१

जो रोगी अत्यन्त मोह और विस्मृतिको प्राप्त हो गया हो ऐसे रोगीको यह रस एक एक रत्ती परिमाण चीतेके रस अथवा अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करावे। यदि रोगीके दाँत न खुलते हों तो वैद्य यह क्रिया करे रोगीके तालूकी जगह छुरेसे किंचित् छिद्र करके उसपर इस रसको अदरखके रसमें मिलाकर धीरे धीरे पश्चात् मन्त्रशास्त्रको जाननेवाला वैद्य रोगीको सौ घडोंसे स्नान करावे और जब रोगीको खूब भूँख लगे तब मिश्री मिलाकर दही भातका भोजन करावे और जीरा डालकर तक्रपान करावे। यदि रोगीको तृषा अधिक हो तो बारबार मिश्रीका शर्बत पान करावे। इस प्रकार करनेसे शान्ति उत्पन्न होती है, सन्निपातादि अन्यान्य भयंकर रोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ ३१८-३२१ ॥

सचन्द्रं चन्दनरसालेपनं कुरु शीतलम् ।
यूथिकामल्लिकाजातीपुन्नागवकुलावृताम् ॥ २२ ॥
विधाय शय्यां तत्रस्थं लेपनैश्चन्दनैर्मुहुः ।
हावभावविलासोक्तैः कटाक्षैश्चञ्चलेक्षणैः ॥ २३ ॥
पीनोत्तुङ्गकुचापीडैः कामिनीपरिरम्भणैः ।
रम्यवीणानिनादोक्तैर्गायनैः श्रवणामृतैः ॥ २४ ॥
पुण्यश्लोककथाद्यैश्च सन्तापहरणं कुरु ।
दद्याद्वातेषु सर्वेषु सिन्धुजैः सह वह्निभिः ॥ २५ ॥

दद्यात्कणामाक्षिकाभ्यां कामलाह्वयपाण्डुषु ।
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत् ।
अयं प्रतापलङ्केशः सन्निपातहरः परः ॥ २६ ॥

यह रस सेवन कराकर रोगीके शरीरपर कपूर, चन्दन आदि शीतलपदार्थोंका बारम्बार लेप करे और जुही, मोतिया, चमेली, पुन्नाग और मौलसिरीके फूलोंकी शय्या बनाकर उसपर रोगीको शयन करावे तथा रोगी; हावभाव विलास चञ्चलकटाक्ष आदिसे युक्त और स्थूल तथा उन्नत कुचोंवाली सुन्दर युवतीके साथ रमण करे। एवं मनोहर वीणाकी झंकारके साथ २ कर्णामृतरूप गायनोंको और पवित्र कथाओंको श्रवण करे, इससे समस्त सन्ताप दूर होजाता है। इस रसको सब प्रकारके वातरोगोंमें सैंधनमकके चूर्ण और चीतेके क्वाथके साथ देवे तथा कामला पांडु आदि रोगोंमें पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर देवे। इसके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारके रोगोंमें इस रसको यथारोगानुसार अनुपानोंके साथ प्रयोग करे। यह श्रीप्रतापलंकेश्वररस सन्निपातकोनष्ट करनेकी उत्कृष्ट औषध है ॥२२–२६

कफकेतु।

टङ्कणं मागधी शंखं वत्सनाभं समं समम् ।
आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्भावनात्रयम् ॥ २७ ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यमार्द्रकस्वरसैर्युतम् ।
पीनसे श्वासकासे च शिरोरोगे गलग्रहे ॥
कफरोगान्निहन्त्याशु कफकेतुरयं रसः ॥ २८ ॥

सुहागा, पीपल, शंखभस्म और शुद्ध वत्सनाभविष इन सबको समानभाग लेकर अदरखके रसमें तीनबार भावना देवे, फिर एकएक रत्तीकी गोलियां बना लेवे। उनमेंसे एकएक गोली अदरखके स्वरसके साथ सेवन करावे। यह रस पीनसरोग श्वास, खांसी, शिरके समस्तरोग, गलके रोग और कफजनित सम्पूर्ण व्याधियोंको शीघ्र दूर करता है ॥ २७॥ २८ ॥

अन्य कफकेतु।

दग्धशंखं त्रिकटुकं टङ्कणं समभागकम् ।
विषं च पञ्चभिस्तुल्यमार्द्रतोयेन मर्दयेत् ॥ २९ ॥
वारत्रयं रक्तिकां च वटीं कुर्याद्विचक्षणः ।
प्रातः सायं च वटिकाद्वयमार्द्रकवारिणा ॥ ३० ॥

कफकेतुः कण्ठरोगं शिरोरोगं च नाशयेत्।
पीनसं कफसंघातं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ३३१ ॥

शंखकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा ये सब समान भाग और इन पांचोंके बराबर शुद्ध वत्सनाभ विष लेकर सबको अदरखके रसमें तीनवार भावना देकर खरल करे, फिर एकएक रत्तीकी गोलियां बनालेवे। इनमेंसे एकएक गोली प्रातःसायंकाल अदरखके रसके साथ सेवन करावे। यह रस कण्ठसम्बन्धी रोग, शिरके रोग, पीनस, कफके समूह और दारुणसन्निपातको नष्ट करता है॥ २९-३३१ ॥

श्लेष्मकालानलरस।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्।
तुत्थं मनोह्वा तालं च कट्फलं धूर्त्तबीजकम् ॥ ३२ ॥
हिंगु समाक्षिकं कुष्ठं त्रिवृद्दन्ती कटुत्रिकम्।
व्याधिघातफलं वङ्गं टङ्कणं समभागकम् ॥ ३३ ॥
स्नुहीक्षीरेण वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक्।
विज्ञाय कोष्ठं कालं च योजयेद्रक्तिकां क्रमात् ॥ ३४ ॥
वातश्लेष्मणि मन्देऽग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च।
जीर्णज्वरे च श्वयथौ सन्निपाते कफोल्बणे ॥ ३५ ॥
बलासप्रबलं त्यक्त्वा धातु वातात्मकं नयेत्।
सेवनात्सर्वरोगघ्नः श्लेष्मकालानलो रसः ॥ ३६ ॥

सिङ्गरफसे निकालाहुआ पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, तूतिया, मैनसिल, हरताल, कायफल, धतूरेके बीज, हींग, सोनामाखी, कूठ, निसोत दन्तीके बीज, सोंठ, मिरच पपिल, अमलतास, वङ्ग और सुहागा इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियां बनालेवे। सुयोग्यवैद्य रोगीके अग्न्याशयके बलाबल, देश, काल, पात्र आदिका भलीभांति विचार करके उसको क्रमसे एकएक गोली सेवन करावे। इस रसको अनुपानविशेषके साथ सेवन करनेसे वातश्लेष्म और पित्तश्लेष्मज्वर, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, सूजन और कफोल्बण सन्निपात ज्वरमें जब कि कफ क्षीण होकर वायु प्रबल होजाता है तब विशेष उपकार होता है। यह योग सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला है॥ ३२-३६ ॥

मध्यजीर्ण विषमज्वरादिमें-

ज्वरमातङ्गकेसरीरस।

पारदं गन्धकं चैव हरितालं समाक्षिकम्।
कटुत्रयं तथा पथ्या क्षारौ द्वौ सैन्धवं तथा॥ ३७॥
निम्बस्य विषमुष्टेश्च बीजं चित्रकमेव च।
एषां माषमितो भागो ग्राह्यः प्रतिसुसंस्कृतः॥ ३८॥
द्विमाषं कानकफलं विषं चापि द्विमाषिकम्।
निर्गुण्डीस्वरसेनैव शोषयेत्तत् प्रयत्नतः॥ ३९॥
सार्द्धरक्तिप्रमाणेन वटी कार्या सुशोभना।
सर्वज्वरहरी चैषा भेदिनी दोषनाशिनी॥ ३४०॥
आमाजीर्णप्रशमनी कामलापाण्डुरोगहा।
वह्निदीप्तिकरी चैषा जठरामयनाशिनी॥ ४१॥
उष्णोदकानुपानेन दातव्या हितकारिणी।
भाषितो लोकनाथेन ज्वरमातङ्गकेसरी॥ ४२॥

पारा, गन्धक, हरताल, सोनामाखी, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, नींमके बिज, कुचलेके बीज, चीतेकी जड ये प्रत्येक शोधित ओषधि एकएक माशा परिमाण और धतूरेके बीज (किसी २ के मतसे जमालगोटेका भी ग्रहण है) २ माशे और शुद्ध वत्सनाभ विष २ माशे लेवे। सबको एकत्र निर्गुण्डीके स्वरसमें भावना देकर और सुखाकर डेढ डेढ रत्तीकी गोलियां बनालेवे। ये गोलियां सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाली, दस्तावर, समस्त दोषनाशक तथा आमदोष, अजीर्ण, कामला, पांडुरोग और अग्निकी मन्दताको दूर करती हैं और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करती हैं। ये गोलियां उष्णजलके अनुपानके साथ सेवन करनेसे विशेष हितकारी हैं। इस ज्वरमातङ्गकेसरी रसको श्रीलोकनाथजीने वर्णन किया है॥ ३७-३४२॥

ज्वरमुरारि रस।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धं विषं च दरदं पृथक्।
कर्षप्रमाणं कर्षार्द्धं लवङ्गं मरिचं पलम्॥ ४३॥
शुद्धं कनकबीजं च पलद्वयमितं तथा।
त्रिवृता कर्षमेकं च भावयेद्दन्तिकाद्रवैः॥ ४४॥

सप्तधा च ततः कार्या वटी गुञ्जामिता शुभा ।
ज्वरमुरारिनामाऽयं रसो ज्वरकुलान्तकः ॥ ४५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठां तेलिया और शुद्ध सिंगरफ ये प्रत्येक सोलह २ माशे, लौंग ८ माशे मिरच ४ तोले, शुद्ध धतूरेके बीज ८ तोले और निसोत १६ माशे लेवे । सबको एकत्र चूर्ण करके दन्तीकी जड़के क्वाथमें सातवार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियां बनालेवे । यह रस सब प्रकारके ज्वरोंको समूल नष्ट करनेवाला है ॥ ४२-४५ ॥

अत्यन्ताजीर्णपूर्णे च ज्वरे विष्टम्भसंयुते ।
संग्रहग्रहणीगुल्मे चामवातेऽम्लपित्तके ॥ ४६ ॥
कासे श्वासे यक्ष्मरोगेऽप्युदरे सर्वसम्भवे ।
गृध्रस्यां सन्धिमज्जस्थे वाते शोथे च दुस्तरे ॥ ४७ ॥
यकृति प्लीहरोगे च वातरोगे चिरोत्थिते ।
अष्टादशकुष्ठरोगे सिद्धो गहननिर्मितः ॥ ४८ ॥

अत्यन्त अजीर्ण, विष्टम्भयुक्त ज्वर, संग्रहणी, गुल्म, आमवात, अम्लपित्त, खाँसी, श्वास, यक्ष्मा, समस्त उदररोग, गृध्रसी, संधिवात, मज्जागतवात, घोर सूजन, यकृत्, प्लीहा, चिरकालजनित वातरोग और अठारह प्रकारके कुष्ठ रोग इत्यादि विविध प्रकारके रोगोंमें यह रस भिन्न २ अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार करता है । इस रसको श्रीगहनाचार्यने निर्माण किया है ॥ ४६-४८ ॥

श्रीज्वरमुरारिः ।

हिङ्गुलं च विषं व्योषं टङ्कणं नागराऽभया ।
जयपालसमायुक्तं सद्योज्वरनिवारणम् ॥
सर्वचूर्णसमं चात्र जयपालं च दापयेत ॥ ४९ ॥

सिंगरफ, वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, सोंठ और हरड इन ओषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और जमालगोटेके बीजोंका चूर्ण ८ तोले लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर जलके साथ खरल करके मटरकी समान गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे ज्वर दूर होता है ॥ ४९ ॥

ज्वरकेसरी।

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रिफलमेव च ।
जयपालसमं कृत्वा भृङ्गतोयेन मर्दयेत् ॥ ३५० ॥
गुञ्जामात्रा वटी कार्या बालानां सर्षपाकृतिः ।
सितया च समं पीता पित्तज्वरविनाशिनी ॥ ५१ ॥
मरिचेन प्रयुक्ता सा सन्निपातज्वरापहा ।
पिप्पलीजीरकाभ्यां च दाहज्वरविनाशिनी ॥
ज्वरकेसरिनामाऽयं रसो ज्वरविनाशनः ॥ ५२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक ओषधि समानभाग और सबके बराबर जमालगोटे लेकर समस्त ओषधियोंका बारीक चूर्ण करलेवे, फिर भाँगरेके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। किन्तु बालकोंके लिये सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनावे। इन गोलियोंको मिश्रीके साथ सेवन करनेसे पित्तज्वर, मिरचोंके चूर्णके साथ देनेसे सन्निपातज्वर और पीपल तथा जीरेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाहयुक्त ज्वरको नष्ट करती हैं। विशेषकर यह ज्वरकेसरीरस सबप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ ३५०-५२ ॥

ज्वरभैरवरस।

त्रिकटु त्रिफला टङ्कं विषगन्धकपारदम् ।
जैपालं च समं मद्यं द्रोणपुष्पीरसैर्दिनम् ॥ ५३ ॥
ताम्बूलेन समं खादेत् प्रातर्गुञ्जामितां वटीम् ।
मुद्गयूषं शिखरिणीं पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥
नवज्वरं त्रिदोषोत्थं जीर्णं च विषमज्वरम् ।
दिनैकेन निहन्त्याशु रसोऽयं ज्वरभैरवः ॥ ५५ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, शोधित वत्सनाभ, पारा, गन्धक और जमालगोटा सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करले, फिर द्रोणपुष्पीके रसमें एक दिनतक खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली पानमें रखकर भक्षण करे। इसपर मूँगका यूष, शिखरिन आदि पदार्थोंका पथ्य देवे। यह रस नवीन ज्वर, त्रिदोष-जनित ज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर आदि समस्त ज्वरोंको एक दिनमें ही नष्ट करदेता है ॥ ५३-५५ ॥

विद्याधररस ।

रसो गन्धस्ताम्रं त्रिकटु कटुका टङ्कणवरा
त्रिवृद्दन्ती हेमद्युतिमणिविषैस्तत्सममिदम् ।
समस्तैस्तुल्यं स्याद्विमलजयपालोद्भवरज-
स्ततः स्नुक्क्षीरेण प्रगुणमृदितं दन्तिसलिलैः ॥ ५६ ॥
द्विगुञ्जाऽस्य प्रौढं जयति वटिका सामसकलं
ज्वरं पाण्डुं गुल्मं ग्रहणिगुदकीलोद्भवरुजः ।
मरुच्छूलाजीर्णं प्रबलमपि साम्यं कृमिगदं
विबन्धं प्लीहानं यकृतमपि विद्याधररसः ॥ ५७ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, कुटकी, सुहागा, हरड, बहेडा, आमला, निसोत, दन्तीकी जड़, धतूरेके बीज, आककी जड़ और शुद्ध वत्सनाभ ये सब औषधियाँ समानभाग और सबकी बराबर शुद्ध जमालगोटोंकां चूर्ण लेकर एकत्र पीसले फिर थूहरके दूधमें और दन्तीकी जडके काढेमें क्रमसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे आमयुक्त-ज्वर, पाण्डु और गुल्मरोग, संग्रहणी, अर्शकी पीड़, वातशूल, अजीर्ण, कृमिरोग, मलबद्धता, प्लीहा और यकृत्विकार ये सब रोग दूर होते हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

पञ्चाननरस ।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं दैत्येन्द्ररक्तं रविः
पक्षौ सागरलोचनं शशियुगं भागोऽर्कसंख्यान्वितः ।
खल्ले तत्परिमर्दितं रविजलैर्गुञ्जैकमात्रं ददेत्
सिद्धोऽयं ज्वरदन्तिदर्पदलनः पञ्चाननाख्यो रसः ॥ ५८
पथ्यं च देयं दधिभक्तकं च सिन्धूत्थपथ्या मधुना समेतम् ।
गन्धानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धं च देयं शुभदाडिमं च ॥५९॥

शुद्ध विष २ तोले, मिरच ४ तोले, गन्धक २ तोले, सिंगरफ १ तोला और ताम्रभस्म २ तोले इन सब औषधियोंको इस प्रकार लेकर आककी जड़के रसमें उत्तमप्रकारसे खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस प्रकार यह पंचानन नामक रस सिद्ध होता है । यह ज्वररूप हाथीके दर्पको दमन करने-वाला है । इस रसकी एकएक गोली सैन्धानमक, हरडके चूर्ण और शहदमें

मिलाकर सेवन करानी चाहिये और रोगीको दहीभातका पथ्य देना चाहिये । एवं शीतलजल, दूध अनार आदि सेवन करावे और शरीरमें दाह होनेपर चन्दनादिका लेप तथा अन्यान्य शीतोपचार करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

चन्द्रशेखररस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा ।
सर्वतुल्या शिला योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ ३६० ॥
त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः ।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं त्वनु ॥ ६१ ॥
तक्रभक्तं च वृन्ताकं पथ्यं तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥ ६२ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक, २ भाग, मिरच २ भाग, सुहागा २ भाग और सबकी बराबर मैनसिल लेकर सबको रोहूमछलीके पित्तमें तीन दिन भावना देवे । फिर उसीमें मर्दन करके दोदो रत्तीकी गोलियां बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन कराकर शीतल जलका अनुपान करावे । इसपर मट्ठेके साथ भात और बैंगनके शाकका पथ्य देना चाहिये । यह चन्द्र-शेखर रस तीन दिन सेवन करनेसे ही अत्यन्त उग्र पित्तश्लेष्मज्वरको नष्ट करता है ॥ ३६०–६२ ॥

अर्द्धनारीश्वररस ।

रसगन्धामृतं चैव समं शुद्धं च टङ्कणम् ।
मर्दयेत्खल्वमध्ये तु यावत्स्यात्कज्जलप्रभम् ॥ ६३ ॥
नकुलारिमुखे क्षिप्त्वा मृदा संवेष्टयेद्बहिः ।
स्थापयेन्मृन्मये पात्रे ऊर्ध्वाधो लवणं क्षिपेत् ॥ ६४ ॥
भाण्डवक्त्रं निरुध्याथ चतुर्यामं दृढाग्निना ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्वे कृत्वा तु कज्जलीम् ॥ ६५ ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ।
वामभागे ज्वरं हन्ति तत्क्षणाल्लोककौतुकम् ॥ ६६ ॥
कुर्याद्दक्षिणभागेन चारोग्यं निश्चितं भवेत् ।
गोप्याद्गोप्यतमं प्रोक्तं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
अर्धनारीश्वरो नाम रसोऽयं कथितो भुवि ॥ ६७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, विष और सुहांगा इन चारोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करे, जब घुटते घुटते औषधि कज्जलके समान काली होजाय तब उस कज्जलीको मरेहुए काले साँपके मुँहमें भरकर मिट्टीसे मुंहको बन्द करके उसपर कपरौटी करदेवे। फिर उसको मिट्टीकी हांडामें रखकर उसके नीचे ऊपर खूब नमक भरदेवे और हाँडीका मुँह बन्दकरके इसक सन्धिस्थानोंको अच्छे प्रकार बन्दकर चार प्रहरतक तीक्ष्ण अग्नि देवे। स्वाङ्गशीतल होनेपर उसको निकालकर खरलमें डालकरके खूब बारीक कज्जली करलेवे, इस कज्जलीको एक रत्तीपरिमाण लेकर रोगीको नस्य देनेसे उसके वाम अङ्गका ज्वर तत्काल दूर होजाता है, फिर धीरे धीरे दहिने अङ्गका भी ज्वर दूर होकर रोगी पूर्ण आरोग्य होजाता है। यह रस अत्यन्त गोपनीय है, इसलिये इसको बड़े यत्नसे छिपाकर रखना चाहिये। इसको अर्धनारीश्वररस कहते हैं ॥ ६३-६७ ॥

मृतसञ्जीवनरस।

हिंगूलभागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः।
द्वौ भागौ टङ्कणस्यापि भागैकममृतस्य च ॥ ६८ ॥
तत्सर्वं मर्दयेच्छ्लक्ष्णं शुष्कं यामं भिषग्वरः।
शृङ्गवेराम्बुना मर्द्यं व्याषचित्रकसैन्धवैः ॥ ६९ ॥
यामद्वयमितस्तापं हरत्येव न संशयः।
घनसारससारेण चन्दनेन विलेपनम् ॥ ३७० ॥
विदध्यात्कांस्यपात्रे च भोजनं रोगिणां भिषक्।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेदिन्दुसंयुतम् ॥ ७१ ॥

सिंगरफ ४ भाग, जमालगोटा ३ भाग, सुहागा २ भाग और शुद्ध मीठा तेलिया १ भाग, सबको एकत्र बारीक खरल करके अदरखके रसमें एक प्रहर तक खूब घोटे। फिर सुखाकर उसमेंसे एक एक रत्ती परिमाण लेकर सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक इनके चूर्ण और चीतेके क्वाथमें मिलाकर रोगीको सेवन करावे। यह रस दो प्रहरमें ही ज्वरको निस्सन्देह नष्ट कर देता है। इस औषधिको सेवन करनेपर शरीरपर कपूर चन्दनादिका लेप आदि शीतोपचार करने चाहिये। ज्वरके कम होजानेपर वैद्य, रोगीको तक्र और कर्पूरमिश्रित शालिधानोंके चावलोंका भात काँसीके पात्रमें रखकर भोजन करावे ॥ ६८-३७१ ॥

सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे।
आमवाते वातगुल्मे शूले प्लीह्नि जलोदरे ॥ ७२ ॥

शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सन्ततज्वरे ।
अग्निमान्द्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसोत्तमः ।
मृतसंजीवनो नाम विख्यातो रससागरे ॥ ७३ ॥

इस रसको अत्यन्त घोर सन्निपात त्रिदोषज विषमज्वर, आमवात, वातगुल्म, शूल, प्लीहा, जलोदर, शीतयुक्त या दाहयुक्त विषमज्वर, सन्ततज्वर, मन्दाग्नि और वातव्याधि इन सम्पूर्ण रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह मृतसंजीवनरस रससमुद्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

श्रीरसराज ।

भागैकं रसराजस्य भागश्च हेममाक्षिकात् ।
भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयो मताः ॥ ७४ ॥
तालाष्टादशका भागाः शुल्बं स्याद्भागपंचकम् ।
भल्लातकात्त्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७५ ॥
वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृन्मयभाजने ।
विधाय सुदृढां मुद्रां पचेद् यामचतुष्टयम् ॥ ७६ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्लयेत्सुदृढं पुनः ।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पर्णखण्डेन दापयेत् ॥
रसराजः प्रसिद्धोऽयं ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥ ७७ ॥

पारा १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मैनसिल २ तोले, गन्धक ३ तोले, हरताल १८ तोले, ताँबा ५ तोले और भिलावे (अभावमें लाल चन्दन) ३ तोले लेकर सबको एकत्र पीसलेवे । फिर थूहरके दूधमें खरल करके गोलासा बनाकर मिट्टीकी हाँडीमें रखदेवे और उसपर उत्तम प्रकारसे मुद्राकरके ४ प्रहरतक अग्निमें पकावे स्वाङ्गशीतल होजानेपर औषधिको निकालकर खूब बारीक खरल करलेवे । इसको चार रत्ती परिमाण लेकर पानमें रखकर सेवन करानेसे आठप्रकारका ज्वर दूर होता है यह रसराज ज्वरकी प्रसिद्ध औषध है ॥ ७४–७७ ॥

मुद्राघोटकरस ।

पारदो गन्धकश्चैव त्रिक्षारं लवणत्रयम् ।
गुग्गुलुर्वत्सनाभं च प्रत्येकं तु द्विमाषिकम् ॥ ७८ ॥
कृष्णोन्मत्तजटानीरैर्भावयेत्सप्तवारकम् ।
गोक्षुरेन्द्रकमारीषकरञ्जचित्रतेजिका ॥ ७९ ॥

भूकुरुत्रकलताभिश्च त्रिफलाबृहतीरसैः ।
मर्दिता वटिका कार्य्या कृष्णलाफलसन्निभा ॥ ३८० ॥
ततो वटीद्वयं दत्त्वा यत्नैः पाटचादिभिर्वृतः ।
रसः सर्वज्वरं हन्ति क्षणमात्रान्न संशयः ॥ ८१ ॥

पारा, गन्धक, जवाखार, सुहागा, सज्जी, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, कालानमक, गूगल और वत्सनाभ विष ये प्रत्येक दोदो माशे लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर काले धतूरेकी जड़के रसमें सातबार भावना देकर गोखुरू, इन्द्रजौ, मरसाशाक, करंजुआ, चीतेकी जड़, मालकाँगनी, छोटी कटसरैयाकी जड़, त्रिफला और बड़ीकटेरी इन ओषधियोंके रस अथवा क्वाथमें क्रमक्रमसे खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे दो गोली अदरखके रसके साथ सेवन कराकर रोगीको गरम वस्त्रोंसे अच्छीतरह ढकदेवे। यह रस क्षणभरमें ही सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करदेता है ॥ ७८–३८१ ॥

शीतारिरस ।

पारदं गन्धकं टङ्कं शुल्बं चूर्णं समं समम् ।
पारदाद् द्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ८२ ॥
सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्म शर्करा[1]ऽपि च ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ८३ ॥
द्विगुञ्जं तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ।
रसः शीतारिनामाऽयं शीतज्वरहरः परः ॥ ८४ ॥

पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्रभस्म, सैंधानमक, मिरच, इमलीकी छालकी भस्म और वत्सनाभविष ये प्रत्येक एकएक भाग और जमालगोटोंके बीजोंकी गिरी २ भाग लेकर सबको जम्बीरीनींबूके रसमें एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली गरम जलके साथ सेवन करे। यह रस वातकफज्वर और शीतज्वरको शमन करनेके लिये परमोपयोगी है ॥

पर्णखण्डेश्वररस ।

समांशं मर्दयेत्खल्ले रसं गन्धं शिलां विषम् ।
निर्गुण्डीस्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं चार्द्रकद्रवैः ॥
गुञ्जैकं भक्षयेत्पर्णैर्ज्वरं हन्ति महद्द्रुतम् ॥ ८५ ॥

१ शर्करा–विषम् ।

शुद्ध पारा, गन्धक, मैनसिल और शुद्ध वत्सनाभ इन चारोंको समान भाग लेकर बारीक पीसलेवे, फिर निर्गुण्डीके स्वरस और अदरखके स्वरसमें क्रमसे तीन तीन बार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक गोली पानमें रखकर खानेसे प्रबलज्वर शीघ्र नष्ट होता है॥ ८५॥

शीतभञ्जी रस।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धकम्।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्लरसैर्दिनम्॥ ८६॥
मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत्।
अङ्गुलयर्द्धार्द्धमानेन तत्पचेत्सिकताह्वये॥ ८७॥
यन्त्रे यावत्स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः।
ताम्रपात्रं समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम्॥ ८८॥
शीतभञ्जीरसो नाम द्विगुञ्जो वातिकज्वरे॥
दातव्यः पर्णखण्डेन मुहूर्तान्नाशयेज्ज्वरम्॥ ८९॥

"शुद्धताम्रं षट्तोलकं तेन निर्मितं ताम्रखल्लं प्रत्येकं तोलकमितेन पारदादिषड्द्रव्येण लिप्तमधोमुखं कृत्वा स्थाल्यां संस्थाप्य पात्रान्तरेणाच्छाद्य उपरि वालुकाभिः स्थालीं परिपूर्य, तदुपरि व्रीहीन् दत्त्वा चुल्ल्यां निवेश्य तावदग्निज्वाला दातव्या यावद् व्रीहयो न स्फुटन्ति, स्फुटितेषु तेषु व्रीहिषु रसः सिद्धो भवति। पश्चात् मरिचचूर्णं षट्तोलकं सर्वमेकीकृत्य चूर्णयित्वा अस्य द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन सह भक्षयेदित्युपदेशः॥"

प्रथम ६ तोले शुद्ध ताम्र लेकर उसका एक खरल बनावे, फिर पारा, खपरिया हरताल, तूतिया, सुहागा और गन्धक इन सबको एकएक तोला परिमाण लेकर करेलेके पत्तोंके रसमें एकदिन खरल करके कल्क बनालेवे। उस कल्कका उक्त ताँबेके खरलके आध २ अँगुल ऊँचा भीतर लेप करके उसे सुखालेवे। फिर उस खरलका नीचेको मुँह करके एक हाँडीमें रखकर उसके ऊपर

१ रसकम्—खर्परम्।

दूसरी हाँडी ढकदेवे और सन्धिस्थानोंको बन्द करदेवे । पश्चात् उसको वालुकायन्त्रके द्वारा चूल्हेपर रखकर पकावे और उस यन्त्रके ऊपर कुछ धानके दाने रखदेवे और यन्त्रको तबतक अग्नि देवे; जबतक धानकी खीलें न होजाय । जब सब धान अच्छी तरहसे खिलजायँ तब रसको सिद्ध हुआ जानकर स्वाङ्गशीतल होनेपर ताम्रपात्रको निकालले और उसमेंसे ओषधिको छुड़ाकर उसको ६ तोले मिरचोंके साथ खूब बारीक खरलकरके एक शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको दो रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करनेसे क्षणभरमें वातज्वर नष्ट होता है । इसको शीतभञ्जीरस कहते हैं ॥ ८६–८९ ॥

स्वल्पज्वरांकुशरस ।

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यं च टङ्कणम् ।
रसतुल्यं विषं योज्यं मरिचं पंचधा विषात ॥ ३९० ॥
कटूफलं दन्तिबीजं च प्रत्येकं मरिचोन्मितम् ।
ज्वराङ्कुशो रसो नाम मर्दयेद्याममात्रकम् ॥
माषैकेन निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम् ॥ ३९१ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा, २ भाग, शुद्ध विष १ भाग, मिरच ९ भाग, कायफल ९ भाग और दन्तीके बीज ९ भाग लेकर सबको जलके साथ एक प्रहरतक खरल करके एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे जीर्णज्वर और सन्निपातज्वर शीघ्र दूर होता है । यह विरेचक औषध है ॥ ३९० ॥ ९१ ॥

द्वितीयज्वरांकुश ।

ताम्रतो द्विगुणं तालं मर्दयेत्सुषवीद्रवैः ।
प्रपुटेद् भूधरे शीते चक्रीक्षीरैर्विमर्दयेत् ॥ ९२ ॥
प्रपुटेद् भूधरे पश्चात पंचगुञ्जामितं शुभम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव सर्वज्वरनिकृन्तनः ॥ ९३ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम ।
विषमं चापि शीताढ्यं ज्वरं हन्ति ज्वराङ्कुशः ॥ ९४ ॥

ताँबा १ भाग और हरताल २ भाग लेकर दोनोंको करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करके भूधर यन्त्रमें पुटपाक करे । शीतल होनेपर उनको निकालकर थूहरके दूधमें घोटकर फिर भूधर यन्त्रमें रखकर पुट देवे । पश्चात् इसको ५ रत्ती परिमाण अदरखके रसमें मिलाकर देनेसे ही सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । यह

रस ऐकाहिक, द्वयाहिक, तिजारी, चौथिया विषमज्वर और शीतज्वरको दूर करता है ॥ ९२-९४ ॥

तृतीयज्वरांकुशरस ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्त्तबीजं त्रिभिः समम् ।
चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ।
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसेषु तम् ॥ ९५ ॥
ज्वराङ्कुशो रसो नाम ज्वरान्सर्वान्विनाशयेत् ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं चातुराहिकम् ।
विषमं च त्रिदोषोत्थं हन्ति सद्यो न संशयः ॥ ९६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मीठातेलिया ये प्रत्येक एक एक तोला, धतूरेके बीज ३ तोले और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) चारों ओषधियोंसे दुगुना अर्थात् १२ तोले लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर जम्बीरी नींबूके बीजोंकी मींग और अदरखके रसके साथ इस रसकी एक गोली पीसकर रोगीको सेवन करावे । यह ज्वरांकुश-रस सर्व प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है। इसके सेवनसे ऐकाहिक, द्वयाहिक, तिजारी, चौथियाज्वर, विषमज्वर और त्रिदोषजनितज्वर निस्सन्देह शीघ्र दूर होता है ॥ ९५॥ ९६ ॥

मध्यमज्वरांकुशरस ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं कर्षमानं नयेद् बुधः ।
महौषधं टङ्कणं च हरतालं तथा विषम् ॥ ९७ ॥
रसार्द्धं मर्दयेत्खल्ले भृङ्गराजरसेन तु ।
त्रिदिनं भावनां दत्त्वा चतुर्थे वटिकां ततः ॥ ९८ ॥
कुर्य्याच्चणकमात्रां च पिप्पलीमधुसंयुतः ।
मध्यज्वराङ्कुशो नाम विषमज्वरनाशनः ॥ ९९ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धककी कज्जली ४ तोले तथा सोंठ, सुहागा, हरताल और वत्सनाभ विष ये प्रत्येक पारेसे अर्द्धभाग अर्थात् एक एक तोला लेवे। सबको एकत्र खरल करके भाँगरेके रसके साथ तीन दिनतक खूब अच्छे प्रकारसे घोटे,

१ व्योषं-मिलितचतुर्णां द्विगुणम् । २ महौषधादीनां चतुर्णां प्रत्येकं रसार्द्धम् ।

चौथे दिन चनेकी बराबर गोलियाँ बनाकर सुखालेवे । इसकी एक एक गोली पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥९७-९९॥

सर्वज्वरांकुश ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मरिचं नागरं कणा ।
त्वचं जैपालकं कुष्ठं भूनिम्बं मुस्तकं पृथक् ॥ ४०० ॥
चूर्णयित्वा समांशं तु कज्जल्या सह मेलयेत् ।
निर्गुण्ड्याः स्वरसे चापि आर्द्रकस्य रसे तथा ॥ ४०१ ॥
भावनां कारयित्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
वटिकां भक्षयित्वा तु वस्त्रवेष्टं च कारयेत् ॥ ४०२ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धककी समान भाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर मिरच, सोंठ, पीपल, दारचीनी, जमालगोटा, कूठ, चिरायता और नागरमोथा इन सबको समान भाग और कज्जलीसे आधा परिमाण लेकर बारीक चूर्ण करके कज्जलीमें मिलालेवे । पश्चात् निर्गुण्डीके पत्तोंके स्वरसमें और अदरखके रसमें अलग २ भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एक गोली सेवन कराकर रोगीको गरम वस्त्रोंसे अच्छीतरह ढकदेवे ॥ ४००-४०२ ॥

सर्वज्वराङ्कुशवटी सर्वज्वरविनाशिनी ।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ॥ ४०३ ॥
प्राकृतं वैकृतं चापि वातश्लेष्मकृतं च यत् ।
अन्तर्गतं बहिःस्थं च निरामं साममेव वा ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४०४ ॥

यह सर्वज्वरांकुशवटी सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवाली है । तथा भिन्नभिन्न दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर, स्वाभाविकज्वर, विकृतज्वर, वातकफजनितज्वर, आन्तरिकज्वर, बाह्यज्वर, आमरहित अथवा आमयुक्त ज्वर, इनके अतिरिक्त अन्य आठोंप्रकारके ज्वरोंको यह वटी इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेती है जैसे वज्र (बिजली) वृक्षोंको नष्ट करदेता है ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥

बृहज्ज्वरांकुश रस ।

पारदं गन्धकं ताम्रं हिङ्गुलं तालमेव च ।
लौहं वङ्गं माक्षिकं च खर्परं च मनःशिला ॥ ९ ॥

स्वर्णमभ्रं गैरिकं च टङ्कणं रूप्यमेव च ।
सर्वाण्येतानि तुल्यानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ६ ॥
जम्बीरतुलसीचित्रविजयातिन्तिडीरसैः ।
एभिर्दिनत्रयं रौद्रे निर्जने खल्लगह्वरे ॥ ७ ॥
चणमात्रां वटीं कृत्वा छायाशुष्कां तु कारयेत् ॥ ८ ॥

पारा, गन्धक, ताँबा, सिंगरफ, हरताल, लोहा, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, खपरिया, मैनसिल, सुवर्ण, अभ्रक, गेरू, सुहागा और रूपाभस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर उस चूर्णको खरलमें डालकर जम्बीरीनींबू, तुलसीके पत्ते, चीतेकी जड़, भाँग और इमलीके पत्ते इन प्रत्येकके रसमें क्रम क्रमसे तीन तीन दिनतक धूपमें एकान्तस्थानमें रखकर भावना देवे। फिर चनेके बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे ॥ ४०५-४०८ ॥

महाग्निजननी चैषा सर्वज्वरविनाशिनी ।
एकजं द्वन्द्वजं चैव चिरकालसमुद्भवम् ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्रिदोषप्रभवं ज्वरम् ॥ ९ ॥
चातुर्थकं तथाऽत्युग्रं जलदोषसमुद्भवम् ।
सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४१० ॥
नातः परतरं किंचिज्ज्वरनाशाय भेषजम् ।
बृहज्ज्वराङ्कुशो नाम रसोऽयं मुनिभाषितः ॥ ११ ॥

ये गोलियाँ जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली और सम्पूर्ण ज्वरोंको विनाश करनेवाली हैं। एवं एकदोषज, द्विदोषज और चिरकालजनितज्वर, ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्रिदोषज, अत्यन्त प्रबल चातुर्थिक ज्वर और जलदोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर इत्यादि समस्त ज्वरोंको तत्काल नाश करदेता है; जैसे—सूर्य अन्धकारको क्षणभरमें विनाश करदेता है। ज्वरको नष्ट करनेके लिये इससे बढ़कर अन्य कोई औषध नहीं है, ऐसा मुनियोंने कहा है। इसको बृहज्ज्वरांकुश रस कहते हैं ॥ ४०९-४११ ॥

महाज्वरांकुश रस ।

पारदं हिङ्गुलं ताम्रं माक्षिकं तुत्थमेव च ।
वङ्गं मृतं च गन्धं च खर्परं च मनःशिला ॥ १२ ॥

तालकं घनपाषाणं गैरिकं टङ्कणं तथा।
दन्तीबीजानि सर्वाणि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥
भावना पूर्ववद्देया वटीं कुर्याच्च पूर्ववत् ॥ १३ ॥

पारा, सिंगरफ, ताँबा, सोनामाखी, तूतिया, वङ्ग, गन्धक, खपरिया, मैनसिल, हरताल, चुम्बकपत्थर, गेरू, सुहागा और दन्तीके बीज इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर पूर्वोक्त बृहज्ज्वरांकुशके समान जम्बीरादिके रसोंमें यथाविधि भावना देकर उसीके अनुसार गोलियाँ बनालेवे यह रस भी विषमज्वरादि रोगोंको शमन करनेके लिये पूर्वोक्त रसके समानही गुणकारी है ॥ १२ ॥ १३ ॥

चूडामणिरस।

मृतं सूतं प्रवालं च स्वर्णं तारं च वंगकम्।
शुल्बं मुक्ता तीक्ष्णमभ्रं सर्वमेकत्र योजयेत् ॥ १४ ॥
जलेन पिष्ट्वा वटिका कार्या वल्लप्रमाणतः।
धातुस्थं सन्निपातोत्थं ज्वरं विषमसम्भवम् ॥ १५ ॥
कामशोकसमुद्भूतं त्रिदोषजनितं तथा।
कासं श्वासं च विविधं शूलं सर्वाङ्गसम्भवम् ॥ १६ ॥
शिरोरोगं कर्णशूलं दन्तशूलं गलग्रहम्।
वातपित्तसमुद्भूतं ग्रहणीं सर्वसम्भवाम् ॥ १७ ॥
आमवातं कटीशूलमग्निमान्द्यं विषूचिकाम्।
अर्शांसि कामलां मेहं मूत्रकृच्छ्रादिकं च यत् ॥ १८ ॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान्।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ १९ ॥

रससिन्दूर, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, मोतीकी भस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र मिलालेवे, फिर जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह चूडामणिरस उपर्युक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे धातुगतज्वर, सन्निपातजज्वर, विषमज्वर, काम और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर तथा खाँसी, श्वास, अनेक प्रकारका शूल, सर्वाङ्गशूल, शिरोरोग, कर्णशूल, दन्तपीड़ा, गलेके रोग, वात-पित्तजन्यरोग, सब प्रकारकी संग्रहणी, आमवात, कमरकी पीड़ा, मन्दाग्नि, विषूचिका, अर्श, कामला,

प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट कर देता है जैसे सुदर्शनचक्र असुरोंको तत्काल नाश कर देता है। इसको श्रीशिवजीमहाराजने वर्णन किया है॥ १४-१९॥

बृहच्चूडामणिरस।

कस्तूरिकाविद्रुमरौप्यलौहं तालं हिरण्यं रससिन्दुरं च।
सुवर्णसिन्दूरलवङ्गमौक्तिकं चोचं घनं माक्षिकराजपट्टम् ॥४२०॥
गोक्षूरजातीफलजातिकोषं मरीचकर्पूरशिखिग्रिवं च।
प्रगृह्य सर्वं हि समं प्रयत्नादथाश्वगन्धां द्विगुणं हि वैद्यः ॥२१॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं मुनिसंख्यया।
निर्गुण्डी फञ्जिका वासा रविमूलत्रिकण्टकैः॥ २२॥

कस्तूरी, मूँगा, चाँदी, लोहा, हरताल, सुवर्ण इनकी भस्म, रससिन्दूर, स्वर्णसिंदूर, लौंग, मोतीकी भस्म, दारचीनी, नागरमोथा. स्वर्णमाक्षिक, कान्तलोहकी भस्म, गोखुरू, जायफल, जावित्री, मिरच, कपूर और तूतिया इन सब औषधियोंको समान भाग अर्थात् एकएक भाग और असगन्धको दो भाग लेकर वैद्य प्रथम सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करले, फिर उसको सिम्हालू, भारंगी, अडूसा, आककी जड़ और गोखुरू इन औषधियोंके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे॥ ४२०-२२॥

तद्वीर्यं कथयिष्यामि वातिकं पैत्तिकं ज्वरम्।
कफोद्भवं द्विदोषोत्थं त्रिदोषजनितं तथा॥ २३॥
सन्ततं सततं हन्ति तृतीयकचतुर्थकौ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च विषमं भूतसम्भवम्॥ २४॥
नाशयेदचिरादेव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
चूडामणिरसोऽप्येष शिवेन परिभाषितः॥ २५॥

ये गोलियाँ सेवन करनेसे वात, पित्त और कफ इन भिन्न भिन्न दोषोंसे होनेवाले ज्वर, द्विदोषज और सन्निपातजज्वर एवं सन्तत, सतत, तिजारी, चौथिया, एकतरा और दो दिन आनेवाला, विषमज्वर और भूतज्वर इत्यादि सम्पूर्ण ज्वरोंको अल्पकालमें ही इस प्रकार नष्ट कर देती हैं, जैसे वज्र वृक्षोंको। इस चूडामणि रसको शिवजीने निर्दिष्ट किया है॥ २३-२५॥

बृहज्ज्वरचूडामणि रस।

सुवर्णसिन्दुरं स्वर्णं लोहं तारं मृगाण्डजम्।
जातीफलं जातिकोषं लवङ्गं च त्रिकण्टकम् ॥ २६ ॥
कर्पूरं गगनं चैव चोचं मुसलतालकम्।
प्रत्येकं कर्षमानं तु तुरङ्गं च द्विकार्षिकम् ॥ २७ ॥
विद्रुमं भस्मसूतं च मौक्तिकं माक्षिकं तथा।
राजपट्टं शिखिग्रीवं सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ॥ २८ ॥
खल्वे तु चूर्णमादाय भावयेत्परिकीर्त्तितैः।
निर्गुण्डी फञ्जिका वासा रविमूलत्रिकण्टकैः।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ २९ ॥

स्वर्णसिन्दूर, सुवर्ण, लोह और रौप्यभस्म, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, लौंग, गोखुरू, कपूर, अभ्रक, दारचीनी और मुसली ये प्रत्येक एक एक कर्ष (एक एक तोला), असगन्ध, मूँगा, रससिन्दूर, मौक्तिकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, कान्तलोहभस्म और तूतिया ये सब दो दो कर्ष परिमाण लेवे। इन सबको एकत्र खरल करके निर्गुण्डी, भारंगी, अडूसा, आककी जड़ और गोखरू इन ओषधियोंके रस या क्वाथमें सात सात बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस साध्य अथवा असाध्य आठों प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ २६-२९ ॥

भानुचूडामणिरस।

सुवर्णं रससिन्दूरं प्रवालं वङ्गमेव च।
लोहं ताम्रं तेजपत्रं यमानी विश्वभेषजम् ॥ ४३० ॥
सैन्धवं मरिचं कुष्ठं खदिरं द्विहरिद्रकम्।
रसाञ्जनं माक्षिकं च समभागं च कारयेत् ॥ ३१ ॥
वारिणा वटिका कार्या रक्तिद्वयप्रमाणतः।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ३२ ॥

---

१ अत्र-केचित्तु मुसलतालकशब्देन तालमूलीमेव गृह्णन्ति, नतु मुसलीतालकौ। तन्त्रान्तरेषु हरितालस्यानुक्तत्वात्।

इस रसमें-'मुसलतालकम्' इस शब्दसे कोई २ मुसली ही ग्रहण करते हैं। मुसली और हरताल ये दोनों वस्तुयें नहीं ग्रहण करते, कारण तंत्रशास्त्रोंमें हरतालका विधान नहीं किया ॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, प्रवालभस्म, वङ्ग, लोह, ताम्रभस्म, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सैंधानमक, मिरच, कूट, खैर, हल्दी, दारुहल्दी रसौत और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर पानीके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे। यह रस सम्पूर्णज्वरोंको नष्ट करता है ॥ ४३०-३२ ॥

चिन्तामणिरस।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रिकम्।
भूषणं दन्तिबीजं च समं खल्ले विमर्दयेत् ॥ ३३ ॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तदुपपालितम्।
चिन्तामणिरसो ह्येष त्वजीर्णे शस्यते सदा ॥ ३४ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलनिषूदनः।
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा देयमार्द्रकवारिणा ॥ ३५ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल और जमालगोटा, सबको समान भाग लेकर खरल करके द्रोणपुष्पी (गूमा) के रसमें भावना देकर छायामें सुखाकर एक या दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह चिन्तामणि रस, अजीर्णरोगमें विशेष उपयोगी है। इसके सेवनसे आठ प्रकारका ज्वर और सब प्रकारका शूल नष्ट होता है। अनुपान अदरखका रस ॥ ३३-३५ ॥

द्वितीयचिन्तामणिरस।

रसं गन्धं विषं लौहं धूर्त्तबीजं च तत्समम्।
द्वौ भागौ ताम्रवह्नेश्च व्योषचूर्णं च तत्समम् ॥ ३६ ॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम्।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेज्ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ ३७ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च चातुर्थकविपर्ययम् ॥ ३८ ॥
असाध्यं चापि साध्यं च ज्वरं चैवातिदुस्तरम्।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च आध्मानेऽनिलसम्भवे ॥ ३९ ॥
अतिसारेऽर्दिते चैव अरोचकनिपीडिते।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशकः ॥ ४४० ॥

पारा, गन्धक, वत्सनाभ, लोहभस्म, धतूरेके बीज ये प्रत्येक एकएक भाग ताम्रभस्म, चीतेकी जड और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये प्रत्येक दो दो भाग लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर जम्बीरी नींबूके बीजोंकी गिरी और अदरखके रसके साथ खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन दो दो गोली खानेसे ज्वर शीघ्र दूर होता है। यह चिन्तामणिरस वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातजन्यज्वर, एकतरा, द्व्याहिक, चौथिया, तिजारी आदि साध्य अथवा असाध्य भयंकर ज्वरोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। एवं अग्निकी मन्दता, अजीर्ण, आध्मान (अफारा), वातविकार, अतिसार, अर्दित और अरुचि आदि रोगोंमें विशेष उपकार करता है। यह रस सब प्रकारके ज्वरोंको इस प्रकार तत्काल नष्ट कर देता है जैसा सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है॥ ३६–४० ॥

बृहज्ज्वरचिन्तामणिरस।

रसगन्धकलोहानि ताम्रं तारं हिरण्यकम्।
हरितालं खर्परं च कांस्यं वङ्गं च विद्रुमम् ॥ ४१ ॥
मुक्तामाक्षिककासीसं शिला च टङ्कणं समम्।
कर्पूरं च समं दत्त्वा भावना सप्तसप्तकम् ॥ ४२ ॥
भार्ङ्गी वासा च निर्गुण्डी नागवल्ली जयन्तिका।
कारवेल्लं पटोलं च शक्राशनपुनर्नवा ॥ ४३ ॥
आर्द्रकं च ततो दद्यात्प्रत्येकं वारसप्तकम्।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशकः ॥ ४४ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्द्वजं विषमाख्यं च धातुस्थं च ज्वरं जयेत् ॥ ४५ ॥
कासं श्वासं तथा शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम्।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ४६ ॥

पारा, गन्धक, लोहा, ताम्रभस्म, रौप्यभस्म, सुवर्णभस्म, हरताल, खपरिया, काँसा, वङ्ग, मूंगा, मोती और स्वर्णमाक्षिककी भस्म, हीराकसीस, मैनसिल, सुहागा और कपूर इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरलकरके उसको भारंगी अडूसा, निर्गुण्डी, पान, अरणी, करेला, पटोलपात, भाँग, पुनर्नवा और, अदरख इन ओषधियोंके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर एक एक

रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, द्वन्द्वज, विषमज्वर, धातुगतज्वर आदि सर्वप्रकारके ज्वर तथा खाँसी, श्वास, शोथ, पाण्डुरोग, हलीमक, प्लीहा, अग्रमांस और यकृत् विकार आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको विनाश करती हैं ॥ ४१-४६ ॥

बृहच्चिन्तामणिरस ।

रसं गन्धं विषं चैव त्रिकटु त्रैफलं तथा ।
शिलाह्वा रौप्यकं स्वर्णं मौक्तिकं तालकं समम् ॥ ४७ ॥
मृगकस्तूरिकायाश्च ग्राह्यं षाण्माषिकं भिषक् ।
भृङ्गराजरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन वा ॥ ४८ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव वटीं कुर्य्याद् द्विगुञ्जिकाम् ।
चिन्तामणिरसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकृत् ॥ ४९ ॥
सन्निपातज्वरहरः कफरोगविनाशकः ।
एकजं द्वन्द्वजं चैव विविधं विषमज्वरम् ॥ ४५० ॥
अग्निमान्द्यं शिरःशूलं विद्रधिं सभगन्दरम् ।
एतान्येवं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ५१ ॥

पारा, गन्धक, मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मैनसिल, रौप्यभस्म, स्वर्णभस्म, मोतीभस्म और हरतालभस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला और कस्तूरी ६ माशे लेकर सबको एकत्र खरल करके भाँगरा, तुलसी और अदरखके स्वरसमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । (इनमेंसे एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करनी चाहिये । ऐसा प्राचीन वैद्योंका उपदेश है ।) यह रस सब प्रकारके रोगोंके, समूल नष्ट करनेवाला है तथा सन्निपातज्वर और कफरोगोंको हरनेवाला, एकदोषज द्विदोषज आदि विविधप्रकारके विषमज्वर, मन्दाग्नि, शिरका शूल, विद्रधि, भगन्दर इत्यादि सम्पूर्ण रोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेता है जैसे सूर्य अन्धकारको ॥ ४७-४५१ ॥

ज्याहिकारिरस ।

रसेन गन्धं शङ्खं च शिखिग्रीवं च पादिकम् ।
गोजिह्वया जयन्त्या च तण्डुलीयैश्च भावयेत् ॥ ५२ ॥

१ रसादितालकान्तानां द्रव्याणां भागेष्वनुक्तेष्वपि प्रत्येकं तोलकप्रमाणं ग्राह्यम् , आर्द्रकरसेन सेव्या चेयं इति वृद्धवैद्योपदेशः ।

प्रत्येकं सप्त सप्ताथ शुष्कं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
ज्वरघ्नेन घृतेनाद्यात् त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥ ५३ ॥

पारा, गन्धक और शङ्खभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला और तूतिया सबका चौथाई भाग लेकर सब औषधियोंको गोजिया (गोभी), अरणी और चौलाईका शाक इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सुखालेवे । इस रसकी एक एक गोली किसी ज्वरघ्न घृतके साथ सेवन करनी चाहिये । यह रस तृतीयक (तिजारी) ज्वरको शमन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चातुर्थकारिरस ।

हरितालं शिला तुत्थं शङ्खचूर्णं च गन्धकम् ।
समांशं मर्दयेत्खल्ले कुमारीरससंयुतम् ॥ ५४ ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा दत्त्वा गजपुटं पचेत् ।
कुमारिकारसेनैव वल्लमात्रा वटी कृता ॥ ५५ ॥
दत्ता शीतज्वरं हन्ति चातुर्थिकं विशेषतः ।
मरिचैर्घृतयोगेन तक्रं पीत्वा चरेद्वटीम् ॥
एतया वमनं भूत्वा ज्वरस्तस्माद्विनश्यति ॥ ५६ ॥

हरताल, मैनसिल, तूतिया, शंखभस्म और गन्धक इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके घीग्वारके रसमें घोटकर गोलासा बनालेवे । उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे । स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकालकर फिर घीग्वारके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रथम रोगीको तक्र पान कराकर फिर इस रसकी गोलीको मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ सेवन करावे । इससे रोगीको वमन होकर शीतज्वर और विशेषकर चातुर्थिकज्वर (चौथियाज्वर) शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५४–५६ ॥

विश्वेश्वररस ।

दरदं पारदं गन्धं तुल्यांशं मर्दयेद्रसे ।
अश्वत्थजे त्र्यहं पश्चाद्रसे कोलकमूलजे ॥ ५७ ॥
निदिग्धिकारसे काकमाचिकाया रसे तथा ।
द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जं वा गोक्षीरेण प्रदापयेत् ॥
रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥ ५८ ॥

सिंगरफ, पारा, गन्धक तीनोंको समान भाग लेकर पीपलवृक्षकी जड, बेरीकी जड, कटेरी और मकोयके क्काथमें तीन तीन दिनतक भावना देकर दो या तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एकएक गोली रोगीको गायके दूधके साथ सेवन करावे । यह विश्वेश्वर रस रात्रिमें आनेवाले ज्वरको शीघ्र नष्ट करता है ॥५७॥५८॥

विक्रमकेसरीरस ।

शुल्बमेकं द्विधा तारं मर्दयेद्विधिवद्भिषक् ।
पश्चाद्विषं रसं गन्धं मेलयित्वा तु भावयेत् ॥ ५९ ॥
एकविंशतिवारांश्च लिम्पाकवल्कलद्रवैः ।
रसः सिद्धः प्रदातव्यो गुञ्जामात्रो ज्वरान्तकृत् ॥
सर्वज्वरहरः ख्यातो रसो विक्रमकेसरी ॥ ४६० ॥

ताम्रभस्म १ तोला और रौप्यभस्म २ तोले लेकर दोनोंको एकत्र खूब बारीक खरल करे । फिर उसमें शुद्ध वत्सनाभ, पारा और गन्धक ये प्रत्येक एकएक तोला मिलाकर कन्नानींबूके वृक्षकी छालके काढेमें २१ बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेके लिये प्रसिद्ध है ॥ ५९ ॥ ४६० ॥

ज्वरकालकेतुरस ।

रसं विषं गन्धकताम्रकंच मनःशिलारुष्करतालकं च ।
विमर्द्य वज्रीपयसा समांशं गजाह्वयं तत्र पुटं विदध्यात् ६१ ॥
द्विगुञ्जमस्यैव मधुप्रयुक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं महोग्रम् ।
पुरा भवान्यै कथितो भवेन नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ॥६२

पारा, विष, गन्धक, ताम्रभस्म, मैनसिल, भिलावे और हरताल इनको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके गजपुटमें पकावे । इस रसको दो दो रत्तीपरिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र आठोंप्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । इस रसको पूर्वकालमें मनुष्योंके हितके लिये शिवजी महाराजने पार्वतीजीसे कहा था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रिपुरारिरस ।

हुताशशुल्वसंशुद्धं रसं ताम्रं च गन्धकम् ।
लौहमभ्रं विषं चैव सर्वं कुर्यात्समांशकम् ॥ ६३ ॥
रसार्द्धं मृतरूप्यं च शृङ्गवेराम्बुमार्दितम् ।
द्विगुञ्जं मधुना देयं सितयाऽऽर्द्ररसेन वा ॥ ६४ ॥

ज्वरमष्टविधं हन्ति वारिदोषभवं तथा ॥
प्लीहानमुदरं शोथमतीसारं विनाशयेत् ॥
रोगानेतान्निहन्त्याशु शङ्करस्त्रिपुरं यथा ॥ ६५ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, गन्धक, लोहा, अभ्रक और शुद्ध मीठा तेलिया ये सब एक एक तोला और चाँदीकी भस्म ६ माशे लेकर सबको अदरखके रसमें घोटकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको शहद और अदरखके रसके साथ अथवा मिश्रीमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे आठों प्रकारका ज्वर, जलदोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर, प्लीहा, उदररोग, शोथ, अतिसार आदि सब रोग दूर होते हैं ॥ ६३-६५ ॥

मेघनादरस ।

तारं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यं च गन्धकम् ।
क्काथेन मेघनादस्य पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ ६६ ॥
षड्भिः पुटैर्भवेत्सिद्धो मेघनादो ज्वरापहः ।
भक्षयेत्पर्णखण्डेन विषमज्वरनाशनः ॥ ६७ ॥
अस्य मात्रा द्विगुंजा स्यात्पथ्यं दुग्धौदनं हितम् ।
नागरातिविषामुस्ताभूनिम्बामृतवत्सकैः ॥ ६८ ॥
सर्वज्वरातिसारघ्नं क्काथमस्यानुपाययेत् ।
तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृष्णां दाहं च नाशयेत ॥ ६९ ॥

चाँदी काँसा ताँबा इन तीनोंकी भस्म एक एक तोला और गन्धक ३ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके चौलाईके शाकके रसमें बारम्बार खरल करके ६ बार गजपुटमें पकावे । इस प्रकारसे जब यह रस उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब बारीक खरल करलेवे । इसको दो दो रत्तीकी मात्रासे पानके रस और मधुमें मिलाकर सेवन करे । यह विषमज्वरको नष्ट करता है । इसपर दूधभातका पथ्य हितकारी है । यह नवीनज्वर, जीर्णज्वर, तृष्णा और दाहको शान्त करता है । इस रसको सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय और कुडेकी छाल इन ओषधियोंका क्काथ अनुपानके साथ सेवन करानेसे सब प्रकारका ज्वरातिसाररोग दूर होता है ॥ ६६-६९ ॥

शीतारिरस ।

तालकं दरदोद्भूतं पारदं गन्धकं शिला ।
क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्लाम्बुमर्दितम् ॥ ४७० ॥

इदमस्य प्रमाणेन ताम्रपात्रं विलेपयेत् ।
अधोमुखं दृढे भाण्डे तं निरुध्याथ पूरयेत् ॥ ७१ ॥
चुल्ल्यां वालुकया घस्रमेकं प्रज्वालयेद्दृढम् ।
शीते संचूर्ण्य गुञ्जाऽस्य नागवल्लीदले स्थिता ॥ ७२ ॥
भक्षिता मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान् ।
दाहशीतादिकं हन्यात्पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥ ७३ ॥

हरताल ४ तोले, सिंगरफसे निकालाहुआ पारा दो तोले, गन्धक १ तोला और मैनसिल ६ माशे लेकर सबको करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करे, फिर ७॥ तोले परिमाण तांबेके बनवाये हुए खरलके भीतर उक्त ओषधिका लेप करके उसको नीचा मुँह करके एक हाँडीमें रक्खे। हाँडीके मुँहपर सकोरा ढककर सन्धिस्थानोंको कपरौटीद्वारा बन्द करदेवे। पश्चात् उस हाँडीको एक वालूसे भरीहुई हाँडीमें गाडकर उसपर मुद्रा करदेवे और उसको चूल्हेपर चढाकर एक दिनपर्यन्त तीक्ष्ण अग्नि देवे। दूसरे दिन स्वांगशीतल होजानेपर । अन्य सब वस्तुओंको त्यागकर केवल ताम्रपात्रको निकालकर खरल करलेवे। इस रसको एक एक रत्तीकी मात्रासे पानमें रखकर या पानके रस और मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करावे और शालि-चावलोंके भात तथा दूधका पथ्य देवे। यह रस सब प्रकारके विषमज्वर, दाह और शीत आदिको नष्ट करता है ॥ ४७०—७३ ॥

स्वच्छन्दभैरव रस ।

समभागाँश्च संगृह्य पारदामृतगन्धकान् ।
जातीफलस्य भागार्द्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ७४ ॥
सर्वार्द्धं पिप्पलीचूर्णं खल्लयित्वा निधापयेत् ।
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा नागवल्लीदलैः सह ॥ ७५ ॥
आर्द्रकस्य रसेनापि द्रोणपुष्पीरसेन च ।
शीतज्वरे सन्निपाते विषूच्यां विषमज्वरे ॥ ७६ ॥
पीनसे च प्रतिश्याये ज्वरेऽजीर्णे तथैव च ।
मन्देऽग्नौ वमने चैव शिरोरोगे च दारुणे ॥ ७७ ॥
प्रयोज्यो भिषजा सम्यक् रसः स्वच्छन्दभैरवः ।
पथ्यं दध्योदनं दद्याद्वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ ७८ ॥

पारा, वत्सनाभ और गन्धक ये प्रत्येक एक एक तोला और जायफल ६ माशे लेकर प्रथम पारे, गन्धककी कज्जली करलेवे, फिर सब ओषधियोंसे आधाभाग पीपलका चूर्ण मिलाकर सबको पानीके साथ एकत्र खरल करके एक या दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । वैद्योंको यह रस शीतज्वर, सन्निपातज्वर, विषूचिका, विषमज्वर, पीनस, प्रतिश्याय, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, वमन और दारुण शिरोरोग आदिमें पानके रस या अदरखके रस अथवा द्रोणपुष्पीके पत्तोंके रसके साथ सेवन कराना चाहिये । इसपर दोषोंके बलाबलको विचारकर दहीभात आदिका पथ्य देना चाहिये ॥ ७४–७८॥

ज्वराग्निरस ।

दरदबलिरसानां शुल्बनागाभ्रकाणां
सुभगविटशिलानां सर्वमेकत्र योज्यम् ।
विपिननृपदलोत्थैर्भावयेच्छोषयेत्तं
दशदिवससमाप्तौ रक्तिकैकां च कुर्यात् ॥ ७९ ॥

सिंगरफ, गन्धक, पारा, ताम्रभस्म, सीसेकी भस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, विरियासंचर नमक और मैनसिल इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके अमलतासके पत्तोंके रसमें दस दिनतक भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे और धूपमें सुखालेवे ॥ ७९ ॥

एकैकां भक्षयेदस्य चार्द्रकस्य रसैर्युताम् ।
दत्तमात्रो ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते ॥
सर्वशूलविनाशी च कफपित्तविनाशनः ॥ ४८० ॥

इस रसकी एकएक गोली अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करावे । यह रस देतेही ज्वरको नष्ट करता है, इसलिये इसको ज्वरारि कहते हैं । यह सब प्रकारक शूल और कफ पित्तके रोगोंको शमन करता है ॥ ४८० ॥

ज्वराशनिरस ।

रसं गन्धं सैन्धवं च विषं ताम्रं समं भवेत् ।
सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं चूर्णमभ्रकम् ॥ ८१ ॥
लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ।
मर्दयेद्यततः पश्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥
पर्णेन सह दातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः ॥ ८२ ॥

कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम् ।
धातुस्थं प्रबलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भवम् ॥
यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ८३ ॥

पारा, गन्धक, सैंधानमक, मीठातेलिया और ताम्रभस्म ये सब समभाग और सबके बराबर लोहभस्म और लोहेके बराबर अभ्रकभस्म लेवे । पश्चात् समस्त ओषधियोंको लोहेके खरलमें डालकर लोहेकी मुसलीसे निर्गुण्डीके रसके साथ अच्छेप्रकारसे खरल करे । फिर उसमें पारेके बराबर मिरचोंका चूर्ण मिलाकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एकएक गोली पानमें रखकर देनी चाहिये । यह रस-खाँसी, श्वास, घोर विषमज्वर, वमन, धातुगतज्वर, प्रबलदाह और ज्वरदोषके कारण चिरकालसे उत्पन्नहुए यकृत्‌विकार, गुल्मरोग, उदररोग, प्लीहा, शाथ आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ ८१–८३ ॥

ज्वरान्तकरस ।

भास्करो गन्धकः सर्वो देवी विहगतीक्ष्णकम् ।
शोणितं गगनं चैव पुष्पकं च महेश्वरम् ॥ ८४ ॥
भूनिम्बादिगणैर्भाव्यं मधुना गुटिका दृढा ।
चातुर्थिकं तृतीयं च ज्वरं सन्ततकं तथा ।
आमज्वरं भूतकृतं सर्वज्वरमपोहति ॥ ८५ ॥

ताम्रभस्म, गन्धक, पारा, गोपीचन्दन, सोनामाखी, लोहा, सिंगरफ, अभ्रक, रसौंत और सुवर्ण इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके भूनिम्बादिगणकी* १८ ओषधियोंको (समानभाग लेकर उनके अष्टावशेष क्वाथमें उक्त औषधिको तीनदिनतक खरलकर सुखायके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर एक एक गोली) मधुके साथ सेवन करे । यह रस चौथिया, तिजारीज्वर, सन्ततज्वर, आमयुक्तज्वर और भूतबाधाजनितज्वर आदि* सम्पूर्ण ज्वरोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

वातपित्तान्तकरस ।

मृतसूताभ्रमुस्तार्कतीक्ष्णमाक्षिकतालकम् ।
गन्धकं मर्दयेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षामृतारसैः ॥ ८६ ॥

---

* भूनिम्बाद्यष्टादशद्रव्याणि सर्वद्रव्यतुल्यानि, अष्टांशावशिष्टं क्वाथं कृत्वा तेन दिनत्रयं विभाव्य विशोष्य मधुना विमर्द्य अनुरूपं लिहेत् ।

धात्रीशतावरीद्राक्षैर्द्रवैः क्षीरविदारिजैः ।
दिनंदिनं विभाव्याथ सिताक्षौद्रयुता वटी ॥ ८७ ॥
माषमात्रा निहन्त्याशु वातपित्तज्वरं क्षयम् ।
दाहं तृष्णां भ्रमं शोषं वातपित्तान्तको रसः ।
सिताक्षीरं पिबेच्चानु यष्टिक्काथसितायुतम् ॥ ८८ ॥

पारेकी भस्म, अभ्रकभस्म, नागरमोथा, ताँबा, लोहा, सोनामाखी, हरताल इनकी भस्म और गन्धक सबको समान भाग लेकर मुलहठी, दाख, गिलोय, आमले, शतावर और विदारीकन्द इन ओषधियोंके रस या क्वाथमें एकएक दिनतक क्रमसे भावना देकर एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक एक गोली मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे वातपित्तजनितज्वर, क्षय, दाह, तृषा, भ्रम और शोष आदि विकार शमन होते हैं । इसके सेवन करनेपर मिश्री मिलाहुआ दूध अथवा मुलहठीका क्वाथ मिश्री मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ८६-८८ ॥

श्रीजयमङ्गलरस ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्कणं तथा ।
ताम्रं वङ्गं माक्षिकं च सैन्धवं मरिचं तथा ॥ ८९ ॥
समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम् ।
तदर्द्धं कान्तलौहं च रौप्यभस्मापि तत्समम् ॥ ४९० ॥
एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत्कनकद्रवैः ।
शेफालीदलजैश्चापि दशमूलरसेन च ॥ ९१ ॥
किराततिक्तकक्काथैस्त्रिवारं भावयेत्सुधीः ।
भावयित्वा ततः कार्या गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम् ॥ ९२ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, सोनामाखीकी भस्म, सेंधानमक और मिरच ये प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्णभस्म दो तोले, कान्तलोहभस्म १ तोला और रौप्यभस्म भी एक तोला लेवे । सबको एकत्र खरल करके धतूरेके पत्तोंके रस, हारसिंगारके पत्तोंके रस, दशमूलके क्वाथ और चिरायतेके क्वाथमें क्रमसे तीन तीन भावना देवे । फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ जीरेके चूर्ण और मधुके अनुपानके साथ प्रयोग करनी चाहिये ॥ ८९-४९२ ॥

जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ९३ ॥
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ।
मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जागतं तथा ॥ ९४ ॥
अन्तर्गतं महाघोरं बहिस्थं च विशेषतः ।
नानादोषोद्भवं चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा ॥ ९५ ॥
निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवशासनात् ।
जयमङ्गलनामाऽयं रसः श्रीशिवनिर्मितः॥
बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिबर्हणः ॥ ९६ ॥

यह रस चिरकालजनित और अत्यन्त घोर जीर्णज्वर, तथा साध्य व असाध्य आठों प्रकारके ज्वर अथवा भिन्नभिन्न दोषोंसे होनेवाले सब प्रकारके विषमज्वर, एवं मेदोगत, मांसगत, अस्थिगत-मज्जागतज्वर, अत्यन्त उग्र आन्तरिकज्वर, विशेषकर बाह्यज्वर, तथा विविधप्रकारके दोषोंसे होनेवाले शुक्रगत ज्वर आदि सब प्रकारके ज्वरोंको श्रीशंकर भगवानूकी कृपासे शीघ्र नष्ट करता है । यह जयमङ्गल नामक रस अत्यन्त बल और पुष्टिकारक तथा संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला है; इसको श्रीशिवजीमहाराजने निर्माण किया है ॥ ९३–९६ ॥

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस ।

मूर्च्छितं रसकर्षैकं तदर्द्धं जारिताभ्रकम् ।
तारं ताप्यं च रसजं रसकं ताम्रकं तथा ॥ ९७ ॥
मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गैरिकं शिला ।
गन्धकं हेमसारं च पलार्द्धं च पृथक् पृथक् ॥ ९८ ॥
क्षीरावी सुरवल्ली च शोथघ्नी गणकारिका ।
झाटचामला ज्योत्स्निका च सतिक्ता तु सुदर्शना ९९ ॥
अग्निजिह्वा पूतितैला शूर्पपर्णी प्रसारिणी ।
प्रत्येकं स्वरसं दत्त्वा मर्दयेत्त्रिदिनावधि ॥ ६०० ॥
भक्षयेत्पर्णखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ १ ॥

मूर्च्छित पारा १ तोला, अभ्रकभस्म आधा तोला तथा चाँदी, सोनामाखी, रसौत, खपरिया, ताँबा, मोती, मूँगा, लोहा, शिलाजीत, गेरू, मैनसिल, गन्धक और सुवर्णपत्र ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके

दुद्धीघास, तुलसी, पुनर्नवा, अरणी, भुईआमला, तोरई, चिरायता, कन्दगिलोय, कलिहारी, मालकाँगनी, मुगवन और गन्धप्रसारणी इन प्रत्येकके स्वरस अथवा क्वाथमें क्रमसे तीन तीन दिनतक घोटकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । एकएक गोली पानके साथ सेवन करे ॥ ९७-५०१ ॥

महाग्निकारको रोगसंकरघ्नः प्रयोगराट् ।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ २ ॥
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
श्वासं कासं प्रमेहं च सशोथं पाण्डुकामलाम् ॥ ३ ॥
ग्रहणीं क्षयरोगं च सर्वोपद्रवसंयुतम् ।
ज्वरकुञ्जरपारीन्द्रः प्रथितः पृथिवीतले ॥ ४ ॥

यह प्रयोगराज अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला और रोगसमूहको नष्ट करनेवाला है । इसके सेवनसे सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थिक (चौथिया) आदि सब प्रकारके ज्वर तथा श्वास, खाँसी, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, संग्रहणी और समस्त उपद्रवोंसहित क्षय आदि सम्पूर्ण रोगोंके समूह इस प्रकार शीघ्र नष्ट होजाते हैं, जैसे सूर्यसे अन्धकार । यह रस पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥ ५०२-५०४ ॥

विद्यावल्लभरस ।

रसम्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्व्यग्न्यर्कभागिकाः ।
पिष्ट्वा तान् सुषवीतोयैस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥ ५ ॥
न्यस्तं शरावे संरुद्ध्य वालुकायन्त्रगं पचेत् ।
स्फुटन्ति व्रीहयो यावत्तच्छिरःस्थाः शनैः शनैः ॥ ६ ॥
संचूर्ण्य शर्करायुक्तं द्विवल्लं भक्षयेत्ततः ।
विषमाख्यान ज्वरान् हन्ति तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

पारा १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, मैनसिल ३ भाग और हरताल १२ भाग लेकर सबको करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करे, फिर उसको ताँबेके पात्रके भीतर लेप करके और उसको शरावसम्पुटमें बन्दकरके वालुकायन्त्रमें रखकर पकावे और उसके ऊपर धानोंके कुछ दाने रखदेवे । जब उसपर रखेहुए धान धीरे धीरे फूटने लगें तब उसको सिद्धहुआ जानकर अग्निपरसे उतारलेवे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण कर लेवे । यह रस दो दो रत्ती परिमाण लेकर

मिश्री या खाँडमें मिलाकर सेवन करे। और इसपर तेल, खटाई आदि पदार्थोंको त्याग करादे। यह रस विषमज्वर आदि सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ ५०५-५०७ ॥

शीतारिरस ।

कूष्माण्डक्षारचूर्णोदकतिलजपृथक् पाचितं शुद्धतालं
तुल्यं सूतेन पिष्ट्वा त्रिदिनसमसकृत् कारवेल्लद्रवेण ।
क्षिप्त्वा तत्खर्परान्तर्दिनपतिपिहितं रन्ध्रमप्यन्धयेत्तं
नीरन्ध्रं चूर्णपथ्यागुडलवणखटीमृद्भिरप्यन्तरालम् ॥ ८ ॥
तद्वालुकापूर्णघटे विदध्याच्छनैः पचेत्तावदुपर्य्युषुष्य ।
व्रीहिर्विवर्णत्वमुपैति यावत् ततस्तु शीतं विदधीत चूर्णम् ॥९॥
सिद्धं तच्च समाददीत तुलसीतोयेन वल्लोन्मितं
पश्चात् क्षौद्रकणासिताज्यपयसा कृत्वाऽनुपानं गदी ।
भुञ्जीताथ पयोऽन्नमुद्गसहितं साज्यं च हन्यान्नृणां
तापं कालवशेन संचितगदं शीतारिनामा रसः ॥ ५१० ॥

पेठेका खार, चूनेका पानी और तिलोंका खार इन तीनों चीजोंके साथ पृथक् पृथक् हरतालको पकाकर शुद्ध करे। फिर हरतालके बराबर भाग पारेको उसमें मिलाकर करेलेके रसमें तीन दिनतक खरल करके एक सकोरेमें रक्खे। उस सकोरेके ऊपर ताँबेका कटोरा ढककर उसके सन्धिस्थानोंको हरडके चूर्ण, गुड, नमक, खडिया-मिट्टी और चिकनी मिट्टी इन सब चीजोंके कल्कद्वारा बन्दकर देवे और उसके ऊपर कुछ धानोंके दाने रखदेवे। फिर उस सम्पुटको वालुकायन्त्रमें रखकर शनैः शनैः अग्नि देवे। जब धान खिलने लगे तब उत्तम प्रकारसे पाक हुआ जानकर स्वांगशीतल होनेपर ओषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस रसको दो दो रत्तीकी मात्रासे तुलसीपत्रके रस, मधु, पीपलका चूर्ण, मिश्री, घृत और दूध इन अनुपानोंके साथ सेवन करावे। इसपर दूध, भात, मूँगका यूष और घृत आदि पदार्थोंका भोजन हितकर है। यह शीतारिरस चिरकालसे संचित ज्वरको अत्यन्त शीघ्र नष्ट करता है ॥ ८-५१० ॥

ज्वरशूलहररस ।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भाण्डमध्यगाम् ।
तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं संरुध्य शोषयेत् ॥ ११ ॥

पादाङ्गुष्ठप्रमाणेन चुल्लयां ज्वालेन तां दहेत् ।
यामद्वयं ततस्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत् ॥ १२ ॥
चूर्णयेद्रक्तियुगलं त्रितयं वा विचक्षणः ।
ताम्बूलीदलयोगेन दद्यात्सर्वज्वरेष्वमूम् ॥ १३ ॥
जीरसैन्धवसँल्लिप्तवक्त्राय ज्वरिणे हितम् ।
स्वेदोद्गमो भवत्येव देवि सर्वेषु पाप्मसु ॥ १४ ॥
चातुर्थिकादीन्विषमान् नवमागामिनं ज्वरम् ।
साधारणं सन्निपातं जयत्येव न संशयः ॥ १५ ॥

पारे और गन्धकको समान भाग लेकर उनकी कज्जली करके उसको एक मिट्टीके बरतनमें रखे और उसके ऊपर एक ताँबेका कटोरा ढककर कपरौटी करके सुखालेवे। फिर उसको चूल्हेपर चढाकर पैरके अँगूठेके समान पतली २ लकडियोंकी अग्निसे दो प्रहरतक पकावे। पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकाल कर बारीक चूर्ण करके रखलेवे। प्रथम रोगीको जीरा और सैन्धानमक चबाकर फिर इस रसको दो या तीन रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करावे इससे पसीना आकर ज्वर शीघ्र दूर हो जाता है। यह चातुर्थिक आदि समस्त विषमज्वर, नवीनज्वर और साधारण सन्निपात ज्वरको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ११-१५ ॥

षडाननरस ।

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं दरदं पिप्पलीविषम् ।
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्ले यामं च गुडुचीरसैः ॥ १६ ॥
गुञ्जामात्रं रसं देयं गुञ्जामात्रां लिहेत्सदा ।
ज्वरे मन्दानले चैव वातपित्तज्वरेषु च ॥ १७ ॥
ज्वरे वैषम्यतरुणे ज्वरे जीर्णे विशेषतः ।
मुद्गान्नं मुद्गयूषं वा तक्रभक्तं च केवलम् ॥ १८ ॥
नारिकेलोदकं देयं मुद्गपथ्यं विशेषतः ।
षडाननो रसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ १९ ॥

पीपल, काँसा, ताँबा इनकी भस्म, शुद्ध सिंगरफ, पीपल और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समान भाग लेकर गिलोयके स्वरसमें एक प्रहरतक खरल करे

फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे एकएक गोली गिलोयके रस और मधुमें मिलाकर सेवन करे। यह रस-ज्वर, मन्दाग्नि, वातपित्तज्वर, विषमज्वर, तरुणज्वर और जीर्णज्वरमें विशेष हितकारी है। इसपर मूँगभात अथवा मूँगका यूष या केवल छाछ (मट्ठा) और भातका भोजन करे। विशेष कर इसपर मूँगका यूष और नारियलके जलका पथ्य देना अधिक हितकारी है। यह षडानन [रस] सब प्रकारके ज्वरोंको समस्त उपद्रवोंसहित दूर करता है॥ १६-१९॥

कल्पतरुरस।

रसं गन्धं विषं ताम्रं समभागं विचूर्णयेत्।
भावयेत्पंचभिः पित्तैः क्रमशः पंचवासरम्॥ ५२०॥
निर्गुण्डीस्वरसेनैव मर्दयेत्सप्तवासरम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेच्च त्रिधा पुनः॥ २१॥
सर्षपाभा वटी कार्या च्छायया परिशोषिता।
ततः सप्तवटी योज्या यावन्न त्रिगुणा भवेत्॥ २२॥
वयोऽग्निदोषकं बुद्ध्वा प्रयोज्या भिषजां वरैः।
अनुपानं चोष्णजलं कज्जलीपिप्पलीयुतम्॥ २३॥

पारा, गन्धक, वत्सनाभ और ताम्रभस्म इनको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके पूर्वोक्त पाँचों पित्तोंमें क्रमसे एकएक दिनतक भावना देवे। फिर निर्गुण्डीके पत्तोंके रसमें सात दिन और अदरखके रसमें ३ दिन खरल करके सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे वैद्यको रोगीकी अवस्था, जठराग्नि और दोषोंके बलाबलको विचारकर प्रतिदिन एकएक गोली क्रमसे बढाकर २१ दिनतक २१ गोलियाँ सेवन करानी चाहिये। इसपर कज्जली पीपलका चूण और मन्दोष्ण जलका अनुपान करना चाहिये॥ ५२०-२३॥

पानावशेषे प्रस्वाप्य वस्त्रैराच्छादयेन्नरम्।
घर्माभ्यागमनं यावत्ततो रोगात्प्रमुच्यते॥ २४॥
रोगिणं स्नापयित्वा तु भोजयेत्ससितं दधि।
एष कल्पतरुर्नाम रसः परमदुर्लभः॥ २५॥
असाध्यं चिरकालोत्थं जीर्णं च विषमज्वरम्।
हन्ति ज्वरातिसारौ च ग्रहणीं पाण्डुकामलाम्॥ २६॥

न देयः श्वासकासे च शूलयुक्तनरे तथा ।
गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित् ॥ २७ ॥

इस औषधिको सेवन कराकर रोगीको आरामसे सुलाकर उसके देहको गरम कपडेसे अच्छीतरह ढक देवे । इससे पसीना आतेही रोगी रोगमुक्त होजाता है। जागनेके पश्चात् रोगीको स्नान कराकर मिश्री मिलाहुआ दही भोजन करावे । यह कल्पतरु रस अत्यन्त दुर्लभ है । इसके सेवनसे असाध्य और चिरकालसे उत्पन्न-हुआ जीर्णज्वर, विषमज्वर, ज्वरातिसार, संग्रहणी, पाण्डु और कामलारोग नष्ट होते हैं । इस रसको श्वास, कास और शूलरोगमें कदापि नहीं देना चाहिये । यह अत्यन्त गोपनीय है, इसलिये जिस तिसको नहीं देना चाहिये ॥ २४-२७ ॥

तालाङ्करस ।

तालकस्य च भागौ द्वौ भागं तुत्थस्य शुक्तिका ।
चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ २८ ॥
यामैकेन ततः पश्चाद्रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति वातिकं पैत्तिकं तथा ।
शीतज्वरं विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ ॥ २९ ॥

हरताल २ भाग, तूतिया १ भाग और सीपीकी भस्म ४ भाग लेकर सबको घीग्वारके रसमें एक प्रहरतक खरल करके गोलासा बनाकर उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे । इस रसको दो दो रत्ती परिमाण सेवन करनेसे वातज, पित्तजज्वर, शीतज्वर और विशेषकर तृतीयक (तिजारी), चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर दूर होता है ॥ २८-२९ ॥

पर्पटीरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं भृङ्गरसेन च ।
मृत ताम्रं लौहभस्म पादांशेन तयोः क्षिपेत् ॥ ९३० ॥
लौहपात्रे च विपचेच्चालयेल्लौहचाटुना ।
तत्क्षिपेत्कदलीपत्रे गोमयोपरि संस्थिते ॥ ३१ ॥
पश्चाच्च चूर्णयेत्खल्ले निर्गुण्ड्या भावयेद्दिनम् ।
जयन्तीत्रिफलाकन्यावासाभार्ङ्गीकटुत्रिकैः ॥ ३२ ॥

भृङ्गाग्निमूलमुण्डीभिर्भावयेद्दिनसप्तकम्।
अङ्गारैः स्वेदयेत्किंचित् पर्पटाख्यो महारसः॥ ३३॥
चतुर्गुञ्जामितो भक्ष्यः सम्यक् श्लेष्मज्वरं जयेत्।
पथ्याशुण्ठ्यमृताक्वाथमनुपानं प्रयोजयेत्॥ ३४॥

शोधित पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके भाँगरेके रसमें खरल करे। फिर उसमें ताम्रभस्म और लोहभस्म कज्जलीसे चौथाई भाग मिलाकर लोहेके पात्रमें पकावे और लोहेकी करछीसे चलाताजावे। जब वह पिघलकर पतली होजाय तब गोबरके ऊपर एक केलेका पत्ता रखकर उसके ऊपर कज्जलीको ढाल देवे। जब वह पपडीकी समान जमजाय तब उसको खरलमें डालकर निर्गुण्डीके रसमें एक दिनतक भावना देवे। पश्चात् अरणी,त्रिफला, घीग्वार, अडूसा, भारंगी, त्रिकुटा, भाँगरा, चीतेकी जड और मुण्डी इन प्रत्येकके रस अथवा क्काथमें सातदिनतक भावना देवे। फिर अँगारोंकी अग्निसे कुछ सेककर शीशीमें भरकर रखलेवे। इसको चार चार रत्ती परिमाण सेवन करना चाहिये और ऊपरसे हरड, सोंठ, गिलोय इनके क्वाथका अनुपान करना चाहिये। यह पर्पटीरस श्लैष्मिकज्वरको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है॥ ९३०–३४॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं तारमभ्रकम्।
लौहात्पंच प्रवालं च मौक्तिकं त्रयसम्मितम्॥ ३५॥
भस्मसूतं सप्तकं च सर्वं मर्द्यं तु कन्यया।
छायाशुष्का वटी कार्या च्छागीदुग्धानुपानतः॥ ३६॥
क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मं चापि प्रमेहनुत्।
जीर्णज्वरहरश्चायमुन्मादस्य निकृन्तनः॥
सर्वरोगहरश्चापि वारिदोषनिवारणः॥ ३७॥

सुवर्णभस्म ३ तोले, चाँदीकी भस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २" तोले, लोहभस्म ५ तोले, प्रवालभस्म ३ तोले, मोतीका भस्म ३ तोले और रससिंदूर ७ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करले फिर घीग्वारके रसमें एकदिनतक घोटकर छायामें सुखा करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर एकएक वटी नित्य बकरीके दूधके साथ सेवन करे। यह रस क्षयरोग, खाँसी, वातगुल्म, प्रमेह, जीर्णज्वर, उन्मादरोग

और जलदोषजनितरोग आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर करताहै ॥ ३५-३७ ॥

महाराजवटी ।

रसगन्धकमभ्रं च प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
वृद्धदारकवङ्गं च लौहं कर्षार्द्धक क्षिपेत् ॥ ३८ ॥
स्वर्णं ताम्रं च कर्पूरं प्रत्येकं कर्षपादिकम् ।
शक्राशनं वरी चैव श्वेतसर्ज्जलवङ्गकम् ॥ ३९ ॥
कोकिलाक्षं विदारी च मुसली शूकशिम्बिकम् ।
जातीफलं तथा कोषं बला नागबला तथा ॥ ५४० ॥
माषद्वयमितं भागं तालमूल्या रसेन च ।
पिष्ट्वा च वटिका कार्य्या चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ ४१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रक ये प्रत्येक एकएक कर्ष एवं शोधित विधारेके बीज, वङ्ग और लोहभस्म ये प्रत्येक आधा २ कर्ष, सोना, ताँबा और कपूर चौथाई कर्ष, भाँग, शतावर, सफेदराल, लौंग, तालमखाना, विदारीकन्द, मुसली, कौंचके बीज, जायफल, जावित्री, खिरैंटी और गंगेरन इन औषधियोंको दो दो माशे परिमाण लेवे । सबको एकत्र मुसलीके क्काथके साथ खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ३८-५४१ ॥

मधुना भक्षयेत्प्रातर्विषमज्वरशान्तये ।
धातुस्थाँश्च ज्वरान्सर्वान् हन्यादेव न संशयः ॥ ४२ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं साान्निपातिकम् ।
ज्वरं नानाविधं हन्ति कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ ४३ ॥
बलपुष्टिकरं नित्यं कामिनीं रमयेत्सदा ।
न च शुक्रक्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत् ॥ ४४ ॥
ऊर्ध्वगं श्लेष्मजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च प्रमेहं रक्तपित्तकम् ॥
महाराजवटी ख्याता राजयोग्या च सर्वदा ॥ ४५ ॥

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली शहदके साथ सेवन करनेसे विषमज्वर शान्त होता है । ये गोलियाँ धातुगतज्वर सब प्रकारके वातज, पित्तज, श्लैष्मिक

सान्निपातिक ज्वर एवं अन्यान्य अनेक प्रकारके ज्वर खाँसी, श्वास और क्षय प्रभृति रोगोंको शीघ्र नष्ट करती हैं, बल तथा पुष्टि उत्पन्न करती हैं। इनको सेवन करनेवाला मनुष्य यदि प्रतिदिन सुन्दरस्त्रियोंके साथ रमण करे तो भी वीर्य क्षय नहीं होता और न बल नष्ट होता है। इससे ऊर्ध्वगत कफके विकार, दारुण सन्निपात, कामला, पाण्डु, प्रमेह. रक्तपित्तादि दुस्तर व्याधियाँ दूर होती हैं। इसको महाराजवटी कहते हैं। ये गोलियाँ राजाओंके सदैव सेवन करने योग्य हैं ॥ ४२-४९ -

सर्वतोभद्ररस ।

विशुद्धं गगनं ग्राह्यं द्विकर्षं शुद्धगन्धकम् ।
तोलकं तोलकार्द्धं च हिङ्गुलोत्थरसं तथा ॥ ४६ ॥
कर्पूरं केशरं मांसी तेजपत्रं लवङ्गकम् ।
जातीकोषफलं चैव सूक्ष्मैला करिपिप्पली ॥ ४७ ॥
कुष्ठं तालीशपत्रं च धातकी चोचमुस्तकम् ।
हरीतकी च मरिचं शृङ्गवेरविभीतकम् ॥ ४८ ॥
पिप्पल्यामलकं चैव शाणभागं विचूर्णितम् ।
सर्वमेकीकृतं पिष्ट्वा वटीं कुर्याद् द्विगुञ्जिकाम् ॥ ४९ ॥

शुद्ध अभ्रक २ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ तोला, सिंगरफसे निकाला हुआ पारा ६ मासे, एवं कपूर, केशर, जटामांसी, तेजपात, लौंग, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची, गजपीपल, कूठ, तालीशपत्र, धायके फूल, दारचीनी, नागरमोथा, हरड, मिरच, सोंठ, बहेडा, पीपल और आमले ये प्रत्येक चार चार माशे लेवे। सबको जलके साथ एकत्र खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ४३-४९ ॥

भक्षयेत्पर्णखण्डेन मधुना सितयाऽपि वा ।
रोगं ज्ञात्वाऽनुपानं च प्रातः कुर्याद्विचक्षणः ॥ ५० ॥
हन्ति मन्दानलान्सर्वानामदोषं विषूचिकाम् ।
पित्तश्लेष्मभवं रोगं वातश्लेष्मभवं तथा ॥ ५१ ॥
आनाहं मूत्रकृच्छ्रं च संग्रहग्रहणीं वमिम् ।
अम्लपित्तं शीतपित्तं रक्तपित्तं विशेषतः ॥ ५२ ॥

चिरज्वरं पित्तभवं धातुस्थं विषमज्वरम्।
कासं पञ्चविधं हन्ति कामलां पाण्डुमेव च ॥ ५३ ॥
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन कथितः पुरा।
सर्वतोभद्रनामाऽयं रसः साक्षान्महेश्वरः ॥ ५४ ॥

वैद्य इसकी एकएक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल पानके रस, शहद अथवा मिश्रीके साथ सेवन करावे और रोगके अनुसार अनुपान देवे। यह रस मन्दाग्नि, सर्वप्रकारके आमदोष, विषूचिका, पित्त-कफजन्य तथा वात-कफजनित रोग, अफारा, मूत्रकृच्छ्र, संग्रहणी, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त, विशेषकर रक्तपित्त, जीर्णज्वर, पित्तज्वर, धातुस्थ विषमज्वर, पाँचोंप्रकारकी खाँसी, कामला और पाण्डुरोग इन समस्त व्याधियोंको नष्ट करता है। पूर्वकालमें संसारके कल्याणके लिये इस सर्वतोभद्रनामक रसको शिवजीने कहा है। यह साक्षात् महेश्वर है ॥ ५०-५५४ ॥

ज्वरारि-अभ्रक।

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषं चेति समं समम्।
द्विगुणं धूर्तबीजं च व्योषं पञ्चगुणं मतम् ॥ ५५ ॥
जलेन वटिकां कुर्याद्यथादोषानुपानतः।
अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ५६ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
विषमाख्यान्द्वन्द्वजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ॥ ५७ ॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्रमांसं सशोथकम्।
हिक्कां श्वासं च कासं च मन्दानलमरोचकम् ॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ५८ ॥

अभ्रक, ताँबा, पारा, गन्धक और शुद्धवत्सनाभ ये प्रत्येक एक एक भाग धतूरेके बीज २ भाग और त्रिकुटा ५ भाग इन सब ओषधियोंको एकत्र जलके साथ उत्तमप्रकारसे खरलकरके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति एकएक गोली यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे। यह ज्वरारि अभ्रक सम्पूर्ण ज्वरोंको दूर करता है। जैसे—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सान्निपातिक, विषम, द्वन्द्वज और धातुगत विषमज्वर एवं तिल्ली और जिगरके विकार, गुल्म, अग्रमांस, शोथ

हिचकी, श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है जैसे-वज्र वृक्षोंको ॥ ५५-५८ ॥

जीवनानन्दाभ्र ।

वज्राभ्रं मारितं कृत्वा कर्षयुग्मं विचूर्णितम् ।
जीरं कनकबीजं च कर्षं वासारसेन च ॥ ५९ ॥
कण्टकारीरसेनैव धात्रीमुस्तरसेन च ।
गुडूच्याः स्वरसेनैव पलाशेन पृथक् पृथक् ॥ ५६० ॥
मर्दयित्वा वटी कार्या गुञ्जामात्रा प्रयोजिता ।
विषमाख्याञ्ज्वरान्सर्वान्प्लीहानं यकृतं वमिम् ॥ ६१ ॥
रक्तपित्तं वातरक्तं ग्रहणीं श्वासकासकौ ।
अरुचिं शूलहृल्लासावर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ६२ ॥
जीवनानन्दनामेदमभ्रं वृष्यं बलप्रदम् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ६३ ॥

अभ्रककी भस्म २ कर्ष, जीरा और धतूरेके बीज एक एक कर्ष लेकर सबको एकत्र चूर्ण करके अडूसा, कटेरी, आमले, नागरमोथा और गिलोय इन प्रत्येकके चार चार तोले स्वरसमें क्रमसे अलग २ खरल करे। फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर एकएक गोली यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ प्रयोग करे। यह रस सम्पूर्ण विषमज्वर, प्लीहा, यकृत्, वमन, रक्तपित्त, वातरक्त, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, अरुचि, शूल, हल्लास (उबकाई) और अर्शरोगको नष्ट करता है। यह जीवनानन्द नामक अभ्रक-अत्यन्त वृष्य, बलदायक, उत्तम रसायन और अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ ५९-५६३ ॥

चन्दनादिलोह ।

रक्तचन्दनह्रीबेरपाठोशीरकणाशिवाः ।
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितम् ॥
लौहं निहन्ति विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ॥ ६४ ॥

लालचन्दन, सुगन्धवाला, पाढ, खस, पीपल, हरड, सोंठ, कमोदिनीकी जड, बबूल, आमले, नागरमोथा, चीता और वायविडङ्ग ये सब ओषधियाँ

१ त्रिमदं चात्र—मुस्तकचित्रकविडङ्गम्। द्वादशद्रव्यसमं लौहं रक्तिद्वयं मधुना लिहेत् ॥

समान भाग और लोहभस्म सबके बराबर भाग लेकर एकत्र करके जलके द्वारा उत्तमप्रकारसे खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस लोहको शहदके साथ खानेसे सब प्रकारके विषमज्वर और अन्य नानाप्रकारके "ज्वर" दूर होते हैं ॥ ६४ ॥

विषमज्वरान्तकलोह ।

पारदं गन्धकं तुल्यं सूतार्द्धं जीर्णताम्रकम् ।
ताम्रतुल्यं माक्षिकं च लौहं सर्वसमं नयेत् ॥ ६५ ॥
जयन्त्याः स्वरसेनैव कोकिलाक्षरसेन च ।
वासकार्द्रपर्णीरसैः पंचधा च विमर्दयेत् ॥ ६६ ॥
पृथक् कलायमानां तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
विषमज्वरान्तनामाऽयं विषमज्वरनाशनः ॥ ६७ ॥
वह्निदीप्तिकरो हृद्यः प्लीहगुल्मविनाशनः ।
चक्षुष्यो बृंहणो वृष्यः श्रेष्ठः सर्वरुजापहः ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके कज्जली बनाले। फिर उसमें ताम्रभस्म १ तोला, सोनामाखीकी भस्म १ तोला और लोहभस्म सबके बराबर भाग लेवे। इन सबको एकत्र खरल करके अरणी, तालमखाना, अडूसा, अदरख और पान इन पाँचोंके रसमें पृथक् पृथक् पाँच बार खरल करके मटरकी समान गोलियाँ बनालेवे। यह विषमज्वरान्तकलोह सर्वप्रकारके विषमज्वर, प्लीहा, गुल्म आदिरोगोंको नष्ट करता है एवं अग्निको दीपन करनेवाला हृदयके और नेत्रोंके लिये हितकारी, कामोत्तेजक एवं वीर्यवर्द्धक है और समस्त व्याधियोंकी उत्तम औषध है ॥ ६५–६८ ॥

बृहद्विषमज्वरान्तकलोह ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं कारयेत्कज्जलीं शुभाम् ।
मृतसूतं हेम तारं लौहमभ्रं च ताम्रकम् ॥ ६९ ॥
तालसत्त्वं वङ्गभस्म मौक्तिकं सप्रवालकम् ।
सुवर्णमाक्षिकं चापि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ५७० ॥
निर्गुण्डी नागवल्ली च काकमाची सपर्पटी ।
त्रिफला कारवेल्लं च दशमूली पुनर्नवा ॥ ७१ ॥

गुडूची वृषकश्चापि सभृङ्गं केशराजकः ।
एतेषां च रसेनैव भावयेत्त्रिदिनं पृथक् ॥ ७२ ॥
गुञ्जामानां वटीं कुर्य्याच्छास्त्रवित्कुशलो भिषक् ।
पिप्पलीगुडकेनैव लिहेच्च वटिकां शुभाम् ॥ ७३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक दोनोंकी बनायीहुई उत्तम कज्जली, रससिन्दूर, सोना, चाँदी लोहा, अभ्रक, ताँबा, हरतालभस्म, बङ्गभस्म, मोती, मूँगा और सोनामाखी इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर उसको निर्गुण्डी, पान, मकोय, पित्तपापडा, त्रिफला, करेला, दशमूल, पुनर्नवा, गिलोय, अडूसा, भाँगरा और कुकुरभाँगरा इन प्रत्येक ओषधियोंके रसमें अलग २ तीनतीन दिनतक भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । इनमेंसे एकएक गोली पीपलके चूर्ण और पुराने गुडके साथ सेवन करे ॥ ६९-५७३ ॥

ज्वरमष्टविधं हन्ति निरामं साममेव च ।
सप्तधातुगतं चापि नानादोषोद्भवं तथा ॥ ७४ ॥
सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
अभिघाताभिचारोत्थं जीर्णज्वरं विशेषतः ॥ ७५ ॥

इससे आठों प्रकारके ज्वर आमरहित और आमसहित ज्वर, सातों धातुओंमें स्थित तथा अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वर सततादिज्वर साध्य अथवा असाध्य अभिघातज्वर, अभिचारजन्यज्वर और विशेष कर जीर्णज्वर तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

पुटपक्व-विषमज्वरान्तकलोह ।

हिंगूलसम्भव सूतं गन्धकेन सुकज्जलम् ।
पर्पटीरसवत्पाच्यं सूताङ्घ्रिहेमभस्मकम् ॥ ७६ ॥
लौहं ताम्रमभ्रकं च रसस्य द्विगुणं तथा ।
वङ्गकं गैरिकं चैव प्रवालं च रसार्द्धकम् ॥ ७७ ॥
मुक्ताशंखशुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम् ।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ ७८ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणा हिङ्गु ससैन्धवम् ॥ ७९ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा और शुद्धगन्धक दोनोंको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे फिर पर्पटी रसके समान उसका पाक करके चूर्ण करलेवे । चूर्णमें स्वर्णभस्म पारेसे चौथाई भाग एवं लोहा, अभ्रक और ताँबा ये प्रत्येक पारेसे दुगुने वङ्गभस्म, गेरू, मूँगा ये प्रत्येक पारेसे आधा २ भाग तथा मोतीकी भस्म, शंखभस्म और सीपीकी भस्म ये प्रत्येक पारेसे चौथाई २ भाग लेवे । सबको एकत्र जलके साथ खरल करके सीपीमें भरकर पुटपाकविधिके द्वारा सिद्ध करै । इस रसको प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो रत्ती प्रमाण लेकर पीपल, हींग और सैंधानमक इनके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ ७६–७९ ॥

ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ५८० ॥
सन्ततं सतताख्यं च विषमज्वरनाशनः ।
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं मेहमरोचकम् ॥ ८१ ॥
ग्रहणीमामदोषं च कासं श्वासं तथैव च ।
मूत्रकृच्छ्रातिसारं च नाशयेदविकल्पतः ॥ ८२ ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादनः ।
विषमज्वरान्तको नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥ ८३ ॥

यह रस–वातज, पित्तज, कफज आदि आठों प्रकारके ज्वर, तिल्ली, यकृत, वायगोला, साध्य या असाध्य सन्तत, सतत और विषमज्वर इन सबको नष्ट करताहै । इसके सेवनसे कामला, पाण्डुरोग, सूजन, प्रमेह, अरुचि, संग्रहणी, आमदोष, खाँसी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार आदि रोग अवश्य नष्ट होते हैं । यह लोह अग्निको दीपन करता तथा बल और वर्णको प्रसन्न करता है । इस प्रयोगको धन्वन्तरिजीने विषमज्वरान्तकनामसे प्रकाशित कियाहै ५८०–८३

सर्वज्वरहरलोह ।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं मुस्तकं तथा ।
श्रेयसी पिप्पलीमूलमुशीरं देवदारु च ॥ ८४ ॥
किराततिक्तकं बालं कटुकी कण्टकारिका ।
शोभाञ्जनस्य बीजं च मधुकं वत्सकं समम् ॥ ८५ ॥
लौहतुल्यं गृहीत्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
सर्वज्वरहरं लोहं सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ८६ ॥

वातिकं पैत्तिकं श्लैष्मं द्वन्द्वजं सान्निपातिकम् ।
जीर्णज्वरं च विषमं रोगसङ्करमेव च ॥
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ८७ ॥

चीतेकी जड, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, नेत्रवाला, कुटकी, कटेरी, सहिंजनेके बीज, मुलहठी और इन्द्रजौ ये सब ओषधियाँ समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेवे । सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह सर्वज्वरहर-लोह उपद्रवोंसहित समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है । इससे वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, जीर्णज्वर, विषमज्वर तथा अन्य भयंकर, रोग एवं तिल्ली, अग्र-मांस, यकृत्विकार आदि समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ८४–८७ ॥

बृहत्सर्वज्वरहरलोह ।

द्विपलं जारितं लौह रसं गन्धं द्वितोलकम् ।
तोलकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं मुस्तकं तथा ॥
श्रेयसी पिप्पलीमूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् ॥ ८८ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
गुञ्जाद्वयां वटीं कृत्वा भक्षयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ८९ ॥

लोहेकी भस्म ८ तोले, शुद्ध पारा २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले, दोनोंकी कज्जली एवं त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, हल्दी दारुहल्दी और चीता ये प्रत्येक एकएक तोला सबको एकत्र कूट पीसकर अदरखके रसमें खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । फिर एकएक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करे ॥ ८८–८९ ॥

सर्वज्वरहरं लोहं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ९० ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
विषमज्वरभूतोत्थज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ९१ ॥
मासजं पक्षजं चैव तथा संवत्सरोत्थितम् ।
सर्वाञ्ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९२ ॥

यह लोह-वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, विषमज्वर और भूत-बाधादिजनित सम्पूर्ण ज्वर, तिल्ली. महीनेमें आनेवाला, पक्षमें होनेवाला अथवा

वर्षदिनमें आनेवाला ज्वर इत्यादि सर्वप्रकारके ज्वरोंको इस भाँति शीघ्र नष्ट करता है, जैसे–सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्काल नष्ट कर देता है ॥५९०–९२॥

द्वितीय बृहत्सर्वज्वरहरलोह।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमभ्रं च माक्षिकम्।
हिरण्यं तारतालं च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९३ ॥
मृतकान्तं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम्।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ ९४ ॥
कारवेल्लरसेनापि दशमूलरसेन च।
पर्पटस्य कषायेण क्वाथेन त्रैफलेन च ॥ ९५ ॥
गुडूच्याः स्वरसेनापि नागवल्लीरसेन च।
काकमाचीरसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ ९६ ॥
पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावनां परिकल्प्य च।
द्विरक्तिकाक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताँबा, अभ्रक, सोनामाखी, सोना, चाँदी और हरताल ये प्रत्येक एकएक तोला और कान्तलोहभस्म ४ तोले लेवे। सबको एकत्र खरल करके आगे कही हुई प्रत्येक ओषधिके रस या क्वाथमें क्रमसे सात सात दिनतक भावना देवे। करेलेके पत्तोंका रस, दशमूलका क्वाथ, पित्तपापडेका और त्रिफलेका क्वाथ, गिलोयका स्वरस पानोंका रस, मकोयका रस, निर्गुण्डीके पत्तोंका रस. पुनर्नवाका रस और अदरखका रस इनमें क्रमसे अलग अलग सात सात दिनतक भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर एक एक गोली पीपलके चूर्ण और पुराने गुडके साथ रोगियोंको सेवन करावे ॥ ९३–९७ ॥

पिप्पलीगुडसंयुक्ता वटिका वीर्य्यवर्द्धिनी।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ९८ ॥
विविधं वारिदोषोत्थं चिरकालसमुद्भवम्।
सततादिज्वरं हन्ति नानादोषोद्भवं तथा ॥ ९९ ॥
क्षयोद्भवं च धातुस्थं कामशोकभवं तथा।
भूतावेशज्वरं चैव ऋक्षदोषभवं तथा ॥ ६०० ॥
अभिघातज्वरं चैवमभिचारसमुद्भवम्।

अभिन्यासं महाघोरं विषमं च त्रिदोषजम् ॥ १ ॥
शीतपूर्वं दाहपूर्वं त्रिदोषं विषमं ज्वरम् ।
प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरं तथा ॥ २ ॥
प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थिकविपर्य्ययम् ।
पाण्डुरोगगणान्सर्वानग्निमान्द्यं महागदम् ॥
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु पक्षार्द्धेन न संशयः ॥ ३ ॥

ये गोलियाँ अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि करती हैं एवं साध्य वा असाध्य आठों प्रकारके ज्वर, विविध प्रकारके जलदोषजनित विकार, चिरकालसे उत्पन्न हुए सततादिज्वर, अनेकप्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुआ क्षयरोग, धातुगतज्वर, काम और शोकसे उत्पन्न हुए ज्वर तथा भूत, पिशाच, ग्रह आदिकी बाधासे उत्पन्न हुए ज्वर, अभिघातज्वर, अभिचारज्वर, महाभयंकर अभिन्यासज्वर, त्रिदोषजनित विषमज्वर, शीताधिक्य अथवा दाहाधिक्य त्रिदोषजविषमज्वर तथा प्रलेपक और अर्द्धनारीश्वर ज्वर, प्लीहा युक्तज्वर, खाँसी, चातुर्थिक विपरीतज्वर, पाण्डुरोग और मन्दाग्नि आदि सम्पूर्ण भयंकर रोगोंको एक सप्ताहमें ही निस्सन्देह दूर करती हैं ॥ ९८-६०३ ॥

शाल्यन्नं तक्रसहित भोजयेद् द्विजसंयुतम् ।
ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥
मैथुनं वर्जयेत्तावद्यावन्न बलवान्भवेत् ॥
सर्वज्वरहरं श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥

इसपर रोगीको तक्रसहित शालिचावलोंका भात भोजन करावे और करेला ककडी आदि समस्त ककारवाचक पदार्थ विशेषरूपसे त्याग देवे और जबतक रोगी अच्छेप्रकारसे बलवान् न होजाय तबतक मैथुन नहीं करना चाहिये। यह रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेके लिये परमश्रेष्ठ औषध है इसपर यथादोषानुसार अनुपानकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ६०४ ॥ ६०५ ॥

बृहज्ज्वरान्तकलोह ।

रसं गन्धं तोलकं च जातीकोषफले तथा ।
हेमभस्म तु पादैकं तोलार्द्धं रूप्यलोहकम् ॥ ६ ॥

: बृहज्ज्वरान्तके लोहे तोलकमिति रसादिफलान्तं प्रत्येकं तोलकभागम्, हेमभस्म तु पादैकमिति एकभागापेक्षया पादैकम् ।

अभ्रं शिलाजतु चैव भृङ्गराजं च मुस्तकम् ।
केशराजमपामार्गं लवङ्गं च फलत्रिकम् ॥ ७ ॥
वराङ्गवल्कलं चैव पिप्पलीमूलमेव च ।
सैन्धवं च विडं चैव गुडूचीचूर्णमेव च ॥ ८ ॥
कण्टकारी रसोनं च धान्यकं जीरकद्वयम् ।
चन्दनं देवकाष्ठं च दार्वीन्द्रयवमेव च ॥ ९ ॥
किराततिक्तकं बालं तोलकं च समाहरेत् ।
द्वितोलं मरिचं देयं भावयेदार्द्रकद्रवैः ।
माषार्द्धं भक्षयेत्प्रातर्मधुना मधुरीकृतम् ॥ ६१० ॥

शुद्धपारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली २ तोले, जावित्री १ तोला, जायफल १ तोला, सुवर्णभस्म ३ माशे, चाँदीकी भस्म ६ माशे, लोहभस्म ६ माशे एवं अभ्रक, शिलाजीत, भाँगरा, नागरमोथा, कुकुरभाँगरा, चिरचिटा, लौंग, त्रिफला, दारचीनी, पीपलामूल, सैंधानमक, विडनमक, गिलोयका सत्त कटेरी, दूधसे शुद्ध कियाहुआ लहसुनका कन्द, धनियाँ, जीरा, कालाजीरा, चन्दन, देवदारु, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, चिरायता और सुगन्धवाला ये प्रत्येक एकएक तोला और कालीमिरच दो तोले लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर अदरखके रसमें सातबार भावना देवे । इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार रत्तीकी मात्रासे मधुके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ ६०६–६१० ॥

ज्वरं नानाविधं हन्ति शुक्रस्थं चिरकालजम् ।
साध्यासाध्यविचारोऽत्र नैव कार्य्यो भिषग्वरैः ॥ ११ ॥
अन्तर्धातुगतं चापि नाशयेन्नात्र संशयः ।
भूतोत्थं श्रमजं चापि सन्निपातज्वरं तथा ॥ १२ ॥
असाध्यं च ज्वरं हन्ति यथा सूर्य्योदयस्तमः ।
गरुडं च समालोक्य यथा सर्पः पलायते ॥ १३ ॥
तथैवास्य प्रसादेन ज्वरः शीघ्रं पलायते ।
बलदं पुष्टिदं चैव मन्दाग्निनाशनं परम् ॥ १४ ॥

१ वराङ्गवल्कलं गुडत्वक् । २ गुडूचीचूर्णमित्यत्र गुडूचीसत्त्वमिति व्यवहरन्ति वृद्धाः । ३ रसोनं रसोनकम्, तच्च दुग्धेन परिशोधितं ग्राह्यम् । ४ भावयेदार्द्रकद्रवैरिति–आर्द्रकस्य रसैः सप्तवारं भावयेत् ॥

वीर्य्यस्तम्भकरं चैव कामलापाण्डुरोगनुत्।
सदा तु रमते नारीं न वीर्य्यं क्षयतां व्रजेत्॥ १५॥
प्रमेहं विविधं चैव विविधां ग्रहणीं तथा।
अनुपानविशेषेण सर्वव्याधिं विनाशयेत्॥ १६॥

इसके सेवनसे अनेक प्रकारके ज्वर, शुक्रगतज्वर और बहुत पुराना ज्वर शीघ्र नष्ट होता है। इसको व्यवहार करनेपर वैद्यको रोगके साध्यासाध्यका विचार नहीं करना चाहिये। यह लोह धातुगत ज्वर, भूतबाधाजनित व अधिक परिश्रमसे उत्पन्नहुए ज्वर और सन्निपातजनित असाध्यज्वरको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है, जैसे सूर्यका उदय अन्धकारको तत्काल दूर करदेता है। जैसे गरुडको देखकर सर्प तत्क्षण भाग जाता है, उसी प्रकार इस लोहके प्रभावसे ज्वर शीघ्र भाग जाते हैं। यह अत्यंत बलदायक, पुष्टिकारक, प्रबल मन्दाग्नि, कामला और पाण्डुरोगको दूर करता है एवं वीर्यको स्तम्भन करता है। इसका सेवन करनेवाला पुरुष यदि सर्वदा स्त्रियोंके साथ रमण करे तो भी उसका वीर्यक्षय नहीं होता। इसको अनुपान विशेषके साथ सेवन करनेसे विविधप्रकारके प्रमेह तथा अनेक प्रकारकी संग्रहणी और अन्यान्य सर्व प्रकारकी व्याधियाँ नष्ट होती हैं॥ ११-१६॥

लोहासव।

लौहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलं च यमानिका।
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यपलं क्षिपेत्॥ १७॥
चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं पृथक्।
दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा॥ १८॥
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम्।
लोहासवममुं मर्त्यः पिबेद्वह्निकरं परम्॥ १९॥
पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम्।
ज्वरं जीर्णं च प्लीहानं कासं श्वासं भगन्दरम्॥
अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत्॥ ६२०॥

लोहेकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, अजवायन, बायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता ये प्रत्येक औषधि सोलह २ तोले लेकर

सबको एकत्र चूर्ण करलेवे फिर शहद ६४ पल, गुड १०० पल और जल २ द्रोण परिमाण लेवे । सबको मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकार बन्दकरके एक महीने तक रक्खा रहने देवे । एक महीनेके बाद निकालकर इस आसवको छानकर उचितमात्रासे सेवन करे । यह लोहासव अग्निको अत्यन्त दीपन करता है एवं पाण्डु, सूजन गुल्म, उदरविकार, अर्श, जीर्णज्वर, तिल्ली, खाँसी, श्वास, भगन्दर, अरुचि, संग्रहणी, हृदयरोग, इत्यादि सम्पूर्ण उपद्रवोंको नष्ट करता है ॥ ६१७–६२० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसप्रकरणम ।

अथ घृतप्रकरणम् ।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम् ॥ १ ॥

कषाय (क्वाथ आदि), वमन, लंघन और लघुभोजन आदिके द्वारा जिन रोगियोंका शरीर रूक्ष होगया है और ज्वर शान्त नहीं हुआ है उनके लिये घृतको सेवन कराना अत्यन्त लाभकर है ॥ १ ॥

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलङ्घितम् ।
न सर्पिः पाययेत प्राज्ञः शमनैस्तमुपाचरेत् ॥ २ ॥
यावल्लघुत्वमशनं दद्यान्मांसरसेन तु ।
बलं ह्यलं निग्रहाय दोषाणां बलकृच्च तत् ॥ ३ ॥

यदि कफकी प्रधानत हो और दोषोंकी अधिकताके कारण लंघनका फल अच्छे प्रकारसे प्रकट न हुआ हो तो ज्वरके दश दिन बीत जानेपर भी बुद्धिमान् वैद्य रोगीको घृत पान नहीं करावे । किन्तु रोगीको शमन करनेवाली औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे और जबतक दोषोंमें लघुता न हो तबतक रोगीको मांसरसके साथ भोजन करावे । कारण मांसरस अत्यंत बलकारक और दोषोंका निग्रह करनेवाला है ॥ २ ॥ ३ ॥

मांसार्थमेणलावादीन् युक्त्या दद्याद् विचक्षणः ।
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्तकान् ॥ ४ ॥
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ।
लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ॥

भिषङ् मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित् ॥ ५ ॥

ज्वरसे पीडित रोगीको मांसरस देनेके लिये काले हिरन, लवापक्षीके मांसका यूष या मांसरस विधिपूर्वक बनाकर सेवन कराना चाहिये । कोई २ वैद्य मुर्गा, मोर, तीतर, क्रौंच (कुरर) और बत्तक इनका मांस गुरुपाकी और उष्णवीर्य्य होनेसे ज्वरमें पथ्यरूपसे देनेकी व्यवस्था नहीं करते हैं । ज्वरमें लंघनोंके द्वारा यदि वायुकी प्रसन्नता अधिक होगयी हो तो अनेक प्रकारकी कल्पनाओंके द्वारा मांसरसके अनेक संस्कार (जैसे मांसका अर्क, मांस यूष और मांसरसादि बनाकरके रोगीको सेवन करावे ॥ ४ ॥ ५ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पली चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ।
कलिंगकास्तामलकी सारिवाऽतिविषा स्थिरा ॥ ६ ॥
द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका ।
सिद्धमेतद् घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति ॥ ७ ॥
क्षयं श्वासं च हिक्कां च शिरःशूलमरोचकम् ।
अङ्गाभितापमग्निं च विषमं सन्नियच्छति ॥
पिप्पल्याद्यमिदं क्वापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते ॥ ८ ॥

पीपल, लालचन्दन, नागरमोथा, खस कुटकी, इन्द्रजौ, भुंईआमला, अनन्तमूल, अतीस, शालपर्णी, दाख, आमले, बेलकी छाल, त्रायमाण और कटेरी इन प्रत्येक औषधिके कल्क और क्राथके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत जीर्णज्वरको शीघ्र नष्ट करताहै एवं क्षय, श्वास, हिचकी, शिरकी पीडा, अरुचि, शरीरका सन्ताप और विषमाग्निको दूर करताहै । किसी किसी ग्रन्थमें इस पिप्पल्यादिघृतको दूधके द्वारा पकानेका विधान किया गया है ॥ ६-८ ॥

यत्राधिकरणे नोक्तिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधौ ।
तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना ॥ ९ ॥
एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम् ॥ १० ॥
जलस्नेहौषधानां च प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥
द्रवकार्येऽप्यनुक्ते च सर्वत्र सलिलं मतम् ॥ ११ ॥

जिस स्नेहपाकमें कल्क और क्वाथका विधान नहीं किया गया हो, वहां स्नेह-विधिको जाननेवाले वैद्यको कल्क और क्वाथ दोनों लेने चाहिये । इस वाक्यके अनुसार घृतको कल्कके द्वारा सिद्ध करे । जहाँ जल, स्नेह और औषधियोंका प्रमाण नहीं कहा हो, वहाँ औषधियोंसे स्नेहपदार्थ चौगुना और स्नेहपदार्थसे चौगुना जल लेना चाहिये और जहाँपर किसी द्रवपदार्थ (दूध, दही, काँजी और क्वाथ (का उल्लेख नहीं किया हो, वहाँ सब जगह जल लेना चाहिये ॥ ९-११ ॥

क्षीरषट्पलकघृत ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसा समम् ।
सर्पिःप्रस्थं शृतं प्लीहविषमज्वरगुल्मनुत् ॥ १२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और सैंधानमक ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर इनका कल्क और क्वाथ बनाकर उस क्वाथ और कल्कके-साथ १ प्रस्थ घी और उसके समान दूध लेकर सबको एकत्र मिला उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत प्लीहा, विषमज्वर और गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

यत्र द्रवान्तरेऽनुक्ते क्षीरमेव चतुर्गुणम् ।
द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ १३ ॥

स्नेहशब्दमें जहाँ किसी द्रवपदार्थका विधान नहीं किया हो, वहाँ चौगुना दूध लेना चाहिये । यदि स्नेहपाकमें किसी द्रव्यपदार्थका विधान हो तो स्नेहके समान भाग दूध डालकर पाक करना चाहिये ॥ १३ ॥

दशमूलषट्पलकघृत ।

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरे पंचकोलकैः ।
सक्षारैर्हन्ति तत् सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताम् ॥
वातपित्तकफव्याधीन् प्लीहानं चापि पाण्डुताम् ॥ १४ ॥

चार प्रस्थ दशमूलके क्वाथ और १ प्रस्थ दूधके साथ पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार प्रत्येकका कल्क चार चार तोले डालकर यथाविधि एक प्रस्थ घृतको सिद्ध करे । यह घृत ज्वर, खाँसी, मन्दाग्नि, त्रिदोषजनित रोग, प्लीहा और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

वासाद्यघृत ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम् ।
पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ १५ ॥
पिप्पलीमूलमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।
कल्कीकृतैश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ १६ ॥

अडूसा, गिलोय, हरड, आमला, बहेडा, त्रायमाण और जवासा यह सब औषधि समान भाग और सब मिलीहुई १ प्रस्थ लेकर ८ प्रस्थ जलमें क्वाथ बनावे आर २ प्रस्थ जल शेष रहनेपर उसमें ४ प्रस्थ दूध तथा पीपलामूल, दाख, लालचन्दन, नीलकमल और सोंठ इन सबका दो दो तोले कल्क डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतको सेवन करनेसे जीर्णज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

गुडूच्यादिघृत ।

गुडूच्याः क्वाथकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः ॥ १७ ॥

गिलोय, त्रिफला, अडूसा, दाख और खिरेंटी इन पाँचों औषधियोंके क्वाथ और कल्कके द्वारा पृथक् २ सिद्ध किये हुए पाँच प्रकारके घृत ज्वरनाशक हैं ॥ १७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां घृतप्रकरणम् ।

अथ तैलप्रकरणम् ।

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान् सावगाहनान् ।
विभज्य शीतोष्णकृतान् दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥ १ ॥
तैराशु प्रशमं याति बहिर्मार्गगतो ज्वरः ।
लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च जायते ॥ २ ॥

वैद्य जीर्णज्वरमें तैलादिकी मालिश, प्रलेप, स्नेहपान और स्नेहादि पदार्थोंमें अवगाहन आदि क्रियाओंको शीत और उष्णताका विभाग करके अर्थात् उष्ण प्रधानज्वरमें शीत तैलादिका और शीतप्रधानज्वरमें उष्ण तैलादिका प्रयोग करे । इन सब क्रियाओंके द्वारा शरीरके बाहिरीभागमें स्थित ज्वर नष्ट होता है और शरीरमें स्वस्थता एवं बल, वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अंगारकतैल ।

मूर्वां लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी ।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ ३ ॥
आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ४ ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायन, बड़ी कटेरी, सैंधानमक, कूठ, रायसन, बालछड़ और शतावर इनके समान भाग मिश्रित ६४ तोले कल्क और एक आढक कांजीके साथ एक प्रस्थ तैलको पकावे । यह अङ्गारकनामक तैल सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

बृहदङ्गारकतैल ।

शुष्कमूलादिकस्याङ्गैरङ्गैरङ्गारकस्य च ।
पक्वं तैलं ज्वरहरं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥
बृहदङ्गारकं तैलं जलमत्र चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

शुष्क मूलादि गण (सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन, सोंठ) और पूर्वोक्त अंगारक तैलकी औषधियोंका समान कल्क १ प्रस्थ, तिलका तेल २ प्रस्थ और पाकके लिये जल ८ प्रस्थ इन सबको मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे । यह बृहदंगारक तैल-ज्वर, सूजन, पाण्डु आदि रोगोंको दूर करता है ॥ ५

लाक्षादितैल ।

लाक्षाहरिद्रामंजिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचितम् ।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ ६ ॥

लाख, हल्दी और मंजीठ इन तीनोंका कल्क १ प्रस्थ, काँजी १२ प्रस्थ, तिलका तेल २ प्रस्थ इन सबको मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे दाह और शीतयुक्त ज्वर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

महालाक्षादितैल ।

लाक्षारसाढके प्रस्थं तैलस्य विपचेद्भिषक् ।
मस्त्वाढकसमायुक्तं पिष्ट्वा चात्र समावपेत् ॥ ७ ॥
शतपुष्पां हरिद्रां च मूर्वां कुष्ठं हरेणुकम् ।
कटुकां मधुकं रास्नामश्वगन्धां च दारु च ॥ ८ ॥

मुस्तकं चन्दनं चैव पृथगक्षसमानकैः।
द्रव्यैरेतैस्तु तत् सिद्धम्-

लाखका रस एक आढक, तिलका तैल १ प्रस्थ, दहीका तोड़ [1] १ आढक तथा सोया, हल्दी, मूर्वा, कूठ, रेणुका, कुटकी मुलहठी, रायसन, असगन्ध, देवदारु, नागरमोथा और लालचन्दन इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तैलको पकावे ॥ ७ ॥ ८ ॥-

-अभ्यङ्गान्मारुतापहम् ॥ ९ ॥
विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वानाश्वेव प्रशमं नयेत्।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूदौर्गन्ध्यगौरवम् ॥ १० ॥
त्रिकपृष्ठकटीशूलं गात्राणां कुट्टनं तथा।
पापालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहविनाशनम् ॥
अश्विभ्यां निर्म्मितं श्रेष्ठं तैलं लाक्षादिकं महत् ॥ ११ ॥

इस तैलकी मालिश करनेसे वातविकार, सब प्रकारके विषमज्वर, खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय, खुजली, दुर्गन्ध, गुरुता, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, शरीरका टूटना, पाप, अलक्ष्मी और सर्वप्रकारकी ग्रहबाधादि उपद्रव दूर होते हैं। इस महालाक्षादिक श्रेष्ठ तैलको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ९-११ ॥

लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्त्वैकविंशवारकम्।
परिस्राव्य जलं ग्राह्यं किंवा क्वाथंयथोदितम् ॥ १२ ॥
शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसंभवे।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १३ ॥

इसमें लाख १ भाग और जल ६ भाग लेने चाहिये तथा लाखको २१ बार जलमें भिगोकर बारबार उसके रंगको निचोड़कर लाखके जलको ग्रहण करे अथवा, लाखका क्वाथ बनाकर तैलको सिद्ध करे। सूखी औषधियोंमेंसे स्वरस नहीं मिल सकता। इसलिये उनको अठगुने जलमें पकाकर उनका चतुर्भागावशिष्ट क्वाथ ग्रहण करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

षट्कट्वरतैल।

सुवर्च्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः।
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्धमभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥

१ दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते। दहीकी मलाईसहित तक्रको कट्वर कहते हैं।

सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हल्दी, मंजीठ और मुलहठी इन सबको मिला हुआ कल्क १ प्रस्थ, तिलका तेल २ प्रस्थ, कट्वरतक्र १२ प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। इस तेलकी मालिश करनेसे शीत और दाह सहित ज्वर नष्ट होता है ॥ १४ ॥

महाषट्कवट्वरतैल ।

शुक्तारनालैर्दधिमस्तुतक्रैः फलाम्बुभागेन समं हि तैलम् ।
कृष्णादिकल्कैर्मृदुवह्निसिद्धमभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ॥ १५ ॥
ऐकाहिकद्वित्रिचतुर्थकानां मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम् ।
निवारणं तद्विषमज्वराणां तैलं तु षट्कट्वरकं महत्स्यात् ॥

सिरका, काँजी, दहीका तोड़, तक्र और जम्बीरीनींबूका रस ये प्रत्येक चार २ प्रस्थ और तिलका तैल भी चार प्रस्थलेवे। एवं कल्कके लिये निम्नलिखित कृष्णादि-गणकी औषधियाँ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे तैलको सिद्ध करे। यह महाषट्कट्वरतैल शरीरपर मालिश करनेसे वात-कफ-जन्यज्वर, ऐकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक और सब प्रकारके विषमज्वरोंको शीघ्र निवारण करताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

बृहत् पिप्पल्यादितैल ।

पिप्पली मुस्तकं धान्यं सैन्धवं त्रिफला वचा ।
यमानी चाजमोदा च चन्दनं पुष्कराह्वयम् ॥ १७ ॥
शठी द्राक्षा गवाक्षी च शालपर्णी त्रिकण्टकम् ।
भूनिम्बारिष्टपत्राणि महानिम्बं निदिग्धिका ॥ १८ ॥

---

१ कृष्णा चित्रकषड्ग्रन्था वासकं विकसा घनम् ।
ग्रन्थिकैले चातिविषा रेणुकं च कटुत्रयम् ॥
यमानी गोस्तनी व्याघ्री भूनिम्बं बिल्वचन्दनम् ।
भार्ङ्गी श्यामा शिवा धात्री स्थिरा मूर्वा सजीरका ॥
सर्षपं हिंगु कटुकी विडंगं च समांशकम् ।
एष कृष्णादिको नाम गणो ज्वरविनाशनः ॥

पीपल, चीतेकी जड, वच, अड्डूसा, मज्जीठ, नागरमोथा, पीपलामूल, इलायची, अतीस, रेणुका, सोंठ, पीपल, मिरच, अजवायन, दाख, कटेरी, चिरायता, बेलकी छाल लालचन्दन, भारंगी, अनन्तमूल, हरड, आमला शालपर्णी, मूर्वा, जीरा, सरसों, हींग, कुटकी और वायविडंग इन सब औषधियोंके समानभाग मिश्रित समुदायको कृष्णादिगण कहते हैं। यह गण सर्व प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवालाहै ॥

गुडूची पृश्निपर्णी च बृहती दन्तिचित्रको ।
दार्वी हरिद्रा वृक्षाम्ल पर्पटं गजपिप्पली ॥ १९ ॥
एतेषां कार्षिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
दधिकाञ्जिकतक्रैश्च मातुलुंगरसैस्तथा ॥ २० ॥
स्नेहमात्रासमैरेभिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ॥ २१ ॥
एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयसमुद्भवम् ।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ २२ ॥
मासजं पक्षजं चैव चिरकालानुबन्धिनम्
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु पिप्पल्याद्यमिदं शुभम् ॥ २३ ॥

पीपल, नागरमोथा, धनियां, सैंधानमक, हरड, आमला, बहेडा, बच, अजवायन, अजमोद, लालचन्दन, पुहकरमूल, कचूर, दाख, इन्द्रायनकी जड़, शालपर्णी, गोखरू, चिरायता, नीमके पत्ते, बकायनकी छाल, कटेरी, गिलोय, पृश्निपर्णी, बड़ीकटेरी दन्तीकी जड़, चीतेकी जड़, दारुहल्दी, हल्दी, अम्लवेत, पित्तपापडा और गजपीपल इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक कर्ष, तिलका तैल एक प्रस्थ एवं दहीका तोड़, कांजी, मट्ठा और बिजौरेनींबूका रस ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे शनैः शनैः तैलको सिद्ध करे । इस तैलकी मालिश करनेसे जीर्णज्वर दूर होता है । यह पिप्पल्यादि तैल एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषजज्वर, द्व्याहिक, तृतीयक (तिजारी), चातुर्थिक (चौथिया), मासिक, पाक्षिक, सन्ततज्वर, सततज्वर और बहुत पुरानेज्वर इन सबको तत्काल नष्ट करता है ॥१७–२३॥

किरातादितैल ।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी ।
ह्रीबेरं पुष्करं रास्ना कपिवल्ली वटुत्रयम् ॥ २४ ॥
पाठा चेन्द्रयवैश्चैव लवणत्रयसंयुतम् ।
वासकार्क श्यामदारु महाकालफलं तथा ॥ २५ ॥
दधिमस्त्वारनालेन कैरातेन च संपचेत् ।
प्रस्थंप्रस्थं समादाय तैलप्रस्थे विपाचयेत् ॥ २६ ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायनकी जड, सुगंधवाला, पुहकरमूल, रायसन, गजपीपल, सोंठ, पीपल, मिरच, पाढ, इन्द्रजौ, सैंधानमक, कालानमक, विडनमक, अडूसाकी छाल, सफेद आककी जड, अनन्तमूल, देवदारु और बडी इन्द्रायनके फल इन सब ओषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं दहीका पानी, काँजी, चिरायतेका क्वाथ और सरसोंका तेल ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे. सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे ॥ २४-२६ ॥

लिप्तं भुक्तं ज्वरं चैव सन्ततं सततं तथा।
धातुस्थमस्थिमज्जास्थं ज्वरं सर्व व्यपोहति ॥ २७ ॥
कामलां ग्रहणीं घोरामतिसारं हलीमकम् ।
प्लीहं पाण्डुं च श्वयथुं नाशयेन्नात्र संशयः ॥
नास्ति तैलं वरं चास्माज्ज्वरदर्पकुलान्तकृत् ॥ २८ ॥

इस तैलको मर्दन और पान प्रयोग करनेसे सन्तत, सतत, धातुगत, अस्थिगत, मज्जागत ज्वर एवं अन्य सर्वप्रकारके ज्वर, कामला, संग्रहणी, अतिसार, हलीमक, प्लीहा, पाण्डुरोग और सूजन ये समस्तरोग नष्ट होते हैं । ज्वररूपी हाथीके दर्पको दलन करनेवाला इससे बढकर और कोई उत्तम तैल नहीं है ॥२७-२८॥

बृहत्किरातादितैल ।

कैरातस्य तुलामानं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
कटुतैलस्य (पा) मात्रार्द्धं तेनैव साधयेद्भिषक् ॥ २९ ॥
मूर्वालाक्षाद्वयक्काथः कांजिकं दधिमस्तु च ।
एतानि तैलतुल्यानि कल्कानेतांश्च संपचेत् ॥ ३० ॥
भूनिम्बः श्रेयसी रास्ना कुष्ठं लाक्षेन्द्रवारुणी ।
मञ्जिष्ठा च हरिद्रे द्वे मूर्वा मधुकमुस्तकम् ॥ ३१ ॥
वर्षाभूः सैन्धवं मांसी बृहती च तथा विडम् ।
ह्रीबेरं शतमूली च चन्दनं कटुरोहिणी ॥ ३२ ॥
हयगन्धा शताह्वा च रेणुका सुरदारु च ।
उशीरं पद्मकं धान्यं पिप्पली च वचा शठी ॥ ३३ ॥
फलत्रिकं यमान्यौ द्वे शृङ्गी गोक्षुर एव च ।
पर्ण्यौ द्वे तरुणीमूलं विडङ्गं जीरकद्वयम् ॥ ३४ ॥

महानिम्बश्च हबुषा यवक्षारो महौषधम् ।
एषां कर्षद्वयं क्षिप्त्वा साधयेन्मृदुवह्निना ॥ ३५ ॥

चिरायतेको सौ पल प्रमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर उस क्वाथमें सरसोंका तेल चार सेर एवं मूर्वा और लाखका क्वाथ, कांजी और दहीका तोड ये प्रत्येक चार चार सेर तथा चिरायता, गजपीपल, रायसन, कूठ, लाख, इन्द्रायनकी जड, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, मुलहठी, नागरमोथा, पुनर्नवा, सैंधानमक, बालछड, बडीकटेरी, चिरिया नमक, संचरनमक, सुगन्धवाला, सतावर, लालचन्दन, कुटकी, असगंध, सोया, रेणुका, देवदारु, खस, पद्माख, धनियाँ, पीपल, वच, कचूर, हरड, आमला, बहेडा, अजवायन, अजमोद, काकडासिंगी, गोखरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, दन्तीकी जड, वायविडंग, जीरा, कालाजीरा, बकायनकी छाल, हाऊबेर, जवाखार और सोंठ इन सब ओषधियोंका कल्क दो दो कर्ष प्रमाण लेवे । सबको एकत्र मिलाकर विधिसे मन्द मन्द अग्निद्वारा पकावे ॥ २९-३५ ॥

यथाऽहिवर्गं विनिहन्ति तार्क्ष्यो
यथा च भास्वांस्तिमिरस्य संघम् ।
तथैव सर्वं ज्वरवर्गमेत-
दभ्यङ्गमात्रेण निहन्ति तैलम् ॥ ३६ ॥
सन्ततं सततादींश्च सशोथान् विषमज्वरान् ।
प्लीहाश्रितान् सशोथान् वा प्रमेहं ज्वरमेव च ॥ ३७ ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं बलवर्णकरं परम् ।
पाण्ड्वादीन् हन्ति रोगांश्च किराताद्यमिदं बृहत् ॥३८॥

जिस प्रकार गरुड सर्पोंके समूहको और सूर्यका प्रकाश जैसे अन्धकारपुञ्जको नष्ट करदेताहै उसी प्रकार यह तेल मालिश करते ही सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है. एवं सन्तत, सतत, शोथसहित विषमज्वर, प्लीहायुक्त ज्वर, प्रमेह, ज्वर, पाण्डुआदिरोगोंको यह बृहत्किरादितैल नष्ट करताहै तथा अग्निको दीपन करताहै और बल वर्णकी वृद्धि करता है ॥३६-३८ ॥

ज्वरभैरवतैल ।

गुडूची वासको निम्बो मूर्वामूलं सचन्दनम् ।
कैरातो यवतिक्ता च सिन्दुवारदलानि च ॥ ३९ ॥

एषां पलशतं ग्राह्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
क्वाथैः पादावशिष्टैश्च तैलप्रस्थद्वयं पचेत् ॥ ४० ॥
गुडूच्यतिविषा दारु हरिद्रे द्वे सुपर्णिका ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं शिग्रुबीजं स्थिरा जतु ॥ ४१ ॥
पटोलं धान्यकं कुष्ठं किरातो हेमपुष्पकः ।
मूर्वामूलमश्वगन्धा सरलं कण्टकारिका ॥ ४२ ॥
एतैः सार्द्धपलोन्मानैः कल्कैस्तैलं विपाचयेत् ।
पाकार्थं दीयते तत्र पयः प्रस्थचतुष्टयम् ॥ ४३ ॥
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ।
विषमाख्यान् ज्वरान्सर्वान्प्लीहानं यकृतं तथा ॥ ४४ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं हन्ति न संशयः ।
ज्वरभैरवनामेदं तैलं शिवकृतं महत् ॥ ४५ ॥

गिलोय, अडूसा, नीमकी छाल, मूर्वाकी जड, लालचन्दन, चिरायता, कल्पनाथ और सम्हालूके पत्ते इन सबको सौ सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजावे तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें तिलका तैल दो प्रस्थ एवं गिलोय, अतीस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, बावची, पीपल, पीपलामूल, सहिंजनेके बीज, शालपर्णी, लाख, परवल, धनियाँ, कूठ, चिरायता, चम्पा, मूर्वाकी जड, असगन्ध, धूपसरल और कटेरी इन सब ओषधियोंका कल्क दो दो तोले और पाकके लिये जल चार प्रस्थ डालकर उत्तमप्रकारसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलका प्रयोग करनेसे जीर्णज्वर दूर होता है । यह (बृहत्) ज्वरभैरवनामक तैल सर्वप्रकारके विषमज्वर, तिल्ली, यकृत्, कामला, पाण्डुरोग और सूजनको अवश्य नष्ट करता है ॥ ३९-४५ ॥

घीको मूर्च्छित करनेकी विधि ।

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुंगद्रवैस्तु
सर्वैरेतैः सुपिष्टैश्च पलपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ।
आज्यं प्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैद्यराज-
स्तस्मादामोपदोषं हरति च सहसा वीर्यवत्सौख्यदायि ४६

हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, हल्दी और बिजौरेनींबूका रस ये छहों

पदार्थ घृतको मूर्च्छित करनेवाले हैं । यह प्रत्येक एकएक पल परिमाण लेवे । प्रथम एकप्रस्थ गोघृतको मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पकते पकते घृत झागरहित और शब्दरहित होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पहिले हल्दी फिर बिजौरे नींबूका रस पश्चात् अन्य औषधियाँ शीतलजलमें पीसकर डालदेवे । फिर चार प्रस्थ जल डालकर मन्द २ अग्निसे पकाकर एक सप्ताहपर्यन्त रखारहनेदेवे । इस प्रकार मूर्च्छित किया हुआ घृत आमदोषको नष्ट करता है और वीर्यवान् एवं सुखदायक होता है ॥ ४६ ॥

तैलकी साधारणमूर्च्छाविधि ।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्त--
तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैतत् ॥ ४७॥

पहले एक उत्तम कढावमें मीठी २ अग्निसे तेलको पकावे । जब वह तेल झागरहित होजाय, तब उसको चूल्हेपरसे उतारकर कुछ शीतल होनेपर उसमें जलसे पिसी हुई हल्दी क्रम २ से थोडी २ डाले । फिर मँजीठको जलमें पीसकर क्रमसे थोडा २ तेलमें डाले । फिर इसी प्रकार अन्यान्य मूर्च्छाद्रव्योंको क्रमसे तेलमें डालताजाय फिर एक सप्ताहतक उसको रखारहनेदे । इस प्रकार साधारणरूपसे तेल मूर्च्छित होता है ॥ ४७ ॥

कटुतैलमूर्च्छाविधि ।

वयःस्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः ।
कृष्णजीरकह्रीबेरनलिकैः सविभीतकैः ॥ ४८ ॥
एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।
अरुणाद् द्विपलं तत्र तोयं चाढकसंमितम् ॥
कटुतैलं पचेत्तेन ह्यामदोषहरं परम् ॥ ४९ ॥

आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेलकी छाल, दाडिमकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, सुगन्धवाला, नली (सुगन्धद्रव्य), बहेडा और मंजीठ ये कटुतैल (सरसोंके तैल) के मूर्च्छाद्रव्य हैं । इन सब औषधियोंको एकएक कर्ष प्रमाण और मंजीठ दो पल लेवे । एवं सरसोंका तैल एक प्रस्थ और जल एक आढक लेवे । प्रथम तैलको मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब तैल पककर झागरहित होजाय तब उसमें पहिले हल्दी, फिर मंजीठ, तत्पश्चात् आमले आदि औषधियोंके चूर्णको शीतल जलमें पीसकर डालदेवे । यह तैल आमदोषको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

एरण्डतैलकी मूर्च्छाविधि ।

विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका ।
ह्रीबेरवनखर्ज्जूरं वटशुंगा निशायुगम् ॥ ५० ॥
नलिका भेषजं देयं केतकी च समं समम ।
प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधि कांजिकम् ॥ ५१ ॥

मंजीठ, नागरमोथा, धनियाँ, हरड, आमला, बहेडा, अरणीके पत्ते, सुगन्धवाला, वनखजूर, बडके अंकुर, हल्दी, दारुहल्दी, नली (सुगन्धद्रव्य), सोंठ, केवडेकी जड, दही और काँजी ये सब औषधियाँ मूर्च्छाके लिये दो माशे लेवे और अण्डीका तैल एक प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे पकाकर मूर्च्छित करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तिलके तैलकी मूर्च्छाविधि ।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्त-
त्तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव ।
मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः
सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥ ५२ ॥
तैलस्येन्दुकलांशकैक्कविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः ।
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशका
दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥ ५३ ॥

अत्यन्त दृढ और साफ कढावमें तैलको डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे । जब पककर तेल झागरहित होजाय तब चूल्हेपरसे उतार लेवे । फिर शीतल हो जानेपर उसमें हल्दीको शीतल जलमें पीसकर छोडे फिर मंजीठको जलमें पीसकर डाले तत्पश्चात् लोध, नागरमोथा, नली (सुगन्धद्रव्य), आमले, बहेडे, हरड, केवडेकी जड और सुगंधवाला इन सब औषधियोंके चूर्णको जलमें पीसकर तैलमें डालदेवे । फिर मूर्च्छाद्रव्योंसे चौगुने तैलमें उससे चागुना पानी डालकर उसको पकावे । जब पककर कुछेक जल बाकी रहजाय तब उतारकर एक सप्ताहतक उसीप्रकार रक्खा रहनेदेवे । इन हल्दी और मंजीठ आदि पदार्थोंको मूर्च्छाद्रव्य कहते हैं । इनका परिमाण इस प्रकार है-तेलका परिमाण जितना हो मंजीठका परिमाण उसका

सोलहवाँ अंश लेवे और अन्यान्य द्रव्य मंजीठसे चौथाई भाग लेवे अर्थात् तैल सोलह सेर हो तो मंजीठ एक सेर लेवे और त्रिफलेसे लेकर नलिकातक प्रत्येक पदार्थ एकएक पाव लेवे। मूर्च्छापाकके द्वारा तैलकी दुर्गंध दूर होकर वह तैल उत्तमगन्ध और लालवर्णवाला होजाता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

तैलादिके पकानेका समय।

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत्।
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ ९४ ॥

घी. तैल और गुडादिका पाक एकदिनमें ही समाप्त न करे। कारण ये द्रव्य बासी होकर ही विशेष गुण करते हैं ॥ ९४ ॥

पाकसिद्धिलक्षण।

स्नेहकल्को यदाऽङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत्।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ९५ ॥
शब्दव्युपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ ९६ ॥

घी और तैलादिके पकानेका कल्क जब अंगुलियोंसे मलनेपर उसकी बत्तीसी होजाय और घृत वा तैलको अग्निमें डालनेसे उसमें चरचरशब्द न हो तब स्नेहादिका पाकहुआ जानना चाहिये। और स्नेहपाकके समय जो तेल घृतादिमें एक प्रकारका शब्द और फेनोद्गम (झागोंका आना) होता है, उसके शान्त होनेपर एवं स्नेहमें डालेहुए पदार्थोंके गन्ध, वर्ण और रस स्नेहपदार्थमें उत्तमप्रकारसे मिलजानेपर घृत तैलादिक सिद्ध हुआ जानना चाहिये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

जीर्णज्वरमें पेयादि देनेकी अवधि।

ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम्।
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च ॥ ९७ ॥

ज्वरमें काल (ऋतु) और रोगकी अवस्थाका विचारकर ज्वरके आरंभक दिनसे लेकर छः दिनके बाद रोगीको पेया, कषाय (क्वाथ), घी, दूध और मृदुविरेचनकी औषधि देवे ॥ ९७ ॥

ज्वरमें संशोधन।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वं चाधश्च बुद्धिमान्।
दद्यात्संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते ॥ ९८ ॥

बुद्धिमान् वैद्य अत्यन्त बढेहुए वात, पित्त और कफादिदोषोंसे युक्त ज्वररोगीको वमन और विरेचनके योग्य अवस्था होजानेपर चरकके कल्पस्थानमें वमन और विरेचन औषधियोंकी जो विधि कही है तदनुसार रोगीको वमन और विरेचन देकर शुद्ध करे । किन्तु दोषोंकी अल्पावस्थामें वमन और विरेचन नहीं देवे ॥ ५८ ॥

ज्वरमें वमन ।

मदनं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा ।
युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये ॥ ५९ ॥

कफप्रधान ज्वरमें पीपल और मैनफलके चूर्णको, दाहयुक्त ज्वरमें इन्द्रजौके चूर्णके साथ मैनफलके चूर्णको और पित्तज्वरमें मुलहठीके चूर्णके साथ मैनफलके चूर्णको गरम जलके साथ ज्वरकी शान्तिके लिये वमन करानी चाहिये ॥ ५९ ॥

ज्वरमें विरेचन ।

आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ।
त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ॥ ६० ॥

अमलतासके गूदेको दूधके साथ अथवा दाखोंके क्वाथके साथ अथवा निसोतके चूर्ण या त्रायमाणके चूर्णको दूधके साथ पान कराकर ज्वररोगीको विरेचन करावे ॥ ६० ॥

ज्वरसे क्षीणहुए मनुष्यको वमन विरेचनकी विधि ।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ ६१ ॥
प्रयोजयेज्ज्वरहरान् निरूहान् सानुवासनान् ।
पक्काशयगते दोषे वक्ष्यन्ते येन सिद्धिषु ॥ ६२ ॥

ज्वरसे क्षीण हुए मनुष्यको वमन और विरेचन नहीं कराने चाहिये । यदि दस्त करानेकी विशेष आवश्यकता हो तो रोगीको गरम दूध अधिक परिमाणमें पान कराकर अथवा निरूहणवस्ति देकर दस्त करावे । पक्वाशयमें दोषोंके प्राप्त होनेपर चरकके सिद्धिस्थानमें कहीहुई ज्वरनाशक निरूहणवस्ति अथवा अनुवासनवस्तिके द्वारा दोषोंको शमन करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

ज्वरमें शिरोविरेचन ।

गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च ।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ६३ ॥

जीर्णज्वरमें रोगीके शिरमें भारीपन और पीडा हो एवं समस्त इन्द्रियोंमें शिथिलता हो तो कोई उत्तम नस्य प्रयोग करना चाहिये। इससे कफके निकल जानेपर शिरकी पीडा दूर होजाती है ॥ ६३ ॥

ज्वरमें शिरपीडानिवारक लेप।

रक्तकरवीरपुष्पं धात्रीफलं सधान्याम्लम्।
कल्कः सुखोष्णलेपाज्ज्वरेषु शिरसो रुजं जयति ॥ ६४ ॥

लालकनेरके फूल और आमले इन दोनोंको समान भाग लेकर काँजीके साथ पीसकर और कुछ गरम करके सुहाता २ शिरपर लेप करनेसे ज्वरमें उत्पन्न हुई शिरकी पीडा नष्ट होती है ॥ ६४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तैलप्रकरणम् ॥

अथ दुग्धप्रकरणम्।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ १ ॥
चतुर्गुणेनाम्भसा च शृतं ज्वरहरं पयः।
धारोष्णं वा पयः शीतं पीतं सद्यो ज्वरं जयेत् ॥ २ ॥

जीर्णज्वरमें कफके क्षीण होजानेपर दुग्ध पान करनेसे वह अमृतके समान गुण करता है। किन्तु नवीनज्वरमें पान कियाहुआ दुग्ध मनुष्यको विषके समान नष्ट कर देताहै। चौगुने जलके साथ दूधको पकाकर जब केवल दूधमात्र शेष रहजाय तब उतारकर उसको पान करनेसे अथवा धारोष्ण (तत्कालका दुहा हुआ) या पकाकर शीतल कियाहुआ पीनेसे ज्वर शान्त होता है। इस प्रकार पिया हुआ दूध ज्वरमें हितकारी है ॥ १ ॥ २ ॥

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्।
पेयं तदुष्णं शीतं वा यथास्वमौषधैः शृतम् ॥ ३ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरोंमें ज्वरनाशक औषधियोंके साथ पकायाहुआ दूध गरम अथवा शीतल करके रोगीको इच्छानुसार पान कराना चाहिये। इससे ज्वर शमन होता है ॥ ३ ॥

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात्।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ ४ ॥

लघुपंचमूलकी औषधियोंके द्वारा दूधको सिद्ध करके पीनेसे खाँसी, श्वास, शिरःशूल, पार्श्वशूल और बहुत पुराने दिनोंका ज्वर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

क्षीरपाकविधि।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ५ ॥

क्षीरपाककी विधि यह है कि, जिस औषधिके साथ दुग्धपाक करना हो तो उस औषधिसे अठगुना दूध और दूधसे चौगुना जल लेकर सबको एकत्र कर पकावे। जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे ॥ ५ ॥

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम्।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोथज्वरहरं पयः ॥ ६ ॥

गोखरू, खिरैंटी, कटेरी और सोंठ इन औषधियोंके द्वारा यथाविधि सिद्ध कियेहुए दूधमें गुड डालकर पान करनेसे मल-मूत्रका अवरोध और सूजनसहित ज्वर दूर होता है ॥ ६ ॥

वृश्चीरबिल्ववर्षाभूः पयश्चोदकमेव च।
पचेत्क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ ७ ॥

सफेद पुनर्नवा, बेलकी छाल और लालपुनर्नवा ये सब औषधि समान भाग और सब मिलाकर दो तोले, दूध १६ तोले और जल ६४ तोले लेकर सबको एकत्रकर पकावे। जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। इस दूधको पान करनेसे सर्वप्रकारके ज्वर शमन होते हैं ॥ ७ ॥

शीतं वोष्णं ज्वरे क्षीरं यथास्वमौषधैः शृतम्।
एरण्डमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्तृके ॥ ८ ॥

पित्तज्वरमें और वातपित्तज्वरमें शीतल दुग्ध तथा वातज्वर और वातकफज्वरमें उष्ण दुग्ध वातनाशक औषधियोंके साथ पकाकर सेवन कराना चाहिये। एवं ज्वररोगीके गुदामें कतरनेकी समान पीडा होनेपर अण्डकी जडके साथ सिद्ध कियाहुआ दुग्ध पान कराना चाहिये ॥ ८ ॥

नासाज्वरमें आहवारि रस

क्षुद्रैला साभया कृष्णा लौहाभ्रखर्पराणि च।
समभागं प्रकर्तव्यं द्विभागः पारदो मतः ॥ ९ ॥

सर्वमेकत्र सम्मर्द्य द्रोणपुष्परसेन च ।
वल्लमात्रं प्रदातव्यं पुनर्नवरसैर्युतम् ॥ १० ॥

छोटी इलायची, हरड, पीपल, लोहा, अभ्रक और खपरिया ये प्रत्येक एक एक तोला और पारा दो तोले लेवे । सबको एकत्र द्रोणपुष्पीके रसमें खरल करके दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे एक एक गोली पुनर्नवेके रसके साथ सेवन करावे ॥ ९ ॥ १० ॥

प्लीहानं यकृतं शोथमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
नासाज्वरं विशेषेण सर्वं च विषमज्वरम् ॥
आह्वारिरसो ह्येष नाशयेदविकल्पतः ॥ ११ ॥

यह आहवारिनामक रस—प्लीहा, यकृत्, शोथ, अग्निकी मंदता, अरुचि, नासाज्वर और विशेषकर सब प्रकारके विषमज्वरोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ११ ॥

गन्धककज्जलीविधि ।

कण्टकारी सिन्धुवारस्तथा पूतिकरञ्जकम् ।
एतेषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके ॥ १२ ॥
प्रक्षेप्यं गन्धकं तत्र ज्वालां मृद्वग्निना दहेत् ।
गन्धके स्नेहमापन्ने तत्समं पारदं क्षिपेत् ॥ १३ ॥
मिश्रीकृत्य ततो द्वाभ्यां द्रुतं तमवतारयेत् ।
आमर्दयेत्तथा तत्र यथा स्यात्कज्जलप्रभम् ॥ १४ ॥

कटेरी, सिम्हालू और दुर्गन्धकरञ्ज इनके स्वरसको समान भाग लेकर एक मिट्टीके नवीन पात्र (खीपडे) में रखकर उसमें गन्धकको डाल मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब गन्धक अच्छे प्रकारसे पिघलजाय तब उसमें गन्धकके समान भाग पारा डालदेवे फिर जब दोनों मिलकर एकमएक होजायं तब चूल्हेपरसे शीघ्र उतारकर लोहेके दण्डेसे खूब खरल करके कज्जलीसमान बनालेवें ॥ १२–१४ ॥

ततस्तु रक्तिकामस्य माषैकं जीरकस्य च ।
माषैकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा निधापयेत् ॥ १५ ॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु ।
छर्द्यां शर्करया दद्यात् सामे दद्यात्तथा गुडम् ॥ १६ ॥

क्षये छागीभवं क्षीरं प्रदद्यादनुपानकम् ।
रक्तातिसारे कुटजमूलवल्कलजं रसम् ॥ १७ ॥
रक्तवान्तौ तथा दद्यादुदुम्बरभवं जलम् ।
सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ।
आयुर्वृद्धिकरश्चैव मृतं चापि प्रबोधयेत् ॥ १८ ॥

पश्चात् इस कज्जलीका एकएक रत्तीकी मात्रासे एकएक माशा जीरे और सैंधानमकके चूर्णके साथ एक पानमें रखकर रोगीको सेवन करावे । भयंकर सन्निपातज्वरमें इसपर गरम जलका अनुपान करे । इस कज्जलीको वमन रोगमें खाँडके शर्बतके साथ और आमदोषमें पुराने गुडके साथ देवे । एवं क्षयमें बकरीका दूध, रक्तातिसारमें कुडेकी छालका रस या काढा और रक्तकी वमन होनेपर गूलरके क्वाथका अनुपान करे । यह कज्जली सर्वप्रकारकी दुस्तर व्याधियोंको हरती है एवं आयुकी वृद्धिकर मृतपुरुषकोभी जीवित करती:है ॥ १९–१८ ॥

ज्वरबलि ।

ज्वरामयगृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतम् ।
तण्डुलैरोदनं तेन कुर्यात् पुत्तलकं शुभम् ॥ १९ ॥
तं हरिद्रावलिप्ताङ्गं चतुःपीतध्वजान्वितम् ।
हरिद्रारसपूर्णाभिः पुटिकाभिश्चतसृभिः ॥ २० ॥
मण्डितं गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य विसर्ज्जयेत् ।
एवं दिनत्रयं कुर्यात् ज्वररोगोपशान्तये ॥ २१ ॥

" ओदनेन पुत्तलिकां निर्माय वीरणचाचिकायां संस्थाप्य हरिद्राभिरवलिप्य चतुःपीतपताकाभिरलंकृत्य गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य हरिद्रारसपूर्णाश्चतस्रः पुटिकाश्चतुष्कोणेषु संस्थाप्य विष्णुर्नमोऽद्येत्यादिना संकल्प्य ज्वरं ध्यात्वा समावाह्य नवकपर्दकाक्रीडगन्धपुष्पधूपदीपादिभिः सम्पूज्य सन्ध्यासमये ज्वरितं निर्मञ्छ्य मन्त्रमिमं पठित्वा दिनत्रयबलिं दद्यात् । मन्त्रो यथा–" ॐ नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बका । स्वस्त्यस्तु वस्तुतः स्वाहा । ॐ कँ टँ पँ शँ वैनतेयाय नमः । ॐ ह्रीं क्षः

क्षेत्रपालाय नमः । ॐ ह्रीं ठँ ठ भो भो ज्वर शृणु शृणु हल हल गर्ज्ज गर्ज्ज ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकम् अर्द्धमासिकं मासिक नैमैषिक मौहूर्त्तिकं फट्फट् ह्रीं फट् फट् हल हल मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ स्वाहा । " इति पठित्वा एकवृक्षे श्मशाने चतुष्पथे वा विसर्ज्जयेत् । एतत् कर्म्म वास्तु-शुचिदक्षिणप्रदेशे कुर्य्यात् ॥ २२ ॥ "

ज्वररोगीके हाथकी नौ मुट्ठी परिमाण चावल लेकर और भात बनाकर उसका सुन्दर पुतला बनावे । उसको खसके आसनपर स्थापन करके उसपर हल्दीका लेपकर दे और उसके चारों ओर पीले वस्त्रकी चार झंडियें लगावे । फिर उस पुतलेके सर्वांगमें गन्ध पुष्पादि चढाकर हल्दीके रससे भरेहुए चार घडे उसके चारों कोनोंमें रखदेवे । फिर " ॐ विष्णुः ३ नमः परमात्मनेऽद्य " इत्यादि संकल्प कर और ज्वरकी मूर्त्तिका ध्यान तथा आवाहन करके उसमें नौ कौडियें लगाकर गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीपादिके द्वारा उसकी यथाविधि पूजा करे और सायं-कालके समय उस पुतलेको रोगीके ऊपर उतारकर उपर्युक्त 'ॐ नमो भगवते' इत्यादि मन्त्रको पढकर बलि देवे । इस प्रकार यह कर्म रोगीके रहनेके घरके दक्षिण ओर पवित्र स्थानमें सन्ध्याके समय क्रमशः ३ दिनतक करे । पश्चात् उस मूर्त्तिको किसी एक वृक्षके नीचे या श्मशानमें अथवा चौराहेमें विसर्जन कर देवे ॥ १९-२२ ॥

नक्षत्रजनितरोगफल ।

कृत्तिकायां यदा व्याधिरुत्पन्नो भवति स्वयम् ।
नवरात्रं भवेत् पीडा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥ २३ ॥
मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः ।
पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रेण मोचनम् ॥ २४ ॥
नवरात्रं तथाऽऽश्लेषे श्मशानान्तं मघासु च ।
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ २५ ॥
हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् ।
मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः ॥ २६ ॥
मित्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् ।
मूले न जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् ॥ २७ ॥

उत्तरे दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणे तथा ।
धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुणे च दशाहकम् ॥ २८ ॥
भाद्रपदे द्व्येकोनविंशतिवासरम् ।
त्रिपक्षं चाहिर्बुध्ने च रेवत्यां दशरात्रकम् ॥ २९ ॥
अहोरात्रं तथाऽश्विन्यां भरण्यां तु गतायुषम् ।
एवं क्रमेण जानीयान्नक्षत्रेषु यथोचितम् ॥ ३० ॥

कृत्तिका नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ९ दिन, रोहिणी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ३ दिन और मृगशिरा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ९ दिनतक रहता है एवं आर्द्रा नक्षत्रमें रोगके उत्पन्न होनेपर रोगी मृत्युको प्राप्त होता है। पुनर्वसु और पुष्यनक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग सात दिनमें एवं आश्लेषानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ९ दिनमें दूर होता है। मघानक्षत्रमें रोगके उत्पन्न होनेपर रोगी मरजाता है। पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग २ महीनेतक, उत्तराफाल्गुनीमें १९ दिनतक, हस्तनक्षत्रमें ७ दिनतक, चित्रामें १९ दिनतक स्वातीमें २ मासतक, विशाखामें २० दिनतक, अनुराधामें १० दिनतक और ज्येष्ठानक्षत्रमें १९ दिनतक रहता है। मूलनक्षत्रमें रोग होनेपर रोगी रोगसे मुक्त नहीं होता और पूर्वाषाढा नक्षत्रमें रोग होनेपर १९ दिनमें, उत्तराषाढा नक्षत्रमें २० दिनमें, श्रवण नक्षत्रमें दो महीने, धनिष्ठा नक्षत्रमें १९ दिन, शतभिषा नक्षत्रमें १० दिन, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें १९ दिन, उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें ४९ दिन, रेवती नक्षत्रमें १० दिन, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें रोग उत्पन्न हो तो रोगीको एक दिनरातमें मृत्यु हो जाती है। इस क्रमसे नक्षत्रोंमें उत्पन्न हुए रोगके यथोचित फलाफलको जानना चाहिये ॥ २३-३० ॥

ज्वरमुक्तके लक्षण ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूपाकौ मुखस्य च ।
क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३१ ॥

पसीनेका आना, शरीरमें हल्कापन, शिरमें खुजली, मुखपर फुंसियोंका निकलना, छींकोंका आना आर भोजनमें इच्छा होना ये सब लक्षण ज्वरके दूर होनेके हैं ॥ ३१ ॥

ज्वरमुक्त रोगीको वर्ज्जनीय पदार्थ ।

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥ ३२ ॥

ज्वर दूर होनेके पश्चात् रोगी जबतक अच्छे प्रकारसे बलवान् न होजाय तबतक परिश्रम, स्त्रीसहवास, स्नान और अधिक भ्रमण ये सब त्यागने चाहिये ॥ ३२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां दुग्धप्रकरणम् ।

अथ पथ्यापथ्यविधिः ।

नवीनज्वरमें अपथ्य ।

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यञ्जनमह्नि निद्राम् ।
दुग्धं घृतं वैदलमामिषं च तक्रं सुरां स्वादु गुरु द्रवं च ॥
अन्नं प्रवातं भ्रमणं च क्रोधं त्यजेत्प्रयत्नात्तरुणज्वरार्त्तः ॥१॥

स्नान, विरेचन, मैथुन, कषायरसवाले पदार्थ, व्यायाम (कसरत आदि परिश्रम), तैलकी मालिश, दिनमें सोना, दूध, घी, दाल, मांस, मट्ठा, मदिरा, मधुररसवाले पदार्थ, भारी और पतले पदार्थ, अन्न, पूर्वदिशाकी वायु अथवा प्रबलवायु इनका सेवन,भ्रमण और क्रोध इन सबको नवीनज्वरवाला रोगी अवश्य त्याग देवे १

मध्यज्वरमें पथ्य ।

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च वार्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लम् ।
वेत्राग्रमोचाऽथ फलं पटोलं कर्कोटकं मूलकपूतिके च ॥ २ ॥
मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्ठकैर्षां विहितश्च यूषः ।
पाठामृतावास्तुकतण्डुलीयजीवन्तिशाकानि च काकमाची ३
द्राक्षाकपित्थानि च दाडिमानि वैकंकतान्येव पचेलिमानि ।
लघूनि सात्म्यानि च भेषजानि पथ्यानि मध्यज्वरिणाममूनि४

पुराने साठीके चावल और शालिधानोंके चावल, बैंगन, सहिंजना, करेला, बेंतके अंकुर, केलेका मोचा अथवा फल, परवल, ककोडा, मूली, पोईका साग, मूंग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ इनका यूष, एवं पाढ, गिलोय, बथुएका शाक, चौलाई, जीवन्तीका शाक, मकोय, दाख, कैथ, अनार और कण्टाई आदि पके हुए फल एवं हलकी और सात्म्य (स्वभावानुकूल) औषधियाँ मध्यज्वरमें हितकर हैं ॥ २-४ ॥

पुराने ज्वरमें पथ्य ।

विरेचनं छर्द्दनमञ्जनं च नस्यं च धूमोऽप्यनुवासनं च ।
शिराव्यधः संशमनं प्रदेहोऽभ्यङ्गावगाहः शिशिरोपचारः ॥६॥

एणः कुलिङ्गो हरिणो मयूरो लावः शशस्तित्तिरिकुक्कुटौ च।
क्रौञ्चः कुरङ्गः पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्तककालपुच्छौ ॥ ६ ॥
गवामजायाश्च पयो घृतं च हरीतकी पर्वतनिर्झराम्भः।
एरण्डतैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि पुरेरितानि।
ज्योत्स्नाप्रियालिंगनमप्यथं स्याद्गुणः पुराणज्वरिणां सुखाय ७

विरेचन (जुल्लाब), वमन, अंजन, नस्य, धूम्रपान, अनुवासनवस्ती, शिराका बेधना. संशमन औषधियोंका सेवन, प्रलेप, तैलादिकी मालिश, जलमें घुसकर स्नान करना, सर्व प्रकारके शीतल उपचार, कालाहिरन, चिडा, हरिण, मोर, लवा, खरगोश, तीतर, मुर्गा, (एक प्रकारका बगुला), एक विशेष प्रकारका हिरन-चितकबराहिरन, चकोर, चातक, बत्तक और कालपुच्छ इन सब पशुपक्षियोंका मांस या मांसरस एवं गौ और बकरीका दूध, घी, हरड, पहाडी झरनोंका जल, अण्डीका तैल, सफेद चंदन और पहिले कहेहुए सब पदार्थ तथा निर्मल चन्द्रमाकी चांदनी, सुन्दरस्त्रीका आलिंगन आदि पुराने ज्वरमें हितकर हैं ॥१-७॥

ज्वरमें अपथ्य।

वमिवेगं दन्तकाष्ठमसात्म्यमतिभोजनम्।
विरुद्धान्यन्नपानानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ ८ ॥
दुष्टाम्बु क्षारमम्लानि पत्रशाकं विरूढकम्।
नलदाम्बु च ताम्बूलं कालिन्दं लैकुचं फलम् ॥ ९ ॥
ओडीमत्स्यं च पिण्याकं छत्रकं पिष्टवैकृतम्।
अभिष्यन्दीनि चैतानि ज्वरितः परिवर्ज्जयेत ॥ १० ॥
व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत ॥ ११ ॥

वमनके वेगको रोकना, दतौन करना, अपने स्वभावके विरुद्ध भोजन अथवा अत्यन्त भोजन, विरुद्ध (प्रकृति, देश और कालके प्रतिकूल) दाहकारक और गुरुपाकी अन्नपान, दूषितजल, खारी और खट्टेरसवाले पदार्थ, पत्तोंवाले और अंकुरोंवाले शाक, नीम, पान, तरबूज, निंबूके फल, ओडीनामक मछली, तिलकुट, छत्रक (साँपकी छतरी) का शाक. पिट्ठीके बने (पक्वान्न, मिष्टान्नादि) पदार्थ, विकृत और अभिष्यन्दकारक (शरीरके स्रोतोंको बन्द करनेवाले) पदार्थोंको ज्वररोगी

त्यागदेवे । एवं परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, स्नान और भ्रमणादिकर्मोंको ज्वररोगी जबतक अच्छे प्रकारसे बलवान् न होजाय तबतक कदापि न करे ॥ ८–११ ॥

आरोग्यस्नानकाल ।

धनिष्ठा श्रवणा स्वाती ज्येष्ठा शतभिषा तथा ।
रविमन्दभौमवाराश्चन्द्रोऽशुभविवर्जितः ॥ १२ ॥
केन्द्रस्थाश्चाशुभाः शस्ता व्यतीपातादिवासराः ।
तिथिर्न शस्ता प्रतिपत्तृतीया नवमी तथा ॥ १३ ॥
स्नानाय रोगमुक्तानां दशमी च त्रयोदशी ।
बुधेन्दुगुरुशुक्राणां वाराः स्नाने न शोभनाः ॥
रोगान्मुक्तस्य नाश्लेषा रोहिणी भद्रदायिनी ॥ १४ ॥

धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, ज्येष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रों एवं रविवार, शनिवार और मंगलवारोंमें यदि चन्द्रमा शुभ हो और केन्द्रस्थानमें न गया हो तो रोगीको रोगमुक्त होनेपर आरोग्यस्नान कराना चाहिये । इसमें व्यतीपातादिके दिनभी श्रेष्ठ मानेगये हैं । प्रतिपदा, तृतीया, नवमी, दशमी और त्रयोदशी इन तिथियों तथा बुध, सोम, बृहस्पति और शुक्र इन वारोंको रोगसे मुक्त हुए रोगीको स्नान करानेके लिये त्यागदेवे । एवं आश्लेषा रोहिणी और भद्रायुक्त तिथि भी आरोग्यस्नान करनेवाले रोगीके लिये वर्जित हैं ॥ १२–१४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरचिकित्सा ।

अथ ज्वरातिसार-चिकित्सा ।

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसार-
स्तथाऽतिसारे यदि वा ज्वरः स्यात् ।
दोषस्य दूष्यस्य समानभावाद्
ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः ॥ १ ॥

यदि पैत्तिकज्वरमें पित्तकी गरमीके कारण अतिसार (दस्त) हो अथवा अतिसाररोगमें ज्वर होजाय तो दोष और दूष्यकी समानता होनेके कारण इससे मिलित रोगको वैद्यलोग ज्वरातिसार कहते हैं ॥ १ ॥

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत् पृथक् पृथक् ।
न तन्मिलितयोः कुर्य्यादन्योन्यं वर्द्धयेद्यतः ॥ २ ॥
प्रायो ज्वरहरं भेदि स्तम्भनं त्वतिसारनुत् ।
अतोऽन्योन्यविरुद्धत्वाद्वर्द्धनं तत्परस्परम् ॥
ततस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तैश्चिकित्सितैः ॥ ३ ॥

ज्वर और अतिसार रोगमें जो जो पृथक् पृथक् औषधियाँ कही हैं, ज्वरातिसार-रोगमें वे औषधियाँ मिलाकर नहीं देना चाहिये। कारण–वे आपसमें विरोधी हैं अर्थात् ज्वरनाशक औषधियाँ प्रायः भेदक होती हैं और अतिसारनाशक औषधियाँ प्रायः मलस्तम्भक होती हैं। इसलिये दोनों प्रकारकी औषधियाँ परस्पर विरुद्ध गुणोंवाली होनेसे एक दूसरे रोगोंको बढाती हैं। अतएव ज्वरातिसाररोगमें उक्त दोनों प्रकारकी औषधियोंका प्रतिकार कर जो विशेष चिकित्सा कही है, उसीके अनुसार वैद्योंको चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

ज्वरातिसारिणामादौ कुर्य्याल्लङ्घनपाचने ।
प्रायस्तावामसम्बन्धं विना न भवतो यतः ॥ ४ ॥
ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लंघिते हितः ।
ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः ॥ ५ ॥

ज्वरातिसारके रोगीको पहिले लंघन करावे फिर पाचक औषधि देवे। कारण दोनों रोग प्रायः आम रसके विना उत्पन्न नहीं होते हैं। ज्वरातिसारमें लंघन करानेके बाद पेयादि देना हितकर है। इसमें रोगीको अनार आदि खट्टेरसवाले पदार्थोंके रसके द्वारा पेया बनाकर पान कराना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

ह्रीबेरादि।

ह्रीबेरातिविषामुस्तबिल्वनागरधान्यकैः ।
पिबेत् पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ॥
सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ६ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलकी जड, सोंठ और धनियाँ इनका क्काथ सेवन करनेसे मलकी पिच्छिलता, विबन्ध और शूल नष्ट होते हैं तथा आमदोषका परिपाक होकर रक्तातिसार, ज्वरातिसार अथवा केवल अतिसार रोग दूर होताहै ॥ ६ ॥

पाठादि।

पाठामृतापर्पटमुस्तविश्वाकिराततिक्तेन्द्रयवान् विपच्य।
पिबन् हरत्येव हरेत सर्वान् ज्वरातिसारानपि दुर्निवारान् ॥७॥

पाढ, गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरायता और इन्द्रजौ इनका यथा विधि क्वाथ बनाकर पान करनेसे तत्काल ही दुस्तर ज्वरातिसार नष्ट होते हैं ॥७॥

नागरादि।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः।
सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ८ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय और कुडेकी छाल इनका क्वाथ सर्वप्रकारके अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ८ ॥

उशीरादि।

उशीरं बालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम्।
समङ्गा धातकी लोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम् ॥ ९ ॥
हन्त्यरोचकपिच्छामविबन्धं सातिवेदनम्।
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाऽथ विज्वरम् ॥ १० ॥

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, वाराहक्रान्ता, (लज्जाव धायके फूल, लोध और बेलकी गिरी इनका क्वाथ दीपन और पाचन है। इस क्वाथको पान करनेसे अरुचि, पिच्छिलता, मलबद्धता, पीडासहित रक्तातिसार, ज्वररहित या ज्वरसहित अतिसार दूर होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

शुण्ठीदशमूल।

दशमूलीकषायेण विश्वमक्षसमं पिबेत्।
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ ११ ॥

अतिसार और शोथयुक्त संग्रहणरोगमें दशमूलके क्वाथमें थोडा सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ११ ॥

गुडूच्यादि।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाब्दबालकैः।
पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥ १२ ॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशान्तये।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहशान्तिकृत ॥ १३ ॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ, बेलकी गिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, कुडेकी छाल, लालचन्दन, खस और पद्माख इनका शीतल क्वाथ पान करनेसे ज्वरातिसार, उबकाई, अरुचि, वमन, प्यास और दाह शान्त होती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

कलिङ्गादि ।

कलिङ्गाऽतिविषा शुण्ठी किराताम्बु यवासकम् ।
ज्वरातीसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः ॥ १४ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, सोंठ, चिरायता, सुगन्धवाला और धमासा इनका क्वाथ पान करनेसे ज्वर और अतिसार निस्सन्देह दूर होता है ॥ १४ ॥

घनजलादि ।

घनजलपाठातिविषापथ्योत्पलधान्यरोहिणीविश्वैः ।
सेन्द्रयवैः कृतमम्भः सातीसारं ज्वरं जयति ॥ १५ ॥

नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, अतीस, हरड, नीलकमल, धनियाँ, कुटकी, सोंठ, इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पानकरनेसे अतिसारसहित ज्वर दूर होता है ॥ १५ ॥

धान्यनागरादि ।

धान्यनागरबिल्वाब्दबालकैः साधितं जलम् ।
आमशूलहरं ग्राह्यं दीपनं पाचनं परम् ॥ १६ ॥

धनियाँ, सोंठ, बेलकी गिरी, नागरमोथा और सुगन्धवाला इनका बनाया हुआ क्वाथ आम और शूलको हरनेवाला, संग्राही एवं दीपन और पाचक है ॥ १६ ॥

बिल्वादि ।

बिल्वबालकभूनिम्बगुडूचीमुस्तवत्सकैः ।
कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारनाशनः ॥ १७ ॥

बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ आमपाचक एवं सूजन और ज्वरातिसारको हरनेवाला है ॥ १७ ॥

कुटजादि ।

कुटजो नागरं मुस्तममृताऽतिविषा तथा ।
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १८ ॥

कुडेकी छाल, सोंठ, नागरमोथा, गिलोय और अतीस इनके द्वारा बनाया हुआ क्वाथ पान करनेसे ज्वरातीसार शमन होता है ॥ १८ ॥

पाठादि।

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्पटैः क्काथ इहैव शस्तः।
आमातिसारं च जयेद् द्रुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजं च तीव्रम् ॥१९

पाढ, इन्द्रजौ, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और पित्तपापडा इनका क्काथ सेवन करनेसे ज्वरयुक्त तीव्र और सहज आमातिसाररोग तत्काल नष्ट होता है ॥ १९ ॥

किरातादि।

किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः।
शोथातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ २० ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, लालचन्दन, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका क्काथ सूजन, अतिसार और विशेषकर ज्वरको नष्ट करता है ॥ २० ॥

विडङ्गादि।

विडङ्गातिविषामुस्तं पाठा दारु कलिङ्गकम्।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥२१॥

वायविडङ्ग, अतीस, नागरमोथा, पाढ, देवदारु और इन्द्रजौ इनके क्काथमें कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे सूजन और अतिसार दूर होता है ॥ २१ ॥

शुण्ठ्यादि।

शुण्ठीबालकमुस्तं बिल्वं पाठा विषा च धान्यानि।
पानकमरुचिच्छर्दिज्वरातिसारं विनाशयति ॥ २२ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, बेलगिरी, पाढ, अतीस और धनियाँ इनका क्काथ पानकरनेसे अरुचि, वमन, ज्वर और अतिसार नष्ट होते हैं ॥ २२ ॥

वत्सकादि।

वत्सकश्च सुरदारु रोहिणी धान्यबिल्वमगधात्रिकण्टकम्।
निम्बबीजगजपिप्पलीवृकीक्काथ एष ज्वर-सारयोर्हितः ॥२३॥

इन्द्रजौ, देवदारु, कुटकी, धनियाँ, बेलकी गिरी, पीपल, गोखुरु, नीमके बीज, गजपीपल और पाढ इनका क्काथ ज्वर और अतिसारको नष्ट करनेकी उत्तम औषधि है ॥ २३ ॥

भूनिम्बादि।

भूनिम्बबिल्वबालकगुडूचीमुस्तवत्सकैः।
कषायः पाचनः शोथज्वरातीसार नाशनः ॥ २४ ॥

चिरायता, बेलकी गिरी, सुगन्धवाला, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्काथ पाचक और शोथ तथा ज्वरातिसारको दूर करनेवाला है ॥ २४ ॥

कणादि ।

कणाकरिकणालाजक्काथो मधुसितायुतः ।
पीतो ज्वरातिसारस्य तृष्णामाशु विनाशयेत् ॥ २५ ॥

पीपल, गजपीपल और खीलें इनका क्काथ बनाकर शीतल करके उसमें शहद और मिश्री डालकर पीनेसे ज्वरातिसाररोगीकी तृषा शमन होती है ॥ २५ ॥

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ।
पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ २६ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोषं वमिं तथा ।
सशूलोपद्रवं कासं श्वासं हन्यात्सुदारुणम् ॥ २७ ॥
पञ्चमूली तु सामान्या योज्या पैत्ते कनीयसी ।
महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मातुरे हिता ॥ २८ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेरी, कटेरी, गोखरू, खिरेंटी, बेलकी गिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इन औषधियोंका यथाविधि क्काथ बनाकर पान करनेसे समस्त अतिसार, ज्वर, वमन, शूल आदि उपद्रवसहित खाँसी और दारुण श्वासरोग शमन होता है । पित्तकी अधिकता होनेपर इसमें लघुपंचमूल और वाताधिक्यमें बृहत्पञ्चमूलका क्काथ हितकर है ॥ २६–२८ ॥

बृहत्पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूली शृङ्गवेरशृङ्गाटकञ्चटं घनम् ।
जम्बुदाडिमपत्रं च बला बालं गुडूचिका ॥ २९ ॥
पाठा बिल्वं समंगा च कुटजत्वक्फलं तथा ।
धान्यकं धातकीक्काथं विषाजीरकसंयुतम् ॥ ३० ॥
पिबेद् ज्वरातिसारे च सरक्ते वाप्यरक्तके ।
अपि योगशतैस्त्यक्ते चासाध्ये सर्वरूपके ॥ ३१ ॥

बेलकी गिरी, स्योनापाठा, कुंभेर, पाढल, अरणी, सोंठ, सिंघाडेके पत्ते, जलचौलाई, नागरमोथा, जामुनके पत्ते, खिरेंटी, सुगन्धवाला, गिलोय, पाढ, बेल, वारा-

हक्रान्ता (लज्जावन्ती), कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, धनियाँ और धायके फूल इनके क्राथमें अतीस और जीरेका थोडा चूर्ण डालकर पान करनेसे ज्वरातिसार, रक्तातिसार और केवल आतिसाररोगमें आरोग्य लाभ होता है । जिसमें सैकडों औषधियोंसे भी कुछ लाभ नहीं होता ऐसा असाध्य अतिसार रोग भी इससे दूर होता है ॥ २९-३१ ॥

धान्यशुण्ठी ।

धान्यकं विश्वसंयुक्तमामघ्नं वह्निदीपनम् ।
वातश्लेष्मज्वरहरं शूलातीसारनाशनम् ॥ ३२ ॥

धनियाँ और सोंठका क्राथ आमनाशक, अग्निप्रदीपक, वातश्लेष्मज्वर, शूल और अतिसारको नष्ट करनेवाला है ॥ ३२ ॥

बिल्वपञ्चक ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला बिल्वं सदाडिमम् ।
बिल्वपञ्चकमित्येतत्क्राथं कृत्वा प्रदापयेत् ॥
अतीसारे ज्वरे छर्द्यां शस्यते बिल्वपञ्चकम् ॥ ३३ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरैंटी, बेलगिरी और अनारके छिलके इन औषधियोंके समूहको विल्वपंचक कहते हैं । इस विल्वपंचकका क्राथ बनाकर अतिसार, ज्वर और वमनरोगमें पान कराना चाहिये ॥ ३३ ॥

उत्पलषट्क ।

पृश्निपर्णीबलाबिल्वधनिकानागरोत्पलैः ।
ज्वरातिसारयोर्वापि पिबेत्साम्लं शृतं नरः ॥ ३४ ॥

पृश्निपर्णी, खिरैंटी, बेलकी गिरी, धनियाँ, सोंठ और कमोदिनी (नीलोफर) इनके क्राथमें अनारका रस डालकर पान करनेसे ज्वर और अतिसार रोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

उत्पलाद्यचूर्ण ।

उत्पलं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारशान्तये ॥ ३५ ॥

ज्वर और आतिसारको शमन करनेके लिये नीलोत्पल (नीलोफर), अनारके बक्कल और कमलकेशर इनका चूर्ण बनाकर चावलोंके जलके साथ पान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

व्योषाद्यचूर्ण ।

व्योषं वत्सकबीजं च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समम् ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्व तत्तुल्या वत्सकत्वचः ॥ ३६ ॥
सर्वमेकत्र संयोज्य पिबेत्तण्डुलवारिणा ।
सक्षौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ॥
तृष्णाऽरुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३७ ॥
प्रमेहं ग्रहणीदोषं गुल्मं प्लीहानमेव च ।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ३८ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, चिरायता, भाँगरा, चीतेकी जड, कुटकी, पाढ, दारुहल्दी और अतीस इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे और सब चूर्णकी बराबर भाग कुडेकी छालका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे। इस चूर्णको तीन चार माशेकी मात्रासे चावलोंके जलके साथ पीनेसे या शहदके साथ चाटनेसे तृष्णा, अरुचि, ज्वरातिसार, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डुरोग और सूजन आदिरोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण पाचक और ग्राह्य है ३६-३८

कलिंगादिगुटिका ।

कलिंगबिल्वनिम्बाम्रं कपित्थं सरसाञ्जनम् ।
लाक्षा हरिद्रे ह्रीबेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥ ३९ ॥
लोध्रं मोचरसं शङ्खं धातकीं वटशुंगकम् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ ४० ॥
छायाशुष्कान् पिबेत् क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये ।
रक्तप्रसाधना ह्येते शूलातीसारनाशनाः ॥ ४१ ॥

इन्द्रजौ, बेलगिरी, नीमकी छाल, आमकी गुठलीकी मींग, कैथके पत्ते, रसोंत, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, सुगन्धवाला, कायफल, अरलूकी छाल, लोध, मोचरस, शंखभस्म, धायके फूल, बडके अंकुर इन सबको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर दो तोलेकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इनके सेवनसे ज्वरातिसार, रक्तातिसार, शूलसंयुक्त अतीसार नष्ट होजाता है ॥ ३९-४१ ॥

कुटजावलेह ।

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण शर्कराप्रस्थकं पचेत् ॥ ४२ ॥
ततो लेहे घनीभूते चूर्णानीमानि दापयेत् ।
लवंगं जीरकं मुस्तं धातकी बिल्ववालकम् ॥ ४३ ॥
एला पाठा त्वचं शृंगी जातीफलमधूरिका ।
शक्रकाऽतिविषा क्षारं काकोली च रसाञ्जनम् ॥ ४४ ॥
शाल्मली वेष्टकं यष्टी समंगा रक्तचन्दनम् ।
वटशुंगं खादिरं च जम्ब्वाम्रपल्लवं तथा ॥ ४५ ॥
एषामक्षसमं चूर्णं प्रक्षिपेत् पाकविद् भिषक् ।
सिद्धेऽवतारिते शीते मधुनः कुडवं न्यसेत् ॥ ४६ ॥

कुडेकी जडकी छाल सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर वह चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें ६४ तोले मिश्री या शुद्धचीनी मिलाकर पकावे । पककर जब पाक अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें लौंग, जीरा, नागरमोथा, धायके फूल, बेलकी गिरी, सुगन्धवाला छोटी इलायची, पाढ, दालचीनी, काकडासिंगी, जायफल, सौंफ, इन्द्रजौ, अतीस, जवाखार, काकोली, रसौंत, मोचरस, मुलहठी, मंजीठ, लालचन्दन, बडके अंकुर, खैर, जामुन और आमके पत्ते इन औषधियोंके दो दो तोले परिमाण बारीक चूर्णको डालदेवें । जब उत्तम प्रकारसे पाक सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें ६४ तोले शहद मिलादेवे ॥ ४२–४६ ॥

खादयेत्कर्षमात्रं तु चानुपानविधिं शृणु ।
अनुपानं प्रदातव्यं दधिमस्तु त्वजापयः ॥ ४७ ॥
चांपेयकदलीमूलस्वरसं कर्षमानतः ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ४८ ॥
रोगं रक्तातिसारं च चिरकालसमुद्भवम् ।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
शोथातीसारसहितं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ ४९ ॥

इस अवलेहको प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक एक तोला प्रमाण खाय और ऊपरसे दहीका तोड, बकरीका दूध, चम्पेकी जडका रस अथवा केलेकी जडका रस इनमेंसे किसी एक पदार्थको एक तोला पान करे। यह अवलेह प्रबल संग्रहणी बहुत पुराना रक्तातिसार, पक्व अथवा अपक्व अनेक वर्णका और पीडायुक्त अतिसार एवं सूजन और अतिसारयुक्त ज्वरको शीघ्र दूर करता है। अतिसार और संग्रहणीमें यह अवलेह तत्काल प्रत्यक्ष फलदायक है ॥ ४७-४९ ॥

द्वितीय कुटजावलेह ।

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण शर्करापलविंशतिम् ॥ ५० ॥
दत्त्वा पक्त्वा लेहपाके चूर्णानीमानि निक्षिपेत् ।
पाठा समङ्गा बिल्वं च धातकी मुस्तकं तथा ॥ ५१ ॥
दाडिमाऽतिविषा लोध्रं शाल्मली वेष्टसर्ज्जकम् ।
रसाञ्जनं धान्यकं च उशीरं बालकं तथा ॥ ५२ ॥
प्रत्येकमेषां कर्षांशं निक्षिपेत्पाकविद्भिषक् ।
शीते च मधुनस्तत्र कुडवार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ ५३ ॥
सर्वरूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ।
रक्तस्रुतिं ज्वरं शोथं वमिमर्शोगदं तृषाम् ॥
अम्लपित्तं तथा शूलमग्निमान्द्यं नियच्छति ॥ ५४ ॥

कुडेकी जडकी छाल १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें एक सेर मिश्री डालकर पाक करे। जब पककर वह अवलेहके समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पाढ, मंजीठ, बेलकी गिरी, धायके फूल, नागरमोथा, अनारका बक्कल, अतीस, लोध, मोचरस, राल, रसौत, धनियाँ, खस और सुगन्धवाला इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण एकएक तोला डालदेवे और शीतल होनेपर आठ तोले शहद डालकर मिलादेवे। उसको पूर्ववत् एक एक तोलेकी मात्रासे सेवन करे और बकरीके दूध अथवा दहीके पानीका अनुपान करे तो यह अवलेह सब प्रकारके अतिसार, समस्त ग्रहणी, रक्तातिसार, ज्वर, सूजन, वमन, बवासीर, तृषा, अम्लपित्त, शूल, मन्दाग्नि आदि रोगोंको शीघ्र शमन करताहै। यह अतिसार और ग्रहणीकी प्रत्यक्ष फलदायिनी है ॥ ५०-५४ ॥

सिद्धप्राणेश्वर रस।

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेदभागमन्यच्च भागिकम्।
सर्ज्जिटङ्कयवक्षाराः पञ्चव लवणानि च ॥ ५५ ॥
वराव्योषेन्द्रबीजानि द्विजीराग्नियमानिकाः।
सहिंगु बीजसारं च शतपुष्पा सुचूर्णिता ॥ ५६ ॥
सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः।
माषैकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ ५७ ॥
उष्णोदकानुपानं च दद्यात्तत्र पलत्रयम्।
ज्वरातिसारेऽतिसृतौ केवले वा ज्वरेऽपि च ॥ ५८ ॥
घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामसृगामये।
वातरोगे च शूले च शूले च परिणामजे ॥ ५९ ॥

शुद्धगन्धक, शुद्धपारा और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक चार चार तोले, एवं सज्जी, सुहागा, जवाखार, सैंधानक, साँभरनमक, विरियासंचरनमक, कचियानमक, कालानमक, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, पीपल, मिरच, इद्रजौ, जीरा, कालाजीरा, चीतेकी जड, अजवायन, हींग, वायविडंग और सोया ये प्रत्येक औषधि एकएक तोला लेवे। सबको एकत्र जलके द्वारा उत्तमप्रकारसे खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे। यह सिद्धप्राणेश्वर नामवाला रस प्राणियोंके लिये जीवनदाताहै। इसकी एकएक गोली पानके साथ भक्षण करे और इसपर तीन पल प्रमाण गरम जलका अनुपान करे। इस रसको ज्वरातिसार, केवल अतिसार अथवा ज्वरमें तथा भयंकर त्रिदोषजनित रोग, ग्रहणी, रक्तविकार, वातरोग, शूल और परिणामजन्य-शूलमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५५-५९ ॥

कनकसुन्दररस।

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्कणं विषम्।
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ ६० ॥
मर्दयेद्यामभात्रं तु चणमात्रा वटी कृता।
भक्षणाद्ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ ६१ ॥
अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतीसारं च नाशयेत्।
पथ्यं दध्योदनं दद्याद्वा तक्रौदनं चरेत् ॥ ६२ ॥

सिंगरफ, मिरच, शुद्ध गन्धक, पीपल, सुहागा, शुद्ध मीठा तेलिया और धतूरेके बीज इन सबको समान भाग लेकर भाँगके रसमें एक प्रहरतक खरल कर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह कनकसुन्दररस सेवन करतेही संग्रहणी, मन्दाग्नि, ज्वर और प्रबल अतीसारको नष्ट करता है । इसपर दही भात अथवा मट्ठे और भातका पथ्य देना चाहिये ॥ ६०-६२ ॥

बृहत्कनकसुन्दररस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा ।
स्वर्णबीजं समं मर्द्यं भार्ङ्गीद्रावैर्दिनार्द्धकम् ॥ ६३ ॥
सूततुल्यं मृतं चाभ्रं रसः कनकसुन्दरः ।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति पित्तातीसारमुग्रकम् ॥ ६४ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, मिरच, सुहागेकी खील और धतूरेके बीज सबको समान भाग लेकर भारंगीके रसमें दो प्रहरतक खरल करे फिर उसमें पारेके बराबरभाग अभ्रकभस्म मिलादेवे तो बृहत्कनकसुन्दररस सिद्ध होता है । इसको दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करनेसे अत्युग्र पित्तातिसार दूर होता है ॥ ६३॥६४ ॥

गगनसुन्दररस ।

टङ्कणं दरदं गन्धमभ्रकं च समं समम् ।
दुग्धिकाया रसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ६५ ॥
द्विगुञ्जं मधुना देयं श्वेतसर्ज्जस्य वल्लकम् ।
विविधं नाशयेद्रक्तं ज्वरातीसारमुल्बणम् ॥ ६६ ॥
पथ्यं तक्रं पयश्छागमामशूलं विनाशयेत् ।
अग्निवृद्धिकरो ह्येष रसो गगनसुन्दरः ॥ ६७ ॥

सुहागा, सिंगरफ, गन्धक और अभ्रक इन प्रत्येकको समान भाग लेकर दुद्धीके रसमें ३ दिनतक भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली सफेद रालके दो रत्ती प्रमाण चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे विविध-प्रकारका रक्तविकार, ज्वर, अत्युग्र अतिसार और आमशूल नष्ट होता है और यह गगनसुन्दर रस विशेषकर जठराग्निकी वृद्धि करता है । इसपर मठा और बकरीका दूध पथ्य है ॥ ६५-६७ ॥

कनकप्रभावटी ।

सुवर्णबीजं मरिचं मरालपादं कणा टङ्कणकं विषं च ।
गन्धं जयाद्रिर्दिवसं विमर्द्य गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विदध्यात् ॥

घोरातिसारग्रहणीज्वराग्निमान्द्यं निहन्यात्कनकप्रभेयम्।
दध्योदनं पथ्यमनुष्णवारि मांसं भजेत्तित्तिरिलावकानाम् ॥

धतूरेके बीज, मिरच, हंसपदी (हंसराज), पीपल, सुहागा, शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर भाँगके रस वा क्वाथमें एक दिन तक खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह कनकप्रभा वटी सेवन करतेही प्रबल अतिसार, ग्रहणी, ज्वर और अग्निमान्द्य आदि रोगोंको नष्ट करती है। इसपर दही भातका पथ्य, शीतलजल एवं तीतर और लवा पक्षीका मांसरस सेवन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मृतसंजीवनी वटी।

मागधी वत्सनाभं च तयोस्तुल्यं च हिङ्गुलम्।
मृतसंजीवनी ख्याता जम्बीररसमर्दिता ॥ ७० ॥
मूलकस्य च बीजानां वटिका तुल्यरूपिणी।
पानीया शीततोयेन ज्वरातीसारनाशिनी ॥
विषूच्यां सन्निपाते च ज्वरे चैवातिदुस्तरे ॥ ७१ ॥

पीपल १ भाग, शुद्ध वत्सनाभ १ भाग और सिंगरफ २ भाग इनको एकत्र जम्बीरीनींबूके रसमें उत्तम प्रकारसे खरलकर मूलीके बीजकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। एकएक गोली शीतजलके साथ सेवन करनेसे ज्वर और अतिसार (दस्त) शीघ्र दूर होते हैं। विषूचिका और अतिदारुण सन्निपातज्वरमें यह मृतसंजीवनी नामक वटी अतीव हितकारी है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

आनन्दभैरव रस।

हिङ्गुलं च विषं व्योषं टङ्कणं गन्धकं समम्।
जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेद्यामकद्वयम् ॥ ७२ ॥
कासश्वासातिसारेषु ग्रहण्यां सान्निपातिके।
अपस्मारेऽनिले मेहेऽप्यजीर्णे वह्निमान्द्यके ॥
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यो रस आनन्दभैरवः ॥ ७३ ॥

सिंगरफ, शुद्ध मीठातेलिया, त्रिकुटा, सुहागा और शुद्धगन्धक सबको सम भाग लेकर एकत्र कूटपीसकर जम्बीरीनींबूके रसमें दो प्रहरतक खरल करे फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह आनन्दभैरवरस सेवन करतेही खाँसी, श्वास, अतिसार, संग्रहणी, सन्निपातज्वर, अपस्मार, वातविकार, प्रमेह, अजीर्ण और मन्दाग्नि इन रोगोंको दूर करताहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अमृतार्णवरस।

हिङ्गुलोत्थो रसो लौहं टङ्कणं गन्धकं शठी ।
धान्यकं बालकं मुस्तं पाठा जीरं घुणप्रिया ॥ ७४ ॥
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।
माषैका वटिका कार्य्या रसोऽयममृतार्णवः ॥ ७५ ॥
वटिकां भक्षयेत्प्रातर्गहनानन्दभाषिताम् ।
धान्यजीरकयूषेण विजयाशणबीजतः ॥ ७६ ॥
मधुना छागदुग्धेन मण्डेन शीतवारिणा ।
कदलीमोचकरसैः कञ्चटद्रवकेण च ॥ ७७ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, लोहा, सुहागा, शुद्धगन्धक, कचूर, धनियाँ, सुगन्धबाला, नागरमोथा, पाढ, जीरा और अतीस इन प्रत्येकके चूर्णको एक एक तोला लेवे। फिर सबको एकत्र बकरीके दूधमें खरल करके एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एकएक गोली नित्यप्रति प्रातःकाल भक्षण करे और ऊपरसे धनियाँ, जीरा और भूँगका यूष, भाँगका चूर्ण, सनके बीजोंका चूर्ण. शहद, बकरीका दूध, भातका माँड, शीतलजल, केलेकी जडका रस, मोचरस और जलचौलाईका रस इनमेंसे किसी एकका अनुपान करे ॥ ७४–७७ ॥

अतीसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा ।
दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम् ॥ ७८ ॥
शूलघ्नो वह्निजननो ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ।
अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नो गुल्मनाशनः ॥ ७९ ॥

इस रसको सेवन करनेसे अतिप्रबल अतीसार, एकदोषज द्विदोषज अथवा त्रिदोषज विकार, शूल, संग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त, खाँसी और गुल्मप्रभृति दुस्तर व्याधियाँ शमन होती हैं और अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ ७८॥७९ ॥

कारुण्यसागररस ।

भस्म सूताद् द्विधा गन्धं तथा द्वित्वं मृताभ्रकम् ।
दिनं सार्षपतैलेन पिष्ट्वा यामं विपाचयेत् ॥ ८० ॥
रसैर्मार्कवमूलोत्थैः पिष्ट्वा यामं विपाचयेत् ।
त्रिक्षारपञ्चलवणविषव्योषाग्निजीरकैः ॥
सविडङ्गैस्तुल्यभागैरयं कारुण्यसागरः ॥ ८१ ॥

पारेकी भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले और अभ्रकभस्म ४ तोले लेवे। इन सबको सरसोंके तेलमें एकदिनतक खरल करके शरावसंपुटमें रख वालुकायंत्रमें एक प्रहरतक पकावे। जब पककरस्वांगशीतल होजाय तब निकाल कर भाँगरेकी जड़के रसमें एक प्रहरतक खरल कर और पूर्वोक्तविधिसे संपुटमें रखकर पकावे। पीछे स्वांगशीतल होनेपर निकालकर उसका चूर्ण कर लेवे। फिर उसमें जवाखार, सज्जी, सुहागा, कालानमक, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, कचियानमक, साँभरनमक, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, जीरा और वायविडङ्ग इन औषधियोंके समानभाग मिश्रित चूर्णको मिलाकर खरल करे तो वह कारुण्यसागर रस सिद्ध होता है॥ ८०॥ ८१॥

माषमात्रं ददीतास्य भिषक् सर्वातिसारके।
सज्वरे विज्वरे वापि सशूले शोणितोद्भवे॥ ८२॥
निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सान्निपातिके।
अनुपानं विनाप्येष कार्यसिद्धिं करिष्यति॥ ८३॥

सर्वप्रकारके अतीसार, ज्वरसहित व ज्वररहित एवं शूलयुक्त रक्तातिसार, आमरहित सूजनवाली ग्रहणी और सन्निपात आदि रोगोंमें एक एक माशे परिमाण सेवन करना चाहिये. यह रस अनुपानके विना भी आरोग्य प्रदान करता है॥८२॥८३॥

मृतसञ्जीवनरस।

रसगन्धौ समौ ग्राह्यौ सूतपादं विषं क्षिपेत्।
सर्वतुल्यं मृतं चाभ्रं मर्द्यं धुस्तूरजद्रवैः॥ ८४॥
सार्पाक्ष्याश्च द्रवैर्यामं कषायेणाथ भावयेत्।
धातक्यतिविषामुस्तं शुण्ठीजीरकबालकम्॥ ८५॥
यमानीधान्यकं बिल्वं पाठा पथ्या कणान्वितम्।
कुटजस्य त्वचं बीजं कपित्थं बालदाडिमम्॥ ८६॥
प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्कुट्टितं क्वाथयेज्जलैः।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा यावत्पादावशेषितम्॥ ८७॥
अनेन त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितं रसम्।
रुद्ध्वा तद्वालुकायन्त्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत्॥ ८८॥
मृतसञ्जीवनो नाम-

शुद्ध किया हुआ पारा और गन्धक प्रत्येक एक एक तोला, शुद्ध मीठा तेलिया तीन माशे और सबकी बराबर भाग अभ्रकभस्म लेवे। इनको एकत्र कर धतूरेके पत्तोंके रसमें और सर्पाक्षीके रस अथवा क्वाथमें एक एक प्रहरतक खरल करे। फिर धायके फूल, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, जीरा, सुगन्धवाला, अजवायन, धनियाँ, बेलगिरी, पाढ, हरड, पीपल, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, कैथ और कच्चाअनार इन प्रत्येक औषधियोंको एक एक तोला लेकर अच्छेप्रकारसे कूटकर सबको चौगुने जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें पूर्वोक्त रसको तीन दिनतक भावना देवे। फिर उसको वालुकायन्त्रमें उत्तमप्रकारसे बन्दकरके मन्दमन्द अग्निसे दो घडीतक पकावे। जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब ओषधिको निकालकर चूर्ण कर लेवे। यह रस मृतसंजीवन नामसे प्रसिद्ध है ॥ ८४-८८ ॥

—अस्य गुञ्जाचतुष्टयम्।
दातव्यमनुपानेन चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ८९ ॥
षट्प्रकारमतीसारं साध्यासाध्यं जयेद् ध्रुवम्।
नागरातिविषा मुस्तं देवदारु कणा वचा ॥ ९० ॥
यमानी वालकं धान्यं कुटजत्वक् हरीतकी।
धातकीन्द्रयवौ बिल्वं पाठा मोचरसं समम्।
चूर्णितं मधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥ ९१ ॥

इस रसकी चारचार रत्ती प्रमाण मात्राको यथादोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे साध्य हो अथवा असाध्य छहों प्रकारके अतिसार निश्चय नष्ट होते हैं। इस रसको सेवन करनेसे पश्चात् सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पीपल, वच, अजवायन, सुगन्धवाला, धनियाँ, कुडेकी छाल, हरड, धायके फूल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाढ और मोचरस इन सब औषधियोंके चूर्णको समान भाग लेकर शहदमें मिलाकर चाटे तो बडा अच्छा अनुपान होता है। इस चूर्णको शहदके साथ चाटनेसे भी अतिसार रोग दूर होता है ॥ ८९-९१ ॥

प्राणेश्वररस।

रसान्धकमभ्रं च टङ्कणं शतपुष्पकम्।
यमानी जीरकाख्यं च प्रत्येकं कर्षयुग्मकम् ॥ ९२ ॥

कर्षमेकं यवक्षारं हिङ्गू कटुकपकञ्चम् ।
विडङ्गेन्द्रयवं सर्ज्जरसकं चाग्निसंज्ञितम् ॥
घृष्ट्वा च वटिका कार्या नाम्ना प्राणेश्वरो रसः ॥ ९३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रक, सुहागा, सोया, अजवायन ओर जीरा ये प्रत्येक दो दो कर्ष एवं जवाखार, हींग, पाँचों नमक, वायविडङ्ग, इन्द्रजौ, राल और चीता ये पृथक्‌ पृथक्‌ एकएक कर्ष लेवे । सबको जलके द्वारा एकत्र खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसको प्राणेश्वररस कहते हैं । यह रस ज्वरातिसाररोगनाशक है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अभ्रवटिका ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
प्रत्येकं कर्षमानं तु ग्राह्यं रसगुणैषिणा ॥ ९४ ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा व्योषचूर्णं प्रदापयेत् ।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्डयाश्चित्रकस्य च ॥ ९५ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा ।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं तथा शक्राशनस्य च ॥ ९६ ॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
दापयेद्रसतुल्यं च विधिज्ञः कुशलो भिषक् ॥ ९७ ॥
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम् ॥ ९८ ॥
शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः ।
शुष्कमातपसंयोगाद्वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९९ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला दोनोंकी एकत्र कज्जली बनालेवे । फिर इसमें अभ्रक, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाकर कुकुरभाँगरा, भाँगरा, सिम्हालू, चीता, ग्रीष्मसुन्दर (सिरयारीका साग), अरणी, मण्डूकपर्णी, भाँग, सफेद कोइल और पान इन प्रत्येकके एक एक तोले स्वरसमें क्रमसे अलग अलग भावना देवे । पश्चात् इसमें काली मिरचोंका चूर्ण एक तोला और सुहागेकी खील छः माशे डालकर उत्तम पत्थरके खरलमें अच्छे प्रकारसे घोटे और धूपमें सुखाकर मटरकी समान गोलियाँ बनालेवे॥९४-९९॥

कलायपरिमाणां तु खादेत्तां तु प्रयत्नतः ।
दृष्ट्वा वयश्चाग्निबलं यथाव्याध्यनुपानतः ॥ १०० ॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवं ज्वरम् ।
परं वाजीकरः श्रेष्ठो बलवर्णाग्निवर्द्धकः ॥ १०१ ॥
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ।
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यतेऽभ्ररसायनात् ॥ १०२ ॥
भोजने शयने पाने नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ।
दधि चावश्यकं भक्ष्यं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ १०३ ॥

यह रस रोगीकी अवस्था और अग्निके बलाबलको विचारकर यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन कराना चाहिये । इससे खाँसी, क्षय श्वास और वात-कफजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं । यह अत्यन्त वाजीकरण एवं बल, वर्ण और जठराग्निकी विशेषरूपसे वृद्धि करता है । ज्वर और अतिसाररोगमें तो यह सिद्धफलप्रद औषधि है । अभ्ररसायनोंमें इससे बढकर अन्य उत्तम औषध नहीं है । भोजन, पान और शयनादिमें कुछ परहेज नहीं है । किन्तु इसपर दही अवश्य खाना चाहिये ऐसा नागार्जुनमुनिने कहा है ॥ १००-१०३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरातिसारचिकित्सा ।

अथ अतिसार-चिकित्सा ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १ ॥

आम और पक्वके क्रमको त्यागकर अतिसारमें अन्य क्रिया ही नहीं है । इस कारण सम्पूर्ण अतिसारोंमें प्रथम आम और पक्वका निश्चय करना चाहिये ॥ १ ॥

आम और पक्वके लक्षण ।

मज्जत्यामा गुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले ।
विनाऽतिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ २ ॥

अपक्व मल भारी होनेके कारण जलमें डूब जाता है और पक्व मल जलमें तैरता रहता है । किन्तु अतिद्रव (बहुत पतला) अपक्व मल भी जलके ऊपर तैरता है एवं कठिन, श्वेतवर्ण, शीतल और दुष्ट कफसे दूषित पक्व मल जलमें डूब जाता है ॥२॥

आम और पक्कके अन्य लक्षण ।

शकृद् दुर्गन्धि साटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतं निरामं तु कफात् पक्कं च मज्जति ॥ ३ ॥

आमातिसारमें मल दुर्गन्धियुक्त उदरमें अफारेसहित गुड़गुड़शब्द होना' पीड़ाके साथ थोड़ा थोड़ा मलका उतरना और मुखमेंसे पानीका निकलना इत्यादि लक्षण होतेहैं । एवं आमरहित पक्कातिसारमें इन सब लक्षणोंके विपरीत लक्षण होतेहैं और कफके कारण भारी होनेसे पक्क मल जलमें डूब जाताहै ॥ ३ ॥

आम और पक्वातिसारकी चिकित्सा ।

न तु संग्रहणं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे ।
दोषा ह्यादौ रुद्धयमाना जनयन्त्यामयान् बहून् ॥ ४ ॥
शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ।
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ॥ ५ ॥
क्षीणधातुबलार्तस्य बहुदोषोऽतिनिःसृतः ।
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरण भवेत् ॥ ६ ॥

आमातिसारवाले रोगीको पहिले एकदम मलको रोकनेवाली औषधि कभी नहीं देनी चाहिये । कारण,प्रथमही अर्थात् अपक्व अवस्थामें मलको रोक देनेसे सब दोष एकत्रित होकर बँधजाते हैं और वे शोथ, पाण्डु, प्लीहा, कोढ, गुल्म, उदर, ज्वर, दण्डक, अलसक, अफारा, संग्रहणी और बवासीर आदि रोगोंको उत्पन्न करदेते हैं। किन्तु जो रोगी अधिक मलस्राव होनेसे धातुक्षीण और बलहीन हो और अनेक दोषोंसे युक्त हो ऐसे रोगीको आमकी अवस्थामें भी मलावरोधक औषधियाँ देनी चाहिये । कारण-ऐसे रोगीको पाचक औषधि देनेसे रोगीकी मृत्यु हो सकती है ॥ ४-६ ॥

आमातिसार--चिकित्सा

आमे विलङ्घनं शस्तमादौ पचनमेव वा ।
कार्यं चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम् ॥ ७ ॥

आमावस्थामें प्रथम लंघन कराने चाहिये । फिर पाचक औषधियाँ देनी चाहिये। एवं लंघन होचुकनेपर पेयादि पतले और हल्के पदार्थ पथ्यरूपसे भोजनके लिये देनें चाहिये ॥ ७ ॥

लंघनमेकं त्यक्त्वा नान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ।
समुदीर्णं दोषचयं शमयति तत्पाचयत्यपि च ॥ ८ ॥

अतिसारमें बलवान् रोगीके लिये लंघनके सिवाय अन्य कोई औषधि हितकर नहीं है । कारण; लंघन–उत्पन्नहुए दोषोंके समूहको शमन करते हैं और उनको पचा देते हैं ॥ ८ ॥

पक्वोऽपक्कृदतीसारो ग्रहणीमार्दवाद्यदा ।
प्रवर्तते तदा कार्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ॥ ९ ॥

जब पक्वातिसारमें ग्रहणीनाड़ीके अतिमन्द होजानेसे निरन्तर मल निकलता है तब तत्काल मलावरोधक औषधि देकर दस्त बन्द करदेने चाहिये ॥ ९ ॥

ह्रीबेरशृङ्गबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।
मुस्तोदीच्यशृतं तोयं देयं वापि पिपासवे ।
युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥ १० ॥

अतिसारके रोगीको प्यास लगनेपर सुगन्धवाला और सोंठ अथवा नागरमोथा और पित्तपापडा या नागरमोथा और सुगन्धवाला इनमेंसे किसी एक प्रयोगके द्वारा सिद्ध कियाहुआ जल पीनेको देना चाहिये और लंघनके बाद अत्यन्त भूँख लगनेपर हलके अन्नादिकोंका भोजन कराना चाहिये ॥ १० ॥

औषधसिद्धाः पेया लाजानां सक्तवोऽतिसारहिताः ।
वस्त्रप्रस्तुतमण्डः पेया च मसूरयूषश्च ॥ ११ ॥

शालपर्णी आदि या धान्यपंचकादि अथवा औषधियोंके द्वारा सिद्ध कीहुई पेया, खीलोंके सत्तू, कपडेमें छानाहुआ माँड, पेया और मसूरका यूष अतिसाररोगमें हितकारी है ॥ ११ ॥

गुर्वी पिण्डी खराऽत्यर्थं लघ्वी सैव विपर्य्ययात् ।
सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ १२ ॥

खीलोंके सत्तुओंमें थोडा जल डालकर उसका पिण्डा या गोलासा बनाकर खानेसे वह अत्यन्त कठिन और गुरुपाकी (देरमें पचनेवाला) होजाता है । किन्तु खीलोंके सत्तुओंको अधिक जलमें घोलकर अवलेहकी समान खानेसे वे शीघ्रही पच जाते हैं ॥ १२ ॥

धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णादाहातिसारनुत् ।
आभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ॥ १३ ॥

अतिसारके रोगीको धनियाँ और सुगन्धवाला इन औषधियोंके द्वारा पकायाहुआ जल पान करानेसे एवं धनियाँ, सुगन्धवाला और पाढ इनके द्वारा सिद्ध कीहुई पेया सेवन करानेसे तृषा, दाह और अतिसार नष्ट होता है ॥ १३ ॥

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्य्यते ।
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥ १४ ॥

जिस अतिसारके रोगीके वारंवार थोडा २ अथवा अत्यन्त बँधाहुआ और पीडासहित मल निकलता हो तो उसको हरड और पीपलका बारीक चूर्ण मन्दोष्ण जलके साथ पान कराना चाहिये ॥ १४ ॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः ।
तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु ॥ १५ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथा अथवा धनियाँ और सोंठ यह दोनों क्वाथ तृषा, शूल और अतिसारको नष्ट करनेवाले, पाचक, अग्निप्रदीपक और हल्के हैं ॥ १५ ॥

पाठावत्सकबीजानि हरीतक्योमहौषधम् ।
एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम् ॥
कफात्मकं सपित्तं च वर्चो बध्नाति च ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पाढ, इन्द्रजौ, हरड और सोंठ इनका बनायाहुआ क्वाथ पीडासहित आमजन्य अतिसार और कफ तथा पित्तसंयुक्त मलको निस्सन्देह बाँध देता है ॥ १६ ॥

पयस्युत्क्वाथ्य मुस्ता वा विंशतिंभेडकाह्वया ।
क्षीरावशिष्टं तत् पीतं हन्यादामं सवेदनम् ॥ १७ ॥

नागरमोथेकी बीस जडोंको आठगुने बकरीके दूध और दूधसे चौगुने जलमे पकावे । जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर छानलेवे । उस दूधको शीतल करके पान करनेसे वेदनासहित आमातिसार दूर होता है ॥ १७ ॥

धान्यपञ्चकसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा ।
आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥
वातपित्ते पञ्चमूल्या कफे वा पञ्चकोलकैः ॥ १८ ॥

वातकफातिसारवाले रोगियोंको धान्यपञ्चकके साथ अथवा केवल धनियें और सोंठके साथ पेया बनाकर भोजनके लिये देनी चाहिये । एवं वातपित्तातिसारमें स्वल्पपंचमूलकी औषधियोंके साथ और कफके अतिसारमें पञ्चकोलकी औषधियोंके साथ पेया प्रस्तुत कर भोजनके लिये देनी चाहिये ॥ १८ ॥

धान्यपञ्चक और धान्यचतुष्क ।

धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं बिल्वमेव च ।
आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥
इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पैत्ते शुण्ठीं विना पुनः ॥ १९ ॥

धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और बेलगिरी इनका क्वाथ पान करनेसे आमशूल और विबन्ध नष्ट होता है । यह क्वाथ पाचक और अग्निको दीपन करनेवाला है, इसको धान्यपंचक क्वाथ कहते हैं । किन्तु पित्तातिसारमें इस धान्यपंचकमेंसे सोंठको निकालकर शेष चारों औषधियोंका क्वाथ बनाकर देना चाहिये । इसको धान्यचतुष्क कहते हैं ॥ १९ ॥

स्वल्प शालपर्ण्यादि ।

शालपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता ।
दाडिमाम्ला हिता पेया पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २० ॥

शालपर्णी, खिरैंटी, बेलगिरी और पृश्निपर्णी इनके द्वारा सिद्ध की हुई पेया दाडिमीका रस मिलाकर पित्तकफातिसारवाले रोगीको पिलानी चाहिये ॥ २० ॥

बृहच्छालपर्ण्यादि ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ।
बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥
एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ २१ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडीकटेरी, कटेरी, खिरैंटी, गोखरू, बेलगिरी, पाढ, सोंठ और धनियाँ इन सब औषधियोंके द्वारा बनायी हुई पेया सब प्रकारके अतिसाररोगमें हितकारी है ॥ २१ ॥

वत्सकादि ।

वत्सकातिविषाशुण्ठीबिल्वहिङ्गुयवाम्बुदैः ।
चित्रकेण युतैः क्वाथ आमातीसारनाशनः ॥ २२ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, सोंठ, बेलगिरी, हींग, जौ, नागरमोथा और लाल चीता इनका क्वाथ आमातिसारको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

पथ्यादि ।

पथ्यादारुवचामुस्तनागरातिविषायुतैः ।
आमातीसारनाशार्थं क्वाथमेतत् पिबेन्नरः ॥ २३ ॥

आमातिसारको शमन करनेके लिये रोगी हरड, देवदारु, वच, नागरमोथा सोंठ और अतीस इनका बनाया हुआ क्वाथ पान करे ॥ २३ ॥

यमान्यादि।

यमानीनागरोशीरधनिकातिविषाघनैः।
बालबिल्वद्विपर्णीभिर्दीपनं पाचनं भवेत् ॥ २४ ॥

अजवायन, सोंठ, खस, धनियाँ, अतीस, नागरमोथा, कच्चे बेलकी गिरी, शालपर्णी और पृश्निपर्णी इनका क्वाथ सेवन करनेसे अग्निदीपन और आम परिपक्व होती है ॥ २४ ॥

कलिङ्गादि।

कलिङ्गाऽतिविषा हिङ्गु पथ्या सौवर्चलं वचा।
शूलस्तम्भविबन्धघ्नं पेयं दीपनपाचनम् ॥ २५ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, हींग, हरड, कालानमक और वच इनका बनाया हुआ क्वाथ शूल, स्तम्भ और विबन्धको नष्ट करता है। तथा दीपन और पाचन है ॥ २५ ॥

कञ्चटादि।

कञ्चटदाडिमजम्बूशृङ्गाटकपत्रह्रीबेरम्।
जलधरनागरसहितं गङ्गामपिवेगिनीं रुन्ध्यात् ॥ २६ ॥

जल चौलाइके पत्ते, अनारके पत्ते, जामुनके पत्ते, सिंघाडेके पत्ते, सुगन्धवाला, नागरमोथा और सोंठ इनका क्वाथ गंगाके समान वेगवाले अतिसारको भी रोक देता है ॥ २६ ॥

कुटजादि।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकी बिल्वबालकम्।
लोध्रचन्दनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत् ॥ २७ ॥
सामे शूले च रक्ते च पिच्छास्रावे च शस्यते।
कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥ २८ ॥

कुडेकी छाल, अनारका बक्काल, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी, सुगन्धवाला, लोध, लालचन्दन और पाढ इनके मन्दोष्ण क्वाथको शहद मिलाकर पान करनेसे आम, शूल, रक्तस्राव और मलकी पिच्छिलता दूर होती है। यह कुटजादिनामसे प्रसिद्ध प्रयोग सर्वप्रकारके अतिसाररोगको नष्ट करता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

त्र्यूषणादिचूर्ण ।

त्र्यूषणातिविषाहिङ्गुबलासौवर्च्चलाभयाः ।
पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम् ॥ २९ ॥
अथवा पिप्पलीमूलं पिप्पलीद्वयचित्रकात् ।
सौवर्च्चलवचाव्योषहिङ्गुप्रतिविषाभयाः ॥
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्त्तश्चूर्णिताश्चोष्णवारिणा ॥ ३० ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, अतीस, हींग, खिरैंटी, कालानमक और हरड इन सबके समान भाग मिश्रित चूर्णको गरमजलके साथ पान करनेसे प्रबल आमातिसाररोग नष्ट होता है अथवा पीपलामूल, पीपल, गजपीपल और चीता एवं कालानमक, वच, त्रिकुटा, हींग, अतीस और हरड इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उष्णजलके साथ पान करनेसे कफातिसार दूर होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

शुण्ठ्यादिचूर्ण ।

शुण्ठीप्रतिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ ३१ ॥

सोंठ, अतीस, हींग, नागरमोथा, इन्द्रजौ और चीता इनका चूर्ण उष्ण जलके साथ सेवन करनेसेही आमातिसार नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

वातातीसार-चिकित्सा ।

पञ्चमूलीबलाविश्वधान्यकोत्पलबिल्वजाः ।
वातातिसारिणे देयास्तक्रेणान्यतमेन वा ॥ ३२ ॥

वातज अतिसारवाले रोगीको पञ्चमूल, एवं खिरैंटी, सोंठ, धनियाँ, कुमोदिनी (नीलोफर) और बेलगिरी इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर जल मिलेहुए घोलमें पकाकर देना चाहिये ॥ ३२ ॥

पूतिकादि ।

पूतिको मागधी शुण्ठी बला धान्यं हरीतकी ।
पक्त्वाऽम्बुना पिबेत् सायं वातातीसारशान्तये ॥ ३३ ॥

दुर्गंध करञ्ज, पीपल, सोंठ, खिरैंटी, धनियाँ और हरड इनका क्वाथ बनाकर सायंकालमें सेवन करनेसे वातजन्य अतीसार शान्त होताहै ॥ ३३ ॥

पथ्यादि ।

पथ्या दारु वचा शुण्ठी मुस्ता चातिविषा लता ।
क्काथ एषां हरेत् पीतो वातातीसारमुल्बणम् ॥ ३४ ॥

हरड, देवदारु, वच, सोंठ, नागरमोथा, अतीस और गिलोय इनके क्वाथको पान करनेसे प्रबल वातातीसार नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

वचादि ।

वचा चातिविषा मुस्तं बीजानि कुटजस्य च ।
श्रेष्ठः कषाय एतेषां वातातीसारशान्तये ॥ ३५ ॥

वच, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ वातातिसारको शमन करनेके लिये देना चाहिये ॥ ३५ ॥

पित्तातीसार-चिकित्सा ।

मधुकादि ।

मधुकं कट्फलं लोध्रं दाडिमस्य फलत्वचौ ।
पित्तातिसारे मध्वक्तं पाययेत् तण्डुलाम्बुना ॥ ३६ ॥

पित्तज अतिसारमें मुलहठी, कायफल, लोध, अनारका कच्चा फल और बक्कल इनके समान भाग चूर्णको चावलोंके पानी और मधुके साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिये ॥ ३६ ॥

बिल्वादि ।

बिल्वशक्रयवाम्भोदबालकातिविषाकृतः ।
काषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥ ३७ ॥

बेलकी गिरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और अतीस इनका बना हुआ क्वाथ पान करनेसे पित्तसे उत्पन्न हुआ आमातिसार नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

कट्फलादि ।

कट्फलातिविषाम्भोदवत्सकं नागरान्वितम् ।
शृतं पित्तातिसारघ्नं दातव्यं मधुसंयुतम् ॥ ३८ ॥

कायफल, अतीस, नागरमोथा, इन्द्रजौ और सोंठ इनका क्वाथ वनाकर मधुके साथ पान करनेसे पित्तातीसार दूर होता है ॥ ३८ ॥

किराततिक्तकादि ।

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ।
पित्तातीसाररोगघ्नं सक्षौद्रं वेदनापहम् ॥ ३९ ॥

चिरायता, नागरमोथा, इन्द्रजौ और रसौंत इनके क्वाथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे पीडासहित पित्तातिसार शमन होता है ॥ ३९ ॥

अतिविषादि।

सक्षौद्राऽतिविषां पिष्ट्वा वत्सकस्य फलं त्वचम्।
तण्डुलोदकसंयुक्तं पेयं पित्तातिसारनुत् ॥ ४० ॥

अतीस, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको चावलोंके जल और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे पित्तातिसार नष्ट होताहै ॥ ४० ॥

श्लेष्मातीसार-चिकित्सा।

पथ्यादि।

पथ्याग्निकटुकापाठावचामुस्तकवत्सकैः।
सनागरैर्जयेत्क्वाथः कल्को वा श्लैष्मिकीं स्रुतिम् ॥ ४१ ॥

हरड, चीता, कुटकी, पाढ, वच, नागरमोथा, इद्रजौ, और सोंठ इनका क्वाथ अथवा कल्क कफके अतीसारको जीतता है ॥ ४१ ॥

चव्यादि।

चव्यं सातिविषं मुस्तं बालबिल्वं सनागरम्।
वत्सकत्वक्फलं पथ्या छर्दिश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ४२ ॥

चव्य, अतीस, नागरमोथा, कच्चे बेलकी गिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इद्रजौ और हरड, इनका क्वाथ पान करनेसे वमन और कफजनित अतिसार दूर होताहै ॥ ४२ ॥

पाठादिचूर्ण।

पाठा वचा त्रिकटुकं कुष्ठं कटुकरोहिणी।
उष्णाम्बुना विनिघ्नन्ति श्लेष्मातीसारमुल्बणम् ॥ ४३ ॥

पाढ, वच, सोंठ, पीपल, कालीमिरच, कूठ और कुटकी इनका चूर्ण उष्ण जलके साथ पान करनेसे भयंकर कफातिसार दूर होताहै ॥ ४३ ॥

हिंग्वादिचूर्ण।

हिङ्गु सौवर्च्चलं व्योषमभयाऽतिविषा वचा।
पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं श्लेष्मातीसारनाशनम् ॥ ४४ ॥

हींग, कालानमक, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, अतीस और वच इनके चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे कफातिसार नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥

पथ्यादिचूर्ण ।

पथ्या पाठा वचा कुष्ठं चित्रकं कटुरोहिणी ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतं श्लेष्मातीसारनाशनम् ॥ ४५ ॥

हरड, पाढ, वच, कूठ, चीता और कुटकी इन प्रत्येकके समान भाग चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे कफज अतिसार नष्ट होताहै ॥ ४५ ॥

द्वन्द्वजातीसार-चिकित्सा ।

द्विदोषलक्षणैर्विद्यादतीसारं द्विदोषजम् ।
तेषां चिकित्सा प्रोक्तैव विशिष्टा च निगद्यते ॥ ४६ ॥

जिस अतिसारमें दो दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते हैं उसको द्विदोषज अतिसार कहते हैं । उनकी स्वतन्त्ररूपसे चिकित्सा पहिले लिखी जाचुकी है । अब यहाँ द्विदोषज अतिसारकी विशेषरूपसे चिकित्सा लिखीजाती है ॥ ४६ ॥

वातपित्तातिसार-चिकित्सा ।

कलिङ्गादि ।

कलिङ्गकवचामुस्तं दारु सातिविषं समम् ।
कल्कं तण्डुलतोयेन पिबेत पित्तानिलामयी ॥ ४७ ॥

वात और पित्तके अतिसारवाले रोगीको इन्द्रजौ, वच, नागरमोथा, देवदारु और अतीस इन सबको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीस कर कल्क बनाकर पान करना चाहिये ॥ ४७ ॥

पित्तश्लेष्मातिसार-चिकित्सा ।

मुस्तादि ।

मुस्ता सातिविषामूर्वा वचा च कुटजः समः ।
एषां कषायः सक्षौद्रः पित्तश्लेष्मातिसारहृत् ॥ ४८ ॥

नागरमोथा, अतीस, मूर्वा, वच और कुडेकी छाल इनको समान भाग लेकर और यथाविधिसे क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे पित्त और कफातिसार दूर होताहै ॥ ४८ ॥

समङ्गादि ।

समङ्गा धातकी बिल्वमाम्रास्थ्यम्भोजकेशरम् ।
बिल्वं मोचरसं लोध्रं कुटजस्य फलत्वचौ ॥ ४९ ॥
पिबेत्तण्डुलतोयेन कषायं कल्कमेव वा ।
श्लेष्मपित्तातिसारघ्नं रक्तं वाथ नियच्छति ॥ ५० ॥

लज्जावन्ती, धायके फूल, बेलगिरी, आमकी गुठलीकी गिरी और कमलकेशर अथवा बेलगिरी, मोचरस, लोध, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इनके क्काथ या कल्कको चावलोंके जलके साथ पान करनेसे पित्त-कफातिसार और रक्तज अतिसार शीघ्र दूर होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कुटजादि ।

कुटजातिविषामुस्तं हरिद्रापर्णिनीद्वयम् ।
सक्षौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ५१ ॥

पित्त कफातिसारवाले रोगियोंको कुडेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी और पृश्निपर्णी इनके क्वाथमें शहद और मिश्री डालकर पान करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ५१ ॥

वातश्लेष्मातिसार-चिकित्सा ।

चित्रकादि ।

चित्रकातिविषामुस्तं बला बिल्वं सनागरम् ।
वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ५२ ॥

चीता, अतीस, नागरमोथा, खिरटी, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका क्वाथ वात और कफके अतिसारको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

त्रिदोषातिसार-चिकित्सा ।

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद् दोषत्रयोद्भवम् ॥ ५३ ॥

त्रिदोषातिसारमें वातादि तीनों दोषोंके लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें मल सूअरकी चर्वी और मांस मिश्रित जलकी समान होता है। यह त्रिदोषज अतीसार अत्यन्त कष्टसाध्य होता है ॥ ५३ ॥

समङ्गादि-कषाय ।

समङ्गाऽतिविषा मुस्ता विश्वं ह्रीबेरधातकी ।
कुटजत्वक्फलं बिल्वं क्काथः सर्वातिसारनुत् ॥ ५४ ॥

लज्जावन्ती, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, सुगन्धवाला, धायके फूल, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और बेलगिरी इनका क्काथ पान करनेसे सर्व प्रकारका अतीसार दूर होता है ॥ ५४ ॥

पञ्चमूली-बलादि।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः।
पाठाभूनिम्बबर्हिष्ठकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ ९६ ॥
सर्वजं हन्त्यतीसारं ज्वरं चापि तथा वमिम्।
सशूलोपद्रवं श्वासं कासं चापि सुदुस्तरम् ॥ ९६ ॥

पञ्चमूल (पित्ताधिक्यमें स्वल्प पंचमूल और वात कफाधिक्यमें बृहत्पंचमूल लेना चाहिये), खिरैंटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ शीतल करके पान करनेसे त्रिदोषज अतिसार, ज्वर, वमन, शूल आदि उपद्रवोंसहित दुस्तर श्वास और कास-विकार दूर होते हैं ॥ ९६ ॥

पुटपक्वौषधप्रयोगविधि।

अवेदनं सुसंपक्कं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम्।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ९७ ॥

यदि प्रदीप्तअग्निवाले रोगीके बहुत दिनोंका पुराना, पीडारहित, परिपक्व और अनेक वर्णका अतिसार (रोग) हो तो उसकी अतिसाररोगमें कहीहुई पुटपाककी औषधियोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९७ ॥

कुटज-पुटपाक।

स्निग्धं घनं कुटजवल्कलजन्त्वजग्ध-
मादाय तत्क्षणमतीव च कुट्टयित्वा।
जम्बूपलाशपुटतण्डुलतोयसिक्तं
बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥ ९८ ॥
सुस्विन्नमेतदवपीड्य रस गृहीत्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात्।
कृष्णात्रिपुत्रमतिपूजित एष योगः
सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ९९ ॥

१ "स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाके पलं पिबेत्। पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारुणवर्णता ॥"

पुटपाककी विधि यह है कि-जब पुटपाकका बाहरसे लालरंग होजाय, तब उसको पका हुआ जानकर निकाल लेवे। फिर उसमेसे रसको निकालकर एकएक पलकी मात्रासे पानकरे।

चिकनी मोटी और जिसको कीड़ोंने न खाया हो, ऐसी कुड़ेकी जड़की छालको लेकर तत्क्षण खूब बारीक कूटकर चावलोंके जलमें पीसलेवे। फिर उसको जामुनके पत्तोंमें लपेटकर और कुशासे बाँधकर उसके ऊपर गाढी मिट्टीका लेप करके सुखालेवे। पश्चात् जब पककर शीतल होजाय तब उसमेंसे रसको निकाल लेवे। इस रसमें शहद मिलाकर अतिसारवाले रोगीको सेवन कराना चाहिये। यह प्रयोग सर्वप्रकारके अतिसाररोगको नष्ट करनेके लिये सम्पूर्ण योगोंका राजा है। यह योग कृष्णात्रेयमुनिका कहा हुआहै। ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

श्योनाकपुटपाक।

त्वक्पिण्डं दीर्घवृत्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम्।
मृदाऽवलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ॥ ६० ॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नतः।
शीतीकृतं मधुयुत पाययेदुदरामये ॥ ६१ ॥

अरलूकी जड़की छालको कूट पीसकर गोलासा बनालेवे। फिर उसको कुम्भेरके पत्तोंमें लपेटकर और ऊपरसे मिट्टीका लेप कर मन्द मन्द अग्निसे पुटपाक करना चाहिये। जब पककर शीतल होजाय तब औषधिको निकालकर उसमेंसे रसको निचोड़ लेवे। उस रसको उचित मात्रासे शहदमें मिलाकर उदररोगोंमें सेवन करानेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दाडिम-पुटपाक।

दाडिमस्य फलं पिष्ट्वा पचेत् पुटविधानतः।
तद्रसं मधुसंमिश्रं पिबेत् सर्वातिसारनुत् ॥ ६२ ॥

कच्चे अनारके फलको पीसकर पूर्वोक्त विधिसे पुटपाक करे। फिर उसके रसको निकालकर दो तोले परिमाण लकर मधुके साथ मिश्रितकर सेवन करनेसे सब प्रकारका अतीसार नष्ट होता है ॥ ६२ ॥

कुटज–लेह।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत्।
क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन् लेहं पूते पुनः पचेत् ॥ ६३ ॥
सौवर्च्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली।
धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ ६४ ॥

लिह्याद्बदरमात्रं तु पीतं क्षौद्रेण संयुतम् ।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं चयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ६५ ॥

कुडेकी जड़की छाल १०० पल लेकर और उसको अच्छीतरह कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाईभाग जल शेष रहजावे, तब उतारकर छान लेवे । फिर उस क्वाथको दुबारा मन्द मन्द अग्निसे पकावे । पककर जब वह अवलेहके समान होजाय, तब उसमें कालानमक, जवाखार, विरिया संचरनमक, सैंधानमक, पीपल, धायके फूल, इन्द्रजौ और जीरा इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो दो पल मिलादेवे । प्रतिदिन एक एक तोले परिमाण लेकर शहदके साथ सेवन करे तो यह अवलेह पक्व, अपक्व, अनेक वर्णवाले और वेदनायुक्त अतिसार दुःसाध्य संग्रहणी और प्रवाहिकारोगको शीघ्र नष्ट करताहै ॥

कुटजाष्टकावलेह ।

तुलामथार्द्रां [1]गिरिमल्लिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत । तस्मिन् सुपूते पलसम्मितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥६६॥ पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् । प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद् दर्वीप्रलेपः स्वरसं तु यावत् ॥ ६७ ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा जनेन मण्डेन वाऽजापयसाथवापि । निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तम् ॥ ६८ ॥ कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा पित्तं तथाऽर्शांसि सशोणितानि । असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ६९ ॥

कुडेकी जडकी गीली छालको सौ पल लेकर ओखलीमें कूटलेवे । फिर उसको एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें मोचरस, पाढ, लज्जावन्ती, अतीस, नागरमोथा, वेलगिरी और धायके फूल इन औषधियोंको खूब बारीक पीसेहुए चार चार तोले प्रमाण चूर्णको डालकर तबतक मन्दमन्द अग्निसे पकावे जबतक कि वह स्वरस करछीसे चिपकने न लगे । फिर देश, काल और दोषोंका विचार-

१–तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यं तुला मता ।

कर इस अवलेहको उचित मात्रासे माँड अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करे। यह कुटजाष्टक अवलेह सर्वप्रकारके भयंकर अतिसार, संग्रहणी, नानाप्रकारके रक्तविकार, काला, सफेद, लाल, पीले और पित्तज अतिसार, बवासीर, रुधिरकी बवासीर और असाध्य रक्तप्रदररोगको भी अवश्य नष्ट करता है ॥ ६६–६९ ॥

दुग्ध-पानविधि।

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे विशेषतः।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं पेयं वा वारिसाधितम् ॥ ७० ॥

विशेषकर पुराने अतिसारमें बकरीके दूधको अतिसारनाशक औषधियोंके साथ पकाकर अथवा केवल जलके साथ पकाकर देनेसे विशेष लाभ होता है ॥ ७० ॥

शोथातीसार-चिकित्सा।

शोथघ्नीन्द्रयवाः पाठाश्रीफलातिविषाघनाः।
क्वथिताः सोषणाः पीता शोथातीसारनाशनाः ॥ ७१ ॥

पुनर्नवा, इन्द्रजौ, पाढ, बेलगिरी, अतीस और नागरमोथा इनका क्वाथ, कालीमिरचोंका चूर्ण बनाकर उसमें डालकर पान करनेसे शोथातीसार नष्ट होता है ७१

विडङ्गातिविषामुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम्।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ ७२ ॥

वायविडङ्ग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें कालीमिरचोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे शोथयुक्त अतीसार नष्ट होता है ॥ ७२ ॥

भय-शोकज अतीसार-चिकित्सा।

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्।
तयोर्वातहरी काया हर्षणाश्वासनैः क्रिया ॥ ७३ ॥

भय और शोकसे उत्पन्नहुए अतिसारोंको वातज अतिसारकी समान जानना चाहिये। अतः उक्त दोनों प्रकारके अतीसारोंमें वातनाशक चिकित्सा एवं हर्षजनक धैर्यप्रदान आदि कार्य करे ॥ ७३ ॥

पृश्निपर्ण्यादि।

पृश्निपर्णीबलाबिल्वधान्यकोत्पलनागरैः।
विडङ्गातिविषामुस्तदारुपाठाकलिङ्गकैः ॥
मरिचेन समायुक्तः शोकातीसारनाशनः ॥ ७४ ॥

पृश्निपर्णी, खिरैंटी, बेलगिरी, धनियाँ, कुमोदिनी (नीलोफर), सोंठ, वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे शोकजनित अतिसार दूर होता है ॥ ७४ ॥

रक्तातिसार-चिकित्सा।

गुडेन खादितं बिल्वं रक्तातीसारनाशनम्।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ७५ ॥

बेलकी गिरीको गुडके साथ खानेसे रक्तातीसार तथा आम, शूल, मलकी बद्धता और कुक्षिरोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ७५ ॥

शल्लकीबदरीजम्बूपियालाम्राज्र्जुनत्वचः।
पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितनाशनाः ॥ ७६ ॥

सालईकी जडकी छाल, बेरीकी छाल, जामुनकी छाल, चिरौंजीकी छाल, आमकी छाल या अर्जुनकी छाल इनमेंसे किसी एककी छालको पीसकर दूध और शहदके साथ मिलाकर पान करनेसे रक्तातिसार दूर होता है। ये प्रत्येक छाल रक्तस्रावको बन्द करनेवाली हैं ॥ ७६ ॥

पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना।
रक्तातीसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत् ॥ ७७ ॥

शहद, मिश्री और लालचन्दन इनको समानभाग लेकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे रक्तातीसार, रक्तपित्त, तृषा, दाह और प्रमेहरोग नष्ट होता है ॥ ७७ ॥

कषायो मधुना पीतस्त्वचा दाडिमवत्सकात्।
सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम् ॥ ७८ ॥

अनारकी छाल और कुडेकी छालके क्वाथको शहदके साथ पान करनेसे दुर्जय रक्तातीसार तत्काल दूर होता है ॥ ७८ ॥

जम्ब्वाम्रामलकानां तु पल्लवानथ कुट्टयेत्।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥
तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ७९ ॥

जामुन, आम और आमलेके पत्तोंको कूटकर उनका स्वरस निकालकर बकरीके दूध और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रक्तातिसार निवारण होता है ॥ ७९ ॥

बिल्वं छागपयःसिद्धं सितामोचरसान्वितम् ।
कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ८० ॥

बकरीके दूधमें बेलगिरीको पकाकर उसमें मिश्री, मोचरस और इन्द्रजौका चूर्ण डालकर पान करनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ८० ॥

ज्येष्ठाम्बुना तण्डुलीयं पीतं च ससितामधु ।
पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग जयेत् ॥
रक्तातिसारं पीत्वा वा तथा सिद्धं घृतं नरः ॥ ८१ ॥

चौलाईकी जडको चावलोंके पानीके साथ पीसकर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है। शतावरके कल्कको बकरीके दूधके साथ पान करनेसे और उसपर दूधके साथ भोजन करनेसे अथवा शतावरके क्वाथ और कल्कके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको पान करनेसे रक्तातीसार दूर होता है ॥ ८१ ॥

कुटजत्वककृतः काथो घनीभूतः सुशीतलः ।
लेहितोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद् भवेत् ॥ ८२ ॥

कुडेकी छालके क्वाथको पकाकर अवलेहकी समान गाढा बनालेवे। जब पककर शीतल होजाय तब उसमें अतीसका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे सब प्रकारका अतीसार नष्ट होता है ॥ ८२ ॥

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् ।
तथैव विपचेद् भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ ८३
यावच्चैव लसीकाभं शृतं तमुपकल्पयेत् ।
तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ॥
अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम् ॥ ८४ ॥

कुडेकी छालको ४ तोले लेकर आठगुने जलमें पकावे और चतुर्थांश जल शेष रक्खे। फिर उस क्वाथको छानकर और उसमें अनारका रस डालकर फिर पूर्वोक्त विधिसे पकावे। जब वह पाक अवलेहके समान गाढा होजाय तब उतारलेवे। पश्चात् उसको एक तोला परिमाण मट्ठेके साथ मिलाकर सेवन करनेसे मृत्युके मुखमें पतित हुआ भी रक्तातिसारवाला रोगी अवश्य आरोग्य लाभ करता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः ।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ८५ ॥

कालेतिलोंको पीसकर उसमें चौथाई भाग खाँड मिलाकर बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार तत्काल दूर होता है ॥ ८५ ॥

निष्क्वाथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः
सम्यक् पलद्वितयमम्बु चतुःशरावे ।
तत्पादशेषसलिलं खलु शोषणीय
क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ८६ ॥
प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले ।
रक्तातिसारी तं लीढ्वा नैरुज्यमधिगच्छति ॥ ८७ ॥

कुडेकी शुद्ध छालको ८ तोले लेकर ४ शराव (६४ तोले) जलमें पकावे । जब चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर उसको ८ तोले प्रमाण बकरीके दूधमें मिलाकर और ८ माशे शहद डालकर पान करनेसे रक्तातिसारवाला रोगी शीघ्रही आरोग्य लाभ करता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

वटरोहं तु संपिष्य श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा ।
तत्पिबेत् तक्रसंयुक्तमतीसाररुजापहम् ॥ ८८ ॥

बडके अंकुरोंको चावलोंके पानीके साथ खूब बारीक पीसकर मट्ठेके साथ पान करनेसे अतीसाररोग दूर होता है ॥ ८८ ॥

तण्डुलजलपिष्टाङ्कोटमूलकर्षार्द्धपानमपहरति ।
सर्वातिसारग्रहणीरोगसमूहं महाघोरम् ॥ ८९ ॥

अङ्कोट (ढेरा) वृक्षकी जडको आठ माशे लेकर चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे सब प्रकारके भयङ्कर अतीसार, संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ८९ ॥

विशल्यकरणीक्वाथश्चाथवा कुक्कुटद्रजः ।
वारयेच्छोणितस्रावं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ९० ॥

विशल्यकरणी (रकपतिया घास) का क्वाथ अथवा कुकुरौंदेका रस पान करनेही रक्तस्राव और प्रबल रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९० ॥

पीत्वा सशर्करं क्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
दाहं तृष्णां प्रमेहं च सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ९१ ॥

मिश्री, शहद और चन्दनका चूर्ण इनको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे दाह, तृषा, प्रमेह और रक्तातिसार शीघ्र दूर होता है ॥ ९१ ॥

नवनीतं मधुयुतं लिहेद्वा सितया सह ।
नागकेशरसंयुक्तं रक्तसंग्रहणं परम् ॥
मधुपादं सिताद्धांशं नवनीतं चतुर्गुणम् ॥ ९२ ॥

नैनीघीको शहदके साथ या मिश्रीके साथ किंवा नागकेशरके साथ सेवन करनेसे अथवा शहद १ भाग, मिश्री २ भाग और नैनीघी ४ भाग सबको एकत्र मिलाकर खानेसे रक्तस्राव बन्द होता है ॥ ९२ ॥

रसाञ्जनादिचूर्ण ।

रसाञ्जनं चातिविषां कुटजस्य फलत्वचम् ।
धातकीं शृङ्गबेरं च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥
क्षौद्रयुक्तं प्रणुदति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ९३ ॥

रसौंत, अतीस, इन्द्रजौ, कुडकी छाल, धायके फूल और सोंठ इनके चूर्णको समान भाग लेकर चावलोंके जलमें पीसकर शहदके साथ सेवन करनेसे प्रबल रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९३ ॥

नारायणचूर्ण ।

गुडूची वृद्धदारं च कुटजस्य फलं तथा ।
बिल्वं चातिविषा चैव भृङ्गराजं च नागरम् ॥ ९४ ॥
शक्राशनस्य चूर्णं च सर्वमेकत्र मेलयेत् ।
चूर्णमेतत्समं ग्राह्यं कुटजस्य त्वचोऽपि च ॥ ९५ ॥
गुडेन मधुना वापि लेहयेद्द्भिषजां वरः ।
शोथं रक्तमतीसारं चिरजं दुर्जयं तथा ॥ ९६ ॥
ज्वरं तृष्णां च कासं च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
मन्दानलं प्रमेहं च गुदजं च विनाशयेत् ॥
एतन्नारायणं चूर्णं श्रीनारायणभाषितम् ॥ ९७ ॥

गिलोय, विधारा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, अतीस, भाँगरा, सोंठ और भाँग इन सबके चूर्णको समान भाग लेवे और सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर भाग कुडेकी छालका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे । इस चूर्णको पुराने गुड अथवा शहदके साथ

सेवन करनेसे सूजन तथा बहुत पुराना और दुस्साध्य रक्तातिसार, ज्वर, तृषा, खाँसी, पाण्डुरोग, हलीमक, मन्दाग्नि, प्रमेह और गुदाके समस्त रोग शीघ्र नष्ट होतेहैं। इस नारायणचूर्णको श्रीनारायणने कहा है ॥ ९४-९७ ॥

गुदापाकमें विधि।

गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना।
सेकादिकं प्रशंसन्ति छागेन पयसाऽपि वा ॥
गुदभ्रंशे प्रकर्तव्या चिकित्सा तत्प्रकीर्त्तिता ॥ ९८ ॥

अतिसारके कारण गुदामें दाह अथवा पाक होनेपर पटोलपात और मुलहठीक क्वाथ अथवा बकरीके दूधसे गुदाद्वारको सिंचन करना चाहिये और गुदभ्रंशरोगमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९८ ॥

साधारणातिसार-चिकित्सा।

बिल्वादि।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः।
निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ९९ ॥

बेल और आमकी गुठलीके क्वाथमें खांड और शहद डालकर पान करनेसे वमनयुक्त अतीसार निवारण होताहै ॥ ९९ ॥

पटोलादि।

पटोलयवधन्याकक्वाथः पीतः सुशीतलः।
शर्करामधुसंयुक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ १०० ॥

परवल, जौ और धनियाँ इनके शीतल क्वाथमें मधु और खांड मिलाकर पान करनेसे वमन और अतीसाररोग नष्ट होताहै ॥ १०० ॥

प्रियंग्वादि।

प्रियंग्वञ्जनमुस्ताख्यं पाययेत्तु यथाबलम्।
तृष्णातीसारछर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १ ॥

फूलप्रियंगु, रसौंत और नागरमोथा इनके चूर्णको शहद और चावलोंके पानीके साथ मिलाकर जठराग्निके बलानुसार पान करानेसे तृषा, अतिसार, वमन आदि उपद्रव दूर होते हैं ॥ १०१ ॥

जम्ब्वादि।

जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवटशुङ्गावरोहकम्।
रसः क्वाथोऽथवा चूर्णं क्षौद्रेण सह योजितम् ॥ २ ॥

छर्दिं ज्वरमतीसारं मूर्च्छां तृष्णां च दुर्जयाम् ।
नाशयत्यचिराद्धन्ति स्रुतिं वाऽनेकहेतुकाम् ॥ ३ ॥

जामुन और आमके कोमल पत्ते, खस, बडके, अंकुर और बडकी डाढी इन सबका स्वरस, क्वाथ अथवा चूर्ण मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वमन, ज्वर, अतीसार, मूर्च्छा और दुस्तर तृषा दूर होती है । यह योग अनेक कारणोंसे उत्पन्न-हुए रक्तस्रावको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

वत्सकादि ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः ।
सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ ४ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, सुगन्धवाला और नागरमोथा इनका क्काथ आम और शूलयुक्त पुराने रक्तातिसारमें विशेष हितकारी ह ॥ १०४ ॥

नाभिप्रलेप ।

कृत्वाऽऽलवालं सुदृढं पिष्टरामलकैर्भिषक् ।
आर्द्रकस्य रसेनाथ पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं विनाशयेत् ॥ ५ ॥

वैद्य, आमलोंको पीसकर उनके द्वारा रोगीकी नाभिके चारों ओर गोलगोल थाँवलासा बनाकर उसमें अदरखके रसको भरदेवे । इससे नदीके वेगके समान भयंकर अतीसार शीघ्र दूर होता है ॥ १०५ ॥

तथा जातीफलं पिष्ट्वा नाभौ दद्यात् प्रलेपनम् ।
दुर्निवारमतीसारं वारयत्यनिवारितम् ॥ ६ ॥

जायफलको पीसकर नाभिपर प्रलेप करनेसे असाध्य अथवा कष्टसाध्य अतिसार भी दूर होता है ॥ १०६ ॥

आम्रस्य वल्कलं पिष्टं काञ्जिकेन प्रयत्नतः ।
नाभिं संलेपयेत्तेन कल्केन मतिमान् भिषक् ॥
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निवारयेत् ॥ ७ ॥

आमकी छालको काँजीमे पीसकर नाभिके चारों ओर प्रलेप करनेसे नदीके समान वेगवाला अतीसार भी नष्ट होता है ॥ १०७ ॥

प्रवाहिका-चिकित्सा ।

बालं बिल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूले सप्रवाहिके ॥ ८ ॥

वातज और शूलयुक्त प्रवाहिकारोगमें कच्चे बेलका सूखा गूदा, गुड, तिलका तैल, पीपल और सोंठ इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करना हितकारी है ॥ १०८ ॥

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः।
त्र्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ९ ॥

पीपलके कल्क या काली मिरचाके कल्कको दूधके साथ सेवन करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी प्रवाहिका तीन दिनमें शमन होती है ॥ १०९ ॥

कल्कः स्याद्बालबिल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः।
दध्नः साराम्लस्नेहाढ्यः सद्यो हन्यात् प्रवाहिकाम् ॥ ११० ॥

कच्चे बेलकी गिरीका कल्क और उसके समान तिलोंका कल्क लेकर दहीकी मलाई, खट्टा और स्नेहयुक्त करके पान करनेसे प्रवाहिकारोग शीघ्र नष्ट होता है १०

बिल्वोषणं गुडं लोध्रं तैलं लिह्यात प्रवाहणे ॥ ११ ॥

प्रवाहिका रोगीके लिये बेलगिरी कालीमिरच, गुड, लोध और तिलका तेल इन सबको समान भाग लेकर और मिलाकर सेवन करना चाहिये ॥ ११ ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निस्सारकपीडितस्तु।
सुतप्तरूप्यक्वथितेन वापि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ १२ ॥

मलाईसहित दहीके साथ शहद मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा तपाई हुई चाँदीको बुझाकर उस दूधको शीतल करके और उसमें शहद मिलाकर पान करनेसे प्रवाहिका-रोग दूर होता है ॥ १२ ॥

तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्वतां च ॥ १३ ॥

प्रवाहिका रोगके लक्षण, चिकित्सा एवं आम और पक्वलक्षण अतीसारकी समान जानने चाहिये ॥ १३ ॥

अहिफेनयोग।

अहिफेनं सुसंभृष्टं खर्परे मृदुवह्निना।
हिक्कातीसारशमनं भेषजं नास्त्यतः परम् ॥ १४ ॥

अफीमको मिट्टीके पात्रमें मन्दअग्निसे अच्छे प्रकार भूनकर उचित मात्रासे प्रयोग करनेसे हिचकी और आतिसाररोग शमन होता है ॥ १४ ॥

अहिफेनवटिका।

अहिफेनं सखर्जूरं घृष्ट्वा गुञ्जैकमात्रकम्।
रक्तस्रावमतीसारमतिवृद्धं विनाशयेत् ॥ १५ ॥

अफीम और खजूर (छुहारा) इन दोनोंको बराबर भाग लेकर एकत्र खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआ अतीसार और रक्तस्राव दूर होता है ॥ १५ ॥

जातीफलादिवटी ।

जातीफलं च खर्ज्जूरमहिफेनं तथैव च ।
समभागानि सर्वाणि नागवल्लीरसेन च ॥ ११६ ॥
वल्लमात्रा वटी कार्या देया तक्रानुपानतः ।
अतीसारं जयेद् घोरं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ११७ ॥

जायफल, खजूर (छुहारा) और अफीम इनको समानभाग लेकर पानके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । एक एक गोली मठेके साथ देनेसे भयंकर अतिसार इस प्रकार नष्ट होजाता है, जिस प्रकार अग्नि आहुतिको तत्काल भस्म कर देती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

पूर्णचन्द्रोदयरस ।

शुद्धं च तालकं लौहं गगनं च पलं पलम् ।
कर्पूरं पारदं गन्धं प्रत्येकं वटकोन्मितम् ॥ ११८ ॥
जातीकोषं मुरापत्रं शठी तालीशकेशरम् ।
व्योषं चोचं कणामूलं लवङ्गं पिचुसम्मितम् ॥ ११९ ॥

शुद्धहरिताल, लोहा और अभ्रक ये प्रत्येक चार चार तोले, कपूर, पारा और शुद्धगन्धक ये प्रत्येक एकएक तोला एवं जावित्री, कपूरकचरी, तेजपात, कचूर, तालीसपत्र, केशर, सोंठ, पीपल, मिरच, दारचीनी, पीपलामूल और लौंग ये प्रत्येक दो-दो तोले लेवे । सबको एकत्र खरल करके एक शीशीमें भरकर रख देवे॥१८॥१९॥

भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।
नानारूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ १२० ॥
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलं च परिणामजम् ।
रसायनवरश्चायं वाजीकरण उत्तमः ॥ २१ ॥

इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल गुरु और इष्टदेवका पूजन कर दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो यह अनेक प्रकारके अतिसार, सब प्रकारकी संग्रहणी, अम्लपित्त, शूल और परिणामशूलको नष्ट करता है । यह चूर्ण अतिश्रेष्ठ रसायन और उत्तम वाजीकरण औषधि है ॥ १२० ॥ १२१ ॥

बृहद्गगनसुन्दररस ।

पारदं गन्धकं चाभ्रं लौहं चापि वराटकम् ।
रूप्यं चातिविषां कर्षं समभागं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥
धान्यशुण्ठीकृतक्वाथैर्भावयेच्च पृथक् पृथक् ।
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ २३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रक, लोहा, कौडी और चाँदी इन सबकी भस्म और अतीस इन प्रत्येक औषधिको दो दो तोले लेकर धनियें और सोंठके,काथमें अलग-अलग भावना देवे । फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ २२ ॥ २३ ॥

भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।
दग्धबिल्वं गुडेनैव कुर्यात्तदनुपानकम् ॥ २४ ॥
अजादुग्धेन वा पेयं जम्बूत्वक्साधितं रसम् ।
अतीसारे ज्वरे घोरे ग्रहण्यामरुचौ तथा ॥ २५ ॥
सामे सशूले रक्ते च पिच्छास्रावे भ्रमे तथा ।
शोथे रक्तातिसारे च संग्रहग्रहणीषु च ॥ २६ ॥

इस रसकी प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गुरु और इष्टदेवका पूजन कर एक एक गोली भक्षण करे और ऊपरसे भुनेहुए बेलको गुडके साथ अथवा बकरीके दूधको किंवा जामुनकी छालके काथको अनुपानरूपसे सेवन करे । इसके सेवनसे अतिसार, ज्वर, ग्रहणी, अरुचि, आम, शूल, रक्तस्राव, भ्रम, सूजन, रक्तातिसार और प्रबल ग्रहणी रोग नष्ट होता है ॥ २४-२६ ॥

लोकनाथरस ।

भस्म सूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात् ।
क्षिप्त्वा वराटिकागर्भे टङ्कणेन निरुध्य च ॥ २७ ॥
भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
लोकनाथरसो नाम क्षौद्रगुञ्जाचतुष्टयम् ॥ २८ ॥
नागरातिविषामुस्तदेवदारुवचान्वितम् ।
कषायमनुपानं तु सर्वातीसारनाशनः ॥ २९ ॥

पारेकी भस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग लेकर दोनोंको एक कौडीमें भरकर उसके मुखको सुहागेसे बन्द करके मूषायंत्रमें रखकर पुटपाकविधिसे पकावे । जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब कौडीको निकालकर पीसलेवे ।

पश्चात् इस लोकनाथनामक रसको चार चार रत्तीकी मात्रासे शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु और वच इनके क्वाथको पीवे तो इससे सब प्रकारके अतिसार नष्ट होते हैं ॥ २७-२९ ॥

बृहच्चिन्तामणिरस ।

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्षिकम् ।
चूर्णयेद्विषकर्षार्द्धं विषार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १३० ॥
मर्दयेत् खल्लमध्ये तु चाम्लेन गोलकीकृतम् ।
गर्तं षडङ्गुलं कुर्यात् सर्वतो वर्तुलं शुभम् ॥ ३१ ॥
नागवल्ल्याः क्षिपेत् पत्रमादौ पात्रे च गोलकम् ।
आच्छाद्य तच्च पत्रेण रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ ३२ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सपत्रं च विशेषतः ।
कर्षार्द्धं मरिचं दत्त्वा कर्षार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ ३३ ॥
गुञ्जामितां वटीं कुर्याच्चिन्तामणिरसो महान् ।
अतीसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे ॥
अनुपानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः ॥ ३४ ॥

शुद्धपारा, ताँबेकी भस्म और शुद्धगन्धक यह प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष शुद्ध मीठातेलिया ८ माशे और इमलींका गूदा ३ माशे लेवे । इन सबको एकत्र खरल करके गोलासा बनालेवे । फिर छः अंगुल गहरे और चारोंओरसे गोल ऐसे एक उत्तम पात्रको लेकर उसमें एक नागरवेलका पान रक्खे और पानके ऊपर उक्त गोलेको रखकर दूसरे पानसे उसे ढकदेवे । फिर अच्छेप्रकारसे उसके मुखको बन्द करके गजपुटमें रखकर पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर पांनोंसहित उसको पीसलेवे । पश्चात् उसमें कालीमिरच और इमलीका आठ आठ माशे चूर्ण डालकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको त्रिदोषज अतिसार और संग्रहणीरोगमें यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करना चाहिये । इसको बृहच्चिन्तामणिरस कहते हैं ॥ १३०-३४ ॥

भुवनेश्वर रस ।

सैन्धवं त्रिफलां चैव यमानीं बिल्वपेशिकाम् ।
गृहधूमं गृहीत्वा च प्रत्येकं समभागिकम् ॥ ३५ ॥

जलेन मर्दयित्वा तु माषमात्रां वटीं चरेत्।
खादेत्तोयानुपानेन सर्वातीसारशान्तये ॥ ३६ ॥

सैंधानमक, हरड, आमला, बहेडा, अजवायन, बेलगिरी और घरका धुआँ इन सबको समानभाग लेकर जलके साथ खरलकर एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एकएक गोली जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका अतीसार शान्त होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

जातीफलरस।

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम्।
कुटजस्य फलं चैव धूर्त्तबीजानि टङ्कणम् ॥ ३७ ॥
व्योषं मुस्ताऽभया चैव चूतबीजं तथैव च।
बिल्वकं सर्ज्जबीजं च दाडिमीफलवल्कलम् ॥ ३८ ॥
एतानि समभागानि निक्षिपेत् खल्लमध्यतः।
विजयास्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ३९ ॥
गुञ्जाफलप्रमाणां तु वटिकां कारयेद् भिषक्।
एकां कुटजमूलत्वक्कषायेण प्रयोजयेत् ॥ १४० ॥

शुद्धपारा, अभ्रक, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, जायफल, इन्द्रजौ, धतूरेके बीज सुहागा, सोंठ पीपल, मिरच, नागरमोथा, हरड, आमकी गुठली, बेलगिरी, शालके बीज, अनारदाने और अनारका बक्कल इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर भाँगके रसमें खूब बारीक खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एकएक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल कुडेकी जडकी छालके क्वाथके साथ सेवन करे ॥ ३७–१४० ॥

आमातिसारं हरति कुरुते वह्निदीपनम्।
मधुना बिल्वशुण्ठ्या च रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ ४१ ॥
शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ।
जातीफलरसो ह्येष ग्रहणीगदहारकः ॥ ४२ ॥

यह रस आमातिसारको नष्ट करता है और जठराग्निको दीपन करता है। इस रसको शहद और बेलगिरीके साथ सेवन करनेसे रक्तजग्रहणी दूर होती है। सोंठ और धनियेके क्वाथके साथ सेवन करनेसे अतिसार एवं जायफलके क्वाथके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी रोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अभयनृसिंहरस ।

दरदं च विषं व्योषं जीरकं टङ्कणं समम् ।
गन्धकं चाभ्रकं चैव भागैकं शुद्धसूतकम् ॥ ४३ ॥
आफूकं सर्वतुल्यं स्यान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ।
एकैकं भक्षयेच्चानु जीरकं मधुना सह ॥ ४४ ॥
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ।
सर्वरूपमतीसारं संग्रहग्रहणीं जयेत् ।
रसोऽभयनृसिंहोऽयमतीसारे सुपूजितः ॥ ४५ ॥

सिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, पीपल, मिरच, जीरा, सुहागा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक और शुद्धपारा ये सब समान भाग और अफीम सबके बराबर भाग लेवे। फिर सबको नींबूके रसमें खरल कर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन १-१ गोली शहदके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज अतिसार, ज्वरसहित व ज्वररहित अतिसार और संग्रहणीरोग नष्ट होता है । यह अभयनृसिंहनामक रस अतिसाररोगकी परमोत्तम औषधि है । ॥ ४३-४५ ॥

आनन्दभैरवरस ।

दरदं मरिचं टङ्कममृतं मागधी समम् ।
श्लक्ष्णपिष्टं तु गुञ्जैकं रसमानन्दभैरवम् ॥ ४६ ॥
लेहयेन्मधुना चानु कुटजस्य फलत्वचः ।
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारजित् ॥ ४७ ॥
दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं दध्याज तक्रमेव च
पिपासायां जलं देयं विजया च हिता निशि ॥ ४८ ॥

सिंगरफ, मिरच, सुहागा, शुद्धमीठा तेलिया और पीपल इनको समान भाग लेकर खूब बारीक पीसकर जलमें खरलकरके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस आनन्दभैरव नामक रसकी एक एक गोली मधुके साथ सेवन करें, और ऊपरसे इन्द्रजौ तथा कुडेकी जड़की छालके चूर्णको एकएक तोला परिमाण लेकर शहदके साथ सेवन करे । इसके सेवन करनेसे त्रिदोषज अतिसार नष्ट होता है । इसपर बकरीके दूध, दही और मट्ठेके साथ भातका पथ्य देवे । प्यास लगनेपर जल पान करना और रात्रिमें भँगको सेवन कराना उपयोगी है ॥ ४६-४८ ॥

कर्पूररस।

हिङ्गुल चाहिफेनं च मुस्तकेन्द्रयवं तथा।
जातीफलं च कर्पूरं सर्वं संमर्द्य यत्नतः॥
जलेन वटिका कार्या द्विगुञ्जापरिमाणतः॥ ४९॥
ज्वरातिसारिणे चैव तथाऽतीसाररोगिणे।
ग्रहणीषट्प्रकारे च रक्तातीसार उल्बणे॥ १५०॥

हिंगुल, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल और कपूर इन सबको समान भाग लेकर जलमें उत्तमप्रकारसे खरलकरके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह कर्पूररस ज्वरातिसारवाले तथा साधारण अतिसारवाले रोगीके लिये एवं छः प्रकारकी संग्रहणी और प्रबलरक्तातिसारमें हितकारी है॥ ४९॥ १५०॥

बब्बूराद्यरिष्ट।

तुलाद्वयं च बब्बूरं चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य च तुलां क्षिपेत्॥ ५१॥
धातकीं षोडशपलां कृष्णां द्विपलिकां तथा।
जातीफलानि कक्कोलं त्वगेलापत्रकेशरम्॥ ५२॥
लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत्।
मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूरारिष्टको जयेत्।
क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहश्वासकासकान्॥ ५३॥

बबूलकी छालको २०० पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे। जब पककर एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर शीतल होजानेपर उसमें १०० पल गुड़ डाले एवं धायके फूल ६४ तोले, पीपल ८ तोले तथा जायफल, शीतलचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग और कालीमिरच इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालदेवे। सबको एक मिट्टीके पात्रमें भरकर और उसके मुँहको बन्द करके एक महीनेतक रखा रहने देवे तो यह बब्बूराद्यरिष्ट सिद्ध होता है। यह अरिष्ट क्षय, कुष्ठ, सर्वप्रकारके अतिसार प्रमेह, श्वास, कास आदि व्याधियोंको नष्ट करता है॥ ५१-५३॥

कुटजारिष्ट।

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्द्धतुलां तथा।
मधूकपुष्पकाश्मर्योर्भागान् दशपलोन्मितान्॥ ५४॥

चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणं चैवावशेषितम् ।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ ५५ ॥
मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः ।
ज्वरान् प्रशमयेत्सर्वान् कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम् ।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ५६ ॥

कुडेकी जड़की छाल सौ पल, दाख ५० पल, महुएके फूल १० पल और कुम्भेरकी छाल १० पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे । जब पककर एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्काथमें धायके फूल एक सेर और गुड़ सौ पल डालकर एक उत्तम मृत्तिकाके पात्रमें भरकर और उसके मुँहको बन्द करके एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे । फिर एक महीने पीछे इसको निकालकर छानलेवे । इसको कुटजारिष्ट कहते हैं । यह अरिष्ट यथोचित मात्रासे सेवन करनेपर सर्व प्रकारके ज्वर दुस्साध्य संग्रहणी और प्रबल रक्तातिसारको शीघ्र नष्ट करता है और अग्निको दीपन करता है ॥ ५४-५६ ॥

आहिफेनासव ।

तुलां मधुकमद्यस्य शुभे भाण्डे निधापयेत ।
फणिफेनस्य कुडवं मुस्तकं पलसम्मितम् ॥ ५७ ॥
जातीफलं चेन्द्रयवं तथैलां तत्र दापयेत् ।
मासमात्रं स्थितो भाण्डे यत्नतः परिरक्षयेत् ।
हन्त्यतीसारमत्युग्रं विषूचीमपि दारुणाम् ॥ ५८ ॥

महुएकी मद्य सौ पल, अफीम १६ तोले एवं नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ और इलायची ये प्रत्येक ४-४ तोले लेवे । सबको एकत्र पीसकर एक उत्तम मिट्टीके बरतनमें भरकर और उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द करके एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे । तत्पश्चात् उसको छानकर उचित मात्रासे सेवन करे तो यह आहिफेनासव अत्यन्त भयंकर अतीसार और विषूचिकाको शमन करता है ॥

ग्रहण्यां ये रसा वाच्यास्तेऽतीसारे नियोजिताः ।
हन्युः सर्वमतीसारं शिवस्याज्ञा विशेषतः ॥ ५९ ॥

ग्रहणीरोगमें जो रस कहे जायंगे उन सबको विशेषकर अतिसाररोगमें भी प्रयोग करना चाहिये उनसे सर्व प्रकारके अतिसार नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

अतीसारमें वर्ज्जनीय।

स्नानाभ्यङ्गावगाहांश्च गुरुस्निग्धातिभोजनम्।
व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्ज्जयेत् ॥ १६० ॥

अतिसारवाले रोगीको स्नान, तैलमर्दन, जलमें घुसकर स्नान करना एवं गुरुपाकी और स्निग्ध पदार्थोंका भोजन, अधिक भोजन, व्यायाम और अग्निका ताप यह सब तत्काल त्यागदेने चाहिये ॥ १६० ॥

अतीसारमें पथ्य।

वमनं लङ्घनं निद्रा पुराणाः शालिषष्टिकाः।
विलेपी लाजमण्डश्च मसूरतुवरीरसः ॥ ६१ ॥
शशैणलावहरिणकपिञ्जलभवा रसाः।
सर्वे क्षुद्रझषाः शृङ्गी खल्लिशो मधुरालिका ॥ ६२ ॥
तैलं छागघृतक्षीरे दधि तक्रं गवामपि
दधिजं वा पयोजं वा नवनीतं गवाजयोः ॥ ६३ ॥
नवं रम्भापुष्पफलं क्षौद्रं जम्बूफलानि च।
भव्यं महार्द्रकं विश्वं शालूकं च विकङ्कतम् ॥ ६४ ॥
कपित्थं वकुलं बिल्वं तिन्दुकं दाडिमद्वयम्।
तालकं कञ्चटदलं चाङ्गेरी विजयाऽरुणा।
अन्नपानानि सर्वाणि दीपनानि लघूनि च ॥ ६५ ॥

वमन, लंघन, पुराने शालिधानोंके चावल और साँठीके चावल, विलेपी, खीलोंका माँड, मसूर और अरहरका यूष एवं खरगोश, कालेहिरन, लवा, हिरन और कपिञ्जल इनके मांसका रस, सर्व प्रकारकी छोटी मछलियाँ, शृंगीमछली, खलिश मछली, क्षुद्रमछली, गाय बकरीका घी, दूध, दही, मठा, दहीका निकाला हुआ या दूधका निकाला हुआ नैनीघी या मक्खन, केलेके नवीन फल-फूल, शहद, जामुन, लिसोडा (किसीके मतमें कमरख), अदरख, सोंठ, भसीडा, कण्टाई, कैथ, मौलसिरीके फूल, बेलगिरी, तेंदु, खट्टे-मीठे दोनों प्रकारके अनार, ताडके अनार, ताडके फल, जल चौलाई, नोनियाका शाक, भाँग, रक्तवर्णकी चौलाईका शाक एवं सर्व प्रकारके हलके और अग्निप्रदीपक अन्न पान अतिसार रोगमें हितकर हैं ॥ ६१-६५ ॥

अतीसारमें अपथ्य।

स्वेदोऽञ्जनं रुधिरमोक्षणमम्बुपानं
स्नानं व्यवायमपि जागरधूमनस्यम्।
अभ्यञ्जनं सकलवेगविधारणं च
रूक्षाण्यसात्म्यमशनं च विरुद्धमन्नम्॥ ६६॥
गोधूममाषयववास्तुककाकमाची-
निष्पावकन्दमधुशिग्रुरसालपूगम्।
कूष्माण्डतुम्बिबदरं गुरु चान्नपानं
ताम्बूलमिक्षुगुडमद्यमुपोदिका च॥ ६७॥
द्राक्षाऽम्लवेतसफलं लशुनं च धात्री
दुष्टाम्बु मस्तु गुरुवारि च नारिकेलम्।
सस्नेहनं मृगमदोऽखिलपत्रशाकं
क्षारः सराणि सकलानि पुनर्नवा च॥ ६८॥
एर्वारुकं लवणमम्लमपि प्रकोपि
वर्गोऽतिसारगदपीडितमानवेषु॥ ६९॥

स्वेददेना, अंजन लगाना, रुधिर निकलवाना (फस्तखुलवाना), अधिक जलपान, स्नान, मैथुन, रात्रि जागरण, धूम्रपान, नस्य ग्रहण, तैलादिकी मालिश, मल-मूत्रादिके वेगोंको रोकना एवं रूखे, स्वभाव विरुद्ध, देश-काल व संयोग विरुद्ध पदार्थोंका भोजन, गेहूँ, उडद, जा, वथुआ, मकोय, सेमरकी फली, सहिंजनेकी फली, आम, सुपारी, पेठा, तोम्बी (लौकी), बेर और भारी अन्न पान, ताम्बूल, ईख, गुड, मदिरा, पोईका शाक, दाख, अमलवेत, लहसुन, सर्व प्रकारके कन्द शाक, आमला, दूषितजल, काँजी, नारियल, स्नेहद्रव्य, कस्तूरी, सब प्रकारके पत्तोंवाले शाक और पुनर्नवा, ककडी, खारवाले और सारक (दस्तावर) पदार्थ, नमकीन, खट्टेपदार्थ ये सब पदार्थ अतीसारमें अहितकारी हैं॥ ६६-६९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां अतिसारचिकित्सा।

ग्रहणीरोगकी चिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतिसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत् ॥ १ ॥

संग्रहणीरोगमें अजीर्णरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये और अतिसाररोगमें कही हुई विधिके द्वारा अपक्व दोषोंको पकाना चाहिये ॥ १ ॥

शरीरानुगते सामे रसे लंघनपाचनम् ।
विशुद्धामाशयायास्मै पंचकोलादिभिर्युतम् ॥
दद्यात्पेयादि लघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपकान् ॥ २ ॥

शररिमें अपक्वरसके संचित होनेपर रोगीको लंघन कराके दोषोंको पचावे । फिर वमन और विरेचनादिके द्वारा आमाशयको शुद्धकरके पंचकोलआदिसे सिद्ध किये हुए पेयादि हल्के अन्न भोजनके लिये और अग्निप्रदीपक औषधियें सेवन करावे ॥२॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ॥ ३ ॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम् ।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥ ४ ॥

संग्रहणीरोगवाले मनुष्योंको तक्र (मट्ठा) लघुपाकी (हल्का) होनेसे अग्निप्रदीपक, मलरोधक और पथ्य है । एवं मधुरपाकी होनेसे पित्तको कुपित नहीं करता तथा कषैला, उष्ण, विकाशी और रूक्ष होनेसे कफजन्यरोगोंमें हितकारी है और मधुर, अम्ल तथा सान्द्र (गाढा) होनेसे वातरोगोंमें उपयोगी है । तत्कालका प्रस्तुतकिया हुआ मट्ठा विशेष गुणकारी और दाहनाशक है ॥ ३ ॥ ४ ॥

शुंठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम् ।
मन्दानलत्वे सततामतापामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ ५ ॥

मन्दाग्नि, आमातिसार, आमाविबन्ध और आमयुक्तग्रहणीमें सोंठ, नागरमोथा, अतीस और गिलोय इनको समानभाग लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर पान करना चाहिये ॥ ५ ॥

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम् ।
बलाद्विपर्णीबिल्वं च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ ६ ॥

धनियाँ, अतीस, सुगन्धवाला, अजवायन, नागरमोथा, सोंठ, खिरैंटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, और बेलगिरी इनका क्काथ अग्निको दीपन करनेके लिये एवं दोषोंको पचानेके लिये देना चाहिये ॥ ६ ॥

श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ।
ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा तु शीलितो जयति ॥ ७ ॥

कच्चे बेलके कल्क और सोंठके चूर्णके साथ गुड मिलाकर सेवन करनेसे और ऊपरसे तक्र पान करनेसे अत्यन्त प्रबल ग्रहणीरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ७ ॥

नागराद्यचूर्ण ।

नागरातिविषामुस्तं धातकीं सरसाञ्जनाम् ।
वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥ ८ ॥
पिबेत् समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ ९ ॥
अर्शांस्यथ गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।
नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम ॥ १० ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसौंत, कुडेकी छाल, इन्द्रजी, बेलगिरी, पाढ और कुटकी इन सबके समानभाग मिश्रित चूर्णको शहद और चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज संग्रहणी, रक्तज बवासीर, गुदशूल और प्रवाहिकरोग दूर होता है । यह नागराद्यचूर्ण कृष्णात्रेय करके पूजित है ॥ ८–१० ॥

पाठाद्यचूर्ण ।

पाठाबिल्वानलव्योषजम्बुदाडिमधातकी ।
कटुकातिविषामुस्तादार्वीभूनिम्बवत्सकैः ॥ ११ ॥
सर्वैरेतैः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलाम्बुना ।
सक्षौद्रं च पिबेच्छर्दिज्वरातीसारशूलवान् ॥
तृड्दाहग्रहणीदोषारोचकानलसादजित् ॥ १२ ॥

---

१ "शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना । केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभावनाम् ॥"
तण्डुलोदककी विधि–शीतकषायके मानके अनुसार तण्डुलोदककी कल्पना करनी चाहिये । कोई ऐसा कहते हैं कि, एक भाग कुटेहुए चावलोंको ८ भाग जलमें रात्रिकोभिगोदेना चाहिये फिर उसको प्रातःकाल छानकर काममें लाना चाहियें ।

पाढ, बेलगिरी, चीतेकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच, जामुनकी छाल, अनारके वक्कल, धायके फूल, कुटकी, अतीस, नागरमोथा, दारुहल्दी, चिरायता और इन्द्रजौ इन सबके चूर्णको समानभाग और सम्पूर्ण चूर्णकी समान कुडेकी जडकी छालका चूर्ण सबको एकत्र मिलाकर चावलोंके जल और मधुके साथ पान करनेसे वमन, ज्वरातीसार, शूल, तृषा, दाह, संग्रहणी, अरुचि, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

कपित्थाष्टकचूर्ण।

यमानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः।
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्च्चलैः समैः ॥ १३ ॥
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमतिन्दुकैः।
त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ १४ ॥
चूर्णोऽतीसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान्।
कासश्वासाग्निसादार्शःपीनसारोचकाञ्जयेत् ॥ १५ ॥

अजवायन, पीपलामूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, मिरच, लालचीता, सुगन्धवाला, कालाजीरा, धनियाँ और कालानमक इन सब औषधियोंका चूर्ण एक एक भाग एवं तिन्तिडीक, धायके फूल, पीपल, बेलगिरी अनारदाने और तेंदु ये प्रत्येक तीन तीन भाग, मिश्री ६ भाग और कैथका गूदा ८ भाग लेवे। सबको एकत्र मिलाकर इस चूर्णको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो अतीसार संग्रहणी, क्षय, गुल्म, गलेके रोग, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, बवासीर, पीनस और अरुचि ये सब रोग दूर होते हैं ॥ १३–१५ ॥

स्वल्प–गङ्गाधरचूर्ण।

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवत्सकैः।
बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयवबालकैः ॥ १६ ॥
आम्रबीजं चातिविषा लज्जा चैभिः सुचूर्णितम्।
क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्यां जयेत्पीत्वा प्रवाहिकाम् ॥ १७ ॥
सर्वातिसारशमनं सर्वशूलनिषूदनम्।
संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकातङ्कमेव च ॥
एतद्गङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगावरोधनम् ॥ १८ ॥

नागरमोथा, सैंधानमक, सोंठ, धायके फूल, लोध, कुडेकी छाल, बेलगिरी, मोचरस, पाढ, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, आमकी गुठलीकी मींग, अतीस और लज्जावन्ती इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णको यथोचित मात्रासे शहद और चावलोंके जलके साथ पान करनेसे प्रवाहिका रोग दूर होता है। यह गंगाधरचूर्ण सर्वप्रकारके अतिसार, समस्त शूल, संग्रहणी और प्रसूताके सम्पूर्ण रोगोंको दूर करताहै ॥१६-१८॥

मध्यम गङ्गाधरचूर्ण ।

बिल्वं मोचरसं पाठा धातकी धान्यमेव च ।
ह्रीबेरं नागरं मुस्तं तथैवातिविषा समम् ॥ १९ ॥
अहिफेनं लोध्रकं च दाडिमं कुटजं तथा ।
पारदं गन्धकं चैव समभागं विचूर्णयेत् ॥ २० ॥
तक्रेण खादयेत प्रातश्चूर्णं गंगाधरं महत् ।
ज्वरमष्टविधं हन्यादतीसारं सुदुस्तरम् ॥
ग्रहणीं विविधां चैव कोष्ठव्याधिहरं परम् ॥ २१ ॥

बेलगिरी, मोचरस, पाढ, धायके फूल, धनियाँ, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, अतीस, अफीम, लोध, अनारदाना, कुडेकी छाल, शुद्धपारा और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेवे । प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे । फिर सब औषधियोंको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करके उसमें उक्त कज्जलीको खरल करलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल तीनतीन माशे चूर्णको मट्ठेके साथ सेवन करे तो यह मध्यम गंगाधरचूर्ण आठ प्रकारके ज्वर, दारुण अतिसार, अनेक प्रकारकी संग्रहणी और अत्यन्तप्रबल कुष्ठ इन सब व्याधियोंको हरता है ॥ १९-२१ ॥

बृहद्गङ्गाधरचूर्ण ।

बिल्वं शृङ्गाटकदलं दाडिमं दलमेव च ।
समुस्ताऽतिविषा चैव सर्जश्वेतं च धातकी ॥ २२ ॥
मरिचं पिप्पली शुण्ठी दार्वी भूनिम्बनिम्बकम् ।
जम्बू रसाञ्जनं चैव कुटजस्य फलं तथा ॥ २३ ॥
पाठा समङ्गा ह्रीबेरं शाल्मलीवेष्टमेव च ।
शक्राशनं भृङ्गराजचूर्णं देयं समं समम् ॥ २४ ॥

कुटजस्य त्वचश्चूर्णं सर्वचूर्णसमं मतम् ।
एतद्गङ्गाधरं नाम बृहच्चूर्णं महागुणम् ॥ २५ ॥

बेलगिरी, सिंघाडेके पत्ते, अनारके कोमल पत्ते, नागरमोथा, अतीस, राल, धायके फूल, मिरच, पीपल, सोंठ, दारुहल्दी, चिरायता, नीमकी छाल, जामुनकी छाल, रसौंत, इन्द्रजौ, पाढ, लज्जावंती, सुगन्धवाला, मोचरस, भाँग और भांगरा इन सबका चूर्ण समानभाग और समस्त चूर्णकी बराबर कुडेकी छालका चूर्ण लेवे। सबको एकत्र बारीक पीसकर कपडछान करलेवे। इसको प्रतिदिन उचित मात्रासे बकरीके दूध या मांड अथवा शहदके साथ मिलाकर सेवन करे। यह बृहद्गंगाधरनामवाला चूर्ण विशेष गुणकारी है ॥ २२-२५ ॥

नानावर्णमतीसारं चिरजं बहुरूपिणम् ।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति तृष्णां कासं च दुर्जयम् ॥ २६ ॥
ज्वरं च विविधं हन्ति शोथं चैव सुदारुणम् ।
अरुचिं पाण्डुरोगं च हन्यादेव न संशयः ॥
छागीदुग्धेन मण्डेन मधुना वाथ लेहयेत् ॥ २७ ॥

यह चूर्ण विविधप्रकारके, बहुतदिनोंके पुराने और त्रिदोषज अतिसार, दुःसाध्य ग्रहणी, तृषा, प्रबल खाँसी, अनेक प्रकारके ज्वर, दारुण शोथ, अरुचि, पाण्डुरोग आदि व्याधियोंको निस्सन्देह नष्ट करनेवालाहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

वृद्धगङ्गाधरचूर्ण ।

मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः ।
बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥ २८ ॥
आम्रबीजसमङ्गातिविषायुक्तैश्च चूर्णितैः ।
मधुतण्डुलपानीयं पीतं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ २९ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं हन्ति वेगतः ।
वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं रुन्ध्याद्गीर्वाणवाहिनीम् ॥ ३० ॥

नागरमोथा, अरलूकी छाल, सोंठ, धायके फल, लोध, सुगन्धवाला, बेलगिरी, मोचरस, पाढ, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, आमकी गुठलीकी मींग, लज्जावंती और अतीस इन सबके समान भाग मिश्रित चूर्णको शहद और चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे प्रवाहिका और सर्वप्रकारके अतीसार नष्ट होते हैं। यह वृद्धगंगाधर-चूर्ण गङ्गाके समान वेगवाली संग्रहणीको तत्काल दूर करताहै ॥

स्वल्पलवङ्गाद्यचूर्ण ।

लवङ्गातिविषामुस्तं बिल्वं पाठा च शाल्मली ।
जीरकं धातकीपुष्पं लोध्रेन्द्रयवबालकम् ॥ ३१ ॥
धान्यं सर्ज्जरसं शृङ्गी पिप्पली विश्वभेषजम् ।
समङ्गा यावशूकं च सैन्धवं सरसाञ्जनम् ॥ ३२ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शमयेदग्निमान्द्यं च संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ३ ॥
नानावर्णमतीसारं सशोथां पाण्डुकामलाम् ।
इदमष्ठीलिकां हन्ति कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३४ ॥

लौंग, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, पाढ, सेमलकी छाल, जीरा, धायके फूल, लोध, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, धनियाँ, राल, काकडासिंगी, पीपल, सोंठ, लज्जावन्ती, जवाखार, सैंधानमक और रसौंत इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे। यह चूर्ण मन्दाग्नि, संग्रहणी अनेक कवर्णवाला और शोथयुक्त अतिसार, पाण्डु, कामला, अष्ठीलिका, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन और अनेकप्रकारके रोगोंको उसी प्रकार तत्काल नष्ट करता है जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्क्षण दूर कर देता है ॥ ३१–३४ ॥

बृहल्लवङ्गाद्यचूर्ण ।

लवङ्गातिविषामुस्तं पिप्पली मरिचानि च ।
सैन्धवं हबुषा धान्यं कट्फलं पुष्करं तथा ॥ ३५ ॥
जातीकोषफलाजाजीसौवर्च्चलरसाञ्जनम् ।
धातकी मोचकं पाठा पत्र तालीशकेशरम् ॥ ३६ ॥
चित्रकं च विडं चैव तुम्बुरुर्बिल्वमेव च ।
त्वगेलापिप्पलीमूलमजमोदा यमानिका ॥ ३७ ॥
समङ्गा वत्सकं शुण्ठी दाडिमं यावशूकजम् ।
निम्बं सर्ज्जरसं क्षारं सामुद्रं टङ्कणं तथा ॥ ३८ ॥
ह्रीबेरं कुटजं चैव जम्ब्वाम्रं कटुरोहिणी ।
अभ्रकं पुटितं लौहं शुद्धगन्धकपारदम् ॥ ३९ ॥

एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
मधुना वा लिहेच्चूर्णं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ४० ॥
सर्वदोषहरं चैव ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम्।
वातिकीं पैत्तिकीं चैव श्लैष्मिकीं सान्निपातिकीम् ॥४१॥

लौंग, अतीस, नागरमोथा, पीपल, मिरच, सैंधानमक, हाऊबेर, धनियाँ, कायफल, पुहकरमूल, जावित्री, जायफल, कालाजीरा, कालानमक, रसौंत, धायके फूल, मोचरस, पाढ, तेजपात, तालीसपत्र, नागकेशर, चीतेकी जड, विरियासंचरनमक, तुम्बुरु, बेलगिरी, दालचीनी, इलायची, पीपलामूल, अजमोद, अजवायन, लज्जावन्ती, इन्द्रजौ, सोंठ, अनारका बक्कल, जवाखार, नीमकी छाल, राल, सज्जी, समुद्रफेन, सुहागा, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल, जामुनकी छाल, आमका छाल, कुटकी, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म शुद्ध गन्धग और शुद्ध पारा इन सबके समान भाग लेवे प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बनावे ।फिर सबको एकत्र खरल करके बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको शहद अथवा चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके रोग, वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज संग्रहणी नष्ट होती है ॥ ३९-४१ ॥

पक्कापक्कमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्।
कृष्णारुणं च पीतं च मांसधावनसन्निभम् ॥ ४२ ॥
ज्वरारोचकमन्दाग्निं कासं श्वासं वमिं तथा।
अम्लपित्तं तथा हिक्कां प्रमेहं च हलीमकम् ॥ ४३ ॥
पाण्डुरोगं च विष्टम्भमर्शांसि विविधानि च।
प्लीहगुल्मोदरानाहशोथातीसारपीनसान् ॥ ४४ ॥
आमवातं तथाऽजीर्णं संग्रहग्रहणीं जयेत्।
उदरं प्रदरं चैव लवङ्गाद्यमिदं शुभम् ॥ ४५ ॥

एवं पक्वातिसार, आमातिसार, अनेकवर्णका पीडायुक्त काला, लाल, पीला अथवा मांसके धोवनकी समान अतिसार, ज्वर, अरुचि, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिचकी, प्रमेह, हलीमक, पाण्डुरोग, विबन्ध, अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अफारा, शोथयुक्त अतीसार, पीनस, आमवात, अजीर्ण, दारुण संग्रहणी, उदरविकार और प्रदररोग इन सब व्याधियोंको यह लवंगाद्य चूर्ण तत्काल नष्ट करता है ॥ ४२-४५ ॥

महालवङ्गाद्यचूर्ण ।

लवङ्गं जीरकं कौन्ती सैन्धवं त्रिसुगन्धिकम् ।
अजमोदा यमानी च मुस्तकं सकटुत्रयम् ॥ ४६ ॥
त्रिफला शतपुष्पा च पाठा भूनिम्बगोक्षुरम् ।
जातीकोषफले दार्वी नलदं चन्दनं मुरा ॥ ४७ ॥
शठी मधुरिका मेथी टङ्कणं कृष्णजीरकम् ।
क्षारद्वयं बालकं च बिल्वं पौष्करकं तथा ॥ ४८ ॥
चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं सधनीयकम् ।
रसाभ्रगन्धकं लोहं समं सर्वं विचूर्णितम् ॥ ४९ ॥

लौंग, जीरा, रेणुका, सेंधानमक, दालचीनी, तेजपात, इलायची, अजमोद, अजवायन, नागरमोथा, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, सोया, पाढ, चिरायता, गोखुरू, जावित्री, जायफल, दारुहल्दी, खस, रक्तचन्दन, मुरामांसी, कचूर, सोंफ, मेथी, सुहागा, कालजीरा जवाखार, सज्जी, सुगन्धवाला, बेलगिरी, पुहकरमूल, चीतेकी जड, पीपलामूल, वायविडङ्ग, धनियाँ, शुद्धपारा, अभ्रक, शुद्ध गन्धक और लोहेकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे ॥ ४६-४९ ॥

उष्णोदकानुपानेन मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ।
शीततोयानुपानैर्वा बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ५० ॥
आमातिसारं ग्रहणीं चिरकालोत्थितामपि ।
शूलं विष्टम्भमानाहं विषूचीं शोथकामले ॥ ५१ ॥
हलीमकं पाण्डुरोगं हन्ति कासं विशेषतः ।
लवङ्गाद्यं महच्चूर्णं शर्करासहितं पिबेत ॥ ५२ ॥
आध्मानं शमयेच्छीघ्रं लवंगस्यानुपानतः ।
अश्विभ्यां निर्म्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥ ५३ ॥

इस चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे अग्नि अत्यन्त दीपन होती है और दोषोंके बलाबलको विचारकर शीतलजलके साथ पान करनेसे आमयुक्त अतिसार, पुरानी संग्रहणी, शूल, विबन्ध, आनाह, विषूचिका, सूजन, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग और विशेषकर खाँसी ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । यह महालवंगाद्यचूर्ण मिश्रीके साथ सेवन करनेसे और इसपर लौंगके जलका अनुपान करनेसे अफारेको

तत्काल शमन करता है। इस चूर्णको सांसारिकजीवोंके ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ९०-९३ ॥

स्वल्पनायिकाचूर्ण।

त्रिशाणं पञ्चलवणं प्रत्येकं त्र्यूषणं पिचु।
गन्धकान्माषका अष्टौ चत्वारो माषका रसात् ॥ ९४ ॥
इन्द्राशनं पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते।
खादेन्मिश्रीकृताच्छाणमनुपेयं च काञ्जिकम् ॥ ९५ ॥
माषकादिक्रमेणैवमनुयोज्यं रसायनम्।
अत्यन्ताग्निकरं चैतद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ९६ ॥
प्रसिद्धा योगिनी नारी तया प्रोक्तं रसायनम्।
ग्रहणीनाशनं ह्येतदग्निसन्दीपनं परम् ॥ ९७ ॥

पाँचों नमक प्रत्येक एकएक तोला, सोंठ, पीपल, मिरच ये प्रत्येक दो दो तोले, शुद्ध गन्धक ८ माशे, शुद्धपारा ४ माशे मिलाकर और भाँग पांच तोले लेवे। प्रथम गन्धककी कज्जली बनाकर फिर सबको एकत्र खूब बारीक पीसलेवे। इस कांजीका अनुपान करे तो इससे अग्निकी अत्यन्त वृद्धि होती है और संग्रहणी रोग दूर होता है। इसपर यथेच्छ भोजन करना चाहिये। इस रसायनका एक प्रसिद्ध योगिनी स्त्रीने वर्णन किया है ॥ ९४-९७ ॥

मध्यमनायिकाचूर्ण।

कर्ष गन्धकमर्द्धपारदयुतं कुर्याच्छुभां कज्जलीं
द्व्यक्षांशं त्रिकटोश्च पञ्चलवणात् सार्द्धं च कर्षं पृथक्।
सार्द्धाक्षं द्विपलं विचूर्ण्य सकलं शक्राशनान्मिश्रितात्
खादेच्छाणमतोऽनु काञ्जिकपलं मन्दाग्निसन्दीपनम् ॥
स्वेच्छं भोजनतो रसायनमिदं कण्ठादिकोपद्रवे
पेयं चात्र तु काञ्जिकं वदति सा नारी महायोगिनी॥९८॥
हन्याद्वातं च पित्तं कफविकृतिमतीसारमत्युग्ररूपं
कासं श्वासं च शूलं ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्माणमुग्रम्।
प्लीहानं चामवातं षडपि च गुदजान्कुष्ठरोगं समग्रं
वातास्रं कण्ठरोगानिदमिह कथितं दीपनं जाठराग्नेः॥९९॥

शुद्धगन्धक एक तोला और शुद्धपारा ६ माशे इन दोनोंको एकत्र मिलाकर कज्जली बनालेवे। फिर सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक दो दो तोले एवं पाँचों नमक डेढ डेढ तोले और भाँगका चूर्ण साढे आठ तोले लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन चार माशे परिमाण सेवन करे और पीछेसे एक पल कांजीको पान करे। इसके सेवन करनेसे मन्दहुई अग्नि अत्यन्त दीपन होती है। एवं वातज, पित्तज और कफज भयंकर अतिसार, खाँसी, श्वास, शूल, ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, प्लीहा, आमवात, छः प्रकारके गुदाके रोग, सम्पूर्ण कुष्ठरोग, वातरक्त और कण्ठरोग ये सब तत्काल नष्ट होते हैं। इसपर यथेच्छ भोजन करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

बृहन्नायिकाचूर्ण।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडंगं रजनीद्वयम्।
भल्लातकं यमानी च हिंगुर्लवणपञ्चकम ॥ ६० ॥
गृहधूमो वचा कुष्ठं घनमभ्रकगन्धकम्।
क्षारत्रयं चाजमोदा पारदो गजपिप्पली ॥ ६१ ॥
अमीषां चूर्णकं यावत् तावच्छक्राशनस्य च ॥ ६२ ॥
अभ्यर्च्य नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपिणीम्।
बिडालपदमात्रं तु भक्षयेदस्य गुण्डकम् ॥ ६३ ॥

चीतेकी जड, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, पीपल, मिरच, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, भिलावे, अजवायन, हींग, पाँचों नमक, घरका धुआँ, वच, कूट, नागरमोथा, अभ्रक, शुद्ध, गन्धक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, अजमोद, शुद्धपारा और गजपीपल इन सबको समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बनालेवे। फिर सबको एकत्र मिलाकर चूर्ण करलेवे। फिर इन औषधियोंका जितना चूर्ण हो, उसीकी बराबर भांगका चूर्ण मिलाकर सबको एकमेएक करके एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल कामरूपधारिणी योगिनीकी पूजा कर इस चूर्णको एकएक तोला परिमाण भक्षण करे। इसपर कांजी, चावलोंका जल, उडदका यूष, अभ्यङ्ग स्नान, मांसका भोजन, मठा, भुनीहुई मछली और दही ये सब हितकर हैं ॥ ६०–६३ ॥

मन्दाग्निकासदुर्नामप्लीहपाण्डुचिरज्वरान्।
प्रमेहशोथविष्टम्भसंग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ६४ ॥

सर्वातीसारहरणः सर्वशूलनिषूदनः ।
आमवातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः ॥ ६५ ॥
न च ते व्याधयः सन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ।
मान्द्यं हन्यादसौ सिद्धो गुण्डको नायिकाकृतः ॥ ६६ ॥
वार्यन्नमाषमभ्यङ्गस्नानं पिशितभोजनम् ।
काञ्जिकाम्लं सदा पथ्यं दग्धमीनस्तथा दधि ॥
काष्ठमप्युदरे तस्य भक्षणाद्याति जीर्णताम् ॥ ६७ ॥

यह बृहन्नायिका ॅ, मन्दाग्नि, खाँसी, बवासीर, प्लीहा; पाण्डु, जीर्णज्वर, प्रमेह, शोथ, विष्टम्भ, प्रबल संग्रहणी, सब प्रकारका अतीसार, सम्पूर्ण शूलरोग, आमवात; प्रसूतिकाके विविध प्रकारके रोग इत्यादि दुस्तर व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है। इस चूर्णसे वातज, पित्तज और कफज किसी प्रकारके भी रोग नहीं ठहर सकते और इससे अग्नि इतनी तीव्र होजाता है कि, भक्षण किया हुआ काष्ठ भी पच जाता है ॥ ६४–६७ ॥

ग्रहणीशार्दूलचूर्ण ।

रसगन्धकलौहाभ्रं हिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ।
हरिद्रे कुष्ठकं चैव वचा मुस्तविडङ्गकम् ॥ ६८ ॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रमजमोदा यमानिका ।
गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव गृहधूमकम् ॥ ६९ ॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं विजयाचूर्णकं समम् ।
माषद्वयमिदं चूर्णं शालितण्डुलवारिणा ॥ ७० ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम् ।
अग्निं च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥ ७१ ॥
सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम् ।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ ७२ ॥
आमातीसारमखिलं विशेषात् श्वयथुं जयेत् ।
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥
ग्रहणीशार्दूलचूर्णं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ७३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक, हींग, पाँचोंनमक, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, वच, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, चीतेकी जड, अजमोद, अजवायन, गजपीपल, सज्जी, जवाखार, सुहागा और घरका धुआँ इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और समस्त चूर्णके बराबर भाँगका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो माशे चूर्ण शालिधानोंके चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे संग्रहणीरोग दूर होता है और अग्नि बडवानलकी समान अत्यन्त दीपन होती है। एवं सब प्रकारके अतीसार और सब प्रकारका आमातिसार, तृषा, ज्वर, पक्क अथवा अपक्क अनेक वर्णका और पीडायुक्त अतिसार, सूजन, असाध्य ग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, जीर्णज्वर एवं अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगसमूहको नाश करनेके लिये विशेषकर यह ग्रहणीशार्दूलचूर्ण सिंहके समान है ॥ ६८–७३ ॥

जातीफलाद्यचूर्ण।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तथा।
तालीशं चन्दनं शुण्ठी लवंगं चोपकुञ्चिका ॥ ७४ ॥
कर्पूरं चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा।
एषामक्षसमान् भागाँश्चातुर्जातकसम्मितान् ॥ ७५ ॥
ग्रहणीमतिसारं च वह्निमान्द्यं सपीनसम्।
वातश्लेष्मभवान् रोगान् प्रतिश्यायांश्च दुःसहान् ॥ ७६ ॥

जायफल, वायविडङ्ग, चीतेकी जड, तगर, तालीसपत्र, लालचन्दन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, कपूर, हरड, आमला, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन सबको एकएक तोला लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे। यह चूर्ण ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, पीनस, वात–कफजन्यरोग और दुस्साध्य प्रतिश्यायको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ७४–७६ ॥

जीरकाद्यचूर्ण।

जीरकं टङ्कणं मुस्तं पाठा बिल्वं सधान्यकम्।
बालकं शतपुष्पा च दाडिमं कुटजं तथा ॥ ७७ ॥
समङ्गा धातकीपुष्पं व्योषं चैव त्रिजातकम्।
मोचारसं कलिंगं च व्योम गन्धकपारदौ ॥ ७८ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि च।
एतत् प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां जयेत् ॥ ७९ ॥

अतीसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा।
कामलां पाण्डुरोगं च मन्दाग्निं च विशेषतः॥
जीरकाद्यमिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम्॥ ८०॥

जीरा, सुहागा, नागरमोथा, पाढ, बेलगिरी, धनियाँ, सुगन्धवाला, सोया, अनारके बक्कल, कुडेकी छाल, लज्जावंती, धायके फूल, सोंठ, पीपल, मिरच, दारचीनी, तेजपात, इलायची, मोचरस, इन्द्रजौ, अभ्रक, शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली इन सबके चूर्णको समान भाग लेवे और जितना इन सब औषधियोंका चूर्ण हो उस सबकी बराबर जायफलका चूर्ण लेकर मिलालेवे। इस चूर्णको एक-एक माशेकी मात्रासे सेवन करतेही कठिन संग्रहणी; आमयुक्त तथा विविधप्रकारका अतिसार, कामला, पाण्डुरोग और विशेषकर मन्दाग्नि: ये सब रोग तत्काल दूर होते हैं। इस जीराकाद्यचूर्णको अगस्त्यऋषिने प्रकाशित किया है॥७७-८०॥

मार्कण्डेयचूर्ण।

शुद्धसूतं च गन्धं च हिङ्गुलं टङ्कणं तथा।
व्योषं जातीफलं चैव लवङ्गं तेजपत्रकम्॥ ८१॥
एलाबीजं चित्रकं च मुस्तकं गजपिप्पली।
नागरं सजलं चाभ्रं धातक्यतिविषा तथा॥ ८२॥
शिग्रुजं शाल्मलं चैवमहिफेनं पलांशकम्।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ८३॥
खादेदस्मात् प्रतिदिनं माषकं सितया सह।
संग्रहग्रहणीं हन्ति मन्दाग्निं च विनाशयेत्॥ ८४॥
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलपुष्टिं करोत्यपि।
मार्कण्डेयमिदं चूर्णं महादेवेन निर्मितम्॥ ८५॥

शुद्धपारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली, सिंगरफ, सुहागा, सोंठ, पीपल, मिरच, जायफल, लौंग, तेजपात, इलायचीके दाने, चीतेकी जड, नागरमोथा, गजपीपल, सोंठ, सुगन्धवाला, अभ्रक, धायके फूल, अतीस, सहिंजनेके बीज, मोचरस और अफीम ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक एक माशा चूर्ण चार तोले मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करे तो यह चूर्ण प्रबल संग्रहणी और अग्निकी मन्दताको नष्ट करता है और धातुकी

वृद्धि, आयुकी वृद्धि, बलकी वृद्धि तथा पुष्टिको करता है । इस मार्कण्डेय चूर्णको श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ ८१–८५ ॥

कञ्चटावलेह ।

प्रस्थे पचेत् कंचटतालमूल्यौ सितार्द्धप्रस्थं शृतपादशेषे ।
ततोऽक्षमात्राणि समानि दद्याच्चूर्णानि धीरो विधिवत्तदेषाम् ॥
समङ्गा धातकी पाठा बिल्वं मुस्ताऽथ पिप्पली ।
शक्रकातिविषाक्षारसौवर्चलरसाञ्जनम् ॥ ८७ ॥
शाल्मलीवेष्टकं चैव सर्वं सिद्धे निधापयेत् ।
शीते च मधुनश्चात्र कुडवार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ ८८ ॥

जलपीपल और मूसली इन दोनोंको आठ आठ पल लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्काथमें ३२ तोले मिश्री और लज्जावन्ती, धायके फूल, पाठ, बेलगिरी, नागरमोथा, पीपल, भाँग, अतीस, जवाखार, कालानमक, रसौंत और मोचरस इन प्रत्येक औषधिको डालकर पकावे । जब पककर अवलेहके समान गाढा होजाय तब चूर्णको बारीक पीसकर डालदेवे । जब अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानपर उसमें ८ तोले शहद मिलादेवे ॥ ८६–८८ ॥

अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत यथाकालप्रमाणतः ।
सर्वातिसारं शमयेत् संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ८९ ॥
अम्लपित्तकृतं दोषमुदरं सर्वरूपिणम् ।
विकारान् कोष्ठजान् हन्ति हन्यात् शूलमरोचकम् ॥९०॥

इस अवलेहको दोष, काल और अवस्थाका विचारकर उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो यह सब प्रकारके अतिसार, संग्रहणी, अम्लपित्त, अजीर्ण, उदररोग, कोष्ठगतरोग, शूल, अरुचि एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको दूर करता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

दशमूलगुड ।

दशमूलीपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण पचेद् गुडतुलां भिषक् ॥ ९१

आर्द्रकस्य रसप्रस्थं दत्त्वा मृद्वग्निना ततः।
लेहीभूते प्रदातव्यं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ ९२ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
हिङ्गु भल्लातकं चैव विडंगमजमोदकम् ॥ ९३ ॥
द्वौ क्षारौ चित्रकं चव्यं पंचैव लवणानि च।
दत्त्वा सुमथितं कृत्वा स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥
कोलमात्रं ततः खादेत् प्रातःप्रातर्विचक्षणः ॥ ९४ ॥

दशमूलकी औषधियोंको सौ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें पुराना गुड १०० पल और अदरखका रस एकप्रस्थ डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे। जब पकते २ लेहकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपल, पीपलामूल, मिरच, सोंठ, हींग, भिलावे, वायविडंग, अजमोद, जवाखार, सज्जी, चीतेकी जड, चव्य और पांचों नमक इन औषधियोंके चारचार तोले चूर्णको डालकर सबको एकमएक करके एक मिट्टीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोला भक्षण करे ॥९१-९४॥

हन्ति मन्दानलं शोथमामजां ग्रहणीमपि।
आमं सर्वभवं शूलं प्लीहानमुदरं तथा ॥ ९५ ॥
मन्दानलभवं रोगं विष्टम्भं गुदजानि च।
ज्वरं चिरन्तनं हन्ति तमिस्रं भानुमानिव ॥ ९६ ॥

यह औषधि मन्दाग्नि, सूजन, आमसे उत्पन्नहुई संग्रहणी, आम, सर्वप्रकारके शूल, प्लीहा, उदरविकार, मन्दाग्निसे उत्पन्नहुए रोग, विष्टम्भ और गुदामें होनेवाले सम्पूर्ण उपद्रवोंको नष्ट करती है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

कल्याणगुड।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वाऽर्द्धतुलां गुडस्य।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहवुषाजमोदैः ॥ ९६ ॥
विडंगसिन्धुत्रिफलायमानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः।
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ९८
तं भक्षयेदक्षपलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम्।
अनेन सर्वग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ९९ ॥

शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।
स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनोऽयं कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्टः ॥
त्रिवृतां भर्जयन्त्यत्र मनाक् तैले चिकित्सकाः ।
अत्रोक्तमानसाधर्म्यात्त्रिसुगन्धिपलं पृथक् ॥ १०१ ॥

शुद्ध आमलोंके तीन प्रस्थ रसमें पीपलामूल, जीरा, चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, गजपीपल, हाऊबेर, अजमोद, वायविडङ्ग, सेंधानमक, हरड, आमला, बहेडा, अजवायन, पाढ, चीतेकी जड और धनियाँ इन प्रत्येकको चारचार तोले तेलमें भुना हुआ निसोतका चूर्ण ३२ तोले, तिलका तैल ३२ तोले और दालचीनी, तेजपात, इलायची इन प्रत्येकका चूर्ण ६४ तोले इन सबको मिलाकर यथाविधिसे गुड दो दो तोले डालकर पाककर पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसमें त्रिसुगन्धि (दारचीनी, तेजपात, इलायची) का चूर्ण चारचार तोले मिलाकर प्रतिदिन एकएक तोला प्रमाण भक्षण करे । इससे सर्व प्रकारकी संग्रहणी, श्वास, खाँसी, स्वरभेद और सूजन दूर होती है तथा बहुत दिनोंकी पुरानी मन्दाग्नि दीपन होती है और पुरुषत्वकी वृद्धि होती है । यह कल्याण नामक गुड वन्ध्या स्त्रियोंके वन्ध्यात्व दोषको निवारण करनेकी सर्वश्रेष्ठ महौषध है ॥ ९७-१०१ ॥

कूष्माण्डगुडकल्याण ।

कूष्माण्डकानां रूढानां सुस्विन्नं निष्कुलत्वचम् ।
सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रभाण्डे शनैः पचेत् ॥ २ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पली ।
धान्यकानि विडङ्गानि यमानीमरिचानि च ॥ ३ ॥
त्रिफला चाजमोदा च कलिंगाजाजिसैन्धवम् ।
एकैकस्य पलं चैव त्रिवृदष्टपलं भवेत् ॥ ४ ॥
तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडपञ्चाशदेव तु ।
प्रस्थैस्त्रिभिः समेतं तु रसस्यामलकस्य च ॥ ५ ॥
यदा दर्वीप्रलेपस्तु तदैनमवतारयेत् ।
यथाशक्ति गुडान् कुर्यात् कर्षकर्षार्द्धमानकान् ॥ ६ ॥

उत्तम प्रकारसे पके हुए पेठेको लेकर छील लेवे । फिर उसके टुकडे करके १०० पल, घी १ प्रस्थ एवं पीपल, पीपलामूल, चीतेकी जड, अजमोद, इन्द्रजौ, कालाजीरा,

और सैंधानमक इन प्रत्येकका चारचार तोले चूर्ण, निसोतका चूर्ण ३२ तोले, तिलका तैल ३२ तोले, गुड पचास पल और आमलोंका रस ३ प्रस्थ लेवे सबको एकत्र मिलाकर ताँबेके पात्रमें विधिपूर्वक मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते २ करछीसे लग तब उसको नीचे उतारले फिर उसमेंसे अपनी अग्निके बलानुसार ६ माशेकी मात्रासे लेकर एक तोलापर्यन्त सेवन करे ॥ १०२-१०६ ॥

अनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमान् ।
प्रसह्य ग्रहणीरोगान् कुष्ठान्यर्शोभगन्दरान् ॥ ७ ॥
ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविषूचिकाः ।
कामलापाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ८ ॥
वातशोणितवीसर्पदद्रुचर्म्महलीमकान् ।
कफपित्तानिलान् सर्वान् प्ररूढांश्च व्यपोहति ॥ ९ ॥
व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ।
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च ।
गुडकल्याणको नाम वन्ध्यानां गर्भदः परः ॥ ११० ॥

इसको प्रतिदिन नियमानुसार सेवन करनेसे संग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, ज्वर, आनाह, हृदयरोग, गुल्म, उदरविकार, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, दाद, चर्मरोग, हलीमक तथा कफ, पित्त और वायुसे उत्पन्न हुए सर्वप्रकारके बहुत पुराने रोग नष्ट होते हैं। जो मनुष्य व्याधिके कारण क्षीण हो गये हैं या अवस्थासे ही क्षीण हैं अथवा जो स्त्रियोंमें अधिक भोगविलास करनेसे क्षीण हो गये हैं, उनके लिये यह गुड अत्यन्त वृष्य, बलकारक और आयुको स्थापन करनेवाला है। इसको कूष्माण्डगुडकल्याण कहते हैं। यह वन्ध्यास्त्रियोंके लिये गर्भप्रदान करता है ॥ १०७-११० ॥

कामेश्वरमोदक ।

सम्यङ् मारितमभ्रकं कटफलं कुष्ठाश्वगन्धामृता
मेथी मोचरसो विदारिमुसलीगोक्षूरकं चेक्षुरः ।
रम्भाकन्दशतावरीत्वजमुदा मांसी तिला धान्यकं
यष्टी नागबला कचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम् ॥ ११ ॥
भार्ङ्गी कर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणा द्राक्षा शठी बालकम् ।

शाल्मल्यङ्घ्रि फलत्रिकं कपिभव बीजं समं चूर्णयेत्
चूर्णांशा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्ययोः पिंडितम् ॥
कर्षांशा गुडिकाऽर्द्धकषमथवा सेव्याः सदा कामिभिः
सेव्यं क्षीरसितं सुवीर्यकरणं स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् ।
वामावश्यकरः सुखातिसुखदो बह्वङ्गनाद्रावणः
क्षीणे पुष्टिकरः क्षतक्षयहरो हन्याच्च सर्वामयान् ॥ १३ ॥
कासश्वासमहातिसारशमनः कामाग्निसन्दीपनो
दुर्नामग्रहणीप्रमेहनिवहश्लेष्मातिरेकप्रणुत् ।
नित्यानन्दकरो विशेषकविता वाचां विलासोद्भवो
धत्ते सर्वगुणं महास्थिरमतिर्बालो नितान्तोत्सवः ॥ १४ ॥
अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात्
सर्वेषां हितकारिणा निगदितः श्रीनित्यनाथेन सः ।
वृद्धानां मदनोदयोदयकरः प्रौढाङ्गनासंगमे
सिंहोऽयं समदृष्टिप्रत्ययकरो भूपैः सदा सेव्यताम् ॥ १५ ॥

उत्तम प्रकारसे शुद्ध की हुई अभ्रककी भस्म, कायफल, कूठ, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकंद, मूसली, गोखरू, तालमखाना, केलेकी जड, शतावर, अजमोद, बालछड, तिलोंके चावल, धनियाँ, मुलहठी, गंगेरन, कचूर, मैनफल, जायफल, सैंधानमक, भारंगी, काकडासिंगी, सोंठ, पीपल, मिरच, जीरा, कालाजीरा, चीतेकी जड, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपीपल, दाख, गन्धपलाशी, सुगन्धवाला, सेमलकी मूसली, हरड, आमला, बहेडा और कौंचके बीज इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर भाँगका चूर्ण और सबसे दूनी मिश्री लेवे । सबको यथोचित मधु और घृतमें विधिपूर्वक मिलाकर एक तोलाके अथवा छः माशके लड्डू बनालेवे । ये मोदक कामीपुरुषोंको प्रतिदिन दूध और मिश्रीके साथ सेवन करने चाहिये । ये मोदक अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, स्तम्भक, स्त्रीको वशमें करनेवाले, अत्यन्त आनन्ददायक, अनेक स्त्रियोंमें रमणकी शक्तिप्रदायक, क्षीण शरीरको पुष्ट करनेवाले, कामाग्निको बढानेवाले तथा क्षतक्षय, खाँसी श्वास, प्रबल अतिसार, अर्श, संग्रहणी, प्रमेह, कफ-विकार एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके उपद्रवोंको तत्काल नष्ट करते हैं । नित्य आनन्द-दायक, विशेषकर कवित्वशक्ति और वाक्शक्तिको बढानेवाले हैं । इन कामेश्वर मोद-

कोंको एक वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक सेवन करनेसे मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न स्थिरबुद्धि होता है। विना अवस्थाके ही बालोंका पकना और मृत्युतक नष्ट होजाती है। इन श्रीकामेश्वर मोदकोंको सम्पूर्ण प्राणियोंके हितके लिये नित्यनाथने वर्णन किया है। ये कामेश्वरमोदक वृद्धमनुष्योंको प्रौढावस्थावाली स्त्रियोंके साथ संगम करनेपर वृद्धमनुष्योंके भी चित्तमें उत्पन्न कामशक्तिकी वृद्धि करते हैं। सिंहके समान पराक्रमी और अनुभवसिद्ध योग है। अतएव यह प्रयोग राजाओंको सदा सेवन करना चाहिये ॥ ११-१५ ॥

मदनमोदक ।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम् ।
समे शिलातले पश्चाच्चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ १६ ॥
त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी कुष्ठधान्यकसैन्धवम् ।
शठी तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम् ॥ १७ ॥
अजमोदा यमानी च यष्टीमधुकमेव च ।
मेथी जीरकयुग्मं च गृहीत्वा श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १८ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ।
तावदेव सिता देया यावदायाति बन्धनम् ॥ १९ ॥
घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत् ।
त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणाधिवासयेत् ।
स्थापयेद् घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम् ॥ १२० ॥

घीमें भुनीहुई बीजोंसहित भांगको २० तोले लेकर उत्तम पत्थरपर खूब बारीक पीसलेवे। फिर बहेडा, काकडासिंगी, कूठ, धनियाँ, सैन्धानमक, कचूर, तालीसपत्र, कायफल, नागकेशर, अजमोद, अजवायन, मुलहठी, मेथी, जीरा और कालाजीरा प्रत्येकका बारीक पिसा हुआ चूर्ण एकएक तोला और संपूर्ण चूर्णके बराबर मिश्री मिलालेवे। पश्चात् घृत और शहद इनको मिलाकर त्रिजातकके चूर्ण मिलाकर मोदक बनावे और उनको कपूरसे सुवासित कर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसको मदनमोदक कहते हैं ॥ १६-१२० ॥

भक्षयेत् प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम् ।
कासघ्नं सर्वशूलघ्नमामवातविनाशनम् ॥ २१ ॥

सर्वरोगहरो ह्येष संग्रहग्रहणीहरः ।
एतस्य सततांभ्यासाद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २२ ॥
(ब्रह्मणः प्रमुखात् श्रुत्वा वासुदेवे जगत्पतौ ॥
एष कामविवृद्ध्यर्थं नारदैः प्रतिपादितः ॥ २३ ॥
तेन लक्षं वरस्त्रीणां रेमे स यदुनन्दनः ॥ २४ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक मोदक भक्षण करनेसे वातकफ जन्य रोग, खाँसी, सर्व प्रकारके शूल, आमवात, संग्रहणी एवं अनेक प्रकारके रोग शीघ्र नष्ट होते हैं. इनको निरन्तर सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी तरुण होजाता है ॥ २१-२४ ॥

मेथीमोदक ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं जीरकद्वयधान्यकम् ।
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी यमानी सैन्धवं विडम् ॥ २५ ॥
तालीशकेशरं पत्रं त्वगेला च फलं तथा ।
जातीकोषलवङ्गं च मुरा कर्पूरचन्दनम् ॥ २६ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तु मेथिका ।
संचूर्ण्य मोदकः कार्यः पुरातनगुडेन च ॥ २७ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, जीरा, कालाजीरा-धनियाँ, कायफल, पुहकरमूल, काकडासिंगी, अजवायन, सैंधानमक, विरियासंचर, नमक, तालीसपत्र, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, मुरा मांसी, कपूर और लालचन्दन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और समस्त चूर्णकी बराबर मेथीका चूर्ण एवं मेथीके चूर्णसहित समस्त चूर्णसे दूना पुराना गुड़ मिलाकर यथाविधिसे पाककर मोदक बनालेवे ॥ २५-२७ ॥

घृतेन मधुना किञ्चित् खादेदग्निबलं प्रति ।
अग्निं च कुरुते दीप्तं सामे मेदे महौषधम् ॥ २८ ॥
बलवर्णकरो ह्येष संग्रहग्रहणीहरः ।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीम् ॥ २९ ॥
पाण्डुरोगं तथा कासं यक्ष्माणं हन्ति कामलाम् ।
स्तनौ च पतितौ गाढौ स्यातां तालफलोपमौ ॥ ३० ॥

दृष्टिप्रसादनं चैव नारीणां चैव पुत्रदः ।
भाषितः कामदेवेन मेथीमोदकसंज्ञकः ॥ ३१ ॥

अग्निका बलाबल विचारकर इन मोदकोंको कुछेक घृत और शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये । यह मोदक अग्निको अत्यन्त दीपन करते हैं और आमयुक्त मेदरोगकी अत्युत्तम औषधि है । बल और वर्णको बढानेवाले तथा संग्रहणीको हरनेवाले हैं । एवं बीसप्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, पाण्डुरोग, खाँसी, राजयक्ष्मा और कामलारोगको दूर करते हैं । इनको सेवन करनेसे स्त्रियोंके गिरेहुए स्तन ताडके फलके समान दृढ होजाते हैं । ये मोदक दृष्टिशक्तिको बढानेवाले तथा स्त्रियोंको पुत्रके देनेवाले हैं । इनको भी कामदेवने वर्णन किया है और यह मेथीमोदक नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २८–१३१ ॥

बृहन्मेथीमोदक ।

त्रिफला धान्यकं मुस्तं शुण्ठी मरिचपिप्पली ।
कट्फलं सैन्धवं शृंगी जीरकद्वयपुष्करम् ॥ ३२ ॥
यमानी केशरं पत्रं तालीशं विडमेव च ।
जातीफलं त्वगेला च जावित्रीन्दुलवंगकम् ॥ ३३ ॥
शतपुष्पा मुरामांसी यष्टीमधुकपद्मकम् ।
चव्यं मधुरिका दारु सर्वमेतत् समं भवेत् ॥ ३४ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रा तु मेथिका ।
सितया मोदकं कार्यं घृतमाध्वीकसंयुतम् ॥ ३५ ॥

हरड, आमला, बहेडा, धनियाँ, नागरमोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, कायफल, सैंधानमक, काकडासिंगी, जीरा, कालाजीरा, पुहकरमूल, अजवायन, नागकेशर, तेजपात, तालीसपत्र, विरियासंचरनमक, जायफल, दालचीनी, इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोया, मुरामांसी, मुलहठी, पद्माख, चव्य, सोंफ और देवदारु इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर समस्त चूर्णके बराबर मेथीका चूर्ण और मेथीके चूर्णसहित सब चूर्णके समान भाग मिश्री एवं यथोचित परिमाणसे घृत और शहद मिलाकर लड्डू बनालेवे ॥ ३२–३५ ॥

भक्षयेत् प्रातरुत्थाय यथादोषानुपानतः ।
हन्ति मन्दानलान् सर्वानामदोषं विशेषतः ॥ ३६ ॥

महाग्निजननं वृष्यमामवातनिषूदनम् ।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ॥ ३७ ॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति कासं श्वासं च दारुणम् ।
छर्द्यतीसारशमनं सर्वारूढिविनाशनम् ॥
मेथीमोदकनामेदं पतञ्जलिमुनेर्मतम् ॥ ३८ ॥

इन मोदकोंको नित्य प्रातःकाल यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारकी मन्दाग्नि, विशेषकर आमदोष, संग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, बीसों प्रमेह, कठिन खाँसी, श्वास, वमन, अतिसार और सर्व प्रकारके पुराने जटिल रोग नष्ट होते हैं । ये मोदक अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाले और वृष्य तथा आमवातनाशक हैं । इस बृहन्मेथीमोदकनामक योगको पतञ्जलिमुनिने निर्माण किया है ॥ ३६-३८ ॥

सुस्तकादिमादक ।

धान्यकं त्रिफला भृङ्गं त्रुटिः पत्रं लवङ्गकम् ।
केशरं शैलजं शुण्ठी पिप्पली मरिचानि च ॥ ३ ॥
जीरकं कृष्णजीरं च यमानी कट्फलं जलम् ।
धातकीपुष्पकं व्याधिर्जातीकोषफले तथा ॥ १४० ॥
मधूरिका चाजमोदा हबुषं नागपर्ण्यपि ।
उग्रगन्धा शठी मांसी कुटजस्य फलं शुभम् ॥ ४१ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् कुशलो भिषक् ।
सर्वचूर्णसमं देयं जलदस्यापि चूर्णकम् ॥
सिता च द्विगुणा देया मोदकं परिकल्पयेत् ॥ ४२ ॥

धनियाँ, हरड. आमला, बहेडा, दालचीनी, छोटीइलायची, तेजपात, लौंग, नागकेशर, भूरिछरीला, सोंठ, पीपल, मिरच,जीरा, कालाजीरा, अजवायन, कायफल, सुगन्धवाला, धायके फूल, कूट, जावित्री, जायफल, सौंफ, अजमोद, हाऊबेर, पान, वच, कचूर; बालछड, इन्द्रजौ और वंशलोचन इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णकी बराबर नागरमोथेका चूर्ण और नागरमोथेके चूर्ण सहित समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे । सबको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर मोदक बनालेवे ॥ ३९-१४२ ॥

मन्दाग्निं शमयेदेतत् सरक्तां ग्रहणीं तथा।
अतीसारं ज्वरं शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ४३ ॥
कृमिरोगं रक्तपित्तमर्शोरोगं सुदुर्ज्जयम्।
लोकानां गदशान्त्यर्थं भैरवेन प्रकाशितम् ॥ ४४ ॥

ये मोदक मन्दाग्नि, रुधिरयुक्त संग्रहणी, अतिसार, ज्वर, सूजन, पाण्डुरोग, हलीमक, क्रिमिरोग, रक्तपित्त और अत्यन्त दुःसाध्य अर्शरोगको शमन करते हैं। सांसारिक मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेके लिये इस प्रयोगको भैरवजीने कहा है। (इसपर मिश्री डालकर बकरीका दूध पान करना चाहिये) ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

जीरकादिमोदक।

श्लक्ष्णचूर्णीकृतं जीरं पलाष्टकमितं शुभम्।
तदर्द्धं विजयाबीजं भर्ज्जितं वस्त्रपूतकम् ॥ ४५ ॥
अयश्चूर्णं तथा वङ्गमभ्रकं कषमानतः।
मधूरिका च तालीशं जातीकोषफले तथा ॥ ४६ ॥
धान्यकं त्रिफला चैव चातुर्जातलवङ्गकम्।
शलेय चन्दने द्वे च मांसी द्राक्षा शठी तथा ॥ ४७ ॥
टङ्कण कुन्दुरू यष्टी तुगा कक्कोलबालकम्।
गांगेरुस्त्रिकटुश्चैव धातकी बिल्वमज्जुनम् ॥ ४८ ॥
शतपुष्पा देवदारु कर्पूरं सप्रियङ्गुकम्।
जीरकं शाल्मलं चैव कटुका पद्मनालकम् ॥ ४९ ॥
एषां कर्षसमं चूर्णं गृह्णीयात् कुशलो भिषक्।
शर्करा-मधुनाऽऽज्येन मोदकं च विनिर्मितम् ॥ १५० ॥

भुनेहुए जीरेका बारीक चूर्ण ३२ तोले, घीमें भुनीहुई भाँगका बारीक और कपडछान किया हुआ चूर्ण १६ तोले एवं लोहभस्म, वंग, अभ्रक प्रत्येककी एकएक कर्ष तथा सौंफ, तालीशपत्र, जावित्री, जायफल, धनियाँ, हरड, आमला, बहेडा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, लौंग, भूरिछरीला, सफेदचन्दन, लाल चन्दन, बालछड, दाख, कचूर, सुहागा, कुन्दुरू, मुलहठी, वंशलोचन, कंकोल, सुगन्धवाला, गँगेरन, सोठ, पीपल, मिरच, धायके फूल, बेलगिरी, अजुनकी छाल, सोया, देवदारु, कपूर, फूलप्रियंगु, जीरा, मोचरस, कुटकी और कमलकन्द (भसीडा) प्रत्येक औषधिके चूर्णको एकएक कर्ष और समस्तचूर्णसे दुगुनी

खाँड लेवे । सबको विधिपूर्वक एकत्र मिलाकर घृत शहदके योगसे लड्डू बनालेवे ॥ ४९–१५० ॥

खादेत् कर्षसमं तस्य प्रत्यहं प्रातरुत्थितः ।
शीततोयानुपानेन सर्वग्रहणिकां जयेत् ॥ ५१ ॥
आमदोषावृते पित्ते वह्निमान्द्ये तथैव च ।
रक्तातिसारेऽतीसारे प्रयोज्या विषमज्वरे ॥ ५२ ॥
सशब्दं घोरगम्भीरं हन्ति सद्यो न संशयः ।
अम्लपित्तकृत दोषमुदरं सर्वरूपिणम् ॥ ५३ ॥
सर्वातीसारशमनं संग्रहग्रहणीं जयेत
एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयकृतं तथा ॥ ५४ ॥
विकारं कोष्ठजं चैव हन्ति शूलमरोचकम् ।
भाषितं वृष्णिनाथेन जन्तूनां हितकारणम् ॥ ५५ ॥

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक तोलाप्रमाण खाय और ऊपरसे शीतल जलका अनुपान करे तो इससे सर्वप्रकारकी संग्रहणी दूर होती है । आमदोषयुक्त पित्त, अग्निकी मन्दता, रक्तातिसार, सामान्य अतिसार और विषमज्वरमें प्रयोग करना चाहिये । यह शब्दयुक्त, भयंकर और गम्भीर अम्लपित्तरोग, सब प्रकारके उदररोग, सम्पूर्ण, अतिसार, संग्रहणी, एकदोषज, द्विदोषज अथवा त्रिदोषज संग्रहणी, रोग, कोष्ठगत विकार, शूल और अरुचिको नष्ट करता है ॥

बृहज्जीरकादिमोदक ।

जीरकं कृष्णजीरं च कुष्ठ शुंठी च पिप्पली ।
मरिचं त्रिफला त्वक् च पत्रमेला च केशरम् ॥ ५६ ॥
शुभा लवंगं शैलेयं चन्दनं श्वेतचन्दनम् ।
काकोली क्षीरकाकोली जातीकोषफले तथा ॥ ५७ ॥
यष्टी मधुरिका मांसी मुस्तं सचलकं शठी ।
धान्यकं देवताडं च मुरा द्राक्षा नखी तथा ॥ ५८ ॥
शतपुष्पा पद्मकं च मेथी च सुरदारु च ।
सजलं नालिका चैव सैन्धवं गजपिप्पली ॥ ५९ ॥
कर्पूरं वनिता चैव कुन्दखोटी समांशकम् ।
लौहकाभ्रकवंगानां द्विभागं तत्र दापयेत ॥ १६० ॥

एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
सर्वचूर्णसमं देयं भृष्टजीरस्य चूर्णकम् ॥ ६१ ॥
सिता द्विगुणिता देया मोदकं परिकल्पयेत्।
घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं च भिषग्वरः ॥ ६२ ॥

सफेदजीरा, कालाजीरा, कूठ, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, दारचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, वंशलोचन, लौंग, भूरिछरीला, लालचन्दन, सफेदचन्दन, काकोली, क्षीरकाकोला, जावित्री, जायफळ, मुलहठी, सौंफ, बालछड, नागरमोथा, कालानमक, कचूर, धनियाँ, देवताडवृक्ष, मुरामांसी, दाख, नखी, सोया, पद्माख, मेथी, देवदारु, सुगन्धवाला, नली गन्धद्रव्य, सैंधानमक, गजपीपल, कर्पूर, कुन्दुरू प्रत्येक औषधि एकएक तोला एवं लोहा, अभ्रक और वङ्ग ये प्रत्येक दो दो तोले इन सबको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णके बराबर भुनेहुए जीरेका चूर्ण और जीरेके चूर्णसहित सम्पूर्ण चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। प्रथम मिश्रीका पाककर उसमें उक्त औषधियोंके चूर्णको डालकर घृत और मधुके योगसे मोदक बनालेवे ॥ ५६–१६२ ॥

भक्षयेत प्रातरुत्थाय यथादोषबलाबलम्।
गव्यं सशर्करं चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्।
सर्वांस्तान् नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६४ ॥
नानावर्णमतीसारं विशेषादामसम्भवम।
शूलमष्टविधं हन्ति अर्शोरोगं चिरोद्भवम् ॥ ६५ ॥
जीर्णज्वरं च सततं विषमज्वरमेव च।
स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ॥ ६६ ॥
पुत्रकृत् पुष्टिकृच्चैव बलवर्णकरं परम्।
सूतिकारोगमत्युग्रं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ६७ ॥
प्रदरं नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः।
दाह सर्वांगिक चैव वातपित्तोत्थितं च यत ॥
अयं सर्वगदोच्छेदी जीरकाद्यो हि मोदकः ॥ ६८ ॥

ये मोदक प्रतिदिन प्रातःकाल दोष तथा अग्निके बलाबलको विचारकर भक्षण करने और ऊपरसे मिश्री मिलाकर गायका दूध पान करना चाहिये । यह प्रयोग अस्सी प्रकारके वातज, ४० प्रकारके पित्तज और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल नाश करदेता है । एवं अनेक अतिसार, विशेषकर आमातिसार, आठ प्रकारका शूल, बहुत पुराना अर्शरोग, जीर्णज्वर, सततज्वर और विषमज्वरको नष्ट करताहै । तथा वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाला, दुर्बल मनुष्योंको पुष्ट करनेवाला और अत्यन्त बल वर्णको बढानेवाला है । प्रसूताके दारुण रोग प्रदररोग, वातिक व पैत्तिक सर्वशरीरकी दाह आदि रोगोंको निस्सन्देह दूर करता है ॥ ६३-६८ ॥

अग्निकुमारमोदक ।

उशीरं बालकं मुस्तं त्वक् पत्रं नागकेशरम् ।
जीरद्वयं च शृंगं च कट्फलं पुष्करं शठी ॥ ६९ ॥
त्रिकटु बिल्वकं धान्यं जातीफललवंगकम् ।
कर्पूरं कान्तलौहं च शैलजं वंशलोचना ॥ १७० ॥
एलाबीजं जटामांसी रास्ना तगरपादुकम् ।
समंगाऽतिबला चाभ्रं मुरा वङ्गं तथैव च ॥ ७१ ॥
अस्य चूर्णसमा मेथी चूर्णार्द्धं विजयारजः ।
शर्करामधुसंयुक्तं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ ७२ ॥

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, जीरा कालाजीरा, काकडासिंगी, कायफल, पुहकरमूल, कचूर, सोंठ, पीपल, मिरच, बेलगिरी, धनियाँ, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तलोह, भूरिछरीला, वंशलोचन, इलायची, बालछड, रायसन, तगर, लज्जावंती, कंघी, अभ्रक, मुरामांसी और वंग इन सबका चूर्ण समानभाग और समस्त चूर्णके बराबर मेथीका चूर्ण एवं मेथीके चूर्णसहित सबचूर्णसे आधाभाग भाँगका चूर्ण और सम्पूर्ण चूर्णसे दूनी शुद्ध खाँड मिश्री लेवे । सबको यथाविधिसे एकात्रितकर शहद डालकर मोदक बनालेवे ॥ ६९-१७२ ॥

एककर्षप्रमाणं तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।
शीततोयानुपानेन आजेन पयसाऽथवा ॥ ७३ ॥

ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति श्वासं कासमतीव च
आमवातमग्निमान्द्यमजीर्णं विषमज्वरम् ॥ ७४ ॥
विबन्धानाहशूलं च यकृत्प्लीहोदराणि च ।
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि ग्रहणीदोषनाशनः ।
उदावर्त्तगुल्मरोगोदरामयविनाशनः ॥ ७५ ॥

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक कर्षप्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे शीतलजल अथवा बकरीका दूध पान करे । यह मोदक दुस्तरग्रहणी, श्वास, खाँसी, आमवात, मन्दाग्नि, अजीर्ण, विषमज्वर, विबन्ध, आनाह, शूल, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, १८ प्रकारके कुष्ठ, ग्रहणीके सब उपद्रव, उदावर्त, गुल्म और सर्वप्रकारके उदरविकारोंको शीघ्र नष्ट करते हैं ॥ ७३-१७५ ॥

हंसपोट्टली ।

दग्धान्कपर्द्दकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ।
गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः ॥ ७६ ॥
मर्द्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ।
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥ ७७ ॥

कौडीकी भस्म, सोंठ, पीपल, मिरच, सुहागा, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध गन्धक और शुद्धपारा इन सबको समानभाग लेकर जम्बीरीनीबूके रसमें उत्तमप्रकारसे खरल करले । फिर प्रतिदिन एकएक माशे प्रमाण लेकर मिरचोंके चूर्ण और घीमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । यह औषधि संग्रहणीरोगको नष्ट करतीहै । इसपर मठ्ठे और भातका पथ्य देना हितकरहै ॥७६॥७७॥

ग्रहणीकपर्दपोट्टली ।

कपर्द्दतुल्यं रसकं तु गन्धकं लौहं मृतं टङ्कणकं च तुल्यम् ।
जयारसेनैकदिनं विमर्द्य चूर्णेन संवेष्ट्य पुटेच्च भाण्डे ॥
ददीत तत्पोट्टलिकाभिधानं वातप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै ॥ ७८ ॥

कौडीकी भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर एकत्रकर भांगके रसमें एकदिनतक अच्छेप्रकारसे मर्दन करके गोलासा बनालेवे । उसको चूनसे लपेटकर एक वर्त्तनमें बन्दकर पुटपाकविधिसे पाककरे । जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब औषधिको निकालकर चूर्ण करलेवे । इस ग्रहणीकपर्दपोट्टलीनामकरसको वातजसंग्रहणीरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥१७८

अग्निकुमाररस ।

रसं गन्धं विषं व्योषं टङ्कणं लौहभस्मकम् ।
अजमोदाऽहिफेनं च सर्वतुल्यं मृताभ्रकम् ॥ ७९ ॥
चित्रकस्य कषायेण मर्द्दयेद्याममात्रकम् ।
मरिचाभां वटीं खादेदजीर्णं ग्रहणीं तथा ॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम् ॥ १८० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धमीठातेलिया, सोंठ, पपिल, मिरच, सुहागा, लोहभस्म, अजमोद और अफीम ये प्रत्येक समानभाग और सबकी बराबर अभ्रककी भस्म लेवे । सबको एकत्र मिलाकर चीतेके क्वाथमें एक प्रहरंतक खरल कर कालीमिरचकी बरावर गोलियाँ बनालेवे । इसकी प्रतिदिन एकएक गोली खानेसे अजीर्ण और ग्रहणीरोग दूर होता है । यह प्रयोग वैद्योंको गोपनीय है ॥ ७९-१८० ॥

स्वल्पग्रहणीकपाटरस १-९ ।

दरदं गन्धपाषाणं तुगाक्षीर्यहिफेनकम् ।
तथा वराटिकाभस्म सर्वं क्षीरेण मर्द्दयेत् ॥ ८१ ॥
रक्तिकायुग्ममानेन च्छायाशुष्कां वटीं चरेत् ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ८२ ॥

१-सिंगरफ, शुद्धगन्धक, वंशलोचन, अफीम और कौडीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर गोदुग्धमें मर्दन करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । यह रस विविध प्रकारकी संग्रहणी और अत्युग्र रक्तातिसारको दूर करता है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

रसगन्धकयोश्चापि जातीफललवंगयोः ।
प्रत्येकं शाणमानं च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥ ८३ ॥
सूर्यावर्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ।
शृंगाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ८४ ॥
चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद् भिषक् ।
बिल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ८५ ॥
दध्ना च भोजनीयं च ग्रहणीरोगनाशनः ।
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा ज्वरम् ॥
ग्रहणीकपाटनामाऽयं रसः परमदुर्लभः ॥८६॥

२-शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, जायफल और लवंग ये प्रत्येक औषधि चार चार माशे लेकर बारीक पीसलेवे। फिर हुलहुल, बेलके पत्ते और सिंघाडेके पत्ते इन प्रत्येकके चार चार तोले रसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके तेजधूपमें सुखाकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली बेलके पत्तोंके रसके साथ सेवन करनी चाहिये और इसपर दहीके सात भातका भोजन करना चाहिये। इसके सेवनसे संग्रहणी, पाण्डुरोग, अतीसार, सूजन और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह ग्रहणीकपाटनामवाला रस अत्यन्त दुर्लभ है॥ ८३-८६॥

श्वेतसर्ज्जस्य शुद्धस्य गन्धकस्य रसस्य च।
शुभेऽह्नि पृथगादाय चूर्णं माषचतुष्टयम्॥ ८७॥
एकीकृत्य शिलाखल्ले दद्यात्तेषां तदा रसम्।
सूर्यावर्त्तस्य बिल्वस्य शृंगाटस्य च पत्रजम्॥ ८८॥
प्रत्येकं पलमेकैकं दापयेद्ग्रहणीगदे।
दापयित्वा ततो यत्नाद्दधिभक्तं समाचरेत्॥ ८९॥
असंवृतगुदद्वारं कपाटमिव ढक्कयेत्।
अतश्च ग्रहणीरोगे कपाटोऽयं रसः स्मृतः॥ १९०॥

३-सफेद राल, शुद्ध गंधक और शुद्धपारा इनको शुभदिनमें अलग अलग चार चार माशे लेकर चूर्ण करलेवे। फिर पत्थरके खरलमें डालकर हुलहुल, बेल और सिंघाडेके पत्तोंका रस चार चार तोले डालकर पृथक्क् पृथक्क् खरल करे और दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली सेवन करनेसे और इसपर दहीके साथ भातका भोजन करनेसे ग्रहणीरोग दूर होता है। यह रस खुले हुए गुदाके द्वारको किंवाडोंकी समान ढक देता है। इसलिये इसे ग्रहणीकपाटरस कहते हैं॥ ८७-१९०॥

गिरिजाभवबीजकज्जली परिमर्द्यार्द्ररसेन शोषिता।
कुटजस्य तु भस्मना पुनर्द्विगुणेनाथ विमर्द्य मिश्रिता॥९१॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमस्य गुञ्जाचतुष्टयम्।
अजाक्षीरेण दातव्यं क्वाथेन कुटजस्य वा॥ ९२॥
यूषं देयं मसूरस्य वारि भक्तं च शीतलम्।
दध्ना सह पुनर्देयं ग्रासादौ रक्तिकाद्वयम्॥ ९३॥

वर्द्धयेद्दशपर्यन्तं ह्रासयेत् क्रमशस्तथा ।
निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्दवम् ॥ ९४ ॥

४–शुद्धपारा १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला दोनोंकी एकत्र कज्जली बनाकर उसमें ४ तोले कुडेकी छालकी भस्म मिलाकर अदरखके रसमें खरल करे। फिर छायामें सुखाकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक एक गोली बकरीके दूध अथवा कुडेकी छालके क्वाथके साथ सेवन करानी चाहिये। फिर भोजनके पहले ग्रासमें उसको दो रत्तीकी मात्रासे दहीके साथ सेवन करावे। इस रसको पहिले प्रतिदिन दो दो रत्तीकी मात्रासे लेकर दस रत्तीतक बढावे। फिर क्रमसे घटाकर चार रत्तीतक करलेवे। इसपर मसूरका यूष, शीतलजल तथा भातका पथ्य देना चाहिये। यह रस सब प्रकारकी संग्रहणी और विशेषकर कुक्षी (पेट) की मृदुताको दूर करता है ॥ ९१–९४ ॥

टङ्कणक्षारगन्धाश्मरसं जातीफलं तथा ।
बिल्वं खदिरसारं च जीरकं श्वेतधूनकम् ॥ ९५ ॥
कपिहस्तकबीजं च तथैव बकपुष्पकम् ।
एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत ॥ ९६ ॥
बिल्वपत्रककार्पासफलं शालिञ्चदुग्धिका ।
शालिञ्चमूलं कुटजत्वचः कञ्चटपत्रकम् ॥ ९७ ॥
सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद् दिवसत्रयम् ॥ ९८ ॥
दधिमस्तु ततः पेयं पलमात्रप्रमाणतः ।
अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥ ९९ ॥
आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम् ।
रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नैवात्र युक्तितः ॥ २०० ॥
चणवार्ताकुमत्स्यं च दधि तक्रं च शस्यते ।
ज्ञात्वा वायोः कृतिं तत्र तैलं वारि प्रदापयेत ॥ २०१ ॥

५–सुहागा, जवाखार, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, जायफल, बेलगिरी, खैरसार, जीरा, सफेद राल, कौंचके बीज और अगस्तियाके फूल प्रत्येक चार चार माशे लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर उस चूर्णको बेलके पत्ते, कपासके फल, शालिञ्च-

शाक, दुद्धी, शालिश्चकी जड, कुडेकी छाल और जलचौलाई इन सब औषधियोंके रसमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस औषधिको प्रतिदिन एकएक गोलीके क्रमसे तीन दिनतक सेवन करे और ऊपरसे एकएक पल प्रमाण दहीका तोड पान करे। यह औषधि जो सैकडों प्रयोगोंसे भी दूर नहीं हुई हो ऐसी प्रबल संग्रहणी एवं आमयुक्त शूल, ज्वर, खाँसी, श्वास, शोथ और प्रवाहिका इन सब रोगोंको नष्ट करती है। इसपर रक्तस्राव करनेवाले पदार्थोंको कदापि सेवन नहीं करना चाहिये। काले बैंगन, मछली, दही और मट्ठेको सेवन करना चाहिये। एवं वायुके बलाबलको विचारकर इसपर तेल और जल देना चाहिये॥९९-२०१॥

ग्रहणीवज्रकपटरस।

सूत गन्धं यवक्षारं जयन्त्युग्राभ्रटङ्कणम्।
जयन्तीभृंगजम्बीरद्रवैः पिष्ट्वा दिनत्रयम्॥ २०२॥
यामार्द्धं गोलकं स्वेद्यं मन्देन पावकेन च।
शीते जयारससमैः शाल्मलीविजयाद्रवैः॥ २०३॥
भावयेत्सप्तधा वज्रकपाटः स्याद् रसोत्तमः।
माषद्वयं त्रयं वाऽस्य मधुना ग्रहणीं जयेत्॥ २०४॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जवाखार, अरणी, वच, अभ्रक और सुहागा इन सब औषधियोंके चूर्णको अरणी, भाँगरा और जम्बीरीनींबू इनके रसमें पृथक् पृथक् तीन दिनतक खरल करके गोलासा बनालेवे। उस गोलेको मन्दमन्द अग्निके द्वारा आधे प्रहरतक स्वेद देवे। फिर शीतल होजानेपर भाँग, सेमलकी मुसली और हरड इनके रस अथवा क्वाथमें सात बार भावना देवे तो यह ग्रहणीवज्रकपाटरस सिद्ध होता है। इस रसकी दो या तीन माशे मात्रा शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे संग्रहणी दूर होती है॥ २०२-२०४॥

बहद्ग्रहणीवज्रकपाट।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागकम्।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान्॥५॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृंगे ततः क्षिपेत्।
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत्॥ ६॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा।
लोध्रं चातिविषा मुस्ता धातकीन्द्रयवामृताः॥ ७॥

प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा ।
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा ॥ ८ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ।
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ॥ ९ ॥

रूपा, मोती, सुवर्ण और लोह इन प्रत्येककी भस्म एक एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग ले एकत्रितकर कैथके पत्तोंके स्वरसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके हिरनके सींगमें भरकर और उसको अच्छे प्रकारसे बंद करके गजपुटमें रखकर पकावे। पश्चात् औषधिको निकालकर खिरेंटीके रसमें ७ वार एवं चिरचिटा, लोध, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोय इन प्रत्येकके रसमें तीन तीन बार भावना देकर एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली शहद और काली मिरचोंके चूर्णके साथ सेवन करनेसे यह रस सर्व प्रकारके अतिसार और सर्वदोषोत्पन्न ग्रहणीरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २०५-२०९ ॥

संग्रहग्रहणीकपाट रस ।

मुक्ता सुवर्णं रसगन्धटङ्कं घनं कपर्दामृततुल्यभागः ।
सर्वैः समं शङ्खकचूर्णमिष्टं खल्ले च भाव्योऽतिविषाद्रवेण॥२१०॥
गोलं च कृत्वा मृदुकर्पटस्थं सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्द्धकं च ।
सर्वाङ्गशीते रस एष भाव्यो धुस्तूरवह्नीमुसलीद्रवैश्च ॥
लौहस्य पात्रे परिभावितश्च सिद्धो भवेत् संग्रहणीकपाटः॥११॥

मोती, सुवर्ण, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, अभ्रक, कौडी इनकी भस्म और शुद्ध मीठातेलिया इन सबको समान भाग और सबके बराबर शङ्खकी भस्म लेवे, फिर सबको खरलमें डालकर अतीसके क्वाथमें खरल करके गोलासा बनालेवे। उस गोलेको सूक्ष्मवस्त्रमें लपेटकर किसी एक मट्टीके उत्तम पात्रमें यथाविधि बन्द करके गजपुटमें रखकर दो प्रहरतक पकावे। जब स्वांगशीतल होजाय तब औषधिको निकालकर लोहेके पात्रमें डालकर धतूरा, चीता और मुसली इनके रस व क्वाथमें अच्छे प्रकारसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस प्रकार यह संग्रहग्रहणीकपाटरस सिद्ध होता है ॥ २१० ॥ २११ ॥

वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तः पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः ॥
कफोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणाज्ययुतो ग्रहण्याम् ॥१२॥

क्षये ज्वरे चार्शसि षट्प्रकारे मान्द्यातिसारेऽरुचिपीनसेषु ।
मेहे च कृच्छ्रे गतधातुवर्द्धने गुञ्जाद्वयं चास्य महामयघ्नम् ॥१३॥

इस रसको वाताधिक्य संग्रहणीमें मिरचोंके चूर्ण और घीके साथ तथा पित्ताधिक्य संग्रहणीमें शहद और पीपलके चूर्णके साथ और कफाधिक्य संग्रहणीमें भाँगके रस अथवा घृतमिश्रित त्रिकुटेके चूर्णके साथ सेवन करना चाहिये। एवं मन्दाग्नि, क्षय, ज्वर, छः प्रकारकी बवासीर, अतिसार, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंमें और नष्ट हुई धातुकी वृद्धिके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। यह रस बडी बडी दुस्तर व्याधियोंको नष्ट करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

ग्रहणीगजेन्द्रवटिका।

रसगन्धकलौहानि शङ्खटङ्कणरामठम् ।
शठीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम् ॥ १४ ॥
धातक्यतिविषा शुण्ठी गृहधूमो हरीतकी ।
भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवंगकम् ॥ १५ ॥
त्वगेला बालकं बिल्वं मेथी शक्राशनस्य च ।
रसैः सम्मर्द्य वटिका रसवैद्येन कारिता ॥ १६ ॥
माषद्वयां वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
वयोऽग्निबलमावीक्ष्य युक्त्या वा वृद्धिवर्द्धनम् ॥ १७ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंकी कज्जली एवं लोहभस्म, शंखभस्म, सुहागा, हींग, कचूर, तालीसपत्र, नागरमोथा, धनियाँ, जीरा, सैंधानमक, धायके फूल, अतीस सोंठ, घरका धुआँ, हरड, भिलावें, तेजपात, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, सुगन्धवाला, बेलगिरी और मेथी इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर भाँगके रसमें खरल करके दो दो माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इसको अवस्था और अग्निके बलाबलका विचारकर मात्राको न्यूनाधिकता करके बकरीके दूधके साथ सेवन करना चाहिये ॥ १४-१७ ॥

ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातीसारनाशिनी ।
शूलगुल्माम्लपित्तांश्च कामलां च हलीमकम् ॥ १८ ॥
बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषे ।
कण्डूं कुष्ठं विसर्पं च गुदभ्रंशं कृमिं जयेत् ॥ १९ ॥

गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने ।
ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे ॥ २२० ॥

यह वटिका नानाप्रकारकी संग्रहणी, ज्वर, अतिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, खुजली, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिरोगको दूर करती है। एवं बल, वर्ण, अग्नि और आयुकी विशेष वृद्धि करनेवाली है । इस ग्रहणीगजेन्द्र नामक वटिकाको लोकके कल्याणकी इच्छासे श्रीमान् गहनानन्दनाथजीने निर्माण किया है । यह अत्युत्तम रसायन है ॥ १८-२० ॥

जातीफलाद्यवटिका ।

जातीफलं टङ्कणमभ्रकं च धुस्तूरबीजं समभागचूर्णम् ।
भागद्वयं स्यादहिफेनकस्य गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥ २१ ॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु ।
रोगेषु दद्यादनुपानभेदैर्युक्त्या विदध्यादतिसारवत्सु ॥ २२ ॥
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु पक्वेष्वपक्वेषु गुदामयेषु ।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥ २३ ॥

जायफल, सुहागा, अभ्रक और धतूरेके बीज प्रत्येक एकएक तोला और अफीम दो तोले लेवे । सबको एकत्र गन्धप्रसारिणीके रसमें मर्दन करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इसको संग्रहणीरोगमें शहदके साथ, अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार, शूल, पक्व व अपक्व गुदारोग आदि विकारोंमें यथादोषानुसार अनुपानके साथ विधिपूर्वक सेवन करे तो सम्पूर्ण विकार नष्ट होते हैं । इसपर दहीके साथ भातका पथ्य देना चाहिये ॥ २१--२२ ॥

बृहज्जातीफलाद्यवटिका ।

विशुद्धसूतस्य च गन्धकस्य प्रत्येकशो माषचतुष्टयं च ।
विधाय शुद्धोपलपात्रमध्ये सुकज्जलीं वैद्यवरःप्रयत्नात् ॥ २४ ॥
जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्तं सटङ्कणं सातिविषं सजीरम् ।
प्रत्येकमेषां मरिचस्य शाणप्रमाणमेकं विषमाषकं च ॥ २५ ॥
विचूर्ण्य सर्वाण्यवलोड्य पश्चाद्विभावयेत्पत्रभवैरमीषाम् ।
रसैः रसोन्मानमितै रसालवंशौ च भद्रोत्कटकंचटौ च ॥२६॥
इन्द्राणिकेन्द्राशनकं सजम्बु जयन्तिका दाडिमकेशराजौ ।
अविद्धकर्णापि च भृंगराजो विभाव्य सम्यग्वटिका विधेया२७
कोलास्थिमाना च-

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दोनोंको चार चार माशे लेकर एक उत्तम पत्थरके खरलमें डालकर अच्छे प्रकारसे मर्दन करके कज्जली बनालेवे । फिर जायफल, मोचरस, नागरमोथा, सुहागा, अतीस, जीरा और मिरच ये प्रत्येक चार चार माशे और शुद्ध मीठातेलिया एक माशे लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर पूर्वोक्त कज्जलीमें मिश्रित करके आम, बाँस, गन्धप्रसारिणी, जलपीपल, सिंह्मालू, भाँग, जामुन, अरणी, अनार, कुकुरभाँगरा, पाढ और भाँगरा इन प्रत्येक औषधिके पत्तोंके स्वरसमें पृथक् २ अच्छे प्रकारसे खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ २४-२७ ॥-

-बहुप्रकारं सामं निहन्त्यत्र यथानुपानम् ।
कुर्याद्विशेषादनलावलम्बं कासं च पञ्चात्मकमम्लपित्तम् २८॥
इयं निहन्ति ग्रहणीं प्रवृद्धां मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीमसाध्याम् ।
चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं शोथं समुग्रं गुदजानसाध्यान् २९॥
आमानुबद्धं त्वतिसारमुग्रं जयेद् भृशं योगशतैरसाध्यम् ।
विवर्जनीयास्त्विह भृष्टमत्स्या मत्स्यस्तथा पाण्डुरवर्ण एव ३०
रम्भाफलं मूलमथौदनं च बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र ।
जातीफलाद्या वटिका विधेया यशोऽर्थिनोवैद्यवरस्य हृद्या ।
अनेकसंभावितमर्त्यलोकनानाविधव्याधिपयोधिनौका ॥ ३१ ॥

यह वटी यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे नानाप्रकारके आमयुक्त विकारोंको नष्ट करतीहै और विशेषकर अग्निको दीपन करती है । एवं पाँचों प्रकारकी खांसी, अम्लपित्त, प्रबल और असाध्य संग्रहणी, बहुत पुरानी कोष्ठकी खराबी, अत्यन्त बढाहुआ शोथ, असाध्य गुदाके रोग, आमयुक्त अत्युग्र अतिसार और जो सैकडों प्रयोगोंसे भी सिद्ध न हो सके हों ऐसे असाध्य रोगोंको तत्काल नष्ट करती है । इसको सेवन करनेपर भुनीहुई मछली, पीले रंगकी मछली, केलेकी फली तथा कदलीके कन्द और भात इन पदार्थोंको कदापि भक्षण नहीं करना चाहिये । यह जातीफलाद्य वटिका यश चाहनेवाले वैद्योंके मनको हरनेवाली है और इस मनुष्यलोकमें अनेकप्रकारके रोगरूपी समुद्रमें डूबते हुए मनुष्योंको उबारनेके लिये नौकारूप है ॥ २८-३१ ॥

वडवामुख रस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रटङ्कणम् ।
सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जिसैन्धवनागरम् ॥ ३२ ॥

अपामार्गस्य च क्षारं पलाशवरुणस्य च ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यादम्लयोगेन मर्दयेत ॥
हस्तिशुण्डीद्रवैश्चाग्नौ मर्दयित्वा पुटेल्लघु ॥ ३३ ॥
माषमात्रः प्रदातव्यो रसोऽयं वडवामुखः ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति संग्रहग्रहणीं ज्वरम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताँबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सुहागा, सामुद्रिक लवण, जवाखार, सज्जी, सैन्धानमक, सोंठ, चिरचिटेका खार, ढाकका क्षार और वरनेका क्षार इन सबको समानभाग लेकर काँजीके साथ खरल करे फिर हाथीशुण्डा और चीतेकी जड़के क्वाथमें खरल करके लघुपुटमें पकावे। यह वडवामुखनामक रस एक एक माशे परिमाण सेवन करनेसे अनेक प्रकारकी संग्रहणी और ज्वरादि रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ३२-३४ ॥

ग्रहणीशार्दूलरस ।

रसगन्धकयोश्चापि कर्षमेकं सुशोधितम् ।
द्वयोः कज्जलिकां कृत्वा हाटकं षोडशांशतः ॥ ३५ ॥
लवङ्गं निम्बपत्रं च जातीकोषफले तथा ।
एतेषां कर्षचूर्णेन सूक्ष्मैलां सह मेलयेत ॥ ३६ ॥
मुक्तागृहे च संस्थाप्य प्रटपाकेन साधयेत् ।
पञ्चगुञ्जाप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ३७॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धकको एकएक कर्ष प्रमाण लेकर एकत्र खरलकर कज्जली बनालेवे. फिर उसमें सुवर्णभस्म सोलहवां भाग एवं लौंग, नीमके पत्ते, जावित्री, जायफल और छोटी इलायची इनको एकएक कर्ष चूर्ण मिलाकर एक सीपीमें अच्छे प्रकारसे बंद करके और ऊपरसे कपरौटीकर पुटपाक करे। पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर प्रतिदिन पांच पांच रत्तीकी मात्रासे भक्षण करे ॥ ३५-३७ ॥

सूतिकां ग्रहणीरोगं हरत्येष सुनिश्चितम् ।
अर्शोघ्नो दीपनश्चैव बलपुष्टिप्रसाधनः ॥ ३८ ॥
कासश्वासातिसारघ्नो बलवीर्यकरः परः ।
संग्रहग्रहणीरोगमामशूलं च नाशयेत् ॥
संसारलोकरक्षार्थं पुरा रुद्रेण भाषितः ॥ ३९ ॥

यह रस सूतिकारोग,ग्रहणी,अर्श,खांसी श्वास, अतीसार,अत्यंत प्रबल ग्रहणी और आमशूल रोगको निश्चय नष्ट करता है. एवं अग्निको दीपन करनेवाला, बल पुष्टि और वीर्यको अत्यन्त वृद्धि करनेवाला है। इस रसको पूर्वकालमें सांसारिकजीवोंकी रक्षाके लिये महादेवजीने कहा है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

महागन्धक और सर्वाङ्गसुन्दररस।

रसगन्धकयोः कर्षं ग्राह्यमेकं सुशोधितम्।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन साधयेत ॥ २४० ॥
जात्याः फलं तथा कोषं लवङ्गारिष्टपत्रके।
सिन्दुवारदलं चैव एलाबीजं तथैव च ॥ ४१ ॥
एतेषां कर्षमात्रेण तोयेन सह मर्दयेत्।
मुक्तागृहे पुनः स्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ ४२ ॥
घनपङ्के बहिर्लिप्त्वा पुटमध्ये निधापयेत्।
गुञ्जाषट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको एक एक कर्ष लेकर कज्जली बनालेवे फिर उसमें जल मिलाकर लोहेके पात्रमें मन्द मन्द अग्निसे कुछ देरतक पकावे पश्चात् उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीमके पत्ते, निर्गुंडीके पत्ते और छोटी इलायची इन प्रत्येकका एक एक कर्ष चूर्णको मिलाकर जलके साथ खरल करे। फिर इस औषधिको एक सीपीमें भरकर और दूसरी सीपीसे बन्दकरके केलोंके पत्तोंसे लपेटकर ऊपरसे गाढी २ कीचडका लेप करके आरने उपलोंकी अग्निमें रखकर पुटपाक करे। जब वह पककर लालवर्ण होजाय तब निकालकर शीतल होनेपर खरल करलेवे। इस रसको प्रतिदिन छः रत्ती प्रमाण यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करना चाहिये ॥ २४०-४३ ॥

ज्वरघ्नं दीपनं चैव बलवर्णप्रसादनम्।
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम् ॥ ४४ ॥
सूतिकां च जयेदेतद्रक्तार्शो रक्तसम्भवम्।
कासश्वासातिसारघ्नं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ४५ ॥

यह रस ज्वर, दुस्साध्य संग्रहणी, प्रवाहिका, सूतिकारोग, रक्तार्श, खाँसी, श्वास, अतिसारआदि रोगोंको शीघ्र दूर करताहै तथा अग्निप्रदीपक, बल, वर्णको प्रसन्न करनेवाला और उत्तम वाजीकरण औषधि है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

एतत् प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम् ।
बालरोगं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ४६ ॥
पिशाचा दानवा दैत्या बालानां ये विघातकाः ।
यत्रौषधवरस्तिष्ठेत् तत्र सीमां त्यजन्ति ते ॥ ४७ ॥
बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणां चापि विशेषतः ।
महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥
विना पाकेन सर्वाङ्गसुन्दरोऽयं प्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥

यह रस विशेषकर बालकोंकी रक्षाके लिये कहा गया है। बालकोंके सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। जिस स्थानमें यह उत्तम औषधि रहती है वहाँ बालकोंके प्राणोंको हरनेवाले पिशाच, दैत्य और दानव आदि नहीं ठहर सकते। यह महागन्धक नामक रस रोगसे पीडित बालकों और विशेषकर स्त्रियोंके सब प्रकारके रोगोंको दूर करता है। इस रसकी यदि विना पुटपाक किये औषधियोंको एकत्र तपाये जलमें खरलकर गोली बना ली जाय तो इसको सर्वाङ्ग-सुन्दर रस कहते हैं ॥२४६-४८॥ वैद्यनाथ वटी।

रसस्य शाणं संगृह्य काञ्जिकेन तु शोधयेत् ।
चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥ ४९ ॥
रसार्द्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वा ।
द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसम्मितैः ॥ २५० ॥
खल्लयेत्तु शिलाखल्ले क्रमशो वक्ष्यमाणजैः ।
निर्गुण्डीमण्डुकीश्वेताकुचेलाग्रीष्मसुन्दरैः ॥ ५१ ॥
भृङ्गाह्वकेशराजैश्च जयेन्द्राशनकोत्कटैः ।
सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥ ५२ ॥
आमवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ।
वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ॥ ५३ ॥
दातव्या गुटिकाः सप्त रोगिणे ग्रहणीगदे ।
अम्लतक्रादि सेव्यं तु कुर्वीत स्वेच्छया बहु ॥ ५४ ॥
श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा ।
स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखितापि च ॥ ५५ ॥

पारेको चार माशे परिमाण लेकर कांजी, चीतेके क्काथ और त्रिफलेके क्काथमें क्रमसे भावना देकर शुद्ध करे । फिर दो माशे गंधकको भांगरेके रसमें शुद्ध करके एकत्र पारेके साथ खरलकर पश्चात् एक पत्थरके खरलमें निर्गुण्डीके पत्ते, ब्राह्मी, सफेद कोयल, पाढ, ग्रीष्मसुन्दर (शालिंचशाक), कुकुरभांगरा, अरणी, भांग और दारचीनी इन प्रत्येकके चार चार मासे रसमें क्रमसे मर्दन करके सरसोंकी बराबर गोलियां बनालेवे । इसको ग्रहणीरोग, आमवात, मंदाग्नि, ज्वर, प्लीहा, उदररोग, वात-कफरोग और कफविकारमें सेवन करावे । संग्रहणीरोगमें इसको एक साथ सात गोली देवे और ऊपरसे दहीकी तोड अथवा तक्रको यथेच्छरूपसे सेवन करावे । इससे संग्रहणीरोग नष्ट होता है ॥ ४९-२५५ ॥

खसर्पणवटी ।

पक्वेष्टकाहरिद्राभ्यामागारधूमकेन च ।
शोधितं पारदं चैव कर्षार्द्धं तुलया धृतम् ॥ ५६ ॥
भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं रससम्मितम् ।
द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा भावयेत्तत्तु भेषजैः ॥ ५७ ॥
सिन्दुवारदलरसे मण्डूकपर्णिकारसे ।
केशराजरसे चापि ग्रीष्मसुन्दरजे रसे ॥ ५८ ॥
रसेऽपराजितायाश्च सोमराजीरसे तथा ।
रक्तचित्रकपत्रोत्थे रसे च परिभावितम् ॥ ५९ ॥
रसमानसमानेन च्छायायां शोषयेद्भिषक् ।
सर्षपाभाश्च गुडिकाः कारयेत कुशलो भिषक् ॥ २६० ॥

पक्की ईंटके चूर्ण, हल्दीका चूर्ण और घरका धुआँसा इन तीनोंके द्वारा शुद्ध किया हुआ पारा एक तोला और भाँगरेके रससे शुद्ध किया हुआ गन्धक एक तोला लेवे दोनोंकी एकत्र कज्जली बनाकर निर्गुण्डीके पत्ते, ब्राह्मी, कुकुरभाँगरा, ग्रीष्मसुन्दर (शालिंचशाक), बापची और लालचीतेक पत्ते इन प्रत्येक औषधिके एकएक तोला रसमें पृथक् २ खरल कर सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे ॥ ५६-२६० ॥

ततः सप्त वटीर्दद्याद्दधिमस्तुसमाप्लुताः ।
नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं कोष्ठदुष्टिनिवृत्तये ॥ ६१ ॥

ग्रहणीमतिसारं च ज्वरदोषं च नाशयेत् ।
अग्निदार्ढ्यकरं श्रेष्ठमामपर्पटिकाद्वयम् ॥ ६२ ॥

संग्रहणीरोगवाले मनुष्यको इसकी सात सात गोली दहीके पानीके साथ मिलाकर देनी चाहिये । इसपर कोष्ठदोषके निवारण करनेके लिये प्रतिदिन दहीके साथ भोजन करना चाहिये । इससे संग्रहणी, अतिसार और ज्वर दूर होता है । एवं अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

रसाभ्र वटी ।

शुद्धसूतस्य कर्षैकं कर्षैकं गन्धकस्य च ।
द्वयोःकज्जलिकां कृत्वा तुल्यं व्योम प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्डयाश्चित्रकस्य च ।
ग्रीष्मसुन्दरमण्डूकीजयन्तीन्द्राशनस्य च ॥ ६४ ॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं च मरिचोद्भवम् ॥ ६५ ॥
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम् ।
सम्मर्द्य वटिकां कुर्यात् कलायसदृशीं बुधः ॥ ६६ ॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवां रुजम् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ६७ ॥
चातुर्थिके ज्वरे श्रेष्ठो ग्रहण्यातङ्कनाशनः ।
दधि चावश्यकं देयं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारा १ कर्ष और शुद्ध गन्धक १ कर्ष दोनोंकी कज्जली करके उसमें दो कर्ष अभ्रककी भस्म मिलाकर उसको कुकुरभाँगरा, सिह्माल्‌, चीता, ग्रीष्मसुन्दर, ब्राह्मी, अरणी, भाँग, सफेदकोयल और पान इनके एकएक कर्ष प्रमाण रसमें क्रमसे अलग २ खरल करके कालीमिरचोंका चूर्ण एक कर्ष और सुहागा आधा कर्ष दोनोंको मिलाकर अच्छे प्रकारसे खरलकरके मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह वटी खाँसी, क्षय, श्वास, वात कफजन्यविकार, ज्वर, अतीसार, चातुर्थिक ज्वर और संग्रहणी इन सब रोगोंको नष्ट करती है । इसपर दही अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ६३-६८ ॥

महाभ्रवटी ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् ।
कुनटी टङ्कणक्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥ ६९ ॥

गरलस्य तथा माषचतुष्कं चैव चूर्णयेत् ।
तत्सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ २७० ॥
देवराजाशनाख्यस्य केशराजाख्यकस्य च ।
सोमराजस्य भृङ्गाख्यराजस्य श्रीफलस्य च ॥ ७१ ॥
पारिभद्राग्निमन्थस्य वृद्धदारस्य तुम्बुरोः ।
मण्डूकपर्णीनिर्गुण्डीपूतिकोन्मत्तकस्य च ॥ ७२ ॥
श्वेतापराजितायाश्च जयन्त्याश्चार्द्रकस्य च ।
ग्रीष्मसुंदरकस्याटरूषकस्य रसेन तु ॥ ७३ ॥
रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च पत्रोत्थैर्भावयेत् पृथक् ।
द्रव्ये किञ्चित् स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ॥ ७४ ॥
ततश्चैव वटीं कुर्यात्–

अभ्रकभस्म, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, शुद्ध गंधक, शुद्ध पारा, मैनसिल सुहागा, जवाखार, हरड, आमला, बहेडा ये प्रत्येक चार चार तोले और शुद्ध मीठातेलिया चार माशे लेकर प्रथम पारे और गंधककी कज्जली करके सबको खरल करके एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर भांग, कुकुरभांगरा, बापची, भांगरा, बेलपत्र, फरहद, अरणी, विधारा, तुम्बुरू, ब्राह्मी, सिह्मालू, दुर्गन्ध करंज, धतूरेके पत्ते श्वेत अपराजिता (सफेदकोयल), जयन्ती, अदरख, ग्रीष्मसुन्दर, अडूसा और पान इन प्रत्येक औषधिके पत्तोंके चार चार तोले रसमें पृथक् २ भावना देवे, जब कुछ रस शेष रहजाय तब उसमें कालीमिरचोंका चूर्ण चार तोले मिलाकर और अच्छे प्रकारसे खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियां बनालेवे ॥ ६९-२७४ ॥–

–मात्रां दद्याद्यथोचिताम् ।
ज्वरे चैवातिसारे च कासे श्वासे क्षये तथा ॥ ७५ ॥
सन्निपातज्वरे चैव विविधे विषमज्वरे ।
क्षयरोगेषु सर्वेषु क्षीणशुक्रे च यक्ष्मणि ॥ ७६ ॥
ग्रहण्यां चिरभूतायां सूतिकायां विशेषतः ।
शोथे शूले तथाऽसाध्ये स्थविरे चामवातके ॥ ७७ ॥
मन्दानलेऽबले चैव सकले श्लेष्मजे गदे ।
पीनसेऽपीनसे चैव पक्वेऽपक्वे विशेषतः ॥ ७८ ॥

वातश्लेष्मणि वाते वा विविधे चेन्द्रियस्थिते ।
वातवृद्धे पित्तवृद्धे बलासानावृतेऽपि च ॥ ७९ ॥
अष्टसूदररोगेषु कुष्ठरोगेषु शस्यते ।
अजीर्णे कर्णरोगे च कृशे स्थूले च यक्ष्मणि ॥ ८० ॥
अयं सर्वगदेष्वेव रसो वै परिकीर्त्तितः ।
महाभ्रवटिका सेयं परा श्रेष्ठा रसायने ॥ ८१ ॥

इन गोलियोंको यथोचितमात्रासे सेवन करनेसे ज्वर, अतीसार, श्वास, खांसी, क्षय, संनिपातज्वर विविधप्रकारके विषमज्वर, सब प्रकारके क्षयरोग, शुक्रकी क्षीणता, राजयक्ष्मा, पुरानी संग्रहणी, विशेषकर सूतिकारोग, स्थविर, आमवातरोग, मन्दाग्नि, निर्बलता, सर्वप्रकारके कफरोग, पीनस, पक्क अपक्क अपीनसरोग, वातश्लेष्म, अनेक प्रकारके वातरोग, आठ प्रकारके उदररोग, कुष्ठरोग आदि नष्ट होते हैं । यह महाभ्रवटिका अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है ॥ ७९-२८१॥

पीयूषवल्लीरस ।

सूतकं गन्धकं चाभ्रं तारं लौहं सटङ्कणम् ।
रसाञ्जनं माक्षिकं च शाणमेकं पृथक् पृथक् ॥ ८२ ॥
लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ।
समङ्गाऽतिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ॥ ८३ ॥
जातीफलं विश्वबिल्वं कनकं दाडिमीच्छदम् ।
समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ॥ ८४ ॥
भावयेत् सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः ।
चणकाभा वटी कार्या छागीदुग्धेन पेषिता ॥ ८५ ॥

शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली ८ माशे एवं अभ्रक, रौप्यभस्म, लोहभस्म सुहागा, रसौंत, सोनामाखी, लौंग, लालचन्दन, नागरमोथा, पाढ, जीरा, धनियाँ, लज्जावंती, अतीस, लोध, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, जायफल, सोंठ, बेलगिरी, धतूरेके बीज, अनारका बक्कल, वराहक्रान्ता, धायके फूल और कूठ प्रत्येक चार चार माशे लेवे । सबको एकत्र पीसकरके कुकुरभाँगरेके रसकी बारम्बार भावना देवे । फिर बकरीके दूधमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ८२-८५ ॥

अनुपानं प्रदातव्यं दग्धबिल्वसमं गुडम् ।
अतिसारं ज्वरं तीव्रं रक्तातीसारमुल्वणम् ॥ ८६ ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं तथा ।
आमशूलविबन्धघ्नः संग्रहग्रहणीहरः ॥ ८७ ॥
पिच्छामदोषं विविधं पिपासादाहरोगकम् ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिगुदभ्रंशं सुदारुणम् ॥ ८८ ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
कृष्णारुणं च पीतं च मांसधावनसन्निभम् ॥ ८९ ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहसूतिकारोगसङ्करम् ।
असृग्दरं निहन्त्येव वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ २९० ॥
कामलां पाण्डुरोगं च प्रमेहानपि विंशतिम् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु मासार्द्धं नात्र संशयः ॥ ९१॥
पीयूषवल्लीवटिका अश्विभ्यां निर्मिता पुरा ।
कश्यपाय ददेऽश्विभ्यां ततः प्राप प्रजापतिः ॥ ९२ ॥
धन्वन्तरिस्ततः प्राप देवतानां पतिस्ततः ।
परम्पराप्राप्त एष रसस्त्रैलोक्यदुर्लभः ॥ ९३ ॥

इस रसको समान भाग मिश्रितकर भुनेहुए बेल और गुड़के साथ सेवन करानेसे अतिसार, ज्वर, प्रबल अतिसार, बहुत पुरानी संग्रहणी, सूजन, बवासीर, आमशूल, विबन्धयुक्त संग्रहणी, पिच्छिलता, आमदोष, प्यास, दाह, उबकाई, अरुचि, वमन, दारुण गुदभ्रंश, पक्व अथवा अपक्व तथा विविध प्रकारकी पीड़ायुक्त अतिसार, काला, लाल, पीला और मांसके धोवनकी समान वर्णवाला अतिसार, प्लीहा (तिल्ली), गुल्म, उदररोग, अफारा, सूतिकारोग, रक्तप्रदर, वन्ध्यात्व, कामला, पाण्डु और बीसों प्रमेह इन सब रोगोंको यह रस एक पक्षमें ही निस्सन्देह नष्ट कर देता है तथा गर्भको उत्पन्न करता है । यह पीयूषवल्लीनामक बटी अश्विनी कुमारोंसे प्राप्तहुई थी ॥ ८६-९३ ॥

पानीयभक्तवटी ।

कृष्णाभ्रलौहमलशुद्धविडङ्गचूर्णं
प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद् विधाय ।

चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराज-
दन्तीपयोदचपलानलघण्टकर्णाः ॥ ९४ ॥
माणोल्लकन्दबृहतीत्रिवृताः समूर्व्या-
वर्त्ताः पुनर्नविकया सहितास्त्वमीषाम् ।
मूलं प्रति प्रतिविशोधितमक्षमेकं
चूर्णं तदर्द्धरसगन्धकमेकसंस्थम् ॥ ९५ ॥

काला अभ्रक, शुद्ध लोहमल (मण्डूर), वायविडङ्ग ये प्रत्येक ४-४ तोले एवं चव्य, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, कुकुरभाँगरा, दन्तीकी जड, नागरमोथा, पीपल, चीतेकी जड, मोघावृक्ष, मानकन्द, जिमीकन्द, बडी कटेरी, निसोत, हुलहुल और विषखपरा इन प्रत्येकके मूलका शुद्ध चूर्ण दो दो तोले और शुद्ध पारा गन्धककी कज्जली एक तोला लेवे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कृत्वाऽऽर्द्रकीयरससंवलितं च भूयः
संपिष्य तस्य वटिका विधिवद् विधेया ।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां
दुर्नामकामलभगन्दरशोथगुल्मान् ॥ ९६ ॥
शूलं च पाकजनितं सतताग्निमान्द्यं
सद्यः करोत्युपचितिं चिरनष्टवह्नेः ।
कुष्ठं निहन्ति पलितं च वलिं प्रवृद्धां
श्वासं च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ९७ ॥
वायन्नमांसदधिकाञ्जिकतक्रमत्स्य-
वृक्षाम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम् ।
शृङ्गाटबिल्वगुडकञ्चटनारिकेल-
दुग्धानि सर्वविदलानि विवर्ज्जयेत्तु ॥ ९८ ॥

फिर सबका एकत्र अदरखके रसमें भावना देकर और उसीमें फिर उत्तम प्रकारसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी अम्लपित्त, अरुचि, असाध्य संग्रहणी, बवासीर, कामला, भगन्दर, शोथ, गुल्म, शूल, निरन्तर अग्निकी मन्दता, कुष्ठ, पलित (विना अवस्थाके ही बालोंका सफेद होजाना), वलि (विनाही अवस्थाके शरीरमें बलियोंका पडजाना), श्वास, खांसी, पण्डुरोगप्रभृति रोगोंको शीघ्र

नष्ट करती है। और बहुत दिनोंसे नष्ट हुई अग्निको तत्काल दीपन करती है। इसपर बासी अन्न, मांस, दही, काँजी, छाछ, मछली, चूका और तेल ये पदार्थ यथेच्छरूपसे सेवन करना चाहिये। एवं सिंघाडे, बेलगिरी, गुड, जलचौलाई, नारियल, दूध और सब प्रकारकी दालें इनको त्याग देना चाहिये॥ ९६-९८॥

श्रीनृपतिवल्लभ रस।

जातीफललवङ्गाब्दत्वगेला टङ्करामठम्।
जीरकं तेजपत्रं च यमानी विश्वसैन्धवम्॥ ९९॥
लौहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम्।
मरिचं द्विपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत्॥ ३००॥
धात्रीरसेन वा पेष्यं वटिकां, कुरु यत्नतः।
श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्म्मितः॥ १॥
सूर्यवत्तेजसा चायं रसो नृपतिवल्लभः।
अष्टादशवटीं खादेत् पवित्रः सूर्यदर्शकः॥ २॥

जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, सुहागा, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सैंधानमक, लोहा, अभ्रक, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक चार चार तोले एवं काली मिरचोंका चूर्ण ८ तोले लेकर सबको एकत्र बकरीके दूधमें खरल करे फिर आमलोंके रसमें खरल करके उचित मात्रासे गोलियाँ तैयार करलेवे। नृपतिवल्लभनामक यह रस सूर्यके समान तेजवाला है। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल शौचादिसे शुद्ध होकर अठारह गोली सेवन करे॥ ९९-३०२॥

हन्ति मन्दानलं सर्वमामदोषं विषूचिकाम्।
प्लीहगुल्मोदराष्ठीलायकृत्पाण्डुत्वकामलाम्॥ ३०३॥
हृच्छूलं कुक्षिशूलं च पार्श्वशूलं तथैव च।
कटिशूलं कुक्षिशूलमानाहमष्टशूलकम्॥ ३०४॥
कासश्वासामवातांश्च श्लीपदं शोथमर्बुदम्।
गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तं च गर्दभीम्॥ ३०५॥
कृमिकुष्ठानि दद्रूणि वातरक्तं भगन्दरम्।
उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शःप्रमेहकम्॥ ३०६॥

अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं सुदारुणम् ।
ज्वरं जीर्णं तथा पाण्डुं तन्द्रालस्यभ्रमं क्लमम् ॥ ३०७ ॥
दाहं च विद्रधिं हिक्कां जडगद्गदमूकताम् ।
मूढं च स्वरभेदं च बृध्नवृद्धिविसर्पकान् ॥ ३०८ ॥
ऊरुस्तम्भं रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुची तृषाम् ।
कर्णनासामुखोत्थांश्च दन्तरोगांश्च पीनसान् ॥ ३०९ ॥
शोथं च शीतपित्तं च स्थावरादिविषाणि च ।
वातपित्तकफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान् ॥ ३१० ॥
सर्वानेव गदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा ।
बलवर्णकरो हृद्य आयुष्यो वीर्यवर्द्धनः ॥ ३११ ॥
परं वाजीकरः श्रेष्ठः पटुदो मन्त्रसिद्धिदः ।
अरोगी दीर्घजीवी स्याद्रोगी रोगाद्विमुच्यते ।
रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान् जायते नरः ॥ ३१२ ॥

यह रस-मन्दाग्नि, आमदोष, विषूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, यकृत, पाण्डु, कामला, हृदयशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल, आनाह, आठ प्रकारके शूल, श्लीपद, खाँसी, श्वास, वात, आमवात, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, अम्लपित्त, गर्दभी, कृमि, कुष्ठ, दद्रु, वातरक्त, भगन्दर, उपदंश, संग्रहणी, अतिसार, बवासीर, प्रमेह, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, दारुण मूत्राघात, जीर्णज्वर, पांडु, तन्द्रा, आलस्य भ्रम, ग्लानि, दाह, विद्रधि, हिक्कारोग, जडता, मूकता, गद्गदता, मूढता, स्वरभेद, बृध्न (बद), अंडवृद्धि, विसर्प, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, अरुचि, तृषा, कान नाक मुख और दाँतोंके रोग, पीनस, शोथ, शीतपित्त, स्थावर आदि विष, वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुए, द्वन्द्वज, सान्निपातिक सम्पूर्णरोगोंको शीघ्रही नष्ट करता है । बल वर्णको उत्पन्न करनेवाला, हृदयको हितकारी, आयु और वीर्यके बढानेवाला है तथा अत्यन्त वाजीकरण है । चातुर्य और मन्त्रकी सिद्धिको देनेवाला है । इस रसके प्रतापसे रोगी सब रोगोंसे मुक्त होजाता है और अरोगी दीर्घजीवी और अत्यन्त बुद्धिमान् होता है ॥ ३०३-३१२ ॥

बृहन्नृपवल्लभ ।

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रं त्रिवृत्समम् ।
टङ्कं जातीफलं हिङ्गु त्वगेलाब्दलवङ्गकम् ॥ १२ ॥

तेजपत्रमजाजी च यमानी विश्वसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं मरिचन्तारयोस्तथा ॥ १४ ॥
निरुत्थकं मृतं हेम तथा द्वादशरक्तिकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव धात्र्याश्च स्वरसेन च ॥ १५ ॥
भावयित्वा प्रदातव्यो माषद्वयप्रमाणतः ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्षेद् यथेप्सितम् ॥ १६ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णं च दुर्नामग्रहणीं जयेत् ।
आमाजीर्णप्रशमनः सर्वरोगनिषूदनः ॥ १७ ॥
नाशयेदुदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ १८ ॥
" ग्रन्थान्तरेऽस्य राजवल्लभ इति संज्ञा ॥ "

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सीसेकी भस्म, चीतेकी जड, निसोत, सुहागा, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, नागरमोथा, लौंग, तेजपात, कालाजीरा, अजवायन, सोंठ, सैंधानमक, कालीमिरच और रौप्यभस्म प्रत्येक एक एक तोला एवं स्वर्णभस्म बारह रत्ती सबको एकत्रकर अदरख और आंमलोंके रसमें पृथक् पृथक् भावना देकर दो दो माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे और यथेच्छ आहार विहार करे। यह रस मन्दाग्नि, अजीर्ण, बवासीर, ग्रहणी, आमाजीर्ण, उदररोग और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको नष्ट करता है । " अन्य ग्रन्थकार इस बृहन्नृपवल्लभ रसको राजवल्लभ भी कहते हैं" ॥ १३-१८ ॥

महाराज नृपतिवल्लभ ।

कर्षत्रयं मृतं कान्तं मृताभ्रं मृतताम्रकम् ।
मृतं तारं माक्षिकं च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ॥ १९ ॥
मृतं स्वर्णं मृतं तारं टङ्कणं शृङ्गमेव च ।
वसिरं दन्तिमूलं च मारिचं तेजपत्रकम् ॥ २० ॥
यमानी बालकं मुस्तं शुण्ठकं च सधान्यकम् ।
सिन्धूद्भवं सकर्पूरं विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥ २१ ॥
पारदं गन्धकं चैव तोलमानं प्रदापयेत् ।
तोलद्वयं त्रिवृच्चूर्णं लवङ्गं तच्चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥

जातीकोषफले चैव तत्समं तु वराङ्गकम् ।
सर्वेषामर्द्धभागं तु विडकं तत्र मिश्रयेत् ॥ २३ ॥
सर्वमेकीकृतं यद्यत् त्रुटिचूर्णं च तत्समम् ।
भावना च प्रदातव्या च्छागीदुग्धेन सप्तधा ॥ २४ ॥
मातुलुङ्गरसैः पश्चाद् भावयेत सप्तवारकम् ।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा भक्षयेद्दशरक्तिकाम् ॥ २५ ॥

कान्तलोहभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, मोतीकी भस्म और सोनामाखी ये प्रत्येक एकएक कर्ष, एवं सोना चाँदीकी भस्म, सुहागा, काकडासिंगी, गजपीपल, दन्तीकी जड, मिरच, तेजपात, अजवायन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ, धनियां, सेंधानमक, कपूर, वायविडङ्ग, चीता, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक एक एक तोला, निसोतका चूर्ण दो तोले तथा लौंग, जावित्री और दालचीनी ये प्रत्येक आठ आठ तोले इन सब औषधियोंके चूर्णसे आधा भाग विरियासंचरनमक और समस्त चूर्णकी बराबर छोटी इलायचीका चूर्ण लेवे । फिर इन सबको एकत्र करके बकरीके दूधमें सात बार खरल करके बिजौरे नींबूके रसमें सातबार खरल करे फिर छायामें सुखाकर दस दस रत्तीकी गोलियाँ बनाकर भक्षण करे ॥ १९-३२५ ॥

मन्दानलं संग्रहणीं प्रवृद्धामामानुबन्धीं कृमिपाण्डुरोगम् ।
छर्द्यम्लपित्तं हृदयामयं च गुल्मोदरानाहभगन्दरं च ॥ २६ ॥
अर्शांसि वै पित्तकृतानशेषान् सामं सशूलाष्टकमेव हन्ति ।
साजीर्णविष्टम्भविसर्पदाहं विलम्बिकां चाप्यलसं प्रमेहम् ॥ २७
कुष्ठान्यशेषाणि च कासशोषं हन्यात् सशोथं ज्वरमूत्रकृच्छ्रम् ।
मतान्तरे सर्वतोभद्रनाम महेश्वरेणैव विभाषितोऽयम् ॥ २८ ॥

इससे मन्दाग्नि, प्रबल संग्रहणी, कृमि, पाण्डुरोग, वमन, अम्लपित्त, हृदयरोग अर्शादि उपर्युक्त समस्त रोग दूर होते हैं । कोई २ आचार्य इस रसको सर्वतोभद्र कहते हैं ॥ २६-३२८ ॥

महाराजनृपवल्लभ ।

माक्षिकं लौहमभ्रं च वङ्गं रजतहाटकम् ।
ग्रन्थिपर्णमानिका चोचं ताम्रं नागरटङ्कणम् ॥ २९ ॥

सैन्धवं बालकं मुस्तं धन्याकं गन्धकं रसम् ।
शृङ्गी कर्पूरकं चैव प्रत्येकं माषकोन्मितम् ॥ ३३० ॥
माषद्वयं रामठं स्यान्मरिचानां चतुष्टयम् ।
जातीकोषं लवङ्गं च पत्रं च तोलकोन्मितम् ॥ ३१ ॥
नाभिशङ्खं विडङ्गं च शाणं माषद्वयं विषम् ।
कर्षषट्कं सत्रिमाषं सूक्ष्मैलानां ततः क्षिपेत् ॥ ३२ ॥
विडं कर्षद्वयं सर्वं छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
चतुर्गुञ्जामितां खादेत् सानाहग्रहणीं जयेत् ॥ ३३ ॥
शम्भुना निर्मितो ह्येष पूर्ववद् गुणकारकः ।
नाम्ना महाराजपूर्वो नृपवल्लभ उच्यते ॥ ३४ ॥

सोनामाखी, लोहेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, वङ्गकी भस्म, चाँदीकी भस्म, सुवर्णकी भस्म, पीपलामूल, अजवायन, दालचीनी, ताँबेकी भस्म, सोंठ, सुहागा, सैंधानमक, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनियाँ, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, काकडासिंगी और कपूर ये प्रत्येक एक एक मासा, हींग दो मासे, कालीमिरचोंका चूर्ण चार मासे, जावित्री, लौंग और तेजपात प्रत्येक एक एक तोला, शंखनाभिकी भस्म और वायविडङ्ग प्रत्येक चार चार मासे शुद्ध मीठा तेलिया दो मासे, छोटी इलायचीका चूर्ण ८ मासे और बिरियासंचरनमक २ कर्ष लेवे । सबको एकत्र चूर्ण करके बकरीके दूधमें खरल करे । फिर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे । इसके सेवनसे आनाहयुक्त संग्रहणी नष्ट होती है और यह पूर्वोक्त प्रयोगकी समान गुण करता है । इसको शिवजीने निर्माण किया है । यह रस महाराजनृपवल्लभ नामसे प्रसिद्ध है ॥ २९-३३४ ॥

अथ रसपर्पटी ।

श्रीविन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वन्तरिं च सुरभिषजम् ।
रसगन्धकपर्पटिकापरिपाटीपाटवं वक्ष्ये ॥ १ ॥
अत्र पारदस्य नैसर्गिकदोषत्रयशोधनं चावश्यं कार्यम् ।
यदुक्तम्—
"मलशिखिविषनामानो रसस्य नैसर्गिका दोषाः ।
मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण हिक्कां च ॥

गृहकन्या हरति मलं त्रिफला वह्निं चित्रक च विषम् ।
तस्मादेभिर्वारान् संमूर्च्छयेत् सप्तसप्तैव ॥ " इति ॥
मर्द्य रसे जयन्त्याः पश्चादेरण्डसम्भूते ।
आर्द्रकरसे च सूत पत्ररसे काकमाच्याश्च ॥ २ ॥
मर्दनमुदितानुपूर्व्या मर्दनशुष्कं करेण गृह्णीयात् ।
प्रस्तरभाजनमध्ये शुद्धिरियं पारदस्योक्ता ॥ ३ ॥

श्रीविंध्याचलवासी (व्याडिमुनि) को और भगवान् धन्वन्तरिको प्रमाण करके मैं पारे और गन्धककी पर्पटीकी उत्तम विधिको कहता हूं । पर्पटीको प्रस्तुत करनेसे पहले इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा पर्पटीके लिये लेना योग्य है–पारेके मलदोष, अग्निदोष और विषदोष करके तीन दोष हैं, मलदोषसे मूर्च्छा, अग्निसे दाह और विषसे हिक्का होती है, इसलिये इनको अवश्य दूर कर देने चाहिये । उसकी प्रणाली यह है कि, ८ तोले पारेको घीग्वारके रसमें मर्दन करनेसे उसका मलदोष दूर होता है, त्रिफलेके चूर्णमें मर्दन करनेसे अग्निदोष दूर होता है । चीतेके पत्तोंके रसमें खरल करनेसे विष दूर होता है । इस प्रकार पारेके दोषोंको दूर करके उसको अरणीके पत्ते, एरण्डके पत्ते, अदरख और मकोयकेपत्ते इनके रसोंमें पृथक् २ मिलाकर क्रमपूर्वक पत्थरके पात्रमें मर्दन करके शोषण करे । पारेकी यह शुद्धि करनी चाहिये ॥ १–३ ॥

शुकपुच्छसमच्छायो नवनीतसमद्युतिः ।
मसृणः कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठो गन्धक इष्यते ॥ ४ ॥
कृत्वा भद्रं गन्धकमतिकुशलं क्षुद्रतण्डुलाकारम् ।
तद्भृङ्गराजरसैरनन्तरं भावयेत् पात्रे ॥ ५ ॥
तदनु शुष्कं कुर्यात् धूलिसमानं च सप्तधा रौद्रे ।
तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यस्य लौहिकामध्ये ॥६॥
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम् ।
पात्रस्थितभृङ्गराज रसमध्ये ढालयेन्निपुणः ॥ ७ ॥
तस्मिन् प्रविष्टमात्रं कठिनत्वं याति गान्धकं चूर्णम् ।
पुनरपि रौद्रे शुष्कं केतकरजसा समानतां नीतम् ॥ ८ ॥

१ गृहकन्या–घृतकुमारी तस्या दलरसेन खल्लनम् त्रिफलायाश्चूर्णेन खल्लनम् । चित्रकस्य पत्ररसेन मूर्च्छनम् । तदेवं नैसर्गिकदोषापहारानन्तरं जयन्त्यादिद्रव्यचतुष्टयरसेन मूर्च्छनमधिगन्तव्यम् ॥

फिर तोतेकी पूँछके समान या नवनीतके समान कान्तिवाला, कोमल कठिन और स्निग्ध ऐसा गन्धक श्रेष्ठ होता है। ऐसे गन्धकको ८ तोले लेकर उसके चावलोंके समान छोटे-छोटे टुकडे करके पत्थरके पात्रमें भाँगरेके रसकी ७ बार भावना देवे और ७ बार धूपमें सुखावे। फिर धूलिकी समान बारीक चूर्ण करके उसको लोहेकी करछीमें रखकर धुएँरहित बेरीके अंगारोंपर पकावे। यह तेलकी समान पिघला होजाय तब भाँगरेके रसमें डाल देवे। उसमें डालतेही गन्धक सख्त होजाता है। उसको निकालकर और धूपमें सुखाकर केतकीके फूलोंकी रजकी समान चूर्ण करलेवे ॥ ४-८ ॥

शुद्धे सूते शोधितगन्धकचूर्णेन तुल्यता कार्या।
तावन्मर्दनमनयोर्यावन्न कणोऽपि दृश्यते सूते ॥ ९ ॥
पश्चात् कज्जलसदृश चूर्णं लौहीस्थितं प्रयत्नेन।
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम् ॥ १० ॥
सद्यो गोमयनिहिते कदलदले चालयेन्मृदुनि।
लौहीस्थितमवशिष्टं कठिनं तन्न ग्रहीतव्यम् ॥
पश्चात् पर्पटरूपा पर्पटिका कीर्त्यते लोकैः ॥ ११ ॥

इस प्रकार शोधित पारे और गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करे, दोनों को तबतक मर्दन करे-जबतक पारेके सूक्ष्म कण दीखने बन्द होजाय. जब घुटते २ सब चूर्ण कज्जलकी समान कृष्णवर्ण होजाय तब उसको लोहेकी करछीमें रखकर धुएँरहित बेरीके लकडीके अंगारोंपर तेलकी समान पतला करके गोबरके ऊपर एक केलेके कोमल पत्तेको रखकर उसमें उक्त पिघलीहुई कज्जलीको ढालदेवे और तत्कालही दूसरे केलेके पत्तेसे ढककर उसपर गोबर रखकर किसी कपडे की पोटलीसे उसे दाब देवे, जिससे कि वह रस पर्पटीके आकारमें होजाय और जो करछीमें पिघली हुई कज्जलीका कठिन अंश शेष रहजाय उसको ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार यह रसपर्पटी सिद्ध होती है ॥ ९-११ ॥

मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते।
तत्र सिद्धं विजानीयाद्वैद्यो नैवात्र संशयः ॥ १२ ॥

पर्पटीकी परीक्षा यह है-कि, जो पर्पटी मोरकी पूँछकी चन्द्रिकाके समान कान्ति हो वह पर्पटी उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुई जाननी चाहिये ॥ १२ ॥

समुदितपात्रे भरणाददनीया पर्पटी मनुजैः ।
जीरकगुञ्जे हिङ्गोरर्द्धं खादेच्च वातले जठरे ॥ १३ ॥
जीरकहिङ्ग्वो रसतस्त्वनुपानं सलिलधारया कार्यम् ।
रसगन्धकपर्पटिकाभक्षणमात्रे तु नाम्भसः पानम् ॥ १४ ॥

इस पर्पटीको वातप्रधान उदररोगमें दो रत्ती जीरे और १ रत्ती हींगके चूर्णके साथ सेवन करे किन्तु भुनेहुए जीरे और भुनीहुई हींगको जलमें घोलकर उसका अनुपान करना चाहिये और पर्पटीको भक्षण करके अनन्तर जलपान नहीं करना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

प्रथमं गुञ्जायुगलं प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम् ।
दशगुञ्जापरिमाणान्नाधिकमदनीयमेकविंशतिदिनानि ॥ १५ ॥

पहले दिन इसको २ रत्ती प्रमाण देवे । फिर प्रतिदिन एक एक रत्तीकी मात्रा बढाकर १० रत्तीतक सेवन करावे और फिर प्रतिदिन १-१ रत्ती घटाकर सेवन करावे इस प्रकार २१ दिनतक सेवन करावे । किन्तु १० रत्तीसे अधिक मात्रा नहीं बढानी चाहिये ॥ १५ ॥

वातातपकोपमनश्चिन्तनमाहारसमयवैषम्यम् ।
व्यायामश्चायासः स्नानं व्याख्यानमहितमत्यन्तम् ॥ १६ ॥

इस पर्पटीके सेवन करनेवालेको वायु, धूप, क्रोध, मानसिक चिन्ता, आहारके समयकी विषमता, व्यायाम, अत्यन्त परिश्रम, स्नान और अत्यन्त बोलना ये सब अहितकारी हैं । अतः इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥

पाके स्तोकं सर्पिर्जीरकधन्याकवेशवारैश्च ।
सिन्धूद्भवेन रन्धनमोदनधान्यानि शालयो भक्ष्याः ॥ १७ ॥
कृष्णं वातिङ्गलफलमविद्धकर्णा च वास्तूकम् ।
अक्षतमुद्गं सहितं कदलीपत्रं पटोलं च ॥ १८ ॥
क्रमुकफलशृङ्गवेरौ भक्ष्यौ शाकेषु काकमाची च ।
लावकवर्त्तकतित्तिरिमयूरमांसं च हिततरं भवति ॥ १९ ॥
मद्गुररोहितमीनावदनीयौ कृष्णमत्स्याश्च ।
नीरक्षीरं व्यञ्जनमदनीयं पक्वकदलं च ॥ २० ॥

थोडे घी, जीरे, धनिये और अन्यान्य मसालोंके द्वारा सिद्ध किये हुए सैंधानमक मिले हुए व्यञ्जनादि, पुराने शालिचावलोंका भात, काले बैंगन, पाढके पत्तोंका शाक, बथुआ, साबुत मूँग, केलेके पत्ते, परवल, सुपारी, अदरख, मकोयके पत्तोंका शाक, लवा, बत्तक, तीतर, मोर, इनका मांस, मद्गुर, रोहित और काली मछली, समानभाग मिश्रित जलके साथ सिद्ध किया हुआ दूध ये सब पदार्थ हितकारी हैं ॥ १७–२० ॥

रम्भाफलदलवल्कलमूलानां वर्जनं कार्यम् ।
तिक्तं निम्बादिकमपि नाद्यं नोष्णं तथाऽन्नं च ॥ २१ ॥
आनूपमांसजलचरपतत्रिपललं च सर्वथा त्याज्यम् ।
स्त्रीणां सम्भाषणमपि गडकश्च कृष्णमत्स्येषु ॥ २२ ॥
नाम्लं नो दधि शाकं पर्पट्या भक्षणे भक्ष्यम् ।
गुडखण्डशर्करादिकमिक्षुविकारो न भक्ष्य इक्षुश्च ॥
न दलं न फलं न लताप्यदनीया कारवेल्लस्य ॥ २३ ॥

एवं पकेहुए केलेके फल बक्कल और जड, नीमको आदि लेकर सम्पूर्ण कडुवे पदार्थ, गरम अनूपदेशके जीवोंका मांस तथा जलमें रहनेवाले जन्तुओंका मांस, पक्षियोंका मांस, मछली, कालीमछलियोंमें गडक नामवाली मछली, खट्टे पदार्थ, दही और शाक आदि पदार्थ कदापि नहीं भक्षण करने चाहिये और इस पर्पटीका सेवन करते हुए स्त्रियोंसे बात चीततक भी नहीं करनी चाहिये। तथा गुड, खाँड, शर्करा, ईखके रसके बनेहुए पदार्थ और ईख (गन्ने) करेलेके पत्ते, फल और बेल आदि भी कभी नहीं खाने चाहिये ॥ २१–२३ ॥

स्तोकं घृतमिह भक्ष्यं पथ्ये साकांक्षमुत्थानम् ।
क्षुत्पीडायां भोजनमवश्यकार्यं महानिशायां च ॥ २४ ॥
समजलमिश्रं पक्वं क्षीरं यद्वाऽधिकजलपक्वं च ।
कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे विरेके च ॥ २५ ॥
वमने च नारिकेलं सलिलं दुग्धं च पातव्यम् ।
स्वप्ने जाते रमिते विरेकतः क्षीरमेव पातव्यम् ॥ २६ ॥

इसपर घृत थोडा खाना चाहिये और पथ्यमें यथेच्छ आहार देना चाहिये। भूँख लगनेपर अवश्य भोजन करे। यदि आधीरातके समय भूँख लगे तब उस समय भी भोजन करना चाहिये। यदि कदाचित् भोजनके समयका उल्लंघन

होनेसे ज्वर और विरेचन हो तो समानभाग जल मिलाकर अथवा अधिक जल-मिश्रित दूधको पकाकर पीना चाहिये। वमन होनेपर नारियलका जल अथवा दूध पान करना चाहिये। यदि स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो दुग्धपान करना चाहिये ॥ २४–२६ ॥

न जायते बुभुक्षा लक्ष्यालक्ष्या प्रतीयते यदि वा।
अशक्तिझिनिझिनिमस्तकशूलाद्यैर्नूनमवधार्या ॥ २७ ॥
किं बहु वाच्यं रोगी यदा यदा भवति साकांक्षः।
पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयी भूयः ॥ २८ ॥

भूँख उत्पन्न हुई है या नहीं इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये–जब शरीर शक्तिहीन हो, मस्तकमें शूल और झनझनाहट आदि लक्षण मालूम हों तब निश्चय भूख लगा समझना चाहिये। बहुत कहनेसे क्या है, रोगीको जब जब भूँख लगे तबही तब निर्भय होकर बारबार दूध पिलावे ॥ २७ ॥ २८ ॥

विहिताकरणे चास्यामविहितकरणे च रोगखिन्नानाम्।
व्यापत्तयोऽपि बहुधा दृष्टाः प्रामाणिकैर्बहुशः ॥ २९ ॥
तस्मादवधातव्यं भवितव्य भोजने निपुणैः।
एवमियं क्रियमाणा भवति श्रेयस्करी नियतम् ॥ ३० ॥

इसमें कहे हुए नियमोंका पालन न करनेसे और निषिद्ध नियमोंको करनेसे रोगीको नानाप्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होजाती हैं। ऐसा बडे २ प्रामाणिक मनुष्योंने अनेक बार देखकर कहा है, इसलिये भोजनादिमें कुशल वैद्योंको यथाविधि नियमोंका पालन करना चाहिये। इस प्रकार सेवन की हुई यह पर्पटी अवश्य महत् उपकार करती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अर्शोरोगं ग्रहणीं सामं शूलातिसारौ च।
कामलपाण्डुव्याधिं प्लीहानं चातिदारुणं हन्ति ॥ ३१ ॥
गुल्मजलोदरभस्मकरोगं हन्त्यामवातांश्च।
अष्टादशव कुष्ठान्यशेषशोथादिरोगांश्च ॥ ३२ ॥
इयमम्लपित्तशमनी त्रिदोषदमनी क्षुधातिसन्दीपनी।
अग्निं निमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करोत्याशु ॥ ३३ ॥
रसगन्धकपर्पटिका त्वपवार्य व्याधिसंघातम्।
वलिकापलितविशून्यं पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते ॥ ३४ ॥

यह पर्पटी–बवासीर, आमसहित संग्रहणी, शूल, अतिसार, कामला, पाण्डुरोग, अतिकठिन प्लीहा (तिल्ली), गुल्म, जलोदर, भस्मकरोग, आमवात, १८ प्रकारके कुष्ठ, सम्पूर्ण शोथ आदि रोग और अम्लपित्तको तत्काल नष्ट करती है । एव त्रिदोषको दमन करनेवाली, अत्यन्त भूँखको बढानेवाली, जठराग्निको तत्काल प्रज्वलित करती है । यह पारे और गन्धककी पर्पटी समस्त व्याधिसमूहको नष्ट करती है तथा वलिका (असमयमें शरीरमें वलीका पडना), पलित (असमय बालोंका पकना) रोगको दूर करती है और मनुष्यको दीर्घायु बनाती है ॥ ३१–३४ ॥

व्याधिप्रभावहरणादपमृत्युत्रासनाशकरणाच्च ।
मर्त्यानाममृतवटी रसगन्धकपर्पटी जयति ॥ ३५ ॥
शम्भुं प्रणम्य भक्त्या पूजां कृत्वा च विष्णुचरणाब्जे ।
रसगन्धकपर्पटिका भक्ष्या तेनातिसिद्धिदा भवति ॥३६॥
नृणां सरुजां ध्रुवमियमारोग्यं सततशीलिता कुरुते ।
श्रीवत्साङ्कविनिर्म्मितसम्यग्रसपर्पटी श्रेष्ठा ॥ ३७ ॥

व्याधिके प्रभावको हरने और अकालमृत्युके भयको नाश करनेके कारण यह पर्पटी मनुष्योंको अमृतवटीकी समान हितकारी है । भक्तिसहित शिवजीको प्रणाम कर और विष्णुके चरणकमलोंका पूजन करके इस पर्पटीको भक्षण करनेसे यह विशेष सिद्धिके देनेवाली है । यह पर्पटी निरन्तर उत्तम प्रकारसे मनुष्योंके आरोग्य करनेके लिये सर्वोत्तम औषधि है ॥ ३५–३७ ॥

उक्तमेव हि कर्त्तव्यं नानारोगतया तथा ।
औषधक्रिययैवात्र कर्त्तव्या चोत्तरक्रिया ॥ ३८ ॥
प्रत्यवायविनाशार्थं क्षेत्रपालबलिं न्यसेत् ।
कृतमंगलकः प्रातर्योगिनीनामतः परम् ॥ ३९ ॥

[भक्षणात्पूर्वं बलिदानमन्त्रः–"ॐ क्षँ क्षे क्षेत्रपालाय नमः ।" क्षेत्रपालस्य सामान्यबलिदानमन्त्रः–"ॐ ह्रीं ह्रैं दिव्याभ्यो योगिनीभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रीभ्यो भूतेभ्यः शालिकीभ्यो नमो नमो ह्रीं" इति सामान्ययोगिनीनां बलिः। "ॐ गन्धकमहाकालाय स्वाहा । ॐ ब्रह्मकोषिणि रक्ष रक्ष स्वाहा ।" इति विशेषबलिः ॥]

इसमें कहीहुई विधिके अनुसारही विविध रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये और औषधिकी क्रियाके अनुसार ही इसपर उत्तर क्रिया करनी चाहिये । विघ्नोंको हरनेके लिये प्रथम क्षेत्रपालको बलि देवे पश्चात् योगिनियोंको उक्तमन्त्रसे बलि देवे । फिर माङ्गलिक कार्य करके प्रातःसमय इसका सेवन करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

लौहपर्पटी ।

समौ गन्धरसौ कृत्वा कज्जलीकृत्य यत्नतः ।
शुद्धलोहस्य चूर्णं तु रसतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ४० ॥
एकीकृत्य ततो यत्नात् लोहपात्रे प्रमर्दितम् ।
घृतप्रलिप्तदर्व्यां तु स्वेदयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ४१ ॥
द्रवीभूतं समाहृत्य ढालयेत् कदलीदले ।
चूर्णीकृत्य सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ४२ ॥
शीतोदकानुपानं वा क्वाथं वा धान्यजीरयोः ।
लौहेन पर्पटी ह्येषा भक्ष्या लोकस्य सिद्धिदा ॥ ४३ ॥

शोधित पारे और शोधित गन्धकको समान भाग लेकर यथाविधि कज्जली करलेवे । फिर उसमें पारेकी बराबर शुद्ध लोहेकी भस्म मिलाकर लोहेके बर्तनमें खरल करे पश्चात् लोहेकी करछीमें घी लगाकर उसमें कज्जलीको रखकर मन्द-मन्द अग्निसे पकावे । जब कज्जली पिघलकर पतली होजाय तब नीचे उतारकर पूर्वोक्त रसपर्पटीकी समान गोबरपर रक्खेहुए केलेके पत्तेपर ढालकर दूसरे केलेके पत्तेसे ढककर ऊपरसे कपडेकी पोटलीसे धीरे २ दाबदेवे । फिर उसको सुखाकर चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे । यह पर्पटी पथ्यसेवनवालेको देनी चाहिये और ऊपरसे शीतल जल अथवा जीरे और धनियेका क्वाथ पान करना चाहिये । इसके सेवनसे मनुष्यको यथेष्ट फलकी सिद्धि होती है ४०–४३ ॥

रक्तिकैकां समारभ्य वर्द्धयेद्रक्तिकां क्रमात् ।
सप्ताहं वा द्वयं वापि यावदारोग्यदर्शनम् ॥ ४४ ॥
सूतिकां च ज्वरं चैव ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।
आमशूलातिसारांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ४५ ॥
प्लीहानमग्निमान्द्यं च भस्मकं च तथैव च ।
आमवातमुदावर्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ ४६ ॥

एवमादींस्तथा रोगान् गराणि विविधानि च ।
हन्त्यनेन प्रयोगेण वपुष्मान् निर्मलः सुधीः ॥ ४७ ॥
जीवेद् वर्षशतं पूर्ण वलीपलितवर्जितः ।
भोजनं रक्तशालीनां त्यक्त्वा शाकं विदाहि च ॥ ४८ ॥
आमवातप्रकोपं च चिन्तनं मैथुनं तथा ॥ ४९ ॥
प्रातरुत्थाय संसेव्या विधिनाऽऽयुःप्रवर्द्धिनी ॥ ५० ॥

इसको प्रतिदिन एक एक रत्तीसे बढाकर सात दिन, चौदह दिन अथवा जब आरोग्य लाभ न हो तबतक सेवन करावे तो यह लौहपर्पटी प्रसूतिरोग, ज्वर-ग्रहणी, आमशूल, अतिसार, पाण्डुरोग, कामला, प्लीहा (तिल्ली), मन्दाग्नि, भस्मकरोग, आमवात, उदावर्त्त, १८ प्रकारके कुष्ठ, एवं अन्यान्य रोगों और विविध-प्रकारके विषोंको अवश्य दूर करता है । इस प्रयोगके सेवनसे मनुष्य निर्मल शरीरवाला और विद्वान् होता है । एवं वली और पलित रोगसे मुक्त होकर पूर्ण सौ वर्षतक जीता है । इसपर लाल शालिधानोंके चावलोंका भात खाना चाहिये तथा शाक, दाहकारक पदार्थ, आमवातको कुपित करनेवाले पदार्थ, चिन्ता और मैथुन ये सब त्याग देने चाहिये । प्रातःकाल उठकर इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे आयुकी वृद्धि होती है ॥ ४४–५० ॥

स्वर्णपर्पटी।

रसोत्तमं पलं शुद्ध हेम तोलकसंयुतम् ।
शिलायां मर्दयेत्तावद्यावदेकत्वमागतम् ॥ ५१ ॥
गन्धकस्य पलं चैकमयस्पात्रे ततो दृढे ।
मर्दयेद्दृढपाणिभ्यां यावत् कज्जलतां व्रजेत् ॥ ५२ ॥
ततः पाकविधानज्ञः पर्पटीं कारयेत् सुधीः ।
रक्तिकादिक्रमेणैव योजयेदनुपानतः ॥ ५३ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति यक्ष्माणं च विशेषतः ।
शूलमष्टविधं हन्ति वृष्या सर्वरुजापहा ॥ ५४ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ शुद्ध पारा ४ तोले और सोनेकी भस्म १ तोला दोनोंको एकत्र मिलाकर पत्थरके खरलमें उत्तम प्रकारसे मर्दन करे जब दोनों मिलकर एकरूप होजाय तब उसमें गन्धक १ पल डालकर लोहेके पात्रमें अच्छे प्रकारसे खरल करे। जब घोटते २ कज्जलीकी समान होजाय तब पूर्वोक्त रस-

पर्पटीकी विधिके अनुसार विद्वान् वैद्य इसकी पर्पटी तैयार करलेवे । इसको क्रमशः एकएक रत्तीकी मात्रासे बढाता हुआ यथा दोषानुसार उचित अनुपानके साथ प्रयोग करावे । यह पर्पटी अनेक प्रकारकी संग्रहणी, विशेषकर राजयक्ष्मा, ८ प्रकारके शूल एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगको दूर करनेवाली और परम वृष्य है ॥ ३९१–९४ ॥

पञ्चामृतपर्पटी ।

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं लौहं तदर्द्धं शुभं
लोहार्द्धं च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तथाऽभ्रार्द्धिकम् ।
पात्रे लौहमये च मर्द्दनविधौ चूर्णीकृतं चैकतो
दर्व्यां बादरवह्निनाऽतिमृदुना पाकं विदित्वा दले ॥९५॥
रम्भाया लघु ढालयेत् ॥ पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी
ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः ।
लौहे मर्दनयोगतः सुविमलं भक्षक्रिया लौहवत्
गुञ्जाष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत् ॥९६॥

शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक १ तोला और ताँबा आधा तोला–इन पाँचों औषधियोंको लोहेके पात्रमें एकत्रितकर विधिपूर्वक खरल करे । फिर उस कज्जलीको लोहेकी करछीमें रखकर बेरीकी लकडीकी मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकाकर पूर्वोक्त विधिसे केलेके पत्तेपर ढाल देवे । इस प्रकार यह पञ्चामृतपर्पटी सिद्ध होती है । इसकी दो दो रत्ती मात्राको शहद और घृतके साथ लोहेके पात्रमें खरल करके सेवन करे । प्रतिदिन २ रत्तीसे ८ रत्ती या १० रत्तीतक मात्राकी वृद्धि करता हुआ २१ दिनतक सेवन करे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

नानावर्णग्रहण्यामरुचिसमुदये दुष्टदुर्नामकादौ
छर्द्यां दीर्घातिसारे ज्वरभवकलिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि ।
वृष्याणां वृष्यराज्ञी वलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री
तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं करोति ॥९७॥

यह पर्पटी संग्रहणी, अरुचि, दुस्तर बवासीर, वमन, बहुत पुराणा अतिसार, ज्वर, रक्तपित्त और क्षय इन सब रोगोंमें हितकारी है । एवं वृष्य प्रयोगोंमें यह सर्वश्रेष्ठ है । वली और पलितको हरनेवाली नेत्ररोगको दूर करनेवाली है ।

अत्यन्त मन्द जठराग्निको प्रज्वलित कर फिरसे रोगीके शरीरको नवीन करती है ॥ ५७ ॥

विजयपर्पटी।

गन्धकं क्षुद्रितं कृत्वा भाव्य भृङ्गरसेन तु।
सप्तधा वा त्रिधा वापि पश्चाच्छुष्कं विचूर्णयेत् ॥ ५८ ॥
चूर्णयित्वाऽऽयसे पात्रे कृत्वा वह्निगतं सुधीः।
द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत ॥ ५९ ॥
तं च गन्धं पलं चैकं गन्धार्द्धं शुद्धपारदम्।
सूतार्द्धं भस्म रौप्यं च तदर्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥ ६० ॥
तदर्द्धं मृतवैक्रान्तं तदर्द्धं मौक्तिकं क्षिपेत्।
एकीकृत्य ततः सर्वं कुर्यात् पर्पटिकां शुभाम् ॥ ६१ ॥
लौहपात्रे समरसं मर्दितं कज्जलीकृतम्।
बदराङ्गारवह्निस्थे लौहपात्रे द्रवीकृते ॥
मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि दृश्यते ॥ ६२ ॥

गन्धकके छोटे २ टुकडे करके भाँगरेके रसमें ७ बार अथवा तीन बार भावना देकर धूपमें सुखाकर चूर्ण कर लेवे। फिर उसको लोहेके बर्तनमें रखकर अग्निपर पिघलाकर भाँगरेक रसमें डालदेवे। उसमेंसे निकालकर धूपमें सुखावे। इस प्रकार शोधित गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारे ४ तोले, रौप्यभस्म २ तोले, स्वर्णभस्म १ तोला, वैक्रान्तमणिकी भस्म आधातोला और मोतीकी भस्म ३ मासे लेवे। पश्चात् सबको लोहेके पात्रमें एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे। फिर उस कज्जलीको लोहेके बरतनमें रखकर बेरीकी लकडीके अंगारोंपर पिघलाकर पूर्वोक्त रसपर्पटीकी भाँति केलेके पत्तेपर ढालदेवे. जो मोरकी पूँछकी चंद्रिकाकी समान कान्तिवाली मालूम हो, वह उत्तम पर्पटी होती है ॥ ५८-६२ ॥

आद्ययोर्दृश्यते सूतं खरपाके न दृश्यते।
मृदौ न सम्यग्भङ्गः स्यान्मध्ये भङ्गश्च रूप्यवत् ॥६३॥
खरे लघुर्भवेद् भङ्गो रूक्षः सूक्ष्मोऽरुणच्छविः।
मृदुमध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः ॥६४॥

कज्जलीका पाक मृदु, पारा और खर इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता हैं। मृदुपाक और मध्यपाककी पर्पटीमें पारा दीखता है किन्तु खरपाकमें नहीं

दीखता. मृदुपाकमें पारा अच्छे प्रकारसे नहीं टूटता किन्तु मध्यपाकमें चाँदीकी समान टूट जाता है और खरपाकमें बहुत थोडा टूटता है। खरपाकमें पारा रूक्ष, सूक्ष्म और लालवर्णका होता है। इनमेंसे मृदु और मध्यपाककी पर्पटी सेवन करनी चाहिये और खरपाककी पर्पटी विषकी समान त्याग देनी चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

ज्वरव्याधिशताकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरिः।
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणोऽमृतम् ॥६५॥

पूर्वकालमें विष्णुभगवान्ने जरा और व्याधिसे आक्रान्तहुए इस विश्वको देखकर इस विजयपर्पटीको बनायाथा, जो अमृतके समान हितकारी है ॥ ६५ ॥

आदौ शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणिपत्य च।
प्रभाते भक्षयेदेनां प्राग्रक्तिद्वयसम्मिताम् ॥६६॥
रक्तिकादिक्रमाद् वृद्धिर्भक्ष्या नैव दशोपरि।
आरोग्यदर्शनं यावत् तावद् ह्रासस्ततः परम् ॥६७॥

पहिले दिन प्रातःसमय इसको २ रत्ती प्रमाण भक्षण करे। फिर प्रतिदिन १-१ रत्तीके क्रमसे बढाताहुआ दस रत्तीतक बढाकर सेवन करावे। जब दश रत्तीकी मात्रा होजाय तब क्रमसे १-१ रत्ती घटाता जाय किन्तु इस दश रत्तिसे अधिक मात्रा नहीं बढानी चाहिये इस प्रकार जबतक उत्तम प्रकारसे आरोग्य न होजाय तबतक उसी प्रकार क्रमसे बढाकर और फिर घटाकर उसका सेवन करता रहे ६६-६७

अजीर्णे भोजनं नैव पथ्यकालव्यतिक्रमे।
घृतसैन्धवधन्याकहिङ्गुजीरकनागरैः ॥६८॥
शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्वाद्वम्लमाक्षिकम्।
कृष्णमत्स्येन दुग्धेन मांसेन जाङ्गलेन च ॥६९॥
जाङ्गलेषु शशच्छागौ मत्स्यौ रोहितमद्गुरौ ॥७०॥
पटोलफलपक्वं च कृष्णवार्त्ताकुजालिका।
सुस्विन्नपूगैस्ताम्बूलैर्लाभे कर्पूरसंयुतैः ॥ ७१ ॥

इसके सेवन करनेपर यदि अजीर्ण होजाय तो भोजनके समयका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। एवं घृत, सैंधानमक, धनियाँ, हींग, जीरा, सोंठ इनके द्वारा सिद्ध किये हुए व्यंजन खाने चाहिये। किन्तु पित्तकी अधिकता होनेपर मधुर और खट्टे

पदार्थ तथा शहद सेवन करे । काली मछली, दूध और जंगलीजीवोंके मांसका पथ्य देवे । जंगली जीवोंमें खरगोश या बकरेका मांस तथा रोहू मछली और मद्गुर मछली उत्तम है । शाकोंमें परवल, पटोलपत्र, काले बैंगन और तोरई, पकाई हुई सुपारी, इलायची और कपूर लगाहुआ पान खाना हितकारी है ॥ ६८-७१ ॥

क्षुधाकाले व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रकुप्यति ।
झोञ्झिनीति शिरःशूले विरेके वमने तथा ॥ ७२ ॥
तृष्णायां चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु निर्भयम् ।
नारिकेलपयः पेयं द्विर्भक्ष्यं क्षीरमेव च ॥ ७३ ॥
स्वप्ने शुक्रच्युतौ चैव-

भोजनके समय उल्लंघन होनेपर वायुके कुपित हो जानेसे शिरमें झिरझिनाहट, पीडा, विरेचन (दस्त), वमन (कै) ये उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं । उस समय तृष्णा और पित्तकी अधिक वृद्धि होनेपर निर्भय होकर कच्चे नारियलका जल पान करना चाहिये । जलोंमें नारियलका जल और प्रतिदिन दो बार दूध पिलाना चाहिये । यदि स्वप्नमें वीर्यपात होजाय तो दुग्धपान करे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

चम्पकं कदलीफलम् ॥
वर्ज्यं निम्बादिवा शाकं शाकाम्लं काञ्जिकं सुराम् ॥७४॥
कदलीफलपत्राङ्घ्रित्रपुषालाबुकर्कटी ।
कूष्माण्डं कारवेल्लं च व्यायामं जागरं निशि ॥ ७५ ॥
न पश्येन्न स्पृशेच्चैव स्त्रियं जीवितुमिच्छति ।
यद्यौषधे स्त्रियं गच्छेत् कर्त्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥ ७६ ॥

इसपर चम्पा, केलेके, पत्ते, निम्बादिशाक, खट्टे पदार्थ, काँजी, मदिरा, केलेकी फली, पत्रांघ्रि, खीरा, लौकी, ककडी और करेला ये सब पदार्थ कसरत आदि परिश्रम और रातमें जागना ये सब त्याज्य हैं । जीनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्रीको न देखे न स्पर्श करे और औषधि सेवन करते समय यदि किसी कारणसे स्त्रीसहवास करे तो उसका विशेषरूपसे प्रतीकार (चिकित्सा) करना ॥ ७४-७६ ॥

दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ।
आमशूलमतीसारं सामं चैव सुदारुणम् ॥ ७७ ॥

अतिसारं षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
शोथं च कामलां पाण्डु प्लीहानं च जलोदरम् ॥ ७८ ॥
पंक्तिशूलं चाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं कृमिम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ७९ ॥

यह विजयपर्पटी बहुत वर्षोंकी पुरानी अनिवार्य संग्रहणी, आमशूल (आमातिसार), दारुण अतिसार, छः प्रकारकी बवासीर, सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित राजयक्ष्मा, सूजन, कामला, पाण्डुरोग, प्लीहा, जलोदर, पंक्तिशूल, अम्लपित्त, प्रमेह, विषमज्वर और वात-पित्त-कफज्वर इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती है ॥ ७७-७९ ॥

जीर्णोऽपि पर्पटीसेवी वपुषा निर्मलः सुधीः ।
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥ ८० ॥
प्रातस्तु खादति नरो नियतं द्विगुञ्जां
यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलं च ॥ ८१ ॥

वृद्ध मनुष्य भी इस पर्पटीको सेवन करनेसे निर्मल शरीरवाला और विशेष बुद्धिमान् होता है । एवं वली और पलित रोगसे रहित होकर पूरे सौ वर्षतक जीता है । जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल इस पर्पटीको दो रत्ती प्रमाण सेवन करता है, वह कामदेवकी समान कान्तिमान्, दीर्घायुषी, पापरहित स्थिर देहवाला होता है । एवं वलीपलित रोगसे रहित होकर अतुल बलशाली होता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

दूसरी विजयपर्पटी ।

रस वज्रं हेम तारं मौक्तिकं ताम्रमभ्रकम् ।
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद् विजयपर्पटीम् ॥ ८२ ॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ।
आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम् ॥ ८३ ॥
प्रवाहिकां षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
शोथं च कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरम् ॥ ८४ ॥

पंक्तिशूलमम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमिम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥
चतुर्विधमजीर्णं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ८५ ॥
जीर्णोऽपि पर्पटीमश्नन् वपुषा निर्मलः सुधीः ।
जीवेद् वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥ ८६ ॥
जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ।
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, हीरा, सुवर्ण, चाँदी, मोती, ताँबा और अभ्रक प्रत्येककी भस्म एक एक तोला एवं शुद्ध गन्धक सबको बराबर अर्थात् ७ तोले लेवे। सबको एकत्र मर्दन करके कज्जली बनालेवे। फिर उसको पिघलाकर रसपर्पटीकी विधिके अनुसार पर्पटी तैयार कर लेवे। यह पर्पटी भी पूर्वोक्त पर्पटीकी समान संग्रहणी आदि समस्त रोगोंको दूर करती है। एवं इसके अन्यान्य गुण पथ्यापथ्य और नियमादि पूर्वोक्त विजयपर्पटीके समानही जानने चाहिये। यह तन्त्रान्तरोक्त विजय पर्पटी है ॥ ८२–८७ ॥

हिरण्यगर्भपोट्टली रस ।

एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च ।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षड्दीर्घनिःस्वनात् ॥ ८८ ॥
त्र्यंशं बलेर्वराटचाश्च टङ्कणो रसपादिकः ।
पक्वनिम्बुकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ८९ ॥
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत् ।
गर्त्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत् त्रिंशद्वनोपलः ॥ ९० ॥
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत् ।
ततः खल्लोदरे मर्द्य सुधारूपं समुद्धरेत् ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, सुवर्णभस्म २ भाग, मोतीकी भस्म ४ भाग, काँसेकी भस्म ६ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, कौडीकी भस्म ३ भाग और सुहागा ३ मासे इन सबको एकत्रित करके पकेहुए नींबूके रसमें खरल करे। फिर औषधिको मूषायंत्रमें रखकर उसके मुँहको बन्दकरके एक बालिश्त गहरे गड्ढेमें रखकर तीस आरने उपलोंकी अग्नि देवे। जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब औषधिको मूषायन्त्रमेंसे निकालकर उत्तम प्रकारसे खरल करलेवे ॥ ८८–९१ ॥

एतस्यामृतरूपस्य दद्याद् गुञ्जाचतुष्टयम् ।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ९२ ॥
मन्दाग्नौ रोगसंघे च ग्रहण्यां विषमज्वरे ।
गुदाङ्कुरे महाशूले पीनसे श्वासकासयोः ॥ ९३ ॥
अतीसारे ग्रहण्यां च श्वयथौ पाण्डुके गदे ।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च ॥ ९४ ॥
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्द्वजेषु त्रिदोषजे ।
दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम् ॥ ९५ ॥

इस अमृतकी समान गुणकारी रसको चार चार रत्ती प्रमाण लेकर घृत, शहद और २९ कालीमिरचोंके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करावे। यह रस मन्दाग्नि, संग्रहणी, विषमज्वर, बवासीर, दारुण शूल, पीनस, श्वास, खाँसी, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, सब प्रकारके उदरविकार, यकृत, प्लीहा, वात-पित्त तथा कफजन्यरोग, द्विदोषज और त्रिदोषज आदि समस्त रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। इससे उक्त विकार तत्काल नष्ट होते हैं। यह अतिश्रेष्ठ रसायन है ॥ ९२–९५ ॥

स्वल्पचुक्र ।

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् ।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥ ९६ ॥

गुड़ १ भाग, शहद २ भाग, कांजी ४ भाग, एवं दहीका पानी ८ भाग लेवे। इन सबको एक मिट्टीके नये घड़ेमें भरकर उसके मुँहको बन्द करके नवीन धानोंके ढेरमें गाड़ देवे। फिर तीन दिनके बाद निकालकर सेवन करावे। इसके सेवनसे ग्रहणीप्रभृति विविध रोग नष्ट होते हैं। इसको चुक्र अथवा शुक्त कहते ॥ ९६ ॥

बृहच्चुक्र ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुषजलात् प्रस्थत्रयं चाम्लतः
प्रस्थार्द्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान् मानिके ।
मान्यौ शोधितशृङ्गवेरशकलाद् द्वे सिन्धुवजाज्योः पले
द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे ॥ ९७ ॥
स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन् वासरान् स्थापयेत्
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे ।

षट्शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्राव्य संचूर्णये-
च्चातुर्ज्जातपलेन संहतमिदं शुक्तं च चुक्रं च तत् ॥ ९८ ॥
हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्
दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान् हत्वाऽनलं दीपयेत् ॥ ९९ ॥

चावलोंका जल एक प्रस्थ, तुषोदक (काँजीका भेद) २ प्रस्थ, खट्टा दही ३२ तोले, अम्लमूलक (बासीकाँजीमें पकाई हुई मूलीके टुकड़े) ८ पल, गुड़ दो शराव, शुद्ध किये हुए अदरखके टुकडे ३२ तोले, एवं सैंधानमक, जीरा पीपल, मिरच और हल्दी ये प्रत्येक आठ आठ तोले लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर मजबूत और चिकने मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकार बन्द करके धान अथवा जौके ढेरमें गाड़देवे। इसको गरमीके दिनोंमें तीन दिन, शरदृतुमें चार दिन, वर्षाकालमें अथवा वसंतऋतुमें ६ दिन और शीतकालमें ८ दिनतक गड़ा रखना चाहिये। फिर उसको निकालकर उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिला देवे। इस प्रकार यह बृहद् शुक्ल अथवा बृहच्चुक्र सिद्ध होता है। यह चुक्र सेवन करतेही वात, कफ और आमदोषसे उत्पन्न हुए विविधप्रकारके रोग एवं अर्श, ग्रहणी, शूल, गुल्म और उदररोग इन सबको नष्ट करके अग्निको दीपन करता है॥ ९७-९९ ॥

आयामकाञ्जिक।

वाट्यस्य दद्याद्यवसक्तुकानां पृथक्पृथक्चाढकसम्मितं तु।
मध्यप्रमाणानि च मूलकानि दद्याच्चतुः षष्टिसुकल्पितानि॥
द्रोणेऽम्भसः प्लाव्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेषजजातयुक्तम्।
क्षारद्वयं तुम्बुरुवस्तगन्धा धनीयकं स्याद् विडसैन्धवं च॥
सौवर्च्चलं हिङ्गु शिवाटिकां च चव्यं च दद्याद् द्विपलप्रमाणम्।
इमानि चान्यानि पलोन्मितानि विजर्ज्जरीकृत्य घटे क्षिपेच्च॥
कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकां च तथाऽऽसुरीं कारविचित्रकं च।
पक्षस्थितोऽयं बलवर्णदेहवयस्करोऽतीव बलप्रदश्च॥ १०३॥

वाट्य (भूसीरहित जौको १४ गुने जलमें पकानेसे जो मांड प्रस्तुत होता है) एक आढक, जौके सत्तू १ आढक एवं मध्यम दर्जेकी (न बहुत

छोटी न बडी) हो ऐसी मूली ६४ इन सबको धोयहुए स्वच्छ घडेमें डालकर एक द्रोण परिमाण जल भर देवे । फिर उस घडेमें जवाखार, सज्जी, तुम्बुरु, अजवायन, धनियाँ, विरियासंचरनमक, सैंधानमक, कालानमक, हींग, वंशलोचन और चव्य प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले, पीपल, जीरा, राई, सफेद सरसों, काला जीरा और चीतेकी जड ये प्रत्येक चार चार तोले सबको बारीक पीसकर डालदेवे । फिर घडेके मुँहको सिकोरेसे अच्छे प्रकार बंद करके धानोंके ढेरमें १९ दिनतक गडा रक्खे । तदनन्तर उसको निकालकर यथोचित मात्रासे सेवन करे तो इससे शरीरमें बल वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है । यह अत्यन्त बलके देनेवाली है ॥ १००-१०३॥

कान् जीवयामीति यतः प्रवृत्त-
स्तत् काञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
आयामकालाज्जरयेच्च भुक्त-
मायामिकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥ १०४ ॥
दकोदरं गुल्ममथ प्लिहानं हृद्रोगमानाहमरोचकं च ।
मन्दाग्नितां कोष्ठगतं च शूलमर्शोविकारान् सभगन्दरांश्च ॥
वातामयानाशु निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानं विधिवन्नराणाम् ॥

जब कोई चिकित्सक सब ओषधियोंसे निराश होकर यह विचारता है कि, रोगीकी किस प्रकार जीवरक्षा करूं; तब उस समयके लिये आयुर्वेदाचार्य महर्षिगण आयामकाञ्जिककोही बतलाते हैं । आयाम शब्दका अर्थ-१ प्रहर । यह १ प्रहरमें खाये हुए भोजनको पचादेता है, इसलिये इसको विद्वान्लोग आयामकाञ्जिक कहते हैं । यह उदरोग, गुल्म, प्लीहा, हृदयरोग, आनाह, अरुचि, मन्दाग्नि, कोष्ठगतशूल, अर्श, भगन्दर, वातरोग एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥१०४॥१०५॥

अष्टपलघृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के बिल्वमात्रे गुडात्पले ।
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत् ॥ १ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला और बहेडा इनका कल्क समान भाग मिश्रित चार तोले, गुड चार तोले और घी ३२ तोले लेवे । सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इसको रोगीकी अवस्था और अग्निके बलाबलको

विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे तो मन्दाग्नि आदि सर्वविकार दूर होते हैं ॥ १॥

बिल्वादिघृत ।

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृङ्गबेरक्काथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् ।
सच्छागदुग्धं ग्रहणीगदोत्थशोथाग्निमान्द्यारुचिनुद्वरिष्ठम् ॥ २ ॥

बेलगिरी, चीतेकी जड, चव्य, अदरख और सोंठ इन प्रत्येकके क्काथ और कल्क, एवं बकरीके दूधके साथ विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत संग्रहणी और तज्जन्य उपद्रव तथा सूजन, मन्दाग्नि, अरुचिप्रभृति विकारोंको नष्ट करनेके लिये सर्वोत्तम है ॥ २ ॥

बिल्वगर्भघृत ।

मसूरस्य कषायेण बिल्वगर्भं पचेद् घृतम् ।
हन्ति कुक्ष्यामयान् सर्वान् ग्रहणीपाण्डुकामलाः ॥ ३ ॥

मसूरका क्काथ और बेलगिरीके कल्कके द्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध करे । यह घृत सर्वप्रकारके कुक्षिगत रोग एवं ग्रहणी, पाण्डु, कामला आदि विकारोंको शमन करता है ॥ ३ ॥

शुण्ठीघृत ।

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले शृतम् ।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं सामतामयम् ॥ ४ ॥

सोंठके कल्क और दशमूलके काढेमें सिद्ध कियाहुआ घृत आमयुक्त ग्रहणी और सूजनको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

नागरघृत ।

घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ५ ॥

केवल सोंठके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत ग्रहणी, पाण्डुरोग, तिल्ली खाँसी और ज्वरको दूर करता है और वायुका अनुलोमन करता है ॥ ५ ॥

चित्रकघृत ।

चित्रकक्वाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः ।
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम् ॥ ६ ॥

चीतेके क्काथ और कल्कके द्वारा यथाविधि प्रस्तुत किया हुआ घी ग्रहणी, शोथ, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, शूल, अर्शादिरोगोंको नाशकरनेवाला और विशेषकर अग्निप्रदीपक है ॥ ६ ॥

चाङ्गेरीघृत।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यमानिका ॥ ७ ॥
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचितम्।
चतुर्गुणेन दध्ना च तद् घृतं कफवातनुत् ॥ ८ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।
गुदभ्रंशार्त्तिमानाहं घृतमेतद् व्यपोहति ॥ ९ ॥

सोंठ, पीपलामूल, चीतेकी जड, गजपीपल, गोखुरू, पीपल, धनियाँ, बेलगिरी, पाढ और अजवायन इनके समानभाग मिश्रित कल्ल और अम्ल नोनियाके स्वरसमें चौगुना दहीका पानी डालकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत कफ और वातके रोग एवं बवासीर, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंशकी पीडा और आनाह इन सबको दूर करता है ॥ ७-९ ॥

मरिचाद्यघृत।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा।
भल्लातकं यमानी च विडङ्गं हस्तिपिप्पली ॥ १० ॥
हिङ्गु सौवर्चलं चैव विडसैन्धवचव्यकम्।
सामुद्रं सयवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ ११ ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलीरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ १२ ॥

मिरच, पीपलामूल, सोंठ, पीपल, भिलावे. अजवायन, वायविडङ्ग, गज, पीपल, हींग, कालानमक, विरियासंचरनमक, सैंधानमक, चव्य, समुद्रनमक, जवाखार, चीतेकी जड और वच इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, दशमूलका क्वाथ और क्वाथसे दूना दूध लेवे। इन सबके द्वारा विधिपूर्वक एक प्रस्थ घृतको पकावे १०-१२

मन्दाग्नीनां हितं श्रेष्ठं ग्रहणीदोषनाशनम्।
विष्टम्भमामदौर्बल्यं प्लीहानमपकर्षति ॥ १३ ॥
कासं श्वासं क्षयं चैव दुर्नाम सभगन्दरम्।
कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् कृमिसम्भवान्।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु शुष्कं दावानलो यथा ॥१४॥

यह घृत मन्दाग्निवालोंको अत्यन्त हितकारी एवं ग्रहणी, विष्टम्भ, आमदोष' दुर्बलता, प्लीहा, खाँसी. श्वास, क्षय, बवासीर, भगन्दर, कफजन्यरोग, वातज रोग और कृमिरोग इन सबको तत्काल इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे दावाग्नि सूखे काष्ठको तत्क्षण भस्म करदेता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

महाषट्पलकघृत।

सौवर्च्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं हबुषा विडम्।
अजमोदा यवक्षारं हिङ्गु जीरकमौद्भिदम् ॥ १५ ॥
कृष्णाजाजीं सभूतीकं कल्कीकृत्य पलार्द्धकम्।
आर्द्रकस्य रसं चुक्रं क्षीरमस्त्वम्लकाञ्जिकम् ॥ १६ ॥
दशमूलकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
भक्तेन सह पातव्यं निर्भक्तं वा विचक्षणैः ॥ १७ ॥
कृमिप्लीहोदराजीर्णज्वरकुष्ठप्रवाहिकाम्।
वातरोगान् कफव्याधीन् हन्याच्छूलमरोचकम् ॥ १८ ॥
पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्बल्यं ग्रहणीगदम्।
महाषट्पलकं नाम वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १९ ॥

कालानमक, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, सैंधानमक. हाऊबेर, बिरियासंचरनमक, अजमोद, जवाखार, हींग, जीरा, समुद्रलवण, काला जीरा और अजवायन इनका कल्क दो दो तोले, एवं अदरखका रस, चूकेका स्वरस, दूध, दहीके तोड, काँजी, दशमूलका क्वाथ और घी ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतको भातके साथ अथवा विनाही भातके सेवन करे तो यह महाषट्पलक नामक घृत कृमिरोग, तिल्ली, उदररोग, अजीर्ण, ज्वर, कुष्ठ, प्रवाहिका, वातरोग, कफरोग, शूल, अरुचि, पाण्डुरोग, क्षय, खाँसी, दुर्बलता, संग्रहणी प्रभृति रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है; जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल नाश करदेता है ॥ १५–१९ ॥

बिल्वतैल।

तुलार्धं शुष्कबिल्वस्य तुलार्द्धं दशमूलतः।
जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ २० ॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थमारनालं तथैव च।
तैलप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ २१ ॥

धातकी बालबिल्वं च शठी रास्ना पुनर्नवा ।
त्रिकटुं पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली ॥ २२ ॥
देवदारु वचा कुष्ठं मोचकं कटुरोहिणी ।
तेजपत्राजमोदं च जीवनीयगणस्तथा ॥ २३ ॥
एषामर्द्धपलान् भागान् पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ।
एतद्धि बिल्वतैलाख्यं मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ २४ ॥

सूखी बेलगिरी ५० पल और दशमूलकी सब औषधियाँ ५० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें अदरखका रस १ प्रस्थ, कांजी १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ और तिलका तेल एक प्रस्थ डालदेवे । धायके फूल, कच्ची बेलगिरी, कचूर, रायसन, लाल विषखपरा, सोंठ, पीपल, मिरच, पीपलामूल, चीतेकी जड़, गजपीपल, देवदारु, वच, कूठ, मोचरस, कुटकी, तेजपात, अजमोद, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलहठी इन प्रत्येकके दो दो तोले कल्कको लेवे । सबको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे तैलको पकावे । यह बिल्वनामक तैल मन्दाग्निवालोंके लिये विशेषकर उपयोगी है ॥ २०-२४ ॥

ग्रहणीं विविधां हन्ति चातीसारमरोचकम् ।
सग्रहग्रहणीं हन्ति अर्शसामपि नाशकम् ॥ २५ ॥
श्लीपदं विविधं हन्ति अन्त्रवृद्धिं च नाशयेत् ।
कफवातोद्भवं शोथं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ २६ ॥
कासं श्वासं च गुल्मं च पाण्डुरोगविनाशनम् ।
मक्कल्लशूलशमनं सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ २७ ॥
मूढगर्भे च दातव्यं मूढवातानुलोमनम् ।
शिरोरोगहरं चैव स्त्रीणां गदनिषूदनम् ॥ २८ ॥
रजोदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः ।
तेऽपि तारुण्यशुक्राढ्या भविष्यन्ति महाबलाः ॥ २९ ॥
वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमेव च ।
बिल्वतैलमिति ख्यातमात्रेयेण विनिर्मितम् ॥ ३० ॥

एवं नानाप्रकारकी ग्रहणी, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी और अर्शादि समस्त उपद्रवोंको शीघ्र नष्ट करता है। जो स्त्रियाँ रजोदोषसे और जो पुरुष वीर्यदोषसे युक्त हैं, वेभी इसका सेवन करनेसे नवयौवनयुक्त, अत्यन्त वीर्यवान् और बलवान् होते हैं, बन्ध्या स्त्री भी शूरवीर और विद्वान् पुत्रको प्राप्त करती है। इस बिल्व तैलको आत्रेयमुनिने निर्माण किया है ॥ २९–३० ॥

ग्रहणीमिहिरतैल।

धन्याकं धातकी लोध्रं समङ्गाऽतिविषा शिवा।
उशीरं वारिवाहं च जलं मोचं रचाञ्जनम् ॥ ३१ ॥
बिल्वं नीलोत्पलं पत्रं केशरं पद्मकेशरम्।
गुडूचीन्द्रयवश्यामा पद्मकं कटुरोहिणी ॥ ३२ ॥
तगरं नलदं भृङ्ग केशराजः पुनर्नवा।
आम्रजम्बुकदम्बानां त्वचः कुटजवल्कलम् ॥ ३३ ॥
यमानी जीरकं चैषां कार्षकाणि प्रकल्पयेत्।
तैलप्रस्थं पचेत् सम्यक् तक्रेणान्यतमेन वा ॥ ३४ ॥
कुटजत्वक्कषायेण धान्यकक्कथितेन वा।
बुद्ध्वा दोषगतिं तत्तु तथान्यौषधवारिणा ॥ ३५ ॥

धनियाँ, धायके फूल, लोध, लज्जावन्ती, अतीस, हरड, खस, नागरमोथा, गन्धवाला, मोचरस, रसौंत, बेलगिरी, नीलकमल, तेजपात, नागकेशर, कमल, केशर, गिलोय, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, पद्माख, कुटकी, तगर, बालछड, दालचीनी, कुकुरभाँगरा, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदमकी छाल, कुडेकी छाल, अजवायन और जीरा इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक कर्ष एवं तिलका तैल एक प्रस्थ, मठा एक प्रस्थ, कुडेकी छालका काथ एक प्रस्थ और धनियेका काथ एक प्रस्थ एवं जल एक द्रोण परिमाण लेवे। सबको एकत्रकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। इस तैलको दोषोंके बलाबलका विचारकर अन्यान्य औषधियोंके साथ मिश्रितकरके सेवन करावे ॥ ३१–३५ ॥

एतद्रसायनवरं वलीपलितनाशनम्।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ ३६ ॥
ज्वरं तृष्णां तथा कासं हिक्कां श्वासं वमिं भ्रमिम्।
सोपद्रवां कोष्ठरुजं नाशयेत् सत्यमेव हि ॥ ३७ ॥

अर्शांसि कामलां मेहं श्वयथुं शूलमुल्बणम् ।
एतद्धि बृंहणं वृष्यं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥ ३८ ॥
वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगे विपाचयेत् ।
सायं स्त्रीषु प्रकर्तव्यं प्रत्यूषे राजसंसदि ॥ ३९ ॥
विवाहादिषु माङ्गल्यं विवादे विजयप्रदम् ।
गर्भस्य चलितस्यापि स्थापनं परमं शुभम् ॥ ४० ॥
गर्भारम्भे प्रकर्तव्यमेतद् गर्भविवर्द्धनम् ।
ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनमङ्गलम् ॥ ४१ ॥

यह तेल अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है, बृंहण और वृष्य एवं वलीपलित आदि विकार तथा सर्वप्रकारके अतिसार, नानाप्रकारकी संग्रहणी आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करती है । पुष्य नक्षत्रमें इस तेलको पकानेसे यह वशीकरणयोग होता है । यह तेल स्त्रियोंको सायंकालके समय और राजाओंको प्रातःकालके समय सेवन कराना चाहिये । यह विवाहादिमें मंगल करनेवाला, युद्धमें विजयका देनेवाला और विचलित हुए गर्भको पुनः स्थिर करनेवाला है । गर्भके आरम्भमें इसको सेवन करनेसे गर्भकी वृद्धि होती है । यह ग्रहणीमिहिर नामवाला तैल चौदह भुवनका कल्याण करनेवाला है ॥ ३६–४१ ॥

बृहद्ग्रहणीमिहिरतैल ।

तैलं प्रस्थमितं ग्राह्यं तक्रं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
कुटजं धान्यकं चैव ग्राह्यं पलशतं पृथक् ॥ ४२ ॥
तयोः क्वाथं पचेद् द्रोणे अम्बु पादावशेषितम् ।
एकीकृत्य पचेद् वैद्यः कल्कं कर्षमितं पृथक् ॥ ४३ ॥
धान्यकं धातकी लोध्रं समङ्गाऽतिबिषा शिवा ।
लवङ्गं बालकं चैव शृङ्गाटकरसाञ्जनम् ॥ ४४ ॥
नागपुष्पं पद्मकं च गुडूचीन्द्रयवं तथा
प्रियङ्गु कुटकी पद्मकेशरं तगरं तथा ॥ ४५ ॥
शरमूलं भृङ्गराजः केशराजः पुनर्नवा ।
आम्रजम्बुकदम्बानां कल्कानि च प्रदापयेत् ॥ ४६ ॥

तिलका तैल एक प्रस्थ, मट्ठा ४ प्रस्थ एवं कुडेकी छाल और धनियेको अलग २ सौ सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रक्खे फिर छानकर

उसमें धनियाँ, धायके फूल, लोध, लज्जावन्ती, अतीस, हरड, लौंग, सुगन्धवाला, सिंघाडेके पत्ते, रसौंत, नागकेशर, पद्माख, गिलोय, इन्द्रजौ, फूलप्रियंगु, कुटकी, कमलकेसर, तगर, रामसरकी जड, भांगरा, केशराज, लाल विषखपरा, आमकी छाल, जामुनकी छाल और कदमकी छाल इन समस्त औषधियोंके कल्कको एक एक कर्ष प्रमाण डालकर विधिपूर्वक तैलको पकावे ॥ ४२–४६ ॥

ग्रहणीं हन्ति तच्छीघ्रं वलीपलितनाशनम् ।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ ४७ ॥
ज्वरं तृष्णां तथा श्वासं कासं हिक्कां वमिं भ्रमिम् ।
सोपद्रवं कोष्ठरुजं नाशयेत् सद्य एव हि ॥ ४८ ॥
वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगेन कारयेत् ।
बृहद्ग्रहणीमिहिरतैलं भुवनमङ्गलम् ॥ ४९ ॥

यह तेल शरीरपर मालिश करनेसे सर्व प्रकारके अतिसार, सर्वदोषयुक्त ग्रहणी, बली–पलित रोग, ज्वर, तृष्णा, श्वास, खाँसी, हिचकी, वमन, भ्रम और संपूर्ण उपद्रवोंसहित उदरविकार इन सबको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। पुष्यनक्षत्रमें इसको सिद्ध करनेसे यह वशीकरण योग होजाता है। यह बृहद्ग्रहणीमिहिर तैल १४ भुवनका मंगल करनेवाला है ॥ ४७–४९ ॥

तक्रारिष्ट।

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशिकम् ।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ५० ॥
तक्रकं संयुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः ।
दीपनं शोथगुल्मार्शःकृमिमेहोदरापहम् ॥ ५१ ॥

अजवायन, आमल, हरड और मिरच प्रत्येक बारह १२ तोले और पाँचों नमक प्रत्येक चार चार तोले सबका एकत्र चूर्ण करके ४ सेर मट्ठेमें पकाकर १ मिट्टिके घडेमें भरकर चार दिनतक रक्खा रहनेदेवे, पश्चात् उसको निकालकर यथोचित मात्रासे सेवन करे तो अग्नि दीपन होती है एवं शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह और उदररोग दूर होते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

पिप्पल्याद्यासव।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ।
विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् ॥ ५२ ॥

उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा ।
मांसी त्वगेला पत्रं च प्रियङ्गुर्नागकेशरम् ॥ ५३ ॥
एषामर्द्धपलान् भागान् श्लक्ष्णचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम् ॥ ५४ ॥
पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ।
एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् ॥ ५५ ॥
ज्ञात्वा जातरसं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया ।
क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ५६ ॥

पीपल, मिरच, चव्य हल्दी, चीता, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाढ, आमला, एलुआ, खस, लालचन्दन, कूठ, लौंग, तगर, बालछड़, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, फूलप्रियंगु और नागकेसर इन समस्त औषधियोंके खूब बारीक पिसे हुए चूर्ण दो दो तोले, एवं पुराना गुड़ तीन सौ पल, धायके फूल दस पल और दाख ६० पल लेवे । इन सबको दो द्रोण परिमाण जलमें डालकर एक स्वच्छ मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर एक महीनेतक रक्खारहने देवे । जब उसमें उत्तम प्रकारसे रस उत्पन्न हो जाय तब निकालकर छानलेवे, फिर इसको अग्निका बलाबल विचार-कर पान कराना चाहिये । यह पिप्पल्याद्यासव क्षय, गुल्म, उदररोग, कृशता, ग्रहणी, पाण्डुरोग और बवासीर इन समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५२–५५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ग्रहणीरोगचिकित्सा ।

अर्शोरोगचिकित्सा ।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्त्तितः ।
भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ १ ॥

अर्शरोगकी चिकित्सा चार प्रकारकी कही गयी है । जैसे–औषधप्रयोग, क्षार-कर्म, शस्त्रक्रिया और अग्निक्रिया । चरोंमेंसे यहाँपर औषधचिकित्साका ही वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये।
अनुपानौषधद्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ २ ॥

जो औषधियाँ और अनुपान वायुको अनुलोमन करनेवाले और अग्निके बलकी वृद्धि करनेवाले हैं, अर्शक रोगियोंको वे सब नित्य सेवन करने चाहिये ॥ २ ॥

शुष्कार्शसां प्रलेपादिक्रिया तीक्ष्णा विधीयते।
स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्याऽस्रपैत्तिकी ॥ ३ ॥

शुष्क अर्शरोगवाले मनुष्योंको प्रलेपादि तीक्ष्ण क्रिया करनी चाहिये और रुधिर-स्राव होनेवाले अर्शरोगियोंको रक्तपित्तरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥३॥

स्नुक्क्षीरं रजनीयुक्तं लेपाद् दुर्नामनाशनम्।
कोषातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः ॥ ४ ॥

थूहरके दूध और हल्दीके चूर्णको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे अथवा तोरईका चूर्णको मलनेसे अर्शके अंकुर गिरपडते हैं ॥ ४ ॥

असितानां तिलानां प्राक् प्रकुञ्चं शीतवार्यनु।
खादतोऽर्शांसि नश्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् ॥ ५ ॥

काले तिलोंके चार तोले परिमाण चूर्णको शीतल जलके साथ खानेसे अर्शरोग नष्ट होता है। दाँत दृढ और शरीर पुष्ट होता है ॥ ५ ॥

कफजे शृङ्गवेरस्य क्वाथो नित्योपयोगिकः ॥ ६ ॥

कफकी बवासीरमें प्रतिदिन सोंठका क्वाथ सेवन करना हितकारी है ॥ ६ ॥

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः।
करञ्जो बस्तमूत्रं च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ७ ॥

आकका दूध, थूरहका दूध, कडुवीतोंबीके पत्ते, दुर्गन्ध करंज और बकरेका मूत्र इनको एकत्र मिलाकर लेप करना अर्शरोगवालोंके लिये हितकर है ॥ ७ ॥

अर्शोघ्नी गुदजा वर्त्तिर्गुडघोषाफलोद्भवा।
ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ॥ ८ ॥

गुड और तोरईके फूलोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर बत्ती बनावे। उसको गुदामें रखनेसे बवासीर दूर होती है और मालकांगुनीकी जडके कल्कका लेप करना रक्ता-र्शवाले रोगियोंको उपयोगी है ॥ ८ ॥

तुम्बीबीजं सोद्भिदं तु काञ्जिपिष्टं गुडीत्रयम्।
अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दधि माहिषमश्नतः ॥ ९ ॥

कडुवी तोंबीके बीज और रेव दोनोंको समभाग लेकर कांजीमें पीसकर तीन गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एकएक गोली गुदाम रखनेसे और इसपर भैंसका दही खानेसे अर्शरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

महारोधिप्रदेशस्य पथ्या कोषातकीरजः ।
सफेनं लेपतो हन्ति लिङ्गार्शो नात्र संशयः ॥ १० ॥

मगध देशकी उत्पन्नहुई हरडाका चूर्ण, तोरईका चूर्ण और समुद्रफेन इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे लिङ्गार्शरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ १० ॥

अपामार्गोद्भवान्मूलात क्षारं सहरितालकम् ।
लिङ्गार्शो लेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम् ॥ ११ ॥

चिरचिटेकी जडका बनायाहुआ क्षार और हरताल दोनोंको समभाग लेकर जलके साथ पीसकर लेप करनेसे बहुत पुराना लिङ्गार्शरोग निश्चय दूर होताहै ११

वातातिसारवद्भिन्नवर्चास्यर्शांस्युपाचरेत् ।
उदावर्त्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत् ॥ १२ ॥

अर्शके रोगियोंको पतले दस्त होते हों तो वातातिसारकी समस्त चिकित्सा करे और यदि मल कठिन उतरता हो तो उदावर्त्तरोगकी विधिके अनुसार चिकित्सा करे ॥ १२ ॥

विड्विबन्धे हितं तक्रं यमानीविडसंयुतम् ।
वातश्लेष्मार्शसां तस्मात् परं नास्तीह भेषजम् ॥ १३ ॥
तत् प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा ।
न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहिताः ॥ १४ ॥

वात और कफजनित अर्शके रोगियोंको मल विबन्ध हो जाने पर अजवायन और बिरियासंचर नमक डालकर मट्ठेका सेवन करना चाहिये ऐसे रोगियोंके लिये मट्ठेसे बढ कर हित करनेवाली अन्य कोई औषधि नहीं है. इसलिये यथा-दोषानुसार मक्खनसहित अथवा मक्खनरहित मट्ठेका नित्य सेवन करना चाहिये । इस प्रकार तक्रका सेवन करनेसे नष्ट हूए गुदाके अंकुर फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥ १५ ॥

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकण्डूरुजापहा।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाऽभया ॥ १६ ॥

चीतेकी जडकी छालको पीसकर उसका एक घड़ेके भीतर लेप करके उस घडेमें मठा या दही भरकर पान करनेसे अर्शरोग दूर होता है। हरडका चूर्ण और गुड दोनोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे पित्त-कफजन्य विकार, कच्छू, कण्डू और अर्शरोग शीघ्र दूर होता हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम्।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥ १७ ॥

घीमें भूनीहुई हरडके चूर्ण और पीपलके चूर्ण अथवा निसोतके चूर्ण और दन्तीकी जडके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे वायुका अनुलोमन होता है॥

तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्द्धनम्।
कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ १८ ॥

काले तिल और भिलावेके चूर्णको समान भाग लेकर भक्षण करनेसे अग्निकी वृद्धि होती है। कुष्ठ तथा अर्शरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

गोमूत्राध्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्।
पञ्चकोलयुतं वापि तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ १९ ॥

रातको गोमूत्रमें हरडको भिगोकर दूसरे दिन प्रातःकाल पीसकर सेवन करनेसे अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर देनेसे अर्शरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

मृल्लिप्तं सौरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत्।
दद्यात् सतैललवणैर्दुर्नाम्नां विनिवृत्तये ॥ २० ॥

एक जिमीकन्दको लेकर इसके ऊपर अच्छे प्रकार मिट्टीका पुटपाककी विधिसे लेप करके अग्निमें पकावे। फिर उसको तिलके तैल और सैंधेनमकके साथ भूनकर सेवन करनेसे अर्शरोग दूर होता है ॥ २० ॥

स्विन्नं वार्त्ताकुफलं घोषायाः क्षारजेन सलिलेन।
तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेनातृप्तितो यःऽत्ति ॥ २१ ॥
पिबति च तक्रं नूनं तस्याश्वेवातिबद्धगुदजानि।
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ २२ ॥

तोरईके क्षारको छः गुने जलमें २१ बार छानकर फिर उस क्षारजलमें बैंगनको उत्तम प्रकारसे पकाकर फिर घीमें भून लेवे फिर उसमें कुछ पुराना

गुड मिलाकर जो अर्शरोगी भक्षण करे और ऊपरसे मट्ठा पीवे तो उसके अत्यन्त बढा हुआ सहज अर्शरोग सात दिनमें नष्ट होजाताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

चतुःपलं स्नुहीकाण्डं त्रिपलं लवणत्रयात् ।
वार्त्ताकुकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ २३ ॥
दग्ध्वा रसेन वार्त्ताकोर्गुडिका भोजनोत्तराः ।
भुक्त्वा भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिता ॥
विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः ॥ २४ ॥

थूहरके वृक्षकी टहनी १६ तोले, काला नमक, सैंधानमक और बिरियासंचर नमक ये प्रत्येक ४ तोले, काले बैंगन १६ तोले, आककी जडकी छाल ३२ तोले और लालचीतेकी जड़ ८ तोले लेवे, सबको एकत्र दग्ध करके बैंगनके क्काथमे खरल करके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे भोजन करनेके पीछे एक एक गोली सेवन करनेसे खायाहुआ अन्न शीघ्र पच जाता है । ये गोलियाँ खाँसी, श्वास और अर्शरोगवालोंके लिये परम हितकारी हैं एवं विषूचिका, प्रतिश्याय और हृदयरोगको शमन करनेवाली हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

रक्तार्शश्चिकित्सा ।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवेद्भिषक् ।
दुष्टास्रे निगृहीते तु शूलानाहावसृग्गदाः ॥ २५ ॥

रक्तज बवासीरकी चिकित्सा करते समय वैद्यको चाहिये कि, प्रथमही स्रवते हुये रुधिरको नहीं रोके । कारण-दूषित रक्तको रोकनेसे शूल, आनाह और रक्त सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ २५ ॥

शक्रक्काथः सविश्वो वा किंवा बिल्वशलाटवः ।
योज्या रक्तार्शसैस्तद्वज्ज्योत्स्निकामूललेपनम् ॥ २६ ॥

इन्द्रजौका क्काथ सोंठका चूर्ण मिलाकर अथवा बेलगिरीका क्काथ सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे किंवा तोरईकी जड़का लेप करनेसे रक्तार्शरोग दूर होता है ॥ २६ ॥

नवनीततिलाभ्यासात् केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसरमथिताभ्यासाद् गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥ २७ ॥

नैनी घी (मक्खन), तिल या नागकेशर, मक्खन और मिश्री अथवा मलाई-सहित मथे हुए मट्ठेको कुछ दिनोंतक सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होती है ॥ २७ ॥

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः ।
छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम् ॥ २८ ॥

लज्जावन्ती, नीलकमलकी जड़, मोचरस, लोध, काले तिल और लाल चन्दन इनके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा सिद्ध कियाहुआ बकरीका दूध पान करनेसे रक्तज बवासीर दूर होता है ॥ २८ ॥

कोमलं नलिनीपत्रं पिष्ट्वा खादेत् सशर्करम् ।
प्रातराजं पयः पीत्वा रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥

कमलनीके कोमल पत्तोंको पीसकर उसमें कुछ चीनी मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल बकरीके दूधके साथ पान करनसे रक्तस्राव बन्द होता है ॥ २९ ॥

सशर्करं कृष्णतिलस्य कल्कं बास्तैः पयोभिः पिबति प्रभाते ।
सद्यो हरत्येव गुदोत्थरक्तं योगोऽयमित्थं गिरिशप्रयुक्तः ॥३०॥

काले तिलोंके कल्कको मिश्री मिलाकर बकरीके दूधके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे गुदासे रक्तका स्राव होना तत्काल दूर होता है ॥ ३० ॥

कौटजं कल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान् ।
पीत्वा रक्तार्शसो रक्तस्रुतिमाशु नियच्छति ॥ ३१ ॥

कुडेकी छालके चूर्णको मठेके साथ पीसकर सेवन करनेसें रक्तज बवासीरमें रक्तका गिरना शीघ्र बन्द होता है ॥ ३१ ॥

तण्डुलसलिलोपेतं कल्कमपामार्गजं पिबतः ।
क्षीरमनुवाप्यभीरोर्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥
दाडिमस्य रसः पेयः शकरामधुरीकृतः ॥ ३२ ॥

चिरचिटेके कल्कको चावलोंके पानीमें पीसकर पीनेसे अथवा शतावरके चूर्णको बकरीके दूधके साथ मिश्री डालकर अनारका रस पान करनेसे रक्तज बवासीर समूल नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

कण्टकिफलान्तमुशलक्षारो गोरोचनाजलम् ।
लेपमात्रेण विस्राव्य रसान् हन्ति गुदाङ्कुरान् ॥ ३३ ॥

कटहलके फलके भीतरकी मूलके क्षारको गोरोचनके साथ जलमें पीसकर लेप करनेसे रक्तस्राव होकर रक्तज बवासीर नष्ट होती है ॥ ३३ ॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः ।
बन्धनात् सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो न संशयः ॥

थूहरके दूधमें हलदीके चूर्णको मिलाकर उसमें एक उत्तम और दृढ (मजबूत) सूतके धागेको बारबार भावना देवे फिर उस बवासीरके मस्सेको खूब कसकर बाँधनेसे मस्से शीघ्र ही कट पडते हैं ॥ ३४ ॥

लवणोत्तमादि चूर्ण।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवाँ-
श्चिरबिल्वमहापिचुमर्दयुतान्।
पिब सप्तदिनं मथितालुलितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ॥ ३५ ॥

जो अर्शरोगको नष्ट करनेकी इच्छा है तो सैंधानमक, चीतेकी जड, इन्द्रजौ, दुर्गन्ध करञ्ज इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर सात दिनतक सेवन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

समशर्करचूर्ण।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्त्यात्।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-
कासारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ३६ ॥

छोटी इलायची १ भाग; दालचीनी दो भाग, तेजपात तीन भाग, नागकशर ४ भाग, काली मिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और सोंठ सात भाग सबको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर समस्त चूर्णके बराबर मिश्री मिलाकर यथोचित मात्रासे सेवन करे। यह चूर्ण अर्श, मन्दाग्नि, खाँसी, अरुचि, श्वास एवं कण्ठ और हृदयके रोगोंमें विशेष हितकारी है ॥ ३६ ॥

व्योषादिचूर्ण।

व्योषाग्न्यरुष्करविडङ्गतिलाभयानां
चूर्णं गुडेन सहितं तु सदोपयोज्यम्।
दुर्नामकुष्ठगरशोषशकृद्विबन्ध-
मग्नेर्जयत्यबलतां कृमिपाण्डुतां च ॥ ३७ ॥

सोंठ, पीपल, कालीमिरच, चीता, भिलावे, वायविडंग, तिल और हरड इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर समस्त चूर्णकी बराबर गुड मिलाकर उपर्युक्त मात्रासे प्रतिदिन सेवन करे तो बवासीर, कुष्ठ, विषदोष, शोथ, मलविबन्ध, मन्दाग्नि, कृमि और पाण्डुप्रभृति विविध प्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

विजयचूर्ण ।

त्रिकत्रयवचाहिंगु पाठाक्षारनिशाद्वयम् ।
चव्यतिक्ताकलिङ्गाग्निशताह्वालवणानि च ॥ ३८ ॥
ग्रन्थिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ३९ ॥
ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ।
एरण्डतैलयुक्तं तु सदा लिह्यात् ततो नरः ॥ ४० ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वच, हींग, पाढ, जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, चीता, सौंफ, पाँचों नमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद इन अट्ठाईस औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ अथवा अण्डीके तेलके साथ सेवन करे ॥ ३८-४० ॥

कासं हन्यात् तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ४१ ॥
हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगताम् ।
आमाशयमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदं कृमीन् ॥ ४२ ॥
अन्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्तिताः ।
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ४३ ॥
अप्रजानां तु नारीणां प्रजावर्द्धनमेव च ।
विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ४४ ॥

यह विजयनामवाला चूर्ण खाँसी, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलीका शूल, वातगुल्म, उदररोग, हिचकी, श्वास, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमाशयके रोग, उदावर्त्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाके विकार, कृमिरोग, संग्रहणी आदि जो अन्यान्य रोग मैंने कहे हैं उन सबको नष्ट करता है एवं महाज्वर और भूतबाधाको दूर करता है तथा वन्ध्या स्त्रियोंको सन्तानके देनेवाला यह चूर्ण कृष्णात्रेय ऋषि करके पूजित है ॥ ४१-४४ ॥

शूरणपिण्डी ।

चूर्णीकृताः षोडश शूरणस्य भागास्ततोऽर्द्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद्द्वौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥
"पिण्डत्वं गुडो मोदकवत् पिण्डत्वापत्तिकारकः" ॥ ४५ ॥

जिमीकंदका चूर्ण १६ भाग, लालचीतेकी जडका चूर्ण ८ भाग, सोंठका चूर्ण दो भाग और समस्त चूर्णकी बराबर गुड लेवे सबको एकत्र मिलाकर पिण्डी अर्थात् छोटे २ लडडू बनालेवे । यह पिण्डी सर्व प्रकारकी बवासीरको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम औषध है। इसको उपयुक्त मात्रासे सवन करे ॥ ४५ ॥

भल्लातकादिमोदक ।

भल्लातकं तिलं पथ्या चूर्णं गुडसमन्वितम् ।
मोदकं भक्षयेत् कर्षं मासात् पित्तार्शसां जयेत् ॥ ४६ ॥

भिलावे, तिल और हरड इनका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णसे दुगुना गुड लेवे । सबको एकत्र मिलाकर एकएक कर्ष प्रमाणके मोदक बनालेवे । इन मोदकोंको एक मासपर्यन्त सेवन करनेसे पित्तज बवासीर दूर होती है ॥ ४६ ॥

नागरादिमोदक ।

सनागरारुष्करवृद्धदारकं गुडेन यो मोदकमत्त्युदारकम् ।
अशेषदुर्नामकरोगदारक करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥
" चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः " ॥ ४७ ॥

सोंठ, शुद्ध भिलावेके अभावमें लालचन्दन और विधारा इन सबके समान भाग चूर्णमें समस्त चूर्णकी बराबर गुड मिलावे और मोदक बनाने हों तो उसमें दुगुन गुड डालकर लडडू बनालेवे । इस औषधिके सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी दारुण बवासीर शीघ्र ही नष्ट होती है । यह मोदक वृद्ध पुरुषको युवा करदेता है ॥ ४७ ॥

स्वल्पशूरणमोदक ।

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ।
सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः सिद्धफलः ॥४८॥
ज्वलनं ज्वालयति जाठरमुन्मूलयति गुल्मशूलगदान् ।
निःशेषयति श्लीपदमवश्यमर्शांसि नाशयत्याशु ॥४९॥

कालीमिरचोंका चूर्ण एक भाग, सोंठका चूर्ण २ भाग, चीतेकी जडका चूर्ण ४ भाग, जिमीकंदका चूर्ण ८ भाग और सब चूर्णकी बराबर गुड लेवे. सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर लडडू बनालेवे । ये मोदक तत्काल सिद्ध फलके देनेवाले हैं एवं अग्निको दीपन करते हैं । उदररोग, गुल्म और शूलादि रोगोंको जडसे उखाड देते हैं और श्लीपद तथा अर्शरोगको निस्सन्देह तत्काल नष्ट करते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

बृहच्छूरणमोदक।

शूरणषोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यातः।
अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य च ततोऽपिचार्द्धेन॥ ९०॥
त्रिफला कणा समूला तालीशारुष्करकृमिघ्नानाम्।
भागा महौषधसमा द्व्यंशा तालमूली च॥ ९१॥
भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि।
भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य॥ ९२॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽय मोदकः प्रकामघनैः।
गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरेषूपद्रवं कुर्यात्॥ ९३॥

जिमीकन्दका चूर्ण १६ तोले, चीतेकी जडका चूर्ण ८ तोले, सोंठका चूर्ण ४ तोले मिरचोंका चूर्ण २ तोले एवं हरड, आमला, बहेडा, पीपल, पीपलामूल, तालीसपत्र शुद्ध भिलावे और वायविडंग इन प्रत्यकेका चूर्ण चार चार तोले, मुशलीका चूर्ण ८ तोले, विधारेका चूर्ण १६ तोले, दालचिनी और छोटी इलायची प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, सबको एकत्र खूब बारीक पीसकर दुगुना पुराना गुड मिलाकर तैयार करलेवें। ये मोदक काम और धनकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको सेवन करने चाहिये। किन्तु जो मनुष्य इन मोदकोंको सेवन करके इनपर भारी और वृष्य पदार्थ नहीं खाते हैं, उनके ये मोदक अनेक प्रकारके उपद्रवोंको उत्पन्न करदेते हैं॥ ९०–९३॥

भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन।
भीमस्य मारुतेरपि तौ येन महाशनौ जातौ॥ ९४॥
अग्निबलवृद्धिहेतुः स केवलं शूरणो महावीर्यः।
प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः॥ ९५॥
श्वयथुश्लीपदजिद्ग्रहणीमपि कफवातसम्भूताम्।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वं च॥ ९६॥
हिक्कां श्वास कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च।
प्लीहानं चाथोग्रं हन्ति च रसायनं पुंसाम्॥ ९७॥

इसी योगराजके प्रभावसे पूर्वकालमें अगस्त्यऋषिके और भीमसेनके भस्माग्नि उत्पन्न होगयी थी, जिससे वे दोनों अधिक भोजन करते थे। इसमें अग्निके बलको बढानेवाला अत्युग्र वीर्यवान् केवल एक जिमीकन्द ही है। यह प्रयोग शस्त्र, क्षार और अग्निक्रियाके बिनाही अर्शरोगको दूर करता है। एवं सूजन, श्लीपद, कफ-वातजन्य ग्रहणी, वली-पलितरोग, हिचकी, श्वास, खांसी, राजयक्ष्मा, प्रमेह और अत्युग्र प्लीहा इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है तथा बुद्धिको तीव्र करता है मनुष्योंके लिये वृष्य और उत्तम रसायन है॥ ५४॥ ५७॥

काङ्कायनमोदक।

पथ्यापञ्चपलानेकमजाज्या मरिचस्य च।
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागराः॥ ५८॥
पलाभिवृद्धाः क्रमशो यवक्षारपलद्वयम्।
भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः॥ ५९॥
द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसम्मितान्।
कृत्वैन भक्षयेत् प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत्॥ ६०॥
मन्दाग्निं दीपयत्येष ग्रहणीपाण्डुरोगनुत।
काङ्कायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना॥
भिषग्जितमिति प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम्॥ ६१॥

हरड २० तोले, जीरा, कालीमिरच और पीपल ये प्रत्येक एक एक पल, एवं पीपलामूल २ पल, चव्य ३ पल, चीतेकी जड ४ पल, सोंठ ५ पल, जवाखार २ पल, शुद्ध भिलावे आठ पल, जिमीकन्द १६ पल और सब औषधियोंसे दुगुना पुराना गुड लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर एक तोलेके बडे बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक बडा खाय और ऊपरसे मठ्ठा अथवा शीतल जल पान करे तो यह बडे मन्दाग्निको दीपन करते हैं। एवं ग्रहणी, पाण्डुरोग आदि विविध रोगोंको नष्ट करते हैं। क्षार और अग्निक्रियाके विनाही इस कांकायन मोदकके द्वारा अर्शरोगको जीते। यह मोदक कांकायन ऋषिने अपने शिष्योंसे वर्णन किये हैं अर्शरोगियोंके लिये विशेषहितकारी है॥ ५८-६१॥

माणिभद्रमोदक।

विडङ्गसारामलकाभयानां पलं पलं स्यात्त्रिवृतात्रयं च।
गुडस्य षड्द्वादशभागयुक्ता मासेन त्रिंशद्गुटिका विधेयाः॥६२॥

निवारणे यक्षवरेण सृष्टः स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे।
अयं हि कासक्षयकुष्ठनाशनो भगन्दरप्लीहजलोदरार्शसाम् ॥
यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी ह्यनेन वृद्धस्तरुणो भवेच्च ॥ ६३ ॥

वायविडंगसार, आमले और हरड प्रत्येक चार चार तोले एवं निसोत १२ तोले और पुराना गुड़ २४ तोले सबको विधिपूर्वक मिलाकर ३० गोलियाँ बनालेवे फिर एक मासपर्यन्त प्रतिदिन छः छः माशेकी एक एक गोली सेवन करे। इन मोदकोंको माणिभद्रनामवाले यक्षने शाक्यमुनिके, अर्शको निवारण करनेके लिये बनाया था। ये मोदक खाँसी, श्वास, क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, जलोदर, बवासीर प्रभृति नानाप्रकारके रोगोंको नष्ट करते हैं। इसका सेवन करते समय यथेच्छ आहार विहार करना चाहिये। इस औषधिको सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी तरुण होजाता है ॥६२॥६३॥

प्राणदा गुटिका।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च।
पिप्पल्याः कुडवार्द्धं च चव्यं च पलमेव च ॥ ६४ ॥
तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च।
द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धकर्षं च पत्रकात् ॥ ६५ ॥
सूक्ष्मैला कर्षमेकं च कर्षं च त्वङ्मृणालयोः।
गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ६६ ॥
अक्षप्रमाणा गुटिका प्राणदेति प्रकीर्त्तिता।
पूर्वं भक्ष्या च पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ॥
मद्यं मांसरस यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ ६७ ॥

सोंठ १२ तोले, काली मिरच १६ तोले, पीपल ८ तोले, चव्य ४ तोले, तालीसपत्र ४ तोले, नागकेशर २ तोले, पीपलामूल ८ तोले, तेजपात ८ मासे छोटी इलायची १६ मासे, दालचीनी १६ मासे, खस १६ मासे और पुराना गुड डेढसेर सबको एकत्र कूट पीसकर और गुडमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे, इसको प्राणदा गुटिका कहते हैं। इस बटीको जठराग्निका बलाबल विचारकर भोजनके पहले या पीछे सेवन करे और मदिरा, मांसरस, यूष, दूध और जल इनका अनुपान करे ॥ ६४-६७ ॥

हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यसृजान्यपि ।
वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ ६८ ॥
पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे ।
विषमज्वरे च मन्देऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च ॥ ६९ ॥
कृमिहृद्रोगिणां चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा ।
श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा ॥ ७० ॥
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तपायुजे ।
प्राणदायाः सिता देया चूर्णमानाश्चतुर्गुणाः ॥ ७१ ॥

यह गुटिका सहज बवासीर, रक्तकी बवासीर आदि सर्वप्रकारकी बवासीर एवं वात-पित्त-कफसे उत्पन्न हुए रोग तथा सन्निपातजन्य रोग एवं अन्यान्य सब प्रकारके विकारोंमें अमृतकी समान हितकारी है इस बटीको मलविबन्धमें सोंठकी जगह हरड डालकर देवे और पित्तकी बवासीरमें गुडकी जगह सब औषधियोंके चूर्णसे चौगुनी मिश्री डालकर देवे ॥ ६८-७१ ॥

अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्यं गुदजातुरे ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ॥
पलद्वयं त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ ७२ ॥
पक्त्वैनं गुडिकाः कार्या गुडेन सितयाऽथवा ।
परं हि वह्निसंसर्गाल्लघिमानं भजन्ति ताः ७३ ॥

इस प्राणदा गुटिकाको अम्लपित्त मन्दाग्नि और बवासीरमें प्रयोग करे । इसपर कफके रोगोंमें चार तोले, वातरोगोंमें ८ तोले और पित्तके रोगोंमें १२ तोले अनुपानके द्रव्योंका सेवन करे । यह प्राणदा गुटिका गुडके साथ अथवा मिश्रीक साथ पकाकर भी सिद्ध की जासकती है । इस प्रकार सिद्ध की हुई वे गोलियाँ अग्निके संसर्गसे अत्यन्त हल्की होजाती हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

नागार्ज्जुनयोग ।

त्रिफला पञ्चलवणं कुष्ठं कटुकरोहिणी ।
देवदारुविडङ्गानि पिचुमर्दफलानि च ॥ ७४ ॥
बला चातिबला चैव हरिद्रे द्वे सुवर्चला ।
एतत् सम्भूतसम्भावं करञ्जत्वग्रसेन च ॥ ७५ ॥

पिष्ट्वा च गुडिकां कृत्वा बदरास्थिसमां बुधः ।
एकैकां तां समुद्धृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥

हरड, आमला, बहडा, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, समुद्रनमक, सांभर, कालानमक, कूठ, कुटकी, देवदारु, वायविडङ्ग, नीमके फल (निबौली), खिरैंटी, हल्दी, दारुहल्दी और हुलहुल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको करंजकी छालके क्राथमें खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंमेंसे एक एक गोली पृथक् २ रोगोंमें अलग २ अनुपानोंके साथ सेवन करनी चाहिये ॥ ७४-७६ ॥

उष्णेन वारिणा पीता शान्तमग्निं प्रदीपयेत् ।
अर्शांसि हन्ति तक्रेण गुल्ममम्लेन निहरेत् ॥ ७७ ॥
जन्तुदष्टं तु तोयेन त्वग्दोषं खदिराम्बुना ।
मूत्रकृच्छ्रं तु तोयेन हृद्रोगे तैलसंयुता ।
इन्द्रस्वरससंयुक्ता सर्वज्वरविनाशिनी ॥ ७८ ॥
मातुलुङ्गरसेनाथ सद्यः शूलहरी स्मृता ।
कपित्थतिन्दुकानां तु रसेन सह मिश्रिता ॥
विषाणि हन्ति सर्वाणि पानाशनप्रयोगतः ॥ ७९ ॥
गोशकृद्रससंयुक्ता हन्यात् कुष्ठानि सर्वशः ।
श्यामाकषायसहिता जलोदरविनाशिनी ॥ ८० ॥
भक्तच्छन्दं जनयति भुक्तस्योपरि भक्षिता ।
अक्षिरोगेषु सर्वेषु मधुना घृष्य चाञ्जयेत् ॥ ८१ ॥
लेहमात्रेण नारीणां सद्यः प्रदरनाशिनी ।
व्यवहारे तथा द्यूते संग्रामे मृगयादिषु ॥
समालभ्य नरो ह्येनां क्षिप्रं विजयमाप्नुयात् ॥ ८२ ॥

यह वटी गरम जलके साथ सेवन करनेसे मन्दाग्निको दीपन करती है । एवं मठेके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी बवासीर और काँजीके साथ सेवन करनेसे गुल्मरोग, शीतल जलके साथ खानेसे विषैले जीवोंका काटा हुआ विष, खैरके काढेके साथ खानेसे त्वचाके रोग, जलके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, तिलके तेलके साथ सेवन करनेसे हृदयरोग, वर्षाके जलके साथ प्रयोग कर-

नेसे सर्वप्रकारके ज्वर, बिजौरे नींबूके रसके साथ देनेसे समस्त शूलरोग एवं कैथ और तेन्दूके रसके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके विषोंको तत्काल नष्ट करती है । एवं गोबरके रसके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठरोग और निसोतके क्वाथके साथ सेवन करनेसे जलोदररोगको दूर करती है । भोजनके पश्चात् इसको भक्षण करनेसे अरुचि दूर होकर रुचि उत्पन्न होती है । सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें शहदके साथ घिसकर आँखोंमें आँजनेसे शीघ्र लाभ होता है । यह वटी शहदमें मिलाकर चाटनेसे स्त्रियोंके प्रदररोगको तत्काल नष्ट करती है । जो पुरुष न्यायालय, जूआ, संग्राम और शिकार खेलनेके समय इस वटीको लेकर जाता है, वह शीघ्रही विजय पाता है ॥ ७७–८२ ॥

कुटजलेह ।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ८३ ॥
वस्त्रपूतं पुनः क्वाथं पचेल्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ ८४ ॥
रसाञ्जनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च ।
वचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ८५ ॥
गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ।
मधुनः कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ ८६ ॥

कुडेकी जडकी छालको सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे । फिर उस क्वाथको दुबारा पकावे । जब पकते २ लेहकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें शुद्ध भिलावे, वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, रसौंत, चीतेकी जड, इन्द्रजौ, वच, अतीस, बेलगिरी इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले एवं गुड ३० पल, शहद १६ तोले और घी १६ तोले डालकर सबको एकमएक कर देवे ॥ ८३–८६ ॥

एष लेहः शमयति चार्शो रक्तसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ८७ ॥
ये च दुर्नामजा रोगास्तान् सर्वान्नाशयत्यपि ।
अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ८८ ॥

ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।
अनुपानं घृतं दद्यान्मधु तक्रं जलं पयः ॥
रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उत्तमः ॥ ८९ ॥

यह लेह रुधिरकी बवासीर एवं वात पित्त और कफ इन प्रत्येकसे उत्पन्न हुई अथवा त्रिदोषोत्पन्न बवासीर तथा अन्यान्य सर्वप्रकारकी जो दुस्तर व्याधियाँ उन सबको तथा अम्लपित्त, अतिसार, पाण्डुरोग, अरुचि, ग्रहणीकी मृदुता, कृशता, सूजन और कामलारोगको तत्काल नष्ट करता है। इसपर घृत, शहद, मठा, जल और दूध इन पदार्थोंका अनुपान करना चाहिये। यह कुटज अवलेह रोगसमूहको नष्ट करनेके लिये सर्वश्रेष्ठ है ॥ ८७-८९ ॥

कुटजरसक्रिया ।

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमार्द्रं महेन्द्रसलिलेन ।
यावत् सान्द्ररसं तद् द्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः ॥ ९० ॥
मोचरसः ससमङ्गा फलिनी च पलांशिभिस्त्रिभिस्तैश्च ।
वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ ९१ ॥
पूतोत्कथितः सान्द्रः सरसो दर्वीप्रलेपनो ग्राह्यः ।
मात्रा कालोपहिता रसक्रियैषा जयत्यसृक्स्रावम् ॥९२॥
छगलीपयसा युक्ता पेया मण्डेन वा यथाऽग्निबलम् ।
जीर्णौषधश्च शालीन् पयसा च्छागस्य भुञ्जीत ॥९३॥
रक्तार्शांस्यतिसारं शूलं सासृग्रुजो निहन्त्याशु ।
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभयभागम् ॥ ९४ ॥

गीली कुडेकी छालको सौ पल लेकर वर्षाके एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल गाढा होजाय तब उसको नीचे उतार छानकर रस निकाले फिर उस रसमें मोचरस, लज्जावन्ती और फूलप्रियंगु इन प्रत्येकका चूर्ण ४-४ तोले और इन्द्रजौका चूर्ण १२ तोले मिलाकर पकावे जब पकते २ गाढा होजाय और करछीसे लगने लगे तब उसको नीचे उतार लेवे। फिर इस रसक्रियामात्राको समयानुसार निर्द्धारितकर और अपनी अग्निके बलाबल विचारकर बकरीके दूध अथवा मांडके साथ सेवन करे तो यह कुटज रसक्रिया तत्काल रक्तस्रावको बन्द करती है। इस औषधिके जीर्ण होजानेपर बकरीके दूधके साथ शालिधानोंके चावलोंका भात खावे। यह औषधि रक्तज बवासीर,

रक्तका अतिसार, शूल, सर्व प्रकारके रुधिरके विकार और ऊर्ध्व व अधः इन दोनों मार्गोंसे बहनेवाले बलवान् रक्त-पित्तको शीघ्र नष्ट करती है ॥ ९०-९४ ॥

दशमूल-गुड़ ।

दशमूलाग्निदन्तीनां प्रत्येकं पलपञ्चकम् ।
जलद्रोणेन संक्वाथ्य पादशेषे समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥
गुडं पलशतं चैव सिद्धे शीते विमिश्रयेत् ।
त्रिवृताया रजः प्रस्थस्तदर्द्धं पिप्पलीरजः ॥ ९६ ॥
घृतभाण्डे स्थितं खादेत् कर्षमात्रं दिनेदिने ।
दशमूलगुडः ख्यातः शमयेद्रोगमार्शसम् ॥
अजीर्णं पाण्डुरोगं च सर्वरोगहरं परम् ॥ ८७ ॥

दशमूलकी सब औषधियाँ, चीतेकी जड और दन्तीकी जड प्रत्येक औषध २०-२० तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें १०० पल गुड डालकर दूसरी बार पकावे उत्तम प्रकारसे पाक होजानेपर नीचे उतारलेवे शीतल होनेपर उसमें निसोतका चूर्ण १ प्रस्थ और पीपलका चूर्ण आधा प्रस्थ मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । इसमेंसे प्रतिदिन एक एक कर्ष प्रमाण सेवन करे तो यह दशमूल-नामवाला गुड सर्व प्रकारकी बवासीर, अजीर्ण, पाण्डुरोग एवं अन्यान्य सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥ ९५-९७ ॥

बाहुशाल गुड ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी ।
गवाक्षी मुस्तबिल्वाह्वविडङ्गानि हरीतकी ॥ ९८ ॥
पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ।
षट्पलं वृद्धदारस्य शूरणस्य तु षोडश ॥ ९९ ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथं चतुर्भागावशेषितम् ।
पूतं तु तं रसं भूयः क्वाथेभ्यस्त्रिगुणो गुडः ॥ १०० ॥
लेहं पचेत्तु तं तावद् यावद्दर्वीप्रलेपनम् ।
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १ ॥

त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशिकान् ।
एलात्वङ्मरिचं चापि गजाह्वां चापि षट्पलाम् ॥ २ ॥
द्वात्रिंशत्पलमेवात्र चूर्णं दत्त्वा निधापयेत् ।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ ३ ॥

निसोत, चव्य, दन्ती, गोखरू, चीतेकी जड, कचूर, इन्द्रायन, नागरमोथा, बेलगिरी, वायविडङ्ग और हरड ये प्रत्येक ४-४ तोले, मिलावे ३२ तोले, विधारेकी जड २४ तोले और जिमीकन्द ६४ तोले लेवे। इन सबको एकत्रकर दो द्रोण ५१२ पल परिमाण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्काथमें क्काथसे तिगुना पुराना गुड मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते करछीसे समस्त लेह चिपकने लगे तब नीचे उतारकर उसमें निसोत, चव्य, जिमीकन्द और चीतेकी जड इन प्रत्येकका चूर्ण ८८ तोले एवं छोटी इलायची, दालचीनी, कालीमिरच और गजपीपल प्रत्येकका चूर्ण २४-२४ तोले लेकर मिलादेवे (उक्त औषधियोंकी मात्रा निश्चितकर दीगई है तथापि "द्वात्रिंशतपलम्" यह पद जो कहा गया है वह कहीं कहीं व्यवधान रहित निर्देश करनेपर भी प्रत्येक औषध समभाग नहीं है यह बतलानेके लिये है।) फिर अपनी शक्तिके अनुसार मात्र निर्द्धारित करके सेवन करे औषधके जीर्ण होनेपर दूध और मांसरस भक्षण करे ॥ ९८-१०३ ॥

पञ्च गुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ ४ ॥
दीपयेद् ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणं चापकर्षति ।
पीनसे च प्रतिश्याये आढ्यवाते तथैव च ॥ ५ ॥
अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः ।
दुर्नामारिरयं चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ६ ॥
भवन्त्येनं प्रयुञ्जानाः शतवर्षं निरामयाः ।
आयुषो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशनः ॥ ७ ॥
रसायनवरश्चैव मेधाजनन उत्तमः ।
गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्त्तितः ॥ ८ ॥

"तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ।
क्षिप्तश्च निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्यते ॥ ९ ॥
यदा दर्वीप्रलेपः स्याद्यावद्वा तन्तुली भवेत् ।
एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥ ११० ॥
सुखमर्द्दः खरस्पर्शो गन्धवर्णसमन्वितः ।
पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः" ॥ १११ ॥

यह गुड पाँचों प्रकारके गुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, सर्वप्रकारके अतिसार, सम्पूर्ण उदररोग, संग्रहणी, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा, पीनस, प्रतिश्याय, आढ्यवात और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंमें हित करनेवाला है और यह बवासीरको तत्काल नष्ट करता है । यह हजारोंबार परीक्षा करके देखा है । इसको सेवन करनेवाले मनुष्य आरोग्य होकर सौ वर्षतक जीते हैं । यह आयुको बढानेवाला, वली-पलितरोगनाशक, श्रेष्ठ रसायन और उत्तम मेधाजनक औषध है । यह श्रीबाहुशालगुड बवासीरका शत्रु कहा गया है । " जब जलसे भरेहुए पात्रमें गुड डालनेपर तैरता न रहे अथवा जलमें नीचे न बैठे और फैले भी नहीं वा करछीसे चिपकने लगे किंवा अँगुलीपर लेकर बटनेसे तारसे छूटने लगे और जिस समय गुडको सहज २ मर्दन अथवा स्पर्श करे एवं अँगुलीसे मसले उस समय यदि गुडके ऊपर अंगुलीके निशान पडजायँ और गुडमें उपयुक्त गन्ध, वर्ण एवं रस हो तब गुडपाक हुआ जानना चाहिये । यह समस्त गुडपाकोंकी विधि कहीगई है " ॥ १०४-१११॥

गुडभल्लातक ।

भल्लातकसहस्रं द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् पचेद् गुडतुलां भिषक् ॥ १२ ॥
भल्लातकसहस्रार्द्धं छित्त्वा तत्र प्रदापयेत् ।
सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयमानीमुस्तसैन्धवम् ॥ १३ ॥
कर्षांशसम्मितं दद्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ।
खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानवः ॥ १४ ॥
कुष्ठार्शःकामलामेहग्रहणीगुल्मपाण्डुताः ।
हन्यात् प्लीहोदरं कासकृमिरोगभगन्दरान् ।
गुडभल्लातको ह्येष श्रेष्ठश्चार्शोविकारिणाम् ॥ १५ ॥

शुद्ध किये हुए २००० भिलावोंको लेकर १ द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे फिर उस रसमें गुड १०० पल और टुकडे किये हुए ५०० भिलावे डालकर पकावे। जब पाक अच्छे प्रकारसे सिद्ध होजाय तब त्रिफला, त्रिकुटा अजवायन, नागरमोथा, सैंधानमक, दालचीनी छोटी इलायची, तेजपात और नागकेसर ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष प्रमाण बारीक पीसकर मिलादेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करे। इससे कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह ग्रहणी, गुल्म, पाण्डुता, खाँसी, कृमिरोग, भगन्दर, प्लीहा, और उदरविकार ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह गुडभल्लातक बवासीरके रोगियोंकी एकमात्र उत्तम औषधि है ॥ १२–१५ ॥

अन्य-गुडभल्लातक।

दशमूलाऽमृता भार्ङ्गी श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी।
भल्लातकसहस्रं च पलांशं क्वाथयेद् बुधः ॥ १६ ॥
पादशेषे जलद्रोणे रसे तस्मिन् विपाचयेत।
दत्त्वा गुडतुलामेकां लेहीभूतं समुद्धरेत् ॥ १७ ॥
माक्षिकं पिप्पलीं तैलमौरुबूकं च दापयेत।
कुडवं कुडवं चात्र त्वगेला मरिचस्तथा ॥ १८ ॥
अर्शः कासमुदावर्त्तं पाण्डुत्वं शोथमेव च।
नाशयेद्वह्निसादं च गुडभल्लातकः स्मृतः ॥ १९ ॥

दशमूल, गिलोय, भारंगी, गोखुरू, चीतेकी जड और कचूर प्रत्येक चार चार तोले एवं शुद्ध भिलावे एक हजार ले ..बको एकत्र मिलाकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथमें अण्डीका तेल एक कुडव और पुराना गुड सौ पल डालकर फिर पाक करें। जब पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची और काली मिरच ये चारों एक कुडव और शीतल होनेपर शहद एक कुडव परिणाम मिलादेवे। यह गुडभल्लातक अर्शरोग, खाँसी, उदावर्त, पाण्डु, शोथ और मन्दाग्नि इन सब विकारोंको नष्ट करता है ॥ १६–१९ ॥

माणशूरणादि-लोह।

माणशूरणभल्लातत्रिवृद्दन्तीसमन्वितम्।
त्रिकत्रयसमायुक्तमयो दुर्नामनाशनम् ॥ १२० ॥

मानकन्द, जिमीकन्द, भिलावे, निसोत, दन्तीकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, चीतेकी जड, नागरमोथा और वायविडंग इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म लेवे। सबको एकत्र खरल करके एक माशेकी मात्रासे सेवन करनेसे अर्शरोग नष्ट होता है ॥ १२० ॥

अग्निमुखलोह ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डीतिकञ्जटाः ।
प्रत्येकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत ॥ २१ ॥
पलत्रयं विडङ्गाच्च व्योषात् कर्षत्रयं पृथक् ।
त्रिफलायाः पञ्चपलं शिलाजतुपलं न्यसेत् ॥ २२ ॥
दिव्यौषधिहतस्यापि वैकङ्कतहतस्य वा ।
पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहस्य चूर्णकम् ॥ २३ ॥
चतुर्विंशत्पलैराज्यान्मधुशर्करयोरपि ।
घनीभूते सुशीते च दापयेदवतारिते ॥ २४ ॥

निसोत, चीता, सिह्माल्लू, थूहर, मुण्डी और भुईआमला ये प्रत्येक बत्तीस तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर वायविडङ्ग १२ तोले, सोंठ, पीपल और कालीमिरच प्रत्येक चारचार तोले, हरड, आमला और बहेडा प्रत्येक समान भाग मिश्रित २० तोले, शोधित शिलाजीत ४ तोले, मैनशिल अथवा कंटाईके रसद्वारा भस्म कियेहुए रुक्मलोहका चूर्ण १२ पल, एवं गौका घी, शहद और मिश्री प्रत्येक २४-२४ पल लेवे। पाकके नियमानुसार प्रथम घीको चूल्हेकर चढाकर गरम करे फिर उसमें लोहचूर्ण डालकर मन्दमन्द अग्निसे भूने। जब अच्छे प्रकारसे भूनजाय तब उस चूर्णको निकालकर खांडकी चासनी कर उसमें उक्त क्राथको डालकर धीरे २ पकावे। जब पककर पाक गाढा हो जाय तब शीतल होजानेपर उसमें उक्त ओषधियोंके चूर्णको मिलादेवे ॥ १२१-१२४ ॥

एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम् ।
मन्दमग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ॥ २५ ॥
पर्वता अपि जीर्यन्ति प्राशनादस्य देहिनः ।
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हितः ॥ २६ ॥
दुर्नामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम् ।
अकालपलितं हन्यादामवातं गुदामयम् ॥ २७ ॥

न स रोगोऽस्ति यं चापि न निहन्यादिदं क्षणात् ।
करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्जयेत् ॥
स्रवत्यतोऽन्यथा लौहं देहात् किट्टं च दुर्ज्जयम् ॥ २८ ॥

यह अग्निमुखनामक लोह बावासीरको नष्ट करनेवाला और मन्दाग्निको दीपन करनेवाला है । इसके खानेसे मनुष्यको पत्थरतक हजम हो सकते हैं। इसपर भारी और पुष्टिकारक अन्न पान, दूध और मांसरस ये पदार्थ हितकारी हैं। यह बवासीर, पाण्डुरोग, सूजन, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, असमयमें बालोंका पकना, आमवात और गुदाके रोग इन सब रोगोंको एवं अन्यान्य और कोईभी ऐसा रोग नहीं है जिसको यह तत्क्षण ही नष्ट न करता हो। इसपर करीर, कांजी, ककडी आदि समस्त ककाराद्य पदार्थ सर्वथा त्यागदेने चाहिये । इस प्रकार न करनेसे शरीरसे लोहेका दुर्जय मैल टपकने लगता है ॥ २९-२८ ॥

चन्द्रप्रभागुटिका ।

कृमिरिपुदहनव्योषत्रिफलासुरदारुचव्यभूनिम्बम् ।
मागधिमूलं मुस्तं सशठी वचा धातुमाक्षिकं चैव ॥ २९ ॥
लवणक्षारनिशायुगकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषाः ॥ १३० ॥
कर्षांशकान्यत्र समानि कुर्यात्पलाष्टकं चाश्मजतोर्विदध्यात् ।
निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लोहरजस्तथैव ॥
सिताचतुष्कं पलमत्र वांश्यानिकुम्भकुम्भीत्रिसुगन्धियुक्तम् ३१

वायविडंग, चीतेकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, सोनामाखी, सैंधानमक, कालानमक, जवाखार, सज्जी, हल्दी, दारुहल्दी, धनियाँ, गजपीपल और अतीस ये प्रत्येक एक एक कर्ष और शिलाजीत ३२ तोले, शोधित गूगल ८ तोले, लोहभस्म ८ तोले, मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ४ तोले, दन्तीकी जड ४ तोले, निसोथ ४ तोले, एवं दालचीनी, तेजपात और इलायची ये तीनों मिश्रित ४ तोले लेवे । सबको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ २९-१३१ ॥

चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया ह्यर्शांसि निर्नाशयते षडेव ।
भगन्दरं कामलपाण्डुरोगं विनष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ॥
हन्त्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगते मर्मगते व्रणे च॥३१

ग्रन्थ्यर्बुदे विद्रधिराजयक्ष्ममेहे भगाख्ये प्रदरे च योज्या।
शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे मूत्रप्रवाहेऽप्युदरामये च ॥३३॥
तक्रानुपानं त्वथ मस्तुपानमाजो रसो जाङ्गलजो रसो वा।
पयोऽथवा शीतजलानुपानं बलेन नागस्तुरगो जवेन ॥ ३४ ॥
दृष्ट्या सुपर्णः श्रवणे वराहः कान्त्या रतीशो धिषणश्च बुद्ध्या।
न पानभोज्ये परिहार्यमस्ति न शीतवातातपमैथुनेषु ॥३५॥

यह चन्द्रप्रभानामवाली गुटिका छहों प्रकारके अर्शरोग, भगन्दर, कामला और पाण्डुरोग इनको जडसहित नष्ट करदेती है और नष्ट हुई जठराग्निको फिरसे दीपन करती है। इसको पित्त कफ और वायुसे उत्पन्न हुए विकार, नाडीगतरोग, मर्मस्थानसम्बन्धी विकार, व्रण, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि, राजयक्ष्मा, प्रमेह, भगरोग, प्रदर, शुक्रक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रप्रवाह और उदररोग इन सबमें सेवन कराना चाहिये। इसपर मट्ठा, दहीका तोड, बकरेके मांसका रस, जंगली जीवोंका मांसरस, दूध अथवा शीतल जल इनमेंसे किसीएक वस्तुका अनुपान करना चाहिये। इस वटीके सेवन करनेवाला बलमें हाथीके समान, वेगमें घोडेके समान, दृष्टिमें गरुडके समान, सुननेमें वराहके समान, कान्तिमें कामदेवके समान, और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान होजाता है। इसपर खान पानके शीत, वायु, धूप और मैथुन आदिका कुछ भी परहेज नहीं है ॥ ३२-३५ ॥

शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रणामं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसः प्रसादात् ॥
संमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यामादौ रक्तिचतुष्टयम्।
भक्ष्यं वृद्ध्या यथायुक्ति यावन्माषचतुष्टयम् ॥ ३७ ॥
त्रिवृद्दन्तीत्रिजातानां कर्षमानं पृथक् पृथक्।
शुक्रदोषान् निहन्त्याशु प्रमेहानपि दारुणान् ॥ ३८ ॥
वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ३९ ॥
" वृद्धवैद्योपदेशेन पलार्द्धं रसगन्धकम्।
केवलं मूर्च्छितं वापि पलं वा दापयेद्रसम् ॥
अभ्रकं च क्षिपेत् कश्चित् पलमानं भिषग्वरः " ॥४०॥

यह वटी शिवजी महाराजका पूजन करके और उनको प्रणाम करके चन्द्रदेवकी कृपासे प्राप्त की है। अतःप्रतिदिन शिवजीकी अर्चना और वन्दना करके पहले इस

वटीको चार रत्ती प्रमाण लेकर शहद और घीमें अच्छे प्रकारसे खरल करके सेवन करे फिर यथाक्रमसे बढाते २ चार माशेतक इसकी मात्राको बढावे । औषध सेवनके पश्चात यदि निसोत, दन्ती, दारचीनी, तेजपात और इलायची इनके एक एक कर्षप्रमाण चूर्णको भक्षण करे तो यह सम्पूर्ण शुक्रगत दोष और दारुण प्रमेहोंको तत्काल दूर करती है । वली (शरीरमें वलिका पडना) और पलित (असमय बालोंका पकना) इन विकारोंसे रहित होकर वृद्धपुरुष भी तरुण होजाता है । " वृद्धवैद्योंके उपदेशसे कोई २ वैद्य इसमें दो तोले शुद्ध पारा और दो तोले शुद्ध गन्धक अथवा केवल मूर्च्छित पारेको ही ४ तोले किंवा कोई कोई चार तोले अभ्रक कोही डालते हैं " ॥ ३६–१४० ॥

रसगुडिका ।

रसस्तु पादिकस्तुल्या विडङ्गमरिचाभ्रकाः ।
गङ्गापालङ्कजरसे खल्लयित्वा पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
रक्तिमात्रा गुदार्शोघ्नी वह्नेरत्यर्थदीपनी ॥ ४२ ॥

रससिन्दूर १ भाग एव वायविडंग, कालीमिरच और अभ्रक ये प्रत्येक एक एक भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर शालिञ्चशाक बड़ी पालकके रसमें खरलकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी अर्शरोगको नष्ट करती है और अग्निको अत्यन्त दीपन करती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तीक्ष्णमुखरस ।

मृतसूतार्कहेमाभ्रं तीक्ष्णं मुण्डं च गन्धकम् ।
मण्डूरं च समं ताप्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ ४३ ॥
अन्धमूषागतं सर्वं ततः पाच्यं दृढाग्निना ।
चूर्णितं सितया माषं खादेत्तच्चार्शसां हितम् ।
रसस्तीक्ष्णमुखो नाम चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ४४ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, लोहभस्म, शुद्ध गन्धक, मण्डूरभस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एक एक दिनतक घीगुवारके रसमें खरल करे फिर उसको अन्धमूषायन्त्रमें रखकर तीक्ष्ण अग्निके द्वारा पकावे । जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब उसमेंसे औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इसमेंसे एक एक माशे परिमाण लेकर मिश्रीके साथ सेवन करे तो यह तीक्ष्णमुख नामक रस

असाध्य अर्शरोगको भी दूर करदेता है । अर्शरोगियोंके लिये यह अत्यन्त हितकारी है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अर्शकुठाररस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मृतलौहं च ताम्रकम् ।
प्रत्येकं द्विपलं दन्ती त्र्यूषणं शूरणं तथा ॥ ४५ ॥
शुभाटङ्कयवक्षारसैन्धवं पलपञ्चकम् ।
पलाष्टकं स्नुहीक्षीरं द्वात्रिंशच्च गवां जलैः ॥ ४६ ॥
आपिण्डितं पचेदग्नौ खादेन्माषद्वयं ततः ।
रसश्चार्शःकुठारोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ४७ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले एवं शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म दन्तीकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच और जिमीकन्द ये प्रत्येक ८-८ तोले, वंशलोचन, सुहागा, जवाखार और सैंधानमक प्रत्येक २०-२० तोले थूहरका दूध ३२ तोले और गोमूत्र १२८ तोले लेवे । इन सबको एकत्र कूट पीसकर गोमूत्रमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पकजाय तब औषधिको सुखाकर चूर्ण करलेवे । फिर इस अर्शकुठारनामक रसको प्रतिदिन दो दो माशेकी मात्रासे सेवन करे तो इससे सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ ४५-४७ ॥

चक्राख्यरस ।

मृतसूताभ्रवैक्रान्तं ताम्रं कांस्यं समं समम् ।
सर्वतुल्येन गन्धेन दिनं भल्लातकद्रवैः ॥ ४८ ॥
मर्दयेद् यत्नतः पश्चाद् वटीं कुर्याद्विगुञ्जिकाम् ।
भक्षणाद् गुदजान् हन्ति द्वन्द्वजान् सर्वजानपि ॥ ४९ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, वैक्रान्तमणि, ताँबा, और कांसा प्रत्येककी भस्म समान भाग और सबकी समान भाग शुद्ध गन्धक लेवे । सबको एकत्र मिलाकर भिलावोंके रसमें एक दिनतक उत्तम प्रकारसे खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंके खानेसे द्विदोषज अथवा त्रिदोषज सभी प्रकारके अर्शरोग नष्ट होते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

चञ्चुत्कुठाररस ।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं भागयुग्मकम् ।
दन्तीत्रिकटुकुष्ठैकं षड्भागं लाङ्गलस्य च ॥ ५० ॥

क्षारसैन्धवटङ्कानां प्रत्येकं भागपञ्चकम् ।
गोमूत्रस्य च द्वात्रिंशत् स्नुहीक्षीरं तथैव च ॥ ९१ ॥
यावच्च पिण्डितं सर्वं तावन्मृद्वग्निना पचेत् ।
माषद्वयं ततः खादेद् दिवास्वप्नादि वर्जयेत् ॥
रसश्चञ्चत्कुठारोऽयमर्शसां कुलनाशनः ॥ ९२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोहा ये प्रत्येक दो दो भाग, दन्ती, सोंठ, पीपल मिरच और कूठ ये प्रत्येक एक एक भाग, कलिहारीकी जड ६ भाग, जवाखार, सैंधानमक और सुहागा प्रत्येक ५-५ भाग, गोमूत्र और थूहरका दूध प्रत्येक बत्तीस बत्तीस भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर तबतक मन्द २ अग्निसे पकावे जबतक पकते पकते सब औषधि पिण्डकी समान होजाय । फिर उसका चूर्ण करके उसमेंसे दो दो माशे परिमाण सेवन करे । इसपर दिनमें सोना आदि त्याग देना चाहिये । यह चञ्चत्कुठाररस सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित अर्शरोगको नष्ट करता है ॥ १९०-९२॥

चक्रेश्वररस ।

चतुर्भागं शुद्धसूतं पञ्च टङ्कणमभ्रकम् ।
त्रिदिनं भावयेद् घर्म्मे द्रवैः श्वेतपुनर्नवैः ॥ ९३ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं वातदुर्नामशान्तये ।
सिद्धश्चक्रेश्वरो नाम रसश्चार्शःकुलान्तकः ॥ ९४ ॥

शुद्ध पारा ४ भाग एवं सुहागा और अभ्रक प्रत्येक ५-५ भाग लेवे । सबको सफेद पुनर्नवेके रसमें धूपमें रखकर तीन दिनतक भावना देवे । पश्चात् दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर नित्य एक एक गोली सेवन करे । वातज बवासीरको नष्ट करनेके लिये तो यह चक्रेश्वर नामक रस प्रसिद्ध ही है । एवं अन्यान्य अर्शोंको भी समूल नष्ट करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

शिलागन्धकवटी ।

शिलागन्धकयोश्चूर्णं पृथग् भृंगरसाप्लुतम् ।
सप्ताहं भावयेत सर्पिर्मधुभ्यां च विमर्दयेत ॥ ९५ ॥
अर्शसश्चानुलोम्यार्थं हताग्निबलवर्द्धनम् ।
रक्तिकाद्वितयं खादेत कुष्ठादिरहितो नरः ॥ ९६ ॥

मैनसिल और गन्धकके चूर्णको अलग अलग भाँगरेके रसमें १ सप्ताहतक भावना देकर घी और शहदके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत करलेवे । इसके खानेसे अर्शरोगीके वायुका अनुलोमन होता है, नष्ट हुई अग्नि पुनः दीपन होती है और कुष्ठादि उपसर्गोंसे रहित होकर मनुष्य आरोग्य होता है ॥ ९९ ॥ ५६ ॥

जातीफलादिवटी ।

जातीफलं लवङ्गं च पिप्पली सैन्धवं तथा ।
शुण्ठी धुस्तूरबीजं च दरदं टङ्कणं तथा ॥ ९७ ॥
समं सर्वं विचूर्ण्याथ जम्भाम्भसा विमर्दयेत् ।
जातीफलवटी चेयमर्शोऽग्निमान्द्यनाशिनी ॥ ९८ ॥

जायफल, लौंग, पीपल, सैंधानमक, सोंठ, धतूरेके बीज, सिंगरफ और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । यह जातीफलाद्यवटी सर्वप्रकारके अर्शरोग और मन्दाग्निको नष्ट करती है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

पञ्चाननवटी ।

मृतसूताभ्रलौहानि मृतार्कगन्धकैः सह ।
सर्वाणि समभागानि भल्लातं सर्वतुल्यकम् ॥ ९९ ॥
वन्यशूरणकन्दोत्थद्रवैः पलप्रमाणतः ।
मर्दयेद्दिनमेकं च माषमात्रं पिबेद् घृतैः ॥१६० ॥
भक्षणाद्धन्ति सर्वाणि चार्शांसि च न संशयः ।
असाध्येष्वपि कर्त्तव्या चिकित्सा शङ्करोदिता ॥
कुष्ठरोगं निहन्त्याशु मृत्युरोगविनाशिनी ॥ ६१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताँबा और शुद्ध गन्धक ये सब समान भाग और शुद्ध भिलावे सबकी बराबर भाग लेवे । फिर सबको एकत्र पीसकर ४ तोले प्रमाण जंगली जिमीकन्दके रसमें खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली घृतके साथ पान करे । इस वटीके सेवन करनेसे सर्वप्रकारके अर्शरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं । इस वटीके द्वारा असाध्य रोगोंमें भी चिकित्सा करनी चाहिये ऐसा शंकरने कहा है । यह वटी कुष्ठरोग और मृत्युरोगको तत्काल नाश करनेवाली है ॥ ९९-१६१ ॥

नित्योदित रस।

शुद्धसूताभ्रलौहार्कविषं गन्धं समं समम्।
सर्वतुल्यं तु भल्लातफलमेकत्र:चूर्णयेत् ॥ ६२ ॥
द्रवैः शूरणकन्दोत्थैः खल्ले मर्द्यं दिनत्रयम्।
माषमात्रं लिहेदाज्यं रसश्चार्शांसि नाशयेत् ॥
रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भवकुलान्तकः ॥ ६३ ॥

शुद्ध पारा, अभ्रक, लोहा, ताँबा, शुद्ध मीठातेलिया और शुद्ध गन्धक ये सब समान भाग और सबकी बराबर भाग भिलावे लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर जिमीकन्द और मानकन्दके रसमें तीन दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करके इसमेंसे प्रतिदिन एक एक माशे परिमाण रसको घीके साथ मिलाकर चाटे तो सर्व प्रकारके; अर्शरोग नष्ट होते हैं। विशेषकर यह नित्योदित नामक रस बवासीरको समूल नष्ट करते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अष्टाङ्गरस।

गन्धं रसेन्द्रं मृतलौहकिट्टं फलत्रयं त्र्यूषणवह्निभृङ्गम्।
कृत्वा समं शाल्मलिकागुडूचीरसेन यामत्रितयं विमर्द्य ॥
निष्कप्रमाणं गदितानुपानैः सर्वाणि चार्शांसि हरेद्रसस्य ॥६४

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, पीपल, मिरच, चीता और भाँगरा इन सबको समान भाग लेकर सेमलकी मुसली और गिलोय प्रत्येकके रसमें तीन प्रहरतक खरल करके ४–४ माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक एक गोली प्रतिदिन घृतके साथ खानेसे सम्पूर्ण अर्शरोग दूर होता है ॥ ६४ ॥

उदकषट्पलकघृत।

सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदकैः।
समं क्षीरं घृतं प्रस्थं ज्वरार्शःप्लीहकासनुत ॥ ६५ ॥

जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ ये प्रत्येक ४–४ तोले, जल सब औषधियोंसे तिगुना, दूध एक प्रस्थ और घी एक प्रस्थ लेवे सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत ज्वर, बवासिर प्लीहा, खांसी आदि विकारोंको दूर करता है ॥ ६५ ॥

व्योषाद्यघृत।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि।
साधितं पिबतः सर्पिः पतन्त्यर्शांस्यसंशयम् ॥ ६६ ॥

सोंठ, पीपल और मिरच इनके समान भाग मिश्रित कल्कसे तिगुने ढाककी भस्मके जलमें घृतको सिद्ध करके पान करनेसे अर्शके अंकुर निश्चय गिरजाते हैं ॥

चव्याद्यघृत।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च।
यमानी पिप्पलीमूलमुते च विडसैन्धवे ॥ ६७ ॥
चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दध्नि चतुर्गुणे ॥ ६८ ॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम्।
गुदवङ्क्षणशूलं च घृतमेतद् व्यपोहति ॥ ६९ ॥

चव्य, सोंठ, पीपल, मिरच, पाढ, जवाखार, धनियां, अजवायन, पपिलामूल, नागरमोथा, बिरियासंचर नमक, सैंधानमक, चीतेकी जड, बेलगिरी और हरड इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसलेवे फिर इनके कल्क और कल्कसे चौगुने दहीके पानीमें १ प्रस्थ घृतको पकावे इस घृतको पान करनेसे मल और वायुका अनुलोमन होता है। एवं यह घृत प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, रक्तस्राव, गुदा और वंक्षणका शूल इन सबको दूर करता है ॥ ६७-६९ ॥

कुटजाद्यघृत।

कुटजफलवल्कलकेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः।
सिद्धं घृत विधेयं शूलं रक्तार्शसां भिषजा ॥ १७० ॥

इन्द्रजौ, कुडेकी जडकी छाल, नागकेशर, नीलकमल, लोध और धायके फूल इनके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा घृतको यथाविधि सिद्ध करके शूल और रुधिरकी बवासीरवाले रोगियोंको सेवन कराना चाहिये ॥ १७० ॥

सह्यमृतघृत।

पचेद्वारिचतुर्द्रोणे कण्टकार्यमृताशतम्।
तत्राग्नित्रिफलाव्योषपूतीकत्वक्कलिङ्गकैः ॥ ७१ ॥
सकाश्मर्यविडङ्गैस्तु सिद्धं दुर्नाममेहनुत्।
घृत सिंह्यमृतं नाम बोधिसत्त्वेन भाषितम् ॥ ७२ ॥

कटेरी और गिलोय इन दोनोंको सौ सौ पल लेकर ४ द्रोण परिमाण जलमें पकावे जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें चीतेकी जड, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, पीपल, मिरच, दुर्गन्ध करंजकी छाल, इन्द्रजौ, कुम्भेर और वायविडंग इनके समान भाग मिश्रित कल्क और १ प्रस्थ घृतको डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। यह सिंह्यमृतनामक घृत बवासीर और प्रमेहको नष्ट करता है ऐसा बोधिसत्त्वमुनिने कहा है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सुनिषण्णक चांगेरीघृत।

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकः।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ७३ ॥
कषाय एषां पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ७४ ॥
कलिङ्गं शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम्।
कट्फलं चित्रको मुस्तं प्रियंग्वतिविषे स्थिरा ॥ ७५ ॥
पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः समङ्गा सनिदिग्धिका।
बिल्वं मोचरसः पाठा भागाः स्युः कार्षिकाः पृथक् ॥ ७६ ॥
चतुःप्रस्थशृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत्।
"त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः" ॥ ७७ ॥
सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च।
सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७८ ॥

सोया, खिरेंटी, दारुहल्दी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बड, गूलर और पीपलके अंकुर ये प्रत्येक आठ आठ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्काथमें जीवन्ती, कुटकी, पीपल पीपलामूल, मिरच, देवदारू, इन्द्रजौ, सेमलके फूल, क्षीरकाकोली, लालचन्दन, रसौत, कायफल, चीता, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, अतीस, शालपर्णी, कमलकेशर, नीले कमलकी केशर, लज्जावन्ती, कटेरी, मोचरस और पाढ इन प्रत्येक औषधिको एक-एक कर्ष प्रमाण लेकर बारीक पीसकर औषधियोंके ४ प्रस्थ क्काथमें डालकर जब पकते २ एक प्रस्थ क्काथ शेष रहजाय तब उतारलेवे। (यहाँपर प्रस्थ ३२ पलका जानना चाहिये)। फिर उसमें शिरियारीके शाकका स्वरस और नोनियाका स्वरस एक एक प्रस्थ एवं घृत एक प्रस्थ डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे ॥ ७३–७८ ॥

एतदर्शस्स्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ ।
प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ७९ ॥
उत्थाने चातिबहुशः शोथशूले गुदाश्रये ।
मूत्रग्रहे मूढवाते मन्देऽग्नावरुचावपि ॥ १८० ॥
प्रयोज्य विधिवत् सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
विविधेष्वनुपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ८१ ॥

इस घृतको सर्वप्रकारके अर्शरोग, अतिसार, त्रिदोषज रक्तस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, नानाप्रकारकी पिच्छिलता, बारबार मलका निकालना, गुदागत शोथ अथवा शूल, मूत्राशयसम्बन्धी रोग, मूढवात, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंमें विविधप्रकारके अनुपानोंके साथ अथवा केवल घृतको ही विधिपूर्वक सेवन करानेसे उक्त समस्त विकार दूर होते हैं एवं बल वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है ॥ ८१ ॥

कासीसाद्यतैल ।

कासीस दन्तिसिन्धूत्थकरवीरानलैः पचेत् ।
तैलमर्कपयोमिश्रमभ्यङ्गात् पायुकीलजित् ॥ ८२ ॥

कसीस, दन्तीकी जड, सैंधानमक, कनेरकी जड और चीतेकी जड इन प्रत्येकके एकएक तोले कल्कके द्वारा एक प्रस्थ प्रमाण तिलके तैलको पकावे । फिर आकके दूधमें मिलाकर मालिश करनेसे अर्शके अंकुरोंको दूर करता है ॥ ८२ ॥

बृहत्कासीसाद्यतैल ।

कासीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठं च लाङ्गली ।
शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती जन्तुघ्नचित्रकम् ॥
तालकं कुनटी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक् ॥ ८३ ॥
तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ।
एतदभ्यङ्गतोऽर्शांसि क्षारेणेव पतन्ति हि ॥
क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्वलिम् ॥ ८४ ॥

कसीस, सैंधानमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारीकी जड, पाषाणभेद, कनेरकी जड, दन्तीकी जड, वायविडङ्ग, चीतेकी जड, हरताल, मैनासिल, पीले फूलकी सत्यानासी, कटेरी इन सबको समान भाग एवं तिलका तैल एक प्रस्थ थूहरका दूध १ प्रस्थ, आकका दूध १ प्रस्थ और गोमूत्र ४ प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र मिलाकर

विधिपूर्वक तैलको पकावे । इस तैलकी मालिश करनेसे अर्शके अकुर इस प्रकार निस्सन्देह गिरजाते हैं, जिसप्रकार क्षारसे गुदाके अंकुर नष्ट होजाते हैं । क्षारकी समान कार्य करनेवाला यह तैल अर्शकी वलिको दूषित नहीं करता है ॥८३॥८४॥

पिप्पल्याद्यतैल ।

पिप्पलीं मधुकं बिल्वं शताह्वां मदनं वचाम् ।
कुष्ठं शुण्ठीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ॥ ८५ ॥
पिष्ट्वा तैल विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् ।
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥८६॥
गुदनिस्सरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।
कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्क्षणाश्रयम ॥ ८७ ॥
पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम् ।
उत्थानं बहुशो यच्च जयेच्चैवानुवासनात् ॥ ८८ ॥

पपिल, मुलहठी, वेलगिरी, सोया, मैनफल, वच, कूठ, सोंठ, पुहकरमूल, चीता और देवदारु इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीस लेवे । इस कल्कके द्वारा १ प्रस्थ तैलको दुगुने दूधके साथ मिलाकर पकावे । इस तैलको अर्शरोगियों और वातसे पीडित रोगियोंके अनुवासनवस्तिद्वारा प्रयोग करना श्रेष्ठ है । एवं गुदाका बाहर निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, पीठ और जंघाओंकी दुर्बलता, अफारा, वंक्षणकी पीडा, पिच्छिलतायुक्त स्राव, गुदाकी सूजन, वायु और मलका अवरोध ये लक्षण यदि बारबार उत्पन्न हों तो इस तैलकी अनुवासनवस्तिसे इन सब विकारोंको जीतना चाहिये ॥ ८५-८८ ॥

दन्त्यरिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
भागान् पलांशानायोज्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८९ ॥
त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् ।
रसे चतुर्थशेषे तु पूतशीते प्रदापयेत् ॥ १९० ॥
तुलां गुडस्य त्तिष्ठेन्मासार्द्धं घृतभाजने ।
तन्मात्रया पिबेन्नित्यमर्शोभ्यः प्रविमुच्यते ॥ ९१ ॥

ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
दीपनं चारुचिघ्नं च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः ॥
पात्रेऽरिष्टादिसन्धान धातकीलोध्रलेपिते ॥ ९२ ॥

दन्तीकी जड, चीतेकी जड और दशमूलकी समस्त औषधियाँ प्रत्येकको चार चार तोले लेकर एकत्र कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे और पाक होते समय उसमें हरड आमला और बहेडा इन तीनोंके पत्तोंको तीन पल प्रमाण डाल देवे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर कपडेमें छानलेवे। फिर शीतल होनेपर उसमें पुराना गुड सौ पल प्रमाण डालकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द करके पन्द्रह दिनतक रक्खा रहनेदेवें तत्पश्चात् इसको उचित मात्रासे प्रतिदिन पान करनेसे मनुष्य अर्शरोगसे सर्वथा मुक्त होजाता है। यह अरिष्ट ग्रहणी और पाण्डुरोगनाशक, वायु और मलका अनुलोमन करनेवाला, अग्निदीपक और अरुचिको दूर करनेवाला है। इसको पूर्वाचार्यगण दन्त्यरिष्ट कहते हैं। धायके फूल और लोधके द्वारा लेप कियेहुए पात्रमें अरिष्टादि रखने चाहिये ॥ १८९-१९२ ॥

क्षार ।

प्रशस्तेऽहनि नक्षत्रे कृतमङ्गलपूर्वकम् ।
कालमुष्ककमाहृत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥ ९३ ॥
आढकं त्वेकमादाय जलद्रोणे पचेद्भिषक् ।
चतुर्भागावशिष्टेन वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ९४ ॥
शंखचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत पुनः ।
शनैः शनैर्मृदावग्नौ यावत् सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ ९५ ॥
सर्जिकायावशूकाभ्यां शुण्ठी मरिचपिप्पली ।
वचा चातिविषा चैव हिङ्गुचित्रकयोस्तथा ॥ ९६ ॥
एषां चूर्णानि निक्षिप्य पृथक्त्वेनाष्टमाषकम् ।
दर्व्या संघट्टितं चापि स्थापयेदायसे घटे ॥
एष वह्निसमः क्षारः कीर्त्तितः कश्यपादिभिः ॥ ९७ ॥

उत्तम दिन और शुभ नक्षत्रमें पहले मांगलिक कार्य करके काले फलके घण्टापाढलवृक्षकी शाखा लाकर उसको अग्निमें जलाकर भस्म करलेवे, फिर उस भस्मको १ आढक परिमाण लेकर १ द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल

शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे । फिर उसमें शंखका चूर्ण १ कुडव परिमाण डालकर धीरे २ मन्द अग्निसे पकावे जब पकते २ पाक गाढा होजाय तब उसको नीचे उतारकर उसमें सज्जी, जवाखार, सोंठ मिरच, पीपल, वच, अतीस, हींग और लालचीतेकी जड इन औषधियोंके आठ आठ मासे चूर्णको डालकर करछीसे अच्छीतरह घोटकर लोहके पात्रमें भरकर रखदेवे । यह क्षार अग्निकी समान तीक्ष्ण है ऐसा कश्यपादि ऋषियोंने कहा है ॥ ९३-९७ ॥

क्षारपाकविधि ।

तोये कालकपुष्पककस्य विपचेद्भस्माढकं षड्गुणे
पात्रे लौहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयन् ।
दग्ध्वाऽग्नौ बहुशंखनाभिशकलान् पूतावशेषे क्षिपे-
द्यद्येरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात् ॥९८॥
प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिल्यरक्तता ।
सञ्जायते तदास्राव्य क्षारको ग्राह्यमिष्यते ॥ ९९ ॥
तुर्येणाष्टमकेन षोडशगुणेनांशेन संयूहिमा
मध्यः श्रेष्ठ इति क्रमेण विहितः क्षारोदकाच्छङ्खकः॥२००
नातिसान्द्रो नातितनुः क्षारपाक उदाहृतः ।
दुर्नामकादौ निर्दिष्टः क्षारोऽय प्रतिसारणः ॥ १ ॥
पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम् ।
स्रावयेत् षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ २ ॥

काले फूलके घण्टापाढलवृक्षकी भस्मको १ आढक परिमाण लेकर छःगुने जलमें डालकर लोहेके पात्रमें मन्द २ अग्निसे पकावे और करछीसे धीरे धीरे चलाता जाय और उसमें शंखनाभिके टुकडोंको अग्निमें दग्ध करके, और वस्त्रमें छानकर डालदेवे सौकी गिनती गिननेमें जितनी देर लगे उतनी देरमें यह क्षार यदि अण्डकी नालको जलादेवे तो उत्तम क्षार हुआ जानना चाहिये । प्रायः तीसरा भाग जल अवशेष रहनेपर इस क्षारमें पिच्छिलता और लालिमा उत्पन्न होजाय तो उसको टपकाकर क्षार जल ग्रहण करना चाहिये । मृदु, मध्य और तीक्ष्ण इन भेदोंसे क्षार तीन प्रकारका होता है । पूर्वोक्त क्षार जलसे चौथाई भाग शंखभस्म डालकर बनायाहुआ क्षार मृदु क्षार, जलसे आठवाँ भाग शंखभस्म डालकर बनायाहुआ क्षार मध्यम और

जलसे सोलहवाँ भाग शंखभस्म डालकर बनायाहुआ क्षार तीक्ष्ण वा श्रेष्ठ होता है । क्षारका पाक न अत्यन्त गाढा और न अत्यन्त पतला होना चाहिये । किन्तु जिससे अर्शके अंकुरोंपर सहजही मालिश की जासके इस प्रकारका क्षार पाक करना चाहिये । बवासीर आदि रोगोंमें प्रतिसारण क्षार उत्तम कहागया है और पानीयक्षार गुल्मादिरोगोंमें हितकर है। इस पानीयक्षारको क्षारसे ६ गुने, किसी २ के मतसे ४ गुने जलमें डालकर २१ बार टपकाना चाहिये ॥९८-२०२ ॥

अर्शरोगमें पथ्य ।

विरेचनं लेपनमस्रमोक्षः क्षाराग्निशस्त्राचरितं च कर्म ।
पुरातना लोहितशालयश्च सषष्टिकाश्चापि यवाः कुलित्थाः ॥३
पटोलपत्तूररसोनवह्निपुनर्नवाशूरणवास्तुकानि ।
जीवन्तिका दन्तिशठी सुरा च त्रुटिर्वयःस्था नवनीततक्रम्॥४
कक्कोलधात्रीरुचकं कपित्थमौष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि चापि ।
भल्लातकं सर्षपजं च तैलं गोमूत्रसौवीरतुषोदकानि ॥
वातापहं यच्च यदग्निकारि तदन्नपानं हितमर्शसेभ्यः ॥ ५ ॥

अर्शरोगियोंके लिये विरेचन, प्रलेप, रक्तमोक्षण, क्षार, अग्नि और शस्त्रकर्म, पुराने लाल शालिधानोंके चावल, सांठीके चावल, जौ, कुलथी, परवल, शालिंचशाक, लहसुन, चीता, लालविषखपरा, जिमीकन्द, बथुआ, जीवन्तीका शाक, तन्तीकी जड, कचूर, मद्य, छोटी इलायची, हरड, नैनीघी, मट्ठा, शीतलचीनी, आमला, कालानमक, कैथ, ऊँटका मूत्र घी और दूध, भिलावे, सरसोंका तैल, गोमूत्र, सौवीरनामक काँजी और तुषोदक नामक काँजी एवं वायुनाशक और अग्निवर्द्धक समस्त अन्न पान हितकारी हैं ॥ ३–५ ॥

अर्शरोगमें अपथ्य ।

आनूपमामिषं मत्स्यं पिण्याकं दधि पिष्टकम् ।
माषान् करीरं निष्पावं बिल्वं तुम्बीमुपोदिकाम् ॥ ६ ॥
पक्वाम्रं शालुकं सर्वं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
आतपं जलपानानि वमनं वस्तिकर्म च ॥ ७ ॥
विरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्वदिग्भवम् ।
वेगरोधं स्त्रियं पृष्ठयानमुत्कटकासनम् ॥
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥

यत्र पथ्यं यदपथ्यं च वक्ष्यते रक्तपित्तिनाम ॥
रक्तार्शोरोगिणां तत्तदपि विद्याद्विशेषतः ॥ ९ ॥

आनूपदेशके पशुपक्षियोंका मांस, मछली, तिलकूट, दही, पिठीके बने पदार्थ, उडद, बाँसके अंकुर, सेमकी फली, बेल, लाकी, पोईका शाक, पका आम, भसींडा एवं सर्व प्रकारके विबन्धकारक गुरुपाकी पदार्थ, धूप, जलपान, वमन, वस्तिकर्म, सर्वप्रकारके प्रकृतिविरुद्ध, देश काल और संयोगविरुद्ध पदार्थ, पूर्वदिशाकी वायु, मलमूत्रादिके वेगको रोकना, स्त्रीप्रसंग, घोडे आदिकी सवारी करना, टेढे तिरछे होकर बैठना, एवं अर्शके दोषको बढानेवाले यथेच्छ अन्न पानादि पदार्थ अर्शरोगवालेको त्यागदेने चाहिये। रक्तपित्तरोगियोंके लिये जो पथ्यापथ्य कहा गया है वह सब पथ्यापथ्य अर्शमें भी विशेषरूपसे सेवन कराना चाहिये॥ २०६–२०९॥

इति अर्शोरोगचिकित्सा॥

अग्निमान्द्यचिकित्सा।

सारमेतच्चिकित्सायाः परमग्नेश्च पालनम्।
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं वह्नेस्तु प्रतिपालनम् ॥ १ ॥
अस्तु दोषशतं क्रुद्धं सन्तु व्याधिशतानि च।
कायाग्निमेव मतिमान् रक्षन् रक्षति जीवितम् ॥ २ ॥

जठराग्निको समान भावसे रक्षा करना ही इस रोगकी चिकित्साका प्रधान कर्त्तव्य है, इसलिये सैकडों दोषों और सैकडों व्याधियोंके कुपित होनेपर भी सबसे पहले यत्नपूर्वक अग्निकी रक्षा करनी चाहिये। कारण, अग्निके क्षीण होजानेपर कोई भी औषधि गुण नहीं करती है। जठराग्निकी रक्षा करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य जीवनकी रक्षा करता है॥ १॥ २॥

समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥ ३ ॥

समाग्निकी सदैव रक्षा करनी चाहिये। विषमाग्निमें वायुकी शान्ति, तीक्ष्णाग्निमें पित्तको शमन करनेवाली और मन्दाग्निमें, कफको प्रशमन करनेवाली क्रिया एवं लंघनादि करने चाहिये॥ ३॥

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥ ४ ॥

हरड और सोंठके चूर्णको गुड वा सैन्धानमकके साथ प्रतिदिन सेवन करनेसे अग्नि दीपन होती है ॥ ४ ॥

समयावशूकमहौषधचूर्णं लीढं घृतेन गोसर्गे।
कुरुते क्षुधां सुखोदकं पीतं विश्वौषधं वैकम् ॥ ५ ॥

जवाखार और सोंठके चूर्णको समान भाग लेकर अथवा केवल सोंठके चूर्णको गौके घीमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल चाटे और ऊपरसे कुछ गरम जल पीवे तो क्षुधाकी वृद्धि होती है ॥ ५ ॥

अन्नमण्डं पिबेदुष्णं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ।
विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः ॥ ६ ॥

हींग और काला नमक मिलाकर भातका सुहाता २ मांड पीनेसे विषमाग्नि सम और मन्दाग्नि दीपन होती है ॥ ६ ॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ।
अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ ७ ॥

भोजन करनेसे पहले प्रतिदिन सैंधानमक और अदरखको भक्षण करनेसे जीभ और कण्ठकी शुद्धि होती है । अग्नि दीपन होती है और यह प्रयोग हृदयको हितकारी है ॥ ७ ॥

तीक्ष्णाग्निचिकित्सा ।

नारीक्षीरेण संयुक्तां पिबेतौदुम्बरीं त्वचम् ।
आभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशान्तये ॥ १ ॥
यत् किञ्चिद् गुरु मेध्यं च श्लेष्मकारि च भेषजम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ २ ॥

तीक्ष्णाग्निको शान्त करनेके लिये गूलरकी छालको स्त्रीके दूधमें पीसकर पान करे अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालकी खार बनाकर सेवन करे । एवं गुरुपाकी मेध्य और कफकारक जितने पदार्थ या औषध हैं, उन सबको सेवन करना और दिनमें सोना ये सब तीक्ष्णाग्निवाले रोगीके लिये हितकर है ॥ १ ॥ २ ॥

मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यमस्योपकल्पयेत ।
निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न निपातयेत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको अजीर्ण होनेपर भी बारबार भोजन कराना चाहिये । कारण जिससे भोजनरूपी ईंधनके विना जठराग्नि अवसर पाकर शरीरके रसादिको सुखाकर रोगीको नष्ट न करदेवे ॥ ३ ॥

आमाजीर्णचिकित्सा ।

तत्रामे वमनं काय विदग्धे लंघनं हितम् ॥ १ ॥

आमके अजीर्णमें वमन और विदग्धाजीर्णमें लंघन कराने उपयोगी हैं ॥ १ ॥

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ।
कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा च शिशिराम्भसा ॥ २ ॥

आमयुक्त अजीर्णमें वच और सैंधनमकके चूर्णको गरम जल डालकर पान करानेसे अथवा पीपल सैंधानमक और वच इनके कल्कको शीतल जलके साथ पान करानेसे वमन होकर आम शान्त होती है ॥ २ ॥

धान्यनागरसिद्धं तु तोयं दद्याद्विचक्षणः ।
आमाजीर्णप्रशमनं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥

धनियाँ और सोंठका क्काथ सेवन करनेसे अमाजीर्ण शमन होता है, अग्निदीपन होती है और मूत्राशय शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

भवेद्यदा प्रातरजीर्णशङ्का तदाऽभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ।
विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्ज्यादशङ्कं मितमन्नकाले ॥

यदि प्रातःसमय अजीर्णकी आशंका हो तो हरड, सोंठ और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर शीतल जलके साथ पान करके भोजनके समय थोडा भोजन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

चित्रकगुडिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषं हिङ्ग्वजमोदां च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ५ ॥
सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रेण समं पञ्चलवणान्यत्र योजयेत् ॥ ६ ॥
गुडिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ।
कृत्वा विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ ७ ॥

[दृष्टफलोऽयम्]

चीतेकी जड, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, काला नमक, सैन्धानमक, विरिया-संचर नमक, साम्भर नमक, सामुद्र नमक, पीपल, मिरच, हींग, अजमोद और चव्य इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे अथवा बिजौरे नीम्बूके रसमें किंवा अनारके रसमें खरल करके एक एक माशेकी गोलियां बनाकर सेवन करे तो यह गोली आमको तत्काल पचाती है और अग्निको दीपन करती है । यह अनुभवसिद्ध प्रयोग है ॥ ५-७ ॥

विदग्धाजीर्णचिकित्सा ।

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं
शीताम्बुना वै परिपाकमेति ।
तत्तस्य शैत्येन निहन्ति पित्त-
माक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ १ ॥

शीतल जल पान करनेसे मनुष्यके विदग्ध अन्न शीघ्र पचजाता है एवं जलकी शीतलताके कारण पित्त प्रशमित होता है और क्लेदयुक्त (द्रव) होनेसे भोजनको नीचे गेरदेता है ॥ १ ॥

विदह्यते यस्य च भुक्तमात्रं दह्येत हृत्कोष्ठगलं च यस्य ।
द्राक्षासितामाक्षिकसंप्रयुक्तां लीढ्वाऽभयां वै स सुखं लभेत ॥२॥

जिसके भोजन करते ही दाह उत्पन्न हो एवं हृदय, कोष्ठ और गलेमें जलन हो तो दाख, मिश्री, शहद और हरड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सुख प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हरीतकी धान्यतुषोदसिद्धा सपिप्पली सैन्धवहिंगुयुक्ता ।
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं विभज्य सद्यो जनयेत्क्षुधां च ॥३॥

हरड धान्य तुषोदकनामक काँजीमें पकाकर उसमें पीपल, सैंधानमक और हींग मिलाकर सेवन करे तो यह धुएँकी समान डकारोंका आना और अत्यन्त प्रबल अजीर्णको नष्ट करके क्षुधाको तत्काल उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

विष्टब्धरसशेषाजीर्णचिकित्सा ।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयं च लवणोदकम् ।
रसशेषे दिवास्वप्नो लङ्घनं वातवर्ज्जनम् ॥ १ ॥

विष्टब्ध अजीर्णमें पसीना निकलवाना और सैंधानमक मिला हुआ जल पान करना हितकारी है । एवं रसशेषाजीर्णमें दिनमें सोना, लंघन करना और वातरहित स्थानमें रहना उत्तम है ॥ १ ॥

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् ।
क्षीणान् क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो
रात्रौ जागरितान्नरान् निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥ २ ॥

रसशेषाजीर्णमें व्यायाम, दण्ड कसरत आदि परिश्रम, स्त्रीप्रसङ्ग, मार्ग चलने और घोड़े आदिकी सवारीपर चढ़नेसे थकेहुए मनुष्योंको एवं अतीसार, शूल, श्वास, तृषा, हिचकी और वायुसे पीडित रोगियोंको तथा क्षीणकफवाले, बालक, मद्यपीनेसे बेहोश, वृद्ध, अजीर्णरसवाले, रात्रिम जागनेवाले और लंघन करनेवाले ऐसे मनुष्योंको दिनमें यथेच्छ शयन करानाही श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः ।
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ३ ॥

हींग, सोंठ, पीपल, मिरच और सेंधानमक इनको पीसकर पेटपर लेप करके दिनमें शयन करानेसे सर्वप्रकारका अजीर्ण नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पथ्यात्रिक ।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ।
मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ४ ॥
चतुर्विधमजीर्णं च मन्दानलमथारुचिम् ।
आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाशु नियच्छति ॥ ५ ॥

हरड, पीपल और कालानमक इनके चूर्णको समान भाग लेकर दहीके पानी अथवा उष्णजलके साथ दोषोंकी गतिको जानकर वैद्य पान करानेसे चारों प्रकारका अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, अफारा, वातगुल्म और शूल ये सब तत्काल दूर होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

विशिष्टद्रव्याजीर्णकी विधि ।

फलं पनसपाकाय फलं कदलसम्भवम् ।
कदलस्य तु पाकाय बुधैरपि घृतं हितम् ॥
घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः ॥ ६ ॥
नारिकेलफलतालबीजयोः पाचकं सपदि तण्डुलं विदुः ।
क्षीरमेव सहकारपाचनं चारमज्जनि हरीतकी हिता ॥ ७ ॥

मधूकमालूरनृपादनानां परूषखर्जूरकपित्थकानाम् ।
पाकाय पेयं पिचुमर्दबीज घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव पथ्यम् ॥८॥
खर्जूरशृङ्गाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुस्तम् ।
यज्ञाङ्गबोधिद्रुफलेषु शस्तं प्लक्षे तथा पर्युषितः प्रपीतम् ॥९॥
तण्डुलेषु च पयः पयस्स्वथो दीपकं तु चिपिटे कणायुतः ।
षष्टिका दधिजलेन जीर्य्यते कर्कटी च सुमनेषु जीर्य्यते॥१०॥

कटहलके खानेसे अजीर्ण हुआ हो तो उसको पचानेके लिये केला खाना चाहिये। यदि केलेके खानेसे अजीर्ण हुआ हो तो घृत पान कराना चाहिये। घृतके अजीर्णमें जम्बीरीनींबूका रस पीना चाहिये। नारियल और ताडके फलोंके अजीर्णमें भात चावलोंका खाना चाहिये। आमको पचानेके लिये दूध सर्वश्रेष्ठ है। चिरौंजीके अजीर्णमे हरड सेवन करना हितकारी है। महुआ, बेल, खिरनी, फालसे खजूर और कैथको पचानेके लिये नीमके बीजों (निबोलियों) को पीसकर पीना चाहिये। घृत और मठेके अजीर्णमे भी नीमके बीजों (निबोलियों) को सेवन करना चाहिये। खजूर और सिंघाडेके अजीर्णमें सोंठ और किसी किसी मतसे नागरमोथेको सेवन करना चाहिये। गूलर, पीपलके फल और पाखरके फलको खानेसे हुए अजीर्णमे बासीजल पान करना चाहिये। चावलोंके अजीर्णमे दूध, दूधके अजीर्णमे अजवायन और चिंविडे अर्थात् चौलोंके अजीर्णमें पीपल और अजवायनका चूर्ण सेवन करना चाहिये। सांठीके चावल दहीके तोडको पीनेसे पचते हैं और ककडी-गहूक पदार्थ खानेसे पचजाती ह ॥ ९–१० ॥

गोधूममाषहरिमन्थसतीनमुद्ग-
पाको भवेज्झटिति मातुलपुत्रकेण ।
खर्जूरिकाबिसकशेरुसितासु शस्तः
शृंगाटके मधुफलेष्वपि भद्रमुस्तम् ॥ ११ ॥

कङ्गुश्यामाकनीवाराः कुलित्थाश्चाविलम्बितम् ।
दध्नो जलेन जीर्यन्ति वैदलः काञ्जिकेन तु ॥ १२ ॥
पिष्टान्नं शीतलं वारि कृसरां सैन्धवं पचेत् ।
माषेण्डरीं निम्बुफलं पायसं मुद्गयूषकः ॥ १३ ॥

वटो वेशवाराल्लवङ्गेन फेनी समं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति।
कणामूलतोलड्डुकापूपसठ्यादिपाको भवेत्तण्डुलीमण्डयोश्च ॥

गेहूँ, उरद, चने, मटर और मूँग इन सबका अजीर्ण धतूरेके बीजोंको सेवन करनेसे शीघ्र दूर होता है। पिण्डखजूर, भसींडा, कशेरु, मिश्री, सिंघाडे और छुहारेके अजीर्णमे नागरमोथेका सेवन उत्तम है। कंगनी, समा, नीवारधान और कुलथी ये अन्न दहीके पानीके सेवनसे शीघ्र जीर्ण होजाते हैं और कांजीके सेवनसे सर्व प्रकारके दो दलवाले अन्न पचजाते हैं। पिष्टान्न (पिट्ठीके बने मिष्टान्नादि) पदार्थोंके अजीर्णमें शीतलजल और खिचडीके अजीर्णमें सैंधानमक सेवन करना चाहिये। इमरतीके अजीर्णको कागजी नींबूका रस और खीरको मूँगका यूष पचादेताहै। बडे वेशवार (मसाले) चरपटे सेवन करनेसे, और फेनी लौंगके सेवन करनेसे पचती है। पापडका अजीर्ण सहिंजनेके बीजोंको खानेसे दूर होता है। लड्डुओंके अजीर्णमें पीपलामूलका चूर्ण गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये। मालपुये और सठचकादि अजीर्णमें तिलमिश्रित यवागू सवन करना चाहिये ॥ ११–१४ ॥

विषूचिकाकी चिकित्सा।

विषूचिकायां वमितं विरिक्तं सुलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा।
पेयादिभिर्दीपनपाचनैश्च सम्यक् क्षुधार्त्तं समुपक्रमेत ॥ १ ॥

विषूचिका (हैजा) म वमन, विरेचन और लंघन करानेके पश्चात रोगीको अच्छे प्रकारसे भूख लगनेपर अग्निप्रदीपक और दोषोंको पचानेवाले पेयादि हल्का पथ्य देना चाहिये ॥ १ ॥

जलपीतमपामार्गमूल हन्ति विषूचिकाम् ॥ २ ॥

चिरचिटेकी जडको जलमें पीसकर सेवन करनेसे विषूचिकरोग दूर हो ॥ २ ॥

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम्।
विषूच्या मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ ३ ॥

विषूचिकामें कूठ और सैंधानमकके चूर्णको चूक और तिलके तेलमें मिलाकर गरम करके सुहाता २ पेटपर लेप करनेसे खल्लीशूल दूर होताहै ॥ ३ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रा-
मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः।
छायाविशुष्का गुडिकाः कृतास्ता
हन्युर्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ४ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, करंजुयेके फल, हल्दी और बिजौरेनींबूकी जड इन सबको समान भाग लेकर जलमें खरल करके गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा लेवे। इन गोलियोंको घिसकर आँखोंमें आँजनेसे विषूचिका नष्ट होती है ॥ ४ ॥

गुडपुष्पसारशिखरीतण्डुलगिरिकर्णिक हरिद्राभिः।
अंजनगुडिका विलयति विषूचिकां त्रिकटुसंयुक्ता ॥ ५ ॥

महुएका सार, चिरचिटेके चावल, सफेद अपराजिताकी जड, हल्दी, सोंठ, पीपल और काली मिरच इन सबको एकत्र पीसकर गोलियाँ बनालेवे। यह गोली आँखोंमें आँजतेही विषूचिकारोगको दूर करती है ॥ ५ ॥

त्वक्पत्त्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः।
उद्वर्त्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं तैलं विपक्कं च तदर्थकारि ॥ ६ ॥

दालचीनी, तेजपात, अगर, सहिंजनेकी छाल, कूठ, वच और सोया इनको समान भाग लेकर काँजीमें पीसकर पेटपर मलनेसे खल्लीरोग और विषूचिका रोग नष्ट होता है। अथवा उक्त औषधियों और काँजीके द्वारा तिलके तैलको यथाविधि पकाकर मालिश करनेसे भी वैसाही गुण होता है ॥ ६ ॥

अलसकचिकित्सा।

वमनं त्वलसे पूर्वं लवणेनोष्णवारिणा।
स्वेदो वर्त्तिर्लङ्घनं च क्रमश्चातोऽग्निवर्द्धनः ॥ १ ॥

अलसकरोगमें पहले सैंधानमक मिश्रित गरम जलपान कराकर वमन करावे फिर स्वेद, वर्त्ति, लंघन और अग्निवर्द्धक औषधियोंका प्रयोग इन क्रियाओंको क्रमपूर्वक कर ॥ १ ॥

उदरकी पीडाकी चिकित्सा।

सरुक् चानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत्।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥ १ ॥

देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, हींग और सैंधानमक इन औषधियोंको समान भाग लेकर काँजीमें पीसकर उदरपर प्रलेप करनेसे पेटकी पीडा और अफारा दूर होती है ॥ १ ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्तिं जठरे निहन्यात्।
स्वेदो घटैर्वा बहुबाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथाऽन्यैरपि पाणितापैः ॥२॥

अथवा मट्ठा, जौचूर्ण और जवाखार इन सबको एक घड़ेमें भरकर पकावे या हाथोंको जौके चूर्णको मट्ठेमें सानकर और गरम करके नाभिके चारों ओर लेप करे

गरम करके पेटको बार बार सेक करनेसे इस प्रकार घड़ेमें गरम काँजी भरकर हल्के स्वेद देनेसे भी उदरकी पीडा दूर होती है ॥ २ ॥

तीव्रार्त्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
दोषच्छन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ ३ ॥

अत्यन्त तीव्र पीडावाले अजीर्णरोगीको शूलनाशक औषधि कदापि सेवन नहीं करनी चाहिये । कारण, वातादि दोषोंसे ढकीहुई जठराग्नि दोषोंको और खाईहुई औषधिको पचानेके लिये समर्थ नहीं होती ॥ ३ ॥

सैन्धवाद्यचूर्ण (१-२) ।

सिन्धूत्थपथ्यामगधोद्भववह्निचूर्ण-
मुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ।
तस्यामिषेण सघृतेन वरं नवान्नं
भस्मीभवत्यशितमात्रमिह क्षणेन ॥ ४ ॥

१ जो- पुरुष सैंधानमक, हरड, पीपल और चीतेकी जड़ इनके समान भाग चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करता है उसकी नष्टहुई अग्नि अत्यन्त दीपन होजाती है । इस औषधिको सेवन करके घीमें भुनेहुए मांस इसके साथ नये चावलोंके भातको खानेपरभी वह तत्क्षण भस्म होजाता है ॥ ४ ॥

सैन्धवं चित्रकं पथ्या लवङ्गं मरिचं कणा ।
टङ्कणं नागरं चव्यं यमानी मधुरी वचा ॥ ५ ॥
द्रव्याणि द्वादशैतानि समभागानि चूर्णयेत् ।
भावयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिसप्ताहं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
ततो माषद्वयं चूर्णं वारिणोष्णेन पाचयेत् ।
सैन्धवेन सतक्रेण मस्तुना कांजिकेन वा ।
सैन्धवाद्यमिदं चूर्णं सद्यो वह्निं प्रदीपयेत् ॥ ७ ॥

२-सैंधानमक, चीतेकी जड़, हरड, लौंग, काली मिरच, पीपल, सुहागा, सोंठ, चव्य, अजवायन, सौंफ और वच इन बारहों औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर नींबूके रसमें २१ दिनतक भावना देकर सुखालेवे । फिर उसमेंसे प्रतिदिन दो दो माशे परिमाण चूर्णको गरम जल, सैंधानमक मिला हुआ मट्ठा दहीका तोड़ अथवा काँजी इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करे तो यह सैन्धवाद्य चूर्ण अग्निको तत्काल दीपन करता है ॥ ५-७ ॥

हिंग्वष्टकचूर्ण ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्यात् ॥ ८ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, अजमोद, सेंधानमक, जीरा, कालाजीरा प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब औषधियोंका आठवाँ भाग हींग लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको भोजनके पहले ग्रासमें घीके साथ मिलाकर भक्षण करे तो यह चूर्ण अग्निको दीपन करता है और वातरोगोंको नष्ट करताहै॥८॥

वडवामुखचूर्ण ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सितातुल्यः ।
वडवामुखं विजयते गुरुतरमपि भोजन चूर्णम् ॥ ९ ॥

हरड, सोंठ, पीपल, करञ्जके बीज, बेलगिरी और चीतेकी जड इन सबका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णकी बराबर मिश्री मिलाकर यथोचित मात्रासे सेवन करे तो यह वडवामुख नामक चूर्ण अत्यन्त भारी भोजनको भी शीघ्र पचादेता है ॥ ९ ॥

स्वल्पाग्निमुखचूर्ण ॥

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ।
पिप्पली त्रिगुणा प्रोक्ता शृङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥ १० ॥
यमानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी ।
चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठमष्टगुणं भवेत् ॥ ११ ॥
एतद् वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया ।
पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ १२ ॥
सोदावर्त्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ।
अङ्गानि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भक्षितम् ॥ १३ ॥
अर्शोहरं दीपनं च शूलघ्नं गुल्मनाशनम् ।
कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनम् ॥
चूर्णमग्निमुखं नाम न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥ १४ ॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ, ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड, ६ भाग, चीतेकी जड, ७ भाग और कूठ ८ भाग लेकर सबको एकत्र बारीक पीस लेवे। यह स्वल्पाग्निमुख चूर्ण सुरामण्ड, दहीका पानी, मदिरा अथवा गरमजल इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ पान करतेही वायुको हरता है तथा उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, उदररोग, अर्श, शूल, गुल्म, खाँसी, श्वास और क्षय इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। एवं अग्निको दीपन करता है। जिसके अङ्ग शिथिल होगये हों या जिसने विष खा लिया हो उनके लिये भी यह चूर्ण हितकर है। यह अग्निमुखनामक चूर्ण कहीं भी विफल नहीं हाता है॥

बृहदग्निमुखचूर्ण ।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च ।
सूक्ष्मैलापत्रक भार्ङ्गी कृमिघ्न हिङ्गु पुष्करम् ॥ १५ ॥
शठी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवस्तथा ।
धात्री जीरकवृक्षाम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ १६ ॥
अम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च ।
अभयाऽतिविषा श्यामा हबुषाऽऽरग्वधं समम् ॥ १७ ॥
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ।
क्षाराणि लौहकिट्टं च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ १८ ॥
समभागानि सर्वाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
मातुलुङ्गरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ १९ ॥
दिनत्रयं तु शुक्तेन आर्द्रकस्य रसेन च ।
अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ २० ॥

जवाखार, सज्जी, चीतेकी जड, पाढ, करंज, पाँचों नमक, छोटी इलायची, तेजपात, भारगी, वायविडङ्ग, हींग, पुहकरमूल, कचूर, दारुहल्दी, निसोत, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, आमला, जीरा, विषांबिल (तिन्तडीक), गजपीपल, कालाजीरा, अम्लवेत, इमली, अजवायन, देवदारु, हरड, अतीस, अनन्तमूल, हाऊबेर, अमलतास, तिलोंका क्षार, रोखेका क्षार, सहिंजनेका क्षार, तालमखानेका क्षार, ढाकका क्षार और गोमूत्रमें सिद्ध कियाहुआ लोहकी मण्डूर इन सबको समान भाग लेकर पीसकर एकत्र बारीक चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णको बिजौरेनींबूके रसमें तथा तीन दिन शुक्तनामक काँजी और तीन दिन

अदरखके रसमें भावना देवे तो यह बृहदग्निमुखचूर्ण सिद्ध होता है। यह चूर्ण जठराग्निको प्रज्वलित अग्निकी समान अत्यन्त दीपन करता है ॥ १९–२० ॥

उपयुक्तविधानेन नाशयत्यचिराद्‌ गदान्।
अजीर्णकमथो गुल्मान् प्लीहानं गुदजानि च ॥ २१ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च अष्ठीलां वातशोणितम्।
प्रणुदत्युल्बणान्‌ रोगान्‌ नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ २२ ॥
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा सुभाजने।
दापयेदस्य चूर्णस्य बिडालपदमात्रकम् ॥
गोदोहमात्रात्तत्सर्वं भस्मीभवति सोष्मकम् ॥ २३ ॥

इसको उपयुक्त विधिसे सेवन किया जाय तो यह अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, अर्श, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला, वातरक्त और अत्यन्त उल्वण दोष इन समस्त रोगोंको बहुत जल्द नष्ट करता है। एवं नष्टहुई अग्निको पुनः दीपन करता है। सम्पूर्ण व्यञ्जनोंसे युक्त भातको सुन्दर थालमें रखकर उसमें चूर्ण डालकर भक्षण करे तो गोदोहन कालमें जितना समय लगता है उतन समयमें अर्थात् तत्कालही खाया हुआ भोजन सब भस्म होजाता है अर्थात् पच जाता है ॥ २१–२३ ॥

अग्निमुखलक्षण।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता पुष्करं समम्।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु सैन्धवम् ॥ २४ ॥
भावयित्वा स्नुहीक्षीरैस्तत्काण्डे निक्षिपेत्ततः।
मृदुपङ्केनानुलिप्तं प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ २५ ॥
सुदग्ध तु समुद्धृत्य सचूर्ण्योष्णाम्बुना पिबेत्।
एतदग्निमुखं नाम लवणं वह्निकृत्परम् ॥
यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मार्शःपार्श्वशूलनुत् ॥ २६ ॥

चीतेकी जड, हरड, आमला, बहेडा, दन्तीकी जड, निसोत और पुहकरमूल इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर भाग सैंधानमकका चूर्ण लेवे। फिर सबको एकत्र थूहरके दूधमें अच्छीतरह खरल करके एक थूहरके डंडेमें भरकर ऊपरसे कपरौटी करके अग्निम पुटपाककी विधिसे पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पक-जाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस अग्निमुखनामक लवणको

छः छः रत्तीकी मात्रासे मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे अग्निकी अत्यन्त वृद्धि होती है। एवं यकृत्, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, अर्श और पार्श्वशूल आदि रोग दूर होते हैं ॥ २४–२६ ॥ भास्करलवण।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम्।
सैन्धवं च विडं चैव पत्रं तालीशकेशरम् ॥ २७ ॥
एषां द्विदलिकान् भागान् पंच सौवर्चलस्य च।
मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ २८ ॥
त्वगेला चार्द्धभागे च सामुद्रात् कुडवद्वयम्।
दाडिमात् कुडवं चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ २९ ॥
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम्।
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम्।
जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् ॥ ३० ॥

पीपल, पीपलामूल, धनियाँ, काला जीरा, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, तेजपात तालीशपत्र और नागकेशर ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले, कालानमक २० तोले, मिरच, जीरा और सोंठ प्रत्येक ४–४ तोले, दालचीनी दो तोले, इलायची २ तोले, समुद्रनमक ३२ तोले, अनारदाना १६ तोल और अम्लवेत ८ तोले लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे तो लवणभास्करनामक चूर्ण सिद्ध होता है। इस अत्यन्त सुगन्धित और अमृतकी समान गुणकारी चूर्णको संसारके कल्याणके लिये सूर्यभगवान्‌ने निर्माण किया है ॥ २७–३० ॥

वातगुल्मं निहत्याशु वातशूलानि यानि च ॥ ३१ ॥
तक्रमस्तुसुरासीधुशुक्तकाञ्जिकयोजितम्।
जाङ्गलानां तु मांसेन रसेषु विविधेषु च ॥ ३२ ॥
मन्दाग्नेरश्नतो नित्यं भवेदाश्वेव पावकः।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं कुष्ठामयभगन्दरान् ॥ ३३ ॥
हृद्रोगमामदोषं च विविधानुदरस्थितान्।
प्लीहानमश्मरीं चैव श्वासकासोदरक्रिमीन् ॥ ३४ ॥
विशेषतः शर्करादीन् रोगान् नानाविधांस्तथा।
पाण्डुरोगांश्च विविधान् नाशयत्यशनिर्यथा ॥ ३५ ॥

इस चूर्णको मठा, दहीका तोड, मदिरा, सिर्का, शुक्तनामक काँजी, जंगली जीवोंका मांसरस इन अनुपानोंके साथ अथवा अन्यान्य विविध प्रकारके रसोंके साथ प्रतिदिन सेवन करनेसे मन्दहुई अग्नि तत्कालही अत्यन्त दीपन होती है, एवं वात-कफजन्य रोग, वातगुल्म और सर्वप्रकारके वातशूल नष्ट होते हैं। यह चूर्ण बवासीर, संग्रहणी, कुष्ठ, भगन्दर, हृदयरोग, आमदोष, अनेक प्रकारके उदरविकार, प्लीहा, पथरी, श्वास, खाँसी उदरके कृमि, विशेषकर शर्करासम्बन्धी रोग, पाण्डुरोग, तथा अन्यान्य विविध प्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे-वज्र वृक्षोंको तत्काल विनाश करदेता है ॥ ३१-३९ ॥

श्रीरामबाणरस।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम्।
जातिकाफलमथार्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम्॥३६॥
माषमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठराग्निदीपनः।
संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदूषणं जयेत॥
वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो रामबाण इव विश्रुतो रसः॥३७॥

शुद्ध पारा, शुद्ध मीठा तेलिया, लौंग और शुद्ध गन्धक प्रत्येक एक एक तोला, मिरच दो तोले एवं जायफल ६ मासे इन सबको एकत्र पीसकर कच्ची इमलीके रसमें खरल करके उर्दकी बराबर गोलियाँ बनालेवे तो यह रामबाण रस सिद्ध होता है। इस रसके सेवनसे जठराग्नि शीघ्रही अत्यन्त दीपन होती है। एवं प्रबल संग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण, आमवातरूप खर-दूषण और मन्दाग्निरूपी रावणको रामबाणकी समान नष्ट कर देता है। ऐसा सुनागया है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अग्नितुण्डीरस।

शुद्धसूत विष गन्धमजमोदा फलत्रयम्।
सार्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ ३८ ॥
सौवर्चलविडङ्गानि सामुद्रं टङ्कणं समम्।
विषमुष्टिं सर्वतुल्यं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥
मरिचाभां वटीं खादेदग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध, गन्धक, अजमोद, हरड, आमला, बहेडा, सज्जी, जवाखार, चीतेकी जड, सैंधानमक, जीरा, कालानमक, वाय, विडंग, सामुद्र-नमक और सुहागा ये सब समान भाग और शुद्ध कुचला सबकी बराबर भाग लेवे। सबको एकत्र कूट पीसकर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके काली मिरचकी

बराबर गोलियाँ बनालेवे । मन्दाग्निको नष्ट करनेके लिये इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली खानी चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अमृतकल्पवटी ।

शुद्धौ पारदगन्धौ च समानौ कज्जलीकृतौ ।
तयोरर्द्धं विषं शुद्धं तत्समं टङ्कणं भवेत् ॥ ४० ॥
भृङ्गराजद्रवैर्भाव्यं त्रिदिनं यत्नतः पुनः ।
मुद्गप्रमाणा वटिका कर्त्तव्या भिषजां वरैः ॥ ४१ ॥
वटीद्वयं हरेच्छूलमग्निमान्द्यं सुदारुणम् ।
अजीर्णं जरयत्याशु धातुपुष्टिं करोति च ॥ ४२ ॥
नानाव्याधिहरा चेयं वटी गुरुवचो यथा ।
अनुपानविशेषेण सम्यग्गुणकरी भवेत् ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर शुद्ध मीठातेलिया और सुहागा दोनों आधे भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर भाँगरेके रसमें ३ दिनतक भावना देकर मूँगकी समान गोलियाँ तैयार करलेवे । इसमेंसे दो दो वटी नित्य सेवन करनेसे शूल, मन्दाग्नि, दारुण, अजीर्ण आदि विकार शीघ्र ही दूर होते हैं । यह वटी धातुपुष्टिको करनेवाली नाना प्रकारकी व्याधियोंको हरनेवाली और गुरुदेवके वचनसे अनुपान विशेषके द्वारा सेवन करनेसे उत्तम गुण करती है ॥ ४०–४३ ॥

अमृतवटी ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागिकैः क्रमशः ।
वटिका मुद्गसमाना कफपित्ताऽग्निमान्द्यहारिणी ॥ ४४ ॥

शुद्ध मीठातेलिया दो भाग, कौडीकी भस्म ५ भाग और काली मिरच ९ भाग लेकर सबको एकत्र जलमें पीसकर मूगका बराबर गोलियां बनालेवे । यह वटी कफ-पित्तके विकार और अग्निमान्द्यको दूर करती है ॥ ४४ ॥

क्षुधासागर रस ।

त्रिकटु त्रिफला चैव तथा लवणपञ्चकम् ।
क्षारत्रयं रसं गन्धं भागैकं पूर्ववद् विषम् ॥ ४५ ॥
गुञ्जामात्रां वटीं कुर्याल्लवङ्गैः पञ्चभिः सह ।
क्षुधासागरनामाऽयं रसः सूर्य्येण निर्म्मितः ॥ ४६ ॥

१ "पूर्ववद्विषमिति अमृतवटयुक्तभागवत्" ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, पाँचो नमक, जवाखार, सज्जाखार और सुहागा प्रत्येक १-१ तोला एवं पारे गन्धककी कज्जली और शुद्ध मीठातेलिया प्रत्येक २-२ तोले इन सबको एकत्र जलमें बारीक पीसकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली पांच पांच लोंगोंके साथ सेवन करनेसे क्षुधाकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इस क्षुधासागरनामवाले रसको सूर्यभगवान्ने निर्म्माण किया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

लवङ्गादिवटी।

लवङ्गशुण्ठीमरिचानि भृष्टसौभाग्यचूर्णानि समानि कृत्वा।
भाव्यान्यपामार्गहुताशवारा प्रभूतमांसादिकजारणाय ॥ ४७ ॥

लौग, सोंठ, मिरच और भुनाहुआ सुहागा इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर उसको चिरचिटे और चीतेकी जडके रसमें अलग २ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस गोलीके सेवन करनेसे बहुतसा खायाहुआ मांस भी पच जाता है ॥ ४७ ॥

बृहल्लवङ्गादिवटी।

लवङ्गजातीफलधान्यकुष्ठं जीरद्वयं त्र्यूषणत्रैफलं च।
एलात्वचं टङ्कवराटमुस्तं वचाऽजमोदा विडसैन्धवं च ॥
तदर्द्धकं पारदगन्धमभ्रं लौहं च तुल्यं सुविचूर्ण्य सर्वम् ४८
तन्नागवल्लीदलतोयपिष्टं वल्लप्रमाणां वटिकां च कृत्वा।
प्रातर्विदध्यादपि चोष्णतोयैरियं निहन्याद्ग्रहणीविकारम्॥४९
आमानुबद्धं सरुजं प्रवाहं ज्वरं तथा श्लेष्मभवं सशूलम्।
कुष्ठाम्लपित्तं प्रबलं समीरं मन्दानलं कोष्ठगतं च वातम् ॥
वटीलवङ्गाद्यवसुप्रणीता तथा सवातं विनिहन्ति शीघ्रम् ५०

लौग, जायफल, धनियाँ, कूठ, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, इलायची, दालचीनी, सुहागा, कौडीकी भस्म, नागरमोथा, वच, अजमोद, विरियासंचरनमक और सैंधानमक ये प्रत्येक १-१ भाग एवं शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म ये प्रत्येक आधा आधा भाग सबको एकत्र पानोंके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेनी चाहिये। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली गरम जलके साथ सेवन करे तो यह बृहल्लवंगाद्यवटी संग्रहणी, आमसहित मलविबन्ध, पीडायुक्त प्रवाह, ज्वर, कफजन्य

शूल, कुष्ठ, अम्लपित्त, प्रबलवायु, मन्दाग्नि, कोष्ठगत वायु तथा वातयुक्त अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको नष्ट करती है ॥ ४८-५० ॥

अजीर्णकण्टकरस ॥

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यं स्यात् कण्टकार्य्याः फलद्रवैः ॥ ५१ ॥
मर्दयेद् भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम् ।
गुञ्जामात्रां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥
अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विषूचिकाम् ॥५२॥

शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धकको एक एक तोला लेकर कज्जली बनालेवे । फिर शुद्ध मीठातेलिया १ तोला और मिरच ३ तोले लेकर सबको एकत्र कटेरीके फलोंके रसमें २१ बार भावना देकर खरल करे फिर सर्वप्रकारके अजीर्णको शमन करनेके लिये इसमेंसे एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे । यह अजीर्ण-कण्टकरस विषूचिकाको विशेषकर दूर करता है ॥ ५१-५२ ॥

महोदधिवटी ।

एकैकं विषसूतौ च जाती टङ्कं द्विकं द्विकम् ।
कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं गन्धं कापर्दकं द्विकम् ॥ ५३ ॥
देवपुष्पं बाणमितं सर्वं संमर्द्य यत्नतः ।
महोदधिवटी नाम्ना नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ ५४ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, जायफल २ तोले सुहागा दो तोले, पीपल ३ तोले, सोंठ ६ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, कौडीकी भस्म २ तोले और लौंग ५ तोले सबको एकत्र जलमें यथाविधि खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह महोदधि नामावाली वटी नष्टहुई अग्निको तत्काल दीपन करती है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

बृहन्महोदधिवटी ।

लवङ्गं चित्रकं शुण्ठी जयपालं समं समम् ।
टङ्कणं च प्रदातव्यं वृद्धदारं च कार्षिकम् ॥ ५५ ॥
चतुर्दश भावनाश्च दन्तीद्रावैः प्रदापयेत् ।
लिम्पाकेन त्रिधा देया वृद्धदारेण पञ्चधा ॥ ५६ ॥

रसं गन्धंच गरलं मेलयित्वा विभावयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनैव चित्रकस्य रसेन वा ॥ ५७ ॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कृत्वा खादेत दिनेदिने।
क्षुत्प्रबोधकरी चेयं जीर्णज्वरविनाशिनी ॥ ५८ ॥

लौंग, चीतेकी जड, सोंठ, जमालगोटा और सुहागा प्रत्येक एक एक तोला और विधारा २ तोले इन सबको एकत्र मिश्रित करके दन्तीके क्वाथमें १४ बार, कागजीनींबूके रसमें ३ बार और विधारेके रसमें ९ बार भावना दे। पश्चात् उसमें शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली २ भाग और शुद्ध वत्सनाभविष १ भाग मिलाकर अदरखके रसमें और चीतेके रसमें ७–७ बार खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ तैयार करलेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली खानेसे क्षुधाकी वृद्धि होती है और जीर्णज्वर दूर होता है ॥ ५५–५८ ॥

अग्निकुमाररस।

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्कणेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम्।
कपर्दशङ्खविह नेत्रभागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ ५९ ॥
सुपक्वजम्बीररसेन घृष्टः सिद्धो भवेदग्निकुमार एषः।
विषूचिकाजीर्णसमीरणार्त्ते दद्याद् द्विवल्लं ग्रहणीगदे च ॥६०॥
"अत्र सर्वमेकभागापेक्षया वचनान्तरसंवादात्" ॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ भाग, सुहागा १ भाग, शुद्ध मीठा तेलिया ३ भाग, कौडीकी भस्म ३ भाग, शंखकी भस्म ३ भाग और मिरच ८ भाग सबको एकत्र चूर्ण करके पकेहुए जम्बीरीनींबूके रसमें खरलकरे तो अग्नि कुमाररस सिद्ध होता है। इस रसको विषूचिका, अजीर्ण, वातविकार और संग्रहणीरोगमें दो दो रत्ती प्रमाण सेवन कराना चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

बृहदग्निकुमाररस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यं च टङ्कणम्।
फलत्रयं यवक्षारं व्योषं पञ्च पटूनि च ॥ ६१ ॥
द्वादशैतानि सर्वाणि रसतुल्यानि दापयेत्।
संमर्द्य सप्तधा सर्वं भावयेदार्द्रकद्रवैः।
संशोष्य चूर्णयित्वा तु भक्षयेदार्द्रकाम्बुना।
शाणमात्रं वयो वीक्ष्य नानाऽजीर्णप्रशान्तये ॥ ६२ ॥

रसश्चाग्निकुमारोऽयं महेशेन प्रकाशितः ।
महाग्निकारकश्चैव कालभास्करतेजसाम् ॥ ६३ ॥
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् शोथं पाण्ड्वामयं जयेत् ।
दुर्नाम ग्रहणीं सामरोगान् हन्ति न संशयः ॥
यथेष्टाहारचेष्टस्य नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ ६४ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सुहागेकी खील २ भाग एवं हरड, आमला, बहेडा, जवाखार, सोंठ, पीपल, मिरच और पाँचों नमक ये बारहों औषधियें एक एक भाग लेवे । सबको एकत्र खरल करके अदरखके रसमें ७ बार भावना देवे फिर उसको सुखाकर चूर्ण करलेवे । इस रसको चार चार मासेकी मात्रासे अथवा अवस्थाका विचार करके आदरखके रसके साथ भक्षण करे तो इससे विविधप्रकारके अजीर्ण शमन होते हैं । इस बृहदग्निकुमार रसको महादेवजीने प्रकाशित किया है । यह इस-कालाग्निके तेजकी समान जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला एवं मन्दाग्निसे उत्पन्नहुए रोग, सूजन, पाण्डुरोग, बवासीर, संग्रहणी और आमयुक्त अनेक प्रकारके रोगोंको निश्चय नष्ट करनेवाला है । इसपर यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये । इसपर किसी प्रकारका परहेज नहीं है ॥ ६१-६४ ॥

हुताशनरस ।

गन्धेशटङ्कमेकैकं विषमत्र त्रिभागिकम् ।
अष्टभागं तु मरिचं जम्भाम्भोमर्दितं दिनम् ॥ ६५ ॥
तद्वटीं मुद्गमानेन कृत्वाऽऽर्द्रेण प्रयोजयेत् ।
शूलारोचकगुल्मेषु विषूच्यामग्निमान्द्यके ॥
अजीर्णसन्निपातादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥ ६६ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा और सुहागा प्रत्येक एक एक भाग, शुद्ध मीठातेलिया ३ भाग और मिरच ८ भाग इन सबको नींबूके रसमें एक दिनतक खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे शूल, अरुचि, गुल्म, विषूचिका, मन्दाग्नि, अजीर्ण, सन्निपात, शिथिलता, जडता और शिरोरोगमें अधिक लाभ होता है ॥ ६६ ॥

बृहद्धुताशन रस ।

एकद्विकद्वादशभागयुक्तं योज्यं विषं टङ्कणमूषणं च ।
हुताशनो नाम हुताशनस्य करोति वृद्धिं कफजिन्नराणाम् ॥

शुद्ध मीठातेलिया १ भाग, सुहागा २ भाग और मिरच १२ भाग इनको एकत्र खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे यह हुताशननामवाला रस जठराग्निकी विशेषरूपसे वृद्धि करता है और कफको नष्ट करता है ॥ ६७ ॥

जातीफलादिवटी ।

जातीफलं लवङ्गं च पिप्पली सिन्धुकामृतम् ।
शुण्ठी धुस्तूरबीजं च दरदं टङ्कणं तथा ॥ ६८ ॥
समं सर्वं समाहृत्य जम्भाम्भसा विमर्दयेत् ।
वल्लमाना वटी कार्या चाग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ६९ ॥

जायफल, लौंग, पीपल, सिम्हालूके पत्ते, (किसी किसीके मतसे सैंधानमक) शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, धतूरेके बीज, सिंगरफ और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करे। फिर इसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर मन्दाग्निको शान्त करनेके लिये सेवन करे ॥६८॥६९॥

भास्कररस ।

विषं सुतं फलं गन्धं त्र्यूषणं टङ्कजीरकम् ।
एकैकं द्विगुणं लोहं शङ्खमभ्रवराटकम् ॥ ७० ॥
सर्वतुल्यं लवङ्गं च जम्बीरैर्भावयेद्भिषक् ।
सप्तवासरपर्यन्तं ततः स्याद् भास्करो रसः ॥ ७१ ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटीं कुर्याद् विचक्षणः ।
ताम्बूलीदलयोगेन वटीं संचर्व्य भक्षयेत् ॥ ७२ ॥
शूलरोगेषु सर्वेषु विषूच्यामग्निमान्द्यके ।
सद्यो वह्निकरो ह्येष चन्द्रनाथेन भाषितः ॥ ७३ ॥

शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध पारा, त्रिफला, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, मिरच सुहागा और जीरा ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला एवं लौह, शंखभस्म, अभ्रक और कौडीकी भस्म ये प्रत्येक दो दो तोले और सम्पूर्ण औषधियोंका बराबर भाग लौंग लेवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके जम्बीरी नींबूके रसमें ७ दिनतक

---

१ "अत्र सिन्धुकः सिन्धुवारः । भट्टस्तु-सैन्धवमित्याह ॥"

खरल करे तो भास्करनामक रस सिद्ध होता है। इसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली पानमें रखकर भक्षण करे तो यह रस जठराग्निको तत्काल दीपन करता है एवं सर्वप्रकारके शूल, विषूचिका और अग्निमान्द्यादि विकारोंमें हितकर है। ऐसा चन्द्रनाथने कहा है ॥ ७०-७३ ॥

अग्निसन्दीपन रस।

षडूषणं पञ्चपटु त्रिक्षारं जीरकद्वयम्।
ब्रह्मदर्भोग्रगन्धे च मधुरी हिङ्गु चित्रकम् ॥ ७४ ॥
जातीफलं तथा कुष्ठं जातीकोषं त्रिजातकम्।
चिञ्चाशेखारिकक्षारममृतं रसगन्धकौ ॥ ७५ ॥
लौहमभ्रं च वङ्गं च लवङ्गं च हरीतकी।
समभागानि सर्वाणि भागौ द्वावम्लवेतसात् ॥ ७६ ॥
शङ्खस्य भागाश्चत्वारः सर्वमेकत्र भावयेत्।
क्काथेन पञ्चकोलस्य चित्रापामार्गयोस्तथा ॥ ७७ ॥
अम्ललोणीरसेनैव प्रत्येकं भावयेद् द्विधा।
त्रिः सप्तकृत्वो लिम्पाकरसैः पश्चाद् विभावयेत् ॥ ७८ ॥
बदराभा वटी कार्या भोक्तव्या सन्ध्ययोर्द्वयोः।
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ॥ ७९ ॥
अग्निसन्दीपनो नाम रसोऽयं भुवि दुर्लभः।
दीपयत्याशु मन्दाग्निमजीर्णं च विनाशयेत् ॥
अम्लपित्तं तथा शूलं गुल्ममाशु व्यपोहति ॥ ८० ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, मिरच, पाँचों नमक, जवाखार सज्जी, सुहागा, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, वच, सौंफ, हींग, चीतेकी, जड, जायफल, कूठ, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, इलायची, इमलीकी छालकी भस्म, चिरचिटेकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक, वङ्ग, लौंग, और हरड इन सबको समान भाग अर्थात् प्रत्येक १-१ तोला, एवं अम्लवेत २ तोले और शंखभस्म ४ तोले लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके पञ्चकोलके क्काथ, चीतेकी जडके क्काथ, चिरचिटेके क्काथ और नोनियाके रसमें पृथक् पृथक् दो दो बार भावना देवे। फिर जम्बीरी

नींबूके रसमें २१ बार भावना देकर छोटे बेरकी समान गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकालमें एक एक गोली खानी चाहिये । और ऊपरसे वातादि दोषोंको देखकर तदनुसार अनुपान सेवन करना चाहिये । यह अग्निसन्दीपननामक रस पृथ्वीमें परमदुर्लभ है । यह मन्दाग्निको तत्क्षण दीपन करता है एवं अजीर्ण, अम्लपित्त, शूल और गुल्मरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ७४-८० ॥

त्रिफलालोह ।

त्रिफलामुस्तवेल्लैश्च सितया कणया समम् ।
खरमञ्जरिबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम् ॥ ८१ ॥

त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, मिश्री, पीपल और चिरचिटेके बीज इन समस्त औषधियोंका चूर्ण समान भाग और सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर लोहभस्म मिलाकर दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो यह लोह भस्मक रोगको दूर करता है ॥ ८१ ॥

प्रदीपनरस ।

रसनिष्कं गन्धनिष्कं निष्कमात्रं प्रदीपनम् ।
मानमर्द्धं प्रदातव्यं चुल्लिकालवणं भिषक् ॥ ८२ ॥
मर्द्दयित्वा प्रदातव्यमथास्य माषमात्रकम् ।
अजीर्णे चाग्निमान्द्ये च दातव्यो रसवल्लभः ॥ ८३ ॥

शुद्ध पारा ४ मासे, शुद्ध गन्धक ४ मासे, शुद्ध मीठा तेलिया ४ मासे और चुल्लिकालवण २ मासे इनको एकत्र खरल करके अजीर्ण और मन्दाग्नि रोगमें एक एक मासेकी मात्रासे सेवन करावे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

विजयरस ।

रसस्यैकं पलं दत्त्वा नागं च गन्धकं पलम् ।
क्षारत्रयं पलं देयं लवङ्गं पलपञ्चकम् ॥ ८४ ॥
दशमूलीजयाचूर्णं तद्द्रवेण तु भावयेत् ।
चित्रकस्य रसेनाथ भृङ्गराजरसेन तु ॥ ८५ ॥

१ "अत्र नागशब्देन विषं ग्राह्यम्" ॥

शिग्रुमूलद्रवैश्चापि ततो भाण्डे निरुध्य च ।
याममात्रं पचेदग्नौ मर्द्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥
ताम्बूलीपत्रसंयुक्तं खादेन्निष्कमितं सदा ॥ ८६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, सुहागा, जवाखार और सज्जी ये प्रत्येक चार चार तोले एवं लौंग २० तोले, दशमूलकी सब औषधियाँ २० तोले और भाँग २० तोले लेवे एकत्र चूर्ण करके दशमूलके क्वाथ, भाँगके रस, चीतेके क्वाथ, भाँगरेके स्वरस और सहिंजनेकी जडके क्वाथमें अलग २ सात सात बार भावना देवे। फिर एक पात्रमें बन्द करके १ प्रहरतक अग्निमें पकावे पश्चात् औषधिको निकालकर अदरखके रसमें खरल करलेवे। इस रसको प्रतिदिन चार-चार मासे प्रमाण लेकर पानमें रखकर सेवन करना चाहिये। इससे मन्दाग्निआदि उदर सम्बन्धी विकार दूर होते हैं ॥ ८४-८६ ॥

अग्निरस ।

मरिचाब्दवचा कुष्ठं समांशं विषमेव च ।
आर्द्रकस्य रसैः पिष्ट्वा मुद्गमात्रं तु कारयेत् ॥
स्वयमग्निरसो नाम सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ८७ ॥

मिरच, नागरमोथा, वच और कूठ ये प्रत्येक ११ तोले एवं शुद्ध वत्सनाभ ४ तोले सबको अदरखके रसमें खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। यह स्वयं अग्निनामवाला रस सर्वप्रकारके अजीर्णको शमन करनेके लिये देना चाहिये ॥ ८७ ॥

टङ्कणादि वटी ।

टङ्कणनागरगन्धकपारदगरलं मरिचं समभागयुतम् ।
लकुचस्वरसैश्चणकप्रमिता गुडिका जनयत्यचिरादनलम् ॥ ८८ ॥

सुहागा, सोंठ, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध विष और कालीमिरच ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर बडहलके पत्तोंके रसमें खरल करके चनेकी समान गोलियाँ बनाकर सेवन करे। यह वटी तत्काल अग्निको दीपन करती है ॥ ८८ ॥

रस राक्षस ।

ताम्रं पारदगन्धकं त्रिकटुकं तीक्ष्णं च सौवर्च्चलं
खल्ले मर्द्य दिनं निधाय सिकताकुम्भेषु यामं ततः ।
स्विन्नं तेष्वपि रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं भावये-
देकीकृत्य च मातुलुङ्गकजलैर्नाम्ना रसो राक्षसः ॥ ८९ ॥

ताँबेकी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, मिरच, तीक्ष्णलोह और कालानमक इन सबको समानभाग लेकर खरलमें १ दिनतक घोटकर वालुकायंत्रमें रख १ प्रहरतक पकावे। जब पककर स्वयं शीतल हो तब उसमें लाल विषखपरेका क्षार सब औषधिके समान मिलाकर बिजौरेनीम्बूके रसमें खरल करलेवे तो यह राक्षसनामसे प्रसिद्ध रस सिद्ध होताहै। यह रस मन्दाग्निको नष्ट करताहै ॥८९॥

पञ्चमृतवटी ।

अभ्रकं पारदं ताम्रं गन्धकं मरिचानि च ।
समभागमिदं चूर्णं चाङ्गेरीरसमर्दितम् ॥ ९० ॥
मर्दिते हि रसे भूयो जयन्तीसिन्धुवारयोः ।
भावनापि च दातव्या गुञ्जापर्मिता वटी ॥ ९१ ॥
तप्तोदकानुपानेन चतस्रस्तिस्र एव वा ।
वह्निमान्द्ये प्रदातव्या वटचः पञ्चामृतास्तथा ॥ ९२ ॥

अभ्रककी भस्म, शुद्ध पारा, ताँबेकी भस्म, शुद्ध गन्धक और मिरच इन प्रत्येकके चूर्णको समान भाग लेकर नोनियाके रसमें खरल करके अरणी और सिंह्मालूके रसमें खरल करे। फिर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर इनमेंसे ३ वा ४ गोली गरम जलके साथ सेवन करावे तो यह पञ्चामृतनामवाली वटी मन्दाग्निरोगमें पञ्चामृतकी समान गुण करती है ॥ ९०-९१ ॥

ज्वालानलरस ।

क्षारद्वयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम् ।
सर्वतुल्या जया देया तदर्द्धं शिग्रुवल्कलम् ॥ ९३ ॥
एतत् सर्वं जया शिग्रु वह्निमार्कवजै रसैः ।
भावयेत्त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ ९४ ॥
भावयेत्सप्तधा चार्द्रद्रवैर्ज्वालानलो भवेत् ।
पाचनो दीपनो हृद्यश्चोदरामयनाशनः ॥ ९५ ॥

जवाखार, सज्जी, पारा, गन्धक और पंचकोलकी औषधियाँ ये सब समान भाग समस्त औषधियोंकी बराबर भाँग और भाँगसे आधी सहिंजनेकी जडकी छाल इन सबका एकत्र चूर्ण करके भाँग, सहिंजना चीता और भाँगरा प्रत्येकके रसमें वा काथमें पृथक् २ तीन दिनतक धूपमें खरल करके लघुपुटमें पकावे। फिर अदरखके रसमें

७ बार खरल करे तो ज्वालानल नामक रस सिद्ध होता है। यह रस पाचक, अग्निप्रदीपक हृदयको हितकारी, उदररोगनाशक है ॥९३-९५॥

भक्तविपाकवटी।

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला।
त्रिवृद्दन्ती वारिवाहं चित्रकं च महौषधम् ॥ ९६ ॥
पिप्पली मरिचं पथ्या यमानी कृष्णजीरकम्।
रामठः कटुका पाठा सैन्धवं साजमोदकम् ॥ ९७ ॥
जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ ९८ ॥
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन च।
आतपे भावयेद्वैद्यः खल्लपात्रे च निर्म्मले ॥
पेषयित्वा वटीं खादेद्गुञ्जाफलसमप्रभाम् ॥ ९९ ॥
भक्तोत्तरीये बहुभोजनान्ते मुहुर्मुहुर्वाञ्छति भोजनानि।
आमानुबन्धे च चिराग्निमान्द्ये विड्विग्रहे पित्तकफानुबन्धे १००
शोथोदरे चार्शगदेऽप्यजीर्णे शूले त्रिदोषप्रभवे ज्वरे च।
शस्ता वटी भक्तविपाकसंज्ञा सुखं विपाचयाशु नरस्य कोष्ठम्॥

सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हरतालकी भस्म, मैनसिलकी भस्म, निसोत, दन्ती, नागरमोथा, चीता, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, अजवायन, कालाजीरा, हींग, कुटकी, पाढ, सैंधानमक, अजमोद, जायफल और जवाखार इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णको उत्तम खरलमें डालकर अदरख, निर्गुण्डी, हुलहुल और तुलसी इन प्रत्येकके स्वरससे अलग २ धूपमें रखकर भावना देवे। पश्चात् खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे। इस वटीको बहुतसा भोजन करनेके बाद सेवन करनेसे बारबार भोजनकी इच्छा होती है। एव आमयुत मलविबन्ध, बहुत पुरानी मन्दाग्नि, मलावरोध, पित्त और कफका अनुबन्ध, शोथ, उदररोग, बवासीर, अजीर्ण, शूल और त्रिदोषज ज्वर इन समस्त रोगोंमें यह भक्तविपाकनामवाली वटी हितकारिणी कहीगई है तथा मनुष्यके कोटेको शीघ्रही शुद्ध करके सुख उत्पन्न करती है ॥ ९६-१०१ ॥

बृहद्भक्तपाकवटी।

अभ्रं पारदगन्धकौ सदरदौ ताम्रं च तालं शिला
वङ्गं च त्रिफला विषं च कुनटी भागास्त्रयो दन्तिनः।

शृङ्गीव्योषयमानिचित्रजलदद्वे जीरके टङ्कणं
ह्येलापत्रलवङ्गहिङ्गु कुटकी जातीफलं सैन्धवम् ॥ १०२ ॥
एतान्यार्द्रकचित्रदन्तिसुरसावासारसैर्बिल्वजः
पत्रोत्थैरपि सप्तधा सुविमले खल्ले विभाव्यान्यतः ।
खादेद्वल्लमितं तथा च सकलव्याधौ प्रयोज्या बुधैः
विड्बन्धे कफजे त्रिदोषजनिते ह्यामानुबन्धेऽपि च ॥ १०३ ॥
मन्देऽग्नौ विषमज्वरे च सकले शूले त्रिदोषोद्भवे
हन्यात्तानपि भक्तपाकवटिका भूयश्च सामं जयेत् ॥१०४॥

अभ्रककी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सिंगरफ, ताँबेकी भस्म, हरतालकी भस्म, मैनसिलकी भस्म, वंगभस्म, त्रिफला, शुद्ध मीठातेलिया, नपाली मैनसिल, दन्तिके बीज, काकडासिंगी, त्रिकुटा, अजवायन, चीता, नागरमोथा, जीरा, कालाज़ीरा, सुहागा, इलायची, तेजपात, लौंग, हींग, कुटकी, जायफल और सैंधानमक इन सबको समान भाग लेकर शुद्ध खरलमें रख अदरख, चीता, दन्ती, तुलसी, अडूसा और बेल इन प्रत्येकके पत्तोंके रसमें ७-७ बार भावना देवे । फिर इसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे । बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि, इस वटीको सब प्रकारकी व्याधियोंमें प्रयोग करे । मलावरोध, कफजनितरोग, त्रिदोषसे उत्पन्नहुए रोग, आमानुबन्ध, मन्दाग्नि, विषमज्वर, सर्वप्रकारके शूल एवं त्रिदोषजन्य अन्यान्य प्रकारके तथा आमयुक्त विकार इन सबको यह बृहद्भक्तपाकवटी दूर करती है ॥ १०२-१०४ ॥

पाशुपतरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं त्रिभागं तीक्ष्णभस्मकम् ।
त्रिभिः समं विषं देयं चित्रकक्काथभावितम् ॥ १०५ ॥
धूर्त्तबीजस्य भस्मापि द्वात्रिंशद्भागसंयुतम् ।
कटुत्रयं त्रिभागं स्याल्लवङ्गैला च तत्समम् ॥ १०६ ॥
जातीफलं तथा कोषमर्द्धभागं नियोजयेत् ।
तथाऽर्द्धं लवणं पञ्च स्नुह्यर्कैरण्डतिन्तिडी ॥ १०७ ॥
अपामार्गाश्वत्थजं च क्षारं दद्याद्विचक्षणः ।
हरीतकी यवक्षारं स्वर्जिका हिङ्गु जीरकम् ॥ १०८ ॥

टङ्कणं सूततुल्यं तु चाम्लयोगेन मर्दयेत् ।
भोजनान्ते प्रयोक्तव्या गुञ्जाफलप्रमाणतः ॥ १०९ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ३ भाग और शुद्ध मीठा तेलिया ६ भाग इन सबको एकत्र कर चीतेके काथमें भावना देवे । फिर उसमें धतूरेके बीजोंकी भस्म ३२ भाग त्रिकुटा ३ भाग, लौंग ३ भाग, इलायची ३ भाग, जायफल और जावित्री प्रत्येक डेढ डेढ भाग तथा पाँचों नमक, थूहर, आक, अण्ड, इमली, चिरचिटा, पीपल इनका क्षार दो भाग और हरड, जवाखार, सज्जी, हींग, जीरा और सुहागा ये प्रत्येक एक एक भाग मिलाकर काँजी आदि अम्लपदार्थोंके रसमें खरल करे इनका प्रतिदिन एकएक रत्तीकी मात्रासे भोजनके पश्चात् सेवन करे ॥ १०५-१०९ ॥

रसः पाशुपतो नाम सद्यः प्रत्ययकारकः ।
दीपनः पाचनो हृद्यः सद्यो हन्ति विषूचिकाम् ॥ ११०॥
तालमूलीरसेनैव उदरामयनाशनः ।
मोचारसेनातिसारं ग्रहणीं तक्रसैन्धवैः ॥ १११ ॥
सौवर्च्चलकणाशुण्ठीयुतः शूलं विनाशयेत् ।
अर्शो हन्ति च तक्रेण पिप्पल्या राजयक्ष्मकम् ॥ ११२ ॥
वातरोगं निहन्त्याशु शुण्ठीसौवर्च्चलान्वितः ।
शर्कराधान्ययोगेन पित्तरोगं निहन्त्ययम् ॥ ११३ ॥
पिप्पलीक्षौद्रयोगेन श्लेष्मरोगं च तत्क्षणात् ।
अतः परतरो नास्ति धन्वन्तरिमतो रसः ॥ ११४ ॥

यह पाशुपतनामवाला रस तत्काल अग्निको दीपन करनेवाला, पाचक, हृदयको हितकारी और विषूचिकारोगको शीघ्र नष्ट करता है । मुसलीके काथके साथ इस रसको सेवन करनेसे उदररोग दूर होते हैं । मोचरसके साथ देनेसे अतिसार, मट्ठे और सैंधानमकके साथ देनेसे संग्रहणी एवं कालानमक पीपल और सौंठ इनके समान भाग चूर्णके साथ इस रसको देनेसे शूलरोग दूर होता है । यह रस तक्रके साथ बवासीर, पीपलके साथ राजयक्ष्मा, सोंठ और कालेनमकके साथ सेवन करनेसे वातरोगको नष्ट करता है । एवं मिश्री और धनियेके साथ सेवन करनेसे पित्तके रोग और पीपल तथा शहदके साथ सेवन करनेसे कफके रोगोंको तत्क्षण दूर करता है । इससे बढकर अन्य औषध नहीं है ऐसा धन्वन्तरि महाराजने कहा है॥११०-११५

अजीर्णबलकालानलरस ।

द्विपलं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम् ।
लौहं ताम्रं हरतालं विषं तुत्थं सवङ्गकम् ॥ १५ ॥
पलप्रमाणं च पृथक् लवङ्गं टङ्कणं तथा ।
दन्तीमूलं त्रिवृच्चूर्णमेकैकं पलसम्मितम् ॥ १६ ॥
अजमोदा यमानी च द्विक्षारलवणानि च ।
पृथगर्द्धपलं ग्राह्यमेकीकृत्य च भावयेत् ॥ १७ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैकविंशतिः पञ्चकोलजैः ।
दशधा भावयेत्तोयैर्गुडूचीनां रसैर्दश ॥ १८ ॥
सर्वार्द्धं मरिचं दत्त्वा काचकुप्यां च धारयेत् ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा च्छायायां परिशोषयेत ॥
रसोऽजीर्णबलकालानल एष प्रकीर्त्तितः ॥ १९ ॥

शुद्ध पारा ८ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, दोनोंकी कज्जली एवं लोहेकी भस्म, ताम्रभस्म, हरताल भस्म, शुद्ध विष, शुद्ध तूतिया, वंगभस्म, लौंग, सुहागा, दन्तीकी जड और निसोथ ये प्रत्येक चार चार तोले तथा अजमोद, अजवायन, जवाखार, सज्जी और पाँचोंनमक प्रत्येक औषधि दो दो तोले इन सबको एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें २१ बार एवं पंचकोलकी औषधियोंके क्वाथमें और गिलोयके रसमें दसदस बार खरल करे । फिर इसमें समस्त औषधिसे आधा भाग मिरचोंका चूर्ण मिलाकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । उनको छायामें सुखाकर शीशीमें भर-कर रखदेवे । इसको अजीर्णबलकालानलरस कहते हैं ॥ १५-१९ ॥

अनेककालनष्टाग्नेर्दीपनः परमः स्मृतः ॥ २० ॥
आमवातकुलध्वंसी प्लीहपाण्डुगदापहः ।
प्रमेहानाहविष्टम्भसूतिकाग्रहणीहरः ॥ २१ ॥
श्वासकासप्रतिश्याययक्ष्मक्षयविनाशनः ।
अम्लपित्तं च शूलं च भगन्दरगुदोद्भवौ ॥ २२ ॥
अष्टोदराणि प्लीहानं यकृतं हन्ति दारुणम् ।
आकण्ठं भोजयित्वा तु खादयेच्च रसोत्तमम् ॥ २३ ॥

अर्द्धयामेन तत् सर्वं भस्मीभवति निश्चितम् ।
चतुर्विधरसोपेतं महाभोजनमिच्छतः ॥ २४ ॥
भोजस्य नृपतेः कांक्षां भोजनात्कृपया कृतः ।
गहनानन्दनाथेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ २५ ॥

यह रस बहुत कालसे नष्टहुई जठराग्निको अत्यन्त दीपन करता है । एवं आमवात, प्लीहा, पाण्डुरोग, प्रमेह, अफारा, मलविबन्ध, प्रसूतरोग, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, क्षय, अम्लपित्त, शूल, भगन्दर, बवासीर, ८ प्रकारके उदररोग और दारुण यकृत् इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है । जो कण्ठपर्यन्त भोजन करके इस रसको खावे तो खायाहुआ सब भोजन अर्द्धप्रहरमें ही निश्चय भस्म होजाता है । भोज्य, भक्ष्य, चोष्य और लेह्य इन चारों प्रकारके रसोंसे युक्त भोजनोंमें राजा भोजकी अधिक इच्छा होनेसे और संपूर्ण मनुष्योंके हितकी इच्छासे श्रीगहनानन्दनाथजीने कृपा करके इस रसको निर्माण किया है ॥ १२०–२५॥

शङ्खवटी ।

चिञ्चाक्षारपलं पटुव्रजपलं निम्बूरसे कल्कितं
तस्मिन् शंखपलं प्रतप्तमसकृत् संस्थाप्य शीर्णावधि ।
हिङ्गुव्योषपलं रसामृतबलीन् निक्षिप्य निष्कांशिकान्
बद्धा शंखवटी क्षयग्रहणिकारुक्पंक्तिशूलादिषु ॥ २६ ॥

[पटु-लवणं पञ्चलवणं मिलित्वा पलं हिङ्गुशुण्ठी-पिप्पलीमरिचानामपि मिलित्वा पलं, रसविषगन्धकानां प्रत्येकं निष्कं माषचतुष्टयं शंखं गडुयां वह्नौ ध्मात्वा निम्बुरसतप्तां निक्षिपेत् यावच्चूर्णीभूय तद्रसे पतति सर्वं चूर्णमेकीकृत्य निम्बूरसेन रौद्रे तावद् भावयेद्यावदम्लता भवति]

इमलीका क्षार ४ तोले, पाँचोंनमक ४ तोले और शंखभस्म ४ तोले लेवे । उसमें शंखभस्म ४ तोले लेकर नींबूके रसमें न मिलने लगे तबतक अग्निमें तपाकर नींबूके रसमें बुझाता रहे । फिर सबचूर्णको एकत्र करके नीम्बूके रसमें धूपमें तबतक भावना देवे कि जबतक उसमें अम्लता (खटाई) न आजाय । हींग, सोंठ, पीपल और मिरच ये समान : भाग : मिश्रित ४ तोले

एवं शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मीठा तेलिया ये प्रत्येक चार चार मासे लेवे । सबको एकत्र मिलाकर नींबूके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको क्षय, संग्रहणी, अजीर्ण और शूलादि रोगोंमें सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

द्वितीय-शङ्खवटी ।

सार्द्धकर्षं रसेन्द्रस्य गन्धकस्य तथैव च ।
विषं कर्षत्रयं दद्यात्सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ २७ ॥
दग्धशङ्खं च तत्तुल्यं पञ्चकर्षाणि नागरात् ।
स्वर्जिकारामठकणासिन्धुसौवर्च्चलं विडम् ॥ २८ ॥
सामुद्रमौद्भिदं चैव भावयेन्निम्बुकद्रवैः ।
वटी ग्रहण्यम्लपित्तशूलघ्नी वह्निदीपनी ॥
वह्निमान्द्यकृतान् रोगान् सामदोषं विनाशयेत् ॥ २९ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक डेढ कर्ष लेकर कज्जली करलेवे । फिर शुद्ध मीठा तेलिया ३ कर्ष और सबके बराबर काली मिरचोंका चूर्ण, शंखभस्म कालीमिरचोंके बराबर, सोंठका चूर्ण ५ कर्ष एवं सज्जी, हींग, पीपल, सैंधानमक, कालानमक, विरियासंचर नमक, समुद्रीनमक और रेह ये प्रत्येक पांच पांच कर्ष लेवे । सबको नीम्बूके रसमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह शंखवटी संग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, आमदोष, मन्दाग्नि तथा तज्जन्य विकार इन सबको दूर करती है और अग्निको दीपन करती है ॥ २७-२९ ॥

तृतीय-बृहच्छङ्खवटी ।

द्वौ क्षारौ रसगन्धकौ सलवणौ व्योषं च तुल्यं विषं
चिञ्चाशङ्खचतुर्गुणं रसवरैर्लिम्पाकजातैः कृतम् ।
वारं वारमिदं सुपाकरचितं लोहं क्षिपेद्भिङ्गुकं
भृष्टं वङ्गसमं सुमर्दितमिदं गुञ्जाप्रमाणा भवेत् ॥ १३० ॥
ख्याता शङ्खवटी महाग्निजननी शूलान्तकृत् पाचनी ।
कासश्वासविनाशिनी क्षयहरी मन्दाग्निसन्दीपिनी ।
वातव्याधिमहोदरादिशमनी तृष्णामयोच्छेदिनी
सर्वव्याधिविनाशिनी कृमिहरी दुष्टामयध्वंसिनी ॥ १३१ ॥

जवाखार, सज्जी, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सैंधानमक, विरियासंचर नमक, सोंठ, पीपल, मिरच, और शुद्धमीठा तेलिया यह प्रत्येक १-१ तोला एवं इमलीका क्षार ४तोले और शंखभस्म ४ तोले सबको एकत्र मिलाकर नीम्बूके रसमें खरल करे। फिर उसमें लोहभस्म, घीमें भुनी हुई हींग और वंगभस्म प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर अच्छे प्रकारसे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह शंखवटी जठराग्निकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाली, शूलको नष्ट करनेवाली, पाचन शक्तिको बढानेवाली एवं श्वास, खाँसी, क्षय, मन्दाग्नि, वातरोग, उदरके भयंकर रोग, तृषा कृमि रोग, दुष्टव्याधि तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाली है ॥ १२० ॥ १२१ ॥

चतुर्थ–शंखवटी और महाशंखवटी ।

दग्धशङ्खस्य चूर्णं स्यात्तथा लवणपञ्चकम् ।
तिन्तिडीक्षारकं चैव कटुकत्रयमेव च ॥ ३२ ॥
तथैव हिङ्गुकं ग्राह्यं विषं पारदगन्धकम् ।
अपामार्गस्य वह्नेश्च क्वाथैर्लिम्पाकजै रसैः ॥ ३३ ॥
भावयेत् सर्वचूर्णं तदम्लवर्गैर्विशेषतः ।
यावत्तदम्लतां याति गुटिकाऽमृतरूपिणी ॥ ३४ ॥
सद्यो वह्निकरी चैव भस्मकं च नियच्छति ।
भुक्त्वाऽऽकण्ठं तु तस्यान्ते खादेच्च गुटिकामिमाम् ॥
तत्क्षणाज्जरयत्याशु पुनर्भोजनमिच्छति ॥ ३५ ॥

शंखभस्म, पाँचोंनमक, इमलीका क्षार, त्रिकटु, हींग, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर चिरचिटेके क्वाथ, चीतेकी जडके क्वाथ और नींबूके रसमें तथा विशेषकर अम्लवर्गके रसमें (जबतक खट्टापन उत्पन्न न हो तबतक) खरल करे फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह अमृतरूपी वटी तत्काल अग्निको दीपन करती है और भस्मक रोगको दूर करती है। कण्ठपर्यन्त भोजन करनेपर भी इस गोलीको खावे तो यह वटी तत्क्षण सम्पूर्ण अन्नको पचा देती है और सर्वप्रकारके अजीर्णको नष्ट करती है ॥ ३२–३५ ॥

ज्वरं गुल्मं पाण्डुरोगं कुष्ठं शूलं प्रमेहकम् ॥ ३६ ॥
वातरक्तं महाशोथं वातपित्तकफानपि ।
दुर्नामारिरियं चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ३७ ॥

निर्म्मूलं दह्यते शीघ्रं तूलकं वह्निना यथा ।
लौहवङ्गयुता सेयं महाशङ्खवटी स्मृता ॥ १८ ॥
प्रभाते कोष्णतोयानुपानमेव प्रशस्यते ॥ ३९ ॥

एवं ज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, कुष्ठ, शूल, प्रमेह, वातरक्त, अत्यन्त सूजन, वातपित्तकफके विकार और बवासीर इन सब व्याधियोंको समूल नष्ट करदेती है. जैसे अग्निके द्वारा रुई तत्काल भस्म होजाती है । ऐसा हजारों बार देखागया है । यदि इसमें लोहभस्म और वंगभस्म मिलादीजाय तो यही वटी महाशंखवटी कहलाती है । प्रातःकालमें मन्दोष्णजलके अनुपानसे इस वटीको सेवन करना चाहिये॥ ३६-३९ ॥

" जम्बीरं बीजपूरं च मातुलुङ्गकचुकम् ।
चाङ्गेरी तिन्तिडी चैव बदरी करमर्दकम् ॥
अष्टावम्लस्य वर्गोऽयं कथितो मुनिसत्तमैः" ॥ १४० ॥

" जम्बीरीनींबू, बिजौरानींबु, मातुलुङ्ग, चकोतराके चूका, नोनिया, इमली, बेर और करोंदा इन आठ अम्लपदार्थोंको मुनियोंने अम्लवर्ग कहा है " ॥ १४० ॥

पंचम-महाशंखवटी ।

पटुपञ्चकहिङ्गुशङ्खचिञ्चाभसितव्योषबलारसा-
मृतानि । शिखिशैलरिकाम्लवर्गनिम्बु भृश-
भाव्यानि यथाऽम्लतां व्रजन्ति ॥ १४१ ॥
महाशंखवटी ख्याता भोजनान्ते प्रकीर्त्तिता ।
दीपनी परमा हन्ति महार्शोग्रहणीमुखान् ॥ ४२ ॥

पाचोंनमक, हींग, शंखभस्म, इमलीका क्षार, सोंठ, पीपल, मिरच, शुद्ध गन्धक शुद्ध पारा और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समान भाग लेकर चीतेके क्वाथ चिरचिटेके क्वाथ, अम्लवर्गकी औषधियोंके रस और नीम्बूके रसमें (जबतक उसमें खट्टापान न आजाय तबतक) उत्तम प्रकारसे खरल करके पश्चात् १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर भोजन करनेके पश्चात् इसे एक एक गोलीकी मात्रास सेवन करना चाहिये । एय अत्यन्त अग्निवर्द्धक एवं अर्श, ग्रहणी आदि दुस्तर रोगोंको नष्ट करती है ॥ ४१-४२ ॥

षष्ठ-महाशंखवटी ।

कणामूलं वह्निदन्ती पारदं गन्धकं कणा ।
त्रिक्षारं पञ्चलवणं मरिचं नागरं विषम् ॥ ४३ ॥

अजमोदाऽमृता हिङ्गु क्षारं तिन्तिडिकाभवम् ।
संचूर्ण्य समभागं तु द्विगुणं शङ्खभस्मकम् ॥
अम्लद्रवेण सम्भाव्य वटी कोलास्थिसम्मिता ॥ ४४ ॥

पीपलामूल, चीता, दन्तीकी जड, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पीपल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, पाँचों नमक, मिरच, सोंठ, शुद्ध मीठा तेलीया, अजमोद, गिलोय, हींग और इमलीकी क्षार ये प्रत्येक एकएक तोला एवं शङ्खभस्म दो तोले, लेवे । सबको एकत्र मिलाकर अम्लवर्गकी औषधियोंके रसमें पृथक् २ भावना देकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अम्लदाडिमतोयेन लिम्पाकस्वरसेन च ॥ ४५ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय नाम्ना शङ्खवटी शुभा ।
तक्रमस्तुसुरासीधुकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ॥ ४६ ॥
शशैणादिरसेनैव रसेन विविधेन च ।
मन्दाग्निं दीपयत्याशु वडवाग्निसमप्रभम् ॥ ४७ ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कुष्ठं मेहभगन्दरम् ।
प्लीहानमश्मरीं श्वासं कासं मेहोदरं कृमीन् ॥ ४८ ॥
हृद्रोगं पाण्डुरोगंच विबद्धानुदरे स्थितान् ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४९ ॥

इस महाशंखवटी नामसे प्रसिद्ध उत्तम औषधिको प्रतिदिन प्रातःकाल खट्टे अनारके रस, जम्बीरी नींबूके रस, मठा, दहीका तोड, मदिरा, सिरका, काँजी अथवा गरमजल इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करे, एवं खरगोश व कृष्णमृग आदिके मांसरसके अथवा अन्यान्य विविध प्रकारके रसोंके साथ सेवन करे तो यह मन्दाग्निको वडवानलकी समान तत्काल दीपन करती है तथा अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, मेह, भगन्दर, तिल्ली, पथरी, श्वास, खाँसी, उदररोग, कृमिरोग, हृदयरोग, पाण्डुरोग, मलविबन्ध इन सब रोगोंको इस प्रकार नष्ट करदेती है, जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको ॥ ४५-४९ ॥

वज्रक्षार ।

स्वर्जिः सौवर्चलं ग्राह्यं प्रत्येकं शाणमानतः ।
यवक्षारस्य शुद्धस्य पलार्द्धं परिकल्पयेत् ॥
स्थापयित्वाऽऽयसे पात्रे स्वेदयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ५० ॥

द्रुत तच्चालयेत् प्राज्ञः प्रस्तरे भाजने शुभे ।
दद्याद्रक्तिद्वयं वारि वारिदस्वरसादिभिः ।
अग्निमान्द्यमजीर्णं च शूलानाहोदरामयान् ॥ ९१ ॥
अम्लपित्तं तथाऽऽध्मानं विष्टम्भं गुल्ममेव च ।
वज्रक्षारो निहन्त्याशु शक्रवज्रो यथा तरुम् ॥ ९२ ॥

सज्जी चार मासे, कालानमक चार मासे और शुद्ध जवाखार २ तोले इनको लोहेके बर्त्तनमें रखकर मन्द मन्द अग्निसे गलाकर पत्थरके बर्त्तनमें डालकर पर्पटी तैयार करलेवे । इनको दो दो रत्तीकी मात्रासे शीतलजल अथवा नागरमोथेके स्वरसके साथ सेवन करनेसे यह वज्रक्षार अग्निमान्द्य, अजीर्ण, शूल, आनाह, उदररोग, अम्लपित्त, अफारा, विबन्ध, गुल्मप्रभृति विविधप्रकारके रोगोंको नष्ट करता है ॥ १९०–९२ ॥

क्रव्यादरस ।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्बायसी चार्द्धपलप्रमाणे ।
विचूर्ण्य सर्वं द्रुतवह्नियोगादेरण्डपत्रेऽथ निवेशनीयम् ॥ ९३ ॥
कृत्वाऽथ तां पर्पटिकां विदध्याल्लौहस्य पात्रे वरपूतमग्मन् ।
जम्बीरजं पक्वरसं पलानि शतं नियोज्याग्निमथालपमल्पम् ॥
जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः ।
सेवेत साम्लैः शतमत्र देयं समं रजष्टङ्कणजं सुभृष्टम् ॥९५॥
विडं तदर्द्धं मरिचं समं च तत्सप्तधाऽऽर्द्रं चणकाम्लकेन ।
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्थानकभैरवोक्तः ॥९६॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म २ तोले और लोहभस्म २ तोले इन सबको एकत्र चूर्ण करके लोहेकी कडाहीमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब अच्छे प्रकारसे पाक होजाय तब अण्डके पत्तेपर लोटकर उसकी पर्पटी बनालेवे । फिर उस पर्पटीको जम्बीरीनींबूके १०० पल रसमें धीरे धीरे पकावे । जब सब रस सूखजाय तब पञ्चकोलके क्वाथ सौ पल और अम्लवेतके सौपल क्वाथको पृथक् पृथक् डालकर भावना देवे । पश्चात् सुहागेकी खील १६ तोले, विरियासंचर नमक ८ तोले और कालीमिरचोंका चूर्ण ४० तोले मिलाकर भीगे हुए चनोंके खारके पानीमें सातबार भावना देवे तो यह मन्थानक भैरवका कहा हुआ क्रव्यादनामवाला प्रसिद्ध रस सिद्ध होता है ॥ ९३–९६ ॥

माषद्वयं सन्धवतक्रपीतमेतत् सुधन्यं खलु भोजनान्ते ।
गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्टं घृतानि सेव्यानि फलानि चैव ॥
मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः॥ ५७
कार्श्यस्थौल्यनिबर्हणो गरहरः सामातिनिर्णाशनो
गुल्मप्लीहजलोदरादिशमनः शूलार्त्तिशूलापहः ।
वातश्लेष्मनिबर्हणो ग्रहणिकातीसारविध्वंसनो
वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः ॥ ५८ ॥

इस रसको दो दो माशेकी मात्रासे भोजनके बाद सैंधानमक और तक्रके साथ सेवन करे इसपर गुरुपाकी पदार्थ, मांस, दूध पिष्ट (मैदा व पिठीके बने पदार्थ), घृत और फल इनका सेवन करना हितकारी है । यदि मात्रासे अधिक भोजन करलिया जाय तो उसको भी यह प्रसिद्ध रस दो प्रहरमेंही पचा देता है तथा कृशता, स्थूलता, विषविकार, आमदोष, गुल्म, प्लीहा, जलोदर, शूलकी पीड़ा, शूल वातकफजन्य रोग, ग्रहणी, अतिसार, वातजग्रन्थि और भयंकर उदररोग इन सबको यह रस शीघ्र नष्ट करताहै ॥५७-५८॥ विश्वोद्दीपकाभ्र ।

अभ्रं निर्म्मलमारितं पलमितं चूर्णीकृतं यत्नत-
श्चव्यं चित्रकमिन्द्रसूरकनकं मालूरपत्रार्द्रकम् ।
मूलं पिप्पलिसम्भवं मधुरिका नीपोऽर्कमूलं पृथक्
चैषां सत्त्वपलैर्विमर्दितमिदं कर्षं क्षिपेट्टङ्कणम् ॥ ५९ ॥
गुञ्जासम्मितमेतदेव वलितं तत्पारिभद्रद्रवे-
र्मन्दाग्निं चिरजातगुल्मनिचयं शूलाम्लपित्तं ज्वरम् ।
छर्दिं दुष्टमसूरिकामलसकं श्वासं च कासं तृषां
प्लीहानं यकृतं क्षयंस्वरहतं कुष्ठं महारोचकम् ॥ १६० ॥
दाहं मोहमशेषदोषजनितं कृच्छ्रं च दुर्नामकं
ह्यामं वातविमिश्रितं नयनजं रोगं समुन्मूलयेत् ।
विश्वोद्दीपकनाम रोगहरणे प्रोक्तं पुरा शम्भुना
सर्वेषां हितकारकं गदवतां सर्वामयध्वंसनम् ॥
पाषाणं यदि भक्षितं तदपि तत्कुर्यात् सुजीर्णं पुन-
र्बल्यं वृष्यतरं रसायनवरं मेधाकरं कान्तिदम् ॥ ६१ ॥

शुद्ध अभ्रकभस्म ४ तोले, चव्य ४ तोले एवं चीता, सिझालू, धतूरा, बल और अदरखका रस ३ तोले, एवं पीपलामूल, सौंफ, कदम्ब और आककी जड इन प्रत्येकका क्वाथ चारचार तोले लेवे । सबको पृथक्‌ २ खरलमें डालकर मर्दन करे। फिर उसमें एक कर्ष सुहागा मिलाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एकएक गोली फरहदके रसके साथ सेवन करे तो यह रस मन्दाग्नि, बहुत पुराना गुल्म, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, वमन, दुष्ट मसूरिका, अलसक, श्वास, खाँसी तृषा, प्लीहा, यकृत्, क्षय, स्वरभंग, कुष्ठ, अरुचि, दाह, मोह, समस्त दोषोत्पन्न मूत्रकृच्छ्र, बवासीर, आमवात और नेत्ररोग इन सबको समूल नष्ट करदेता है। इस विश्वोदीपकनामवाले अभ्रकको सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेके लिये पूर्वकालमें शिवजीने कहा है । यह समस्त रोगियोंके लिये हितकारी और सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवालाहै । अतिसारकोभी पचादेता है तथा बलकारक, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, उत्तम रसायन एवं बुद्धि और शरीरकी कान्तिको बढाता है ॥ १५९-१६१ ॥

वीरभद्राभ्रक ।

अभ्रकं पुटसहस्रमारितं कर्षयुग्ममतिनिर्म्मलीकृतम् ।
वासराणि नवतिं विमार्द्दितं चित्रकस्वरससाधुसिक्तकम् ॥ ६२ ॥
शृङ्गवेररसमर्द्दिता वटी कारिता सकलरोगनाशिनी ।
भक्षिता भुजगवल्लिपत्रकैः शृङ्गवेरशकलेन वा पुनः ॥ ६३ ॥
वह्निमान्द्यमभिनाश्य सत्वरं कारयेत् प्रखरपावकोत्करम् ।
श्वासकासवमिशोथकामलाप्लीहगुल्मजठरारुचिभ्रमान् ॥ ६४ ॥
रक्तपित्तयकृदम्लपित्तकं शूलकोष्ठजगदान् विषूचिकाम् ।
आमवातमथ वातशोणितं दाहशीतबलह्रासकार्श्यकम्॥ ६५ ॥
विद्रधिं ज्वरगदं शिरोगदं नेत्ररोगमखिलं हलीमकम् ।
हन्ति वृष्तयममेतदभ्रकं वीरभद्रमतिबल्यमुत्तमम् ॥
भक्षितं विविधभक्ष्यमानलं काष्ठसङ्घमिव भस्मतां नयेत् ६६

उत्तम सहस्रपुटित अभ्रकको दो कर्ष लेकर चीतेके रसमें ९० दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करे । फिर अदरखके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी सर्वप्रकारके रोगोंको नाश करनेवाली है । इस वटीको पानके साथ अथवा अदरखके टुकडोंके साथ सेवन करनेसे मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी आदि

उल्लिखित सभी रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । यह वरिभद्र नामक अभ्रक अत्यन्त वृष्य और बलकारक है इसके सेवनसे अनेक प्रकारके भारीसे भारी भक्ष्यपदार्थ भस्म होजाते हैं ॥ ६२–६६ ॥

लवङ्गाद्यमोदक ।

लवङ्गं पिप्पली शुण्ठी मरिचं जीरकद्वयम् ।
केशरं तगरं चैव एला जातीफलं तुगा ॥ ६७ ॥
कट्फलं तेजपत्रं च पद्मबीजं सचन्दनम् ।
कक्कोलमगुरुश्चैव उशीरमभ्रकं तथा ॥ ६८ ॥
कर्पूरं जातिकोषं च मुस्तं मांसी यवस्तथा ।
धान्यकं शतपुष्पा च लवङ्गं सर्वतुल्यकम् ॥ ६९ ॥
सर्वचूर्णद्विगुणितां शर्करां विनियोजयेत् ।
सर्वरोगं निहन्त्याशु अम्लपित्तं सुदारुणम् ॥१७०॥
अग्निमान्द्यमजीर्णं च कामलापाण्डुरोगनुत् ।
["बलपुष्टिकरं चैव विशेषाद् शुक्रवर्द्धनम् ॥ ७१ ॥
ग्रहणीं सर्वरूपां च अतीसारं सुदुर्ज्जयम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं हन्ति लवङ्गाद्यमिदं शुभम्" ॥ ७२ ॥]

लौंग, पीपल, सोंठ, मिरच, जीरा, कालाजीरा नागकेशर, तगर, छोटी इलायची जायफल, वंशलोचन, कायफल, तेजपात, कमलगट्टा, लालचन्दन, शीतलचीनी, अगर, खस, अभ्रकभस्म, कपूर, जावित्री नागरमोथा, बालछड, इन्द्रजौ, धनियाँ और सोया इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णकी बराबर लौंगका चूर्ण सबको एकत्र मिलाकर फिर सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे । प्रथम मिश्रीको पकाकर उत्तम विधिसे चासनी बनाकर औषधियोंमें उपरोक्त औषधियोंका समस्त चूर्ण मिलाकर घी और मधुके योगसे मोदक प्रस्तुत करलेवे । ये मोदक अम्लपित्त मन्दाग्नि, अजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग, सर्वप्रकारकी ग्रहणी, अतिसार आदि रोगोंको नष्ट करतेहैं ॥ ६७–१७२ ॥

सुकुमारमोदक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं मरिचं शिवा ।
धात्री चित्रकमभ्रं च गुडूची कटुरोहिणी ॥ ७३ ॥

प्रत्येकमेषां कर्षांशं चूर्णं दन्त्यास्त्रिकार्षिकम् ।
द्विपलं त्रिवृताचूर्णं शर्करायाः पलत्रयम् ॥ ७४ ॥
मधुना मोदकं कार्य्यं सुकुमारकमोदकम् ।
वाताजीर्णप्रशमनं विष्टम्भे परमौषधम् ॥
उदावर्त्तानाहहरं सर्वाजीर्णविनाशनम् ॥ ७५ ॥

पीपल, पीपलामूल, सोंठ, मिरच, हरड, आमला, चीतेकी जड, अभ्रकभस्म, गिलोय और कुटकी प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक एक कर्ष, दन्तीकी जडका चूर्ण ३ कर्ष, निसोतका चूर्ण ८ तोले और मिश्री १२ तोले सबको एकत्र विधिपूर्वक पकाकर घी और शहदके योगसे लड्डू बनालेवे । ये सुकुमारनामवाले मोदक वात, अजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त्त, आनाह और सर्वप्रकारके अजीर्णोंमें उत्तम औषधिहै ७२-७५ ।

त्रिवृदादिमोदक ।

त्रिवृद्दन्तीकणामूलं कणा वह्निः पलं पलम् ।
सर्वतुल्याऽमृता शुण्ठी गुडेन सह मोदकम् ॥
कर्षैकं भक्षयेन्नित्यं दीप्ताग्निं कुरुते क्षणात् ॥ ७६ ॥

निसोत, दन्तीकी जड, पीपलामूल, पीपल और चीतेकी जड ये चारचार तोले एवं गिलोयका और सोंठका चूर्ण बीस २० तोले सबको एकत्र चूर्ण करके गुडके साथ मिलाकर एक एक कर्षके लड्डू बनाकर प्रतिदिन सेवन करे । ये मोदक अग्निको तत्क्षण दीपन करते हैं ॥ ७६ ॥

हरीतकीप्रयोग ।

हरीतक्याः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्विन्नं च कारयेत् ।
यत्नाद् बीजं समुद्धृत्य चूर्णानीमानि पूरयेत् ॥ ७७ ॥
षडूषणं पञ्चकटु यमानीद्वयमेव च
त्रिक्षारं हिङ्गु दिव्यं च कर्षद्वयमितं पृथक् ॥ ७८ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत् ।
लिम्पाकस्वरसेनापि भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ७९ ॥
खादयेदभयामेकां सर्वाजीर्णविनाशनम् ।
चतुर्विधमजीर्णं च वह्निमान्द्यं विषूचिकाम् ॥
गुल्मशूलादिरोगांश्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ८० ॥

बडीबडी १०० हरडोंको लेकर मट्ठेमें भिगोदेवे। जब अच्छे प्रकारसे वे फूल जाय तब उनकी गुठलियाँ निकालडाले। फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, मिरच, पाँचोंनमक, अजवायन, अजमोद, जवाखार, सज्जी, सुहागा, हींग और लौंग इन प्रत्येक औषधिके दो दो कर्ष परिमाण लेकर बारीक पीसकर भरदेवे। पश्चात् उन हरडोंको चूकेके रसमें और जम्बीरी नीम्बूके रसमें तीन तीन दिनतक भावना देवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक हरड खानेसे सर्व प्रकारका अजीर्ण दूर होता है। यह हरीतकीप्रयोग चारों प्रकारके अजीर्ण, मन्दाग्नि, विषूचिका, वायुगोला, शूल प्रभृति रोगोंको निश्चय नष्ट करता है॥ १७७-१८०॥

अमृता-हरीतकी।

तक्रे समुत्स्वेद्य शिवाशतानि तद्बीजमुद्धृत्य च कौशलेन।
षडूषणं पञ्च पटूनि हिङ्गु क्षारावजाजीमजमोदकं च॥ ८१॥
षडूषणात्त्रिवृदर्द्धभागा गणस्य देया स्वरगालितस्य।
विभाव्य चुक्रेण रजांस्यमीषां क्षिपेच्छिवाबीजनिवासगर्भे ८२
समूह्य घर्म्मे च विशोष्य तासां हरीतकीमन्यतमां निषेवेत।
अजीर्णमन्दानलजाठरामयान् सगुल्मशूलग्रहणीगुदाङ्कुरान्॥
विबन्धमानाहरुजौ जयत्यसौतथामवातांस्त्वमृताहरीतकी ८४

बडी बडी सौ हरडोंको मट्ठेमें उबालकर उनकी गुठलियोंको निकाल डाले। फिर सोंठ, पीपल, मिरच, पीपलामूल, चव्य, चीता, पाँचोंनमक, हींग, जवाखार, सज्जी, कालाजीरा और अजमोद इन सबका चूर्ण दो दो तोले एवं निसोतका चूर्ण १ तोला लेवे। इन सब औषधियोंके चूर्णको चूकेके द्वारा भावना देकर उक्त हरडोंमें भरदेवे और उनको धूपमें सुखाकर रखदेवे। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक हरड भक्षण करे तो यह अमृता-हरीतकी अजीर्ण, मन्दाग्नि, उदरविकार, गुल्मशूल, ग्रहणी, बवासीरके अंकुर, मलविबन्ध और आनाह इन समस्त रोगोंको शीघ्र दूर कर देती है॥ ८१-८४॥

शार्दूलकाञ्जिक।

पिप्पलीं शृङ्गवेरं च देवदारु सचित्रकम्।
चविकां बिल्वपेशीं च अजमोदं हरीतकीम्॥ ८५॥
महौषधं यमानीं च धान्यकं मरिचं तथा।
जीरकं चापि हिङ्गुं च काञ्जिकं साधयेद्भिषक्॥ ८६॥

पीपल, अदरख, देवदारु, चीतेकी जड, चव्य, बेलगिरी, अजमोद, हरड, सोंठ, अजवायन, धनियाँ, मिरच, जीरा ये प्रत्येक औषधि समान भाग और सम्पूर्ण चूर्णको अष्टमांश सबको अठगुनी हींग काँजी और काँजीसे चौगुने जलमें मिलाकर पकावे और जब पककर कांजीमात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे ॥८५॥८६॥

एष शार्दूलको नाम काञ्जिकोऽग्निबलप्रदः।
सिद्धार्थतैलसंभृष्टो दशरोगान् व्यपोहति ॥ ८७ ॥
कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम्।
आमं च गुल्मरोगं च वातशूलं सवेदनम् ॥ ८८ ॥
अर्शांसि श्वयथुं चैव भुक्ते पीते च सात्म्यतः।
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ८९ ॥

यह शार्दूलनामक काँजी अत्यन्त अग्निको बढानेवाली है। इसको सफेद सरसोंके तेलमें बघारकर अग्निके बलानुसार सेवन करनेसे यह खाँसी; श्वास, अतिसार, पाण्डु रोग, कामला, आम, गुल्मरोग, अत्यन्त वेदनायुक्त वातशूल, अर्श, शोथ आदि रोगोंको दूर करती है। इसको भोजन करके पान करना चाहिये ॥ ८७-८९ ॥

मुस्तकारिष्ट।

मुस्तकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणेऽम्बुनः पचेत्।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलात्रयम् ॥ १९० ॥
धातकीं षोडशपलां यमानीं विश्वभेषजम्।
मरिचं देवपुष्पं च मेथीं वह्निं च जीरकम् ॥ ९१ ॥
पलयुग्ममितं क्षिप्त्वा रुद्ध्वा भाण्डे निधापयेत्।
संस्थाप्य मासमात्रं तु ततः संस्रावयेद्भिषक् ॥ ९२ ॥
अजीर्णमग्निमान्द्यं च विषूचीमपि दारुणाम्।
ग्रहणीं विविधां हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ९३ ॥

नागरमोथा २०० पल लेकर चार द्रोण परिमाण जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उस क्वाथमें गुड ३०० पल, धायके फूल १६ पल, एवं अजवायन, सोंठ, मिरच, लौंग, मेथी; चीतेकी जड और जीरा ये प्रत्येक आठ आठ तोले एवं इन सब औषधियोंका एकत्र चूर्ण करके

मिलादेवे । पश्चात् उसको एक उत्तम मिट्टीके चिकने पात्रमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्दकरके रखदेवे । एक महीनेतक रक्खा रहनेके बाद निकालकर उसको वस्त्रमें छानलेवे । फिर इसको अग्निके बलानुसार सेवन करे तो यह मुस्तकारिष्ट अजीर्ण, मन्दाग्नि, दारुण विषूचिका, विविध प्रकारकी संग्रहणी आदि रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ १९०–९३ ॥

चित्रकगुड ।

नासारोगे विधातव्या या चित्रकहरीतकी ।
विना धात्रीरसं सोऽस्मिन् प्रोक्तश्चित्रगुडोऽग्निदः ॥९४॥

नासारोगमें जो चित्रक हरीतकी नामक औषधि कहीगई है । उसमें यदि आमलोंका रस न डाला जाय तो वह ही चित्रकगुड होजाता है ऐसा आयुर्वेदाचार्योंने कहा है । यह चित्रकगुड अत्यन्त अग्निप्रदीपक हैं ॥ ९४ ॥

क्षारगुड ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलामर्कमूलं शतावरीम् ।
दन्तीं चित्रकमास्फोतां रास्नां पाठां सुधां शठीम् ॥९५॥
पृथग् दशपलान् भागान् दग्ध्वा भस्म समावपेत ।
त्रिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणे च गालयेत् ॥ ९६ ॥
तद्रसं साधयेदग्नौ चतुर्भागावशेषितम ।
ततो गुडतुलां दत्त्वा साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ९७ ॥
सिद्धं गुडं तु विज्ञाय चूर्णानीमानि दापयेत् ।
वृश्चिकाली द्विकाकोल्यौ यवक्षारं समावपेत् ॥ ९८ ॥
एते पंचपला भागाः पृथक् पञ्च पलानि च ।
हरीतकीं त्रिकटुकं स्वर्ज्जिकां चित्रकं वचाम् ॥ ९९ ॥
हिंग्वम्लवेतसाभ्यां च द्वे पले तत्र दापयेत् ।
अक्षप्रमाणां गुटिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम् ॥ २०० ॥

दशमूल, त्रिफला, आककी जड शतावर, दन्तीकी जड, चीतेकी जड, विष्णुक्रान्ता, रास्ना, पाढ, थूहरकी जड और कचूर ये प्रत्येक औषधि चालीस चालीस तोले लेकर अग्निमें जलाकर भस्म करलेवे। फिर उस भस्मको एक द्रोण जलमें मिलाकर २१ बार छाने पश्चात् उसको मन्दमन्द अग्निसे पकावे

जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें गुड सौ पल डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब गुड अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसमें विछाटी, काकोली, क्षीरकाकोली और जवाखार इन प्रत्येकका चूर्ण वीस तोले एवं हरड, त्रिकुटा, सज्जी, चीता और वच इन औषधियोंका चूर्ण समान भाग मिश्रित २० तोले, हींग और अम्लवेतका चूर्ण आठ आठ तोले मिलाकर सबको एकमएक करदेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक तोलेकी गोली बनाकर अग्निके बलानुसार भक्षण करे॥ १९९–२००॥

अजीर्णं जरयत्येष जीर्णे सन्दीपयत्यपि।
भुक्तं भुक्तं च जीर्य्येत पाण्डुत्वमपकर्षति॥ २०१॥
प्लीहार्शः श्वयथुं चैव श्लेष्मकासमरोचकम्।
मन्दाग्निविषमाग्नीनां कफे कण्ठोरसि स्थिते॥ २०२॥
कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मं चाशु व्यपोहति।
ख्यातः क्षारगुडो ह्येष रोगयुक्ते प्रयोजयेत्॥ २०३॥

यह क्षारगुड अजीर्णको जीर्ण करनेवाला और अग्निको दीपन करनेवाला है। भोजनको खाते २ ही पचादेता है तथा पाण्डुरोग, प्लीहा, बवासीर, सूजन, कफ, खाँसी, अरुचि, मन्दाग्नि, विषमाग्नि, कण्ठ और हृदयमें स्थित कफ, कुष्ठ, प्रमेह और गुल्म इन सब रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। यह क्षारगुडनामसे प्रसिद्ध गुड विविधप्रकारके रोगोंसे युक्त मनुष्यके लिये सेवन कराना चाहिये॥२०१–२०३॥

मस्तुषट्पलघृत।

पलिकैः पञ्चकोलैस्तु घृतं मस्तु चतुर्गुणम्।
सक्षारैः सिद्धमल्पाग्निं कफगुल्मं विनाशयेत्॥ २०४॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इन प्रत्येकके चार चार तोले प्रमाण कल्कके साथ एक प्रस्थ घी और चार प्रस्थ दही मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत मन्दाग्नि, कफ और गुल्मरोगको दूर करता है॥ २०४॥

अग्निघृत।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली।
हिङ्गुचव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च॥ २०५॥

द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मितान् ।
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ॥
आर्द्रकस्वरसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २०६ ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पाँचोंनमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, एवं दही, काँजी, सिरका, अदरखका रस और घी ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ।
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम् ॥ २०७ ॥
ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोऽनिलानपि ।
नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ २०८ ॥
ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः ।
सर्वांस्तान् नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ २०९ ॥

यह अग्निघृत मन्दाग्निवाले मनुष्योंके लिये अत्यन्त हितकारी है। सर्वप्रकारकी बवासीर, गुल्म, उदररोग, ग्रन्थिआदि दुस्तररोग तथा जो वस्तिगत और जो कुक्षिगत रोग हैं उन सबको यह घृत इस प्रकार तत्काल नष्ट करदेता है जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्क्षण नष्ट करदेता है ॥ २०७–२०९ ॥

बृहदग्निघृत ।

भल्लातकसहस्रार्द्धं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशेषं च कषायमवतारयेत् ॥ २१० ॥
घृतप्रस्थं समादाय कल्कानीमानि दापयेत् ।
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ११ ॥
हिङ्गुचव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च ।
द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मितान् ॥ १२ ॥
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ।
आर्द्रकस्वरसं चैव शोभाञ्जनरसं तथा ॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १३ ॥

पाँच सौ भिलावोंको लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस क्वाथमें घी १ प्रस्थ और

सोंठ, पीपल, मिरच, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर इन समस्त औषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं दही, काँजी, सिरका अदरखका रस और सहिंजनेका रस ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेकर सबको एकत्र करके मन्दमन्द अग्निसे विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे ॥ २१०–२१३ ॥

एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ १४ ॥
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवातानुलोमनम् ।
कफवातोद्भवे गुल्मे श्लीपदे च दकं दरे ॥ १५ ॥
शोथं पाण्डुामयं कासं ग्रहणीं श्वासमेव च ।
एतान् विनाशयत्याशु तमः सूर्य इवोदितः ॥ १६ ॥
श्लैष्मिके वमनं पूर्वं पैत्तिके मृदु रेचनम् ।

यह बृहदग्निनामक घृत मन्दाग्निवाले रोगियोंको विशेष उपयोगी है एवं अर्शको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम, मूढवायुका अनुलोमन करनेवाला तथा कफ–वातजन्य गुल्म, श्लीपद, जलोदर, शोथ, पाण्डुरोग, खाँसी, ग्रहणी और श्वास इन सम्पूर्ण विकारोंको जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्क्षण नष्ट करदेताहै उसीप्रकार दूर करता है ॥ २१४–१६ ॥

अग्निमान्द्यरोगमें पथ्य ।

वातिके स्वेदनं चाथ यथावस्थं हितं च यत् ॥ १७ ॥
नानाप्रकारो व्यायामो दीपनानि लघूनि च ।
बहुकालसमुत्पन्नाः सूक्ष्मा लोहितशालयः ॥ १८ ॥
विलेपी लाजमण्डश्च मण्डो मुद्गरसः सुरा ।
एणो बर्ही शशो लावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः ॥ १९ ॥
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं वास्तुकं बालमूलकम् ।
लशुनं वृद्धकूष्माण्डं नवीनकदलीफलम् ॥ २२० ॥
शोभाञ्जनं पटोलं च वार्त्ताकुं नलदम्बु च ।
कर्कोटकं कारवेल्लं बार्हतं च महार्द्रकम् ॥ २१ ॥
प्रसारणी मेषशृङ्गी चाङ्गेरी सुनिषण्णकम् ।
धात्रीफलं नागरङ्गं दाडिमं यवपर्पटाः ॥ २२ ॥

अम्लवेतसजम्बीरमातुलुङ्गानि माक्षिकम् ।
नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुषोदके ॥ २३ ॥
धान्याम्लं कटुतैलं च रामठं लवणार्द्रकम् ।
यमानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥ २४ ॥
ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि ।
मन्दानलेऽप्यजीर्णेऽपि पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ २५ ॥

रोगीकी अवस्थाको यथाविधि विचारकर कफजन्य अजीर्णमें प्रथम वमन, पित्तके अजीर्णमें प्रथम मृदु विरेचन और वातके अजीर्णमें प्रथम स्वेद देना आदि क्रियायें हितकर हैं एवं विविध प्रकारकी व्यायाम (दण्ड कसरत आदि परिश्रम) अग्नि-प्रदीपक और लघुपाकी पदार्थ, बहुत पुराने और बारीक लाल शालिधानोंके चावल, विलेपी एवं खीलोंका माँड, भातका माँड मूँगका यूष, मद्य तथा हिरन, मोर, खरगोश, लवापक्षी इस सबका मांसरस, सर्व प्रकारकी छोटी २ मछलियाँ, शान्ति-शाक, बेतके अंकुर, बथुएका शाक, कच्चीमूली, लहसुन, पक्का पेठा, कच्ची केलेकी फली, सहिंजनेकी फली, परवल, बैंगन, नीम, ककोडा, करेला, बडी कटेरीके फल, अदरख, गन्धप्रसारिणी, मेढासिंगी, नोनिया, चौपतिया शाक, आमला, नारंगी, अनार, जौका मांड पित्तपापडा, अम्लवेत, जम्बीरी नींबू, बिजौरा नींबू, शहद, मक्खन, घी मट्ठा, सौविरनामवाली कांजी, तुषोदक और धान्याम्लनामक काँजी, सरसोंका तेल, हींग, सैंधानामक और अदरख, अजवायन, मिरच, मेथी, धनियाँ, जीरा, दही, पान, गरम जल एवं चरपरे और कडुवे रसवाले पदार्थ ये मन्दाग्नि और अजीर्णरोगमें पथ्य हैं ॥ १७–२२५ ॥

अग्निमान्द्यरोगमें अपथ्य ।

विरेचनानि विण्मूत्रवायुवेगविधारणम् ।
अध्यशनं समशनं जागरं विषमाशनम् ॥ २२६ ॥
रक्तस्रुतिं शमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम् ।
जलपानं पिष्टकं च जाम्बवं सवमालुकम् ॥ २२७ ॥
कूर्च्चिकां मोरटं क्षीरं किलाटं च प्रपाणकम् ।
तालास्थिसस्यं तद्वालं स्नेहनं दुष्टवारि च ॥ २२८ ॥
विरुद्धासात्म्यपानान्नं विष्टम्भीनि गुरुणि च ।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्ज्जयेत् ॥ २२९ ॥

विरेचन, मल-मूत्र और अधोवायुके वेगको रोकना, भोजनपर भोजन करना, अपथ्य पदार्थोंका भोजन, रातको जागना, विषमभोजन, रक्तमोक्षण, सब प्रकारके दो दलवाले अन्न, मछली, मांस, पोईका शाक, अधिक जलपान, पिष्टक, जामुन, सर्व प्रकारके आलू आदि कन्द, फटा हुआ दूध, खीस, मद्य अधिक शरबत व पन्ना (मिष्टान्न पकवान आदि), ताडके फलकी गुठलीकी मींग, घी-तैलादि स्नेहपदार्थ, दूषितजल, स्वभावविरुद्ध व प्रकृतिविरुद्ध और असात्म्य अन्नपान विष्टम्भकारक और गुरुपाकी पदार्थ समस्त मन्दाग्नि और अजीर्णरोगमें सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ २२६-२२९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् अग्निमान्द्यचिकित्सा ।

कृमिरोग-चिकित्सा ।

पारसीययमानीं पीत्वा पर्युषितवारिणा प्रातः ।
गुडपूर्वां कृमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ १ ॥

प्रातःकालमें खुरासानी अजवायनके चूर्ण किंचित् गुड मिलाकर बासी जलके साथ पीनेसे मलके साथ कोष्ठगत कृमि तत्काल निकल जाते हैं ॥ १ ॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
केबूकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथवा पुनः ॥

फरहदके पत्तोंके रसको वा केउआँके अथवा पतङ्गके पत्तोंके रसको शहद मिलाकर पान करनेसे सब प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं ॥

लिह्यात् क्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिहरं परम् ॥ २ ॥

वायविडंगके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे यह चूर्ण सब प्रकारके कृमिको नष्ट करता है ॥ २ ॥

मुस्ताखुकर्णीफलशिग्रुदारुक्काथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् क्रिमीन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान् ॥

नागरमोथा, मूसाकानी, हरड, आमला, बहेडा, सहिंजनेकी छाल और देवदारु इनके क्काथमें पीपलका चूर्ण और वायविडङ्गका चूर्ण डालकर पान करनेसे ऊर्ध्व और अधः इन दोनों मार्गोंसे निकलनेवाले बहुत दिनोंके कृमि तथा कृमिजन्य अन्यान्य उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम्।
पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण कृमिनाशनम्॥ ४॥

ढाकके बीजोंके स्वरसको शहदके साथ मिलाकर पीनेसे अथवा ढाकके बीजोंके चूर्णको मट्ठेके साथ सेवन करनेसे कृमि नष्ट होते हैं॥ ४॥

क्वाथं खर्ज्जूरपत्राणां सक्षौद्रमुषितं निशि।
पीत्वा निवारयत्याशु कृमिसङ्घमशेषतः॥ ५॥

खजूरके पत्तोंके बासी क्वाथको शहद मिलाकर पान करनेसे सर्व प्रकारके कृमि तत्काल नष्ट होते हैं॥ ५॥

अपक्वं क्रमुकं पिष्टं पीतं जम्बीरजे रसैः।
निहन्ति विड्भवं कीटं रसः खर्ज्जूरजम्बयोः॥ ६॥

कच्ची सुपारीको जलमें पीसकर जम्बीरी नींबूके रसके साथ अथवा खजूरके पत्तोंका रस और जामुनके पत्तोंका रस मिलाकर पान करनेसे मलमें उत्पन्न हुए कृमि निश्चय नष्ट होते हैं॥ ६॥

पिबेत्तुम्बीबीजचूर्णं तक्रेण कृमिनाशनम्॥ ७॥

कड़ुवीतोंबीके बीजोंके चूर्णको मट्ठेके साथ सेवन करनेसे कृमि दूर होते हैं॥ ७॥

नारिकेलजलं पीतं सक्षौद्रं कृमिनाशनम्॥ ८॥

नारियलके जलमें शहद डालकर पान करनेसे कृमि नष्ट होते हैं॥ ८॥

विडङ्गपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेन च।
तक्रसिद्धा यवागूः स्यात् कृमिघ्नी ससुवर्च्चिका॥
पीतं बिम्बीघृतं हन्ति पक्वामाशयगान्कृमीन्॥ ९॥

वायविडङ्ग, पीपलामूल, सहिंजनके बीज और कालीमिरच इन सबके चूर्णके साथ मट्ठेमें यवागू सिद्ध करके उसमें सज्जीका चूर्ण डालकर पान करनेसे अथवा बिम्बी (कंदूरी) के द्वारा सिद्ध किये हुए घीको सेवन करनेसे आमाशय और पक्वाशयगत कृमि नष्ट होते हैं॥ ९॥

यमानीं लवणोपेतां भक्षयेत कल्य उत्थितः।
अजीर्णमामवातं च कृमिजांश्च जयेद्गदान्॥ १०॥

प्रातःकालमें अजवायन, सैंधानमक दोनोंको एकत्र पीसकर भक्षण करनेसें अजीर्ण आमवात और कृमि तथा कृमिजन्य अन्यान्य सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं॥ १०॥

पलाशबीजेन्द्रविडङ्गनिम्बभूनिम्बचूर्णं सगुडं लिहेद्यः।
दिनत्रयेण क्रिमयःपतन्ति पलाशबीजेन यमानिकां वा ॥११॥

ढाकके बीज, इन्द्रजौ, वायविडङ्ग, नीमकी छाल और चिरायता इन सबके चूर्णको समान भाग लेकर गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा ढाकके बीज और अजवायनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कृमि तीन दिनमें नष्ट होकर गिरजाते हैं ॥ ११ ॥

पेषयेदारनालेन नाडीचस्य फलानि च।
यूकालिख्याःप्रशान्त्यर्थं दद्याल्लेपं तु मस्तके ॥ १२ ॥

जुओं और लीखोंको नष्ट करनेके लिये नाडीके शाकके फलोंको काँजीके साथ पीसकर सिरपर लेप करे ॥ १२ ॥

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धुत्तूरपत्रजः।
ताम्बूलपत्रजो वापि लेपाद्यूकाविनाशनः ॥ १३ ॥

पारेको धतूरेके पत्तोंके रस अथवा पानके रसमें खरल करके मस्तकपर लेप करनेसे शिरकी सब जुयें नष्ट होजाती हैं ॥ १३ ॥

आखुकर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूपिकाम्।
जग्ध्वा सौवीरकं चानु पिबेत्कृमिहरं परम् ॥ १४ ॥

मूसाकानीके पत्तोंके रससे जौ अथवा चावलोंके चूर्णको मलकर पूए बनाकर खाय और ऊपरसे काँजी पीवे तो कृमिरोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत्।
विडङ्गसैन्धवक्षारकम्पिल्लकहरीतकीः ॥
पिबेत्तक्रेण सम्पिष्य सर्वक्रिमिनिवृत्तये ॥ १५ ॥

सुरसादिगणकी औषधियोंका कल्क वा क्वाथ सेवन करनेसे अथवा वायविडङ्ग सेंधानमक, जवाखार, कबीला और हरड इन सब औषधि समान भाग लेकर और सबका एकत्र चूर्ण करके मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कृमि नष्ट होते हैं १५

पारसीयादिचूर्ण।

पारसीयायमानिका च घनकणाशृङ्गीविडङ्गारुणा-
चूर्णं श्लक्ष्णतरं विलीढमपि तत्क्षौद्रेण संयोजितम्।
कासं नाशयति ज्वरं च जयति प्रौढातिसारं जये-
च्छर्दिं मर्दयति क्रिमिं तु नियतं कोष्ठस्थमुन्मूलयेत् ॥१६॥

खुरासानी अजवायन, नागरमोथा, पीपल, काकडासिंगी, वायविडङ्ग और अतीस इन औषधियोंका बारीक चूर्ण समान भाग लेकर शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे खाँसी, ज्वर, पुराना अतिसार, वमनका होना और कोष्ठगत कृमि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

कृमिकालानल रस ।

विडङ्गं द्विपलं चैव विषचूर्णं तदर्द्धकम् ।
लौहचूर्णं तदर्द्धं च तदर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ १७ ॥
रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेत्षोडशरक्तिकाम् ॥ १८ ॥
धान्यजीरानुपानेन नाम्ना कालानलो रसः ।
उदरस्थं कृमिं हन्याद् ग्रहण्यर्शःसमन्वितम् ॥ १९ ॥
अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान् जयेत ।
गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे ॥ २० ॥

वायविडङ्ग ८ तोले, शुद्ध मीठा तेलिया ४ तोले, लोहभस्म २ तोले, शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध आमलासार गन्धक १ तोला इन सब औषधियोंको एकत्र मिलाकर बकरीके दूधमें खरल करे। फिर छायामें सुखाकर सोलह सोलह रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे, इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊपरसे धनिये और जीरेके क्वाथको पीवे तो यह कृमिकालानलनामक रस उदरस्थ कृमि, संग्रहणी, बवासीर, सूजन, वायगोला, तिल्ली और उदररोग इन सबको नष्ट करता है और पाचकाग्निको बढाता है। इस प्रयोगको महाराज गहनानन्दनाथने सांसारिक मनुष्यों के हितके लिये कहा है ॥ १७–२० ॥

कृमिधूलिजलप्लव रस ।

पारदं गन्धकं शुद्धं वङ्गं शङ्खं समं समम् ।
चतुर्णां योजयेत्तुल्यं पथ्याचूर्णं भिषग्वरः ॥ २१ ॥
दण्डयन्त्रेण निर्मथ्य पटोलस्य रसं क्षिपेत् ।
कार्पासबीजसदृशीं वटिकां कुरु यत्नतः ॥ २२ ॥
त्रिवटीं भक्षयेत्प्रातः शीततोयं पिबेदनु ।
केवलं पैत्तिके योज्यः कदाचिद्वातपैत्तिके ॥
श्रीमद्गहननाथोक्तः कृमिधूलिजलप्लवः ॥ २३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धग, वङ्ग और शंखभस्म ये चारों समान भाग और हरडका चूर्ण चौगुना सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके उसमें पटोलपातके स्वरसको डालकर अच्छे प्रकारसे खरल करे और बिनौलोंके बराबर गोलियाँ बनालेवे, फिर प्रतिदिन प्रातःकाल तीन तीन गोली खाकर ऊपरसे शीतल जल पान करे। इस रसको केवल पित्तजनित रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये और कभी वात-पित्तजनित रोगोंमें भी देवे। इस कृमिधूलिजलप्लवरसको श्रीमद्गहनानन्दनाथने कहा है ॥ २१-२३ ॥

कृमिकाष्ठानल रस ।

विशुद्धं पारदं गन्धं वङ्गं तालं वराटकम् ।
मनःशिला कृष्णकाचं सोमराजीविडङ्गकम् ॥ २४ ॥
दन्तीबीजं च जैपालं शिलाटङ्कणचित्रकम् ।
कर्षमात्रं तु प्रत्येकं वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ २५ ॥
कलायसदृशीं कृत्वा वटिकां भक्षयेत्ततः ।
कृमिकाष्ठानलो नाम रसोऽयं परिनिर्मितः ॥
श्लैष्मिके श्लेष्मपित्ते च श्लेष्मवाते च शस्यते ॥ २६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वङ्गभस्म, हरतालभस्म, कौडीकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, काला काँच, बावची, वायविडङ्ग, दन्तीके बीज, जमालगोटा, शुद्ध मैनसिल, सुहागा और चीता इन सबको एक एक कर्ष लेकर थूहरके दूधमें अच्छे प्रकारसे खरल कर मटरकी बराबर गोलियाँ बनाकर नित्यप्रति प्रातःसमय एक एक गोली सेवन करे। इस कृमिकाष्ठानलनामक रस कफ और पित्त एवं कफ और वातके रोगोंमें विशेष हितकारी है ॥ २४-२६ ॥

लाक्षादिवर्ती ।

लाक्षाभल्लातश्रीवासश्वेतापराजिताशिफाः ।
अर्जुनस्य फलं पुष्पं विडङ्गमजगुग्गुलुः ॥ २७ ॥
एभिः कीटाश्च शाम्यन्ते तिष्ठन्तोऽपि गृहे सदा ।
भुजङ्गा मूषिका दंशाः सङ्कनामा मतङ्गजाः ॥
दूरादेव पलायन्ते किं न कीटाश्च ये पराः ॥ २८ ॥

लाख, भिलावे, सरलका गोंद, सफेद कोयलकी जड, अर्जुनके फल और फूल, वायविडंग और गूगल इन सब औषधियोंको समान भाग ले एकत्र खरल करके

गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक करके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं और ये गोलियाँ जिस घरमें सदैव रहती हैं वहाँ सर्प, चूहे, डाँस संघनामवाले कृमि, मतङ्गज आदि अनेक प्रकारके कृमि दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

कृमिमुद्गर रस।

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदा विडङ्गं विषमुष्टिका च।
पलाशबीजं च विचूर्णमस्य निष्कप्रमाणं मधुनाऽवलीढम्॥२९॥
पिबेत्कषायं घनजं तदूर्ध्वं रसोऽयमुक्तः कृमिमुद्गराख्यः।
कृमीन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान्सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात्॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडंग ४ तोले, शुद्ध कुचला ५ तोले और ढाकके बीज ६ तोले इन सब औषधियोंका एकत्र चूर्ण करके जलके साथ खरलकर चार चार मासेकी मात्रा प्रतिदिन प्रातःकाल शहदके साथ खाय और ऊपरसे नागरमोथेका क्वाथ पान करे तो यह कृमिमुद्गरनामक रस तीन दिनमें ही सर्व प्रकारके कृमिरोग एवं कृमियोंसे उत्पन्नहुए अनेक विकारोंको दूर करता है और पाचकाग्निको दीपन करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

कीटारिरस।

शुद्धसूतं चेन्द्रयवं चाजमोदा मनःशिला।
पलाशबीजं गन्धं च देवदाल्या द्रवैर्दिनम्॥ ३१ ॥
संमर्द्य भक्षयेन्नित्यं मुद्गपर्णीरसैः सह।
सितायुक्तं पिबेच्चानु कृमिपातो भवत्यलम्॥ ३२ ॥

शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोद, शुद्ध मैनसिल, ढाकके बीज और शुद्ध गन्धक इन सबको बराबर २ भाग लेकर बंदालके रसमें एकदिनतक खरल करे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे नित्यप्राति प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊपरसे मुद्गपर्णी वनमूँगका क्वाथ मिश्री डालकर पान करनेसे सब प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

कीटमर्दरस।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धमजमोदा विडङ्गकम्।
विषमुष्टिर्ब्रह्मबीजं यथाक्रमगुणोत्तरम्॥ ३३ ॥
चूर्णयेन्मधुना मिश्रं निष्कैकं कृमिजिद्भवेत्।
कीटमर्दो रसो नाम मुस्ताक्वाथं पिबेदनु॥ ३४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक दो तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडङ्ग ४ तोले शुद्ध कुचला ५ तोले और ढाकके बीज ६ तोले इन सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार मासेकी मात्रासे शहदमें मिलाकर खाय और ऊपरसे नागरमोथेका क्वाथ पीवे तो यह कीटमर्दनामक रस कृमिरोगको दूर करता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कृमिघातिनी गुटिका।

रसगन्धाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः।
एकद्वित्रिचतुःपंच तिन्दोर्बीजस्य षट् क्रमात् ॥ ३५ ॥
सञ्चूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिघातिनीम्।
खादन् पिपासुस्तोयं च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥
आखुकर्णीकषायं वा प्रपिबेच्छर्करान्वितम् ॥ ३६ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडङ्ग ४ तोले ढाकके बीज ५ तोले और तेंदूके बीज ६ तोले लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके शहदके साथ खरलकर डेढ डेढ मासेकी मात्रासे कृमिरोगको नष्ट करनेके लिये प्रतिदिन प्रातःकाल शहदके साथ सेवन करे अथवा इसकी गोली बनाकर शहदमें मिलाकर और प्यास लगनेपर नागरमोथेके क्वाथ अथवा मूसाकनीका क्वाथ मिश्री मिलाकर पीवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कृमिविनाशरस।

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लौहं मनःशिला।
धातकी त्रिफला लोध्रं विडङ्गं रजनीद्वयम् ॥ ३७ ॥
भावयेत्सप्तधा सर्वं शृङ्गवेरभवै रसैः।
चणमात्रां वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम् ॥ ३८ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कृमिरोगोपशान्तये।
वातिकं पैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकं च त्रिदोषजम् ॥
कृमिविनाशनामाऽयं कृमिरोगकुलान्तकः ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध मैनसिल, धायके फूल, त्रिफला, लोध, वायविडङ्ग, हलदी और, दारुहलदी, इन सब औषधियोंको बराबर २ भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके अदरखके रसमें सातवार भावना देकर चनेकी

बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे नित्यप्रति प्रातःकाल एक एक गोली त्रिफलेके काथके साथ सेवन करे तो यह कृमिविनाश नामक रस वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषसे उत्पन्नहुए सब प्रकारके कृमिरोगको समूल नष्ट करता है ॥ ३७–३९ ॥

कृमिहररस ।

शुद्धसूतमिन्द्रयवमजमोदा मनःशिला ।
पलाशबीजं गन्धं च देवदाल्याद्रवैर्दिनम् ॥ ४० ॥
संमर्द्य भक्षयेन्नित्यं शालपर्णीरसैः सह ।
सितायुक्तं पिबेच्चानु कृमिपातो भवत्यलम् ॥ ४१ ॥

शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोद, शुद्ध मैनसिल, ढाकके बीज और शुद्ध गन्धक इन सब औषधियोंको बराबर भाग लेकर बंदालके रसमें एक दिनतक अच्छेप्रकारसे खरल करके १–१ रत्तीकी गोलियाँ बनकर नित्यप्रति एक एक गोली खाय और ऊपरसे शालपर्णीके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करे, तो सब प्रकारके कृमि गिरजाते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

कृमिरोगारिरस ।

सूतं गन्धं मृतं लोहं मरिचं विषमेव च ।
धातकी त्रिफला शुण्ठी विडङ्गं रसाञ्जनम् ॥ ४२ ॥
त्रिकटुमुस्तकं पाठा बालकं बिल्वमेव च
भावयेत्सर्वमेकत्र स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः ॥ ४३ ॥
वराटिकाप्रमाणेन भक्षणीयो विशेषतः ।
कृमिरोगारिनामाऽयं रसो वै कृमिनाशनः ॥ ४४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, कालीमिरच, शुद्ध मीठा तेलिया, धायके फूल, त्रिफला सोंठ, वायविडङ्ग, रसौंत, त्रिकुटा, नागरमोथा, पाढ, सुगन्धवाला और बेलगिरी इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके भाँगरेके स्वरसमें खरल करे । फिर कौडीकी बराबर गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे । यह कृमिरोगारिनामक रस विशेषकर कृमिरोग नाशक है ॥ ४२–४४ ॥

कृमिघ्नरस ।

कृमिघ्नं किंशुकारिष्टबीजं सुरसभस्मकम् ।
वल्लद्वयं चाखुकर्णीरसैः कृमिविनाशनम् ॥ ४५ ॥

वायविडंग, ढाकके बीज, नीमके बीज और रससिन्दूर इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर मूसाकानीके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे कृमिरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

विडंगलौह।

रसं गन्धं च मरिचं जातीफललवङ्गकम्।
शुण्ठी टङ्कं कणा तालं प्रत्येकं भागसम्मितम् ॥ ४६ ॥
सर्वचूर्णसमं लौहं विडङ्गं सर्वतुल्यकम्।
लौहं विडङ्गकं नामकोष्ठस्थकृमिनाशनम् ॥ ४७ ॥
दुर्नाममरुचिं चैव मन्दाग्निं च विषूचिकाम्।
शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां श्वासं कासं विनाशयेत् ॥ ४८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मिरच, जायफल, लौंग, सोंठ, सुहागा, पीपल और हरताल ये सब समान भाग और सबके बराबर लोहभस्म एवं लोहभस्म सहित सम्पूर्ण औषधियोंकी बराबर वायविडंगका चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र खरल करलेवे। इस विडंगलोहनामक चूर्णको प्रतिदिन सेवन करनेसे कोष्ठगत कृमि, बवासीर, अरुचि, मन्दाग्नि, विषूचिका, शोथ, शूल, ज्वर, हिचकी, श्वास और खांसी आदि सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४६–४८ ॥

हरिद्राखण्ड।

स्वरस पारिभद्रस्य प्रस्थमादाय यत्नतः।
तदर्द्धं च सितां दत्त्वा घृतं कुडवसम्मितम् ॥ ४९ ॥
प्रस्थार्द्धं रजनीचूर्णं दत्त्वा पाकं समाचरेत्।
यदा दर्वीप्रलेपः स्यात्तदेषां चूर्णमाक्षिपेत् ॥ ५० ॥
चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं कृष्णजीरकम्।
यमानीद्वयसिन्धूत्थं निर्गुण्डीफलमेव च ॥ ५१ ॥
पाठाविडङ्गकं चैव शारिवाद्वयवासकौ।
पलाशबीजं व्योषं च त्रिवृद्दन्ती सरेणुका ॥ ५२ ॥
अरिष्टं सोमराजी च प्रत्येकं तु द्विकार्षिकम्।
ततो माषाष्टकं खादेत्तोयं चानु पिबेन्नरः ॥ ५३ ॥

फरहदका स्वरस १ प्रस्थ (६४ तोले), मिश्री आधा प्रस्थ (३२ तोले), घृत १ कुडव (१६ तोले) और हल्दीका चूर्ण ३२ तोले लेवे। इन सबको एकत्र

मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे, जब वह करछीसे लगने लगे तब उतारकर उसमें चीतेकी जड, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, कालाजीरा, अजवायन, अजमोद सेंधानमक, निर्गुण्डीके फल, पाढ, वायविडंग, अनन्तमूल, जवासा, अडूसा, ढाकके बीज, सोंठ, मिरच, पीपल, निसोत, दन्तीकी जड, रेणुका, नीमकी छाल और बावची ये प्रत्येक औषधि दो दो कर्ष लेकर चूर्ण करके मिलादेवे। फिर इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल आठ आठ मासे परिमाण शीतल जलके साथ सेवन करे ॥ ४९–५३ ॥

कृमींश्च विंशतिविधान् नाशयेन्नात्र संशयः ।
दुष्टव्रणं च कुष्ठं च नाडीव्रणभगन्दरम् ॥ ५४ ॥
शीतपित्तं विद्रधिं च दद्रु चर्मदलं तथा ।
अजीर्णं कामलां गुल्मं श्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ५५ ॥
बलपुष्टिकरो ह्येष वलीपलितनाशनः ।
हरिद्राखण्डनामाऽयं सर्वव्याधिनिषूदनः ॥
व्रणिनां हितकामो हि प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ५६ ॥

यह हरिद्राखंड नामक बीसों प्रकारके कृमिरोग, दुष्टव्रण, कोढ, नासूर, भगन्दर, शीतपित्त, विद्रधि, दाद, चर्म्मदल, अजीर्ण, कामला, गुल्म, शोथ, असमयमें शरीरपर वलियोंका पडना तथा बालोंका पकना और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको समूल नष्ट करता है। एवं शरीरकी पुष्टि और बलकी वृद्धि करता है। यह योग विशेषकर सर्वप्रकारके व्रणोंको दूर करनेवाला है। इसको श्रीनागार्जुनमुनिने वर्णन किया है ॥ ५४–५६ ॥

त्रिफलाद्यघृत ।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा कम्पिल्लकं तथा ।
सिद्धमेभिर्गवां मूत्रैः सर्पिः कृमिविनाशनम् ॥ ५७ ॥

त्रिफला, निसोत, दन्तीकी जडकी छाल, वच और कबीला इन सब औषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्क और गोमूत्रके द्वारा यथाविधिसे सिद्ध कियाहुआ घृतको पान करे। यह घृत कृमिरोगको नष्ट करता है ५७ ॥

विडङ्गघृत ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडङ्गप्रस्थ एव च ।
दीपनं दशमूलं च लाभतः समुपाहरेत ॥ ५८ ॥

पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत्।
प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम्॥ ५९॥
विडङ्गघृतमेतद्धि लेह्यं शर्करया सह।
सर्वान्कृमीन् प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान्॥ ६०॥

त्रिफला ३ प्रस्थ (१९२ तोले), वायविडङ्ग १ प्रस्थ (६४ तोले), एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ ये सब समानभाग मिलेहुए १ प्रस्थ और दशमूलकी औषधियाँ एक प्रस्थ (६४ तोले) लेवे। सबको एकत्र मिलाकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें घृत १ प्रस्थ और सेंधेनमकका चूर्ण १ प्रस्थ डालकर पकावे। इस घृतको छः छः मासे प्रमाण लेकर मिश्रीके साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे यह विडङ्गघृत सम्पूर्ण कृमिरोगोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे इन्द्रका वज्र असुरोंको॥ ५८-६०॥

विडङ्गतैल।

सविडङ्गगन्धकशिलासिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम्।
आजन्म नयति नाशं लिख्यासहितांश्च यूकांश्च॥ ६१॥

वायविडङ्ग, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मैनसिल इन तीनोंके कल्क और गोमूत्रके द्वारा सरसोंके तेलको पकावे। यह तैल-शिरपर मालिश करनेसे लीखों जुएँ आदि सब प्रकारके शिरके कृमियोंको समूल नष्ट करता है॥ ६१॥

धुस्तूरतैल।

धुस्तूरपत्रकल्केन तद्रसेन च साधितम्।
तैलमभ्यङ्गमात्रेण यूकान्नाशयति ध्रुवम्॥ ६२॥

धतूरेके पत्तोंके कल्क और स्वरसके साथ यथाविधि सरसोंके तैलको सिद्ध करके शिरमें लगानेसे जुएं और लीखें नष्ट होती हैं॥ ६२॥

कृमिरोगमें पथ्य।

आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमः कफघ्नानि शरीर-
मार्जना। चिरन्तना वैणवरक्तशालयः पटोलवेत्राग्र-
रसोनवास्तुकम्॥ ६३॥ हुताशमन्दारदलानि सर्षपं
नवीनमोचं बृहतीफलान्यपि। तिक्तानि नालीच
दलानि मौषिकं मांसं विडङ्गं पिचुमर्दपल्लवम्॥ ६४॥

पथ्या च तैलं तिलसर्षपोद्भवं सौवीरशुक्तं च तुषोदकं मधु । पचेलिमं तालमरुष्करं गवां मूत्रं च ताम्बूलसुरामृगाण्डजम् ॥६५॥ उष्ट्रस्य मूत्राज्यपयांसि रामठं क्षाराजमोदा खदिरं च वत्सकम् । जम्बीरनीरं सुषवी यमानिका साराःसुराह्वागुरुशिंशपोद्भवाः । तिक्तः कषायः कटुको रसोऽप्ययं वर्गो नराणां कृमिरोगिणां सुखः ॥६६॥

आस्थापन बस्ति (पिचकारी) देना, कायविरेचन (जुल्लाब) और शिरोविरेचन (नस्य) देना, कफनाशकपदार्थोंका धूम्रपान कराना, शरीरको मार्जन करना या उबटन करना, बाँसके और लालशालिधानोंके पुराने चावल, परवल, बेंतके अंकुर, लहसुन, बथुआ, चीतेके पत्तोंका शाक, आकके पत्ते, सरसोंके पत्ते, नवीन केलेका मोचा, बडी कटेरीके फल, डवे पदार्थ, नाडीका शाक, चूहेका मांस, वायविडंग, नीमके पत्ते, हरड, तिल और सरसोंका तैल सौवीरनामक काँजी, सिरका, तुषोदकनामक काँजी, शहद, पके ताडके फल, भिलावे, गोमूत्र, पान, मदिरा, कस्तूरी, ऊँटका मूत्र, घी, दूध, हींग, जवाखार, अजमोद, खैर, इन्द्रजौ, जम्बीरीनींबूका रस, करेले, अजवायन, देवदारु, अगर और शीशमके वृक्षका सार तथा कडवे, कषैले और चरपरे रसवाले पदार्थ ये कृमिरोगवाले मनुष्योंके लिये हितकारी हैं॥६२-६६॥

कृमिरोगमें अपथ्य ।

छर्दिं च तद्वेगविधारणं च विरुद्धपानाशनमह्नि निद्राम् ।
द्रवं च पिष्टान्नमजीर्णतां च घृतानि माषान्दधि पत्रशाकम् ॥
मांसं पयोऽम्लं मधुरं रसं च कृमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेच्च॥६७॥

वमनको और वमनके वेगको रोकना, प्रकृति विरुद्ध अन्न-पान करना, दिनमें सोना, द्रव (पतले) पदार्थ, मिठाई, पक्वान्न आदि अजीर्णकारक पदार्थ, घी, उडद, दही, पत्तेवाले शाक, मांस, दूध, खट्टे रसवाले और मधुर रसवाले पदार्थ-ये सब कृमिरोगवालोंको तत्काल त्याग देने चाहिये ॥ ६७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कृमिरोगचिकित्सा ।

पाण्डु--कामला--हलीमककी चिकित्सा ।

साध्यं च पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्ध घृतेनोर्द्धमधश्च शुद्धम् ।
सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयः प्रयोगैः ॥ १ ॥

प्रथम पाण्डुरोगीको साध्य देखकर उसे घृतके द्वारा स्निग्ध करके वमन और विरेचन कराकर शरीरको शुद्ध करे । फिर शहद और घृतमें मिलाकर हरडोंका चूर्ण सेवन करावे ॥ १ ॥

पिबेद् घृतं वा रजनीविपक्कं यत् त्रफलं तैन्दुकमेव वापि ।
विरेचनद्रव्यकृतान्पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन ॥ २ ॥

हल्दिके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया हुआ घृत अथवा त्रिफलेके क्वाथ और कल्कके द्वारा सिद्ध कियाहुआ वा तेन्दूके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत पान करे या विरेचन औषधियोंको घृतके साथ, अथवा विरेचन औषधियोंके द्वारा सिद्ध कियेहुये घृतको पान करे ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धश्च वातोत्थे तिक्तशीतश्च पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३ ॥

वातज पाण्डुरोगमें स्निग्धक्रिया, पित्तज पाण्डुरोगमें कडवे पदार्थोंका सेवन और शीतलक्रिया, कफज पाण्डुरोगमें, चरपरे और रूखे पपार्थोंका सेवन एवं उष्णक्रिया करे तथा मिलेहुए दोषोंवाले पाण्डुरोगमें मिश्रित क्रिया करनी चाहिये ॥

पाण्डुरोगे सदा सेव्या सगुडा च हरीतकी।

पाण्डुरोगमें सर्वदा हरडका चूर्ण गुड मिलाकर सेवन करना चाहिये ।

त्रिफलाक्कथित तोयं सघृतं च सशर्करम् ।
वातपाण्ड्वामयी पीत्वा स्वास्थ्यमाशु व्रजेद् ध्रुवम् ॥४॥

वातज पाण्डुरोगी त्रिफलेके क्वाथमें घी और मिश्री मिलाकर सेवन करे तो शीघ्र आरोग्य होता है ॥ ४ ॥

द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्द्धं पैत्तिके पिबेत् ।
कफपाण्डौ च गोमूत्रयुक्तां क्लिन्नां हरीतकीम् ॥ ५ ॥
नागरं लोहचूर्णं वा कृष्णं पथ्यां तथाऽश्मजम् ।
गुग्गुलुं वाऽथ मूत्रेण कफपांड्वामयी पिबेत् ॥६॥

सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं चाप्ययोरजः ।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः ॥ ७ ॥

पित्तज पाण्डुरोगमें निसोतका चूर्ण दो तोले और मिश्री २ तोले मिलाकर सेवन करे । कफज पाण्डुरोगमें हरडको रात्रिमें गोमूत्रमें भिजोकर प्रातःकाल गोमूत्रमें पीसकर पान करे अथवा सोंठ, लोहभस्म, पीपलका चूर्ण, हरडका चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल, इनमेंसे किसी एक औषधिको गोमूत्रके साथ उचित मात्रासे सेवन करनेसे पाण्डुरोग दूर होता है । लोहभस्मको गोमूत्रमें सात दिनतक भावना देकर दूधके साथ पान करनेसे पाण्डुरोग शमन होता है ।

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम् ।
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः ॥८॥

लोहकी भस्म, काले तिल, सोंठ, मिरच, पीपल, प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे और इन सबकी बराबर शुद्ध सोनामाखीका चूर्ण लेवे । सबका एकत्र चूर्ण करके शहदमें मिलाकर लड्डू बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एक एक लड्डू तक्रके साथ सेवन करे । ये मोदक पुराने पाण्डुरोगमें अथवा रोगके दूर होजानेपर भी सेवन करने हितकारी हैं ॥ ८ ॥

लौहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः ।
पिबेत्पाण्ड्वामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः ॥ ९ ॥

पाण्डुरोगी, क्षयी और संग्रहणीवाले रोगी एक सप्ताहपर्यन्त लोहेके पात्रमें चौगुने जलके साथ पकाया हुआ गोदुग्ध पान करे और पथ्य पदार्थोंका भोजन करे तो उक्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अयोमलं तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रशोधितम् ।
मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत् ।
दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ १० ॥

मण्डूरभस्मको सात बार अग्निमें तपाकर सातबार गोमूत्रमें बुझावे । फिर उसका बारीक चूर्ण करके शहद, घृत और भातके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त दीपन होती है एवं शोथ और पाण्डुरोग दूर होते हैं ॥ १० ॥

कामला--चिकित्सा ।

रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत् ।
ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता ॥ ११ ॥

कामलारोगीको पहले घृतादिके द्वारा स्निग्ध करके विरेचन करावे। फिर योग्य वैद्यके द्वारा रोगनाशक चिकित्सा करानी चाहिये ॥ ११ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः ।
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ १२ ॥

त्रिफलेके क्वाथ अथवा गिलोयके स्वरस या दारुहल्दीके क्वाथ या नीमकी छालके क्वाथ अथवा स्वरसको शहद मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पीनेसे कामलारोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अञ्जनं कामलार्त्तस्य द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः ।
निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा सम्प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥

कामलारोगीको गूमाके पत्तोंका रस अथवा हल्दी, गेरू और आमलोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर आँखोंमें आँजनेसे शीघ्र आराम होता है ॥ १३ ॥

नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनीफलम् ॥ १४ ॥

ककोडेकी जडको पीसकर उसके रसकी अथवा कडवी तोरईको पीसकर उसके रसकी नस्य देनेसे कामलारोग दूर होता है ॥ १४ ॥

सशर्करं कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाक्षी सगुडा च शुण्ठी ॥

निसोतका चूर्ण अथवा इन्द्रायनका चूर्ण खांड मिलाकर सेवन करनेसे या गुड मिलाकर साठका चूर्ण सेवन करनेसे कामलारोगीको आरोग्यलाभ होता है ॥ १५ ॥

कुम्भकामलाकी चिकित्सा ।

दग्ध्वाऽक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुनाऽचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति १६

लोहेके मैलको लेकर बहेडेकी लकडीकी अग्निमें आठवार तपाकर क्रमसे आठ बार गोमूत्रमें बुझावे। फिर उसका बारीक चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करनेसे कुम्भकामला और पाण्डुरोग शीघ्रही नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

हलीमककी-चिकित्सा ।

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके ।
कामलायां च याऽऽदिष्टा सापि कार्या भिषग्वरैः ॥ १७ ॥

पाण्डु और कामलारोगमें जो चिकित्सा कही गई है वही समस्त चिकित्सा हलीमक रोगमें भी करनी चाहिये ॥ १७ ॥

मारितं चायसं चूर्णं मुस्ताचूर्णेन संयुतम्।
खदिरस्य कषायेण पिबेद्धन्तुं हलीमकम् ॥ १८ ॥

लोहेकी भस्मको नागरमोथेके चूर्ण और खैरके क्काथके साथ मिलाकर सेवन करे तो हलीमकरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

सितातिक्ताबलायष्टित्रिफलारजनीयुगैः।
लौहं लिह्यात्समध्वाज्यं हलीमकनिवृत्तये ॥ १९ ॥

मिश्री, कुटकी, खिरैंटी, मुलहठी, त्रिफला, हल्दी और दारुहल्दी इन सबको समान भाग और सबकी बराबर लोह भस्म लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे फिर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे हलीमकरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

फलत्रिकादि–कषाय।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ २० ॥

त्रिफला, गिलोय, बिसौंटा, कुटकी, चिरायता और नीमकी छाल इनका काढा बनाकर मधुके साथ सेवन करे तो पाण्डु और कामला नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

वासादिकषाय।

वासामृतानिम्बकिरातकट्वीकषायकोऽयं समधुर्निपीतः।
सकामलं पाण्डुमथास्रपित्तं हलीमकं हन्ति कफादिरोगान् ॥

बिसौंटेकी छाल, गिलोय, नीमकी छाल, चिरायता और कुटकी इन सबका बराबर भाग लेकर यथाविधि क्काथ बनाय शहद डालकर पान करे तो कामला पाण्डु, रक्तपित्त, हलीमक और कफादिरोग नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

नवायसलौह।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गचित्रकाः समाः।
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ २२ ॥
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम्।
नवायसमिदं लौहं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ २३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चीतेकी जड–ये सब औषधियाँ समान भाग और लोह भस्म ९ भाग लेकर सबका एकत्र बारीक, चूर्ण शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डु, हृद्रोग कुष्ठ,

बवासीर और कामला ये सब रोग दूर होते हैं। इस नवायसलोहको कृष्णात्रेयनें कहा है ॥ २२ ॥ २३ ॥

विशालौह।

लौहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलारोहिणीयुतम्।
प्रलिह्यान्मधुसर्पिभ्यां कामलापाण्डुशान्तये ॥ २४ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला और कुटकी ये सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण एकत्र खरल करके शहद और घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डु और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

धात्रीलौह।

धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः।
भक्षणाद्विनिहन्त्याशु कामलां च हलीमकम् ॥ २५ ॥

आमले, लोहभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल और हल्दी इनके समान भाग चूर्णको शहद, घी और मिश्रीमें मिलाकर सेवन करनेसे कामला और हलीमक रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

विडंगादिलौह।

विडंगत्रिफलाव्योषं शुद्धलौहं तु तत्समम्।
पुरातनगुडेनैव लेहयेद्दिनसप्तकम् ॥ २६ ॥
श्वयथुं नाशयेच्छीघ्रं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ २७ ॥

वायविडंग, त्रिफला और त्रिकुटा इनको समान भाग और सबकी बराबर शुद्ध लोहेकी भस्म लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको पुराने गुडके साथ मिलाकर सात दिनतक सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु और हलीमक रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

विडंगमुस्तत्रिफलादेवदारुषडूषणैः।
तुल्यमात्रामयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ २८ ॥
तैरक्षमात्रां गुटिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने।
कामलापाण्डुरोगार्त्तः सुखमाप्नुयतेऽचिरात् ॥ २९ ॥

वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, देवदारु, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कालीमिरच ये सब औषधि समान भाग और इन सबको बराबर गोमूत्रमें शुद्ध कियाहुआ लोहचूर्ण लेवे। फिर सबको एकत्र पीसकर आठगुन गोमूत्रमें

पकावे। जब पककर लोहेकी समान गाढा होजाय, तब एक एक तोलेकी गोलियाँ बनाकर इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली खानेसे कामला और पाण्डुरोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ २८–२९ ॥

दार्व्यादिलौह।

दार्वीसत्रिफलाव्योषविडङ्गान्ययसो रजः।
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात कामलापाण्डुरोगवान् ॥ ३० ॥

दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकुटा और वायविडङ्ग इन सबके चूर्णको समान भाग और सब चूर्णके बराबर लोहभस्म लेकर सबको एकत्र शहद और घृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे कामला और पांडुरोगी स्वास्थ्यलाभ करते हैं॥३०॥

त्रिकत्रयाद्यलौह।

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः।
सितायाश्च पलं चैकं मधुनश्च पलं तथा ॥ ३१ ॥
तोलैकं कान्तलौहस्य त्रिकत्रयसमन्वितम्।
ततः पात्रे विधातव्यं लौहे वा मृन्मये तथा ॥ ३२ ॥
भावितं मधुसर्पिर्भ्यां रौद्रे शिशिर एव च।
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रयोजयेत ॥ ३३ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च हलीमकमथापि च।
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलं च परिणामजम् ॥ ३४ ॥
कासं पञ्चविधं चैव प्लीहश्वासज्वरानपि।
अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च ॥ ३५ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णं च श्वयथुं च सुदारुणम्।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३६ ॥

मण्डूर (लोहेका मैल) ४ तोले, गौका घी ४ तोले मिश्री ४ तोले, शहद ४ तोले, कान्तलोहका चूर्ण १ तोला, एवं त्रिकुटा, त्रिफला, चीतेकी जड, नागरमोथा और वायविडंग इन सबका चूर्ण एक एक तोला लेवे। फिर इन औषधियोंको एकत्र लोहेके पात्र अथवा मिट्टीके पात्रमें करके दिनको धूपमें और रातको ओसमें तीनदिन तक शहद और घृतकी भावना देवे। इसको भोजनके पहले, मध्यमें और अन्तमें सेवन करनेसे यह त्रिकत्रयाद्यलौह कामला,

पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल, पाँचों प्रकारकी खाँसी, प्लीहा, श्वास, ज्वर, अपस्मार, उन्माद, उदररोग, गुल्म, अग्निमांद्य, अजीर्ण और दारुण शोथ–आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ ६१–२६ ॥

कामलान्तकलौह।

द्विपलं जारितं लौहं लौहार्द्धं जारिताभ्रकम्।
मण्डूरं च तदर्द्धं च तदर्द्धं मृतवङ्गकम् ॥ ३७ ॥
वङ्गार्द्धं मागधः शुण्ठी पिप्पली गजपिप्पली।
ग्रन्थिकं गन्धपत्रं च दार्वी चव्यं यमानिका ॥ ३८ ॥
चित्रकं कट्फलं रास्ना देवदारु फलत्रिकम्।
रसाञ्जनं चातिविषां समभागानि चूर्णयेत् ॥ ३९ ॥
केशराजस्य भृङ्गस्य सोमराजरसस्य च।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसैर्भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४० ॥

लोहेकी भस्म ८ तोले, अभ्रककी भस्म ४ तोले, मण्डूरभस्म २ तोले, वंगभस्म १ तोला एवं जीरा, सोंठ, पीपल, गजपीपल, गठिवन, तेजपात, दारुहलदी, चव्य, अजवायन, चीता, कायफल, रास्ना देवदारु, त्रिफला, रसौत और अतीस ये सब औषधियाँ छः छः मासे लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्णको कुकुरभाँगरा, भाँगरा, बावची और मण्डूकपर्णी इनके स्वरसमें पृथक् पृथक् तीन तीन दिनतक भावना देवे ॥ ३७ ॥ ४० ॥

भक्षयेन्मधुना युक्तं सर्वमेहकुलान्तकः।
कामलां पाण्डुरोगं च हलीमकमथारुचिम् ॥ ४१ ॥
कासं श्वासं शिरःशूलं प्लीहानमग्रमांसकम्।
जीर्णज्वरं तथा शोथमङ्गग्रहनिपीडितम् ॥ ४२ ॥
गुल्मशूलं च हृद्रोगं संग्रहग्रहणीहरम्।
अग्निं च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥
कामलान्तकनामेदं लौहं कामलरोगनुत् ॥ ४३ ॥

इस कामलान्तकनामक लोहको शहदके साथ मिलाकर भक्षण करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह, कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, खाँसी, श्वास, शिरदर्द, प्लीहा अग्रमांस पुराना ज्वर, शोथ, अंगपीडा, गुल्म, शूल, हृदयरोग, संग्रहणी आदि

रोग नष्ट होते हैं। यह अग्निको दीपन करता और जीर्णज्वरको दूर करता है और विशेष करके कामलारोगको नष्ट करता है ॥ ४१-४३ ॥

पञ्चामृतलौह-मण्डूर।

लौहं ताम्रं गन्धकाभ्रं पारदं च समांशकम्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ ४४ ॥
किरातं देवकाष्ठं च हरिद्राद्वयपुष्करम्।
यमानी जीरयुग्मं च शठी धान्यकचव्यकम् ॥ ४५ ॥
प्रत्येकं लौहभागं च श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत्।
सर्वचूर्णस्य चार्द्धांशं सुशुद्धं लौहकिट्टकम् ॥ ४६ ॥
गोमूत्रे पाचयेद्वैद्यो लौहकिट्टं चतुर्गुणे।
पुनर्नवाष्टगुणितं क्वाथं तत्र प्रदापयेत् ॥ ४७ ॥
सिद्धेऽवतारिते चूर्णं मधुनः पलमात्रकम्।
भक्षयेत्प्रातरुथाय कोकिलाक्षानुपानतः ॥ ४८ ॥

लोहभस्म, ताँबेकी भस्म, शुद्ध, गन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, त्रिकुटा, त्रिफला नागरमोथा, वायविडंग, चीतेकी जड, चिरायता, देवदारू, हल्दी, दारुहलदी, पोहकरमूल, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, कचूर, धनियाँ और चव्य ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णसे आधा भाग शुद्ध लोह मण्डूर लेकर चौगुने गोमूत्रमें पकावे। कुछ देर पकनेके पश्चात् उसमें मण्डूरसे अठगुना पुनर्नवेका क्वाथ डालकर पकावे। पाक तैयार होजानेपर उसमें पूर्वोक्त औषधियोंका चूर्ण डालकर नीचे उतार लेवे। और शीतल होजानेपर ४ तोले शहद मिलाकर एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। फिर इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल तीन तीन मासे परिमाण लेकर तालमखानेके पत्तोंके क्वाथके साथ सेवन करे ॥ ४४-४८ ॥

ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथां पाण्डुकामलाम्।
अग्निं च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ ४९ ॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममुदरं च विशेषतः।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ५० ॥

यह मण्डूर-पुरानी संग्रहणी, शोथयुक्त पाण्डु और कामला, जीर्णज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, उदररोग, विशेषकर खांसी, श्वास और प्रतिश्याय इन

सब रोगोंको दूर करता है और पाचकाग्निको दीपन करता एवं शरीरको कान्तियुक्त और पुष्ट करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वज्रवटकमण्डूर ।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम् ।
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः ॥ ५१ ॥
यावन्त्येतानिचूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ५२ ॥
ततोऽक्षमात्रान्वटकान् पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् ।
पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भं हलीमकम् ॥ ५३ ॥
कृमिं प्लीहानमुदरं गलरोगं च नाशयेत् ।
मण्डूरो वज्रनामाऽयं रोगानीकविनाशनः ॥५४॥
निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते ।
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णतः ॥ ५५ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, मिरच, देवदारु, त्रिफला, वायविडंग और नागरमोथा—ये प्रत्येक औषधि बारह बारह तोले लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। फिर जितना चूर्ण हो उससे दुगुना शुद्ध मण्डूर लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब वह पकते २ गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें उक्त औषधियोंका चूर्ण डालकर एक एक तोलेके बडे बना लेवे। इसमेंसे एक एक बडा प्रतिदिन मठेके साथ सेवन करे और तक्रके साथ भोजन करे। यह वज्रवटकनामक मण्डूर—पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, हलीमक, कृमिरोग, प्लीहा, उदरविकार, गलेके रोग और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगसमूहको नष्ट करता है। इसमें पहले मण्डूरको अग्निमें तपाकर और कईबार गोमूत्रमें बुझाकर ग्रहण करना चाहिये ॥ ५१–५५ ॥

पुनर्नवादिमण्डूर ।

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च
विडङ्ग देवकाष्ठं च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ ५६ ॥
त्रिफला द्वे हरिद्रे च दन्ती च चविका तथा ।
कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ५७ ॥

एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्निग्धभाजने ।
पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शःकृमिगुल्मनुत ॥ ५८ ॥

पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, पीपल, मिरच, वायविडंग, देवदारु, चीतेकी जड, पोहकरमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल,चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा इन सबको समान भाग लेवे और सब चूर्णसे दुगुना मण्डूर लेवे। प्रथम मण्डूरको अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब वह पककर सिद्ध होजाय तब उक्त ओषधियोंका चूर्ण डालकर नीचे उतारलेवे । शीतल होजानेपर उसको एक घीके चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे । यह मण्डूर प्रतिदिन तीन तीन माशे परिमाण सेवन करनेसे पाण्डु, शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, अर्श, कृमि और गुल्म आदि रोगो को नष्ट करता है ॥ ५६-५८ ॥

त्र्यूषणादिमण्डूर ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।
दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ ५९ ॥
एषां द्विपलिकान्भागाँश्चूर्णान्कृत्वा पृथक् पृथक् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ६० ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः ।
उदुम्बरसमान्कृत्वा वटकांस्तान् यथाग्नि तु ॥ ६१ ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ६२ ॥
कुष्ठान्यरोचकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् ।
अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ६३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चीतेकी जड, दारुहल्दी, दारचीनी, सोनामाखी, गठिवन और देवदारु इन सबको पृथक् पृथक् आठ आठ तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे फिर सब चूर्णसे दुगुना अञ्जनकी समान काला शुद्ध मण्डूर लेकरअठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पाक तैयार होजाय तब उसमें पूर्वोक्त औषधियोंका चूर्ण मिलाकर गूलरके फलकी समान बडे बनालेवे । इन बडोंको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर प्रतिदिन मट्ठेके साथ सेवन करे और जीर्ण होनेपर हितकर पदार्थोंका भोजन करे।

ये मण्डूरवटक पाण्डुरोगियोंको प्राण देनेवाले तथा कुष्ठ, अरुचि, शोथ, ऊरुस्तम्भ, कफके रोग, अर्श, कामला, प्रमेह और प्लीहा आदि रोगोंको नष्ट करते हैं ५९-६३

चन्द्रसूर्यात्मकरस ।

सूतकं गन्धकं लौहमभ्रकं च पलं पलम् ।
शङ्खटङ्कवराटं च प्रत्येकार्द्धपलं हरेत् ॥ ६४ ॥
गोक्षुरबीजचूर्णं च पलैकं तत्र दीयते ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं बाष्पयन्त्रे विभावयेत् ॥ ६५ ॥
पटोलं पर्पटं भार्ङ्गी विदारी शतपुष्पिका ।
कुण्डली दन्तिनी वासा काकमाचीन्द्रवारुणी ॥ ६६ ॥
वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्ची द्रोणपुष्पिका ।
प्रत्येकार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं कुरु ॥ ६७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक चार चार तोले, शङ्खभस्म, सुहागा, कौडीकी भस्म ये तीनों दो दो तोले और गोखुरूके बीजोंका चूर्ण ४ तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको पटोलपात पित्तपापडा, भारंगी, विदारीकन्द, सौंफ, गिलोय, दन्तीमूल, अडूसा, मकोय, इंद्रायन, पुनर्नवा, भांगरा, शालिञ्चशाक और गूमा इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले स्वरसके साथ गरम खरलमें डालकर क्रमसे भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ६४-६७ ॥

चतुर्द्दशवटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
युक्त्या मद्येन मण्डेन मुद्गयूषेण वारिणा ॥
गुडूचीत्रिफलावासाक्काथनीरेण वा क्वचित् ॥ ६८ ॥

इन गोलियोंमेंसे एक एक गोली नित्य प्रातःकाल बकरीके दूधके साथ अथवा मदिरा, मांड, मूँगका यूष, जल या गिलोय, त्रिफला और अडूसा इनमें किसी एकके काढेके साथ चौदह दिनतक सेवन करे ॥ ६८ ॥

हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगं च कामलाम् ।
जीर्णज्वरं सविषमं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ६९ ॥
शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन् ।
शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमिम् ॥७०॥

भगन्दरोपदंशौ च दद्रूकण्डूव्रणानि च।
दाहं तृष्णामुरुस्तम्भमामवातं कटिग्रहम् ॥ ७१ ॥
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः ॥ ७२ ॥

यह चन्द्रसूर्यात्मक रस—हलीमक, पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, विषमज्वर, रक्तपित्त, अरुचि, शूल, तिल्ली, उदररोग, आनाह, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधि, सूजन, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दाद, खुजली, व्रण, जलन, तृषा, ऊरुस्तम्भ, आमवात और कमरको पीडा इन समस्त रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। इस रसको श्रीगहनानन्दनाथजीने वर्णन किया है ॥ ६९–७२ ॥

प्राणवल्लभरस।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धं काश्मीरसम्भवम्।
लौहं ताम्रं वराटं च तुत्थं हिङ्गु फलत्रयम् ॥ ७३ ॥
स्नुहीमूलं यवक्षारं जेपालं टङ्कणं त्रिवृत्।
प्रत्येकं तु समं भागं छागीदुग्धेन भावयेत् ॥ ७४ ॥
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुना सह।
श्लेष्मदोषं च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ शुद्ध पारा, शुद्ध आमलासार, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, कौडीकी भस्म, तूतिया, हींग, त्रिफला, थूहरकी जड, जवाखार, जमालगोटा, सुहागा और निसोत प्रत्येक समान भाग लेकर बकरीके दूधमें उत्तम प्रकारसे खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर नित्य प्रातःकाल एक एक गोली शहद अथवा जलके साथ भक्षण करे और कफदोषको विचारकर मात्राको युक्तिपूर्वक घटाता बढाता रहे ॥ ७३–७५ ॥

निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा।
गलगण्डं गण्डमालां कृच्छ्राणि च हलीमकम् ॥ ७६ ॥
शोथं शूलमुरुस्तम्भं संग्रहग्रहणीं तथा।
हन्ति मूर्च्छां वमिं हिक्कां कासश्वासगलग्रहम् ॥ ७७ ॥
असाध्यं सन्निपातं च जीर्णज्वरमरोचकम्।
जलदोषभवं शोथं महोग्रं च जलोदरम् ॥ ७८ ॥

नातः परतरं श्रेष्ठं कामलार्त्तिरुजापहम् ।
प्राणवल्लभनामाऽयं गहनानन्दभाषितः ॥ ७९ ॥

यह रस कामला, पाण्डु, अफारा, श्लीपद (फीलपाँव), गलगण्ड, गण्डमाला, हलीमक, सूजन, अरुस्तम्भ, संग्रहणी, मूर्च्छा, वमन, हिचकी, खाँसी, श्वास, गलेकी पीडा और असाध्य सन्निपातज्वर तथा जीर्णज्वर, अरुचि, जलदोषसे उत्पन्नहुआ शोथ और अतिदारुण जलोदर इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है । कामला, पाण्डु आदि रोगोंको दूर करनेके लिये इस रससे बढकर अन्य औषधि नहीं है । इस प्राणवल्लभ नामक रसको श्रीगहनानन्दनाथने निर्म्माण किया है ॥ ७६-७९ ॥

पञ्चाननवटी ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलुः ।
जैपालबीजं तुल्यांशं घृतेन गुडकीकृतम् ॥ ८० ॥
भक्षयेद्बादरास्थ्याभं शोथपाण्डुप्रशान्तये ।
पञ्चाननवटी ख्याता पाण्डुरोगकुलान्तिका ॥ ८१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, गूगल इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर शुद्ध जमालगोटेके बीजोंका चूर्ण लेवे । फिर सबको एकत्र घृतके साथ एक प्रहरतक खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनाकर चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली गूमाके क्काथके साथ सेवन करे । यह पञ्चाननवटी शोथ और पाण्डुरोगका मूसल नष्ट करता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

पाण्डुसूदनरस ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालं च गुग्गुलुम् ।
समांशमाज्यसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८२ ॥
एकैकां खादयेन्नित्यं पाण्डुशोथोपशान्तये ।
शीतलं च जलं चाम्लं वर्जयेत्पांडुसूदने ॥ ८३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, जमालगोटा और गूगल इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके घृतके साथ खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । नित्यप्रति प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे । इसपर शीतल जल और अम्ल पदार्थोंको त्यागदेवे । इससे पाण्डु और शोथ रोगकी शान्ति होती है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

आनन्दोदयरस।

पारदं गन्धकं लौहमभ्रकं विषमेव च।
समांशं मरिचस्याष्टौ टङ्कणं च चतुर्गुणम् ॥ ८४ ॥
भृङ्गराजरसैः सप्त भावनाश्चाम्लदाडिमैः।
द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन खादेत्सायं निहन्ति च ॥ ८५ ॥
वातश्लेष्मभवान् रोगान्मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरान्।
अरुचिं पांडुतां चैव जयेदचिरसेवनात् ॥ ८६ ॥
नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्करतेजसम्।
पर्वतोऽपि हि जीर्येत प्राशनादस्य देहिनः ॥
गुर्वन्नमम्लमाषं च भक्षणादेव जीर्य्यति ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध मीठा तेलिया ये चारों एक एक भाग, कालीमिरच आठ भाग और सुहागा चार भाग इन सबका एकत्र चूर्ण करके पहले भाँगरेके रसमें, फिर खट्टे अनारके रसमें सात सात वार भावना देवे। इसको प्रतिदिन सन्ध्यासमय दो दो रत्तीकी मात्रासे पानके साथ सेवन करनेसे वात–कफजन्य रोग, मन्दाग्नि, संग्रहणी, ज्वर, अरुचि और पाण्डु ये सब रोग तत्काल नष्ट होते हैं। यह रस नष्टहुई अग्निको अत्यन्त दीपन करता है। इसके सेवनसे गुरु (पचनेमें भारी) अन्न, अम्ल पदार्थ, उडद और पत्थर तकभी खातेही जीर्ण होजाते हैं ॥ ८४–८७ ॥

त्रैलोक्यसुन्दररस।

मानं चैकं ततः सूतं षडभ्रं वसु लौहकम्।
गन्धकं त्रिफलाव्योषचूर्णं मोचरसस्य च ॥ ८८ ॥
मुसली चामृतासत्त्वं प्रत्येकं पञ्चभागिकम्।
भावयेत्सर्वमेकत्र त्रिफलायाः कषायके ॥ ८९ ॥
भावना विंशतिर्देया दशरात्रं सुभावना।
शिग्रुचित्रकमूलाभ्यामष्टधा च पृथक् पृथक् ॥ ९० ॥
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम रसो निष्कमितो हितः।
सितया च समं क्षौद्रैः शोथपाण्डुक्षयापहः।
ज्वरातीसारसंयुक्तसर्वोपद्रवनाशनः ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, अभ्रकभस्म ६ भाग, लोहभस्म ८ भाग और शुद्ध गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, मोचरस, मुसली और गिलोयका सत ये प्रत्येक पाँच पाँच भाग इन सब ओषधियोंका एकत्र चूर्ण करके त्रिफलेके काढेमें दश दिनतक बीस बार भावना देवे। फिर सहिंजनेकी जड़ और चीतेकी जड़के क्काथमें अलग २ आठ आठ बार भावना देवे तो यह त्रैलोक्यसुन्दरनामक रस सिद्ध होता है। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार मासे प्रमाण मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु, क्षय, ज्वर और अतिसार आदि सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ८८-९१ ॥

योगराज।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च।
भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ ९२ ॥
पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च।
माक्षिकस्य विशुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथा ॥ ९३ ॥
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम्।
माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ ९४ ॥
उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्निना।
दिनेदिने प्रयुञ्जीत जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम ॥
वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकमाचीं कपोतकाम् ॥ ९५ ॥

हरड, बहेडा, आमला ये तीनों १२ तोले, सोंठ, मिरच और पीपल तीनों १२ तोले, चीतेकी जड और वायविडंग दोनों चार चार तोले, एवं शिलाजीत, चाँदीका मैल, शुद्ध सोनामाखी और लोहभस्म ये प्रत्येक बीस बीस तोले और मिश्री ६४ तोले लेवे। सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर उत्तम लोहेके वर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल गूलरके फलकी समान अथवा अपनी अग्निके बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे। औषधिके पच जानेपर यथेच्छ भोजन करे। इसपर कुलथी, मकोय और ब्राह्मीके पत्तोंका शाक आदि पदार्थ त्यागदेने चाहिये ॥ ९२-९५ ॥

योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ९६ ॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम्।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥ ९७ ॥

कुष्ठान्यज्वरकं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम्।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥ ९८ ॥

यह योगराजनामक प्रसिद्ध प्रयोग अमृतके समान गुणकारी और उत्तम रसायन है। यह रसायन-पाण्डुरोग, विषविकार, खाँसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ ज्वर, प्रमेह, श्वास, हिचकी, अरुचि, विशेषकर अपस्मार, कामला और बवासीर आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ९६-९८ ॥

धात्र्यरिष्ट।

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक्।
क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णार्द्धकुडवान्वितम् ॥ ९९ ॥
शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम्।
प्रपिबेत्पाण्डुरोगार्त्तो जीर्णे हितमिताशनः ॥ १०० ॥
कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासांश्चैषोऽरिष्टःप्रणाशयेत ॥ १०१ ॥

उत्तम और पकेहुए दो हजार आमलोंका स्वरस, पीपलका चूर्ण आधा कुडव (८ तोले) और खाँड २०० तोले सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें आमलोंके स्वरसका आठवाँ भाग शहद मिलाकर एक घीके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। १९ दिनके पश्चात् इसको प्रतिदिन अपनी अग्निके बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे और औषधिके पच जानेपर हितकर पदार्थोंका परिमित भोजन करे। यह अरिष्ट-कामला, पाण्डु, हृदयरोग, वातरक्त, विषमज्वर, खाँसी, हिचकी, अरुचि और श्वासादि विकारोंको नष्ट करता है ॥ ९९-१०१ ॥

हरिद्राद्यघृत।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम्।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ १०२ ॥

हल्दी, हरड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, खिरैंटी और मुलहठी इन सबके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्क, चौगुने गोदुग्ध और अठगुने जलके साथ भैंसके चार सेर घृतको विधिपूर्वक सिद्ध करे। यह घृत कामलारोगको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है ॥ १०२ ॥

द्राक्षाघृत।

पुराणसर्पिषः प्रस्थो द्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः।
कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ १०३ ॥

पुराना गोघृत १ प्रस्थ (६४ तोले) कल्कके लिये दाख आधाप्रस्त (३२ तोले,) गोदुग्ध ४ प्रस्थ और जल ४ प्रस्थ सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब पकते पकते घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। प्रतिदिन इस घृतका सेवन करनेसे कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, ज्वर, प्रमेह और उदरविकार आदि रोग दूर होते हैं ॥ १०३ ॥

मूर्वाद्यघृत।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः।
त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥ १०४ ॥
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणम्।
पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथाऽर्शोरक्तपित्तनुत् ॥ १०५ ॥

गौका घी १ प्रस्थ, मूर्वाकी जड, कुटकी, हल्दी, ध .मा, पीपल, चन्दन, पित्त पापडा त्रायमाण, कुडेकी छाल, चिरायता, पटोलपात, नाग पोथा और दारुहल्दी इन सब औषधियोंका कल्क दो दो तोले, पाकके लिये जल ४ प्रस्थ आर दूध ४ प्रस्थ सबको मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। जब घृतमात्र श र रहजाय तब उतारकर छान लवे। इस घृतको प्रतिदिन छः छः माशे पारेमाण पान करनेसे पाण्डु, ज्वर, विस्फोट, सूजन, बवासीर और रक्तपित्त ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४-५ ॥

व्योषाद्यघृत।

व्योषं बिल्व द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवम्।
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ १०६ ॥
वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम्।
सर्वान् प्रशमयत्येतद्विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥ १०७ ॥

साठ, मिरच, पीपल, बेलगिरी, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, सफेद और लाल दोनों पुनर्नवा, नागरमोथा, लाहभस्म, पाढ, वायविडंग, देवदारु, बिछाटीघास आर भारङ्गी इन सब औषधोंका कल्क एक सेर, गोघृत ४ सेर और जल ६४ सेर एवं दुग्ध १६ सेर लेवे। इसको एकत्र मिलाकर घृतको सिद्ध करे। जब शीतल

होजाय तब उतारकर छानलेवे। यह घृत मृत्तिकाके खानेसे उत्पन्न हुए विकार एवं अन्यान्य सम्पूर्ण उपद्रवोंको शमन करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

पाण्डुरोगम पथ्य।

छर्दिर्विरेचनं जीर्णयवगोधूमशालयः।
मुद्गाढकमसूराणां यूषा जाङ्गलजा रसाः ॥ १०८ ॥
पटोलं वृद्धकूष्माण्डं तरुणं कदलीफलम्।
जीवन्ती क्षुरमत्स्याक्षी गुडूची तण्डुलीयकम् ॥१०९॥
पुनर्नवा द्रोणपुष्पी वार्त्ताकुर्लशुनद्वयम्।
पक्वाम्रमभया बिम्बी शृङ्गी मत्स्या गवां जलम् ॥११०॥
धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीरकतुषोदकम्।
नवनीत गन्धसारा हरिद्रा नागकेशरम् ॥ ११ ॥
यवक्षारो लौहभस्म कषायाणि च कुंकुमम्।
यथादोषमिदं पथ्य पाण्डुरोगवतां भवत् ॥ १२ ॥

वमन और विरेचन कराना, पुराने जा, गहू और शालिधानोंके चावल, मूँग, अरहर, मसूर इनका यूष और जाङ्गलदेशोत्पन्न जीवोंके मांसका रस, परवल, पका-पेठा, कच्चा केला, जीवन्तीका शाक, तालमखानक पत्तोंका शाक, मछेछीका शाक, गिलोय, चौलाईका शाक, पुनर्नवा, गूमा, बैंगन, प्याज, लहसुन, पका आम, हरड़, कन्दूरी, शृंगवाली मछली, गोमूत्र, आमले मट्ठा, घृत, तैल, सौवीरक और तुषोदक नामकी काँजी, मक्खन (नैनीघी,) लाल चन्दन, हल्दी, नागकेशर, जवाखार, लोहभस्म, केशर आर कषायरसवाले पदार्थ ये सब पाण्डुरोगियोंको यथादोषानुसार पथ्य हैं ॥ ८-११२ ॥

पांडुरोगमें अपथ्य।

रक्तस्रुतिर्धूमपान वमिवेगविधारणम्।
स्वेदन मैथुनं शिम्बी पत्रशाकानि रामठम् ॥ १३ ॥
माषोऽम्बुपानं पिण्याकस्ताम्बूलं सर्षपाः सुरा।
मृद्भक्षणं दिवास्वप्नस्तीक्ष्णानि लवणानि च ॥ १४ ॥
सह्यविन्ध्याद्रिजातानां नदीनां सलिलानि च।
गुर्वन्न च विदाहीनि पाण्डुरोगेऽहितं भवेत् ॥ ११५ ॥

फस्त खुलवाना या जौंक लगवाना, धूमपान करना, वमनके वेगको रोकना, स्वेद देना, स्त्रीप्रसंग करना, सेमकी फली, पत्तोंवाले शाक, हींग, उडद, अधिक जलपान, तिलकुट, पान, सरसोंका तेल, मद्य, मिट्टीका खाना, दिनमें सोना, बहुत तीक्ष्ण, चरपरे और नमकवाले पदार्थ एव सह्यगिरि, और विन्ध्याचलसे निकलीहुई नदियोंका जल, सब प्रकारके खट्टे पदार्थ व खटाइयाँ, दूषित जल, स्वभाव और देशकालविरुद्ध भोजन, पचनेमें भारी और दाहकारक पदार्थ ये सब पाण्डुरोगियोंको अहितकर हैं, अतः इनको त्याग देना चाहिये १३–१९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां पांडु–कामला–हलीमकचिकित्सा।

अथ रक्तपित्त-चिकित्सा।

नोद्रिक्तमादौ संग्राह्यं बलिनोऽप्यश्नतश्च यत।
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत ॥ १ ॥

रक्त-पित्तरोगमें रोगीके शरीरमें बल और भोजन करनेकी शक्ति रहतेहुए प्रथम प्रबल रक्तस्रावको रोकना नहीं चाहिये। कारण-शरीरमें दूषित रक्तके रुकजानेसे हृदयरोग, पाण्डु, संग्रहणी, प्लीहा (तिल्ली) गुल्म एवं ज्वरादि रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १ ॥

ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः।
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमनतर्पणम् ॥ २ ॥

ऊर्ध्वमार्गगत रक्तपित्तमें-रोगीके बल आर मांसके क्षीण न होनेपर एवं अग्निके प्रदीप्त होनेपर पहले उसको लंघन कराने चाहिये ॥ २ ॥

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यं च विरेचनम्।
प्रागधोगमने पेया वमनं च यथाबलम् ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोगमें–पहले तृप्तिजनक क्रियायें और फिर विरेचन देना चाहिये। एवं अधोगत रक्तपित्तमें प्रथम भोजनके विषे पेय देवे, फिर उसके बलानुसार वमन कराकर दोषोंको दूर करे ॥ ३ ॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशातिकाः।
श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ ४ ॥

पुराने शालिचावल, सांठी चावल, नीवार, (लडियाधान,) कोदों, लालनीवार, समा और कंगनी चावल ये सब अन्न रक्तपित्तवाले रोगियोंको भोजनके लिये देने चाहिये ॥ ४ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समुकुष्ठाढकीफलाः ।
प्रशस्ताः सूपयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ५ ॥

रक्तपित्तवाले रोगीको मसूर, मूँग, चने मोठ और अरहर इन सबकी दालोंका यूष देना चाहिये ॥ ५ ॥

शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादिशशैणहरिणादिजम् ॥ ६ ॥

रक्तपित्तवाले रोगीको—पटोलपात, बेतका अग्रभाग, चौलाई आदिका शाक एव लवा, कबूतर, खरगोश और काला हिरन आदि जीवोंका मांस हितकारी है ॥

क्षीणमांसबलं वृद्धं बालं शोषानुबन्धिनम् ।
अवम्यमविरेच्यं च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ॥ ७ ॥

जिसका मांस और बल क्षीण होगया हो, एवं वृद्ध, बालक और जो शोष-रोगसे पीडित हो ऐसे रक्तपित्तरोगीको वमन आर विरेचन नहीं कराने चाहिये, किन्तु स्तंभन औषधिके द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ ७ ॥

वृषपत्राणि निष्पीडच रसं समधुशर्करम् ।
पिबेत्तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ८ ॥

अडूसेके पत्तोंको एक बर्त्तनमें भरकर और दूसरे बर्त्तनसे उसको ढककर कुछ देरतक अग्निपर गरम करे । फिर उनको निचोडकर रस निकाल लेवे । उसमेंसे दो दा ताल प्रमाण रसको शहद और मिश्रीमें मिलाकर पीनेसे दारुण रक्तपित्तरोग शमन होता है ॥ ८॥

समाक्षिकःफल्गुफलोद्भवो वा पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति॥९॥

कठूमरके फलोंका रस २ तोले लेकर शहदमें मिलाकर पीनेसे रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता ।
श्लेष्माणं रक्तपित्तं च हन्ति शूलातिसारनुत ॥ १० ॥

हरडको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे आमका परिपाक होकर अग्नि दीपन होती है एवं कफ, रक्तपित्त, शूल और अतिसार आदि रोग शीघ्र दूर होते हैं१०॥

वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ ११ ॥

अडूसेके रसमें हरडको सातवार भावना देकर सेवन करनेसे अथवा पीपलको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्तरोग शीघ्र दूर होता है ॥ ११ ॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यपथ्याखर्जूरगोस्तनाः ।
मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

गूलरके पके फल, कुम्भेर, हरड, खजूर और दाख ये सब औषधि रक्तपित्तरोगनाशक हैं। इसलिये रक्तपित्तको दूर करनेके लिये इनमेंसे किसी एक औषधिको शहदमें मिलाकर सेवन करे ॥ १२ ॥

खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ।
पुष्पं चूर्णं तु मधुना लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ १३ ॥

खैर, फूलप्रियंगु, कचनार और सेमल इनमेंसे किसी एकके फूलोंका चूर्ण शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ १३ ॥

लाक्षाचूर्णं सुकृतं क्षौद्राज्यसमन्वितं सकृल्लीढम् ।
शमयति सोद्धतवमनं सरक्तपित्तस्य सिद्धमिदम् ॥१४॥

लाखका बारीक चूर्ण ६ मासे लेकर शहद और घीमें मिलाकर एकबार चाटनेसे ही वमन और रक्तपित्त दूर होता है ॥ १४ ॥

द्राक्षामधुककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ।
यष्टीमधुकयुक्तं च सक्षौद्रं वमने हितम् ॥ १५ ॥

रक्तपित्तरोगमें—दाख, मुलहठी और कुम्भेर इनके चूर्णको मिश्रीमें मिलाकर विरेचनके लिये और मुलहठीके चूर्णको शहदमें मिलाकर वमनके लिये देना अत्युत्तम है ॥ १५ ॥

लङ्घितस्य ततः पेयां विदध्यात्स्वल्पतण्डुलाम् ।
तर्पणं पाचनं लेहान् सर्पींषि विविधानि च ॥ १६ ॥

लंघन करानेके पश्चात् थोडे चावलोंकी बनाई हुई पेया पान करावे फिर तर्पण पाचन, अवलेह और विविध प्रकारके घृत प्रयोग करे ॥ १६ ॥

तर्पणं सघृतक्षौद्रलाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं तत्पीतकाले व्यपोहति ॥ १७ ॥

जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोगमें खीलोंके चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर रोगीको खानेके लिये देवे अथवा छुहारा, दाख, मुलहठी और फालसे इनका षडंग पानीय विधिके अनुसार बनाया हुआ शीतल क्वाथ मिश्री मिलाकर पान करानेसे रक्तपित्त-रोग शमन होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकः सन्निपातोर्द्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें यदि हो -सोत, त्रिफला, अनन्तमूल और पीपल इन सबका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णसे दुगुनी खाँड एवं शहद मिलाकर लड्डू बनालेवे । इनके सेवनसे ऊर्ध्वगत रक्तपित्त और सन्निपात ज्वर दूर होता है ॥१९॥

शालपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते ।
वमनं मदनोन्मिश्रो मन्थः सक्षौद्रशर्करः ॥ २० ॥

अधोगत रक्तपित्तमें पहले शालपर्णी आदि स्वल्प पञ्चमूलके क्वाथमें सिद्ध की हुई पेया सेवन करावे । फिर वमनक लिये मैनफल, शहद और खांड मिलाहुआ मन्थ बनाकर देवे ॥ २० ॥

विना शुण्ठीं षडङ्गेन सिद्धं तोयं च दापयेत् ॥ २१ ॥

रक्तपित्तरोगीको ज्वराधिकारमें कहेहुए षडंग पानीयकी औषधियों (नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, खस, सोंठ और लालचन्दन) मेंसे सोंठको निकालकर अन्य ५ औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ ठंढा क्वाथ पान करावे ॥ २१ ॥

आटरूषकनिर्यूहे प्रियंगूमृत्तिकाञ्जने ।
विनीय लोध्रं सक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ २२ ॥

अडूसेके क्वाथमें फूलप्रियंगु, मृत्तिका, अञ्जन, लोध और शहद डालकर पीनेसे रक्तपित्त दूर होता है ॥ २२ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुलोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि ।
पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानिहन्यात्पित्तासृजोवेगमुदीर्णमाशु॥२३॥

अडूसेके क्वाथमें उत्पल (नीलोफर), गोपीचन्दन, फूलप्रियंगु, लोध, रसौंत और कमलकी केशर इनका समान भाग चूर्ण शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त वेगवान् रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ २३ ॥

तालीशचूर्णसहितः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः ।
कफपित्ततमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः ॥ २४ ॥

अडूसेके स्वरसमें तालीशपत्रका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे कफपित्त, तमकश्वास, स्वरभेद और रक्तपित्तरोग शमन होता है ॥ २४ ॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २५ ॥

रक्तपित्त, श्वास, क्षय और खाँसीवाले रोगियोंके लिये अडूसेकी समान अन्य हितकर औषधि नहीं है । इसलिये अडूसेके विद्यमान रहतेहुए उक्तरोगवाले मनुष्य जीवनकी आशा करनेमें क्यों दुःखी होते हैं ? ॥ २५ ॥

मदयन्त्यङ्घ्रिजः क्वाथस्तद्वत् समधुशर्करः ।

मोतियाकी जडके क्वाथमें शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ॥

अतसीकुसुमसमङ्गा वटावरोहत्वगम्भसा पीता ।
प्रशमयति रक्तपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण ॥ २६ ॥

अलसीके फूल, लज्जावन्ती, वडके अंकुर और छाल इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर पान करनेसे और मूँगके यूषका पथ्य देनेसे रक्तपित्त शमन होता है ॥ २६ ॥

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा ।
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं चेक्षुरसं हितं वा ॥२७॥

नासिकाके द्वारा रक्तस्राव होनपर तत्काल जलको अथवा दूधको शर्करा मिलाकर नासिकाद्वारा पान करे । अथवा दाखोंका स्वरस (या क्वाथ) या दूधमेंसे निकला-हुआ घी अर्थात् मक्खन अथवा ईखका रस मिश्री मिलाकर नासिकासे पान करना हितकर है ॥ २७ ॥

नस्यं दाडिमपुष्पाख्यो रसो दूर्वाभवोऽथवा ।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित् ॥ २८ ॥

अनारके फुलोंका रस अथवा दूबका स्वरस आमकी गुठलीका चूर्ण अथवा प्याजका स्वरस इनमेंसे किसी एक रसका नस्य लेनेसे नासिकाके द्वारा रक्तका स्राव होना दूर होता है ॥ २८ ॥

रसो दाडिमपुष्पस्य दूर्वारससमन्वितः ।
अलक्तकरसोपेतः पथ्यया वा समन्वितः ॥ २९ ॥
योजितो नस्यतः क्षिप्रं त्रिदोषमपि देहिनाम् ।
नासाप्रवृत्तं रक्तं तु हन्यादेव न संशयः ॥ ३० ॥

अनारके फूलोंका स्वरस और दूबका स्वरस दोनोंको एकत्र मिलाकर अथवा आलका क्काथ और हरडका कषाय मिलाकर नस्य देनेसे त्रिदोषजनित नासिकागत रक्तस्राव निस्सन्देह तत्काल बन्द होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ।
सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ३१ ॥

आमलोंको खूब बारीक पीसकर और घीमें भूनकर मस्तकपर लेप करे तो नासिकासे होनेवाला रक्तस्राव इस प्रकार तत्काल नष्ट होता है, जैसे पुलके द्वारा जलका वेग रुक जाता है ॥ ३१ ॥

मेढ्रगेऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।
शृतं क्षीरं पिबेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया ॥ ३२ ॥

लिंगके द्वारा रक्तका स्राव होनेपर प्रथम वस्तिक्रिया करे । फिर पंच तृणमूल (कुशा, काँस, रामरस, काली ईख और धान पाँचोंकी जडको पंच तृणमूल कहते हैं) को दूधमें औटाकर पान करे तो लिंगगत रक्तपित्त रोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

ह्रीबेरादि ।

ह्रीबेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकाऽमृताः ।
उशीरं च त्रिवृच्चैषां क्काथं समधुशर्करम् ॥ ३३ ॥
पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तस्रुतिः प्रशाम्यति ।
रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा ॥ ३४ ॥

सुगन्धवाला, नीलकमल, धनियाँ, लालचन्दन, मुलहठी, गिलोय, खस और निसोथ इनके क्वाथको शहद और चीनी मिलाकर पान करानेसे दारुण रक्तपित्त, रुधिरका स्राव, तृषा, दाह और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ३३ ॥ ३४ ॥

वासकादि ।

वासापत्रसमुद्भूतो रसः समधुशर्करः ।
क्वाथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ३५ ॥

अडूसेके पत्तोंका स्वरस अथवा क्काथ शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त दारुण रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

धान्यकादि ।

धन्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ।
रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत् ॥ ३६ ॥

धनियाँ, आमले, अडूसेके पत्ते, दाख और पित्तपापडा इनके शीतल क्काथको शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृषा और शोष आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

अटरूषकादि ।

अटरूषकमृद्वीकापथ्याक्काथः सशर्करः ।
क्षौद्राढ्यः श्वसनोत्क्लेशरक्तपित्तनिवारणः ॥ ३७ ॥

अडूसा, दाख और हरड इनके क्वाथमें चीनी और शहद डालकर पान करनेसे कठिनतासे श्वासका लेना, रक्तवमन, रक्तपित्त आदि रोग निवृत्त होते हैं ॥ ३७ ॥

उशीरादिचूर्ण ।

उशीरं तगरं शुण्ठी कक्कोलं चन्दनद्वयम् ।
लवङ्गं पिप्पलीमूलं कृष्णैला नागकेशरम् ॥ ३८ ॥
मुस्ता मधुककर्पूरं तुगाक्षीरी च पत्रकम् ।
कृष्णागुरुसमं चूर्णं सिता चाष्टगुणा तथा ।
रक्तवान्तिं च तापं च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३९ ॥

खस, तगर, सोंठ, कङ्कोल, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, लवङ्ग, पीपलामूल, बडी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, मुलहठी, कपूर, वंशलोचन और तेजपात इन सब औषधियोंका चूर्ण समान भाग और काली अगरका चूर्ण सम्पूर्ण चूर्णके बराबर भाग लेवे । फिर अगरके चूर्णसहित सब चूर्णसे अठगुनी मिश्री मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल छः छः माशे परिमाण सेवन करे । इसका सेवन करनेसे रक्तवमन और शरीरका दाह नष्ट होता है ॥ ३८–३९ ॥

एलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं तथा ।
सितामधुककखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ४० ॥

सञ्चूर्ण्य मधुना युक्तां गुटिकां कारयेद्भिषक्।
अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने ॥ ४१ ॥

इलायची १ तोला, तेजपात १ तोला, दालचीनी १ तोला, पीपल दो तोले और मिश्री, मुलहठी, खजूर और दाख ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके शहदके साथ खरल कर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय एक एक गोली सेवन करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम्।
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ४२ ॥
शोषप्लीहामवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम्।
गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

इसको सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, ज्वर, हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, तृषा, पसलीकी पीडा, अरुचि, शोषरोग, तिल्ली, आमवात, स्वरभेद, क्षतक्षय और रक्तपित्तादि सब रोग नष्ट होते हैं। यह वटी वीर्यवर्द्धक और तृप्तिकारक है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अर्केश्वररस।

मृतार्कं मृतवङ्गं च मृताभ्रं च समाक्षिकम्।
अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिसप्तकपुटे पचेत् ॥ ४४ ॥
वासाक्षीरविदारीभ्यां चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
भक्षणाद्विनिहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ४५ ॥

ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर गिलोयके स्वरसमें २१ बार भावना देवे, फिर सम्पुटमें रखकर पकावे तो अर्केश्वर रस सिद्ध होता है। इसको चार चार रत्तीकी मात्रासे अडूसा और दूध विदारीकन्दके स्वरस वा क्वाथके साथ प्रतिदिन सेवन करनेसे अत्यन्त दारुण रक्तपित्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तान्तकरस।

मृताभ्रं मृततीक्ष्णं च माक्षिकं रसतालकम्।
गन्धकं च भवेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षामृताद्रवैः ॥ ४६ ॥
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे सिताक्षौद्रसमन्वितम्।
माषमात्रं निहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥
ज्वरं दाहं क्षतक्षीणं तृष्णां शोषमरोचकम् ॥ ४७ ॥

अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध हरताल और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर मुलहठी, दाख और गिलोय इन प्रत्येकके काथमें एक एक दिनतक खरल करे । फिर नित्यप्रति प्रातःकाल इसको एक एक मासे परिमाण मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करे । इससे दुस्तर रक्तपित्त, ज्वर, दाह, क्षतक्षय, तृषा, शोथ और अरुचि आदि रोग दूर होते हैं ॥ ४६-४७ ॥

रसामृतरस ।

रसस्य द्विगुणं गन्धं माक्षिकं च शिलाजतु ।
गुडूची चन्दनं द्राक्षा मधुपुष्पं च धान्यकम् ॥ ४८ ॥
कुटजस्य त्वचं बीजं धातकी निम्बपत्रकम् ।
यष्टीमधुसमायुक्तं मधुशर्करयाऽन्वितम् ॥ ४९ ॥
विधिना मर्दयित्वा तु कर्षमात्रं तु भक्षयेत् ।
धारोष्णपयसा युक्तं प्रातरेव समुत्थितः ॥ ५०
पित्तं तथाऽम्लपित्तं च रक्तपित्तं विशेषतः ।
निहन्ति सर्वदोषं च ज्वरं सर्वं न संशयः ॥
रसामृतरसो नाम गह्ननानन्दभाषितः ॥ ५१ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध शिलाजीत, गिलोय, लालचन्दन, दाख, महुएके फूल, धनियाँ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, धायके फूल, नीमके पत्ते और मुलहठी—ये प्रत्येक एक एक भाग लेवे । सब औषधियोंको यथाविधि एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला परिमाण लेकर शहद और मिश्री मिलाकर धारोष्ण दूधके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेसे पित्त, अम्लपित्त, विशेषकर रक्तपित्त, ज्वर और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकार नष्ट होते हैं । इस रसामृतनामक रसको श्रीगह्ननानन्दजीने निर्माण किया है ॥४८-५१॥

सुधानिधिरस ।

सूतं गन्धं माक्षिकं लौहचूर्णं सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन ।
मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा दद्याद् गुंजां त्रैफलेनोदकेन ॥
लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोनामाखीकी भस्म, लोहभस्म इन सबको समान भाग लेकर त्रिफलेके क्काथमें एकदिनतक खरल करके एक घडियामें रखकर भूधरयन्त्रमें पकावे। जब पककर शीतल होजाय तब औषधि निकालकर खरल करलेवे। इसको प्रतिदिन रात्रिके समय एक एक रत्तीकी मात्रासे त्रिफलेके क्काथके साथ सेवन करावे और ऊपरसे लोहेके पात्रमें गायका दूध औटाकर पान करावे। यह रस रक्तपित्तको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है ॥ ५२ ॥

कपर्द्दकरस ।

मृतं वा मूर्च्छितं सूतं कार्पासकुसुमद्रवैः ।
मर्दयेद्दिनमेकं तु तेन पूर्या वराटिका ॥ ५३ ॥
निरुध्य चान्धमूषायां भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत् ।
उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं मरिचैर्द्विगुणैः सह ॥ ५४ ॥
गुञ्जामात्रं घृतेनैव भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
उदुम्बरं घृतं चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥
कपर्दकरसो नाम रक्तपित्तविनाशनः ॥ ५५ ॥

रससिन्दूर अथवा शुद्ध कियेहुए पारेको कपासके फूलोंके रसमें एक दिनतक खरल करके कौडीमें भरलेवे फिर उस कौडीको अन्धमूषानामक यन्त्रमें रखकर और उस यन्त्रको मिट्टीके पात्रमें बन्द करके पुटपाक करे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर अपने आप शीतल होजाय तब औषधि निकालकर उसमें दुगुना काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर लेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक रत्ती प्रमाण घृतके साथ मिलाकर सेवन करे। अनुपान–गूलरका रस और घृत। यह कपर्दकनामक रस रक्तपित्तनाशक है ॥ ५३–५५ ॥

समशर्कर लौह ।

लौहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम् ।
चूर्णं पादं तु वैडङ्गं दद्यान्मधुसिते समे ॥ ५६ ॥
ताम्रपात्रे शुभे पक्त्वा स्थापयेद् घृतभाजने ।
माषकादिक्रमेणैव भक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥
अनुपानं प्रयुञ्जीत नारिकेलजलादिकम् ।
रक्तपित्तं जयेत्तीव्रमम्लपित्तं क्षतक्षयम् ॥
पुष्टिदं कान्तिजननमायुष्यं वृष्यमुत्तमम्॥ ५८ ॥

लोहभस्म ४ तोले, बकरीका दूध १६ तोले, घी ८ तोले, मिश्री ४ तोले, शहद ४ तोले और वायविडङ्गका चूर्ण लोहभस्मसे चौथाई भाग लेवे । प्रथम ताँबेके एक उत्तम पात्रमें लोह भस्म, दूध, घी और मिश्री इनको एकत्रकर पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें वायविडङ्गका चूर्ण मिलादेवे और शीतल होजानेपर शहद डालकर घीके चिकने बासनमें भरकर रख-देवे । इसको प्रतिदिन एक एक मासेकी मात्रासे सेवन करने और ऊपरसे नारियलका जल पान करनेसे तीव्र अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षतक्षय आदि रोग दूर होते हैं । यह लोह-अत्यन्त पुष्टिकारक, कान्तिजनक, आयुकी वृद्धि करनेवाला और वृष्य-तम है ॥ ५६-५८ ॥

शतमूल्यादिलौह ।

शतमूलीसिताधान्यनागकेशरचन्दनैः ।
त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लोहं सर्वगदापहम् ॥
तृष्णादाहज्वरच्छर्दिरक्तपित्तहरं परम् ॥ ५९ ॥

शतावर, मिश्री, धनियाँ, नागकेशर, लाल चन्दन, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग नागरमोथा, चीतेके जडकी छाल और काले तिल इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म मिलाकर एकत्र खरल करके रखलेवे । उसको उचित मात्रासे नित्य शहदमें मिलाकर सेवन करे । इससे तृषा, दाह, ज्वर, वमन और रक्तपित्त दूर होता है ॥ ५९ ॥

शर्कराद्यलौह ।

शर्करातिलसंयुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः ।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चाम्लपित्तहरं परम् ॥ ६० ॥

मिश्री, काले तिल, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडंङ्ग, नागरमोथा, चीता सब समान भाग ले सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त और रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६० ॥

रक्तपित्तान्तकलौह ।

धात्री च पिप्पलीचूर्णं तुल्यं तु सितया सह ।
रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिति स्मृतम् ॥ ६१ ॥
वृष्याग्निदीपनं बल्यमम्लपित्तविनाशनम् ।
पित्तोत्थानपि वातोत्थान्निहन्ति विविधान् गदान् ॥ ६२ ॥

आमले, पीपल और मिश्री प्रत्येक एक एक तोला और लोहभस्म ३ तोले इन सबको जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे। यह योगराज-लोह रक्तपित्त, अम्लपित्त और पित्तज तथा वातज अनेक प्रकारके विकारोंको नष्ट करता है। एवं अग्निको दीपन करनेवाला और बल-वीर्यवर्द्धक है॥

खंडकाद्यलौह।

शतावरीच्छिन्नरुहा वृषमुण्डीतिका बला।
तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा॥ ६३॥
भार्ङ्गी पुष्करमूलं च पृथक् पञ्चपलानि च।
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम्॥ ६४॥
दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा।
पलद्वादशकं देयं कान्तालौहस्य चूर्णितम्॥ ६५॥
खण्डतुल्यं घृतं देयं पलं षोडशिकं बुधैः।
पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा॥ ६६॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो देय शुभाश्मजतुकं त्वचम्।
शृङ्गी कृष्णा विडङ्गं च शुण्ठ्यजाजी मलं पलम्॥ ६७॥
त्रिफला धान्यकं पत्रं द्व्यक्षं मरिचकेशरम्।
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत्॥ ६८॥

शतावर, गिलोय, अडूसेकी छाल, गोरखमुंडी, गंगेरन, मुसली, खैरसार, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि बीस बीस तोले लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर मैनसिलके द्वारा अथवा सुवर्णमाक्षिकके द्वारा भस्म किया हुआ कान्तलोह ४८ तोले खाँड ६४ तोले और घी ६४ तोले लेकर सबको उक्त काथके साथ ताँबेके बर्त्तनमें पकावे, जब पकते पकते गुडपाककी समान गाढा होजाय तब उसमें वंश-लोचन, सिलाजीत, दारचीनी, काकडासिंगी, वायविडङ्ग, पीपल, सोंठ और काला जीरा यत्येक चार चार तोले, एवं त्रिफला, धनियाँ, तेजपात, काली मिरच और केशर प्रत्येक दो दो तोले बारीक पीसकर डाल देवे और शीतल होनेपर ३२ तोले शहद मिलाकर चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे॥ ६३-६८॥

यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदकं ततः ।
गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यो मांसरसः पयः ॥ ६९ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहणम् ।
रक्तपित्तं क्षयं कासं पंक्तिशूलं विशेषतः ॥ ७० ॥
वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ।
श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ७१ ॥
आनाहं शोणितस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च ।
चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्य प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ७२ ॥
आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम् ।
श्रीकरं लाघवकरं खण्डकाद्य प्रकीर्त्तितम् ॥ ७३ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःसायकाल एक एक तोला परिमाण सेवन करे । अनुपान–गोदुग्ध । इसपर मांसरस, दूध, गुरुपाकी वीर्यवर्द्धक स्निग्ध अन्नपान और मांसादि पौष्टिक पदार्थ सेवन करने चाहिये । यह लौह रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, परिणामशूल वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, क्लम, सूजन, पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग अफारा, रुधिरस्राव, और अम्लपित्त इन सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करताहै । एवं नेत्रोंको हितकर, अत्यन्त पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, कल्याणकारक, स्नेहवर्द्धक, आरोग्य-प्रद, पुत्रजनक, कामाग्नि, और बलकी वृद्धि करनेवाला है तथा कान्तिजनक और लघुता उत्पन्न करनेवाला है । इसको खण्डकाद्यलौह कहते हैं ॥ ६९–७३ ॥

कूष्माण्डखण्ड ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
पचेत्तते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे ॥ ७४ ॥
यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत् ।
पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ ७५ ॥
त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्द्धकम् ।
न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्तु दर्व्या संघट्टयेत्पुनः ॥
तत्पक्कं स्थापयेद्भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्द्धकम् ॥ ७६ ॥

एक उत्तम पुराने पेठेको छीलकर और बीज निकालकर साफ करलेवे । फिर उसको जलमें कुछदेर उबालकर, वस्त्रमें निचोडकर उसका रस निकाललेवे, फिर

उस पेठेको धूपमें सुखालेवे। पश्चात् उक्त सुखायेहुए पेठेके टुकडोंका १०० पल चूर्णको एक उत्तम ताँबेके पात्रमें डालकर एक प्रस्थ गरम घृतमें धीरे धीरे भूने, जब वह भुनते २ मधुकी समान लाल होजाय तब उसको पूर्वोक्त पेठेके रसके साथ सौ पल खाँड मिलाकर यथाविधि पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पाक सिद्ध होजाय तब पीपल, सोंठ और जीरा प्रत्येक दो पल, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, काली मिरच और धनियाँ ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले बारीक पीसकर मिलादेवे और शीतल होजानेपर ६४ तोले शहद डालकर करछीसे सबको एकमएक करके घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ७४–७६

तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ ७७ ॥
कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसादनम् ॥ ७८ ॥
उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरवर्द्धनम्।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ ७९ ॥
[" खण्डामलकमानानुसारात्कूष्माण्डकद्रवात्।
पात्रं पाकाय दातव्यं यावद्वाऽत्र रसो भवेत् ॥
अत्रापि मुद्रया पाको निस्त्वचं निष्कुलीकृतम् ॥ ८० ॥"]

इसको प्रतिदिन अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करे और बकरीके गरम दूधका अनुपान करे। इसके सेवनसे रक्तपित्त, क्षतक्षय, खाँसी, श्वास, तमक, तृषा, ज्वर आदि रोगोंसे पीडित रोगी शीघ्र आरोग्य होता है। यह औषधि अत्यन्त वीर्य-वर्द्धक, शरीरको फिरसे नवीन करनेवाली, बल और वर्णको उत्पन्न करनेवाली, उरःसन्धानकारक, पौष्टिक और स्वरवर्द्धक है। इस कूष्माण्डखण्ड नामक उत्तम रसायनको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ ८०

वासाकूष्माण्डखण्ड।

पञ्चाशच्च पलं स्विन्नं कूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः।
ग्राह्यं पलशतं खण्डं वासाक्काथाढके पचेत् ॥ ८१ ॥
मुस्ता धात्री शुभा भार्ङ्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकैः।
ऐलेयविश्वधन्याकमरिचैश्च पलांशिकैः ॥ ८२ ॥
पिप्पलीकुडवं चैव मधुमानीं प्रदापयेत्।
एतच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेत्पुनः ॥ ८३ ॥

कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् ।
हृद्रोगमम्लपित्तं च पीनसं च व्यपोहति ॥ ८४ ॥

एक उत्तम पकाहुआ पेठा लेकर और उसको छीलकर तथा बीज निकालकर कुछ उबालकर सुखालेवे । ऐसे पेठेके टुकडोंको ५० पल लेकर और उनको पीसकर एक प्रस्थ घृतमें उत्तम प्रकारसे भूनलेवे । फिर उसको अडूसेके २५६ तोले क्वाथमें ४०० तोले खाँडके साथ धीरे धीरे पकावे । जब पाक यथाविधि सिद्ध होजाय तब उसमें नागरमोथा, आमले, वंशलोचन, भारंगी, दारचीनी, तेजपात और छोटी इलायची ये प्रत्येक एक एक कर्ष, एलुआ, सोंठ, धनियाँ और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक तोला और पीपल १६ तोले इन सबको बारीक पीसकर डालदेवे और शीतल होजानेपर ३२ तोले शहद डालकर करछीसे सबको एकमएक करके घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस वासाकूष्माण्डखण्डको प्रतिदिन छः छः मासे प्रमाण सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, हलीमक, हृदयरोग, अम्लपित्त और पीनस ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ८१-८४ ॥

वासाखण्ड ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले ।
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ ८५ ॥
चूर्णानामभयानां च खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ॥ ८६ ॥
कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं च चूर्णितम् ।
क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥
कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीडितः ॥ ८७ ॥

अडूसेको १०० पल लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । उस क्वाथमें सौ पल शुद्ध खाँड डालकर पकावे । जब अच्छे प्रकारसे चासनी होजाय तब उसमें हरडोंका चूर्ण २५६ तोले और पीपलका चूर्ण ८ तोले डालकर अग्निसे नीचे उतार लेवे । शीतल होजानेपर दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण ४ तोले एवं शहद ३२ तोले डालकर करछीसे सबको मिलादेवे) इस औषधिको छः छः मासेकी मात्रासे प्रतिदिन सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत, खाँसी, श्वास और यक्ष्मारोगसे पीडित रोगी आरोग्यलाभ करता है । ८५-८७ ॥

बृहत्कूष्माण्डावलेह ।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं दृढम् ।
तद्बीजाधारबीजत्वक्-शिराशून्यं समाचरेत् ॥ ८८ ॥
ततोऽतिसूक्ष्मखण्डानि कृत्वा तस्य तुलां पचेत् ।
गोदुग्धस्य तुलामध्ये मन्देऽग्नौ वा पचेच्छनैः ॥ ८९ ॥
शर्करायास्तुलां सार्द्धां गोघृतं प्रस्थमात्रकम् ।
प्रस्थार्द्धं माक्षिकं चापि कुडवं नारिकेलतः ॥ ९० ॥
पियालफलमज्जानां द्विपलं गोक्षुरी पलम् ।
क्षिपेदेकत्र विपचेल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ९१ ॥

उत्तम पकेहुए पुराने और एक दृढ पेठेको लेकर और उसको छीलकर बीज और छिलके रहित करलेवे । फिर उसको कुछ उबालकर और उसको वस्त्रमें रस निचोडकर छोटे २ टुकडे करके धूपमें सुखालेवे । ऐसे पेठेके ४०० तोले टुकडोंको चार सौ तोले गोदुग्धमें धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब वह अच्छी तरह पकजाय तब १५० पल खाँड, ६४ तोले गोघृत, शहद ३२ तोले, नारियल १६ तोले, चिरौंजीकी मींग ८ तोले, गोखुरू ४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर लेहकी समान पकावे ॥ ८८-९१ ॥

भिषक् सुपक्वमालोक्य ज्वलनादवतारयेत् ।
कोष्णे तत्र क्षिपेदेषां चूर्णं तानि वदाम्यहम् ॥ ९२ ॥
एकोऽक्षः शतपुष्पाया अथ क्षारो यमानिका ।
गोक्षुरः क्षुरकः पथ्या कपिकच्छुफलानि च ॥ ९३ ॥
सप्तमी त्वक् च सर्वेषामक्षयुग्मं पृथक् पृथक् ।
धान्यकं पिप्पलीमुस्तमश्वगन्धा शतावरी ॥ ९४ ॥
तालमूली नागबला बालकं पत्रकं शठी ।
जातीफलं लवङ्गं च सूक्ष्मैला बृहदेलिका ॥
शृङ्गाटकं पर्पटकं सर्वं पलमितं पृथक् ॥ ९५ ॥
चन्दनं नागरं धात्री फलं चापि कशेरुकम् ।
प्रत्येकं पञ्चकर्षाणि चत्वार्येतानि निक्षिपेत् ॥
पलद्वयमुशीरस्य मसनस्योषणस्य च ॥ ९६ ॥

वैद्य पाकको उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुआ जानकर चूल्हेपरसे उतारलेवे । कुछगरम रहनेपर उसमें नीचे लिखी औषधियोंका चूर्ण मिलादेवे । सोंफका चूर्ण २ तोले, जवाखार, अजवायन, गोखुरू, तालमखाना, हरड, कौंचके बीज और दालचीनी ये प्रत्येक चार चार तोले, धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, असगन्ध, शतावर, मुसली, गंगेरन, सुगन्धवाला, तेजपात, कचूर, जायफल, लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, सिंघाडे और पित्तपापडा ये सब एक एक पल, लाल चन्दनका चूरा, सोंठ, आमले और कशेरू ये चारों पाँच पाँच कर्ष लेवे एवं खस ८ तोले, बावची ८ तोले और काली मिरच ८ तोले—सबको एकत्र मिलाकर मिट्टीके एक नवीन चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥ ९२-९६ ॥

कूष्माण्डस्यावलेहोऽयं भक्षितः पलमात्रया ।
किंवा यथावह्निबलं भुक्त्वा रोगं विनाशयेत् ॥ ९७ ॥
रक्तपित्तं शीतपित्तमम्लपित्तमरोचकम् ।
वह्निमान्द्यं सदाहं च तृषां प्रदरमेव च ॥ ९८ ॥
रक्तार्शोऽपि तथा च्छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् ।
उपदंशं विसर्पं च जीर्णं च विषमज्वरम् ॥ ९९ ॥
लेहोऽयं परमो वृष्यो बृंहणो बलवर्द्धनः ।
स्थापनीयःप्रयत्नेन भाजने मृन्मये नवे ॥ १०० ॥

इसको प्रतिदिन प्रातःसायंकाल चार चार तोले अथवा अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करनेसे रक्तपित्त, शीतपित्त, अम्लपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, तृषा, प्रदर, रुधिरकी बवासीर, वमन, पाण्डु, कामला, उपदंश, विसर्प, जीर्णज्वर और विषमज्वर आदि रोग शीघ्रही नष्ट होते हैं । यह अवलेह अत्यन्त बल-वीर्य्य-वर्द्धक और पुष्टिकारक है । इसको बृहत् कूष्माण्डावलेह कहते हैं ॥

त्रिवृत्तादिमोदक ।

त्रिवृत्ता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकं सन्निपातोर्द्ध्वरक्तपित्तज्वरापहम् ॥ १ ॥

निसोत, त्रिफला, फूलप्रियंगु, पीपल और खाँड—सबको समान भाग लेकर यथाविधि मधुके साथ मिलाकर मोदक बनालेवे । इसमेंसे प्रतिदिन छः छः मासे मोदकको शीतल जलके साथ सेवन करनेसे सन्निपातजन्य ऊर्ध्वगत रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है ॥ १ ॥

वासाद्यघृत।

वासां सशाखां सफलां समूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः।
प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं च
क्षौद्रेण पानाद्धिनिहन्ति रक्तम् ॥ २ ॥
("शणस्य कोविदारस्यवृषस्य ककुभस्य च।
कल्काढचत्वाःपुष्पकल्कं प्रस्थे पलचतुष्टयम्" ॥)

शाखा, फल और जडसहित अडूसेको ४ सेर लेकर ३२ सेर जलमें पकाकर ८ सेर जल शेष रक्खे। फिर उस क्वाथमें अडूसेके फूलोंका कल्क आठ तोले और गोघृत १ सेर डालकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। इस घृतको शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। (किसी २ के मतसे इसमें—सन, कचनार, अडूसा और अर्जुन—इनके फूलोंका कल्क, चार पल, घी १ प्रस्थ डालकर घृतको पकाना चाहिये) ॥ २ ॥

दूर्वाद्यघृत।

दूर्वा सोत्पलकिंजल्का मञ्जिष्ठा सैलवालुका।
सिता शीतमुशीरं च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ३ ॥
विपचेत्कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना।
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥
तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते।
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत ॥ ५ ॥
चक्षुःस्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी।
मेढ्रपायुप्रवृत्ते च बस्तिकर्मसु तद्धितम् ॥
रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत ॥ ६ ॥

दूब, कमल, कमलकी केशर, मँजीठ, एलुआ, मिश्री, सफेद चन्दन, खस, नागरमोथा, लालचन्दन और पद्माख—प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष एवं चावलोंका जल और बकरीका दूध सब औषधियोंसे चौगुना, बकरीका घी १ सेर लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि मन्द मन्द अग्निके द्वारा घृतको सिद्ध करे। इस दूर्वाद्यघृतको-वमनके द्वारा रक्तस्राव होनेपर पान करे, नासिकाके द्वारा

रुधिरका स्राव होनेपर नस्य देवे । कानामेंसे रक्तस्राव हो तो इस घृतको कानोंमें डाले । नेत्रोंमेंसे रुधिरका स्राव होनेपर नेत्रोंमें भरे, जो लिङ्ग और गुदाके द्वारा रक्तस्राव हो तो इस घृतकी पिचकारी लगावे और रोमकूपोंके द्वारा रक्तस्राव होय तो इस घृतकी शरीरमें मालिश करे ॥ ३-६ ॥

सप्तप्रस्थघृत ।

शतावरीपयोद्राक्षाविदारीक्ष्वामलै रसैः ।
सर्पिषा सह संयुक्तैः सप्तप्रस्थं पचेद् घृतम् ॥ ७ ॥
शर्करापादसंयुक्तं रक्तपित्तहरं पिबेत् ।
उरःक्षते पित्तशूले चोष्णवातेऽप्यसृग्दरे ।
बल्यमोजस्करं वृष्यं क्षयहृद्रोगनाशनम् ॥ ८ ॥

शतावर, सुगन्धवाला, दाख, विदारीकन्द, ईख और आमले इन सबका स्वरस और गोघृत ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे । सबको घृतके साथ मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उसमें १६ तोले शुद्ध खांड मिलादेवे । इस घृतको प्रतिदिन छः छः मासे पान करनेसे रक्तपित्त, क्षय और हृदयरोग दूर होता है । यह घृत उरःक्षत, पित्तशूल उष्णवात और रक्तप्रदर रोगोंमें हितकारी एवं बल, ओज और वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि करता है तथा क्षय और हृदयरोगको नष्ट करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

शतावरीघृत ।

शतावर्यास्तु मूलानां रसं प्रस्थद्वयं मतम् ।
तत्समं च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९ ॥
जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च ।
काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीकामधुकं तथा ॥ ११० ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ।
शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद् घृतम् ॥ ११ ॥

शतावरका रस दो प्रस्थ, गौका दूध दो प्रस्थ, उत्तम घृत १ प्रस्थ तथा जीवक ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली दाख, मुलहठी, मुगवन, मषवन, विदारीकन्द और लालचन्दन इनका कल्क १६ तोले डालकर घृतको सिद्ध करे । जब घृत अच्छे प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसमें सोलह-सोलह तोले मिश्री और शहद मिलाकर उतार लेवे ॥ १०९-१११ ॥

रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ।
क्षीणशुक्रेषु दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ १२ ॥
अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ।
योनिशूलं च दाहं च मूत्रकृच्छ्रं च पैत्तिकम् ॥ १३ ॥
एतान्रोगान्निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।
शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
स्नेहपादः स्मृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे ॥ १४ ॥

इस घृतको रक्तपित्त. वातरक्त और शुक्रकी क्षीणतामे देना चाहिये । यह अत्यन्त वाजीकरण है एव शरीरकी दाह, शिरोदाह, पित्तज्वर, योनिशूल सर्व प्रकारकी कफ और पित्तज मूत्रकृच्छ्र इन समस्त विकारोंको इस प्रकार नष्ट करदेताहै जैसे वायुके वेगसे मेघोंका समूह तत्काल छिन्न भिन्न होजाताहै । यह शतावरीघृत बल, वर्ण और जठराग्निकी विशेष वृद्धि करता है ॥ १२-१४ ॥

बृहच्छतावरीघृत ।

शतावरीमूलतुलाश्चतस्रः संप्रपीडयेत् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम् ॥ १५ ॥
जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैःपियालैश्चाक्षांशैर्द्वियष्टिमधुकैर्भिषक् ॥ १६ ॥
सिद्धशीते च मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
दत्त्वा दशपलं चात्र सितायास्तद्विमिश्रितम् ॥ १७ ॥

शतावरकी जडको कूट पीसकर वस्त्रमें निचोडकर रस निकाल लेवे । ऐसा रस ४०० पल. गौका दूध ४०० पल और घी १ आढक लेवे । सबको एकत्र मिलाकर घृतको पकावे । कुछ देर बाद जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली जीवन्ती, मुलहठी, मुगवन, मषवन, शतावर, दाख, फालसे, चिरौंजी मुलहठी और महुआ प्रत्येक औषधिको दो दो तोले पीसकर डालदेवे । जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारलेवे । शीतल होनेपर घृतको छानकर उसमें शहद ३२ तोले, पीपलका चूर्ण ३२ तोले और मिश्री ४० तोले डालकर सबको अच्छी तरह मिला देवे ॥ ११५-१७

ब्राह्मणान्प्राशयेत्पूर्वं लिह्यात्पाणितलं ततः ।
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं च तत् ॥ १८ ॥

क्षतक्षयं रक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ।
कामलां वातरक्तं च विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ॥
उन्मादादीनपस्मारान्वातपित्तात्मकाञ्जयेत ॥ १९ ॥

यह घृत पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पश्चात् एकएक तोला परिमाण सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करनेसे योनिद्वारा रक्तका स्राव, वीर्यदोष, क्षतक्षय, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृदयरोग, शिरदर्द, उन्माद, अपस्मार और वात-पित्तजन्य विकार ये सब नष्ट होते हैं, एवं वीर्यकी और पुरुषत्वकी प्राप्ति होती है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

कामदेवघृत ।

अश्वगन्धापलशतं तदर्द्धं गोक्षुरस्य च
वातावरी विदारी च शालपर्णी बला तथा ॥ १२० ॥
अश्वत्थस्य च शुङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा
काश्मरीफलमेतत्तु माषबीजं तथैव च ॥ २१ ॥
पृथग्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत ॥ २२ ॥
मृद्वीका पद्मकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम् ।
बालकं नागपुष्पं च आत्मगुप्ताफलं तथा ॥ २३ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः ।
पृथक् कर्षसमं चैव शर्करायाः पलद्वयम् ॥ २४ ॥
रसस्य पौण्ड्रकेक्षूणामाढकं तत्र दापयेत् ।
चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५ ॥

असगन्ध १०० पल, गोखरू ५० पल एवं शतावर, विदारीकन्द, शालपर्णी, खिरैंटी, पीपलके वृक्षके अंकुर, कमलगट्टा, पुनर्नवा, कुम्भेरके फल और उडद ये प्रत्येक औषधि दश-दश पल लेवे। सबको एकत्र कूटकर ४द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्काथमें दाख, पद्माख, कूठ, पीपल, लालचन्दन, सुगन्धवाला, नागकेशर, कौंचके बीज, नीलकमल, दोनों सारिवा और जीवनीयगणकी समस्त औषधियाँ (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन और मषवन) ये प्रत्येक

औषधि दो दो तोले, मिश्री ९ तोले, पौण्डे गन्नोंका रस १ आढक, दूध ४ प्रस्थ और घी १ प्रस्थ डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा धीरे धीरे विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे॥ १२०–२५॥

रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम्।
हलीमकं तथा शोथं स्वरभेदं बलक्षयम्॥ २६॥
अरोचकं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च नाशयेत्।
एतद्राज्ञां प्रयोक्तव्यं बह्वन्तःपुरचारिणाम्॥ २७॥
स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम्।
क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम्॥ २८॥
श्रेष्ठं बलकरं हृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम्।
ओजस्तेजस्करं चैव आयुःप्राणविवर्द्धनम्॥ २९॥
संवर्द्धयति शुक्रं च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम्।
सर्वरोगविनिर्मुक्तस्तोयसिक्तो यथा द्रुमः॥
कामदेव इति ख्यातः सर्वर्तुषु च शस्यते॥ १३०॥

यह कामदेव घृत रक्तपित्त, क्षतक्षी कामला, वातरक्त, हलीमक, सूजन, स्वरभंग, बलकी क्षीणता, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और पसलीका शूल इन सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है। यह घृत अधिकतर अन्तःपुरमें रहनेवाले राजाओंको सेवन करना चाहिये एवं वन्ध्या स्त्रियों, दुर्बल मनुष्यों, नपुंसक, क्षीणवीर्य, वृद्ध मनुष्य और अल्पवीर्यवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है। एवं बलकारक, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, रसायन तथा ओज, तेज, आयु और प्राणोंकी वृद्धि करनेवाला, दुर्बल इन्द्रियवाले पुरुषके शरीरमें पुरुषत्वकी प्राप्ति और वीर्यकी वृद्धि करता है। इस घृतके सेवनसे सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं॥ १२६–१३०॥

उशीरासव।

उशीरं बालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम्।
प्रियङ्गु पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठा धन्वयासकम्॥ ३१॥
पाठा किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुम्बरं शठी।
पर्पटं पुण्डरीकं च पटोलं काञ्चनारकम्॥ ३२॥
जम्बुशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्मितम्।
भागांस्तु चूर्णितान्कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम्॥ ३३॥

धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ।
शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ ३४ ॥
मासैकं स्थापयेद्भाण्डे मांसीमरिचधूपिते ।
उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः ॥
पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥ ३५ ॥

खस, सुगन्धवाला, कमल, कुम्भेरकी छाल, नीलकमल, फूलप्रियंगु, पद्माख, लोध, मंजीठ, धमासा, पाढ, चिरायता, बडकी छाल, गूलरकी छाल, कचूर, पित्तपापडा, सफेदकमल, पटोलपात, कचनारकी छाल, जामुनकी छाल और मोचरस ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर दाख २० पल धायके फूल १६ पल, खाँड १०० पल और शहद १०० पल इन सबको एकत्रकर दो द्रोण परिमाण जलमें डालदेवे। फिर उसको बालछड और कालीमिरचोंके चूर्णके द्वारा धूप दियेहुए पात्रमें भरकर और उसका मुँह बाँधकर एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे। एक महीनेके पश्चात् उसको निकालकर छानलेवे। इसको उशीरासव कहते हैं। इसका सेवन करनेसे रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि और शोथ ये सब विकार नष्ट हो ॥ ३१-३५ ॥

रक्तपित्तमे पथ्य ।

अधोगते च्छर्दनमूर्द्धनिर्गमे विरेचनं स्यादुभयत्र लङ्घनम् । पुरातनाः षष्टिकशालिकोद्रवप्रियङ्गुनीवारयवप्रशातिकाः ॥ ३६ ॥ मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो मुकुष्ठकाश्चिङ्गटवर्मिमत्स्याः । शशः कपोतो हरिणैणलावशशारिपारावतवर्त्तकाश्च ॥ ३७ ॥ बका उरभ्राश्च सकालपुच्छाः कपिञ्जलाश्चापि कषायवर्गः । गवामजायाश्च पयो घृतं च घृतं महिष्याः पनसं प्रियालम् ॥ ३८ ॥

अधोगतरक्तपित्तमें—वमन, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें विरेचन और अधो व ऊर्ध्व दोनों मार्गोंसे रुधिरस्राव होनेपर लंघन करावे। पुराने साँठीके चावल, शालिधानोंके चावल, कोदों कङ्गनीके चावल, नीवार धान, जौ और लाल नीवार धानोंके चावल, मूँग, मसूर, चने, अरहर, मोठ, और चिङ्गट मछली, वर्मि मछली, एवं खरगोश, कबूतर, हिरन, काले हिरन, लवा, शशारिपक्षी, परेवा, बत्तक, बगुला, मेढा, बारह-

सिंहा और तीतर इन सब जीवोंका मांस एवं कषायवर्गकी सब औषधियाँ, गौका दूध, घी, बकरीका दूध, घी, भैंसका घी, कटहल, चिरौंजी ॥ ३६-३८ ॥-

रम्भाफलं कच्चटतण्डुलीयपटोलवेत्राग्रमहार्द्रकाणि । पुराणकूष्माण्डफलं च पक्कतालानि तद्बीजजलानि वासा ॥ ३९ ॥ स्वादूनि बिम्बानि च दाडिमानि खर्जूरधात्रीमिषिनारिकेलम् । कशेरुशृङ्गाटमरुष्कराणि कपित्थशालूकपरूषकाणि ॥१४०॥ भूनिम्बशाकं पिचुमर्दपत्रं तुम्बी कलिङ्गानि च लाजसक्तुः । द्राक्षा सिता माक्षिकमैक्षवश्च शीतोदकं चौद्भिदवारि चापि ॥ ४१ ॥ सेकोऽवगाहः शतधौतसर्पिरभ्यङ्गयोगः शिशिरप्रदेहः । हिमानिलश्चन्दनमिन्दुपादो यथा विचित्राश्च मनोऽनुकूलाः ॥ ४२ ॥

केलेकी फली, नाडीका शाक, चौलाईका शाक, परवल, बेंतका अग्रभाग, वन-अदरख, पुराना पेठा, पके ताडके फल और उसके बीज, अडूसा मधुररसवाले पदार्थ, कन्दुरी, अनार, खजूर, आमले, सौंफ, नारियल, कशेरू, सिंघाडे, भिलावा, कैथ, भसींडे, फालसे, चिरायता, नीमके पत्ते, लौकी, तरबूज, खीलोंके सत्तू, दाख, मिश्री, शहद, ईखका रस, और ईखके रसके बनेहुए अन्य पदार्थ, शीतल जल, औद्भिदजल, शरीरपर शीतल जलका सिंचन, जलमें घुसकर स्नान, सौबार धोयेहुए घीकी मालिश, शीतलवस्तुओंका प्रलेप, शीतल वायुका सेवन, लालचन्दन, चाँदनी मनको आनन्ददायक मधुर वार्त्तालाप ३९-४२॥

धारागृहं भूमिगृहं सुशीतं वैडूर्यमुक्तामणिधारणं च । रम्भोत्पलाम्भोरुहपत्रशय्या क्षौमाम्बरं चोपवनं सुशीतम् ॥ ४३ ॥ प्रियङ्गुकश्चन्दनरूषितानामालिङ्गनं चापि वराङ्गनानाम् । पद्माकराणां सरितां ह्रदानां चन्द्रोदयानां हिमवद्दरीणाम् ॥ ४४ ॥ सुशीतलानां गिरिनिर्झराणां श्रुतिप्रशस्तानिच कीर्तनानि । प्रकृष्टनीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां शोणितपित्तरोगे ॥ ४५ ॥

फुहारेवाले और शीतल भूमिगृहमें निवास, वैदूर्यमणि और मोतियोंकी मालाको धारण करना, केलेके पत्तों, कुमुदके पत्तों और कमलके पत्तोंपर शयन करना, रेशमी वस्त्रोंका पहरना, शीतल वायुयुक्त बगीचेमें भ्रमण, फूलप्रियंगु और चन्दनसे सुगन्धित अङ्गोंवाली कामिनी स्त्रियोंके साथ आलिङ्गन करना, खिले हुए कमलोंसे युक्त नदियें और तालाब, चाँदनी युक्त बरफके कणोंसे शीतलपर्वतोंकी गुफाओंमें निवास, पर्वतके झरनोंका जलपान, कर्णप्रिय गीत और वाद्योंका सुनना, निर्मल जल और कपूर ये सब पदार्थ रक्तपित्तरोगवाले मनुष्योंके लिये हितकारी हैं ॥ १४२–१४५ ॥

रक्तपित्तमें अपथ्य ।

व्यायामाध्वनिषेवणं रविकरस्तीक्ष्णानि कर्म्माणि च
क्षोभो वेगविधारणं चपलता हस्त्यश्वयानानि च ।
स्वेदास्रस्रुतिधूमपानसुरतक्रोधाः कुलत्थो गुडो
वार्ताकुस्तिलमाषसर्षपदधिक्षाराणि कौपं पयः ॥
ताम्बूलं नलदाम्बुमद्यलशुनाः शिम्बी विरुद्धाशनं
कट्वम्लं लवणं विदाहि च गणस्त्याज्योऽस्रपित्ते नृणाम् ४६

कसरत आदि परिश्रम, अधिक रास्ता चलना, तीक्ष्ण धूपका सेवन, कठिन काम करना, क्षोभ, मल मूत्र आदिके वेगको रोकना, चञ्चलता, हाथी, घोडे आदिकी सवारीपर चढकर चलना, स्वेद निकलवाना, रुधिर निकलवाना, धूम्रपान, स्त्रीप्रसङ्ग, क्रोध, कुलथी, गुड, बैंगन, तिल, उडद, सरसों, दही, क्षारवाले पदार्थ, कुएका जल, ताम्बूल, नीम, मदिरा, लहसुन, सेमकी फली, विरुद्ध भोजन, चरपरे खट्टे, अधिक लवणरसवाले और दाहकारक पदार्थ ये सब रक्तपित्त रोगवाले मनुष्योंको त्यागदेने चाहिये ॥ १४६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रक्तपित्तचिकित्सा ॥

अथ यक्ष्मरोगचिकित्सा ।

ज्वराणां शमनीयो यः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः ।
क्षयिणां ज्वरदाहेषु स सर्वोऽपि प्रशस्यते ॥ १ ॥

ज्वरकी चिकित्सामें जो संशमनविधि कही है वह समस्त विधि क्षयरोग ज्वर और दाहमें करनी चाहिये ॥ १ ॥

उपद्रवा ज्वराद्यास्ते साध्याः स्वैः स्वैश्चिकित्सितैः ।
तेषु शान्तेषु रोगेषु पश्चाच्छोषमुपाचरेत् ॥ २ ॥

यदि यक्ष्मरोगमें ज्वर आदि उपद्रव उत्पन्न हों तो उनकी चिकित्सा उन्हीं २ रोगोंके अधिकारमें कहीहुई विधिके अनुसार करनी चाहिये । उन सम्पूर्ण रोगोंके शमन होनेपर फिर यक्ष्मरोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ।
मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यताम् ॥३॥
शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित् ।
दद्यात्क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ ४ ॥

एक वर्षसे अधिक पुराने शालिधान और साठी धानोंके चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, मद्य, जांगलदेशके पशु और पक्षियोंका मांस ये सब यक्ष्मरोगके लिये हितकर हैं । यक्ष्मरोगमें यदि रोगीका बल और मांस क्षीण होगया हो तो व्याघ्र और गिद्ध आदिके मांसको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार विविध प्रकारकी कल्पनाओंद्वारा सिद्ध करके देवे और विशेषकर पौष्टिक पदार्थ देवे । ये सब मांसवर्द्धक, बलकारक और पौष्टिक हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम् ॥ ५ ॥

अधिक दोषोंवाले यक्ष्मरोगियोंको प्रथम स्वेद देकर और स्नेह (घृत-तैलादि पान कराकर सस्नेह मृदु वमन और विरेचन कराने चाहिये । किन्तु ऐसा उपाय करे जिससे रोगी दुर्बल और कृश न हो ॥ ५ ॥

बलिनो बहुदोषस्य पञ्च कर्माणि कारयेत् ।
यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ६ ॥

दोषोंकी अधिकता हो तो बलवान् यक्ष्मरोगीके पञ्चकर्म (अर्थात् वमन, विरेचन, अनुवासनबस्ति, निरूहणबस्ति और नस्यकर्म) का प्रयोग करना चाहिये । किन्तु बल हीन और क्षीण रोगीके लिये उक्त सम्पूर्ण क्रियायें विषकी समान हानिकर हैं ॥ ६ ॥

शुद्धकोष्ठस्य युञ्जीत विधिं बृंहणदीपनम् ।
शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवनम् ॥
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ७ ॥

वमन विरेचनादिके द्वारा कोष्ठ शुद्धि हो जानेपर रोगीको बलकारक और अग्नि-वर्द्धक औषधियाँ देनी चाहिये. क्योंकि मनुष्योंका बल शुक्रके अधीन है और जीवन मलके अधीन है। इसलिये राजयक्ष्मरोगीके वीर्य और मलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। कारण, अधिक वीर्यक्षय होनेसे बलका ह्रास और अधिक मल निकलनेसे जीवन नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पारावतकपिच्छागकुरङ्गानां पृथक् पृथक्।
मांसचूर्णमजाक्षीरैः पीतं क्षयहरं परम् ॥ ८ ॥

परेवा (कबूतर), बन्दर, बकरा और हिरन इनके मांसको पृथक् पृथक् भून कर और उनका चूर्ण करके बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे क्षयरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

घृतकुसुमरसलीढं क्षयं नयति गजबलामूलम्।
दुग्धेन केवलेन च वायसजङ्घा निपीतैव ॥ ९ ॥

गंगेरनकी जडको बारीक पीसकर घी और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे वा केवल मसीघासको पीसकर दूधके साथ पीनेसे क्षयरोग निवृत्त होता है ॥ ९ ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन् क्षयी।
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ १० ॥

क्षयरोगी, मिश्री और शहदको नैनीघीमें मिलाकर सेवन करे और दूधका भोजन करे अथवा घृत और शहदको असमान भाग अर्थात् ४ माशे और २ माशे लेकर सेवन करे तो उसके शरीरकी पुष्टि होती है ॥ १० ॥

अलक्तकरसैः क्षौद्रं रक्तवान्तिहरं परम् ॥ ११ ॥

लाखके रस अथवा लाखके काढेमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तकी वमन दूर होती है ॥ ११ ॥

ककुभत्वङ्नागबला वानारिबीजानिचूर्णितं पयसि।
पक्वं घृतमधुयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ १२ ॥

अर्जुनकी छाल, गंगेरन और कौंचके बीज-इनके समान भाग चूर्णको दूधमें डाल-कर पकावे, फिर उसमें शहद, घी और मिश्री मिलाकर पान करनेसे यक्ष्मा, खाँसी आदि रोग दूर होते हैं ॥ १२ ॥

कृष्णा द्राक्षा सितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान्।
मधुसर्पिर्युतो वाऽश्वगन्धाकृष्णासितोद्भवः ॥ १३ ॥

पीपल, दाख और मिश्री इन तीनोंको समान भाग लेकर शहद और तिलके साथ अथवा असगन्ध, पीपल और मिश्री इनको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे क्षयरोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥

यष्ट्याह्वं चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरप्रपेषितम् ।
क्षीरेणालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाशनम् ॥ १४ ॥

मुलहठी और चन्दन, दोनोंको समान भाग लेकर और दूधमें बारीक पीसकर और दूधमें घोलकर पान करनेसे रुधिरकी वमन दूर होती है ॥ १४ ॥

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम् ।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ १५ ॥

बकरीका मांस खाना, बकरीका दूध पीना, बकरीके घृतको मिश्रीमें मिलाकर सेवन करना, बकरियोंकी सेवा करना और बकरियोंके बीचमें सोना इन उपायोंके द्वारा यक्ष्मरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

दशमूलक्वाथ ।

दशमूलबलारास्ना पुष्करसुरदारुनागरैः क्वथितम् ।
पेयं पार्श्वांसशिरोरुक्क्षयकासादिशान्तये सलिलम् ॥ १६ ॥

दशमूलकी समस्त औषधियाँ, खिरेंटी, रास्ना, पोहकरमूल, देवदारु और सोंठ इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर पीनेसे क्षय, कास, पार्श्वशूल कन्धोंकी पीडा और शिरःशूलादि रोग शमन होते हैं ॥ १६ ॥

अश्वगन्धादिक्वाथ ।

अश्वगन्धामृताभीरुदशमूलीबलावृषाः ।
पुष्करातिविषे घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ १७ ॥

असगन्ध, गिलोय, शतावर, दशमूल, खिरेंटी, अडूसा, पोहकरमूल और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पान करे और दूध तथा मांसरसका भोजन करे तो क्षयरोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

त्रयोदशाङ्गक्वाथ ।

धन्याकपिप्पलीविश्वदशमूलीजलं पिबेत् ।
पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ॥ १८ ॥

धनियाँ, पीपल, सोंठ और दशमूल इनके क्वाथको पान करनेसे क्षयरोगीके पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, पीनस आदि विकार दूर होते हैं ॥ १८ ॥

बलादिचूर्ण ।

बलाऽश्वगन्धाश्रीपर्णीबहुपुत्रीपुनर्नवाः ।
पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ १९ ॥

खिरैंटी, असगन्धक, कुम्भेर, शतावर और पुनर्नवा इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके एक वस्त्रमें छानलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे क्षत और क्षय दूर होता है ॥ १९ ॥

लवंगाद्य चूर्ण ।

लवङ्गकक्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलपत्रजीरकम् ।
त्रुटिः सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं मुस्ता सविश्वानलदं सहांबुदम् ॥
अहीन्द्रजातीफलवंशलोचनाः सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् ।
सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदंवृष्यतमं त्रिदोषनुत ॥ २१ ॥
उरोविबद्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् ।
ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदं प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सज्वरान् ॥

लौंग, कंकोल, खस, चन्दन, तगर, नीलकमल (अभावमें नीलोफर) तेजपात, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगर, दारचीनी, नागकेशर, नागरमोथा, सोंठ, बालछड, सुगन्धवाला, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन इन सबको समान-भाग लेकर बारीक चूर्ण करके अठगुनी मिश्री मिलादेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन चार २ मासेकी मात्रासे सेवन करे । यह चूर्ण रुचिकारक, तृप्तिजनक और अग्नि-वर्द्धक एवं बल-वीर्यको उत्पन्न करनेवाला और त्रिदोषनाशक है तथा उरःक्षत, तमक, गलेकी पीडा, खाँसी, हिचकी, अरुचि, यक्ष्मा, पीनस, संग्रहणी, अतिसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह, गुल्म और ज्वर इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ २०-२२ ॥

शृङ्ग्यर्जुनाद्य चूर्ण ।

शृङ्ग्यर्जुनाश्वगन्धानागबलापुष्कराभयाच्छिन्नरुहाः ।
तालीसादिसमेता लेह्या मधुसर्पिभ्यां यक्ष्महराः ॥ २३ ॥

काकडासिंगी, अर्जुनकी छाल, असगन्ध, गंगेरन, पोहकरमूल, हरड, गिलोय, तालीशपत्र, सोंठ, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, छोटी इलायची और मिश्री इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके वस्त्रमें छान लेवे । इसको ३ मासे परिमाण शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा रोग दूर होता है ॥ २३ ॥

सितोपलादिलेह ।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः ।
अन्त्यादूर्द्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ॥ २४ ॥
चूर्णं वा प्राशयेदेतं श्वासकासक्षयापहम् ।
सुप्तजिह्वारोचकिनं मन्दाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥
हस्तपादांसदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्द्ध्वगे ॥ २५ ॥

मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची दो तोले और दारचीनी १ तोला लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, क्षय, जिह्वाकी जडता, अरुचि, मन्दाग्नि, पसलीकी पीडा आदि रोग दूर होते हैं । इसको हाथ पाँव एवं शिरकी दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तादि रोगाम भी सेवन कराना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

वासावलेह ।

शतं संगृह्य वासायास्तोयद्रोणे विपाचयेत् ।
चतुर्भागावशेषेऽस्मिन शर्करायाः पलं शतम् ॥ २६ ॥
त्रिकटु त्रिसुगन्धिश्च कट्फलं मुस्तकं गदम् ।
जीरकं पिप्पलीमूलं रोचनी चविका शुभा ॥ २७ ॥
कटुका श्रेयसी चैव तालीशं सधनीयकम् ।
कार्षिकं पृथगेतेषां क्षिपेन्मधु पलाष्टकम् ॥ २८ ॥

अडूसेके पंचांगको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते-चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें १०० पल शुद्ध खांड डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब वह पककर कुछ गाढा होजाय तब त्रिकुटा, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कायफल, नागरमोथा, कूठ, जीरा, पीपलामूल, गोरोचन, चव्य, वंशलोचन, कुटकी, गजपीपल, तालीशपत्र और धनियाँ, प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो दो तोले डालदेवे और शीतल होजानेपर ३२ तोले शहद मिलादेवे ॥ २६–२८ ॥

तद्यथाग्निबलं लिह्याच्छ्घृतशीताम्बुपानतः ।
निहन्ति राजयक्ष्माणं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ २९ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्वासं चैव सुदारुणम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वमिश्चैवारुचिं ज्वरम् ॥
"अश्विभ्यां निर्मितो ह्येष बृहद्वासावलेहकः" ॥ ३० ॥

इस अवलेहको अपनी अग्निक बलानुसार (शृतशीतल) औटाकर शीतल किये हुए जलके साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, क्षतक्षय, वात-पित्त जन्य दारुण श्वास, हृदयशूल, पसलीकी पीडा, वमन, अरुचि और ज्वरादिविकार शीघ्र नष्ट होते हैं । " इस वासावलेहको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ "

बृहद्वासावलेह १-२ ।

पञ्चविंशत्पलं ग्राह्यं बृहत्योर्वासकस्य च ।
भार्ङ्ग्याश्च पञ्चविंशच्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३१ ॥
पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डं शतपलं न्यसेत् ।
कुडवार्द्धं च हविषो मधुनः कुडवं तथा ॥ ३२ ॥
मृताभ्रकं पलं चैकं कणाचूर्णं चतुःपलम् ।
कुष्ठं तालीशपत्रं च मरिचं तेजपत्रकम् ॥ ३३ ॥
मुरा मांसीमुशीरं च लवङ्गं नागकेशरम् ।
त्वग्भार्ङ्गी वालकं मुस्तं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं लेहीभूते विनिःक्षिपेत ॥ ३४ ॥

बडी कटेरी, कटेरी, अडूसा और भारङ्गी इन औषधियोंको पच्चीस २ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चतुथाश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें सौ पल शुद्ध खाँड डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसमें अभ्रक भस्म ४ तोले, पीपलका चूर्ण १६ तोले, एवं कूट, तालीशपत्र, मिरच, तेजपात, मुरा, मांसी, खस, लौंग, नागकेशर, दारचीनी, भारगी, सुगन्धवाला और नागरमोथा प्रत्येकका बारीक चूर्ण एक एक कर्ष और घी ८ ताल डालदेवे । शीतल होनेपर १६ तोले शहद मिलादेवे । सबको अच्छे प्रकारसे मिलाकर एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ ३१-३४ ॥

हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३५
रक्तपित्तं क्षयं कासं ज्वरं प्लीहानमेव च ।
बालानामपि वृद्धानां तरुणानां विशेषतः ॥ ३६ ॥
पार्श्वशूलं च हृच्छूलमम्लपित्तं वमिं तथा ।
बृहद्वासावलेहोऽयं महादेवेन निर्मितः ॥ ३७ ॥

इसको प्रतिदिन छः छः मासे परिमाण सेवन करे। यह बृहद्वासावलेह दारुण राजयक्ष्मा, पाँच प्रकारकी खाँसी, रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, प्लीहा, पसलीकी पीडा, हृदयशूल, अम्लपित्त और वमन इन सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है एवं बालक, वृद्ध और तरुण पुरुषोंके लिये विशेष उपयोगी है ॥ ३९-३७ ॥

तुलामादाय वासाया जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डं शतपलं न्यसेत् ॥ ३८ ॥
शनैर्मृद्वग्निना सम्यक् सिद्धे तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च कट्फलं मुस्तमेव च ॥ ३९ ॥
कुष्ठं कम्पिल्लकं श्वेतजीरकं कृष्णजीरकम् ।
त्रिवृता पिप्पलीमूलं चव्यं कटुकरोहिणी ॥ ४० ॥
शिवा तालीशधन्याकं प्रत्येकं च द्विकार्षिकम् ।
चूर्णयित्वा क्षिपेत्तत्र शीते मधु पलाष्टकम् ॥ ४१ ॥

२-अडूसेकी जडकी छाल या पंचांगको सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उस क्काथमें सौ पल शुद्ध खांड डालकर धीरे धीरे मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पककर लेहकी समान गाढा होजाय तब-सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कायफल, नागरमोथा, कूठ, कबीला, सफेद जीरा, काला जीरा, निसोत, पिपलामूल, चव्य, कुटकी, हरड, तालीशपत्र और धनियाँ इन प्रत्येक औषधिको दो दो कर्ष बारीक पीसकर डालदेवे और शीतल होनपर ३२ तोले शहद मिलादेवे ॥ ३८-४१ ॥

अस्य मात्रां ततो लीढ्वा तोयमुष्णं पिबेदनु ।
सर्वकासाधिकारेषु स्वरभङ्गे विशेषतः ॥ ४२ ॥
राजयक्ष्मणि दुस्साध्ये वातश्लेष्माश्रये तथा ।
आनाहे वह्निमान्द्ये च हृद्रोगे च क्षतक्षये ॥
मूत्रकृच्छ्रे च कृच्छ्रे च शस्तोऽयं लेह उत्तमः ॥ ४३ ॥

इनको प्रतिदिन प्रातःकाल छः मासे अथवा १ तोला परिमाण सेवन करके ऊपरसे मन्दोष्ण जल पान करे। यह अवलेह सर्वप्रकारकी खाँसी, स्वरभंग, विशेषकर दुस्साध्य राजयक्ष्मा, वात-कफजन्य रोग, आनाह, मन्दाग्नि, हृदयरोग, क्षतक्षय, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात आदि रोगमें विशेष उपयोगी है ॥ ४२-४३ ॥

चयवनप्राश ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्यः पाटला बला ।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ४४ ॥
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्कराग्रुरू ।
अमृता चाभया ऋद्धिर्जीवकर्षभको शठी ॥ ४५ ॥
मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने ।
विदारीवृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥ ४६ ॥
एषां पलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य च ।
पञ्च दद्यात्तदैकस्थं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४७ ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ ४८ ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्द्धतुलां भिषक् ।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ४९ ॥

बेल, अरणी, स्योनापाठा, (आल्हू) कुम्भेर, पाढल इनकी छाल, खिरैंटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, गोखुरू, कटेरी, बडीकटेरी, काकडासिंगी, भुंई आमला, दाख, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, गिलोय, हरड, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, (अभावमें असगन्ध), छोटी इलायची, नीलकमल, लालचन्दन, विदारीकन्द, अडूसेकी जड, काकोली और काकनसा (कौआठोडी) ये प्रत्येक ओषधि चार चार तोले एवं सुपक्व और बडे बडे आमले ५०० लेवे । प्रथम आमलोंको वस्त्रकी पोटलीमें बाँधकर समस्त औषधियोंके साथ १ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और आमलोंको निकालकर उनकी गुठली अलग करके हाथसे मथकर वस्त्रमें छानलेवे । फिर उन आमलोंको ४८ तोले तिलके तैल और ४८ तोले गोघृतमें मन्दमन्द अग्निसे भूनकर पीसलेवे । फिर पूर्वोक्त क्काथमें ५० पल मिश्री और उक्त आमले डालकर धीरे २ पकावे ॥ ४४-४९ ॥

षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ।
चतुःपलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥ ५० ॥

पलमेकं विदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥ ५१ ॥

जब पकते २ लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८ तोले, एवं दारचीनी, छोटी इलायची तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण चार चार तोले डालदेवे और शीतल होनेपर २४ तोले शहद मिलादेवे। फिर करछीसे सबको अच्छे प्रकारसे मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। यह च्यवनप्राशावलेह परमश्रेष्ठ रसायन है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनः ॥ ५२ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान् दोषांश्चैवापकर्षति ॥ ५३ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत नोपरुन्ध्याच्च भोजनम् ।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥ ५४ ॥

इसके सेवन करनेसे खाँसी और श्वास दूर होते हैं। यह अवलेह विशेषकर क्षतक्षीणरोगी वृद्ध मनुष्य और बालकोंके अंगोकी वृद्धि और पुष्टि करनेवाला है एवं स्वरभंग, उरोरोग, हृदयरोग, वातरक्त, तृषा, मूत्र और वीर्य सम्बन्धी सम्पूर्ण-दोष इन सब विकारोंको हरता है। इस अवलेहको ३ मासे अथवा ६ मासे परिमाण लेकर बकरीके दूध या शहदके साथ सेवन करना चाहिये। इसपर भोजनादि किसी प्रकारके पथ्य करनेका नियम नहीं है। इस अवलेहको सेवन करनेसे अत्यन्त वृद्ध च्यवन ऋषि फिरसे तरुण हो गये थे ॥ ५२-५४ ॥

मेधां स्मृतिं कांतिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं बलप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ५५॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटिप्रवेशात् ।
जराकृतं पूर्वमपास्य रूपं बिभर्त्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ ५६ ॥
[" सिता मत्स्यण्डिकालाभे धात्र्याश्च मृदुभर्जनम् ।
चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् ॥ ५७ "]

यह अवलेह-मेधा, स्मरणशक्ति, कांति, आरोग्य, आयु इन्द्रियोंके बलकी वृद्धि करता है। एवं स्त्रियोंमें आनन्द, जठराग्निकी अत्यन्त वृद्धि, शरी-

रमें बलका संचार और वायुका अनुलोमन करता है । इस रसायनको सेवन करनेसे वायु और धूपको न सहनेवाला वृद्ध मनुष्य भी वृद्धावस्थाके पूर्वरूपको दूरकर नवयौवनके रूपको प्राप्त करता है ॥ ५५-५७ ॥

द्राक्षारिष्ट ।

द्राक्षातुलार्द्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः ।
पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिःक्षिपेत् ॥ ५८ ॥
गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम् ।
प्रियङ्गुर्मरिचं कृष्णा विडङ्गञ्चेति चूर्णयेत ॥ ५९ ॥
पृथक्पलोन्मितैर्भागैर्घृतभाण्डे निधापयेत ।
मासं ततो घट्टयित्वा दिबेज्जातरसं ततः ॥ ६० ॥
उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासश्वासगलामयान् ।
द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ॥ ६१ ॥

उत्तमदाख ५० पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर उस क्राथमें गुड २०० पल एवं दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, फूलप्रियंगु, कालीमिरच, पीपल और वायविडंग प्रत्येकके चूर्णको चार चार तोले डालदेवे । फिर सबको अच्छे प्रकारसे मिलाकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसका मुँह बन्द करके रखदेवे । एक महीनेतक रक्खा रहनेके पश्चात् जब उसमें रस उत्पन्न होजाय तब निकालकर छानलेवे । यह द्राक्षारिष्ट यथोचित मात्रासे पान करते ही उरःक्षत, क्षय, खाँसी, श्वास और सर्व प्रकारके गल रोगोंको दूर करता है । एवं बलको बढाताहै । शुद्ध करता है ॥ ५८-६१ ॥

विन्ध्यवासियोग ।

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा ।
सर्वामयहरो योगः सोऽयं लौहरजोन्वितः ॥ ६२ ॥
एष वक्षःक्षतं हन्ति कण्ठजांश्च गदांस्तथा ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम् ॥ ६३ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, शतावर, हरड, बडेडा, आमला, खिरेंटी और कंघी इन सब औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और लोह भस्म ९ तोले लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करलेवे । यह उत्तम योग सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाला है ।

इसको उचित मात्रासे सेवन करनेसे उरःक्षत, कण्ठगतरोग, अत्यन्त भयंकर राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ और अर्दितादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलौहघृताभयाः ।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमानो हिताशिनः ॥ ६४ ॥

स्वर्णमाक्षिक, वायविडग, शिलाजीत और हरड इन औषधियोंको एक एक भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेकर एकत्र खरल करलेवे। इस यक्ष्मारि लोहको घी और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे और पथ्य पदार्थोंको सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र यक्ष्मारोग दूर होता है ॥ ६४ ॥

यक्ष्मान्तकलौह ।

रास्नातालीशकर्पूरभेकपर्णीशिलाह्वयैः ।
त्रिकत्रयसमायुक्तैर्लौहो यक्ष्मान्तको मतः ॥ ६५ ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि वैद्यविवर्जितम् ।
हन्ति कासं स्वराघातं क्षयकासं क्षतक्षयम् ।
बलवर्णाग्निपुष्टीनां साधनं दोषनाशनम् ॥ ६६ ॥

रास्ना, तालीशपत्र, कपूर, मण्डूकपर्णी, शिलाजीत, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा और चीतेकी जडकी छाल प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और लोह भस्म चौदह तोले लेवे सबको एकत्र जलके द्वारा खरल करके गोलियाँ बनालेवे। यह यक्ष्मान्तकलोह है। इसीको रास्नादि लौह भी कहते हैं। यह लोह-खाँसी, स्वरभंग, क्षयकी खाँसी, क्षतक्षय एवं सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त और वैद्योंसे त्यागे हुये राजयक्ष्मरोग और अन्यान्य समस्त दोषोंको नष्ट करता है बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि तथा पुष्टि करता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

शिलाजत्वादि लौह ।

शिलाजतुमधुव्योषताप्यलौहरजांसि च ।
क्षीरेण लेहितस्याशु क्षयं क्षयमवाप्नुयात ॥ ६७ ॥

शिलाजीत, मुलहठी, सोंठ, मिरच, पीपल और सोनामाखी—ये प्रत्येक एक एक तोला और लोह भस्म ६ तोले लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके गोलियाँ बनालेवे। इस लोहको दूधके साथ सेवन करनेसे क्षयरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६७ ॥

रजतादिलौह।

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समं व्योमचूर्णं
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटु सवरं साय आज्येन युक्तम्।
लीढं प्रातःक्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः-
श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान् ॥ ६८ ॥

चाँदीकी भस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, त्रिकुटा, त्रिफला और लोहभस्म ये प्रत्येक तीन २ भाग लेवे। इन सबको एकत्र खरल करके गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग, उदरविकार, अर्श, श्वास, खाँसी, नेत्ररोग, और पित्तजनित सम्पूर्ण उपद्रव शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ६८ ॥

क्षयकेसरी १-२।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः।
नवभागान्वितं लोहं समं सिन्दूरसन्निभम् ॥ ६९ ॥
छागीदुग्धेन सम्पिष्य वल्लमस्य प्रयोजयेत्।
मधुना क्षयरोगांश्च हन्त्ययं क्षयकेसरी ॥ ७० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, छोटी इलायची, जायफल और लौंग प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और सिन्दूरकी समान कान्तियुक्त लोह भस्म ९ तोले लेवे। सबको एकत्र बकरीके दूधके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे। प्रतिदिन एक एक गोली शहदके साथ सेवन करनेसे यह क्षयकेसरी क्षयरोग और उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंको नष्ट करताहै ॥ ६९॥७० ॥

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहं तथा रविः।
मृतं नागं च कांस्यं च मण्डूरं विमलं शिला ॥ ७१ ॥
वङ्गं खर्परकं तालं शंखटङ्कणमाक्षिकम्।
वैक्रान्तं कान्तलौहं च स्वर्णं विद्रुममौक्तिकम् ॥ ७२ ॥
वराटं मणिरागं च राजपट्टं च गन्धकम्।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ ७३ ॥
मर्दयेत्त्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत्रिदिनं लघु।
भावयेत्पुटयेदेभिर्वारांस्त्रींश्च पृथक्पृथक् ॥ ७४ ॥

मातुलुङ्गवरावह्निस्वम्लवेतसमार्कवैः ।
हयमाराद्रर्ककरसैः पाचितो लघुवह्निना ॥ ७५ ॥

अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शीशेकी भस्म, काँसेकी भस्म, मण्डूरभस्म, रूपामाखीकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, वङ्गभस्म, शुद्ध खपरिया, हरताल-भस्म, शंखभस्म, सुहागा, सोनामाखीकी भस्म, वैक्रान्तकी भस्म, कान्तलोह, सुवर्ण-भस्म, मूँगा मोती और कौडीकी भस्म, सिंगरफ, राजपट्ट (रेपटी अभावमें गोदन्ती हरताल) और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर सबको एकत्र खरलमें डालकर खूब बारिक चुर्ण करके चीते और आकके क्वाथमें खूब खरल करके ३ दिनतक लघुपुटमें पकावे । इसी प्रकार क्रमसे बिजौरेनींबूका रस, त्रिफला, चीता, अमलवेंत, भँगरा, कनेर और अदरख इन प्रत्येक औषधिके स्वरस व क्वाथमें ३-३ दिनतक भावना देकर लघुपुटमें पकावे । फिर स्वांग शीतल होनेपर औषधको निका-लकर बारीक चूर्ण कर लेवे ॥ ७१-७५ ॥

वातपित्तकफोत्क्लेशाञ्ज्वरान्समर्दितानपि ।
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गकाङ्गमारुतान् ॥ ७६ ॥
सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसा युतः ।
मधुकार्द्रकसंयुक्तस्तद्व्याधिहरणौषधैः ॥ ७७ ॥
सेवितो हन्ति रोगिणां व्याधिवारणकेसरी ।
क्षयमेकादशविधं शोथं पाण्डुं कृमिं जयेत ॥ ७८ ॥
कासं पञ्चविधं श्वास मेहं मेदो महोदरम् ।
अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं हलीमकम् ।
सर्वव्याधिहरो बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः ॥ ७९ ॥

इसको दो रत्तीप्रमाण लेकर मिश्री, पीपलका चूर्ण, शहद और अदरख इनके साथ मिलाकर अथवा यथादोषानुसार अनुपानोंके साथ सेवन करे । यह क्षयकेसरी-रस वात, पित्त और कफके उत्पन्न हुए ज्वर, सन्निपात ज्वर, सर्वांगवात, एकांगवात, ग्यारह प्रकारका क्षय, सूजन, पाण्डु, कृमि, पाँच प्रकारकी खाँसी, श्वास, प्रमेह, मेद, जलोदर, पथरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म, हलीमक आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है । यह सब रोगनाशक तथा बल, वीर्य और मेधा शक्तिकी वृद्धि करने-वाला और अत्युत्तम रसायन है ॥ ७६-७९ ॥

रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः ।
शिलायां खल्लयेत्तावद्यावत्पिण्डं घनं भवेत् ॥ ८० ॥
जलकणाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ।
सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन सुभावितम् ॥ ८१ ॥
चूर्णितं रससंयुक्तमजाक्षीरपलद्वये ।
खल्लितं घनपिण्डं तु गुटीः स्विन्नकलायवत् ॥ ८२ ॥
कृत्वा—

शोधित पारेकी भस्मको १ कर्ष लेकर एक उत्तम पत्थरके खरलमें डालकर जयंती और अदरखके स्वरसमें तबतक मर्दन करे जबतक कि उसका पिण्डसा न बनजाय। फिर उसको जलपीपल और मकोयके स्वरसमें पृथक्‌ पृथक्‌ उत्तम प्रकारसे भावना देवे। पश्चात् इसी प्रकार भाँगरेके स्वरसमें भावना दियाहुआ शुद्ध गन्धकका चूर्ण चार तोले लेकर पारेके साथ खरल करके दोनोंकी कज्जली बनालेवे। फिर उस कज्जलीको ८ तोले बकरीके दूधके साथ खरल करके सीजे हुए मटरके दानेकी समान गोलियाँ बनालेवे ॥ ८०–८२ ॥

—ऽऽदौ शिवमभ्यर्च्य द्विजादीन्परितोष्य च ।
जीर्णान्ने भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ॥ ८३ ॥
सर्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम् ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ८४ ॥

प्रथम शिवजी महाराजका पूजन कर और ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके प्रतिदिन इसकी एक एक गोली भोजनके जीर्ण होनेपर सेवन करे। इसपर दूध और मांस-रसका पथ्य करे। इसके सेवनसे सर्व प्रकारका क्षय, खाँसी, रक्तपित्त और अरुचि ये सब उपद्रव और जिसको सैकडों वैद्योंने त्याग दियाहो ऐसा अम्लपित्तरोग भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

बृहद्रसेन्द्रगुटिका ।

कुमार्य्यां त्रिफलाचूर्णैश्चित्रकस्य रसैः क्रमात् ।
शोधयित्वा पुना राजीगृहधूमहरिद्रया ॥ ८५ ॥
पक्वेष्टकारजोभिश्च धूर्त्तपत्ररसेन च ।
शृङ्गवेररसेनापि शोधयित्वा पुनःपुनः ॥ ८६ ॥

प्रक्षालयेत्पुनः पश्चाच्छानयेद्वसने घने ।
कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्विजयारसे ॥ ८७ ॥
शिलायां खल्लयेच्चापि यावच्चूर्णत्वमागतम् ।
जलकणाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारेको दो कर्ष लेकर यथाक्रमसे घीग्वारके रस, त्रिफलेके चूर्ण, चीतेके रस, राई, घरका धुआँ, हल्दी, ईंटके चूर्ण, धतूरेक पत्तोंके रस और अदरखके रसमें पृथक् पृथक् एक एक बार खरल करे । फिर उस खरल कियेहुए पारेको जलसे प्रक्षालन करके मोटे वस्त्रमें छान लेवे, फिर खरलमें रख भाँगके रसमें भावना देकर उत्तम प्रकारसे मर्दन करे । पश्चात् जलपीपल और मकोयके रसमें पृथक् पृथक् एक एक बार भावना देवे ॥ ८५–८८ ॥

सौगन्धिकपलं शुद्धमर्द्धं मरिचटङ्कणम् ।
माक्षिकं च शिखिग्रीवं तालकं चाभ्रकं तथा ॥ ८९ ॥
एतांस्तु मिलितान्दत्त्वा भावयेदार्द्रकद्रवैः ।
रक्तिद्वयप्रमाणेन कारयेद् गुटिकां भिषक् ॥ ९० ॥

इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा दो कर्ष और शोधित गन्धक ४ तोले लेकर दोनोंकी कज्जली बनालेवे फिर उसमें कालीमिरच, सुहागा, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध तूतिया, शुद्ध हरताल और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर अदरखके रसके द्वारा उत्तम प्रकारसे खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ८९॥–९० ॥

जीर्णान्ने भोजयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ।
हन्ति कासं क्षयं श्वास रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ९१ ॥
पाण्डुक्रिमिस्वरहरं कृशानां पुष्टिवर्द्धनम् ।
वाजीकरणमुद्दिष्टमम्लपित्तहरं परम् ॥ ९२ ॥

भोजनके जीर्ण होजानेपर इसकी एक एक गोली सेवन करे और दूध तथा मांसरसका पथ्य करे । यह गुटिका खाँसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, अरुचि, पाण्डु, कृमि, स्वरभङ्ग आदि विकारोंको नष्ट करती है । एवं कृश मनुष्योंकी कृशताको दूर कर शरीरको पुष्ट करती है । यह अत्यन्त वाजीकरण और अम्लपित्तनाशक है ॥९१--९२

कल्याणसुन्दराभ्ररस ।

वज्राभ्रमेकपलिकं पुटनैः सुजीर्णं धात्रीपयोदबृहती-
शतमूलिकेक्षुः । बिल्वाग्निमन्थजलवासककण्टकारी-
श्योनाकपाटलिबलाश्च रसैरमीषाम्॥सम्मर्दितं पलमितैः
पृथगेकशश्च गुञ्जासमं सुवलितं वटिकाकृतं च ॥ ९३ ॥

पुटपाकके द्वारा उत्तम प्रकारसे भस्म किये हुए वज्र अभ्रकको ४ तोले प्रमाण लेकर आमले, नागरमोथा, बडीकटेरी, शतावर, ईख, बेलकी छाल, अरणी, सुगन्धवाला, अडूसेके पत्ते, कटेरी, सोनापाठा, पाढल और खिरैंटी इन प्रत्येक औषधिके चार चार तोले रसके साथ पथक् पृथक् खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ९३ ॥

यक्ष्मक्षयौ सकलशोषबलासपित्तं श्वासं समीरमरुचिं
सकलाङ्गसादम् । शोथं स्वरक्षयमजीर्णमुदरशूलं मेहं
ज्वरं विषमुरोग्रहपाण्डुहिक्काः ॥ ९४ ॥ कार्श्यं कृमिं
बलविनाशनमम्लपित्तं प्लीहामयं सहहलीमकमस्र-
गुल्मम् । तृष्णामवातनिचयं ग्रहणीं प्रदुष्टां विस्फोट-
कुष्ठनयनास्यशिरोगदांश्च ॥ ९५ ॥ मूर्च्छां वमिं विर-
सतां विनिहन्ति सद्यः कल्याणसुन्दरमिदं बलदं सुवृ-
ष्यम् । मेध्यं रसायनवरं सकलामयानां नाशाय यक्ष्म-
निवहे कथितं हरेण ॥ ९६ ॥

यह कल्याणसुन्दरनामक रस—यक्ष्मा, क्षय, सम्पूर्ण शोष, कफ—पित्तसम्बन्धी रोग, श्वास, वातविकार, अरुचि समस्त शारीरिकपीडा, सूजन, स्वरभङ्ग, अजीर्ण, उदरशूल, प्रमेह, ज्वर, विषविकार, उरोग्रह, पाण्डुरोग, हिक्का, कृशता, कृमिरोग, बलनाशक, अम्लपित्त, प्लीहा, हलीमक, रक्तगुल्म, तृषा, आमवात, दुष्टसंग्रहणी, स्फोटक, कुष्ठ, नेत्र मुख और शिरके सम्पूर्ण रोग, मूर्च्छा, वमन, मुखकी नीरसता आदि व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है । एवं अत्यन्त बलकारक, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, मेधाजनक और सकल रोगोंको नाश करनेके लिये परमोत्कृष्ट रसायन है । यह रस विशेषकर यक्ष्मारोगके नष्ट करनेके लिये शिवजीने वर्णन किया है ॥ ९४-९६ ॥

बृहच्चन्द्रामृतरस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम् ।
अभ्रं निश्चन्द्रिकं दद्यात् पलार्द्धं च विचक्षणः ॥ ९७ ॥
कर्पूरं शाणकं दद्यात्स्वर्णं तोलकसम्मितम् ।
ताम्रं च तोलकं दद्याद्विशुद्धं मारितं भिषक् ॥ ९८ ॥
लौहं कर्षं क्षिपेत्तत्र वृद्धदारकजीरकम् ।
विदारी शतमूली च क्षुरकं च बला तथा ॥ ९९ ॥
मर्कट्यतिबला चैव जातीकोशफले तथा ।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्ज्जरसं तथा ॥ १०० ॥
शाणभागं समादाय चैकीकृत्य प्रयत्नतः ।
मधुना मर्दयेत्तावद्यावदेकत्वमागतम् ॥ १०१ ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः ।
भक्षयेद्वटिकामेकां पिप्पल्या मधुना सह ॥ १०२ ॥

शुद्ध पारा १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, श्वेत अभ्रकभस्म २ तोले, कपूर ४ माशे, सुवर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, लौहभस्म १ कर्ष, विधारा, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, गोखुरू, खिरैंटी, कौंचके बीज, कंघी, जायफल, जावित्री, लौंग, भाँगके बीज और सफेद राल इनको चार चार माशे लेकर सबको एकत्र करके शहदके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करे । जब सब औषधें घुटकर एकमएक होजायँ तब चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस बृहच्चन्द्रामृतरसकी एक एक गोली पीपलके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, खाँसी और रक्तपित्तआदि रोग दूर होते हैं॥९७-१०२॥

कुमुदेश्वररस ।

हेमभस्म रसभस्म गन्धकं मौक्तिकं तु रसटङ्कणं तथा ।
तालकं गरुडमप्यदः समं काञ्जिकेन परिमर्द्य गोलकम् ।
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके लवणगेऽथ पाचयेत् ॥
एकरात्रमृदुसम्पुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः ।
वल्लमस्य मरिचैर्घृताप्लुतै राजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत्॥१०३॥

सुवर्णभस्म, शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्ध गन्धक, मोतीभस्म, शुद्ध पारा, सुहागा, हरताल और सोनामाखी इन सबको समान भाग लेकर एकत्र काँजीके साथ

खरल कर गोलासा बनालेवे। फिर उसके ऊपर गोबरमिली मिट्टीका लेप करके उसको नमकसे भरेहुए पात्रमें रखकर एक रात्रिपर्यन्त मृदुपुटके द्वारा पकावे। इस प्रकार यह कुमुदेश्वररस सिद्ध होता है। इस रसको दो दो रत्ती प्रमाण लेकर कालीमिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करे। यह रस राजयक्ष्मारोगको शमन करनेके लिये परमोत्तम है ॥ १०३ ॥

काञ्चनाभ्ररस ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।
विद्रुमं चाभया तारं कस्तूरी च मनःशिला ॥ १०४ ॥
प्रत्येकं बिन्दुमात्रं च सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥ १०५ ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ।
क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मपित्तसमुद्भवम् ॥ १०६ ॥
प्रमेहं विविधं चैव दोषत्रयसमुत्थितम् ।
कफजान् वातजान्रोगान्नाशयेत्सद्य एव हि ॥ १०७ ॥
बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिङ्गदार्ढ्यं करोति च ।
श्रीकरः पुष्टिजननो नानारोगनिषूदनः ॥
गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं काञ्चनाभ्रकः ॥ १०८ ॥

सुवर्णभस्म, रससिंदूर, मोतीकी भस्म, लोहभस्म, अभ्रककी भस्म, मूंगेकी भस्म, हरड, चाँदीकी भस्म, कस्तूरी और शुद्ध मैनसिल इन सबके समान भाग जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी प्रतिदिन एक एक गोली यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे तो यह क्षयरोग, खाँसी, कफ-पित्तजनित विकार, तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए विविध प्रकारके प्रमेह और कफ-वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। एवं बल, वीर्यकी वृद्धि और लिङ्गको दृढ करता है। यह काञ्चनाभ्ररस कान्तिवर्द्धक, पुष्टिकारक और विविध प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १०४-८ ॥

बृहत्काञ्चनाभ्ररस ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।
विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रं च वङ्गकम् ॥ १ ॥

कस्तूरिका लवङ्गं च जातिकोषैलवालुकम्।
प्रत्येकं बिन्दुमात्रं च सर्वं संमर्द्य यत्नतः॥ ११०॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य केशराजरसेन च।
अजाक्षीरेण सम्भाव्य प्रत्येकं दिवसत्रयम्॥
चतुर्गुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्॥ १११॥

सुवर्णभस्म, रससिन्दूर, मोतीकी भस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मूंगेकी भस्म, वैक्रान्तकी भस्म, चाँदीकी भस्म, ताँबेकी भस्म, वङ्गभस्म, कस्तूरी, लौंग, जावित्री और एलुआ, इन प्रत्येक औषधिको समान भाग लेकर सबको एकत्र घीग्वारके रसके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करके कुकुरभाँगरेके रस और बकरीके दूधके साथ पृथक् पृथक् तीन दिनतक भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियां बनालेवे॥ ९–१११॥

अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः॥ ११२॥
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च।
प्रमेहान् विंशतिं चैव दोषत्रयसमुद्भवान्॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ ११३॥

यह रस यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे क्षय, खाँसी, राजयक्ष्मा, श्वास, कफ–वात–पित्तादि तीनों दोषोंसे उत्पन्न बीसों प्रकारके प्रमेह और अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको॥११२॥११३॥

स्वल्पमृगाङ्करस।

रसभस्म हेमभस्म तुल्यं गुञ्जाद्वयं भजेत्।
दोषं बुद्ध्वानुपानेन मृगाङ्कोऽयं क्षयापहः॥ ११४॥

शुद्ध पारेकी भस्म और सुवर्णभस्म इन दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। इसको वातादिदोषोंका विचार कर अनुपानोंके साथ दो दो रत्तीप्रमाण सेवन करनेसे यह मृगाङ्करस–क्षयरोगको नष्ट करता है॥ १४॥

मृगाङ्करस।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं ततः।
गन्धकं च समं तेन रसपादं तु टङ्कणम्॥ ११५॥

सर्वं तद्गोलकं कृत्वा काञ्जिकेन च पेषयेत् ।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
मृगांकसंज्ञः स ज्ञेयो रोगराजनिषूदनः ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, मोतिकी भस्म २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, और सुहागा ३ मासे सबको एकत्र काँजीके द्वारा खरल करके गोलासा बनाकर धूपमें सुखालेवे । फिर गोलेको मूषायन्त्रमें बन्द करके नमकसे भरेहुए पात्रमें रखकर चार प्रहरतक पकावे । यह मृगाङ्कनामवाला रस रोगराज क्षयको नष्ट करनेवाला है ॥ १५-१६

गुञ्जाचतुष्टयं चास्य मरिचैः सह भक्षयेत् ।
पिप्पलीदशकैर्वाथ मधुना लेहयेद् बुधः ॥ १७ ॥
पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत् ।
दध्याजं गव्यतक्रं वामांसमाजं प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥
व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैरहिङ्गुभिः ।
एलाजाजीमरीचैस्तु संस्कृतैरविदाहिभिः ॥ १९ ॥
वृन्ताकं तैलबिल्वादि कारवेल्लं च वर्जयेत् ।
स्त्रियं परिहरेद्दूरे कोपं चापि परित्यजेत् ॥ १२० ॥

इस रसको ४ रत्ती प्रमाण लेकर मिरचोंके चूर्ण और शहदके साथ अथवा १० पीपलोंके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे । इसपर लंघुपाकी मांस बकरीका दही, गौका मट्ठा, बकरेका मांस, और घृतके द्वारा बने हुए विविध प्रकारके व्यंजनादि पथ्य हैं । एवं इलायची, जीरा और काली मिरच इनके द्वारा संस्कार किये हुए खाद्य पदार्थोंको भक्षण करे और अत्यन्त क्षार पदार्थ, हींग, दाह-कारक पदार्थ, बैंगन, तैल, बेल, करेला आदि पदार्थोंको त्यागदेवे । स्त्रीप्रसंग और क्रोधको तो सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ १७-१२० ॥

राजमृगांक रस ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलातालकगन्धकम् ॥ २१ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वराटिका तेन पूर्य्या अजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ २२ ॥

पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तां निरोधयेत्।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥ २३ ॥
रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जं क्षयापहः।
दशपिप्पलिकैः क्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशकैः ॥
सघृतैर्दापयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ २४ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म ३ तोले, स्वर्णभस्म एक तोला, ताम्रभस्म एक तोला, (किसी किसी ग्रन्थमें 'मृतताम्रस्य' के स्थानमें 'मृततारस्य' ऐसा पाठ है।) शिलाजीत २ तोले, हरतालकी भस्म २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले इन सबको एकत्र बारीक पीसकर १ बडी कौडीके भीतर भरदेवे और उसके मुखको बकरीके दूधके साथ घिसे हुए सुहागेसे बन्द करदेवे। फिर इसको मूषायन्त्रमें वा एक मिट्टीके बरतनमें रख ऊपरसे कपरौटी करके धूपमें सुखालेवे। फिर गजपुटमें रखकर पकावे। जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब औषध निकालकर चूर्ण करलेवे। यह राजमृगांकनाशक रस है। इसको दो रत्तीसे लेकर चार रत्तीतक दस पीपलोंके चूर्ण और शहदके साथ अथवा १९ काली मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करावे। यह रस-वात पित्त और कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए क्षयरोगमें विशेष उपयोगी है। क्षयरोगको नष्ट करनेके लिये यह परमोत्कृष्ट औषध है॥२१--२४

महामृगांकरस।

निरुत्थभस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम्।
त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥
मृतताप्यं च पंचांशं तारभस्म चतुर्गुणम्।
सप्तभागं प्रवालं च रसतुल्यं च टङ्कणम् ॥ २६ ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं निम्बुवारिणा।
ततो गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥ २७ ॥
लवणैः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत्।
तन्मुखं च मृदा रुद्ध्वा पचेद्यामचतुष्टकम् ॥ २८ ॥
आकृष्य चूर्णयेच्छुद्धं चतुःषष्टिविभागतः।
वज्रं च तदभावे तु वैक्रान्तं षोडशांशिकम् ॥ २९ ॥

सुवर्णभस्म १ तोला, रससिन्दूर २ ताले, मोतीकी भस्म ३ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ तोले, चाँदीकी भस्म ४ तोले, मूँगेकी भस्म ७ तोले और सुहागा २ तोले इन सब औषधियोंको एकत्र कागजी नींबूके रसके साथ तीन दिनतक खरल करके गोलासा बनाकर तीक्ष्ण धूपमें सुखालेवे। फिर उस गोलेको मूषामें रखकर उसके ऊपर कपरौटीकर नमकसे भरे हुए मिट्टीके पात्रमें बन्द करके चार प्रहरतक पकावे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब औषधि निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर समस्त चूर्णका चौसठवाँ भाग हीरेकी भस्म (हीरेके अभावमें सम्पूर्ण चूर्णका १६ वाँ भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म) मिलादेवे॥ २८–२९॥

महामृगांकः खलु सिद्ध एष श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम्।
वल्लोऽस्यसेव्योमरिचाज्ययुक्तःसेव्योऽथवापिप्पलिकासमेतः ३०
अत्रोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः।
बल्यं घृतं च भोक्तव्यं त्याज्यं शुरविरोधि यत्॥ ३१॥
यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा विद्रधिं
मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिं च मूर्च्छां भ्रमिम्।
अष्टावेव महागदान् गदगणान्पाण्डवामयान्कामलां
पित्तार्तिं समलग्रहान्बहुविधानन्यांस्तथा नाशयेत्॥३२॥

इस प्रकार यह महामृगाङ्करस सिद्ध होता है। इसको श्रीनन्दिनाथजीने निर्माण किया ह। इस रसको दा रत्ती प्रमाण लेकर कालीमिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ अथवा पीपलके चूर्ण आर घृतके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसके सेवन करनेपर क्षयरोगमें कहेहुए सम्पूर्ण पदार्थोंका उपचार करना चाहिये और बलकारक पदार्थ, घृत तथा घृतके बने खाद्य द्रव्योंका सेवन करना चाहिये। एवं प्रकृतिके विरुद्ध पदार्थोंको त्यागदेना चाहिये। यह रस विविध प्रकारके यक्ष्मारोग, सर्व प्रकारके ज्वर, गुल्म, विद्रधिरोग, मन्दाग्नि स्वरभंग, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, पाण्डुरोग, कामला, पित्तसम्बन्धी विकार और अन्यान्य अत्यन्त भयंकर व्याधिसमूहको शीघ्र नष्ट करता है॥ १३०–३२॥

लोकेश्वरपोट्टलीरस।

भस्मसूताच्चतुर्थांशं मृतस्वर्णं प्रदापयेत्।
द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकाम्बुना॥ ३३॥

पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन निरुध्य च।
भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुद्ध्वा च मृन्मये॥ ३४॥
शोषयित्वा गजपुटे पुटेत्तु चापराह्णिके।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा तु विन्यसेत्॥ ३५॥

रससिन्दूर ४ तोले, सुवर्णभस्म १ तोला और शुद्ध गन्धक ८ तोले इनको एकत्र चीतेके काथके द्वारा खरल करके एक कौडीमें भरकर सुहागेसे उसका मुँह बन्द करदेवे। फिर एक मिट्टीके पात्रमें चूनेका प्रलेप करके उसमें उक्त कौडीको रखकर मिट्टीसे उस पात्रका मुँह बन्दकरके धूपमें सुखाकर अपराह्णके समय गजपुटमें पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब औषधि निकालकर चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे॥ ३३–३५॥

एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविवर्द्धनः।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम्॥ ३६॥
भक्षयेत्पयसा भक्त्या लोकेशः सर्वदर्शनः।
अङ्गकार्श्येऽग्निमान्द्ये च कासे पित्ते क्षयेऽपि च॥३७॥
मरिचैर्घृतसंयुक्तैश्च भक्षयेद्दिवसत्रयम्।
लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं दधि च योजयेत्॥ ३८॥
एकविंशद्दिनं यावत्सघृतं मरिचं पिबेत्।
पथ्यं मृगाङ्कवद्देयं शयीतोत्तानपादतः॥ ३९॥

यह लोकेश्वरपोट्टलीनामक रस अत्यन्त वीर्यवर्द्धक और पुष्टिकारक है। इसको चार चार रत्ती प्रमाण लेकर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे और दूधके साथ भोजन करे। यह सर्वप्रियरस है, इसको शरीरकी कृशता, मन्दाग्नि, खाँसी, दुष्टपित्त और क्षयादि रोगोंके होनेपर कालीमिरच और घीके साथ मिलाकर ३ दिनतक सेवन करे। इसपर नमक त्यागकर घृतयुक्त दहीका भोजन करना चाहिये और २१ दिनतक मिरचोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। इस रसको सेवन करते समय मृगाङ्करसकी समान पथ्य पदार्थोंको देना चाहिये और रोगीको ऊपरको पैर उठाकर शयन करना चाहिये॥ ३६–३९॥

ये शुष्का विषमाशनैः क्षयरुजा याप्याश्च येऽष्ठीलया
ये पाण्डुत्वहताः कुवैद्यविधिना ये शोषिणो दुर्भगाः।

ये तप्ता विविधैर्ज्वरैः श्रममदोन्मादः प्रमादं गता-
स्ते सर्वे विगतामया हतरुजः स्युः पोट्टलीसेवनात् ॥ १४० ॥

विषम पदार्थोंके भक्षण करनेसे जिनका शरीर शुष्क होगया है, जो क्षयरोग और वाताष्ठीलारोगसे पीडित हैं और जो पाण्डुरोगसे जो कुवैद्योंकी कुचिकित्साके द्वारा असाध्य होगये हैं, जो विविधप्रकारके ज्वरोंसे सन्तप्त हैं और जो अत्यन्त परिश्रम व अत्यन्त मद्यपान करनेसे अथवा उन्मादसे पीडित हैं और जो भाग्यहीन राजयक्ष्मारोगी हैं वे इस पोट्टलीको सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त होकर आरोग्य होते हैं ॥ १४० ॥

हेमगर्भपोट्टलीरस।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम्।
मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य च ॥ ४१ ॥
मर्द्दयेच्चित्रकद्रावैर्द्दियामान्ते समुद्धरेत्।
पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन विलेपयेत् ॥ ४२ ॥
वराटीं पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
विचूर्णयेत्स्वाङ्गशीते पोट्टलीं हेमगर्भिकाम् ॥
मृगाङ्कवच्चतुर्गुञ्जाभक्षणाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ४३ ॥

पारेकी भस्म ३ तोले, सुवर्णभस्म १ तोला, ताँबेकी भस्म १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला लेवे, सबको दो प्रहरतक चलाकर ढकनमें खरल करके एक कौडीमें भरकर सुहागेसे उसका मुँह बंद करके फिर उस कौडीको एक मिट्टीके पात्रमें रखकर उस पात्रका मुह बन्द करके गजपुटमें पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब औषध निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस हेमगर्भपोट्टलीनामक रसको मृगांकरसकी समान चार चार रत्ती परिमाण सेवन करनेसे राजयक्ष्मारोग नष्ट होता है ॥ ४१–४३ ॥

रत्नगर्भपोट्टलीरस।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लौहं च ताम्रकम्।
तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ ४४ ॥
शङ्खं तुत्थं च तुल्यांशं सप्ताहं चार्द्रकद्रवैः।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका ॥ ४५ ॥

टङ्कणं रविदुग्धेन मुखं लिप्त्वा निरोधयेत्
मृद्भाण्डे तां निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ४६ ॥
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्या सप्त भावनाः ।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ ४७ ॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्याद्-

शुद्ध पारा, हीरा, सोना, चाँदी, शीशा, लोहा, ताँबा, मोती, सोनामाखी, प्रवाल, शङ्ख और तूतिया इन सबकी भस्मोंको समान भाग लेकर एकत्र सात दिनतक अदरखके रसके द्वारा खरल करे । फिर उसको कौडीमें भरकर आकके दूधके द्वारा खरल किये हुए सुहागेसे उस कौडीका मुँह बन्द करदेवे और एक मिट्टीके पात्रमें उसको यथाविधि बन्द करके उत्तम प्रकारसे गजपुटमें पकावे, जब पककर स्वांग-शीतल होजाय तब औषध निकालकर चूर्ण करलेवे । फिर निर्गुण्डीके रसमें सात-बार, अदरखके रसकी सातबार और चीतेके रसकी २१ बार भावना देकर धूपमें सुखालेवे ॥ ४४-४७ ॥

-देयं गुंजाचतुष्टयम् ।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥ ४८ ॥
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा ।
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ॥
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहेन योजयेत् ॥ ४९ ॥
(" वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्त्तिताः") ॥१५०॥

यह रस- चार चार रत्ती प्रमाण लेकर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ अथवा मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर नियमपूर्वक सेवन करनेसे साध्य वा असाध्य सर्व प्रकारके राजयक्ष्मारोगको निस्सन्देह शीघ्र नष्ट करता है । एवं आठ प्रकारके महारोग (वातव्याधि, पथरी, कोढ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर बवासीर और संग्रहणी) इनमें और खाँसी, श्वास, ज्वर, अतिसारादिरोगोंमें इस रत्नगर्भ-पोट्टलीनामक रसको यथादोषानुसार अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे शीघ्र आरोग्य लाभ होता है॥४८-१५०॥

कनकसुन्दररस ।

रसस्य तुर्यभागेन हेमभस्म प्रयोजयेत् ।
मनःशिला गन्धकं च तुत्थं माक्षिकतालकम् ॥ ५१ ॥

विषं टङ्कणकं सर्वं रसतुल्यं प्रदापयेत्।
मर्दयेत्सर्वमेकत्र खल्वपात्रे च निर्मले ॥ ९२ ॥
जयन्तीभृङ्गराजोत्थैः पाठाया वासकस्य च।
अगस्तिलाङ्गलाग्नीनां स्वरसैश्च पृथक् पृथक् ॥ ९३ ॥
भावयित्वा विशोष्याथ पुनश्चार्द्रकवारिणा।
सप्तधा भावयित्वा च रसः कनकसुन्दरः ॥ ९४ ॥

पारेकी भस्म १ तोला, सुवर्णभस्म ३ मासे एवं शुद्ध मैनसिल, शुद्ध गन्धक, तूतिया, स्वर्णमाक्षिक, हरताल, मीठा तेलिया और सुहागा ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर सबको एकत्र साफ पत्थरके खरलमें मर्दन करे। फिर जयन्ती, भाँगरा, पाढ, अडूसा, अगस्ति, लांगल और चीता इनके रसमें पृथक पृथक एकएक बार भावना देकर और सुखाकर फिर अदरखके रसमें सात बार भावना देवे। इस प्रकार यह कनकसुन्दररस सिद्ध होता है ॥ ९१-९४ ॥

गुंजाद्वयं त्रयं वाऽस्य राजयक्ष्मप्रशान्तये।
मधुना पिप्पलीभिर्वा मरिचैर्वा घृतान्वितम् ॥ ९५ ॥
सन्निपाते प्रदातव्यमार्द्रकस्य रसेन वै।
जयपालरजोभिर्वा गुल्मिने शूलरोगिणे ॥ ९६ ॥
अम्लवर्जं चरेत्पथ्यं बल्यं हृद्यं रसायनम्।
वर्जयेल्लवणं हिङ्गु तक्रं दधि विदाहि यत् ॥ ९७ ॥

इसको प्रति दिन प्रातःकाल दो रत्ती अथवा ३ रत्ती लेकर पीपलके चूर्ण और शहद या मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है। सन्निपातज्वरमें इस रसको अदरखके रसके साथ और शूल व गुल्मरोगमें जमालगोटेके चूर्णके साथ देना चाहिये। इस औषधिको सेवन करते समय अम्ल-पदार्थ, नमक, हींग, मठा, दही और दाहकारी पदार्थोंको त्याग देना चाहिये। एवं बलकारक, हृदयग्राही, रसायनिक और पथ्य पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ॥ ९५-९७ ॥

सर्वांगसुन्दररस।

रसं गन्धं च तुल्यांशं द्वौ भागौ टङ्कणस्य च।
मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म देयं समांशिकम् ॥ ९८ ॥

हेमभस्मार्द्धभागं च सर्वं खल्ले विमर्दयेत्।
निम्बुद्रवेण सम्पिष्य पिण्डिकां कारयेत्ततः ॥ ५९ ॥
पश्चाद्गजपुटं दत्त्वा सुशीतं च समुद्धरेत्।
हेमभस्मसमं तीक्ष्णं तीक्ष्णार्द्धं दरदं मतम् ॥
एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १६० ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक-इनकी कज्जली २ तोले, सुहागा २ तोले, मोती, मूँगा और शंख इनकी भस्म प्रत्येक १-१ तोला और सुवर्णभस्म ६ मासे, सबको एकत्र कागजीनींबूके रसके साथ खरल करके गोलासा बनालेवे, उसको मूषामें बन्द करके गजपुटमें रखकर तीव्र अग्निके द्वारा पकावे। जब पककर शीतल होजाय तब निकालकर तीक्ष्ण लोहभस्म ६ मासे और शुद्ध हिंगुलभस्म ६ मासे मिलाकर सबको एकत्र करके बारीक चूर्ण करलेव ॥ ५८-१६० ॥

ततः पूजां प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥ ६१ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः।
वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥ ६२ ॥
अर्शसि ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मे भगन्दरे।
निहन्ति वातजान्रोगान् श्लैष्मिकांश्च विशेषतः ॥ ६३ ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा।
भक्षयेत्पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेण वा ॥ ६४ ॥

इसके पश्चात् शुभ दिनमें शिवजीका पूजन करके इस सर्वाङ्गसुन्दररसको दो दो रत्तीकी मात्रासे पीपलके चूर्ण, शहद और घृतके साथ अथवा पानके रस या मिश्री वा अदरखके रसके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मारोग नष्ट होता है। यह रस-घोर वात-पित्तजन्य ज्वर, दारुण सन्निपात, अर्श, सग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, विशेषकर वातज और कफज रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥

सर्पिर्गुड।

बला विदारी ह्रस्वा च पञ्चमूली पुनर्नवा।
पञ्चानां क्षीरिवृक्षाणां शुङ्गा मुष्टचंशिकाः पृथक् ॥ ६५ ॥
एषां कषाये द्विक्षीरे विदार्याजरसांशिके।
जीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥ ६६ ॥

सितोपलानि पूते च शीते द्वात्रिंशदावपेत
गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च ॥ ६७ ॥
समाक्षिकं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ।
स्त्यानं सर्पिर्गुडान् कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ ६८ ॥
ताञ्जग्ध्वा पलिकान्क्षीरं मद्यं चानु पिबेत्कफे ।
शोषे कासे क्षतक्षीणे श्रमस्त्रीभारकर्शिते ॥ ६९ ॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि स्थिते ।
शस्ताः पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥ १७० ॥

खिरैंटी, विदारीकन्द, लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा. एवं वड, गूलर, पीपल, पारिस पीपल और पिलखन इन वृक्षोंके अंकुर ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान-लेवे। फिर उस काथमें बकरीका दूध, गौका दूध, बकरीका मांसरस और विदारी-कन्दका स्वरस ये प्रत्येक काथकी समान भाग, एवं जीवनीयगणकी सम्पूर्ण ओष-धियोंका चूर्ण दो दो तोल और गोघृत एक आढकपरिमाण डालकर पकावे। जब घृत पककर शीतल होजाय तब उसमें मिश्री ३२ तोले, गेहूं, पीपल, वंशलोचन और सिंघाडेका चूर्ण तथा शहद ये प्रत्येक सोलह सोलह तोले मिलाकर करछीसे सबको एकमएक करके एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे और भोजपत्रसे उस पात्रका मुख बन्दकरके रखदेवे। इसको प्रतिदिन चार चार तोले प्रमाण सेवन करे और दूध या मद्यका अनुपान करे। यह सर्पिर्गुड कफविकार, शोष, खाँसी, क्षतक्षीण, अधिक परिश्रम, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग और बहुत बोझ उठानेसे क्लान्त होनेपर, रक्तकी वमन, दाह, पीनस, उरःशूल, पार्श्वशूल, शिरकी पीडा, स्वरभंग और शरीरविवर्णतादि रोगोंमें विशेष उपयोगी है ॥ ६९-१७० ॥

एलादिमन्थ ।

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्रिनिम्बासनशालसारान् ।
विडगभल्लातकचित्रकांश्च कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकांश्च ॥ ७१ ॥
पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ।
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षट् च ७२
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्क्षौद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात् ।
पलं पलं प्रातरतो लिहेच्च पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ ७२ ॥

इलायची, अजमोद, आमले, हरड, बहेडा, खैर, नीम, विजयसार, सालका सार, वायविडंग, भिलावे, चीता, त्रिकुटा, नागरमोथा और गोपीचन्दन ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पककर चतुर्थांश जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें एक प्रस्थ घी डालकर पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पकजाय तब अग्निसे नीचे उतारकर उसमें मिश्री १२० तोले, वंशलोचन २४ तोले और शहद दो प्रस्थ डालकर सबको अच्छे प्रकार मिलाकर शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार तोले सेवन करे और ऊपरसे यथाशक्ति दुग्ध पान करे॥ ७१-७३॥

एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यतमं तथैव।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति शूलं पाण्डूवामयञ्चापि भगन्दरं च॥
न चात्र किञ्चित्परिवर्जनीयं रसायनञ्चैतदुपासनीयम्॥ ७४॥
"अत्र चतुर्गुणक्काथेन कल्कमिदं पाच्यम्"॥

यह एलादिमन्थ—अत्यन्त पवित्र, मेधाजनक, नेत्रोंको हितकारी, अत्यन्त आयुवर्द्धक एवं राजयक्ष्मा, शूल, पाण्डुरोग और भगन्दर इन सब व्याधियोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। इसपर किसी प्रकारका भी परहेज नहीं करना चाहिये। यह रसायन औषध सभीके सेवन करने योग्य है॥ ७४॥

पिप्पलीघृत।

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागक्षीरयुतं घृतम्।
एतदग्निप्रवृद्ध्यर्थं सर्पिश्च क्षयकासिनाम्॥ ७५॥

पीपलका चूर्ण, पुराना गुड और बकरीका दूध इनके साथ यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत क्षय और खाँसीरोगवाले मनुष्योंकी जठराग्निको बढानेके लिये सेवन कराना चाहिये॥ ७५॥

निर्गुण्डीघृत।

समूलफलपत्राया निर्गुण्ड्याः स्वरसैर्घृतम्।
सिद्धं पीत्वा क्षतक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत्॥ ७६॥

मूल, फल और पत्तोंसहित सिह्मालूके स्वरसके साथ विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करके पान करनेसे क्षतक्षीणरोगी आरोग्य होकर देवके समान होता है॥ ७६॥

बलाद्यघृत १-२ ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक्शमयत्युदीर्णम् ॥७७

१-खिरैंटी, गंगेरन और अर्जुनकी छाल इनके समान भाग काथमें काथसे चौथाई भाग मुलहठीका कल्क डालकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त, खाँसी और अतिप्रबल वातरक्त इन सबको नष्ट करता है ॥ ७७ ॥

बलां श्वदंष्ट्रां बृहतीं कलसीं धावनीं स्थिराम् ।
निम्बं पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम ॥ ७८ ॥
कृत्वा कषायं पेष्यार्थं दद्यात्तामलकीं शठीम् ।
द्राक्षां पुष्करमूलं च मेदामामलकानि च ॥ ७९ ॥
घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् ।
क्षयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरुजापहम् ॥ १८० ॥
चरकोदितवासाद्यघृतानन्तरमुक्तितः ।
वदन्तीह घृतात्काथं पयश्च द्विगुणं पृथक् ॥ ८१ ॥

२-खिरैंटी, गोखुरू, बडी कटेरी, पिठवन, कटेरी, शालपर्णी, नीमकी छाल, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण और धमासा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर चौगुने जलमें पकावे । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर उसमें भुईं आमला, कचूर, दाख, पोहकरमूल, मेद और आमले इनका बारीक चूर्ण और गोघृत काथसे आधा भाग एवं क्वाथकी समान गोदुग्ध डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे । इस प्रकार सिद्ध किया हुआ घृत ज्वर, क्षय, खाँसी, शिरःशूल और पसलीकी पीडा आदि सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूर करता है । चरकमें वासाद्यघृतके पश्चात् इसी घृतका वर्णन कियागया है । इससे इसमें क्वाथ और दूध घृतसे दुगुने लेना चाहिये ॥ ७८-१८१ ॥

नागबलाघृत ।

पादशेषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ।
तेन क्वाथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरं च साधयेत ॥ ८२ ॥
पलार्द्धकैश्चातिबला बला यष्टिः पुनर्नवा ।
प्रपौण्डरीककाश्मर्यपियालकपिकच्छुभिः ॥ ८३ ॥

अश्वगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकण्टकैः ।
मृणालविषशालूकशृङ्गाटककशेरुकैः ॥ ८४ ॥

गंगेरनको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्काथमें घी और दूध क्काथकी समान एवं कंघी, खिरैंटी, मुलहठी, पुनर्नवा, पुण्डेरिया, कुम्भेर, चिरौंजी, कौंचके वीज, असगन्ध, मिश्री, शतावर, मेदा, महामेदा, गोखुरू, कमलकी नाल, कमलकेशर, भसींडे, सिंघाडे और कशेरू इन सबका दो दो तोले चूर्ण डालकर घृतको सिद्ध करे ॥ ८२-८४ ॥

एतन्नागबलासर्पी रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
हन्ति दाहं भ्रमं तृष्णां बलपुष्टिकरं परम् ॥ ८५ ॥
बल्यमोजस्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ।
उपयुंजीत षष्मासान्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ८६ ॥

इस नागबलाघृतको सेवन करनेसे रक्तपित्त, क्षतक्षय, दाह, भ्रम, तृषा और असमयमें बालोंका पकना, शरीरमें वलियोंका पडना आदि विकार नष्ट होते हैं। यह घृत अत्यन्त बलकारक, पुष्टिकारक, ओज और आयुवर्द्धक है। इस घृतको छः महीनेपर्यन्त सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी तरुण हो जाता है ॥ ८५ ॥ ८६

बलागर्भघृत ।

द्विपंचमूलस्य पचेत्कषाये प्रस्थद्वये मांसरसस्य चैके ।
कल्कं बलायाः सुनियोज्य गर्भे सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतं च ।
सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूलक्षतक्षयोत्कासहरं प्रदिष्टम् ॥ ८७ ॥

दशमूलके २ प्रस्थ क्काथमें मांसरस एक प्रस्थ, खिरैंटीका कल्क चौथाई प्रस्थ, गोघृत १ प्रस्थ और गौका दूध १ प्रस्थ मिलाकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत सर्व प्रकारके उपद्रवोंसे उत्पन्न हुए राजयक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय और उत्कट खाँसी आदिको हरनेवाला है ॥ ८७ ॥

पाराशरघृत ।

यष्टी बला गुडूच्यल्पपंचमूलीतुलां पचेत् ।
शूर्पेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रं पचेद्घृतम् ॥ ८८ ॥

धात्रीविदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोऽर्मणे ।
सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम् ॥
ससैन्यं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति शीलितम् ॥ ८९ ॥

मुलहठी, खिरैंटी, गिलोय और लघुपञ्चमूल इन सब ओषधियोंको १०० पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब आठवाँ भाग [जल] शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी ८ सेर, आमले, विदारीकन्द और ईख इनका रस २४ सेर, दूध एक द्रोण और जीवनीयगणकी समस्त ओषधियोंका चूर्ण चार चार तोले लेकर दूधमें पीसकर डालदेवे, फिर विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह पाराशरनामक घृत प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करनेसे संपूर्ण उपद्रवोंसे युक्त राजयक्ष्मारोगको समूल नष्ट करदेता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अजापञ्चक घृत ।

छागशकृद्रसमूत्रक्षीरैर्दध्ना च साधितं सर्पिः ।
सक्षारं यक्ष्महरं कासश्वासोपशान्तये परमम् ॥ १९० ॥

बकरीकी विष्ठाका रस, मूत्र, दूध, दही और बकरीका घी ये सब समान भाग और घृतसे चौथाई भाग जवाखार लेकर सबको एकत्र करके घृतको पकावे । यह घृत राजयक्ष्माको हरनेवाला और कास, श्वासादि रोगोंको शान्त करनेके लिये परम उपयोगी है ॥ १९० ॥

छागलाद्यघृत १-२ ।

छागमांसतुलां गृह्य साधयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पादशेषेण तेनैव सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९१ ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैः पृथक् पलोन्मितैः ॥९२॥
सम्यक् सिद्धे चावतार्य शीते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥

१-बकरेके मांसको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें घी ६४ तोले, ऋद्धि, वृद्धि मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली और क्षीरकाकोली इन सब ओषधियोंका कल्क चार चार तोले डालकर घृतको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें खाँड ३२ तोले और शहद १६ तोले डालकर सबको मिलादेवे ॥ ९१-९३ ॥

पलं पलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्जयम् ।
क्षतक्षयं च कासं च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ९४ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात्सुदारुणम् ।
बल्यं मांसकरं वृष्यमग्निसंदीपनं परम् ॥ ९५ ॥

यह घृत प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार तोले प्रमाण सेवन करनेसे अतिदुर्जय राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, खाँसी, पसलीकी पीडा, अरुचि, स्वरभंग, हृदयरोग और अतिदारुण श्वासको नष्ट करता है । एवं बल, मांस और वीर्यकी अधिक वृद्धि करता और अग्निको अत्यन्त दीपन करता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

तोयद्रोणद्वितये च्छागलमांसस्य पलशतं पक्त्वा ।
जलमष्टांशं सुकृतं तस्मिन्विपचेद् घृतं प्रस्थम् ॥९६॥
कल्केन जीवनीयानां कुडवेन तु मांससर्पिरिदम् ।
पित्तानिलं निहन्यात्सञ्जानपि रसकयोजितं पीतम् ॥९७॥
कासश्वासावुग्रौ यक्ष्माणं पार्श्वहृद्रुजां घोराम् ।
अध्वव्यवायशोषं शमयति चैवापरं किञ्चित् ॥ ९८ ॥

२–बकरेके मांसको सौ पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ और जीवनीयगणकी सब औषधियोंका कल्क एक कुडव डालकर घृतको सिद्ध करे । यह छागलाद्यघृत वातज और पित्तज रोग, अत्युग्र खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, पार्श्वशूल, हृदयरोग, मार्गश्रम, स्त्रीप्रसङ्गकी व्यग्रता, शोष एवं अन्यान्य सम्पूर्ण उपद्रवोंको शमन करता है ॥ ९६–९८ ॥

जीवन्त्याद्यघृत ।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
शठीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ ९९ ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।
पिप्पलीं च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥
एतद् व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् ।
रूपमेकादशविधं सर्पिरुग्रं व्यपोहति ॥ २०० ॥

जीवन्ती, मुलहठी, दाख, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, गोखुरु, खिरैंटी, नीलकमल, भुंई आमला, त्रायमाण, धमासा और पीपल इन सबको

समान भाग लेकर एकत्र पीसकर चौगुन जलमें डालकर १ सेर घृतको पकावे। यह घृत समस्त रोगसमूहको और ग्यारह प्रकारके लक्षणों सहित अत्युग्र राजयक्ष्माको दूर करता है। १९९॥ २००॥

अमृतप्राशघृत १-२।

जीवकर्षभकौ वीरां जीवन्तीं नागरं शठीम्।
चतस्रः पर्णिनीर्मेदे काकोल्यौ द्वे निदिग्धिके॥ १॥
पुनर्नवे द्वे मधुकमात्मगुप्तां शतावरीम्।
ऋद्धिं परूषकं भार्ङ्गीं मृद्वीकां बृहतीं तथा॥
शृङ्गाटकं तामलकीं पयस्यां पिप्पलीं बलाम्।
बदरास्फोटखर्जूरवातामाभिषुकाण्यपि॥ २॥
फलानि चैवमादीनि कल्कान्कुर्वीत कार्षिकान्।
धात्रीरसविदारीक्षुच्छागमांसरसं पयः।
दत्त्वा प्रस्थोन्मितान्भागान्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्करार्द्धतुलां तथा॥ ३॥
पलार्द्धकं च मरिचत्वगेलापत्रकेशराव।
विनीय चूर्णितं तस्माल्लिह्यान्मात्रां सदा नरः॥
अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम्॥ ४॥
सुरामृतरसप्रख्यं क्षीरमांसरसाशिनः॥
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्शितान्।
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत्॥ ५॥
कासहिक्काज्वरश्वासदाहतृष्णास्रपित्तनुत्।
पुत्रदंवमिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम्॥ ६॥

१-जीवक, ऋषभक, कपूरकचरी, जीवन्ती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, कटेरी, गोखुरू, श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, मुलहठी, कौंचके बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसे, भारंगी, दाख, बडी कटेरी, सिंघाडे, भुईं आमला, क्षीरविदारीकन्द, पीपल, श्वेत खिरैटी, बेर, अखरोट, खजूर, बादाम और पिस्ते ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर आमले, विदारीकन्द, ईख इनका स्वरस, बकरेका मांसरस

गोदुग्ध और गोघृत इस सबको एक एक प्रस्थ लेकर एकत्र करके पकावे। जब घी उत्तम प्रकारसे पकजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद ३२ तोले, मिश्री ५० पल कालीमिरच, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर इनका चूर्ण दो दो तोले डालकर सबको एकमएक करलेवे। यह अमृतप्राशनामक घृत मनुष्योंके लिये अमृतकी समान हितकारी है। इसको अग्निका बलाबल विचारकर यथोचित मात्रासे सेवन करे और दूध एवं मांसरसका पथ्य करे। यह अमृतप्राशघृत क्षीणवीर्य, क्षतक्षीण, देहकी दुर्बलता, रोगसे अथवा अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे उत्पन्न हुई कृशता, विवर्णता, स्वरभंग, खाँसी, श्वास, हिचकी, ज्वर, दाह, तृषा, रक्तपित्त, वमन, मूर्च्छा, हृद्रोग, योनिरोग और मूत्रकृच्छ्र आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर करता है। एवं पुष्टिकारक और पुत्रजनक है॥ २०१–२०६॥

क्षीरे च धात्री मञ्जिष्ठा क्षीरिणां च तथा रसैः।
पचेत्समैर्घृतप्रस्थं जीवकर्षभकौ विना॥
जीवनीयगणेषूक्तैः प्रत्येकं कर्षसम्मितैः॥ ७॥
द्राक्षाद्धिचन्दनोशीरैः शर्करोत्पलपद्मकैः।
मधूककुसुमानन्ताकाश्मरीतृणसंज्ञकैः॥
प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्करार्द्धतुलां तथा॥ ८॥
पलार्द्धकांश्च सञ्चूर्ण्य त्वगेलापत्रकेशरात्।
विनीय तत्र सँल्लिह्यान्मात्रां नित्यं सुयंत्रितः॥ ९॥
अमृतप्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम्।
क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम्॥ १०॥
तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दिमूर्च्छाभ्रमर्दनम्।
मूत्रकृच्छ्रज्वरघ्नं च बल्यं स्त्रीरतिवर्द्धनम्॥ ११॥

२–गोदुग्ध, आमलोंका रस, मंजीठ, बड, गूलर, पीपल, पाखर और पारसपीपल इनका क्वाथ समान भाग, गोघृत १ प्रस्थ एवं जीवक ऋषभकको छोडकर जीवनीयगण (ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी) की औषधियों एक एक कर्ष और दाख, सफेद चन्दन, खस, खाँड, नीलकमल, पद्माख, महुएके फूल, अनन्तमूल, कुम्भेर, कुशाकी जड, काशकी जड, सर्पटेकी जड, काली ईखकी जड और शालिधानोंकी जड़, प्रत्येकका चूर्ण एक एक कर्ष सबको एकत्र मिलाकर घृतको पकावे। जब घृत अच्छे प्रकारसे पककर शीतल होजाय तब शहद

३२ तोले, खाँड २०० तोले और दारचीनी, इलायची, तेजपात, केशर ये प्रत्येक दो दो तोले बारीक चूर्णकर मिलादेवे। इसको प्रतिदिन अग्निका बलाबल विचारकर उपयुक्त मात्रासे सेवन करे। इस अमृतप्राश घृतको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है। इसको सेवन करते समय दूध और मांसरसका पथ्य करे। यह घृत रक्तपित्त, क्षतक्षय, तृषा, अरुचि, श्वास, खाँसी, वमन, मूर्च्छा, शरीरका टूटना, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरको नष्ट करनेवाला एवं बल और स्त्रियोंमें रतिशक्तिवर्द्धक है॥ २०७-२११॥

महाचन्दनादितैल।

चन्दनं शालपर्णी च पृश्निपर्णी निदिग्धिका।
बृहती गोक्षुरं चैव मुद्गपर्णी विदारिका॥ १२॥
अश्वगन्धा माषपर्णी तथाऽऽमलकमेव च।
शिरीषं पद्मकोशीरं सरलं नागकेशरम्॥ १३॥
प्रसारणी तथा मूर्वा प्रियंगूत्पलबालकम्।
वाट्यालकं चातिबला मृणालं विषशालुकम्॥ १४॥
पञ्चाशत्पलमेतेषां श्वेतवाट्यालकं तथा।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्॥ १५॥

लालचन्दन, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडीकटेरी, गोखुरू, मुगवन, विदारीकन्द, असगन्ध, मषवन, आमले, शिरसकी छाल, पद्माख, खस, सरलधूप, नागकेशर, प्रसारिणी, मूर्वा, फूलप्रियंगू, कुमुद, नीलोफर, सुगन्धवाला, खिरैंटी, कंघी, कमलकी नाल, भसीडा और सफेद खिरैंटी इन सब ओषधियोंको पचास पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे॥ १२-१५॥

अजाक्षीरं तैलसमं शतमूलीरसाढके।
लाक्षारसं काञ्जिकं च दधिमस्तु तथैव च॥ १६॥
हरिणच्छागशशकमांसानां च पृथक् पृथक्।
चतुःप्रस्थं विनिष्क्वाथ्याढकं तैलं विपाचयेत्॥ १७॥
श्रीखण्डागुरुकक्कोलंनखं शैलेयकेशरम्।
पत्रं चोचं मृणालं च हरिद्रे शारिवाद्वयम्॥ १८॥

रक्तोत्पलं नतं कुष्ठं त्रिफला च परूषकम्।
मूर्वा च ग्रन्थिपर्णी च नलिका देवदारु च ॥ १९ ॥
सरलं पद्मकोशीरं धातकी बिल्वपेशिका।
रसाञ्जनं मुस्तकं च शल्लकं बालकं वचा ॥ २० ॥
मञ्जिष्ठा लोध्रमधुरी जीवनीयं प्रियङ्गुकम्।
शठ्येला कुंकुमं चैवखट्टाशी पद्मकेशरम् ॥ २१ ॥
रास्ना च जातीकोषं च विश्वकं सधनीयकम्।
पलार्द्धमेषां प्रत्येकं पेषयित्वा विनिक्षिपेत ॥ २२ ॥

फिर उस क्वाथमें बकरीका दूध ८ सेर, तिलका तैल ८ सेर शतावरका रस ८ सेर, लाखका रस ८ सेर; काँजी ८ सेर, दहीका तोड ८ सेर, एवं हिरन, बकरा और खरगोश-इन प्रत्येकका मांसरस आठ आठ सेर और कल्कके लिये सफेद चन्दन; अगर, कङ्कोल, नख (नाम गन्धद्रव्य), भूरिछरीला, नागकेशर, तेजपात, दारचीनी, कमलकी नाल, हल्दी, दारुहल्दी, उसवा, अनन्तमूल, लालकमल, तरग, कूठ, त्रिफला, फालसे, मूर्वा, ग्रन्थिपर्णी, नलिका, देवदारु, धूपसरल, पद्माख, खस, धायके फूल, बेलगिरी, रसौंत, नागरमोथा, शिलारस, सुगन्धवाला, वच, मंजीठ, लोध, सौंफ, जीवनीयगणकी समस्त ओषधियाँ, फूलप्रियंगु, कचूर, छोटी इलायची, केशर, खट्टासी, कमलकेशर, रायसन, जायफल, सोंठ और धनियाँ दो दो तोले बारीक चूर्ण करके डालदेवे और फिर यथाविधि तैलको पकावे। जब तैल उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छानलेवे ॥ १६-२२२ ॥

महासुगन्धितैलस्य गन्धमत्र प्रदीयते।
काश्मीरमदचन्द्रांशुसिद्धे पूते विनिक्षिपेत् ॥ २३ ॥
यथालाभं शुभे पात्रे संगोपेन निधापयेत्।
वातपित्तहरं वृष्यं धातुपुष्टिकरं परम् ॥
निहन्ति क्षीणमत्युग्रं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ २४ ॥
येषां भूरिपरिश्रमादनुदिनं नश्यन्ति देहा नृणां
ये वा कामकलानुकूलतरुणीसङ्गेन निर्धातवः।
ये वा व्याधिविशीर्णतामुपगतास्तेषां परं भेषजं
बल्यं वृष्यतमं तनूपचयकृच्छ्रीचन्दनाद्यं महत् ॥ २५ ॥

इस तैलमें महासुगन्धितैलकी सुगन्धित औषधियाँ एवं कस्तूरी, केशर और कपूर ये जितनी मिलसके उतनी लेकर डालदेवे और तैलको शुद्ध पात्रमें भरकर और उसका मुँह बाँधकर रखदेवे । यह तैल वात-पित्तनाशक, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, धातु-पुष्टिकारक एवं अतिप्रबल क्षय, रक्तपित्त और उरःक्षतको नष्ट करनेवाला है । जिन मनुष्योंके प्रतिदिन अधिक परिश्रम करनेसे शरीर क्षीण होगय हों या जो कामकला-ओंमें प्रवीण तरुणी-स्त्रियोंके साथ अत्यन्त प्रसङ्ग करनेसे धातुहीन होगये हों अथवा जो रोगोंके कारण अत्यन्त कृश होगये हों ऐसे पुरुषोंके लिये यह महाचन्दनादि तैल अत्युत्तम औषध है । एवं अत्यन्त बलकारक, वीर्यवर्द्धक और शरीरको पुष्ट करनेवाला है ॥ २३–२५ ॥

यक्ष्मारोगमें पथ्य ।

मद्यानि जाङ्गलं पक्षिमृगमांसं विशुष्यताम् । मुद्गषष्टिक-गोधूमयवशाल्यादयो हिताः ॥ २६ ॥ दोषाधिकस्य बलिनो मृदुशुद्धिरादौ गोधूममुद्गचणकारुणशालयश्च । छागादिमांसनवनीतपयोघृतानि क्रव्यादमांसमपि जाङ्ग-लजा रसाश्च ॥ २७ ॥ पक्वानि मोचपनसाम्रफलानि धात्रीखर्जूरपौष्करपरूषकनारिकेलम् । शोभाञ्जनं च कुलकं नवतालशस्यं द्राक्षाफलानि मिषयोऽपि च माणिमन्थम् ॥ २८ ॥ सिंहास्यपत्रमपि गोमहिषीघृतं च छागाश्रये शयनमूत्रपुरीषलेपः । मत्स्यण्डिका शिखरिणी मदिरा रसाला कर्पूरक मृगमदः सितचन्दनं च ॥ २९ ॥ अभ्यञ्जनानि सुरभीण्यनुलेपनानि स्नानानि वेषरचनान्यवगाहनानि । हर्म्य स्रजं स्मरकथा मृदुगन्धवाहो गीतानि नृत्यमपि चन्द्ररुची विपञ्ची । मुक्तामणिप्रचुरभूषणधारणं च होमः प्रदान-ममरद्विजपूजनानि ॥ ३० ॥

मदिरा, जाङ्गलदेशके पशु पक्षियोंका शुष्क मांस, मूँग, सांठीक चावल, गहूं, जौ और शालिधानोंके चावल आदि पदार्थ यक्ष्मारोगीके हितकर हैं । दोषोंकी अधिकतावाले बलवान् रोगीके प्रथम मृदुवमन और विरेचनके द्वारा कोष्ठको शुद्ध करे । फिर गेहूँ, मूँग, चने, लाल शालिधानोंके चावल, बकरेका मांस,

बकरीका नैनी घी, बकरीका दूध, बकरीका घी, मांसाहारी जीवोंका मांस और जाङ्गल देशमें उत्पन्न हुए पशुपक्षियोंका मांमरस, पके केलेका मोचा, पका कटहल, पके आम, आमले, खजूर, पोहकरमूल, फालसे, नारियल, सहिंजनेकी फली, बेर, नवीनताडका फल, दाख, सौंफ, सैंधानमक, बिसौंटेके पत्ते, गौ और भैंसका घी, बकरियोंके बीचमें शयन और बकरीके मल मूत्रका प्रलेप, मत्स्यण्डिका, मिश्री, शिखरन, मद्य, रसाला, कपूर, कस्तूरी, श्वेतचन्दन और सुगन्धित तैलादि द्रव्योंकी शरीरपर अनुलेपन, स्नान, सुन्दर वेशरचना, जलमें गोता लगाकर स्नान करना, ऊंची अट्टालिकाओंमें निवास, पुष्पमालायें पहरना, कामकथा, मन्द-सुगन्ध वायुका सेवन, चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी, सुन्दर सुन्दर गाने गीत और नृत्य देखना, मोती और मणियोंके निर्मित भूषण धारण करना, यज्ञ करना, दान देना, देवता और ब्राह्मणोंका एवं पुण्य पुरुषोंका पूजन, सम्मान आदि ये सब क्रियायें करनी चाहिये ॥ २६-२३० ॥

यक्ष्मारोगमें अपथ्य ।

विरेचनं वेगविधारणानि श्रमं स्त्रियं स्वेदनमञ्जनं च ।
प्रजागरं साहसकर्म्मसेवा रूक्षान्नपानं विषमाशनं च ॥ ३१ ॥
ताम्बूलकालिङ्गकुलत्थमाषरसोनवंशांकुररामठानि ।
अम्लानि तिक्तानि कषायकाणि कटूनि सर्वाणि च पत्रशाकम् ।
क्षारान्विरुद्धान्यशनानि शिम्बी कर्कोटकं चापि विदाहि सर्वम् ।
कठिल्लकं कृष्णमपि क्षयेषु विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥ ३३ ॥
वृन्ताकं कारवेल्लं च तैलं बिल्व च राजिकाम् ।
व्यायामं च दिवानिद्रां क्षयी कोपं विवर्जयेत् ॥ ३४॥

विरेचन कराना, मल मूत्रादिके वेगोंका रोकना, अधिक परिश्रम, अत्यन्त मैथुन, स्वेद देना, नेत्रोंमें अँजन लगाना, रात्रिमें जागना, साहसके कार्य करना, रूक्ष अन्नपान, विषम भोजन, पान, तरबूज, मटर, उडद, लहसुन, बाँसके अंकुरोंका शाक, हींग, खट्टे-कडवे-कषैले-चरपरे पदार्थ, सम्पूर्ण पत्तोंवाले शाक, क्षारपदार्थ, विरुद्ध भोजन, सेमकी फली, ककोडा, समस्त दाहकारक पदार्थ, काली तुलसी, बैंगन, करेला, तैल, बेल, सरसों, व्यायाम, दिनमें सोना और क्रोध ये सब क्षयरोगीको त्याग देने चाहिये ॥ २३१-२३४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां यक्ष्मरोग-चिकित्सा ।

कासरोगकी चिकित्सा।

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम्।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ १ ॥
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च।
प्रशस्यते वातकासे स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ २ ॥
ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान्।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥ ३ ॥

बथुआ, मकोय, मूली और शिरियारीका शाक, घृत, तैलादि स्नेह पदार्थ, दूध, ईखका रस, गुडके बने पदार्थ, दही, काँजी, खट्टे फल, प्रसन्ना नामक मदिरा, मधुर अम्ल और नमकीन पदार्थ एवं ग्राम्य, आनूप और जलचरजीवोंका मांसरस वा यूष, शालिधानोंके चावल, जौ, गेहूं, सांठीके चावलोंका भात, उडद और कौंचके बीजोंके यूषके साथ हितकर पदार्थोंको वातज कासरोगमें भोजन करना हितकर है ॥ १–३ ॥

शठीशृङ्गीकणाभार्ङ्गीगुडवारिदयासकैः।
सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः ॥ ४ ॥

कचूर, काकडासिंगी, पीपल, भारङ्गी, पुराना गुड, नागरमोथा और धमासा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके सरसोंके तैलके साथ खरल करके सेवन करनेसे वातकी खाँसी नष्ट होती है ॥ ४ ॥

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम्।
दद्याद्घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थं युतां भिषक् ॥ ५ ॥

पित्तकी खाँसीमें—कफकी तरलता और कोष्ठबद्धता हो तो रोगीको विरेचन करानेके लिये खाँड या मिश्री आदि मधुर पदार्थोंके साथ निसोतका चूर्ण वा क्वाथ और कफके गाढे होनेपर तिक्त पदार्थोंके रसके साथ निसोतका चूर्ण या क्वाथ सेवन कराना चाहिये ॥ ५ ॥

मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः।
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ॥ ६ ॥

पित्तकी खाँसीमें जांगलदेशके जीवोंके मांसरस, मधुर पदार्थ, मूँग आदिका यूष और कडवे शाकादिके साथ–समा जौ और कोदों आदिका अन्न सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥

द्राक्षामधुरखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ ७ ॥

दाख, मुलहठी, खजूर, पीपल और मिरच इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको घी और शहदके साथ सेवन करनेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ ७ ॥

बलिनं वमनेनादौ शोधित कफकासिनम् ।
यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ ८ ॥

कफकी खाँसीवाले बलवान् रोगीको प्रथम वमनके द्वारा शुद्ध करके कफनाशक कटु रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके साथ जौका माँड आदि सेवन कराना ॥ ८ ॥

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ९ ॥

पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास और कफजनित खाँसीमें-पीपलका चूर्ण मिलाकर दशमूलका क्वाथ पान करना चाहिये ॥ ९ ॥

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ।
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १० ॥

अदरखके स्वरसको शहदके साथ मिलाकर पान करानेसे श्वास, खाँसी, जुकाम और कफके सब विकार नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासनुत् ।

पीपलके चूर्णसहित कटेरीके क्वाथको पीनेसे सर्व प्रकारकी खाँसी दूर होती है॥

विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् ।
स्विन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ॥ ११ ॥

बहेडेको घीमें सानकर फिर गौके गोबरमें लपेटकर उसको अग्निमें पकावे पश्चात् उसकी गुठलीको निकालकर बहेडेको मुखमें धारण करनेसे खाँसी शान्त होती है११

वासकस्य रसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना ।
पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ १२ ॥

पित्तकी और कफकी खाँसीमें एवं विशेषकर रक्तपित्तमें अडूसेके पत्तोंके स्वरसको शहद मिलाकर सेवन करने और हितकर पदार्थोंको भक्षण करनेसे लाभ होता है ॥ १२ ॥

वासायाः स्वरसं पूतं कणामाक्षिकसंयुतम् ।
अभ्यासान्मुच्यते पीत्वाप्यसाध्यात्कासरोगतः ॥ १३ ॥

अडूसेके पत्तोंके शुद्ध स्वरसमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर प्रतिदिन पान करनेसे असाध्य कासरोग दूर होता है ॥ १३ ॥

समूलं चित्रकं चैव पिप्पलीचूर्णकं हरेत् ।
कासं श्वासं च हिक्कां च मधुयुक्तं द्विजोत्तम ॥ १४ ॥

चीतेकी जड और पीपलके समान भाग चूर्णको शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे खाँसी, श्वास और हिचकी दूर होती है ॥ १४ ॥

तद्वत् क्रव्यादजं मांसं कौलिङ्गं मांसमेव च ।
असाध्यान्मुच्यते भुक्त्वा कासादभ्यासयोगतः ॥१५॥

श्येन आदि मांसाहारी पक्षियों और चिडे आदिके मांसरसको नियमपूर्वक सेवन करनेसे असाध्य कास (खाँसी) रोग दूर होता है ॥ १५ ॥

मुस्तकं पिप्पली द्राक्षा सुपक्कं बृहतीफलम् ।
घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिबर्हणः ॥ १६ ॥

नागरमोथा, पीपल, दाख और पके हुए बडी कटेरीके फल इनके समान भाग चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे क्षयकी खाँसी नष्ट होती है ॥१६॥

तिन्तिडीपत्रजः क्काथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ।
दुष्टकासं जयत्याशु तृणवृन्दमिवानलः ॥ १७ ॥

इमलीके पत्तोंके क्काथमें हींग और सैंधानमक डालकर पान करनेसे दारुण खाँसी इस प्रकार शीघ्र नाश होजाती है, जैसे अग्निके द्वारा तृणसमूह ॥ १७ ॥

मरिचशिलार्कक्षीरैर्वार्त्ताकीं त्वचमाशु भाविताम् ।
शुष्कां कृत्वा विधिना धूमं पिबतः कासाः शमं यांति॥१८

कालीमिरच, मैनशिल और आकके दूधके द्वारा कटेरीको विधिपूर्वक भावना देकर सुखाकर उसका धूम्रपान करनेसे खाँसी शमन होती है ॥ १८ ॥

पञ्चमूलीक्काथ ।

निहन्ति कासं गुरुपञ्चमूलीकृतः कषायो मगधासहायः ॥

बैलकी छाल, शोनापाठाकी छाल, कुम्भेरकी छाल, पाढरकी छाल और अरणीकी छाल इनका क्काथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे खाँसी दूर होती है ॥

पिप्पल्यादि क्काथ ।

पिप्पली कट्फलं शुण्ठी शृङ्गी भार्ङ्गी तथोषणम् ।
कारवी कण्टकारी च सिन्धुवारो यमानिका ॥ १९ ॥
चित्रको वासकश्चैषां कषायं विधिवत्कृतम् ।
कफकासविनाशाय पिबेत्कृष्णारजोयुतम् ॥ २० ॥

पीपल, कायफल, सोंठ, काकडासिंगी, भारङ्गी, मिरच, कालाजीरा, कटेरी, सिह्माल्ड,अजवायन, चीता और विसौंटा इनका यथाविधि क्काथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे कफकी खाँसी नष्ट होती है ॥ १९ ॥ २० ॥

कण्टकार्यादिक्वाथ ।

कण्टकारीयुगद्राक्षावासाकर्पूरबालकैः ।
नागरेण च पिप्पल्या क्कथितं सलिलं पिबेत् ॥
शर्करामधुसंयुक्तं पित्तकासापहं परम् ॥ २१ ॥

कटेरी, बडीकटेरी, दाख, अडूसा, कपूर, सुगन्धवाला, सोंठ और पीपल इनके क्वाथमें मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ २१ ॥

मरिचाद्यचूर्ण ।

कर्षः कर्षार्द्धमथो पलं पलद्वयं तदार्द्धकर्षश्च ।
मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ २२ ॥
सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यविवर्जिताः ।
अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदं महौषधं पथ्यम् ॥ २३ ॥

कालीमिरच १६ मासे, पीपल आठ मासे, अनारदाना दो तोले, पुराना गुड चार तोले और जवाखार आठ मासे लेकर सबको एकत्र पीसकर प्रतिदिन दो या तीन मासे परिमाण सेवन करे । सर्व प्रकारकी औषधियोंके सेवन करनेसे भी जो खाँसी दूर न हुई हो और जिसको वैद्योंने त्यागदिया हो ऐसी खाँसी भी शीघ्र दूर होती है । और जिनको पीवकी वमन होती हो उनके लिये यह अत्यन्त हितकर औषध है ॥ २२ ॥ २३ ॥

समशर्कर चूर्ण ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याक्षयुतानमीषाम् । पलार्द्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ २४ ॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानिमानाशु बलान्निहन्यात् । कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ २५ ॥

लौंग, जायफल और पीपल ये प्रत्येक एक एक तोला, कालीमिरच २ तोले, सोंठ १६ तोले और इन सबकी बराबर मिश्री लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमान्द्य और संग्रहणी आदि कठिन रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तालीशाद्यचूर्ण और मोदक ।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ।
यथोत्तरं भागवृद्धया त्वगेले चार्द्धभागिके ॥ २६ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ।
कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ २७ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोथज्वरापहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ २८ ॥
कल्पयेद् गुटिकां चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ।
गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ २९ ॥
[पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभायां वंशलोचनाम् ।
विशेषणं हि पिप्पल्या अन्यत्र पैत्तिकाच्छुभा ॥ ३० ॥

तालीशपत्र एक तोला, मिरच, दो तोले, सोंठ तीन तोले, पीपल चार तोले, वंशलोचन ५ तोले, दारचीनी और इलायची छः छः मासे और पीपलसे अठगुनी मिश्री लेकर सबको एकत्र मिलालेवे । इसको तालीशाद्यचूर्ण कहते हैं और कुछ जलके साथ मिश्रीकी चासनी करके उसमें उक्त चूर्ण डालकर लड्डू बनालेवे तो उसको तालीशाद्यमोदक कहते हैं । इस चूर्ण अथवा मोदकको सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, अरुचि, मन्दाग्नि, हृद्रोग, पाण्डु, संग्रहणी, प्लीहा, सूजन ज्वर, वमन, अतिसार, शूल आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं, मूढवातका अनुलोमन होता है और अग्नि

अत्यन्त दीपन होती है । मोदक अग्निके संयोग होनेसे चूर्णकी अपेक्षा हलके होते हैं ॥ २६–२९ ॥

कासान्तक ।

त्रिफलाव्योषचूर्णं च सम भागं प्रकल्पयेत् ।
मधुना सह पानात्तु दुष्टकासं नियच्छति ॥ ३१ ॥

त्रिफला और त्रिकुटा इनका समान भाग चूर्ण लेकर शहदके साथ सेवन करनेसे अतिदुष्ट खाँसी नष्ट होती है ॥ ३१ ॥

कासान्तकरस ।

सूतं गन्धं विषं चैव शालपर्णी च धान्यकम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं मरीचकम् ॥
गुञ्जाचतुष्टयं खादेन्मधुना कासशान्तये ॥ ३२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, शालपर्णी और धनिया इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर मिरचोंका चूर्ण मिलाकर जलके द्वारा खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । एक एक गोली शहदके साथ खानेसे कासरोग शान्त होता है ॥ ३२ ॥

कासकुठार ।

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं सव्योषं टङ्कणं तथा ॥
द्विगुञ्जामार्द्रकद्रावैः सन्निपातं सुदारुणम् ॥
कासं नानाविधं हन्ति शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ ३३ ॥

हींग, मिरच, शुद्ध गन्धक, त्रिकुटा और सुहागा ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर अदरखके रसके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनको सेवन करनेसे दारुण सन्निपात अनेक प्रकारकी खाँसी और शिरकी पीडा–ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥

पित्तकासान्तकरस ।

भस्म ताम्राभ्रकान्तानां कासमर्दत्वचो रसैः ।
मुनिजैर्वेतसाम्लैश्च दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ॥ ३४ ॥
निष्कार्द्धं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च दिनत्रयम् ।
कासश्वासाग्निमान्द्यं च क्षयं चापि निहन्त्यलम् ॥ ३५ ॥

ताँबा, अभ्रक और कान्तिसारलोह इन तीनोंकी भस्म समान भाग लेकर कसौंदीकी छालके रस, अगस्तके रस और अमलवेतके रसके साथ एक दिनतक खरल करके दो दो मासेकी गोलियाँ बनालेवे। पित्तकी खाँसीवाला रोगी तीन दिनतक इसकी एक एक गोली सेवन करे। इससे पित्तकी खाँसी, श्वास, अग्निमान्द्य और क्षयादि सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं॥ ३४॥ ३५॥

पुरन्दरवटी।

सूतकाद्द्विगुणं गन्धमेकधा कज्जलीकृतम्।
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं सूतसम्मितम्॥ ३६॥
अजाक्षीरेण सम्भाव्य वटिकां कारयेत्ततः।
आर्द्रकस्य रसैः सेव्या शीतं तोयं पिबेदनु॥ ३७॥
कासश्वासप्रशमनी विशेषादग्निवर्द्धनी।
इयं यदि सदा सेव्याः तदा स्याद्योगवाहिका॥
वृद्धोऽपि तरुणः शक्तः स्त्रीशतेषु वृषायते॥ ३८॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक दो तोले लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करलेवे, फिर सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला-ये प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर बकरीके दूधके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक गोली अदरखके रसके साथ खाकर ऊपरसे शीतल जल पान करनेसे यह गोली खाँसी और श्वासको दूर करती है और विशेषकर अग्निवृद्धि करती है। यदि इसको सदैव सेवन कियाजाय तो यह योगवाही होजाती है। इसके प्रसादसे, वृद्ध मनुष्यभी तरुण होजाता है और सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेको समर्थ होता है॥॥ ३६-३८॥

पञ्चामृतरस।

शुद्धसूतस्य भागैकं भागौ द्वौ गन्धकस्य च।
भागद्वयं मृतं ताम्रं मरिचं दशभागिकम्॥ ३९॥
मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं क्षिपेत्।
अम्लेन मर्दयेत्सर्वं माषैकं वातकासनुत्॥
अनुपानं लिहेत्क्षौद्रैर्विभीतकफलत्वचम्॥ ४०॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, ताम्रभस्म २ तोले, मिरच १० तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले और शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला इन सबको एकत्र मिलाकर

जम्बीरी नीम्बूके रसमें खरल करके उडदकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । नित्यप्रति प्रातःसमय एक एक गोली बहेडेकी छालके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर खानेसे वातज खाँसी नष्ट होती है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अमृतार्णवरस ।

पारदं गन्धकं शुद्धं मृतलौहं च टङ्कणम् ।
रास्ना विडङ्गं त्रिफला देवदारु कटुत्रिकम् ॥ ४१ ॥
अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषं चापि विचूर्णयेत् ।
द्विगुञ्जं वातकासार्त्तः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ ४२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, सुहागा, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु, सोंठ, मिरच, पीपल, गिलोय, पद्माख और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्णकर लेवे । इस अमृतार्णवरसको दो दो रत्तीकी मात्रासे शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे बातकी खाँसी दूर होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्रीचन्द्रामृतरस ।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्षिकं शुभम् ।
टङ्कणस्य पलं दत्त्वा मरिचस्य पलार्द्धकम् ॥ ४३ ॥
त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीक्षीरेण पेषयेत ॥ ४४ ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥ ४५ ॥
एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्य रसेन वा ॥
पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा ॥ ४६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म ये प्रत्येक एक एक कर्ष, सुहागा ४ तोले, मिरच २ तोले, त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, धनिया, जीरा और सैंधानमक ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे । सबको एकत्र बकरीके दूधके साथ खरल करके नौ नौ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रदितिन प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरीका ध्यान करके एक एक गोली सेवन करे और लालकमल, नीलकमल, कुलथी वा अदरखके

रस और शहदका अनुपान करे। अथवा पीपलके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे ४३-४६

हन्ति पञ्चविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ।
वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा ॥ ४७ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव नानादोषसमुद्भवम् ।
रक्तनिष्ठीवनं चापि ज्वरं श्वाससमन्वितम् ॥ ४८ ॥
तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति जठराग्निप्रदीपनम् ।
बलवर्णकरो ह्येष प्लीहगुल्मोदरापहः ॥ ४९ ॥
आनाहकृमिहृत्पाण्डुजीर्णज्वरविनाशनः ।
अयं चन्द्रामृतो नाम चन्द्रनाथेन निर्मितः ॥ ५० ॥
वासा गुडूची भार्ङ्गी च मुस्तकं कण्टकारिका ।
सेवानन्ते प्रकर्त्तव्या रसोऽयं वीर्यवर्द्धनः ॥ ५१ ॥

यह श्रीचन्द्रामृतनामक रस वातपित्तजन्य व वातकफोत्पन्न और पित्तकफजनित तथा वातिक, पैत्तिक आदि पाँचोंप्रकारकी खाँसी एवं अन्यान्य विविध प्रकारके दोषोंसे उत्पन्नहुई खाँसीको दूर करता है । एवं इसके सेवन करनेसे रुधिरकी वमन, श्वासयुक्त ज्वर, श्वास, तृषा, दाह, भ्रमादिरोग दूर होते हैं और जठराग्नि दीपन होती है । यह रस बल, वर्णकी वृद्धि करता एवं प्लीहा, गुल्म, उदरविकार, आनाह, कृमिरोग, हृदयरोग, पाण्डु और जीर्णज्वरादि व्याधियोंको शमन करता है । इस चन्द्रामृतरसको श्रीचन्द्रनाथने निर्माण किया है । इसको सेवन करनेके पश्चात् अडूसेकी छाल, गिलोय, भारंगी, नागरमोथा और कटेरीका क्वाथ पान करनेसे यह रस वीर्यकी वृद्धि करता है ॥ ४७-५१ ॥

श्रीडामरानन्दाभ्रक ।

अभ्रस्यामलमारितस्य तु पलं क्षुद्राटरूषस्थिरा-
बिल्वश्योऽरलुपाटलाकलसिकाः सब्रह्मयष्ट्यार्द्रकाः ।
चित्रग्रन्थिकगोक्षुरं सचविकं भार्ङ्ग्यात्मगुप्तान्वितं
सत्त्वैर्मर्दितमेकशश्च पलिकैर्गुञ्जार्द्धकं भक्षितम् ॥ ५२ ॥
कासं पञ्चविधं स्वरामयमुरोघातं च हिक्कां ज्वरं
श्वासं पीनसमेहगुल्ममरुचिं यक्ष्माम्लपित्तं क्षयम् ।

दाहं मोहमशेषदोषजनितं शूलं बलासं कृमिं
छर्दिं पाण्डुहलीमकं गलगदं विस्फोटकं कामलाम् ॥ ९३ ॥
मन्दाग्निं ग्रहणीं क्षयं च यकृतं प्लीहानमर्शांसि षट्
हन्यादामकफोद्भवानपि गदाञ्छ्रीडामरानन्दकम् ।
बल्यं वृष्यमशेषदोषहरणं धातुप्रदं कामिनां
मेध्यं हृद्यरसायनं हरमुखाज्ज्ञात्वा मया भाषितम् ॥ ९४ ॥

आमलेके रसके द्वारा भस्म की हुई अभ्रकको ४ तोले लेकर कटेरी, अडूसेकी जड, शालपर्णी, बेलकी जड, शोनापाठाकी जड, पाढरकी जड, पिठवन, भारङ्गी, अदरख, चीतेकी जड, पीपलामूल, गोखुरू, चव्य, चिरचिटा और कौंचके बीज इन औषधियोंके चार चार तोले रसमें पृथक् पृथक् खरल करकेआधी आधी रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे यह श्रीडामरानन्दाभ्रक पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, स्वरभङ्ग, उरःक्षत, हिचकी, ज्वर, पीनस, प्रमेह, गुल्म, अरुचि यक्ष्म, अम्लपित्त, क्षय, दाह, मूर्च्छा और सम्पूर्ण दोषजनित शूल, कफविकार, कृमि, वमन, पाण्डु, हलीमक, कण्ठरोग, फोडा, कामला, मन्दाग्नि, संग्रहणी, यकृत् विकार, प्लीहा, छः प्रकारका अर्श, आमवात और कफजन्य रोग आदि व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है । एवं बलकारक, वीर्यवर्द्धक, सम्पूर्णदोषनाशक, कामी पुरुषोंके धातुवृद्धि करनेवाला, मेधाजनक, हृदयको हितकर और रसायन है । मैं (डामरानन्द) ने शिवजी महाराजके मुखसे श्रवणकर इस अभ्रकको वर्णन किया है ॥ ९२-९४ ॥

महाकालेश्वररस ।

मृतं लौहं मृतं वङ्गं मृतार्कं मृतमभ्रकम् ।
शुद्धं सूतं च गन्धं च माक्षिकं हिङ्गुलं विषम् ॥ ९५ ॥
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेला नागकेशरम् ।
उन्मत्तस्य च बीजानि जयपालं च शोधितम् ॥ ९६ ॥
एतानि समभागानि मरिचं हरनेत्रकम् ।
सर्वं द्रव्यं क्षिपेत्खल्ले लौहदण्डेन मर्दयेत ॥ ९७ ॥
शक्राशनस्य स्वरसैर्भावयेदेकविंशतिम् ।
गुञ्जामात्रा प्रदातव्या आर्द्रकस्यरसैर्युता ॥ ९८ ॥

तदर्द्धं बालवृद्धेषु पथ्यं देयं यथोचितम् ।
पञ्च कासान्क्षयं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च ॥५९॥
सन्निपातं कण्ठरोगमभिन्याससमचेतनम् ।
महाकालेश्वरो हन्ति कालनाथेन भाषितः ॥ ६० ॥

लोहभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोनामाखी, सिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, नागकेशर, धतूरेके बीज और शोधित जमालगोटा इन सब ओषधियोंको समान भाग और मिरच ३ भाग लेकर सबको खरलमें एकत्रित करके लोहेके डण्डेसे घोटे, फिर भाँगके रसकी २१ बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करे । किन्तु बालक और वृद्धको आधी आधी रत्तीकी मात्रासे सेवन करानी चाहिये और दोषानुसार पथ्य देना चाहिये । यह महाकालेश्वररस पाँच प्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, राजयक्ष्मा, सन्निपातज्वर, कण्ठरोग, अभिन्यासज्वर और मूर्च्छादि रोगोंको नाश करता है । इसको कालनाथने कहा है ॥ ५५-६० ॥

विजयभैरवरस ।

सूतकं गन्धकं लोहं विषमभ्रकतालकम् ।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम् ॥ ६१ ॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालबीजकम् ।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ६२ ॥
तिन्तिडीबीजमानेन प्रातःकाले तु भक्षयेत् ।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ६३ ॥
अजीर्णं ग्रहणीरोगं हन्ति पाण्ड्वामयं तथा ।
अरुचावतिसारे च सूतिकातङ्कपीडिते ॥ ६४ ॥
अपाने हृदये शूले वातरोगे गलग्रहे ।
ब्रह्मणा निर्मितो ह्येष रसो विजयभैरवः ॥ ६५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, विष, अभ्रकभस्म, हरताल, वायविडङ्ग, रेणुका, नागरमोथा, छोटी इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, चीतेकी जड और शोधित जमालगोटेके बीज इन सब ओषधियोंको समान

भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर चूर्णसे दुगुना गुड मिलाकर इमलीके बीजकी बराबर गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे। इस विजयभैरव रसको ब्रह्माने निर्माण किया है। यह रस-खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, संग्रहणी, पाण्डु, अरुचि, अतिसार, सूतिका-रोग, अपान, हृद्रोग, शूल, वातरोग, कण्ठगतरोग इत्यादि विकारोंको नष्ट करताहै६१-६५

कासंहारभैरव रस।

रसगन्धकताम्राभ्रशङ्खटङ्कणलौहकम्।
मरिचं कुष्ठतालीशजातीफललवङ्गकम्॥ ६६॥
कार्षिकं चूर्णमादाय दण्डेनामर्द्य भावयेत्।
भेकपर्णी केशराजो निर्गुण्डी काकमाचिका॥ ६७॥
द्रोणपुष्पी शालपर्णी ग्रीष्मसुन्दरमेव च।
भार्ङ्गी हरीतकी वासा कार्षिकैः पत्रज रसैः॥
वटिकां कारयेद्वैद्यः पंचगुञ्जाप्रमाणतः॥ ६८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शङ्खभस्म, सुहागा, लोहभस्म, मिरच, कूठ, तालीसपत्र, जायफल और लौंग प्रत्येकके एक एक कर्ष चूर्णको लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे। फिर खरलमें डालकर मण्डूकपर्णी, भाँगरा, निर्गुण्डी, मकोय, गूमा, शालपर्णी, ग्रीष्मसुन्दर (शाकविशेष), भारंगी, हरड और अडूसा इन प्रत्येकके पत्तोंके एक एक कर्ष प्रमाण रसमें भावना देकर पाँच पाँच रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे॥ ६६-६८॥

वातजं पित्तजं कासं द्वन्द्वजं चिरकालजम्।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा॥ ६९॥
श्रीमद्गहननाथेन कासंहारभैरवः।
रसोऽयं निर्मितो यत्नाल्लोकरक्षणहेतवे॥ ७०॥
वासा शुण्ठी कण्टकारीक्वाथेन पाययेद् बुधः।
कासं नानाविधं हन्ति श्वासमुग्रमरोचकम्॥
बलवर्णकरः श्रीदः पुष्टिदो वह्निदीपनः॥ ७१॥

यह रस-वातज, पित्तज, द्वन्द्वज, और बहुत पुरानी खाँसीको इस प्रकार नष्ट करदेता है; जैसे-सूर्यका प्रकाश अन्धकारको दूर करदेता है। इस कास-

संहारभैरव रसको संसारकी रक्षाके लिये श्रीगहननाथजीने बडे यत्नसे निर्माण किया है। इसको सेवन करनेपर अडूसा सोंठ और कटेरीका क्वाथ पान कराना चाहिये। यह-विविध प्रकारकी खाँसी, अत्युग्र श्वास और अरुचिको दूर करता है। एवं बल वर्ण कान्तिकी वृद्धि करनेवाला, पुष्टिदायक, जठराग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ६९-७१ ॥

बृहद्रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
ताम्रस्य हरितालस्य लौहस्य च विषस्य च ॥ ७२ ॥
मनःशिलायाः क्षाराणां बीजं धुस्तूरकस्य च ।
मरिचस्य च सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ७३ ॥
जयन्ती चित्रकं मानं घण्टकर्णोऽथ मण्डुकी ।
शक्राशनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ॥ ७४ ॥
सिन्दुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत् ।
कलायपरिमाणां तु गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ७५ ॥

शोधित पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, लोहभस्म, शुद्ध विष, शुद्ध मैनसिल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, धतूरेके बीज और मिरच इन सबको एक एक कर्ष लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर जयन्ती, चीता, मानकन्द, घण्टाकर्ण, जिमीकन्द, ब्राह्मी, भाँग, भाँगरा, केशराज (भाँगरेका भेद), अदरख और सिह्मालूके पत्ते प्रत्येकके एक एक कर्ष रसके साथ पृथक् पृथक् खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ७२-७५ ॥

आर्द्रकस्य रसेनैव पंचकासं व्यपोहति ।
हन्ति कासं तथा श्वासं यक्ष्माणं सभगन्दरम् ॥ ७६ ॥
अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम् ।
रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रदायिनी ॥ ७७ ॥

इसकी एक एक गोली प्रतिदिन अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे यह गुटिका पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, यक्ष्मा, भगन्दर, अग्निमान्द्य, अरुचि, शोथ, उदररोग पाण्डु, कामला आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है और यह गुटिका रसायन, वीर्यवर्द्धक और बल तथा वर्णको प्रदान करनेवाली है ॥ ७६-७७ ॥

महोदधि रस।

सूतकं गन्धकं लौहं विषं चापि वराङ्गकम्।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकं च समांशकम्॥ ७८॥
पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्गं नागकेशरम्।
रेणुकामेलकं चैव पिप्पलीमूलमेव च॥ ७९॥
एषां च द्विगुणं दत्त्वा मर्दयित्वा प्रयत्नतः।
भावना तत्र दातव्या गजपिप्पलिकाम्बुभिः॥
मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्तिता॥ ८०॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया. दारचीनी, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला और तेजपात, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, नागकेशर, रेणुका, छोटी इलायची और पीपलामूल ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्णको गजपीपलके रसके साथ भावना देकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे॥७८-८०॥

हन्ति कासं तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कर्णरोगं कपालिकाम्॥ ८१॥
हरेत्संग्रहणीरोगानष्टौ च जठराणि च।
प्रमेहान्विशतिं चैवाप्यश्मरीं च चतुर्विधाम्॥ ८२॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च।
यथेष्टचेष्टाभिरतःप्रयोगे नरो भवेत्काञ्चनराशिगौरः॥ ८३॥

इसमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, अर्श, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कानके रोग, शिरःसम्बन्धी सब रोग, संग्रहणी, आठ प्रकारके उदररोग, वीस प्रकारके प्रमेह और चार प्रकारकी पथरी दूर होती है। इस रसको सेवन करनेपर किसी प्रकारके अन्न, पान, धूपसेवन, मार्गश्रम और मैथुन आदिका परहेज नहीं करना चाहिये। एवं यथेच्छ आहारविहार करनेवाला मनुष्य सुवर्णकी राशिके समान कान्तिमान् होता है॥ ८१-८३॥

तरुणानन्दरस।

कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च।
कज्जलीकृत्य यत्नेन शुभे दृढशिलातले॥ ८४॥

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकः काश्मरी पाटला बला ।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहतीवृषपत्रकम् ॥ ८५ ॥
विदारी शतमूली च कर्षैरेषां पृथग्रसैः ।
मर्दयित्वा पुनर्वासास्वरसैर्दशतोलकैः ॥ ८६ ॥
मर्दयेत्तत्र शुद्धाभ्रं रसस्य द्विगुणं क्षिपेत् ।
रसस्यार्द्धं च कर्पूरं तत्रैव दापयेद्भिषक् ॥ ८७ ॥
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम् ।
चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन माषमात्रं क्षिपेत्पृथक् ॥
विदारीस्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको दो दो तोले लेकर कज्जली करलेवे । फिर उस कज्जलीको बेल, अरणी, अरलु, कम्भारी, पाढर, खिरैंटी इनकी छाल, नागरमोथा, पुनर्नवा, आमले, बडी, कटेरी, अडूसेके पत्ते, विदारीकन्द और शतावर इन प्रत्येकके एक एक कर्ष रसके साथ क्रमसे खरल करके फिर अडूसेके पत्तोंके १० तोले रसमें खरल करे । पश्चात् सुखाकर उसमें शुद्ध अभ्रकभस्म ४ तोले, कपूर एक तोला एवं जाविन्नी, जायफल, जटामांसी, तालीशपत्र, इलायची और लौंग प्रत्येकको एक एक माशे लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे, फिर विदारीकन्दके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ८४–८८ ॥

राजयक्ष्माणमत्युग्रं क्षयं चोग्रमुरःक्षतम् ॥ ८९ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं स्वराघातमरोचकम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च प्लीहानं सहलीमकम् ॥ ९० ॥
जीर्णज्वरं तृषां गुल्मं ग्रहणीमामसम्भवाम् ।
अतीसारं च शोथं च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ९१ ॥
नाशयेदेष विख्यातस्तरुणानन्दसंज्ञितः ।
रसायनवरो वृष्यश्चक्षुष्यः पुष्टिवर्द्धनः ॥ ९२ ॥
सहस्रं याति नारीणां भक्षणादस्य मानवः ।
क्षीणता न च शुक्रस्य न च बुद्धिबलक्षयः ॥ ९३ ॥
द्विमासमुपयोगेन निहन्ति सकलान् गदान् ।
शुक्रसंदीपनं कृत्वा ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ९४ ॥

नारिकेलजलेनैव भक्ष्योऽयं च रसायनः ।
क्षीरानुपानाद् वृष्योऽयं न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ९५ ॥

यह सुप्रसिद्ध तरुणानन्दनामक रस अत्यन्त उग्र राजयक्ष्मा, प्रबल क्षय, घोर उरःक्षत, पाँच प्रकारकी खाँसी, श्वास, स्वरभङ्ग, अरुचि, कामला, पाण्डु, प्लीहा, हलीमक, पुराना ज्वर, तृषा, गुल्म, आमजन्य संग्रहणी, अतिसार, सूजन, कुष्ठ, भगन्दर आदि समस्त व्याधियोंको नाश करता है। एवं श्रेष्ठ रसायन, वीर्यवर्द्धक, नेत्रहितकारी और पुष्टिकर है। इसके सेवन करनेसे मनुष्य हजारों स्त्रियोंके साथ भोग करे, किन्तु फिर भी वीर्य, बुद्धि और बलका क्षय नहीं होता, दो मासतक निरन्तर सेवन करनेसे यह रस सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करदेता है। शुक्रको बढाता और ज्वरको दूर करता है। इस रसायनको नारियलके जलके साथ सेवन करना चाहिये और दूधके साथ सेवन करनेसे यह अत्यन्त वृष्य होजाता है। इसपर कुछ परहेज नहीं करना चाहिये ॥ ८९-९५ ॥

समशर्करलौह।

लवङ्गं कट्फलं कुष्ठं यमानी त्र्यूषणं तथा ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्ठकारिका ॥ ९६ ॥
चव्यं कर्कटशृंगी च चातुर्जातं हरीतकी ।
शठी कक्कोलकं मुस्त लौहमभ्रं यवाग्रजम् ॥ ९७ ॥
सर्वं प्रतिसमं चूर्णं तावच्छर्करयाऽन्वितम् ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥ ९८ ॥
निहन्ति सर्वजं कास वातश्लेष्मसमुद्भवम् ।
क्षयकास रक्तपित्तं श्वासमाशु विनाशयेत ॥
क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ९९ ॥

लौंग, कायफल, कूठ, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, चीतेकी जड, पीपलामूल, अडूसा, कटेरी, चव्य, काकडासिंगी, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, हरड, कचूर, कंकोल, नागरमोथा, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, जवाखार इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलाकर खूब बारीक पीसकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। यह लौह वातकफजन्य खाँसी और क्षय आदि सर्व प्रकारके उपद्रवोंसे उत्पन्न हुई खाँसी, रक्तपित्त और श्वासको शीघ्र नष्ट करता है। एवं क्षीण हवाले मनुष्यकी पुष्टि करता तथा बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि करता है ॥ ९६-९९ ॥

श्रीचन्द्रामृतलौह ।

त्रिकटु त्रिफला धान्यं चव्यं जीरकसैन्धवम् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि तत्तुल्यमयसो रजः ॥ १०० ॥
नवगुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥ १०१ ॥
एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसाप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनैव कुलत्थस्वरसेन च ॥ १०२ ॥
निहन्ति विविध कासं दोषत्रयसमुद्भवम् ।
सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरं श्वाससमन्वितम् ॥ १०३ ॥
भ्रमतृड्दाहशूलघ्नं रुच्यं वह्निप्रदीपनम् ।
बलवर्णकरं वृष्यं जीर्णज्वरविनाशनम् ॥
इदं चन्द्रामृतं लौहं चन्द्रनाथेन निर्मितम् ॥ १०४ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, धनियाँ, चव्य, जीरा, सेंधानमक ये प्रत्येक समान भाग एवं मैनसिलद्वारा भस्म किया हुआ लोहचूर्ण पूर्वोक्त ओषधियोंकी बराबर लेकर एकत्र जलके साथ खरल करके नौ नौ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरी देवीको स्मरण करके एक एक गोली लाल कमल, वा नीले कमलके रस अथवा कुलथीके क्वाथके साथ सेवन करनेसे यह लौह कफ वात और पित्त इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई खाँसी एवं अन्यान्य प्रकारकी खाँसी, रुधिरसहित वा रुधिररहित खाँसी, श्वासयुक्त ज्वर, भ्रम, तृषा, दाह, शूलादि रोग और जीर्णज्वरको नष्ट करता है । एवं अत्यन्त रुचिकर बल, वर्ण, वीर्य और अग्निको बढानेवाला है । इस चन्द्रामृतनामक लौहको चन्द्रनाथने निर्माण किया है ॥ १००-१०४ ॥

भागोत्तरगुटिका ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत् ।
त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागा विभीतकः ॥ १०५ ॥
पञ्चभागस्तथा वासा षड्गुणा सप्तभागिका ।
भार्ङ्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बोलजैर्द्रवैः ॥ १०६ ॥
एकविंशतिवारास्तु मधुना गुटिका कृता ।

विभीतकप्रमाणेन प्रातरेकां तु भक्षयेत् ॥
कासं श्वासं हरेत्क्षुद्राक्काथस्तदनु कृष्णया ॥ १०७ ॥

शुद्ध पारा, १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड ४ तोले, बहेडा ५ तोले, अडूसेकी छाल ६ तोले और भारङ्गी ७ तोले इन सबको एकत्र चूर्ण करके बबूरकी छालके क्वाथमें २१ बार भावना देकर दो दो तोलेकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे और ऊपरसे पीपलका चूर्ण डालकर कटेरीका क्वाथ पान करे। इससे श्वास, कासरोग दूर होता है ॥ १०५-१०७ ॥

लक्ष्मीविलासरस ।

शुद्धसूतं सतालं च तालार्द्धं रसखर्परम् ।
वंगं ताम्रं घनं कान्तं कांस्यं गन्धं पलं पलम् ॥ १०८ ॥
केशराजरसेनापि भावना दिवसत्रयम् ।
कुलत्थस्य रसेनाथ भावयेच्च पुनः पुनः ॥ १०९ ॥
एला जातीफलाख्यं च तेजपत्रलवङ्गकम् ।
यमानी जीरकं चैव त्रिकटु त्रिफला समम् ॥ ११० ॥
नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रं च कारयेत् ।
भावयेच्च रसेनाथ गोलयेत्सर्वमौषधम् ॥
छायाशुष्का वटी कार्य्या चणकप्रमिता तथा ॥१११॥

शुद्ध पारा और हरताल ये दोनों चार चार तोले, खपरिया दो तोले, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, काँसेकी भस्म और शुद्ध कन्धक इन सबको चार चार तोले लेकर एकत्रित करके काले भाँगरेके रसमें और कुलथीके रसमें पृथक् पृथक् तीन तीन दिनतक भावना देवे। फिर उसमें इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, जीरा, त्रिकुटा, त्रिफला, तगर, दारचीनी और वंशलोचन इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिलाकर भाँगरेके रस और कुलथीके काथके साथ खरल करके छायामें सुखा लेवे और चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥१०८-१११॥

शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये ।
मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात्स्निग्धभोजनम् ॥११२॥

क्षयं कासं तथा श्वासं ज्वरं हन्ति न संशयः।
हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् ॥ १३ ॥
अर्शोनाशं करोत्येष बलवृद्धिं च कारयेत्।
कामदेवसमं वर्णं तृष्णारोचननाशनम् ॥ १४ ॥
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ च भृष्टद्रव्यं हुताशनम्।
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं महादेवेन भाषितः ॥ १५ ॥

इसकी एक एक गोली शीतल जलके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारकी खाँसी नष्ट होती है। यह रस क्षय, खाँसी, श्वास, ज्वर, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल प्रमेह और अर्शरोगको नाश करता है। एवं बलकी वृद्धि कामदेवकी समान सुन्दर कान्ति उत्पन्न करता है, तृषा और अरुचिको दूर करता है। इसपर दूध, स्निग्ध भोजन और पौष्टिक पदार्थ हितकर हैं और शाक, अम्लरसयुक्त पदार्थ, भुनाहुआ अन्न, अग्नि सेवन आदि त्याज्य हैं। इन लक्ष्मीविलासरसको श्रीमहादेवजीने वर्णन किया है ॥ ११२–११५ ॥

शृङ्गाराभ्र।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्
कर्पूरं जातिकोशं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवङ्गम्।
मांसी तालीसचोचे गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं
पथ्याधात्रीविभीतं त्रिकटुरथ पृथक् त्वर्द्धशाणं द्विशाणम् १६
एलाजातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगंधाश्मकोलं
कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं पिष्टमेकत्र मिश्रम्।
पानीयेनैव कार्याः परिणतचणकस्विन्नतुल्याश्च वट्यः
प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च भजतां शृङ्गवेरं सपर्णम् ॥ १७ ॥

शुद्ध कृष्ण अभ्रककी भस्म ८ तोले, एवं कपूर, जावित्री, नेत्रवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीसपत्र, तज, नागकेशर, कूठ और धायके फूल ये प्रत्येक चार चार मासे, हरड, आमले, बहेडा, सोंठ, मिरच, पीपल ये दो दो मासे, छोटी इलायची, जायफल प्रत्येक एक एक तोला, शुद्ध आमलासार गन्धक १ तोला और शुद्ध पारा ६ मासे लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके और जलके साथ खरल करके सीजेहुए चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल चार

चार गोलियाँ सेवन करे और पत्तासहित अदरखके रसका अनुपान करे॥११६-११७॥

पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान्
कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्मक्षयं च।
कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान्
छर्दिं शूलाम्लपित्तं तृषमपि महतीं गुल्मजालं विशालम्॥१८

पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरगरलगदान् पीनसान्प्लीहरोगान्
हन्यादामाशयोत्थान् कफपवनकृतान्पित्तरोगानशेषान्
बल्यो वृष्यश्च योग्यस्तरुणतरकरः सर्वरोगे प्रशस्तः
पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिलुलितैर्गव्यदुग्धैश्च भूयः॥ १९ ॥

भोज्यं मिष्टं यथेष्टं ललितललनया दीमानं मुदा य-
च्छृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशताभोगयोगादतुष्टः।
वर्ज्यं शाखाम्लमादौ दिनकतिचिदथ स्वेच्छया भोज्यमन्य-
द्दीर्घायुः काममूर्त्तिर्गतवलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात्॥२०

यह शृङ्गाराभ्र—कोष्ठगत दूषित अग्निके द्वारा उत्पन्नहुए सम्पूर्ण विकारोंको निस्सन्देह नष्ट करता है एवं ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, क्षय, खाँसी, श्वास, शोथ, नेत्रविकार, प्रमेह, मेदरोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, तृषा, वायुगोला, पाण्डु, रक्तपित्त, विषोत्पन्नरोग, पीनस, तिल्ली एवं आमाशयके विकृत होनेसे उत्पन्नहुए रोग और कफ-वात-पित्तजन्य सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूर करता है। यह बलकारक, वीर्यवर्द्धक, युवावस्थाको उत्पन्न करनेवाला और सब रोगोंमें सेवन करने योग्य है। इसपर घृतके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांसका यूष, गौका दूध, घी, सुन्दर स्त्रीके द्वारा हर्षसे दियेहुए मधुर भोज्यपदार्थोंका भोजन करना पथ्य है। इसको सेवन करनेसे कामी पुरुष सैकडों स्त्रियोंको भोगनसे भी संतुष्ट नहीं होता। इसको सेवन करते समय कुछ दिनके लिये शाक और अम्लपदार्थ त्यागदेने चाहिये। एव अन्यान्य पदार्थ यथेच्छरूपसे सेवन करने चाहिये। इस औषधिके प्रसादसे मनुष्य दीर्घायुवाला, कामदेवकी समान रूपवान् और वली पलितरोगसे मुक्त होता है॥ १८-१२०॥

सार्वभौमरस।

जीर्णं सुवर्णं लोहं वा यद्यत्रैव प्रदीयते।
तदयं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः॥ २१॥

यदि इस शृंगाराभ्रमें सुवर्णभस्म अथवा लोहभस्म २ मासे मिलादिया जाय तो इसको सार्वभौमरस कहते हैं । यह रसभी शृङ्गाराभ्रकी समान सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १२१ ॥

बृहच्छृङ्गाराभ्र ।

पारदं गन्धकं चैव टङ्कणं नागकेशरम् ।
कर्पूरं जातिकोषं च लवङ्गं तेजपत्रकम् ॥ २२ ॥
सुवर्णं चापि प्रत्येकं कर्षमात्रं प्रकल्पयेत् ।
शुद्धकृष्णाभ्रचूर्णं तु चतुःकर्षं प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥
तालीशं घनकुष्ठं च मांसी त्वग्धात्रिपुष्पिका ।
एलाबीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली ॥ २४ ॥
कर्षद्वयममीषां च पिप्पलीक्काथमर्दितम् ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं क्षौद्रसमन्वितम् ॥२५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, तेजपात और सुवर्णभस्म ये प्रत्येक एक एक कर्ष, शुद्ध काले अभ्रककी भस्म ४ कर्ष, एवं तालीशपत्र, नागरमोथा, कूठ, जटमांसी, दारचीनी, धायके फूल, छोटी इलायचीके बीज, त्रिकुटा, त्रिफला और गजपीपल इन सबको दो दो कर्ष लेकर सबको एकत्र चूर्ण करके पीपलके क्काथमें खरल करे ॥ २२-२५ ॥

अग्निमान्द्यादिकान् रोगानरुचिं पाण्डुकामलाम् ।
उदराणि तथा शोथमानाहं ज्वरमेव च ॥ २६ ॥
ग्रहणीज्वरकासं च हन्याद् यक्ष्माणमेव व ।
नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ २७ ॥
बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम विष्णुना परिकीर्त्तितम् ।
एतदभ्यासमात्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः ॥ २८ ॥

इस औषधिको दारचीनीके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे यह अग्निकी मन्दता आदि विविध प्रकारके रोग, अरुचि, पाण्डु, कामला, उदररोग, शोथ, अफारा, ज्वर, संग्रहणीज्वर और खाँसी, राजयक्ष्मा एवं अन्यान्य प्रकारके रोगोंको शमन करता है और बल, वर्ण, अग्निकी वृद्धि करता है । इस बृहच्छृङ्गाराभ्रनामक रसको विष्णुभगवान्‌ने रचा है । इसको सेवन करनेसे मनुष्य व्याधिरहित होजाता है ॥ १२६-२८ ॥

नित्योदय रस।

सुशुद्धं पारदं गन्धं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मर्दयेच्च पृथक् पृथक् ॥ २९ ॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाकं काश्मरी पाटला बला।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥ १३० ॥
विदारी बहुपुत्री च एषां कर्षै रसैर्भिषक्।
सुवर्णं रजतं ताप्यं प्रत्येकं शाणमात्रकम् ॥ ३१ ॥
पलमात्रं तु कृष्णाभ्रं तदर्द्धं तु सिताभ्रकम्।
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम् ॥ ३२ ॥
प्रत्येकं कोलमात्रं तु वासानीरैर्विमर्दयेत्।
शोषयित्वाऽऽतपे पश्चाद् विदार्याः पेषयेद्रसैः ॥ ३३ ॥
द्विगुञ्जां वटिकां कृत्वा पिप्पलीमधुना भजेत्।
नाम्ना नित्योदयश्चायं रसो विष्णुविनिर्मितः ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके बेलगिरी, अरणी, अरलु, कम्भारी, पाढर, खिरैंटी, नागरमोथा, पुनर्नवा आमले, बडी कटेरी, अडूसेके पत्ते, विदारीकन्द और शतावर इन प्रत्येकके एक एक कर्ष रसके साथ अलग अलग खरल करे। फिर उसमें सुवर्णभस्म, चाँदीकी भस्म और सोनामाखीकी भस्म चार चार मासे, शुद्ध कृष्ण-अभ्रककी भस्म ४ तोले, श्वेत अभ्रककी भस्म दो तोले एवं जावित्री, जायफल, बालछड, तालीशपत्र, इलायची और लौंग-प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाकर अडूसेके स्वरसमें खरल करे। फिर धूपमें सुखाकर विदारीकन्दके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली पीपलके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करे इस नित्योदय नामक रसको विष्णुभगवान्‌ने निर्माण किया है ॥१२९-३४॥

पञ्च कासान्निहन्त्याशु चिरकालोद्भवानपि।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ ३५ ॥
धातुस्थं विषमाख्यं च तृतीयकचतुर्थकम्।
अर्शांसि कामलां पाण्डुमग्निमान्द्यं प्रमेहकम्।
सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः ॥ ३६ ॥

यह रस—बहुत दिनोंकी पुरानी पाँचों प्रकारकी खाँसी, अत्यन्त भयङ्कर राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगतज्वर, विषमज्वर, तिजारी, चौथिया ज्वर, अर्श, कामला, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि और प्रमेहरोगको शीघ्र नष्ट करता है। इसके सेवनसे मनुष्य कामदेवकी समान रूपवान् होजाता है ॥ ३५–३६ ॥

वसन्ततिलक रस।

हेम्नो भस्मकतोलकं घनयुगं लोहास्त्रयः पारदा-
श्चत्वारो नियतास्तु वङ्गयुगलं चैकीकृतं मर्दयेत् ।
मुक्ताविद्रुमयो रसेन समता गोक्षूरवासेक्षुणा
सर्वं वालुकयन्त्रगं परिपचेद्याम दृढं सप्तकम् ॥ ३७ ॥
कस्तूरीघनसारमर्दितरसः पश्चात्सुसिद्धो भवेत्
कासश्वासस्रपित्तवातकफजित्पाण्डुक्षयादीन् हरेत् ।
शूलादिग्रहणीं विषादिहरणो मेहाश्मरीविंशतिं
हृद्रोगापहरो ज्वरादिशमनो वृष्यो वयोवर्द्धनः ॥
"श्रेष्ठः पुष्टिकरो वसन्ततिलको मृत्युञ्जयेनोदितः" ३८

सोनेकी भस्म १ तोला, अभ्रककी भस्म २ तोले, लोहेकी भस्म ३ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, वंगभस्म २ तोले, मोतीकी भस्म दो तोले और मूँगेकी भस्म २ तोले इन सबको एकत्र पीसकर गोखरू, अडूसा और ईखके समान भाग रसमें एक एक बार भावना देवे। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर आरने उपलोंकी अग्निके द्वारा सात प्रहरतक पकावे। जब शीतल हो जाय तब उसमें कस्तूरी ४ तोले और भीमसेनी कपूर ४ तोले खरल कर मिलादेवे। इस प्रकार यह रस सिद्ध होता है। यह रस दो दो रत्ती प्रमाण सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, वात, पित्त, कफके विकार, पाण्डु, क्षय, शूल, संग्रहणी, विषजन्य रोग, प्रमेह, हृदयरोग और और सर्व प्रकारके ज्वरादि रोगोंको हरता है। एवं पुष्टिकारक, वीर्य और आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा अत्यन्त श्रेष्ठ रस है। इस वसन्ततिलक नामक रसको शिवजीने वर्णन किया है ॥ ३७–३८ ॥

व्याघ्रीहरीतकी।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुतां च ।
हरीतकीनां च शतं निदध्याद्विपच्य सम्यक्चरणावशेषम् ३९
गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ विपक्वमुत्तीर्य ततः सुशीते ।
कटुत्रिकं च द्विदलप्रमाणं पलानि षट् पुष्परसस्य तत्र ॥१४०

क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि प्रयुज्यमानो विधिनाऽवलेहः ।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवं च द्विदोषकासानपि च त्रिदोषम् ॥४१
क्षयोद्भवं च क्षतजं च हन्यात्सपीनसश्वासमुरःक्षतं च ।
यक्ष्माणमेकादशसुग्ररूपं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥४२॥

जड, फूल और पत्तोंसहित कटेरी १०० पल और हरड १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें डालकर पकावे । जब पककर चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और हरडोंकी गुठली निकाल डाले फिर उस क्वाथमें उक्त हरडे और पुराना गुड १०० पल डालकर पकावे । जब पाक तैयार हो जाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर इसमें त्रिकुटा ९ तोले, शहद २४ तोले और दारचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर इनका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर सबको एकमएक करलेवे । इस अवलेहको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे तो यह हरीतकी वातज, पित्तज, कफज द्वन्द्वज और त्रिदोषज खाँसी, क्षयकी खाँसी और क्षतकी खाँसी तथा पीनस, श्वास, उरः–क्षत और ग्यारह प्रकारके प्रबल राजयक्ष्माको नष्ट करती है । यह भृगुजीकी निर्दिष्ट की हुई रसायन है ॥ १३९–१४२ ॥

वासावलेह ।

वासकस्वरसप्रस्थे मानिका सितशर्करा ।
पिप्पली द्विपलं दत्त्वा सर्पिषश्च पचेच्छनैः ॥ ४३ ॥
लेहीभूते ततः पश्चाच्छीते क्षौद्रपलाष्टकम् ।
दत्त्वाऽवतारयेद्वैद्यो मात्रया लेह उत्तमः ॥ ४४ ॥
निहन्ति राजयक्ष्माणं कासं श्वासं च दारुणम् ।
पार्श्वशूलं च हृच्छूलं रक्तपित्त ज्वरं तथा ॥ ४५ ॥

अडूसेके दो सेर स्वरसमें एक सेर सफेद खाँड डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा धीरे धीरे पकावे । जब पकते पकते लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर पीपलका चूर्ण ८ तोले, घी ८ तोले और शीतल होनेपर शहद ३२ तोले मिलाकर एक चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस अवलेहको यथोचित मात्रासे सेवन करे । यह राजयक्ष्मा, खाँसी, दारुण श्वास, पसलीका शूल, हृदयका शूल, रक्तपित्त और ज्वरको नष्ट करनेवाली अत्युत्तम औषधि है ॥ ४६–४७ ॥

कण्टकार्यवलेह ।

कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् ।
पादशेषं गृहीत्वा च तत्र चूर्णानि दापयेत् ॥ ४६ ॥
पृथक् पलांशान्येतानि गुडूची चव्यचित्रकौ ।
मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥ ४७ ॥
भार्ङ्गी रास्ना शठी चैव शर्करा पलविंशतिः ।
प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः ॥ ४८ ॥
पक्त्वा लेहसमं कृत्वा शीते मधुपलाष्टकम् ।
चतुर्भागं तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्याश्च चतुःपलम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे ।
लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्त्तिकासश्वासमशेषतः ॥ १५० ॥

कटेरीको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर छान लेवे । फिर उसमें सफेद खांड २० पल डालकर पकावे । पाकके सिद्ध होजानेपर उसमें गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकडासिंगी, त्रिकुटा, धमासा, भारंगी, रायसन और कचूर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, घी ३२ तोले और तिलका तैल ३२ तोले डालकर पकावे । जब पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद ३२ तोले, वंशलोचन १६ तोले और पीपल १६ तोले डालकर सबको एकमएक करके मिट्टीके मजबूत और सुन्दर बासनमें भरकर रखदेवे । यह अवलेह सेवन करतेही हिचकी, सर्वप्रकारकी खांसी और श्वासरोगको नष्ट करता है ॥ १४६–१५० ॥

कण्टकारीघृत ।

घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् ।
कण्टकारीरसे सर्पिः पञ्चकासनिषूदनम् ॥ ५१ ॥

रायसन, खिरैंटी, सोंठ, मिरच, पीपल और गोखुरू इनके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्क और कटेरीके १६ सेर क्काथके द्वारा ४ सेर घृतको सिद्ध करे । यह घृत पाँचों प्रकारकी खाँसीको दूर करता है ॥ १५१ ॥

दशमूलषटपलक घृत ।

दशमूलीचतुःप्रस्थे रसे प्रस्थोन्मितं हविः ।
सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु कल्कितं साधु साधितम् ॥ ५२ ॥

कासहृत्पार्श्वशूलघ्नं हिक्काश्वासनिवारणम् ।
कल्कं षट्पलमेवात्र ग्राहयन्ति भिषग्वराः ॥ ५३ ॥

दशमूलके चार प्रस्थ क्वाथमें गौका घी एक प्रस्थ, एवं जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन प्रत्येकका कल्क चार चार तोले डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे। यह घृत पाँचों प्रकारकी खाँसी, हृदयरोग, पसलीका शूल, हिचकी और श्वासरोगको दूर करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

छागलाद्यघृत ।

आजमांसं तुलामानं वासकस्य पलं शतम् ।
अश्वगन्धापलशतं कटाहे समधिक्षिपेत् ॥ ५४ ॥
जलद्रोणे पृथक् पक्त्वा चतुर्भागावशेषितैः ।
कषायैर्विपचेद्गव्यं प्रस्थद्वयमितं घृतम् ॥ ५५ ॥
छागक्षीरं घृतसमं दद्यात्कल्कानि यानि च ।
वक्ष्याम्यतः परं तानि सर्वाणि शृणु यत्नतः ॥ ५६ ॥

नपुंसक बकरेका मांस १०० पल, अडूसेकी छाल १०० पल और असगन्ध १०० पल इनको पृथक् पृथक् कढावमें डालकर बत्तीस सेर जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब नीचे उतारकर छान लेवे। फिर उस क्वाथमें गौका घी २ प्रस्थ और बकरीका दूध २ प्रस्थ डालदेवे ॥ ५४ ५६ ॥

अष्टवर्गं पञ्चमूली चातुर्जातं शतावरी ।
त्रिकटु त्रिफला यष्टी विदारी शाल्मली वचा ॥ ५७ ॥
शङ्खपुष्पी सुधामूली मुसली चविका तथा ।
कपिकच्छुकबीजं च दीप्या खदिरजीरकौ ॥ ५८ ॥
सूक्ष्मैला मेथिका भार्ङ्गी प्रत्येकं शुक्तिमानतः ।
संगृह्य साधयेत्सर्पिः शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ५९ ॥

एवं कल्ककी ओषधियाँ ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, बडी कटेरी, कटेरी, गोखुरू, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शतावरी, त्रिकुटा त्रिफला, मुलहठी, विदारीकन्द, सेमलकी मुसली, वच, शंखपुष्पी, शालममिश्री, मुसली, चव्य, कौंचके बीज, अजवायन, खैर, ज़ीरा, इलायची, मेथी और भारङ्गी इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः घृतको सिद्ध करे ॥ ५७–५९ ॥

राजयक्ष्मणि दुःसाध्ये सर्वकासगदेषु च ।
स्वरभेदे क्षये श्वासे ध्वजभङ्गे ज्वरे तथा ॥ १६० ॥
प्रमेहे मूत्रकृच्छ्रे च रक्तपित्ते त्वरोचके ।
छागलाद्यं घृतं शस्तं सर्वरोगविनाशनम् ॥ ६१ ॥

यह छागलाद्यघृत दुस्साध्य राजयक्ष्मा, सर्वप्रकारकी खाँसी, स्वरभंग, क्षय, श्वास, ध्वजभंग, ज्वर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्रा रक्तपित्त और अरुचिरोगमें विशेषकर प्रयोग करना चाहिये । यह सर्वप्रकारके रोगोंको विनाश करनेवाला है ॥ १६०-६१ ॥

कुंकुमाद्यघृत ।

मधुकं क्षीरकाकोली दुःस्पर्शा दशमूलिका ।
तुलामानानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेत्पृथक् ॥ ६२ ॥
पादावशेषितैः क्वाथैर्घृतं कुङ्कममूर्च्छितम् ।
घृताच्चतुर्गुणं चाजं क्षीरं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ६३ ॥
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ।
जीवनीयगणो मुस्तं लवंगं कुङ्कुमं वचा ॥ ६४ ॥
नीलोत्पलं बला व्योषं पृश्निपर्णी सरेणुका ।
चर्म्मकारालुकश्छिन्ना प्रियङ्गुश्शैलवालुकम् ॥ ६५ ॥
एलाद्वयं तुगा धात्री प्रसूनं मालतीभवम् ।
हबुषा चविका पत्रं तालीशं नागकेशरम् ॥ ६६ ॥
वरदा जीरको दीप्या प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६७ ॥
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं श्वासं क्षयं ज्वरम् ।
रक्तपित्तं प्रमेहं च कुंकुमाद्यं घृतं शुभम् ॥ ६८ ॥

मुलहठी १०० पल, क्षीरकाकोली १०० पल, कटेरी १०० पल और दशमूलकी सब ओषधियाँ १०० पल लेकर पृथक् २ एक एक द्रोण परिमाण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब नीचे उतारकर छान लेवे । फिर उस क्वाथमें केशरके द्वारा मूर्च्छित कियाहुआ घृत १ सेर, बकरीका दूध ४ सेर और कल्कके लिये आगे लिखीहुई जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा,

काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलहठी) की ओषधियाँ, नागरमोथा, लौंग, केशर, वच, नीलकमल, खिरैंटी, त्रिकुटा, पिठवन, रेणुका, वाराहीकन्द, गिलोय, फूलप्रियंगु, एलुआ, छोटी और बडी इलायची, वंशलोचन, आमले, मालतीके फूल, हाऊबेर, चव्य, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेशर असगन्ध, जीरा और अजवायन ये प्रत्येक दो दो तोले डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा घृतको पकावे। यह कुंकुमाद्यघृत अत्यन्त भयंकर राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास क्षय, ज्वर रक्तपित्त और प्रमेहरोगको नष्ट करता है ॥ १६२–१६८ ॥

चन्दनाद्यतैल।

चन्दनागुरुतालीशमञ्जिष्ठानखपद्मकम्।
मुस्तकं च शठी लाक्षा हरिद्रे रक्तचन्दनम् ॥ ६९ ॥
एषां प्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलार्द्धं पात्रकं पचेत्।
भार्ङ्गीवासाकण्टकारीवाट्यालकगुडूचिकाः ॥ १७० ॥
एषां शतपले क्वाथे समभागे जडीकृते।
पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्मविनाशनम् ॥ ७१ ॥
कासघ्नं गलदोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्।
पापालक्ष्मीप्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम् ॥ ७२ ॥

चन्दन, अगर, तालीशपत्र, मँजीठ, नख, पद्माख, नागरमोथा, कचूर, लाख हल्दी, दारुहल्दी, लालचन्दन इन सबको चार चार तोले लेकर चूर्ण करलेवे। फिर भारंगी, अडूसेकी छाल, कटेरी, खिरैंटी और गिलोय इन सबके समान भाग मिश्रित १०० पल क्वाथमें उक्त चूर्ण और चार सेर तिलका तैल डालकर यथाविधि तैलको सिद्ध करे। यह तैल राजयक्ष्मा, खाँसी और गलेके सम्पूर्ण दोषोंको नष्ट करता है और बल, वर्ण, जठराग्निकी वृद्धि करता है। पाप, दारिद्र्य और समस्त ग्रहदोषोंको दूर करता है ॥ १६९–१७२ ॥

वासा-चन्दनाद्य तैल।

चन्दनं रेणुका पूतिर्हयगन्धा प्रसारिणी।
त्रिसुगन्धिकणामूलं नागकेशरमेव च ॥ ७३ ॥
मेदे द्वे च त्रिकटुकं रास्ना मधुकशैलजम्।
शठी कुष्ठं देवदारु वनिता च विभीतकम् ॥ ७४ ॥

एतेषां पलिकैर्भागैः पचेत्तैलाढकं भिषक् ।
वासायाश्च पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७५ ॥
लाक्षारसाढकं चैव तथैव दधिमस्तुकम् ।
चन्दनं चामृता भार्ङ्गी दशमूलं निदिग्धिका ॥ ७६ ॥
एतेषां विंशतिपलं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे स्थिते क्वाथे तैलं तेनैव साधयेत ॥ ७७ ॥

अडूसेकी छाल १०० पल एवं लाल चन्दन, गिलोय, भारङ्गी, दशमूल और कटेरी इन प्रत्येकको बीस बीस पल लेकर पृथक् पृथक् एक एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते-पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें लाखका रस एक आढक, दहीका तोड १ आढक, तिलका तैल ८ सेर और चन्दन, रेणुका, रोहिषतृण, असगन्ध, प्रसारणी, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, पीपलामूल, नागकेशर, मेदा, महामेदा, त्रिकुटा, रायसन, मुलहठी, भूरिछरीला, कचूर, कूठ, देवदारु, प्रियंगु और बहेडा इन प्रत्येकका चार चार तोले चूर्ण डालकर मन्द मन्द अग्निसे तैलको पकावे ॥ ७२–७७ ॥

कासान् ज्वरान् रक्तपित्तं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
कामलां च क्षतक्षीणं राजयक्ष्माणमेव च ॥ ७८ ॥
श्वासान्पञ्चविधान् हन्ति बलवर्णाग्निपुष्टिकृत ।
तैलं चन्दनवासादि कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ७९ ॥

यह वासा-चन्दनादि तैल मालिश करनेसे सर्व प्रकारकी खाँसी, ज्वर, रक्त. पित्त, पाण्डु, हलीमक कामला, क्षतक्षीण, राजयक्ष्मा और पाँच प्रकारके श्वासरोगको नष्ट करता है । बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि एवं पुष्टि करता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

कासरोगमें पथ्य ।

स्वेदो विरेचनं छर्दिर्धूमपानं समाशनम् ।
शालिषष्टिकगोधूमश्यामाकयवकोद्रवाः ॥ १८० ॥
आत्मगुप्तामाषमुद्गकुलत्थानां रसाः पृथक् ।
ग्राम्यौदकानूपधन्वमांसानि विविधानि च ॥ ८१ ॥
सुरा पुरातनं सर्पिश्छागं चापि पयोघृतम् ।
वास्तुकं वायसीशाकं वार्त्ताकूवालमूलकम् ॥ ८२ ॥

कण्टकारी कासमर्दो जीवन्ती सुनिषण्णकम्।
द्राक्षा बिम्बी मातुलुङ्गं पौष्करं वासकस्त्रुटिः ॥ ८३ ॥
गोमूत्रं लशुनं पथ्या व्योषमुष्णोदकं मधु।
लाजा दिवसनिद्रा च लघून्यन्नानि यानि च।
पथ्यमेतद्यथादोषमुक्तं कासगदातुरे ॥ ८४ ॥

स्वेद देना, विरेचन, वमन और धूम्रपान कराना, परिमित आहार-विहार करना, शालिधान और साँठी धानोंके चावल, गेहूँ, समेके चावल, जौ, कोदों, कौंचके बीज, उडदोंका यूष, मूँगका यूष और कुलथीका यूष, ग्राममें होनेवाले पशु-पक्षी, जलचर जीव, अनूपदेश जात पशु-पक्षियोंका और मरुदेशोत्पन्न विविध प्रकारके जीवोंका मांस, मदिरा, पुराना घी, बकरीका दूध, घी, बथुएका शाक, मकोय, बैंगन, कच्ची मूली इनका शाक, कटेरी, परवल, जीवन्ती, चौपातियाका शाक, दाख, कन्दूरी, बिजौरा नींबू, पोहकरमूल, अडूसा, छोटी इलायची, गौका मूत्र, लहसुन, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, उष्णजल, शहद, खीलें, दिनमें सोना और हल्के अन्नोंका भोजन ये सब पदार्थ यथा दोषानुसार कासरोगमें हितकर कहे गये हैं ॥ १८०-८४ ॥

कासरोगमें-अपथ्य।

बस्तिं नस्यमसृङ्मोक्षं व्यायामं दन्तघर्षणम्।
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि विविधानि च ॥ ८५ ॥
शकृन्मूत्रोद्गारकासवमिवेगविधारणम्।
आतपं दुष्टपवनं रजोमार्गनिषेवणम् ॥ ८६ ॥
मत्स्यं कन्दं सर्षपं च तुम्बीफलमुपोदिकाम्।
दुष्टाम्बु चान्नपानं च विरुद्धान्यशनानि च ॥
गुरु शीतं चान्नपानं कासरोगी परित्यजेत् ॥ १८७ ॥

वस्तिक्रिया, नस्य, रक्तमोक्ष (रुधिरका निकलवाना), कसरत, दन्तधावन, विष्टम्भकारक पदार्थ, दाहकारक और अनेकप्रकारके रूखे पदार्थोंका सेवन, मल, मूत्र, डकार, खाँसी और वमनके वेगोंको रोकना, धूप, दूषित वायु और धूलका सेवन, मार्ग चलना, मछली, कन्दशाक, सरसों, लौकी, पोईकी शाक, दूषित जल और विरुद्ध अन्नपान एवं भारी और शीतल अन्नपान ये सब कासरोगवालेको त्याग देने चाहिये ॥ १८५-१८७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कासरोगचिकित्सा।

हिक्का-श्वासरोगकी चिकित्सा ।

हिक्काश्वासातुरे पूर्व तैलाक्ते स्वेद इष्यते ।
स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदुवातानुलोमनम् ॥
ऊर्ध्वाधः शोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम् ॥ १ ॥

हिक्का (हुचकी) और श्वास रोगमे प्रथम रोगीके वक्षःस्थलपर सेंधानमक मिलाकर सरसोंके तैलकी मालिश करे, फिर स्निग्ध द्रव्योंके द्वारा स्वेद देवे । पश्चात् यदि रोगी बलवान् हो तो वायुको अनुलोमन करनेवाली, मृदु वमनकारक और मृदु विरेचन औषधिके द्वारा ऊपर और नीचेसे शरीरको शुद्ध कर और रोगी निर्बल हो तो दोषोंको शमन करनेवाली औषधि देवे ॥ १ ॥

कोलमज्जाऽञ्जनं लाजास्तिक्ता काञ्चनगैरिकम् ।
कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसं दधिनाम च ॥ २ ॥
पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमस्तकम् ।
षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ॥ ३ ॥

१ बेरकी गुठलीकी मींग, कालासुरमा और खीले, २-कुटकी, कचनार और गेरू. ३-पीपल, आमले, मिश्री और सोंठ. ४-कसीस और कैथ ५-पाढलके फल और फूल ६-पीपल और खजूरका मस्तक इन छः प्रयोगोंमेसे किसी एक प्रयोगका उत्तम प्रकारसे बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे हिक्का रोग दूर होता है ॥ २-३ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता ।
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ॥ ४ ॥

मुलहठीको शहदमें मिलाकर अथवा पीपलको मिश्रीके साथ मिलाकर वा सोंठके चूर्णको गुडमें मिलाकर नस्य देनेसे हिक्कारोग दूर होता है ॥ ४ ॥

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वाऽलक्तकाम्बुना ।
योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥५॥

मक्खीकी विष्ठाको स्त्रीके दूधके साथ अथवा आलके जलके साथ पीसकर लाल चन्दनको स्त्रीके दूधमें घिसकर हिक्कारोगीको नस्य देनेसे हिचकियोंका आना दूर होता है ॥ ५ ॥

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत्।
हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ॥ ६ ॥

बिजौरेनींबूके रसमें शहद और कालानमक मिलाकर पीनेसे अथवा बकरीके दूधमें सोंठ डालकर और उसको पकाकर पीनेसे हिक्कारोग दूर होता है ॥ ६ ॥

अप्यसाध्यां नयत्यस्तं हिक्कां क्षौद्रविलेहनम्।
सद्य एव महायोगः काशमूलभवं रजः ॥ ७ ॥

काँसकी जडके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे असाध्य हिक्कारोग भी शीघ्र शमन होता है ॥ ७ ॥

माषचूर्णभवो धूमो हिक्कां हन्ति न संशयः।
असाध्यां साधयेद्धिक्कां सितयैलाभवं रजः ॥ ८ ॥

उडदोंके चूर्णको चिलममें रखकर उसका धूम्रपान करनेसे अथवा इलायचीके चूर्णको मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे असाध्य हिक्कारोग भी दूर होता है ॥ ८ ॥

शर्करामरिचं चूर्णं लीढं मधुयुतं मुहुः।
निहन्ति प्रबलां हिक्कामसाध्यामपि देहिनाम् ॥ ९ ॥

मिश्री कालीमिरच आर शहद इन तीनोंको एकत्र मिलाकर बारम्बार सेवन करनेसे मनुष्योंका असाध्य और प्रबल हिक्कारोग शीघ्र शमन होता है ॥ ९ ॥

हिक्काघ्नः कदलीमूलरसः पेयः सशर्करः ॥ १० ॥

केलेकी जडका रस चीनी मिलाकर पान करनेस हिचकी दूर होती है ॥ १० ॥

कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसिताघृतम्।
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ॥ ११ ॥

पीपल, आमले और सोंठ इनके चूर्णको शहद मिश्री और घीमें मिलाकर बार-बार सेवन करनेसे हिक्का और श्वासरोग निवृत्त होता है ॥ ११ ॥

हिक्कां हरति प्रबलां श्वासं चातीव दारुणं जयति।
शिखिपुच्छभस्मपिप्पलिचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥१२॥

मोरकी पूँछकी भस्म, पीपलका चूर्ण इनको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अतिप्रबल हिक्का और बहुत ज्यादा बढा हुआ श्वासरोग निवारण होता है ॥ १२ ॥

अभयानागरकल्कं पौष्करयवशूकमरिचकल्कं वा।
तोयेनोष्णेन पिबेच्छ्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ १३ ॥

हरड और सोंठका चूर्ण अथवा पोहकरमूल, जवाखार और कालीमिरचोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर गरम जलके साथ पान करनेसे श्वास और हिक्कारोग शान्त होता है ॥ १३ ॥

कर्षं कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमिश्रितं मधुना ।
अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामूर्ध्वगतहिक्कां च ॥ १४ ॥

बहेडेके एक कर्ष परिमाण चूर्णको शहदके साथ उत्तम प्रकारसे मिलाकर सेवन करनेसे श्वास और अत्यन्त प्रबल ऊर्ध्वगत हिक्कारोग बहुत शीघ्र दूर होता ह १४

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् ।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत् ॥ १५ ॥

पुराने गुड और सरसोंके तैलको समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करके २१ दिनतक सेवन करनेसे श्वासरोग समूल नष्ट होता है ॥ १५ ॥

बिल्वाटरूषदलवारिसमूलशुक्ल-
दण्डोत्पलोत्पलजलं कटुतैलमिश्रम् ।
भार्ङ्गी गुडो यदि च तत्र हतप्रभाव-
स्तं श्वासमाशु विनिहन्ति महाप्रभावम् ॥ १६ ॥

बेलके पत्तोंका रस, अडूसेके पत्तोंका रस, मूलसहित सफेद दण्डोत्पलके पत्तोंका रस और कमलके पत्तोंका रस सरसोंके तैलक साथ मिलाकर पान करे । जहाँपर भार्ङ्गीगुडका प्रभाव भी नष्ट होजाता है, ऐसे अत्यन्त प्रबल श्वासरोगको यह ओषधि शीघ्र नष्ट करती है ॥ १६ ॥

कूष्माण्डकानां चूर्णं तु पेयं कोष्णेन वारिणा ।
शीघ्रं प्रशमयेच्छ्वासं कासं चैव सुदारुणम् ॥ १७ ॥

पेठेके चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे दारुण श्वास और कास रोग शीघ्र शमन होता है ॥ १७ ॥

कृष्णासैन्धवचूर्णं स्वरसेन हि शृङ्गवेरस्य ।
यो लेढि शयनकाले स जयति सप्ताहतः श्वासम् ॥ १८ ॥

पीपल और सैंधानमकके चूर्णको अदरखके स्वरसके साथ मिलाकर रात्रिमें शयन करते समय सेवन करनेसे सात दिनमेंही श्वासरोग दूर होता है ॥ १८ ॥

गन्धकं मरिचं साज्यं श्वासकासक्षयापहम् ।
गन्धकं घृतयोगेन श्वासकासक्षयापहम् ॥ १९ ॥

शुद्ध गन्धकके चूर्ण और मिरचोंके चूर्णको घृतके साथ अथवा केवल शुद्ध गन्धकके ही चूर्णको घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खाँसी और क्षयरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

दशमूलादि।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत्।
पार्श्वशूलज्वरश्वासकासश्लेष्म विनाशयेत् ॥ २० ॥

दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, खाँसी और कफविकार नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

शठयादि।

शठीदशमूलीरास्नापिप्पलीविश्वपौष्करैः।
शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीगुडूचीनागराग्निभिः ॥ २१ ॥
विधिवत्सेव्यमाने तु कषायं वा पिबेन्नरः।
श्वासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिहिक्काकासप्रशान्तये ॥ २२ ॥

कचूर, दशमूलकी सब ओषधियाँ, रायसन, पीपल, सोंठ, पोहकरमूल, काकडासिंगी, भुईआमला, भारङ्गी, गिलोय, सोंठ और चीता इन सब ओषधियोंका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर अथवा इनका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे श्वास, हृदयरोग पार्श्वशूल-हिचका और खाँसी य सब रोग शान्त होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

वासादि क्वाथ।

वासा हरिद्रा मगधा गुडूची भार्ङ्गीघनानागरधावनीनाम्।
क्वाथेन मारीचरजोऽन्वितेन श्वासः शमं याति न कस्य पुंसः॥२३॥

अडूसा, हलदी, पीपल, गिलोय, भारङ्गी, नागरमोथा, सोंठ और कटेरी इनके क्वाथके साथ मिरचोंका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे सब प्रकारका श्वास शमन होता है ॥ २३ ॥

शुण्ठीभार्ङ्गी क्वाथ।

शुण्ठीभार्ङ्गीकृतः क्वाथः कसनश्वसनाहिराट् ॥ २४ ॥

सोंठ और भारंगीका काढा बनाकर पान करनेसे खाँसी और श्वासरोग दूर होता है ॥ २४ ॥

हरिद्रादिचूर्ण।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शठीम्।
जह्यात्तैलेन विलिहन् श्वासान्प्राणहरानपि ॥ २५ ॥

हल्दी, मिरच, दाख, पुराना गुड, रायसन, पीपल और कचूर इन सब ओषधियोंके समान भाग चूर्णको सरसोंके तैलमें मिलाकर सेवन करनेसे प्राणनाशक श्वास रोगभी दूर होता है ॥ २९ ॥

शृङ्ग्यादिचूर्ण।

शृङ्गीकटुत्रिकफलत्रयकण्टकारी भार्ङ्गी सपुष्करजटा
लवणानि पञ्च। चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्द्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ २६ ॥

काकडासिंगी, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, बहेडा, आमला, कटेरी, भारंगी, पोहकरमूल, जटामांसी और पाँचों नमक इन सबके समान भाग मिश्रित चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करनेसे हिचकी, श्वास, ऊर्ध्ववात, खाँसी, अरुचि और पीनस आदि रोगोंमें विशेष लाभ होता है ॥ २६ ॥

विजयवटी।

सूतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकमेव च।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम् ॥ २७ ॥
त्रिकटु त्रिफला शुल्वभस्म जैपालचित्रकम्।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ २८ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे।
सूतायां ग्रहणीदोषे शूले पाण्ड्वामये तथा।
हस्तपादादिदाहेषु वटिकेय प्रशस्यते ॥ २९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, अभ्रकभस्म, वायविडङ्ग, रेणुका, नागरमोथा, छोटी इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला, ताम्रभस्म, शुद्ध जमालगोटा और चीता इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णसे दुगुना पुराना गुड लेकर सबको एकत्र खरल करके गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, प्रसूतारोग, संग्रहणी, शूल, पाण्डुरोग, हाथ पाँवकी दाह आदि विकारोंमें व्यवहार करना चाहिये ॥ २७-२९ ॥

डामरेश्वराभ्र।

मेचकं पलमितं मृतमभ्रं ब्रह्मयष्टिकणकामृतवाशाः।
कासमर्दवननिम्बकचव्यं ग्रन्थिकं दहनमूलसमेतम् ॥ ३० ॥

एकशश्च पलिकैरिह सत्त्वैर्मर्दितं जयति तद्गुरुहिक्काम् ।
श्वासकासमुदरं चिरमेहान् पाण्डुगुल्मयकृतं गलरोगम् ॥३१॥
शोथमोहनयनास्यजरोगं यक्ष्मपीनसगदं बलसादम् ।
गण्डमुण्डलवमिभ्रमिदाहं प्लीहशूलविषमज्वरकृच्छ्रम् ॥
हन्ति वातकफपित्तमशेषं डामरेश्वरमिदं महदभ्रम् ॥ ३२ ॥

कृष्ण अभ्रककी भस्मको चार तोले लेकर ब्रह्मदण्डीकी छाल, धतूरेके पत्ते, गिलोय, अडूसा, कसौंदी, बकायन, चव्य, पीपलामूल और चीतेकी जडकी छाल इन प्रत्येकको चार चार तोले रसके साथ क्रमसे खरल करलेवे । यह डामरेश्वराभ्रक-प्रबल हिक्का, श्वास, खाँसी, उदरविकार, पुराना प्रमेह, पाण्डु, गुल्म, यकृत, गलेके रोग, सूजन, मूर्च्छा, नेत्र और मुखके रोग, राजयक्ष्मा, पीनस, बलक्षय, गण्डरोग, शिरोरोग, वमन, भ्रम, दाह, प्लीहा, शूल, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र, एवं वायु, कफ और पित्तजन्य सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३०-३२ ॥

महाश्वासारिलौह ।

कर्षद्वयं लौहचूर्णं कर्षार्धाभ्रकमेव च ।
सिताकर्षद्वयं चैव मधु कर्षद्वयं तथा ॥ ३३ ॥
त्रिफला मधुकं द्राक्षा कणा कोलास्थिवंशजा ।
तालीसपत्रं वैडङ्गमेला पुष्करकेशरम् ॥ ३४ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कर्षार्द्धं च समांशिकम् ।
लौहे च लौहदण्डेन मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥ ३५ ॥
ततो मात्रां लिहेत्क्षौद्रैर्बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ।
इदं श्वासारिलौहं च महाश्वास विनाशयेत् ॥ ३६ ॥
कासं पञ्चविधं चैव रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम् ॥
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३७ ॥

लोहभस्म दो कर्ष, अभ्रकभस्म आधाकर्ष, मिश्री दो कर्ष, शहद दो कर्ष, त्रिफला, मुलहठी, दाख, पीपल, बेरकी गुठलीकी गिरी, वंशलोचन, तालीसपत्र, वायविडङ्ग, छोटी इलायची, पोहकरमूल और नागकेशर इन सबको आधा आधा कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करके लोहेके पात्रमें लोहेके दण्डसे दो प्रहरतक खरल करे । फिर दोषोंका बलाबल विचारकर इसकी यथोचितमात्रा शहदके साथ सेवन करे। यह

श्वासारिलौह प्रबलश्वास, पाँचों प्रकारकी खाँसी, दारुण, रक्तपित्त, एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज रोगोंको इस प्रकार निस्सन्देह नष्ट करदेता है, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देता है ॥ ३३–३७ ॥

पिप्पल्याद्य लौह ।

पिप्पल्यामलकी द्राक्षा कोलास्थिमधुशर्करा ।
विडङ्गपुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति सुदुस्तरम् ॥ ३८ ॥
हिक्कां छर्दिं महाश्वासं त्रिरात्रेण न संशयः ।
सर्वचूर्णसमं लौहं मधु (यष्टिमधु, पुष्करं) पुष्करमूलकम्

पीपल, आमले, दाख, बेरकी गुठलीकी गिरी, मुलहठी, मिश्री, वायविडङ्ग और पोहकरमूल इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णके बराबर लोहभस्म इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे दुस्तर हिक्का, वमन और महाश्वासरोग तिन-दिनमें ही निश्चय दूर होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

श्वासकुठाररस ।

रसं गन्धं विषं टङ्कं शिलोषणकटुत्रिकम् ।
सर्वं सम्मर्द्य दातव्यो रसः श्वासकुठारकः ॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतं कासं श्वासं स्वरक्षयम् ॥ ४० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागा, मैनसिल, सोंठ और पीपल ये प्रत्येक एक एक तोला और मिरच २ तोले लेवे। सबको एकत्र जलके साथ खरल करके एक एक रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रस और शहदके साथ सेवन करावे। यह श्वासकुठाररस वात और कफसे उत्पन्नहुई खाँसी, श्वास और स्वरभंग-रोगको दूर करता है ॥ ४० ॥

महाश्वासकुठार रस ।

रस गन्धं विषंचैव टङ्कणं समनःशिलम् ।
एतानि समभागानि मरिचं चाष्ट टङ्कणात् ॥ ४१ ॥
टङ्कषट्कं द्विकटुकं खल्ले कृत्वा विचूर्णयेत् ।
रसः श्वासकुठारोऽयं विषमश्वासकासजित् ॥ ४२ ॥
प्रतिश्यायं च यक्ष्माणमेकादशविधं क्षयम् ।
हृद्रोगं पार्श्वशूलं च स्वरभेदं च दारुणम् ॥ ४३ ॥

सन्निपातं तथा तन्द्रां प्रमेहांश्च विनाशयेत्।
गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत् ॥ ४४ ॥
घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाकारकमुत्तमम्।
सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदौ च दुस्सहां च शिरोव्यथाम्।
अनुपानं पर्णरसमार्द्रकस्य रसं तथा ॥ ४५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागा और मैनासिल ये प्रत्येक एक एक भाग, कालीमिरच आठ भाग, सोंठ ६ भाग और पीपल ६ भाग लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके जलके साथ खरल करलेवे। इसपर पानके रस अथवा अदरखके रसका अनुपान करे। मात्रा एक एक रत्ती। यह श्वासकुठाररस अत्यन्त कठिन श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, ग्यारह प्रकारके क्षय, हृदयरोग, पसलीकी पीडा, स्वरभेद, दारुण सन्निपात, तन्द्रा और प्रमेहको नष्ट करता है। जब मनुष्यको संज्ञा नष्ट होकर बेहोशी होजावे तब उसकी नासिकाके छिद्रोंमें इस रसकी नस्य देवे। यह चैतन्य लाभ करानेके लिये अत्युत्तम औषध है। एवं सूर्यावर्त्त (आधा शीशीका दर्द), अर्द्धावभेदक और दुस्सह शिरकी पीडाको नष्ट करनेवाला है ४१-४५

श्वासभैरवरस।

रसं गन्धं विषं व्योषं मरिचं चव्यचित्रकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः ॥ ४६ ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कास सुदुर्जयम् ॥४७॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, पीपल, चव्य और चीतेकी जड इन सबका चूर्ण एक एक भाग और मिरचोंका चूर्ण दो भाग लेवे फिर सबको एकत्र अदरखके रसके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलिया बनालेवे। इस रसको गरम जलके अनुपानके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद, दुस्साध्य श्वास और खाँसी शीघ्र दूर होती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

श्वासचिन्तामणि।

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धमभ्रकम्।
तदर्द्धं पारदं ताप्यं पारदार्द्धेन मौक्तिकम् ॥ ४८ ॥
शाणमानं हेमचूर्णं सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः।
कण्टकारीरसैश्चापि शृङ्गवेररसैस्तथा ॥ ४९ ॥

छागीक्षीरेण मधुकैः क्रमेण मतिमान् भिषक् ।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य विभीतकसमन्वितम् ।
भक्षयेच्छ्वासकासार्तो राजयक्ष्मनिपीडितः ॥ ५० ॥

लोहेकी भस्म २ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, अभ्रकभस्म १ कर्ष, शुद्ध पारा ८ माशे, सोनामाखीकी भस्म ८ माशे, मोतीकी भस्म ४ माशे और सुवर्णभस्म ४ माशे इन सबको एकत्र खूब खरल कर कटेरीके रस, अदरखके रस, बकरीके दूध और मुलहठीके रसके साथ क्रमपूर्वक पृथक् पृथक् भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह श्वास, कास और राजयक्ष्मारोगसे पीडित मनुष्यको बहेडेके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर भक्षण करना चाहिये यह चिन्तामणि श्वास कास और राजयक्ष्माको दूर करता है ॥ ४८-५० ॥

श्वासकासचिन्तामणि ।

पारदं माक्षिकं स्वर्णं समांशं परिकल्पयेत् ।
पारदार्द्धं मौक्तिकं च सूताद् द्विगुणगन्धकम् ॥ ५१ ॥
अभ्रं चैव तथा योज्यं व्योम्नो द्विगुणलोहकम् ।
कण्टकारीरसेनैव च्छागीदुग्धेन वै पृथक् ॥ ५२ ॥
यष्टीमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च ।
भावयेत्सप्तवारं च द्विगुञ्जां वटिकां भजेत् ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तां श्वासकासविमर्दिनीम् ॥ ५३ ॥

शुद्ध पारा, सुवर्णमाक्षिक और सुवर्णकी भस्म ये प्रत्येक एक एक तोला; मोतीकी भस्म ६ मासे, शुद्ध गन्धक २ तोले, अभ्रककी भस्म २ तोले और लौहभस्म ४ तोले इनको एकत्र पीसकर कटेरीके रस, बकरीके दूध, मुलहठीके साथ और पानके रसके साथ क्रमसे पृथक् पृथक् सात सात बार भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस वटीको पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है ॥ ५१-५३ ॥

बृहद्-मृगाङ्कवटी ।

हेमायस्कान्तसूताभ्रप्रवालमौक्तिकानि च ।
विभीतककषायेण सर्वाणि भावयेत्त्रिधा ॥ ५४ ॥
एरण्डपत्रमध्यस्थं धान्यराशौ दिनत्रयम् ।
स्थापयित्वा तदुद्धृत्य द्विगुञ्जां वटिकां चरेत् ॥ ५५ ॥

विभीतकास्थि शस्यं च माषार्द्धं मधुसंयुतम् ।
अनुपानमिह प्रोक्तं क्वाथो वाऽक्षसमुद्भवः ॥ ५६ ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ।
स्वरभेदं ज्वरं मेहं सर्वव्याधिं विनाशयेत् ॥ ५७ ॥

सुवर्णभस्म, कान्तलोह, पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, मूँगेकी भस्म और मोतीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करके बहेडेके क्काथमें तीनबार भावना देवे । फिर उसको सुखाकर अण्डके पत्तेमें लपेटकर धानोंकी राशिमें तीन दिनतक रक्खा रहने देवे । फिर निकालकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस वटीको चार चार रत्ती प्रमाण बहेडेकी गुठलीकी गिरी और शहदके साथ या बहेडेके क्काथ और शहदके साथ सेवनकरे । यह वटी सम्पूर्ण क्षय, खाँसी, राजयक्ष्मा, श्वास, स्वरभेद, ज्वर और प्रमेह आदि सर्व प्रकारके रोगोंको नष्ट करती है॥५४-५७॥

कनकासव ।

संक्षुद्य कनकं शाखामूलपत्रफलैः सह ।
ततश्चतुष्पलं ग्राह्यं वृषमूलत्वचं तथा ॥ ५८ ॥
मधुकं मागधी व्याघ्री केशरं विश्वभेषजम् ।
भार्ङ्गी तालीशपत्रं च संचूर्ण्यैषां पलद्वयम् ॥ ५९ ॥
संगृह्य धातकीप्रस्थं द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।
जलद्रोणद्वयं दत्त्वा शर्करायास्तुलां तथा ॥ ६० ॥
क्षौद्रस्यार्धतुलां चापि सर्वं सम्मिश्र्य यत्नतः ।
भाण्डे निक्षिप्य चावृत्य निदध्यान्मासमात्रकम् ॥६१॥
निहन्ति निखिलान् श्वासान् कासं यक्ष्माणमेव च ।
क्षतक्षीणं ज्वरं जीर्णं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ ६२ ॥

शाखा, जड, पत्ते और फलसहित धतूरा १६ तोले और अडूसेकी जडकी छाल १६ तोले लेकर दोनोंको पृथक् पृथक् कूट लेवे । फिर मुलहठी, पीपल, कटेरी, नागकेशर, सोंठ, भारङ्गी और तालीसपत्र प्रत्येकको दो दो पल लेकर बारीक चूर्ण करलेवे एवं धायके फूल १ प्रस्थ, दाख २० पल, शर्करा १०० पल और शहद ५० पल लेकर सबको दो द्रोण परिमाण जलमें डालकर एक शुद्ध मिट्टीके पात्रमें भरदेवे और उस पात्रका मुँह बाँधकर एक महीनेतक रक्खा रहने

देवे । फिर उसको छानकर प्रतिदिन एक तोलेसे लेकर दो तोलेतक सेवन करे । यह कनकासव सर्वप्रकारके श्वासरोग, खाँसी, राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरःक्षत इन सबको नष्ट करता है ॥ ५८-६२ ॥

शृंगीगुडघृत ।

कण्टकारीद्वयं वासाऽमृता पञ्चपलं पृथक् ।
शतावर्याः पञ्चदश भार्ङ्ग्या दश पलानि च ॥ ६३ ॥
गोक्षुरं पिप्पलीमूलं पृथक् पलसमन्वितम् ।
पाटला त्रिफला चैव चतुर्गुणजले पचेत् ॥ ६४ ॥
चतुर्भागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ।
पुरातनगुडस्यात्र पलानि दश दापयेत् ॥ ६५ ॥
घृतस्य पञ्च दत्त्वा च दत्त्वा दशपलं पयः ।
सर्वमेकीकृतं पक्त्वा चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ॥ ६६ ॥
शृङ्गी द्वितोलकं जातीफलं पत्रं त्रितोलकम् ।
चतुस्तोलं लवङ्गं च तुगाक्षीरी पृथक् पृथक् ॥ ६७ ॥
गुडत्वगेले च तथा तोलकद्वयमानके ।
कुष्ठं तोलचतुष्कं च शुण्ठ्यास्तोलकसप्तकम् ॥ ६८ ॥
पिप्पल्याः पलमेकं च तालीशं तोलकत्रयम् ।
जातीकोषं तोलकैकं शीते च मधुनः पलम् ॥ ६९ ॥

बडी और छोटी दोनों कटेरी, अडूसा और गिलोय ये प्रत्येक २०-२० तोले, शतावर ६० तोले, भारंगी ४० तोले, गोखुरू, पीपलामूल प्रत्येक चार चार तोले और पाढलकी छाल १२ तोले लेवे । इन सबको एकत्र कूटकर चौगुने जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर छान लेवे । फिर उस क्काथमें पुराना गुड ४० तोले, गायका घी २० तोले और दूध ४० तोले डालकर पकावे । जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतार कर उसमें काकडासिंगी २ तोले, जायफल ३ तोले, तेजपात ३ तोले, लौंग ४ तोले वंशलोचन ४ तोले, दारचीनी २ तोले, छोटी इलायची २ तोले, कूठ ४ तोले, सोंठ ७ तोले, पीपल ४ तोले, तालीशपत्र ३ तोले, और जावत्री १ तोला इन सब औषधियोंका चूर्ण डालदेवे और शीतल होजानेपर चार तोले शहद डालकर सबको उत्तम प्रकारसे मिला देवे ॥ ६३-६९ ॥

ततः खाद्यं च कर्षैकमनुपानविधिं शृणु।
काष्ठमार्ज्जारिकाचूर्णं मरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ ७० ॥
एकीकृत्य वटीः कुर्याच्चतुर्माषमिता भिषक्।
तासामेकां चर्वयित्वा पिबेदनु जलं कियत् ॥ ७१ ॥
शृङ्गीगुडघृतं नाम सर्वरोगहरं परम्।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं श्वासं हन्ति सुदारुणम् ॥ ७२ ॥
कासं पञ्चविधं हन्ति विविधोपद्रवान्वितम्।
रक्तपित्तं क्षयं चैव स्वरभङ्गमरोचकम् ॥
विशेषाच्चिरकालोत्थं श्वासं हन्ति सुदुस्तरम् ॥ ७३ ॥

इस औषधिको एक एक कर्षकी मात्रासे निम्नलिखित अनुपानोंके साथ सेवन करावे। काठ बिलाईका चूर्ण १ तोला और मिरचोंका चूर्ण ४ तोले दोनोंको एकत्र जलके साथ खरल करके चार चार मासेकी गोलियाँ बनालेवे। प्रथम पूर्वोक्त औषधको भक्षण करे, फिर इनमेंसे एक गोली खाकर ऊपरसे थोडासा गरम जल पान करे। यह शृङ्गीगुडघृत सर्व प्रकारके रोगोंको नाश करनेके लिये परमोत्कृष्ट औषध है। जिसको सैकडों वैद्योंने त्यागदिया हो ऐसे दारुण श्वासरोगको एवं पाँचों प्रकारकी खाँसी वा अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे युक्त खाँसी, रक्तपित्त, क्षय, स्वरभंग अरुचि और विशेषकर बहुत पुराने दुस्साध्य श्वासरोगको यह घृत नष्ट करता है ॥७०-७३॥

भार्ङ्गीशर्करा।

भार्ङ्ग्याः शतार्द्धं वासायाः कण्टकार्याश्च पाचयेत्।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा प्रस्थं च दशमूलकम् ॥ ७४ ॥
जलाढके पचेत्तेन चतुर्थमवशेषयेत्।
वस्त्रपूतं च तत्सर्वं सिताप्रस्थं ततः क्षिपेत् ॥ ७५ ॥
उष्णेऽवतारिते तत्र चूर्णानीमानि दापयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं तालीशं नागकेशरम् ॥ ७६ ॥
भार्ङ्गी वचा श्वदंष्ट्रा च त्वगेलापत्रजीरकम्।
यमानी चाजमोदा च वांशी कौलत्थजं रजः ॥ ७७ ॥
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कोलमात्रं क्षिपेत्ततः।
शीते क्षौद्रं प्रदातव्यं कुडवार्द्धं शुभे दिने ॥ ७८ ॥

लिहेत पिचुमितं नित्यं प्रातर्वीक्ष्यानुपानतः ।
हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासमेवं सुदारुणम् ॥
यक्ष्माणं हन्ति हिक्कां च ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥७९॥

भारंगीकी जड ५० पल, अडूसेकी छाल ५० पल और कटेरी ५० पल इन सबको चौगुने जलमें पकावे और दशमूलकी सब ओषधियाँ १ प्रस्थ लेकर १ आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब दोनों क्वाथोंको नीचे उतारकर कपडेमें छानलेवे । फिर दोनोंको एकत्र मिलाकर उसमें १ प्रस्थ खाँड डालकर पकावे । जब वह पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, तालीसपत्र, नागकेशर, भारंगी, वच, गोखुरू, दारचीनी, छोटी इलायची, पत्रज, जीरा, अजवायन, अजमोद, वंशलोचन, कुलथी, कायफल, पोहकरमूल और काकडासिंगी इन प्रत्येक ओषधिका चूर्ण एक एक तोला डालदेवे और शीतल होजानेपर १६ तोले शहद मिलादेवे । इस ओषधिको शुभ दिनसे प्रारम्भकर नित्य प्रातःसमय एक एक कर्ष परिमाण लेकर यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे । यह भार्ङ्गीशर्करानामक औषध पाँचों प्रकारकी खाँसी, दारुण श्वास, यक्ष्मा, हिचकी और पुराने ज्वरको दूर करती है ॥७४-७९॥

भार्ङ्गीगुड ।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् ।
शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ८० ॥
पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिस्रुते ।
आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ॥ ८१ ॥
पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमागतम् ।
शीते च मधुनश्चात्र षट् पलानि प्रदापयेत् ॥ ८२ ॥
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पलिकानि पृथक्पृथक् ।
कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥ ८३ ॥
भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं लिहेत् ।
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ८४ ॥
स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः ।
नाम्ना भार्ङ्गीगुडः ख्यातो भिषग्भिः सकलैर्मतः ॥८५॥

भारंगीकी जड १०० पल, दशमूलकी सब औषधियाँ १०० पल और बडी बडी हरडें सौ लेवे । हरडोंको कपडेकी पोटलीमें बाँधकर सब औषधियोंको एकत्रकर चौगुने जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर कपडेमें छानलेवे और हरडोंकी गुटली निकाल डाले । फिर उस क्वाथमें पुराना गुड १०० पल और उक्त हरडें डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे। जब वह पककर लेहकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें त्रिकुटा, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात ये प्रत्येक चार चार तोले और जवाखार दो कर्ष सबको बारीक चूर्ण करके डालदेवे और शीतल होजानेपर २४ तोले शहद मिलादेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक हरड और दो तोले अवलेह सेवन करे। यह गुड भयंकर श्वास, पाँचों प्रकारकी खाँसी, स्वरभेद आदि रोगोंको नष्ट करता है और जठराग्निको दीपन करता है । आयुर्वेदाचार्योंने इसको भार्ङ्गीगुडनामसे वर्णनकिया है ॥ ८०–८५ ॥

कुलत्थगुड ।

कुलत्थं दशमूलं च तथैव द्विजयष्टिका ।
शतं शतं च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८६ ॥
पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्यार्द्धतुलां क्षिपेत् ।
शीतीभूते च पक्के च मधुनोऽष्टौ पलानि च ॥ ८७ ॥
षट् पलानि तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ।
त्रिसुगन्धि सुगन्धं तत् खादेदग्निबलं प्रति ।
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा ॥ ८८ ॥

कुलथी, दशमूल और भारङ्गी ये प्रत्येक सौ सौ पल लेकर एक एक द्रोण जलमें पकावे, पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और सबको एकत्र मिलाकर फिर उसमें ५० पल पुराना गुड डालकर पकावे. जब पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद ३२ तोले, वंशलोचन २४ तोले, पीपल ८ तोले और दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात ये तीनों समान भाग मिश्रित ८ तोले लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे । इसको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे । इससे श्वास, खाँसी, ज्वर, हिचकी और तमकश्वास आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ८६–८८ ॥

अगस्त्यहरीतकी ।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शङ्खपुष्पीं शठीं बलाम् ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ८९ ॥
भार्ङ्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांशं यवाढकम् ।
हरीतकीशतं चैव जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ९० ॥
यवैः स्विन्नैः कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ।
पचेद् गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथक् घृतात् ॥ ९१ ॥
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात् सिद्धे शीते च माक्षिकात् ।
लिह्याद् द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥ ९२ ॥

दशमूल, कौंचके बीज, शङ्खपुष्पी, कचूर, खिरैंटी, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीतेकी जड, भारङ्गी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले, पोटली बद्ध जौ १ आढक और उत्तम हरडें सौ लेवे। सबको एकत्र कर ५ आढक जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे और उक्त हरडोंकी गुठली निकाल डाले । फिर हरडोंको १६ तोले घी और १६ तोले तेलमें भूनकर उक्त क्वाथम डालकर और सौ पल गुड डालकर पकावें । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपलका चूर्ण १६ तोले और शीतल होजानेपर शहद १६ तोले मिलादेवे । इसमेंसे प्रतिदिन दो दो हरडें भक्षण करे और ६-६ माशे अवलेह सेवन करे ॥ ८९-९२ ॥

तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ।
पञ्च कासान् क्षय श्वासं हिक्कां च विषमज्वरान् ॥ ९३ ॥
हन्यात्तथा ग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ।
अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ९४ ॥

वह वली-पलितरोगको नष्ट करता है और बल, वर्ण आयुकी वृद्धि करता है तथा पाँचों प्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, संग्रहणी, बवासीर, हृदयरोग, अरुचि और पीसादि रोगको दूर करता है । इस श्रेष्ठ रसायनको अगस्त्यऋषिने निर्माण किया है । ॥९३ ॥ ९४ ॥

हिंस्राद्यघृत ।

हिंस्राविडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।
द्विक्षीरं सर्पिषः प्रस्थ चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ ९५ ॥

कोलमात्रं पचेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति ।
अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ ९६ ॥

कंटकपाकी, वायविडङ्ग, दुर्गन्धकरञ्ज, त्रिफला, त्रिकुटा और चीता प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, गोदुग्ध २ प्रस्थ और घृत १ प्रस्थ इन सबको चौगुने जलमें डालकर घृतको पकावे । जब पककर घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। इस घृतको एक एक तोला सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, अर्श, अरुचि, गुल्म, मल-भेद और क्षयरोग दूर होता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

तेजोवत्याद्यघृत ।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ।
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकं शठी ॥ ९७ ॥
सौवचलं तामलकी सैन्धवं बिल्वपेशिका ।
तालीशपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥ ९८ ॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणे ।
एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥
शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च ॥ ९९ ॥

चव्य, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, गन्धेज घास, पोहकरमूल, ढालकी जड, चीता, कचूर, कालानमक, भुईआमला, सैंधानमक, बेलगिरी, तालीशपत्र, जीवन्ती और वच ये प्रत्येक दो दो तोले एवं हींग ६ माशे और घी १ प्रस्थ सबको चौगुने जलमें पकावे । जब घृत उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उतार कर छानलेवे । इस घृतको अपने बलाबलके अनुसार पान करनेसे हिक्का, श्वास, खाँसी, शोथ, वातार्श, संग्रहणी, हृदयरोग और पार्श्वशूल नष्ट होता है ॥

चन्दनाद्यतैल ।

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टी शैलेयपद्मकम् ।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु पटोला पूतिकेशरम् ॥ १०० ॥
पत्रं शैलं मुरामांसी कक्कोलं वनिताऽम्बुदम् ।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ १ ॥
त्वग्रेणुनलिकाश्चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
लाक्षारसं समं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ २ ॥

रक्तपित्तक्षतक्षीणश्वासकासविनाशनम् ।
आयुःपुष्टिकरं चैव वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३ ॥

लाल चन्दन, सुगन्धवाला, नख, कूठ, मुलहठी, भूरिछरीला, पद्माख, मँजीठ, धूपसरल, देवदारु, पटोलपात, रोहिषतृण, पद्मकेशर, तेजपात, शिलाजीत, मुरा मांसी, शीतलचीनी, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, उसवा, अनन्तमूल कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दारचीनी, रेणुका और नली (गन्धद्रव्य) इनका समान भाग मिश्रित कल्क १५ पल, तिलका तैल १ प्रस्थ, दहीका तोड ४ प्रस्थ और लाखका रस ४ प्रस्थ सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। यह चन्दनादि तैल ग्रहदोषनाशक और बल, वर्णको उत्पन्न करता है । एवं रक्तपित्त क्षतक्षीण, श्वास, कास आदि रोगोंको नष्टकर आयुकी वृद्धि और पुष्टि करनेवाला है । यह अत्युत्तम वाजीकरण योग है १००–१०३ ॥

बृहच्चन्दनाद्यतैल ।

द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
पत्तङ्गमथ कालीयागुरुकृष्णागुरूणि च ॥ ४ ॥
देवद्रु सरलं पद्मं तृणानां पञ्चकं तथा
कर्पूरो मृगनाभिश्च लता कस्तूरिकाऽपि च ॥ ५ ॥
सिह्लकः कुंकुम नव्यं जातीफलकमेव च ।
जातीकोषं लवङ्गं च सूक्ष्मैला महती च सा ॥ ६ ॥
कंकोलफलकं स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम् ।
बालकं च तथोशीरं मांसी दारु सितापि च ॥ ७ ॥
कृतकर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् ।
रेणुका च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ८ ॥
लाक्षा नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा ।
ग्रन्थिपर्णं च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ९ ॥
एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत् ।
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि सः ॥ ११० ॥
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ।
वन्ध्याऽपि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ११ ॥

अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेद्वर्षशतं सुखी ।
चन्दनादि महातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम् ॥
दाहप्रस्वेददौर्गन्ध्यकुष्ठकण्डुं विनाशयेत् ॥ ११२ ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पत्तंगकी लकडी, काला चन्दन, अगर, काली अगर, देवदारु, धूपसरल, पद्माख, तृणपञ्चमूल (कुशा, काँस, रामसर, काली ईख, धान), कपूर, कस्तूरी, मुष्कदाना, शिलारस, नवीनकेशर, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, बडी इलायची, कंकोलफल, असवर्ग, तेजपात, नागकेशर, सुगन्धवाला, खस. बालछड, दारचीनी, भीमसेनी कपूर, भूरिछरीला, नागरमोथा, रेणुका, फूल-प्रियंगु, सरलका गोंद, गूगल, लाख, नख, राल, धायके फूल, गठिवन, मंजीठ, तगर और मोम ये प्रत्येक औषधि चार चार मासे लेकर कल्क बनालेवे । इस कल्कके साथ एक प्रस्थ तिलके तैलको यथाविधि मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब तैल उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय, तब उतारकर छानलेवे इस तैलको मर्दन करनेसे अस्सी वर्षका बूढा पुरुष भी जवान होजाता है एवं अत्यन्त वीर्यवान् और स्त्रियोंको प्रिय होता है । वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती होती है और वृद्ध मनुष्य फिरसे तरुण होता है । पुत्रहीन पुत्रको पाता है और स्वस्थ मनुष्य इसका सेवन करनेसे सौ वर्षतक जीता है । यह बृहच्चन्दनादि तैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, स्वेद, दुर्गन्ध कुष्ठ, खुजली आदि विकारोंको शीघ्र विनष्ट करता है ॥ ४-११२ ॥

हिक्कारोगमें पथ्य ।

स्वेदनं वमनं नस्यं धूमपानं विरेचनम् ।
निद्रा स्निग्धानि चाम्लानि मृदूनि लवणानि च ॥१३॥
जीर्णाः कुलत्था गोधूमाः शालयः षष्टिका यवाः ।
एतत्तित्तिरिलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः ॥ १४ ॥
पक्कं कपित्थं लशुनं पटोलं बालमूलकम् ।
पौष्करं कृष्णतुलसी मदिरा नलदम्बु च ॥ १५ ॥
उष्णोदकं मातुलुङ्गं माक्षिकं सुरभीजलम् ।
अन्नपानानि सर्वाणि वातश्लेष्महराणि च ॥ १६ ॥
शीताम्बुसेकः सहसा त्रासो विस्मापनं भयम् ।
क्रोधो हर्षः प्रियोद्वेगः प्राणायामनिषेवणम् ॥ १७ ॥

दग्धसिक्तमृदाघ्राणं कूर्चे धाराजलार्पणम् ।
नाभ्यूर्ध्वंघातनं दाहो दीपदग्धहरिद्रया ॥
पादयोर्द्व्यंगुलान्नाभेरूर्ध्वं चेष्टानि हिक्किनाम् ॥१८ ॥

स्वेदक्रिया, वमन, नस्य, धूमपान, विरेचन आदि क्रियायें, निद्रा, स्निग्ध और हलके अन्न, खट्टे और मृदु पदार्थ, सैंधानमक, पुरानी कुलथी, गेहूँ, शालि और साँठी धानोंके चावल, जौ आदि अन्न, काले हिरनका मांस, तीतर, लवा और जांगलदेशके पशु-पक्षियोंका मांस, एवं पकाहुआ कैथ, लहसुन, परवल और कच्ची मूली इनका शाक, पोहकरमूल, कालीतुलसी, मद्य, नीम, गरम जल, बिजौरे नींबूका रस, शहद गोमूत्र और वात-कफनाशक अन्नपान, शीतल जलका सेचन, अकस्मात त्रास, विस्मय, भय, क्रोध, और हर्षको उत्पन्न करनेवाले कामोंको करना, प्रियजनके वियोगके कारण उत्पन्नहुआ उद्वेग और प्राणायाम, जलीहुई मिट्टीपर जल छिडककर सूंघना, जलमें भिगोकर उसको सूँघना, नाभिके ऊपर दबाना, नाभिसे दो अंगुल ऊपर और दोनों पैरोंके दो अंगुल दीपकके द्वारा जलाईहुई हल्दीसे दाह देना ये सम्पूर्ण क्रियायें हिक्कारोगियोंको हितकर हैं ॥ १३-१८ ॥

हिक्कारोगमें अपथ्य ।

वातमूत्रोद्गारकासशकृद्वेगविधारणम् ।
रजोनिलातपायासान् विरुद्धान्यशनानि च ॥ १९ ॥
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि कफदानि च ।
निष्पावं पिष्टकं माषं पिण्याकानूपजामिषम् ॥ १२० ॥
अवीदुग्धं दन्तकाष्ठं वस्तिं मत्स्यांश्च सर्षपान् ।
अम्लं तुम्बीफलं कन्द तैलभृष्टमुपोदिकाम् ।
गुरु शीतं चान्नपानं हिक्कारोगी विवर्जयेत् ॥ २१ ॥

अपानवायु, मूत्र, डकार, खाँसी और मलके वेगको रोकना, धूल, वायु और धूपका सेवन, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, विष्टम्भी (विबन्धकारी), दाहकारक, रुखे और कफकारक पदार्थ, सेमकी फली, पिट्ठी, उडद, पिण्याक (तिलकल्क), अनूपदेशोत्पन्न जीवोंका मांस, भेडका दूध, दतौन, वस्तिकर्म, मछली, सरसों, अम्लपदार्थ, लौकी, कन्द शाक, (आलू घुइया, जिमीकन्द आदि), तैलमें भुनेहुए पदार्थ, पोईका शाक, भारी और शीतल अन्नपान इन सब पदार्थोंको हिक्कारोगी तत्काल त्यागदेवे ॥ १९-१२१ ॥

श्वासरोगमें पथ्य ।

विरेचनं स्वेदनधूमपानं प्रच्छर्द्दनादि स्वपनं दिवा च ।
पुरातनाः षष्टिकरक्तशालिकुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः ॥२२॥
शशाहिभुक्तित्तिरिलावदक्षशुकादयो धन्वमृगद्विजाश्च ।
पुरातनं सर्पिरजाप्रसूतं पयो घृतं चापि सुरा मधूनि ॥२३॥
निदिग्धिका वास्तुकतण्डुलीयं जीवन्तिका मूलकपोतिकं च ।
पटोलवार्त्ताङ्कुरसोनपथ्या जम्बीरबिम्बीफलमातुलुङ्गम् ॥२४॥
द्राक्षा त्रुटिः पौष्करमुष्णवारि कटुत्रय गोजनितं च मूत्रम् ।
अन्नानि पानानि च भेषजानि कफानिलघ्नानि च यानियानि२५
वक्षः प्रदेशादपि पादयुग्मे करस्थयोर्मध्यमयोर्द्वयोश्च ।
प्रदीप्तलौहेन च कण्ठकूपे दाहोऽपि च श्वासिनि पथ्यवर्गः २६

विरेचन, स्वेदक्रिया, धूमपान, वमन कराना, दिनमें सोना, पुराने साँठी और लालशालिधानोंके चावल, कुलथी, गेहूँ, जौ, आदि अन्न, खरगोश, मोर, तीतर, लवा, मुर्गा, तोता और धन्वदेशजात पशु पक्षियोंका मांस, पुराना घी, बकरीका दूध, बकरीका घी, मदिरा, शहद, कटेरी, बथुआ, चौलाई, जीवंती, कच्ची मूली, करञ्ज, परवल, बगन, लहसुन, हरड, जम्बीरीनींबू, कन्दूरीका शाक, बिजौरानींबू, दाख, छोटी इलायची, पोहकरमूल, गरमजल, सोंठ, मिरच, पीपल, गोमूत्र, एवं कफ-वातनाशक अन्न, पान और ओषधियाँ, वक्षःस्थल, दोनों पाँव और दोनों हाथोंकी मध्यम अंगुलीकी मूल और कण्ठमें तपाये हुए लोहेके द्वारा दाह देना ये सब श्वास-रोगमें पथ्य हैं॥२२-२६॥

श्वासरोगमें अपथ्य ।

मूत्रोद्गारच्छर्दितृट्कासरोधो नस्यं बस्तिर्दन्तयाष्ठं श्रमश्च ।
पन्था भारो रेणवः सूर्यपादा विष्टम्भीनि ग्राम्यधर्मो विदाहि ॥
आनूपानामामिषं तैलभृष्टं निष्पावं च श्लेष्मकारीणि माषः ।
रक्तस्रावः पूर्ववातोऽनुपान मेषीसर्पिर्दुग्धमम्भोऽपि दुष्टम् ॥
मत्स्याः कन्दाः सषपाश्चान्नपान रूक्षं शीतं गुर्वपि श्वास्यमित्रम्।

मूत्र, डकार, वमन, तृषा, खाँसी इनके वेगको रोकना, नस्य, वस्तिकर्म, दतौन करना, परिश्रम करना, मार्गमें चलना, बोझ उठाना, धूल और धूपका सेवन, विष्टम्भी (मलरोधक) पदार्थ, स्त्रीप्रसङ्ग, दाहकारक पदार्थ, अनूपदेशजन्य जीवोंका मांस, तेलमें तले हुए पदार्थ, सेमकी फली, कफकारक पदार्थ, उडद, रुधिरका

निकलवाना, पूर्वदिशाकी वायुका सेवन, अनुपान (आहार विहारादिके पश्चात शीतल जल पीना), भेंडका दूध, भेंडका घृत, दूषित जल, मछली, कन्दशाक, सरसों एवं रूक्ष शीतल और गुरुपाकी अन्नपान ये सब श्वासरोगमें अपथ्य हैं॥१२७॥१२८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हिक्काश्वासरोगचिकित्सा ।

स्वरभंगकी चिकित्सा ।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् ।
कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ १ ॥
गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः ।
तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीदति ॥ २ ॥
स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ।
क्षयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय चरेत्क्रियाम् ॥ ३ ॥

वातजनित स्वरभंगरोगमें कुछ गरम कडवे तैलमें सैंधानमक मिलाकर कवल धारण करे, पित्तज स्वरभेदमें घी और शहद मिलाकर और कफोत्पन्न स्वरभङ्ग रोगमें जवाखार, मिरच या पीपल और शहद इनको एकत्र मिलाकर उनका कवल धारण करावे । इस प्रकार करनेसे गला, तालु, जीभ और दाँतोंकी जडोंमें स्थित कफ बाहर निकल जाता है, इससे स्वर शुद्ध हो जाता है । मेदोजन्य स्वरभेदमें कफजनित स्वरभेदकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । क्षयज और त्रिदोषज स्वरभेदरोगमें असाध्य कहकर स्वरभङ्गरोगमें कही हुई पृथक् पृथक् दोषोंकी मिश्रित चिकित्सा करे ॥ १-३ ॥

अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्णयेत् ।
मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदमपोहति ॥ ४ ॥

अजमोद, हल्दी, आमले, जवाखार और चीता इन सबके समान भाग चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे स्वरभेदरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

बेरके कच्चे पत्तोंको पीसकर घीमें भूनकर सेंधानमकका चूर्ण मिलालेवे। इसको स्वरभंग और कासरोगमें सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है॥ ५॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
पिबेन्मूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंक्षये॥ ६॥

कफजनित स्वरभंगमें पीपल, पीपलामूल, मिरच और सोंठ इन औषधियोंका समान भाग चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करना चाहिये॥ ६॥

चव्यादिचूर्ण।

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिन्तिडीक-
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः।
चूर्णं गुडैः प्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम्॥

चव्य, अंमलवेत, सोंठ, मिरच, पीपल, विषांबिल (तिन्तडी), तालीसपत्र, जीरा, बंशलोचन, चीता, दारचीनी, छोटी इलायची और तेजपात इन सब औषधियोंका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णको बराबर पुराना गुड लेकर सबको एकत्र मर्दन करलेवे। यह चूर्ण स्वरभंग, पीनस और कफजनित अरुचिरोगमें सेवन करना चाहिये॥ ७॥

त्र्यम्बकाभ्र॥

अभ्रं मेचकमारितं पलमितं व्याघ्री बला गोक्षुरं
कन्या पिप्पलिमूलभृङ्गवृषकाः पत्रं तथा बादरम्।
धात्रीरात्रिगुडूचिकाः पृथगतः स्वत्वैः पलांशैर्युतं
संमर्द्यातिमनोरमं सुवलितं कृत्वा यदा सेवितम्॥ ८॥

कृष्णाभ्रककी भस्मको ४ तोले लेकर कटेरी, खिरेंटी, गोखुरू, घीकुँवार, पिपलामूल, भाङ्गरा, अडूसा, बेरके पत्ते, आमले, हल्दी और गिलोय इनके चार चार तोले रसके द्वारा क्रमसे पृथक् पृथक् भावना देकर उत्तम प्रकारसे खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे॥ ८॥

वातोत्थं कफपित्तजं स्वरगदं यच्च त्रिदोषात्मकं
ह्यत्युच्चैर्वदतो हतं बहुविधं पानीयदोषोद्भवम्।
कासं श्वासमुरोग्रहं सयकृतं हिक्कां तृषां कामला-
मर्शांसि ग्रहणीं ज्वरं बहुविधं शोथं क्षयं चार्बुदम्॥

हन्ति त्र्यम्बकमभ्रमद्भुततरं वृष्यातिवृष्यं परं
वह्नेर्वृद्धिकरं रसायनवरं सर्वामयध्वंसि तत् ॥ ९ ॥

यह त्र्यम्बकाभ्र सेवन करतेही वात, कफ और पित्तसे उत्पन्नहुए वा त्रिदोषज अथवा बहुत जोरसे चिल्लानेसे और अनेक प्रकारके पानादिकोंके दोषसे उत्पन्न हुये स्वररोगको एवं खाँसी, श्वास, उरोरोग, यकृत्, हिक्का, तृषा, कामला, अर्श, संग्रहणी, विविध प्रकारके ज्वर, शोथ, क्षय, अर्बुद और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करता है। एवं अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, अग्निको दीपन करनेवाला और श्रेष्ठ रसायन है ॥ ९ ॥

भैरवरस।

रसं गन्धं विषं टङ्कं मरिचं चव्यचित्रकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः ॥ १० ॥
गुंजात्रयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुस्तरम् ॥ ११ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागा, मिरच, चव्य और चीता इनके समान भाग चूर्णको अदरखके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद, दारुण श्वास और कासरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

किन्नरकण्ठरस।

रसं गन्धकमभ्रं च माक्षिकं लौहमेव च।
कर्षप्रमाणं संगृह्य वैक्रान्तं रसपादिकम् ॥ १२ ॥
वैक्रान्तार्द्धं तथा हेम रौप्यं हेमचतुर्गुणम्।
वासायाश्च तथा भार्ङ्ग्या बृहत्योरार्द्रकस्य च ॥ १३ ॥
स्वरसेन सरस्वत्या भावयित्वा पृथक् पृथक्।
रक्तिद्वयमिताः कुर्याद्वटीश्छायाप्रशोषिताः ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सोनामाखीभस्म और लोहभस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष, वैक्रान्तमणिभस्म चार मासे, सुवर्णभस्म २ मासे और चाँदीकी भस्म ८ मासे इन सबको एकत्र पीसकर अडूसेके पत्ते, भारंगीकी जडकी छाल, कटेरी, बडीकटेरी, अदरख और ब्राह्मी इनके स्वरसमें अलग अलग भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे और उनको छायामें सुखालेवे ॥ १२-१४ ॥

स्वरभेदानशेषांश्च कासान् श्वासांश्च दारुणान् ।
निखिलान्कफजान्व्याधीन् वातश्लेष्मसमुद्भवान् ॥ १५ ॥
हन्यात्किन्नरकण्ठाख्यो रसोऽसौ रुद्रनिर्मितः ।
किन्नरस्येव कण्ठस्य स्वरोऽस्य प्राशनाद्भवेत ॥ १६ ॥

यह रस सर्वप्रकारके स्वरभंगरोग, खाँसी, श्वास, सम्पूर्ण कफजनित और वातकफोत्पन्न व्याधियोंको नष्ट करता है और इस रसके सेवन करनेसे किन्नरके कण्ठकी समान उत्तम स्वर होजाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

निदिग्धिकावलेह ।

निदिग्धिका तुला ग्राह्या तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य तु ।
तदर्द्धं चित्रकस्यापि दशमूलं च तत्समम् ॥ १७ ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं गृह्णीयादाढकं ततः ।
पूते क्षिपेत्तदर्द्धं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १८ ॥
सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।
अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलं तथा ॥ १९ ॥
मरिचस्य पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ।
मधुनः कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥ २० ॥

कटेरी १०० पल, पीपलामूल ५० पल, चीता २५ पल और दशमूल समभाग मिश्रित २५ पल इन सबको एकत्र कूटकर दो द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते एक आढक जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें क्वाथसे आधा पुराना गुड डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पककर लेहकी समान सिद्ध होजावे तब नीचे उतारकर उसमें पीपलका चूर्ण ३२ तोले दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण ४ तोले और मिरचोंका चूर्ण ४ तोले एवं शीतल होनेपर १६ तोले शहद डालकर सबको अच्छे प्रकारसे मिलादेवे और एक चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। फिर इसको जठराग्निके बलाबलके अनुसार सेवन करे ॥ १७–२० ॥

निदिग्धिकावलेहोऽयं भिषग्भिर्मुनिभिर्मतः ।
स्वरभेदहरो मुख्यः प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ २१ ॥
कासश्वासाग्निमान्द्यादिगुल्ममेहगलामयान् ।
आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च ॥ २२ ॥

इस अवलेहको आयुर्वेदज्ञ मुनियोंने कहा है। यह विशेषकर स्वरभङ्ग और प्रतिश्यायको दूर करताहै एवं खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, गुल्म, प्रमेह, गलेके रोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थि और अर्बुद इन सबको नष्ट करता है ॥ २१-२२ ॥

व्याघ्रीघृत।

व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः।
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासं च पञ्चविधम् ॥ २३ ॥
"शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥"

हरी कटेरीके स्वरस एवं रायसन, खिरैंटी, गोखुरू और त्रिकुटा इनके कल्कके साथ यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत उष्ण दुग्धके साथ पान करनेसे स्वरक्षय और पाँचो प्रकारकी खाँसीको नष्ट करता है। "कटेरीके स्वरसके अभावमें १ भाग सूखी कटेरीको लेकर अठगुने जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको छानकर ग्रहण करे" ॥ २३ ॥

सारस्वतघृत (ब्राह्मीघृत)।

समूलपत्रमादाय ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा।
उदूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ २४ ॥
रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
औषधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत् ॥ २५ ॥
हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी।
एतेषां पलिकान्भागान् शेषाणि कार्षिकाणि च ॥२६॥
पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा।
सर्वमेतत्समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २७ ॥

जड और पत्तोंसहित ब्राह्मीको जलसे धोकर ओखलीमें कूटकर वस्त्रमें उसका रस निचोड लेवे। ऐसा रस चार प्रस्थ, गौका घी एक प्रस्थ, एवं हलदी, मालतीके फूल, कूठ, निसोत और हरड ये प्रत्येक ओषधि चार चार तोले, पीपल, वायविडंग, सैंधानमक, खाँड और वच ये प्रत्येक दो दो तोले इन सबको एकत्र पीसकर और उक्त रसमें मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा घृतको पकावे, जब पकते पकते घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ २४-२७ ॥

एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिः प्रजायते ।
सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २८ ॥
अर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत् ।
मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रं तु धारयेत ॥ २९ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च ।
पञ्च गुल्मान्प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३० ॥
वन्ध्यानामपि नारीणां नराणामल्परेतसाम् ।
घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ३१ ॥

इस घृतको सेवन करतेही वाणी अत्यन्त शुद्ध होजाती है । सात दिनतक सेवन करनेसे किन्नरकी समान गाने लगता है । १५ दिनतक पान करनेसे शरीर चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो जाता है और एक महीनेतक सेवन करनेसे सुनतेही बातको धारण करलेता है अर्थात् स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र होजाती है । यह सारस्वतनामक घृत १८ प्रकारके कुष्ठ, अनेक प्रकारका अर्श, पाँच प्रकारका गुल्म, प्रमेह और पाँचों प्रकारकी खाँसीको नष्ट करता है । वन्ध्या स्त्रियों और अल्पवीर्यवाले मनुष्योंके लिये भी यह अत्यन्त उपयोगी है एवं बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि करता है ॥ २८–३१ ॥

भृंगराजाद्यघृत ।

भृङ्गराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्दरसैः ।
सर्पिः सपिप्पलीकं सिद्धं स्वरभेदकासजिन्मधुना ॥ ३२ ॥

भांगरेके स्वरस, गिलोयके क्वाथ, अडूसेके पत्तोंके स्वरस, दशमूलके क्वाथ और कसौंदीके पत्तोंके स्वरसके साथ पीपलका चूर्ण और गोघृत मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इस घृतको शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभङ्ग और कासरोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

स्वरभङ्गमें पथ्य ।

स्वेदो वस्तिर्धूमपानं विरेकः कवलग्रहः ।
नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः ॥ ३३ ॥
हंसाटवीताम्रचूडकेकिमांसरसाः सुरा ।
गोक्षुरः काकमाची च जीवन्ती बालमूलकम् ॥ ३४ ॥

द्राक्षा पथ्या मातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम् ।
ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम् ॥ ३५ ॥

स्वेदनक्रिया, वस्तिकर्म, धूम्रपान, विरेचन, कवल धारण करना, नस्य दैना, मस्तककी शिराको वेधना, जौ, लालशालिधानोंके चावल, हंस, जंगली मुर्गा और मोर इनका मांसरस, मदिरा, गोखुरू, मकोय, जीवन्तीशाक, कच्ची मूली, दाख, हरड, बिजौरानींबू, लहसुन, सैंधानमक, अदरख, पान, कालीमिरच और घृत ये समस्त पदार्थ स्वरभङ्गरोगवाले मनुष्योंको हितकारी हैं ॥ ३३–३५ ॥

स्वरभङ्गमें अपथ्य ।

आमं कपित्थं वकुलं शालूकं जाम्बवानि च ।
तिन्दुकानि कषायाणि वमिं स्वप्नं प्रजल्पनम् ॥
अनुपानं च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

कैथका कच्चा फल, मौलसिरीके फल, भसींडा, जामुन, तेंदुके फल, कषाय रसवाले पदार्थोंका सेवन, वमन, अधिक निद्रा, बहुत बोलना और अनुपान (अर्थात् आहार विहारादिपर शीतल जलादिका पान) इन सबको स्वरभंगरोगी यत्नपूर्वक त्यागदेवे ॥ ३६

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्वरभङ्गचिकित्सा ।

अरोचकचिकित्सा ।

वस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ।
कुर्याद्धृद्यानुकूलानि हर्षणं च मनोजजे ॥ १ ॥

वातकी अरुचिमें वस्तिकर्म, पित्तकी अरुचिमें विरेचन, कफजनित अरुचिमें वमन, शोक और कामादिके द्वारा उत्पन्नहुए अरुचिरोगमें हृदयको हितकारी और मनके अनुकूल और हर्षजनक क्रिया करे ॥ १ ॥

कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करा मरिचं विडम् ।
धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्यश्चन्दनोत्पलम् ॥ २ ॥
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ ३ ॥

सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः ।
चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वातादेकजसर्वजान् ॥ ४ ॥

(१) कूठ, कालानमक, जीरा, खाँड, कालीमिरच और विडनमक, (२) आमले, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, चन्दन और कमल. (३) लोध, चव्य, हरड, सोंठ, पीपल, मिरच और जवाखार. (४) अदरखका रस, अनारका रस, जीरा और खाण्ड इन चारों प्रयोगोंमेंसे किसी एकको कडवेतैल और शहदमें मिलाकर उसके कवल, धारण करनेसे वातज, पित्तज, कफज, और सन्निपातज अरुचि दूर होती है । ये चारों प्रयोग अरुचिनाशक हैं ॥ २–४ ॥

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्तमामलकं त्वचः ।
त्वक् च दार्वी यमान्यश्च पिप्पल्यस्तेजोवत्यपि ॥ ५ ॥
यमानी तिन्तिडीकं च पंचैते मुखशोधनाः ।
श्लोकपादैरभिहिताः सर्वारोचकनाशनाः ॥ ६ ॥

(१) दारचीनी, नागरमोथा, छोटी इलायची और धनियाँ. (२) नागरमोथ आमले और दारचीनी. (३) दारचीनी, दारुहल्दी और अजवायनका चूर्ण. (४) पीपल और चव्यका चूर्ण. (५) इमली और अजवायनका चूर्ण ये पाँचों प्रकारके योग मुखको शुद्ध करनेवाले हैं । ये सब प्रयोग सब प्रकारकी अरुचिको दूर करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अम्लीकागुडतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम् ।
अभ्यक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ ७ ॥

पुरानी इमली और गुडको एकत्र जलके साथ पीसकर उसमें दारचीनी, इलायची और मिरचोंका चूर्ण मिलाकर उसका मुखमें कवल धारण करनेसे अरुचि दूर होती है ॥ ७ ॥

कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ ८ ॥

कालाजीरा, सफेदजीरा, मिरच, दाख, अमलवेत, अनार, कालानमक, गुड और शहद इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके सेवन करनेसे सर्वप्रकारकी अरुचि दूर होती है ॥ ८ ॥

विट्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिमसम्भवः ।
असाध्यमपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः ॥ ९ ॥

अनारके रसमें बिरियासंचरनमक और शहद मिलाकर उसका मुखमें कवल धारण करनेसे असाध्य अरुचि भी दूर होती है ॥ ९ ॥

त्रीण्यूषणानि त्रिफला रजनीद्वयं च
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ।
क्षौद्रान्वितानि वितरेन्मुखधारणार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ १० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी और जवाखार इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको शहद और तिक्त, कटु औषधियों (अर्थात् दारचीनी, इलायची आदि) के साथ मिलाकर मुखमें धारण करनेसे अरुचि नष्ट होती है ॥ १० ॥

यमानीषाडवं ।

यमानी तिन्तिडीकं च नागरं चाम्लवेतसम् ।
दाडिमं बदरं चाम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ११ ॥
धान्यसौवचलाजाजी वराङ्गं चार्द्धकार्षिकम् ।
पिप्पलीनां शतं चैव द्वे शते मरिचस्य च ॥ १२ ॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।
जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ १३ ॥
हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् ।
कासश्वासहरं ग्राही ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ १४ ॥

अजवायन, पुरानी इमली, सोंठ, अमलवेंत, अनारका रस और खट्टे बेर ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले एवं धनियाँ, कालानमक कालाजीरा और दारचीनी ये सब एक एक तोला, पीपलें १००, काली मिरचें २०० और मिश्री १६ तोले लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे। यह चूर्ण जिह्वाको शुद्ध करनेवाला, हृदयको हितकारी, भोजनमें रुचि उत्पन्न करनेवाला एवं हृदयकी पीडा, पसलीकी पीडा, विबन्ध, अनाह, खाँसी, श्वास, मलावरोध, संग्रहणी और अर्श इन सब विकारोंको नष्ट करता है ॥ ११-१४ ॥

कलहंस कांजी ।

अष्टादश शिग्रुफलानि दश मरिचानि विंशतिः पिप्पल्याश्च ।
आर्द्रकपलं गुडपलं प्रस्थद्वयमारनालस्य च ॥ १५ ॥

एतद्धिङलवणसहितं खजाहतं सुरभिगन्धाढ्यम्।
व्यञ्जनसहस्रघाति ज्ञेयं कलहंसकं नाम ॥ १६ ॥

सहिंजनेके बीज १८, मिरचें १०, पीपल ७०, अदरख ४ तोले, गुड ४ तोले, काँजी २ प्रस्थ और विरियासंचरनमक ४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर उसमें सुगन्धिके लिये दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण यथोचित परिमाणमें मिलादेवे। यह कलहंसनामक काँजी अनेक प्रकारके पदार्थोंसे उत्पन्न हुई अरुचिको दूर करती है ॥ १९ ॥ १६ ॥

तिन्तिडीपानक।

भागास्तु पञ्च चिञ्चायाः खण्डस्यापि चतुर्गुणाः।
धान्यकार्द्रकयोर्भागाश्चतुर्जातार्द्धभागिकम् ॥ १७ ॥
द्विगुणं जलमेतेषामेकपात्रे विलोडितम्।
पिहितं तप्तदुग्धेन ततो वस्त्रपरिप्लुतम् ॥ १८ ॥
विधिना धूपिते पात्रे कृत्वा कर्पूरवासितम्।
नृपयोग्यमिदं पानं भवेद्युक्त्या सुयोजितम् ॥ १९ ॥

पुरानी इमली २० तोले, खाँड ८० तोले, धनियाँ २ तोले, अदरख २ तोले, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक एक एक तोला और इन सबसे दूना शीतल जल लेकर सब औषधियोंको एक मिट्टीके शुद्ध पात्रमें भरकर उत्तम प्रकारस मथे, उसमें थोडा गरम दूध डालकर ढकदेवे। पश्चात् उसको वस्त्रमें छानकर कर्पूर आदि सुगन्धितपदार्थोंसे सुवासित करके अगर आदिके द्वारा धूप दिये हुए पात्रमें भरकर रखदेवे। युक्तिपूर्वक प्रयोग किया हुआ यह पानक राजाओंके सेवन करने योग्य होता है ॥ १७-१९ ॥

रसाला।

अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितस्य दध्नः
खण्डस्य षोडश पलानि शशिप्रभस्य।
सर्पिः पलं मधु पलं मरिचं द्विकर्षं
शुण्ठ्याः पलार्द्धमपि चार्द्धपलं चतुर्णाम् ॥ २० ॥
शुक्लोपले ललनया मृदुपाणिघृष्टा
कर्पूरचूर्णसुरभीकृतभाण्डसंस्था।

एषा वृकोदरकृता सुरसा रसाला
आस्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥ २१ ॥
"रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्या रुचिप्रदा"॥

खट्टा दही ४ सेर, सफेद खाँड ६४ तोले, गोघृत ४ तोले, शहद ४ तोले, कालीमिरच २ तोले, सोंठ २ तोले एवं दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेवे। फिर सफेद पत्थरपर मृदुकरपल्लवोंवाली ललनाके द्वारा पीसेहुए ओषधियोंके चूर्णको और अन्य सब पदार्थोंको एकत्र मिलाकर कपूरके द्वारा सुवासित कियेहुए पात्रमें भरकर रख देवे। इस अत्यन्त स्वादिष्ठ रसालेको भीमसेनने बनाया था और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आस्वादन किया था। "यह रसाला अत्यन्त पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, बलकारक और रुचिकर है" २०॥२१

रसकेसरी।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीक्काथेन मर्दयेत्।
देवपुष्पं बाणमितं रसपादं तथाऽमृतम् ॥ २२ ॥
माषमात्रं च तत्सेव्यं नागरेण गुडेन वा।
सर्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं विनाशयेत् ॥ २३ ॥
विषूचीमग्निमान्द्यं च भक्तद्वेषं सुदारुणम्।
रसो निवारयत्येष केशरी करिणं यथा ॥ २४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला दोनोंकी कज्जली, लौंग ५ तोले और शुद्ध मीठा तेलिया ३ मासे इन सबको एकत्र दन्तीके क्वाथके द्वारा खरल करके एक एक मासेकी गोलियाँ बनालेवे। इसको सोंठके चूर्ण अथवा गुडके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारकी अरुचि, शूल, आमवात, विषूचिका और मन्दाग्नि आदि रोग दूर होते हैं। यह रस विशेषकर अरुचिको तो इस प्रकार दूर करदेता है जैसे सिंह हाथीको ॥ २२-२४ ॥

सुधानिधि रस।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीक्काथेन भावयेत्।
जम्बीरस्वरसेनैव आर्द्रकस्य रसेन च ॥ २५ ॥
मातुलुङ्गस्य तोयेन तस्य मज्जरसेन च।
पश्चाद्विशोष्य सर्वांशं टङ्कणं चावतारयेत ॥ २६ ॥

देवपुष्पं बाणमितं रसपादं तथाऽमृतम् ।
माषमात्रं च तत्सेव्यं नागरेण गुडेन वा ॥
सर्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला, दोनोंकी कज्जली करके दन्तीके क्वाथ, जम्बीरीनीम्बूके रस, अदरखके रस, बिजौरेनींबूके रस और बिजौरेनीम्बूके बीजोंके रसमें क्रमसे भावना देकर सुखालेवे । फिर उसमें सुहागा दो तोले, लौंग ५ तोले और शुद्ध मीठा तेलिया ३ माशे मिलाकर खरल करलेवे । इस रसको प्रतिदिन एक एक मासेकी मात्रासे सोंठके चूर्ण अथवा गुडके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारकी अरुचि, शूल और दारुण आमवातरोग नष्ट होता है ॥ २५-२७ ॥

सुलोचनाभ्रक ।

पलं सुजीर्णं गगनं तु वज्रकं तेजोवती कोलमुशीर-दाडिमम् । धात्र्यम्ललोणीरुचकं पृथक् दशपलोन्मितं मर्दितमेव सेवितम् ॥ २८ ॥ अरोचकं वातकफत्रिदोषजं पित्तोद्भवं गन्धसमुद्भवं नृणाम् ।कासं स्वराघातमुरोग्रहं रुजं श्वासं बलासं यकृतं भगन्दरम् ॥ २९ ॥ प्लीहाग्नि-मान्द्य श्वयथुं समीरणं मेहं भृशं कुष्ठमसृग्दरं कृमिम् । शूलाम्लपित्तक्षयरोगमुद्धतं सरक्तपित्तं वमिदाहमश्म-रीम् । निहन्ति चार्शांसि सुलोचनाभ्रकं बलप्रदं वृष्य-तमं रसायनम् ॥ ३० ॥

वज्र अभ्रककी पुरानी भस्म ४ तोले, चव्य, बेरकी गुठलीकी मींग, खस, अनार, आमले, चाङ्गेरी, नौनिया और बिजौरेनींबूके बीज प्रत्येक दस दस पल लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके सेवन करे । यह सुलोचनाभ्रक वात, कफ और पित्त इन पृथक् २ दोषासे अथवा तीनों दोषोंके मिलनेसे उत्पन्न हुई वा दुर्गन्धजनित अरुचि एवं खाँसी, स्वरभेद, उरोरोग, श्वास, कफविकार, यकृत, भगन्दर, प्लीहा, मन्दाग्नि, शोथ, वातरोग, प्रमेह, कुष्ठ, रक्तप्रदर, कृमिरोग, शूल, अम्लपित्त, वमन, दाह, पथरी और सर्वप्रकारकी बवासीर इन सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है एवं अत्यन्त बल-कारक, वीर्यवर्द्धक और रसायन है ॥ २८-३० ॥

अरोचकमें पथ्य।

वस्तिर्विरेको वमनं यथाबलं धूमोपसेवा कवलग्रहस्तथा। तिक्तानि काष्ठानि च दन्तघर्षणं चित्रान्नपानानि हितैः कृतानि च ॥ ३१ ॥ गोधूममुद्गारुणशालिषष्टिका मांसं वराहाजशशैणसम्भवम्। चेङ्गो झषाण्डं मधुरालिकेल्लिशः प्रोष्ठी खलीशः कवयी च रोहितः ॥ ३२ ॥ कर्कारुवेत्राग्रनवीनमूलकं वार्त्ताकुशोभाञ्जनमोचदाडिमम्। भव्यं पटोलं रुचकं घृतं पयो बालानि तालानि रसोनसूरणम् ॥ ३३ ॥ द्राक्षा रसालं नलदम्बु काञ्जिकं मद्य रसाला दधि तक्रमार्द्रकम्। कक्कोलखर्ज्जूरपियालतिन्दुकं कर्कं कपित्थं बदरं विकङ्कतम् ॥ ३४ ॥ तालास्थिमज्जा हिमवालुका सिता पथ्या यमानी मरिचानि रामठम्। स्वाद्वम्लतिक्तानि च देहमार्जना वर्गोऽयमुक्तोऽरुचिरोगिणे हितः ॥ ३५ ॥

अरुचिरोगमें रोगीके बलानुसार वस्तिक्रिया, विरेचन, वमन (ये सब क्रियायें रोगीके बलानुसार कराना), धूमपान, केवल, तिक्तरसवाले काष्ठकी दाँतुन, नानाप्रकारके पदार्थोंके द्वारा बनायेहुए रुचिकारक और हितकारक अन्न पान, गेहूँ, मूँग, लालशालिधान और सांठीधानोंके चावल, सूअर, बकरा, खरगोश, काला हिरन इनका मांस, चेङ्गनामक मछली, मछलीके अण्डे, मधुरालिका (क्षुद्रमत्स्यविशेष), इल्लिश (इलीस मछली), छोटी मछली, रूई मछली खलीश मछली और रोहू-मछली, ककोडा, बेंतके अंकुर, कच्ची मूली, बैंगन, सहिंजनेकी फली, केलेका मोचा, अनार, भव्यफल (कमरख), परवल, बिजौरानीम्बू, घी, दूध, कच्चे ताडके फल, लहसुन, जिमीकन्द, दाख, आम, नीम, काँजी, मद्य, रसाला, दही मट्ठा, अदरख, कंकोल, खजूर, चिरौंजी, तिन्दुकेफल, पक्का कैथ, बेर, कण्टाई, ताडके फलकी गिरी-कपूर, मिश्री, हरड, अजवायन, मिरच, हींग एवं खट्टे मीठे और कडवे पदार्थोंका सेवन और शरीरमार्जन ये सब अरुचिरोगवाले मनुष्यके लिये हितकारक हैं ॥ ३१–३५ ॥

अरोचकमें अपथ्य।

कासोद्गारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम्।
अहृद्यान्नमसृङ्मोक्षं क्रोध लोभं भयं शुचम्॥
दुर्गन्धरूपसेवां च न कुर्य्यादरुचौ नरः॥ ३६॥

अरुचिरोगमें खाँसी, डकार, भूँख, और आँसुओंके वेगको रोकना, अहृद्य पदार्थोंका सेवन, रक्तमोक्षण (रुधिर निकलवाना,) क्रोध, लोभ, शोक, दुर्गन्धित और घृणित वस्तुओंका दर्शन आदि क्रियायें नहीं करनी चाहिये॥ ३६॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् अरोचक-चिकित्सा।

छर्द्दि (वमन)--चिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लङ्घनमेव तस्मात्। प्राक् कारयेन्मारुतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्तहारि॥ १॥

आमाशयमें उत्क्लेश होनेसे सब प्रकारकी वमन होती है, इसलिये वमनरोगमें प्रथम लंघन कराने चाहिये। वातज वमनको छोडकर अन्य दोषोंकी अधिकता होनेपर कफपित्तनाशक औषधियोंके द्वारा वमन विरेचन करावे॥ १॥

चन्दनेनाक्षमात्रेण सयोज्यामलकीरसम्।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्द्दिस्तेन निवार्यते॥ २॥

दो तोले आमलोंके रसमें एक तोला सफेद चन्दन घिसकर उत्तम शहद मिलाकर पान करनेसे वमन होना दूर होता है॥ २॥

चन्दनं च मृणालं च बालकं नागरं वृषम्।
सतण्डुलोदकक्षौद्रः पीतः कल्को वमिं जयेत्॥ ३॥

श्वेतचन्दन, कमलकी नाल, सुगन्धवाला, सोंठ और अडूसा इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको चावलोंके जल और शहदके साथ मिलाकर पीनेसे वमन दूर होती है॥ ३॥

क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्द्दिनाशनः॥

पित्तपापडेके क्वाथको शहदके साथ पीनेसे छर्दिरोग नष्ट होता है॥

हरीतकीनां चूर्णं तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ।
अधोभागीकृते दोषे क्षिप्रं वान्तिर्निवर्त्तते ॥ ४ ॥

हरडोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे दस्त होकर वमन होना शीघ्र दूर होता है ॥ ४ ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ ५ ॥

भुनी हुई मूँगके क्वाथमें खीलें, शहद और खाँड मिलाकर पीनेसे वमन, अतिसार प्यास, दाह और ज्वरादि विकार शमन होते हैं ॥ ५ ॥

जातीरसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।
क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणम् ॥ ६ ॥

आमलोंका रस या क्वाथ कैथका गूदा, पीपल और मिरचोंका चूर्ण इनको यथोचित परिमाणमें शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे यह अवलेह प्रबल वमनको शमन करता है ॥ ६ ॥

पित्तात्मिकायां त्वनुलोमनार्थं द्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत स्यात्। कफाशयस्थं त्वतिमात्रवृद्ध पित्तं जयेत्स्वादुभिरूर्द्ध्वमेव ॥ ७ ॥ शुद्धस्य काले मधुशर्कराभ्यां लाजैश्च मन्थं यदि वापि पेयाम् । प्रदापयेन्मुद्गरसेन वापि शाल्योदनं जाङ्गलजै रसैर्वा ॥ ८ ॥

पित्तज वमन रोगमें—अनुलोमनके लिये दाख, विदारीकन्द और ईखके साथ निसोतका चूर्ण मिलाकर पान करावे। कफाशयमें स्थिर अत्यन्त बढेहुए पित्तको शमन करनेके लिये दाख आदि मधुर रसयुक्त द्रव्योंके द्वारा शरीरके शुद्ध होनेपर रोगीको जठराग्निके बलानुसार शहद और खाँड मिलाकर खीलोंका मन्थ, पेया अथवा मूँगका यूष, वा जाङ्गल देशके पशु-पक्षियोंके मांसरसके साथ शालिधानोंके चावलोंका भात भोजन करावे ॥ ७ ॥ ८ ॥

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः ।
पिण्डीतकैः सैन्धवसंप्रयुक्तैश्छर्द्यां कफामाशयशोधनार्थम् ९ ॥

कफज वमनरोगमें—कफयुक्त आमाशयके शुद्ध करनेके लिये पीपल, सरसों और नीमकी छालके क्वाथको गरम जलके साथ पान कराकर अथवा सैंधानमक और मैनफलका चूर्ण सेवन कराकर वमन करानी चाहिये ॥ ९ ॥

विडङ्गत्रिफलाविश्वचूर्णं मधुयुतं जयेत्।
विडङ्गप्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजां वमिम्॥ १०॥

वायविडंग, त्रिफला, सोंठ इनका चूर्ण अथवा वायविडंग, नागरमोथा और सोंठ इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे कफज वमिरोग नष्ट होय॥ १०॥

सजाम्बवं वा बदरस्य चूर्णं मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृङ्गीम्।
दुरालभां वा मधुसंप्रयुक्तां लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम्॥ ११॥

जामुन और बेरकी गिरीका चूर्ण वा नागरमोथा, काकडासिंगीका चूर्ण अथवा धमासेके चूर्ण और शहदको मिलाकर सेवन करनेसे कफकी वमन दूर हो॥ ११॥

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः।
पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना॥ १२॥

त्रिदोषज वमनरोगमें बेलकी छाल और गिलोयके शीतल क्वाथको शहदके साथ अथवा मूर्वाके क्वाथको चावलोंके जलके साथ पान करना चाहिये॥ १२॥

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां
क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम्।
पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां
लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै॥ १३॥

(१) खीले, कैथका गूदा, शहद, पीपल और कालीमिरच. (२) शहद, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ और जीरा, (३) हरड. गिलोय, मिरच, शहद और पीपलका चूर्ण इन तीनों प्रयोगोंमेंसे किसी एक अवलेहको सेवन करनेसे सब प्रकारकी वमन और अरुचि शान्त होती है॥ १३॥

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले।
तज्जलं पानमात्रेण च्छर्दिमाशु व्यपोहति॥ १४॥

पीपलकी सूखी छालको जलाकर पानीमें बुझालेवे। उस जलको वस्त्रमें छानकर पान करनेसे वमन होना तत्काल दूर होताहै॥ १४॥

एलादिचूर्ण।

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जलाजप्रियङ्गुघनचन्दन-
पिप्पलीनाम्। चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि
लीढ्वा च्छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम्॥ १५॥

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरकी गुठलीकी गिरि, खीलें, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, लालचन्दन और पीपल इन ओषधियोंके समान भाग चूर्णको शहद मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वात, कफ और पित्त इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन शमन होती है ॥ १५ ॥

रसेन्द्र ।

अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षौद्राभिः कटुत्रिकैः ।
एभिस्साद्ध भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये ॥ १६ ॥

कालाजीरा, धनियाँ, हरड, त्रिकुटा और शहद ये सब समान भाग और पारेकी भस्म आधा भाग इन सबको एकत्र मिलाकर वमनको शान्त करनेके लिये सेवन करना चाहिये ॥ १६ ॥

वृषध्वजरस ।

शुद्धं रस गन्धकं च लौहमेवं समांशिकम् ।
मधुकं चन्दनं धात्री सूक्ष्मैला सलवङ्गकम् ॥ १७ ॥
टङ्कणं पिप्पली मांसी तुल्यं पारदसम्मितम् ।
विदारीक्षुरसाभ्यां च भावयेद्दिनसप्तकम् ॥ १८ ॥
संशोष्य मर्दयेद्यामं छागीदुग्धेन यत्नतः ।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं विदारीरससंयुतम् ॥ १९ ॥
वातात्मिकां पित्तयुतां छर्दिं हन्ति सशोणिताम् ।
वृषध्वजरसो नाम वृषध्वजविनिर्मितः ॥ २० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, मुलहठी, लाल चन्दन, आमले, छोटी इलायची, लौंग, सुहागा, पपिल और बालछड इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके विदारीकन्द और ईखके रसमें क्रमसे सात सात दिनतक भावना देवे । फिर उसको सुखाकर बकरीके दूधमें एक प्रहरतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन एक एक गोली विदारीकन्दके रसके साथ भक्षण करे । यह रस वातज, पित्तज और रुधिरकी वमनको दूर करता है ॥

पद्मकाद्य घृत ।

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत् ।
कल्के क्वाथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ॥ २१ ॥
तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम् ॥ २२ ॥

पञ्चाख, गिलोय, नीम, धनियाँ और चन्दन इनके क्वाथ और कल्कके साथ एक प्रस्थ घीको पकालेवे। यह घृत सेवन करतेही वमन, तृषा, अरुचि, दाह और ज्वर ये सब रोग दूर होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

छर्दिरोगमें पथ्य।

विरेचनच्छर्दनलंघनानि स्नानं मृजा लाजकृतश्च मण्डः।
पुरातनाः षष्टिकशालिमुद्गकलायगोधूमयवा मधूनि ॥ २३ ॥
शशाहिभुक्तित्तिरिलावकाद्यामृगाद्विजाजाङ्गलसाङ्कताश्च।
मनोज्ञनानारसगन्धरूपा रसाश्च यूषा अपि षाडवाश्च ॥ २४ ॥
रागाः खडाः काम्बलिका सुरा च वेत्राग्रकुस्तुम्बुरुनारिकेलम्।
जम्बीरधात्रीसहकारकोलद्राक्षाकपित्थानि पचेलिमानि ॥२५॥
हरीतकी दाडिमबीजपूरं जातीफलं बालकनिम्बवासा।
सिताशताह्वाकरिकेसराणि भक्ष्या मनःप्रीतिकरा हिताश्च ॥२६
भुक्तस्य वक्त्रे शिशिराम्बुसेकः कस्तूरिका चन्दनमिन्दुपादाः।
मनोज्ञगन्धान्यनुलेपनानि पुष्पाणि पत्राणि फलानि चापि॥२७
रूपाणि शब्दाश्च रसाश्च गन्धाः स्पर्शाश्च ये सस्यमनोऽनुकूलाः।
दाहश्च नाभेस्त्रियवोपरिष्टादिदं हि पथ्यं वमनातुरेषु ॥ २८ ॥

विरेचन, वमन, लंघन, स्नान, शरीरका मार्जन, खीलोंका माँड, पुराने सांठी और शालिधानोंके चावल, मूँग, मटर, गेहूँ, जौ ये सब अन्न, शहद एवं खरगोश, मोर, तीतर, लवा आदि पक्षी, हिरन आदि पशु, अण्डज जीव और मनको प्यारे लगनेवाले नानाप्रकारके रूप, रस और सुगन्धसे युक्त जाङ्गल देशके पशु—पक्षियोंका मांसरस, यूष, आमका मुरब्बा, खड (यूषविशेष), काम्बलिक यूष (एक विशेषप्रकारकी काँजी), मद्य, बेंतका अग्रभाग, धनियाँ, नारियल, जम्बीरी नींबू, आमले, आम, बेर, दाख और स्वयं पका हुआ कैथका फल, हरड, अनार, बिजौरानींबू, जायफल, सुगन्धवाला, नीम, अडूसा, मिश्री, सौंफ, नागकेशर, भक्ष्य पदार्थ, भोजन करनेके पश्चात् मुखपर शीतल जल छिडकना, कस्तूरी, चन्दन, चाँदनी, मनोहर और सुगन्धित पदार्थोंका प्रलेप, सुगन्धित पुष्प, पत्र, फल, सुन्दररूप, कर्णप्रिय शब्द, सुस्वादु रस, सुगन्धियुक्त पदार्थ, कोमल स्पर्श और मनको प्रिय लगनेवाले अन्नादिकोंका

आहार और रोगीकी नाभिसे ऊपर तीन जौका अन्तर रखकर दग्ध लाहद्वारा दाह देना ये सब आहार बिहारादि क्रियायें वमन रोगमें हितकारी हैं ॥ २३-२८ ॥

छर्दिरोगमें अपथ्य ।

नस्यं वस्तिं स्वेदनं स्नेहपानं रक्तस्रावं दन्तकाष्ठं नवान्नम् ।
बीभत्सेक्षां भीतिमुद्वेगमुष्णं स्निग्धासात्म्याहृद्यवैरोधिकान्नम् ।
शिम्बीबिम्बीकोषातक्यो मधूकं चित्रामेलांसर्षपान्देवदालीम् ।
व्यायामं च च्छत्रिकामंजनं च छर्द्यां सत्यां वर्जयेदप्रमत्तः ३०

नस्य, वस्तिक्रिया, स्वेद देना, घृतादि स्नेहपदार्थोंका पान, रुधिर निकलवाना, दतौन करना, नये अन्नका भोजन, घृणित वस्तुओंको देखना; भय, उद्वेग, एवं गरम, स्निग्ध, असात्म्य, अरुचिकर और विरुद्ध पदार्थोंका भोजन, सेमकी फली, कन्दूरी, लौकी, महुआ, चीता, सरसों, देवदाली, व्यायाम, साँपकी छतरीका शाक और अञ्जन लगाना, ये सब वमन रोगमें अपथ्य हैं ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां छर्दिरोग-चिकित्सा ।

तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ।
रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव च ॥ १ ॥

वातजनित तृषामें गुड मिला हुआ दही, शीतल और बलकारक रस और गिलोयका रसपान करना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तजायां तु तृष्णायां पक्वोदुम्बुरजो रसः ।
तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वत् सारिवादिगणाम्बु वा ॥ २

पित्तकी पिपासामें पके हुए गूलरके फलोंका रस वा गूलरका क्वाथ पान करावे । अथवा सारिवादिगण (अनन्तमूल, मुलहठी, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, पद्माख, महुआ कम्भारी और खस) की औषधियोंको समान भाग मिश्रित दो तोले लेकर आध-पाव जलमें रात्रिमें भिगोदेवे । फिर दूसरे दिन प्रातःकाल छानकर पान करावे ॥ २ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम् ।
काश्मर्यशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ ३ ॥

आधपाव खीलोंको एक सेर गरम जलमें रात्रिमें भिजोकर दूसरे दिन प्रातःकाल छानकर उसमें शहद, गुड, कुम्भेरका चूर्ण और मिश्री प्रत्येक छःछः मासे मिलाकर थोडा थोडा बारम्बार पान करनेसे पिपासा शान्त होती है ॥ ३ ॥

बिल्वाढकीधातकिपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तत्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ ४ ॥

बेलगिरी, अरहरके पत्ते धायके फूल, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कुशाकी जड इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे कफजनित तृषा शान्त होती है। अथवा कफकी तृषामें नीमकी छाल, नीमके फूल, अथवा नीमके पत्तोंका गरम काढा पिलाकर वमन करानेसे विशेष उपकार होता है ॥ ४ ॥

क्षतोत्थितां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः।
क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं वाथ मधूदकं वा ५॥

क्षतके कारण उत्पन्न हुई तृषामें क्षतनिवारक औषधियोंका सेवन, मांसरस और कृष्णमृग, खरगोश आदिका मन्दोष्ण रक्त पान कराना चाहिये और क्षय जनित तृषामें दूध मिला हुआ जल (लस्सी) या मांसरस अथवा शहद मिला हुआ वर्षाका जल पान कराना चाहिये ॥ ५ ॥

गुर्वन्नजामुल्लिखनर्जयेत्तु क्षयादृते सर्वकृतां च तृष्णाम् ॥६॥

क्षयकी तृषा छोडकर गुरुपाकी पदार्थोंके खानेसे उत्पन्न हुई तृषाको और अन्य सर्व प्रकारकी तृषाओंको वमन कराकर दूर करना चाहिये ॥ ६ ॥

अतिरूक्षदुर्बलानां तृषां शमयेन्नृणामिहाशु पयः।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ७॥

अत्यन्त रूक्ष और दुर्बल देहवाले मनुष्योंके तृषारोगमें बकरीका दूध या घीमें भुना हुआ बकरेके मांसका शीतल यूष और मधुररस ये सब हितकारी और हृदयको प्रिय हैं ॥ ७ ॥

गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः।
नियतं नस्यतः पीतैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ ८ ॥

दाखोंका रस या क्वाथ, ईखका रस, दूध मुलहठीका क्वाथ, शहद और कुमोदनी (नीलोफर) के फूलोंका रस इनको नासिकाके द्वारा पान करनेसे या इनका नस्य लेनेसे दारुण तृषा शान्त होती है ॥ ८ ॥

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकैः क्षौद्रसीधुगुडोदकैः।
वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तालुशोषनिवारणाः ॥ ९ ॥

दूध, ईखका रस, महुएकी मद्य, शहद, सीधुनामक मद्य (शिर्का,) गुडका शर्बत, विषाम्बल और अम्लद्रव्योंके रसके द्वारा गण्डूष (कुल्ले) धारण करनेसे तालुशोष दूर होता है ॥ ९ ॥

आम्रजम्बुकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णां चैवापकर्षति ॥ १० ॥

आम अथवा जामुनके हरे पत्तोंका क्काथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर पान करनेसे सब प्रकारकी वमन और तृषा नष्ट होती है ॥ १० ॥

वटशुङ्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ ११ ॥

वडके अंकुर, मिश्री, लोध, अनार, मुलहठी और शहद इन सबको समान भाग लेकर सबको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे वमन और तृषा निवृत्त होती है ॥ ११ ॥

केशरं मातुलुङ्गस्य सक्षौद्रं दाडिमीयुतम् ।
क्षणमात्रेण दुर्वारां तृष्णां कवलतो जयेत् ॥
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ १२ ॥

बिजौरे नींबूके फूलोंकी केशर, शहद और अनारका रस इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर इनका कवल धारण करनेसे क्षणमात्रमेंही दुःसाध्य तृषा तथा शहदके गण्डूष धारण करनेसे दाह और तृषा शान्त होती है ॥ १२ ॥

असञ्चार्य्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्तिता ।
सुखं सञ्चार्य्यते या तु सा मात्रा कवले हिता ॥ १३ ॥

मुखमें इतनी औषधि भरले कि जो मुखमें चलायी न जा सके उसको गण्डूष कहते हैं और मुखमें भरी हुई औषधि जो अच्छे प्रकारसे मुखमें चलाई जा सके उसको कवल कहते हैं ॥ १३ ॥

वटशुङ्गामयक्षौद्रलाजनीलोत्पलैर्दृढा ।
गुडिका वदनन्यस्ता क्षिप्रं तृष्णामुदस्यति ॥ १४ ॥

वडके अंकुर, कूठ, मधु, खीलें और नीलकमल इन सबको समभाग लेकर एकत्र खरल करके गोली बनालेवे । इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे तत्काल तृषा निवारण होती है ॥ १४ ॥

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम्।
भोजयेत्तेन शाम्येत च्छर्दिस्तृष्णा चिरोत्थिता ॥ १५॥

पुराने लालशालिके चावलोंके शीतल भातको शहद मिलाकर खानेसे बहुत दिनोंकी वमन और तृष्णा दूर होती है १५ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम्।
पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

तृषित रोगीको कण्ठपर्यन्त शहद मिलाहुआ शीतल जल पान कराकर वमन करा देनेसे तृषा शान्त होती है ॥ १६ ॥

मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्शिताः।
पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ १७ ॥
पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन्।
लभते न चेदाश्वेव मरणं प्राप्नोति दीर्घरोगं वा ॥ १८ ॥

मूर्च्छा, वमन, पिपासा, दाह आदि रोग, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग और अत्यन्त मद्यपान करनेसे जिनका शरीर अत्यन्त क्षीण होगया हो ऐसे मनुष्योंको एवं रक्तपित्त और मदात्ययरोगमें शीतल जल पान करना चाहिये। यदि उक्त रोगोंसे आक्रान्त और तृषासे अत्यन्त पीडित मनुष्य दीन होकर जलको माँगे तब उसको शीघ्र जल न मिलनेसे उसकी मृत्यु होजाती है अथवा रोगकी वृद्धि होती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते ॥ १९ ॥
अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्धारयते चिरम्।
तोयाभावे पिपासार्त्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ २० ॥

कारण, तृषासे मोह (मूर्च्छा) उत्पन्न होता है और उससे मृत्यु होजाती है। इसलिये सभी अवस्थाओंमें तृषातुर रोगीको जल देना चाहिये। मनुष्य अन्नके विना चिरकालतक जीवन धारण कर सकता है, किन्तु जलके विना तृषित व्यक्ति क्षणमात्रमें ही प्राण विसर्जन करदेता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अत्यम्बुपानात्प्रभवन्ति रोगा निरम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्माद् बुधः प्राणविवर्द्धनार्थं मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥२१॥

अधिक जल पान करनेसे अथवा प्यास लगनेपर बिलकुल जल न पीनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये बुद्धिमान् प्राणरक्षाके लिये बारम्बार थोडा २ जलपान करे ॥ २१ ॥

रसादिचूर्ण।

रसगन्धककर्पूरैः शैलोशीरमरीचकैः।
ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं कृत्वा त्वहर्मुखे॥ २२ ॥
त्रिगुञ्जाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषिताम्बु च।
भृशं तृषां निहन्त्येवमश्विभ्यां च प्रकाशितम् ॥२३॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोले, कपूर ६ तोले, शिलाजीत ४ तोले, खस ५ तोले, काली मिरचें ६ तोले और मिश्री ७ तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल तीन तीन रत्ती प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे बासी जल पान करे तो यह अत्यन्त बढी हुई तृषाको शीघ्र शमन करताहै। इसको अश्विनीकुमारोंने प्रकाशित कियाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

महोदधिरस।

ताम्रं चक्रिकया वङ्गं सूतं तालं सतुत्थकम्।
वटाङ्कुररसैर्भाव्यं तृष्णाहृद्वल्लमात्रतः ॥२४॥
सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत्क्वाथं पलोन्मितम् ॥
सकृष्णा मधुना कुर्याद्गण्डूषान् शीतले स्थितः॥२५॥
["यत्र केवल एव रसस्तत्र भस्मसूतो देयः ॥"]

ताम्रभस्म, वंगभस्म, रससिन्दूर, हरतालभस्म और शुद्ध तूतिया इन सबको समान भाग लेकर बडके अंकुरोंके रसमें खरलकर लेवे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाणसे सेवन करके ऊपरसे आम और जामुनकी छालके चार तोले काढेको शहद मिलाकर पान करे तो तृषा शान्त होती है। इस औषधको सेवन करनेपर शीतल शय्यापर शयन एवं शहद और पीपलके चूर्णको गण्डूष धारण करना चाहिये। [जहाँपर केवल रसशब्दही कहा हो वहाँ पारेकी भस्म देनी चाहिये] २४ ॥ २५॥

तृष्णारोगमें पथ्य।

शोधनं शमनं निद्रां स्नानं कवलधारणम्।
जिह्वाधःशिरयोर्दाहो दीपदग्धहरिद्रया ॥ २६ ॥

कोद्रवाः शालयः पेया विलेपी लाजसक्तवः।
अन्नमण्डो धन्वरसाः शर्करारागखाण्डवौ ॥ २७ ॥
भृष्टैर्मुद्गैर्मसूरैर्वा चणकैर्वा कृतो रसः।
रम्भापुष्पं तैलकूर्च्चं द्राक्षापर्पटपल्लवाः॥२८॥
कपित्थाः कोलमम्लीका कूष्माण्डकमुपोदिका।
खर्जूरं दाडिमं धात्री कर्कटी नलदम्बु च ॥२९॥
जम्बीरं करमर्दश्च बीजपूरं गवां पयः।
मधूकपुष्पं ह्रीबेरं तिक्तानि मधुराणि च ॥ ३० ॥
बालतालाम्बु शीताम्बु पयःपेटीप्रपाणकम्।
माक्षिकं सरसीतोयं शताह्वानागकेशरम् ॥३१॥
एला जातीफलं पथ्या कुस्तुम्बुरु च टङ्कणम्।
घनसारो गन्धसारः कौमुदी शिशिरानिलः ॥३२॥
चन्दनार्द्रप्रियाश्लेषो रत्नाभरणधारणम्।
हिमानुलेपनं च स्यात्पथ्यमेतत्तृषातुरे ॥ ३३ ॥

संशोधन और संशमन औषधियाँ, निद्रा, स्नान, कवलधारण करना, दीपकके द्वारा जलाई हुई हल्दीसे जीभके नीचेकी दो शिराओंमें दागदेना, कोदों और शालिधानोंके चावल, पेया, विलेपी (चतुर्गुण जलासिद्ध अन्न) खीलोंके सत्तू, भातका माँड मरुदेशोत्पन्न पशु पक्षियोंके मांसका यूष, मिश्री, रागखाण्डव. भुनीहुई मूँग, मसूर और चनोंका यूष, नवीन केलेका मोचा या केलेका फूल, तैलकूर्च्च, दाख,पित्तपापडेके पत्ते, कैथ, बेर, इमली, पेठा, पोईका शाक, खजूर, अनार, आमले, ककडी, नीम, जम्बीरीनींबू, करौंदा, बिजौरानींबू, गौका दूध, महुएक फूल, सुगन्धवाला, तीखे और मीठे पदार्थ, कच्चे ताडके फलोंका जल, शीतल जल, कच्चे नारियलका जल, मीठे शर्बत, पन्ना, शहद, नदीका जल, शतावर, नागकेशर, इलायची, जायफल, हरड, धनियाँ, सुहागा, कपूर, चन्दन, चाँदनी. शीतल वायु, चन्दनादिका लेप की हुई स्त्रीका आलिङ्गन, रत्नजटित आभूषणोंका धारण करना और शीतल पदार्थोंका प्रलेप ये सब तृषारोगमें हितकारी हैं ॥ २६-३३ ॥

तृष्णारोगमें अपथ्य।

स्वेदाञ्जनस्वेदनधूमपानव्यायामनस्यातपदन्तकाष्ठम्।

गुर्वन्नमम्लं लवणं कषायं कटुं स्त्रियं दुष्टजलानि तीक्ष्णम् ॥
एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृष्णातुरो नैव भजेत्कदाचित् ॥

तैल घृतादि स्निग्धपदार्थ, अञ्जन, स्वेदक्रिया, धूमपान, व्यायाम, नस्य, धूपका सेवन, दाँतौन, गुरुपाकी अन्न, खट्टे, नमकीन, कषैले और चरपरे पदार्थ, स्त्रीप्रसंग, दूषित जल और तीक्ष्ण पदार्थ इन सबको तृषारोगी कदापि सेवन न करे ॥ ३४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तृषारोगचिकित्सा ।

मूर्च्छारोगकी चिकित्सा ।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ।
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥

सर्व प्रकारके मूर्च्छारोगमें शीतल जलका सेचन और शीतल जलमें गोता लगाकर स्नान करना, मणि मुक्तादिके हारोंको पहरना, चन्दन कपूर आदि शीतल द्रव्योंका प्रलेप, ताड आदि पङ्खेकी पवन और कपूर आदिसे सुगन्धित किये हुए शीतल पानीय पदार्थ ये सब मूर्च्छारोगमें हितकारी हैं ॥ १ ॥

रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः ।
मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् ॥
विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

रक्तके देखनेसे उत्पन्न हुई मूर्च्छामें शीतल उपचार करने चाहिये । मद्यपानजन्य मूर्च्छामें वमनकारक औषधियोंके द्वारा वमन कराकर उदरस्थ मद्यको निकालदेवे और रोगीको सुखपूर्वक शयन करादेवे । विषजनित मूर्च्छामें विषनाशक औषधियाँ प्रयोग करानी चाहिये ॥ २ ॥

कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा ।
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३ ॥

बेरकी गिरी, कालीमिरच, खस और नागकेशर इनको शीतल जलमें पीस कर पीनेसे अथवा पीपलके चूर्णको शहद मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा दूर होती है ३

पिबेद् दुरालभाक्काथं सघृतं भ्रमशान्तये।
त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा॥
रसायनानां कौन्तस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते॥ ४॥

धमासेके क्वाथमें घृत मिलाकर पान करनेसे भ्रम शान्त होता है अथवा हरड, बहेडा, आमला इनके समान भाग चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे भ्रम दूर होता है। इस रोगमें उष्ण दुग्ध पीना, दस वर्षके पुराने घृतकी मालिश और रसायन ओषधियोंका सेवन करना हितकारी है॥ ४॥

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः।
सप्ताहात्पथ्याशी मदमूर्च्छाकामलोन्मादान्॥ ५॥

हितकर पदार्थोंको भोजन करनेवाला रोगी प्रतिदिन रात्रिमें त्रिफलेके समान भाग चूर्णको शहदके साथ एवं प्रातःकाल गुड और अदरखको भक्षण करे तो इससे एक सप्ताहमेंही मद, मूर्च्छा, कामला और उन्मादरोग दूर होंय॥ ५॥

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च।
सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे॥ ६॥
लुञ्चनं केशलोम्नां च दन्तैर्दशनमेव च।
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्यावबोधने॥ ७॥

त्रिदोषजनित मूर्च्छारोगमें तीक्ष्ण अञ्जन, लहसुन, अदरख आदिके रस और त्रिकुटेके चूर्णकी नस्य देना, पुराने कागज आदिका धूम ग्रहण करना, प्रधमन, त्रिकुटे आदिकी चूर्ण कागजकी फुंकनीमें रखकर नाकमें फूंकना, नखोंके भीतर सुई चुभोना, शरीरमें लोहेकी गरम शलाका जलाकर दागदेना, शरीरका पीडित करना, बाल और रोमोंको उखाडना, दाँतोंसे काटना और शरीरपर कौंचकी फलीको मर्दन करना आदि उपचारोंसे मूर्च्छित रोगीको चेतनता प्राप्त करानी चाहिये॥ ६॥ ७॥

गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनातिचिरं लिहन्।
चिरादपि च सन्नष्टां निद्रामाप्नोत्यसंशयम्॥ ८॥

पीपलामूलके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे चिरकालकी नष्टहुई निद्रा फिर आजाती है॥ ८॥

इक्षवः पोतकी माषाः सुरा मांसं घृतं पयः।
गोधूमगुडमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम्॥ ९॥

ईखका रस, पोईका शाक, उडद, मदिरा, मांस, घी, दूध, गेहूँ, गुड और मछली ये सब पदार्थ मनुष्यको निद्रा प्राप्त करानेवाले हैं ॥ ९ ॥

शङ्काशनमजाक्षीरं पादलेपात्तदर्थकृत् ॥ १० ॥

भाँगको बकरीके दूधके साथ पीसकर पैरोंपर लेप करनेसे निद्रा आती है ॥१०॥

मूर्च्छान्तकरस।

सिन्दूरं माक्षिकं हेम शिलाजत्वायसी तथा।
शतमूल्या विदार्य्याश्च स्वरसेन विभावयेत् ॥ ११ ॥
श्लक्ष्ण पिष्ट्वा ततः कुर्याद् गुटिका वल्लसम्मिताः।
रसो मूर्च्छान्तको हन्यादसौ मूर्च्छा शिवोदितः ॥ १२ ॥

रससिन्दूर, सुवर्णमाक्षिकभस्म, सुवर्णभस्म, शिलाजीत और लोहभस्म इन सबको सम भाग लेकर एकत्र खरल करके शतावर और विदारीकन्दके स्वरसमें भावना देवे। फिर उसको बारीक पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे। इस मूर्च्छान्तक रसको शिवजीने वर्णन किया है। यह रस मूर्च्छाको शीघ्र नष्ट करता है ११ १२

अश्वगन्धारिष्ट।

तुलार्द्ध चाश्वगन्धाया मुसल्याः पलविंशतिः।
मञ्जिष्ठाया हरीतक्या रजन्योर्मधुकस्य च ॥ १३ ॥
रास्नाविदारीपार्थानां मुस्तकत्रिवृतोरपि।
भागान्दशपलान्दद्यादनन्ताश्यामयोस्तथा ॥ १४ ॥
चन्दनद्वितयस्यापि वचायाश्चित्रकस्य च।
भागानष्टपलान् क्षुण्णानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १५ ॥
द्रोणशेषे कषायेऽस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत्।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ १६ ॥
व्योषस्य द्विपलं चापि त्रिजातकचतुःपलम्।
चतुःपलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥ १७ ॥
मासादूर्द्ध्वं पिबेदेनं पलार्द्धपरिमाणतः।
मूर्च्छामस्मृतिं शोषमुन्मादमपि दारुणम् ॥ १८ ॥
कार्श्यमर्शांसि मन्दत्वमग्नेर्वातभवान् गदान्।
अश्वगन्धाद्यरिष्टोऽयं पीनो हन्यादसंशयम् ॥ १९ ॥

असगन्ध ५० पल, सफेद मुसली २० पल, मंजीठ, हरड, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनकी छाल, नागरमोथा और निसोत ये प्रत्येक ओषधि दस दस पल एवं अनन्तमूल, उसवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, वच और चीता ये प्रत्येक आठ आठ पल लेवे। इसको एकत्र कूटकर आठ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे। फिर शीतल होनेपर उसमें धायके फूल १६ पल, शहद ३०० पल, त्रिकुटा ८ तोले, दारचीनी, इलायची और तेजपात ये प्रत्येक १६ तोले, फूलप्रियंगु १६ तोले और नागकेशर ८ तोले इन सबको बारीक चूर्ण करके डालदेवे। फिर इसको एक मिट्टीके शुद्ध पात्रमें भरकर और उसका उत्तम प्रकारसे मुंह बन्द करके रखदेवे। एक महीनेके बाद उसको निकालकर वस्त्रमें छानकर प्रतिदिन दो दो तोले परिमाण सेवन करे। यह अश्वगन्धादि अरिष्ट पान करते ही मूर्च्छा, अपस्मार, शोष, भयंकर उन्माद, कृशता, अर्श, अग्निकी मन्दता और अनेक प्रकारके रोगोंको निश्चय दूर करता है ॥ १३–१९ ॥

मूर्च्छारोगमें पथ्य।

धूमोऽञ्जनं नावनमस्रमोक्षो दाहश्च सूचीपरितोदनानि। रोम्णां कचानामपि कर्षणानि नखान्तपीडा दशनोपदंशः ॥ २० ॥ नासामुखद्वारमरुन्निरोधो विरेचनच्छर्दनलङ्घनानि। क्रोधो भयं दुःखकरी च शय्या कथा विचित्रा च मनोहराणि ॥ २१ ॥ छाया नभोऽम्भः शतधौतसर्पिर्मृदूनि तिक्तानि च लाजमण्डः।जीर्णा यवालोहितशालयश्च कौम्भं हविर्मुद्गसतीनयूषाः॥२२॥ धन्वोद्भवा मांसरसाश्च रागाः सषाडवा गव्यपयः सिता च। पुराणकूष्मांडपटोलमोचहरीतकीदाडिमनारिकेलम् ॥ २३ ॥ मधूकपुष्पाणि च तण्डुलीय उपोदिकाऽन्नानि लघूनि चापि। प्रकृष्टनीरं सितचन्दनानि कर्पूरनीरं हिमवालुका च ॥ २४ ॥ अत्युच्चशब्दोऽद्भुतदर्शनानि गीतानि वाद्यान्यपि चोत्कटानि। श्रमः स्मृतिश्चिन्तनमात्मबोधो धैर्यं च मूर्च्छावति पथ्यवर्गः ॥ २५ ॥

धूमपान, अञ्जन लगाना, नस्य देना, रक्तमोक्षण, अग्निसे दाग देना, सुई चुभोना, रोम और बालोंको उखाडना, नखोंके भीतर पीडा पहुँचाना, दाँतोंसे

काटना, नाक और मुँहको बन्द करके श्वासको रोकना, विरेचन, वमन और लंघन कराना, क्रोध, भय, कष्टजनक शय्यापर शयन कराना, विचित्र और मनोहर (कथा) कहानी सुनाना, छाया, वर्षाका जल, सौबार धोयाहुआ घी, मृदु और कडवे पदार्थ, खीलोंका माँड, पुराने जौ, लालशालिधानोंके चावल, सौ वर्षका पुराना घी, मूँग और मटरका यूष, जाङ्गलदेशोत्पन्न जीवोंका मांसरस, राग खाण्डवयूष, गौका दूध मिश्री, पुराना पेठा, परवल, केलेका मोचा, हरड, अनार, नारियल, महुयेके फूल, चौलाईका शाक, पोईका शाक, लघु (हल्के) अन्नोंका भोजन, स्वच्छ जल, सफेद चन्दन, कपूर सुवासित जल, कपूर, जोरसे चिल्लाना, अद्भुत वस्तुओंका दर्शन, अत्यन्त तीव्र स्वरसे गाना, उत्कट स्वरवाले बाजे बजाना, परिश्रम, चिन्ता, आत्मज्ञान और धैर्य ये सब मूर्च्छितरोगीको हितकर हैं ॥ २०-२५ ॥

मूर्च्छारोगमें अपथ्य ।

ताम्बूलं पत्रशाकानि दन्तघर्षणमातपम् ।
विरुद्धान्यन्नपानानि व्यवायं स्वेदनं कटुम् ॥
तृड्निद्रयोर्वेगरोधं तक्रं मूर्च्छामयी त्यजेत् ॥ २६ ॥

ताम्बूल (पान), पत्रवाले शाक, दन्तधावन, धूपका सेवन, विरुद्ध अन्नपान, स्त्रीप्रसङ्ग, स्वेदक्रिया, चरपरे द्रव्य, तृषा और निद्राके वेगको रोकना और मट्ठेका सेवन ये सब मूर्च्छारोगीको त्यागदेने चाहिये ॥ २६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूर्च्छारोग-चिकित्सा ।

मदात्ययरोग-चिकित्सा ।

मन्थः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लकदाडिमैः ।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ १ ॥

खीलोंका चूर्ण, खजूर, दाख, विषांविल, इमली, अनार, फालसे और आमले इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर सेवन करनेसे मद्यपानजनित विकार नष्ट होता है ॥ १ ॥

मुद्गं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ।
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ २ ॥

कालानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनको अष्टमांश जलमें पीसकर मूँगके यूषके साथ जीर्णमद्यवाले रोगीको सेवन करनेसे वातजमदात्ययविकार दूर होय ॥२॥

मुद्गयूषः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः ।
पित्तपानात्यये योज्यः सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ ३ ॥

पित्तज मदात्ययरोगमें मिश्री मिलाकर मूँगका यूष और सुस्वादु मांसरस सेवन करना चाहिये और सर्व प्रकारके शीतल उपचार करने चाहिये ॥ ३ ॥

पानात्यये कफोद्भूते लङ्घनं च यथाबलम् ।
दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितः ॥ ४ ॥

कफोत्पन्न पानात्यय रोगमें रोगीके बलानुसार लंघन कराने चाहिये और दीपनीयगणकी औषधियोंके चूर्णके साथ यथोचित मात्रासे मद्यपान कराना ॥ ४ ॥

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ।
आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शमं याति मदात्ययः ॥५॥

त्रिदोषजन्य मदात्ययरोगमें पूर्वोक्त वातादि तीनों दोषोंकी मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये। इन सम्पूर्ण क्रियाओंके द्वारा चिकित्सा करनेसे त्रिदोषज मदात्ययरोग शमन होता है ॥ ५ ॥

सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मद्यं पूगफलोद्भवम् ।
सद्यः प्रशमयेत्पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ ६ ॥

अत्यन्त सुपारी खानेसे उत्पन्न हुई वमन, मूर्च्छा और अतिसार मदात्ययमें तृप्तिपूर्वक शीतल जल पान करनेसे शीघ्र शान्ति होती है ॥ ६ ॥

वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणादपि च ।
शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजी शर्कराकवलात् ॥ ७ ॥

सुखे हुई आरने उपलोंको सूँघनेसे, अत्यन्त जल पीनेसे अथवा नमक खानेसें या शरवत सुपारीके भक्षण करनेसे उत्पन्न हुआ मदात्ययरोग नष्ट होता है। चूना खानेसे मुख या जीभमें छाले होजानेपर खाँडके कवल धारण करना ॥ ७ ॥

सगुडः कूष्माण्डरसः शमयति मदमाशु मदनकोद्रवजम् ।
धुस्तूरजं च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ ८ ॥

मैनफल और कोदों अन्नके खानेसे उत्पन्न हुआ मद पेठेके रसमें गुड मिलाकर खानेसे शीघ्र शमन होता है और खाँड मिलाकर दूधको पीनेसे धतूरेका मद शान्त होता है ॥ ८ ॥

फलत्रिकाद्यचूर्ण ।

फलत्रिकं त्रिवृच्छ्यामा देवदारु महौषधम् ।
अजमोदा यमानी च दार्वी लवणपञ्चकम् ॥ ९ ॥
शतपुष्पा वचा कुष्ठ त्रिसुगन्ध्येलवालुकम् ।
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य पिबेच्छीतेन वारिणा ॥ १० ॥
पानात्ययादिरोगाणां हरणेऽग्नेश्च दीपने ।
संग्रहग्रहणीध्वंसेऽप्येतदेवौषधं क्षमम् ॥ ११ ॥

हरड, बहेडा, आमला, निसोत, श्यामालता, देवदारु, सोंठ, अजमोद, अजवायन, दारुहल्दी, पाँचों नमक, सौंफ, वच, कूठ, दारचीनी, इलायची, तेजपात और एलुआ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके शीतल जलके साथ सेवन करनेसे पानात्ययादि रोग दूर होतेहैं । अग्नि दीपन होतीहै, संग्रहणी आदि व्याधियोंके नष्ट करनेमें यह परमोत्कृष्ट औषध है ॥

एलाद्यमोदक ।

एलां मधुकमग्निं च रजन्यौ द्वे फलत्रिकम् ।
रक्तशालिं कणां द्राक्षां खर्जूरं च तिलं यवम् ॥ १२ ॥
विदारीं गोक्षुरं बीजं त्रिवृतां च शतावरीम् ।
सञ्चूर्ण्य मोदकं कुर्य्यात्सितया द्विप्रमाणया ॥ १३ ॥
धारोष्णेनापि पयसा मुद्गयूषेण वा समम् ।
पिबेदक्षप्रमाणां च प्रातर्नत्वाऽम्बिकां गदी ॥ १४ ॥
मद्यपानसमुत्थाना विकारा निखिला अपि ।
सेवनादस्य नश्यन्ति व्याधयोऽन्ये च दारुणाः ॥ १५ ॥

इलायची, मुलहठी, चीता, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लालशालिधानोंके चावल पीपल, दाख, खजूर, तिल, जौ, विदारीकन्द, गोखुरूके बीज, निसोत और शतावर इन सबको सम भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसमें सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री मिलाकर दो दो तोलेके लड्डू बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल भगवतीको प्रणाम करके इनमेंसे एक एक लड्डूको धारोष्ण दूध या मूँगके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेसे मद्यपानजनित सम्पूर्ण विकार और नानाप्रकारकी दारुण व्याधियां शीघ्र नष्ट होती हैं ॥ १२–१५ ॥

महाकल्याणवटी ।

हेमाभ्रं च रसं गन्धमयो मौक्तिकमेव च ।
धात्रीरसेन सम्मर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं चरेत् ॥ १६ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय तिलक्षोदमधुप्लुताम् ।
सिताक्षौद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह ॥ १७ ॥
अयथापानजा रोगा वातजाः कफपित्तजाः ।
गदाः सर्वे विनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेवणात् ॥ १८ ॥

सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म और मोतीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर आमलोंके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोलीको तिलोंके चूर्ण और शहदमें मिलाकर अथवा शहद मिश्रीके साथ या मक्खनके साथ मिलाकर भक्षण करे । इसके सेवनसे कुविधिद्वारा मद्यपान करनेसे उत्पन्न हुए रोग, वातज, कफज, पित्तज और अन्य सर्वप्रकारके रोग निश्चय नष्ट होते हैं ॥ १६–१८ ॥

पुनर्नवाद्य घृत ।

पयः पुनर्नवक्राथयष्टिकल्कप्रसाधितम् ।
घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसः ॥ १९ ॥

दूध, पुनर्नवेके क्वाथ और मुलहठीके कल्कके साथ विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करके पान करनेसे क्षीणहुए शरीरकी पुष्टि होती है ॥ १९ ॥

मदात्ययरोगमें पथ्य ।

संशोधनं संशमनं स्वपनं लंघनं श्रमः ।
संवत्सरसमुत्पन्नाः शालयः षष्टिका यवाः ॥ २० ॥
मुद्गा माषाश्च गोधूमाः सतीना रागषाडवौ ।
एणतित्तिरिलावाजदक्षबार्हिशशामिषम् ॥ २१ ॥
वेशवारो विचित्रान्नं हृद्यं मद्यं पयः सिता ।
तण्डुलीयं पटोलं च मातुलुङ्गं परूषकम् ॥ २२ ॥
खर्जूरं दाडिमं धात्री नारिकेलं च गोस्तनी ।
सर्पिः पुराणं कर्पूरं प्रनीरं शिशिरानिलः ॥ २३ ॥
धारागृहं चन्द्रपादा मणयो मित्रसङ्गमः ।
क्षौमाम्बरं प्रियाश्लेषो गीतं वादित्रमुद्धतम् ॥
शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये ॥ २४ ॥

वमन और विरेचनादिके द्वारा संशोधन-संशमन ओषधियाँ, शयन, लंघन, परिश्रम, एक वर्षके पुराने शालिधानों और साठी धानोंके चावल, जौ, मूँग, उडद, गेहूँ, मटर, राग और खाण्डव यूष, कृष्णमृग, तीतर, लवा, बकरा, मुर्गा, मोर और खरगोश इनका मांस, वेसवार, हृदयको हितकारी विविध प्रकारके अन्नादिका भोजन, मदिरा, दूध, मिश्री, चौलाईका शाक, परवल, बिजौरानींबू, फालसे, खजूर, अनार, आमले, नारियल, दाख, पुराना, घी, कपूर, स्वच्छ जल, शीतल वायु, फुहारेवाले घर, चन्द्रमाकी चाँदनी, मणि रत्न आदिका धारण, इष्टमित्रोंकी संगति, रेशमी वस्त्र, सुन्दरी स्त्रीका आलिङ्गन, अतितीव्र गायन और तीव्र बाजोंका सुनना, शीतल जल, चंदनका लेप और स्नान ये सब मदात्ययरोगमें हितकारी हैं ॥ २०–२४ ॥

मदात्ययरोगमें अपथ्य ।

स्वेदोऽञ्जनं धूमपानं नावनं दन्तघर्षणम् ।
ताम्बूलं चेत्यपथ्यं स्यान्मदात्ययविकारिणाम् ॥ २५ ॥

स्वेद, अञ्जन, धूमपान, नस्य, दन्तधावन और ताम्बूलभक्षण ये सब मदात्ययरोगियोंको अहितकर हैं ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मदात्ययरोगचिकित्सा ।

दाहकी चिकित्सा ।

यत्पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत्सर्वमिष्यते ॥ १ ॥

पैत्तिकज्वरमें दाहनाशक जो औषधियाँ कहीगयी हैं; उन सबको दाहरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः ।
सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ २ ॥

दाहरोगमें चन्दनको जलमें घिसकर उस जलमें ताडके पंखेको भिगोकर उसके द्वारा हवा करे, कमल वा केलेके कोमल पत्तोंपर रोगीको शयन करावे ॥ २ ॥

परिषेकावगाहेषु व्यञ्जनानां च सेवने ।
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ३ ॥

तृषा और दाहको शान्त करनेके लिये शरीरपर शीतल जलका सेचन, जलमें गोता लगाकर स्नान करना, पंखेकी हवा और शीतल जल सेवन करे ॥ ३ ॥

फलिनीलोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम् ।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ४ ॥

फूलप्रियंगु लोध, खस, सुगन्धवाला, नागकेशर, तेजपात और नागरमोथा इन सबको समान भाग लेकर कलम्बक (कालाचन्दन) के रसमें पीसकर दाहरोगमें लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥

ह्रीबेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा ।
सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ५ ॥

सुगन्धवाला,पद्माख, खस और लालचन्दन इनके समान भाग चूर्णको शीतल जलम मिलाकर उस जलको एक बाल्टीमें भरकर दाहरोगी उसमें शिरडुबाकर स्नानकरे॥५॥

चन्दनादि क्वाथ ।

पटीरपर्पटोशीरमीरनीरदनीरजैः ।
मृणालमिसिधान्याकपद्मकामलकैः कृतः ॥ ६ ॥
अर्द्धशिष्टः शृतः शीतः पीतः क्षौद्रसमन्वितः ।
क्वाथो व्यपहरेद्दाहं नृणां च परमोल्बणम् ॥ ७ ॥

लालचन्दन, पित्तपापडा, खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कमल, कमलकी नाल, सौंफ, धनियाँ, पद्माख और आमले इनका अर्द्धावशिष्ट शीतल क्वाथ तैयार करके शहद मिलाकर पीनेसेही मनुष्योंका अतिप्रबल दाह दूर होय ॥ ६ ॥ ७ ॥

पर्पटादिक्वाथ ।

पर्पटः सघनोशीरः क्वथितः शर्करान्वितः ।
शीतपानं निहन्त्याशु दाहं पित्तज्वरं नृणाम् ॥ ८ ॥

पित्तपापडा, नागरमोथा और खस इनके क्वाथको शीतल करके मिश्री मिलाकर पान करनेसे दाह और पित्तज्वर शीघ्र शान्त होता है ॥ ८ ॥

दाहान्तकरस ।

सूतात्पञ्चार्कतश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुशोभनम् ।
जम्बीरस्वरसैर्मर्द्यं सूततुल्यं च गन्धकम् ॥ ९ ॥
नागवल्लीदलैः पिष्ट्वा ताम्रपत्रीं प्रलेपयेत ।
प्रपुटेद्भूधरे यन्त्रे यावद्भस्मत्वमाप्नुयात ॥ १० ॥
द्विगुणमार्द्रकद्रावैरूयूषणेन च योजयेत् ।
निहन्ति दाहसन्तापं मूर्च्छां पित्तसमुद्भवाम ॥ ११ ॥

शुद्ध पारा ९ तोले, ताम्रपत्र १ तोला और शुद्ध गन्धक ९ तोले लेवे। प्रथम पारे और गन्धकको जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके गोलासा बनालेवे, फिर उसको पानोंके रसमें खरल करके ताम्रके पत्रोंपर लेप करके भूधरयन्त्रमें रखकर पुटपाक करे। जब उसकी उत्तम प्रकारसे भस्म होजाय तब निकालकर खरल कर लेवे। इसमेंसे प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रस अथवा त्रिकुटेके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करे। यह रस दाह, सन्ताप और पित्तजन्य मूर्च्छा को दूर करता है॥ ९-११॥

सुधाकररस।

सिन्दुराभ्रकहेमानि मौक्तिकंत्रिफलाम्भसा।
शतपुत्रीरसेनापि मर्दयेत्सप्त सप्तधा॥ १२॥
ततो रक्तिमितां कुर्याद्वटीं छायाप्रशोषिताम्।
एकैकां योजयेत्तां तु यथादोषानुपानतः॥ १३॥
रसः सुधाकरस्सोऽयं हन्ति दाहं महाबलम्।
प्रमेहानपि वातास्रं बलशुक्रकरः परः॥ १४॥

रससिन्दूर, अभ्रक, सुवर्ण और मोती इनको समान भाग लेकर एकत्र त्रिफलेके क्वाथ और शतावरके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देवे। फिर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इसकी प्रतिदिन एक एक गोली यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे। यह सुधाकरनामक रस अत्यन्त प्रबल दाह, सर्वप्रकारके प्रमेह और वातरक्तको नष्ट करता है और बल वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि करता है॥ १२-१४॥

कुशाद्यतैल और घृत।

कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम्।
तैलं घृतं वा दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम्॥१५॥

कुशा, काँस, रामशर, डाभ और काली ईखकी जड इनके क्वाथ और शालपर्णीके क्वाथ एवं जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली और क्षीरकाकोली) की औषधियोंके कल्कके साथ तिलके तैल या घृत को यथाविधि सिद्ध करे। यह तैल वा घृत दाह और वातपित्तके विकारोंको नष्ट करनेवाला है॥ १५॥

दाहरोगमें पथ्य।

शालयः षष्टिका मुद्गा मसूराश्चणका यवाः।
धन्वमांसरसा लाजमण्डस्तत्सक्तवः सिता॥१६॥

शतधौतघृतं दुग्धं नवनीतं पयोभवम्।
कूष्माण्डं कर्कटी मोचं पनस स्वादुदाडिमम् ॥१७॥
पटोलं पर्पटं द्राक्षा धात्रीफलपरूषकम्।
बिम्बी तुम्बी पयःपेटी खर्जूरं धान्यकं मिषिः॥ १८ ॥
बालतालं पियालं च शृङ्गाटककशेरुकम्।
मधूकपुष्पं ह्रीबेरं पथ्या तिक्तानि सर्वशः ॥ १९ ॥
शीताः प्रलेपा भूवेश्म सेकोऽभ्यङ्गोऽवगाहनम्।
पद्मोत्पलदलक्षौमशय्याशीतलकाननम् ॥ २० ॥
कथा विचित्रा गीतानि शिशिरो मञ्जुभाषिणः।
उशीरचन्दनालेपःशीताम्बु शिशिरानिलः॥ २१ ॥
धारागृहं प्रियास्पर्शः प्रनीरं हिमवालुका।
सुधांशुरश्मयः स्नानं मणयो मधुरो रसः ॥ २२ ॥
पुरा यानि विधेयानि पित्तहारीणि तानि च।
इति दाहवतां नृणां पथ्यवर्ग उदाहृतः ॥ २३ ॥

शालि और सांठीके चावल, मूँग, मसूर, चना, जा ये सब अन्न, जङ्गलके पशुपाक्षियोंका मांसरस, खीलोंका मांड, खालाक सत्तू, मिश्री, सौ बार धोयाहुआ घी, दूध, दूधसे निकाला हुआ मक्खन, पेठा, ककडी, केलेका मोचा, कटहल, मीठा अनार, परवल, पित्तपापडा, दाख, आमले, फालसे, कन्दुरी, लौकी, नारियल, खजूर धनियाँ, सौंफ, कच्चा ताडका फल, चिरौंजी, सिंघाडे, कसेरू, महुएके फूल, सुगन्धवाला, हरड, सब प्रकारके कड़वे पदार्थ, शीतल प्रलेप, भूमिगर्भस्थ गृह (तहखाना) में निवास, देहपर शितल जलका छिडकना, सुगन्धित तेलोंकी मालिश, जलमें गोता लगाकर स्नान करना, कमल, कुमुद (बब्बूलों) से आच्छादित और जिसपर रेशमी वस्त्र बिछा हो ऐसी शय्यापर शयन, शीतल बगीचे उपवनोंमें भ्रमण, मधुरभाषी मनुष्योंसे मनोहर कथा एवं विचित्र गायनको सुनना, शीतल पदार्थ, खस और चन्दनका प्रलेप, शीतल जल, शीतल वायु, फुहारे युक्त गृह, प्रिय स्त्रीका आलिङ्गन, शीतल और सुगन्धित जल, कपूर, निर्मल चाँदनी, स्नान, रत्नोंका धारण करना, मधुर रसवाले पदार्थ और पित्ताधिकारमें जो पित्तनाशक पदार्थ कहेगये हैं वे सब दाहरोगियोंके लिये हितकारी हैं ॥ १६–२३ ॥

दाहरोगमें अपथ्य।

विरुद्धान्यन्नपानानि क्रोधं वेगविधारणम्।
गजाश्वयानमध्वानं क्षारं पित्तकराणि च ॥ २४ ॥
व्यायाममातपं तक्रं ताम्बूलं मधु रामठम्।
व्यवायं कटुतीक्ष्णोष्णं दाहवान् परिवर्जयेत ॥ २५ ॥

विरुद्ध अन्न पान, क्रोध, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, हाथी और घोडेकी सवारी करना, मार्ग चलना, खारी और पित्तकारक द्रव्योंका सेवन, व्यायाम, धूपका सेवन, मट्ठा, ताम्बूल (पान), शहद, हींग, स्त्रीप्रसङ्ग, चरपरे, तीखे और गरम पदार्थ इन सबको दाहरोगी त्यागदेवे ॥ २४-२५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां दाहरोग-चिकित्सा।

उन्मादरोगकी चिकित्सा।

उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम्।
पित्तजे कफजे वान्तिः पयोवस्त्यादिकः क्रमः ॥ १ ॥

वातज उन्मादरोगमें पहले तैल और घृतादि स्नेहपदार्थोंका पान, पित्तके उन्मादमें विरेचन और कफजनित उन्मादमें प्रथम वमन फिर दूधकी पिचकारी लगानी चाहिये ॥ १ ॥

यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते।
उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः ॥ २ ॥

उन्माद आर अपस्मार इन दोनों रोगोंके दोष और दूष्यकी समानता होनेके कारण, अपस्माररोगविधिके अनुसार उन्मादरोगकी चिकित्सा की जासकती है॥२॥

ब्राह्मी कूष्माण्डफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः।
दृष्टा उन्मादहृतः पृथगेते कुष्ठमधुमिलिताः ॥ ३ ॥

ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखपुष्पी इन सबका स्वरस इनमें किसी एक स्वरसको लेकर कूठके चूर्ण और शहदमें मिलाकर पृथक् पृथक् सेवन करनेसे उन्मादरोग नष्ट होता है ३ ॥

सम्भोज्य पिकमांसं वा निर्वाते स्वापयेत्सुखम्।
त्यक्त्वा स्मृतिमतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते॥
अपक्वचटकक्षीरपानमुन्मादनाशनम्॥ ४॥

उन्मादरोगीको कोयलका कच्चा मांस भक्षण कराकर वायुरहित स्थानमें सुखपूर्वक शयन करादेवे। कारण–सुखनिद्रा आजानेसे स्मृतिभ्रंश और बुद्धिभ्रंश दूर होकर चैतन्यलाभ होता है। चिडियाके कच्चे मांसको दूधके साथ सेवन करनेसे उन्माद नष्ट होता है॥ ४॥

कूष्माण्डकबीजकल्कः पीतो विनाशयत्यपि।
उन्मादरोगमत्युग्रं मधुना दिवसत्रयम्॥ ५॥

पुराने पेठेके बीजोंके कल्कको शहदमें मिलाकर ३ दिनतक सेवन करनेसे अतिदारुण उन्मादरोग नष्ट होता है॥ ५॥

उन्मादे समधुः पेयः शुद्धो वा तालशाखजः।
रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलमिष्यते॥
बद्धं सार्षपतैलाक्तमुत्तानं चातपे न्यसेत॥ ६॥

उन्मादरोगमें ताडकी शाखाके शुद्ध रसको शहदमें मिलाकर या केवल अकेले रसको ही पान करना एवं सरसोंके तेलकी नस्य दे और शरीरपर मालिश करनी। उन्मादरोगीके सब शरीरमें सरसोंका तैल मलकर उसके हाथ पाँवोंको बाँधकर कुछ देरके लिये धूपमें चित्त करके लिटादेवे। फिर ज्ञानावस्था होतेही बन्धन खोलकर उसको छायामें आरामसे रक्खे और शीतल उपचार करे। ऐसा करनेसे शरीरके स्रोत शुद्ध होकर उन्माद शमन होता है॥ ६॥

पुराणमथवा सर्पिः पिबेत्प्रातरतन्द्रितः॥ ७॥

प्रतिदिन प्रातःकाल नियमसे १० वर्षके पुराने घृतको पान करे॥ ७॥

शुद्धस्याचारविभ्रंशे तीक्ष्णं नावनमञ्जनम्।
ताडनं च मनोबुद्धिस्मृतिसंवेदनं हितम्॥ ८॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम्।
विस्मयं विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः॥ ९॥

शुद्धाचारी मनुष्य किसी कारणसे आचारभ्रष्ट होकर जब उन्मत्त होजाता है तब उस अवस्थामें उसको प्रथम वमन कराकर पश्चात् तीक्ष्ण नस्य और अञ्जन प्रयोग करना चाहिये। तथा मारना, डाटना, भय दिखाना, उत्तम

और प्रिय पदार्थोंका देना, सान्त्वना (ढाढस) देना हर्षजनक भय और आश्चर्य-कार्य करना इस प्रकार करनेसे मन, बुद्धि और स्मृति प्रकृतिस्थ होकर उन्मादरोग दूर होय ॥ ८ ॥ ९ ॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १० ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ इन सम्पूर्ण कारणोंसे उत्पन्न-हुए उन्मादरोगको उक्त प्रत्येक कारणके विपरीत चिकित्साके द्वारा शमन करे अर्थात् कामज उन्मादमें रोगीको प्रिय स्त्रीप्रदान, शोकज उन्मादमें शोकनाशक क्रिया, भयज उन्मादमें भयनाशक और क्रोधज उन्मादमें क्रोधनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १० ॥

इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या सान्त्वाश्वासैश्च तं जयेत् ॥ ११ ॥

इष्ट वस्तुके नाश होनेसे जिसका मन विकृत होगया हो उसको उसीकी समान वस्तु प्रदान करे, सान्त्वना और आश्वासजनक वचनोंके द्वारा विकारको शान्त करे ॥ ११ ॥

सर्पिःपानादिनाऽऽगन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः ।
पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभिः ॥
जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ १२ ॥

आगन्तुक अर्थात् भूतादिजन्य उन्मादरोगको चैतसघृतादिके पान एवं मन्त्रोच्चा-रण, पूजा, बलिदान, भेंट, याग, होम मन्त्र और अञ्जनादि क्रियाओंके द्वारा यथा-विधि चिकित्सा करके शमन करे ॥ १२ ॥

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरमेव च ॥ १३ ॥

देव, ऋषि, पितर और गन्धर्व इनकी बाधासे उत्पन्नहुए उन्मादरोगीके बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण अञ्जन-ओषधियोंका प्रयोग एवं ताडनादि न करे ॥ १३ ॥

अञ्जन ।

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोपित्तनिर्मितम् ।
अञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशम् ॥ १४ ॥

पीपल, कालीमिरच, सैंधानमक, मधु और गोरोचन इन सबको समान भाग

लेकर एकत्र खरल करके आँखोंमें आँजनेसे सर्व प्रकारका भूतोन्मादरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

निम्बधूप ।

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्षपैः ।
डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ १५ ॥

नीमके पत्ते, वच, हींग, साँपकी कैंचली और सरसों इन सबको समान भाग लेकर धूप देनेसे डाकिनी आदि भाग जाती हैं और भूतोन्माद शमन होता है ॥१५॥

महाधूप ।

कार्पासास्थिमयूरपुच्छबृहतीनिर्म्माल्यपिण्डीतके-
स्त्वग्वांशीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्म्मोककैः ।
गोशृङ्गद्विपदन्तहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥ १६ ॥

कपासके बीज (बिनौले), मोरकी पूँछ, बड़ी कटेरी, शिवका निर्माल्य, मैनफल, दारचीनी, वंशलोचन, बिलावकी सूखी विष्ठा, धानोंकी भूसी, वच, मनुष्यके बाल, साँपकी कैंचली, गौका सींग, हाथीदाँत, हींग और काली मिरच इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके उन्मादरोगीको धूप देनेसे स्कन्द उन्माद, पिशाच, राक्षसबाधा, देवताका आवेश आदि कारणोंसे उत्पन्न हुआ भूतोन्माद और भूतज्वर भी नष्ट होता है ॥ १६ ॥

सारस्वत चूर्ण ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा ।
मांगल्यपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानां च वचां विचूर्ण्य॥
ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् ।
अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन लिह्यान्नरः सप्तदिनानि चूर्णम् १८॥

कूठ, असगन्ध, सैंधानमक, अजमोद, कालाजीरा, सफेद जीरा, त्रिकुटा, पाढ और शंखपुष्पी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे, फिर उसमें सब चूर्णके बराबर वचका चूर्ण मिलाकर एकत्र करके ब्राह्मीके रसमें तीनबार भावना देकर धूपमें सुखालेवे। फिर उसको बारीक पीसकर रखलेवे। इस चूर्णको एक एक तोलेकी मात्रासे घृत और शहदके साथ मिलाकर सात दिनपर्यन्त सेवन करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

सारस्वतमिदं चूर्ण ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधसां विचेतसाम् ॥ १९ ॥
एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः ।
सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्द्धेतोत्तरोत्तरम् ॥ २० ॥

इस सारस्वतचूर्णको पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंके दुर्बुद्धि और विकृतचित्तवाले मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्माजीने निर्माण किया था । इसको सेवन करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, मेधा, धैर्य, स्मरणशक्ति, सम्पत्ति और कवित्वशक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ १९ ॥ २० ॥

उन्मादपर्पटीरस ।

कृष्णधुस्तूरजैर्बीजैः पञ्चभिः पर्पटीरसः ।
संप्रयोज्यः प्रशान्त्यर्थमुन्मादं भूतसम्भवम् ॥ २१ ॥

काले धतूरेके ५ बीजोंको लेकर पित्तपापडेके रसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके भूतोन्मादको शमन करनेके लिये सेवन करे ॥ २१ ॥

उन्मादभञ्जिनी ।

शुद्धं मनःशिलाचूर्णं सैन्धवं कटुरोहिणी ।
वचा शिरीषबीजं च हिङ्गु च श्वेतसर्षपम् ॥ २२ ॥
रञ्जबीजं त्रिकटु मलं पारावतस्य च ।
एतानि समभागानि गोमूत्रैर्वटिकां कुरु ॥ २३ ॥
गिरिमल्लीबीजसमां छायाशुष्कां च कारयेत् ।
प्रातः सन्ध्यानिशाकाले चक्षुषोरञ्जनं हितम् ॥ २४ ॥
मधुरादिरसे चांज्यं रात्रावपि जलेन च ।
वटिकेषा समाख्याता नाम्ना चोन्मादभञ्जिनी ॥
चातुर्थकमपस्मारमुन्मादस्य विनाशिनी ॥ २५ ॥

शुद्ध मैनसिल, सैंधानमक, कुटकी, वच, सिरसके बीज, हींग, सफेद सरसो, करञ्जके बीज, त्रिकुटा और कबूतरकी बीट इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रके साथ खरल करके इन्द्रजोकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इससे एक एक वटीको प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकालमें शहदके साथ और रात्रिमें जलके साथ घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे उन्मादरोगीको विशेष उपकार होताहै । इस

वटीको उन्मादभञ्जिनी कहते हैं। यह बटी चातुर्थकज्वर, अपस्मार और उन्माद-रोगको नष्ट करतीहै ॥ २२-२५ ॥

उन्मादगजकेसरी।

सूतं गन्धं शिला तुल्यं स्वर्णबीजं विचूर्ण्य च।
भावयेदुग्रगन्धायाः क्वाथे मुनिदिनैः पृथक् ॥ २६ ॥
रास्नाक्वाथेन सप्तैव भावयित्वा विचूर्णयेत्।
रसः सञ्जायते नूनमुन्मादगजकेसरी ॥ २७ ॥
अस्य माषःससर्पिष्को लीढो हन्ति हठाद्ध्रुवम्।
उन्मादाख्यमपस्मारं भूतोन्मादमपि ज्वरम् ॥ २८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मैनसिल और शुद्ध धतूरेके बीज इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके वच और रायसनके क्वाथमें पृथक् पृथक् सात दिनतक सात सात बार भावना देकर खरल करलेवे। इस प्रकार यह उन्मादगजकेशरीरस सिद्ध होताहै। इसको प्रतिदिन एक एक माशे परिमांणं लेकर घृतके साथ सेवन करनेसे यह रस उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वरको शीघ्र नष्ट करताहै ॥२६-२८॥

उन्मादगजांकुश।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीरसैः पुनः।
विषमुष्टिद्रवैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ २९ ॥
कृत्वा तप्तां सगन्धां तां युक्त्या बन्धनमाचरेत्।
तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गन्धकं विषम् ॥ ३० ॥
मर्दनात्त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत्।
दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः ॥ ३१ ॥

पारेको एक तोला लेकर धतूरेके पत्तोंके रस, जलपीपलके रस और कुचलेके रसमें क्रमसे तीन तीन दिनतक भावना देवे, फिर उसके साथ एक तोला शुद्ध गन्धक मिलाकर ताम्र चक्रिकाको यत्नपूर्वक स्थापन करके पुटपाक करे। फिर उसमें धतूरेके बीज, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मीठा तेलिया ये प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर तीन दिनतक खरल करे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण सेवन करनसे वात पित्तादि दोषजन्य उन्माद और विशेषकर भूतोन्मादरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९-३१ ॥

उन्मादभञ्जनरस ।

त्रिकटु त्रिफला चैव गजपिप्पलिका तथा ।
देवदारु विडङ्गं च किरातं कुटकी तथा ॥ ३२ ॥
कण्टकारी च यष्टीन्द्रयवं चित्रकमेव च ।
बला च पिप्पलीमूलं मूलं च वीरजस्य च ॥ ३३ ॥
शोभाञ्जनस्य बीजानि त्रिवृता चेन्द्रवारुणी ।
वङ्गं रूप्यकमभ्रं च प्रवालं समभागिकम् ॥ ३४ ॥
सर्वचूर्णसमं लोहं सलिलेन विमर्दयेत् ।
उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा ॥ ३५ ॥
अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
नाशयेदविकल्पेन रसश्चोन्मादभञ्जनः ॥ ३६ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, देवदारु, वायविडङ्ग, चिरायता, कुटकी, कटेरी, मुलहठी, इन्द्रजौ, चीता, खिरैंटी, पीपलामूल, खसकी जड, सहिंजनेके बीज, निसोत, इन्द्रायण, वङ्गभस्म, चाँदीकी भस्म और अभ्रकभस्म, मूँगाकी भस्म, सब समान भाग और सबके चूर्णकी बराबर लोहभस्म लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करलेवे । इसको दो दो रत्ती प्रमाण सेवन करे । यह उन्मादभञ्जन रस भूतोन्माद, वातज उन्माद, अपस्मार, कृशता और दारुण रक्तपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३२–३६ ॥

भूतांकुशरस ।

सूतायस्तारताम्रं च मुक्ता चापि समं समम् ।
सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला ॥ ३७ ॥
तुत्थं शिलाञ्जनं शुद्धमब्धिफेनं रसाञ्जनम् ।
पञ्चानां लवणानां च प्रतिभागं रसोन्मितम् ॥ ३८ ॥
भृङ्गराजचित्रवज्रीदुग्धेनापि विमर्दयेत् ।
दिनान्ते पिण्डिकां कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारा, लोहभस्म, चाँदीकी भस्म, ताँबेकी भस्म और मोतीकी भस्म प्रत्येक एक एक तोला, हीरेकी भस्म ३ मासे एवं हरतालकी भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध तूतिया, सफेद सुर्मा, समुद्रफेन, रसौत और पाँचों नमक ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर भाङ्गरे, चीतक रस और थूहरके

दूधमें क्रमसे पृथक्‌ पृथक्‌ एक दिनतक खरल करके सन्ध्याके समय गोला बनाकर गजपुटमें बन्द करके पकावे ॥ ३७–३९ ॥

भूतांकुशो रसो नाम नित्यं गुञ्जद्वयं लिहेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादनिवारणः ॥ ४० ॥
पिप्पल्याऽक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम् ।
स्वेदयेत्कटुतुम्ब्या च तीक्ष्णं रूक्षं च वर्जयेत् ॥ ४१ ॥
माहिषं च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भोजयेत् ।
अभ्यङ्गः कटुतैलेन हितो भूतांकुशे रसे ॥ ४२ ॥

यह भूतांकुशनामक रस प्रतिदिन दो दो रत्तीकी मात्रासे अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे भूतोन्मादरोग निवारण होता है । इसको सेवन करनेके पश्चात् पीपलका चूर्ण मिलाकर दशमूलका क्वाथ पान करे और कडवी तूंबीके द्वारा स्वेद देवे । इसपर तीखे और रूखे पदार्थ त्याग देने चाहिये । भैंसका घी, भैंसका दूध और गुरु (पचनेमें भारी) अन्नोंका भोजन करे । इस भूतांकुशरसपर शरीरमें सरसोंके तैलकी मालिश करना हितकर है ॥ ४०–४२ ॥

चतुर्भुजरस ।

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्मकम् ।
शिला कस्तूरिका तालं प्रत्येकं हेमतुल्यकम् ॥ ४३ ॥
सर्वं शिलातले क्षिप्त्वा कन्यया मर्दयेद्दिनम् ।
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ ४४ ॥
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ।
एतद्रसायनश्रेष्ठं–

पारेकी भस्म २ भाग, एवं सुवर्णकी भस्म, शुद्ध मैनासिल, कस्तुरी और हरतालकी भस्म ये प्रत्येक एक एक भाग लेवे । सबको खरलमें डालकर घीगुवारके रसके साथ एक दिनतक घोटे, फिर उसको अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंके ढेरमें तीन दिनतक गाड देवे. फिर चौथे दिन निकालकर उसको सर्व प्रकारके रोगोंमें प्रयोग करे । यह अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥–

–त्रिफलामधुमर्दितम् ॥ ४५ ॥
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ।
आपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ ४६ ॥

हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे विशेषतः ।
वातपित्तसमुत्थांश्च कफजान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥
चतुर्भुजरसो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ ४७ ॥

इसको अपनी अग्निके बलानुसार मात्रासे त्रिफलेके और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वली और पलितरोग नष्ट होता है । यह रस अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, हाथोंका काँपना, शिरका काँपना, शरीरका काँपना इन सब रोगोंमें उपयोगी और विशेषकर वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुये सर्व प्रकारके उपद्रवोंको अवश्य नष्ट करता है । इस चतुर्भुजनामक रसको श्रीमहादेवजीने निर्माण किया है ॥ ४५-४७ ॥

हिंग्वाद्यघृत ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ४८ ॥

हींग, कालानमक, सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक दो दो पल और घृत एक आढक इन सबको चौगुने गोमूत्रमें डालकर, विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इस घृतको पान करनेसे उन्मादरोग शमन होता है ॥ ४८ ॥

लशुनाद्यघृत ।

लशुनस्य विशुद्धस्य तुलार्द्धं निस्तुषीकृतम् ।
तदर्द्धं दशमूलस्यास्तु द्व्याढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ४९ ॥
पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा ।
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकैः रसैः ॥ ५० ॥
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्द्धिकैः ।
साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ ५१ ॥
यमानीचव्यहिंग्वम्लवेतसैश्च पलार्द्धिकैः
सिद्धमेतत्पिबेच्छूलगुल्मार्शोजठरानलम् ॥ ५२ ॥
ब्रध्नपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषकृमिज्वरान् ।
वातश्लेष्मामयांश्चान्यानुन्मादांश्चापकर्षति ॥ ५३ ॥

छिल्केरहित शुद्ध लहसुन ५० पल और दशमूल २५ पल लेकर दोनोंको दो आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ एवं लहसुनका रस, बेरोंका काथ, मूलीका

रस, विषांविल, बिजौरेनींबूका रस, अदरखका रस, अनारका रस, मदिरा, दहीका तोड और अम्लकाँजी ये प्रत्येक पदार्थ आधा आधा प्रस्थ एवं हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, सैंधानमक, त्रिकुटा, अजमोद, अजवायन, चव्य, हींग, और अमलवेत इनके कल्कको दो-दो तोले डालकर यथाविधि घृतको पकावे। इस प्रकार सिद्ध कियेहुए इस घृतको यथोचित मात्रासे सेवन करनेसे शूल, गुल्म, अर्श, मन्दाग्नि, ब्रध्न, पाण्डु, प्लीहा, योनिरोग, कृमिरोग, ज्वर, वात-कफजन्य रोग, उन्माद और अन्य सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ४९-५३ ॥

पानीयकल्याणकघृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिरा नतं हरिद्रे द्वे शारिवे द्वे प्रियङ्गुकम् ॥ ५४ ॥
नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेशरम् ।
तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ ५५ ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमन्वितैः ॥
चतुर्गुण जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५६ ॥

इन्द्रायन, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारु हल्दी, उसवा, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मंजीठ, दन्ती, अनार, केशर, तालीसपत्र, बडी कटेरी, मालतीके नवीन फूल, वायविडङ्ग, पृश्निपर्णी, कूठ, चन्दन और पद्माख इन २८ औषधियोंके दो दो तोले कल्कके साथ एक प्रस्थ घृतको चौगुना जल डालकर उत्तम प्रकारसे पकावे ॥ ५४-५६ ॥

अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ ५७ ॥
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च ॥ ५८ ॥
दोषोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम् ।
शतं स्त्रीणां च वन्ध्यानां वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ।
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ६० ॥

यह कल्याणनामक घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तिजारी और चौथिया ज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र और

विसर्परोगमें एवं उन्माद, गद्गदरोग, नपुंसक और सैकडों वन्ध्या स्त्रियोंके लिये हितकर एवं बल, वर्ण और आयुकी वृद्धि करता है। दारिद्र्य, पाप, राक्षसबाधा और सर्व प्रकारकी ग्रहबाधाको निवारण करता है और पुंसवन कर्ममें अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ५७–६० ॥

क्षीरकल्याणकघृत।

द्विजलं सचतुःक्षीरं क्षीरकल्याणकं त्विदम् ॥ ६१ ॥

इस क्षीरकल्याण घृतको दूने जल और चौगुने दूधके साथ पानीयकल्याणक घृतकी ओषधियोंका कल्क डालकर सिद्ध करे। यह घृतभी पूर्वोक्त घृतकी समान उपयोगी है ॥ ६१ ॥

महाकल्याणकघृत।

एभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम्।
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६२ ॥
वीरार्द्धिमाषकाकोली स्वयंगुप्तर्षभार्द्धिभिः।
मेदया च रसैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत् ॥
बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ६३ ॥

शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, उसवा, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मँजीठ, दन्तीकी जड, अनारके बीज, नागकेशर, तालीसपत्र, बडी कटेरी, मालतीके फूल, वायबिडंग, पृश्निपर्णी, कूठ, लालचन्दन और पद्माख इनको समान भाग लेकर चौगुने जलमें पकाकर चतुर्भागावशिष्ट क्वाथ बनालेवे। फिर उस क्वाथ में एकभाग गौका घी और एकबारकी व्याई हुई गौका चौगुना दूध एवं बडी शतावर, मुगवन, मषवन, काकोली, कौंच, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इनका कल्क डालकर घृतको पकावे। इस प्रकार यह महाकल्याणकघृत सिद्ध होता है। यह अत्यन्त बृंहणीय और विशेषकर सन्निपातजन्य रोगको हरता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

स्वल्पचैतसघृत।

पञ्चमूल्यावकाश्मर्यौ रास्नैरण्डत्रिवृद्बला।
मूर्वा शतावरी चेति क्राथैर्द्विपलिकोन्मितैः ॥ ६४ ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद् घृतं चैतसं स्मृतम्।
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ ६५ ॥

"घृतप्रस्थोऽत्र पक्तव्यः क्वाथो द्रोणाम्भसा घृतात् ।
चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कल्कः कल्याणकेरितः" ॥६६॥

कुम्भेरको छोडकर दोनों पञ्चमूलकी अन्य सब ओषधियाँ, रायसन, अण्डकी जड, निसोत, खिरैंटी, मूर्वा और शतावर इन प्रत्येकको आठ आठ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, चौथाई जल शेष रहजानेपर उतारकर छान लेवे। फिर उस क्वाथमें पानीयकल्याणघृतकी सब ओषधियोंका कल्क और घृतको डालकर पकावे। इसको कल्याणकघृतका अङ्ग होनेसे चैतसघृत कहते हैं। यह घृत सर्वप्रकारके मन के विकारोंको शमन करता है। इसको छः छः माशेकी मात्रासे उष्ण दुग्धके साथ सेवन करना चाहिये। "इसमें घी एक प्रस्थ लेना चाहिये, एक द्रोण जल में क्वाथ करे और घीसे चौगुना कल्याण घृतकी ओषधियोंका कल्क डालना चाहिये" ॥ ६४-६६ ॥

महापैशाचिकघृत ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ।
त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ॥ ६७ ॥
कायस्था शूकरीच्छत्रा सातिच्छत्रा पलंकषा ।
महापुरुषदन्ता च वयःस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ६८ ॥
कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव शृतं घृतम् ।
चातुर्थिकज्वरोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ६९ ॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम् ।
मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्द्धनम् ॥ ७० ॥

बालछड, हरड, भूतकेशी, भुईआमला, कौंचके बीज, वच, त्रायमाण, अरणी, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, आमले, वाराहीकन्द, सौंफ, छोटा गोखरू, बडी शतावर, ब्राह्मी, रास्ना, गन्धरास्ना, गन्धप्रसारणी, बिछाटी घास और शालपर्णी इन सबके समान भाग मिश्रित कल्क और चौगुने जलके साथ यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह महापैशाचिकनामक घृत चौथियाज्वर, उन्माद, ग्रहबाधा और अपस्मारको नष्ट करनेके लिये अमृतकी समान है। एवं मेधा, बुद्धि, स्मरणशक्ति और बालकोंके अङ्गोंकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ६७-७० ॥

शिवाघृत ।

शिवायास्तु सुपूतायाः पञ्चाशत्पललात्पलम् ।
पञ्चपञ्च समादाय पञ्चमूलीयुगात्पृथक् ॥ ७१ ॥

कुट्टयित्वा चतुःषष्टिशरावैरम्भसः पचेत् ।
ज्ञात्वा पादावशेषेण तेन क्वाथोदकेन च ॥ ७२ ॥
क्षीरस्याष्टाभिराज्यस्य शरावाणां चतुष्टयम् ।
यष्टीमधुकमञ्जिष्ठाकुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ७३ ॥
विभीतकशिवाधात्रीबृहतीतगरादिकैः ।
विडङ्गदाडिमीदेवदारुदन्तीहरेणुभिः ॥ ७४ ॥
तालीशकेशरश्यामाविशालाशालपर्णिभिः ।
प्रियङ्गुमालतीपुष्पकाकोलीयुगलोत्पलैः ॥ ७५ ॥
हरिद्रायुगलानन्तामेदैलाहरिवालुकैः ।
सपृश्निपर्णीकैरेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ७६ ॥

गीदडका शुद्ध किया हुआ मांस ५० पल लेकर एक कपडेकी पोटलीमें बांधलेवे और दशमूलकी प्रत्येक ओषधि पाँच पाँच पल लेकर एकत्र कूटकर सबको चौसठ शराव परिमाण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काढेमें बकरीका दूध ८ शराव परिमाण बकरीका घी ४ शराव परिमाण एवं मुलहठी, मंजीठ, कूठ, लालचन्दन, पद्माख, बहेडा, हरड, आमले, बडी कटेरी, तगर, वायविडंग, अनारके बीज, देवदारु, दन्ती, रेणुका, तालीसपत्र, नागकेशर, सारिवा, इन्द्रायनकी जड, शालपर्णी, फूलप्रियंगु, मालतीके फूल, काकोली, क्षीरकाकोली, कमल, नीलकमल, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलुआ और पृश्निपर्णी इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले कल्कको डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे ॥७१-७६॥

सिद्धमेतद् घृतं यच्च तन्मे निगदितं शृणु ।
देवासुरग्रहग्रस्ते मानसे राक्षसक्षते ॥ ७७ ॥
गन्धर्वधर्षिते चैव पितृग्रहनिपीडिते ।
भूतैरप्यभिभूते च पिशाचैश्च परिप्लुते ॥ ७८ ॥
भुजङ्गमगृहीते च तथा जाङ्गलभक्षिते ।
यक्षैरपि परिक्षिप्ते भयैरप्यर्दिते भृशम् ॥ ७९ ॥
शस्यते सर्ववाते च सर्वापस्मार एव च ।
शोषे सोरःक्षते कासे पीनसे च मदात्यये ॥ ८० ॥

मेहे मूत्रग्रहे चैव ज्वरे जीर्णे च शस्यते ।
वृष्यं बलकरं हृद्यं वन्ध्यानामपि पुत्रदम् ॥ ८१ ॥
श्रीविन्ध्यवासिपादेन सिद्धिदं समुदीरितम् ।
शिवाघृतमिदं नाम्ना शिवायोन्मादिनां सदा ॥ ८२ ॥

इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह घृत देवता, असुर, ग्रहादिकी बाधासे उत्पन्न हुए उन्माद, राक्षसपीडा, गन्धर्वबाधा, पितर, भूत, पिशाच और नागोंके ग्रसनेसे उत्पन्न हुए उन्माद या जाङ्गली जीवोंका मांस खानेसे उत्पन्न हुए विकार, यक्षबाधा, भयसे अत्यन्त आक्रान्त होनेपर एवं सर्वप्रकारके वातरोग, सर्व प्रकारके अपस्मार, उरःक्षत, खाँसी, पीनस, मदात्यय, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और जीर्णज्वर इन सब रोगोंमें हितकारी है । यह घृत अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, बलकारक, हृदयको हितकारी, वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्रदायक और श्रीविन्ध्येश्वरी देवीकी कृपासे सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है । यह शिवानामक घृत उन्मादरोगियोंके लिये सदा कल्याणकारक है ॥७७-८२॥

शिवातैल ।

प्रस्थं शृगालमांसस्य त्यक्त्वा मुखनखादिकम् ।
दशमूलतुलार्द्धं च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८३ ॥
पादशेषे रसे तस्मिन्क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥ ८४ ॥
पञ्चमूली वचा कुष्ठं शैलेयं शारिवाद्वयम् ।
धुस्तूरवरुणामूलं भण्टाकी बृहतीद्वयम् ॥ ८५ ॥
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बला ।
शतपुष्पा देवदारु रास्ना वारणपिप्पली ॥ ८६ ॥
मुस्ता शठी च लाक्षा च (प्र) सारणी रक्तचन्दनम् ।
एषां च कार्षिकं भागं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८७ ॥

मुख और नखादि रहित गीदडका मांस (पोटलीमें बँधा हुआ) एक प्रस्थ और दशमूल समान भाग मिश्रित ५० पल लेकर सबको एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काढेमें गोदुग्ध चार प्रस्थ, तिलका तैल एक प्रस्थ एवं बेलकी छाल, सोनापाठेकी छाल, कम्भारी, पाढर, अरणी, वच, कूठ, भूरिछरीला, उसबा,

अनन्तमूल, धतूरेके बीज, बरनाकी जड, बैंगन, बडी कटेरी, चीता, पीपलामूल, मुलहठी, सैंधानमक, खिरैंटी, सोया, देवदारु, रायसन, गजपीपल, नागरमोथा, कचूर, लाख, प्रसारणी और लालचन्दन इनके एकएक कर्ष कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः तैलको पकावे ॥ ८३–८७ ॥

वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
उन्मादं सकलं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८८ ॥
सर्ववातविकारघ्नमेकाङ्गं सर्वसंग्रहम् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे हनुस्तम्भार्दितेऽशुभे ॥ ८९ ॥
भूतोन्मादे क्रोधोन्मादे ऊर्द्ध्वजत्रुगदेऽपि च ।
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं शिवया निर्म्मितं शुभम् ॥ ९० ॥

इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह तैल वातज, कफज और सन्निपातज इन सर्वप्रकारके उन्माद सम्पूर्ण वातरोग और एकाङ्ग व सर्वाङ्गकी पीडा इन सबको इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे वज्र वृक्षोंको । इसको अपस्मार, ज्वर, खाँसी, हनुस्तम्भ, क्रोधजन्य उन्माद और उर्ध्वजत्रु रोगोंमें भी प्रयोग करना चाहिये । इस उत्तम तैलको श्रीपार्वतीजीने निर्माण किया है ॥ ८८–९० ॥

तैलं नारायणं वापि महानारायणं तथा ।
हितमत्र प्रयोक्तव्यमिति चक्रेण भाषितम् ॥ ९१ ॥

उन्मादरोगमें नारायणतैल अथवा महानारायणतैलका प्रयोग करना चाहिये यह चक्रदत्तका मत है ॥ ९१ ॥

उन्मादरोगमें पथ्य ।

आश्वासनत्रासनबन्धनानि भयानि दानानि च हर्षणानि ।
धूपो दमो विस्मरणं प्रदेहः शिराव्यधः संशमनं च सेकः ॥९२
आश्चर्यकर्म्माणि च धूमपानं धीधैर्यसत्त्वात्मनिवेदनानि ।
अभ्यञ्जनं स्नापनमासनं च निद्रा सुशीतान्यनुलेपनानि ॥९३
गोधूममुद्गारुणशालयश्च धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः ।
नवीनभूतं च पुरातनं च कूर्मामिषं धन्वरसा रसालम् ॥ ९४ ॥
पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं ब्राह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम् ।
खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् ॥
द्राक्षा कपित्थं पनसं च वैद्यैर्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम् ॥९५॥

आश्वासन देना, डराना, बांधना, भय, दान, हर्ष आदिके काम, धूप, इन्द्रियरोगके भुलानेवाली बातें, सुगन्धित वस्तुओंका प्रलेप, शिरा बेधना, संशमन ओषधियाँ, जलसिञ्चन, आश्चर्यजनक कार्य, धूमपान, बुद्धि, धीरता, सत्त्वगुण ये आत्मज्ञानका वर्णन, तैलकी मालिश, स्नान, स्थिरचित्तसे बैठना, शयन करना, शीतल पदार्थोंका प्रलेप करना, गेहूँ, मूँग, लालशालि धानोंके चावल, धारोष्ण दूध, सौबारका धोया हुआ घी, नैनी घी और पुराना घी, कछुएका मांस, मरुदेशोत्पन्न पशु-पक्षियोंका मांसरस, रसाला, पुराना पेठा, परवल, ब्राह्मीका शाक, बथुएका शाक, चौलाईका शाक, गदहेका मूत्र, घोडेका मूत्र, वर्षाका जल, हरड, सुवर्णभस्म, नारियल, दाख, कैथ कटहल ये सब उन्मादरोगमें पथ्य हैं ॥ ९२-९६ ॥

उन्मादरोगमें अपथ्य ।

मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्राक्षुधातृट्कृतवेगधारणम् ।
व्यवायमाषाढफलं कठिल्लकं शाकानि पत्रप्रभवाणि सर्वशः ॥
तिक्तानि बिम्बीचभिषक्समादिशेदुन्मादरोगोपहतेषुगर्हितम् ॥

मदिरा, विरुद्ध आहार, गरमभोजन, निद्रा, क्षुधा और तृषा इनके वेगको रोकना, स्त्रीप्रसङ्ग, ढाकके बीज, करेला, सर्वप्रकारके पत्रशाक, कडवे पदार्थ और कन्दूरी ये सब पदार्थ उन्मादरोगमें अपथ्य हैं ॥ ९६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुन्मादरोगचिकित्सा ।

अपस्माररोगकी चिकित्सा ।

वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥

वातज अपस्मारको प्रायः वस्तिकर्मके द्वारा, पित्तज अपस्मारको विरेचनसे और कफजनित अपस्मार रोगको प्रायः वमनके द्वारा शमन करे ॥ १ ॥

पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ।
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ २ ॥

पुष्यनक्षत्रमें कुत्तेके पित्तको निकालकर आँखोंमें आँजनेसे अथवा उसको घृतके साथ मिलाकर धूनी देनेसे अपस्मार रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ३ ॥

अपस्मारमें वैद्य नौला, उल्लू, बिलाव, गिद्ध, कीडा, सर्प और कौआ इन सबकी चोंच, पंख और विष्टाकी धूप दिलवानी चाहिये ॥ ३ ॥

मनोह्वा तार्क्ष्यजं चैव शकृत्पारावतस्य च ।
अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं च विशेषतः ॥ ४ ॥

मैनसिल, रसौंत और कबूतरकी बीठ इनको एकत्र पीसकर आंखोंमें आँजनेसे अपस्मार और विशेषकर उन्मादरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः ।
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ५ ॥

सफेद तुलसीकी जड, कूठ, हरड, भूतकेशी और भटेउर इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर शरीरमें मालिश करनेसे अथवा बकरेके मूत्रमें मिलाकर सेचन करनेसे अपस्मार शमन होता है ॥ ५ ॥

जतुकाशकृता तद्वद् दग्धैर्वा बस्तलोमभिः ।
अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रुभिः ॥ ६ ॥

गोमूत्रके साथ चिमगादडकी विष्ठा या बकरेके भस्म किये हुए रोम या सफेद सरसों और सहिंजनेके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे अपस्मार दूर होय ॥ ६ ॥

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ।
अपस्मारं महाघोरं स चिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

यदि दूध और भातका भोजन करनेवाला मनुष्य शहदके साथ वचके चूर्णको मिलाकर सेवन करे तो वह चिरकालोत्पन्न और महाभयंकर अपस्मारको अवश्य जीतता है ॥ ७ ॥

उल्लम्बितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी ।
शीताम्बुना समं पीत्वा हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ ८ ॥

फाँसीके द्वारा मरेहुए मनुष्यकी गर्दनकी रस्सीको जलाकर स्याही बनालेवें। उस स्याहीको शीतल जलके साथ पान करनेसे अत्युग्र अपस्मार नष्ट होता है ॥ ८ ॥

प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी ।
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ ९ ॥

तैलके साथ लहसुन अथवा दूधके साथ शतावर या ब्राह्मीके रसको शहदके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारका अपस्मार दूर होता है ॥ ९ ॥

निर्दह्य निर्द्रवां कृत्वा च्छागिकामरनालिकाम् ।
तामम्लसाधितां खादेदपस्मारमुदस्यति ॥ १० ॥

बकरीकी अमरानामक नाडीको रक्तादिसे शुद्ध करके अच्छे प्रकारसे जलाकर उसको काँजीके साथ पकाकर सेवन करनेसे अपस्मार नष्ट होता है ॥ १० ॥

अभ्यङ्गे सार्षपं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः स्नानोत्सादनमेव च ॥ ११ ॥

सरसोंके तैलको चौगुने बकरेके मूत्रमें पकाकर मालिश करना अथवा गोबरको शरीरपर मलना और गोमूत्रसे स्नान व सेचन करना आदि उपचारोंसे अपस्मार दूर होता है ॥ ११ ॥

सूतभस्मप्रयोगः ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठमेलारसैः सह ।
सूतभस्मप्रयोगोऽयं रक्तिकाद्वयमानतः ॥
सर्वापस्मारनाशाय महादेवेन भाषितः ॥ १२ ॥

शङ्खपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ और इलायची इनके काथके साथ दो दो रत्ती परिमाण पारेकी भस्मको सेवन करे । सर्वप्रकारके अपस्मारको नाश करनेके लिये श्रीमहादेवजीने इस प्रयोगको वर्णन किया है ॥ १२ ॥

इन्द्रब्रह्मवटी ।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं तारं ताप्यं विषं समम् ।
पद्मकेशरसंयुक्तं दिनैकं मर्दयेद् द्रवैः ॥ १३ ॥
स्नुह्यग्निविजयैरण्डवचानिष्पावझरणैः ।
निर्गुण्ड्याश्च द्रवैर्मर्द्यं तद्गोलं पाचयेत्पुनः ॥ १४ ॥
कङ्गुनीसर्षपोत्थेन तैलेन गन्धसंयुतम् ।
ततः पक्त्वा समुद्धृत्य चणमात्रा वटी कृता ॥ १५ ॥
इन्द्रब्रह्मवटी नाम भक्षयेदार्द्रकद्रवैः ।
दशमूलकषायं च कणायुक्तं पिबेदनु ॥
अपस्मारं जयत्याशु यथा सूर्योदये तमः ॥ १६

पारेकी भस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, चाँदीकी भस्म, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया और कमलकी केशर इनको समान भाग लेकर सबको एकत्र करके थूहर, चीता, भाँग, अण्ड, वच, सेम, जमाकन्द और निर्गुण्डी इनके

रसमें क्रमसे एक एक दिनतक खरल कर गोला बनालेवे । फिर पुटपाक करके उस औषधकी समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर मालकांगनी और सरसोंके तैलमें पकाकर चनेकी बराबर गोलियां बनालेवे । इस इन्द्रब्रह्मवटीकी प्रतिदिन एक एक गोलीको अदरखके रस और शहदके साथ भक्षण करके पीपलका चूर्ण मिलाकर दशमूलका क्वाथ पान करे । इससे अपस्मार इस प्रकार दूर होता है, जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अन्धकार तत्काल नष्ट होताहै १३–१६

भूतभैरव रस ।

शुद्धसूतार्कलौहं च शिला गन्धकतालकम् ।
रसाञ्जनं च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥ १७ ॥
तद्गोलं द्विगुणं गन्धं लोहपात्रे क्षणं पचेत् ।
पञ्चगुञ्जामितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ १८ ॥
हिङ्गु सौवर्चलं व्योषं नरमूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ १९ ॥

शुद्ध पारा, तांबा, लोहा, मैनसिल, शुद्ध गन्धक, हरताल और रसौंत इनको सम भाग लेकर मनुष्यके मूत्रके साथ खरल कर गोला बनालेवे । फिर उसमें समस्त औषधसे दुगुनी शुद्ध गन्धक मिलाकर लोहेके पात्रमें थोडी देरतक मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे । इस भूतभैरवरसको प्रतिदिन पाँच पाँच रत्ती प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे हींग, कालानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके एक कर्ष परिमाण चूर्णको मनुष्यके मूत्र और घीमें मिलाकर सेवन करे। यह रस अपस्मारको हरनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १७–१९ ॥

वातकुलान्तक ।

मृगनाभिः शिवा नागकेशरं कलिवृक्षजम् ।
पारदं गन्धकं जातीफलमेलालवङ्गकम् ॥ २० ॥
प्रत्येकं कार्षिकं चैव श्लक्ष्णचूर्णं च कारयेत् ।
जलेन मर्दयित्वा तु वटीं कुर्याद्विरक्तिकाम् ॥ २१ ॥
यथाव्याध्यनुपानेन योजयेच्च चिकित्सकः ।
अपस्मारे महाघोरे मूर्च्छारोगे च शस्यते ॥ २२ ॥
वातजान्सर्वरोगांश्च हन्यादचिरसेवनात् ।
नातः परतरं श्रेष्ठमपस्मारेषु वर्त्तते ॥
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं नाम्ना वातकुलान्तकः ॥ २३ ॥

कस्तूरी, हरड, नागकेशर, बहेडा, पारा, गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग इन प्रत्येकको एक एक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको जलके साथ खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । वैद्य इस रसको यथादोषानुसार अनुपानके साथ अत्यन्त प्रबल अपस्मार और मूर्च्छारोगमें प्रयोग करे । यह सर्वप्रकारके वातरोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है । अपस्माररोगपर इस रससे बढकर अन्य कोई श्रेष्ठ औषधि नहीं है । इस वातकुलान्तक रसको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥२०–२३॥

कूष्माण्डघृत ।

कूष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ।
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ २४ ॥

अठारह गुने पेठेके स्वरसमें १ भाग गोघृत, चौथाई भाग मुलहठीका कल्क डालकर घृतको पकावे । उस घृतको पान करतेही अपस्मार नाश होताहै ॥२४॥

ब्राह्मीघृत ।

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च ।
पुराणं मेध्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद् घृतम् ॥ २५ ॥

ब्राह्मीके रसमें वच, कूठ और शङ्खपुष्पी इनके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ पुराने घृतको डालकर पकावे । वह घृत मेधाजनक एवं उन्माद, ग्रहबाधा और अपस्माररोगनाशक है ॥ २५ ॥

स्वल्पपञ्चगव्य घृत ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ २६ ॥

गौके गोबरका रस, खट्टा दही, दूध, गोमूत्र और घी इन सबको समान भाग लेकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे । इस घृतको सेवन करनेसे चौथिया ज्वर, उन्माद, ग्रहपीडा और अपस्मार नष्ट होजाताहै ॥ २६ ॥

बृहत्पञ्चगव्यघृत ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलां रजन्यौ कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ २७ ॥
शम्याकं फल्गुमूलं च पौष्करं सदुरालभम् ।
द्विपलानि जलद्रोणे पचेत् पादावशेषिते ॥ २८ ॥

दोनों पञ्चमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुडेकी छाल, सतवन, चिरचिटा, नील, कुटकी, अमलतास, कठूमरकी जड, पोहकरमूल, और धमासा इन प्रत्येक ओषधिको आठ आठ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे ॥ २७ ॥ २८ ॥

भार्ङ्गीं पाठां त्रिकटुकं त्रिवृतां निचुलानि च।
श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥
द्वे शारिवे रौहिषं च भूतिकां मदयन्तिकाम् ॥ २९ ॥
क्षिपेत्पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत्।
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः ॥
पञ्चगव्यमिदं ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ ३० ॥

फिर उसमें भारङ्गी, पाढ, त्रिकुटा, निसोत, जलवेंत, गजपीपल, अरहर, मूर्वा, दन्ती, चिरायता, चीता, कालीसर, गौरीसर, रोहिषतृण, अजवायन और मोतिया के फूल इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले एवं गौका घी, गोबरका रस, खट्टा दही, दूध और गोमूत्र ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे ॥ २९ ॥ ३० ॥

अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरे तथा ॥ ३१ ॥
गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके।
अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थिकविनाशनम् ॥ ३२ ॥

यह बृहत्पञ्चगव्यनामक घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोथ, उदररोग, गुल्म, अर्श, पाण्डुरोग, कामला और हलीमकादि रोगोंमें अमृतकी समान हितकर है। एवं दारिद्य, ग्रहबाधा, राक्षसबाधा, और चातुर्थिकज्वरको दूर करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

महाचैतसघृत।

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी।
रास्ना मागधिका शिग्रुः क्वाथ्यं द्विपलिकं भवेत् ॥ ३३ ॥
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा।
एभिः खर्जूरमृद्वीकाभीरुमुञ्जातगोक्षुरैः।
चैतसस्य घृतस्याङ्ग पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ ३४ ॥

सनके बीज, निसोत, अण्डकी जड, दशमूल, शतावर, रायसन, पीपल और सहिंजना इन प्रत्येक ओषधिको आठ आठ तोले लेकर क्वाथ बनालेवे। फिर उस

क्वाथमें विदारीकन्द, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, खजूर, दाख, शतावर, पुष्पशाकभेद (अभावमें ताडका गूदा), गोखरू और चैतसघृतकी समस्त औषधियोंके कल्कके साथ उत्तम प्रकारसे घृतको पकाना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

महाचैतससंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम् ॥ ३५ ॥
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् ।
पापालक्ष्मीर्जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३६ ॥
श्वासकासहरं चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम् ।
घृतमानं क्वाथविधिरिह चैतसवन्मतः ॥ ३७ ॥
कल्कश्चैतसकल्कोक्तद्रव्यैः सार्धं च पादिकः ।
"नित्यं मुञ्जातकाभावे तालमस्तकमिष्यते" ॥ ३८ ॥

यह महाचैतसनामक घृत सर्वप्रकारके अपस्मारको नष्ट करता है एवं विषोत्पन्न, उन्माद, प्रतिश्याय, तिजारीज्वर, चौथियाज्वर, पापग्रह, अलक्ष्मी, सर्वप्रकारकी ग्रह-बाधा, श्वास और खाँसी इन सबको निवारण करता है। शुक्र और आर्त्तवको शुद्ध करता है। इसमें चैतसघृतकी समान यथाविधि क्वाथ बनाकर उसमें उक्त घृतके कल्ककी समस्त ओषधियोंका कल्क एक भाग और घी चार भाग डालकर घृतको सिद्ध करें ॥ ३५-३८ ॥

पलंकषाद्यतैल ।

पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः ।
जटिलापूतनाकेशीलाङ्गलीहिङ्गुचोरकैः ॥ ३९ ॥
लशुनातिविषाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् ।
मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥
सिद्धमभ्यञ्जनात्तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४० ॥

गोरखमुण्डी, वच, हरड, बिछाटी घास, आककी जड, सरसों, बालछड, भूतकेशी, जलपीपल, हींग, असवरग, लहसन, अतीस, चीता, कूठ और बाज आदि मांसाहारी पक्षियोंकी (जितनी प्राप्त होसके) विष्ठा इन सबके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ तिलके तैलको बकरेके चौगुने मूत्रमें सिद्ध करे। इस तैलको शरीरमें मर्दन करनेसे अपस्माररोग नाश होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अपस्माररोगमें पथ्यापथ्यविधि ।

उन्मादेषु यदुद्दिष्टं पथ्यनस्याञ्जनौषधम् ।
अपस्मारेऽपि तत्सर्वं प्रयोक्तव्यं भिषग्वरैः ॥ ४१ ॥

उन्मादरोगमें जो पथ्य, नस्य, अञ्जन और ओषधियाँ कहीगई हैं, उन सबको अपस्माररोगमें भी प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामपस्माररोगचिकित्सा ।

वातव्याधिकी चिकित्सा ।

स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणाम् ।
अभ्यङ्गस्नेहवस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ १ ॥

मधुर, अम्ल, नमकीन, स्निग्ध आहारके द्वारा, तैलादि मर्दन, स्नेह पदार्थोंकी वस्ति आदि क्रियाओंके द्वारा वातरोगियोंके समस्त रोगोंकी चिकित्सा करे ॥ १ ॥

कोलं कुलत्थाः सुरदारु रास्ना माषातसीतैलफलानि कुष्ठम् ।
वचाशताह्वायवचूर्णमम्लमुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः ॥ २ ॥

बेर, कुलथी, देवदारु, रायसन, उडद, अलसीका तैल, त्रिफला, कूठ, वच, साफ और जौका चूर्ण इन सबको समान भाग लेकर काँजीके साथ खरल करके उसको कुछ गरम कर वातरोगियोंके प्रलेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पक्षाघातं कटिहनुशिरःकर्णनासाक्षितालु-
ग्रीवाग्रन्थिप्रबलमनिलं सार्दितं सापतानम् ।
मूत्राघातं ग्रहणिगलरुक्श्वाससर्वाङ्गकम्पं
तैलद्रोणी हरति न चिरात्काञ्जिकद्रोणिका च ॥ ३ ॥

एक बडे बर्त्तनमें तिलका तैल या काँजी भरकर उसमें गोता लगाकर स्नान करनेसे पक्षाघात, कमर, ठोडी, शिर, कान, नाक, आँख, तालु, ग्रीवा और ग्रन्थि इनमें स्थित प्रबल वायु एवं अर्दित, अपतानक, मूत्राघात, संग्रहणी, गलेके रोग, श्वास सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्थित कम्प आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं ॥ ३ ॥

तैलं घृतं चार्द्रकमातुलुङ्गयो रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा ।
कटचूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्त्तहरः प्रयोगः ॥ ४ ॥

तिलका तैल, घी, अदरखका रस, बिजौरेनींबूका रस इन सबको समान भाग लेकर चूक अथवा गुड मिलाकर सेवन करनेसे कमरकी पीडा, ऊरुस्तम्भ, पृष्ठदण्डकी पीडा, गुल्म, शूल, गृध्रसी और उदावर्त ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमूलीबलासिद्धं क्षीरं वातामये हितम् ॥ ५ ॥

वातरोगमें बृहत्पञ्चमूल और खिरैंटीके द्वारा सिद्ध किया हुआ दुग्ध पान करना हितकर है ॥ ५ ॥

कोष्ठगत--वातकी चिकित्सा ।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षारं पिबेन्नरः ॥ ६ ॥

कोष्ठगत वातमें विशेषकर जवाखार अथवा संग्रहणीरोगमें कहीहुई अग्निप्रदीपक और क्षारयुक्त ओषधियाँ सेवन करनी चाहिये ॥ ६ ॥

आमाशयगत- वातकी चिकित्सा ।

आमाशयस्थे शुद्धस्य यथा रोगहरी क्रिया ।
अमाशयगते वाते च्छर्दिताय यथाक्रमम् ॥
रूक्षः स्वेदो लङ्घनं च कर्त्तव्यं वह्निदीपनम् ॥ ७ ॥

आमाशयस्थित वातमें रोगीको प्रथम वमन और विरेचनके द्वारा शुद्ध कर पश्चात रोगनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । एवं वमन कराकर रूक्ष स्वेद देना, लंघन कराना, अग्निदीपक ओषधियोंका सेवन आदि क्रियायें करनी चाहिये ॥ ७ ॥

पक्वाशयगत–वातकी चिकित्सा ।

पक्वाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम् ॥ ८ ॥

पक्वाशयमें वातरोगके होनेपर रोगीको अण्डीका तेल पान कराकर दस्त कराना॥

वस्त्यादिगत–वातकी चिकित्सा ।

कार्यो वस्तिगते वापि विधिर्वस्तिविशोधनः ।
त्वङ्मांसासृक्शिराप्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ॥ ९ ॥

वस्ति (मूत्राशय) गत वातरोगमें मूत्राघात और अश्मरीरोगमें कही हुई विधिसे चिकित्सा करनी चाहिये । त्वचा, मांस, रुधिर और शिरागत वायुरोगमें रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ९ ॥

स्नायुसन्ध्यस्थिगत–वातकी चिकित्सा ।

स्नेहोपनाहाग्निकर्म्मबन्धनान्मर्दनानि च ।
स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः ॥ १० ॥

तैल, घृतादिका सेवन, प्रलेप, अग्निकर्म, बन्धन और तेलकी मालिश आदिके द्वारा स्नायु, सन्धि और अस्थिगत वातकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

त्वग्गत–वातकी चिकित्सा।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहांश्च हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते ॥ ११ ॥

त्वचामें वातरोग होनेपर स्वेदक्रिया, तैलकी मालिश, गोता लगाकर जलमें स्नान करना और हृदयको हितकारी अन्नका भोजन आदि उपचार कराना ॥

रक्तगत–वातकी चिकित्सा।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ १२ ॥

रुधिरगत वातरोगमें शीतल प्रलेप, विरेचन और रक्तमोक्षण आदिके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

मांसमेदोगत–वातकी चिकित्सा।

विरेको मांसमेदस्थे निरूहाः शमनानि च ॥ १३ ॥

मांस और मेदोगत वातरोगमें विरेचन, निरूहवस्ति और शमनकारक औषधियाँ प्रयोग करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अस्थिमज्जागत–वातकी चिकित्सा।

बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जागतं जयेत् ॥ १४ ॥

अस्थि और मज्जामें स्थित वातको घृतपान और तैलादिकी मालिश आदिके द्वारा जीतना चाहिये ॥ १४ ॥

शुक्रगत– वातकी चिकित्सा।

हृद्यान्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ॥ १५ ॥
विबद्धमार्गंशुक्रं तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम्।
सारल्यात्कोपिनो वायोर्वीर्यद्वारं हि शुध्यति ॥ १६ ॥

शुक्रस्थित वातमें हृदयको हितकारी, सुस्वादु, बलकारक, और शुक्रवर्द्धक अन्न पान सेवन करने हितकारी हैं। यदि शुक्र निकलनेका मार्ग अवरुद्ध होगया हो तो विरेचक ओषधियाँ सेवन करावे। कारण-विरेचनके द्वारा कुपित वायुके सरल होजाने से वीर्य निकलनेका मार्ग साफ होजाताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

शुष्कगर्भकी चिकित्सा।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम्।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ १७ ॥

वायुके द्वारा गर्भाशय अथवा गर्भस्थ सन्तानके शुष्क होजानेपर मिश्री, मुलहठी, कुम्भेर इनके साथ दूधको पकाकर गर्भिणीको पान कराना चाहिये ॥ १७ ॥

शिरोगत-वातकी चिकित्सा ।

शिरोगतेऽनिले वातशिरोरोगहरी क्रिया ॥ १८ ॥

शिरमें वातरोग होनेपर वातज शिरोरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

व्यादितकी चिकित्सा ।

व्यादितास्ये हनुं स्विन्नमङ्गुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च ।
प्रदेशिनीभ्यां चोन्नम्य चिबुकोन्नमनं हितम् ॥ १९ ॥

वातरोगमें मुखके फैलजानेपर गण्डस्थलोंमें स्वेद देकर अँगूठोंके द्वारा ठोडीको दबावे फिर तर्ज्जनी और मध्यमा अँगुलियोंके द्वारा ठोडीको ऊपरको उठावे। इस प्रकार करनेसे मुखका विकृतभाव दूर होताहै ॥ १९ ॥

आर्दितकी चिकित्सा ।

रसोनकल्कं नवनीतमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः ।
तस्यार्दितं नाशयतीह शीघ्रं वृन्दं घनानामिव मातरिश्वा ॥

यदि आर्दितरोगी लहसुनके कल्कको नैनीघीमें मिलाकर सेवन करे तो उसका आर्दितरोग इस प्रकार शीघ्र नाश होजाता है, जैसे वायुका वेग मेघोंके समूहको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ २० ॥

अर्दिते नवनीतेन खादेन्माषण्डरीं नरः ।
क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥ २१ ॥

आर्दितरोगमें नैनीघीके साथ उडदकी बाडियें भक्षण करे। पश्चात् दूध और मांसरसके साथ भोजन करके दशमूलका क्वाथ पान करे ॥ २१ ॥

स्वेदाभ्यङ्गशिरोवस्तिपाननस्यपरायणः ।
अर्दितं सजयेत्सर्पिः पिबेदौत्तरभक्षितम् ॥ २२ ॥

आर्दितरोगमें स्वेद, तैलमर्दन, घृतपान, शिरोवस्ति और नस्य इन क्रियाओंका यथाविधि प्रयोग कर भोजनके बाद घृत पान करानेसे आर्दितरोग नष्ट हो ॥

मन्यास्तम्भकी चिकित्सा ।

पञ्चमूलीकृतः क्वाथो दशमूलीकृतोऽथवा ।
रूक्षः स्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥ २३ ॥

मन्यास्तम्भरोगमें बृहत्पञ्चमूल अथवा दशमूलका क्काथ पान करना एवं रूक्ष स्वेद और नस्य देना चाहिये ॥ २३ ॥

ग्रीवास्तम्भकी चिकित्सा ।

कटुतैलेनाभ्यक्ते लिप्ते कल्केन वाजिगन्धायाः ।
शाम्येद्ग्रीवास्तम्भशूलं महदप्यनायासम् ॥ २४ ॥

कडुवे तेलकी मालिश और असगन्धकी जडको पानीमें पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त प्रबल ग्रीवास्तम्भकी शूलभी सहजमें ही दूर होजाता है ॥ २४ ॥

जिह्वास्तम्भकी चिकित्सा ।

वाताद् वाग्वहनीदुष्टौ स्नेहगण्डूषधारणम् ॥ २५ ॥

वायुसे वाणीको बहानेवाली नाडीके विकृत होजानेपर वातनाशक तेल अथवा घृतके गण्डूषधारण करने चाहिये ॥ २५ ॥

कुब्जकी चिकित्सा ।

वातघ्नैर्दशमूल्या च नरं कुब्जमुपाचरेत् ।
स्नेहैर्मांसरसैर्वापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ॥ २६ ॥

वायुके द्वारा मनुष्यके शरीरमें कुब्ज (कुबडापन) होजानेपर वातनाशक भद्रदार्व्वादिगणकी ओषधियोंका क्काथ या दशमूलका क्काथ अथवा वातनाशक तैल घृतादि और मांसरस सेवन आदि उपचार करे । किन्तु बहुत पुराने स्थायी कुब्जको असाध्य जानकर छोडदेवे ॥ २६ ॥

आध्मानकी चिकित्सा ।

आध्माने लंघनं पाणितापश्च फलवर्त्तयः ।
दीपनं पाचनं चैव वस्तिश्चाप्यत्र शोधनः ॥ २७ ॥

आध्मान (अफारा) रोगमें लंघन करना; हाथको अग्निपर तपाकर स्वेद देना, फलवर्त्ति क्रिया, अग्निदीपक और पाचक ओषधियोंको प्रयोग करनी और वस्तिक्रिया करनी चाहिये ॥ २७ ॥

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीलाकी चिकित्सा ।

प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोरन्तर्विद्रधिगुल्मवत् ॥ २८ ॥

अष्ठीला, प्रत्यष्ठीलारोगमें अन्तर्विद्रधि और गुल्मरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

गृध्रसीकी चिकित्सा।

तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ २९ ॥

अण्डीके तेलको गोमूत्रके साथ एक महीनेतक सेवन करनेसे गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ २९ ॥

शेफालिकादलक्काथो मृद्वग्निपरिसाधितः।
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत् ॥ ३० ॥

मन्दमन्द आग्निके द्वारा सिद्ध किया हुआ निर्गुण्डीके पत्तोंका काथ पान करतेहीं दुस्साध्य गृध्रसीरोगको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

पिष्ट्वैरण्डफलं क्षीरे सविश्वं वा फलं रुबोः।
पायसो भक्षितः सिद्धो गृध्रसीकटिशूलनुत् ॥ ३१ ॥

छिलकेरहित अण्डके बीजोंको पीसकर अथवा अण्डेके बीज और सोंठको एकत्र पीसकर उनकी दूधमें खीर बनाकर भक्षण करनेसे गृध्रसी और कमरका शूल नष्ट होता है। (इसमें अण्डके बीजोंसे चौगुने चावल और चावलोंसे चौगुना दूध लेना चाहिये) ॥ ३१ ॥

वातकण्टककी चिकित्सा।

रक्तावसेचनं कार्य्यमभीक्ष्णं वातकण्टके।
पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव वा ॥ ३२ ॥

वातकण्टकरोगमें बारबार रक्तमोक्षण करावे अथवा अण्डीके तेलका पान करें या गरम सुईके द्वारा व्याधिस्थानको दग्ध करे ॥ ३२ ॥

खल्वकी चिकित्सा।

खल्व्यां स्निग्धाम्ललवणैः स्वेदोन्मर्दोपनाहनम् ॥ ३३ ॥

स्निग्ध, अम्ल और लवणयुक्त द्रव्योंके द्वारा स्वेद देना, मर्दन और प्रलेप करना आदि क्रियायें खल्वी (एक प्रकारका कम्प) रोगमें उपयोगी हैं ॥ ३३ ॥

शिराग्रहकी चिकित्सा।

शिराग्रहे तु कर्त्तव्या शिरागतमरुत्क्रिया।
दशमूलीकषायेण मातुलुङ्गरसेन च ॥
शृतेन तैलेनाभ्यङ्गः शिरोवस्तिश्च युज्यते ॥ ३४ ॥

शिराग्रहरोगमें शिराओंमें स्थित वायुकी वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये एवं दशमूलके क्काथ और बिजौरे नींबूके रसके साथ पकायेहुए तेलकी मालिश करना और शिरमें वस्ति (पिचकारी) का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अपतानककी चिकित्सा ।

अथापतानकेनार्त्तमस्रुताक्षमवेपनम् ।
अखट्वापातिनं चैव त्वरया समुपाचरेत् ॥ ३५ ॥

अपतानकरोगसे आक्रान्त रोगीकी जिसके नेत्रोंमें आँसू न निकले हों, शरीरमें कम्प न हुआ हो और वह खाटपर न पडा हो तो उसकी बहुत शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये । कारण, चिकित्सामें देर करनेसे रोग असाध्य होता है ॥ ३५ ॥

पक्षाघातकी चिकित्सा ।

पक्षाघातसमाक्रान्तं सुतीक्ष्णैश्च विरेचनैः ।
शोधयेद्वस्तिभिश्चापि व्याधिरेवं प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥

पक्षाघातवाले रोगीको तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा विरेचन कराकर और वस्तिक्रियाके द्वारा शोधन करे । इस प्रकार करनेसे रोग शमन होता है ॥ ३६ ॥

दशमूलीबलामाषक्काथं तैलाज्यमिश्रितम् ।
सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामवबाहुके ॥ ३७ ॥

विश्वाची और अवबाहुक रोगमें दशमूल, खिरैंटी और उडद इनके क्काथको तिलका तैल और घी मिलाकर शामको भोजन करनेके पश्चात् नासिका द्वारा पान करे ॥ ३७ ॥

अपतन्त्रककी चिकित्सा ।

अथापतन्त्रकेनार्त्तमातुरं नापतर्पयेत् ।
निरूहवस्तिवमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ ३८ ॥
श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत ।
तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ ३९ ॥

अपतन्त्रकरोगसे ग्रसित रोगीको लङ्घन, निरूहवस्ति और वमन कदापि नहीं करानी चाहिये । इसमें कफ और वायुके द्वारा श्वास प्रश्वासको बहानेवाली सब नाडियें रुक जाती हैं, इसलिये तीक्ष्ण प्रधमन क्रिया करके उनको खोलदेवे । नाडियोंके खुलजानेपर रोगी चैतन्यताको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

खञ्ज और पंगुताकी चिकित्सा।

उपाचरेदभिनवं खञ्जं पङ्गुमथापि वा।
विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः ॥ ४० ॥

विरेचन, निरूहवस्ति, स्वेद, गूगल और स्नेहवस्ति इन क्रियाओंके द्वारा नवीन खञ्ज और पंगु रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

क्रोष्टुशीर्षकी चिकित्सा।

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा।
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारुकम् ॥ ४१ ॥
रसैस्तित्तिरिमांसस्य पीतैर्गुग्गुलुसंयुतैः।
वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जम्बुकमस्तकम् ॥ ४२ ॥

क्रोष्टुशीर्ष वातरोगमें गिलोय और त्रिफलेके क्वाथके साथ शुद्ध गूगल या गौके दूधके साथ अण्डीका तैल अथवा दूधके साथ विधारेका चूर्ण सेवन करना चाहिये। तीतरके मांसरसके साथ गूगलको मिलाकर पान करनेसे और वातरक्ताधिकारमें कही हुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनेसे क्रोष्टुशीर्ष रोग नष्ट होता है ॥४१॥ ॥४२॥

कलायखञ्जकी चिकित्सा।

क्रमः कलायखञ्जस्य खञ्जपंग्वोरिव स्मृतः।
विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विचक्षणैः ॥ ४३ ॥

खञ्ज और पंगुरोगकी समान कलायखञ्जरोगकी चिकित्सा करनी। इसमें विशेषकर स्नेहकर्म अर्थात् वातनाशक तैल घृतादिका मर्दन व पान करना ॥ ४३ ॥

बाह्यान्तरायामकी चिकित्सा।

बाह्यायामेऽन्तरायामे विधेयाऽर्दितवत्क्रिया ॥ ४४ ॥

बाह्यायाम और अन्तरायामरोगमें अर्दितरोगकी समान चिकित्सा करनी ॥४४॥

त्रिकशूलकी चि[illegible]।

कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूले प्रयत्नतः।
यद्वाऽधस्तात्करीषाग्निं धारयेत्सततं नरः ॥ ४५ ॥

त्रिकशूलरोगमें बालूके द्वारा विधिपूर्वक स्वेद देवे अथवा कमरके नीचे आरनें उपलोंकी अग्निको रखकर बार बार सेंके ॥ ४५ ॥

पाददाहकी चिकित्सा ।

वातरक्तक्रमं कुर्यात्पाददाहे विशेषतः ।
मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा ॥ ४६ ॥
चरणौ लेपयेत्सम्यक् पाददाहप्रशान्तये ।
नवनीतेन संलिप्तौ वह्निना परितापितौ ॥
मुच्येते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारुणात् ॥ ४७ ॥

पाददाहरोगमें विशेषकर वातरक्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । मसूरकी दालको पीसकर जलके साथ पकाकर शीतल होजानेपर पैरोंमें ले । करनेसे पावोंकी दाह शान्त होती है । अथवा पाँवोंमें नैनी घी लगाकर अग्निपर तपानेसे पैरोंकी दारुण दाह शीघ्र दूर होती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पादहर्षकी चिकित्सा ।

पादहर्षे तु कर्त्तव्यः कफवातहरो विधिः ॥ ४८ ॥

पादहर्षरोगमें कफ:और वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

दशमूलादिक्काथ ।

दशमूलीकृतः क्काथः पञ्चमूल्याऽपि कल्पितः ।
मन्यास्तम्भं निहन्त्याशु कम्पवातं विशेषतः ॥ ४९ ॥

दशमूल अथवा बृहत् पञ्चमूलका काढा बनाकर पान करनेसे मन्यास्तम्भ रोग और विशेषकर कम्पवातरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

बलादिक्वाथ ।

बलामूलशृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् ।
बाहुशोषकरे वाते मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ५० ॥

बाहुशोष और मन्यास्तम्भ वातरोगमें खिरैंटीकी जडका क्वाथ बनाकर उसको सैन्धानमकके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ५० ॥

एरण्डादिक्वाथ ।

एरण्डमूलं बिल्वं च बृहती कण्टकारिका ।
कषायो रुचकोपेतः पीतो वङ्क्षणवस्तिजम् ॥
गृध्रसीजं हरेच्छूलं चिरकालानुबन्धि च ॥ ५१ ॥

अण्डकी जडकी छाल, बेलकी छाल, बडी कटेरी और कटेरी इनके काढेमें काला-नमक डालकर पान करनेसे वंक्षण और वस्तिगत शूल और पुरानी गृध्रसीका शूलरोग दूर होता है ॥ ५१ ॥

सिंहास्यादिक्वाथ ।

सिंहास्यदन्तीकृतमालकानां पिबेत्कषायं रुबुतैलमिश्रम् ।
यो गृध्रसीनष्टगतिः प्रसुप्तः स शीघ्रगः स्याद्धि किमत्र चित्रम् ॥

जो गृध्रसीरोगीकी गतिशक्ति नष्ट होगई हो और जडता होगई हो तो उसको अडूसा, दन्तीकी जड और अमलतास इनका क्वाथ अण्डीका तेल मिलाकर पान कराना चाहिये इससे रोगी शीघ्र चलने लगता है ॥ ९२ ॥

रास्नासप्तकक्वाथ ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ।
क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥९३॥

रायसन, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अण्डकी जड और पुनर्नवा इनके मन्दोष्ण क्वाथको सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे जङ्घा, ऊरु, पीठ, त्रिक और पार्श्वशूलवाला रोगी आरोग्य होता है ॥ ९३ ॥

माषादिक्वाथ ।

माषात्मगुप्तावातारिवाट्यालकजटाशृतम् ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाशयेत् ॥ ९४ ॥

उडद, कौंचके बीज, एरण्डमूल, खिरैंटी और बालछड इनके क्वाथमें हींग और सैंधानमक डालकर पीनेसे पक्षाघात रोग नष्ट होता है ॥ ९४ ॥

गोक्षुरादिक्वाथ ।

गोक्षुरमेरण्डमूलं वचा रास्ना पुनर्नवा
कषाय एष शस्तस्तु वाते सर्वाङ्गमाश्रिते ॥ ९५ ॥

गोखुरू, अण्डकी जड, वच, रायसन और पुनर्नवा इनका क्वाथ सर्वाङ्गगत वातरोगमें हितकारी है ॥ ९५ ॥

माषबलादिक्वाथ ।

माषबलाशुकशिम्बीकत्तृणरास्नाश्वगन्धोरुबूकानाम् ।
क्वाथो यस्य निपीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥
अपहरति पक्षघातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम् ।
दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ९६ ॥

उडद, खिरैंटीकी जड, कौंचके बीज, रोहिषतृण, रायसन, असगन्ध और अण्डकी जड इनके मन्दोष्ण क्वाथको हींग और सैंधानमक मिलाकर पान

करनेसे पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, कर्णरोग और दुस्साध्य अर्दितरोग सात दिनमेंही अवश्य नाश होता है ॥ ५६ ॥

कल्याणलेह ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥ ५७ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि समभागानि कारयेत ।
तच्चूर्णं सर्पिषाऽऽलोडचं प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ५८ ॥
एकविंशतिरात्रेण नरः श्रुतिधरो भवेत ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥
जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ ५९ ॥

हल्दी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कालाजीरा, अजमोद, मुलहठी और सैंधानमक इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर वस्त्रमें छानलेवे । इस चूर्णको घीमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे मनुष्य इक्कीस दिनमें सुनतेही बातको धारण करता है । मेघ और दुन्दुभिकी समान घोर शब्द करनेवाला और मदोन्मत्त कोयलकी समान कण्ठस्वरवाला होता है । यह कल्याण लेह जिह्वाकी जडता गद्गद-पन और मूकताको दूर करता है ॥ ५७-५९ ॥

शाल्वणस्वेद ।

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः ।
सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमन्वितः ॥ ६० ॥
सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्त्तितः ।
तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ॥ ६१ ॥

काकोल्यादिगणकी समस्त ओषधि, भद्रदार्वादिगणकी सब ओषधि, सर्व प्रकार के अम्लपदार्थ, सर्व प्रकारके स्नेह (तैल, घृत, चर्बी, मज्जा) द्रव्य और सर्व प्रकारके अनूपदेशके जीवोंका मांस इन सबको एकत्र उत्तम प्रकारसे पकावे फिर उसमें नमक डालकर उससे सुहाता २ स्वेद देनेको शाल्वणस्वेद कहते हैं । इसके द्वारा वातरोगियोंको सदा उपनाह स्वेद देना ॥ ६० ॥ ६१ ॥

वातघ्नो भद्रदार्वादिः काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः ।
मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताऽम्लेन चाम्लता ॥ ६२ ॥

पट्टीस्यात्स्वेदनार्थं च काञ्जिकाद्यम्लमिष्यते ।
चतुःस्नेहोऽत्र तावान्स्यात्सुस्विन्नत्वं यतो भवेत् ॥ ६३ ॥
समस्तं वर्गमर्द्धं वा यथालाभमथापि वा ।
प्रयुञ्जीतेति वचनं सर्वत्र गणकर्म्मणि ॥ ६४ ॥

भद्रदार्वादिगण और काकोल्यादिगणकी ओषधियाँ वातनाशक हैं, यह सुश्रुतने कहा है । इसमें मांसकी बराबर सब ओषधियाँ जितने अम्लपदार्थोंके द्वारा अम्लता हो सके वह पट्टी स्वेद देनेके लिये ग्रहण करनी, काँजी आदि अम्लपदार्थ लेना । इसमें चारों स्नेहद्रव्य उतनेही लेने जितने द्रव्योंसे वह अच्छी तरह सीजजाय । सम्पूर्ण वर्गकी या आधे वर्गकी अथवा जितनी मिल सकें उतनी औषधियाँ लेनी चाहिये । यह वचन सब जगह गणकर्ममें प्रयोग करना ॥ ६२–६४ ॥

वातगजांकुश ।

मृतं सूतं मृतं लौहं ताप्यं गन्धकतालकम् ।
पथ्या शृङ्गी विषं व्योषमग्निमन्थं च टङ्कणम् ॥ ६५ ॥
तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिकाद्रवैः ।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये ॥ ६६ ॥
कणाचूर्णयुतं चैव जिङ्गीक्वाथं पिबेदनु ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजांकुशः ॥ ६७ ॥
सप्ताहाद् गृध्रसीं हन्ति दारुणं सान्निपातिकम् ।
क्रोष्टुशीर्षकवातं चाप्यवबाहुकसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥
मन्यास्तम्भमुरुस्तम्भं हनुस्तम्भं विनाशयेत् ।
पक्षाघातादिरोगेषु कथितः परमोत्तमः ॥ ६९ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, लोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध गन्धक, हरताल, हरड, काकडासिंगी, शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, पीपल, मिरच अरणी और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर मुण्डी और निर्गुण्डीके रसके साथ एक एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । सर्व प्रकारक वातरोगको शमन करनेके लिये इसकी प्रतिदिन एक एक गोली भक्षण करे और ऊपरसे पीपल का चूर्ण मिलाकर मंजीठके क्वाथको पीवे । यह वातगजांकुशरस साध्य व असाध्य सर्व प्रकारके वातरोगको तत्काल नष्ट करता है । एवं गृध्रसी

दारुण सन्निपात, क्रोष्टुशीर्षक, अवबाहुक, मन्यास्तम्भ और हनुस्तम्भ इन समस्त वातरोगोंको सात दिनमें ही नाश कर देता है । पक्षाघात आदि व्याधियोंमें यह अत्युत्तम कहागया है ॥ ६९-६९ ॥

बृहद्वातगजांकुश ।

सूताभ्रतीक्ष्णकान्तानि ताम्रतालकगन्धकम् ।
स्वर्णं शुण्ठी बला धान्यं कट्फलं चाभया विषम् ॥७०॥
पथ्या शृङ्गी पिप्पली च मरिचं टङ्कणं तथा ।
तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिकाद्रवैः ॥ ७१ ॥
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु बृहद्वातगजाङ्कुशः ॥ ७२ ॥

शुद्ध पारा, अभ्रक, कान्तलोह, ताँबा, हरताल इनकी भस्म, शुद्ध गन्धक, सुवर्णभस्म, सोंठ, खिरैंटी, धनियाँ, कायफल, शुद्ध मीठा तेलिया काकडासिङ्गी, पीपल, मिरच और सुहागा ये प्रत्येक एक एक भाग और हरड दो भाग लेकर सबको एकत्र मुण्डी और निर्गुण्डीके रसमें एक एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको सर्वप्रकारके वातरोगोंको शान्त करनेके लिये सेवन करे । बृहद्वातगजांकुशरस साध्य और असाध्य सम्पूर्ण वातविकारोंको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ७०-७२ ॥

महावातगजांकुश ।

मृताभ्रतीक्ष्णताम्रं च सूततालकगन्धकम् ।
भार्ङ्गी शुण्ठी बला धान्यं कट्फलं चाभया विषम् ॥७३॥
संपिष्य चपलाद्रावैर्निष्कैकां भक्षयेद्वटीम् ।
वातश्लेष्महरो ह्येष गुरुवातगजाङ्कुशः ॥ ७४ ॥

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, हरताल, शुद्ध गन्धक, भारङ्गी, सोंठ, खिरैंटी, धनियाँ, कायफल, हरड और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समान भाग लेवे । फिर एकत्र पीसकर पीपलके क्वाथमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे । यह महावातगजांकुश रस वात और कफसे उत्पन्न हुये सब रोगोंको दूर करता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

लघुआनन्दरस ।

पारदं गन्धकं लोहमभ्रकं विषमेव च ।
समांशं मरिचस्याष्टौ टङ्कणं तु चतुर्गुणम् ॥ ७५ ॥

भृङ्गराजरसेनैव दातव्याः पञ्च भावनाः ।
तथा दाडिमतोयेन वटीं कुर्यात्समाहितः ॥
निहन्ति वातजान्रोगान्भ्रमदाहपुरःसरान् ॥ ७६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध मीठा तेलिया ये सब समान भाग काली मिरच अठगुनी और सुहागा चौगुना लेकर सबको एकत्र करके भाँगरेके रस और अनारके रसमें पाँच पाँच बार भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सर्वप्रकारके वातरोग, भ्रम, दाह आदि उपद्रवोंको नष्ट करता है ॥७५ ॥ ७६ ॥

गगनादिवटी ।

मृतगगनरसार्कं मुण्डतीक्ष्णं सताप्यं सबलिसममिदं स्याद्यष्टितोयप्रपिष्टम । तदनु सलिलजातैर्वासकैर्गोस्तनीभिर्मृदितमनु विदारीवारिणा घस्रमेकम् ॥ घृतमधुसहितेयं निष्कमात्रा वटीति क्षपयति गुरुवातं पित्तरोगं क्षयं च । भ्रममदकफशोषान्दाहतृष्णासमुत्थान् मलयजमिह पेयं चानुपेयं सचन्द्रम् ॥ ७७ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, मण्डूरभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म और शुद्ध गन्धक इन प्रत्येक औषधिको समान भाग लेकर मुलहठीके क्काथमें खरल करके फिर कमल, अडूसेके पत्ते, दाख और विदारीकन्दके रसमें क्रमसे एक एक दिनतक खरल कर सुखालेवे । फिर तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली घृत और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे । औषध सेवन करनेके पश्चात् सफेद चन्दन और कपूरका अनुपान करे । यह वटी प्रबल वातरोग, पित्तके रोग, क्षय, भ्रम, मद, कफ, शोष, दाह और तृषासे उत्पन्न हुए सब विकारोंको दूर करती है ॥ ७७ ॥

कुब्जविनोद रस ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ चाभया तालकं तथा ।
विषं कटुकि व्योष च बोलजैपालकौ समौ ॥ ७८ ॥
भृङ्गराजरसैर्मर्द्य स्नुह्यर्कस्वरसैस्तथा ।
गुञ्जाद्वयं भक्षयेच्च हृच्छूलं पार्श्वशूलकम् ॥ ७९ ॥
आमवाताढ्यवातादीन् कटिशूलं च नाशयेत् ।
अग्निं च कुरुते दीप्तं स्थौल्यं चाप्यपकर्षति ॥ ८० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हरड, हरताल, शुद्ध मीठा तेलिया, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल, बोल और जमालगोटा इन सबको समान भाग लेकर भाँगरेके रस, थूहरके दूध और आकके दूधके साथ क्रमसे एकएक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे हृदयका शूल, पसलीकी पीडा, आमवात आदि सर्वप्रकारके वातरोग और कमरकी पीडा नाश होती है। यह रस अग्निको अत्यन्त दीपन करता और स्थूलताको दूर करता है ॥७८-८०॥

सर्वाङ्गकम्पारिरस।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं मर्दयेत्कटुकद्रवैः।
एकविंशतिवारं च शोष्यं पेष्यं पुनःपुनः॥
चणमात्रा वटी भक्ष्या रसः सर्वाङ्गकम्पजित् ॥ ८१ ॥

शुद्ध पारे और ताँबेकी भस्मको समान भाग लेकर कुटकीके क्वाथमें इकीस बार भावना देकर सुखालेवे। फिर पीसकर इसकी चनेकी बराबर गोली बनाकर भक्षण करनेसे सर्वाङ्गगत कम्पवात नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

चिन्तामणिरस।

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम्।
तदर्द्धं मृतलौहं च स्वर्णं शाणं क्षिपेद् बुधः ॥ ८२ ॥
कन्यारसेन सम्मर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं चरेत्।
अनुपानादिकं दद्याद् बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ॥ ८३ ॥

रससिन्दूर और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक दो दो तोले, लोहभस्म एक तोला और सुवर्णभस्म ४ मासे इन सबको घीगुआरके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस वटीको दोषोंका बलाबल विचारकर यथोचित अनुपानके साथ सेवन करावे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्तसंयुतम्।
हृल्लासमरुचिं दाहं वान्तिं भ्रान्तिं शिरोग्रहम् ॥ ८४ ॥
प्रमेहं कर्णनादं च ज्वरगद्गदमूकताम्।
बाधिर्यं गर्भिणीरोगमश्मरीं सूतिकामयम् ॥ ८५ ॥
प्रदरं सोमरोगं च यक्ष्माणं ज्वरमेव च।
बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाधकः।
चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः ॥ ८६ ॥

यह चिन्तामणिनामक रस कफसहित वात, केवल वात और पित्तयुक्त वात, एवं हल्लास, अरुचि, दाह, वमन, भ्रान्ति, शिरःपीडा, प्रमेह, कर्णनाद, ज्वर, गद्गदता, मूकता, बहरापन, गर्भिणीके रोग, पथरी, प्रसूतिरोग, प्रदर, सोमरोग, राजयक्ष्मा, और सर्वप्रकारके ज्वरको नष्ट करता है। एवं बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि, कान्ति और पुष्टिको उत्पन्न करनेवाला है। यह चिन्तामणिरस दूसरी चिन्तामणिकी समान है ॥ ८४-८६ ॥

चिन्तामणिचतुर्मुख।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं लौहमभ्रकम्।
तदर्द्धं कनकं खल्ले कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ ८७ ॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत्।
त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ८८ ॥

शुद्ध रससिन्दूर दो तोले, लोहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म एक तोला और सुवर्णभस्म ६ मासे इन सबको एकत्र घीकुँआरके रसमें खरल करके अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंकी राशिमें रखदेवे। फिर तीन दिनके बाद निकालकर उसको सर्वप्रकारके रोगोंमें प्रयोग करे ॥ ८७-८८ ॥

एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुसंयुतम्।
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥ ८९ ॥
अपस्मारं महोन्मादं रोगान् वातसमुद्भवान्।
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ९० ॥

इस उत्तम रसायनको अग्निका बलाबल विचारकर यथोचित मात्रासे त्रिफलेके रस और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वली और पलितरोग नाश होते हैं। एवं अपस्मार महोन्माद और वातजनित समस्त रोगोंको यह रस इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षको नाश करदेता है ॥८९॥९०॥

बृहद्वातचिन्तामणि।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यमभ्रकम्।
लौहात्पंच प्रवालं च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥ ९१ ॥
भस्मसूतं सप्तकं च कन्यारसविमर्दितम्।
वल्लमात्रा वटी कार्या भिषग्भिः परियत्नतः ॥ ९२ ॥

यथाव्याध्यनुपानेन नाशयेद्रोगसङ्कुलम् ।
वातरोगं पित्तकृतं निहन्ति नात्र चिन्तनम् ॥ ९३ ॥
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्शी कन्दर्पसमविक्रमः ।
दृष्टः सिद्धफलश्चायं वातचिन्तामणिस्त्विह ॥ ९४ ॥

सुवर्णभस्म ३ तोले, चाँदीकी भस्म दो तोले, अभ्रकभस्म दो तोले, लोहभस्म ९ तोले, मूँगेकी भस्म ९ तोले, मोतीकी भस्म २ तोले और शुद्ध पारेकी भस्म ७ तोले इन सबको एकत्र घीकुँआरके रसमें खरल करके दो या डेढ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर रोगके अनुसार अनुपानके साथ इसको प्रतिदिन सेवन करनेसे समस्त रोगसमूह और पित्ताश्रित वातरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं। एवं वृद्ध पुरुषभी कामदेवकी समान पराक्रमशाली और तरुण होजाता है। यह वातचिन्तामणि रस वातरोगमें सिद्धफलका देनेवाला है ॥ ९१–९४ ॥

चतुर्मुखरस ।

रसगन्धकलोहाभ्रं समं सूताङ्घ्रि हेम च ।
सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ ९५ ॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ।
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला और सुवर्णभस्म तीन मासे लेकर सबको खरलमें एकत्र करके घीकुँआरके रसमें खरल करे। फिर गोलासा बनाकर उसको अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंकी राशिमें गाड देवे। तीन दिनतक रखा रहनेके बाद उसको निकालकर सर्वप्रकारके रोगोंमें प्रयोग करे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम् ।
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥ ९७ ॥
क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम् ।
कासं शूलं च मन्दाग्निं हिक्कां चैवाम्लपित्तकम् ॥ ९८ ॥
व्रणान्सर्वानाढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा ।
अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् ॥ ९९ ॥
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
पौष्टिकं बल्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारकम् ॥ १०० ॥

जगतां च हितार्थाय चतुर्मुखमुखोदितः ।
रसश्चतुर्मुखो नाम चतुर्मुख इवापरः ॥ १०१ ॥

इस उत्तम रसायनको प्रतिदिन जठराग्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रासे त्रिफलेके क्वाथ और शहदके साथ सेवन करे, तो यह रस वली और पलितरोग, ग्यारह प्रकारका क्षय, पाण्डु, प्रमेह, खाँसी, शूल, मन्दाग्नि, हिचकी, अम्लपित्त, सर्वप्रकारके व्रण, आमवात, विसर्प, विद्रधि, मृगी, घोर उन्माद, सब प्रकारकी बवासीर, और त्वचाके समस्त रोग इन सबको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है, जैसे वज्र वृक्षको तत्काल नष्ट करदेता है । एवं यह अत्यन्त पौष्टिक, बलकारक, आयुवर्द्धक और स्त्रियोंके सन्तानोत्पत्ति करनेवाला है । इस रसको संसारके हितके लिये ब्रह्माजीने निर्माण किया है, इसलिये इसको चतुर्मुख रस कहते हैं । यह दूसरे ब्रह्मा की समान है ॥ ९७–१०१ ॥

लक्ष्मीविलासरस ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धकौ ।
बला नागबला भीरु विदारीकन्दमेव च ॥ १०२ ॥
कृष्णाधुस्तूरनिचुलं गोक्षुरवृद्धदारयोः ।
बीजं शक्राशनस्यापि जातीकोषफले तथा ॥ १०३ ॥
कर्पूरं चैव कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णं पृथक्पृथक् ।
गृहीत्वा चाष्टमांशेन स्वर्णं पर्णरसेन च ॥ १०४ ॥
वटिकां स्विन्नचणकप्रमाणां कारयेद्भिषक् ।
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं पूर्ववद् गुणकारकः ॥ १०५ ॥

काली अभ्रककी भस्म ४ तोले, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे । एवं खिरैंटी, गंगेरन, शतावर, विदारीकन्द, काला धतूरा, बेंत, गोखरू, विधारा, भाँगके बीज, जावित्री, जायफल और भीमसेनी-कपूर ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष लेकर सबका बारीक चूर्ण करलेवे । फिर समस्त चूर्णसे आठवाँ भाग स्वर्णभस्म लेकर सबको एकत्र पानके रसके साथ खरल करके सीजेहुए चनेकी बराबर गोलियाँ बनालवे । यह लक्ष्मीविलासरस पूर्वोक्त चतुर्मुखरसकी समानही गुण करनेवाला है ॥ १०२–१०५ ॥

योगेन्द्ररस ।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं शुद्धहाटकम् ।
तत्समं कान्तलौहं च तत्समं चाभ्रमेव च ॥ १०६ ॥

विशुद्धं मौक्तिकं चैव वङ्गं च तत्समं मतम् ।
कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ १०७ ॥
ततो रक्तिद्वयमितां वटीं कुर्याद्विचक्षणः ।
योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः ॥ १०८ ॥

शुद्ध रससिन्दूर २ तोले एवं सुवर्णभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मोतीकी भस्म और वङ्गभस्म इन सबको एक एक तोला लेकर घीकुँवारके रसमें खरल करके तीन दिनतक धानोंकी राशिमें रक्खे। फिर उसको निकालकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह योगवाही रस सर्व प्रकारके रोगोंको समूल नष्ट करता है ॥ १०६–१०८ ॥

वातपित्तभवान् रोगान्प्रमेहान्बहुमूत्रताम् ।
मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयान् ॥ १०९ ॥
उन्मादं मूर्छां यक्ष्माणं पक्षाघातं हतेन्द्रियम् ।
शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ११० ॥
त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयाऽपि वा ।
भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः ॥ १११ ॥
रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानां च विशेषतः ।
योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण निर्मितः ॥ ११२ ॥

एवं वातज, पित्तज रोग, प्रमेह, बहुमूत्रता, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, गुदाके रोग, उन्माद, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियका नष्ट होजाना, सर्व प्रकारके शूल और अम्लपित्तादि रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देता है। इस रसको प्रतिदिन त्रिफलेके क्वाथ और शहदके साथ अथवा मिश्रीके साथ भक्षण करके रात्रिमें काली गौका दूध पीनेसे रोगी कामदेवकी समान कान्तिमान् होता है। इस योगेन्द्रनामक रसको कृष्णात्रेयजीने निर्माण किया है॥१०९–११२॥

वातारिरस ।

रसभागो भवेदेको द्विगुणो गन्धको मतः ।
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागं तु चित्रकम् ॥ ११३॥
गुग्गुलोः पञ्च भागाः स्यू रुबूतैलेन मर्दयेत् ।
क्षिप्त्वाऽत्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ ११४ ॥

गुडिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरुत्थितः।
नागरैरण्डमूलानां कषायं प्रपिबेदनु ॥ ११५ ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम्।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ ११६ ॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः।
मासेन मरुतो रोगान् हरेत्सुरतवर्जितः ॥ ११७ ॥

शुद्ध पारा एक भाग और शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे। फिर गूगलको पांच भाग लेकर अण्डीके तैलके साथ खरल करके उसके साथ पूर्वोक्त कज्जली एवं त्रिफलेका चूर्ण तीन भाग और चीतेकी जडका चूर्ण चार भाग मिलाकर फिर अण्डीके तैलमें खरल करे। पश्चात् एक कर्षकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे। ऊपरसे सोंठ और अण्डकी जडका क्वाथ पान करे। प्रातःकाल औषध सेवन करनेके पश्चात् रोगीकी पीठमें अण्डीका तैल मलकर स्वेद देवे। इसके द्वारा विरेचन होजानेपर स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंका भोजन करावे। स्त्रीप्रसंगको त्यागकर इस वातारिनामक रसको वायुरहित स्थानमें रहता हुआ मनुष्य एक मासपर्यन्त सेवन करे, यह रस सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करता है ॥ १३-१७ ॥

अनिलारिरस।

रसेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य वातारिनिर्गुण्डिरसैर्दिनैकम्।
निवेशयेत्ताम्रमये पुटे तत्सर्वं मृदाश्वेष्टय च वालुकाख्ये ॥११८
यन्त्रे पुटेद्गोमयचूर्णवह्नौ स्वभावशीते तु समुद्धरेत्तत्।
निर्गुण्डिकावातहराग्नितोयैः सञ्चूर्ण्य यत्नेन विभावयेत्तत् ॥
रसोऽनिलारिः कथितोऽस्य वल्लमेरण्डतैलेन ससैन्धवेन।
मरीचचूर्णेन ससर्पिषा वा निर्गुण्डिचित्रैश्च कटुत्रिकैर्वा ॥१२०

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोले लेकर दोनोंको अण्डकी जड और निर्गुण्डीके रसके साथ एक एक दिनतक खरल करे। फिर उसको ताँबेके पात्रमें बन्द करके मिट्टीसे लहेसकर वालुकायन्त्रमें रख आरने उपलोंकी अग्निमें एक प्रहरतक पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर स्वयं शीतल होजाय तब उसको निकालकर निर्गुण्डी, अण्ड और चीता इनके रसमें क्रमसे एक एक बार भावना देकर दो अथवा तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसको अण्डीके तैल और सैन्धा-

नमकके चूर्णके साथ या मिरचोंके चूर्ण और घीके साथ अथवा त्रिकुटेके चूर्ण, निर्गुण्डी और चीतेके क्काथके साथ सेवन करे । इसको अनिलारि (वातनाशक) रस कहते है ॥ १८-१२० ॥

सर्वाङ्गसुन्दररस ।

शुद्धसूताभ्रताम्रायोहिङ्गुलं कार्षिकं मतम् ।
गन्धकश्चैकभागः स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ २१ ॥
सप्तपर्णार्कस्नुक्क्षीरवासावातारिवारिणा ।
विषमुष्टिसमं सर्वं पेष्यं तद्गोलकीकृतम् ॥ २२ ॥
विपचेद्वालुकायन्त्रे द्वियामान्ते समुद्धरेत् ।
पिप्पलीविषसंयुक्तो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥
सर्ववातविकारघ्नः सर्वशूलनिषूदनः ॥ २३ ॥

शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म और सिंगरफ ये प्रत्येक दो दो तोले और शुद्ध गन्धक एक तोला लेकर सबको एकत्रकर सतौना, आक, थूहरका दूध, अडूसा और अण्डके क्काथमे भावना देवे। फिर सब औषधकी बराबर कुचला मिलाकर खरल करके गोलासा बनालेवे । उस गोलेको वालुकायन्त्रमें रखकर दो प्रहर तक पकावे । पककर शीतल होजानेपर उसमें पीपलका चूर्ण और शुद्ध मीठा तेलिया दो दो तोले मिलादेवे । यह सर्वांगसुन्दर रस सर्व प्रकारके वायुके विकार और सर्व प्रकारके शूलरोगको नष्ट करता है ॥ २१-२३ ॥

शीतारिरस ।

रसेन गन्धं द्विगुणं प्रगृह्य पुनर्नवाग्निस्वरसैर्विभाव्य ।
पक्वार्कपत्रस्य रसेन पश्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ॥ २४ ॥
रसार्द्धभागं च विषं च दत्त्वा विपाचयेदग्निजले क्षण तत ।
शीतारिसंज्ञस्य रसायनस्य वल्लं च सार्द्धं मरिचार्द्रकेण ॥२५॥
मरीचचूर्णेन घृताप्लुतेन सेवेत मांसं च घृतं च पथ्यान् ॥२६॥

शुद्ध पारा एक तोला और शुद्ध गन्धक दो तोले दोनोंको पुनर्नवा और चीतेके स्वरसमें भावना देकर पके हुए आकके पत्तोंके अठगुने रसके साथ वालुकायन्त्रमें रखकर यत्नपूर्वक पकावे । पश्चात् पारेसे आधा शुद्ध मीठा तेलिया डालकर चीतेके रसमें क्षणभरतक पकावे । इस शीतारिनामक रसायनको डेढ वा दो रत्ती परिमाण देकर मिरचोंके चूर्ण और अदरखके रसके साथ अथवा मिरचोंके चूर्ण और घृतके

साथ सेवन करे। इसपर मांसरस और घृतका पथ्य करे। यह रस शीतवातको नष्ट करता है ॥ २४-२६ ॥

तालकेश्वररस।

एकभागो रसस्य स्याच्छुद्धतालैकभागिकः।
अष्टौ स्युर्विजयायाश्च गुडिकां गुडतश्चरेत् ॥ २७ ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातश्छायायामुपवेशयेत्।
तालकेश्वरनामाऽयमस्पर्शरोगनाशनः ॥ २८ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला और भाँग ८ तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णकी बराबर गुड मिलाकर तीन तीन माशेकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे और छायामें रहे। यह तालकेश्वरनामक रस अस्पर्शवातरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ २७-२८ ॥

वातविध्वंसन रस।

सूतमभ्रकसत्त्वं च कांस्यं शुद्धं च माक्षिकम्।
गन्धकं तालकं सर्वं भागोत्तरविवर्द्धितम् ॥ २९ ॥
कज्जलीकृत्य तत्सर्वं वातारिस्नेहसंयुतम्।
सप्ताहं मर्दयित्वा तु गोलकीकृत्य यत्नतः ॥ १३० ॥
निम्बुद्रवेण सम्पीड्य तिलकल्केन लेपयेत्।
अर्द्धाङ्गुलदलेनैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥
प्रपचेद्वालुकायन्त्रे द्वादशप्रहरं ततः ॥ ३१ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, अभ्रकसत्त्व २ भाग, काँसा ३ भाग, शुद्ध सोनामाखी ४ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग और शुद्ध हरताल ६ भाग लेवे। पहले पारे और गन्धककी एकत्र कज्जली करके उसमें अन्य सब औषधियोंको मिलाकर अण्डीके तैलमें ७ दिनतक खरल करे। फिर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके गोलासा बनालेवे। उस गोलेपर आध अंगुल परिमाण तिलके कल्कका लेपकर और धूपमें सुखाकर उसको वालुकायन्त्रमें रखकर १२ प्रहरतक पकावे ॥

जठरस्य रुजाः सर्वास्तथा च मलविग्रहम्।
आध्मानकं तथाऽऽनाहं विषूचिं वह्निमान्द्यकम् ॥ ३२ ॥
आमदोषमशेषं च गुल्मं छर्दिं च दुर्जयम्।
ग्रहणीं श्वासकासौ च कृमिरोगं विशेषतः ॥ ३३ ॥

हन्यात्पूर्वाङ्गशूलं च मन्यास्तम्भं तथैव च ।
ज्वरे चैवातिसारे च शूलरोगे त्रिदोषजे ॥ ३४ ॥
पथ्यं रोगानुसारेण देयमस्मिन् भिषग्वरैः ।
श्रीमता नन्दिनाथेन वातविध्वंसनो रसः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह रस उदरके सब विकार, मलका अवरोध, आध्मान, आनाह, विषूचिका, मन्दाग्नि, समस्त आमदोष, गुल्म, दुर्जय वमन, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, विशेषकर कृमिरोग, पूर्वांग व सर्वांगशूल, मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार और त्रिदोषज शूलरोग इन सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै । इसमें रोगके अनुसार पथ्य देना चाहिये । इस वातविध्वंसन रसको श्रीमान् नन्दिनाथेन निर्माण कियाहै ॥२९-३५॥

वातनाशनरस ।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लौहं च माक्षिकम् ।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थं सिन्धुफेनं समांशिकम् ॥ ३६ ॥
पञ्चानां लवणानां च भागैकं सुविमर्दयेत् ।
वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पचेत् ॥
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लिह्याद्वातविनाशनम् ॥ ३७ ॥
पिप्पलीमूलक्काथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥
सर्वान्वातविकारांश्च निहन्त्याक्षेपकादिकान् ॥ ३८ ॥

शुद्ध पारा, सुवर्णभस्म, हीराभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म, हरताल, नीलासुरमा, नीलाथोथा और समुद्रफेन ये प्रत्येक समान भाग और पाँचों नमक एक भाग लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको थूहरके दूधके साथ एक दिनतक खरल करके भूधरयन्त्रमें रखकर पकावे । इस रसको प्रतिदिन एक एक माशे परिमाण लेकर अदरखके रस और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे और औषधिसेवन करनेके पश्चात् पीपलका चूर्ण डालकर पीपलामूलका क्वाथ पान करे । यह रस आक्षेपकादि सम्पूर्ण वातविकारोंको दूर करता है ॥ ३६-३८ ॥

वातकण्टकरस ।

वज्रं मृताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम् ।
मरिचं मर्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम् ॥ ३९ ॥

द्विक्षारं पञ्चलवणं मर्दितं स्यात्समं समम् ।
ततो निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ४० ॥
शुद्धमेतद्विचूर्ण्याथ विषं चास्याष्टमांशतः ।
टङ्कणं विषतुल्यांशं दत्त्वा जम्बीरकद्रवैः ।
भावयेद्दिनमेकं तु रसोऽयं वातकण्टकः ॥ ४१ ॥

हीरा १ भाग, अभ्रक २ भाग, सुवर्ण ३ भाग, तांबा ४ भाग, तीक्ष्णलोह ५ भाग, मुण्डलोह ६ भाग और कालीमिरच ७ भाग इन सब ओषधियोंको एकत्रकर अम्लवर्गकी ओषधियोंके द्वारा ३ दिनतक खरल करे । फिर इसमें सज्जी, जवाखार, पाँचोंनमक ये प्रत्येक समान भाग मिलाकर निर्गुण्डीके रसमें तीनदिन खरल करे । फिर औषधिको सुखाकर और चूर्ण करके समस्त औषधका आठवाँ भाग शुद्ध मीठा तेलिया और विषकी बराबर सुहागा मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें एक दिनतक भावना देवे । इस प्रकार यह वातकण्टकरस सिद्ध होता है ॥३९-४१॥

दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥ ४२ ॥
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणे ।
निर्गुण्डीमूलचूर्णं तु महिषाक्षं च गुग्गुलुम् ॥ ४३ ॥
समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता ।
अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ ४४ ॥
मण्डलं नाशयेत्सर्वं वातरोगं विशेषतः ।
सन्निपाते पिबेच्चानु तालमूलीकषायकम् ॥ ४५ ॥

सर्वप्रकारके वातरोगोंमें यह रस दो दो रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रस अथवा गोघृतके साथ वातरोगीको सेवन करावे । औषध सेवन करनेके पश्चात् निर्गुण्डीकी जडका चूर्ण और भैंसिया गूगल इनको समान भाग लेकर घीमें खरल करके एक एक कर्षकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली घृतके साथ मिलाकर सेवन करनी चाहिये और इसपर स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंका भोजन करे । इसके द्वारा शरीरके चकत्ते और सम्पूर्ण वातरोग दूर होते हैं । सन्निपातमें इस रसको सेवन कर ऊपरसे मुसलीका क्काथ पान करे ॥४२-४५॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस ।

हीरं सुवर्णं सुमृतं च तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम् ।
समं मृताभ्रं रससिन्दुरं च निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाऽश्मनो वा ॥

खल्ले द्रवेणैव कुमारिकाया गुञ्जाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात्।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरेष नाम्ना संपूज्य सम्यग्गिरिजां दिनेशम् ॥
हन्त्यामयान् योगशतैर्विवर्ज्यामयप्रणाशाय मुनिप्रणीतः।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान् जरां विनिर्जित्य सुखं विभाति ॥

हीरा, सुवर्ण, मोती और लोहा इन चारोंकी भस्म एक एक तोला, अभ्रकभस्म चार तोले और रससिन्दूर चार तोले इन सबको लोहेके अथवा पत्थरके खरलमें एकत्र करके घीकुँआरके रसक साथ उत्तम प्रकारसे खरल कर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस त्रैलोक्यचिन्तामणिनामक रसको प्रतिदिन प्रातःकाल पार्वती और सूर्यनारायणका यथाविधि पूजन कर सेवन करे। सैकडों प्रयोगोंके करनेसे भी जो दूर न हुए हों ऐसे रोगोंको नष्ट करनेके लिये मुनियोंने इस रसको निर्दिष्ट किया है। इसके प्रभावसे मनुष्य सम्पूर्ण रोगों और वृद्धताको जीतकर सुख भोगता है ॥ ४६–४८ ॥

स्निग्धे श्लेष्मण्यार्द्रकस्य रसेन पाययेत्सुधीः।
शुष्के च माक्षिकेणैव पित्ते घृतसितायुतम् ॥ ४९ ॥
श्लेष्मणि मारुते सम्यग्दुष्टे च समतां गते।
कणाचूर्णं क्षौद्रयुतं प्रमेहे दुग्धसंयुतम् ॥ १५० ॥
बलवर्णाग्निजननः कासघ्नः कफवातजित्।
आयुःपुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिषूदनः ॥ १५१ ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस रसको कफकी तरल अवस्थामें अदरखके रसके साथ, कफके शुष्क होनेपर शहदके साथ, पित्ताधिक्यमें घी और मिश्रीके साथ, कफका प्रकोप होनेपर एवं वायुकी समान अवस्थामें पीपलके चूर्ण और शहदके साथ और प्रमेहरोगमें दूधके साथ सेवन करावे। यह रस बल, वर्ण और अग्निको उत्पन्न करता एवं खाँसी, कफ और वातको दूर करता है। एवं आयुर्वर्द्धक, पुष्टिकारक, वृष्य और सब रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ४९–१५१ ॥

["तारशब्देनात्र शुद्धमौक्तिकमेवोच्यते नतु रजतम्। सममिति समभागं, चतुर्णां समं मृताभ्रम, केषाञ्चिन्मते रससिन्दूरस्थाने स्वर्णसिन्दूरं देयमिति ॥"]

["यहाँ तारशब्दसे शुद्ध मोती कहागया है, चाँदी नहीं। 'समम्' सब्दसे चारों भस्म समान भाग और चारोंकी बराबर अभ्रक भस्म लेवे। किसी २ के मतमें

रससिन्दूरकी जगह स्वर्णसिन्दूर डालना चाहिये । हीरेके अभावमें वैक्रान्तमणि अथवा पीली कौडीकी भस्म लेनी चाहिये ।]

स्वल्परसोनपिण्ड ।

पलमर्द्धपलं चैव रसोनस्य सुकुट्टितम् ।
हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थैः सौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ५२ ॥
चूर्णितैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम् ।
यथाग्नि भक्षितं प्रातारुबुकाथानुपानतः ॥ ५३ ॥
दिनेदिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
वातरोगं निहन्त्याशु अर्दितं सापतन्त्रकम् ॥ ५४ ॥
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ।
ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्यां कृमिदोषे विशेषतः ।
कटीपृष्ठामयं हन्यादुदरं च विनाशयेत् ॥ ५५ ॥

छिल्के आदिसे रहित और शुद्ध लहसनको ६ तोले लेकर कूटलेवे । फिर उसमें हींग, जीरा, सैंधानमक, कालानमक और त्रिकुटा ये प्रत्येक एक-एक माशे परिमाण बारीक चूर्णकर मिलादेवे । इसको प्रतिदिन प्रातःकाल अग्निके बलानुसार उपयुक्त मात्रासे अण्डके क्वाथके साथ एक महीनेतक सेवन करे । यह रसोनपिण्ड वातरोग, अर्दित, अपतन्त्रक, एकाङ्गरोग, सर्वाङ्गरोग, उरुस्तम्भ, गृध्रसी, कृमिरोग, विशेषकर कमर व पिठकी पीडा और सब प्रकारके उदररोगोंको नष्ट करता है ॥५२–५५॥

त्रयोदशाङ्गगुग्गुलु ।

आहाऽश्वगन्धा हबुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरवृद्धदारम् ।
रास्ना शताह्वा सशठी यमानी सनागरा चेति समैश्च चूर्णम् ॥
तुल्यं भवेत्कौशिकमत्र मध्ये देयं तथा सर्पिरथार्द्धभागम् ॥५६

आहा (बबूरकी फली), असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखुरू, विधारेके बीज, रायसन, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ, इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण समान भाग और सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर गूगल और गूगलसे आधा गौका घी लेकर सबको एकत्र उत्तम प्रकारसे खरल करके शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे ॥

सार्द्धाक्षमात्रं तु ततः प्रयोगात्कृत्वाऽनुपानं सुरयाथ यूषैः ।
मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि ॥५७

कटीग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ।
सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते मज्जाश्रिते स्नायुगते च कुष्ठे ॥
रोगाञ्जयेद्वातकफानुविद्धान् वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान् ।
भग्नास्थिबद्धेषु च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सन्तः॥

इस गूगलको छः मासे वा एक तोला परिमाण लेकर मदिरा, यूष, मन्दोष्ण जल वा दूध अथवा मांसरसके साथ सेवन करना चाहिये । इस त्रयोदशाङ्ग गूगलको कमरकी पीडा, गृध्रसी, बाहु और पृष्ठगत वात, हनु (ठोडी), जानु (घुटना), दोनों चरण, सन्धिस्थान, अस्थि, मज्जा और स्नायुगत वातरोग, कुष्ठ, अस्थिके भग्न, व विद्ध होनेपर और खञ्जवातरोगमें प्रयोग करना चाहिये । यह गूगल वातकफजन्य रोग, वातजनित हृदयकी पीडा, योनिदोष आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है । इस प्रकार आयुर्वेदाचार्योंने कहा है ॥

दशमूलाद्यघृत ।

दशमूलस्य निर्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
क्षीरेण च घृतं पक्कं तर्पणं वातपित्तजित् ॥
क्काथोऽत्र द्विगुणः सर्पिःप्रस्थः साध्यः पयःसमम्॥१६०॥

दशमूलके काढेमें जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहठी, ऋद्धि और वृद्धि) की औषधियोंका कल्क चार चार तोले, दूध, एक प्रस्थ और घी एक प्रस्थ डालकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे । यह घृत तृप्तिकारक, वात और पित्तको दूर करनेवाला है । इसमें दुगुना क्काथ, घी और दूध समान भाग लेना चाहिये ॥ १६० ॥

अश्वगन्धाद्यघृत ।

अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरं चतुर्गुणम् ।
घृतं पक्कं तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्द्धनम् ॥ ६१ ॥

असगन्धके क्वाथ और कल्कमें घी और घीसे चौगुना दूध डालकर घृतको पकावे । वातनाशक, वृष्य और मांसवर्द्धक है ॥ ६१ ॥

नकुलाद्यघृत ।

नकुलस्य च मांसस्य पचेत्प्रस्थं जलाढके ।
तत्समं दशमूलं च पक्कं माषबलान्वितम् ॥ ६२ ॥

घृतप्रस्थं पचेत्तत्र चतुर्भागावशेषितम् ।
शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धं च तत्समम् ॥ ६३ ॥
अष्टौ वर्गाश्च काकोल्यौ जीवन्ती मधुयष्टिका ।
एला त्वचं च पत्रं च त्रिकटु त्रिफला तथा ॥
मुस्तकं नागजिह्वा च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ॥ ६४ ॥

नौलेके १ प्रस्थ मांसको १ आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इसी प्रकार दशमूलकी औषधियाँ, उडद और खिरैंटी इनको एक एक प्रस्थ लेकर पृथक्‌ पृथक्‌ एक एक आढक जलमें पकाकर चौथाई जल शेष रक्खे । फिर उसमें घृत १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, गौका दूध, १ प्रस्थ एवं अष्टवर्गकी औषधियाँ (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली), जीवन्ती, मुलहठी, इलायची, दारचीनी, तेजपात, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और अनन्तमूल, इन प्रत्येकके कल्कको एक एक कर्ष परिमाण डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे ॥ ६२–६४ ॥

सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ॥ ६५ ॥
पक्षाघाते महोन्मादे चाध्माने कोष्ठनिग्रहे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाधिर्य्ये मूकमिन्मिने ॥ ६६ ॥
ऊर्ध्वजत्रुगते वाते जंघापार्श्वादिसंश्रिते ।
नकुलाद्यमिदं नाम्ना ऊर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ६७ ॥

इस नकुलाद्यनामक घृतको सर्वप्रकारके वातविकार, विशेषकर अपस्मार, पक्षाघात, महोन्माद, आध्मान, कोष्ठबद्धता, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बधिरता, मूकता, मिनमिनापन, ऊर्ध्वजत्रुगतवात, जंघागतवात, और पार्श्वादिगत वातरोगमें सेवन कराना चाहिये । यह ऊर्ध्वजत्रुगत सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥ ६५–६७ ॥

छागलाद्यघृत ।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गनखादिकम् ।
पञ्चमूलीद्वयं चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ६८ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरं चैव शतावरीम् ॥ ६९ ॥

चर्म, सींग और नखादिसे रहित बकरेका मांस ५० पल और दशमूलके समान भाग मिश्रित समस्त औषधियाँ ५० पल लेकर दोनोंको अलग अलग

एकएक द्रोण (३२ सेर) जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ एवं जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीर-काकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलहठी इन सबका कल्क घीसे चौथाई भाग डालकर घृतको पकाना चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्य्ये मूकमिन्मिने ॥ १७० ॥
जडगद्गदपंगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ।
अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ७१ ॥

इस छागलाद्य घृतको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं । यह घृत अर्दितवात, कर्णशूल, बधिरता, मूकता, मिन्मिनापन, जडता, गद्गदता, पंगुता, खञ्जवात, गृध्रसी, कुबडापन, अपतानक और अपतन्त्रक इन समस्त रोगोंमें हित-कर है ॥ १७०-१७१ ॥

बृहच्छागलाद्यघृत ।

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम् ।
अश्वगन्धापलशतं वाट्यालकशतं तथा ॥७२॥
घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः ।
क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्छतावर्या रसं तथा ॥
ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ७३ ॥

आरोग्य बकरीका अथवा नपुंसक बकरेका मांस १०० पल, दशमूल १०० पल, असगन्ध १०० पल और खिरैंटी १०० पल लेकर प्रत्येकको एक एक द्रोण परि-माण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और सबको एकत्र मिलालेवे। फिर उस क्वाथमें गौका घी, दूध, और शतावरका रस प्रत्येक एकएक आढक (१२८ पल) डालकर सुदृढ ताँबेके बर्तन में धीरे धीरे मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ७४ ॥
जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम् ।
मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिनीद्वयशारिवे ॥ ७५ ॥

मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी ।
दार्वीप्रियङ्गु त्रिफला नतं तालीशपद्मकौ ॥ ७६ ॥
एला पत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम् ।
मञ्जिष्ठां दाडिमं दारु रेणुकं सैलवालुकम् ॥ ७७ ॥
विडङ्गं जीरकं चैव पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ।
वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ७८ ॥
निधापयेत्स्निग्धभाण्डे मृन्मये भाजने शुभे ।
देवदेवं नमस्कृत्य सम्पूज्य गणनायकम् ॥ ७९ ॥
पिबेत्पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ।
अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ १८० ॥

कल्कके लिये जीवन्ती, मुलहटी, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलकमल, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, शारिवा, अनन्तमूल, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, त्रिफला, तगर, तालीसपत्र, पद्माख, इलायची, तेजपात, शतावर, नागकेशर, चमेलीके फूल, धनियाँ, मंजीठ, अनार, देवदारु, रेणुका, भूरिछरीला, एलुआ, वायविडंग और जीरा इस प्रत्येक औषधिको चार चार तोले पीसकर पकते समय डालदेवे । जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर शीतल होजाय तब वस्त्रमें छानकर उसमें एक प्रस्थ शुद्ध खाँड मिलाकर चिकने और स्वच्छ मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल देवाधिदेव गणेशजीको नमस्कार और पूजन कर एक एक तोला परिमाण घृत पान करे और ऊपरसे यथारोगानुसार अनुपानका सेवन करे । अब इस सिद्ध औषधके वीर्यको कहते हैं. उसको सुनो-॥७४-१८०॥

सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ।
उन्मादे पक्षघाते च आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥ ८१ ॥
कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके ।
भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोदरे चाक्षिपातजे ॥ ८२ ॥
पार्श्वशूले च हृच्छूले बाह्यायामेऽर्दिते तथा ।
वातकण्टकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्रसपङ्गुके ॥ ८३ ॥
क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्मानमिन्मिने ।
अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथेऽर्द्दगे ॥ ८४ ॥

आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थिकज्वरेऽपि च।
हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवापबाहुके॥ ८५॥
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा।
जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफःस्तम्भे मदात्यये॥ ८६॥
आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च।
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे॥ ८७॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे ज्वरे भ्रमे।
क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिस्सरणे तथा॥ ८८॥
स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने।
एकाङ्गस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा॥ ८९॥
नगादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके।
आभिचारिकदोषे च मनस्सन्तापसम्भवे॥ १९०॥

यह घृत सर्व प्रकारके वातरोग, विशेषकर अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, काष्ठबद्धता, कर्णरोग, शिरोरोग, बधिरता, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गृध्रसी, उदररोग, नेत्ररोग, पार्श्वशूल, हृदयशूल, बाह्यायाम, अर्दित, वातकण्टक, हृदयरोग मूत्रकृच्छ्र, पंगुता, क्रोष्टुशीर्ष, खञ्जवात, कुब्जवात, गद्गदवात मिनमिनवात, अपतानक, अन्तरायाम, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, अफारा, बवासीर, चौथिया ज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीणता, अपबाहुक, दण्डापतानक, भग्नरोग, दाह आक्षेप, जीर्णज्वर, विषविकार, कोढ, लिंगस्तम्भ, मदात्यय, आढ्यवात, अग्निकी मन्दता, वातरक्त, एकांगवात, सर्वांगवात, हस्तकम्प, शिरःकम्प, जिह्वाकी जडता, ज्वर, भ्रम, इन्द्रियोंकी क्षीणता, वीर्यकी हीनता शुक्रपात, स्त्रियोंके वातके द्वारा रक्तस्राव होना, पटलगत नेत्ररोग, आँख फडकना, एक अंग व सम्पूर्ण अंगोंका स्पन्दन (फडकना), वृक्ष-पर्वतादिकें ऊपरसे गिरनेसे उत्पन्न हुई वात, स्त्रियोंकी अप्राप्तिके कारण उत्पन्न हुई वात, अभिचारक दोष और मनके सन्तापसे उत्पन्न हुई वातव्याधिमें सेवन करना चाहिये॥ ८५-१९०॥

ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वादिसंस्थिताः॥ ९१॥
मातृग्रहाभिभूतश्च शिशुर्यश्च विशुष्यति।
प्रक्षीणबलमांसश्च न वर्त्मगमनक्षमः॥ ९२॥

घृतेनानेन सिध्यन्ति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ।
निहन्ति सकलान्रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥ ९३ ॥

सर्व प्रकारके वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग, पित्तसे होनेवाले सर्व प्रकारके रोग, सम्पूर्ण शिरके रोग, जंघा, पसली आदिके रोग, मातृग्रहादिके आक्रमणसे या अन्यान्य दोषोंसे बालकका सूखना, बल और मांसकी क्षीणता और मार्गमें चलनेकी असमर्थता आदि सम्पूर्ण रोग इस घृतके सेवन करनेसे इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे छूटा हुआ वज्र असुरोंको तत्काल नाश करदेता है। यह परमदुर्लभ घृत समस्त रोगोंको हरनेवाला है ॥ ९१-९३ ॥

रसायनं वह्निबलप्रदं च वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् ।
दन्तावलेन्द्रेण समानतेजा दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति ॥ ९४ ॥
स्त्रीणां शतं गच्छति चातिरेकं न याति तृप्तिं सरसः समाङ्गः ।
अपुत्रिणीं पुत्रशतं करोति गतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥ ९५ ॥
महद्घृतं नाम तु छागलाद्यं विनिर्मितं वातनिषूदनं च ।
शिवं शुभं रोगभयापहं च चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः ॥९६॥

यह घृत रसायन, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक, शरीरको श्रेष्ठ और सुन्दर करनेवाला, गजेन्द्रकी समान तेजस्वी और चिरायुवाले सौ पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सौ स्त्रियोंके साथ रमण करे तो भी (सारस पक्षीकी समान) तृप्त नहीं होता तथा समशरीर, अक्षीण वीर्यवाला ही रहता है। वन्ध्यास्त्री भी सैकड़ों पुत्रोंवाली होती है और वृद्ध मनुष्य कामदेवकी समान बलवान् होता है। इस बृहच्छागलाद्यनामक घृतको वातके नष्ट करने एवं कल्याण करनेके लिये और रोगोंका भय निवारण करनेके लिये हारीतमुनिने निर्म्माण किया है ॥ ९४-९६ ॥

हंसाद्यघृत ।

हंसमांसतुलां नीत्वा जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन्प्रस्थं प्रतनसर्पिषः ॥ ९७ ॥
सैन्धवं कुडवार्द्धं च तैलमेरण्डसम्भवम् ।
कुडवं घृततुल्यं च भूलतासम्भवं रसम् ॥ ९८ ॥
प्रक्षिप्य विपचेत्सर्पिः कुशलो मतिमान् भिषक् ।
पक्षाघातादिवातेषु घृतं स्यादमृतोपमम् ॥ ९९ ॥

हंसके मांसको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस रसमें पुराना घी १ प्रस्थ, सैंधानमक १६ तोले, अण्डीका तेल ३२ तोले और केंचुएका रस ६४ तोले डालकर चतुर वैद्य विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह घृत पक्षाघात आदि वातरोगमें अमृतकी समान गुण करता है ॥ ९७-९९ ॥

रसोनाद्य तैल।

रसोनकल्कस्वरसेन पक्वं तैलं पिबेद्यस्त्वनिलामयार्तः।
तस्याशु नश्यन्ति च वातरोगा ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः॥

जो वातरोगी लहसनके कल्क और स्वरसके साथ तिलके तैलको पकाकर पान करे तो उसके सम्पूर्ण वातरोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे दुष्टबुद्धिके पास पडे हुए महान् ग्रन्थ ॥ २०० ॥

मूलकाद्य तैल।

मूलकस्वरसं तैलं क्षीरं दध्यम्लकाञ्जिकम्।
तुल्यं विपाचयेत्कल्कैर्बलाशिग्रुकसैन्धवैः ॥ १ ॥
पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुचित्रकैः।
भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ २ ॥
पुष्कराह्वशठीबिल्वशताह्वनतदारुभिः।
तत्सिद्धं पीतमत्युग्रान् हन्ति वातात्मकान् गदान् ॥ ३ ॥

मूलीका रस, तिलका तैल,गौका दूध,दही और काँजी ये सब समान भाग लेवे। कल्कके लिये खिरैंटी, सहिंजना, सैंधानमक, पीपल, अतीस, रायसन, चव्य, अगर, चीता, भिलावा, वच, कूठ, गोखुरू, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलकी छाल, सौंफ, तगर और देवदारु इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे और सबको यथाविधि मिलाकर तैलको पकावे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए तैलको पीनेसे अत्यन्त प्रबल वातजन्य रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥

वायुच्छायासुरेन्द्रतैल।

वत्सामलकं पलशतं तत्समं दशमूलकम्।
जलषोडशिके पक्त्वा पादशेषं समुद्धरेत ॥ ४ ॥
एतत्क्वाथे पचेत्तैलं द्वात्रिंशत्पलमेव च।
कल्कार्थं दीयते तत्र मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ ५ ॥

कुष्ठमेला देवदारु शलजं सैन्धवं वचा।
कक्कोलं पद्मकाष्ठं च शृङ्गी तगरपादिका॥ ६ ॥
गुडूची मुद्गपर्णी च माषपर्णी शतावरी।
नागजिह्वा श्यामलता शतपुष्पा पुनर्नवा॥
एषां तोलद्वयं भागं दत्त्वा तैलं तु पाचयेत्॥ ७ ॥

खिरेंटी १०० पल और दशमूल १०० पल लेकर दोनोंको पृथक्क पृथक्क सोलह-गुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें तिलका तेल ३२ पल और कल्कके लिये मंजीठ, लालचन्दन, कूठ, इलायची, देवदारु, भूरिछरीला, सेंधानमक, वच, शीतलचीनी, पद्माख, काकडासिंगी, तगर, गिलोय, मुगवन, मषवन, शतावर, अनन्तमूल, सारिवा, सोया और पुनर्नवा इन प्रत्येकक दो दो तोल चूर्णको डालकर विधिपूर्वक तैलको पकावे॥ ४-७॥

एतत्तलवरं नाम्ना वायुच्छायासुरेन्द्रकम्।
सर्ववातविकारेषु हितं पुंसां च योषिताम्॥ ८ ॥
क्षीणशुक्रार्त्तवानां च नारीणां च विशेषतः।
चेतोविकारं हन्त्याशु वातमाक्षेपसम्भवम्॥ ९ ॥
मर्म्मवातं श्रमकृतं गात्रकम्पादिकं तथा।
हिक्कां श्वासं च कासं च वातपित्तसमुद्भवम्॥२१०॥
अपस्मारे महोन्मादे हितं लेपे च भक्षणे
श्रीमद्गहननाथेन रचितं विश्वसम्पदे॥२११॥

यह वायुच्छायासुरेन्द्रनामक श्रेष्ठ तैल सर्व प्रकारक वातरोगोंमें हितकारी है। विशेषकर क्षीणवीर्यवाले पुरुषों और क्षीणरजवाली स्त्रियोंके लिये अत्यन्त उपकारी है। एवं मानसिकविकार, वातजन्य आक्षेपरोग, मर्मगत वात, श्रमजनित वात, शरीरमें कम्प होना, हिक्कारोग और वातपित्तजन्य श्वास, कासरोगको शीघ्र नष्ट करताहै। अपस्मार और प्रबल उन्माद रोगमें इस तैलको मर्दन और भक्षण करनेसे विशेष उपकार होताहै। इसको संसारके कल्याणके लिये श्रीगहन-नाथजीने रचा है॥ ८-२११॥

महाबलातैल ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ।
यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ १२ ॥
अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः ।
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ १३ ॥
तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम् ॥ १४ ॥
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम् ।
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १५ ॥
तत्साधु सिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽपि वा ।
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् सुनिगुप्तं निधापयेत् ॥ १६ ॥

खिरैंटीकी जडका क्वाथ, दशमूलका क्वाथ, जौ, बेर और कुलथी इन प्रत्येक का क्वाथ आठ आठ सेर, दूध ९ सेर और तिलका तैल एक सेर लेवे । फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें काकोल्यादि गणकी ओषधियाँ (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, गिलोय, मुगवन, मषवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडासिंगी, जीवन्ती, मुलहठी, दाख, पुण्डरिया) सैंधानमक, अगर, सफेदराल, धूपसरल, देवदारु, मंजीठ, लालचन्दन, कूठ, इलायची, तगर, बालछड, भूरिछरीला, तेजपात, तगर, सारिवा, वच, शतावर, असगन्ध, सोया और पुनर्नवा इन सब ओषधियोंके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्नि के द्वारा उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे । फिर उसको सुवर्ण या चाँदी अथवा मिट्टीके शुद्ध बर्त्तनमें भरकर और अच्छे प्रकारसे ढककर रखदेवे ॥ १२-१६ ॥

बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
यथाबलं भिषङ् मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ १७ ॥
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ।
क्षीणवाते मर्महतेऽभिहते मथितेऽथवा ॥ १८ ॥
भग्न श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत् ।
सर्वमाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन् व्यपोहति ॥ १९ ॥

हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं सुदुस्तरम् ।
षण्मासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ २२० ॥
अत्युग्रधातुः पुरुषो भवेच्च नवयौवनः ।
एतद्धि राज्ञा कर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ॥
सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चैव ये नराः ॥ २१ ॥

यह महाबलानामक तैल सर्वप्रकारके वातरोग और अन्य अनेक रोगोंको नष्ट करता है । वैद्य, यह तेल प्रसूता स्त्रीको उसके बलके अनुसार एवं गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्री और क्षीणवीर्य मनुष्यको यथोचित मात्रासे सेवन करावे । इस तेलको वातके द्वारा शरीर क्षीण होनेपर, मर्महत, अभिहत अथवा मथितवात, अस्थि आदि के टूटजानेपर और श्रमजन्य वातरोगमें सर्वथा प्रयोग करना चाहिये । यह सर्वप्रकारकी आक्षेपादि वातव्याधि, हुचकी, खाँसी, नेत्ररोग, गुल्म, श्वास और अंत्रवृद्धिरोग इन सबको छः मासपर्यन्त सेवन करनेसे नष्ट कर देता है । इसको सेवन करनेसे मनुष्य अत्यन्त प्रबल धातुवाला और नवयौवनयुक्त होता है । राजकर्मचारी मनुष्य, सुख चाहनेवाले और बलकी इच्छा करनेवाले सुकुमार मनुष्योंको राजाकी आज्ञासे यह तेल निर्माणकर सेवन करना चाहिये ॥ १७–२२१ ॥

अश्वगन्धातैल ।

शतं पक्त्वाऽश्वगन्धाया जलद्रोणेऽशशेषितम् ।
विस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
कल्कैर्मृणालशालूककबिसकिञ्जल्कमालतीः ।
पुष्पैर्ह्रीबेरमधुकशारिवापद्मकेशरैः ॥ २३ ॥
मेदापुनर्नवाद्राक्षामञ्जिष्ठाबृहतीद्वयैः ।
एलैलवालुत्रिफलामुस्तचन्दनपद्मकैः ॥ २४ ॥
पक्वं रक्ताश्रयं वातं रक्तपित्तमसृग्दरम् ।
हन्यात्पुष्टिं बलं कुर्यात्कृशानां मांसवर्द्धनम् ॥ २५ ॥
रेतोयोनिविकारघ्नं व्रणदोषापकर्षणम् ।
षण्ढानपि वृषान्कुर्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ २६ ॥

असगन्धको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उसमें तिलका तैल

और तेलसे चौगुना दूध डालकर एवं कमलकी नाल, भसींडा, कमलके सूक्ष्म तन्तु, नागकेशर, मालतीके फूल, सुगन्धवाला, मुलहठी, सारिवा, कमलकेशर, मेदा, पुनर्नवा, दाख, मँजीठ, कटेरी, बडी कटेरी, इलायची, एलुआ, त्रिफला, नागरमोथा, चन्दन और पद्माख इन ओषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे । यह तैल वातरक्त, रक्तपित्त और रक्तप्रदरको नष्ट करता है । एवं शारीरिक पुष्टि, बल और कृश मनुष्योंके मांसकी वृद्धि करता है । वीर्य और योनिके विकारोंको दूर करता और व्रणके सम्पूर्ण दोषोंको हरता है । पान, मर्दन और अनुवासनवस्तिके द्वारा सेवन करनेसे यह तैल षण्ढ (नपुंसक) मनुष्योंकोभी अत्यन्त वीर्यवान् करता है ॥२२-२६॥

श्रीगोपालतैल ।

रसाढकं शतावर्याः कूष्माण्डामलयोस्तथा ।
वाजिगन्धासहचरबलानां च शतं पृथक् ॥ २७ ॥
परिपच्याम्भसां द्रोणे पादशेषेऽवतारयेत् ।
पञ्चमूलं महद् व्याघ्री मूर्वा केतकपूतिका ॥ २८ ॥
पारिभद्रस्य सर्वेषां ग्राह्यं दशपलं शुभम् ।
क्वाथयित्वा जलद्रोणे तत्पादमवशेषयेत् ॥ २९ ॥
आढकं तिलतैलस्य कल्कैरेतैश्च संपचेत् ।
अश्वगन्धा चोरपुष्पी पद्मकं कण्टकारिका ॥ २३० ॥
बलाऽगुरु घनं पूति शिलाऽगुरुचन्दनम् ।
चन्दनं त्रिफला मूर्वा जीवनीयकटुत्रयम् ॥ ३१ ॥
पूतिकुंकुमकस्तूर्यश्चातुर्जातं च शैलजम् ।
नखमुस्तमृणालानि नीलोत्पलमुशीरकम् ॥ ३२ ॥
मांसी मुरा सुरतरुर्वचा दाडिमतुम्बुरू ।
ऋद्धिवृद्धी दमनकं क्षुद्रैलाऽर्द्धपलं पृथक् ॥ ३२ ॥

शतावरका रस १ आढक (२५६ तोले), पेठेका रस १ आढक, आमलोंका रस १ आढक, असगन्ध, पीली कटसरैया और खिरेंटी इन तीनोंको सौ सौ पल लेकर पृथक् पृथक् एकएक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । इसी प्रकार बेलकी छाल, शोनापाठेकी छाल, कम्भारीकी छाल, पाढरकी छाल, अरणीकी छाल, बडी कटेरी, मूर्वाकी जड, केतकीकी

जड, पोईका शाक और फरहदकी छाल इन सबको दसदस पल लेकर एकएक द्रोणपरिमाण जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें तिलका तेल १ आढक एवं असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्माख, कटेरी, खिरेंटी, अगर, नागरमोथा, रोहिषतृण, शिलारस, अगर, लालचन्दन, सफेदचन्दन, त्रिफला, मूर्वा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलहठी, त्रिकुटा, रोहिषतृण, केशर, कस्तूरी, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, भूरिछरीला, नख, मोथा, कमलनाल, नीलकमल, खसकी जड, जटामांसी, मुरामांसी, देवदारु, वच, अनार, तुम्बुरु, ऋद्धि, वृद्धि, दौना और छोटी इलायची इन प्रत्येक औषधिके दो दो तोले कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे ॥ २७–२३२ ॥

एतत्तैलवरं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ।
व्याधीनशेषाञ्जनयेत्स्मृतिं मेधां धृतिं धियम् ॥ ३४ ॥
वातरोगान्विशेषेण प्रमेहान् हन्ति विंशतिम् ।
गर्भं संस्थापयेत्स्त्रीणां सर्वं शूलं व्यपोहति ॥
मूत्रकृच्छ्रमपस्मारमुन्मादान्निखिलानपि ॥ ३५ ॥
स्थविरोपि जराजीर्णस्तैलस्यास्य निषेवणात् ।
लीलया प्रमदानां च उन्मदानां शतं जयेत् ॥ ३६ ॥
तिष्ठेद्यस्य गृहे तैलं श्रीगोपालाभिधंशुभम् ।
न तत्र भूताः सर्पन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ॥ ३७ ॥
न दारिद्र्यं भवेत्तस्य विघ्नः कश्चिन्न जायते ।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतद्विश्वकल्याणहेतवे ॥ ३८ ॥

यह उत्तम तैल मर्दन करनेसे वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुई सम्पूर्णव्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है । एवं स्मरणशक्ति, मेधा, धैर्य और बुद्धिको उत्पन्न करता है । विशेषकर वातरोग और बीसों प्रकारके प्रमेहोंको दूर करता है और स्त्रियोंके गर्भको स्थापन करता है । सर्व प्रकारके शूलरोग, मूत्रकृच्छ्र, अपस्मार और सर्वप्रकारके उन्मादरोगोंको नाश करता है । जिसका देह वृद्धावस्थाके द्वारा जीर्ण होगया हो ऐसा वृद्ध मनुष्यभी इस तैलको सेवन करनेसे सैकडों उन्मत्त स्त्रियोंको सहजही जीत सकता है । जिसके घरमें यह श्रीगोपालनामक तैल रहता है वहाँ भूत, पिशाच और राक्षस कभी नहीं प्रवेश करते ।

उसको न दरिद्रता प्राप्त होती है और न कोई विघ्न उपस्थित होता है । इस तैलको संसारके कल्याणके लिये अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ ३४-२३८ ॥

विष्णुतैल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ ३९ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४० ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ४१ ॥
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथैव च ।
अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ ४२ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरेंटी, शतावर, अण्डकी जड, कटेरी, बडी कटेरीकी जड, दुर्गन्धकरञ्जकी जड, गरहेडुकी जड और पियाबाँसेकी जड इन प्रत्येकके चार चार तोले कल्क और गौके अथवा बकरीके चार प्रस्थ दूधके साथ एक प्रस्थ (६४ तोले) तिलका तेल मिलाकर यथाविधि पकाना चाहिये । अब इस प्रकार सिद्ध किये हुए तेलके वीर्यको कहता हू, उसको सुनो- यह तेल वातकी प्रबलतासे नष्ट अङ्गवाले हाथी और घोडोंके लिये अत्यन्त हितकर है । पुरुषत्वहीन मनुष्य इस तेलको पान करनेसे अवश्य पुरुषत्वको प्राप्त होता है ॥ ३९-४२ ॥

हृच्छूले पार्श्वशूले च तथैवार्द्धावभेदके ।
कामलापाण्डुरोगेषु शर्करास्वश्मरीषु च ॥ ४३ ॥
क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरसा जर्जरीकृताः ।
येषां चैव क्षयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ ४४ ॥
अर्दितं गलगण्डं च वातशोणितमेव च ।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासां चैव प्रदापयेत् ॥ ४५ ॥
गर्भमश्वतरी विन्द्यान्न च मृत्युवशं व्रजेत् ।
एतत्तैलवरं चैव विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ४६ ॥

हृदयशूल, पार्श्वशूल, अर्द्धावभेदक रोग, कामला, पाण्डुरोग, शर्कराका जाना, पथरीरोगमें एवं वृद्धताके कारण क्षीण होगई है इन्द्रिय जिनकी ऐसे और जीर्ण देह-

वाले वृद्ध मनुष्योंको तथा क्षयरोग, दारुण अन्त्रवृद्धि, अर्दितवात, गलगण्डरोग और वातरक्तसे युक्तको तथा वन्ध्यास्त्रियोंको यह तेल सेवन करना चाहिये। इसके प्रभावसे खच्चरी भी गर्भको धारण करती है और इसको सेवन करनेवाला मनुष्य मृत्युको प्राप्त नहीं होता, इस अत्युत्तम तेलको विष्णु भगवान्‌ने वर्णन किया है॥ २४३–२४६॥

बृहद्विष्णुतैल।

पयोधरं चाश्वगन्धा जीवकर्षभकौ शठी।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती मधुयष्टिका॥ ४७॥
मधूरिका देवदारु पद्मकाष्ठं च शैलजम्।
मांसी चैला त्वचं कुष्ठं वचा चन्दनकुङ्कुमम्॥ ४८॥
मञ्जिष्ठा मृगनाभिश्च श्वेतचन्दनरेणुकम्।
पर्णिन्यः कुन्दुरवोटी च ग्रन्थिकं च नखी तथा॥ ४९॥
एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलस्यापि तथाऽऽढकम्।
शतावरीरसं तुल्यं दुग्धं चापि समं पचेत्॥ २५०॥

नागरमोथा, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहठी, सौंफ, देवदारु, पद्माख, भूरिछरीला, बालछड, इलायची, दारचीनी, कूठ, बच, लालचन्दन, केशर, मंजीठ, कस्तूरी, श्वेतचन्दन, रेणुका, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुगवन, मषवन, कुन्दुरू, गठिवन और नख इन प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले एवं तिलका तैल १ आढक, शतावरका रस १ आढक और गोदुग्ध १ आढक लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तैलको पकावे॥ ४७–२५०॥

विष्णुतैलमिदं श्रेष्ठं सर्ववातविकारनुत्।
ऊर्ध्ववातं तथा वातमङ्गनिग्रहमेव च॥ ५१॥
शिरोमध्यगतं वातं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्।
हन्ति नानाविधं वातं सन्धिमज्जागतं तथा॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला॥ ५२॥
ये वातप्रभावा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥ ५३॥

यह श्रेष्ठ विष्णुतैल सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करता है। ऊर्ध्वगत वात सर्वांगवातकी पीडा, शिरके वातरोग, मन्यास्तम्भ, गलेके रोग, सन्धि व मज्जागत वात और अन्य नानाप्रकारके वातरोगोंको नष्ट करता है। एक अंगका सूख जाना, गतिशक्तिकी शिथिलता एवं वातसे और पित्तसे उत्पन्न हुए सर्व प्रकारके रोगोंको यह तेल इस प्रकार नाश करदेता है जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ९१-२९३ ॥ नारायणतैल।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शठी बला।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ ९४ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ९५ ॥
पादशेषे च पूते च गर्भं चैनं समावपेत्।
पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागुरु ॥ ९६ ॥
शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला।
अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च योजयेत् ॥ ९७ ॥
गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत्।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ९८ ॥

शतावर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कचूर, खिरैंटी, अण्डकी जड, कटेरी और बडी कटेरीकी जड, दुर्गन्धकरञ्जकी जड, गरहेडुयेकी जड, और पियाबाँसेकी जड इन सबको दस दस पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे। फिर इस क्वाथमें पुनर्नवा, वच, देवदारू, सौंफ, रक्तचन्दन, अगर, भूरिछरीला, तगर, कूठ, इलायची, बालछड, शालपर्णी, खिरैंटी, असगन्ध, सैंधानमक और रास्ना इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, एवं गौका दूध २ प्रस्थ, बकरीका दूध दो प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ और तिलका तैल एक प्रस्थ डालकर उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे। अब इस प्रकार सिद्ध कियेहुए तेलके वीर्यको सुनो-९४-९८ ॥

अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ॥ ९९ ॥
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत्।
आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ॥ ६० ॥

गर्भमश्वतरीविन्द्यात्किम्पुनर्मानुषी तथा।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातरक्तं गलग्रहम् ॥ ६१ ॥
अपचीं गण्डमालां च तथैवार्द्धावभेदकम्।
कामलां पाण्डुरोगं च अश्मरीं चैव नाशयेत् ॥ ६२ ॥
तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम्।
नारायणमिदं ख्यातं वातान्तकरणं परम् ॥ ६३ ॥

यह तेल वातरोगसे टूटगये अंग जिनके ऐसे घोडे, हाथी और मनुष्योंको सेवन कराना चाहिये। इससे सर्वप्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं। इसको पान करनेसे मनुष्य दीर्घायु और सुदृढ अंगवाला होता है। इसके सेवन करनेसे खच्चरीभी गर्भको धारण कर लेतीहै फिर स्त्रीका तो कहनाही क्या? यह तैल हृदयशूल, पसलीकी पीडा, वातरक्त, गलेके रोग, अपची, गण्डमाला, अर्द्धावभेदक, कामला, पाण्डुरोग और पथरी इन सब रोगोंको नष्ट करताहै। इस तैलको विष्णुभगवान्ने निर्माण कियाहै, इसलिये इसको नारायणतैल कहते हैं। यह सर्वप्रकारके वातरोगोंको समूल नाश करताहै ॥ २५९-२६३ ॥

मध्यमनारायणतैल।

बिल्वोऽग्निमन्थः श्योनाकः पाटलः पारिभद्रकः।
प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका।
बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ ६४ ॥
एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत्।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ६५ ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम्।
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ॥ ६६ ॥
एषां द्विपलीकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ६७ ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम्।
पाने बस्तौ तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

बेलकी छाल, अरणीकी छाल, सोनापाठेकी छाल, पाढरकी छाल, फरहदकी छाल, प्रसारणी, असगन्ध, बडी कटेरी, कटेरी, खिरैंटी, कंघी, गोखरू और

पुनर्नवा इन सबको दसदस पल लेकर ४ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें तिलका तैल १ आढक (२५६ तोले) एवं सोया, देवदारु, बालछड, भूरिछरीला, वच, चन्दन, तगर, कूठ, इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, रास्ना, असगन्ध, सैंधानमक, पुनर्नवा इन प्रत्येक औषधिका कल्क आठ आठ तोले, शतावरका रस एक आढक और बकरी अथवा गौका दूध चार आढक परिमाण डालकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे । इस तेलको पान करना, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना), मालिश करना और भोजनादिकमोंमें व्यवहार करना चाहिये ॥ ६४–६८ ॥

अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः ।
पङ्गुश्च पीठसर्पी च तैलेनानेन सिद्ध्यति ॥ ६९ ॥
अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ।
मन्यास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्तरोगे गलग्रहे ॥ २७० ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ।
क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥ ७१ ॥
बधिरा लम्बजिह्वाश्च मन्दमेधस एव वा ।
अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ॥७२॥
वातार्त्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ।
एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ ७३ ॥

इस तेलको सेवन करनेसे वातरोगसे पीडित घोडा, हाथी अथवा मनुष्य और पीठसे खिचडनेवाला व पंगु मनुष्य आरोग्य होता है । यह तेल अधोभागस्थित और शिरोमध्यगत जो वातरोग हैं एवं मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग और गलेके रोगोंमें विशेष उपयोगी है । जिसका एक अंग सूख गया हो, जिसकी गति विह्वल होगयी हो, जो क्षीण इन्द्रिय, नष्टवीर्य और जो ज्वरसे क्षीण देहवाले हैं तथा बहरे, लम्बी जीभवाले और मन्दबुद्धिवाले जो पुरुष हैं, अल्प सन्तानवाली और जो कदापि गर्भको धारण नहीं करती ऐसी स्त्री, जिनके अण्डकोष वातसे पीडित हैं और जिनके दारुण अन्त्र-वृद्धि रोग हो उन मनुष्योंको यह अत्युत्तम तेल है । इसको नारायण तैल कहते हैं ॥ २६९–२७३ ॥

महानारायणतैल ।

बिल्वोऽश्वगन्धा बृहती श्वदंष्ट्रा श्योनाकवाटचालक-
पारिभद्रम् । क्षुद्रा कठिल्लाऽतिबलाऽग्निमन्थं मूलानि

चैषां सरणीयुतानाम् ॥ ७४ ॥ मूलं विदध्यादथ पाट-
लानां प्रस्थं सपादं विधिनोद्धृतानाम् । द्रोणैरपामष्टभि-
रेव पक्त्वा पादावशेषेण रसेन तेन ॥ ७५ ॥ तैलाढ-
काभ्यां सममेव दुग्धमाजं निदध्यादथवापि गव्यम् ।
एकत्र सम्यग्विपचेत्सुबुद्धिर्दद्याद्रसं चैव शतावरीणाम् ।
॥ ७६ ॥ तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र रास्नाश्वगन्धामिसि-
दारुकुष्ठम् । पर्णीचतुष्कागुरुकेशराणि सिंधूत्थमांसी-
रजनीद्वयं च ॥७७॥ शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि एला-
स्त्रयष्टीतगराब्दपत्रम् । भृङ्गाष्टवर्गाम्बु वचा पलाशं
स्थौणेयवृश्चीरकचोरकाख्याम्॥एतैः समस्तैर्द्विपलप्रमाणै-
रालोड्य सर्वं विधिना विपक्वम् ॥ ७८ ॥

बेलकी छाल, असगन्ध, बडीकटेरी, गोखुरू, सोनापाठा, खिरैंटी, फरहद, कटेरी, पुनर्नवा, कंघी, अरणी, प्रसारणी और पाढलकी जड इन प्रत्येक ओषधिको अस्सी अस्सी तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते दो द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथके साथ तिलका तेल दो आढक (सोलह सेर), बकरी या गौका दूध दो आढक, शतावरका रस दो आढक एवं रायसन, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूठ, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अगर, केशर, सैंधानमक, बालछड, हल्दी, दारुहल्दी, भूरिछरीला, चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मँजीठ, तगर, नागरमोथा, तेजपात, भाँगरा, अष्टवर्गकी आठों ओषधियाँ (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली), सुगन्ध-वाला, वच, ढाककी जड, गठिवन, सफेद पुनर्नवा और चोरक (भटेउर) इन सब ओषधियोंके कल्कको आठ आठ तोले मिलाकर विधिपूर्वक तैलको पकावे ७४–७८

कर्पूरकाश्मीरमृगाण्डजानां चूर्णीकृतानां त्रिपलप्रमा-
णम् । प्रस्वेददौर्गन्ध्यनिवारणाय दद्यात्सुगन्धाय वदन्ति
केचित् ॥ ७९ ॥ नारायणं नाम महच्च तैलं सर्वप्रकारै-
र्विधिवत्प्रयोज्यम् । आश्वेव पुंसां पवनार्दितानामेकाङ्ग-
हीनार्दितवेपमानाः ॥ २८० ॥ ये पङ्गवः पीठविसर्पिणश्च
बाधिर्यशुक्रक्षयपीडिताश्च । मन्याहनुस्तम्भशिरो-

रुजार्त्ता मुक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः ॥ ८१ ॥ संसेव्य तैलं सहसा भवन्ति वन्ध्या च नारी लभते च पुत्रम्। वीरोपमं सर्वगुणोपपन्नं सुमेधसं श्रीविनयान्वितं च ॥ ८२ ॥ शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते वृद्धौ विधेयं पवनार्दितानाम्। जिह्वानिले दन्तगते च शूले उन्मादकौब्जयज्वरकार्शितानाम् ॥ ८३ ॥ प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदाप्रियत्वं वपुःप्रकर्षं विजयं च नित्यम्। तैलोपसेवी जरया विमुक्तो जीवेच्चिरं चापि भवेद्युवेव ॥ ८४ ॥ देवासुरे युद्धपरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभग्नानसुरैः सुरांश्च। नारायणेनामरबृंहणार्थं स्वनामतैलं विहितं च तेषाम् ॥ ८५ ॥

उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजानेपर इसमें सुगन्धिके लिये अथवा प्रस्वेद और दुर्गन्धको दूर करनेके लिये कपूर, केशर और कस्तूरी ये प्रत्येक चार चार तोले बारीक पीसकर मिलादेवे। इसको महानारायणतैल कहते हैं। यह तैल वातसे पीडित मनुष्य, एकाङ्गहीन, अर्दितवात और कम्पवातयुक्त मनुष्योंको सर्वप्रकारसे विधिपूर्वक सेवन कराना चाहिये। जो पंगु मनुष्य हैं और जो पीठसे खिचडते हैं एवं बहरे, वीर्यके क्षयसे पीडित, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ और जो शिरोरोगसे पीडित मनुष्य हैं वे इस तैलको सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंसे तत्काल मुक्त होजाते हैं और बल वर्णयुक्त होते हैं और वन्ध्या स्त्री–वीरपुरुषकी समान, सर्वगुण सम्पन्न, अत्यन्त बुद्धिमान्, लक्ष्मीवान् और विनययुक्त पुत्रको उत्पन्न करती है। यह तैल शाखागतवात, कोष्ठस्थित वात और वातसे पीडित मनुष्योंके वातवृद्धि होनेपर, जिह्वागत और दन्तगत वातपीडामें एवं सर्वप्रकारके उन्माद, कुब्जता और ज्वरसे कृशदेहवाले मनुष्योंको सेवन करानेसे शीघ्र उपकार होता है। इसको सर्वप्रकारके वातरोगोंमें देना चाहिये। इस तैलको नित्य सेवन करनेवाला मनुष्य लक्ष्मी और स्त्रीसे प्रीति विजयको प्राप्त होता है। एवं वृद्धमनुष्य जरा (बुढापा) से मुक्त होकर युवा पुरुषकी समान चिरकालतक जीवित रहता है। पूर्वकालमें देवता और असुरोंके भयंकर संग्राममें असुरोंके प्रहारसे टूटगये हैं स्नायु और हड्डियें जिनकी ऐसे देवताओंको देखकर श्रीविष्णुभगवान्ने उनकी रक्षाके लिये अपने नामसे इस तैलको निर्माण किया है ॥ २७९–२८९ ॥

पुष्पराजप्रसारणीतैल।

प्रसारणीपलशतं मूलं चैवाश्वगन्धजम्।
पञ्चाशत्पलमानं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८६ ॥
पादशेषे हरेत्क्वाथं क्वाथांशं तिलतैलकम्।
तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं गव्यं वा माहिषं तथा ॥ ८७ ॥
पुण्डरीकरसस्तत्र शतावर्य्या रसस्तथा।
तैलेन तुल्यो दातव्यः पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ ८८ ॥
शतपुष्पा कणा चैव कुष्ठं च कण्टकारिका।
शुण्ठी यष्टी देवदारु शालपर्णी पुनर्नवा ॥ ८९ ॥
मञ्जिष्ठा पत्रकं रास्ना वचा पुष्करमूलकम्।
यमानी भूतिकं मांसी निर्गुण्डी च तथा बला ॥ २९० ॥
वह्निगोक्षुरकं चैव मृणालं बहुपुत्रिका।
प्रतिकर्षमितं योज्यं सर्वमेकत्र पाचयेत् ॥ ९१ ॥

प्रसारणी १०० पल और असगन्धकी जडको ५० पल लेकर १ द्रोण (३२सेर) जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग (८ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर तिलका तेल क्काथसे चौथाई भाग अर्थात् २ सेर, तेलसे चौगुना गौ अथवा भैंसका दूध एवं श्वेत कमलका रस और शतावरका रस ये प्रत्येक दो दो सेर लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे। पकते समय उसमें सोया, पीपल, कूठ, कटेरी, सोंठ, मुलहठी, देवदारु, शालपर्णी, पुनर्नवा, मंजीठ, तेजपात, रास्ना, वच, पोहकरमूल, अजवायन, गन्धेज-घास, बालछड, निर्गुण्डी, खिरेंटी, चीतेकी जड, गोखरू, कमलकी नाल और शतावर ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष परिमाण कल्क करके डाल देवे॥८६-२९१॥

तैलशेषं समुद्धृत्य पुष्पराजप्रसारणीम्।
अभ्यङ्गे योजयेत्पाने नस्यकर्मणि सर्वदा ॥ ९२ ॥
भग्नानां खञ्जपंगूनां शिरोरोगे हनुग्रहे।
समस्तान्वातजान्रोगांस्तूर्णं नाशयति ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

जब पककर तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। इस पुष्पराज-प्रसारणीतैलको अभ्यङ्ग, पान और नस्यकर्ममें सदा प्रयोग करे। यह तेल वातसे

भग्न होगये हैं अङ्ग जिनके ऐसे खञ्ज और पंगु मनुष्योंके एवं शिरोरोग, हनुग्रह और बातजन्य सम्पूर्ण रोगोंको निश्चयही शीघ्र नष्ट करता है ॥ २९२-२९३ ॥

हिमसागरतैल ।

शतावरीरसप्रस्थे विदार्य्याः स्वरसे तथा ।
कूष्माण्डकरसप्रस्थे धात्र्याश्च स्वरसे तथा ॥ ९४ ॥
शाल्मल्याः स्वरसप्रस्थे तथा गोक्षुरकस्य च ।
नारिकेलरसप्रस्थे तिलतैलस्य प्रस्थतः ॥ ९५ ॥
कदल्याः स्वरसप्रस्थे क्षीरप्रस्थचतुष्टये ।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ९६ ॥
चन्दनं तगरं वाप्यं मञ्जिष्ठा सरलाऽगुरु ।
मांसी मुरा च शैलेयं यष्टी दारु नखी शिवा ॥ ९७ ॥
पूतिका पीडिका पत्रं कुन्दुरुर्नलिका तथा ।
वरी लोध्रं तथा मुस्तं त्वगेलापत्रकेशरम् ॥ ९८ ॥
लवङ्गं जातिकोषं च तथा मधुरिका शठी ।
चन्दनं ग्रन्थिपर्णं च कर्पूरं लाभतः क्षिपेत् ॥ ९९ ॥

शतावरके रस १ प्रस्थ, विदारीकन्दका स्वरस १ प्रस्थ, पेठेका रस एक प्रस्थ, आमलोंका स्वरस १ प्रस्थ, सेमलकी जडका स्वरस १ प्रस्थ, गोखुरूका रस एक प्रस्थ, नारियलका जल एक प्रस्थ केलेकी जडका स्वरस एक प्रस्थ, तिलका तैल एक प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ लेकर इनमें लालचन्दन, तगर, कूठ, मँजीठ, धूपसरल, अगर, बालछड, कपूरकचरी, भूरिछरीला, मुलहठी, देवदारु, नख, हरड, गन्धमार्जारवीर्य, पोई शाकके पत्ते, कुन्दुरु, नली, शतावर, लोध, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जावित्री, सौंफ, कचूर, श्वेतचन्दन, गठिवन और कपूर इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक कर्ष परिमाण अथवा इनमेंसे जितनी औषधियाँ मिल सकें उतनीहीका कल्क डालकर तैलको सिद्ध करे ॥ ९४-२९९ ॥

अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
उच्चैः प्रपततो वायोर्गजतो वाजिनस्तथा ॥ ३०० ॥
उद्धृतो लोष्टपाताच्च पंगूनां पीठसर्पिणाम् ।
एकाङ्गशोषिणां चैव तथा सर्वाङ्गशोषिणाम् ॥ १ ॥

क्षतानां क्षीणशुक्राणामत्यन्तक्षयरोगिणाम् ।
हनुमन्याहतानां च दुर्बलानां तथैव च ॥ २ ॥
शोषिणां लम्बजिह्वानां तथा मिन्मिनभाषिणाम् ।
अत्यन्तदाहयुक्तानां क्षीणानां वातरोगिणाम् ॥ ३ ॥
एतत्तैलवरं श्रेष्ठं विष्णुना परिकीर्तितम् ।
हिमसागरमाख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ ४ ॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
शिरोमध्यगता ये च शाखामाश्रित्य ये स्थिताः ॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति तैलस्यास्य प्रसादतः ॥ ५ ॥

अब इस सिद्ध तेलके प्रभावको सुनो—उच्चस्थान, वात व हाथी, घोडा, ऊंट और मकानपरसे गिरेहुए मनुष्योंके लिये एवं पंगु (लँगडे), पीठसे खिचडनेवाले, जिनका एक अंग सूख गया हो या जिनके सम्पूर्ण अंग सूख गये हों ऐसे मनुष्य, क्षयरोगी, क्षीणवीर्यवाले, अत्यन्त क्षयरोगी, हनुस्तम्भ और मन्यास्तम्भरोगी, दुर्बलमनुष्य, शोषरोगी, लम्बी जिह्वावाले और मिन्मिनाकर बोलनेवाले रोगी, अत्यन्त दाहयुक्त, क्षीणदेहवाले और वातरोगसे ग्रसित मनुष्योंके लिये यह तैल अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस हिमसागरनामक तेलको विष्णुभगवान्ने वर्णन किया है। यह सर्व प्रकारके गत-विकारोंको नष्ट करनेवाला है। वातसे उत्पन्नहुए, पित्तसे उत्पन्नहुए, शिरमें होनेवाले और शाखाश्रित जितने रोग हैं वे सब इस तेलके प्रभावसे नाश होते हैं ॥ २००-५॥

सिद्धार्थकतैल ।

शतावरीस्तु निष्पीड्य रसं प्रस्थद्वयं हरेत् ।
तिलतैलं पचेत्प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं बला ।
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ॥ ७ ॥
रास्ना तुरगगन्धा च समङ्गा शारिवाद्वयम् ॥ ८ ॥
सिन्धूद्भवं समं दद्याद्विश्वभेषजमेव च ।
एभिस्तैलं पचेद्धीमान् दत्त्वाऽऽर्द्रकरसं समम् ॥ ९ ॥

शतावरको कूटकर निकालाहुआ रस २ प्रस्थ (१२८ तोले), तिलका तैल १ प्रस्थ (६४ तोले), गौका दूध ४ प्रस्थ, अदरखका रस १ प्रस्थ और कल्कके लिये सोया, देवदारु, बालछड, भूरिछरीला, खिरैंटी, लाल चन्दन, तगर, कूठ, इलायची, शालपर्णी, रायसन, असगन्ध, वराहक्रान्ता, उसवा, अनन्तमूल, पृश्निपर्णी वच, अण्डकी जड, सेंधानमक और सोंठ इन सब औषधियोंको समान भाग मिश्रित १६ तोले लेकर सबको यथाविधि एकत्र करके उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे ॥ ३०६–३०९ ॥

कौब्ज्येन वामना ये च पङ्गुपादाश्च ये नराः ।
महावातेन ये भग्ना अङ्गसङ्कुटिताश्च ये ॥ ३१० ॥
तेषां हितमिदं तैलं सन्धिवाते च शस्यते ।
येषां शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्येषां च विह्वला ॥ ११ ॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः ।
अमेधसश्च बधिरास्तेषामपि परं हितम् ॥ १२ ॥
मासमेकं पिबेद्यस्तु यौवनस्थः पुनर्भवेत् ।
सिद्धार्थकमिति ख्यातं नरनारीहिताय च ॥ १३ ॥

यह तेल–कुब्जताके होनेसे जो बौने होगये हैं, जो लँगडे हैं, जिनके भयङ्कर वातव्याधिसे शरीर नष्ट होगये हैं या जिनके अङ्ग कुचलगये हैं ऐसे मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है सन्धिगत वातमें एवं जिनका एक अङ्ग सूख गया है, जिनकी गति विह्वल है, जो क्षीण इन्द्रिय, क्षीणवीर्य मनुष्य, वृद्धतासे जर्जर होगये हैं देह जिनके ऐसे वृद्ध, बुद्धिहीन और बहरे जो मनुष्य हैं उनके लिये भी यह अत्यन्त उपयोगी है । जो एक महीनेतक इस तेलको निरन्तर पान करे तो वृद्ध मनुष्य फिर युवा होजाता है । यह सिद्धार्थक नामक तैल स्त्री और पुरुषोंके कल्याणके लिये प्रसिद्ध है ॥ ३१०–३१२ ॥

नकुलतैल ।

मधुकं जीरकं रास्ना सैन्धवं शतपुष्पिका ।
यमानीमरिचं कुष्ठं विडङ्गं गजपिप्पली ॥ १४ ॥
सौवर्चलं चाजमोदा बला षड्ग्रन्थिका तथा ।
ग्रन्थिकं शैलजं मांसी कर्षमेषां पृथक्पृथक् ॥ १५ ॥

विनीय पाचयेत्तैलं प्रस्थं रुबुसमुद्भवम् ।
प्रस्थे च नकुलमांसस्य क्वाथे च दशमूलजे ।
प्रस्थे च काञ्जिकस्यापि मस्तुप्रस्थे तथैव च ॥ १६ ॥

नौलेका मांसरस, दशमूलका क्वाथ, काँजी और दहीका तोड इन सबको एकएक प्रस्थ लेकर एकत्र मिलालेवे । फिर इसमें अण्डीका तेल एक प्रस्थ और कल्कके लिये मुलहठी, जीरा, रायसन, सैंधानमक, सोया, अजवायन, मिरच, कूठ, वायविडङ्ग, गजपीपल, कालानमक, अजमोद, खिरैंटी, वच, पीपलामूल, भूरिछरीला और बालछड इन प्रत्येकके कल्कको दो दो तोले डालकर विधिपूर्वक तेलको पकावे ॥ १४-१६ ॥

सिद्धं तैलमिदं हन्ति कम्पवातं सुदारुणम् ।
हस्तकम्पं शिरःकम्पं बाहुकम्पं च नाशयेत् ॥ १७ ॥
आमवातं समूलं च सर्वोपद्रवसंयुतम् ।
पानाभ्यञ्जनवस्तीभिर्नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १८ ॥
आढचवातं कटीपृष्ठजानुजङ्घाश्रितं तथा ।
सन्धिस्थं वातमाश्वेव जयेन्नकुलसंज्ञकम् ॥ १९ ॥
हारीतभाषितमिदं तैलं हितचिकीर्षया ।
वैद्यानां सारभूतानां शतेनापि समुज्झितम् ॥ २० ॥
वातव्याधिनिहन्त्याशु कम्पवातं विशेषतः ।
अशीतिं वातजान्रोगान्नाशयेदाशु देहिनाम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह तैल दारुण कम्पवात, हाथोंका काँपना, शिरका काँपना, बाहुओंका काँपना, सर्वप्रकारके उपद्रव और शूलसहित आमवातरोग इन सबको निश्चय नाश करता है । इस नकुलनामक तैलको पान, मर्दन और वस्तिक्रियाद्वारा प्रयोग करनेसे आढचवात एवं कमर, पीठ, जानु, जङ्घा और सन्धिस्थानगत वातकी पीडा तत्काल नाश होती है । इस तैलको सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेकी इच्छासे हारीतमुनिने वर्णन किया है । जिसको सैकडों बडे बडे योग्य चिकित्सकोंने त्यागदिया हो ऐसे वातरोगको यह तैल शीघ्र नष्ट करता है । विशेषकर यह मनुष्योंके कम्पवात और अस्सीप्रकारके वातरोगोंको बहुत शीघ्र दूर करता है ॥ २१७-२२१ ॥

महाकुक्कुटमांसतैल ।

माषस्यार्द्धाढकं देयं दशमूल्यास्तुलार्द्धकम् ।
बलामूलं च तस्यार्द्धं केतकीनां तथैव च ॥ २२ ॥
दशमांसपलत्रिंशज्झिण्टिकापञ्चविंशतिः ।
जलद्रोणद्वये पक्त्वा पादशेषेऽवतारिते ॥ २३ ॥
तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ मञ्जिष्ठाचव्यकट्फलम् ॥ २४ ॥
व्योषं रास्ना कणामूलं मधुकं पुष्करं तथा ।
माषात्मगुप्ता सैरण्डा शताह्वा लवणत्रयम् ॥ २५ ॥
कृष्णाऽश्वगन्धा ह्यमृता यमानीन्द्रवरी शठी ।
नागरं मागधी मुस्तं वर्षाभू रजनीद्वयम् ॥
शतावरी बृहत्यौ च एतैरक्षसमन्वितैः ॥ २६ ॥

उडद ४ सेर, दशमूल ५० पल, खिरैंटीकी जड २५ पल, केतकीकी जड २५ पल, मुर्गेका मांस ३० पल और पियाबांसेकी जड २५ पल इन सबको दो द्रोण जलमें पकाकर चौथाई भाग जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें तिलका तैल एक प्रस्थ, गौका दूध ४ प्रस्थ एवं जीवनीयगणकी आठों ओषधियाँ, मँजीठ, चव्य, कायफल, त्रिकुटा, रायसन, पीपलामूल, मुलहठी, पोहकरमूल, उडद, कौंचके बीज, अण्डकी जड, सोया, बिडनमक, सैंधानमक, कालानमक, काली असगन्ध, गिलोय, अजवायन, इन्द्रजौ, कचूर, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, शतावर, बडी कटेरी और कटेरी इन प्रत्येकके दो दो तोले कल्कको मिलाकर उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करै ॥ ३२२–३२६ ॥

पक्षाघातेषु सर्वेषु अर्दिते च हनुग्रहे ॥ २७ ॥
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे ॥ २८ ॥
शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपबाहुके ।
बाधिर्ये कर्णनादे च सर्ववातविकारनुत् ॥ २९ ॥
दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः ।
हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात्सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ ३३० ॥

त्वच्यं मांसप्रदं चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ।
अण्डवृद्ध्यन्त्रवृद्धिं वा वातरक्तं च नाशयेत् ॥ ३१ ॥

इस तैलको पक्षाघात, अर्दित, हनुग्रह, श्रवणशक्तिका नाश, त्रिदोषजन्य नेत्ररोग, हस्तकम्प, शिरःकम्प, देहकम्प, शिरःपीडा, कलायखञ्ज, गृध्रसी, अपबाहुक, बहरापन, कर्णनाद, दण्डापतानक, विशेषकर मन्यास्तम्भ और हनुस्तम्भ इन सब रोगोंमें सेवन करना । यह तैल सर्वप्रकारके वातरोग, प्रसूतसम्बन्धी सब रोग, अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि और वातरक्तरोगको नाश करता है। एवं त्वचाको हितकारी, वीर्य, अग्नि बलकी वृद्धि करता है ॥ २७–३३१ ॥

माषतैल १–२ ।

तलं संकुचितेऽभ्यङ्गो माषसैन्धवसाधितम् ।
बाहुशीर्षगते नस्यं पानं चोत्तरवस्तिकम् ॥
क्वाथोऽत्र माषनिष्पाद्यः सैन्धवं कल्कमेव च ॥ ३२ ॥

१–उडद और सैन्धेनमकके द्वारा सिद्ध कियेहुए तैलको वायुके द्वारा शरीरमें संकोच होनेपर और बाहुशीर्षगत वातरोगमें मर्दन, नस्य, पान और उत्तरवस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे शीघ्र उपकार होता है । इसमें उडदोंका क्वाथ और सैंधानमकका कल्क लेना चाहिये ॥ ३२ ॥

माषात्मगुप्तातिरसो रुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः ।
चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैलं कृतं हन्ति च पक्षवातम् ॥ ३३ ॥

२–उडद, कौंचके बीज, मूर्वा, अण्डकी जड, रास्ना, सोया और सेंधानमक इन सबके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ उडद और खिरैंटीके चौगुने क्राथमें सिद्ध किया हुआ तिलका तैल पक्षघातरोगको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

लघुमाषतैल ।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत्सम्यग्जलाढके ।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ३४ ॥
प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाऽक्षसम्मितम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवम् ॥ ३५ ॥
रास्नाऽऽत्मगुप्ता मधुकं बला व्योषं त्रिकण्टकम् ।
पक्षाघातेऽर्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ ३६ ॥

मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामपबाहुके ॥ ३७ ॥
शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनबस्तिभिः ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ३८ ॥

उत्तम उड़दोंको १ प्रस्थ लेकर एक आढ़क जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें दूध ४ प्रस्थ, तिलका तैल १ प्रस्थ एवं जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, सोया, सैंधानमक, रास्ना, कौंचके बीज, मुलहठी, खिरैंटी, त्रिकुटा और गखिरू इन सब औषधियोंके कल्कको दो दो तोले डालकर विधिपूर्वक उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलको पान, अभ्यञ्जन (मालिश) और वस्तिक्रियाद्वारा पक्षाघात, अर्दितवात, दारुण कानकी पीडा, श्रवणशक्तिका ह्रास, बहरापन, त्रिदोषजन्य नेत्ररोग, हस्तकम्प, शिरःकम्प, विश्वाची, अपबाहुक और कलायखञ्ज इन सब वातरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह माषतैल ऊर्ध्वजत्रुरोगको दूर करनेके लिये अत्युत्तम है ॥ ३४–३८ ॥

बृहन्माषतैल ।

माषातसीयवकुरुण्टककण्टकारीगोकण्टटुण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः । कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलक्वाथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ ३९ ॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या । रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदपबाहुहरं च तैलम् ॥ ४० ॥ अर्द्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवातमाक्षेपकं सभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् । नस्येन वस्तिविधिना परिषेचनेन हन्यात्कटीजघनजानुरुजश्च सर्वाः ॥ ४१ ॥

उडद, अलसी, जौ, पियाबाँसेकी जड, कटेरी, गोखरू, शोनापाठेकी जडकी छाल, वालछड, कौंचके बीज, कपासके बीज (बिनौले), सनके बीज, कुलथी और सूखे बेर इन प्रत्येकके क्वाथ और बकरेके मांसरसके साथ सोंठ, पीपल, सोया, अण्डकी जड, पुनर्नवा, प्रसारिणी, रास्ना, खिरैंटी, गिलोय और कुटकी इन औषधियोंके

समान भाग मिश्रित कल्कके साथ तिलके तैलको यथाविधि पकावें । यह बृहन्माषनामक तैल नस्य, वस्तिक्रिया और मालिशद्वारा प्रयोग करनेसे अपबाहुकवात, अर्द्धाङ्गशोष, अपतानक, आढ्यवात, आक्षेपक वातरोग, बाहुकम्प, शिरःकम्प एवं कमर, जंघा और जानुगत सर्वप्रकारके रोगोंको निवारण करता है ॥ ३९–४१॥

सप्तप्रस्थमहामाषतैल ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे ।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसरसे पृथक् ॥ ४२ ॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥
जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षसमैर्भिषक् ॥ ४३ ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाधिर्ये चापबाहुके ।
बाहुशोषे कर्णशूले कर्णनादे च दारुणे ॥ ४४ ॥
विश्वाच्यामर्दिते कौब्ज्ये गृध्रस्यामपतानके ।
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत ॥ ४५ ॥
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ।
क्वाथप्रस्थाः षडेवात्र विभक्त्यन्तेन दर्शिताः ॥ ४६ ॥

उडदोंका क्वाथ, खिरैंटीका क्वाथ, रास्नाका क्वाथ, दशमूलका क्वाथ एवं जौ बेर, कुलथी इन तीनोंका मिश्रित क्वाथ और बकरेका मांसरस ये प्रत्येक एक प्रस्थ लेकर एकत्र मिलालेवे । फिर उसमें तिलका तेल एक प्रस्थ, दूध चार प्रस्थ एवं रास्ना, कौंचके बीज, सैन्धानमक, सोया, अण्डकी जड, नागरमोथा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलहठी, खिरैंटी, सोंठ, मिरच और पीपल इन प्रत्येकके कल्कको दो दो तोले डालकर उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे । इस तैलको हस्तकम्प, शिरःकम्प, बधिरता, अपबाहुक, बाहुशोष, कर्णशूल, दारुण कर्णनाद, विश्वाची, अर्दित, कुबडापन, गृध्रसी, अपतानक आदि वातरोगोंमें वस्तिक्रिया, मर्दन, पान और नस्यकर्मद्वारा प्रयोग करनेसे शीघ्र लाभ होताहै । यह तेल ऊर्ध्वजत्रुरोगको नाश करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ औषध है । इसमें छः क्वाथ एक एक प्रस्थ लेना । यह बात क्वाथद्रव्यवाचक शब्दोंके अन्तमें स्थित विभक्तियों द्वारा मालूम होती है ॥

महामाषतैल ।

माषस्यार्द्धाढकं दत्त्वा तुलार्द्धं दशमूलतः ।
पलानि च्छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ४७ ॥
पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावशेषिते ।
प्रस्थं च तिलतैलं च पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ४८ ॥
आत्मगुप्ता रुबूकं च शताह्वा लवणत्रयम् ।
जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम् ॥ ४९ ॥
सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्ना मधुकसैन्धवम् ।
देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शठी ॥
एतैरक्षसमैर्भागैः साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ३५० ॥

कपडेकी पोटलीमें बंधेहुए उडद अर्द्धआढक, दशमूल ५० पल और पोटलीमें बँधाहुआ बकरेका मांस ३० पल लेकर इन सबको १ द्रोण जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर शीतल होनेपर वस्त्रमें छान लेवे । फिर इस क्काथमें तिलका तैल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ एवं कौंच, अण्डकी जड, सोया, सैंधानमक, विरियासञ्चरनमक, कालानमक, जीवनीयगणकी दशों ओषधियाँ, मंजीठ, चव्य, चीतेकी जड, कायफल, त्रिकुटा, पीपलामूल, रास्ना, मुलहठी, सैंधानमक, देवदारु, गिलोय, कूठ, असगन्ध, वच और कचूर इन सब ओषधियोंके दो दो तोले कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा तैलको पकावे ॥ ४७–३५० ॥

पक्षाघातेऽर्दिते वाते बाधिर्य्ये हनुसंग्रहे ।
कर्णमन्याशिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे ॥ ५१ ॥
पाणिपादशिरोग्रीवाभ्रमणेमन्दसंक्रमे ।
कलायखञ्जे पाङ्गुल्ये गृध्रस्यामपबाहुके ॥ ५२ ॥
पाने वस्तौ तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ।
तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ ५३ ॥

यह तैल—पक्षाघात, अर्दितवात, बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, त्रिदोषज तिमिररोग, हाथ, पाँव, शिर और गर्दनका हिलना, शनैः शनैः चलना, कलायखञ्ज, पंगुता, गृध्रसीवात और अपबाहुक आदि वातरोगोंमें अत्यन्त प्रशंसनीय

औषध है । इस तेलको पान, वस्तिकर्म, मर्दन, नस्य आदि कार्योंमें एवं कानों और आँखोंमें भरना आदि क्रियाओंद्वारा व्यवहार करे । यह सर्वप्रकारके वातरोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ९१-९२ ॥

निरामिषमहामाषतैल ।

दशमूलाढकं पक्त्वा जलद्रोणेऽङ्घ्रिशेषिते ।
तद्वन्माषाढकक्काथे तैलप्रस्थं पयःसमे ॥ ९४ ॥
कल्कैरेतैश्च मतिमान् साधयेन्मृदुनाऽग्निना ।
अश्वगन्धा शठी दारु बला रास्ना प्रसारिणी ॥ ९५ ॥
कुष्ठं परूषकं भार्ङ्गी द्वे विदार्यौ पुनर्नवा ।
मातुलुङ्गफलाजाज्यौ रामठं शतपुष्पिका ॥ ९६ ॥
शतावरी गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
जीवनीयगणं सर्वं सहृत्यैव ससैन्धवम् ॥ ९७ ॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत् ।
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

एक आढक परिणाम दशमूलको एक द्रोण जलमें पकाकर चौथाई भाग जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इसी प्रकार एक आढक उडदोंका क्वाथ सिद्धकर दोनोंको एकत्र मिलालेवे । फिर उसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ एवं असगन्ध, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, रायसन, प्रसारिणी, कूठ, फालसे, भारंगी, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, पुनर्नवा, बिजौरानींबू, जीरा, कालाजीरा, हींग, सोया, शतावर, गोखुरू, पीपलामूल, चीतेकी जड, जीवनीयगणकी सब औषधियाँ और सैंधानमक इन सबके समान भाग मिलित कल्कको तेलसे चौथाई भाग डालकर यथाविधि तेलको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब इस महामाष तैलको वस्तिक्रिया, अभ्यञ्जन (मालिश करना), पान करना और नस्य देना इन क्रियाओंद्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ ९४-९८ ॥

पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके ।
अपबाहुकविश्वाच्योः खाञ्ज्यपाङ्गुल्ययोरपि ॥ ९९ ॥
शिरोमन्याग्रहे चैव अधिमन्थे च वातिके ।
शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे च दारुणे ।
कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादिशेत् ॥ २६० ॥

यह औषध-पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, अपबाहुक, विश्वाची, खञ्जवात, पंगुता, शिरःपीडा, मन्यास्तम्भ, वातज नेत्ररोग, शुक्रक्षय, कर्णनाद, दारुण कर्णक्ष्वेड और कलायखञ्ज, इन सब रोगोंको शमन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ९९-३६० ॥

माषबलादितैल ।

माषक्काथे बलाक्काथे रास्नाया दशमूलजे ।
प्रसारिण्याः शताह्वायाः प्रस्थं दद्याद्भिषग्वरः ॥ ६१ ॥
एतत्क्वाथस्तैलसमो दधि क्षीरं समं समम् ।
लाक्षारसं काञ्जिकं च तिलतैलं प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥
शतावरीविदार्योश्च रसं तैलार्द्धमेव च ।
शताह्वा मधुरी मेथी रास्ना वारणपिप्पली ॥ ६३ ॥
मुस्तकं चाश्वगन्धा च उशीरं मधुयष्टिका ।
शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ।
पलद्वयं गृहीत्वा च तैलपात्रे प्रदापयेत ॥ ६४ ॥

उडदोंका क्वाथ, खिरेंटीका क्वाथ, रास्नाका क्वाथ, दशमूलका क्वाथ, गन्धप्रसारणीका क्वाथ, सोयेका क्वाथ, तिलका तेल, दही, दूध, लाखका रस और काँजी इन सबको एक एक प्रस्थ, शतावर और विदारीकन्दका क्वाथ आधा आधा प्रस्थ (३२-३२ तोले) लेकर एकत्र कर मन्द २ अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे पकावे। पकते समय उसमें सोया, साफ, मेथी, रास्ना, गजपीपल, नागरमोथा, असगन्ध, खस, मुलहठी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरेंटी, और शतावर इन ओषधियोंके कल्कको आठ आठ तोले लेकर डालदेवे जब तैल अच्छे प्रकारसे पककर सिद्धहो जाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे ॥ ६१-६४ ॥

वातरोगं निहन्त्याशु मन्यास्तम्भं नियच्छति ।
हनुस्तम्भविकारं च जिह्वादन्तगलग्रहान् ॥ ६५ ॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति गात्रकम्पादिकं जयेत् ।
एतान्हरति रोगांश्च तैलं माषबलादिकम् ॥ ६६ ॥

यह माषबलादि तैल सम्पूर्ण वातरोग, मन्यानाडीका जकडजाना, हनुस्तम्भरोग, जीभ, दाँत और गलेकी पीडा, बीसों प्रकारके प्रमेह और शरीरका काँपना इन सब रोगोंका शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

कुब्जप्रसारणी तैल ।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे ।
पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात्सकाञ्जिकम् ॥ ६७ ॥
द्विगुणं च पयो दत्त्वा कल्कान्द्विपलिकांस्तथा ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बलाम् ॥ ६८ ॥
शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम् ।
प्रसारण्याश्च मूलानि मांसी भल्लातकानि च ॥ ६९ ॥
पचेन्मृद्वग्निना तैलम्-

सौ पल प्रसारणीको कूटकर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग (८ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें तिलका तैल, दही और काँजी ये प्रत्येक आठ आठ सेर, दूध सोलह सेर एवं चीता, पीपलामूल, मुलहठी, सेंधानमक, खिरेंटी, सोया, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, प्रसारणीकी जड, बालछड और भिलावे इन सबके कल्कको दो दो पल डालकर मन्दमन्द अग्निसे तैलको सिद्ध करे ॥ ६७-६९ ॥

-वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ।
अशीतिं नरनारीस्थान्वातरोगान्व्यपोहति ॥ ३७० ॥
कुब्जस्तिमितपङ्गुत्वं गृध्रसीखुडकार्दितम् ।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं चाशु नियच्छति ॥ ७१ ॥

यह तैल वात और कफजन्य सब रोगोंको दूर करता है । एवं स्त्री पुरुषोंके अस्सी प्रकारके वातरोगोंको नष्ट करता है । इससे कुब्जता, जडता, पंगुता, गृध्रसी, खुडक अर्दितवात, हनुस्तम्भ, पृष्ठशूल, शिरःपीडा और ग्रीवास्तंभ ये सब रोग शीघ्र नाश होते हैं ॥ ३७० ॥ ३७१ ॥

त्रिशतीप्रसारणीतैल ।

समूलपत्रशाखां च जातसारां प्रसारणीम् ।
कुट्टयित्वा पलशतं दशमूलशतं तथा ॥ ७२ ॥
अश्वगन्धापलशतं कटाहे समधिक्षिपेत् ।
वारिद्रोणे पृथक् कृत्वा पादशेषेऽवतारितम् ॥ ७३ ॥
कषायसममात्रं तु तैलमत्र प्रदापयेत् ।
दध्नस्तथाऽऽढकं दत्त्वा द्विगुणं चाम्लकाञ्जिकात् ॥ ७४ ॥

चतुर्द्रोणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
शृङ्गवेरपलात्पंच त्रिंशद्भल्लातकानि च ॥ ७५ ॥
द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकाच्च पलद्वयम् ।
यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥ ७६ ॥
सौवर्चलपले द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम् ।
प्रसारणीपले द्वे च मधुकस्य पलद्वयम् ॥
सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ७७ ॥

मूल, पत्ते और शाखासहित प्रसारणी १०० पल, दशमूल १०० पल और असगन्ध १०० पल इन तीनोंको अलग अलग कूटकर जब उसमें सार भाग उत्पन्न होजाय तब एक एक द्रोण जलमें डालकर कढाईमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें तिलका तेल ८ सेर, दहीका तोड ८ आढक, काँजी २ आढक, पाकके लिये जल ४ द्रोण, कल्कके लिये जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधि एक एक पल, अदरख ५ पल, भिलावे ३० पल, पीपलामूल २ पल, चीता २ पल, जवाखार दो पल, सैंधानमक २ पल, कालानमक २ पल, मंजीठ २ पल, गन्धप्रसारिणी दो पल और मुलहठी २ पल इन सब औषधियोंको कूट पीसकर डालदेवे । फिर मन्दमन्द अग्निद्वारा धीरे धीरे तेलको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छानलेवे ॥ ७२–७७ ॥

एतदभ्यञ्जने श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिरूहणे ।
पाने नस्ये च दातव्यं न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ७८ ॥
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान् व्यपोहति ॥ ७९ ॥
गृध्रसीमस्थिभङ्गं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिताम् ॥ ३८० ॥
त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरःसन्धिगताश्च ये ।
जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च ये ॥ ८१ ॥

इस तैलको मालिश करना, वस्तिकर्म, निरूहवस्ति, पान करना, नस्य देना आदि कर्मोंमें प्रयोग करना । इसपर किसी प्रकारका परहेज नहीं करना चाहिये । यह

तैल अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तरोग, वीस प्रकारके कफके रोग एवं गृध्रसीवात, हड्डीका टूटजाना मन्दाग्नि, अरुचि, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, मन्द मन्द चलना, त्वचा, शिर, सन्धि, जानुसन्धि, पाँव और पृष्ठ इन स्थानोंमें स्थित वातकी पीडा इन सबको नष्ट करताहै ॥ ७८-८१ ॥

अश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ।
प्रसारयति यस्मात्तं तस्मादेषा प्रसारणी ॥ ८२ ॥
इन्द्रियाणां च जननी वृद्धानां च प्रसूयनी ।
एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् ॥
प्रसारणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ८३ ॥
अपनयति जरां पलितं शोषयति रुजां करोति तारुण्यम् ।
पक्षाघातं सर्वाङ्गहतं नाशयति वातगुल्मं च ॥ ८४ ॥
एतदुपयुज्यमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवति ॥ ८५ ॥

वातसे पीडित घोडे या हाथी अथवा मनुष्यको वातबंधनसे छडा देता है, इस कारण इसको प्रसारणी तैल कहते हैं । यह तैल इन्द्रियशक्तिको उत्पन्न करनेवाला, वृद्ध मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाला, अन्धोंको दृष्टिशक्ति, नपुंसकोंको, पुरुषत्व देनेवाला एवं बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि करता है । वृद्धताको और पलितरोगको दूर करता है । रोगोंको नष्टकर तरुणताको उत्पन्न करता है । एवं पक्षाघात, सर्वाङ्गगतवात और वात गुल्मरोगका नाश करता है । इस तेलको सेवन करनेसे मनुष्य निर्मलवर्ण और प्रसन्न इन्द्रियोंवाला होता है ॥

सप्तशतिकप्रसारणीतैल ।

समूलपत्रमुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम् ।
शतं ग्राह्यं सहचराच्छतावर्याः शतं तथा ॥ ८६ ॥
बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां शतं शतम् ।
पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं पृथक् ॥ ८७ ॥
मस्तु मांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमाढकम् ।
दध्याढकमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ८८ ॥
द्रव्याणां तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलांशिका ।
तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम् ॥ ८९ ॥

रास्ना सैन्धवपिप्पल्यौ मांसीमञ्जिष्ठयष्टिका।
तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ॥ ९० ॥
शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च।
काकोली क्षीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा ॥ ९१ ॥
पेषयित्वा समानेतान्साधनीया प्रसारणी।
नातिपक्वं न हीनं च सिद्धं पूतं निधापयेत् ॥ ९२ ॥

शरदृतुमें मूल और पत्तोंसहित प्रसारणीको उखाड़कर १०० पल लेवे, पियाबाँसा १०० पल, शतावर १०० पल, खिरैंटी १०० पल, कौंचकी जड १०० पल, असगन्ध १०० पल और केतकी १०० पल इन सबोंको अलग २ कूटकर चार सौ चार सौ पल जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें दहीका तोड़, बकरेके मांसका रस, चूका, दूध, दही और तिलका तैल ये प्रत्येक एक एक आढक (२५६ तोले) एवं तगर, मैनफल, कूठ, केशर, नागरमोथा, दालचीनी, रास्ना, सैंधानमक, पीपल, बालछड, मंजीठ, मुलहठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सोया, नख, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच और भिलावे इन प्रत्येक द्रव्योंको दो दो तोले परिमाण पीसकर डालदेवे। फिर सबको यथाविधि एकत्र कर मन्दमन्द अग्निद्वारा तैलको पकावे। इस तैलको न तो बहुत पकावे और न कच्चा रक्खे। जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लेवे और शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे ॥८६॥९२॥

यत्र यत्र प्रदातव्या तन्मे निगदतः शृणु।
कुब्जानामथ पंगूनां वामनानां तथैव च ॥ ९३ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः।
वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ॥ ९४ ॥
स्त्रीमद्यक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम्।
वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् ॥
प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान्विविधान् गदान् ॥ ९५ ॥

जिस २ रोगमें इस तैलको देना चाहिये, उसको कहते हैं सुनो-कुवड़े लँगड़े और बौने मनुष्य एवं जिसका एक अङ्ग सूख गया हो, जिनकी हड्डियें और सन्धियें टूटगई हों, वातरक्तसे पीडित, दूषितवातसे नष्ट होगया है चित्त जिनका ऐसे अधिक स्त्रीप्रसङ्ग, अत्यन्तमद्यपान करनेवाले और क्षीणवीर्यवाले मनुष्योंके

लिये यह तेल अत्युत्तम वाजीकरण औषध है । इसको पान, वस्तिकर्म, मालिश और नस्यकर्ममें प्रयोग करना चाहिये । विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह तैल नानाप्रकारके वातजनित--रोगोंको बहुत जल्द नष्ट करता है ॥ ९३--३९५ ॥

एकादशशतिकप्रसारणीतैल ।

शाखामूलदलैः प्रसारणितुलास्तिस्रः कुरुण्टात्तुले
छिन्नायाश्च तुले तुले रुबुकतो रास्नाशिरीषात्तुलाम् ।
देवाह्वाच्च सकेतकाद्द घटशते निःक्वाथ्य कुम्भांशके
तोये तैलघटं तुषाम्बुकलशौ दत्त्वाऽऽढकं मस्तुनः ॥ ९६ ॥
शुक्ताच्छागरसादथेक्षुरसतः क्षीराच्च दत्त्वाऽऽढकं
पृक्काकर्कटजीवकाद्यविकसाकाकोलिकाकच्छुराः ।
सूक्ष्मैलाघनचारकुन्दुसरलाकाश्मीरमांसीनखैः
कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः ॥ ९७ ॥
चाम्पेयाभयचोचपूगकटुकाजातीफलाभीरुभिः
श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः ।
तैलाम्भोदकटम्भरांघ्रिनलिकावृश्चीरकच्चोरकैः
कस्तूरीदशमूलकेतकनतध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः ॥ ९८ ॥
कौन्तीतार्क्ष्यजशल्लकीफललघुश्यामाशताह्वाभयै-
र्भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः ।
सव्योषैस्त्रिपलैर्महीयसि पचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना ॥ ९९ ॥

क्वाथके लिये शाखा, मूल और पत्तोंसहित गन्धप्रसारणी ३०० पल, नीली-कटसरैया २०० पल, गिलोय २०० पल, अण्डकी जड २०० पल, रास्ना और शिरसकी छाल सौ सौ पल, देवदारु १०० पल और केवडेकी जड १०० पल इन सबको कूटकर सौ द्रोण अर्थात् ३२०० सेर जलमें डालकर पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें तिलका तैल १ द्रोण, काँजी २ द्रोण, दहीका तोड १ आढक, शुक्त (एक प्रकारकी काँजी), बकरेके मांसका रस, ईखका रस और गौका दूध ये प्रत्येक एक एक आढक (आठ आठ सेर) परिमाण डालदेवे । एवं कल्कके

१ अत्र वक्तव्यद्रव्यसम्पूर्त्यै त्रय एव पादा दृश्यन्ते ॥

लिये असगन्ध, काकडासिङ्गी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलहठी, मंजीठ, काकोली, कौंचकी जड, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दरू, धूपसरल, केशर, बालछड, नख, कालीअगर, कुमुद पद्माख, हल्दी, शीतलचीनी, गठिवन, नागकेशर, खस, दारचीनी, सुपारी (किसी २ के मतसे सुपारीके वृक्षकी छाल लेनी), कुटकी, जायफल, शतावर, गन्धविरोजा, देवदारु, लालचन्दन, वच, भूरिछरीला, सेंधानमक, शिलारस, नागरमोथा, प्रसारणीकी जड, नलिका, पुनर्नवा, चोरक, कस्तूरी, दशमूल, केतकीकी जड, तगर, सुगन्धित, तृण, असगन्ध, सुगन्धवाला, रेणुका, रसौंत, सेमलकी जड, मैनफल, अगर, श्यामालता, सोया, कूठ, भिलावे, त्रिफला, कमलकी केशर, कालीसर, लैङ्ग और त्रिकुटा इन सबको तीन तीन पल लेकर कल्क करके डालदेवे। फिर सबको एक बहुत बडे पात्रमें भरकर मन्दमन्द अग्निद्वारा तेलको पकावे ॥ ९६-९९ ॥

पानाभ्यञ्जनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत्
सर्वार्द्धाङ्गगतं तथाऽवयवगं सन्ध्यस्थिमज्जाश्रितम् ।
श्लेष्मोत्थानकपैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान्
धातून् बृंहयति स्थिरं च कुरुते पुंसां नवं यौवनम् ॥ ४०० ॥
वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदं
पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽधुना भूरुहाः ।
सिक्ताः शोषमुपागताश्च फलिनः स्निग्धा भवन्ति स्थिरा
भग्नाङ्गाः सुदृढा भवंति मनुजा गावो हयाः कुञ्जराः ॥ १ ॥

इस तेलको पीने और मालिश कराना, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना), नस्य देना आदि क्रियाओंद्वारा सेवन करानेसे वातरोग नाश होता है। यह तेल सम्पूर्ण अङ्ग, अर्द्धाङ्ग व एकाङ्गमें स्थित वातकी पीडा एवं सन्धि, अस्थि और मज्जागत वातव्याधि, कफजन्य और पित्तजन्य नानाप्रकारके रोगोंको शमन करता है। एवं धातुओंको पुष्ट, स्थिर और मनुष्योंके नवयौवनको स्थिर करता है। वृद्ध मनुष्यको भी अत्यन्त बलवान् करनेवाला और वन्ध्यास्त्रियोंको गर्भप्रदान करनेवाला है। इस तेलके पान करनेसे बुढापेमेंभी स्त्री पुत्रको उत्पन्न करती है। सूखे हुए वृक्षोंको इस तेलके द्वारा सींचनेसे वे फिर हरे भरे, फल फूल युक्त स्निग्ध और मजबूत होजाते हैं। टूटगये हैं अंग जिनके ऐसे मनुष्य, गौयें, घोडे और हाथी इस तेलके सेवनसे अत्यन्त दृढ अंगवाले होते है ॥ ४०० ॥ १ ॥

अष्टादशशतिकप्रसारणीतैल।

समूलदलशाखायाः प्रसारण्याः शतत्रयम्।
शतमेकं शतावर्या अश्वगन्धाशतं तथा॥ २॥
केतकीनां शतं चैकं दशमूलाच्छतं शतम्।
शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च॥ ३॥
जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशेषितम्।
ततस्तेन कषायेण कषायद्विगुणेन च॥ ४॥
सुव्यक्तेनारनालेन दधिमस्त्वाढकेन च।
क्षीरशुक्तेक्षुनिर्यासच्छागमांसरसाढकैः॥
तैलद्रोणसमायुक्तं दृढे पात्रे निधापयेत्॥ ५॥

मूल, पत्ते और शाखासहित प्रसारणी ३०० पल, शतावर १०० पल असगन्ध १०० पल, केतकी १०० पल, दशमूलकी प्रत्येक ओषधि १००-१०० पल, खिरैंटी १०० पल और पियाबाँसा १०० पल इन सबको एकत्र कूटकर १०० द्रोण (३२०० सेर) जलमें पकावे। जब पकते पकते एक द्रोण (३२ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काढेके साथ काढेसे दुगुनी अर्थात् ६४ सेर काँजी; दहीका तोड ८ सेर, दूध ८ सेर शुक्तनामक काँजी ८ सेर, ईखका रस ८ सेर बकरेके मांसका रस ८ सेर और तिलका तैल ३२ सेर मिलाकर एक सुदृढ पात्रमें भरदेवे॥ २-५॥

द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम्।
भल्लातकं नतं शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शठी॥ ६॥
वचा पृक्का प्रसारण्याः पिप्पल्या मूलमेव च।
देवदारु शताह्वा च सूक्ष्मैलात्वचबालकम्॥ ७॥
कुंकुमं मदमञ्जिष्ठा तुरुष्कं नखिकाऽगुरु।
कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गध्यामचन्दनम्॥ ८॥
कक्कोलं नलिका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम्।
शठी हरेणुशैलेयश्रीवासं च सकेतकम्॥ ९॥
त्रिफला कच्छुरा भीरु सरलं पद्मकेशरम्।
प्रियंगूशीरनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा॥ १०॥

दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् ।
कटुकाजातिपूगानां फलानि शल्लकीरसम् ॥ ११ ॥
भागांस्त्रिपलिकान्दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
विस्तीर्णे सुदृढे पात्रे पाच्यैषा तु प्रसारणी ॥ १२ ॥

अब कलककी ओषधियोंको कहते हैं–भिलावे, तगर, सोंठ, पीपल, चीता, कचूर, वच, असवरग, प्रसारणी, पीपलामूल, देवदारु, सोया, छोटी इलायची, दारचीनी, सुगन्धवाला, केशर, कस्तूरी, मंजीठ, शिलारस, नख, अगर, कपूर, कुन्दुरु, हल्दी, लौंग, सुगन्ध, तृण, रक्तचन्दन, शीतल, चीनी, नलिका, नागरमोथा, काली अगर, कुमुद, तेजपात, कचूर, रेणुका, भूरिछरीला, गन्धाविरोजा, केवडा, त्रिफला, कौंच, शतावर, धूपसरल, कमलकी केशर, फूलप्रियंगु, खस, बालछड, जीवकादिगणकी औषधियाँ, पुनर्नवा, दशमूल, असगन्ध, नागकेशर, रसौंत, कुटकी जायफल, सुपारी, सेमलकी मुषली और सालईका गोंद इन प्रत्येकके कलकको बारह बारह तोले डालकर सबको एक बहुत बडे और दृढ पात्रमें भरकर इस प्रसारणीतैलको मन्दमन्द अग्निद्वारा शनैः शनै पकाना चाहिये । (बडे बर्त्तनके अभावमें प्रत्येक ओषधिका अलग अलग क्वाथ पकावे) ॥ ६–४१२ ॥

प्रयोगः बहुविधश्चात्र रोगार्त्तानां विधीयते ।
अभ्यङ्गात्त्वग्गतं हन्ति पानात्कोष्ठगतं तथा ॥ १३ ॥
भोजनात्सूक्ष्मनाडीस्थान्नस्याद्दूर्ध्वगतं तथा ।
पक्वाशयगते वस्तिर्निरूहः सर्वकायिके ॥ १४ ॥

यह तैल वातपीडित रोगियोंको छः प्रकारसे सेवन करावे । इसको मालिश करनेसे त्वचागत, वातरोग, पान करनेसे कोष्ठगत, वात, भोजन करनेसे सूक्ष्मनाडियोंमें स्थित वात, नस्य, देनेसे ऊर्ध्व अर्थात् शिरोगत वायु, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाने) से पक्वाशयगत वात, और निरूहवास्तिद्वारा प्रयोग करनेसे समस्त शरीरगत वातकी पीडा नाश होती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथाऽमृतम् ।
एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि ॥ १५ ॥

अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ।
सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः ॥ १६ ॥
वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ।
न प्रसूते च या नारी साऽपि पीत्वा प्रसूयते ॥ १७ ॥
अप्रजाः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत्सुतम् ॥१८॥

यह तैल किशोर अवस्थावाले मनुष्य एवं घोडा, घोडी, हाथी, गाय, बैल आदि पशुओंको भी अमृतकी समान हितकारी है । इस तैलके द्वारा सींचनेसे बडे बडे सूखे वृक्ष फिरसे हरे भरे और फल फूलयुक्त होजाते हैं । वृद्ध मनुष्य भी इस तेलके सेवनसे फिर तरुण होजाता है । जिस स्त्रीके सन्तान पैदा नहीं होती इस तेलको पान करनेसे उस स्त्रीके भी सन्तान उत्पन्न होती है । जो मनुष्य सन्तानहीन है वह भी इसको पान करके पुत्रको प्राप्त करता है ॥ १६-१८ ॥

अशीतिं वातजान्रोगान्पैत्तिकाञ्श्लैष्मिकानपि ।
सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत्क्षिप्रमेव हि ॥ १९ ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् ।
कृत्वा विष्णोर्बलिं चापि तैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥ ४२० ॥

यह तैल अस्सी प्रकारके वातजरोग एवं पित्तज और कफज सर्वप्रकारके रोग और सन्निपातसे उत्पन्नहुए सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करता है । इस तैलके प्रभावसे अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंको अत्यन्त सन्तानोत्पत्ति हुई थी । प्रथम विष्णुभगवान्का यथाविधि पूजन कर फिर इस तेलको प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१९ ॥ ४२० ॥

महाराजप्रसारणीतैल ।

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे पीतात्सहचारकात् ।
अश्वगन्धैरण्डबला वरी रास्ना पुनर्नवा ॥ २१ ॥
केतकी दशमूलं च पृथक् त्वक् पारिभद्रकः ।
एषां तुलां तु प्रत्येकं तुलार्द्धं किलिमात्तथा ॥ २२ ॥
तुलार्द्धं स्याच्छिरीषाच्च लाक्षायाः पञ्चविंशतिः ।
पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत् ॥ २३ ॥

जलपञ्चाढकशते सपादे तत्र शेषयेत् ।
द्रोणद्वयं काञ्जिकस्य षड्विंशत्याढकोन्मितम् ॥ २४ ॥
क्षीरदध्नोः पृथक् प्रस्थान् दशमस्त्वाढकं तथा ।
इक्षो रसाढकौ चापि छागमांसतुलात्रये ॥ २५ ॥
पञ्चचत्वारिंशदम्भःप्रस्थान् पक्व तु शेषयेत् ।
सप्तदश रसप्रस्थान् मञ्जिष्ठाक्वाथ एव च ॥ २६ ॥
कुडवोनाढकोन्मानो द्रव्यैरेभिस्तु साधयेत् ।
सुशुद्धं तिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥ २७ ॥

गन्धप्रसारिणी ३०० पल, पीले फूलकी कटसरैया २०० पल, असगन्ध, अण्डकी जड, खिरैंटी, शतावर, रास्ना, पुनर्नवा केतकी, दशमूल और फरहदकी छाल ये प्रत्येक सौ सौ पल, देवदारु ५० पल, शिरसकी छाल ५० पल, लाख २५

१-काञ्जिकं मानतो द्रोणः शुक्तेनात्र विधीयते ।

शुक्तविधि ।

अत्र शुक्तविधिर्मण्डप्रस्थः पञ्चाढकोन्मितम् । काञ्जिकं कुडवं दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलक तु ॥ पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात् पलषोडशिकं तथा । कणाजीरकसिन्धूत्थं हरिद्रामरिचं पृथक् ॥ द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनं स्थितम् । सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदावतार्य गृह्यते ॥ तदा देयं चतुर्जातं पृथक् कर्षत्रयोन्मितम् । पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां क्षालनं तथा ॥

(यद्यपि मूलमें काँजीका परिमाण २६ आढक लिखाहै तथापि वृद्ध वैद्योंके मतसे १ द्रोण ही डालनी चाहिये, क्योंकि अधिक डालनेसे काँजीकी गन्ध आने लगती है ।) इसमें काँजीको एक द्रोण परिमाण शुक्तके साथ डालना चाहिये । भातका माँड १ प्रस्थ, काँजी ५ आढक, दही १६ तोले, गुड १ प्रस्थ, अम्लमूलक (काँजीके नीचेकी जमी हुई गाद) आठ पल, शुद्ध अदरख १६ पल एवं पीपल, जीरा, सैंधा नमक, हल्दी और कालीमिरच ये प्रत्येक ओषधि दो दो पल लेवे । इन सबको घीसे भावना दियेहुए पात्रमें भरकर उसका मुख बन्दकरके आठ दिनतक रखा रहनेदेवे । जब उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसको निकालकर छानलेवे । फिर उसमें दारचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इनको तीन तीन कर्ष बारीक पीसकर मिलादेवे । इसको शुक्त कहते हैं ॥ यह शुक्तही महाराजप्रसारणी तैलमें काँजीके बदलेमें डालाजाता है । इसके सम्पूर्ण गन्धद्रव्योंको पञ्चपल्लवके क्वाथसे धोकर सुखालेना ।

पल और लोध २९ पल सबको एकत्र कूटकर ५२९ आढक जलमें पकावे। जब पकते पकते दो द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर काँजी १ द्रोण, दूध दस प्रस्थ, दही दस प्रस्थ, दहीका तोड एक आढक, ईखका रस २ आढक और बकरेके मांसको ३०० पल लेकर ४९ प्रस्थ जलमें पकावे। जब पककर १७ प्रस्थ जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। मजीठका क्काथ १९ शराव परिमाण इन सब द्रव्योंके साथ उत्तम तिलका तैल १ द्रोण १ प्रस्थ मिलाकर पकावे॥ २१-२७॥

आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्को भल्लातकं कणा।
नागरं मरिचं चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम्॥ २८॥
पथ्याक्षधात्र्यः सरलं शताह्वा कर्कटी वचा।
चोरपुष्पी शठी मुस्तद्वयं पद्मं च सोत्पलम्॥ २९॥
पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धा पुनर्नवा।
दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसाञ्जनम्॥ ४३०॥
गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयो गणस्तथा।
एषां त्रिपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते॥ ३१॥

पकते समय उसमें मिलावे (अभावमें लालचन्दन), पीपल, सोंठ और मिरच ये प्रत्येक छः छः पल, हरड, बहेडा, आमला, धूपसरल, सोया, काकडासिंगी, वच, चोरपुष्पी, कचूर, नागरमोथा, मोथा, कमल, नीलकमल, पीपलामूल, मंजीठ, असगन्ध, पुनर्नवा, दशमूल, चकवड, रसौंत, सुगन्धतृण, हल्दी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलहठी इन सबके तीन तीन पल कल्कको डालकर प्रथम पाक करे॥ २८-४३१॥

देवपुष्पी बोलपत्रं शल्लकीरसशैलजे।
प्रियंगूशीरमधुरी मांसी दारु बलाऽचलम्॥ ३२॥
श्रीवासो नलिका खोटिःसूक्ष्मैला कुन्दुरुर्मुरा।
नखीत्रयं च त्वक्पत्री परमा पूतिचम्पकम्॥ ३३॥
मदनं रेणुका पृक्का मरुवं च पलत्रयम्।
प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते॥ ३४॥

१ भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते।

पश्चात् चोरपुष्पी, गन्धचोल, तेजपात, शल्लकी रस (राल), भूरिछरीला, फूलप्रियंगु, खस, सौंफ, बालछड, देवदारु, खिरैंटी, शिलारस, सरलका गोंद, नलिका, पालकका शाक, छोटी इलायची, कुन्दुरु, मुरामांसी, तीनों प्रकारका नखीद्रव्य-अर्थात् बेरके पत्तेकी समान, नीलकमलके पत्तेकी समान कान्तिवान् और घोडेके खुरकी समान आकारवाली तेजपात, गन्धपलाशी, खट्टासमुष्क, चम्पाके फूल, मैनफल, रेणुका, असवरग और मरुआ (छोटे पत्तोंकी तुलसी) इन प्रत्येकके बारह बारह तोले कल्क और गन्धोदकके साथ तैलका दूसरा पाक करे ॥ ३२-३४ ॥

गन्धोदकं तु त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम् ।
प्रत्येकं सबलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः ॥ ३५ ॥
कुष्ठार्द्धभागोऽत्र जलप्रस्था वै पञ्चविंशतिः ।
अर्द्धावशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्मणि ॥ ३६ ॥

गन्धोदक बनानेकी विधि-तेजपात, सुगन्धितपत्र (तेजपातकी समान पत्रविशेष), खस, नागरमोथा और खिरैंटीकी जड ये प्रत्येक ओषधि पच्चीस पच्चीस पल और कूठ साढे बारह पल लेकर सबको एकत्र २५ प्रस्थ जलमें पकावे। जब पकते पकते आधा जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। गन्धोदकका पाक करनेपर अर्द्धावशेष जल रखना चाहिये ॥ ३५-३६ ॥

गन्धाम्बुचन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते ॥ ३७ ॥
संगृह्य चन्दनं श्वेतं पञ्चाशत्पलसंमितम् ।
तावत्येव जले पक्त्वा तच्छेषेऽर्धेऽवतारयेत् ॥
ततस्तु चन्दनं पिष्ट्वा मिश्रयेच्चन्दनोदकम् ॥ ३८ ॥

फिर गन्धोदक और निम्नलिखित चन्दनोदकके साथ तैलका तीसरा पाक करे। चन्दनोदक बनानेकी विधि-सफेद चन्दनको ५० पल लेकर ५० सेर जलमें पकावे, २५ सेर शेष रहनेपर उतार लेवे। चन्दनको बारीक पीसकर जलमें घोलकर चन्दनोदक बनावे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक्कालीयककुङ्कुमम् ।
भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लता कस्तूरिका तथा ॥ ३९ ॥
लवङ्गागुरुकक्कोलजातीकोषफलानि च ।
एला लवङ्गच्छल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम् ॥ ४० ॥

कस्तूरी षट्पला चन्द्रात्पलं सार्द्धं च गृह्यते ॥ ४१ ॥

इस तीसरे पाकमें कल्कके लियेनागकेशर, कूठ,दारचीनी, कलम्बक(पीलाचन्दन), केशर, सफेदचन्दन, गठिवन, लताकस्तूरी, लौंग, अगर, शीतलचीनी, जावित्री, जायफल, इलायची और लौंगकी छाल ये प्रत्येक तीन तीन पल, कस्तूरी ६ पल और कपूर डेढ पल डालना चाहिये ॥ ३९–४१ ॥

वेधनार्थं पुनश्चन्द्रमदौ देयौ तथोन्मितौ ॥ ४२ ॥
महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्तिता ।
गुणान्प्रसारणीनां तु वहन्त्येषा बलोत्तमान् ॥ ४३ ॥

जब तैल उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब वेधनके लिये कपूर और कस्तूरीको पूर्वोक्त परिमाणमें पीसकर उस चूर्ण और थोडेसे तेलको एक बर्त्तनमें मिलालेवे। फिर उसको सिद्धहुए सम्पूर्ण तैलके साथ उत्तम प्रकारसे मिलाकर एक सकोरेसे ढककर रखदेवे। यह महाराजप्रसारणीतैल राजाओंके सेवन करनेयोग्य कहागया है। यह पूर्वोक्त प्रसारणी तैलोंके जो गुण हैं उनसे भी अधिक गुणोंको करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

महासुगन्धितैल और लक्ष्मीविलासतैल ।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलव्याघ्रीवचाचेलकात्वक्पत्रैः
सह गन्धपत्रकशठीपथ्याक्षधात्रीघनैः । एतैः शोधित-
संस्कृतैः पलयुगेत्याख्यातया संख्यया तैलप्रस्थ-
मवस्थितैः स्थिरमतिः कल्कैः पचेद्गान्धिकैः ॥ ४४ ॥
मांसीमुरामदनचम्पकसुन्दरीत्वग्ग्रन्थ्यम्बुरुङ्भकवकै-
र्द्विपलैः सपृक्कैः । श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिषीणां
प्रत्येकतः पलमुपास्य पुनः पचेत्तु ॥ ४५ ॥
एलालवङ्गचलचन्दनजातिपूतिकक्कोलकागुरुलता-
घुसृणैः पलार्द्धैः । कस्तूरिकाक्षसहितामलदीप्तियुक्तैः
पक्त्वा तु मन्दशिखिनैव महासुगन्धम् ॥ ४६ ॥
पञ्चद्विकेन चार्द्धेन मदात्कर्पूरमिष्यते ।
कर्पूरमदयोरर्द्धं पत्रकल्कमिहेष्यते ॥ ४७ ॥
पक्वपूतेऽप्यनुष्ण एव [illegible] पेषणवर्तितम् ।
दीयते गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते ॥ ४८ ॥

प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिह तैः पुनः।
लक्ष्मीविलासो द्विगुणैः स्यादयं तैलसत्तमः॥ ४९॥
पञ्चपत्राम्बुना चाद्यो द्वितीयो गन्धवारिणा।
तृतीयोऽपि च तेनैव पाको वा धूपिताम्बुना॥ ४५०॥
तैलयुग्ममिदं तूर्णं विकारान्वातसम्भवान्।
क्षपयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधांधृतिं धियम्॥ ५१॥

मंजीठ, चोरपुष्पी (भटेउर), देवदारु, धूपसरल, व्याघ्रनख, वच, सुपारीके पेंडकी छाल, तेजपात, सुगन्धतृण, कचूर, हरड, आमले, बहेडा और नागरमोथा इन पन्द्रह औषधियोंको दो दो पल लेकर कूट पीसकर कल्क बनावे। इस कल्क और बिल्वादि पञ्चपल्लवके गन्धोदक (क्वाथ) के साथ एक प्रस्थ तिलके तैलको प्रथमवार पकावे। फिर बालछड, कपूरकचरी, मैनफल, चम्पाके फूल, फूलप्रियंगु, दारचीनी, गठिवन, सुगन्धबाला, कूठ, महुएके फूल और असवरग ये प्रत्येक दो दो पल एवं गन्धविरोजा, कुन्दुरु, नखी, नलिका और सौंफ इन प्रत्येकके एक एक पल कल्कको डालकर और महाराजप्रसारणी तैलमें कहेहुए गन्धोदकके साथ दूसरा पाक करे। फिर इलायची, लौंग, शिलारस, चन्दन, चमेलीके फूल, खट्टासमुष्क शीतलचीनी, अगर, लताकस्तूरी और केशर ये प्रत्येक दो दो तोले, कस्तुरी २ तोले और कपूर छः मासे दो रत्ती इन दो औषधियोंके कल्कके साथ इस महासुगन्धितैलको मन्दमन्द अग्निके द्वारा तीसरीबार पकावे। इसमें कस्तूरी ९ भाग और कपूर आधा लेवे। कपूर और कस्तूरीसे आधे पत्र कल्कको बारीक पीसकर सुगन्ध बढानेके लिये तैलको पकाकर छानलेनेपर गरममें ही मिलादेवे। गन्धद्रव्योंके शुद्धि और संस्कार पहले कहचुके हैं, उन्हींके द्वारा इसमेंभी व्यवहार करे। कल्क द्रव्योंको दुगुनी मात्रासे इस तेलमें डालनेसे यह ही सर्वोत्तम लक्ष्मीविलास तैल हो जाता है। प्रथमपाक पञ्चपल्लवके क्वाथके साथ, दूसरा पाक गन्धोदकके साथ, तीसरापाक अगरके द्वारा धूपितकियेहुए गन्धजलके साथ करना। यह दोनों प्रकारका तैल वातजनित सम्पूर्ण विकारोंको शीघ्र नष्ट करता है। एवं पुष्टि, कान्ति, मेधा, धृति और बुद्धिको उत्पन्न करता है॥ ४४-४५१॥

वातव्याधिमें पथ्य।

अभ्यङ्गो मर्दनं वस्तिः स्नेहः स्वेदोऽवगाहनम्।
संवाहनं संशमनं प्रावृतिर्वातवर्ज्जनम्॥ ५२॥

अग्निकर्मोपनाहश्च भूशय्या स्नानमासनम्।
तैलद्रोणीशिरोवस्तिः शयनं नस्यमातपः ॥ ५३ ॥
सन्तर्पणं बृंहणं च किलाटो दधिकूर्चिका।
सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्वाद्वम्ललवणा रसाः ॥ ५४ ॥
नवीनास्तिलगोधूमा माषाः संवत्सरोत्थिताः।
शालयः षष्टिकाश्चापि कुलत्थानां रसः सुराः ॥ ५५ ॥
ग्राम्यगोऽश्वतरोष्ट्राश्वरासभच्छागलादयः।
आनूपाः कोलमहिषन्यंकुखङ्गिगजादयः ॥ ५६ ॥
औदका हंसकादम्बचक्रमद्गुबकादयः।
बिलेशया भेकगोधानकुलश्वाविदादयः ॥ ५७ ॥

तेलकी मालिश, अंगमर्दन, वास्तिक्रिया, स्नेहपदार्थोंका सेवन, स्वेदक्रिया, जलमें घुसकर स्नान, शरीरको मलना, वातनाशक औषधियोंका प्रयोग, वस्त्रादिसे शरीरको ढकना, वायु सेवनका त्याग, अग्निकर्म, उपनाह स्वेद देना, पृथ्वीपर सोना, स्नान करना, बैठना, तैलसे भरेहुए काष्ठादिके पात्रमें कण्ठपर्यन्त गोता लगाकर स्नान करना, सिरोवस्ति, शयन करना, नस्य देना, धूपका सेवन, सन्तर्पण क्रिया, पुष्टिकर द्रव्य, मावा दहीके साथ पकाया हुआ दूध, घी, तेल, चर्बी, मज्जा, मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त पदार्थ, नये तिल, नये गेहूँ, नये उडद, एक वर्षके पुराने शालि और सांठी धानोंके चावल, कुलथीका यूष, मदिरा, बैल, खच्चर, ऊँट घोडा, गधा और बकरा आदि ग्राम्यपशुओंका मांस, सुअर, भैंसा, बारहासिंगा, गेंडा और हाथी आदि अनुपदेशजात-पशुओंका मांस, हंस, कलहंस, चकवा, जलकौआ और बगला आदि जलचरजीवोंका मांस, मेंडक, गोह, नौला और खरगोश प्रभृति बिलमें रहनेवाले जीओंका मांस ॥ ५८ ॥

चटकः कुक्कुटो बर्ही तित्तिरिश्चेति जाङ्गलाः।
शिलिन्दः पर्वतो नक्रो गर्गरः कवयील्लिशः ॥ ५८ ॥
एरङ्गश्चुल्लकी कूर्मः शिशुमारस्तिमिङ्गिलः।
रोहितो मद्गुरुः शृङ्गी वर्म्मी च कुलिशो झषाः ॥ ५९ ॥
पटोलं शिग्रुवार्त्ताकुलशुनं दाडिमद्वयम्।
पक्वतालं रसालं च नलदम्बु परूपकम् ॥ ६० ॥

जम्बीरं बदरं द्राक्षा नागरङ्गं मधूकजम् ।
प्रसारणी गोक्षुरकः शुक्लांगी पारिभद्रकः ॥ ६१ ॥
पयांसि च पयःपेटी रुबुतैलं गवां जलम् ।
मत्स्यण्डिका च ताम्बूलं धान्याम्लं तिन्तिडीफलम् ॥
यथाश्रयं यथावस्थं यथावरणमेत्र हि ।
वातव्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥६३ ॥

चिडिया, मुर्गा, मोर, तीतर आदि जंगलके पक्षियोंका मांस, शिलिन्द और पर्वत, (मत्स्य विशेष) एवं नाका, गर्गरनामक मछली, कवयीमच्छ, इल्लिश मत्स्य, अरंगा नामकी मछली, चुल्लकी (उत्पलनाम मत्स्यविशेष), कछुआ, शिशुमार (जलजन्तु विशेष), तिमिंगिल (बडी मछली), रोहूमछली, मदगुरु मत्स्य, सींगों-वाली मछली, वर्मी मछली, केंकडा, छोटी मछली ये सब जन्तु एवं परवल, सहिंजना, बैंगन, लहसन, मीठा और खट्टा दोनों प्रकारका अनार, पका हुआ ताडका फल, आम, नीम, फालसे, जम्बीरीनीम्बू, बेर, दाख, नारंगी, महुएके फल, गन्ध प्रसारिणी गोखुरू, सिह्मालू, फरहद, दूध, कच्चानारियल, अण्डीका तैल, गोमूत्र, मिश्री, पान, काँजी और इमली ये सब पदार्थ वातरोगमें मनुष्योंको हितकर हैं ५८-४६३

वातव्याधिमें अपथ्य ।

चिन्ताप्रजागरणवेगविधारणानि छर्दिः श्रमोऽनशनता चणकाः कषायाः । नीवारकङ्गुशरवैणवकोरदूषश्यामाक-चूर्णकुरुविन्दमुखानि यानि ॥ ६४ ॥ धान्यानि तानि तृणजानि च राजमाषा मुद्गास्तडागसरिदम्बु यवः करीरम् । जम्बूः कशेरु तृणकं क्रमुकं मृणालं निष्पाव-बीजमपि तालफलास्थिमज्जा ॥६५ ॥ शालूकतिन्दुक-कठिल्लकबालतालं शिबी च पत्रभवशाकमुदुम्बरं च । शीताम्बु रासभपयोऽपि विरुद्धमन्नं क्षारोऽपि शुष्कपललं क्षतजस्रुतिश्च ॥ ६६ ॥ क्षौद्रं कषायकटु-तिक्तरसा व्यवायो हस्त्यश्वयानमपि चंक्रमणं च खट्वा । आध्मानिनोऽर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात्स्नानं प्रदुष्ट-

सलिलं द्विजघर्षणं च ॥ ६७ ॥ निःशेषतस्तु परीकीर्त्तित एष वर्गो नृणां समीरणगदेषु मुदं न दत्ते ॥ ४६८ ॥

चिन्ता, रात्रिमें जागना, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, वमन, परिश्रम, और लंघन करना, चने, कषैले पदार्थ, नीवार (पुनीर) के धान, कंगनीके चावल, शरतृणजातँ धान, बाँसके चावल, कोदों, समेके चावल, सांठीआदिके चावल, और वनकुलथी आदि समस्त तृणधान्य, लोभिया, मूँग एवं तालाब और नदीका जल, जौ, बाँसके अंकुर, जामुन, कसेरू, चीनाघास, सुपारी, कमलकी नाल, सेमके बीज, ताडके फलोंकी गुठलीकी गिरी, भसींडा, तेन्दू, करेला, कच्चे ताडका शाक, सेमकी फली, लौकी और पेठा, आदि पत्रशाक, गूलर, शीतलजल, गवीका दूध, विरुद्ध अन्नपान, क्षारपदार्थ, शुष्क मांस, रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना), शहद कषैले कडुवे और तीखे रसवाले पदार्थ, स्त्रीप्रसंग, हाथी घोडे आदिकी सवारी करना, रास्ता चलना और खाटपर सोना ये सम्पूर्ण अन्नपान और क्रियायें वातरोगमें मनुष्योंको विशेषकर आध्मान और अर्दितवाले रोगियोंको स्नान, दूषितजल और दन्तधावन करना इत्यादि क्रियायें अहितकारक हैं ॥ ६४-४६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातव्याधिचिकित्सा ।

पित्तरोगकी चिकित्सा ।

अकालपलितं नेत्ररक्तत्वं तस्य पीतिमा ।
तद्वन्मूत्रस्य पीतत्वं मलस्यापि च पीतता ॥ १ ॥
नखानामल्परक्तत्वं तेषामपि च पीतता ।
दन्तानां चापि पीतत्वं पीतत्वं वपुषस्तथा ॥ २ ॥
तमसो दर्शनं चापि तथा च वदनाम्लता ।
उच्छ्वासस्योष्णता चापि धूमोद्गारस्तथैव च ॥ ३ ॥
भ्रमः क्लमस्तथा क्रोधो दाहो भेदसमन्वितः ।
तेजोद्वेषश्च शीतेच्छा अतृप्तिररतिस्तथा ॥ ४ ॥

भक्षितस्य विदाहश्च जठरानलतीक्ष्णता ।
रक्तप्रवृत्तिर्विड्भेदः पुरीषस्योष्णता तथा ॥
मूत्रोष्णता मूत्रकृच्छ्रं शुक्राल्पत्वं तनूष्णता ॥ ५ ॥
स्वेदस्यापि च दौर्गन्ध्यं देहप्रावरणं तथा ।
शरीरस्यावसादश्च पाकश्च वपुषस्तथा ॥ ६ ॥
चत्वारिंशदमी पित्तव्याधयो मुनिदर्शिताः ।
बोद्धव्या स्वप्रकरणे चिकित्सैषां पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥

असमयमें बालोंका पकना, नेत्रोंमें लाली और पीलापन, मूत्र और मलका पीतवर्ण होना, नाखूनोंकी लाली कम होना और पीला पडजाना, दाँतोंका और समस्त शरीरका पीला रङ्ग होना, आँखोंके सामने अन्धेरा आना, मुखमें खट्टापन, निःश्वासवायुका उष्ण होना, गलेमें धुआँसा घुटना, भ्रम, खेद, क्रोध, दाह, दस्तोंका होना, अग्नि और धूपकी तेजी बुरी मालूम होना, शीतोपचारकी इच्छा होना, असन्तोष, किसी कार्यमें चित्तका न लगना, भोजन करनेके बाद दाह होना, जठराग्निका तीक्ष्ण होना, रक्तकी वमन और रुधिरके दस्त होना, मलका पतलापन और उष्णताका होना, मूत्रमें उष्णता, मूत्रकृच्छ्र, वीर्यकी अल्पता, तरलता और उष्णताका होना, शरीरका गरम रहना, पसीना और शरीरमें दुर्गन्ध आना, देहकी त्वचाका फटना, शरीरकी अवसन्नता और पकना अर्थात् फोड़े फुन्सी आदिका निकलना ये ४० प्रकारकी पित्तकी व्याधियाँ मुनियोंने निर्दिष्ट की हैं । इन सबकी पृथक् पृथक् चिकित्सा मूलरोगाधिकारके अनुसार जाननी चाहिये ॥ १–७ ॥

धात्रीलौह ।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य ।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पटे घृष्टम् ॥ ८ ॥
धात्र्याः क्वाथेन तच्चूर्णं भाव्यं वै सप्तवासरम् ।
चण्डातपेन संशुष्कं भूयः पिष्टं घटे स्थितम् ॥ ९ ॥
घृतेन मधुना युक्तं भोजनाद्यन्तमध्यतः ।
त्रीन्वारान्भक्षयेन्नित्यं पथ्यं दोषानुबन्धतः ॥ १० ॥
भक्तस्यादौ नाशयेच्च दोषान् पित्तकृतानपि ।

मध्ये चानाहविष्टब्धं तथाऽन्ते चाग्निमान्द्यताम् ॥
रक्तपित्तसमुद्भूतान् रोगान् हन्ति न संशयः ॥ ११ ॥

आमलोंका चूर्ण ३२ तोले, लोहभस्म १६ तोले और मुलहठीका चूर्ण ८ तोले लेकर इन सबको खरलमें एकत्र पीसलेवे। फिर आमलोंके काथके साथ उस चूर्णको ७ दिनतक भावना देकर तीक्ष्ण धूपमें सुखालेवे और बारीक पीसकर मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इस लोहको घृत और शहदके साथ मिलाकर प्रतिदिन भोजनके पहले मध्यमें और अन्तमें इस प्रकार तीनवार भक्षण करे। यह औषध भोजनके पहले सेवन करनेसे पित्तजनित रोगोंको, भोजनके मध्यकालमें सेवन करनेसे आनाह, विष्टब्धाजीर्ण आदि और भोजनके अन्तमें सेवन करनेसे अग्निकी मन्दता और रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोगोंको निश्चय नाश करती है। इसपर यथादोषानुसार पथ्य देना चाहिये ॥ ८-११ ॥

पित्तान्तक रस।

जातीकोषफले मांसी कुष्ठं तालीशपत्रकम्।
माक्षिकं मृतलौहं च अभ्रं दिव्यं समांशकम् ॥ १२ ॥
सर्वतुल्यं मृतं तारं समं निष्पिष्य वारिणा।
द्विगुञ्जाभा वटी कार्या पित्तरोगविनाशिनी ॥ १३ ॥
कोष्ठस्थितं च यत्पित्तं शाखाश्रितमथापि वा।
शूलं चैवाम्लपित्तं च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ १४ ॥
दुर्नामभ्रान्तिवान्ति च क्षिप्रमेव विनाशयेत्।
रसः पित्तान्तको ह्येष काशिराजेन भाषितः ॥ १५ ॥

जावित्री, जायफल, बालछड, कूठ, [illegible]शपत्र, सोनामाखी, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और लाग ये सब औषधियाँ समान भाग और सबकी बराबर चाँदीकी भस्म लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह वटी सर्व प्रकारके पित्तके रोगोंको शमन करनेवाली है। एवं कोष्ठगत और हाथ, पाँव आदि अंगोंमें स्थित पित्त, शूल, अम्लपित्त, पाण्डु, हलीमक, बवासीर, भ्रान्ति और वमन इन सब रोगोंको यह पित्तान्तकरस शीघ्रही नष्ट करता है। इसको काशिराजजने निर्दिष्ट कियाहै ॥ १२-१५ ॥

महापित्तान्तकरस।

यद्यत्र माक्षिकं त्यक्त्वा सुवर्णमपि दीयते।
महापित्तान्तको नाम सर्वपित्तविनाशनः ॥ १६ ॥

यदि उक्त पित्तान्तक रसमें सोनामाखीको त्यागकर सुवर्णभस्म मिलादीजाय तो यही महापित्तान्तक रस कहा जाता है । यह सम्पूर्ण पित्तविकारोंको नाश करे ॥

गुडूचीतैल ।

गुडूचीक्राथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं प्रयत्नतः ।
वातरक्तं निहन्त्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥ १७ ॥

गिलोयके क्राथ और कल्कके साथ विधिपूर्वक तिलके तैलको सिद्ध करे । यह तैल मर्दन करनेसे वातरक्त और पित्तरोगोंको निस्सन्देह शीघ्र नष्ट करता है ॥

पित्तरोगमें पथ्य ।

तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनं
ज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारि जलजं स्त्रीगात्रसंस्पर्शनम् ।
सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत् ॥१८॥

तिक्त (कडवे) रसवाले पदार्थ, मधुर और कषैले रसवाले पदार्थ, शीतल वायु, छाया, रात्रिकी वायु, पंखेकी वायु, चाँदनी, कच्चे मकान, फुहारेका जल, कमल, स्त्रीका आलिंगन, घृत, दूध, विरेचन, अभिषेचन, रुधिरस्राव कराना और प्रलेप आदि करना ये सम्पूर्ण पान और आहार, विहारादि औषधियाँ पित्तको शमन करती हैं ॥ १८ ॥

पित्तरोगमें अपथ्य ।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातप-
स्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः ॥ १९ ॥
माषैस्तिलैःकुलत्थैश्च मत्स्यैर्मेषामिषेण च ।
गव्येन दधितक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ २० ॥

चरपरेरस, खट्टेरस, गरम, दाहकारक, तीक्ष्ण और लवणयुक्त पदार्थ, क्रोध, उपवास, धूप, स्त्रीप्रसंग, क्षुधा और तृषाके वेगको रोकना, व्यायाम, मद्यपान, उडद, तिल, कुलथी, मछली, भेडका मांस, गौका दही और मट्ठा इन समस्त पदार्थोंके द्वारा मनुष्योंके पित्त कुपित होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां पित्तरोगचिकित्सा ।

कफरोगचिकित्सा ।

प्रथमं मुखमाधुर्यं तथैव मुखलिप्तता ।
तथा मुखप्रसेकश्च निद्राधिक्यं तथैव च ॥ १ ॥
कण्ठे घुर्घुरता चापि कटुकांक्षोष्णकामिता ।
बुद्धिमान्द्यमचैतन्यमालस्यं तृप्तिरेव च ॥ २ ॥
अग्निमान्द्यं मलाधिक्यं मलशैत्यं तथैव च ।
मूत्राधिक्यं मूत्रशौक्ल्यं शुक्राधिक्यं तथैव च ॥
स्तैमित्यं गौरवं शैत्यमेत एव हि विंशतिः ॥ ३ ॥
योगतो रूढितः प्रोक्ता मुनिभिः श्लैष्मिको गदः ।
बोद्धव्या स्वप्रकरणे चिकित्सैषां पृथक् पृथक् ॥ ४ ॥

प्रथम मुखमें मधुरताका होना, मुँहका लिहसासा रहना, मुँहसे पानीका गिरना निद्राका अधिक आना, कण्ठमें घुर्घुर शब्द होना, चरपरे और गरम पदार्थोंकी इच्छा होना, बुद्धिकी मन्दता, मूर्च्छा, आलस्य और तृप्तिका होना, अग्निकी मन्दता, मलका अधिक और शीतल होना, मूत्रकी अधिकता और सफेद होना, वीर्यकी अधिकता, शरीरमें आर्द्रता, गुरुता और शीतलताका होना ये २० प्रकारके कफके रोग योगसे विचारकर मुनियोंने वर्णन किये हैं । इनकी पृथक् पृथक् चिकित्सा मूलरोगाधिकारकी समान जाननी चाहिये ॥ १-४ ॥

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगांस्तत्र तत्र प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥
तीक्ष्णं वमननस्यादिकवलग्रहमञ्जनम् ।
व्यायामोद्वर्त्तनं धूमं शौचकार्यं सुखोदकम् ॥ ६ ॥

शिशिर ऋतुमें कफ उत्पन्न होता है और वसन्तऋतुमें सूर्यकी गर्मीसे पिघलकर अग्निको मन्द करके अनेक प्रकारके कफजन्य रोगोंको उत्पन्न करता है । इसलिये उस समय तीक्ष्ण पदार्थ, वमनकारक ओषधियाँ, नस्य, कवलधारण करना, अञ्जन आँजना, कसरत, उबटन, धूम्रपान एवं शौच और स्नानादि कार्योंमें गरम जल व्यवहार करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफजकोपविनाशकृतेऽनलवमननावनरूक्षनिषेवणम् ॥ ७ ॥

कफके कोपके शमन करनेके लिये अग्निका सेवन, वमन करना, नस्य देना और रूक्ष पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ॥ ७ ॥

विविधः सुरतानन्दः संश्रमः कफवारणः ।
कटुक्षाराम्लकाः सेव्याः शोधनं कफसम्भवे ॥ ८ ॥

कफजनित रोगोंमें—स्त्रीसहवास, परिश्रम, चरपरे, खारी और अम्ल (खट्टे) रसवाले पदार्थोंका सेवन और वमन, विरेचनादिके द्वारा शरीरकी शुद्धि करना ये सब कफनाशक हैं ॥ ८ ॥

कफचिन्तामणिरस ।

हिङ्गुलेन्द्रयवं टङ्कं त्रैलोक्यबीजमेव च ।
मरिचं च समं सर्वं त्रिभागं रससिन्दुरम् ॥ ९ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयेद्यामसात्रकम् ।
चणकाभा वटी कार्या सर्ववातप्रशान्तये ॥
कफरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १० ॥

सिंगरफ, इन्द्रजौ, सुहागा, भाँगके बीज और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक भाग और रससिन्दूर, तीन भाग लेकर सबको एकत्र अदरखके रसके साथ एक प्रहरतक खरल करे, फिर चनेकी बराबर गोलियाँ बनाकर सर्वप्रकारके वातरोगोंको शमन करनेके लिये सेवन करावे । यह रस कफरोगोंको इस प्रकार शीघ्र नाश कर देता है, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

बृहत्कफकेतुरस ।

मुक्तासुवर्णं च समानभागे प्रवालभस्मापि तयोः समानम् ।
अभ्रं च योज्यं द्विगुणं प्रवालात्स्वर्णोत्थसिन्दूरसमं विकल्प्य॥
दुग्धेन नार्या विमलाश्मपात्रे यत्नेन मर्द्यं कुशलैर्भिषग्भिः ।
गुञ्जात्रयं चास्य कफप्रकोपे सेवेत सद्यः कफनाशमिच्छन् ११

मोती १ तोला, सुवर्ण १ तोला, मूँगाभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले और स्वर्णसिन्दूर, ८ तोले लेवे । इन सबको साफ पत्थरके खरलमें डालकर स्त्रीके दूधके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करे । कफका प्रकोप होनेपर शीघ्र कफनाश करनेकी इच्छावाला मनुष्य इस रसको प्रतिदिन तीन तीन रत्ती प्रमाण सेवन करे ॥ ११ ॥

महाश्लेष्मकालानलरस ।

हिङ्गूलसम्भवं सूतं शिलागन्धकटङ्कणम् ।
ताम्रं वङ्गं तथाऽभ्रं च स्वर्णमाक्षिकतालकम् ॥ १२ ॥
धुस्तूरं सैन्धवं कुष्ठं हिङ्गु पिप्पलि कट्फलम् ।
दन्तीबीजं सोमराजीं वनराजफलं त्रिवृत् ॥ १३ ॥
वज्रीक्षीरेण सम्मर्द्य वटिकां कारयेद्भिषक् ।
कलायपरिमाणां तु खादेदेकां यथाबलम् ॥ १४ ॥
सन्निपातं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
मदसिंहो यथाऽरण्ये मृगाणां कुलनाशनः ॥
तथाऽयं सर्वरोगाणां सद्यो नाशकरो महान् ॥ १५ ॥

हिंगुलसे निकालाहुआ पारा, मैनसिल, शुद्ध गन्धक, सुहागा, ताँबा, वंग, अभ्रक, सोनामाखी इन सबकी भस्म, वंशपत्री, हरतालकी भस्म, धतूरा, सैंधानमक, कूठ, हींग, पीपल, कायफल, जमालगोटा, बापची, अमलतासकी फली और निसोत इन सबको एकत्र चूर्ण करके थूहरके दूधके साथ खरल कर मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन जठराग्निके बलाबलके अनुसार एकएक गोली भक्षण करनेसे त्रिदोषजन्य विकार इसप्रकार तत्काल नष्ट होते हैं, जैसे वज्र वृक्षको शीघ्र विनाश करदेता है वनमें जैसे मदोन्मत्त सिंह पशुओंके समूहको नाश करता है वैसेही यह महाश्लेष्मकालानलरस सर्वप्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ १२–१५ ॥

श्लेष्मशैलेन्द्ररस (रसेन्द्रगुडिका) ।

गन्धकं पारदं चाभ्रं त्र्यूषणं जीरकद्वयम् ।
शठी शृङ्गी यमानी च पुष्करं रामठं तथा ॥ १६ ॥
सैन्धवं यावशूकं च टङ्कणं गजपिप्पली ।
जातीकोषाजमोदे च लौहं यासलवङ्गकम् ॥ १७ ॥
धुस्तूरबीजं जैपालं कट्फलं चित्रकं तथा ।
प्रत्येकं कार्षिकं चैषां श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥
पाषाणे विमले पात्रे घृष्टं पाषाणमुद्गरैः ।
विल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रकदन्तिकाः ॥ १९ ॥

शिखरी फञ्जिका वासा निर्गुण्डी गणकारिका ।
धुस्तूरं कृष्णजीरं च पारिभद्रकपिप्पली ॥ २० ॥
कण्टकार्यार्द्रयोश्चैव मूलान्येतानि दापयेत् ।
एषां मूलरसं दत्त्वा घृष्टमातपशोषितम् ॥
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ २१ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कालाजीरा, कचूर, काकडासिंगी, अजवायन, पोहकरमूल, हींग, सैंधानमक, जवाखार, सुहागा, गजपीपल, जावित्री, अजमोद, लोहभस्म, जवासा, लौङ्ग, धतूरेके बीज, जमालगोटा, कायफल और चीतेकी जड इन प्रत्येक औषधिको दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको पत्थरके शुद्ध खरलमें डालकर पत्थरकी मूसलीके द्वारा बेलकी जड, आककी जड, चीतेकी जड, दन्ती और चिरचिटेकी जड, धमासा, अडूसेकी जडकी छाल, निर्गुण्डीके पत्ते, अरणीकी जडकी छाल, धतूरेके पत्ते, कालाजीरा, फरहद, पीपल, कटेरी और अदरख इन प्रत्येक औषधिके स्वरस या क्वाथके साथ क्रमपूर्वक, उत्तम प्रकारसे खरलकरे । फिर धूपमें सुखाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ १६-२१ ॥

चतुरेकां वटीं खादेन्नित्यमार्द्रकवारिणा ।
उष्णतोयानुपानेन श्लेष्मव्याधिं व्यपोहति ॥ २२ ॥
विंशतिं श्लेष्मिकाँश्चैव शिरोरोगांश्च दारुणान् ॥
प्रमेहान्विंशतिं चैव पञ्चगुल्मनिषूदनः ॥ २३ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिं चाप्यामवातविनाशनः ।
पञ्चपाण्डवामयान् हन्ति कृमिस्थौल्यामयापहः ॥२४॥
सोदावर्त्तं ज्वरं कुष्ठं गात्रकण्डवामयापहः ।
यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथा वह्निविवर्द्धनः ॥ २५ ॥
श्लेष्मामये कृपाहेतो रसेन्द्रो मुनिभाषितः ।
श्लेष्मशैलेन्द्रको नाम रसेन्द्रगुडिका स्मृता ॥ २६ ॥

इसकी प्रतिसमय एक एक गोली अदरखके साथ दिनमें चार बार भक्षण करे । इसको गरम जलके साथ सेवन करनेसे कफरोग नष्ट होते हैं । यह रस बीसों प्रकारके कफके रोग, दारुण शिरोरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, पाँच प्रकारका गुल्म-रोग, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, आमवात, पाँच प्रकारका पाण्डुरोग, कृमिरोग, स्थूलता,

उदावर्त्त, ज्वर, कुष्ठ और खुजली इन सब रोगोंको शमन करता है, जैसे सूखे ईंधनमें सूखे अग्नि शीघ्र प्रज्वलित होती है वैसेही इससे जठराग्निकी वृद्धि होती है। कफरोग होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये मुनियोंने कृपाकर इस रसको निर्माण किया है। इसको श्लेष्मशैलेन्द्र अथवा रसेन्द्रगुडिका कहते हैं ॥ २२–२६ ॥

महालक्ष्मीविलास।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धकं भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धं पारदस्तथा ॥ २७ ॥
तत्समं हरितालं च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
रसतुल्यं च कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥ २८ ॥
वृद्धदारकबीजं च बीजं स्वर्णफलस्य च।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णं च शाणकम् ॥
निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥ २९ ॥

काली अभ्रककी भस्म ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, वङ्गभस्म १ तोला, शुद्ध पारा ६ मासे, हरताल ६ मासे, ताम्रभस्म ३ मासे, भीमसेनी कपूर ६ मासे एवं जावित्री, जायफल, विधारेके बीज और धतूरेके बीज ये प्रत्येक एकएक तोला और सुवर्णभस्म ४ मासे लेवे। इन सबको पानके रसके साथ एकत्र खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवें ॥ २७–२९ ॥

निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान्घोरान्सुदारुणान्।
गलोत्थानन्त्रवृद्धिं च तथाऽतीसारमेव च ॥ ३० ॥
कुष्ठमेकादशविधं प्रमेहान्विंशतिं तथा।
श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजं तथा ॥ ३१ ॥
नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयभगन्दरम्।
कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत् ॥ ३२ ॥
आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम्।
उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजाड्यमेव च ॥
सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीरोगं च विनाशयेत् ॥ ३३ ॥

यह रस सन्निपातसे उत्पन्नहुए अत्यन्त भयंकर और दारुण रोगोंको नष्ट करता है। एवं गलेके रोग, अन्त्रवृद्धि, अतीसार, ११ प्रकारके कुष्ठ, बीसों प्रमेह, श्लीपद, कफवातजन्य रोग, पुराने और कुलोत्पन्न रोग, नाडीव्रण, भयंकर

व्रण, गुदाके रोग, भगन्दर, खाँसी, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्श, स्थूलता, दुर्गन्ध, रुधिरविकार, सर्वप्रकारका आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कान नाक आँख और मुखकी जडता, सर्वप्रकारके शूल, शिरःशूल और स्त्रीरोग इन सबको नाश करता है ॥ ३०–३३ ॥

वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् ।
अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्ट पयो दधि ॥ ३४ ॥
वारिभक्तसुरासीधुसेवनात्कामरूपधृक् ।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ३५ ॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम् ।
नित्यं गच्छेच्छतं स्त्रीणां मत्तवारविक्रमः ॥ ३६ ॥
द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकं तथा ।
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ ३७ ॥
महालक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवो जगत्पतिः ।
प्रसदादस्य भगवाँल्लक्षनारीषु वल्लभः ॥ ३८ ॥

इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली अथवा आग्निके बलानुसार सेवन करे । अनुपान अदरखका रस । इसपर मांस, पिट्ठीके बने पदार्थ, दूध, दही, भातका माँड और सीधुनामक मद्य इन पदार्थोंको सेवन करनेसे; कामदेवकी समान रूपवान् होता है । वृद्ध मनुष्यभी युवाकी समान होजाता है । वीर्य क्षीण नहीं होता, लिंगमें शिथिलता नहीं आती, बाल सफेद नहीं होते । इस रसको सेवन करने वाला मनुष्य मदोन्मत्त हाथीके पराक्रमकी समान नित्य सैकडों स्त्रियोंको भोगता है । दो लाख योजनतक जानेवाली और पुष्ट दृष्टि होती है । इस प्रयोगको महात्मा नारदने वर्णन किया है । यह महालक्ष्मीविलासनामक रस है । इसीके प्रसादसे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी लक्ष स्त्रियोंके प्रिय हुए थे ॥ ३४–३८ ॥

धुस्तूरतैल ।

धुस्तूरक्वाथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाचयेत् ।
सन्निपातज्वरश्लेष्मशोथशीर्षार्त्तिदाहनुत् ॥
कर्णग्रहहरं चास्थिसन्धिग्रहविनाशनम् ॥ ३९ ॥

पत्रसहित धतूरके क्वाथ और कल्कके साथ सरसोंके तैलको पकावे। इस तैलकी मालिश करनेसे सान्निपातिकज्वर, कफरोग, शोथ, शिरोरोग, दाह, कर्णरोग, अस्थिग्रह और सन्धिग्रहादि विकार नष्ट होते हैं॥ ३९॥

कनकतैल।

कनकार्कबला दूर्वा वासको वैजयन्तिका।
निर्गुण्डी पूतिका भार्ङ्गी निकोटकपुनर्नवाः॥ ४०॥
बदरी विजयापत्रं श्रीफलं बृहती तथा।
चित्रकं च स्नुहीमूलमग्निमन्थो व्यडम्बकम्॥ ४१॥
त्रिवृद्दन्ती गोमठी च पत्रमारग्वधस्य च।
प्रत्येकं द्विपलं चैषां गृह्णीयात्तत्क्षणादपि॥ ४२॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्।
प्रस्थं च कटुतैलस्य पाचयेत्तीव्रवह्निना[1]॥ ४३॥
द्रव्याण्येतानि सर्वाणि कल्कितानि प्रदापयेत्॥ ४४॥

धतूरा, आककी जड, खिरैंटी, दूर्वा, अडूसा, जयन्ती, निर्गुण्डीके पत्ते, पूतिकरञ्ज, भारंगी, ढेरावृक्ष, पुनर्नवा, बेरीके पत्ते, भाँगके पत्ते, बेलकी जड, बडीकटेरी, चीता, थूहरकी जड, अरणी, अण्डकी जड, निसोतकी जड, दन्तीकी जड, गोमठी (राम बैंगन) और अमलतासके पत्ते इन सबको आठआठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें सरसोंका तैल १ प्रस्थ और उक्त क्वाथकी ओषधियोंका समान भाग मिश्रित कल्क डालकर तीक्ष्ण अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे॥ ४०-४४॥

चक्षुःशूलं शिरःशूलं श्लीपदं मांसरक्तजम्।
आमवातं च हृच्छूलं वृद्धिं च गलगण्डकम्॥
शोथं बाधिर्यमुदरं कासं हन्ति न संशयः॥ ४५॥
दूर्वायां पतिते बिन्दौ शुष्कतां याति तत्क्षणात्।
कनकाख्यमिदं तैलं कफरोगकुलान्तकम्॥ ४६॥

इस तैलकी मालिश करनेसे कफजन्य नेत्रपीडा, शिरदर्द, श्लीपद, मांस रक्तविकार, आमवात, हृदयशूल, अन्त्रवृद्धि, गलगण्ड, शोथ, बधिरता, उदर-

१ "दिनैकेन विपाचयेत्" इति पाठान्तरम्।

विकार और खाँसी आदिरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं । दूधमें इसकी बून्द पडने- पर वह तत्क्षण शुष्क होजाती है । यह कनकाख्य तैल समस्त कफके रोगोंको दूर करता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तप्तराजतैल ।

धुस्तूरं पूतिका पीता जयन्ती सिन्धुवारकम् ।
शिरीषं हिज्जलं शिग्रुदशमूलं समं भवेत् ॥ ४७ ॥
प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम् ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ४८ ॥
गोमूत्र चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजी विश्वभेषजम् ॥ ४९ ॥
कट्फलं वरुणं मुस्त हिज्जलं बिल्वमेव च ।
हरितालजवापुष्पममृतं कुनटी तथा ॥ ५० ॥
कर्कटं चन्दनं शिग्रुर्यमानी व्याघ्रपादपि ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ ५१ ॥
तप्तराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम् ॥ ५२ ॥

धतूरा, पूतिकरञ्ज, पीली कटसरैया, अरणी, सिह्माल्ड, शिरस, समुद्रफल और सहिंजनेकी जड ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ और दशमूल समान भाग मिश्रित एक प्रस्थ लेवे । इन सबको एकत्र कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें सरसोंका तैल १ प्रस्थ, गोमूत्र १ आढक एव मैनफल, त्रिकुटा, कूठ, कालाजीरा, सोंठ, कायफल, बरनाकी छाल, नागरमोथा, जलतटस्थ हिज्जलवृक्षके बीज, बेलका गूदा, हरताल, लाल जवा (गुड- हल) के फूल, शुद्ध मीठा तेलिया, मैनसिल, काकडासिंगी, चन्दन, सहिंजनेकी छाल, अजवायन और कंटाईकी जड इन सब ओषधियोंको दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर डालदेवे फिर शनैः शनैः मन्द मन्द अग्निसे तैलको पकावे । इस तप्त- राजनामक तैलको महादेवजीने निर्माण किया है ॥ ४७-५२ ॥

सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महोत्तरम् ।
शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलं च दारुणम् ॥ ५३ ॥

ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदं चैव महोत्तरम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च पीनसं च हलीमकम् ॥
त्रयोदशसन्निपातं हन्ति सद्यो न संशयः ॥ ९४ ॥

यह तैल भयंकर सन्निपात, शिरोरोग, शिरकी पीडा, नेत्ररोग, दारुण कर्णशूल, ज्वर, अत्यन्त घोर दाह, अधिक पसीनेका आना, कामला, पाण्डु, हलीमक, पीनस और १३ प्रकारके सन्निपात इन सब व्याधियोंको निस्सन्देह तत्काल नष्ट करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

कफरोगमें पथ्य ।

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं
धूमान्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकम् ।
तृड्वातातपजागरादिसलिलक्रीडाङ्गनासेवनं
पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत् ॥ ९५ ॥

रूखे, खारी, कषैले, कडवे और चरफरे रसवाले पदार्थ, परिश्रम, थूकना, धूम्रपान, गरम पदार्थोंका भोजन, शिरोविरेचन (नस्य), वमन, स्वेदक्रिया, उपवास, प्यासको रोकना, वायु और धूपका सेवन, रातमें जागना, जलक्रीडा और स्त्रीसङ्ग ये सम्पूर्ण पान आहार विहार और ओषधियाँ सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल कफरोग नाश होते है ॥ ५९ ॥

कफरोगमें अपथ्य ।

गुरुपटुमधुराम्लस्निग्धमाषैस्तिलैश्च
द्रवदधिदिननिद्राशीतसर्पिःप्रपूरैः ।
भवति हि कफकोपस्त्याज्यमेतत्तसंरुग्भिः ॥ ९६ ॥

गुरुपाकी पदार्थ, लवण मधुर अम्ल और स्निग्धद्रव्य, उडद, तिल, पतले पदार्थ, दही, दिनमें सोना, शीतका सेवन और घृत भरे हुए पदार्थोंका भक्षण करना इन सबके द्वारा कफ कुपित होता है । इसलिये कफरोगियोंको ये सब पदार्थ त्याग देने चाहिये ॥ ९६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कफरोगचिकित्सा ।

१ अत्र ग्रन्थपतनमिव प्रतिभाति ।

वातरक्तकी चिकित्सा ।

वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावरिते पथि ।
क्रुद्धः संदूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥ १ ॥

जब कि बढेहुए रक्तसे वृद्धिगत वायुका मार्ग रुकजाता है तब वह कुपित हुआ वायु सम्पूर्ण रक्तको दूषित करदेता है, उसको वातशोणित रोग जानना चाहिये ॥ १ ॥

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वातशोणितम् ।
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ॥ २ ॥

यह वातरक्त रोग, उत्तान और गम्भीर भेदोंसे दो प्रकारका है । जो त्वचा और मांसमें स्थित हो वह उत्तान और जो अन्तराओं अर्थात् धातुओंमें स्थित हो वह गम्भीर कहलाता है ॥ २ ॥

दिवास्वप्नाग्निसन्तापौ व्यायामं मैथुनं तथा ।
कटूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ ३ ॥

वातरक्तरोगमें दिनमें शयन, अग्निका तापना, सन्ताप करना, व्यायाम, स्त्रीप्रसंग करना, चरपरे, गरम, भारी, क्लेदजनक पदार्थ, नमक और खटाई इन पदार्थोंको छोडदेना चाहिये ॥ ३ ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः समुकुष्ठकाः ।
यूषार्थं बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ ४ ॥

वातरक्तरोगमें अडहर, चने, मूँग. मसूर और मोठ इनका यूष बनाकर बहुतसा घी डालकर देना चाहिये ॥ ४ ॥

छिन्नोद्भवाकषायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु ।
पञ्चकर्मविशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ ५ ॥

वातरक्तको शान्त करनेके लिये वमन, विरेचनादि पञ्चकर्मोंके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके पश्चात् गिलोयके क्वाथके साथ शुद्ध शिलाजीत सेवन करनी चाहिये ॥ ५ ॥

पुराणा यवगोधूमनीवाराः शालिषष्टिकाः ।
भोजनार्थं हिता गव्यमाहिषाजपयो हितम् ॥ ६ ॥

पुराने जौ, गेहूँ, नीवारधान, शालिधान और साठीधान ये सब धान्य एवं गौ, भैंस और बकरीका दूध ये सब वातरक्त रोगीको भोजनके लिये हितकर हैं ॥ ६ ॥

हरीतकीः प्राश्य समं गुडेन तिस्रोऽथवा पञ्च ततो गुडूच्याः ।
क्वाथेऽनु पीतः शमयत्यवश्यं प्रभिन्नमाजानुजवातरक्तम् ॥ ७ ॥

तीन अथवा पाँच हरडोंको गुडके साथ खाकर ऊपरसे गिलोयका काढा पीनेसे जानुपर्यन्त स्फुटित वातरक्तरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शम्याकामृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम् ।
पीत्वा क्वाथमसृग्वातं क्रमात्सर्वाङ्गजं जयेत् ॥ ८ ॥

अमलतासकी फलीका गूदा, गिलोय और अडूसा इनका क्वाथ अण्डीका तेल मिलाकर पान करनेसे सर्वांगगत वातरक्तरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

गोधूमचूर्णाजपयोघृतं च सच्छागदुग्धो रुबुबीजकल्कः ।
लेपो विधेयः शतधौतसर्पिः सेके पयश्चाविकमेव शस्तम् ॥ ९

गेहूँका आटा, बकरीका दूध और बकरीका घी अथवा बकरीका दूध और अण्डीके बीजोंका कल्क किंवा सौबार धोयाहुआ घी ये तीनों प्रकारके प्रलेप करने और भेडका दुग्ध पान करना वातरक्तरोगमें हितकारी है ॥ ९ ॥

गुडूच्याःस्वरसं चूर्णं कल्कं वा क्वाथमेव वा ।
प्रभुतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥
लेपे पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ १० ॥

गिलोयका स्वरस चूर्ण कल्क अथवा क्वाथ बहुत दिनोंतक सेवन करनेसे रोगी वातरक्तरोगसे मुक्त होता है और वातरक्तमें भुनेहुए तिलोंको दूधमें पीसकर लेप करनेसे भी वातरक्त रोग दूर होता है ॥ १० ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां
मूलं बलेक्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान् ।
वातास्रमाशु विनिहन्ति चिरप्ररूढ-
माजानुगं स्फुटितमूर्ध्वगतं च तेन ॥ ११ ॥

अण्डकी जड, विसौंटेकी जड, गोखरू, गिलोय, खिरैंटीकी जड और तालमखानेकी जड इनका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे बहुत दिनोंका पुराना जानुपर्यन्त फैलाहुआ और ऊर्ध्वगत भयानक वातरक्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ ११ ॥

कोकिलाक्षामृताक्काथे पिबेत्कृष्णां यथाबलम् ।
पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ १२ ॥

तालमखाना और गिलोयके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर अपनी अग्निके बलानुसार पान करे और हितकर पदार्थोंका सेवन करे तो २१ दिनमेंही वातरक्त-रोगसे मुक्त होता है ॥ १२ ॥

तालेन निहतं ताम्रं रसगन्धकसंयुतम् ।
बहुधा पुटितं तालं वातरक्ते महौषधम् ॥ १३ ॥

हरतालके द्वारा ताम्रपत्रको लेसकर यथाविधि पुटपाक करके उसकी भस्म करलेवे । फिर उक्त ताँबेकी भस्म एवं शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक इन तीनोंको समान भाग मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्त दूर होता है । एवं वातरक्तरोगमें बहुतसे सम्पुटोंद्वारा भस्म की हुई हरताल परमोत्कृष्ट औषधि है ॥ १३ ॥

अमृतादि ।

अमृतानागरधान्यत्रितयेन समेन पाचनं सिद्धम् ।
जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ १४ ॥

गिलोय, सोंठ और धनियाँ इन तीनोंको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर सेवन करनेसे वातरक्त, आमवात और सम्पूर्ण कुष्टरोग दूर होते हैं ॥ १४ ॥

सिंहास्यादि ।

सिंहास्यपञ्चमूलीच्छिन्नरुहैरण्डगोक्षुरक्काथः ।
एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितः पीतः ॥ १५ ॥
प्रशमयति वातरक्तं तथाऽऽमवातं कटीशूलम् ।
मूत्रपुरीषविबन्धं ब्रध्नविकारं सुदुर्वारम् ॥ १६ ॥

अडूसेकी जड, पञ्चमूलकी औषधियाँ, गिलोय, अण्डकी जड और गोखुरू इनके क्काथमें अण्डीका तेल, हींग और सैंधानमकका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे वातरक्त शीघ्र शमन होता है तथा आमवात, कटिशूल, मल मूत्रका अवरोध और दुस्तर ब्रध्नरोग नष्ट होता है ॥ १५-१६ ॥

पटोलादि ।

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतक्षाधितम् ।
क्काथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ १७ ॥

पटोलपात, कुटकी, शतावर, हरड, बहेडा, आमला और गिलोय इनके यथाविधि सिद्ध कियेहुए क्काथको पीनेसे दाहयुक्त वातरक्त रोग दूर होता है ॥ १७ ॥

माञ्जिष्ठादि।

मञ्जिष्ठा त्रिफला निम्बं वचा कटुकरोहिणी।
वत्सादनी दारुनिशाक्काथो वातास्रनाशनः ॥ १८ ॥

मञ्जीठ, त्रिफला, नीमकी छाल, वच कुटकी, गिलोय और दारुहल्दी इनका क्काथ सेवन करनेसे वातरक्त रोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

त्रिवृतादि

त्रिवृद्विदारीगोक्षूरक्काथो वातास्रनाशनः ॥ १९ ॥

निसोत, विदारीकन्द और गोखुरू इन तीनोंका क्काथ वातरक्तको नष्ट करता है॥

नवकार्षिक।

त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठा वचा कटुकरोहिणी।
वत्सादनी दारुनिशा कषायो नवकार्षिकः ॥ २० ॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम्।
कण्डूं कापालिकाकुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ २१ ॥
पञ्चरक्तिकमाषेण कार्योऽयं नवकार्षिकः।
किन्त्वेवं साधिते क्काथे योग्यमात्रा प्रदीयते ॥ २२ ॥

त्रिफला, नीमकी छाल, मंजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहल्दी इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, खुजली, रक्तमण्डल, कण्डू और कपालकुष्ठ ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसमें प्रत्येक औषधि ५ रत्तीके मासेके हिसाबसे एकएक कर्ष लेवे। इस प्रकार ९ औषधियोंको ९ कर्ष लेकर उपयुक्त जलमें पकाकर यथाविधि क्वाथ बनावे। किन्तु इस क्वाथको रोगीके बलानुसार उचित मात्रासे देना चाहिये ॥ २०–२२ ॥

निम्बादिचूर्ण।

निम्बामृताभयाधात्री प्रत्येकं च पलोन्मितम्।
सोमराजी पलं शुण्ठी विडङ्गैडगजाः कणाः ॥ २३ ॥
यमानी चोग्रगन्धा च जीरकं कटुकं तथा।
खदिरं सैन्धवं क्षारं द्वे हरिद्रे च मुस्तकम् ॥ २४ ॥
देवदारु तथा कुष्ठं कर्षं कर्षं प्रदापयेत्।
सर्वं संचूर्णितं कृत्वा श्लक्ष्णवस्त्रेण छानयेत् ॥ २५ ॥
शाणमात्रं तु भोक्तव्यं छिन्नाक्काथं पिबेदनु।
मासमात्रप्रयोगेण भवेत्काञ्चनसन्निभः ॥ २६ ॥

नींमकी छाल, गिलोय, हरड, आमला और बापची ये प्रत्येक चारचार तोले एवं सोंठ, वायविडङ्ग, पमारकी जड, पीपल, अजवायन, वच, जीरा, कुटकी, खैर, सैंधानमक, जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, देवदारु और कूठ, इन सबको दो दो तोले लेवे । फिर सबको एकत्र चूर्ण कर बारीक कपडेमें छान लेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन चारचार मासे सेवन कर ऊपरसे गिलोयका क्वाथ पान करे । इस प्रकार एक महीनेतक सेवन करनेसे शरीर सुवर्णकी समान कान्तिमान् होजाता है ॥ २३–२६ ॥

वातशोणितमत्युग्रं श्वित्रमौदुम्बरं तथा ।
कोठं चर्मदलाख्यं च सिध्मपामा च विप्लुता ॥ २६ ॥
कण्डूविचर्चिकाऽहूंषि दद्रुमण्डलकिट्टिभम् ।
सर्वाण्येव निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २८ ॥
आमवातकृतं शोथमुदरं सर्वरूपिणम् ।
प्लीहानं गुल्मरोगं च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ २९ ॥
सर्वान्कण्डुव्रणांश्चैव हरते नात्र संशयः ।
एतन्निम्बादिकं चूर्णं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३० ॥

यह चूर्ण अत्यन्त भयंकर वातरक्त, श्वेतकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, कोठेके रोग चर्मदलरोग, सिध्म, पामा, विप्लुता, खुजली, विचर्चिका, फुन्सियाँ, दाद, चकत्ते और किट्टिभकुष्ठ इन सम्पूर्ण रोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट कर देता है जैसे वज्र वृक्षको तत्काल नाश कर देता है । एवं आमवातजात शोथ, सर्व प्रकारके उदरविकार, प्लीहा, गुल्म, पाण्डु, कामला, सब प्रकारकी खुजली और सम्पूर्ण व्रणोंको निसन्देह दूर करता है । इस निम्बादि चूर्णको नागार्जुनमुनिने वर्णन किया है ॥ २८–३० ॥

वातरक्तान्तकरस ।

पारदं गन्धकं लौहं घनं तालं मनःशिला ।
शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
विडङ्गं त्रिफला व्योषमब्धिफेनं पुनर्नवा ।
देवदारु चित्रकं च दार्वी श्वेताऽपराजिता ॥ ३२ ॥
चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत् ।
त्रिफलाभृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ३३ ॥

सम्भाव्य भक्षयेत्पश्चान्माषमात्रं दिनेदिने ।
कृत्वाऽनुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं समं त्वचम् ॥ ३४ ॥
शाणमात्रं घृतैः कुर्यात्सर्ववातविकारनुत् ।
वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजं जयेत् ।
सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम् ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, हरताल, मैनासिल, शिलाजीत, शुद्ध गूगल, वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा, समुद्रफेन, पुनर्नवा देवदारु, चीतेकी जड, दारुहल्दी और श्वेत कोयल इनके चूर्णको समान भाग लेकर त्रिफले और भाँगरेके रसके साथ पृथक् पृथक् तीन तीन बार भावना देवे । फिर प्रतिदिन इसको एक एक माशा खाय और ऊपरसे नीमके पत्ते, फूल एवं छाल इनके समान भाग मिश्रित क्वाथको चार माशे घृतके साथ मिलाकर भक्षण करे । यह रस सर्व प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है । तथा महाघोर वातरक्त, अत्यन्त गम्भीर, सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त, साध्य अथवा असाध्य और सर्वदोषोत्पन्न वातरक्त रोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ३१-३५ ॥

अन्य प्रकार वातरक्त चिकित्सा ।

विश्वेश्वररस ।

रसाद्दश विषात्पंच गन्धकाद्दश शोधितात् ।
तुत्थाद्दश पलाशस्य बीजेभ्यः पञ्च कारयेत् ॥ १ ॥
क्षुद्राश्वमारधुस्तूरकरहाटकनीलितः ।
दशकं दशकं कुर्याच्छोषयित्वा जटात्वचः ॥ २ ॥
दशकं दशकं दत्त्वा कुचिलाद्दश नूतनात् ।
भल्लातकाच्च दशकं चूर्णयित्वा भिषक् ततः ॥ ३ ॥
सुदिने चबलिं दत्त्वा वैद्यः पूजापरायणः ।
रक्तिकाद्वितयं दद्यात्सहते यदि वा त्रयम् ॥ ४ ॥
वातरक्तं ज्वरं कुष्ठं खरस्पर्शमसौख्यदम् ।
आजानुस्फुटितं हन्ति विषजं वान्तिनिःसृतम् ॥ ५ ॥
कुष्ठमष्टादशविधमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
विश्वेश्वरो रसो नाम विश्वनाथेन भाषितः ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा १० तोले, शुद्ध मीठा तेलिया ५ तोले, शुद्ध गन्धक १० तोले, तूतिया १० तोले, ढाकके बीज ५ तोले एवं कटेरी, कनेर, धतूरेके बीज, मैनफल, नीलका वृक्ष, बालछड, दारचीनी, शुद्ध कुचला और भिलावे ये प्रत्येक औषधि दश दश तोले लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। फिर चतुर वैद्य शुभदिनमें इष्टदेवका पूजन कर और बलि देकरके रोगीको प्रतिदिन दो दो रत्ती अथवा उसकी सहनशक्तिके अनुसार तीन तीन रत्ती प्रमाण सेवन करावे। यह रस वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, दुःखद और खरस्पर्श जानुपर्यन्त, स्फुटितवात, विषजन्य विकार, रुधिरकी वमन, १८ प्रकारके कोढ, मन्दाग्नि, अरुचि प्रभृति रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। यह विश्वेश्वरनामवाला रस है, इसको विश्वनाथ (शिव) जीने कहा है ॥ १–६ ॥

द्वादशायस।

गरुत्मान् दरदस्तीक्ष्णं शर्वाख्यो वंगशुक्तिके।
शुल्वं च गगनं फेनं रुधिरं च त्रिनेत्रकम् ॥ ७ ॥
पातालनृपतिश्चैव वह्निमूलं सरामठम्।
त्रिकटु त्रिफला शिग्रुरजमोदा यमानिका ॥ ८ ॥
पिप्पलीमूलकं भार्ङ्गी लशुनं जीरकद्वयम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९

सोनामाखी, हिंगुल, लोहभस्म, पारेकी भस्म, वंगभस्म, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रक, समुद्रफेन, गेरू, सुवर्ण, शीशा, चीतेकी जड, हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, सहिंजनेके बीज, अजमोद, अजवायन, पीपलामूल, भारंगी, लहसुन, जीरा और कालाजीरा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके अदरखके रसमें खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ७–९ ॥

वातरक्तं महाकुष्ठं गलिताङ्गं त्रिदोषजम्।
शोथं कण्डूं च रुधिरं सर्वमेतद् व्यपोहति ॥ १० ॥
मन्दाग्निमामवातं च श्लेष्माणं च जलोदरम्।
घ्राणाक्षिकर्णजिह्वानां सर्वरोगं विनाशयेत् ॥ ११ ॥

इस वटीके सेवन करनेसे वातरक्त, दुस्तर कुष्ठ, गलित कुष्ठ, त्रिदोषोत्पन्न शोथ, खुजली, दूषित रुधिर, मन्दाग्नि, आमवात, कफ, जलोदर एवं नाक, आँख, कान और जिह्वाके सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

गुडूच्यादिलौह।

गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः।
वातरक्तं निहन्त्याशु पित्तरोगहरं परम् ॥ १२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, वायविडंग, नागरमोथा, चीता और गिलोयका सत्त ये प्रत्येक एकएक तोला, लोहभस्म १० तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके पाँच पाँच रत्ती प्रमाण सेवन करे। इसके सेवनसे वातरक्त शीघ्र नष्ट होता है। पित्तरोगको हरनेके लिये तो यह परमोत्कृष्ट औषध है ॥ १२ ॥

पित्तान्तकलौह।

रसं गन्धकमभ्रं च गुडूचीमभयां तथा।
उशीरं बालकं ताम्रसारं सर्वं समं समम् ॥ १३ ॥
गृहीत्वाऽयः सर्वसमं खल्ले संस्थाप्य मर्दयेत्।
रक्तिद्वयमितां खादेद्वटिकामतियत्नतः ॥ १४ ॥
पटोलपत्रधन्याकक्काथेनैवानुपानतः।
पाण्डुं पित्तोद्भवान् रोगानशेषान् यकृतं तथा ॥ १५ ॥
उपदंशं तथा हन्याद्विकृतिं पारदोद्भवाम्।
लौहं पित्तान्तकं नाम वातरक्तं सुदारुणम् ॥
दाहं च हस्तपादानां हन्ति सूर्यो यथा तमः ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक, गिलोय, हरड, खस, सुगन्धवाला और लालचन्दन इन सबको समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेवे। फिर सबका एकत्र चूर्ण करके खरलमें डालकर जलके साथ घोटे और दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन एकएक गोली भक्षण कर पटोलपात और धनियेके क्काथका अनुपान करे। यह पित्तान्तकनामक लौह पाण्डु, पित्तजन्य सम्पूर्ण रोग, यकृत्, उपदंश और पारेके दोषसे उत्पन्न हुए विकारोंको नष्ट करता है। एवं दारुण वातरक्त और हाथ पाँवकी दाहको इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे सूर्य अन्धकारको तत्काल नाश करदेता है ॥ १३-१६ ॥

लांगलाद्यलौह।

विशुद्धलाङ्गलीमूलत्रिकटुत्रिफलैस्तथा।
द्राक्षागुग्गुलुभिस्तुल्यं लोहचूर्णं नियोजयेत् ॥ १७ ॥

मातुलुङ्गरसेनैव त्रिफलाया रसेन वा ।
विमर्द्य यत्नतः पश्चाद् गुटिकां कोलसम्मिताम् ॥ १८ ॥
भक्षयेन्मधुना सार्द्धं शृणु कुर्वन्ति यान् गुणान् ।
आजानुस्फुटितं घोरं सर्वाङ्गस्फुटितं तथा ॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यासाध्यं च शोणितम् ॥ १९ ॥

शुद्ध कलिहारीकी जड, त्रिकुटा, त्रिफला, दाख और गूगल ये प्रत्येक समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म मिलाकर बिजौरेनींबूके रसके साथ पश्चात् त्रिफलेके क्वाथके साथ खरल करके छोटे बेरकी समान गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे नित्य एकएक गोली शहदके साथ भक्षण करे। यह लौह जिन जिन गुणोंको करता है उनको कहते हैं सुनों। यह लौह जानुपर्यंत स्फुटित और सर्वाङ्ग-स्फुटित घोर वातरक्तको एवं साध्य व असाध्य सर्वप्रकारके वातरक्तको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १७-१९ ॥

योगसारामृत ।

शतावरी नागबला वृद्धदारकमुच्चटाः ।
पुनर्नवाऽमृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ॥ २० ॥
पृथग् दशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
तदर्द्धं शर्करायुक्तचूर्णं सम्मर्दयेद् बुधः ॥ २१ ॥
स्थापयेत्सुदृढे पात्रे मध्वर्द्धाढकसंयुतम् ।
घृतप्रस्थे समालोड्य त्रिसुगन्धिपलेन तु ॥ २२ ॥
तं खादेदिष्टचेष्टात्मा यथावह्निबलं नरः ।
वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ २३ ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान् ।
हत्वा करोति पुरुषं वलीपलितवर्जितम् ॥
योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनः ॥ २४ ॥

शतावर, गंगेरन, विधारेके बीज, भुईं आमला, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल अस-गन्ध और गोखुरू इन सबको अलग अलग दश दश पल लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे। फिर सब चूर्णसे दुगुनी खाँड, शहद दो प्रस्थ और घी १ प्रस्थ (६४ तोले) लेकर सबको एक उत्तम और सुदृढ पात्रमें भरकर अच्छे प्रकारसे मिलादेवे। पश्चात् दारचीनी, इलायची, तेजपात इनके चार चार तोले चूर्णको डालकर सबको

एकमएक करलेवे। बुद्धिमान् मनुष्य इसको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे और इच्छानुसार आहार विहार करे। योगसारामृतनामक यह औषध वातरक्त, क्षय, कोढ, कृशता, पित्तरक्तजन्य रोग, वातपित्त, कफोत्पन्नरोग और अन्यान्य अनेक प्रकारके रोगोंको नष्ट कर पुरुषार्थको बढाता है। वली और पलित रोगको दूर कर शोभा और कान्तिको उत्पन्न करता है २०–२४॥

तालभस्म।

हरितालं पल शुद्धं तथा कर्षं विषस्य च।
श्वेताङ्कोटरसेनैव द्वयमेकत्र खल्लयेत ॥ २५ ॥
पलाशभस्म द्विपलं निधाय स्थालिकोपरि।
तद्भस्मोपरि तालस्य गोलकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २६ ॥
तस्य चोपर्यपामार्गभस्म दद्यात्पलत्रयम्।
स्थालीमुखे शरावं च दद्याद्यत्नेन लेपयेत् ॥ २७ ॥
लेपयित्वा ततश्चुल्ल्यामहोरात्रं पचेद्भिषक्।
ततस्तु जायते भस्म शुद्धकर्पूरसन्निभम्।
गुञ्जात्रयं ततो भक्ष्यमनुपानविशेषतः।
वातरक्तं च कुष्ठं च दद्रुविस्फोटकापचीः ॥ २९ ॥
विचर्चिकां चर्मदलं वातपित्तं च शोणितम्।
रक्तपित्तं तथा शोथं गलत्कुष्ठं विनाशयेत् ॥
हलीमकं तथा शूलमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ ३० ॥

शुद्ध हरताल ४ तोले, शुद्ध मीठा तेलिया २ तोले इन दोनोंको सफेद अङ्कोलके रससे एकत्र खरल कर गोलासा बनालेवे। फिर आंठ तोले ढाककी भस्मको एक हाँडीमें भरकर उस भस्मके ऊपर पूर्वोक्त हरतालके गोलेको रखे और उसके ऊपर चिरचिटेकी भस्म १२ तोले रखे। फिर हाँडीके मुखपर सकोरेको ढककर और अच्छे प्रकारसे सन्धिस्थानोंमें मिट्टीका लेप करके चूल्हेपर रखकर एक दिन और एक रात्रिपर्यन्त पकावे। इस प्रकार पकानेसे सफेद कर्पूरकी समान हरताल भस्म होजाती है। इसको नित्यप्रति तीन तीन रत्तीकी मात्रासे अनुपानविशेषके साथ सेवन कराना चाहिये। यह वातरक्त, कुष्ठ, दाद, विस्फोटक, अपची, विचर्चिका, त्वग्रोग, वातपित्त, रुधिरविकार, रक्तपित्त, शोथ, गलत्कुष्ठ, हलीमक, शूल, मन्दाग्नि और अरुचि आदि रोगोंको नाश करती है ॥ २५–३० ॥

महातालेश्वर रस ।

तथा सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ।
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत् ॥ ३१ ॥
अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः ।
हन्यात्कुष्ठानि सर्वाणि वातरक्तमथापि च ॥
शूलमष्टविधं श्वित्रं रसस्तालेश्वरो महान् ॥ ३२ ॥

उपर्युक्त विधिके अनुसार हरतालकी भस्म करके उसके साथ शुद्ध गन्धक समान भाग मिलावे और दोनोंकी बराबर ताम्रभस्म मिलावे । फिर सबको एकत्र करके वालुकायन्त्रमें पकावे । इस प्रकार यह परमदुर्लभ महातालेश्वरनामक रस सिद्ध होता है । यह रस सर्वप्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, आठ प्रकारके शूल और श्वेतकुष्ठको नष्ट करता है ॥ ३१–३२ ॥

अमृतागुग्गुलु ।

त्रिप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकं तु गुग्गुलोः ।
प्रत्येकं त्रिफला प्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ ३३ ॥
सर्वमेकत्र संकुट्य साधयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ३४ ॥
दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वफलत्रिकम् ।
गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥ ३५ ॥
त्रिवृत्ताकर्षमेकं तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
सिद्धे उष्णे क्षिपेत्तत्र अमृतागुग्गुलुं परम् ॥ ३६ ॥
ततो यथाबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः ।
वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ ३७ ॥
दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम् ।
नाड्याढ्यवातं श्वयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा ॥
अश्विभ्यां निर्मितश्चायममृताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ ३८ ॥

गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि एक एक प्रस्थ और पुनर्नवा १ प्रस्थ सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस छने हुए क्वाथको पकावे ।

पकते पकते जब गाढा होजाय तब उसमें दन्तीकी जड, चीतेकी जड, पीपल, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, दारचीनी और वायविडंग इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण दो दो तोले और निसोतका चूर्ण एक तोला पाकके सिद्ध होनेपर गरममेंही डालकर सबको एकमएक करलेवे। फिर इस परमश्रेष्ठ अमृतागूगलको विशेषकर अम्लपित्तरोगी जठराग्निके बलानुसार खाय। यह विशेषकर अम्लपित्त, वातरक्त, कुष्ठ, बवासीर मन्दाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीगतवात, आढ्यवात सूजन एवं सर्व प्रकारके अन्यान्य रोगोंको दूर करता है। इस अमृतानामवाली गूगलको अश्विनीकुमारोंने निर्मित किया है॥ ३३-३८॥

रसाभ्रगुग्गुलु।

कर्षद्वयं पारदस्य लौहं गन्धं च तत्समम्।
लौहगन्धसमं चाभ्रं गुग्गुलुं कुडवद्वयम्॥ ३९।
अमृताया रसप्रस्थे रसप्रस्थे फलत्रिके।
सान्द्रीभूते रसे तस्मिन् गर्भं दत्त्वा विचक्षणः॥ ४०॥
त्रिकटु त्रिफला दन्ती गुडूची चेन्द्रवारुणी।
विडङ्गं नागपुष्पं च त्रिवृता च सुचूर्णितम्॥ ४१॥
प्रत्येकं कर्षमादाय सर्वमेकत्र कारयेत्।
भक्षयेत्कोलमात्रं तु छिन्नाक्काथानुपानतः॥ ४२॥

शुद्ध पारा २ तोले, लोहभस्म २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, अभ्रक ४ तोले और शुद्ध गूगल दो कुडव लेवे। फिर इन सबको गिलोयके १ प्रस्थ रस और त्रिफलेके एक प्रस्थ क्वाथमें मिलाकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः पाक करे। जब रस पकते पकते गाढा पडजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, गिलोय, इन्द्रायनकी जड, वायविडङ्ग, नागकेशर और निसोत ये प्रत्येक औषधि एकएक तोला लेकर बारीक चूर्ण करके डालदेवे। इसको प्रतिदिन एकएक तोला परिमाण लेकर गिलोयके क्वाथके साथ सेवन करे॥ ३९-४२॥

वातरक्तं महाघोरं स्फुटितं गलितं जयेत्।
अष्टादशविधं कुष्ठं कृमिरोगाश्मरीं तथा॥ ४३॥
भगन्दरं गुदभ्रंशं श्वेतकुष्ठं सकामलम्।
अपचीं गण्डमालां च पामाकण्डूविचर्चिकाः॥ ४४॥

चर्मकीलं महादद्रूं नाशयेन्नात्र संशयः ।
वातरक्तविनाशाय धन्वन्तरिकृतः पुरा ॥
रसाभ्रगुग्गुलुः ख्यातो वातरक्तेऽमृतोपमः ॥ ४५ ॥

यह सर्वाङ्गमें फैले हुए घोरतर वातरक्त और गलितकुष्ठको दूर करता है तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ, कृमिरोग, पथरी, भगन्दर, बवासीर, श्वेतकुष्ठ कामला, अपची, गण्डमाला, पामा, खुजली, विचर्चिका, चर्मदल, दद्रु आदि रोगोंको निसन्देह नष्ट करता है । वातरक्तको नाश करनेके लिये इस रसाभ्रनामक गुग्गुलको पूर्वकालमें धन्वंतरि महाराजने बनाया है । यह वातरक्तमें अमृतके समान गुण करता है ॥ ४३-४५ ॥

कैशोरकगुग्गुलु ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ।
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम् ॥४६॥
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ।
विपचेज्जलेऽप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ ४७ ॥
अर्द्धक्षयिते तोये जाते ज्वलनस्य सम्पर्कात् ।
अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेत्पात्रे ॥ ४८ ॥
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलप्रस्थे ।
त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥४९॥
कृमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः ।
अमृतायाः पलमेकं दत्त्वा सम्मूर्च्छयेद्यत्नेन ॥ ५० ॥
उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धि सलिलं च ।
इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥५१॥

भैंसके नेत्रके पेटकी समान उत्तम वर्णवाली भैंसिया गूगल ६४ तोले त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि एक एक प्रस्थ और गिलोय ३२ पल इन सबको एकत्र ६४ सेर जलमें पकावे और करछीसे बारबार चलाता जाय । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । (यद्यपि मूलमें लिखा है कि अर्द्धावशेष जल रहनेपर उतारलेवे । किन्तु आधा जल शेष रखनेसे क्वाथ ठीक नहीं बनता, अतएव वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे चतुर्थांशही शेष रखना चाहिये)। फिर इस

क्वाथको लोहेकी कढाईमें करके अग्निपर चढ़ाकर पकावे। जब पकते पकते गाढ़ा होजाय तब उतारकर उसमें सफेद मिश्री ६४ तोले, त्रिफलेका चूर्ण दो तोले, त्रिकुटेका चूर्ण ६ तोले, वायविडङ्गका चूर्ण २ तोले निसोत और दन्तीका चूर्ण एक एक तोला एवं गिलोयका चूर्ण ४ तोले डालकर सबको यथाविधि करछीसे मिलादेवे। इसको नित्यप्रति प्रातःसमय आधा आधा तोला मूँगके यूष, दूध अथवा सुगंधित जलके साथ सेवन करे और इसपर इच्छानुकूल आहार विहार करे। यह औषधि सब ऋतुओंमें सेवन करने योग्य ह ॥ ४६–५१ ॥

तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ युग्मजं चिरोत्थं च।
जयति स्रुतं परिशुष्कं स्फुटितं चाजानुजं चापि ॥५२॥
व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुमेहांश्च।
मन्दाग्निं च विबन्धं प्रमेहपिडिकाश्च नाशयत्याशु॥५३॥
सतत निषेव्यमाणं कालवशाद्धन्ति सर्वगदान्।
अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ ५४ ॥
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थो जलमत्र षडाढकम्।
पाकायत्तं जलं पाके क्वाथे पाकप्रधानता ॥
तस्मात क्वाथविधौ नित्यं यतितव्यं चिकित्सकैः ॥ ५५ ॥

यह गूगल शरीरको तन्दुरुस्त रखनेवाला, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, स्रवता हुआ व सूखाहुआ और जानुपर्यन्त फैलाहुआ अत्यन्त पुराना वातरक्त रोगको निश्चय दूर करता है। इससे व्रण, खाँसी, कुष्ठ, गुल्म, सूजन. उदररोग, पाण्डु, प्रमेह, मन्दाग्नि, विबन्ध और प्रमेहपिडिका आदि सम्पूण रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह गूगल निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्यको कालकी पाससे मुक्त कर देता है। वृद्धावस्थाका दूर करके फिरसे सुन्दर नवयौवनयुक्त बनाता है। इसमें त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ (६४ तोले) लेनी और जल ६ आढक परिमाण लेना चाहिये। पाकमें पाकके आधीन जल होता है और उत्तम क्वाथके होनेपर श्रेष्ठ पाक होता है, इसलिय चिकित्सकोंको क्वाथकी विधि जाननेके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ५२–५५ ॥

पुनर्नवा–गुग्गुलु।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबूकमूलं च तथा प्रयोज्य।
दत्त्वा पलं षोडशकं च शुण्ठ्याः संकुट्य सम्यग्विपचेद्

घटेऽधाम् ॥५६॥ पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्ट-
शेषेण पुनः पचेत्तु । एरण्डतैलं कुडवं च दद्याद्दत्त्वा
त्रिवृच्चूर्णपलानि पंच ॥ ५७ ॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं
गुडूच्याः पलद्वयं चार्द्धपलं पलं वा । फलत्रयं त्र्यूषण-
चित्रकाणि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि ॥ ५८ ॥ कर्षं
तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम् ।
चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षसमप्रमा-
णम् ॥ ५९ ॥ वातासृजं वृद्धिगदांश्च सप्त जयत्यवश्यं
बहुगृध्रसीं च । जङ्घोरुपृष्ठत्रिकवस्तिजं च तथाऽऽमवातं
प्रबलं च हन्ति ॥ ६० ॥

पुनर्नवेकी जड १०० पल, अण्डकी जड १०० पल और सोंठ १६ पल, इन सबको एकत्र कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ अष्टमांश जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । पश्चात् इस क्वाथमें उत्तम शुद्ध गूगल ८ पल अण्डीका तेल एक कुडव (१६ तोले), निसोतका चूर्ण ५ पल, दन्तीका चूर्ण ४ तोले, गिलोय २ पल, हरड, बहेडा, आमला और त्रिकुटेकी प्रत्येक ओषधिका चूर्ण छः छः तोले, चीतेकी जड, सैंधानमक, भिलावे और वायविडङ्ग इन सबका चूर्ण डेढ डेढ पल, सोनामाखीका चूर्ण एक तोला और पुनर्नवेका चूर्ण ४ तोले डालकर शनैः शनैः मन्दमन्द अग्निद्वारा अच्छे प्रकारसे पकावे। पककर स्वयंशीतल होजाय तब उतार-लेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोला खाय । यह गूगल वातरक्त और सात प्रकारके वृद्धिरोगको अवश्य नष्ट करता है। एवं गृध्रसीवात, जंघागत, ऊरुगत पृष्ठगत, त्रिकगत वात, वस्तिगत और प्रबल आमवातको दूर करता है ॥५६-६०॥

गुडूचीघृत ।

गुडूचीक्काथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ६१ ॥

गिलोयके क्वाथ और कल्क एवं दूधके साथ पकायाहुआ घृत वातरक्त और कठिनतर कुष्ठरोगको नष्ट करता है । ६१ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे ।
क्षीरतुल्यं घृतंपक्कं वातशोणितनाशनम् ॥ ६२ ॥

शतावरके कल्क और चौगुने क्वाथमें दूध और घी समान भाग डालकर घीको पकावे । यह घी वातरक्तको दूर करता है । ॥ ६२ ॥

अमृताद्यघृत ।

अमृता मधुक द्राक्षा त्रिफला नागरं बला ।
वासारग्वधवृश्चीरदेवदारुत्रिकण्टकम् ॥ ६३ ॥
कटुकासवरी कृष्णाकाश्यमर्यस्य फलानि च ॥
रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारघनोत्पलैः ॥ ६४ ॥
कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिःप्रस्थंविपाचयेत् ।
धात्रीरससमं दत्त्वा वारित्रिगुणसंयुतम् ।
सम्यक् सिद्धं तु विज्ञाय भोज्ये पाने प्रशस्यते ॥ ६५ ॥

गिलोय, मुलहठी, दाख, त्रिफला, सोंठ, खिरैंटी, अडूसा, अमलतास, श्वेतपुनर्नवा, देवदारु, गोखुरू, कुटकी, शतावर, पीपल, कुम्भेरके फल, रास्ना, तालमखाना, अण्डकी जड, विधारेके बीज, नागरमोथा और नीलकमल इन सब ओषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ एक प्रस्थ आमलोंका रस, एक प्रस्थ घी और तीन प्रस्थ जल मिलाकर शनैः शनैः मन्दमन्द अग्निके द्वारा उत्तम विधिसे घृतको पकावे । जब अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब इसको भोजन और पानमें व्यवहार करना चाहिये ॥ ६३–६५ ॥

बहुदोषान्वितं वातं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ।
उत्तानंचापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानुजम् ॥ ६६ ॥
क्रोष्टुशीर्षे महाशूले चामवाते सुदारुणे ।
वातरोगोपसृष्टस्य वेदनां चापि दुस्तराम् ॥ ६७ ॥
मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम् ।
एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवान् ॥ ६८ ॥
सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ ६९ ॥

यह घृत अनेक दोषोंसे युक्त वातरक्त, उत्तानवातरक्त, गम्भीरवातरक्त, त्रिक, जंघा, ऊरु और जानुओंमें स्थित वातरक्त तथा क्रोष्टुशीर्ष, प्रबल शूल, दुस्तर आमवात, वातरोगसे उत्पन्नहुई तीव्र पीडा, मूत्रकृच्छ, उदावर्त्त, प्रमेह, विषम-ज्वर और वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुये समस्त रोगोंको अल्पकालमें

ही नाश करता है। इसको नित्यप्रति नियमानुसार सेवन करनेसे बल, वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है। इस परमोत्तम घृतको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है॥ ६६-६९॥

मध्यमगुडूचीतैल।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं पयः समम्।
वातरक्तं निहन्त्याशु साध्यासाध्यमथापि वा ॥७०॥
एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम्।
नाशयेत्तिमिरं घोरं गुडूचीतैलमुत्तमम्॥ ७१॥

गिलोयके क्वाथ और कल्कके साथ दूध और तिलको समान भाग मिलाकर तैलको सिद्ध करे। यह तैल साध्य अथवा असाध्य वातरक्त तथा एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज घोर तिमिररोगको तत्काल नष्ट करता है॥

बृहद्गुडूचीतैल।

शतं छिन्नरुहायाश्च जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ ७२॥
क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात्कल्कानेतान् प्रयत्नतः।
अश्वगन्धा विदारी च काकोल्यौ हरिचन्दनम् ॥७३॥
शतावरी चातिबला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्।
कृमिघ्नं त्रिफला रास्ना त्रायमाणा च शारिवा ॥७४॥
जीवन्ती ग्रन्थिकं व्योषं वागुची भेकपर्णिका।
विशाला ग्रन्थिपर्णं च मञ्जिष्ठा चन्दनं निशा॥ ७५॥
शताह्वा सप्तपर्णी च कार्षिकाण्युपकल्पयेत्।
पानाभ्यञ्जननस्येषु वातरक्ते प्रयोजयेत्॥ ७६॥

सौ पल गिलोयको ३२ सेर जलमें पकावे, पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर क्वाथके साथ तिलका तैल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, कल्कके लिये असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेतचन्दन, शतावर, कंघी, गोखुरू, बडी कटेरी, कटेरी, वायविडंग, त्रिफला, रायसन, त्रायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, पीपलामूल, त्रिकुटा, बापची, मंडूकपर्णी, इन्द्रायन, गठिवन, मजीठ, लालचन्दन, हल्दी, सौंफ और लज्जावन्ती, इन प्रत्येकके एक-एक कर्ष परिमाण कल्कको मिलाकर यथाविधि तैलको पकावे। इस बृहद्गुडूची

तैलको वातरक्तमें पान, मर्द्दन और नस्य कर्मोंके द्वारा प्रयोग करे ॥ ७२-७६ ॥

वातरक्तमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु।
हनुस्तम्भं प्रमेहं च कामलां पाण्डुतां जयेत् ॥ ७७ ॥
विस्फोटं च विसर्पं च नाडीव्रणभगन्दरम्।
विचर्चिकां गात्रकण्डूं पाददाहं विशेषतः ॥ ७८ ॥
एतत्तैलवरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम्।
आत्रेयनिर्मितं चैव बलवर्णकरं स्मृतम् ॥ ७९ ॥

यह श्रेष्ठ तैल वातरक्त, उदावर्त्त, १८ प्रकारके कुष्ठ, हनुस्तम्भ, प्रमेह, कामला, पाण्डु, विस्फोटक, विसर्प, नाडीव्रण, भगन्दर, विचर्चिका, शरीरकी खुजली, पैरोंकी जलन और वली, पलित आदि विकारोंको दूर कर बल, वर्ण और अग्निको बढाता है। इसको आत्रेय ऋषिने बनाया है ॥ ७७-७९ ॥

महारुद्रगुडूचीतैल।

अमृतायास्तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत्।
पिचुमर्दत्वचं क्षुण्णां भाजनप्रमितां तथा ॥ ८० ॥
जलद्रोणे विनिःक्काथ्य ग्राह्यं पादावशेषितम्।
प्रस्थं च कटुतैलस्य गोमूत्रं चापि तत्समम् ॥ ८१ ॥
अमृता वागुची कुम्भी करवीरफलत्रिकम्।
दाडिमं निम्बबीजं च रजन्यौ बृहतीद्वयम् ॥ ८२ ॥
नागबला त्रिकटुकं पत्रं मांसी पुनर्नवा।
ग्रन्थिकं विकसाऽश्वाह्वा शतपुष्पा च चन्दनम् ॥ ८३ ॥
शारिवे द्वे सप्तपर्णो गोमयस्य रसस्तथा।
एषां कर्षमितैर्भागैः साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ८४ ॥
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम्।
कुष्ठं चाष्टादशविधं विसर्पं च व्रणामयम् ॥
महारुद्रगुडूच्याख्यं तैलं भुवनदुर्लभम् ॥ ८५ ॥

सौ पल उत्तम गिलोयको एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। इसी प्रकार आठसेर नीमकी छालको कूटकर एक द्रोण जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर ग्रहण करे। फिर उसमें सर-

सोंका तैल १ प्रस्थ, गोमूत्र एक प्रस्थ, कल्कके लिये गिलोय, बावची, दन्तीकी जड, कनेरकी जड, त्रिफला, अनार, निंबौली, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी, बडी कटेरी, गंगेरन, त्रिकुटा, तेजपात, बालछड, पुनर्नवा, पीपलामूल, मंजीठ, असगन्ध, सोया, रक्तचन्दन, अनन्तमूल, श्यामालता (कालीसर), सतिवन और गोबरका रस इन सबको एक एक कर्ष परिमाण डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा तैलको सिद्ध करे । यह तैल सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त वातरक्त, अठारह प्रकारके कुष्ठ, विसर्प और व्रणरोगोंको बहुत जल्द नाश करदेता है । यह महारुद्रगुडूची नामवाला तैल पृथ्वीमें परम दुर्लभ है ॥ ८०-८५ ॥

महापिण्डतैल ।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां तथा ।
प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे पृथक् पचेत् ॥ ८६ ॥
पादशेषं गृहीत्वा च तैलप्रस्थं पचेद्भिषक् ।
क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा मन्दमन्देन वह्निना ॥ ८७ ॥
पिण्डशालजनिर्याससिन्दुवारफलत्रयम् ।
विजयाबृहतीदन्तीकक्कोलकपुनर्नवाः ॥ ८८ ॥
वह्निग्रन्थिककुष्ठानि निशे द्वे चन्दनद्वयम् ।
पूतिपूतीकसिद्धार्थवाशुचीचक्रमर्दकम् ॥ ८९ ॥
वासानिम्बपटोलानि वानरीबीजमेव च ।
अश्वाह्वा सरलं सर्वं प्रतिकर्षमितं पचेत् ॥ ९० ॥

उत्तम गिलोय १०० पल, बावची १०० पल और प्रसारणी १०० पल इनको पृथक् पृथक् एक द्रोण जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें कडुवा तैल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ (४ सेर), एवं शिलारस, राल, सिह्माल्ड, त्रिफला, भाँग, बडी कटेरी, दन्तीमूल, काकोली, पुनर्नवा, चीतेकी जड, पीपलामूल, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन, खट्टासी मुश्क, दुर्गंधकरञ्ज, सफेद सरसों, बापचीके बीज, चकवडके बीज, अडू-सेकी छाल, नीमकी छाल, पटोलपात, कौंचके बीज, असगन्ध और धूपसरल ये प्रत्येक एक एक कर्ष डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा तैलको पकावे ॥ ८६-९० ॥

एतत्तैलवरं हन्ति वातरक्तमसंशयम् ।
कुष्ठमष्टादशविधं ग्रन्थिवातं सुदारुणम् ॥ ९१ ॥

सन्धिग्रहं चामवातं भगन्दरगुदामयम् ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति मर्दनान्नात्र संशयः ॥ ९२ ॥

यह परमोत्तम तैल वातरक्तको निसन्देह नष्ट करता है । एवं अठारह प्रकारके कुष्ठ, दारुण ग्रन्थिवात, सन्धिग्रह, आमवात, भगन्दर, अर्शरोग और आठ प्रकारके ज्वर ये सब रोग इस तैलको मर्द्दन करनेसे अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

विषतिन्दुकतैल ।

विषतरुफलमज्जप्रस्थयुग्मं च शिग्रु-
स्वरसलकुचवारिप्रस्थमेकैकशश्च ।
कनकवरुणचित्रापत्रनिर्गुण्डिकास्नुक्-
स्वरसतुरगगन्धावैजयन्तीरसश्च ॥ ९३ ॥
पृथगिति परिकल्प्य प्रस्थयुग्मेन युग्मं
विषतरुफलमज्जातुल्यतैलं विपक्वम् ।
लसुनसरलयष्टीकुष्ठसिन्धूत्थयुग्मं
दहनतिमिरकृष्णाकल्कयुक्तं सुसिद्धम् ॥
हरति सकलवातान् घोररूपानसाध्यान्
प्रतिदिनमनुलेपात् सुप्तवातस्य जन्तोः ॥ ९४॥
कुष्ठमष्टादशविधं द्विविधं वातशोणितम् ।
वैवर्ण्यं त्वग्गतान्दोषान्नाशयत्याशु मर्द्दनात् ॥९५ ॥

उत्तम पके हुए २ प्रस्थ कुचलेको कूटकर १६ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चार सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसके साथ सहिंजनेका स्वरस, बडहरका स्वरस, काले धतूरेके पत्तोंका स्वरस, बरनाकी छालकी स्वरस, चीतेके पत्तोंका रस, निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस ये प्रत्येक एकएक प्रस्थ (उक्त औषधियोंके स्वरसके अभावमें सूखी औषधिको १ प्रस्थ लेकर चौगुने जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई जल भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानकर उस क्वाथको ग्रहण करे ।) मिलाकर एवं लहसुन, धूपसरल, मुलहठी, कूठ, सैंधानमक, विरियासञ्चर नमक, चीतेकी जड, हल्दी और पीपल इनके कल्कके साथ दो प्रस्थ कुडव तैलको सिद्ध करे । यह तैल अत्यन्त भयंकर और असाध्य सर्व प्रकारके वातरोगोंको दूर करताहै । इसको प्रतिदिन मर्दन करनेसे सुप्तवात,

अठारह प्रकारके कुष्ठ, दोनों प्रकारका वातरक्त, शरीरकी विवर्णता और त्वचासम्बधी सब विकार शीघ्र नाश होते हैं ॥ ९३–९५ ॥

रुद्रतैल ।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्त्ताकुबृहतीत्वचम् ।
कण्टकारी करञ्जश्च निर्गुण्डीवृषमूलकम् ॥ ९६ ॥
अपामार्ग पटोलं च धुस्तूरं दाडिमीफलम् ।
जयन्तीमूलकं दन्ती प्रत्येकं कार्षिकद्वयम् ॥ ९७ ॥
त्रिफलायाः प्रदातव्यं द्विकर्षं च पृथक् पृथक् ।
दत्त्वा छिन्नरुहायाश्च द्वात्रिंशच्च पलानि च ॥
पाचयेद्भाजने तोये चतुर्भागावशेषितम् ॥ ९८ ॥
कटुतैलस्य च प्रस्थं दुग्धं च तत्समं भवेत् ।
वासकस्वरसप्रस्थं मन्दमन्देन वह्निना ॥ ९९ ॥
गन्धं शठी च काकोली चन्दनं ग्रन्थिकं नखी ।
पूतिकं केशरं कुष्ठं प्रत्येकं कार्षिकं पुनः ॥ १०० ॥

क्राथके लिये गिलोयको ३२ पल लेकर ८ सेर जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जलकर रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस क्राथमें पुनर्नवा, हल्दी, नीमकी छाल, बैंगन, बडीकटेरी, दारचीनी, कटेरी, दुर्गन्धकरञ्ज, सिह्मालु, अडूसेकी जड, चिरचिटा, पटोलपात, धतूरा, अनारका बक्कल, जयन्तीकी जड, दन्ती, हरड, बहेडा और आमला इन प्रत्येक ओषधिका कल्क दो दो कर्ष डालकर एवं सरसोंका तेल ६४ तोले, दूध ६४ तोले और अडूसेका स्वरस ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा तैलको पकावे । पश्चात् गन्धपाकके लिये काली अगर, कचूर, काकोली, सफेद चन्दन, गठिवन, नखी, दुर्गन्धकरञ्ज, नागकेशर और कूठ इन प्रत्येक औषधिका एक एक कर्ष परिमाण बारीक पीसकर मिला देवे ॥ ९६–१०० ॥

हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं स्फुटितं तथा ।
कृष्णं श्वेतं तथा रक्तं नानावर्णं सदाहकम् ॥ १ ॥
पामां विचर्चिकां कण्डूं त्वचं छायां च कालिनीम् ।
मसुरिकां मण्डलं च ज्वलनं च विसर्पकम् ॥ २ ॥
नाडीव्रणं मर्म्महीनं गात्रवैवर्ण्यदद्रुकम् ।
निहन्ति रक्तदोषं च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १०३ ॥

उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुआ यह तैल प्रतिदिन मर्दन करनेसे समस्त शरीरगत या हाथ, पाँव, अँगुली और सन्धिस्थानोंमें स्थित वातरक्त, गलितकुष्ठ, स्फुटितकुष्ठ तथा काला, सफेद, लाल आदि अनेक वर्णोंके दाहयुक्त कुष्ठ, पामा, विचार्चिका, खुजली, त्वचाके रोग, छाया रोग, कालिमा, मसूरिका, मण्डल (पित्ती) रोग, जलन, विसर्प, नाडीव्रण, मर्महीनता, शरीरकी त्रिवर्णता, दाद और रुधिरके सम्पूर्ण विकारोंको इस प्रकार नष्ट करता है कि, जैसे सूर्य अन्धेरेको दूर करदेता है ॥ १–१०३॥

महारुद्रतैल ।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्त्ताकुर्दाडिमीफलम् ।
बृहत्यौ पूतिकामूलं वासकं सिन्दुवारकम् ॥ १०४ ॥
पटोलपत्रं धुस्तूरमपामार्गं जयन्तिका ।
दन्ती वरा पृथक् सर्वं कर्षद्वयमितं पुनः ॥ १०५ ॥
विषस्य द्विपलं देयं पृथग् व्योषं फलत्रयम् ।
प्रस्थं च सार्षपं तैलं प्रस्थाम्बु वृषपत्रजम् ॥ १०६ ॥
गुगूच्यास्तु चतुःषष्टिपलक्काथरसेन च ।
वारिप्रस्थेन पक्तव्यं महारुद्रमिदं शुभम् ॥ १०७ ॥
वातरक्तं निहन्त्याशु नानादोषसमुद्भवम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं हन्ति वर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १०८ ॥
कृमिं दुष्टव्रणं चैव दाहं कण्डूं निहन्ति च ।
अस्वेदनं महास्वेदमभ्यङ्गादेव नश्यति ॥ १०९ ॥

गिलोयके ६४ पल स्वरस या क्काथके साथ सरसोंका तैल १ प्रस्थ, अडूसेके पत्तोंका स्वरस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ एवं पुनर्नवा, हल्दी, नीमकी छाल, बैंगन, अनार, कटेरी, बडी कटेरी, दुर्गन्धकरञ्जकी जड, अडूसेकी छाल, सिह्मालुके पत्ते, पटोलपत्र, धतूरा, चिरचिटा, जयन्ती, दन्ती, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक ओषधि दो दो कर्ष, शुद्ध मीठा तेलिया ८ तोले और सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक बारह बारह तोले इन सबके कल्कको मिलाकर इस महारुद्र तैलको विधिपूर्वक पकाना चाहिये । यह उत्तम महारुद्रनामक तैल अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुए वातरक्तको शीघ्र नष्ट करता है और अठारह प्रकारके कुष्ठ, कृमिरोग, दुष्टव्रण, दाह, खुजली, पसीनेका न आना अथवा अधिक आना इत्यादि सम्पूर्ण विकार इसकी मालिश करनेसे शीघ्र दूर होते हैं ॥ १०४–१०९ ॥

वातरक्तमें पथ्य ।

यवषष्टिकनीवारकलमारुणशालयः ।
गोधूमाश्चणका मुद्गास्तुवर्योऽपिमुकुष्ठकाः ॥ ११० ॥
अजानां महिषीणां च गवामपि पयांसि च ।
लावतित्तिरिसर्पद्धिट्ताम्रचूडादिविष्किराः ॥ ११ ॥
प्रतूदाः शुकदात्यूहकपोतचटकादयः ।
उपोदिका काकमाची वेत्राग्रं सुनिषण्णकम् ॥ १२ ॥
वास्तुकं कारवेल्लं च तण्डुलीयः प्रसारणी ।
पत्तुरो वृद्धकूष्माण्डं सर्पिः शम्याकपल्लवम् ॥ १३ ॥
पटोलं रुबुतैलं च मृद्वीका श्वेतशर्करा ।
नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरी सितचन्दनम् ॥ १४ ॥
शिंशपागुरुदेवाह्वसरलं स्नेहमर्दनम् ।
तिक्तं च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ॥ १५ ॥

जौ, सांठीके चावल, नीवारधान, कलमधान, लालशालिके धान, गेहूँ, चने, मूँग, अरहर, मोठ, बकरी भैंस और गौका दूध, लवा, तीतर, मोर, मुर्गा, विष्किरनामक पक्षी, गिद्ध, बाज, कौआ आदि प्रतूदसंज्ञक पक्षी, तोता चातक, कबूतर, चिडिया आदि जीवोंका मांस, पोईका शाक, मकोय, बेंतका अग्रभाग, चौपतिया शाक, बथुआ, करेला, चौलाईका शाक, प्रसारणी, शांतिशाक, पका हुआ पेठा, घृत, अमलतास, परवल, अण्डीका तेल, दाख, मिश्री, नैनी घी, सोमलता, कस्तूरी, सफेद चन्दन, शीशम, अगर, देवदारु, धूपसरल और कडवे रसवाले पदार्थ, तेलकी मालिश ये सब वातरक्तरोगमें हितकर हैं ॥

वातरक्तमें अपथ्य ।

दिवास्वप्नाग्निसन्तापव्यायामातपमैथुनम् ।
माषाः कुलत्था निष्पावाः कलायाः क्षारसेवनम् ॥ १६ ॥
अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानि दधीनि च ।
इक्षवो मूलकं मद्यं पिण्याकोऽम्लानि काञ्जिकः ॥ १७ ॥
गुर्वभिष्यन्दि कटु च लवणानि च सक्तवः ।
इत्यपथ्यं निगदितं वातरक्तगदेम् नृणा ॥ ११८ ॥

दिनमें शयन करना, अग्निसेवन, कसरत, धूपका सेवन, स्त्रीप्रसङ्ग करना, उडद, कुलथी, सेमकी फली, लोबिया, मटर, खारी पदार्थोंका सेवन, जलचरोंका मांस, अनूपदेशजात जीवोंका मांस, प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ, दही, गन्ना, मूली, मदिरा, तिलकुट, खट्टे द्रव्य, काँजी, भारी, कफकारक और चरपरे पदार्थ, नमक एवं सत्तू ये सब वस्तुयें वातरक्तमें अपथ्य कही गई हैं ॥ १६-११८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातरक्तचिकित्सा ।

ऊरुस्तम्भकी चिकित्सा ।

श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारुतकोपनम् ।
तत्सर्वं सर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १ ॥
तस्य न स्नेहनं कार्यं न वस्तिर्न विरेचनम् ।
सर्वो रूक्षक्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥
पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्यः क्रियाक्रमः ॥ २ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगीको कफके नाश करनेवाली और वायुको कुपित न करनेवाली जो औषधियाँ हैं वे सब सेवन करानी चाहिये। इस रोगीको तैलादि स्नेहपदार्थोंका पान, मर्दन अथवा स्नेहवस्तिक्रिया और वमन, विरेचन नहीं कराने चाहिये। इस रोगमें पहले कफनाशक और सम्पूर्ण रूक्ष क्रियायें करें, पश्चात् वातको शमन करनेके लिये सम्पूर्ण वातविनाशक चिकित्सा करनी ॥ १ ॥ २ ॥

शिलाजतु गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ।
ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन च ॥ ३ ॥

ऊरुस्तम्भमें शिलाजीत, गूगल, पीपल अथवा सोंठ इनमेंसे किसी एक ओषधिको गोमूत्र या दशमूलके क्वाथके साथ सेवन करे ॥ ३ ॥

त्रिफलाचव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना लिहेत् ।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ४ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगको दूर करनेके लिये त्रिफला, चव्य, सोंठ, पीपल, मिरच और पीपलामूल इन सबके समान भाग चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चाटे अथवा शुद्ध गूगलको गोमूत्रके साथ पान करे ॥ ४ ॥

लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ।
सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः ॥ ५ ॥

ऊरुस्तम्भरोगी हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णको समभाग लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा षड्धरण योगके चूर्णको मंदोष्ण जलके साथ पान करे ॥ ५ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ।
स्नेहवर्ज्जी पिबेदत्र नरश्चूर्णं षड्धरणम् ॥
हितमुष्णाम्बु वा तद्वत् पिप्पल्यादिगणैः कृतम् ॥ ६ ॥

पीपलको प्रतिदिन एक एकके क्रमसे बढाकर शहद अथवा गुडके साथ खानेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है । इस रोगमें स्नेह (घृत, तैलादि) पदार्थोंको त्यागकर रोगी पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ और मिरच इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको सेवन करे और इस रोगमें पिप्पल्यादिगणोक्त उष्ण क्वाथ पान करना हितकर है । (वर्द्धमानपिप्पलीकी यह विधि है कि रोगी दुग्धपान करता हुआ पहले दिन एक, दूसरे दिन दो और तीसरे दिन तीन इस क्रमसे दश दिन-तक पीपलको बढाता हुआ जलमें पीसकर गरम दूधके साथ सेवन करे । फिर ग्यारहवें दिनसे एक एकके क्रमसे पीपलको घटाकर दश दिनतक सेवन करे) ॥ ६ ॥

क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक् ।
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें शहद, सरसों और बांबईकी मिट्टी इन तीनों चीजोंको धतूरेके पत्तोंके रस अथवा थूहरके पत्तोंके रसके साथ उत्तम प्रकारसे पीसकर गाढा गाढा लेप करके कपडेकी पट्टी बाँध देवे ॥ ७ ॥

भल्लातकादि ।

भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ।
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणाः ॥ ८ ॥

लालचन्दन, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल इन औषधि-योंका क्वाथ ऊरुस्तम्भरोगनाशक है ॥ ८ ॥

पिप्पल्यादि ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलभल्लातकाथमेव वा ।
कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते ॥९ ॥

पीपल, पीपलामूल और लालचन्दन इनके क्वाथको पीनेसे अथवा इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ ९॥

गुञ्जाभद्ररस।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम्।
गुञ्जाबीजं तु षड्निष्कं जयन्ती निम्बबीजकम् ॥ १०॥
प्रत्येकं निष्कमात्रं तु निष्कं जैपालबीजकम्।
जयाजम्बीरधुस्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ ११॥
भावयित्वा वटीं कुर्याद् घृतैर्गुञ्जाचतुष्टयीम्।
गुञ्जाभद्रो रसो नाम्ना हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥
शमयत्येव नो चित्रमूरुस्तम्भं सुदुर्जयम् ॥ १२॥

शुद्ध पारा ३ निष्क (एक तोला), शुद्ध गन्धक १२ निष्क (४ तोले), चोंटलीके दाने २ तोले, जयन्ती, नीमके बीज और जमालगोटा ये प्रत्येक चार चार मासे लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर जयन्ती, जम्बीरीनींबू, धतूरा और मकोय इनके रसके साथ क्रमसे एक एक दिनतक खरल करके और घृतके साथ मर्दन कर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस गुञ्जाभद्रनामक रसकी एक एक गोला प्रतिदिन हींग और सैंधानमकके साथ सेवन करनेसे दुर्जय ऊरुस्तम्भ, रोग निश्चय दूर होता है ॥ १०-१२ ॥

अष्टकट्वरतैल।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः ।
तैलप्रस्थः समो दध्नो गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥
अष्टकट्वरतैलेऽस्मिंस्तैलं सार्षपमिष्यते ॥ १३॥

पीपलामूल और सोंठ ये दोनों आठ आठ तोले, मलाईयुक्त दहीसे बनाई हुई खट्टी छाँछ ६४ तोले, दही ६४ तोले और सरसोंका तेल ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तैलको सिद्ध करे। यह तैल गृध्रसीवात और ऊरुस्तम्भरोगको दूर करता है ॥ १३ ॥

कुष्ठाद्यतैल।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारु केशरम्।
अजगन्धाऽश्वगन्धा च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥
सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ॥ १४ ॥

कूठ, सरलका गोंद, सुगन्धवाला, धूपसरल, देवदारु, नागकेशर, वनतुलसी और असगन्ध इनके कल्कके साथ सरसोंके तेलको पकावे। इस तेलको शहद मिलाकर उचितमात्रासे सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर होता है ॥ १४ ॥

महासैन्धवाद्यतैल।

सिन्धुरुग्विश्वजासोग्राभार्ङ्गीयष्टीस्थिराफलैः।
दारुविश्वशठीधान्यकृष्णाकट्फलपौष्करैः ॥ १५ ॥
दीप्यकातिविषैरण्डनीलीनीलाम्बुजैः पचेत्।
तैलं सकाञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः ॥ १६ ॥
आमवातं क्रुमीन्गुल्मान्प्लीहोदरशिरोरुजः।
मन्दाग्निं पक्षसन्ध्यादिवातस्तम्भगदानपि ॥ १७ ॥

सैंधानमक, कूठ, सोंठ, वच, भारङ्गी, मुलहठी, शालपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनियाँ, पीपल, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, अतीस, अण्डकी जड, नीलवृक्ष और नलिकमल इनके समान भाग मिश्रित कल्क और काँजीके साथ सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे। यह तैल पान मर्दन और नस्यद्वारा व्यवहार करनेसे आमवात, कृमिरोग, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, शिरोरोग, मन्दाग्नि, पक्षसन्धि आदिस्थानोंकी वातव्याधि और ऊरुस्तम्भ आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १५-१७ ॥

ऊरुस्तम्भमें पथ्य।

रूक्षः सर्वविधः स्वेदः कोद्रवा रक्तशालयः।
यवाः कुलत्थाः श्यामाका उद्दालाश्च पुरातनाः ॥ १८ ॥
शोभाञ्जनः कारवेल्लं पटोलं लशुनानि च।
सुनिषण्णं काकमाची वेत्राग्रं निम्बपल्लवम् ॥ १९ ॥
पत्तूरो वास्तुकं पथ्या वार्ताकुस्तप्तवारि च।
शम्यकशाकं पिण्याकतक्रारिष्टमधूनि च ॥ २० ॥
कटुतिक्तकषायाणि क्षारसेवा गवां जलम्।
व्यायामश्च यथाशक्ति स्थूलस्याक्रमणानि च ॥ २१ ॥
स्वच्छे ह्रदे सन्तरणं प्रतिस्रोतो नदीषु च।
श्लेष्मापहरणं यच्च न च मारुतकोपनम् ॥
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यमूरुस्तम्भविकारिभिः ॥ २२ ॥

सर्व प्रकारकी रूक्ष और स्वेदक्रिया करना, कोदों पुराने लाल शालिधानोंके चावल, जौ, कुलथी, सामाधानके चावल, वनकोदों, सहिंजना, करेला, परवल, लहसुन, चौपतियाका शाक, मकोय, बेंतका अग्रभाग, नीमकी कोंपल, शालिञ्च-शाक, बथुआ, हरड, बैंगन, गरम जल, अमलतास, तिलकुट, मट्ठा, अरिष्ट (एक प्रकारकी मद्यविशेष), शहद एवं चरपरे, कडूवे, कषैले और खारी पदार्थोंका सेवन, गोमूत्र, शक्तिके अनुसार कसरत करना और भ्रमण करना, स्वच्छ जलवाले तालाव और स्रोतवाली नदियोंमें तैरना एवं कफनाशक और वायुको कुपित न करनेवाले पदार्थ ये सब पथ्यद्रव्य ऊरुस्तम्भ रोगवाले मनुष्योंको सेवन करने चाहिये ॥ १८–२२ ॥

ऊरुस्तम्भमें अपथ्य ।

गुरुशीतद्रवस्निग्धविरुद्धासात्म्यभोजनम् ।
विरेचनं स्नेहनं च वमनं रक्तमोक्षणम् ॥
वस्तिं च न हितं प्राहुरूरुस्तम्भविकारिणाम् ॥ २३ ॥

गुरु (भारी) पाकी, शीतल, पतले और स्निग्धद्रव्य, संयोगविरुद्ध और प्रकृति विरुद्ध भोजन, विरेचन (जुल्लाब), तैलादि स्नेहद्रव्योंका प्रयोग, वमन (कै), रक्तस्राव (फस्त खुलवाना) और वस्तिक्रिया करना ये सब ऊरुस्तम्भरोगियोंके लिये अनुपयोगी कहेगये हैं ॥ ३२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् ऊरुस्तम्भचिकित्सा ॥

आमवातकी चिकित्सा ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥ १ ॥

आमवातरोगमें लंघन कराना, स्वेददेना, कडवे और चरपरे रसवाले तथा अग्निवर्द्धक पदार्थोंका सेवन, विरेचन, घृतादि स्नेहपदार्थोंका पान और विरेचक ओषधियोंके द्वारा पिचकारी लगाना ये सब क्रियायें करनी चाहिये ॥ १ ॥

आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते ॥ २ ॥

आमवातरोगमें रोगीकी पिपासाको निवारण करनेके लिये पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ) की ओषधियोंको समान भाग

मिश्रित दो तोले लेकर दो सेर जलमें पकावे । जब १ सेर जल रहे तब उतारकर और छानकर पीनेको देवे और इसी नियमके अनुसार सिद्ध जलके द्वारा चावलोंकी यवागू बनाकर रोगीको भोजनके लिये देवे ॥ २ ॥

रूक्षस्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ ३ ॥

आमवातमें वालुकाकी पोटली बनाकर अग्निपर गरम करके रूक्ष स्वेद देवे ॥

गोजलपिष्टं हिंस्राकेबुकशिग्रूद्भवं मूलम् ।
नाकयुतं परिलेपात्सामः समीरणः कुत्र ॥ ४ ॥

कटेरी, केवुककी जड, सहिंजनेकी जड और बाँबीकी मिट्टी इनको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे आमवातरोग कहाँ रह सकता है ? ॥ ४ ॥

शतपुष्पा वचा शिग्रुः श्वदंष्ट्रा वारुणत्वचः ।
सहदेवा च वर्षाभूः शठी च सहभादली ॥ ५ ॥
सनकारीफलं हिङ्गु शुक्तकाञ्जिकपेषितम् ।
आमवातहरं श्रेष्ठं सुखोष्णं लेपनं हितम् ॥ ६ ॥

सोया, वच, सहिंजनेकी छाल, गोखुरू, बरनाकी छाल, खिरेंटी, पुनर्नवा, कचूर, प्रसारणी, जयन्तीके फल और हींग इन सबको समान भाग लेकर सिरके और काँजीके साथ पीसकर शोथके ऊपर सुहाता २ प्रलेप करे । यह प्रयोग आमवातके हरनेके लिये परमश्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ ६ ॥

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ।
एक एव निहन्ताऽस्य ह्येरण्डस्नेहकेसरी ॥ ७ ॥

शरीररूपी वनमें विचरनेवाले आमवातरूपी गजेन्द्रको एकमात्र अण्डीका तेल-रूपी सिंह ही नष्ट कर सकता है ॥ ७ ॥

एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् ।
आमानिलार्त्तियुक्तो गृध्रसिवृद्ध्यर्दितो नित्यम् ॥ ८ ॥

आमवातरोगी प्रतिदिन हरडको अण्डीके तेलके साथ भक्षण करे । इससे आम-वात, गृध्रसीवात, अर्दित और वृद्धिरोग दूर होते हैं ॥ ८ ॥

भृष्ट्वाऽद्यात्कटुतैलेऽन्नैः सहारग्वधपल्लवम् ।
किंवाऽम्लकाञ्जिके पक्त्वा खादेदामानिलापहम् ॥ ९ ॥

सरसोंके तेलमें अमलतासके पत्तोंको भूनकर भोजनके साथ खावे अथवा खट्टी काँजीमें पकाकर खावे तो आमवात नष्ट होता है ॥ ९ ॥

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १० ॥

एक तोला सोंठके चूर्णको नित्यप्रति काँजीके साथ सेवन करनेसे आमवात और कफवात शमन होत हैं ॥ १० ॥

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनामारनालेन चूर्णितम्।
पीत्वा विरिच्यते जन्तुरामवातहरं परम् ॥ ११ ॥

निसोतका चूर्ण ६ माशे, सैन्धानमक ३ माशे, सोंठका चूर्ण ३ माशे इन तीनोंको काँजीके साथ पान करनेसे दस्त होकर आमवातरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

सप्ताहं त्रिवृतश्चूर्णं त्रिवृत्क्काथेन भावितम्।
काञ्जिकेन तु तत्पीतं रेचयेदामवातिनम् ॥ १२ ॥

निसोतके चूर्णको निसोतके क्काथमें सातदिनतक भावना देकर आमवातवाले रोगीको काँजीके साथ पान कराकर विरेचन (दस्त) करावे ॥ १२ ॥

रास्नादिक्काथसंयुक्तं तैलं वातारिसंज्ञकम्।
प्रपिबन् वातरोगार्त्तः सद्यः शूलाद्विमुच्यते ॥ १३ ॥

आमवातरोगमें रास्नापञ्चक और रास्नासप्तक आदि क्काथोंके साथ अण्डीके तैलको पान करनेसे आमवात और उसकी पीडा शीघ्र दूर होती है ॥ १३ ॥

दशमूलकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा।
कुक्षिवस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ १४ ॥

दशमूलके क्काथ अथवा सोंठके क्काथके साथ अण्डीके तेलको पान करना कुक्षिशूल, वस्तिशूल और कटिशूलमें हितकारी है ॥ १४ ॥

एरण्डादि।

एरण्डं गोक्षुरं रास्ना शतपुष्पा पुनर्नवा।
पानं पाचनके शस्तं सामे वाते सुनिश्चयम् ॥ १५ ॥

अण्डकी जड, गोखुरू, रायसन, सोया और पुनर्नवा इन ओषधियोंके उष्ण क्काथको आमवातरोगमें पान करना चाहिये ॥ १५ ॥

शठ्यादि।

शठी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृताः।
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ १६ ॥

कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय इनके क्काथको पान करके रूक्षद्रव्योंका भोजन करे तो आमवात नष्ट होता है ॥ १६ ॥

रसोनादि ।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीक्काथमामार्दितः पिबेत् ।
नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ १७ ॥

आमवातरोगी लहसन, सोंठ और निर्गुण्डी इनके क्काथको पान करे । आमवातरोगकी इससे बढकर अन्य कोई औषध नहीं है ॥ १७ ॥

रास्नापञ्चक ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् ।
सर्वाङ्गीणे पिबेद् वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ १८ ॥

रायसन, गिलोय, अण्डकी जड, देवदारु, सोंठ इनके क्काथको सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्थित आमवात एवं सन्धि, अस्थि, मज्जागत आमवातरोगमें पान करे ॥ १८ ॥

रास्नासप्तक ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ।
क्काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ १९ ॥

रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अण्डकी जड और पुनर्नवा इन ओषधियोंके क्वाथको सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे जंघा, पार्श्व, ऊरु, कटि और पृष्ठदेशकी पीडा दूर होती है ॥ १९ ॥

रास्नादशमूलक ।

दशमूल्यमृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः ।
क्काथो रुबुकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ॥२०॥

दशमूल, गिलोय, अण्डकी जड, रायसन, सोंठ और देवदारु, इनके क्वाथको अण्डीके तेलके साथ पान करनेसे अत्यन्त बढाहुआ आमवात नष्ट होता है ॥ २० ॥

मध्यमरास्नादि ।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरादुस्पर्शवासामृता-
देवाह्वातिविषाभयाघनशठीशुण्ठीकषायः कृतः ।
पातव्यो रुबुतैलकेन सहितः सामे सशूलेऽनिले
कटयूरुत्रिकपृष्ठकोष्ठजठरक्रोडेषु वातार्त्तिजित् ॥ २१ ॥

रास्ना, अण्डकी जड, शतावर, पीली कटसरैया, धमासा, अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरड, नागरमोथा, कचूर, और सोंठ इन ओषधियोंके क्वाथको यथाविधि बनाकर अण्डीके तेलके साथ पान करे । इससे कटि, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक, कोष्ठ और उदरस्थित आमवातकी पीडा दूर होती है ॥ २१ ॥

महारास्नादि।

रास्ना वातारिमूलं च वासकं च दुरालभा।
शठी दारु बला मुस्तं नागरातिविषाभयाः ॥ २२ ॥
श्वदंष्ट्रा व्याधिघातं च मिसिधान्यपुनर्नवाः।
अश्वगन्धाऽमृता कृष्णा वृद्धदारु शतावरी ॥२३॥
वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम्।
समभागान्वितैरेतै रास्नाद्विगुणभागिकैः ॥ २४ ॥
कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागावशेषितम्।
शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाद्येन युतं तथा ॥ २५ ॥
अलम्बुषादिसंयुक्तमजमोदादिसंयुतम्।
यथादोषं यथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्भिषक् ॥ २६ ॥

रायसन, अण्डकी जड, अडूसेकी छाल, धमासा, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड, गोखुरू, अमलतास, सौंफ, धनियाँ, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारेके बीज, शतावर, बच, पियावाँसा, चव्य, बडी कटेरी और कटेरी ये प्रत्येक ओषधि एक एक भाग और रास्ना दो भाग लेकर इन सबका विधिपूर्वक अष्टावशेष क्वाथ सिद्ध करे। वैद्य इस क्वाथको रोगीके दोष, रोग और अवस्थाके अनुसार उचितमात्रासे सोंठका चूर्ण, बबूरका चूर्ण, मुण्डीका चूर्ण अथवा अजमोदादि चूर्ण डालकर पान करावे २२–२६

सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जागतेषु च।
आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानुकम्पने ॥ २७ ॥
कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथाऽर्दिते।
जानुजंघास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥ २८ ॥
सर्वेषां पाचनानां तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम्।
महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ २९ ॥

यह क्वाथ सर्वप्रकारके वातरोग, सन्धि और मज्जागत वात, आनाहरोग, सर्वशरीरगत कम्प, कुब्जकवात, वामनकवात, पक्षाघात अर्दितवात तथा जानु, जंघा और अस्थिगत वातकी पीडा, गृध्रसी, हनुग्रह और सर्वप्रकारके आमवातरोगमें हितकारी है और सब पाचनोंमें उत्तम पाचन है। इस महारास्नादि नामक क्वाथको ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥ २७–२९ ॥

शतपुष्पाद्यचूर्ण ।

शतपुष्पा विडङ्गश्च सैन्धवं मरिचं समम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामवातहरं परम् ॥ ३० ॥

सोया, वायविडङ्ग, सैंधानमक कालीमिरच समान भाग चूर्णको एकत्र मिलाकर गरम जलके साथ पान करनेसे अत्यन्त प्रबल आमवातरोग दूर होता है ॥ ३० ॥

हिंग्वाद्यचूर्ण ।

हिङ्गु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाऽजाजी सपौष्करम् ।
भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ ३१ ॥

हींग एक भाग, चव्य दो भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, पीपल ५ भाग, कालाजीरा ६ भाग और पोहकरमूल ७ भाग इन सब ओषधियोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर शीतल जलके साथ पान करनेसे आमवात नष्ट होता है ॥

अलम्बुषाद्यचूर्ण १–२ ।

अलम्बुषां गोक्षुरकं त्रिफलानागरामृताः ।
यथोत्तरं भागवृद्धया श्यामाचूर्णं च तत्समम् ॥ ३२ ॥
पिबेन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकेनोदकेन वा ।
पीतं जयत्यामवातं सशोथं वातशोणितम् ॥
त्रिकजानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम् ॥ ३३ ॥

१–गोरखमुण्डी १ भाग, गोखुरू २ भाग, हरड ३ भाग, बहेडा ५ भाग, सोंठ ६ भाग, गिलोय ७ भाग और इन सबकी बराबर निसोतका चूर्ण लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन दहीके तोड, मद्य, तक्र, काँजी अथवा गरम जलके साथ सेवन करे । इसके सेवन करनेसे आमवात, शोथयुक्त वातरक्त एवं त्रिक, जानु, ऊरु और सन्धिगत वात, ज्वर और अरुचि ये सब रोग दूर होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अलम्बुषां गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम् ।
पिप्पलीं त्रिवृतां मुस्तां वरुणं सपुनर्नवम् ॥ ३४ ॥
त्रिफलां नागरं चैव श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा ॥
आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ ३५ ॥

२–गोरखमुण्डी, गोखुरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोत, नागरमोथा वरनेकी छाल, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ ये सब ओषधियाँ समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको दहीके तोड, काँजी, मट्ठा, दूध अथवा मांसरस इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करे । यह चूर्ण आमवात और सन्धिगत शोथको शीघ्र दूर करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वैश्वानरचूर्ण ।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यमान्यास्तद्वदेव हि ।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ३६ ॥
दश: द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृताः शुभाः ।
मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ३७ ॥
पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्वस्तिजान् गदान् ।
प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनर्शांस्यानाहमेव च ॥ ३८ ॥
विबन्धं वातजान् रोगाँस्तथैव हस्तपादजान् ।
वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

सैंधानमक २ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद ३ भाग सोंठ ५ भाग और हरड १२ भाग लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे । यह वैश्वानर चूर्ण दहीके तोड, काँजी, तक्र, घृत अथवा उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे आमवात, गुल्म, हृदयरोग, वस्तिरोग, तिल्ली, ग्रन्थिरोग, शूल, अर्श, अफारा, विबन्ध, सम्पूर्ण वातरोग और हस्तपादादिगत समस्त विकारोंको नष्ट करता है और वायुको अनुलोमन करता है ॥ ३६–३९ ॥

शङ्करस्वेद ।

कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैरेरण्डमूलातसी-
वर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ।
स्वेदः स्यादिति कूर्परोदरशिरःस्फिक्पाणिपादांगुली-
गुल्फस्कंधकटीरुजा विजयते सामाः समीरानुगाः ॥४०॥

कपासके बिनौले, कुलथी, तिल, जौ, अण्डकी जड, अलसी, पुनर्नवा और सनके बीज इन सब औषधियोंको एकत्र कूटकर काँजीमें भिगोकर दो पोटली बनावे । फिर जलतेहुए चूल्हेपर काँजीसे भरी हाँडीको रक्खे और उस हाँडीके मुखपर छिद्रोंवाला एक सरावा ढककर सन्धिस्थानोंको बन्द करदेवे ।

फिर उस सरावेके छिद्रोंके ऊपर पूर्वोक्त १ पोटलीको रखकर गरम करके स्वेद (सेंक) देवे । इसी प्रकार फिर दूसरी पोटलीको गरम करके बारम्बार स्वेद देवे । इस प्रकार स्वेद देनेसे कोहनी, उदर, शिर, कूला, हाथ, पाँव, अँगुली, एँडी, कन्धा और कमर इन स्थानोंकी पीडासहित चिरकालोत्पन्न आमवात रोग नष्ट होता है ॥ ४० ॥

प्रसारण्याढकक्काथे प्रस्थो गुडरसोनयोः ।
पञ्चकोलरजःपक्वः पादः स्यादामवातहा ॥ ४१ ॥

प्रसारणीसन्धान ।

प्रसारणीके १ आढक क्काथमें १ प्रस्थ गुड और १ प्रस्थ लहसनका रस डालकर पकावे । फिर उसको एक सप्ताहपर्यन्त एक स्वच्छ पात्रमें भरकर और उसका मुँह बन्द करके रखा रहनेदेवे । फिर उसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके समान भाग मिश्रित ३२ तोले चूर्णको डालकर सेवन करे । यह प्रयोग आमवातनाशक है ॥ ४१ ॥

आमवातारिवटिका ।

रसगन्धकलौहार्कतुत्थसैन्धवटङ्कणान् ।
समभागान्विचूर्ण्याथ चूर्णाद्द्विगुणगुग्गुलुः ॥ ४२ ॥
गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृतश्चूर्णमुत्तमम् ।
तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु ॥
खादेन्माषद्वयं चेदं त्रिफलाजलयोगतः ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तूतिया, सैन्धानमक और सुहागा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे फिर सब चूर्णसे दुगुनी गूगल और गूगलसे चौथाई भाग निसोतका चूर्ण एवं निसोतके चूर्णकी बराबर चीतेका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलाकर घृतके साथ खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इसको प्रतिदिन दो दो माशे परिणाम लेकर त्रिफलेके क्काथके साथ सेवन करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका मता ।
आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च ॥ ४४ ॥
यकृत्प्लीहोदराष्ठीलां कामलां पाण्डुरोगकम् ।
हलीमकं चाम्लपित्तं श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ ॥ ४५ ॥

ग्रन्थिशूलं शिरःशूलं वातरोगं च गृध्रसीम् ।
गलगण्डं गण्डमालां कृमिकुष्ठविनाशिनी ॥ ४६ ॥
विद्रधिं गर्दभानाहावन्त्रवृद्धिं च नाशयेत् ॥ ४७ ॥

यह आमवातारि वटिका भोजनको उत्तम प्रकारसे पचाती और दस्तको साफ लाती है । यह वटी आमवात, गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत, प्लीहोदर, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, सूजन, श्लीपद, अर्बुद, ग्रन्थिशूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमिरोग कुष्ठरोग, विद्रधि, गर्दभरोग, अनाह और अन्त्रवृद्धि इन सब रोगोंको नाश करती है ॥ ४४-४७ ॥

आमवातारिरस ।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः ।
एतदेरण्डतैलेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रपेषयेत् ॥ ४८ ॥
कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनाम् ।
आमवातमतीवोग्रं दुग्धमुद्गादि वर्जयेत् ॥ ४९ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, त्रिफला ३ तोले, चीता ४ तोले और गूगल ५ तोले इन सब औषधियोंको एकत्र बारीक पीसकर अण्डीके तेलके साथ खरल करे । इसको प्रतिदिन एक एक तोलेकी मात्रासे अण्डीके तेलके साथ सेवन करके ऊपरसे गरम जल पान करनेसे अतिप्रबल आमवातरोग शीघ्र नष्ट होता है। इसके सेवन करनेपर दूध और मूँगकी दाल आदि पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ४८ ॥ ४९॥

आमवातेश्वररस ।

शुद्धगन्धपलार्द्धं च मृतताम्रं च तत्समम् ।
ताम्रार्द्धं पारदं देयं रसतुल्यं मृतायसम् ॥ ५० ॥
सर्वं पञ्चाङ्गुलेनैव भावयेच्च पुनः पुनः ।
संचूर्ण्य पञ्चकोलस्य-क्वाथे सर्वं विमर्दयेत् ॥ ५१ ॥
रौद्रे त्रिंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश ।
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ ५२ ॥
टङ्कणार्द्धं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम् ।
तिन्तिडीक्षारतुल्यं च सूततुल्यं च दन्तिकम् ॥ ५३ ॥

त्रिकटु त्रिफला चैव लवङ्गं चार्द्धभागिकम् ।
आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः ॥ ५४ ॥

शुद्ध गन्धक २ तोले, ताँबेकी भस्म २ तोले, पारेकी भस्म १ तोला और लोहेकी भस्म १ तोला लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर अण्डकी जडके रसमें सात बार भावना देवे । फिर पंचकोलके क्काथमें २० बार और गिलोयके क्काथके साथ १० बार भावना देवे । फिर धूपमें सुखाकर चूर्ण करके सबकी बराबर सुहागेकी खीलें, सुहागेसे आधा विडनमक, विडनमककी समान भाग काली मिरच एवं इमलीके बीजोंका खार और दन्तीकी जड पारेकी समान भाग, त्रिकुटा, त्रिफला और लौंग ये प्रत्येक पारेसे आधा आधा भाग लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर तैयार करलेवे । इस आमवातेश्वरनामक रसको विष्णुभगवान्ने बनाया है ॥ ५०–५४ ॥

महाग्निकारको ह्येष आमवातकुलान्तकः ।
स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकः ॥ ५५ ॥
अनुपानवशेनैव सर्वरोगकुलान्तकः ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु आमवातं सुदारुणम् ॥ ५६ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हिताः ।
भोजयेत्कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जामितं रसम् ॥ ५७ ॥
कट्वम्लतिक्तरहितं पिबेत्तदनुपानकम् ।
शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते दीपनं परम् ॥ ५८ ॥
अनेन सदृशो नास्ति वह्निसन्दीपनो रसः ।
गुल्मार्शोग्रहणीरोगशोथपाण्डूदरापहः ॥ ५९ ॥

यह रस अत्यन्त अग्निवर्द्धक और आमवातको समूल नष्ट करनेवाला है । स्थूल मनुष्योंको कृश और कृश मनुष्योंको स्थूल करता है और अनुपानविशेषसे सर्वप्रकारके रोगोंको समूल नाश करता है । एवं, साध्य अथवा असाध्य दारुण आमवातको तो शीघ्र दूर करदेता है । इसपर भारी और वृष्य अन्न पान, दूध और मांसरस ये पदार्थ हितकारी हैं । इसपर कण्ठपर्यंत (अर्थात् खूब पेट भरकर) भोजन करे । इस रसको चार चार रत्ती प्रमाण सेवन करे और कटु, अम्ल व तिक्तरसरहित पदार्थोंका अनुपान करे । यह रस सर्व प्रकारके भोजनको तत्काल जीर्ण करता और अग्निको अत्यन्त दीपन करता है । अग्निको दीपन करनेवाला इसकी समान और दूसरा रस नहीं है । इससे गुल्म, बवासीर, संग्रहणी, सूजन, पाण्डु

और उदररोग ये सब रोग दूर होते हैं । इसका दूसरा नाम " सर्वतोभद्ररस " भी है ॥ ५५–५९ ॥

वातगजेन्द्रसिंह ।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं ताम्रं नागं सटङ्कणम् ।
विषं सिन्धुं लवङ्गं च हिङ्गु जातीफलं समम् ॥ ६० ॥
तदर्द्धं त्रिसुगन्धं च त्रैफलं जीरकं तथा ।
कन्यारसेन संपिष्य वटी कार्या त्रिरक्तिका ॥
सेव्या पयोऽनुपानेन सदा प्रातः सुखान्वितः ॥ ६१ ॥

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शीशेकी भस्म, सुहागा, शुद्ध मीठा तेलिया, सैंधानमक, लौंग, हींग और जायफल ये प्रत्येक एक एक तोला और दारचीनी, तेजपात, इलायची, त्रिफला, जीरा ये प्रत्येक छः छः माशे लेकर सबको एकत्र कूटपीसकर घीकुँआरके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे नित्य प्रातःकाल एकएक गोली शीतल जलके साथ सेवन करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशतिं श्लैष्मिकान् रोगान्सेवनादेव नाशयेत् ॥ ६२ ॥
अभिघातेन ये क्षीणाः क्षीणार्द्धावयवाश्च ये ।
व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः श्रीहीनाश्चापि ये नराः ॥ ६३ ॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा वह्निहीनाश्च मानवाः ।
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च ॥ ६४ ॥
खञ्जानां पङ्गुकुब्जानां क्षीणानां मांसबर्द्धनः ।
अरोगी सुखमाप्नोति रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥ ६५ ॥
रसस्यास्य प्रसादेन नास्ति रोगाद्भयं क्वचित् ।
वातगजेन्द्रसिंहोऽयं रसो रोगविनाशकः ॥ ६६ ॥

यह रस ८० प्रकारके वातरोग. ४० प्रकारके पित्तजरोग और बीस प्रकारके कफके रोगोंको सेवन करतेही नष्ट करता है और जो पुरुष अभिघात (चोट अथवा शस्त्रप्रहारादि) के द्वारा क्षीणशरीर होगये हैं या जिनका अर्द्धांग क्षीण होगया है एवं व्याधिसे क्षीण, अवस्थाक्षीण, कान्तिहीन, क्षीणेन्द्रिय, क्षीणवीर्य और मन्दाग्निवाले जो पुरुष हैं उनके लिये अत्यन्त पुष्टिकर,

बलवर्द्धक और आयुको स्थापन करनेवालाहै। खञ्जरोगी, पंगु, कुब्जक और क्षीण-देहवाले मनुष्योंके शरीरमें मांसकी वृद्धि करता है। इसका सेवन करनेसे आरोग्य मनुष्य सुख पाता है और रोगी रोगसे मुक्त होताहै। इस रसके प्रसादसे किसी रोगसे भय नहीं होता। यह वातगजेन्द्रसिंहनामक रस सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला है ॥ ६२-६६ ॥

आमप्रमाथिनी वटिका।

सोरकं रविमूलं च गन्धकं लौहमभ्रकम्।
पिष्ट्वाऽऽरग्वधतोयेन कुर्यान्माषमितां वटीम् ॥ ६७ ॥
त्रिवृत्क्वाथे च सा सेव्या कफामयनिषूदनी।
आमवातप्रशमनी वटिकाऽऽमप्रमाथिनी ॥ ६८ ॥

सोरा, आककी जडकी छाल, शुद्ध गन्धक, लोहे और अभ्रककी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर अमलतासके रसके साथ खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली निसोतके क्वाथमें मिलाकर सेवन करनेसे यह आमप्रमाथिनीवटी कफके सम्पूर्ण रोग और आमवातको शमन करती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

आमवाताद्रिवज्ररस।

रसगन्धकलौहाभ्रफणिफेनं समं समम्।
सप्तधा यावशूकस्य मर्दयेद्द्विजयाम्भसा ॥ ६९ ॥
ततो माषार्द्धमानां च विदध्याद्वटिकां भिषक्।
यथादोषानुपानेन प्रदद्यादामवातिने ॥ ७० ॥
आमवातं महाघोरं प्रमेहानपि विंशतिम्।
आमवाताद्रिवज्राख्यो रसो हन्ति न संशयः ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और अफीम ये प्रत्येक एक एक भाग और जवाखार ७ भाग लेवे। इन सबको एकत्र मिश्रित करके भाँगके क्वाथके साथ खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस यथादोषानुसार अनुपानके साथ आमवातरोगीको सेवन करावे। यह आमवाताद्रिवज्रनामक रस अत्यन्त प्रबल आमवात और बीसों प्रकारके प्रमेहोंको निस्सन्देह दूर करताहै ६९-७१

त्रिफलादिलोह ।

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा ।
चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ७२ ॥
अयश्चूर्णपलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव हि ।
आलोड्य मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च ॥ ७३ ॥
प्रातर्विलिह्य भुञ्जानो जीर्णे तस्मिञ्जयेद्रुजः ।
दुःसाध्यमामवातं च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥
जीर्णान्नसम्भवं शूलं श्वयथुं विषमज्वरम् ॥ ७४ ॥

त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, वायविडंग, पोहकरमूल, वच, चीता और मुलहठी इन प्रत्येकका बारीक चूर्ण एक एक पल, लोहे और शुद्ध गूगलका चूर्ण आठ आठ पल लेकर सबको १२ पल परिमाण शहदके साथ मिलालेवे । इसको प्रतिदिन प्रातः काल छः छः माशे सेवन करे और ओषधिके पचजानेपर भोजन करे । इसके सेवनसे दुःसाध्य आमवात, पाण्डुरोग, हलीमक, अजीर्ण, शूल, सूजन और विषमज्वर आदि समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ७२-७४ ॥

विडङ्गादिलोह ।

वज्रपाण्ड्वादिलौहानां ग्राह्यं पञ्चपलं शुभम् ।
चूर्णं मृताभ्रकस्यापि लौहार्द्धं पारदं तथा ॥ ७५ ॥
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या लौहाभ्रे षोडशैर्जलैः ।
पक्त्वाऽष्टभागशेषं तु ग्राह्यं क्वाथजलं ततः ॥ ७६ ॥

वज्र या पाण्ड्वादि लोहोंमेंके किसी एक लोहेकी भस्म २० तोले, अभ्रकभस्म १० तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले लेवे । क्वाथके लिये त्रिफला, लोहे और अभ्रकसे तिगुना लेकर १६ गुने जलमें पकावे । जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे ॥ ७५-७६ ॥

तेन लौहाभ्रचूर्णं च पुनः पाच्यं समं घृतम् ।
शतावर्या रसं चैव क्षीरं च द्विगुणं रसात् ॥ ७७ ॥
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि ताम्रके ।
पचेत् पाकविधिज्ञस्तु वह्निना मृदुना शनैः ॥ ७८ ॥

फिर उस क्वाथके साथ उक्त लोहे और अभ्रककी भस्म एवं गोघृत ३० तोले, शतावरीका रस ३० तोले और दूध ६० तोले मिलाकर लोहे या ताँबेके

पात्रमें करके पाककी विधिको जाननेवाला वैद्य मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावें और लोहेकी करछीसे चलाता जाय ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

सिद्धे च प्रक्षिपेदेतान् विडङ्गादीन् यथोदितान् ।
विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम् ॥ ७९ ॥
पलाशबीजं मरिचं पिप्पली हस्तिपिप्पली ।
त्रिवृता त्रिफला दन्ती एला चैरण्डकं तथा ॥ ८० ॥
चव्रिका ग्रन्थिकं चित्रं मुस्तकं वृद्धदारकम् ।
सर्वेषां चूर्णमेतेषां लौहाभ्रकसमं भवेत् ॥ ८१ ॥

जब वह क्वाथ पककर सिद्ध होजाय तब उसमें वायविडङ्ग, सोंठ, धनियाँ, गिलोयका सत्त्व, जीरा, ढाकके बीज, मिरच, पीपल, गजपीपल, निसोत, त्रिफला, दन्ती, इलायची, अण्डकी जड, चव्य, पीपलमूल, चीता, नागरमोथा और विधारा इन सब औषधियोंके चूर्णको लोहे और अभ्रककी समान भाग अर्थात् तीस तीस तोले एवं पूर्वोक्त पारद और गन्धककी कज्जली बनाकर डालदेवे और करछीसे चलाकर सबको एकमएक करलेवे ॥ ७९-८१ ॥

आमवातगजेन्द्रस्य केसरी विधिनिर्म्मितः ।
आमवातं च शोथं चाप्यग्निमान्द्यं हलीमकम् ॥
कामलां पाण्डुरोगं च हन्याद्बल्यं रसायनम् ॥८२॥

आमवातरूपी गजेन्द्रको नष्ट करनेके लिये ब्रह्माजीने इस विडङ्गादि लौहरूपी सिंहको निर्माण किया है । इसको नित्यप्रति उचित मात्रासे सेवन करनेसे आमवात, शोथ, मन्दाग्नि, हलीमक, कामला, पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं । यह रसायन अत्यन्त बलकारी और पौष्टिक है ॥ ८२ ॥

पञ्चाननरसलौह ।

जारितं पुटितं लौहचूर्णं पञ्चपलं शुभम् ।
गुग्गुलोश्च पलं पञ्च लौहार्द्धं मृतमभ्रकम् ॥ ८३ ॥
शुद्धसूतमभ्रसमं गन्धकं तत्समं भवेत् ।
त्रिगुणामयसश्चूर्णात् कृत्वा तां त्रिफलां पचेत् ॥ ८४॥
द्विरष्टभागं पानीयमष्टभागावशेषितम् ।
तेन चाष्टावशेषेण पचेल्लोहाभ्रगुग्गुलुम् ॥ ८५ ॥

घृततुल्यं शतावर्या रसं दत्त्वा तथा शुभम्।
प्रस्थं प्रस्थं च दुग्धस्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८६ ॥
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि मृन्मये।
ततः पाकविधिज्ञस्तु पाकसिद्धौ विनिक्षिपेत् ॥ ८७ ॥
विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम्।
पञ्चकोलं त्रिवृद्दन्ती त्रिफलैला च मुस्तकम् ॥ ८८ ॥
सुचूर्णितं च प्रत्येकमेषामर्द्धपलं क्षिपेत्।
रसस्य कज्जलीं कृत्वा ईषदुष्णे विमर्दयेत् ॥
उत्तार्य स्थापयेद्भाण्डे स्निग्धे चापि सुरक्षितम् ॥ ८९ ॥

जारित और पुटित लोहेकी भस्म ९ पल, गूगल ९ पल, अभ्रकभस्म ढाई पल, शुद्ध पारा ढाई पल और शुद्ध गन्धक ढाई पल लेवे। क्वाथके लिये त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि पन्द्रह पन्द्रह पल लेकर सोलह गुने जलमें पकावे। पकते पकते जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथके साथ लोहचूर्ण, गूगल अभ्रक एवं घृत १ प्रस्थ, सतावरका रस एक प्रस्थ और गोदुग्ध १ प्रस्थ मिलाकर लोहे अथवा मिट्टीके पात्रमें करके मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय। फिर पाककी विधिको जाननेवाला वैद्य पाकके उत्तम प्रकारसे सिद्ध हो जानेपर वायविडङ्ग, सोंठ, धनियां, गिलोयका सत्त्व, जीरा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, निसोत, दन्ती, त्रिफला, इलायची और नागरमोथा इन औषधियोंके दो दो तोले चूर्णको और पारे, गन्धककी कज्जली करके पाकके कुछ कुछ गरम रहनेपर डाल देवे और करछीसे चलाकर सबको एकम एक कर लेवे। फिर उसको उतारकर चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे ॥८३-८९॥

भक्षयेच्छुद्धदेहस्तु शुभेऽहनि सुरार्चकः।
आमवातमहाव्याधिविनाशायेष्टदेवताः ॥ ९० ॥
घृतेन मधुना पश्चान्मर्दयित्वाऽनुपानतः।
गुडूचीनागरैरण्डंक्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥ ९१ ॥
सन्धिवातं कटीशूलं कुक्षिशूलं सुदारुणम्।
जङ्घापादाङ्गुलीशूलं गृध्रसीं हन्ति पङ्गुताम् ॥ ९२ ॥

गुल्मशोथं पाण्डुरोगं सन्धिवातं च दुस्सहम्।
आमवातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः ॥ ९३ ॥

फिर इस लोहेको शुभ दिनमें शुद्ध होकर रोगी आमवातरोगको नष्ट करनेके लिये अपने इष्टदेव तथा अन्यान्य देवताओंका पूजन करके घृत और शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे। ऊपरसे गिलोय, सोंठ और अण्डकी जडका क्वाथ बनाकर पान करे। यह पञ्चानन रस आमवातरूपी दारुण रोगको नष्ट करनेके लिये मनोवांछित फल देनेवाले इष्टदेवकी समान है। यह सन्धिगतवात, कटिशूल, कुक्षिशूल, एवं जंघा, पाँव और अँगुलियोंमें स्थित वातकी पीडा, गृध्रसी, पंगुता, गुल्म, शोथ, पाण्डुरोग और दुस्सह सन्धिवातको नष्ट करता है। आमवातरूपी गजेन्द्रको नष्ट करनेके लिये इस पञ्चानन रसलौहरूपी सिंहको ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥ ९०-९३ ॥

अजमोदादिवटक।

अजमोदमरिचपिप्पलिविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः।
सैन्धवपिप्पलिमूल भागा नवकस्य पलिकाःस्युः ॥९४॥
शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य।
पथ्या पञ्चपलानि च सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ ९५ ॥
समगुडवटका अदतश्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिबतः।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकष्टाश्च ॥ ९६ ॥
विषूचिका प्रतितूनी हृद्रोगो गृध्रसी चोग्रा।
कटिवस्तिगुदस्फुटनं कष्टं चैवास्थिजंघयोस्तीव्रम् ॥ ९७ ॥
श्वयथुस्तथाऽङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ९८ ॥

अजमोद, कालीमिरच, पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चीता, शतावर, सैंधानमक और पीपलामूल ये प्रत्येक चार चार तोले, सोंठ १० पल, विधारेके बीज १० पल और हरड ५ पल इन सबको एकत्र चूर्ण करके और सब चूर्णकी बराबर गुड मिलाकर मोदक बनानेकी समान पाक करके वटक (बडे) बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक वटक अथवा केवल चूर्णको छः मासे परिमाण लेकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण पीडाओंसहित आमवात रोग एवं विषूचिका, तूनी, हृदयरोग, गृध्रसीवात, कमर, वस्ति, गुदा, अस्थि (हड्डी) और जंघाओंकी तीव्र वेदना,

सूजन तथा अङ्गों और सन्धिस्थानोंमें स्थित सूजन एवं अन्यान्य आमवातजन्य समस्त रोग इस प्रकार नाश होते हैं जैसे सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार दूर होजाता है ॥ ९४–९८ ॥

आमवातगजसिंह मोदक।

शुण्ठीचूर्णस्य प्रस्थैकं यमान्याश्च पलाष्टकम्।
जीरकस्य पलद्वन्द्वं धान्यकस्य पलद्वयम् ॥ ९९ ॥
पलैकं शतपुष्पाया लवङ्गस्य पलं तथा।
टङ्कणस्य पलं ग्राह्यं मरिचस्य पलं भवेत् ॥ १०० ॥
त्रिवृतात्रिफलाक्षारपिप्पलीनां पलं पलम्।
एतेषां सर्वचूर्णानां खण्डं दद्याद् गुणत्रयम् ॥ १ ॥
घृतेन गुडकीकृत्य मोदको मधुना कृतः।
शठयेलातेजपत्राणां कर्षं दद्याद् गुडत्वचः ॥ २ ॥
चतुर्भिरधिवासोऽस्य तोलैकं खादयेद् बुधः।
शरीरं वीक्ष्य मात्राऽस्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

सोंठका चूर्ण ६४ तोले, अजवायन ३२ तोले, जीरा ८ तोले, धनियाँ ८ तोले सोया ४ तोले, लौंग ४ तोले, जवाखार ४ तोले और पीपल ४ तोले इन सबको एकत्रकर बारीक पीसलेवे और सब ओषधियोंके चूर्णसे तिगुनी खाँड मिलालेवे। प्रथम जलके साथ खाँडकी चासनी बनाकर उसमें उपयुक्त चूर्ण और कचूर, इलायची, तेजपात, दारचीनी इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला डालकर घृत और मधुके योगसे मोदक बनालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोला परिमाण अथवा शरीरके बलाबलको विचारकर इसकी मात्राको युक्तिपूर्वक न्यूनाधिक करके सेवन करे ॥ ९९–१०३ ॥

आमवातप्रशमनः कटिग्रहविनाशनः।
शूलघ्नो रक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः ॥ ४ ॥
श्रीमता चन्द्रनाथेन गुरुणा भाषितं मयि।
श्रीमद्गहननाथोऽहं कृतवान् मोदकं शुभम् ॥ ५ ॥
गर्जित्वाऽऽमगजेन्द्रोऽयमजीर्णबलमागतः।

यथा सिंहो वने हन्ति दन्तिनं बलिनं शुभम् ॥
तथाऽऽमवातकरिणं निहन्त्येव न संशयः ॥ ६ ॥

ये मोदक आमवातको नष्ट करनेवाले, कमरकी पीडाको दूर करनेवाले, शूल, रक्तपित्त और अम्लपित्तको विनाश करनेवाले हैं । श्रीमान् गुरु चन्द्रनाथजीने मुझसे कहा, तब (मैंने) गहननाथने इस उत्तम मोदकोंके प्रयोगको बनाया है । जिस प्रकार वनमें विचरतेहुए बलवान् हाथीको गर्जकर सिंह मारदेता है; उसी प्रकार अजीर्णरूपी बलको प्राप्तकर मनुष्यशरीररूपी वनमें विचरते हुए आमवातरूपी गजेन्द्रको यह आमवातगजासिंहमोदक नष्ट करताहै; इसमें सन्देह नहीं ॥ १०४–१०६॥

रसोनपिण्ड ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा ।
हिङ्गु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ ७ ॥
शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
अजमोदा यमानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान् ॥ ८ ॥
प्रत्येकं तु पलं चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
प्रक्षिप्य तैलमानीं च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च ॥
घृतभाण्डे दृढे चैतत् स्थापयेत्षोडशाहकम् ॥ ९ ॥

छिलके रहित लहसन सौ पल और भूसीरहित तिल १६ तोले लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर हींग. त्रिकुठा, जवाखार, सज्जी, पाँचों नमक, सोया, कूठ, पीपलामूल, चीता, अजमोद, अजवायन, और धनियाँ, इन प्रत्येकको चार चार तोले लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । एवं तिलका तेल एक सेर और काँजी ३२ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मजबूत और घीके चिकने वर्त्तनमें भरकर और उसका मुख बन्द करके सोलह दिनतक रखा रहनेदेवे ॥ १०८–१०९ ॥

खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ।
आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रये ॥ ११० ॥
अपस्मारेऽनले मन्दे कासश्वासगरेषु च ।
उन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तोः प्रशस्यते ॥ १११ ॥

फिर निकालकर उसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोला सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल या मद्य पान करे । इस रसोनपिण्डको आमगत, वातरोग, सर्वाङ्गगत,

वात तथा एकाङ्गगतवात, अपस्मार, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, विषविकार, उन्माद, वातभग्न, शूल और कृमिरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ११० ॥ १११ ॥

महारसोनपिण्ड।

रसोनस्य पलशतं तदर्द्धं निस्तुषात्तिलात्।
पात्रं गव्यस्य तक्रस्य पिष्ट्वा चैतानि संक्षिपेत् ॥ १२ ॥
त्रिकटु धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली।
आजमोदा त्वगेला च ग्रन्थिकं च पलांशिकम् ॥ १३ ॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ पलांशं मरिचस्य च।
कुष्ठाजाज्योश्च चत्वारि मधुनः कुडवं तथा ॥ १४ ॥
आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोऽष्टौ पलानि च।
तिलतैलस्य चत्वारि शुक्तकस्यापि विंशतिः ॥ १५ ॥
सिद्धार्थकस्य चत्वारि राजिकायास्तथैव च।
कर्षप्रमाणं दातव्यं हिङ्गुलं वणपञ्चकम् ॥
एकीकृत्य दृढे कुम्भे धान्यराशौ निधापयेत् ॥ १६ ॥

छिल्केरहित लहसन १०० पल, भूसीरहित तिल ५० पल और गायका मट्ठा ८ सेर लेकर सबको एकत्र करके पीसलेवे। फिर सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, चव्य, चीता, गजपीपल, अजमोद, दारचीनी, इलायची और पीपलामूल, ये प्रत्येक एक एक तोला एवं मिश्री ८ पल, मिरच १ तोला, कूठ १६ तोले, कालाजीरा १६ तोले, शहद १६ तोले, अदरख १६ तोले, गोघृत ३२ तोले, तिलका तेल १६ तोले, काँजी ८० तोले, सफेद सरसों १६ तोले, राई १६ तोले हींग २ तोले और पाँचों नमक प्रत्येक दो दो तोले इन सबको एकत्र पीसकर उक्त गोतक्रमें मिलादेवे। फिर धूपमें सुखाकर मजबूत और घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसका मुख बन्दकर के धानोंकी राशिमें गाडदेवे ॥ १२–१६ ॥

द्वादशाहात्समुद्धृत्य प्रातः खाद्यं यथाबलम्।
सुरा सौवीरकं सीधु क्षीरं चानु पिबेन्नरः ॥ १७ ॥
जीर्णे यथेप्सितं भोज्यं दधिपिष्टान्नवर्जितम्।
एकमासप्रयोगेण सर्वान्व्याधीन्व्यपोहति ॥ १८ ॥
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्।
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमेहानपि विंशतिम् ॥ १९ ॥

अर्शांसि षट्प्रकाराणि गुल्मं पञ्चविधं तथा ।
अष्टादशविधं कुष्ठमेकादशविधं क्षयम् ॥ १२० ॥
श्वयथुं योनिशूलं च सर्वमाशु विनाशयेत् ।
क्षतसन्ध्यस्थिभग्नानां सन्धानकरणः परः ॥ २१ ॥
दृष्टेर्बलकरो हृद्य आयुष्यो बलवर्द्धनः ।
महारसोनपिण्डोऽयमामवातकुलान्तकः ॥ १२२ ॥

बारह दिनके बाद निकालकर इसको प्रतिदिन प्रातःकाल जठराग्निके बलाबलके अनुसार यथोचित मात्रासे सेवन करे और ऊपरसे मद्य, सौवीरकनामक काँजी, सीधु (सिर्का), अथवा गोदुग्ध पान करे । ओषधिके जीर्ण (हज्म) होजानेपर यथेच्छरूपसे भोजन करे और दही, पिष्टान्न (पिठी आदिके बनेहुए पदार्थों) को त्यागदेवे । इस औषधको एक महिनेतक सेवन करनेसे यह सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर करती है एवं अस्सी प्रकारके वातजरोग, चालीस प्रकारके पित्तज और बीस प्रकारके कफजन्यरोग, बीसों प्रकारके प्रमेह, छः प्रकारके अर्श, पाँच प्रकारके गुल्म, १८ प्रकारके कुष्ठ, ११ प्रकारके क्षयरोग, शोथ और योनिशूल इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है । एवं क्षत (घाव) और सन्धिस्थानकी पीडाको दूर करती तथा टूटी हुई हड्डीको जोड देती है । दृष्टि शक्तिको प्रबल करती, हृदयको हितकारी, आयु बलकी वृद्धि करनेवाली है । यह महारसोनपिण्ड आमवातरोगको तो समूल नष्ट कर देता है ॥ १७–२२ ॥

वातारिगुग्गुलु ।

वातारितैलसंयुक्तं गन्धकं पुरसंयुतम् ।
फलत्रययुतं कृत्वा पिष्टयित्वा चिरं रुजी ॥
भक्षयेत्प्रत्यहं प्रातरुष्णतोयानुपानतः ॥ २३ ॥

शुद्ध गन्धक, गूगल, हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक ओषधिको समान भाग लेकर खूब बारीक चूर्ण करके अण्डीके तेलमें खरल करलेवे । इसको नित्यप्रति प्रातःकाल छःछःमासे परिमाण सेवनकर ऊपरसे उष्णजल पान करे ॥ २३ ॥

दिनेदिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तम् ।
आमवातं कटीशूलं गृध्रसीं खञ्जपङ्गुताम् ॥ २४ ॥
वातरक्तं सशोथं च सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ।
शमयेद्बहुशो दृष्टमपि वैद्यविवर्जितम् ॥ २५ ॥

इसको निरन्तर एक महीनेतक सेवन करनेसे आमवात, कटिशूल, गृध्रसीवात, खञ्ज, पंगुता, वातरक्त, सूजन, दाह, क्रोष्टुशीर्षकरोग और ऐसे अनेकों रोग जिनको देखकर वद्योंने त्यागदिया हो वे भी शीघ्र शमन होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

योगराजगुग्गुलु ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यमानी कारवी तथा ।
विडङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ २६ ॥
चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम् ।
त्रिफलां मुस्तकं व्योषं वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ २७ ॥
तालीशपत्रं पत्रं च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥
सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २८ ॥

चीतेकी जड, पीपलामूल, अजवायन, कालाजीरा, वायविडङ्ग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेंधानमक, कूठ, रास्ना, गोखुरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, दारचीनी, खस, जवाखार, तालीसपत्र और तेजपात इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर समस्त चूर्णकी बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर सबको एकत्र पीसलेवें और गोघृतके साथ उत्तमप्रकारसे खरलकरके चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥ २६-२८ ॥

अतो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ २९ ॥
आमवाताढचवातादीन् कृमिदुष्टव्रणानिच ।
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ १३० ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ।
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ ३१ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल यथोचित मात्रासे सेवन करे और इसके जीर्ण होनेपर यथेच्छ भोजन करे । यह योगराजनामक प्रसिद्ध योग अमृतकी समान उपकारी है । यह ओषधि आमवात, आढचवात, कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अफारा और बवासीर इन समस्त व्याधियोंको नष्ट करती है एवं सन्धि और मज्जागत वातरोगोंको भी दूर करती है । जठराग्निको दीपन करती तथा बल और तेजकी वृद्धि करती है ॥ २९-१३१ ॥

त्रिकटु त्रिफला पाठा शताह्वा रजनीद्वयम् ।
अजमोदा वचा हिङ्गु हबुषा हस्तिपिप्पली ॥ ३२ ॥
उपकुंची शठी धान्यं विडंसौवर्चलं तथा ।
सैन्धवं पिप्पलीमूलं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ ३३ ॥
फणिज्झकं च लौहं च सर्जकं च त्रिकण्टकम् ।
रास्ना चातिविषा शुण्ठी यवक्षाराम्लवेतसम् ॥ ३४ ॥
चित्रकं पुष्करं चव्यं वृक्षाम्लं दाडिमं रुबु ।
अश्वगन्धा त्रिवृद्दन्ती बदरं देवदारु च ॥ ३५ ॥
हरिद्रा कटुका मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ।
विडङ्गं मृतवङ्गं च यमानी वासकाभ्रकम् ॥ ३६ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शोधितं गुग्गुलुं चैव सर्वचूर्णसमं नयेत ॥ ३७ ॥
घृतेन पिष्टयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
प्रातः सायं च षण्माषान्भक्षयेत्प्रतिवासरम् ॥ ३८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, आमला, हरड, बहेडा, पाढ, सोया, हल्दी, दारुहल्दी अजमोद, बच, हींग, हाऊबेर गजपीपल, छोटी इलायची, कचूर, धनियां, विडनमक, कालानमक, सैंधानमक, पीपलामूल, दारचीनी, बडी इलायची, तेजपात, नागकेशर, छोटे पत्तोंकी तुलसी, लोहभस्म, राल, गोखरू, रायसन, अतीस, सोंठ, जवाखार, अमलवेंत, चीता, पोहकरमूल, चव्य, बिषांबिल, अनार, अण्डकी जड, असगन्ध, निसोत, दन्ती, बेरकी गुठली, मींग, देवदारु, हल्दी, कुटकी, मूर्वा, त्रायमाणा, धमासा, वायबिडङ्ग, वङ्गभस्म, अजवायन, अडूसा और अभ्रकभस्म इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कर बारीक चूर्णकर लेवे । फिर समस्त चूर्णकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर सबको एकत्र मिलाकर घृतके साथ खाल करके चिकने बासनमें भरकर रख देवे । इसको नित्यप्रति प्रातः-सायंकाल छः छः माशेकी मात्रासे सेवन करे ॥ ३२-३८ ॥

रसघातेन ये भग्नाः कटिभग्नाश्च ये जनाः ।
एकाङ्गं शुष्यते येषां कुष्ठं वापि क्षतोत्तरम् ॥
पादौ विस्तारितौ येषां येषां वा गृध्रसीग्रहः ॥ ३९ ॥
सन्धिवातं क्रोष्टुशीर्षं वातं सर्वशरीरगम् ।

अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥१४०॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव हन्त्यवश्यं न संशयः ।
अयं बृहद्योगराजगुग्गुलुः सर्ववातहा ॥ ४१ ॥

यह बृहद् योगराजगूगल वारेके विकारसे जिनके शरीर नष्ट हो गये हैं एवं जिनकी कमर टूट गई हैं, जिनका एक अंग सूख गया है, जिनके कुष्ठ और क्षत अत्यन्त बढते जाते हों, पैर फट गये हों, जिनको गृध्रसीवातने जकड लिया हो एवं सन्धिगतवात, क्रोष्टुशीर्षवात और सर्व शरीरगत तथा अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पैत्तिक और बीस प्रकारके कफजनित रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है। यह बृहद्योगराजगूगल सर्व प्रकारकी वातव्याधिको नष्ट करनेवाली परमोत्कृष्ट औषध है ॥ ३९-१४१ ॥

व्याधिशार्दूलगुग्गुलु ।

त्रिफलायाः पलान्यष्टौ प्रत्येकं द्विपलं पुनः ।
कटुतैलं पलद्वन्द्वं दोलाशोधितगुग्गुलुम् ॥ ४२ ॥
सार्द्धाढकजले पक्त्वा पादशेषं पुनः पचेत् ।
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्सिद्धे पृथक् कर्षार्द्धसम्मितम् ॥४३॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गामलकानि च ।
गुडूच्यग्निस्त्रिवृद्दन्ती चवी शूरणमानकम् ॥ ४४ ॥
सार्द्धं शतद्वयं दद्याच्चूर्णितं कानकं फलम् ।
रसगन्धकलौहाभ्रं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ४५ ॥

हरड, बहेडा और आमला इन प्रत्येककी आठ आठ पल लेकर डेढ आढक जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर कड़वा तेल दो पल और दोलायन्त्रके द्वारा शुद्धकी हुई गूगल दो पल इनको एकत्र मर्दन करके पूर्वोक्त क्वाथमें मिलाकर पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध हो जाय तब उतारकर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, आमले, गिलोय, चीतेकी जड, निसोत, दन्ती, चव्य, जिमीकन्द और मानकन्द प्रत्येक औषधि एक एक तोला, शुद्ध जमालगोटेके बीज २५० एवं शुद्ध पारा शुद्ध गन्धक लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एक एक कर्ष इन सबको एकत्र चूर्ण करके डालदेवे । फिर सबको एकम एक करके चिकने वासनमें भरकर रखदेवे ॥४२-४५॥

ततो माषद्वयं जग्ध्वा प्रातरुष्णोदकं पिबेत् ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं वयोबलविवर्द्धनम् ॥ ४६ ॥
अर्शोऽश्मरीमूत्रकृच्छ्रं शिरोवाताम्लपित्तनुत् ।
कासं पञ्चविधं श्वासं दाहोदरभगन्दरम् ॥ ४७ ॥
शोथान्त्रवृद्धितिमिरं श्लीपदं प्लीहकामलम् ।
शूलगुल्मक्षयं कुष्ठं सपाण्डुविषमज्वरम् ॥ ४८ ॥
जानुजङ्घासुप्तपादगतं वातं कटीग्रहम् ।
हन्ति चान्यान्कफोत्थांश्च आम वातं विशेषतः ॥
व्याधिशार्दूलको नाम्ना गुग्गुलुः परिकीर्त्तितः ॥ ४९ ॥

इसमेंसे नित्यप्रति प्रातःसमय दो दो मासे खाकर ऊपरसे उष्ण जल पान करे । यह गूगल जठराग्निको दीपन करता है, आयु और बलको बढाता है । एवं अर्श, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शिरोरोग, वातविकार, अम्लपित्त, पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, दाह, उदरपीडा, भगन्दर शोथ, अन्त्रवृद्धि, तिमिररोग, श्लीपद, प्लीहा, कामला, शूल, गुल्म, क्षय, कोढ, पांडुयुक्त विषमज्वर, जानु, जङ्घा और पादस्थित वातपीडा, कटिग्रह एवं अन्यान्य कफोत्पन्न रोगोंको और विशेषकर आमवातरोगको शीघ्र नष्ट करता है । यह गूगल व्याधिशार्दूलनामसे प्रसिद्ध है ॥

बृहत्सिंहनाद-गुग्गुलु ।

पिष्टितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैलाष्टके ।
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ १५० ॥
पादशेषं च पूतं च पुनरेतद्विमिश्रयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तविडङ्गामरदारु च ॥ ५१ ॥
गुडूच्यग्निस्त्रिवृद्दन्ती चवी शूरणमानकम् ।
पारदं गन्धकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ५२ ॥
सहस्रं कानकफलं सिद्धे सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत् ।
ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ ५३ ॥

कटाहुआ और पोटलीमें बाँधकर शुद्ध किया हुआ गूगल १६ पल, सरसोंका तेल ८ पल लेवे । प्रथम त्रिफलेकी प्रत्यक ओषधि दो दो प्रस्थ लेकर डेढ द्रोण जलमें पकावे । पकते २ जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर

उस क्राथमें उक्त पदार्थोंको मिलाकर पकावे । जब पाक पककर गाढा होजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, देवदारु, गिलोय, चीता, निसोत, दन्ती, चव्य, जिमीकन्द, मानकन्द, शोधित पारा और गन्धक ये प्रत्येक दो दो तोले और शुद्ध किये हुए जमालगोटेके १००० बीजोंकी मींग इन सबको बारीक पीसकर डालदेवे और करछीसे सबको एकमएक करके शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो माशे खाकर ऊपरसे गरम जल पान करे ॥ १९०–९३ ॥

अग्निं च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ।
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ ९४ ॥
आमवातं शिरोवातं सन्धिवातं सुदारुणम् ।
जानुजंघाश्रितं वातं सकटीग्रहमेव च ॥ ९५ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च भग्नं च तिमिरोदरे ।
अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ ९६ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयं च विषमज्वरम् ।
प्लीहानं श्लीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ९७ ॥
शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत् ।
मेदःकफमसंघातं व्याधिवारणदर्पहा ॥
सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ९८ ॥

यह रस वडवानलकी समान अग्निको दीपन करता है एवं धातु, आयु और बलकी अत्यन्त वृद्धि करता है तथा आमवात, शिरोवात, सन्धिगतवात, जानु और जंघागतवात, कमरकी पीडा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, गुदाके रोग, पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, क्षय, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, सूजन, अन्त्रवृद्धि, शूल और बवासीर इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है । एवं मेद, कफ, आम इन रोगोंको और व्याधिरूपी गजेन्द्रके मदको दूर करता है । यह बृहत् सिंहनादनामक गूगल अमृतके समान गुणकारी है ॥ १९४–९८ ॥

शुण्ठीघृत ।

नागरक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेनोदकेन वा ॥ ९९ ॥

वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् ।
नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामशूलनाशनम् ॥ १६० ॥

सोंठके क्वाथ और कल्कके द्वारा १ प्रस्थ घृतको पकावे अथवा किसी किसीके मतसे सोंठके क्वाथके बदले केवल घृतसे चौगुने जलके साथ घृतको पकावे। इस घृतको यथाविधि पान करनेसे वात-कफजन्य रोग, कमरकी पीडा, आमवात और शूलरोग नष्ट होते हैं। यह जठराग्निको अत्यन्त दीपन करता है। इसको शुण्ठी-घृत कहते हैं ॥ ५९ ॥ १६० ॥

शृङ्गवेराद्यघृत ।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः ।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिरारनालं चतुर्गुणम् ॥ ६१ ॥
शूलंविबन्धमानाहमामवातं कटीग्रहम् ।
नाशयेद्ग्रहणीदोषमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ६२ ॥

सोंठ, जवाखार, पीपलामूल, और पीपल इन ओषधियोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर इनके कल्क और घृतसे चौगुनी काँजीके साथ एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह घृत शूल, विबन्ध, आनाह, आमवात, कटीग्रह और संग्रहणी इन सबको नाश करताहै और अग्निको अत्यन्त दीपन करताहै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

प्रसारणीतैल ।

प्रसारण्या रसैः सिद्धं तैलमेरण्डजं पिबेत् ।
सर्वदोषहरं चैव आमवातहरं परम् ॥ ६३ ॥

प्रसारणीके क्वाथके साथ अण्डाक तेलको यथाविधि पकाकर पान और मर्दन करनेसे सम्पूर्ण दोष और आमवातरोग नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥

सैन्धवाद्यतैल ।

सैन्धवं देवकाष्ठं च वचा शुण्ठी च कट्फलम् ।
शताह्वा मुस्तकं चव्यं मेदे मलहरं त्रिवृत ॥ ६४ ॥
हिज्जलस्य त्वचं बार्ह्नं चित्रकं ब्रह्मयष्टिका ।
शठी विडङ्गं मधुकं रेणुकाऽतिविषा रुबु ॥ ६५ ॥
अम्बष्ठी नीलिनी दन्तीमूलं मरिचमेव च ।
अजमोदा पिप्पली च कुष्ठं रास्ना च ग्रन्थिकम् ॥६६॥

एषां कर्षमितैः कल्कैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
प्रस्थं च कटुतैलस्य मूर्च्छितस्य यथाविधि ॥ ६७ ॥

सैंधानमक, देवदारु, वच, सोंठ, कायफल, सोया, नागरमोथा, चव्य, मेदा, महामेदा, जमालगोटेकी छाल, निसोत, हिज्जल (जलबेंत) वृक्षकी छाल, दारचीनी, सुगन्धवाला, चीतेकी जड, भारङ्गी, कचूर, वायविडंग, मुलहठी, रेणुका, अतीस, अण्डकी जड, पाढ, नीलके वृक्षकी जड, दन्तीकी जड, मिरच, अजमोद, पीपल, कूठ, रायसन और पीपलामूल इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले कल्क और अठगुने जलके साथ एक प्रस्थ सरसोंके तैलको विधिपूर्वक शनैः शनैः मन्दमन्द अग्नि के द्वारा पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध हो जाय तब उतारकर छान लेवे ॥ ६४–६७ ॥

एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गात्सर्ववातनुत् ।
विशेषेणामवातेषु कटिजानूरुसन्धिषु ॥ ६८ ॥
हृत्पार्श्वसर्वगात्रेषु शूलं चैव विनाशयेत् ।
वातश्लेष्मणि बाह्यामावन्त्रवृद्धौ भगन्दरे ॥ ६९ ॥
शस्तं नाडीव्रणान्सर्वान्नाशयत्यथ देहिनाम् ।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
सैन्धवाद्यमिदं तैलं सर्वामयनिषूदनम् ॥ १७० ॥

यह सब तैलोंमें उत्तम तेल है । इसकी मालिश करनेसे समस्त वातविकार नष्ट होते हैं । इसको विशेषकर आमवात, कटिग्रह, जानु जंघा और संधिस्थानोंमें स्थित वात, हृदय, पार्श्व और सर्वशरीरगत, वात एवं वातकफजन्य विकार, बाह्य, आम, अन्त्रवृद्धि और भगन्दर इन रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह सैन्धवाद्य तैल सर्व प्रकारके नाडीव्रण, शूल, समस्तदोषजन्य रोग और अन्यान्य नानाप्रकारकी व्याधियोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे वज्रपात वृक्षको नाश करदेता है ॥ ६८–१७० ॥

बृहत्सैन्धवाद्यतैल ।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यमानिका ।
सर्ज्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ ७१ ॥
वचाऽजमोदा मधुकं जीरकं पौष्करं कणा ।
एतान्यर्धपलांशानि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् ॥ ७२ ॥

प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थाम्बु शतपुष्पजम् ।
काञ्जिकं द्विगुणं दत्त्वा तथा मस्तु शनैः पचेत् ॥ ७३ ॥

सैंधानमक, गजपीपल, रायसन, सोया, अजवायन, सज्जी, कालीमिरच, कूठ, सोंठ, कालानमक, विडनमक, वच, अजमोद, मुलहठी, जीरा, पोहकरमूल और पीपल इन प्रत्येक ओषधिको दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर यह चूर्ण, अण्डीका तेल १ प्रस्थ, सोयेका क्वाथ १ प्रस्थ, काँजी दो प्रस्थ और दहीका तोड दो प्रस्थ लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः तैलको पकावे ॥ ७१-७३ ॥

सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ।
पानाभ्यञ्जनवस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ॥ ७४ ॥
वातार्त्ते वंक्षणे शस्तं कटिजानूरुसन्धिजे ।
शूले हृत्पार्श्वपृष्ठेषु कृच्छ्रेऽश्मरिनिपीडिते ॥ ७५ ॥
बाह्यायामार्दितानाहे अन्त्रवृद्धिनिपीडिते ।
अन्यांश्चानिलजान् रोगान् नाशयत्याशु देहिनाम् ॥७६॥

जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब इसको पान, मर्दन और वस्तिक्रियाद्वारा प्रयोग करे । यह बृहत्सैन्धवाद्यतैल आमवातको नष्ट करनेके लिये परम श्रेष्ठ औषध है और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है । इसको वातपीडा, वंक्षणसन्धिगत वात एवं कमर जानु, जंघा और सन्धिगतवात, हृदय पार्श्व और पृष्ठदेशस्थित शूलरोगमें तथा मूत्रकृच्छ्र, पथरी, बाह्यायाम, अर्दित, आनाह और अन्त्रवृद्धिकी पीडा इन रोगोंमें प्रयोग करे । यह तैल मनुष्योंकी अन्य सब प्रकारकी वातव्याधियोंको तत्काल नाश करता है ॥ ७४-७६ ॥

विजयभैरवतैल ।

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात्समांशकम् ।
चूर्णयित्वा ततः सूक्ष्ममारनालेन पेषयेत् ॥ ७७ ॥
तैलकल्केन संलिप्य सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम् ।
तैलाक्तां कारयेद्वर्त्तिमूर्द्ध्वभागे च दीपयेत ॥ ७८ ॥
वर्त्त्यधः स्थापिते भाण्डे तैलं पतति शोभनम् ।
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षणाय च दापयेत् ॥ ७९ ॥
नाशयेत्सूततैलं तद्वातरोगानशेषतः ।

बाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं ततः परम्।
एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति लेपान्न संशयः॥ १८०॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मैनशिल और हरताल इन सबको समान भाग (अर्थात् एक एक तोला) लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करके काँजीके साथ खरल करे फिर उसका बारीक (मलमलआदि) कपडेके टुकडेपर लेप करके उसको सुखाकर बत्ती बनालेवे। पश्चात् उस बत्तीको तिलके तेल अथवा अण्डीके तेलमें भिगोकर दीपककी लोयपर जलावे और उसके निचे एक बर्त्तन रखदेवे। बत्तीके जलनेपर जो एकएक बूंद तैल उस बर्त्तनमें टपकेगा उसको लेकर शीशीमें भरकर रखलेवे। इस तैलको शरीरपर उत्तम प्रकारसे मर्दन (मालिश) करानेसे और पान करानेसे यह विजय-भैरवतैल सम्पूर्ण वातरोगोंको नष्ट करता है। इसका प्रलेप करनेसे बाहुकम्प, शिरःकम्प, जंघाकम्प और एकांगगतवातकी पीडा ये सब रोग निश्चय दूर होते हैं॥ ७७-१८०॥

महाविजय-भैरवतैल।

फणिफेनयुतं चैतन्महद्विजयभैरवम्॥ ८१॥

इस उपर्युक्त तैलके साथ अफीम मिलादेनेसे यहही "महाविजय-भैरव तैल" कहाजाता है। आमवातरोगकी अत्युत्कृष्ट औषध है॥ ८१॥

आमवातमें पथ्य।

रूक्षः स्वेदो लंघनं स्नेहपानं वस्तिर्लेपो रेचनं पायुवर्त्तिः।
अब्दोत्पन्नाः शालयो ये कुलत्था जीर्णं मद्यं जाङ्गलानां रसाश्च
वातश्लेष्मोत्पादि सर्वं च तक्रं वर्षाभूश्चैरण्डतैलं रसोनम्॥८२॥
पटोलपत्तूरककारवेल्लं वार्त्ताकुशिग्रूणि च तप्तनीरम्।
मन्दारगोकण्टकवृद्धदारं भल्लातकं गोजलमार्द्रकं च॥ ८३॥
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि स्युरामवातामयिने हितानि ८४

रूक्ष स्वेद देना, लंघन कराना, स्नेहद्रव्योंका पान, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना), लेप करना, दस्त कराना, गुदामें वस्ति लगाना, एक वर्षके पुराने शालिधानोंके चावल और कुलथीका भोजन, पुरानी मद्य, जङ्गली पशु-पक्षियोंका मांसरस, वायु और कफनाशक समस्त द्रव्योंका सेवन, मठा, श्वेत पुनर्नवा, अण्डीका तेल, लहसन, परवल, शालिञ्चशाक, करेला, बैंगन, सहिंजनेकी फली, गरम जल, फरहद, गोखुरू, विधारा, भिलावा, गोमूत्र, अदरख एवं चरपरे कडवे और अग्निवर्द्धक पदार्थ आम-वातरोगीके लिये हितकारी हैं॥ ८२-८४॥

आमवातमें अपथ्य।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकान्।
वर्जयेदामवातार्त्तो मांसं चानूपसम्भवम् ॥ ८५ ॥
अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः।
वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ १८६ ॥

दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडद, पिट्ठीके बने पदार्थ, अनूपदेशजन्य जीवोंका मांस एवं जो कफकारक, भारी और पिच्छिल (मलाईकी समान गिलगिला और चिकना) हों ये सब पदार्थ आमवात रोगियोंको यत्नपूर्वक त्यागदेने चाहिये ॥ ८५ ॥ १८६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् आमवातचिकित्सा।

शूलरोगकी चिकित्सा।

वमनं लंघनं स्वेद पाचनं फलवर्त्तयः।
क्षारचूर्णानि गुडिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥

शूलरोगमें कफकी प्रधानता होनेपर वमन, आमको पचानेके लिये लंघन, पित्तको छोडकर वात और कफके शूलमें स्वेदक्रिया, पाचनक्रिया, फलवर्त्ति, क्षारवर्त्ति वा क्षारप्रयोग एवं चूर्ण और गोलियाँ (जिनको आगे कहेंगे) ये सब शूलरोगको शान्त करनेके लिये उपयोगी कहे गये हैं ॥ १ ॥

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः।
पायसैः कृशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ २ ॥

शूलरोगयुक्त रोगीको खीर, खिचडी, पिट्ठी, स्निग्ध पदार्थ अथवा मेंढक आदिके मांसद्वारा स्वेद देनाही हितकारी है ॥ २ ॥

वातिक-शूलचिकित्सा।

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः।
ससैन्धवो व्योषयुतःसलावःसहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥३॥

कुलथी और लवेके मांसका समान भाग लेकर दोनोंका एकत्र क्काथ करके यूष सिद्ध करलेवे। फिर उसको हींग और घृतके साथ तलकर उसमें सैंधानमक, त्रिकुटा,

कालानमक इनका चूर्ण और अनारका रस यथोचित मात्रामें मिलाकर सेवन करनेसे वातज शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सहिङ्गु लवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४ ॥

खिरैंटी, पुनर्नवा, अण्डकी जड, बडीकटेरी, कटेरी और गोखुरू इनके क्वाथमें हींग और सेंधानमक मिलाकर सेवन करनेसे वातज शूल दूर होता है ॥ ४ ॥

शूली निरन्नकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत् ।
हिङ्गुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ ५ ॥

हींग, अतीस, त्रिकुटा, वच, कालानमक और हरड इनका चूर्ण बनाकर विना भोजन किये शूलरोगी प्रातःकालके समय उष्ण जलके साथ पान करे ॥ ५ ॥

तुम्बुरूण्यभया हिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम् ।
पिबेद्यवाम्बुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ ६ ॥

तुम्बुरु, हरड, हींग, पोहकरमूल, सैंधानमक, कालानमक और बिडनमक इनको एकत्र पीसकर जौके क्वाथके साथ पान करनेसे वातशूल, गुल्म और अपतन्त्ररोग दूर होते हैं ॥ ६ ॥

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ७ ॥

अजवायन, हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक और हरड इनके समान भाग चूर्णको एकत्र मिश्रित करके सुराके मण्डके साथ पान करानेसे वातजन्य शूल दूर होता है ॥ ७ ॥

विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ८ ॥

सोंठ १ भाग और अण्डकी जड २ भाग इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर उसमें हींग और कालानमक मिलाकर पीनेसे शूलरोग तत्काल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

हिंगुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्वाथः सद्यः शूलनिवारणः ॥ ९ ॥

सोंठ, अण्डकी जड और जौ इनके क्वाथमें हींग, पोहकरमूलका चूर्ण या हींग और कालानमक मिलाकर पान करनेसे शूलरोग शीघ्र शमन होता है ॥ ९ ॥

रुद्रबुयवक्काथो हिङ्गुसौवर्चलान्वितः ॥ १० ॥

एवं अण्डकी जड और जौके क्वाथमें हींग और कालानमक डालकर पान करने से शूलरोग दूर होता है ॥ १० ॥

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुडिका वातशूलनुत् ॥ ११ ॥

कालानमक १ तोला, इमली २ तोले, कालाजीरा ४ तोले और कालीमिरच ८ तोले इनके चूर्णको एकत्र बिजौरेनींबूके रसमें खरल करके ३-३ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ प्रतिदिन प्रातःकाल उष्ण जलके साथ खानेसे वातशूलको नष्ट करती हैं ॥ ११ ॥

बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् ।
जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकप्रमाणतः ॥ १२ ॥

बिजौरेनीम्बूकी जडको पीसकर दो तोले परिमाण लेकर घृतके साथ पान कराने से वातजन्य शूल दूर होता है ॥ १२ ॥

हिंग्वम्लवेतसव्योषयमानीलवणत्रिकैः ।
बीजपूररसोपेतैर्गुटिका वातशूलनुत् ॥ १३ ॥

हींग, अमलबेंत, सोंठ, पीपल, मिरच, अजवायन, सेंधानमक, कालानमक और विडनमक इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे । फिर सबको एकत्र करके बिजौरेनिम्बूके रसमें खरल करके तीन तीन मासेकी गोलियाँ उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे वातज शूलको नष्ट करती हैं ॥ १३ ॥

बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा ।
गुडिकां भ्रामयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥ १४ ॥

बेलकी जड, तिल और अण्डकी जड इनको एकत्र काँजीके साथ खरल करके गोली बनालेवे । इस गोलीको गरम करके पीडास्थानपर लेप (भ्रमण) करनेसे वातज शूल नष्ट होता है ॥ १४ ॥

तिलैश्च गुडिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।
गुडिका शमयत्येषा शूलं चैवातिदुस्तरम् ॥ १५ ॥

तिलोंको खट्टी काँजीमें पीसकर गोली बनावे । फिर उसको गरम करके पेटके ऊपर लेप करे । यह गोली दारुण वातशूलको भी दूर करदेती है ॥ १५ ॥

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः ।
जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलनुत् ॥ १६ ॥

मैनफलको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे वातशूल दूर होता है और जीवन्तीकी जडको पीसकर तिलके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे पार्श्वशूल नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पैत्तिक-शूलचिकित्सा ।

गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिष्पानं विरेचनम् ।
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ १७ ॥

गुड, शालिधानोंके चावल, जौ, दूध, घृतपान, विरेचन और जङ्गली जीवोंका मांस ये सब ओषधियाँ पित्तके शूलवाले रोगियोंको हितकर हैं ॥ १७ ॥

पैत्ते तु शूले वमनं पयोऽम्बुरसैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः ।
शीतावगाहाः सरितां च वाताः कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥ १८ ॥

पित्तजशूलमें गरम जल, दुग्ध वा ईखके रसके साथ परवल और नीमकी छाल का रस रोगीको पान कराकर वमन करावे एवं शीतल जलमें गोता लगाकर स्नान करना, नदीके किनारेकी शीतल वायुका सेवन करना, शीतल जलसे भरेहुए काँसीके पात्रको पेटपर रखना ये सब उपचार पित्तज शूलवाले रोगियोंको हितकारी हैं ॥ १८ ॥

विरेचनं पित्तहरं च शस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ।
संतर्पणं लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः ॥ १९ ॥

पित्तशूलमें पित्तनाशक द्रव्योंके द्वारा विरेचन, खरगोश और लवा आदिके मांस का यूष, सन्तर्पण (खीलोंको जलमें भिजोकर उसमें शहद मिलाकर तृप्तिके लिये पान करना) और अन्यान्य शीतल ओषधियोंमें शहद मिलाकर सेवन करना ये सब प्रयोग उपयोगी कहेगये हैं ॥ १९ ॥

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽथ शूले घोरे विदाहे त्वतिकार्शिते च ।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां पिबेत्सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥

सुखकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वमन, ज्वर, पित्तशूल, घोर दाह और अत्यन्त कृशताके होनेपर जौकी पेया बनाकर उसको शहद मिलाकर शीतल करके पान करे ॥ २० ॥

धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बु वा ।
पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥ २१ ॥

आमलोंका रस वा बिदारीकन्दका रस अथवा त्रायमाणका रस या दाखोंका क्वाथ मिश्री मिलाकर पान करनेसे पित्तशूल तत्काल नष्ट होता है ॥ २१ ॥

शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ २२ ॥

शतावरके रसको शहद मिलाकर प्रातः समय सेवन करनेसे दाह, शूल एवं सर्व प्रकारके पित्तजरोग दूर होते हैं ॥ २२ ॥

शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः ।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ॥ २३ ॥

शतावर, मुलहठी, खिरैंटी, कुशा और गोखुरू इनका क्वाथ बनाकर उसको शीतल करके गुड, शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे पित्तशूल, रक्तपित्त, दाह, शूल और दाहयुक्त ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

तैलमेरण्डजं वापि मधुकक्वाथसंयुतम् ।
शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मं पैत्तिकमेव च ॥ २४ ॥

मुलहठीके क्वाथमें अण्डीका तेल मिलाकर पान करनेसे पित्तजन्य शूल और पित्तज गुल्म दूर होते हैं ॥ २४ ॥

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ २५ ॥

आमलोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे पित्तजशूल नष्ट होता है ॥२५॥

श्लैष्मिक—शूलचिकित्सा ।

श्लेष्मात्मके छर्दनलङ्घनानि शिरोविरेकं मधुसीधुपानम् ।
मधूनि गोधूमयवानरिष्टान् सेवेन रूक्षान्कटुकांश्च सर्वान् ॥ २६ ॥

कफजन्य शूलमें वमन, लङ्घन और नस्य देना, मधुके द्वारा बनाई हुई सीधु (मद्यविशेष), शहद, गेहूँ, जौ, अरिष्ट, रूखे और कटुरसवाले पदार्थोंको सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् ।
सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम् ॥ २७ ॥

सैंधानमक, विडनमक, कालानमक, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और हींग इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको सुखोष्ण जलके साथ पान करनेसे कफजन्य शूल दूर होता है ॥ २७ ॥

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ २८ ॥

बेलकी जड, अण्डकी जड, चीतेकी जड और सोंठ इनके क्वाथमें हींग और सेंधानमक डालकर पीनेसे कफशूल शीघ्र निवृत्त होता है ॥ २८ ॥

आम-शूलचिकित्सा ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम् ॥ २९ ॥

आमके शूलमें कफशूलनाशक समस्त क्रिया करनी एवं जो ओषधियाँ अग्निबलको बढानेवाली हों व आमनाशक हों वे सब सेवन करनी चाहिये ॥ २९ ॥

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरं च चतुःसमम् ।
चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ३० ॥

अजवायन, सेंधानमक, हरड और सोंठ इनके समान भाग चूर्णको उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे आमशूल शीघ्र दूर होता है और जठराग्नि दीपन होती है ॥३०॥

वातपैत्तिक-शूलचिकित्सा ।

समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत्पित्तानिलात्मके ।
व्यामिश्रं वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके ॥ ३१॥

वातपित्तजन्य शूलमें बडी कटेरी, गोखुरू, कटेरी, अण्डकी जड, कुशा, कॉंस इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करे वा मिश्रित क्रिया करे ॥ ३१ ॥

पित्तश्लैष्मिक-शूलचिकित्सा ।

पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता पृथक् ।
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ३२ ॥

पित्तके शूल और कफके शूलमें जो पृथक् पृथक् चिकित्सा कही गई है उन दोनोंको एकत्र मिश्रित करके पित्त-कफजन्य शूलमें प्रयोग करे ॥ ३२ ॥

वातश्लैष्मिक-शूलचिकित्सा ।

रसोनं मधुसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः ।
वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्त्यग्निप्रदीपनम् ॥ ३३ ॥

प्रातःकालमें लहसनको शहदमें मिलाकर यथेच्छरूपसे सेवन करनेसे वातकफजन्य शूल दूर होता है और अग्नि दीप्त होती है ॥ ३३ ॥

त्रिदोषज-शूलचिकित्सा ।

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गु व्योषसंयुतम् ।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ३४ ॥

शंखका चूर्ण, सैंधानमक, हींग और त्रिकुटा इनका एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पान करनेसे त्रिदोषजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरम् ।
एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्श्वहृद्वस्तिशूलनुत् ॥ ३५ ॥

हींग १ तोला, कालानमक २ तोले, सोंठ ४ तोले और हरड ८ तोले इनके चूर्णको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे कमर, कुक्षि, पसली, हृदय और वास्तिगत शूल नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

गोमूत्रशुद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ३६ ॥

गोमूत्रद्वारा शुद्ध कीहुई मण्डूरभस्म १ तोला और त्रिफलेका चूर्ण समान भाग मिश्रित १ तोला सबको घृत और मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषजन्य शूल दूर होता है ॥ ३६ ॥

दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह पीतम् ।
हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥३७॥

अनिर्गतधूम (जिसका धुआँ बाहर न निकल सके ऐसी) अग्निके द्वारा हिरनके सींगको भस्म करके गोघृतके साथ पान करनेसे हृदय और नितम्बगत शूलरोग नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

परिणाम-शूलचिकित्सा ।

वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
वस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥ ३८ ॥

परिणामशूलरोगमें कडवी और मधुर ओषधियोंके द्वारा वमन, विरेचन और बस्तिक्रिया प्रयोग करना हितकारी है ॥ ३८ ॥

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य कः पुमानद्यात् ।
नश्यति परिणतिशूलं तस्योग्रं सप्तरात्रेण ॥ ३९ ॥

सोंठ २ तोले, गुड २ तोले और तिलोंका कल्क ८ तोले सबको दूधमें पकाकर सेवन करनेसे सात दिनमेंही अत्युत्कट परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ३९ ॥

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात्।
पंक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान्॥ ४०॥

घोंघेकी भस्मको उष्ण जलके साथ पान करनेसे परिणामशूल इस प्रकार तत्काल नष्ट होजाता, है, जैसे विष्णुभगवान् सुदर्शन चक्रके द्वारा असुरोंको शीघ्र नष्ट करदेते हैं। इस ओषधिको सेवन करनेसे पहले मुखमें घृत लगालेवे, ऐसा न करनेसे मुख और जिह्वामें छाले पडजाते हैं॥ ४०॥

दध्नाऽलूनसरेणाद्यात् सतीनयवसक्तुकान्।
अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात्॥ ४१॥

अन्नको परित्याग करके शूलरोगी मलाईसहित दहीके साथ मटर और जौके सत्तुओंको सेवन करनेसे शूलरोगसे बहुत शीघ्र मुक्त होजाता है॥ ४१॥

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकभस्मनाम्॥ ४२॥
द्विभागगुडसंयुक्तां गुटीं कृत्वाऽक्षभागिकाम्।
शीताम्बुपानात्पूर्वाह्णे भक्षयेत्क्षीरभोजनः॥ ४३॥
सायाह्ने रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात्।
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि॥ ४४॥

तिल, सोंठ, हरड और शम्बूकभस्म ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला आर गुड ८ तोले इन सबको एकत्र कूट पीसकर दो दो तोलेकी गोलियाँ बनाकर इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली शीतल जलके साथ सेवन करे। इस ओषधिको सेवन करनेपर प्रातःसमय दुग्धपान करने और सांयकालमें मांसका यूष सेवन करनेसे शूलरोगी अतिदुस्तर और चिरकालीन परिणामशूलसे भी मुक्त होजाता है॥४२-४४॥

यः पिबति सप्तरात्रं सक्तूनेकान्कलाययूषेण।
स जयति परिणतिशूलं चिरजं किमुत नूतनजम्।

जो रोगी केवल जौके सत्तुओंको मटरके यूषके साथ ७ दिनतक पान करे तो उसका बहुत पुराना परिणामशूलभी नष्ट होजाता है। नयेका तो कहनाही क्या है! ४५

लोहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा।
हन्यात्परीणामशूलं तन्मलं वा प्रयोजितम्॥ ४६॥

लोहभस्म अथवा मण्डूरभस्म ३ तोले और हरड, बहेडा, आमला इनका चूर्ण एक एक तोला लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके घृत और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल नाश होता है॥ ४६॥

नारिकेलक्षार।

नारिकेलं सतोरं च लवणेन प्रपूरितम्।
मृदाऽऽवेष्टितं शुष्कं पक्कं गोमयवह्निना ॥ ४७ ॥
पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं च परिणामजम्।
वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ४८ ॥

जलयुक्त और उत्तम प्रकारसे पकेहुए नारियलमें सैंधेनमकका चूर्ण भरकर उसके ऊपर मिट्टीका लेप करके सुखालेवे। फिर उसकी पुटपाक विधिके अनुसार आरने उपलोंकी अग्निमें भस्म करके उसके भीतरके द्रव्यको निकाल लेवे। पश्चात् उसको पीपलके चूर्णके साथ प्रतिदिन सेवन करनेसे वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज परिणामशूल दूर होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

शंखादिचूर्ण।

शङ्खचूर्णस्य च पलं पञ्चैव लवणानि च।
क्षारं टङ्कणकं जाती शतपुष्पा यमानिका ॥ ४९ ॥
हिङ्गु त्रिकटुकं चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत्।
आमवातं यकृच्छूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ५० ॥
अन्नद्रवकृतं शूलं शूलं चैव त्रिदोषजम् ॥ ५१ ॥

शंखकी भस्म एवं पाँचों नमक, जवाखार, सुहागा, जायफल, सोया, अजवायन, हींग और त्रिकुटा प्रत्येकको चार चार तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन तीन तीन माशेकी मात्रासे उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे आमवात, यकृच्छूल, परिणामशूल, अन्नद्रवनामकशूल और त्रिदोषजन्य शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४९-५१ ॥

सामुद्राद्यचूर्ण।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रोमकं विडम्।
दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ ५२ ॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम्।
तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥
जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत मांसादि घृतसाधितम् ॥ ५३ ॥

सामुद्रनमक, सैंधानमक, जवाखार, सज्जी, कालानमक, सांभरनमक, विरियासञ्चर नमक, दन्ती, लोहेकी भस्म, मण्डूरभस्म, निसोत और जिमीकन्द इन सबको समान

भाग लेकर चूर्ण करके चूर्णसे चौगुने दही, गोमूत्र और दूधके साथ मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उस चूर्णको अग्निके बलाबलके अनुसार यथोचित मात्रासे गरम जलके साथ सेवन करे। इस चूर्णके जीर्ण होनेपर अथवा न होनेपर घृतके द्वारा सिद्ध किये हुए मांसके यूषको भोजन करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

नाभिशूलं प्लीहशूलं यकृद्गुल्मकृतं च यत् ।
विद्रध्यष्ठीलिकां हन्ति कफवातोद्भवं तथा ॥ ५४ ॥
शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्त्यतः परम् ।
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ॥ ५५ ॥

यह चूर्ण नाभिशूल, प्लीहाशूल, यकृत्शूल, गुल्मशूल, विद्रधि, अष्ठीला, कफ-वातजन्य शूल, विशेषकर परिणामशूल और अन्य सर्वप्रकारके शूलरोगोंको दूर करता है। सर्वप्रकारके शूलरोगोंकी इससे बढकर अन्य औषध नहीं है ॥

शम्बूकादिगुडिका ।

शम्बूकं त्र्यूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च ।
समांशा गुडिकाः कार्याः कलम्बकरसेन च ॥ ५६ ॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तद्यथाबलम् ।
शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ ५७ ॥

घोंघेकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, और पाचों नमक प्रत्येकको एकएक तोला लेकर एकत्र चूर्ण करके नाडीके शाकके रसमें खरल कर गोलियाँ बनालेवे। इसको प्रातःकाल अथवा भोजनसे पहले अग्निके बलाबलके अनुसार लेकर मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करे। इसके सेवनसे परिणामशूल तत्काल शमन होता है ॥ ५६ ॥ ५७॥

शङ्खरसगुडिका ।

पलानि चिञ्चाक्षारस्य पञ्च पञ्च पलानि च ।
लवणानां क्षिपेत्प्रस्थद्वयं जम्बीरवारिणः ॥ ५८ ॥
शङ्खस्य द्वादशपलं भस्मीभूतं क्षिपेत्पुनः ।
पूर्वत्रयेण सम्मर्द्य हिङ्गुव्योषचतुःपलम् ॥ ५९ ॥
रसामृतसुगन्धानां पलार्द्धं च पृथक् पृथक् ।
दद्यात्समस्तं सम्मर्द्य जम्बीराम्ले दिनत्रयम् ॥ ६० ॥

बदरास्थिप्रमाणेन गुटिकां कारयेद्भिषक् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय तोयमुष्णं पिबेदनु ॥ ६१ ॥
शूलं च सर्वगुल्मं च अजीर्णं परिणामजम् ।
अन्त्रशूलं पङ्क्तिशूलं हृच्छूलं च विशेषतः ॥ ६२ ॥
कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं पृथग्वातादिसम्भवम् ।
आमशूलमुदावर्त्तं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ६३ ॥

इमलीका क्षार ९ पल, पाँचों नमक प्रत्येक पांच पांच पल, जम्बीरी नींबूका रस दो प्रस्थ सबको एकत्र मर्दन करके, मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे । फिर शंखकी भस्म १२ पल एवं हींग, सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक चार चार तोले, शुद्ध पारा शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्ध गन्धक ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके जम्बीरीनींबूके रसमें तीन दिनतक खरल करके बेरका गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस औषधको प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करके ऊपरसे गरम जल पान करनेसे सर्व प्रकारके शूल, गुल्म, अजीर्णशूल, परिणामशूल, अन्त्र-शूल, पंक्तिशूल, हृदयशूल, विशेषकर कुक्षिशूल, पार्श्वशूल एवं वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंसे पृथक् पृथक् उत्पन्नहुए शूल, आमशूल और उदावर्त्त ये सब रोग निस्सन्देह नाश होते हैं ॥ ५८-६३ ॥

शूलहरणयोग ।

हरीतकी त्रिकटुकं कुचिला हिङ्गु सैन्धवम् ।
गन्धकं च समं सर्वं वटीं कुर्यात्सुखावहाम् ॥ ६४ ॥
लघुकोलप्रमाणां तु शस्यते प्रातरेव हि ।
एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी ॥ ६५ ॥
ग्रहण्यामतिसारे च साजीर्णे मन्दपावके ।
योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निश्चितम् ॥
सुवर्णं च भवेद्देहं सदोत्साहयुतं नृणाम् ॥ ६६ ॥

हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, कुचला, हींग, सेंधानमक, और शुद्ध गन्धक सबको समान भाग लेकर एकत्र उत्तम प्रकारसे खरल करके छोटे बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली उष्ण जलके साथ सेवन करे। यह औषध गुल्म और शूलरोगनाशक है। इसको संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि रोगोंमें प्रयोग करनेसे अवश्य आरोग्य लाभ होता है। इसके सेवन करनेसे

मनुष्योंका शरीर उत्साही और सुवर्णकी समान कान्तिमान् होता है ॥६४-६६॥

शूलगजकेसरी।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं याममेकं मर्दयेद्दृढं।
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं सम्पुटं त निरोधयेत् ॥
ऊर्द्धाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद् बुधः ॥६७॥
रुद्ध्वा गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
सम्पुटं चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ॥
भक्षमेत्सर्वशूलार्त्तो हिङ्गुशुण्ठीसजीरकम् ॥ ६८ ॥
वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत्।
असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेसरी ॥ ६९ ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग इन दोनोंको एकत्रकर उत्तम प्रकारसे एक प्रहरतक खरल करे। फिर उसमें शुद्ध ताम्रभस्म ३ भाग मिलाकर ताँबेके एक मूषायन्त्रमें उसको भरदेवे। (मूषापर लेप करनेकी आवश्कता नहीं है।) फिर एक मिट्टीकी हाँडीमें ८ तोले नमक डालकर उस हाँडीका मुख बन्द करके गजपुटमें पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर स्वांगशीतल होजाय तब औषधि निकालकर उसका बारीक चूर्ण करलेवे। इस औषधको २ रत्ती प्रमाण लेकर पानमें रखकर सेवन करे। ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, वच और कालीमिरच इन प्रत्येकके १ कर्ष चूर्णको उष्ण जलके साथ पान करे। यह श्रीशूलगजकेसरीरस सर्व प्रकार के शूलरोग एवं असाध्य शूलको नष्ट करता है ॥॥

शूलवज्रिणीवटी।

रसगन्धकलौहानां पलार्द्धेन समन्वितम्।
टङ्कणं रामठं शुण्ठी त्रिकटु त्रिफला शठी ॥ ७० ॥
त्वगेला पत्रतालीशंजातीफलल वङ्गकम्।
यमानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥
माषैका वटिका कार्या छागीदुग्धेन पेषिता ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म ये प्रत्येक दो दो तोले एवं सुहागा, हींग, सोंठ, त्रिकुटा, त्रिफला, कचूर, दारचीनी, इलायची, पत्रज, तालीसपत्र,

जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनियाँ इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर चूर्ण करलेवे । फिर सबको एकत्र बकरीके दूधमें अच्छे प्रकारसे खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

गणेशं योगिनीं शम्भुं हरिं सूर्यं प्रपूज्य च ।
शीततोयानुपानेन च्छागीदुग्धेन वा पुनः ॥ ७२ ॥
एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूलवज्रिणी ।
शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरज्वरम् ॥ ७३ ॥
अष्ठीलानाहमेहांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
अम्लपित्तामवातांश्च कामलां पाण्डुरोगकम् ॥ ७४ ॥
गुरुणा चन्द्रनाथेन वटिकैषा प्रकीर्तिता ।
संसारलोकरक्षार्थं विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥ ७५ ॥

फिर प्रतिदिन प्रातःकाल गणेश, योगिनी, शिवजी, विष्णु और सूर्य इन देवताओंका पूजन करके इस शूलवज्रिणीवटीरसकी एक एक गोली शीतल जल या बकरीके दूधके साथ सेवन करे । यह वटी आठों प्रकारके शूल, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, ज्वर, अष्ठीलावात, अफरा, प्रमेह, मन्दाग्नि, अरुचि, अम्लपित्त, कामला, पाण्डु आदि समस्त व्याधियोंको नष्ट करती है । श्रीगुरुचन्द्रनाथजीने सांसारिक जीवोंकी रक्षाके लिये विशेषरूपसे विवेचना कर इस वटीको निर्माण किया है ॥ ७२-७५ ॥

शूलान्तकरस ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा ।
एकैकशः समो भागस्तदर्द्धं रसगन्धयोः ॥
लौहाभ्रकविडङ्गानां भागस्तद्द्विगुणो भवेत् ॥ ७६ ॥
एतत्सर्वं समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ।
त्रिफलायाः कषायेण गुडिकाः कारयेद्भिषक् ॥
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु ॥ ७७ ॥
हन्ति परिणामोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा ।
अन्नद्रवभवं शूलं सन्निपातसमुद्भवम् ॥
सर्वशूलं निहन्त्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा ॥ ७८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, निसोत और चीता ये प्रत्येक एक एक तोला, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक छःछः माशे, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वायविडङ्ग ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। इन सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके त्रिफलेके काथमें खरल कर चारचार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली सेवन करके ऊपरसे काँजी पान करे। यह शूलान्तकरस परिणामशूल, अम्लपित्त, वमन, अन्नद्रवजन्य शूल, सन्निपातजन्य शूल और अन्य सर्वप्रकारके शूलरोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूखे काष्ठको अग्नि तत्काल भस्म करदेता है ॥ ७६–७८ ॥

त्रिगुणाख्यरस।

टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं गन्धं मृतं रसम्।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ ७९ ॥
त्रिगुणाख्यो रसो ह्यस्य माषैकं मधुसर्पिषा।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥
पंक्तिशूलहरः ख्यातो याममात्रान्न संशयः ॥ ८० ॥

सुहागा, हिरनके सींगकी भस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध गन्धक और पारेकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रसमें एक दिनतक खरल करके सम्पुटमें रखकर गजपुटमें पकावे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब औषधि निकालकर चूर्ण करलेवे। इस त्रिगुणाख्यरसको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक मासेकी मात्रासे घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे सैंधानमक, जीरा, हींग इनके समान भाग चूर्णको घृत और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे। यह रस एक प्रहरमेंही परिणामशूलको निश्चय नष्ट करदेता है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

श्रीविद्याधराभ्र।

विडङ्गमुस्तत्रिफलागुडूचीदन्तीत्रिवृद्वह्निकटुत्रिकं च।
प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णं पलानि चत्वार्ययसो मलस्य ॥ ८१ ॥
गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य यद्वाऽयसो वापि शिवाटिकायाः।
कृष्णाभ्रकाच्चूर्णपलं विशुद्धं निश्चन्द्रकं श्लक्ष्णमतीव सूतात् ८२
पादोनकर्षं स्वरसेन खल्ले शिलातलेऽगस्त्यमुनेर्दलस्य।
संमर्द्य यत्नादतिशुद्धगन्धपाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन ॥ ८३ ॥
युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्त्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य पश्चात्।
संस्थापयेत्स्निग्धविशुद्धभाण्डे–

वायविडङ्ग, नागरमोथा, त्रिफला, गिलोय, दन्ती, निसोत, चीता और त्रिकुटा इन ओषधियोंका चूर्ण दो दो तोले, गोमूत्रमें भावना देकर शुद्ध कियेहुए पुराने मण्डूरकी भस्म या लोहभस्म अथवा लोहेके पत्थरकी भस्म १६ तोले, शुद्ध काली अभ्रककी भस्म ४ तोले, अगस्तियाके स्वरसके साथ पत्थरके खरलमें उत्तम प्रकारसे शुद्ध किया हुआ पारा १ तोला और शुद्ध गन्धकका चूर्ण दो तोले इन सबको लोहेके पात्रमें एकत्रित करके घृत और मधुके साथ लोहेके दण्डेके द्वारा खरल कर स्निग्ध और स्वच्छ पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ ८१०८३ ॥—

ततः प्रयोज्यौ तु रसायनस्य ॥ ८४ ॥

प्राङ्माषको द्वावथवा त्रयो वा गवां पयो वा शिशिरं जलं वा ।
पिबेदयं योगवरः प्रभूतकालप्रनष्टानलदीपकश्च ॥ ८५ ॥
रोगं निहन्यात्परिणामशूलं शूलं तथाऽन्नद्रवसंज्ञकं च ।
यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रदुष्टां जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम् ८६
न संति ते यान्न निहंति रोगान् योगोत्तमःसम्यगुपास्यमानः८७

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो मासे अथवा तीन मासे परिमाण लेकर सेवन करे और गोदुग्ध या शीतल जलका अनुपान करे। यह प्रयोग चिरकालसे मन्द हुई अग्निको अत्यन्त दीपन करता है एवं परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, दुस्तर संग्रहणी, जीर्णज्वर और अत्युग्र रक्तपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करता है। यथाविधि सेवन किया हुआ यह प्रयोग जिनको दूर न करता हो ऐसा कोई रोग नहीं है ॥ ८४–८७ ॥

बृहद्विद्याधराभ्र ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं फलत्रयकटुत्रयम् ।
विडङ्गं मुस्तकं चैव त्रिवृतादन्तिचित्रकम् ॥ ८८ ॥
आखुपर्णी ग्रन्थिकं च प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य मृतायश्च चतुर्गुणम् ॥ ८९ ॥
घृतेन मधुना पिष्ट्वा वटिकां कोलसम्मिताम् ।
एकैकां वटिकां खादेत्प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥
अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ॥ ९० ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, निसोत, दन्ती, चीता, मूसाकानी और पीपलामूल ये प्रत्येक दो दो तोले, काली अभ्रककी

भस्म ४ तोले और लोहेकी भस्म १६ तोले इन सबको एकत्र कूट पीसकर घृत और शहदके साथ खरल करके एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन कर ऊपरसे गौका दूध अथवा नारियलका जल पान करे ॥ ८८-९० ॥

सर्वशूलं निहन्त्याशु वातपित्तभवं तथा।
एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम् ॥ ९१ ॥
परिणामोद्भवं शूलमामवातोद्भवं तथा।
कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्रारुचिविनाशनम् ॥
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥९२॥

यह बृहद्विद्याधराभ्ररस सर्व प्रकारके शूल, वातपित्तजन्य शूल, एकदोषज, द्विदोषज व त्रिदोषज शूल, परिणामशूल, आमवातजात शूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि और अन्य साध्य व असाध्य सभी व्याधियोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको तत्काल नाश करदेता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

त्रिफलालौह।

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम्।
क्षीरेण पाययेद्धीमान् सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ९३ ॥

हरड, बहेडा और आमला इनका समान भाग मिश्रित बारीक पिसा हुआ चूर्ण १ भाग और लोहभस्म २ भाग लेकर एकत्र खरल करलेवें। इस चूर्णको २-२ रत्तीकी मात्रासे दुग्धके साथ सेवन करानेसे शूलरोग तत्काल शमन होय ॥

शर्करायलौह।

त्रिफलायास्तथा धात्र्याश्चूर्णं वा काललौहजम्।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलेषु योजयेत् ॥ ९४ ॥

त्रिफला और आमले इनके समान भाग मिश्रित चूर्णकी बराबर लोहभस्म और सबकी बराबर शुद्ध खाँड मिलाकर इसको सर्व प्रकारके शूलरोगोंमें प्रयोग करना उपयोगी है ॥ ९४ ॥

सप्तामृतलौह।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजःसमं लिहन्।
मधुसर्पिर्युतं सम्यगगन्धं क्षीरं पिबेदनु ॥ ९५ ॥
छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्।
आनाहं मूत्रसङ्गं च शोथं चैव निहन्ति तत् ॥ ९६ ॥

मुलहठी, हरड, बहेडा और आमला इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और लोहभस्म ४ तोले इन सबको एकत्र खरल करके तीन तीन रत्तीकी मात्रासे घृत और मधुके साथ मिलाकर सेवन करे और पीछेसे गोदुग्ध पान करे तो वमन, तिमिररोग, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, क्लम, आनाह, मूत्रकृच्छ्र और शोथ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

शूलराजलौह।

कर्षैकं कान्तलौहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा।
सितायाश्च पलं चैकं मधु सर्पिस्तथैव च ॥ ९७ ॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ ९८ ॥
प्रत्येकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत्।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शिशिराम्ब्वनुपानतः ॥ ९९ ॥

कान्तलोह २ तोले, शुद्ध अभ्रक ४ तोले, मिश्री ४ तोले, शहद ४ तोले और घृत ४ तोले इन सबको लोहेके पात्रमें एकत्रित करके लोहेकी मूसलीसे खरल करे। पश्चात् उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चव्य और चीता इन प्रत्येकके चूर्णको एक एक तोला मिलाकर उत्तम प्रकारसे खरल करे। इस औषधको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार रत्ती प्रमाण लेकर शीतल जलके अनुपानके साथ सेवन करे ॥ ९७–९९ ॥

सर्वदोषभवं शूलं कुक्षिशूलं च यद्भवेत्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च अम्लपित्तं च नाशयेत् ॥ १०० ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्रमेहांश्च विषूचिकाम्।
शूलराजमिदं लौहं हरेण परिनिर्मितम् ॥ १ ॥

यह औषध सर्व प्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुआ शूल, कुक्षिगत शूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अम्लपित्त, अर्श, संग्रहणी, प्रमेह, विषूचिका आदि रोगोंको नष्ट करती है। इस शूलराजलोहको महादेवजीने निर्माण किया है ॥ १०० ॥ १०१ ॥

वैश्वानरलौह।

द्विदलं तिन्तिडीक्षारं तथाऽपामार्गसम्भवम्।
शम्बूकभस्मसंयुक्तं लवणं च समं तथा ॥
चतुर्णां समभागाः स्युस्तुल्यं च लौहचूर्णकम् ॥ २ ॥

चूर्णं संपिष्य खल्लादौ कारयेदेकतां भिषक् ।
शूलस्यागमवेलयां खादेन्माषद्वयं नरः ॥
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ ३ ॥

इमलीका खार २ पल, चिरचिटेका खार २ पल, घोंघेकी भस्म २ पल, सैंधा नमक २ पल और लोहेकी भस्म ८ पल इन सबको खरलमें एकत्र करके उत्तम प्रकारसे मर्दन करे । फिर इस औषधको शूलकी पीडा होनेके समय दो मासे परिमाण सेवन कर ऊपरसे शीतल जल पान करे । इसके सेवनसे साध्य व असाध्य आठों प्रकारके शूलरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

चतुःसमलौह ।

अभ्रं गन्धं रसं लोहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम् ।
सर्वमेतत्समाहृत्य यत्नतः कुशलो भिषक् ॥ ४ ॥
आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके ।
पक्त्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥ ५ ॥
विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च ।
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतांस्तथा संमिश्रितान्नयेत् ॥
तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः ॥ ६ ॥

अभ्रक, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा और लोहभस्म प्रत्येकको चार चार तोले लेकर १२ पल घृत और १२ पल दूधमें उत्तम प्रकारसे पकाकर मोटे कपडेमें छान लेवे। फिर उसमें वायविडङ्ग, त्रिफला, चीता, सोंठ, मिरच और पीपल इन ओषधियोंके चार चार तोले सूक्ष्म चूर्णको वस्त्रमें छानकर मिलादेवे । फिर उसको घीके चिकने और उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ १०४–१०६ ॥

आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ।
घृतेन मधुनाऽऽमर्द्य भक्षयेन्माषकावधि ॥ ७ ॥
क्रमेण वर्द्धयेत्तच्च समाहितमनाः सदा ।
अनुपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा ॥ ८ ॥
जीर्णेऽस्मिन् हितशाल्यन्नक्षुद्रमांसरसादिभिः ।
रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत् ॥ ९ ॥

इस ओषधिको शुभ मुहूर्त्तमें अपने गुरु और सूर्यभगवान्‌का पूजन करके प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक माशा परिमाण लेकर घृत और मधुके साथ

मिश्रित करके सेवन करे। फिर क्रमसे इसकी मात्रा बढाता जाय। एवं दूध अथवा नारियलके जलका अनुपान करे। इस ओषधिके जीर्ण होजानेपर पुराने शालिधानोंके चावल, मूंग और मांसरसादि पदार्थ सेवन करने हितकारी हैं। एवं रासायनिक और अन्य सर्व प्रकारके स्वभावानुकूल पदार्थोंको सेवन करना चाहिये ॥ १०७–१०९ ॥

हृच्छूलं पार्श्वशूलं चाप्यामवातं कटिग्रहम्।
गुल्मशूलं नाभिशूलं यकृत्प्लीहानमेव च ॥ ११० ॥
अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन साधयेत् ॥ ११ ॥

इस ओषधिके सेवनसे हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटीग्रह, गुल्मशूल, नाभिशूल, यकृत्विकार, प्लीहा, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, खाँसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी, मूत्रकृच्छ्र आदि समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ११० ॥ १११ ॥

धात्रीलौह।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्खल्ले घृष्टम् ॥ १२ ॥
अमृताक्काथेनैतच्चूर्णं भाव्यं च सप्ताहम्।
चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥ १३ ॥
घृतमधुना सह युक्तं भक्तादौ मध्यतोऽन्ते च।
त्रीनपि वारान्खादेत् पथ्यं दोषानुबन्धेन ॥ १४ ॥
भक्तस्यादौ हरते रोगान् पित्तानिलोद्भूतान्।
मध्येऽन्नं विष्टभ्य जयति नृणां दह्यते नान्नम् ॥ १५ ॥
पानान्नकृतान् दोषान् भुक्तान्ते शीलितो जयति।
एवं जीर्यति चान्ने शूलं नृणां सुकष्टमपि ॥ १६ ॥
हरति सहसा प्रयुक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम्।
चक्षुष्यं पलितघ्नं कफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्रोगान् ॥ १७ ॥

आमलोंका चूर्ण ८ पल, लोहचूर्ण ४ पल और मुलहठीका चूर्ण २ पल इन सबको खरलमें एकत्र कर आमलोंके क्काथके साथ सात दिनतक ७ बार भावना

देवे । फिर प्रचण्ड धूपमें सुखाकर और बारीक चूर्ण करके इस औषधको नवीन पात्रमें भरकर रखदेवे । उसमेंसे प्रतिदिन एक एक मासे परिमाण लेकर घृत और शहदके साथ मिलाकर भोजनके पहले, मध्यमें और अन्तमें इस प्रकार तीन बार सेवन करे और यथादोषानुसार पथ्य करे । यह लोह भोजनकी आदिमें खानेसे वात-पित्त-जन्य रोगोंको, मध्यमें खानेसे अन्नविष्टम्भ (अन्नके न पचनेसे उत्पन्न हुआ अफारा) और अन्नकी दाहको एवं अन्तमें सेवन करनेसे अन्न-पानसे उत्पन्न हुए विकार और अन्नके जीर्ण होजानेपर उत्पन्न हुए प्रबल शूलको शीघ्र नष्ट करता है । युक्ति-पूर्वक सेवन करनेसे जरत्पित्तरोगको दूर करता है एवं नेत्रोंको हितकारी, पलित और कफ-पित्तजन्यरोगनाशक है ॥ १२-१७ ॥

बृहद्धात्रीलौह ।

षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा ।
पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं दद्यात्पादावशेषितम् ॥ १८ ॥
शतमूलीरसस्याष्टावामलक्या रसस्तथा ।
तथा दधिपयोभूमिकूष्माण्डस्य चतुःपलम् ॥ १९ ॥
चतुःपलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः ।
प्रक्षिपेज्जीरधान्याकं त्रिजातं करिपिप्पली ॥ १२० ॥
मुस्तं हरीतकी चैव लौहमभ्रं कटुत्रिकम् ।
रेणुकं त्रिफला चैव तालीशं नागकेशरम् ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैश्चूर्णयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ २१ ॥

कुटे हुए जौको १६ तोले लेकर ३२ तोले जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शतावरका रस, आमलोंका रस, दही, दूध ये प्रत्येक आठ आठ पल एवं विदारीकन्दका रस, घृत और ईखका रस ये प्रत्येक चार चार पल और गोमूत्रद्वारा शुद्ध किया हुआ मण्डूर २४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकारसे पकावे । जब पाक अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें जीरा, धनियाँ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, गजपीपल, नागरमोथा, हरड, लोहा, अभ्रक, त्रिकुटा, रेणुका, त्रिफला, तालीसपत्र और नागकेशर इन औषधियोंको दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे ॥ १८-१२१ ॥

भोजनाद्यवसानेच मध्ये चैव समाहितः ।
तोलैकं भक्षयेच्चानु पेयं नित्यं पयस्तथा ॥ २२ ॥

शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ २३ ॥
परिणामभवं शूलमन्नद्रवभवं तथा।
द्वन्द्वजानपि शूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ २४ ॥
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम् ॥ २५ ॥

इस औषधिको प्रतिदिन प्रातः मध्याह्न और सायंकालमें भोजन करनेसे पहले एक एक तोला परिमाण सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे। यह बृहद्धात्रीलोह आठों प्रकारके साध्य व असाध्य शूलरोग एव वातज, पित्तज, श्लैष्मिक व त्रिदोषज शूल, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, द्वन्द्वज शूल आर दारुण अम्लपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करता है और सर्व शूलरोगको हरनेके लिये परमोत्कृष्ट औषध है ॥ २२-२५ ॥

क्षीरमण्डूर।

लौहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्द्धाढके पचेत्।
क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पंक्तिशूलहरं परम् ॥ २६ ॥

मण्डूरभस्मको ८ पल लेकर अर्द्ध आढक गोमूत्र और एक प्रस्थ गोदुग्धके साथ मिलाकर यथाविधि पकावे। इसको सेवन करनेसे पंक्तिशूल नष्ट हो ॥ २६ ॥

रसमण्डूर।

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्म लोहकिट्टं च।
शुद्धस्य रसस्यार्द्धं भृङ्गस्य रसं च केशराजस्य ॥ २७ ॥
प्रस्थोन्मितं च दत्त्वा पात्रे लौहेऽथ दण्डसंघृष्टम्।
शुष्कं मधुघृतयुक्तं मृदितं स्थाप्यं च भाजने स्निग्धे ॥ २८ ॥
उपयुक्तमेतदचिरान्निहन्ति रोगान् कफोद्भवानखिलान्।
शूलं तथाऽम्लपित्तं संग्रहणीं कामलां चोग्राम् ॥ २९ ॥

हरडका चूर्ण १६ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध मण्डूर ८ तोले और शुद्ध पारा २ तोले इन सब औषधियोंको एकत्र बारीक चूर्णकर भाँगरेके और केशराजके एक एक प्रस्थ स्वरसके साथ लोहेके पात्रमें लोहेके दण्डद्वारा उत्तम प्रकारसे खरल करके धूपमें सुखालेवे और मिट्टीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। फिर इसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण लेकर घृत और मधुके साथ मिलाकर सेवन करे। इसकी प्रतिदिन २ रत्तीसे लेकर ३ माशेतक मात्रा वृद्धि करे। यह प्रयोग कफजन्य समस्त रोग,

शूल, अम्लपित्त, संग्रहणी और प्रबल कामला रोगको बहुत जल्द नष्ट करता है ॥ २७–२९ ॥

कोलादिमण्डूर ।

कोलाग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं
मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्वाऽथ सान्द्रीकृतम् ।
तत्खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुक्
जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलान्यशूलानि च ॥ ३० ॥

चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पीपल और जवाखार ये सब समान भाग और सबकी बराबर शुद्ध मण्डूर लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके उसको अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब वह पकते २ अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतारलेवे । फिर इसको भोजन करनेसे पूर्व, मध्यमें और अन्तमें सेवन करनेसे और प्रायः दूध–भातका भोजन करनेसे यह मण्डूर वात–कफोत्पन्न रोग, परिणामशूल और अन्य सर्व प्रकारके शूलोंको नष्ट करता है ॥ १३० ॥

चतुःसममण्डूर ।

सद्यो लौहमलाज्यमाक्षिकसिताभागाः समा मानतः
पात्रे ताम्रमये दिनान्तमथितं संस्थापयेदातपे ।
पश्चात्तद्घनतां प्रणीय रजनीमेकां बहिः स्थापयेत्
पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते ॥ ३१ ॥
पश्चान्माषचतुष्टयं प्रतिदिनं जग्ध्वा जलं शीतलं
पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः ।
जेतुं शूलहुताशमांद्यकसनश्वासाम्लपित्तज्वरो-
न्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वा रुजः ॥ ३२ ॥

शुद्ध मण्डूर, घृत, शहद और मिश्री इनको एक एक पल लेकर ताँबेके पात्रमें रख लोहेके दण्डेसे एक दिनतक खरल करके १ दिनतक धूपमें सुखावे, फिर उसको गाढा करके एक रात्रितक ओसमें रक्खे। पश्चात् इस ओषधिको ताँबेके अथवा घीसे चिकने मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । उसमेंसे प्रतिदिन चार मासे परिमाण खाकर ऊपरसे शीतल जल पान करे। इसको भोजनके पूर्व, मध्य और अन्तमें सेवन करना एवं इसके सेवन करनेपर यथेच्छ भोजन करना चाहिये । इसके सेवनसे सर्वप्रकारके शूल,

मन्दाग्नि, खाँसी श्वास, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद, मृगी, समस्त प्रमेह, उदररोग और अजीर्णादि रोग दूर होते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

भीमवटकमण्डूर ।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विश्वौषधमागधीयवक्षारैः ।
प्रस्थमयोमलरजसः पलिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥ ३३ ॥
अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमपाकात्पिण्डतां नयेत्सर्वम् ।
कोलप्रमाणवटिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ च ॥ ३४ ॥
रससर्पिर्यूषपयोमांसैरश्नन्नरो निवारयति ।
अन्नविवर्त्तनशूलं गुल्मं प्लीहाग्निसादांश्च ॥ ३५ ॥

चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पीपल और जवाखार इन प्रत्येक ओषधिका चूर्ण चार चार तोले और शुद्ध मण्डूर १ प्रस्थ लेवे। प्रथम मण्डूरको अठगुने गोमूत्रके साथ मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें उक्त ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन तीन तीन गोली प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्याके समय सेवन करे एवं घृत, दुग्ध, मूँग आदिका यूष और मांसरस इनका पथ्य करे। इसके सेवनसे अजीर्ण, विबन्ध, शूल, गुल्म, प्लीहा और मन्दाग्नि आदि विकार निवृत्त होते हैं ॥ १३३–३५ ॥

तारामण्डूरगुड ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ।
नव भागानि चैतानि लौहकिट्टसमानि च ॥ ३६ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्द्धिकगुडान्वितम् ।
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥ ३७ ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ।
प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥ ३८ ॥
योगोऽयं शमयत्याशु पंक्तिशूलं सुदारुणम् ।
कमलां पाण्डुरोगं च शोथं मंदाग्नितामपि ॥ ३९ ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च ।
नाशयेदम्लपित्तं च स्थौल्यं चापि नियच्छति ॥ १४० ॥

वर्जयेच्छुष्कशानि विदाह्यम्लकटूनि च।
पंक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञितः ॥ ४१ ॥
शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः ॥ ४२ ॥

वायविडङ्ग, चीता, चव्य, त्रिफला, सोंठ, मिरच और पीपल ये प्रत्येक औषधि एकएक भाग, शुद्ध लोहमण्डूर नौ भाग, गोमूत्र सबसे दुगुना और पुराना गुड गोमूत्रसे आधा भाग लेवे। प्रथम गोमूत्रमें मण्डूर और गुडको मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पूर्वोक्त ओषधियोंका चूर्ण डालकर सबको एकमएक करलेवे और एक घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एकएक तोला परिमाण लेकर भोजन करनेसे पहले प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्याके समय सेवन करे। यह औषध दारुण परिणामशूल, कामला, पाण्डु, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, गुल्म, उदररोग और अम्लपित्त इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती है और स्थूलताको दूर करती है। इसपर सूखे शाक, दाहकारक, खट्टे और कटु (चरपरे) रसवाले पदार्थ त्याग देने चाहिये। यह तारामण्डूरनामक गुड परिणामशूलको निश्चय नाश करता है। शूलरोगियोंके ऊपर कृपा करनेकी इच्छासे तारादेवीने इसको निर्म्माण किया है ॥ ३६–१४२ ॥

शतावरीमण्डूर।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम्।
शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा ॥ ४३ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः।
विपचेत्सर्वमेकत्र यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ४४ ॥
सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा।
वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥
निहन्त्येव प्रयोगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ॥ ४५ ॥

शुद्ध मण्डूरका चूर्ण ८ पल, शतावरीका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल और गौका घी ४ पल लेकर सबको एकत्र करके मन्दमन्द अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे पकावे। जब वह पककर अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतारकर शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे। इस शतावरीमण्डूरको यथोचित मात्रासे प्रतिदिन भोजनके

पहले और मध्यमें सेवन करनेसे वातज, पित्तजशूल और परिणामशूल निस्सन्देह नष्ट होते हैं ॥ १४३-४५ ॥

वृहच्छतावरीमण्डूर १-२।

मण्डूरस्यातितप्तस्य वराक्काथप्लुतस्य च।
चूर्णीकृत्य पलान्यष्टौ शतावर्या रसस्य च ॥ ४६ ॥
दध्नश्च पयसश्चाष्टावामलक्या रसस्य च।
चतुष्पलं घृतस्यापि शाणमात्रं विनिक्षिपेत् ॥ ४७ ॥
सिद्धे प्रत्येकमेतेषामजाजीधान्यमुस्तकम्।
त्रिजातककणापथ्या उपयुक्तं निहन्ति च ॥ ४८ ॥
शूलं दोषत्रयोद्भूतमम्लपित्तं च दारुणम्।
अरुचिं च वमिं चैव कासं श्वासं च नाशयेत् ॥ ४९ ॥

१-भस्म किया हुआ और त्रिफलेके क्राथमें शुद्ध किया हुआ मण्डूरका चूर्ण ८ पल, शतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, आमलोंका रस ८ पल और घृत ४ पल लेवे। फिर सबको एकत्रकर उत्तम प्रकारसे पकावे जब पकते २ पाक गाढा होजाय तब उतारकर उसमें कालाजीरे, धनियाँ, नागरमोथा, दारचीनी, तेजपात, इलायची, पीपल और हरड इन ओषधियोंके चार चार माशे चूर्णको डाल कर सबको मिलादेवे। यह मण्डूर प्रतिदिन उपयुक्त परिमाणमें सेवन करनेसे वात पित्त, कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए शूल, दारुण अम्लपित्त अरुचि, वमन, खाँसी और श्वासादि रोगोंको शमन करता है ॥ १४९ ॥

शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले।
अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च ॥ १५० ॥
लौहमलपलान्यष्टौ शर्करापलषोडश।
दत्त्वाऽऽज्यकुडवं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ५१ ॥
सिद्धशीते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत्।
विडङ्गं त्रिफला व्योषं यमानी गजपिप्पली ॥ ५२ ॥
द्विजीरकं घनं लौहमभ्रं कर्षद्वयं पृथक्।
खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः ॥ ५३ ॥

२-शतावरका रस १ प्रस्थ (६४ तोले), गोमूत्र १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, आमलोंका रस १ प्रस्थ, लोहमण्डूर ८ पल, मिश्री १६ पल और घी १६

तोले लेकर इन सबको एकत्र मिश्रित करके मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः २ पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें वायविडङ्ग, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, गजपीपल, जीरा, काला जीरा, नागरमोथा, लोहा और अभ्रक इन प्रत्येक औषधिके बारीक चूर्णको दो दो तोले परिमाण डालकर सबको एकमएक करलेवे। फिर इसको प्रतिदिन भोजन करनेसे पहले जठराग्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रासे सेवन करे॥ १९०-९३॥

शूलं सर्वभवं हन्ति पित्तशूलं विशेषतः।
हृच्छूल पार्श्वशूलं च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम्॥ ९४॥
कासं श्वासं तथा शोथं ग्रहणीदोषमेव च।
यकृत्प्लीहोदरानाहराजयक्ष्मविनाशनम्॥ ९५॥
विष्टम्भमामं दौर्बल्यमग्निमान्द्यं च यद्भवेत्।
एतान् रोगान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ ९६॥

यह मण्डूर सर्वप्रकारके शूल, विशेषकर पित्तशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, वस्तिगतशूल, गुदारोग, खाँसी, श्वास, सूजन, संग्रहणी, यकृत, प्लीहा, उदरविकार, अफारा, राजयक्ष्मा, विष्टम्भ, आमवात, दुर्बलता और अग्निकी मन्दता इन समस्त व्याधियोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट कर देता है, जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार तत्काल दूर होजाता है॥ १९४-९६॥

हरीतकीखण्ड।

चतुःपलं हरीतक्यास्त्रिवृतायाश्चतुः पलम्।
चातुर्जातं समुस्तं च तालीशं जीरकं कणा॥ ९७॥
जातीकोषं लवङ्गं च लौहमभ्रं च टङ्कणम्।
प्रत्येकं कर्षमानेन श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ९८॥
प्रस्थेनगव्यदुग्धस्य पचेन्मृद्वग्निना भिषक्।
शर्कराया दशपलं पाकसिद्धिविधानवित्॥ ९९॥
दर्वीप्रलेपावस्थायां क्षिपेच्चूर्णं विचक्षणः।
पूजयेद्भास्करं शम्भुं द्विजातीनभिवादयेत॥ १६०॥
शूलमष्टविधं हन्ति अम्लपित्तं सुदुर्जयम्।
अन्नद्रवभवं शूलं कासं श्वासं तथा वमिम्॥ ६१॥

कान्तिपुष्टिकरो हृद्यो बलमेधाग्निवर्द्धनः ।
ख्यातो हरीतकीखण्डः सर्वशूलनिकृन्तनः ॥ ६२ ॥

हरड १६ तोले, निसोत १६ तोले एवं दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, नागरमोथा, तालीसपत्र, जीरा, पीपल, जावित्री, लौंग, लोहा, अभ्रक और सुहागा इन ओषधियोंको एकएक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर एक प्रस्थ गौके दूध और दस पल खाँडको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर गाढा होजाय और करछीसे लगने लगे तब नीचे उतारकर उसमें पूर्वोक्त ओषधियोंका चूर्ण डालकर सबको मिलादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्य और महादेवजीका पूजनकर एवं ब्राह्मणोंको अभिवादन करके यथोचित मात्रासे सेवन करनेसे आठों प्रकारके शूल, दुस्तर अम्लपित्त, अन्नद्रवजन्य शूल, श्वास, खाँसी, वमन आदि रोग नष्ट होते हैं। यह हरीतकी-नामक खण्ड कान्ति और पुष्टिको करनेवाला, हृदयको हितकारी, बल, मेधा और जठराग्निकी वृद्धि करनेवाला है एवं सर्वप्रकारके शूलरोगोंको शमन करता है ॥ १५७-६२ ॥

पूगखण्ड १-२ ।

छिन्नं पूगफलं दृढं परिणतं पक्त्वा च दुग्धाम्बुभिः
प्रक्षाल्यातपशोषितं वसुपलं ग्राह्यं ततश्चूर्णितात् ।
ततसर्पिःकुडवे विपाच्य हि वरीधात्रीरसौ द्व्यञ्जली
द्वे प्रस्थे पयसः प्रदाय विपचेन्मन्दं तुलार्द्धां सिताम् ॥ ६३ ॥
हेमाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्रीपियालास्थिजौ
मज्जानौ त्रिसुगन्धिजीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजा ।
जातीकोषफले लवङ्गमपरं धन्याककक्कोलकं
नाकुलीतगराम्बुवीरणशिफाभृङ्गाश्वगन्धे तथा ॥ ६४ ॥
सर्वं द्व्यक्षमितं विचूर्ण्य विधिना पाके तु मन्दे ततः
प्रक्षिप्याथ विघट्टयन् मुहुरिदं दर्व्याऽवनार्य क्षणात् ।
सिद्धं वीक्ष्य विधारयेदवहितः स्निग्धेऽथ मृद्भाजने
खादेत्प्रातरिदं ज्वरामयहरं वृष्यं बुधः कार्षिकम् ॥६५॥
शूलाजीर्णगुदप्रवाहरुधिरं दुष्टाम्लपित्तं जयेद्
यक्ष्मक्षीणहितं महाग्निजननं तृट्छर्दिमूर्च्छापहम् ।

पाण्डुघ्नं बलवर्णदृष्टिकरणं गर्भप्रदं योषिता-
मेतत्पूगरसायनं प्रदरनुद्धिण्मूत्रसंज्ञापहम् ॥ ६६ ॥

१–उत्तम प्रकारसे पके हुए और छिल्करहित सुपारीके टुकडोंको दूध और जलके साथ पकाकर एव धोकर धूपमें सुखालेवे, फिर उनका बारीक चूर्ण कर लेवे। इस प्रकार प्रस्तुत किया हुआ चूर्ण ८ पल, घी १ कुडव (३२ तोले) दोनोंको एकत्र पकाकर उसमें शतावरका रस ८ पल, आमलोंका रस ८ पल, दूध २ प्रस्थ और मिश्री ९० पल डालकर फिर मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर नागकेशर, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, मिरच, पीपल, आमले, चिरोंजी, दारचीनी, तेजपात, इलायची, जीरा, कालाजीरा, सिंघाडे, बंशलोचन, जावित्री, जायफल, लौंग, धनियाँ शीतलचीनी, रास्ना, तगर, सुगन्धवाला, खसकी बालछड, भाँगरा और असगन्ध इन सबको दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करके उसमें डालदेवे और लोहेकी करछीसे अच्छीतरह घोटकर चिकने मिट्टीके पात्रमें भरकर रखदेवे। इस औषधको प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोला परिमाण लेकर सेवन करे। पूगखण्डनामक यह रसायन ज्वरनाशक, अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्द्धक) एवं शूलरोग, अजीर्ण, गुदाके द्वारा रक्तस्राव होना, दुस्तर अम्लपित्त, राजयक्ष्मा, तृषा, वमन, मूर्च्छा, पाण्डुरोग, प्रदररोग और मलमूत्रविकार इन सब व्याधियोंको नष्ट करनेवाली है तथा अत्यन्त अग्निप्रदीपक, बल, वर्ण और दृष्टिशक्तिको बढानेवाली और स्त्रियोंको गर्भप्रदान करनेवाली है ॥

प्रस्थैकं पूगचूर्णस्य पयसश्चाढकं क्षिपेत्।
शर्करायाः पलशतं घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ ६७ ॥
चातुर्जातं त्रिकटुकं देवपुष्पं सचन्दनम्।
मांसी तालीशपत्रं च बीजं कमलसंभवम् ॥ ६८ ॥
नीलोत्पलं तथा वांशी शृङ्गाटं जीरकं तथा।
विदारीकन्दजं चैव रजो गोक्षुरसम्भवम् ॥ ६९ ॥
शतमूलीरजश्चैव मालतीकुसुमं तथा।
धात्रीचूर्णं समं कर्षं कर्पूरं शुक्तिमानतः ॥ १७० ॥
मन्देऽग्नौ विपचेद्वैद्यः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
खादेच्च प्रातरुत्थाय कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ ७१ ॥

२–पूर्वोक्त विधिसे प्रस्तुत कियाहुआ सुपारीका चूर्ण १ प्रस्थ, दूध १ आढक, खाँड १०० पल, घी २ कुडव (६४तोले)एवं दारचीनी. इलायची,तेजपात, नागकेशर सोंठ, मिरच, पीपल, लौंग, लालचन्दन, जटामांसी, तालीसपत्र, कमलगट्टा, नीलाकमल, वंशलोचन सिंघाडे, जीरा, विदारीकन्द; गोखुरू, शतावर, चमेलीके फूल और आमले इन प्रत्येकका चूर्ण एकएक कर्ष और कपूर दो कर्ष लेवे। प्रथम घृतके साथ सुपारीके चूर्णको भूनकर फिर दूध और खांडके साथ मिलाकर मन्दमन्द अग्नि द्वारा पकावे। जब पाक उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें उक्त ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर शीतल होनेपर एक मिट्टीके चिकने बासनमें रखदेवे। फिर इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोलेकी मात्रासे सेवन करे ॥६७–१७१॥

छर्द्यम्लपित्तहृद्दाहभ्रमिमूर्च्छापहं नृणाम् ।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठमामवातविनाशनम् ॥ ७२ ॥
मेहमेदोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च गुदजं रुधिरं जयेत् ॥ ७३ ॥
रेतोवृद्धिकरं हृद्यं पुष्टिदं कामदं तथा ।
वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु ॥ ७४ ॥

यह औषधि वमन, अम्लपित्त, हृदयरोग, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, सर्वप्रकारके शूल, आमवात, प्रमेह, मेदरोग, प्लीहा, पाण्डुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, गुदासे रुधिरका स्राव होना और अन्य सर्व प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है एवं वीर्यकी वृद्धि करनेवाली, हृदयको हितकारी, पुष्टिकारक और कामोत्पादक है। इसके सेवनसे वन्ध्या स्त्रीभी पुत्रको प्राप्त करती है और वृद्ध पुरुषभी तरुण होजाता है। वाजीकर्ममें इससे बढकर अन्य कोई श्रेष्ठ ओषधि नहीं है ॥ ७२–७४ ॥

खण्डामलकी ।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलार्द्धं भृ ज्यतः ।
प्रस्थार्द्धे खण्डतुलां तु पचेदामलकीरसात् ॥ ७५ ॥
प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन् ।
दर्व्यां पाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ॥ ७६॥

द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च ।
पलं तालीशधन्याकचातुर्जातकमुस्तकम् ॥
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च ॥ ७७ ॥

उत्तम प्रकारसे पकेहुए पुराने पेंठेको उबालकर और वस्त्रमें निचोडकर प्रस्तुत कियेहुए गूदेको ५० पल लेकर आधे प्रस्थ घृतके साथ अच्छे प्रकारसे भून लेवें। फिर उस पेठेको, आमलोंके १ प्रस्थ रस और उबालकर निकालेहुए पेठेके एक प्रस्थ रस एवं ५० पल खाँडके साथ मिलाकर मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे और करछीसे चलाता जाय। जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उतारकर उसमें पीपल, कालाजीरा और सोंठ ये प्रत्येक दो दो पल, कालीमिरच एक पल एवं तालीशपत्र, धनियाँ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और नागरमोथा इन प्रत्येकको दो दो तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके डालदेवे और शीतल होनेपर आधा प्रस्थ शहद मिलाकर सबको अच्छे प्रकारसे एकमएक करके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। पश्चात् इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक तोला परिमाण लेकर सेवन करे ॥ ७९-७७ ॥

पंक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयकृतं च यत् ।
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासं कासमरोचकम् ॥ ७८ ॥
हृच्छूलं पृष्ठशूलं च रक्तपित्तं च नाशयेत् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठ खण्डामलकसंज्ञितम् ॥ ७९ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुए परिणामशूल, वमन, अम्लपित्त, मूर्च्छा, श्वास, खाँसी, अरुचि, हृदयशूल, पृष्ठशूल, और रक्तपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाली यह खण्डामलकीनामक औषध अत्युत्तम रसायन है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

नारिकेलखण्ड ।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिः पाचितं खण्डतुल्यम् ।
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान्क्षिपेच्च ॥ १८० ॥
धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्
शाणं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्ण्यं ।

हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि हारि ॥ ८१ ॥

सुपक्क नारियलकी गिरीको पत्थरपर पीसकर और वस्त्रमें निचोडकर १ कुडव (१६ तोले) लेकर एक पल गोघृतके साथ उत्तम प्रकारसे भूनलेवे । फिर नारियलके एक प्रस्थ जल और १६ तोले खाँडको एकत्र मिश्रित करके वस्त्रमें छानकर उसके साथ उक्त भुनीहुई गिरीको मिलाकर अच्छे प्रकारसे पकावे । जब वह पकते २ गुडकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, वंशलोचन, जीरा, कालाजीरा, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर इन सब ओषधियोंको चार चार माशे लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे और किसी स्वच्छ पात्रमें भरकर रखदेवे । इसके सेवनसे अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, समस्त शूल और वमन ये सब रोग नाश होते हैं एवं सबप्रकारकी शारीरिक शक्तिकी वृद्धि होती है ॥ १८०-८१ ॥

बृहन्नारिकेलखण्ड ।

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा प्रस्थसम्मिता ।
तज्जलं पात्रमेकं तु सर्पिः पञ्च पलानि च ॥ ८२ ॥
शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च ।
सर्वमेवकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८३ ॥
तुगा त्रिकटुकं मुस्तं चातुर्जातं सधान्यकम् ।
द्विकणा जीरकं चैव कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ ८४ ॥
श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिप्य स्थापयेद्भाजने मृदः ।
खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ ८५ ॥

शिलापर पीसकर वस्त्रमें निचोडीहुई नारियलकी गिरी ८ पल, शुद्ध खाँड १ प्रस्थ, नारियलका जल ८ सेर, घी ५ पल एवं सोंठका चूर्ण १६ तोले और दूध ३२ तोले लेवे । प्रथम नारियलकी गिरीको घीमें भूनकर उक्त ओषधियोंके साथ मिश्रित कर मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब वंशलोचन, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, धनियाँ, पीपल, गजपीपल और जीरा इन प्रत्येक औषधिको दो दो कर्ष बारीक पीसकर उसमें डालदेवे और करछीसे सबको एकमएक करके

मिट्टीके स्वच्छ पात्रमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन चार चार माशे सेवन करें और इसपर यथेच्छ भोजन करे ॥ ८२-८५ ॥

सर्वदोषभवं शूलमेकजं द्वन्द्वजं तथा।
परिणामभवं शूलमम्लपित्तं च नाशयेत् ॥ ८६ ॥
बलपुष्टिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम्।
रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥ ८७ ॥
धन्वन्तरिकृतं चैतन्नारिकेलरसायनम् ॥ ८८ ॥

यह ओषधि सर्वदोषजन्य शूल, एकदोषज व द्विदोषज परिणामशूल और अम्लपित्तरोगको नष्ट करती है एवं बलकारक और पुष्टिकारक, हृदयको हितकारी, अत्यन्त वाजीकरण तथा रक्तपित्त, हृदयरोग और वमन इनको नाश करनेके लिये परम श्रेष्ठ है। इस बृहन्नारिकेलरसायनको महाराज धन्वन्तरिने निर्माण किया है ॥ ८६-८८ ॥

नारिकेलामृत।

नरिकेलफलप्रस्थं सुपिष्टं भर्ज्जितं घृते।
प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णं तु तत्समम् ॥ ८९ ॥
द्विपात्रं नारिकेलाम्बु तत्समं क्षीरमेव च।
धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत् ॥१९०॥
एकीकृत्य पचेत्सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ९१ ॥

उत्तम पके हुए नारियलकी गिरीको १ प्रस्थ (६४ तोले) लेकर शिलापर पीसकर और वस्त्रमें निचोडकर गौके १ प्रस्थ घृतमें भूनलेवे। फिर सोंठका चूर्ण १ प्रस्थ, नारियलका जल १६ सेर, गौका दूध १६ सेर, आमलोंका रस १ प्रस्थ और खाँड १०० पल इन सबको और उक्त गिरीको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः पकावे ॥ ८९-१९१ ॥

सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां सुशोभनम्।
कटुत्रयं चतुर्जातं प्रत्येकं तु पलोन्मितम् ॥ ९२ ॥
धात्रीजीरकयुग्मं च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥
तुगापयोदचूर्णानि त्रिकर्षाणि पृथक् पृथक् ॥ ९३ ॥
चतुःपलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ९४ ॥

जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर ये प्रत्येक चार चार तोले, आमले, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, गठिवन, वंशलोचन और नागरमोथा इन प्रत्येक ओषधिके छः छः तोले परिमाण चूर्णको डालदेवे। एवं चार पल शहद डालकर सबको करछीसे अच्छीसे अच्छी तरह मिलाकर मृत्तिकाके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥ ९२-९४ ॥

शिवं प्रणम्य सगणं धन्वन्तरिमथापरम्।
कर्षप्रमाणं भोक्तव्यं मुद्गयूषं पिबेदनु ॥ ९५ ॥
अम्लपित्तं निहन्त्युग्रं शूलं चैव सुदारुणम्।
परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलं च नाशयेत् ॥ ९६ ॥
अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलं च दुस्तरम्।
अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ॥ ९७ ॥
मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेषतः।
पीनसं च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्यसेवनात् ॥ ९८ ॥
रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतवे।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं नारिकेलामृतं शुभम् ॥ ९९ ॥

फिर प्रतिदिन प्रातःकाल गणोंसहित शिवजीको और फिर धन्वन्तरि भगवान्‌को प्रणाम करके यह औषध एक एक तोला परिमाण सेवन करनी चाहिये और ऊपरसे मूँगका यूष पान करना चाहिये। इसके सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल अम्लपित्त, दारुण शूल, परिणामशूल, पृष्ठशूल, अन्नद्रवशूल और दुस्तर पार्श्वशूलरोग नाश होते हैं। यह अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली और अत्युत्तम रसायन है। यह नित्य सेवन करनेसे सर्व प्रकारके मूत्राघात, विशेषकर रक्तपित्त, पीनस और प्रतिश्यायरोगको नष्ट करती है। सर्वप्रकारके रोगसमूहको नाश करनेके लिय और सांसारिक मनुष्योंके ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे अश्विनीकुमाराने इस नारिकेलामृत औषधको निर्माण किया है ॥ ९५-९९ ॥

गुडपिप्पलीघृत।

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे।
विनिहन्त्यम्लपित्तं च शूलं च परिणामजम् ॥ २०० ॥

पीपलका चूर्ण, गुड और घी इनको समान भाग लेकर चौगुने दूधमें घृतको पकावे। इसको पान करनेसे अम्लपित्त और परिणामजन्यशूल दूर होता है ॥ २०० ॥

पिप्पलीघृत।

काथेन कल्केन च पिप्पलीनां सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम्।
क्षीरानुपानस्य निहन्त्यवश्यं शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ १ ॥

पीपलके काथ और कल्कके साथ विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए घृतको शहदमें मिलाकर सेवन करके उष्ण दुग्ध पान करनेसे अत्यन्त प्रबल परिणामशूल अवश्य नष्ट होता है ॥ २०१ ॥

बीजपूराद्यघृत।

बीजपूरकमेरण्डं रास्ना गोक्षुरकं बलाम्।
पृथक् पञ्चपलान्भागान् यवप्रस्थसमायुतान् ॥ २ ॥
वारिद्रोणेन संसाध्य यावत्पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाऽक्षसम्मितम् ॥ ३ ॥
तुम्बुरूण्यभया व्योषं हिङ्गु सौवर्चलं विडम्।
सैन्धवं यावशूकं च सर्जिकामम्लवेतसम् ॥ ४ ॥
पुष्करं दाडिमं चैव वृक्षाम्लं जीरकद्वयम्।
मस्तु प्रस्थद्वयं दत्त्वा सर्वं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ५ ॥
घृतमेतत्प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम्।
वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मं प्लीहानमेव च ॥ ६ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च अङ्गशूलं च नाशयेत्।
बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ७ ॥

बिजौरानींबूकी जड, अण्डकी जड, रायसन, गोखरू और खिरैंटी ये प्रत्येक ओषधि बीस तोले और भूसीरहित जौ १ प्रस्थ लेकर सबको एकत्र करके १ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें गोघृत १ प्रस्थ, दहीका तोड दो प्रस्थ एवं कल्कके लिये तुम्बुरु, हरड, त्रिकुटा, हींग, कालानमक, विरियासञ्चरनमक, सैंधानमक, जवाखार, सज्जी, अम्लवेत, पोहकरमूल, अनार, विषांबिल, जीरा और कालाजीरा इन सबको दो दो तोले परिमाण डालकर मन्दमन्द अग्निद्वारा उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे। यह घृत तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए शूल, वातजशूल, यकृतशूल, गुल्मरोग, प्लीहा, हृदयशूल, पार्श्वशूल और अङ्गशूल इन सर्वप्रकारके शूलरोगोंको नाश करताहै एवं बल वर्णकी वृद्धि करनेवाला, हृदयको हितकारी, अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवाला है ॥

शूलगजेन्द्रतैल ।

एरण्डं दशमूलं च प्रत्येकं पलपञ्चकम् ।
जले चाष्टगुणे पक्त्वा तैलस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ ८ ॥
विश्वं जीरं यमानीं च धान्यकं पिप्पलीं वचाम् ।
सैन्धवं बदरीपत्रं प्रत्येकं च पलद्वयम् ॥ ९ ॥
यवक्काथः पयश्चैव तैलाद्देयं गुणद्वयम् ।
तैलमेतन्महातेजो नाम्ना शूलगजेन्द्रकम् ॥ २१० ॥

अण्डकी जड ५ पल और दशमूलकी प्रत्येक ओषधि पाँच पाँच पल लेकर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे। फिर उसमें तिलका तेल ४ सेर, जौका क्काथ ८ सेर, दूध ८ सेर एवं कल्कके लिये सोंठ, जीरा, अजवायन, धनियाँ, पीपल, वच, सैंधानमक और बेरीके पत्ते इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल डालकर उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे। यह शूलगजेन्द्रनामक तैल अत्यन्त तेजवान् है ॥ ८-२१० ॥

निहन्त्यष्टविधं शूलमुपद्रवसमन्वितम् ।
अग्निप्रदं वमिहरं श्वासकासारुचीजयेत् ॥ ११ ॥
ज्वरघ्नं रक्तपित्तघ्नं प्लीहगुल्मविनाशनम् ।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसम्पदे ॥ १२ ॥

इसको मर्द्दन करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित आठों प्रकारके शूलरोग, वमन, श्वास, कास, अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं। यह तैल अग्निवर्द्धक एवं ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा और गुल्म इन सब रोगोंको नाश करनेवाला है। संसारके हितके लिये श्रीमान् गहननाथजीने इस तैलको निर्माण किया है ॥ २११-२१२ ॥

शूलरोगमें पथ्य ।

छर्दिः स्वेदो लङ्घनं पायुवर्त्तिर्वस्तिर्निद्रा रेचनं पाचनं च । अब्दोत्पन्नाः शालयो वाट्यमण्डस्तप्तक्षीरं जाङ्गलानां रसाश्च ॥ १३ ॥ पटोलशोभाञ्जनकारवेल्लवार्त्ताकुराम्राणि पचेलिमानि । द्राक्षा कपित्थं रुचकं पियालशालिञ्चपत्राणि च वास्तुकानि ॥ १४ ॥ सामुद्रसौवर्चलहिङ्गुविश्वविडं शताह्वा लशुनं लवङ्गम् । एरण्डतैलं

सुरभीजलं च तप्ताम्बु जम्बीररसोऽपि कुष्ठम् । लघूनि च क्षाररजांसि चेति वर्गो हितः शूलगदार्दितेभ्यः ॥१५॥

वमन कराना, स्वेद देना, लंघन कराना, गुदामें बत्ती लगाना, वस्तिकर्म, निद्रा, विरेचन (जुल्लाब), पाचक औषधियाँ, एक वर्षके पुराने शालिधान, भुनेहुए जौका माँड, गरम दूध, जङ्गली पशुपक्षियोंका मांसरस एवं परवल, सहिंजना, करेला, बैंगन, पकाआम, दाख, कैथ, कालानमक, चिरौंजी, शालिञ्चशाक, बथुयेका शाक, समुद्र-लवण, कालानमक, हींग, सोंठ, विरियासंचरनमक, सोया, लहसन, लौंग, अण्डीका तेल, गोमूत्र, उष्ण जल, जम्बीरीनींबूका रस, कूठ, लघुपाकी द्रव्य, जवाखार आदि क्षार ये समस्त पदार्थ और क्रियायें शूलरोगियोंके लिये उपयोगी हैं ॥ १३-१५ ॥

शूलरोगमें अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम् ।
रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि गुरूणि च ॥ १६ ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं द्विदलं लवणं तिलान् ।
वेगरोधं क्रोधशोकौ वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २१७ ॥

विरुद्ध अन्न-पान, रात्रिजागरण, विषम भोजन, रूक्ष, कडवे, कषैले, शीतल और गुरुपाकी (भारी) पदार्थ, व्यायाम, स्त्रीप्रसङ्ग, मदिरा, दो दलवाले अन्न (दाल), नमक, तिल, मल-मूत्रादिके वेगोंको रोकना, शोक और क्रोध इन सबको शूलरोगी तत्काल त्यागदेवे ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूलरोगचिकित्सा ।

उदावर्त्त और आनाहकी चिकित्सा ।

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् ।
अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात्प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥१॥

निसोत, थूहरके पत्ते, तिलादिका शाक, ग्राम्य जलीय और अनूपदेशके जीवोंका मांसरस एवं वायुनाशक विरेचन और मूत्रकारक द्रव्योंके साथ यवान्न भक्षण करना, सुरामण्ड और गुडसे बनाईहुई सीधुनामक मदिरा ये सब पदार्थ उदावर्त्तरोगमें सेवन करने चाहिये ॥ १ ॥

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते।
पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ २ ॥

अपानवायुके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न हुआ हो तो उसमें स्निग्ध-द्रव्योंके द्वारा स्वेद देकर आस्थापन (वस्तिक्रिया) करे और मलके वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्तमें आनाहाधिकारमें कहीहुई फलवर्त्ति आदि प्रयोग करने चाहिये ॥ २ ॥

नेत्रनीरावरोधोत्थे मुञ्चेद्वापि दृशोर्जलम्।
स्वप्यात्सुखं च तस्याग्रे कथयेच्च कथाः प्रियाः ॥ ३ ॥

आँसुओंके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें तीक्ष्ण अञ्जन लगाकर नेत्रोंसे अश्रुपात करके रोगीको सुखपूर्वक शयन करना चाहिये और उस रोगीके सामने मीठी प्यारी बातें कहनी चाहिये ॥ ३ ॥

क्षुतो निरोधजे तीक्ष्णघ्राणनस्यार्कदर्शनैः
प्रवर्त्तयेत्क्षुतं सक्तं स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ४ ॥

छींकको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें तीक्ष्ण द्रव्योंके द्वारा नस्य लेकर अथवा सूर्यकी ओर देखकर छींकें लेवें। फिर स्नेह और स्वेदक्रिया करे ॥ ४ ॥

उद्गारस्यावरोधे तु स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ ५ ॥

डकारके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें स्नेहद्रव्योंका धूम्रपान करे अर्थात् स्निग्ध पदार्थोंको अग्निपर डालकर उसका धूम्रपान करे ॥ ५ ॥

छर्दिनिग्रहसञ्जाते वमनं लङ्घनं हितम्।
विरेचनं चात्र मतं तैलेनाभ्यञ्जनं तथा ॥ ६ ॥

वमनके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें वमन, लंघन और विरेचन कराना एवं तेलकी मालिश करना हितकारी है ॥ ६ ॥

क्षुद्विघातसमुद्भूते स्निग्धमुष्णं तथा लघु।
रुच्यमल्पं हितं भक्ष्यं पुष्पं सेव्यं सुगन्धि यत् ॥ ७ ॥

भूँखके वेगको रोकनेके कारण उत्पन्नहुए उदावर्त्तमें स्निग्ध, उष्ण, लघुपाकी, रुचिकर और हितकर पदार्थ अल्पमात्रामें सेवन करने चाहिये और सुगन्धित पुष्प सूँघने चाहिये ॥ ६ ॥

निद्रावेगविघातोत्थे पिबेत्क्षीरं सितायुतम्।
संवाहनं सुशय्याऽत्र हितः स्वप्नः प्रियाः कथाः ॥ ८ ॥

निद्राके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें मिश्री मिलाहुआ दुग्धपान, शारीरिक सञ्चालन, सुखप्रद शय्यापर शयन करना और प्रियकथायें सुनना ये सब क्रियायें हितकर हैं ॥ ८ ॥

अधोवातनिरोधोत्थे ह्युदावर्त्ते हितं मतम्।
स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्त्तिर्वस्तिर्हितो मतः ॥ ९ ॥

अपानवायुको रोकनेके कारण उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें स्नेहपान, स्वेद देना, वर्त्तिप्रयोग (गुदामें बत्ती चढाना) और वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना) करना उपयोगी है ॥ ९ ॥

विड्विघातसमुत्थे च विड्भेद्यन्नं तथौषधम्।
वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदो वस्तिर्हितो मतः ॥ १० ॥

मलके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्त रोगमें विरेचक औषधि, अन्न, फलवर्त्ति, अभ्यङ्ग (तैलादिकी मालिश), जलमें गोता लगाकर स्नान, स्वेद प्रदान और वस्तिक्रिया करनी चाहिये ॥ १० ॥

मूत्रावरोधजनिते क्षीरवारिवचाः पिबेत्।
दुस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च ॥ ११ ॥
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम्।
सितामिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥
सर्वथैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १२ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें दूध या जलके साथ वचका चूर्ण पान करे अथवा धमासेका स्वरस, अर्जुनवृक्षकी छालका क्वाथ, जल और सैन्धेनमकके साथ ककडीके बीजोंका चूर्ण वा मिश्री, ईखका रस, दूध और दाखका रस इनमेंसे किसी एक पदार्थको सेवन करे एवं मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगाधिकारमें कही हुई समस्त क्रियायें करनी चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

जृम्भाभिघातजे स्नेहं स्वेदं वापि प्रयोजयेत्।
अन्यानपि प्रयुञ्जीत समीरणहरान् विधीन् ॥ १३ ॥

जम्भाईके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें स्नेहपान स्वेदक्रिया और अन्यान्य वातनाशक क्रियायें करनी चाहिये ॥ १३ ॥

वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः।
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥ १४ ॥

रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम्।
अत्राभ्यङ्गावगाहाश्च मदिराश्चरणायुधाः।
शालिः पयोनिरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ॥ १५ ॥

वीर्यके वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्तरोगमें चौगुने जलके साथ दूधको पकाकर (जब जल सब जलजाय दूधमात्र शेष रहजाय तब) उसके साथ मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले तृणपञ्चमूलके कल्कको मिलाकर रोगीको पान करावे और प्रिय स्त्रियोंके साथ यथेच्छरूपसे रमण करावे। इस रोगमें तैलादिकी मालिश, अवगाहन (जलमें गोता लगाकर स्नान करना), मद्यपान, मुर्गेका मांस, शालिचावल, दूधकी निरूहवस्ति, मैथुन करना ये सब हितकारी हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः ॥ १६ ॥

निसोतका चूर्ण २ तोले, पीपलका चूर्ण ४ तोले, हरडका चूर्ण ५ तोले और सब चूर्णकी बराबर पुराना गुड, सबको एकत्र मिलाकर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके सेवन करनेसे मलावरोध और उदावर्त्तरोग नष्ट होता है ॥ १६ ॥

हिङ्गुकुष्ठवचासर्जिविडं चेति द्विरुत्तरम।
पीत मद्येन तच्चूर्णमुदावर्त्तविनाशनम् ॥ १७ ॥

हींग १ भाग, कूठ २ भाग, वच ४ भाग, सज्जी ८ भाग विडनमक १६ भाग सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके मद्यके साथ पीनेसे उदावर्त्त जाय ॥ १७ ॥

हरीतकी यवक्षारं पीलूनि त्रिवृता तथा।
घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम् ॥ १८ ॥

हरड, जवाखार, मूर्वाकी जड और निसोत इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे उदावर्त्तरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः।
गुल्मोदावर्त्तशूलघ्नं दीपनं बलवर्द्धनम् ॥ १९ ॥

प्रातःकाल लहसुनको मद्यके साथ मिलाकर सेवन करनेसे गुल्म, उदावर्त्त और शूलरोग नष्ट होता है तथा अग्निदीपन और बलकी वृद्धि होती है ॥ १९ ॥

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्टैर्वर्त्तिं सुनिर्म्मिताम्।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्त्तविनाशिनीम् ॥ २० ॥

हींग शहद और सैंधानमक इनको एकत्र खरल करके बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको घीमें सानकर गुदामें चढ़ानेसे उदावर्त्त दूर होता है ॥ २० ॥

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ।
स्नुहीमूलस्य चूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २१ ॥

निसोत, हरड और सारिवा सबके चूर्णको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे दस्त होकर आनाहरोग दूर होता है एव थूहरकी जडके चूर्णको उष्ण जलके साथ सेवन करनेसेभी अनाहरोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

द्विरुत्तरा हिङ्गु वचा सकुष्ठा सुवर्चिका चेति विडं च चूर्णम् ।
सुखाम्बुनाऽऽनाहविषूचिकार्त्तिहृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम् २२॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, कूठ ४ भाग, सज्जी ८ भाग और विडनमक १६ भाग सबको एकत्र पीसकर मन्दोष्ण जलके साथ पान करनेसे आनाह, विषुचिका, हृदयरोग, गुल्प और ऊर्ध्ववातरोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

वचाऽभयाचित्रकयावसूकान् सपिप्पलीकातिविषान्
सकुष्ठान् । उष्णाम्बुनाऽऽनाहविमूढवातान् पीत्वा जये-
दाशु हितौदनाशी ॥ २३ ॥

वच, हरड, चीता, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे आनाह और मूढवातरोग शीघ्र दूर होते हैं । इसपर भातका भोजन करना चाहिये ॥ २३ ॥

नाराचचूर्ण ।

खण्डपलं त्रिवृतासमक्षुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ।
प्राग्भोजनाच्च मधुना बिडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ २४ ॥
एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ।
मधुरं नरपतियोग्यं चूर्णं नाराचकं नाम्ना ॥ २५ ॥

शुद्ध खाँड ४ तोले, निसोतका चूर्ण ४ तोले और पीपलका चूर्ण २ तोले लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन भोजनसे पहले एक एक तोला परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मलकी विबन्धता, पित्त और कफ दूर होते हैं । यह नाराचचूर्ण स्वादिष्ठ और राजाओंके सेवन करने योग्य है ॥ २४ ॥ २५ ॥

फलवर्त्ति।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः।
गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्त्तिरिहोच्यते ॥ २६ ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर गुड सबको एकत्र मिलाकर यथोचित दूधके साथ पकाकर बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको गुदामें लगानेसे दस्त होकर उदावर्त्त और आनाहरोग शमन होते हैं ॥ २६ ॥

त्रिकट्वादिवर्त्ति।

वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः।
मधुनि गुडे वा पक्वैर्विहिता साङ्गुष्ठपरिमाणा ॥ २७ ॥
वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता।
आनाहोदावर्त्तौ जाठरगुल्मं च नाशयति ॥ २८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, सैन्धानमक, श्वेतसरसों, घरका धुआँसा और कूठ ये सब समान भाग और मैनफल १ सबको एकत्र चूर्ण करके शहद या गुडमें पकाकर अँगूठेकी बराबर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीका घीमें सानकर धीरे धीरे गुदामें लगानेसे दस्त होकर कोठा साफ होजानेपर आनाह, उदावर्त्त और गुल्मरोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह बत्ती तत्काल अपना फल दिखाती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

नाराचरस।

सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम्।
टङ्कणं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत् ॥२९॥
सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुषाणि च।
स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ३० ॥
नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः।
तत्कल्कं पाचयेत्क्षिप्रं खल्लयित्वा निधापयेत् ॥ ३१ ॥
तन्मध्यनाभिलेपेन राजयोग्यं विरेचनम्।
वटिका लेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥
तद्गन्धघ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक २ तोले, कालीमिरच १ तोला, सुहागा, पीपल और सोंठ ये प्रत्येक दो दो तोले एवं सबकी बराबर छिल्केरहित जमालगोटे इन

सबको एकत्र थूहरके दूधमें तीन दिनतक खरल करके नारियलके खोपडेमें भरकर तीक्ष्ण अग्निके द्वारा पकावे । जब वह शीतल होजाय तब निकालकर खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इस गोलिको जलमें घिसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे १० बार दस्त होते हैं । इसको सूँघनेसे भी निश्चय दस्त होते हैं । यह रस राजाओंके विरेचन योग्य है ॥ २९-३२ ॥

वैद्यनाथवटी ।

पथ्या त्रिकटु सूतं च द्विगुणं कानकं तथा ।
भेकपर्णीरसैरम्ललोणिकाया रसैः कृता ॥ ३३ ॥

हरड, त्रिकुटा और शुद्ध पारा ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग और शुद्ध जमालगोटे २ भाग लेकर सबको एकत्रित करके मण्डूकपर्णीके रस और अम्ललोनिया (चाङ्गेरी) के रसमें क्रमसे खरल करके गोलियाँ बनालेवे ॥ ३३ ॥

गुडिकोदरगुल्मादिपाण्डवामयविनाशिनी ।
कृमिकुष्ठगात्रकण्डूपिडकाश्च निहन्ति च ॥
गुडी सिद्धफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता ॥ ३४ ॥

इस वटीको सेवन करनेसे उदररोग, गुल्म, पाण्डुरोग, कृमि, कुष्ठ, खुजली और पिडका ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । इस वटीको महाराज वैद्यनाथजीने वर्णन किया है । यह निश्चयही अपना फल दिखाती है ॥ ३४ ॥

वृहदिच्छाभेदीरस ।

शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृ-
द्विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् ।
खल्ले दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः
स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्भेदकः ॥३५॥
गुञ्जैकप्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचये-
द्यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यं च दध्योदनम् ।
आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गुल्मं विशालं हरे-
द्धृद्दीप्तिकरो बलासहरणः सर्वामयध्वंसनः ॥ ३६ ॥

शुद्ध पारा, सुहागा, काली मिरच और शुद्ध गन्धक ये सब समान भाग, निसोत और सोंठ सबसे दुगुनी एवं जमालगोटे नौगुने लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको आकके पत्तोंके रसमें ४ घडीतक उत्तम प्रकारसे

खरल करके आकके पत्तेमें रखकर आरने उपलोंकी मन्दमन्द अग्निके द्वारा पुटपाक करे। इसको एकरत्ती परिमाण शीतल जलके साथ सेवन करे। इसमें जबतक गरम जल नहीं पीवे तबतक बराबर दस्त होते रहेंगे। इसपर दही और भात पथ्य है। यह सर्वप्रकारकी आमवात, उदरके सब विकार, गुल्म, कफके रोग एवं अन्यान्य सर्वरोगोंको हरण करता है और अग्निको दीपन करता है ॥ ३६ ॥

गुडाष्टक ।

सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् ।
तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दन्ती और चीता इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण और सब चूर्णकी बराबर पुराना गुड लेकर एक जगह मिलालेवे। प्रातःकाल उठकर इसको उचित मात्रासे भक्षण करे ॥ ३७ ॥

एतद् गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
उदावर्त्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ३८ ॥

यह गुडाष्टक, बल वर्ण और अग्निको बढाता है तथा उदावर्त्त, प्लीहा, गुल्म सूजन और पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ ३८ ॥

शुष्कमूलाद्यघृत ।

मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभूमूलपञ्चकम् ।
आरग्वतफलं चापि पिष्ट्वा तेन पचेद् घृतम् ॥
तत्पीतमात्रं शमयेदुदावर्त्तमसंशयम् ॥ ३९ ॥

गौका घी १ सेर तथा सूखी मूली, अदरख, पुनर्नवा, लघु पञ्चमूल और अमलतासका गूदा इन औषधियोंको समान भाग लेवे। सबको एकत्र पीसकर ४ सेर जलमें पकावे। जब एक सेर जल बाकी रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर क्वाथके साथ घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पीतेही उदावर्त्त रोग निस्सन्देह नाश होता है ॥ ३९ ॥

स्थिराद्यघृत ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः शम्याकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्धः कषायो द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते ॥

गौका घृत १ प्रस्थ, क्वाथके लिये शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटाई, कटेरी, गोखुरू, पुनर्नवा, अमलतास, दुर्गन्धकरञ्ज और करञ्ज ये प्रत्येक आठ आठ तोले

पाकके लिये जल ३२ सेर लेवे और ८ सेर जल शेष रखे। उस क्वाथको छानकर घृतको सिद्ध करे इस घृतसे वायुकी रुद्धता दूर होती है ॥ ४० ॥

उदावर्त्तमें पथ्य।

स्नेहस्वेदविरेकाश्च वस्तयः फलवर्त्तयः।
अभ्यङ्गाश्च यवाः सर्वे सृष्टविण्मूत्रमारुताः ॥ ४१ ॥
ग्राम्यौदकानूपरसा रुबुतैलं च वारुणी।
बालमूलकशम्याकत्रिवृत्तिलसुधादलम् ॥ ४२ ॥
शृङ्गवेरं मातुलुङ्गं यवक्षारो हरीतकी।
लवङ्ग रामठं द्राक्षा गोमूत्रं लवणानि च ॥ ४३ ॥

स्नेह द्रव्योंका पान, स्वददेना, विरेचन, वस्तिक्रिया, फलवर्त्तिप्रयोग, तेलकी मालिश, जौ एवं विरेचक. मूत्रकारक और वायुको अनुलोमन करनेवाले पदार्थ तथा घरके पालतू, जलके और अनूपदेशवाले जीवोंके मांसका रस, अण्डीका तेल-मदिरा, कच्चीमूली, अमलतास, निसोत, तिल, थूहरके पत्ते अदरख, हींग, बिजौरा-नींबू, जवाखार, हरड, लौंग, दाख, गोमूत्र और सैन्धवादिलवण ये सब उदावर्त्त रोगमें हितकारी हैं ॥ ४१–४३ ॥

उदावर्त्तमें अपथ्य।

वमनं वेगरोधं च शमीधान्यानि कोद्रवम्।
नालीकशाकं शालूकं जाम्बवं कर्कटी फलम् ॥ ४४ ॥
पिण्याकमालुकं सव करीरं पिष्टवैकृतम्।
विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च ॥
उदावर्त्ती प्रयत्नेन वर्जयेत्सततं नरः ॥ ४५ ॥

वमन, मल और मूत्रके वेगको रोकना, समेक चावल, कोदों, नाडीका शाक, भसींडा, जामुन, ककडी, तिलोंका कल्क, आलू, बाँसके कल्ले, सर्वप्रकारके पिठीके पदार्थ, मलरोधक, विरुद्ध, कषैले और दुष्पाच्य द्रव्य ये सब उदावर्त्तमें अहितकर हैं, अतः इनको शीघ्रही त्यागदेवे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

आनाहमें पथ्य और अपथ्य।

उदावर्त्तहितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा।
आनाहे तु यथायोग्यं योजयेन्मतिमान् भिषक् ॥ ४६ ॥

अपथ्यानि प्रदिष्टानि यान्युदावर्त्तिनां पुरा ।
आनाही संपरिहरेत्तानि सर्वाणि यत्नतः ॥ ४७ ॥

आनाहरोगमें उदावर्त्तमें कहीहुई पाचन, लंघनादि सब प्रकारकी हितकर क्रियायें प्रयोग करें । उदावर्त्तरोगमें जो अपथ्य वस्तुयें बतलाई हैं उनको आनाहरोगी तत्काल छोडदे । क्योंकि वे इस रोगमें भी अहितकर हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् उदावर्तानाहचिकित्सा ॥

गुल्मरोगकी चिकित्सा ।

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।
बृंहणं यद्भवेत्सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥

गुल्मरोगमें हल्के, अग्निवर्द्धक, स्निग्ध, गरम, वायुको अनुलोमन करनेवाले और बलकारक पदार्थ अल्पमात्रासे सेवन करनेसे विशेष हित होता है ॥ १ ॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि वैदलम् ।
न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ २ ॥

सूखा मांस कच्ची मूली, मछली, सूखे शाक, दो दलवाले अन्न, आलू (कोदूँ, रताल्रू आदि कन्द शाक) और मीठे फल इत्यादि पदार्थ गुल्मरोगीको त्यागदेने चाहिये अर्थात् इन द्रव्योंका कभी सेवन न करे ॥ २ ॥

सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेषजम् ।
स्नेहनं स्वेदनं चैव निरूहमनुवासनम् ॥ ३ ॥
विरेकवमने चोभे लङ्घनं बृंहणं तथा ।
शमनं चावसेकं च शोणितस्याग्निकर्म्म च ॥
गुल्मिनां कारयेदित्थं यथारम्भे चिकित्सितम् ॥ ४ ॥

स्नेह, स्वेद, निरूहवस्ति, अनुवासन (स्नेहद्रव्योंकी वस्ति), जुल्लाब, वमन, लंघन, पुष्टिकर, एवं वायुनाशक औषध, रक्तमोक्षण (फस्तखुलवाना) और अग्निकर्म (लोहेकी शलाकाको गरम कर दाग देना या सेंकना) ये ग्यारह प्रकारकी क्रियायें गुल्मरोगीको रोगके प्रारम्भमें ही करनी चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या ।
मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ ५ ॥

गुल्मरोगीको सबसे पहले वायुको शमन करनेका उपाय यत्नपूर्वक करना चाहिये । क्योंकि वायुके शान्त हो जानेपर अन्यान्य दोष थोडेही यत्न करनेसे नष्ट होजाते हैं ॥ ५ ॥

स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ॥
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्मान्व्यपोहति ॥६॥

गुल्मरोगकी शान्तिके लिये रोगीको घृत तेलादि स्निग्धद्रव्य पान कराकर अथवा लक्ष्मीविलासादि तेल मलकर पीडास्थानमें स्वेद देवे । यह स्निग्ध पदार्थोंका स्वेद शरीरके सम्पूर्ण स्रोतोंको साफ करके प्रबल वायुको शान्त और मल मूत्रादिके अवरोधको दूरकर गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान् कारयेत्कुशलो भिषक् ।
उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ७ ॥

वायुनाशक औषधियोंका क्वाथ या काँजी आदिसे घडेको भरकर उससे स्वेद देवे । इसको 'कुम्भीस्वेद' कहते हैं । पकाय हुए मांसादिके पिण्डसे जो स्वेद दिया जाताहै उसको 'पिण्डस्वेद' कहते हैं । ईंटके चूर्णको गरम करके काँजीमें डुबोकर स्वेद देनेको 'इष्टकास्वेद' कहते हैं । इन तीनों प्रकारसे स्वेद मन्दोष्ण लेप और वेसबार आदिका स्वेद देकर गुल्मरोगको नष्ट करना चाहिये ॥ ७ ॥

स्थानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः ।
स्वेदोऽनुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८ ॥

गुल्मकी पीडावाले स्थानमें या जिस पार्श्वमें गुल्म उत्पन्न हुआ हो उस पार्श्वकी बाहुकी सन्धिकी अधःस्थित शिरामेंसे रक्त निकलवावे एवं स्वेद और वायुको अनुलोमन करनेवाली क्रिया करके सर्वप्रकारके गुल्मरोगोंको दूर करे ॥ ८ ॥

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धन्वजा रसाः ।
खडाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥ ९ ॥

वातनाशक औषधियोंसे बनाई हुई पेया, कुलथीका यूष, धन्वदेशजन्य प्राणियोंका मांसरस और बृहत्पञ्चमूलके द्वारा सिद्ध किया हुआ खडयूषादि पदार्थ गुल्मरोगीको हितकारी हैं, अतः ये सब भोजन कर ॥ ९ ॥

वातगुल्मचिकित्सा ।

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् ।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ १० ॥

बिजौरेनीम्बूका रस, हींग, अनार, विरियासञ्चर और सैंधानमक इन सबोंको एकत्र पीसकर सुराके मण्डके साथ पीवे तो वातजगुल्मरोग शीघ्र जाय ॥१०॥

नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् ॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशूलं च नाशयेत् ॥ ११ ॥

सोंठ २ तोले, भूसीरहित तिल ८ तोले और गुड ४ तोले इनको एकत्र पीसकर गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातोत्पन्न गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूलरोग नाश होते हैं ॥ ११ ॥

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् ।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ १२ ॥

गरम दूध, या वारुणी (मदिरा) के मण्डमें अण्डीका तेल डालकर पान करे अथवा अण्डीके तेलको दूधके साथ पीवे तो वातका गुल्म दूर होता है ॥ १२ ॥

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाययेत ॥ १३ ॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधिं शोथं नाशयत्याशु तत्परः ॥
एवं तु साधिते क्षीरे स्तोकमप्यत्र दीयते ॥ १४ ॥

छिल्केरहित सूखा हुआ लहसुन ४ पल, दूध २ सेर और जल ८ सेर लेवे। सबको एकत्र पकावे । जब केवल दूधमात्र शेष रहे तब उतारकर थोडा थोडा पीवे। इससे वातजन्य गुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसीवात, विषमज्वर, हृदयरोग, विद्रधि, सूजन आदि विकार जल्द आराम होते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

सर्ज्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा ।
तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १५ ॥

सज्जी, कूठ अथवा केतकीका खार तिलके तेलके साथ मिलाकर पान करनेसे वातसे उत्पन्न हुआ गुल्मरोग शीघ्र शमन होताहै ॥ १५ ॥

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादिरिष्यते ।

वातभव गुल्मरोगमें जो कफकी अधिकता जान पडे तो वमनकारक ओषधियोंका चूर्ण सेवन करे ॥

पित्तगुल्मचिकित्सा ।

पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम् ॥ १६ ॥

पित्तके गुल्ममें स्निग्ध विरेचन (दस्त) और रक्तज गुल्मरोगमें रक्तमोक्षण करावे ॥ १६ ॥

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम् ।
रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥ १७ ॥

स्निग्ध और उष्ण द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करनेसे उत्पन्नहुए पित्तके गुल्ममें दस्त कराना और रूक्ष या उष्णक्रिया करनेसे उत्पन्न गुल्ममें घृत पान करना अत्यन्त हितकारी है ॥ १७ ॥

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् ।
स्नेहिनं संस्रवेत्पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्मणा ॥ १८ ॥

काकोल्यादि गणकी औषधियोंसे बनाये हुए घृत, महातिक्त घृत और वासादि औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए घृत पित्तके गुल्म रोगीको पान कराकर दस्त करावे। पश्चात् वस्तिक्रिया करे ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णजे पित्तगुल्मे काम्पिल्लं मधुना लिहेत् ।
रेचनार्थी रसं वापि द्राक्षायाः सगुडं पिबेत् ॥ १९ ॥

स्निग्ध और उष्ण क्रियाके करनेसे उत्पन्नहुए पित्तज गुल्ममें विरेचनके लिये कबीलेको शहदमें मिलाकर चाटे अथवा दाखोंका क्काथ गुड डालकर पान करे। इससे दस्त होकर उक्त रोग दूर होताहै ॥ १९ ॥

दाहशूलानिलक्षोभस्वप्ननाशारुचिज्वरैः ।
विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तमुपनाहयेत् ॥ २० ॥

गुल्मरोगमें दाह, शूल, वायुका प्रकोप, निद्राका नाश, अरुचि और ज्वर आदि लक्षण उत्पन्न हों तो गुल्म पकता है ऐसा जानना चाहिये। उस समय गुल्म शीघ्र पकजाय ऐसे व्रणशोथमें कहे हुए पाचक द्रव्योंको पीसकर गुल्मस्थानपर लेप करे ॥ २० ॥

पक्के तु व्रणवत्कार्यं व्यधशोधनरोपणम् ।
स्वयमूर्द्ध्वमधो वाऽपि स चेद्दोषः प्रवर्त्तते ॥ २१ ॥

द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान्।
परन्तु शोधनं सर्पिः शुद्धे समधुतिक्तकम् ॥ २२ ॥

जब गुल्म पकजाय और उसमेंसे राध निकलने लगे तब गुल्मस्थानको व्रणकी समान वेधदेवे (चीरदेवे) फिर शोधन (व्रणसे दूषित रक्तको निकालना) और रोपण (व्रणको सुखाना) आदि क्रिया करे। यदि गुल्मस्थान स्वयं विदीर्ण होकर उसमेंसे ऊपर या नीचेसे राध निकलने लगे तो बारहदिनपर्यन्त शोधन और रोपणकर्म नहीं करे। किन्तु इसमें जो अन्य ज्वरादि उपद्रव प्राप्त होजावें तो उनको विधिपूर्वक शान्त करे। १२ दिन बीतनेके बाद शोधक द्रव्योंको मिलाकर घृतपान करे। जब इस घृतको पान करनेसे शरीर शुद्ध होजाय तब व्रण सुखानेके लिये शहद और तिक्तद्रव्योंको मिलाकर घृत पान करे ॥ २१ ॥ २२ ॥

कफगुल्मचिकित्सा।

लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संप्रधुक्षिते।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिना ॥ २३ ॥

कफजनित गुल्मरोगमें लंघन, लेखन और स्वेदक्रियाद्वारा अग्निको दीपन करके सोंठ, मिरच, पीपल और जवाखार इनके कल्कको डालकर सिद्ध कियेहुए घृतको पीवे ॥ २३ ॥

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्लेशताऽरुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः ॥ २४ ॥

जिस गुल्मरोगीके मन्दाग्नि, अल्प पीडा, पेटमें भारीपन, देहमें आर्द्रता, कोष्ठबद्धता, वमनकी इच्छा होना और अरुचि आदि उपद्रव हों तो उसको वमन करानी चाहिये ॥ २४ ॥

मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्।
गुडिकाचूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम् ॥ २५ ॥

कफोत्पन्न गुल्मरोगमें अग्निकी मन्दता, वायुकी प्रबलता और आमाशयमें कफकी अधिकता होनेपर गोली, चूर्ण और काथादि सेवन करने चाहिये ॥ २५ ॥

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च।
श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ २६ ॥

कफके गुल्ममें तिल, अण्डीके बीज, अलसी और सरसों इनको समान भाग लेकर खूब बारीक पीसकर पीडास्थानपर लेप करे। फिर मन्दोष्ण लोहेके पात्रसे स्वेद देवे ॥ २६ ॥

यमानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम्।
पिबेत्सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥ २७ ॥

अजवायनका चूर्ण मट्ठेमें घोलकर और उसमें विरियासञ्चरनमक डालकर पीवे। इससे अग्नि दीपन होती है तथा वायु, मूत्र और मलको अनुलोमन करती है ॥ २७ ॥

द्वन्द्वजगुल्म-चिकित्सा।

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रिया क्रमः ॥ २८ ॥

द्विदोषज (वातपित्त, कफपित्त और वातश्लेष्म) गुल्ममें, दोनों दोषोंको नाश करनेवाली पूर्वोक्त औषधि सेवन करे अर्थात् वातपित्तके गुल्ममें वातगुल्म और पित्तगुल्मकी तथा पित्तश्लेष्म गुल्ममें पित्तगुल्म और श्लैष्मिकगुल्मकी एवं वातश्लेष्मजन्य गुल्ममें वातगुल्म और श्लैष्मिक गुल्मकी औषधि प्रयोग करनी चाहिये ॥ २८ ॥

सान्निपातिकगुल्म-चिकित्सा।

सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ २९ ॥

तीनों प्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुए गुल्ममें, वात, पित्त और कफ गुल्मकी मिली हुई औषधियों द्वारा त्रिदोषनाशक चिकित्सा करे ॥ २९ ॥

वचाविडाभयाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः।
द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् ॥ ३० ॥
चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम्।
शूलार्शोग्रहणीश्वासकासघ्नं दीपनं परम् ॥ ३१ ॥

वच दो भाग, विरियासञ्चरनौन ३ भाग, हरड ६ भाग, सोंठ ४ भाग, हींग १ भाग, कूठ ८ भाग और चीतेकी जड ७ भाग एवं अजवायन ५ भाग लेवे। इन सबका एकत्र बारीक चूर्ण कर मद्यके साथ सेवन करनेसे गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, संग्रहणी, बवासीर, श्वास और खाँसी आदि रोग दूर होते हैं और अग्नि दीपन होती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः।
सुरामण्डेन पातव्यो गुल्मशूलनिषूदनः ॥ ३२ ॥

अजवायन, हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक और हरड ये प्रत्येक औषधि बराबर २ लेकर एकत्र पीसलेवे। इस चूर्णको नित्यप्रति सुरामण्डके साथ पान करनेसे गुल्म और शूलरोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी ।
श्यामा विडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ ३३ ॥
यवक्काथोदकेनैतद् घृतभृष्टं तु पाययेत ।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ ३४ ॥

हींग, पोहकरमूल, धनियाँ, हरड, काली निसोत, विडनोन, सैंधानोन, जवाखार और सोंठ इन सबको समान भाग मिश्रितकर चूर्ण करे। इस चूर्णको घीमें भूनकर जौके क्काथके साथ पान करे तो शूलसहित गुल्म समूल नष्ट भ्रष्ट होता है ॥३३-३४॥

रक्तगुल्म-चिकित्सा ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥ ३५ ।

रक्तजगुल्मरोगवाली स्त्रीके यदि गर्भ होय तो जब गर्भका समय बीत जाय तब अर्थात् दस महीने पीछे रोगिणीको स्नेह (घृतादि) द्रव्य पान कराकर विधिपूर्वक स्वेद देवे फिर स्निग्ध, दस्तावर औषधिद्वारा विरेचन कराकर शरीरका संशोधन करे ॥ ३५ ॥

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ।
कल्कः पीतो हरेद् गुल्मं तिलक्काथेन रक्तजम् ॥ ३६ ॥

सोया, बडी करञ्जकी छाल, देवदारु, भारङ्गी और पीपल इनको समान भाग लेवे और कल्क बनाकर तिलोंके क्काथके साथ पीवे। इससे रक्तगुल्म शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३६ ॥

तिलक्काथो गुडव्योषहिङ्गुभार्ङ्गीयुतो भवेत् ॥ ३७ ॥

पुराना गुड, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, और भारङ्गी इनको समान भाग लेकर पीसलेवे। यह चूर्ण तिलोंके क्काथमें मिलाकर रक्तगुल्मवाली स्त्रीको सेवन करना चाहिये ॥ ३७ ॥

पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ।
सक्षारं त्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मिनी ॥ ३८ ॥

रजोधर्मके नष्ट होनेपर स्त्रियोंको जवाखार और त्रिकुटेका चूर्ण मदिराके साथ

पान करना चाहिये । इससे रक्तगुल्म नष्ट होता है तथा नष्ट पुष्प पुनः प्रकाशित होता है ॥ ३८ ॥

पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ।
उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः ॥ ३९ ॥
न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम् ।
क्षारेण युक्तं पललं सुराक्षीरेण वा पुनः ॥
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरीः क्रियाः ॥ ४० ॥

रक्तगुल्मवाली स्त्री पलाशके खारके जलसे सिद्ध कियेहुए घृतको पान करे अथवा रक्तगुल्मको उष्ण औषधि, सुरामण्ड या दन्तीगुडादिके द्वारा भेदन करे । जब भेदित होजाय तब प्रदरनाशकी विधि करनी चाहिये । यदि उक्त चिकित्साद्वारा गुल्म भेदित न हो और न रक्तस्राव हो तब तिलकुट और पलाशका खार इनको जलमें या थूहरके दूधमें खरल करके बत्ती बनाकर योनिमें प्रवेश करे, इससे रक्तस्राव होकर रक्तगुल्म नष्ट होता है । एकबारमें अत्यन्त रुधिरस्राव होने लगे तो तत्काल रक्तपित्तनाशक क्रिया करे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

हिंग्वादिचूर्ण १-२ ।

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविषूचिकासु ॥ ४१ ॥

१-हींग १ भाग, वच २ भाग, विरियासञ्चरनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, काला जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग और कूठ ८ भाग इन ओषधियोंको एकत्रकर बारीक चूर्ण उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विषूचिकारोगको दूरकरता है ॥ ४१ ॥

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हबुषामभयां शठीम् ।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ४२ ॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् ।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ४३ ॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम् ।
प्राग्भुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ४४ ॥

२-हींग, त्रिकुटा, पाढ, हाऊबेर, हरड, कचूर, अजमोद, अजवायन, इमली, अमलवेंत, अनार, पोहकरमूल, धनियाँ, कालाजीरा, चीता, वच, जवाखार,

सज्जी, सैंधानमक, विडलवण और चव्य इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे । इस चूर्णको नित्यप्रति भोजनसे पूर्व मदिरा या गरम जलके साथ सेवन करे ॥ ४२-४४ ॥

पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गुदयोनिरुजासु च ॥ ४५ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेऽरुचौ ।
उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ४६ ॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
बहुशो गुटिकाः कार्याः कार्षिकाः स्युस्ततोऽधिकाः ४७

यह चूर्ण, वातकफजन्य गुल्म, पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदाके रोग, योनिरोग, संग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, अरुचि, उरोग्रह, विबन्ध, हिचकी, श्वास, खाँसी और गलग्रहादिरोगोंको शीघ्र दूर करता है । इस चूर्णकी यदि गोली बनानी हों तो बिजौरेनीम्बूके रसमें एक सप्ताह पर्यन्त खरल करके दो दो तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । चूर्णकी अपेक्षा यह गोली अधिक फलप्रद है ॥ ४५-४७ ॥

वचादिचूर्ण ।

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं चाम्लवेतसम् ।
यवक्षारं यमानीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४८ ॥
एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् ।
भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥ ४९ ॥

वच, हरड, हींग, सैंधानमक, अमलवेत, जवाखार, अजवायन इनके समान भाग चूर्णको लेकर गरम जलके साथ पीवे । यह चूर्ण शूलसहित सम्पूर्ण गुल्मोंको सात दिनमेंही समूल छिन्नभिन्न करता है और अग्निको बढाता है ॥

लवंगादिचूर्ण ।

लवङ्गदन्ती त्रिवृता यमानी शुण्ठी वचाधान्यकचित्रकाणि । फलत्रयं मागधिका च कट्वी द्राक्षा चवी गोक्षुरयावशूकम् ॥५०॥ एलाऽजमोदा कुटजस्य बीजं विधाय चूर्णानि समान्यमीषाम् । खादेत्ततः पाणितलं हिताशी कोष्णं जलं चानुपिबेत्प्रयत्नात् ॥ ५१ ॥

निहन्ति गुल्मं सरुजं सदाहमर्शांसि शोथांश्च तथा-
ऽऽमवातान्। सर्वोदराण्येव चिरोत्थितानि चूर्णं लवङ्गा-
दिकमाशु हन्ति ॥ ९२ ॥

लौंग, दन्ती, निसोत, अजवायन, सोंठ, वच, धनियाँ, चीता, त्रिफला, पिपल, कुटकी, दाख, चव्य, गोखुरू, जवाखार, छोटी इलायची, अजमोद और कुडेके बीज (इन्द्रजौ) इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। प्रतिदिन इस चूर्णको दो तोले प्रमाण खाय और पीछेसे मंदोष्ण जल पीवे। इसपर हितप्रद भोजन करे। यह चूर्ण उपद्रवयुक्त और दाहसहित गुल्म, बवासीर, सूजन, आमवात एवं बहुत पुराने सर्वप्रकार उदरविकारोंको तत्काल नष्ट करता है ॥ ९०–९२ ॥

कांकायनगुडिका।

शठीं पुष्करमूलं च दन्तीं चित्रकमाढकीम्।
शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ९३ ॥
त्रिवृतायाः पलं चैकं कुर्यात्त्रीणि च हिङ्गुनः।
यवक्षारपले द्वे तु द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ९४ ॥
यमान्यजाजी मरिचं धन्याकं चेति कार्षिकम्।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥
मातुलुङ्गरसे चैता गुडिकाः कारयेद्भिषक् ॥ ९५ ॥

कचूर, पोहकरमूल, दन्ती, चीता, अडहर, सोंठ, वच और निसोत ये प्रत्येक एक एक पल और हींग ३ पल, जवाखार २ पल, अमलवेंत २ पल तथा अजवायन, जीरा, कालीमिरच और धनियाँ ये प्रत्येक एक एक कर्ष, कालाजीरा और अजमोद ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर बिजौरेनीम्बूके रसमें यथाविधि खरल करके गोलियाँ बनालेवे ॥ ९३–९५ ॥

आसां चैकां पिबेद्द्वे वा तिस्रो वाऽनु सुखाम्बुना।
अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाऽथवा ॥ ९६ ॥
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुडिका गुल्मनाशिनी।
अर्शोहृद्रोगशमनी कृमीणां च विनाशिनी ॥ ९७ ॥
गोमूत्रयुक्तं शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम्।
क्षीरेण पित्तगुल्मं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् ॥ ९८ ॥

त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत्सान्निपातिकम् ।
रक्तगुल्मं च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ५९ ॥

इनमेंसे एक या दो अथवा तीन गोली नित्यप्रति प्रातःसमय कुछ गरम जल, काँजी, मदिरा, मांसका यूष, घृत अथवा दूधके साथ भक्षण करे । कांकायन ऋषि की कही हुई यह गुडिका गुल्म, अर्श, हृदयरोग और कृमिरोगोंको नष्ट करनेवाली है । यह वटी गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे बहुत पुराने कफगुल्मको, दूधके साथ पित्तके गुल्मको एवं मदिरा या काँजीके साथ वातजन्यगुल्मको, त्रिफलेके क्वाथ या गोमूत्रके साथ सन्निपातजनितगुल्मको और ऊँटनीके दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियों के रक्तगुल्मरोगको शमन करती है ॥ ५६-५९ ॥

पञ्चाननरस ।

पारदं शिखितुत्थं च गन्धं जैपालपिप्पली ।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ ६० ॥
धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये ।
चिञ्चादलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ६१ ॥

पारा, नीलाथोथा, शुद्ध गन्धक, जमालगोटा, पीपल और अमलतालका गूदा ये सब द्रव्य समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करे । इसको प्रतिदिन दो दो रत्ती की मात्रासे आमलोंके रसमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे इमलीके पत्तोंका स्वरस पान करे । इसपर दही और भात मिलाकर भक्षण करे । इस रसके सेवन करनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

शिखिवाडवरस ।

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम् ।
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम् ॥ ६२ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च ।
वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाडवः ॥ ६३ ॥

ताम्रभस्म, पारदभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, सोनामाखी और जवाखार ये सब समान भाग लेवे । फिर सबको चीतेके रसमें एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । नित्यप्रति एक गोली पानके रसके साथ सेवन करे । यह शिखिवाडवनामवाला रस वातगुल्मरोगको बहुत जल्द खोदेता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

नागेश्वररस।

शुद्धसूतस्तथा गन्धो नागवङ्गौ मनःशिला।
निशादलं च त्रिक्षारं लोहं शुल्वं तथाऽभ्रकम् ॥ ६४ ॥
एतानि समभागानि स्नुहीक्षीरेण मर्दयेत्।
चित्रको वासको दन्ती क्वाथेनैकेन मर्दयेत् ॥ ६५ ॥
दिनैकं तु प्रयत्नेन रसो नागेश्वरो मतः।
भक्षयेन्माषमेकं तु पर्णखण्डेन गुल्मवान् ॥
गुल्मप्लीहपाण्डुशोथमाध्मानं च विनाशयेत् ॥ ६६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शीशा, वङ्ग, मैनसिल, हल्दीके पत्ते, जवाखार, सज्जी, सुहागा, लोहभस्म, ताँबा, और अभ्रकभस्म इन सबको बराबर २ लेकर थूहरके दूधमें खरल करें। फिर चीता अडूसा और दन्ती इनमेंसे किसी एकके क्वाथमें एक दिनतक अच्छेप्रकार खरल करे। इस नागेश्वररसको प्रतिदिन एकएक माशा प्रमाण पानके रसके साथ भक्षण करे। इससे गुल्म, प्लीहा, पाण्डु, सूजन, अफारा आदि रोग दूर होते हैं ॥ ६४–६६ ॥

गुल्मकालानलरस।

पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कणं समम्।
तोलद्वयमितं भागं यवक्षारं च तत्समम् ॥ ६७ ॥
मुस्तकं पिप्पली शुण्ठी मरिचं गजपिप्पली।
हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेत्सुधीः ॥ ६८ ॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः।
पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥ ६९ ॥
तत्पुनश्चूर्णयेत्पश्चात्सर्वगुल्मनिवारणम्।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ ७० ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्द्वजं विनिहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ॥ ७१ ॥

पारा, गन्धक, हरताल, ताँबा, सुहागा और जवाखार ये प्रत्येक दो दो तोले, नागरमोथा, पीपल सोंठ, मिरच, गजपीपल, हरड, वच और कूठ ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला लेवे। इन सबको एकत्र कूट पीसकर पित्त-

पापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरचिटा और पाढ इनके क्वाथमें भावना देवे। फिर धूपमें सुखाकर चूर्ण करलेवे। इन चूर्णको नित्यप्रति चार चार रत्ती, हरडके साथ सेवन करे। यह गुल्मकालानलरस वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सन्निपातज, द्विदोषज और विशेषकर वातगुल्मको तत्काल नष्ट करतीहै। संसारकी भलाईके लिये श्रीमान् गहनानन्दनाथने इसको बनायाहै ॥६७–७१॥

बृहद्गुल्मकालानलरस।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं टङ्कणं कटुकं वचाम्।
द्विक्षारं सैन्धवं कुष्ठं त्र्यूषणं सुरदारु च ॥ ७२ ॥
पत्रमेलां त्वचं नागं खादिरं सारमेव च।
गृहीत्वा समभागेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ७३ ॥
जयन्तीचित्रकोन्मत्तकेशराजदलं तथा।
निष्पीड्य स्वरसं दत्त्वा भावयेत्कुशलो भिषक् ॥ ७४ ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिका कारयेत्ततः।
उत्थाय भक्षयेत्प्रातरनुपानं जलं पयः ॥ ७५ ॥

अभ्रक, लोहा, पारा गन्धक, सुहागा, कुटकी, वच, जवाखार, सज्जी, सैंधानमक. कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, देवदारु, तेजपात, इलायची, दारचीनी; नागकेशर और खैरसार इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर जयन्ती (जैतीघास), चीता, धतूरा और भाङ्गरा इनके पत्तोंके रसमें क्रमशः खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनावे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस रसकी एकएक गोली जल या दूधके साथ भक्षण करे ॥७२–७५॥

गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च।
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं चैव सुदारुणम् ॥ ७६ ॥
हलीमकं रक्तपित्तं मन्दाग्निमरुचिं तथा।
ग्रहणीमार्द्रवं कार्श्यं जीर्णं च विषमज्वरम् ॥ ७७ ॥

यह पाँचों प्रकारके गुल्म, यकृत, तिल्ली, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, दारुण शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, मन्दाग्नि, अरुचि, संग्रहणी, आर्द्रव, कृशता, जीर्णता और विषमज्वर इत्यादि रोगोंको दूर करता है ॥ ७६–७७ ॥

महागुल्मकालानलरस।

गन्धकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलौहकम्।
समांशं मर्दयेद्गाढं कन्यानीरेण यत्नतः ॥ ७८ ॥

संपुटं कारयेत्पश्चात् सन्धिलेपं च कारयेत्।
ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥ ७९॥
द्विगुञ्जां भक्षयेद् गुल्मे शृङ्गवेरानुपानतः।
सर्वगुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ ८०॥

शुद्ध गन्धक, हरताल, ताम्रभस्म और तीक्ष्णलोह इनको सम भाग लेकर घीग्वा-रके रसमें विधिपूर्वक खरल करे। फिर इसको सम्पुटमें रख सन्धिस्थानोंको बन्द करके गजपुटमें पकावे। जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे। इसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण अदरखके रसके साथ खाय। जैसे सूर्य अन्धकारको हरताहै वैसेही यह रस सर्वप्रकारके गुल्मोंको अल्पकालमें ही नष्ट करता है॥ ७८-८०॥

गुल्मशार्दूलरस।

रसं गन्धं शुद्धलौहं गुग्गुलुः पिप्पलः पलम्।
त्रिवृत्ता पिप्पली शुण्ठी शठी धान्यकजीरकम्॥ ८१॥
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं पलार्द्धं कानकं फलम्।
सञ्चूर्ण्य वटिका कार्या घृतेन वल्लमानतः॥
वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बु पिबेदनु॥ ८२॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहा, गूगल, पीपलके वृक्षकी छाल, निसोत, पीपल, सोंठ, कचूर, धनियाँ और जीरा ये प्रत्येक एक एक पल तथा जमालगोटे दो तोले लेवे। सबको एकत्र घृतमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत कर नित्यप्रति दो गोली अदरखके रसके साथ खाय और ऊपरसे गरमजल पीवे॥

हन्ति प्लीहयकृद्गुल्मकामलोदरशोथकम्।
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरं तथा॥ ८३॥
गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं गुल्मशार्दूलः॥ ८४॥

इससे प्लीहा, यकृत्, गुल्म, कामला, पेटकी पीडा, सूजन, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा रक्तजगुल्म नष्ट होते हैं। श्रीमान् गहनानन्दनाथ महाराजने इस गुल्म-शार्दूलनामक रसको निर्मित किया है॥ ८३-८४॥

सर्वेश्वररस।

ताम्रं दशगुणं स्वर्णात्स्वर्णपादं कटुत्रिकम्।
त्रिकटु त्रिफला तुल्या त्रिफलार्द्धमयोरजः॥ ८५॥

अयसोऽर्द्धं विषं चैव सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
सर्वेश्वरो रसो नाम गुल्मरौधिरनाशनः ॥ ८६ ॥

ताँबेकी भस्म १० तोले, सुवर्णभस्म एक तोला, त्रिकुटा ३ मासे त्रिफला ३ मासे, लोहभस्म डेढ मासा और विष पौन मासा लेवे । सबको एकत्र खरल कर गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन दो रत्तीभर खाय । इससे स्त्रियोंका रक्तगुल्म शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

गुल्मवज्रिणीवटिका ।

रसगन्धकताम्रं च कांस्यं टङ्कणतालकम् ।
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः ॥ ८७ ॥
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये ।
निर्मिता नित्यनाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी ॥
कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, ताँबा, काँसा, सुहागा और हरताल ये प्रत्येक एकएक पल लेकर उत्तम रीतिसे खरल करे । फिर तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । अपनी अग्निका बलाबल विचारकर इन गोलियोंको सेवन करे । श्रीमान् नित्यनाथने इस गुल्मवज्रिणीवटीको बनाया है । यह कामला, पाण्डु, ज्वर और शूलरोगको नष्ट करनेवाली है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

रसायनामृतलौह ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरकद्वयम् ।
यमानीद्वयभूनिम्बं त्रिवृद्दन्ती च निम्बकम् ॥ ८९ ॥
सर्वेषां कार्षिकं भागं सैन्धवं कर्षमभ्रकम् ।
खण्डस्य षोडशपलं प्रस्थं च त्रिफलाजलम् ॥ ९० ॥
जम्बीराणां रसं दद्यात्पलषोडशकं तथा ।
पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लौहं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ ९१ ॥
सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं पलचतुष्टयम् ।
सर्वरोगेषु युञ्जीत महामृतरसायनम् ॥ ९२ ॥

त्रिफलेका क्वाथ १ प्रस्थ, जम्बीरीनींबूका रस १६ पल और खाँड १६ पल इन सबको एकत्र मिलाकर पकावे । पकते पकते जब गाढा होजाय तब इसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, अजमोद, चिरा-

यता, निसोत, दन्ती, नीमकी छाल, सेंधानमक और अभ्रकभस्म इन सब ओषधि-धियोंको दो दो तोले कुटापिसा चूर्ण तथा लोहभस्म ८ तोले और घृत १६ तोले डालकर यथाविधि पकावे । इस रसायनामृत लोहको सब रोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८९-९२ ॥

गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं जीर्णज्वरं तथा ॥
रोगान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९३ ॥

सूर्यनारायण जैसे अन्धकारके समूहको नष्ट करते हैं वैसेही यह औषधि पाँच प्रकारके गुल्म, जिगर, तिल्ली, उदररोग, कमलवाय , पाण्डु, शोथ, जीर्ण ज्वर और अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको शीघ्र नाश करती है ॥ ९३ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभया ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ९४ ॥
तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् ।
ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात्तैलाच्चापि चतुःपलम् ॥ ९५ ॥
पलमेकं कणाशुण्ठयोः सिद्धे लेहे च शीतलम् ।
क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ९६ ॥

पोटलीमें बँधीहुई हरड २५ पल, दन्तीकी जड २५ पल और चीतेकी जड २५ पल लेवे । सबको एकत्र ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते ४ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और पोटलीमेंसे हरडोंको निकालकर गुठली निकाल डाले । तदनन्तर गुड २५ पल, काढेमेंसे निकालीहुई सब हरड निसोतका चूर्ण १६ तोले, तिलका तेल १६ तोले, पीपल और सोंठ चार चार तोले इन सबको पूर्वोक्त क्काथमें डालकर अच्छे प्रकार पकावे । जब पककर अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतारले, शीतल होजानेपर उसमें शहद १६ तोले और चातुर्जातकका चूर्ण चार तोले मिलादेवे ॥ ९४-९६ ॥

ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ९७ ॥
प्लीहश्वयथुगुल्माशोंहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः ।
शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ ९८ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन चार तोले अवलेह और एक हरड सेवन करे तो इससे कोठा स्निग्ध होकर सुखपूर्वक दस्त होने लगते हैं तथा प्लीहा, सूजन, गुल्म, बवासीर, हृदयरोग, पाण्डु, संग्रहणी, वमन, विषमज्वर, कुष्ठ और अरुचि आदि रोग शमन होते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

पञ्चपलकघृत ।

पिप्पल्याः पिचुरर्द्धाद्धों दाडिमाद्द्विपलं पलम् ।
धान्यात्पञ्च घृताच्छुण्ठयाः कर्षं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ९९॥
सिद्धमेतद घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति ।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरम् ॥ १०० ॥

पीपल ३ तोले, अनारके बीज ८ तोले, धनियाँ ४ तोले, घृत २० तोले, सोंठ २ तोले और दूध चौगुना लेवे । सबको एकत्रकर अच्छेप्रकार घृतको सिद्ध करे । यह घृत वातगुल्म, योनिशूल, शिरःशूल, अर्श और विषमज्वर इन रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

भल्लातकाद्यघृत ।

भल्लातकात्कल्ककषायपक्कं सर्पिः पिबेच्छर्करया विमिश्रम् ।
तद्रक्तगुल्मं विनिहन्ति पीतं बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥

भिलावोंके कल्क और क्वाथके द्वारा घृतको पकावे । जब पककर शीतल हो जाय तब मिश्री डालकर पान करे । इससे रक्तगुल्म तत्काल दूर होता है और शहदके साथ पान करनेसे कफजन्य गुल्मरोग नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

त्रायमाणाद्यघृत ।

जले दश[1]गुणे साध्यं त्रायमाणाचतुःपलम् ।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥ १०२॥
रोहिणीकटुकामुस्तत्रायमाणादुरालभाः ।
कल्कास्तत्रामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ १०३ ॥
रसस्यामलकानां च क्षीरस्य च घृतस्य च ।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥१०४॥

१–" पलो संख्यागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते ।
चत्वारिंशत्पलं तेन तोयं दशगुणं भवेत् ॥ "

पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकज्वरम्।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम् ॥ १०५ ॥

त्रायमाणाको १६ तोले लेकर दसगुने जलमें पकावे। पकते पकते जब आधा जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें हरड, कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाणा, धमासा, भुई आमला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन और नीलकमल इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं आमलोंका रस, दूध और घृत ये प्रत्येक आठ आठ पल डालकर अच्छे प्रकार पकावे। उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुए इस घृतको सेवन करनेसे पित्तगुल्म, रक्तगुल्म विसर्प, पित्तका ज्वर, हृदयरोग, कामला, कुष्ठप्रभृतिरोग शीघ्र दमन होते हैं ॥ २-२०५ ॥

नाराचघृत।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका।
स्नुहीक्षीरं विडङ्गानि घृतं दशममुच्यते ॥ १०६ ॥
एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत्।
अस्य मात्रां पिबेत्काले पलार्द्धेन च सम्मिताम्।
उष्णोदकेन च प्रातर्विरेकार्थं पिबेन्नरः ॥ १०७ ॥

चीतेकी जड, त्रिफला, दन्ती, निसोत, कटेरी, थूहरका दूध और वायविडङ्ग इन औषधियोंको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे। फिर इस कल्कके द्वारा १६ तोले घृतको दो सेर जलमें विधिपूर्वक पकावे। नित्यप्रति प्रातःकाल इस घृतको दो तोलेकी मात्रासे गरम जलके साथ दस्त होनेके लिये सेवन करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

पिबेत्सर्पिर्यवागूं हि पेयां वा क्षीरसाधिताम्।
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १०८ ॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं प्लीहार्शोब्रध्नकुण्डलम्।
ग्रहणीं दीपयेन्मन्दां कोष्ठदोषांश्च नाशयेत् ॥ १०९ ॥
नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्निभम् ॥ ११० ॥

इसपर घृतमिश्रित यवागू या दूधमें सिद्ध कीहुई पेया अथवा जांगलदेशके जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करे। यह नाराचघृत वातगुल्म, उदावर्त्त, प्लीहा, अर्श, ब्रध्नकुण्डलरोग, संग्रहणी, मन्दाग्नि और कोठेके सम्पूर्ण दोषोंको नाराच (बाण) के समान तत्क्षण नाश करता है ॥ १०८-११० ॥

हबुषाद्यघृत ।

हबुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैः पाचयेद् घृतम् ॥ ११ ॥
सकोलमूलकरसं सक्षीरदधिदाडिमम् ।
तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ १२ ॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलं च घृतमेतदपोहति ॥ १३ ॥

घृत दो सेर, सूखेबेरोंका क्वाथ दो सेर, सूखीमूलीका क्वाथ दो सेर, दूध दो सेर, दही दो सेर और अनारका क्वाथ दो सेर एवं कल्कके लिये हाऊबेर, सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, चव्य, चीता, सैंधानोन, कालाजीरा, पीपलामूल और अजवायन इन औषधियोंका चूर्ण आधसेर लेवे । फिर सबको एकत्रकर भलीभाँति घृतको सिद्ध करे । इस घृतको गरम दूधके साथ पान करे । वातगुल्म, शूल, आनाह, विबन्ध, योनिरोग, बवासीर, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पार्श्व, हृदय और बस्ति इनके शूलको यह घृत नष्ट करता है ॥ १३ ॥

क्षीरषट्पलकघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४ ॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ १५ ॥

घी १ प्रस्थ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इन औषधियोंका कल्क चार चार तोले और दूध १ प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको पकावे । इस घृतको नियमानुसार सेवन करनेसे कफजन्य गुल्म, संग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, खाँसी, ज्वरादि उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

धात्रीषट्पलकघृत ।

धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं पाचयेद् घृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १६ ॥

घृत १ प्रस्थ, आमलोंका रस ४ सेर एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इनका कल्क चार चार तोले लेवे । सबको ४ सेर जलमें मिलाकर

यथाविधि घृतको सिद्ध करे। गुल्मरोगीको यह घृत शर्करा और सैंधानमक डालकर पान करनेसे विशेष उपकार करता है ॥ १६ ॥

द्राक्षाद्यघृत।

द्राक्षामधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम्।
परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसम्मिताम् ॥ १७ ॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ १८ ॥
साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम्।
प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ १९ ॥
"साहचर्यादिह पृथक् घृतादेः क्वाथतुल्यता ॥"

दाख, महुआ, खजूर, विदारीकन्द, शतावर, फालसे और त्रिफला ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर आठ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते दो सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें आमलोंका रस २ सेर, घृत २ सेर, ईखका रस २ सेर, दूध २ सेर और हरडका कल्क आधा सेर लेकर डालदेवे। सबोंको अच्छे प्रकार मिलाकर घृतको सिद्ध करे। जब सिद्ध होकर शीतल होजाय तब खाँड और शहद आध आध सेर मिलादेवे। इस घृतको सेवन करनेसे पित्तोत्पन्न गुल्म एवं अन्यान्य प्रकारके पित्तके सब विकार नाश होते हैं ॥ १७-१९ ॥

गुल्मरोगमें पथ्य।

स्नेहः स्वेदो विरेकश्च वस्तिर्बाहुशिराव्यधः।
लङ्घनं वर्त्तिरभ्यङ्गः स्नेहः पक्के तु पाटनम् ॥ १२० ॥
संवत्सरसमुत्पन्नाः कलाया रक्तशालयः।
खडः कुलत्थयूषश्च धन्वमांसरसं सुरा ॥ २१ ॥
गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परूषकम्।
खर्जूरं दाडिमं धात्री नागरङ्गाम्लवेतसम् ॥ २२ ॥
तक्रमेरण्डतैलं च लशुनं बालमुस्तकम्।
पत्तुरो वास्तुकं शिग्रु यवक्षारो हरीतकी ॥ २३ ॥
रामठं मातुलुङ्गं च त्र्यूषणं सुरभीजलम्।
यदन्नं स्निग्धमुष्णं च बृंहणं लघु दीपनम् ॥
वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ॥ २४ ॥

स्नेह (घृत तैलादि) पान, स्वेददेना, विरेचन (जुलाब), पिचकारी लगाना, बाहोंकी अधःस्थ शिराको वेदना, लंघन, गुदामें बत्ती चढाना, तेलकी मालिश, स्निग्ध द्रव्योंका प्रयोग, पाटन (पकनेपर नस्तरसे चीरना), पुरानी मटर, शालिके चावल, खडयूष, कुलत्थीका यूष, धन्वदेशके जीवोंका मांसरस, मदिरा, गौका व बकरीका दूध, दाख, फालसे, खजूर, अनार, आमले, नारङ्गी, अमलबेंत, मट्ठा, अण्डीका तेल, लहसन, कच्चीमूली, शान्तिशाक, बथुआ, सहिंजनेकी फली, जवाखार, हरड, हींग, बिजौरानींबू, सोंठ, मिरच, पीपल, गोमूत्र एवं स्निग्ध, गरम, पुष्टिकर, हलका, अग्निवर्द्धक और वायुको अनुलोमन करनेवाला भोजन ये सब पदार्थ गुल्मरोगीको हितकारी हैं ॥ १२०–१२४ ॥

गुल्मरोगमें अपथ्य ।

वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्यशनानि च ।
वल्लूरं मूलकं मत्स्यान्मधुराणि फलानि च ॥ १२५ ॥
शुष्कशाकं शमीधान्यं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
अधोवातशकृन्मूत्रश्रमश्वासाश्रुधारणम् ॥
वमनं जलपानं च गुल्मरोगी परित्यजेत् ॥ १२६ ॥

गुल्मरोगी वायुवर्द्धक समस्त पदार्थ, विरुद्ध भोजन, सूखामांस मूली, मछली, मीठे फल, सुखे शाक, समेके चावल, विष्टम्भकारक, भारी पदार्थ तथा अपानवायु, मल, मूत्र, परिश्रम, श्वास और आँसू इनके वेगको रोकना, वमन और जलपान करना सबको त्याग देवे, क्योंकि ये सब गुल्मरोगमें अपथ्य हैं ॥ १२५–१२६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गुल्मरोगचिकित्सा ।

हृद्रोगकी चिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ।
द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च ॥ १ ॥

वातजन्य हृदयरोगमें–तैलादिके द्वारा स्निग्धशरीरवाले रोगीको दशमूलके क्वाथमें घृत, लवण और मैनफलका चूर्ण डालकर वमन करावे ॥ १ ॥

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम्।
सौवर्चलमथो शुण्ठी अजमोदा च चूर्णितम् ॥ २ ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः।
पाययेच्छुद्धदेहं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ३ ॥

वमन विरेचनादिके द्वारा शुद्ध हुए रोगीको पीपल, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, सोंठ और अजमोद इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको एकत्र करके बिजौरेनिम्बूके रस, काँजी, कुलथीके यूष, दही, मद्य, आसव या अन्य घृतादि स्निग्ध पदार्थोंके साथ मिश्रितकर पान करावे ॥

नागरं वा पिबेदुष्णं कषायं चाग्निवर्द्धनम्।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ ४ ॥

सोंठके मन्दोष्ण क्वाथको पान करनेसे अग्नि बढती है तथा खाँसी, श्वास, वायुविकार, शूल और हृदयरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत्।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ॥
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥ ५ ॥

पित्तोत्पन्न हृदयरोगमें कुम्भेरके फल, मुलहठी इनके अर्द्धपक क्वाथमें शहद, मिश्री और गुड मिलाकर रोगीको पान कराकर वमन करावे। एवं मधुर पदार्थोंके साथ सिद्ध किया हुआ घी और पित्तज्वरनाशक क्वाथ सेवन करे ॥ ५ ॥

शीताः प्रदेहाः परिषेचनानि तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥
पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीं च ॥ ६ ॥

पित्तज हृदयरोगमें चन्दनादि शीतल पदार्थोंका प्रलेप, शीतल जलका सेचन और विरेचनादि क्रिया करे। एवं वमन विरेचनादिसे शरीरकी शुद्धि हो जानेपर, दाख, मिश्री, शहद और फालसे इत्यादि द्रव्योंके साथ पित्तनाशक अन्न तथा पान सेवन करे। मुलहठी और कुटकीको जलमें पीसकर मिश्री डालकर पान करे तो पित्तका हृद्रोग दूर होता है ॥ ६ ॥

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥ ७ ॥

अर्जुनवृक्षकी छाल २ तोले, दूध ८ तोले और जल ३२ तोले सबको एकत्र कर पकावे । जब ८ तोले जल शेष रहजाय तब शीतल होजानेपर उस दूधको मिश्री मिलाकर पीवे । इसी प्रकार पञ्चमूल, खिरैंटी या मुलहठीके क्वाथसे सिद्ध किये हुए दूधको चीनी डालकर पीवें तो पित्तज हृदयरोग दूर होय ॥ ७ ॥

घृतेनदुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ८ ॥

जो हृदयरोगी घृत, दुग्ध अथवा गुडके शर्बतके साथ अर्जुनकी छालका चूर्ण सेवन करे तो वह हृदयरोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तरोगको नष्ट करके दीर्घजीवी होता है ॥ ८ ॥

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते ।
वातहृद्रोगनुच्चूर्णं पिप्पल्यादिं च पाययेत् ॥ ९ ॥

कफजन्य हृदयरोगमें वच और नीमकी छालका क्वाथ पान कराकर वमन करावे । फिर वातजहृदयरोगको नष्ट करनेवाला पिप्पल्यादिगणका चूर्ण सेवन करे ॥ ९ ॥

त्रिदोषजे लंघनमादितः स्यादन्नं च सर्वेषु हितं विधेयम् ।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥

त्रिदोषजहृदयरोगमें पहले लंघन करावे, फिर त्रिदोषनाशक तथा हितकारी अन्न-पान देवे । इसमें तीनों दोषोंकी प्रबलता, समता अथवा हीनताको अच्छे प्रकार विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् ।
हृच्छूलश्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ ११ ॥

पोहकरमूलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो हृदयशूल, श्वास, खाँसी, क्षय और हिचकी आदि रोग दूर होते हैं ॥ ११ ॥

तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थजं चापि ।
पिबति पयोऽनु च यः स भवेज्जितसकलहृदामयः पुरुषः १२ ॥

गेहूँ और अर्जुनकी छालके चूर्णको तेल, घी और गुडके द्वारा पकाकर दूधके साथ पीवे । इससे सर्वप्रकारका हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १२ ॥

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ १३ ॥
रसायनं परं बल्यं वातजिन्मासयोजितम् ।
संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १४ ॥

गंगेरनकी जडके चूर्णको दूधके साथ पान करे तो हृदयरोग, श्वास और खाँसी नष्ट होते हैं। एवं अर्जुनकी छालके चूर्णको यदि एक महीनेतक सेवन करे तो अत्यन्त बल बढता है और वायुका प्रकोप शमन होता है। यदि इस उत्तम रसायनको एक वर्षतक सेवन करे तो सौ वर्ष पर्यन्त जीवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥१५॥

हींग, वच, विडनमक, सोंठ, पीपल, कूठ, हरड, चीता, जवाखार, काला नमक और पोहकरमूल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनालेवे। प्रतिदिन इस चूर्णको जौके क्वाथके साथ सेवन करनेसे शूल और हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारयोजितः ।
कासं श्वासं च हृद्रोगं गुल्मशूलं च नाशयेत् ॥ १६ ॥

दशमूलके काढेको सैंधानमक और जवाखारके चूर्णके साथ सेवन करे तो खाँसी, श्वास, हृदयरोग, गुल्म तथा शूलरोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

पाठां वचां यवक्षारमभयां चाम्लवेतसम् ।
दुरालभां चित्रकं च त्र्यूषणं च फलत्रयम् ॥ १७ ॥
शठीं पुष्करमूलं च तिन्तिडीकं सदाडिमम् ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १८ ॥
सुखोदकेन मद्यैर्वा प्लुतान्येतानि पाययेत् ।
अर्शः शूलं च हृद्रोगं गुल्मं चाशु नियच्छति ॥ १९ ॥

पाढ, वच, जवाखार, हरड, अमलबेंत, धमासा, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, कचूर, पोहकरमूल, इमली, अनार और बिजौरे नींबूकी जड ये सब समान भाग ले एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। यह चूर्ण कुछ गरमजल या मदिराके साथ पान करे तो बवासीर, शूल, हृदयरोग और गुल्मरोगको तत्काल नष्ट करता है ॥ १७-१९ ॥

पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविषाणं हि सर्पिषा पिबतः ।
हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपयात्यचिरेण कष्टमपि ॥ २० ॥

हिरनके सींगको पुटपाककी विधिसे भस्मकर पत्थरके खरलमें पीसलेवे। फिर इस भस्मको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त पुराने और कष्टसाध्य हृदयरोग तथा पृष्ठशूल शीघ्र शमन होते हैं ॥ २० ॥

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ।
दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ २१ ॥
सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ।
विडङ्गगाढं धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ २२ ॥

कृमिजनित हृदयरोगमें प्रथम रोगीको स्निग्ध करके मांसके साथ तीन दिनतक भात भक्षण करावे । फिर दहीके और तिलकुटके साथ तीन दिनतक मांसरस और भात भक्षण कराकर पश्चात् विरेचन देवे । तदनन्तर दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सेंधानमक, जीरा और मिश्री इन ओषधियोंके समान भाग चूर्णके साथ वायविडङ्गका चूर्ण मिलीहुई धानोंकी काँजीको पान करावे ॥ २१ ॥ २२ ॥

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गमयसंयुतम् ।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात्कृमयो नृणाम् ।
यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम् ॥ २३ ॥

वायविडङ्गके चूर्णको और कूठके चूर्णको गोमूत्रमें मिलाकर पान करनेसे हृदयमें स्थित कृमि स्वस्थानसे गिरकर मलके द्वारा निकल जाते हैं । इस प्रकार कृमि पतित होजानेपर रोगीको भोजनके लिये वायविडङ्गका चूर्ण डालकर जौका बना अन्न भक्षण करावे ॥ २३ ॥

रसायन ।

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना ।
एकविंशतिधा घर्म्मे भावितानि विधानतः ॥ २४ ॥
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम् ॥
कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ॥ २५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म इनको समान भाग लेवे और सबको एकत्रकर अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथमें २१ वार भावना देवे । फिर धूपमें सुखाकर सबको बारीक पीसलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल १ मासे चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और कृमिजनित हृदयरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

नागार्जुनाभ्र ।

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः ।
सत्त्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं खल्ले विशोषितम् ॥ २६ ॥

छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम् ।
हृद्रोगं सर्वशूलार्शोहृल्लासच्छर्द्यरोचकान् ॥ २७ ॥
अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
शोथोदराम्लपित्तं च विषमज्वरमेव च ॥
हन्त्यन्यानपि रोगांश्च बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ २८ ॥

हजार पुटों द्वारा शुद्ध कीहुई वज्राभ्रकभस्मको अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथमें सात दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करके छायामें सुखाकर गोलियाँ बनालेवे। यह नागार्जुन नामकी अभ्रक हृदयरोग, सर्वप्रकारक शूल, अर्श, हल्लास, वमन, अरुचि एवं अन्य नाना प्रकारकी व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती है तथा बल्य, पुष्टिकर और रसायन है ॥ २६–२८ ॥

हृदयार्णवरस ।

सूतार्कगन्धकं क्वाथे वराया मर्दयेद्दिनम् ।
काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्रां च भक्षयेत् ।
हृदयार्णवनामाऽयं हृद्रोगदलनो रसः ॥ २९ ॥

शुद्ध पारा, ताँबा और शुद्ध गन्धक इनको समान भाग लेकर त्रिफलेके क्वाथ और मकोयके रसमें एक दिनतक विधिपूर्वक खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति एक एक गोली सेवन करनेसे हृदयार्णवनामवाला यह रस हृदय रोगको नष्ट करताहै ॥ २९ ॥

पञ्चाननरस ।

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेद्द्राक्षास्तनीद्रवैः ।
यष्टिखर्ज्जूरसलिलैर्दिनं च परिमर्दयेत् ॥
धात्रीचूर्णं सितां चानु पिबेद्धृद्रोगशान्तये ॥ ३० ॥

पारे और गन्धकको बराबर २ लेकर आमलोंके रसमें खरल करके दाख मुलहठी और खजूरके क्वाथमें एक दिनतक यथाविधि खरल करे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्तीभर, आमलोंके चूर्ण और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे हृदयरोग शान्त होताहै ॥ ३० ॥

प्रभाकरवटी ।

माक्षिकं लोहमभ्रं च तुगाक्षीरं शिलाजतु ।
क्षिप्त्वा खल्लोदरे पश्चाद्भावयेत्पार्थवारिणा ॥ ३१ ॥

वल्लद्वयमितां कुर्याद्वटीं छायाविशोषिताम् ।
प्रभाकरवटी सेयं हृद्रोगान्निखिलाञ्जयेत् ॥ ३२ ॥

सोनामाखी, लोहेकी भस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन और शिलाजीत ये सब औषधि समान भाग लेवे । सबको खरलमें रख अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथको डालकर अच्छे प्रकार खरल करे । फिर छायामें सुखाकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह प्रभाकरवटी यथानियम सेवन करनेसे समस्त हृदयसम्बन्धी रोगोंको दूर करती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

चिन्तामणिरस ।

पारदं गन्धकं चाभ्रं लौहं वङ्गं शिलाजतु ।
समं समं गृहीत्वा च स्वर्णं सूताङ्घ्रिसम्मितम् ॥ ३३॥
स्वर्णस्य द्विगुणं रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
चित्रकस्य द्रवेणापि भृङ्गराजाम्भसा ततः ॥ ३४ ॥
पार्थस्याथ कषायेण सप्तकृत्वो विभावयेत् ।
ततो गुञ्जामिताः कुर्याद्वटीश्छायाप्रशोषिताः ।
एकैकां दापयेदासां गोधूमक्वाथवारिणा ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, वङ्ग और शिलाजीत ये प्रत्येक एक एक तोला एवं सुवर्णभस्म तीन मासे, चाँदीके भस्म ६ मासे लेवे, सबको एकत्रकर चीता, भाँगरा और अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथमें ७ बार खरल करके छायामें सुखाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय एक एक गोली गेहूँके क्वाथके साथ सेवन करे ॥ ३४-३५ ॥

हृद्रोगान्निखिलान् हन्ति व्याधीन् फुफ्फुसजानपि ।
प्रमेहान्विंशतिं श्वासान् कासानपि सुदुस्तरान् ॥ ३६ ॥
बलपुष्टिकरो हृद्यो रसश्चिन्तामणिः स्मृतः ॥ ३७ ॥

यह चिन्तामणि रस सम्पूर्ण हृदयरोग, फुफ्फुसजन्यरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, श्वास, दुस्तर खाँसी, अन्य सर्वप्रकारके रोगोंको, तत्काल नष्ट करता है एवं बल और पुष्टिकारक तथा हृदयको अत्यन्त हितकारी है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विश्वेश्वररस ।

स्वर्णाभ्रलोहवङ्गानां रसगन्धकयोरपि ।
वैक्रान्तस्य च संगृह्य भागांस्तोलकसम्मितान् ॥ ३८ ॥

कर्पूरसलिलेनाथ भावयित्वा यथाविधि।
रक्तिकैकप्रमाणेन विदध्याद्वटिकास्ततः॥ ३९॥
अयं विश्वेश्वरो नाम रसः फुफ्फुसजान् गदान्।
हृद्रोगांश्च जयेत्सर्वान् संशयोऽत्र न विद्यते॥ ४०॥

सोना, अभ्रक, लोहा, वङ्ग, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और वैक्रान्तमणि इन सब द्रव्योंकी भस्मको एक एक तोला लेकर कपूरके जलमें विधिपूर्वक खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन नियमानुसार सेवन करनेसे यह विश्वेश्वर-नामक रस फुफ्फुससे उत्पन्न हुए रोगों और समस्त हृदयरोगोंको शीघ्र जीतता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥ ३८–४०॥

शङ्करवटी।

रसस्य भागाश्चत्वारो बलेरष्टौ तथा मताः।
त्रयो लौहस्य नागस्य द्वावित्येकत्र मर्दयेत्॥ ४१॥
भावयेत्काकमाच्याश्च चित्रकस्यार्द्रकस्य च।
स्वरसेन जयन्त्याश्च वासाया बिल्वपार्थयोः॥ ४२॥
ततो गुञ्जाद्वयमितां विदध्याद्वटिकां भिषक्।
एकैकां दापयेदासामीषदुष्णेन वारिणा॥ ४३॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, लोहा ३ तोले और शीशा दो तोले इन सबको एकत्रितकर मकोय, चीता, अदरख, जयन्ती, अडूसा, बेलकी छाल और अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथमें यथाक्रम भावना देकर अच्छी तरह खरल करे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे हररोज एक एक गोली सुखोष्ण जलके साथ सेवन करे॥ ४१–४३॥

जयेदियं फुफ्फुसजान् रोगान् हृदयसम्भवान्।
जीर्णज्वरं तथा घोरं प्रमेहानपि विंशतिम्॥ ४४॥
कासश्वासामवातांश्च ग्रहणीमपि दुस्तराम्।
वटी श्रीशङ्करप्रोक्ता बलपुष्टिविवर्द्धिनी॥ ४५॥

यह वटी फुफ्फुसजन्यरोग, हृदयगतरोग, पुराना ज्वर, बीसों प्रमेह, खाँसी, श्वास, आमवात और दुस्तर संग्रहणी आदि रोगोंको तत्काल नष्ट करती है। यह वटी श्रीशङ्कर भगवान्ने की है। यह अतिबलकारक और पुष्टिकर है॥ ४४॥ ४५॥

कल्याणसुन्दररस ।

सिन्दूरमभ्रं तारं च ताम्रं हेम च हिङ्गुलम् ।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा मर्दयेद्वह्निवारिणा ॥ ४६ ॥
हस्तिशुण्डाम्भसा पश्चाद्भावयित्वा च सप्तधा ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कोष्णतोयेन दापयेत् ॥ ४७ ॥
उरस्तोयं च हृद्रोगं वक्षोवातमुरोऽस्रकम् ।
फौफ्फुसान्हन्ति रोगांश्च रसः कल्याणसुन्दरः ॥ ४८ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, चाँदी, ताँबा, सोना और हिंगुल इन सबको समान भाग लेकर खरलमें रक्खे, फिर उसमें चीतेका क्काथ डालकर घोटे। पश्चात् हाथीशुण्डीके क्काथकी सात वार भावना देकर उत्तम प्रकारसे घोटे। तदनन्तर एक एक रत्तीकी गोली बनाकर रखले। प्रतिदिन मन्दोष्ण जलके साथ एक एक गोली भक्षण करे तो उरस्तोय, हृदयरोग, वक्षःस्थलकी वात, उरोरक्तस्राव तथा फुफ्फुससम्बन्धी अनेक प्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ ४६-४८ ॥

वल्लभघृत ।

मुख्यं शतार्द्धं च हरीतकीनां सौवर्चलस्यापि पलद्वयं च ।
पक्कं घृतं वल्लभकेति नाम्ना हृद्रोगशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ ४९ ॥

बीजरहित उत्तम हरड ५० और कालानमक ८ तोले इन दोनोंके साथ पकाये हुए घृतको पान करनेसे हृदयरोग, शूल, उदररोग और वातरोग दूर होते हैं। यह वल्लभनामसे प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

श्वदंष्ट्राद्यघृत ।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठा बला काश्मर्यकत्तृणम् ।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ ५० ॥
पलिकान्साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे ।
कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदाजीवन्तिजीवकैः ॥ ५१ ॥
शतावर्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः ।
प्रस्थं सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ ५२ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःश्वासकासक्षयापहः ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥ ५३ ॥

गोखुरू, खस, मंजीठ, खिरैंटी, कुम्भेर, सुगन्धित तृण, कुशाकी मूल, पृश्निपर्णी, ढाककी छाल, ऋषभक और शालपर्णी इनको पृथक् पृथक् चार चार तोले लेकर

सबसे चौगुने जलमें पकावे। पकते पकते जब चतुर्थांश जल रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्काथमें रससे चौगुना दूध एवं कौंचके बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीवक, शतावर, ऋद्धि, दाख, खांड, गोरखमुण्डी और कमलकन्द इन सब औषधियोंका मिला हुआ चूर्ण एक सेर तथा घृत चार सेर डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत वातज-पित्तजहृदयरोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, बवासीर, श्वास, खाँसी और क्षय इत्यादि विकारोंको दूर करता है और धनुषके भारसे, अधिक स्त्रीप्रसङ्गसे अथवा अधिक मद्यपानके करने किंवा बोझ उठानेसे और अधिक रास्ता चलनेसे क्षीण हुए पुरुषोंके शरीरमें बल तथा मांसको बढ़ाता है ॥ ९०–९३ ॥

बलाद्यघृत।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम्।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ९४॥

खिरैंटी, गंगेरन और अर्जुनकी छालके क्काथ एवं मुलहठीके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पान करनेसे हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त, खाँसी और दारुण वातरक्तरोग नष्ट होता है ॥ ९४ ॥

अर्जुनघृत।

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥

अर्जुनवृक्षकी छालके कल्क और क्काथके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके हृदयरोग नष्ट होते हैं।

हृदयरोगमें पथ्य।

स्वेदो विरेको वमनं च लंघनं वस्तिर्विलेपी चिररक्त-शालयः। मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञयाऽन्विता यूषा रसा मुद्गकुलत्थसम्भवाः॥ ९५ ॥ रागाः खडाः काम्बलिकाश्च खाडवा भक्ष्यं पटोलं कदलीफलान्यपि। पुराण-कूष्माण्डरसालदाडिमं शम्याकशाकं नवमूलकान्यपि ॥ ९६ ॥ एरण्डतैलं गगनाम्बु सैन्धवं द्राक्षापि तक्रं च पुरातनो गुडः। शुण्ठी यमा लशुनं हरीतकी कुष्ठं च कुस्तुम्बुरु कृष्णमार्द्रकम् ॥ ९७ ॥ सौवीरशुक्तं मधु वारुणीरसः कस्तूरिका चन्दनकं प्रपाणकम्। ताम्बूल-मप्येष गणः सुखावहो मर्त्यस्य हृद्रोगनिपीडितस्य ॥९८॥

स्वेदक्रिया, विरेचन, वमन, लङ्घन, वस्तिप्रयोग और प्रलेप करना, पुराने शालिके चावल, जङ्गली मृग-पक्षियोंके मांसका रस, मूँग और कुलथीका यूष, अनार, दाख-युक्त मूँगका यूष, खडयूष, काम्बलिक (काँजी विशेष), खाडव (सुगन्धित द्रव्योंसे सिद्ध खाद्यविशेष), कमरख, परवल, केला, पुरानापेठा, पक्का आम, अनार, अमलतासका शाक और कच्ची मूली इनका भोजन, अण्डीका तेल, वर्षाका जल, सैंधानमक, दाख, मट्ठा, पुरानागुड, सोंठ, अजवायन, लहसुन, हरड, कूठ, धनियाँ, कालीमिरच, अदरख, सौवीरनामक काँजी, शहद, वारुणीमदिरा, कस्तूरी, चन्दन, शर्बत और ताम्बूल ये सब वस्तुयें हृदयरोगसे पीडित मनुष्यके लिये अत्यन्त हितकारी हैं९९-९८

हृदयरोगमें अपथ्य ।

तृट्छर्दिमूत्रानिलशुक्रकासोद्गारश्रमश्वासविडश्रुवेगान् ।
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिनदीजलानि मेषीपयो दुष्टजलं कषायम् ५९
विरुद्धमुष्णं गुरु तिक्तमम्लं पत्रोत्थशाकानि चिरन्तनानि ।
क्षारं मधूकानि च दन्तकाष्ठं रक्तस्रुतिं हृद्गदवांस्त्यजेच्च ॥६०

तृषा, वमन, मूत्र, अपानवायु, वीर्य, खाँसी, डकार, श्रमजन्य श्वास, मल और आसूँ इनके वेगको रोकना एवं सह्यपर्वत और विन्ध्याचलसे निकली नदियोंके जलका सेवन, भेडका दूध, दूषित जल, कषैले, विरुद्ध, गरम, भारी, कडुवे और खट्टे पदार्थ, बहुत पुराने पत्रशाक, खारपदार्थ, महुआ, दन्तधावन तथा रक्तमोक्षण(फस्त खुलवाना) इन सबको हृदयरोगी शीघ्र त्याग देवे ॥ ५९ ॥ ६० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हृद्रोगचिकित्सा ॥

मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

वायुसे उत्पन्न हुए मूत्रकृच्छ्रमें रोगीको वायुनाशक तैलादिकी मालिश, स्नेहद्रव्योंका पान, निरूहवस्ति, स्वेदप्रधान प्रलेप, उत्तरवस्ति और सेंक करे, एवं वातनाशक शालपर्णी आदि औषधियोंसे पकाये हुए मांस रस देवे ॥ १ ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविरेकः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ २ ॥

पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें रोगीके शरीरपर जल छिडकना, शीतलजलमें घुसकर स्नान करना, चन्दन, खसादि शीतल पदार्थोंका प्रलेप, ग्रीष्मकालके अनुसार शीतल उपचार करना, पिचकारी लगाना, दुग्धपान, विरेचन (जुलाब) देना और दाख, विदारीकन्द तथा ईखके रसके साथ घृतपान करना इत्यादि सब कृत्य करने चाहिये २

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः ।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३ ॥

कफजन्यमूत्रकृच्छ्रमें क्षार, गरम तथा तीक्ष्ण औषधि, अन्नपान, पसीना निकलवाना, जौके आटेका बना भोजन, वमन, निरूहवस्ति, मट्ठा, कडुवी और उष्ण औषधियोंसे पकाये हुए तेलकी मालिश अथवा पान करावे ॥ ३ ॥

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने च वस्तिः ॥ ४ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें वायुके स्थानसे लेकर कफपर्यन्त जो विधि कही हैं उन सबोंको मिलकर इसमें चिकित्सा करे । विशेष करके दोषोंकी अवस्थाको देखकर मिश्रित उपचार करे । त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें कफकी अधिकता होनेपर वमन, पित्ताधिक्यमें विरेचन, वातकी आधिक्यमें वस्ति देवे ॥ ४ ॥

तथाऽभिघातजे कुर्य्यात्सद्यो व्रणचिकित्सितम् ।
मूत्रकृच्छ्रे सदा कार्या वातरोगहरी क्रिया ॥
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे ॥ ५ ॥

चोट आदिके लगनेसे प्रगटहुए मूत्रकृच्छ्रमें शीघ्रही व्रणरोगकी समान समस्त वातजमूत्रकृच्छ्रनाशक चिकित्सा करे । मलके रोकनेसे जो मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हुआ होय तो स्वेद प्रयोग, या विरेचन औषधियोंका चूर्ण नलीमें भरकर गुदामें प्रवेश करना, तैलादिकी मालिश अथवा वस्तिकर्म करे ॥ ५ ॥

क्रिया हिता त्वश्मरिशर्करायां या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ।

वायु और कफसे जो मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो अश्मरी तथा शर्करारोगमें कही हुई विधिके अनुसार चिकित्सा करे ॥

लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।
वृष्यैर्बृंहितधातोश्च विधेया प्रमदोत्तमा ॥ ६ ॥

वीर्यके रोकनेसे प्रादुर्भूत मूत्रकृच्छ्रमें शिलाजीतको शहदके साथ मिलाकर चाटें अथवा पुष्टिकारक औषधियोंको सेवन करनेसे वीर्यके बढनेके कारण उत्पन्न हुए मूत्रकृच्छ्रमें सुन्दर स्त्रीके साथ प्रसंग करे ॥ ६ ॥

यन्मूत्रकृच्छ्रे विहितं च पैत्ते तत्कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे।

रुधिरसहित मूत्र आनेवाले मूत्रकृच्छ्रमें पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें कही हुई विधिके अनुसार चिकित्सा करे।

कूष्माण्डकरसं पीत्वा सयवक्षारशर्करम्।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत शीघ्रं च लभते सुखम्।

पेठेके रसको जवाखार और मिश्री मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग शीघ्र दूर होकर आनन्द प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं परम्।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ८ ॥

गुडके साथ आमलोंका चूर्ण सेवन करनेसे वीर्यकी वृद्धि, श्रमनाश, अत्यन्त तृप्ति एवं रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥

एर्वारुबीजं मधुकं च दार्वी पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन।
दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ ९ ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें ककडीके बीज, मुलहटी और दारुहल्दी इनके चूर्णको चावलोंके जलके साथ पान करे अथवा आमलोंके रसमें दारुहल्दीका चूर्ण और शहद डालकर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ९ ॥

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशनः।

जवाखार और मिश्री समान भाग मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र नाश होते हैं ॥

सूर्यावर्त्तभवं बीजं श्लक्ष्णं दृषदि पेषितम्।
व्युषितोदकसंपीतं कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम् ॥ १० ॥

हुलहुलके बीजोंको शिलापर खूब बारीक पीसकर बासी जलके साथ पीनेसे दारुण मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १० ॥

मधुना च यवक्षारं मूत्रकृच्छ्राश्मरीहरम्।

शहद जवाखार एकत्र मिलाकर सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी जाय ॥

सगन्धकं यवक्षारं शर्करातक्रतः पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत साध्यासाध्यान्न संशयः ॥ ११ ॥

शुद्ध गन्धक, जवाखार और चीनी इनको समान भाग ले मट्ठेमें मिलाकर पीवे तो साध्य व असाध्य सर्वप्रकारका मूत्रकृच्छ्र निश्चय दूर होता है ॥ ११ ॥

नारिकेलोद्भवं पुष्पं तण्डुलोदकसंयुतम् ।
सरक्तं मूत्रकृच्छ्रं हि पीतं हन्ति न संशयः ॥ १२ ॥

नारियलके फूलोंके जलके साथ पीसकर सेवन करनेसे रक्तसहित होनेवाला मूत्रकृच्छ्र निस्संदेह दूर होता है ॥ १२ ॥

क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं पीतं शीघ्रं निवारयेत् ॥ १३ ॥

गोखुरूके बीजोंके क्वाथमें जवाखारका चूर्ण मिश्रितकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और रक्तस्राव तत्काल नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

विदारी गोक्षुरं यष्टी केशरं च समं पचेत् ।
तत्कषायं पिबेत्क्षौद्ररसभस्मयुतं पुनः ॥
मूत्रकृच्छ्रं हरेत्सर्वं सप्ताहात्पित्तसम्भवम् ॥ १४ ॥

विदारीकन्द, गोखुरू, मुलहठी और नागकेशर इनको समान भागसे मिश्रित कर पकावे । फिर उस क्वाथमें शहद तथा पारदभस्म डालकर पान करे तो सात दिनमेंही पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ १४ ॥

तृणपञ्चमूल ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥ १५ ॥

तृणपञ्चमूल (कुशा, कांस, रामशर, डाभ और ईख) की जडको औटाकर पान करनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होता है तथा वस्ति शुद्ध होती है ॥ १५ ॥

पञ्चतृणक्षीर ।

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ।

तृणपञ्चमूलके क्वाथसे सिद्ध कियेहुए दूधका पीनेसे लिंगद्वारा रक्तस्राव होना बन्द होता है ॥

त्रिकण्टकादि ।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापस्तरभेदपथ्याः ।
निघ्नन्ति पीडां मधुनाऽश्मरीं च सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥

गोखुरू, अमलतास, डाभ, काँस, धमासा, पाषाणभेद, और हरड इनको समान भाग लेकर कूट पीसकर चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करे तो अश्मरी और मृत्युके समान प्राप्त हुई मूत्रकृच्छ्रकी पीडा नष्ट होती है ॥ १६ ॥

धात्र्यादि ।

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याह्वं गोक्षुरं तथा ।
एभिः कषायं विपचेत्पिबेच्छीतं सशर्करम् ॥
अपि योगशतासाध्यं मूत्रकृच्छ्रं जयेल्लघु ॥ १७ ॥

आमला, दाख, विदारीकन्द, मुलहठी और गोखुरू इनका काढा बनाकर शीतल होनेपर मिश्री डालकर पीवे । जो सैकडों योगोंसे भी असाध्य हो ऐसे मूत्रकृच्छ्रको यह छोटासा प्रयोग नष्ट कर देता है ॥ १७ ॥

बृहद्धात्र्यादि ।

धात्री द्राक्षा च यष्ट्याह्वं विदारी सत्रिकण्टका ।
दर्भेक्षुमूलमभया क्राथयित्वा जलं पिबेत् ॥
ससितं मूत्रकृच्छ्रघ्नं रुजं दाहहरं परम् ॥ १८ ॥

आमला, दाख, मुलहठी, विदारीकन्द, गोखुरू, डाभ, ईखकी मूल और हरड इनका यथाविधि क्राथ बनाकर मिश्री डालकर पीनेसे अत्यन्त दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र-रोग शमन होता है ॥ १८ ॥

अमृतादि ।

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ।
प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूलो मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १९ ॥

गिलोय, सोंठ, आमले, असगन्ध और गोखुरू इनके क्राथको पान करनेसे शूल सहित मूत्रकृच्छ्ररोग व वातरोग शान्त होता है ॥ १९ ॥

शतावर्यादि ।

शतावरी काशकुशश्वदंष्ट्रा विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् ।
क्राथं सुशीतं मधुशर्करात्कं पिबञ्जयेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम् ॥ २० ॥

शतावर, काँस, कुशा, गोखुरू, विदारीकन्द, शालिके चावल, ईखकी जड और कसेरू इनके क्राथको विधिपूर्वक बनावे । जब शीतल होजाय तब शहद और चीनी मिलाकर पीवे । इससे पित्तसे हुआ मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ २० ॥

हरीतक्यादि।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्बिल्वयवासकानाम्।
क्काथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे २१॥

हरड, गोखुरू, आमलतास, पाषाणभेद, बेलगिरी और धमासा इनके क्काथमें शहद मिलाकर सेवन करे तो दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र और विबन्धरोग नष्ट होता है॥

तारकेश्वररस।

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम्।
दुरालभां यवक्षारं बीजं गोक्षुरजं शिवाम्॥ २२॥
समांशं कारयेत्सर्वं कूष्माण्डफलवारिणा।
पञ्चतृणभवक्काथे रसे गोक्षुरजे तथा॥ २३॥
संपिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
मधुनाऽऽमर्द्य विलिहेन्मूत्रकृच्छ्रविनाशनः॥ २४॥
उदुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमात्रकम्।
लेहयेन्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम्॥
अजाक्षीरं भवेत्पथ्यं शर्करेक्षुरसो हितः॥ २५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, वङ्ग और अभ्रक इनकी भस्म, धमासा, जवाखार, गोखुरूके बीज और हरड ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसले, फिर इस चूर्णको पेठेके रस, तृणपञ्चमूलके क्काथ और गोखुरूके क्काथमें क्रमपूर्वक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा पकेहुए गूलरके फलोंके दो तोले चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है। इसपर बकरीका दूध, चीनी और ईखका रस पथ्य है॥ २२-२५॥

त्रिनेत्राख्यरस।

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा लौहे पात्रे मर्दयेदेकघस्रम्। दूर्वायष्टीगोक्षुरैः शाल्मलीभिर्मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा॥ २६॥ तत्तद्द्रावैर्भावयित्वाऽस्य वल्लं दद्याच्छीतं पायसं वक्ष्यमाणम्। दूर्वायष्टीशाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः कुर्यात् पायसं तद्ददीत॥ प्रातःकाले शीतपानीयपानाज्जाते मूत्रे सुखिनं तं करोति॥ २७॥

वङ्ग, पारा और गन्धक इनको समान भाग लेकर लोहेके पात्रमें रख दूर्वा, मुलहठी, गोखुरू और शेमलकी जड इनके क्वाथसे अच्छे प्रकार खरल करे। फिर मूषायन्त्रमें रखकर भूधरयंत्रमें पकावे। जब शीतल होजाय तब इसको निकालकर उपर्युक्त औषधियोंके क्वाथमें भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। तदनन्तर दूब, मुलहठी और शेमलकी जडका क्वाथ एवं दूध ये सब बराबर बराबर लेकर खीर बनावे। नित्यप्रति एक एक गोली इसी खीरके साथ खाय। प्रातःसमय औषधि सेवन करके शीतल जल पीनेसे जब पेशाब होगा तब रोगी सुखी होगा। यह मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करनेके लिये उत्तम है ॥ २६ ॥ २७ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तकरस १-२।

शतावरीरसैः पिष्ट्वा मृतसूतं च तालकम्।
शिखितुत्थं च तुल्यांशं दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ २८ ॥
तद्गोलं सार्षपे तैले पाच्यं यामं च चूर्णयेत्।
मूत्रकृच्छ्रान्तकश्चास्य क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ २९ ॥
भक्षणान्नात्र सन्देहो मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्यलम्।
तुलसीतिलपिण्याकं बिल्वमूलं तुषाम्बुना ॥
कर्षैकं वाऽनुपानेन सुरया वा सुवर्चलैः ॥ ३० ॥

१-पारेकी भस्म, हरताल और शुद्ध नीलाथोथा इनको समान भाग लेवे। फिर सबको शतावरके रसमें एक दिनतक उत्तम प्रकार खरल करके गोलासा बनालेवे। इस गोलेको सरसोंके तेलमें एक प्रहरतक पकावे और शीतल होजानेपर चूर्ण करलेवे। इस प्रकार यह मूत्रकृच्छ्रान्तक रस सिद्ध होता है। इसको नित्यप्रति प्रातःकाल चार चार रत्ती प्रमाण शहदमें मिलाकर खानेसे निस्सन्देह समस्त मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं। अनुपान-तुलसीका रस, तिलकी खल और बेलकी जडके क्वाथको तुषाम्बुनामवाली काँजीमें अथवा मदिरामें हुलहुलका रस मिलाकर एकएक कर्षकी मात्रासे पान करे ॥ २८-३० ॥

सूतं स्वर्णं च वैक्रान्तं गन्धतुल्यं विमर्दयेत्।
चण्डाली-राक्षसीद्रावैर्द्दिर्यामान्ते तुगोलकम् ॥ ३१ ॥
शुष्कं बद्ध्वा पुटेच्चाद्यः करीषाग्नौ महापुटे।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ ३२ ॥

२–शुद्ध पारा, गन्धक, सुवर्ण और वैक्रान्तमणि सबको बराबर २ लेकर लिंगिनीलता और चोरनामक गन्धद्रव्य (भटेउर) के रसमें दो प्रहरतक विधिपूर्वक खरल करके गोलासा बनालेवे। फिर इस गोलेको सुखालेवे और महापुटमें स्थापनकर सन्धिस्थानोंको बन्द करके उपलोंकी आग्नमें एक दिनतक पुट देवे। जब शीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एकएक मासा, शहदमें मिलाकर चाटे तो मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शतावरीघृत और क्षीर।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम्।
सर्पिःपयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ३३

शतावर, काँस, कुश, गोखुरू, विदारीकन्द, ईख और आमले इनके क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा दूध मिश्री डालकर पान करे तो पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ३३ ॥

त्रिकण्टकाद्य घृत।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम्।
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥३४॥

गोखुरू, अण्डकी जड, कुशादि पञ्चमूल, शतावर, पेठा और ईख इनके स्वरस (अभावमें क्वाथ) से सिद्ध कियाहुआ घी और घीसे आधा भाग गुड मिलाकर पीवै। इस घृतके सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी और मूत्राघात रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें पथ्य।

पुरातना लोहितशालयश्च क्षारो यवान्नानि च तीक्ष्ण-
मुष्णम्। तक्रं पयो दध्यपि गोप्रसूतं धन्वामिषं मुद्ग-
रसाः सिता च ॥ ३५ ॥ पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं
महार्द्रकं गोक्षुरकं कुमारी। गुवाकखर्ज्जूरकनारिकेल-
तालद्रुमाणां च शिरांसि पथ्या ॥ ३६ ॥ तालास्थिमज्जा
त्रपुषं त्रुटिश्च शीतानि पानान्यशनानि चापि। प्रणीर-
नीरं हिमवालुका च हितं नृणां स्यात्प्रति मूत्रकृच्छ्रे॥३७॥

पुराने लाल शालिके चावल, जवाखार आदि खार द्रव्य, जौका भोजन, तीक्ष्ण और गरम पदार्थ, मट्ठा, गौका दूध, दही, मरुदेशके जीवोंका मांस

रस, भूँगका यूष, मिश्री, पुराना पेठा, परवल, वन अदरख, गोखुरू, घींगवार, सुपारी, खजूर, नारियल, ताडके वृक्षोंकी गिरी, हरड, ताडके फलोंका गूदा, खीरा, छोटी इलायची, शीतल अन्न पान, शीतल जल और कपूर ये सब वस्तुयें मूत्रकृच्छ्र-रोगमें हितकारी हैं ॥ ३५-३७ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें अपथ्य ।

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं विषमाशनं च । ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्टंपि ण्याकहिङ्गुतिलसर्षपवेगराधान् ॥ माषान् करीरमतितीक्ष्ण-विदाहिरूक्षमम्लं तु मुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ३८ ॥

मूत्रकृच्छ्ररोग होनेपर रोगी मद्यपान, परिश्रम, मैथुन, हाथी या घोडेकी सवारी, सर्वप्रकारके विरुद्ध भोजन, विषम भोजन, ताम्बूलचर्वण, मछली, लवण, अदरख, तेलके भुने द्रव्योंका भक्षण, खल, हींग, तिल, सरसोंका सेवन, मल मूत्रादिके वेगको रोकना, उडद, बाँसके कल्ले, अत्यन्त तीक्ष्ण-दाहकारी, रूखे और अम्लरस-युक्त पदार्थोंको तत्काल त्याग देवे ॥ ३८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ॥

मूत्राघातकी चिकित्सा

मूत्राघातान् यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
वस्तिमुत्तरवस्तिं च दद्यात्स्निग्धविरेचनम् ॥ १ ॥

मूत्राघातमें वातादिदोषोंको विचारकर, मूत्रकृच्छ्रनाशक औषधियोंसे विधिपूर्वक चिकित्सा करे एवं वस्ति और उत्तरवस्तिका प्रयोग तथा रोगीको स्निग्ध कर विरेचन देवे ॥ १ ॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ २ ॥

ककडीके बीजोंके २ तोले कल्क और सैंधनमकको काँजीमें मिलाकर पीते ही मूत्राघातरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

यवक्षारं गुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ।
रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३ ॥

पेठेके स्वरसमें जवाखार और पुराना गुड मिलाकर सेवन करनेसे मूत्राघात, शर्करा और अश्मरीरोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सपत्रफलमूलस्य क्वाथं गोक्षुरकस्य च ।
पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादिरोगनुत् ॥ ४ ॥

पत्र, फल और जडसहित गोखरूके क्वाथको बनाकर शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग दूर होते हैं ॥ ४ ॥

नलकुशकाशेक्षुशिफां क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् ।
पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कचः ॥ ५ ॥

नल, कुश, काँस और ईखकी जड इनका क्वाथ बनालेवे । शीतल होनेपर इसको मिश्री डालकर प्रातःकाल पीनेसे मूत्राघात निश्चय दूर होता है, ऐसा कच-ऋषिने कहा है ॥ ५ ॥

बिम्बीमूलं च संपिष्टं काञ्जिकेन समन्वितम् ।
नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोधं निहन्ति च ॥ ६ ॥

कन्दूरीकी जडको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे मूत्राघात रोग दूर होता है ॥ ६ ॥

मूत्रे विबन्धे कर्पूरचूर्णं लिंगे प्रवेशयेत् ।
कूष्माण्डकरसो वापि पेयः सक्षारशर्करः ॥ ७ ॥

मूत्राघात होनेपर कपूरके बारिक पिसे चूर्णको लिङ्गके छिद्रमें प्रवेश करे अथवा पेठेके रसको जवाखार और खांड डालकर पीवे तो इससे पेशाब खुलकर आता है ॥ ७ ॥

जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥ ८ ॥

खैरीशाकके बीजोंको जलमें पीसकर एवं रुद्रजटाकी जडको मट्ठेके साथ पीसकर पान करे तो मूत्राघात और अश्मरीरोग दूर होते हैं ॥ ८ ॥

शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
पिबेत्सर्करं श्रेष्ठमुष्णवातविनाशनम् ॥ ९ ॥

लाल चन्दनको चावलोंके जलमें घिसकर उसमें मिश्री डालकर पीवे । पश्चात् औटाकर शीतल किये हुए दूधके साथ भोजन करे तो उष्णवात (मूत्राघात विशेष) रोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ।
पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संरोधम् ॥ १० ॥

गोधापदी (कालीमुसली) की जडका क्वाथ बनाकर उसमें घृत, तेल और गौका दूध डालकर पीनेसे बहुत पुराना मूत्राघातरोग शीघ्र नष्ट भ्रष्ट होता है ॥ १० ॥

धान्याम्ललवणोपेतं सूतं यश्च पिबेन्नरः ।
तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ११ ॥

काँजी और सैंधेनमकमें शुद्ध पारेको मिलाकर पीवे तो तेरह प्रकारके मूत्राघातरोग तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

धान्यगोक्षुरकघृत ।

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कयुक्तं घृतं हितम् ।
मूत्राघाते मूत्रदोषे शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १२ ॥

धनियाँ दो सेर और गोखुरू दो सेर इन दोनोंको १६ सेर जलमें औटावे । जब पकते पकते चार सेर जल बाकी रहे तब उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथमें घृत २ सेर और धनियाँ तथा गोखुरूका कल्क सोलह सोलह सेर डालकर यथाविधि घृत को सिद्ध करे । यह घृत मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और दारुण वीर्यदोष में विशेष हितकर है ॥ १२॥

मूत्राघातमें पथ्य ।

अभ्यञ्जनस्नेहविरेकवस्तिस्वेदावगाहोत्तरवस्तयश्च ।
पुरातना लोहितशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवानि मद्यम् १३॥
तक्रं पयो दध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ।
महार्द्रकं तालफलास्थिमज्जा हरीतकी कोमलनारिकेलम् १४॥
गुवाकखर्ज्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि ।
यथामलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुराणां हितमावहन्ति ॥१५॥

मूत्राघातवाले रोगियोंको तेल मलना, स्नेह (घृतादि) का पान, विरेचन और वस्तिक्रिया, स्वेद देना, शीतल जलमें घुसकर स्नान, उत्तरवस्ति प्रयोग पुराने लाल शालिके चावल, धन्वदेशोत्पन्न पशु पक्षियोंके मांसका रस, उडदका यूष, मदिरा, मट्ठा, गौका दूध, दही, पुराना पेठा, परवल, वन अदरख, ताडके फलोंकी गुठलीकी मींग, हरड, कच्चा नारियल, सुपारी, खजूर, नारियल और ताडके वृक्षों के अंकुर ये सब पदार्थ हितकारी हैं ॥ १३–१५ ॥

मूत्राघातमें अपथ्य।

विरुद्धानि च सर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम्।
रूक्षं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम्॥
करीरं वमनं चापि मूत्राघाती विवर्जयेत्॥ १६॥

सर्व प्रकारके विरुद्ध भोजन, व्यायाम (कसरत आदि), रास्ता चलना, रूखे, दाहकारक और विष्टम्भकारक द्रव्योंका सेवन, स्त्रीप्रसङ्ग, मल मूत्रादिके वेगको धारण करना, बाँसके अंकुरोंको भक्षण करना और वमन करना इन समस्त पदार्थों व क्रियाओंको मूत्राघातवाला रोगी शीघ्र छोडदेवे॥ १६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्राघातचिकित्सा।

अश्मरीकी चिकित्सा।

सगुडो वरुणक्वाथस्तत्कल्केनाथवाऽन्वितः।
शिग्रूक्वाथोथवाऽत्युष्णो हन्त्याशु सरुगश्मरीम्॥ १॥

वरनाकी छालके क्वाथ या कल्कके साथ गुड मिलाकर सेवन करे अथवा सहिंजनेकी जडका गरम गरम क्वाथ पान करे तो पीडासहित अश्मरीरोग शीघ्र नष्ट होता है॥ १॥

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्।
अजाक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिभेदनम्॥ २॥

गोखुरूके बीजोंके चूर्णको शहद और बकरीके दूधके साथ मिलाकर एक सप्ताह पर्यन्त सेवन करनेसे पथरी नष्ट होती है॥ २॥

प्रपिबेत्तालमूल्या वा कल्कं व्युषितवारिणा।
तेनैवाथ गवाक्ष्या वा त्र्यहादश्मरिशातनम्॥ ३॥

मुसली अथवा इन्द्रायनकी जडके चूर्णको बासी जलमें पीसकर पीवे तो तीन दिनमें पथरी गलकर निकल पडती है॥ ३॥

यो नारिकेलकुसुमं सक्षारं वारिणा पिष्ट्वा।
पिबति हि तस्य दिनैकान्निपतति घोराऽश्मरी नूनम्॥४॥

यदि नारियलके पुष्प और जवाखारको जलमें पीसकर पीवे तो दारुण पथरी एक दिनमेंही निश्चय छिन्नभिन्न होकर निकल जाती है॥ ४॥

वरुणादि ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ।
यवक्षारं गुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥
अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ५ ॥

उत्तम बरनाकी छाल, सोंठ, गोखुरूके बीज इनका क्वाथ बनाकर उसमें जवाखार व गुड डालकर पान करे। इससे वातजन्य बहुत पुरानी पथरी दूर होती है ५॥

बृहद्वरुणादि ।

वारुणं वल्कलं शुण्ठी बीजं गोक्षुरसम्भवम् ।
तालमूली कुलत्थं च कुशादिपञ्चमूलकम् ॥ ६ ॥
शर्कराक्षारसंयुक्तं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्न वस्तिमेहनशूलनुत ॥ ७ ॥

बरनाकी छाल, सोंठ, गोखुरूके बीज, मुसली, कुलथी और कुशादि तृणपञ्चमूल इनके यथाविधि क्वाथको बनाकर चीनी और जवाखार मिश्रित करके पान करनेसे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वास्तिशूल और लिंगशूल नाश होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

शुंठ्यादि ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रूवरुणगोक्षुरैः ।
काश्मर्यारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥ ८ ॥
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ ९ ॥

सोंठ, अरणी, पाषाणभेद, सहिंजनेकी छाल, वरनाकी छाल, गोखुरू, कुम्भेरकी छाल और अमलतास इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनालेवे। फिर इस क्वाथमें हींग, जवाखार और सैंधनमकका चूर्ण डालकर पीवे तो अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और समस्त वातविकार दूर होते हैं एवं जठराग्नि दीप्त होती है और पाचन होती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

एलादि ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करे चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे॥१०॥

इलायची, पीपल, मुलहठी, पाषाणभेद, रेणुका, गोखुरू अडूसेकी छाल और अण्डकी अश्मरी जड इनके क्वाथको विधिपूर्वक प्रस्तुत करके शिलाजीत डालकर पीनेसे शर्करा और मूत्रकृच्छ्ररोगमें शीघ्र लाभ होता है ॥ १० ॥

वीरतर्वादिगण।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनी--
गुन्द्रानलकुशकाशाश्मभेदकाग्निमन्थाः।
मोरटवसुकवसिरभल्लूककुरुण्ट--
केन्दीवरकपोतवङ्काः श्वदंष्ट्रा चेति ॥ ११ ॥
वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत्।
अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमूत्राघातरुजापहः ॥ १२ ॥

वीरवृक्ष, नीलीकटसरैया, लालकटसरैया, दर्भ, बाँदा, गुन्द्रा (तृणविशेष), नलसर, कुश, काँस, पाषाणभेद, अरणी, ईखकी जड, आककी जड, गजपीपल, सोनापाठेकी छाल, पीला पियाबाँसा, नीलकमल, ब्राह्मी और गोखुरू ये वीरतर्वादिगणकी समस्त औषधियें समान भाग लेकर क्वाथ बनालेवे। इस क्वाथको प्रतिदिन सेवन करनेसे वातजन्य विकार, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातरोग दूर होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

आनन्दयोग।

तिलापामार्गकदलीपलाशामलकाण्डकान्।
दग्ध्वा तद्भस्मतोयं तु वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ १३ ॥
तत्पचेत्तोयशेषं तु ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम्।
पाययेदविमूत्रेण शर्कराश्मरिजिद्भवेत् ॥ १४ ॥

तिल चिरचिटा, केला, ढाक और आमले इनके वृक्षोंके गुद्दोंको लेकर भस्म करलेवे। फिर इन सबकी समानांश मिश्रित भस्म दो सेर और जल ३२ सेर एकत्रकर पकावे। जब पकते २ जल ८ सेर शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। तदनन्तर इस क्षारजलको दूसरी बार पकावे। जब पानी सब जलजाय तब उतारकर पात्रमेंसे खारको खुरचलेवे। इस खारको नित्यप्रति प्रातःकाल दो रत्ती प्रमाण लेकर भेडके या बकरीके मूत्रमें मिलाकर सेवन करे तो शर्करा और पथरीरोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

बृहद्गोक्षुराद्यवलेह ।

गोक्षुरकं पलशतं दशमूलं तथैव च ।
पाषाणभेदोऽष्टपलं गुडूची पलपञ्चकम् ॥ १५ ॥
एरण्डाभीर्वोरष्टौ च पलान्येव पृथक् दश ।
सर्वमेकत्र संकुट्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पद्ममूलं चाश्वगन्धा प्रत्येकं पलविंशतिः ॥ १६ ॥
सर्वमेकत्र संकुट्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषं तु संगृह्य वस्त्रपूतं समाक्षिपेत् ॥ १७ ॥
गव्याज्यं प्रस्थमेकं तु शिलाजं च तथा स्मृतम् ।
घनीभूते तु सञ्जाते द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ १८ ॥
तालमूली शताह्वा च त्रिकटु त्रिफला तथा ।
सूक्ष्मैला भूतकेशी च ह्रीबेरं नागकेशरम् ॥ १९ ॥
पद्मकं जातिपत्रत्वग्मधुयष्टी सरोचना ।
जातीफलमुशीरं च त्रिवृता रक्तचन्दनम् ॥ २० ॥
धान्यकं कटुका क्षारौ नागवल्ली च शृङ्गिका ।
पुष्कराह्वं शठी दारु सीसं लौहं च वङ्गकम् ॥ २१ ॥
द्रव्याणीमानि संगृह्य प्रत्येकं पलमात्रकम् ।
स्निग्धभाण्डे निधाय--

गोखुरू १०० पल, दशमूलकी औषधियाँ १०० पल, पाषाणभेद ८ पल गिलोय ५ पल, अण्डकी जड ८ पल, शतावर १० पल, पद्ममूल (भसींडा) २० पल और असगन्ध २० पल इन सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब ८ सेर जल शेष रहे तब उतारकर कपडेमें छानलेवे । फिर इस क्वाथमें गौका घी एक प्रस्थ (६४ तोले) और शिलाजीत एक प्रस्थ डालकर यथाविधि पाक करे । पकते पकते जब अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें मुसली, साफ, त्रिकुटा; त्रिफला, छोटी इलायची, भूतकेशीकी जड, सुगन्धवाला, नागकेशर, पद्माख, जावित्री, दारचीनी, मुलहठी, गोरोचन, जायफल, खस, निसोत, लालचन्दन, धनियाँ, कुटकी, जवाखार, सज्जी, पान, काकडासिंगी, पोहकरमुल, कचूर, देवदारु, शीसा, लोहा और वंगभस्म इन औषधियोंको चार चार तोले लेकर बारीक चूर्ण करके घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे ।

—अथ नित्यं लिह्यात्पलोन्मितम् ॥ २२ ॥
खादेद्बलाग्निं संप्रेक्ष्य पथ्यं सेवेत मानवः ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातो विबन्धता ॥ २३ ॥
प्रमेहं विंशतिं चैव शुक्रदोषस्तथैव च ।
धातुक्षयश्चोष्णवातो वातकुण्डलिकादयः ॥ २४ ॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति भास्करेण तमो यथा ।
नातः परतरं किञ्चित्कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ २५ ॥

तदनन्तर नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर ईश्वरस्मरण करके इसमेंसे चार चार तोले परिमाण अथवा अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर भक्षण करे । इसपर हल्का और हितकारी भोजन करे । इसके सेवन करनेसे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, विबन्ध, बीस प्रकारके प्रमेह, वीर्यदोष, धातुक्षीणता, उष्णवात और वातकुण्डलिकाप्रभृति सम्पूर्ण रोग इसप्रकार नाश होते हैं, जैसे सूर्यकी प्रभासे अन्धकार तत्काल नष्ट होजाता है । उक्त रोगोंको नष्ट करनेके लिये इससे श्रेष्ठ और कोई औषधि नहीं है । इसको कृष्णात्रेय मुनिने निर्माण किया है ॥ २२–२५ ॥

पाषाणभिन्न ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतु रसात्पलम् ।
श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेतापराजितैः ॥ २६ ॥
प्रतिदिनं त्र्यहं मर्द्यं शुष्कं तद्भाण्डसम्पुटे ।
स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे संशुष्कं तं विचूर्णयेत् ॥ २७ ॥
रसः पाषाणभिन्नः स्याद्द्विगुञ्जश्चाश्मरीं हरेत् ।
भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत् ॥
कुलत्थक्काथसंपीतमनुपानं सुखावहम् ॥ २८ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले और शिलाजीत ४ तोले इनको एकत्रकर सफेद पुनर्नवा, अडूसेके पत्तों और सफेद अपराजिताके पत्तोंके रसमें एक एक दिन अच्छे प्रकार खरल करके सुखालेवे । फिर मिट्टीके चिकने बर्त्तनमें रख मुख बन्द करके दोलायन्त्रसे स्वेद देवें । पश्चात् उसको निकालकर उत्तम प्रकारसे सुखाकर खूब बारीक पीसलेवे । इस प्रकार यह पाषाणभिन्ननामक रस सिद्ध होता है । इसकी प्रतिदिन प्रातःसमय दो दो रत्ती मात्राको ले भुईंआमला और इन्द्रायणके फलोंको दूधमें पीसकर इसमें मिलालेवे अथवा कुलथीके

क्वाथमें मिलाकर सेवन करनेसे अश्मरीरोग शीघ्र नष्ट होता है और रोगी आनन्द होजाता है ॥ २६-२८ ॥

पाषाणवज्ररस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं रसैः श्वेतपुनर्नवैः ।
मर्दयित्वा दिनं खल्ले रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत् ॥ २९ ॥
दिनान्ते तत्समुद्धृत्य मर्दयेद् गुडसंयुतम् ।
अश्मरीं वस्तिशूलं च हन्ति पाषाणवज्रकः ॥ ३० ॥
गोरक्षकर्कटीमूलं क्वाथं कौलत्थकं तथा ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ॥ ३१ ॥

शुद्ध पारा एक भाग और गन्धक दो भाग इन दोनोंको सफेद पुनर्नवेके रसमें एकदिन खरलकर सम्पुटमें स्थापन करके भूधरयन्त्रमें पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर शीतल होजाय तब सायंकालमें इसको निकालकर गुड मिलाकर पुनः खरल कर लेवे। इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह पाषाणवज्र नामवाला रस गोरखककडीकी जडके और कुलथीके क्वाथके साथ मिलाकर तथा वातादि दोषोंके बलाबलको विचारकर सेवन करनेसे पथरी और बस्तिशूल रोगको नष्ट करता है ॥ २९-३१ ॥

वरुणाद्यलौह ।

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धात्रिपुष्पकम् ।
हरीतक्याः पलार्द्धं च पृश्निपर्णं तदर्द्धकम् ॥ ३२ ॥
कर्षमानं च लौहाभ्रं चूर्णमेकत्र कारयेत् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शाणमानं विधानवित ॥ ३३ ॥
मूत्राघातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ।
अश्मरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ३४ ॥
बलपुष्टिकरं चैव वृष्यमायुष्यमेव च ।
वरुणाद्यमिदं लौहं चरकेण विनिर्म्मितम् ॥ ३५ ॥

बरनाकी मींग ८ तोले, आमले ८ तोले, धायके फूल ४ तोले, हरड दो तोले, पृश्निपर्णी एक तोला, लोहे और अभ्रककी भस्म एक एक कर्ष लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर चार चार माशेकी मात्रासे सेवन करे। इसके सेवनसे घोर मूत्राघात, दारुण

मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह और विषमज्वर इत्यादि विकार अल्पकालमें शमन होते हैं तथा बल, वीर्य और आयु बढती है एवं शरीरकी पुष्टि होती है । इस वरुणाद्य लोहको चरकमहाराजने निर्माण किया है ॥ ३२–३५ ॥

कुलत्थाद्यघृत ।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारसं सशर्करं शीतलि यावशूकम् ।
बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराणां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये॥३६॥
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातं च समूत्रबन्धम् ।
एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ३७

कुलथी, सेंधानमक, वायविडङ्गके चावल, खाँड, शीतलि (शीतलीलता), जवाखार, पेठेके और गोखुरूके बीज ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे और सबको एकत्र कूट पीसकर कल्क बनालेवे । फिर चतुर्भागावशिष्ट बनाये हुए वरनाके क्वाथमें इस कल्कको और गौके घृतको डालकर उत्तम रीतिसे पकावे । इस घृतको नियमबद्ध हो सेवन करनेसे दुःसाध्य पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और मूत्रावरोधादि सर्वप्रकारके मूत्ररोग इस प्रकार नष्ट होते हैं, जैसे कि अत्यन्त मजबूत जडवाले वृक्षोंको वज्र तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वरुणघृत ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत ।
पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३८ ॥
वरुणं कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् ।
अमृता चाश्मजं देयं बीजं च त्रपुषोद्भवम् ॥ ३९ ॥
शतपर्वा तिलक्षारं पलाशक्षारमेव च ।
यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥ ४० ॥

बरनाकी छाल १०० पल लेकर कूटके, फिर उसको ३२ सेर जलमें पकावे । पकते २ जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे । इस क्वाथमें गौका घी १ प्रस्थ एवं वरनाकी छाल, केलेकी जड, बेलकी छाल, तृणपञ्चमूल, गिलोय, शुद्ध शिलाजीत, खीरेके बीज, ईखकी जड, तिलोंका खार, ढाकका क्षार और जुहीकी जड; ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले बारीक पीसकर डालदेवे और मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः घृतको सिद्ध करे ॥

अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालव्यपेक्षया ।
जीर्णे तस्मिन्पिबेत्पूर्वं गुडं जीर्णं तु मस्तुना ॥
अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत् ॥ ४१ ॥

पश्चात् देश तथा कालको विचारकर इसकी मात्राका निरूपण करके सेवन करना चाहिये । जिस समय घृत पचजाय तब पुराने गुडको दहीके तोडके साथ मिलाकर पान करे । इससे पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र प्रभृति अनेकों रोग दूर होते हैं ॥ ४१ ॥

पाषाणाद्यघृत ।

पाषाणभेदो वसुको वसिरोऽश्मन्तकस्तथा ।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ ४२ ॥
कपोतवङ्कार्त्तगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः ।
वृक्षादनी भल्लूकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ ४३ ॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च ।
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ॥ ४४ ॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ।
क्षारान् यवागूः पेयांश्च कषायाणि पयांसि च ॥
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥ ४५ ॥

पाषाणभेद, आककी जड, गजपीपल, अश्मन्तक (अम्लोत), शतावर, गोखरू, बडी कटेरी, कटेरी, ब्राह्मी, नील फूलकी कटसरैया, कचनारकी छाल खस, गुल्मक (लाल करवीरवृक्ष), बन्दा, सोनापाठेकी छाल, वरनाकी छाल, सागौनके फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मलीके फल ये सब औषधें समान भागसे मिलीहुई चार सेर लेवे । पुनः सबको ३२ सेर जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारले । पश्चा वस्त्रमें छानकर इस क्वाथमें ऊषकादिगण (खारी मिट्टी, सैंधानमक, हींग, पुष्पकसीस, धातुकसीस, गूगल, शिलाजीत और नीलाथोथा,) की ओषधियोंको समभाग मिश्रित चूर्ण एक सेर और गोघृत ४ सेर डालकर उत्तम विधिसे पकावे । जब अच्छी तरह पककर घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर चिकने बासनमें भरकर रख देवे । इसके सेवनसे वातोत्पन्न पथरी तत्क्षण नष्ट भ्रष्ट होती है । इस घृतका सेवन करते समय क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध और वातनाशक द्रव्योंका भोजन करे ॥ ४२-४५ ॥

भद्रावहघृत।

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च।
काशो विदारीकन्दश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥ ४६ ॥
पाषाणभेदी वाराही शालिमूलं शरस्तथा।
भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ ४७ ॥
समभागानि सर्वाणि क्राथयित्वा विचक्षणः।
पादशेषकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४८ ॥
कल्कं दत्त्वाऽथ मतिमान् गिरिजं मधुकं तथा।
नीलोत्पलं च काकोलीबीजं त्रपुषमेव च ॥ ४९ ॥
कूष्माण्डं च तथैवारुसम्भवं च समं भवेत्।
उष्णवातं निहन्त्येतद् घृतं भद्रावहं शुभम् ॥
मूत्राघाताश्मरीमेहान्भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ५० ॥

पाढ, पाढल, श्वेत पुनर्नवा, लालपुनर्नवा, काँस, विदारीकन्द, कुशा, ईखकी जड, गोखुरू, पाषाणभेद, वाराहीकन्द, शालिके चावलोंकी जड, रामसर, भिलावे और शिरीषकी जड इन सबको समान भाग लेकर चौगुने जलमें पकावे। चतुर्भागावशिष्ट क्वाथको ग्रहण कर उसमें गोघृत १ प्रस्थ एवं भूरिछरीला, मुलहठी, नीलकमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके और ककडीके बीज इनके समान भाग कल्कको डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। यह भद्रावहनामवाला उत्तम घृत उष्णवात (सोजाक), मूत्राघात, पथरी और प्रमेहादि व्याधियोंको शीघ्र नाश करताहै। जैसे सूर्य अन्धकारको भेद देताहै ॥ ४६–५० ॥

विदारीघृत।

विदारी वृषको यूथी मातुलुङ्गी च भूस्तृणम्।
पाषाणभेदं कस्तूरी वसुको वसिरोऽनिलः ॥ ५१ ॥
पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा।
कशेरुविश्वशृङ्गाटतामलक्याः स्थिरादयः ॥ ५२ ॥
शरेक्षुदर्भमूलं च कुशः काशस्तथैव च।
पलद्वयं तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५३ ॥
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावर्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः ॥ ५४ ॥

षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च ।
यष्ट्याह्वं पिप्पलीद्राक्षा काश्मर्यं सपरूषकम् ॥ ५५ ॥
एला त्वगालमा कौन्ती कुङ्कुमं नागकेशरम् ।
जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः ॥
एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः ॥ ५६ ॥

विदारीकन्द, अडूसेकी छाल, जुही, बिजौरानिंबू, गन्धतृण, पाषाणभेद, कस्तूरी, आककी जड गजपीपल, चीतेकी जड, विषखपरा, वच, रायसन, खिरेंटी, कंघी, कसेरू, भसींडे, सिंघाडे, भुईआमला, शालपर्णी आदि, स्थिरादिगणकी समस्त ओषधियाँ, रामसर, ईखकी जड, डाभकी जड, कुशा और कास इन सबको आठ आठ तोले लेकर कूटकर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें औटावे। जलते २ जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे। पुनः उस क्वाथमें गौका घी एक प्रस्थ, शतावरका रस एक प्रस्थ, आमलोंका रस एक प्रस्थ, सफेद बूरा या मिश्री २४ तोले एवं मुलहठी, पीपलदाख, कुम्भेर, फालसे, इलायची, धमासा, रेणुका, केशर, नागकेशर और जीवनीयगण (ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक और ऋषभक) ये सब औषधें दो दो तोले लेकर बारीक कूट पीसकर डालदेवे और गौका दूध दो प्रस्थ डालकर मन्दमन्द अग्निद्वारा यथाविधि शनैः शनैः घृतको पकावे। इस प्रकार घृतको सिद्ध करके उत्तम पात्रमें भरकर रख देवे ॥ ५१–५६ ॥

मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ५७ ॥
कासश्वासक्षतोरस्के धनुःस्त्रीभारकर्शिते ।
तृष्णाछर्दिमनःकम्पे शोणितच्छार्दने तथा ॥ ५८ ॥
रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे ।
योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे सुरामये ॥ ५९ ॥
एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् ।
पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम् ॥ ६० ॥
पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते ।
विदारीघृतमित्युक्तं रसयनुत्तमम् ॥६१ ॥

यह घृत सम्पूर्ण मूत्राघात, विशेषकर पित्तज मूत्ररोग, खाँसी, श्वास, क्षत, उरःक्षत, धनुषके चढानेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे या अत्यन्त बोझ उठानेसे उत्पन्नहुई कृशता,

प्यास, वमन, मनोव्याधि, कम्प, रुधिरकी वमन, रक्तस्राव, राजयक्ष्मा, मृगी, उन्माद, शिरोरोग, योनिदोष, रजोदोष, वीर्यदोष और स्वरभङ्गप्रभृति रोगोंमें शीघ्र उपकार करता है। स्मरणशक्ति और वीर्यको बढाता है तथा अत्यन्त वाजीकरण, पुत्रदायक, बल-वर्णवर्द्धक एवं विशेषकर वायुके विकारोंको नष्ट करनेवाला है। इस घृतको पान, भोजन और नस्यमें व्यवहार करना चाहिये। यह अत्युत्तम रसायन विदारीघृतनामसे प्रसिद्ध है ॥ ५७-६१ ॥

वरुणाद्य तैल।

त्वक्पत्रपुष्पमूलस्य वरुणात्सत्रिकण्टकात्।
कषायेण पचेत्तैलं वस्तिनाऽऽस्थापनेन च ॥
शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ६२ ॥

छाल, पत्ते, फूल और जडसहित वरना और गोखुरूके बीज इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनालेवे। फिर इस क्वाथके साथ तिलके तेलको सिद्ध करके आस्थापनवस्ति देवे तो शर्करा, पथरी, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होते हैं ६२ ॥

शिलोद्भिदादितैल।

शिलोद्भिदेरण्डसमास्थिरशाभिः पुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम्।
तैलं घृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु संप्रयोज्यम् ॥ ६३ ॥

पुनर्नवा और शतावरके रसमें पाषाणभेद, अण्डकी जड और शालपर्णी इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण डालकर तिलके तेल अथवा घृतको पकावे। इस तेलको दूधके साथ मिलाकर बहुत पुराने मूत्रकृच्छ्ररोगमें पान करना चाहिये। इससे उक्त रोग जल्द आराम होता है ॥ ६३ ॥

उशीराद्य तैल।

उशीरं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्दनम्।
विभीतकाभयाभीरु पद्ममुत्पलशारिवे ॥ ६४ ॥
बला तुरगगन्धा च दशमूलं शतावरि।
विदारी चैव काकोली गुडूच्यतिबला तथा ॥ ६५ ॥
श्वदंष्ट्रा शपुष्पा च वत्स्यालकमधूरिके।
एतैः कर्षमितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६६ ॥
सपत्रफलमूलस्य गोक्षुरस्य पलं शतम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादांशेनावतारयेत् ॥ ६७ ॥

तक्रं तैलसमं देयं वीरणक्वाथमाढकम् ॥ ६८ ॥

पत्र, फल और मूलसहित गोखुरू १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। पकते पकते जब चतुर्थांश जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें खस, तगर, कूठ, मुलहठी, लालचन्दन, बहेडा, हरड, कटेरी, कमल, नीलकमल, अनन्तमूल, श्यामालता, खिरैंटी, असगन्ध, दशमूल, शतावर, विदारीकन्द, काकोली, गिलोय, कंघी, गोखुरू, सोया, पीली खिरैंटी और सौंफ इन औषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं तिलका तेल १ प्रस्थ, गौका मट्ठा १ प्रस्थ और पूर्वोक्त विधिके अनुसार बनायाहुआ खसका क्वाथ १ आढक (८ सेर) मिलाकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे ॥ ६४–६८ ॥

मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं हन्ति दारुणम् ।
बलवर्णकरं वृष्यं वातपित्तनिषूदनम् ।
उशीराद्यमिदं तैलं काशिराजेन निर्मितम् ॥ ६९ ॥

यह उशीराद्यनामक तेल मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और दारुण अश्मरीरोग तथा वात-पित्तजन्य रोगोंको नाश करता है। बल-वीर्यवर्द्धक तथा शरीरको कान्तियुक्त बनानेवाला है। इसको श्रीमान् महाराजा काशिराजाने बनाया है ॥ ६९ ॥

अश्मरीरोगमें पथ्य।

वस्तिर्विरेको वमनं च लङ्घनं स्वेदोऽवगाहोऽपि च वारिसेचनम् । यवाः कुलत्थाः प्रपुराणशालयो मद्यानि धन्वाण्डजसम्भवा रसाः ॥ ७० ॥ पुराणकूष्माण्डफलं च तल्लता गोकण्टको वारुणशाकमार्द्रकम् । पाषाणभेदी यवशूकवेणवः स्थिरा समाकर्षणमश्मनापि । एतानि सर्वाणि भवन्ति सर्वदा मुदेऽश्मरीरोगनिपीडितानाम् ॥ ७१ ॥

पिचकारी, विरेचन, वमन, लंघन, पसीना निकालना, शीतल जलमें घुसकर स्नान करना, जलसिञ्चन, जौ, कुलथी, पुराने शालिके चावल, मदिरा, मरुदेशके और अण्डज प्राणियोंके मांसका रस, पुराना पेठा, पेठेकी बेल, गोखुरू, बरनाके कोमल पत्तोंका शाक, अदरख, पाषाणभेद, जवाखार, बाँसके चावल, शालपर्णी और पथरीको निकालनेवाले द्रव्य ये सब वस्तुयें अश्मरीरोगसे पीडित जनोंको सर्वदा सर्वकालमें हितकारी हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अश्मरीरोगमें अपथ्य।

मूत्रस्य शुक्रस्य च वेगमम्लं विष्टम्भि रूक्षं गुरु चान्नपानम्।
विरुद्धपानाशनमश्मरीमान् विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः॥ ७२॥

मूत्र और शुक्रके अवरोध, खट्टे रस, विष्टम्भकारक, रूखे और पचनमें भारी ऐसे अन्न तथा पान एवं प्रकृतिविरुद्ध अन्नपान करना पथरीवाले रोगीको तत्काल छोड़ देने चाहिये। क्योंकि ये सब इस रोगमें अपथ्य हैं॥ ७२॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् अश्मरीचिकित्सा॥

प्रमेहकी चिकित्सा।

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथाऽन्यः परिदुर्बलश्च।
संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य॥ १॥

प्रमेहरोगी दो प्रकारके होते हैं, जैसे—कोई स्थूल और बलवान्, कोई कृश तथा दुर्बल। इनमें कृश पुरुषोंको बृंहण (मांस और बलवर्द्धक) औषधियोंसे एवं बलवान् पुरुषोंको दोषोंकी अधिकता होनेपर वमन, विरेचनादिसे शुद्ध करे १

ऊर्ध्वं तथाऽधश्च मलेऽपनीते मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम्।
संशोधनं नार्हति यः प्रमेही तस्य क्रिया संशमनी विधेया॥२

प्रमेहरोगमें वमन और विरेचनादिद्वारा सम्पूर्ण दोष ऊपर तथा नीचे मार्गसे निकल जायँ तब सन्तर्पण क्रिया करे। किन्तु जो प्रमेहरोगी संशोधन करने योग्य नहीं हों उनकी रोगको नष्ट करनेवाली औषधियोंसे चिकित्सा करे॥ २॥

ये विष्किरा ये प्रतुदा विहङ्गास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः।
मन्दाः कषाया रसचूर्णलेहा मसूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः॥३॥

प्रमेहरोगीको विष्किर (मुरगा, कबूतर, हंस, मोर, तीतर) और प्रतुद (गिद्ध, बाज, काकादि) पक्षियोंका मांस एवं बकरी आदि जंगली पशुओंका मांसरस तथा कषैले रसवाले पदार्थ व अल्प परिमाण क्वाथ, रस, चूर्ण, अवलेह, मसूर और मूँग आदि हलके पदार्थ भोजन करने चाहिये॥ ३॥

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी।
कुलत्थाऽत्र हिता भोज्या पुराणा मेहिनां सदा॥
जाङ्गलं तिक्तशाकं च यवान्नं चंक्रमो मधु॥ ४॥

बहुत पुराने समेके चावल, कोदों, वनकोदों, गेहूँ, चने, अरहर और कुलथी ये सब अन्न प्रमेहरोगियोंको खाने चाहिये। एवं जङ्गली पशु-पक्षियोंका मांसरस, कडुवे शाक, जौके बने अन्न और शहद इनका सेवन तथा परिभ्रमण करना इस रोगमें विशेष हितप्रद हैं ॥ ४ ॥

रूक्षमुद्वर्त्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः।
यच्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ॥ ५ ॥

रूखे (बेसन आदि) पदार्थोंकी शरीरपर खूब जोरसे मालिश करना; दण्ड-कसरत, भ्रमण, रातमें जागना और शारीरिक अथवा मानसिक क्रियाद्वारा जो कफ-पित्तको नष्ट करे ऐसे पदार्थ प्रमेहरोगियोंको हितकारी हैं ॥ ५ ॥

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः।
कषायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः ॥
त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्काथः क्षौद्रेण मेहहा ॥ ६ ॥

आमलोंके रसमें शहद और हल्दीका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो सर्वप्रकारका प्रमेह नष्ट होता है अथवा त्रिफला, देवदारु और नागरमोथा इनके क्काथमें शहद और हल्दीका चूर्ण डालकर पान करे किंवा हरड, बहेडा, आमला देवदारु, दारुहल्दी और नागरमोथा इनके क्वाथको मधु मिश्रितकर भक्षण करनेसे प्रमेह दूर होता है ॥ ६ ॥

त्रिफलालौहशिलाजतुपथ्याचूर्णं च लीढमेकैकम्।
मधुनाऽमरास्वरस इव सर्वान्मेहान्निवारयति ॥
पीतः सारो गुडूच्यास्तु मधुना तत्प्रमेहनुत् ॥ ७ ॥

त्रिफलेका चूर्ण लोहभस्म, शिलाजीत और हरडोंका चूर्ण इनमेंसे किसी एकको शहदमें मिलाकर चाटे अथवा केवल गिलोयका रस और मधु एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेहरोग निवृत्त होते हैं। गिलोयके सार (गूदा) को शहदमें मिलाकर पीतेही प्रमेह नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शतावर्या रसं रोगी क्षीरेण सह यः पिबेत्।
प्रमेहा विंशतिस्तस्य क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ८ ॥

शतावरके रस और दूधको एकत्र मिलाकर पान करे तो बीसों प्रकारके प्रमेह तत्काल नाश होते हैं। इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

आमदुग्धं समजलं यः पिबेत्प्रातरुत्थितः।
निस्संशयं शुक्रमेहः पुराणस्तस्य नश्यति ॥ ९ ॥

नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर कच्चा दूध और शीतल जल समान भाग मिलाकर पान करनेसे पुराना शुक्रप्रमेहरोग निश्चय नष्ट होताहै ॥ ९ ॥

पलाशपुष्पतोलैकं सितायाश्चार्द्धतोलकम्।
पिष्टं शीताम्भसा पीतं मेहं हन्ति न संशयः ॥ १० ॥

टेसूके फूल एक तोला और मिश्री ६ माशे इन दोनोंको शीतल जलमें पीसकर पीवे तो प्रमेह दूर होता है ॥ १० ॥

स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे क्षिपेत्।
तत्फलं पङ्कमध्ये तु स्थापयेदेकरात्रकम् ॥ ११ ॥
प्रातरानीय सजलं चूर्णं पेयं प्रयत्नतः।
अनेन चिरकालीनो मेहो नश्यति निश्चितम् ॥ १२ ॥

फिटकिरीके चूर्णको नारियलमें भरकर कीचडमें गाड देवे और एक रात्रितक गडा रहनेदेवे। फिर प्रातःसमय निकालकर उसमेंसे फिटकिरीके चूर्णको ले जलमें पीसकर पान करे। इससे बहुत पुराना प्रमेहरोग निश्चय नाशहो ॥ ११ ॥ १२ ॥

व्यायामजातमखिलं भजन्मेहान् व्यपोहति।
पादत्रच्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवद्यतः ॥ २३ ॥
योजनानां शतं गच्छेदधिकं वा निरन्तरम्।
मेहाञ्जेतुं वने वापि नीवारामलकाशनः ॥ १४ ॥

व्यायाम (दण्ड—कसरत अथवा किसी प्रकारका परिश्रम) करनेसे सब प्रमेह दूर होते हैं। जूता, खडाऊँ और छत्रीको त्याग (अर्थात् नंगे पाँव नंगे शिर) मुनियोंके समान संयतेन्द्रिय होकर भिक्षा माँगकर भोजन करे और ४०० कोसतक अथवा इससे भी अधिक दूरतक निरन्तर भ्रमण करे एवं वनवासी होकर नीवार व आमलोंका भोजन कर निर्वाह करता हुआ प्रमेहोंको जीते अर्थात् इस प्रकारके कृत्य करनेसे प्रमेह शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

माक्षिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याप्ययं गुणः ॥ १५ ॥

पूर्वोल्लिखित शिलाजीतके प्रयोगके नियमानुसारही शुद्ध की हुई सोनामाखीके चूर्णको सेवन करनेसे प्रमेहरोग शमन होता है। यह धातु भी शिलाजीतके समान गुणोंवाली है ॥ १५ ॥

फलत्रिकादि।

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां मुस्तां च निःक्वाथ्य

निशांशकल्कम् । पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुच्छ्रितेषु ॥ १६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, दारुहल्दी, इन्द्रायन और नागरमोथा इनका यथाविधि क्वाथ बनालेवे । उसमें हल्दीका चूर्ण और शहद डालकर पिवे तो दारुण सर्व प्रमेहरोगोंमें शीघ्र लाभ होता है ॥ १६ ॥

विडङ्गादि ।

विडङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां कदम्बलोध्राशनवृक्षकाणाम् । क्वाथश्च तोयेन हितो नराणां कफप्रमेह विनिहन्ति तेषाम् १७

वायविडङ्ग, शालवृक्षकी छाल, अर्जुनवृक्षकी छाल, कायफल, कदम्बवृक्षकी छाल, लोध और पीतशाल इनका एकत्र क्वाथ बनाकर पीनेसे कफोत्पन्न प्रमेह-रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

मुस्तादि ।

मुस्ताफलत्रिकनिशासुरदारुमूर्वा इन्द्राख्यलोध्रसलिलेन कृतः कषायः । पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्र-ग्रहेषु सकलेषु नियोजनीयः ॥ १८ ॥

नागरमोथ, त्रिफला, हल्दी, देवदारु, मूर्वा, इन्द्रवारुणी और लोध इनको समान भाग लेकर यथानियम क्वाथ बनालेवे । इस क्वाथको सेवन करनेसे समस्त प्रमेह व सर्वप्रकारके मूत्रजनित विकार नाश होते हैं ॥ १८ ॥

शिलाजतुप्रयोग ।

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु ।
पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथाबलम् ॥ १९ ॥
जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिञ्जीर्णे च भोजनम् ।
कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥ २० ॥
मधुमेहं विहायादौ शर्करामश्मरीं तथा ।
वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ २१ ॥

शालसारादिगणकी औषधियोंके क्वाथसे शिलाजीतको भावना देवे. फिर धूपमें सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको वमन विरेचनादिसे शुद्ध शरीरवाला रोगी अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर उक्त शालसारादिगणके क्वाथमें मिलाकर सेवन करे । जब यह औषधि जीर्ण (हज्म) होजाय तब जङ्गली पशुप-

क्षियोंके मांसरसके साथ भोजन करे। इसको प्रतिदिन प्रातःसमय एक एक तोला सेवन करे और जब सौ पल परिमाण औषधि भक्षण करचुके तब छोडदेवे। यह औषधि मधुमेहको छोडकर अन्य सर्वप्रकारके प्रमेहरोग, शर्करा और पथरीरोगको नष्ट करती है। इसका सेवन करनेवाला रोगी आरोग्य होकर और आयु, बल, वर्ण करके युक्त सौ वर्षपर्यन्त जीता है॥

कुशावलेह।

कुशः काशो वीरणश्च कृष्णेक्षुः खग्गडस्तथा।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्॥ २२॥
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्।
खण्डप्रस्थं समादाय लेहवत्साधु साधयेत्॥ २३॥
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्।
मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारु त्रपुषं तथा॥ २४॥
शुभामलकपत्राणि त्वगेला नागकेशरम्।
वरुणाऽमृता प्रियंगू प्रत्येकमक्षसम्मितम्॥ २५॥

कुशा, काँस, खस, कालीईख और खग्गड (तृण विशेष) इन सबकी मूलको चालीस चालीस तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। पकते पकते जब आठवाँ भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्राथमें एक प्रस्थ उत्तम खाँड डालकर विधिपूर्वक पाक करे। जब अवलेहकी समान होजाय तब चूल्हेपरसे उतारकर उसमें मुलहठी, ककडीके बीज, पेठेके बीज, खीरेके बीज, वंशलोचन, आमले, तेजपात, दारचीनी, नागकेशर, वरनाकी छाल, गिलोय और फूलप्रियंगू ये प्रत्येक दो दो तोले चूर्ण करके डालदेवे।। सबको एकत्र मिलाकर उत्तम चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे॥ २२–२५॥

प्रमेहान्विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीम्।
वातिकान्पैत्तिकांश्चापि श्लैष्मिकान्सान्निपातिकान्॥
हन्त्यरोचकमत्युग्रं बलपुष्टिकरं परम्॥ २६॥

यह अवलेह नित्यप्रति उचित मात्रासे सेवन करनेसे बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, वातज, पित्तज, कफात्मक और सन्निपातज विकार और अत्युग्र अरुचिको शीघ्र नष्ट करता है। एवं शरीरमें अत्यन्त बलकी वृद्धि तथा पुष्टि करता है॥ २६॥

शालसारादिलेह।

शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतां गते।
दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः क्षिपेत्॥
घनीभूतमदग्धं च प्राश्य मेहान्व्यपोहति॥ २७॥

शालसारादिगणकी समस्त औषधियोंको चौगुने जलमें पकावे और चतुर्भाग जल अवशिष्ट रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर दोबारा इस क्वाथको पकावे और पकते २ जब अवलेहकी भाँति गाढा पडजाय तब चूल्हेसे नीचे उतारकर उसमें दन्तीमूल, लोध, हरड, कान्तलोहभस्म और अभ्रकभस्म इन औषधियोंका एकत्र मिलाहुआ चूर्ण शालसारादिवर्गकी औषधियोंके चतुर्थांशकी बराबर लेकर डालदेवे। जब अच्छे प्रकार पककर शीतल होजांय तब नियमानुसार इसका सेवन करे। इससे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होते हैं॥ २७॥

वङ्गावलेह।

वङ्गस्य भस्म द्विपलं लेहयेन्मधुना सह।
ततो गुडसमं गन्धं भक्षयेत्कर्षमात्रकम्॥ २८॥
गुडूचीसत्त्वमथवा शर्करासहितं तथा।
सर्वमेहहरो ज्ञेयो वङ्गावलेह उत्तमः॥ २९॥

बंगभस्म ८ तोले लेकर शहदमें मिलाकर चाटे। पश्चात् शुद्ध गन्धक और गुड एक एक तोला परिमाण एकत्र मिश्रित कर सेवन करे अथवा गिलोयके सत्त्वको खांडके साथ भक्षण करे तो यह बंगावलेह सर्वप्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करता है॥ २८॥ २९॥

विडंगादि लौह।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च।
जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानतिदारुणान्।
लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वानेव विनाशयेत्॥ ३०॥

वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, जीरा और कालाजीरा इन सबको समान भाग ले एकत्र चूर्ण करलेवे और सब चूर्णकी बराबर भाग लोहभस्म मिलाकर खूब बारीक पीसलेवे। इसके सेवनसे समस्त दारुण प्रमेह और अन्यान्य सम्पूर्ण मूत्रविकार नाश होते हैं॥ ३०॥

मेहकालानलरस।

भस्मसूतं मृतं वङ्गं तुल्यं क्षौद्रेण मर्दयेत्।

द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं मेहं हन्ति चिरोत्थितम् ॥
गुञ्जामूलं पिबेच्चानु क्षीरैरेव प्रशाम्यति ॥ ३१ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म और वङ्गभस्म पृथक् २ एक एक तोला लेकर शहदके साथ खरल करलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो रत्तीभर भक्षण करे और ऊपरसे गुञ्जा (लताविशेष) की जडको पीसकर दूधमें मिलाकर पीवे तो बहुत दिनोंका पुराना प्रमेह शमन होता है ॥ ३१ ॥

पञ्चाननरस ।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम् ।
सर्वेषां द्विगुणं वङ्गं मधुना मर्दयेद्दिनम् ॥ ३२ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शीततोयं पिबेदनु ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति मूत्राघातं तथाऽश्मरीम् ॥
मूत्रकृच्छ्रं हरेदुग्रमयं पञ्चाननो रसः ॥ ३३ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये सब समान भाग और सबसे दुगुनी वङ्गभस्म लेकर एकदिनतक शहदमें यथाविधि खरल करे । फिर इसको नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर दो दो रत्तीप्रमाण खाय और ऊपरसे शीतल जल पान करे । यह पञ्चानन रस बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी और अत्युग्र मूत्रकृच्छ्ररोगको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

चन्द्रकला ।

सूताभ्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेत्तु ।
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्द्धमानां मधुना ततश्च ।
बद्ध्वा गुडीं चन्द्रकलेतिसंज्ञां मेहेषु सर्वेषु नियोजयेच्च ॥३४॥

रससिन्दूर, अभ्रक, वङ्ग और लोहभस्म इन सबको समान भाग लेकर गिलोय और सेमलकी जडके क्वाथमें भावना देवे । पश्चात् मधुके सहयोगसे खरल करके एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । चन्द्रकलानामवाला यह रस सर्वप्रकारके प्रमेहोंमें प्रयोग करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ३४ ॥

मेहमुद्गरवटिका ।

रसाञ्जनं विडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमम् ।
प्रत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णं तु तत्समम् ॥ ३५ ॥
पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ३६ ॥

मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत् ।
हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ ३७ ॥
ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३८ ॥

रसौंत, बिडनमक, देवदारु, बेलगिरी, गोखुरूके बीज और पका हुआ अनार ये प्रत्येक एक एक तोला और इनके समस्त चूर्णकी बराबर लोहभस्म तथा गूगल ४ तोले लेवे । पुनः सबको एकत्र कूटपीसकर घृतके द्वारा खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत करे । तदनन्तर प्रत्यह प्रातःसमय एक एक गोली भक्षण करे तो साध्य व असाध्य बीसों प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातज, पित्तज, कफजन्यरोग, संग्रहणी, आमवात, मन्दाग्नि और अरुचि ये सब रोग तत्काल नाश होते हैं ॥ ३५–३८ ॥

शुक्रमातृकावटी ।

गोक्षूरबीजं त्रिफला पत्रमेला रसाञ्जनम् ।
धान्यकं चविका जीरं तालीशं टङ्कदाडिमौ ॥ ३९ ॥
प्रत्येकार्द्धपलं दत्त्वा गुग्गुलोः कर्षमेव च ।
रसाभ्रगन्धलौहानां प्रत्येकं च पलं क्षिपेत् ॥ ४० ॥
सर्वमेकीकृतं वैद्यो दण्डयोगेन मर्दयेत् ।
घृतभाण्डे तु संस्थाप्य माषमेकं च भक्षयेत् ॥ ४१ ॥
अनुपानं प्रदातव्यं जातिभेदात्पृथक् पृथक् ।
दाडिमस्य रसेनैव च्छागदुग्धेन वाऽम्भसा ॥ ४२ ॥

गोखुरूके बीज, त्रिफला, तेजपात, इलायची, रसौंत, धनियाँ, चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सुहागा और अनारदाना ये हर एक औषधि दो दो तोले, गूगल १ तोला, शुद्ध पारा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले तथा लोहभस्म ४ तोले लेवे । सबको एकत्र करके जल डालकर लोहेके दण्डेसे अच्छे प्रकार खरल करे । फिर घीके चिकने बासनमें भरकर रख देवे । इसमेंसे हररोज प्रातःकाल एक एक माशा खावे । इसपर अनारका रस, बकरीका दूध और शीतल जल इन अनुपानोंको प्रमेहके दोषानुसार पृथक् पृथक् विचारकर देवे ॥ ३९–४२ ॥

प्रमेहान्विंशतिं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ।
द्वन्द्वजान्सन्निपातोत्थान् मूत्रकृच्छ्राश्मरीगदान् ॥
बलवर्णाग्निजननी ज्वरदोषनिषूदनी ॥ ४३ ॥

यह वटी वातके, पित्तके और कफके रोग अथवा द्विदोषज और त्रिदोषजन्य बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोगोंको बहुत जल्द आराम करती है तथा ज्वरको नष्टकर बल कान्ति और उदराग्निको बढाती है ॥ ४३ ॥

वेदविद्यावटी ।

पारदाभ्रककान्तानां नागभस्म समं समम् ।
दिनं ब्राह्मीरसैर्मर्द्यं वालुकायन्त्रगं पुनः ॥ ४४ ॥
उद्धृत्य चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं जारिताभ्रं शिलाजतु ।
ताप्यं मण्डूरवैक्रान्तं कासीसं तुल्यमेव च ॥ ४५ ॥
सर्वं सर्वसमं चूर्णं कल्पयेच्च ततः पुनः ।
मुस्तचन्दनपुन्नागनारिकेलस्य मूलकम् ॥ ४६ ॥
कपित्थरजनीदार्वीचूर्णं सर्वसमं भवेत् ।
जम्बीराणां द्रवैर्मर्द्यं द्वियामं वटकीकृतम् ॥ ४७ ॥
वेदविद्यावटी नाम्ना भक्षणात्सर्वमेहजित् ।
मधु धात्रीरसं चानु क्षौद्रैर्वापि गुडूचिका ॥ ४८ ॥

शुद्ध पारा, अभ्रक, कान्तलोह और शीशा इनकी भस्मको बराबर २ लेवे । फिर सबको ब्राह्मीके रसमें एक दिनभर उत्तम विधिसे खरल करके वालुकायन्त्रमें रखकर पकावे । जब पककर शीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक पीस-लेवे । तदनन्तर इस चूर्णके साथ अभ्रकभस्म, शिलाजीत, सोनामाखी, मण्डूरभस्म, वैक्रान्तमणिभस्म, और हीराकसीस इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर मिलावे एवं नागरमोथा, लालचन्दन, पुन्नागवृक्षकी जड, नारियलकी जड, कैथ, हल्दी और दारुहल्दी इनके समानांश मिलित चूर्णको लेवे । पुनः सबको एकत्रकर जम्बीरीनींबूके स्वरसमें दो प्रहरतक उत्तम प्रकारसे खरलकर तीन तीन मासेकी गोली बनावे । इस वेदविद्यानामवाली वटीको प्रतिदिन प्रातःकाल आमलोंके रस और शहद अथवा गिलोयके रस एवं शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होते हैं ॥

वंगाष्टक ।

रसं गन्धं मृतं लौहं मृतरूप्यं च खर्परम् ।
मृताभ्रकं मृतं ताम्रं सर्वतुल्यं च वङ्गकम् ॥ ४९ ॥
पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
रक्तिद्वयप्रमाणेन मधुना लेहयेन्नरम् ॥
निशाचूर्णं क्षौद्रयुतं पिबेद्धात्रीरसं ह्यनु ॥ ५० ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, खपरिया धातु, अभ्रकभस्म और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक समान भाग एवं वङ्गभस्म सबकी बराबर लेवे । इन सबको एकत्र खरल कर गजपुटमें स्थापन करके पकावे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर बारीक पीसलेवे । इस रसको प्रतिदिन सुबहके समय दो रत्ती प्रमाण मधुमें मिलाकर चाटे अथवा हल्दीके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर खाय, पीछेसे आमलों के रसको पीवे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वङ्गाष्टकमिदं ख्यातं महादेवप्रकाशितम् ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति आमदोषं विषूचिकाम् ॥ ५१ ॥
विषमज्वरगुल्मार्शोमूत्रातीसारपित्तजित् ।
वीर्यवृद्धिं करोत्याशु सोमरोगनिबर्हणम् ॥ ५२ ॥

इस वङ्गाष्टकनामक रसको श्रीमहादेवजीने प्रकट कियाहै । यह बीसों प्रमेहोंको एवं आमवात, विषूचिका, विषमज्वर गुल्म, बवासीर, मूत्रविकार, अतिसार और पित्तजन्य रोगोंको शीघ्र जीतता है इसी प्रकार अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि करता है और स्त्रियोंके सोमरोगको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मेहवज्र ।

भस्म सूतं मृतं कान्तं लौहभस्म शिलाजतु ।
शुद्धताप्यं शिला व्योषं त्रिफला बिल्वजीरकम् ॥ ५३ ॥
कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत् ।
त्रिंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥ ५४ ॥
निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ।
महानिम्बस्य बीजं च षड्निष्कं पेषितं च यत् ॥ ५५ ॥
पलतण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ।
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥ ५६ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, शिलाजीत, सोनामाखी, मैनसिल, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, बेलगिरी, जीरा, कैथ और हल्दी इन औषधियोंको समान भाग लेकर कूटपीसकर चूर्ण करलेवे । पश्चात् इस चूर्णको भाङ्गोके रसमें तीसवार भावना देकर सुखा लेवे । तदनन्तर नित्यप्रति प्रातःकाल इस चूर्णको एक एक तोला परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे । ऊपरसे बकायनके बीजोंका चूर्ण २४ माशे लेकर चार तोले चावलोंके धोवनमें पीसे । फिर उसमें ८ माशे गोघृत डालकर पान करे तो यह मेहवज्ररस बहुत पुराने प्रमेहों तथा दारुण मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंको अल्पकालमें दूर करता है ॥ ९६ ॥

चन्द्रप्रभागुडिका ।

वेल्लव्योषफलत्रिकं त्रिलवणं द्विक्षारचव्यानल-
श्यामापिप्पलिमूलमुस्तकशठीमाक्षीकधातुत्वचः ।
षड्ग्रन्थामरदारुवारणकणाभूनिम्बदन्तीनिशा-
पत्रैलातिविषाः पिचुप्रतिमिता लौहस्य कर्षाष्टकम् ॥ ९७ ॥
त्वक्क्षीरी पलिका पुरादश पलान्यष्टौ शिलाजन्मनो
मानात्कर्षसमा कृतेति गुडिका संयोज्य सर्वं भिषक् ।
तत्रैव प्रतिवासरं सह घृतक्षौद्रेण लिह्यादिमां
तक्रं मस्तु च गोघृतं मधुरसं पश्चात्पिबेन्मात्रया ॥ ९८ ॥

वायविडङ्ग, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, सैंधानमक, कालानमक, विडनमक, जवाखार, सज्जी, चव्य, चीता, कालीसर, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, सोनामाखी, दारचीनी, वच, देवदारु, गजपीपल, चिरायता, दन्ती, हल्दी, पत्रज, इलायची और अतीस ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले और लोहभस्म १६ तोले, वंशलोचन ४ तोले, शुद्ध गूगल ४० तोले एवं शिलाजीत ३२ तोले लेवे । इन सबको एकत्र बारीक कूटपीसकर जलमें खरल करके दो दो तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । इस वटीको प्रतिदिन प्रातःसमय घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करे । इसपर मट्ठा, दहीका तोड, गौका घी और मधु इनमेंसे किसी एकको उचित मात्रासे सेवन करे तो इससे प्रमेह और मूत्रकृच्छरोग नष्ट होते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

चन्द्रप्रभावटी ।

चन्द्रप्रभावचामुस्ताभूनिम्बसुरदारवः ।
हरिद्राऽतिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकम् ॥ ९९ ॥

त्रिवृद्दन्ती पत्रकं च त्वगेला वंशलोचना ।
प्रत्येकं कर्षमानानि कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ॥ ६० ॥
धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली ।
सुवर्णमाक्षिकं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥ ६१ ॥
एतानि टंकमानानि संगृह्णीयात्पृथक् पृथक् ।
द्विकर्षं हतलौहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत्॥ ६२ ॥
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः ।
विधिना योजितैरेतैः कर्त्तव्या वटिका शुभा ॥ ६३ ॥

बावची, वच, नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपला-मूल, चीता, निसोत, दन्ती, तेजपात, दारचीनी, इलायची और वंशलोचन ये प्रत्येक दो दो तोले एवं धनियाँ, त्रिफला, चव्य, वायविडङ्ग, गजपीपल, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक, त्रिकुटा, सज्जी, जवाखार, सैंधानमक, विरियासञ्चरनमक और विडनमक ये प्रत्येक चार २ मासे, लोहभस्म चार तोले, मिश्री ८ तोले, शिलाजीत १६ तोले और गूगल १६ तोले लेवे। इन सबको एकत्र कूट पीसकर अच्छे प्रकार खरल करके गोलियाँ बनालेवे ॥ ५९-६३ ॥

चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी ।
निहन्ति विंशतिं मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा ॥ ६४ ॥
चतस्रश्चाश्मरीस्तद्वन्मूत्राघातांस्त्रयोदश ।
अण्डवृद्धिं पाण्डुरोगं कामलां च हलीमकम् ॥ ६५ ॥
कासं श्वासं तथा कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
वातपित्तकफव्याधीन् बल्या वृष्या रसायनी ॥ ६६ ॥
समाराध्य शिवं तस्मात्प्रयत्नाद्वटिकामिमाम् ।
प्राप्तवांश्चन्द्रमा यस्मात्तस्माच्चन्द्रप्रभा स्मृता ॥ ६७ ॥

चन्द्रप्रभानामसे प्रसिद्ध यह वटी सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाली है। एवं बीसों-प्रकारके प्रमेह, आठप्रकारके मूत्रकृच्छ्र, चार प्रकारकी पथरी, तेरह प्रकारके मूत्राघात अण्डकोषवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, खाँसी, श्वास, कोढ, मन्दाग्नि, अरुचि और वातज, पित्तज तथा कफजनित रोगोंको तत्काल नष्ट कर देती है। इसी प्रकार बलकारक, वीर्यवर्द्धक और अत्युत्तम रसायन है। इस वटीको शिवजीमहाराजकी आराधना करके चन्द्रमाने प्राप्त किया था इसकारण इसकी चन्द्रप्रभा नामसे प्रसिद्धि हुई ॥ ६४-६७ ॥

स्वर्णवंग ।

प्रक्षिपेद्भाजने वङ्गमायसे चापि मृन्मये ।
विद्रुते वह्नितापेन तस्मिंस्तन्मानकं रसम् ॥ ६८ ॥
क्षिप्त्वा संचूर्णयेत्तत्र नरसारं च गन्धकम् ।
तरुवासो मृदा लिप्त्वा काचकुप्यां निधाय च ॥६९॥
तत्सर्वं सिकतायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् ।
पाकात्सञ्जायते चित्रं कीर्णं हेमकणैरिव ॥ ७० ॥
रमणीयतरं स्वर्णवङ्गं नाम रसायनम् ।
बल्यं मेहहरं कान्तिमेधावीर्याग्निवर्द्धनम् ॥ ७१ ॥

किसी लोहके या मिट्टीके बर्त्तनमें वंग (राँग) को रखकर तीक्ष्ण अग्निमें गलावे । जब वह अच्छे प्रकार गलजाय तब निकालकर उसके बराबर शुद्ध पारा, पारेके बराबर शुद्ध गन्धक और गन्धककी बराबर नौसादर मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे । तदनन्तर इस चूर्णको बोतलमें भरकर और उसके ऊपर कपरमिट्टी करके बालुकायन्त्रमें रख चार प्रहरतक पकावे । पककर जब बोतलके अन्दर सुवर्णके कणोंके समान बिखरजाय तब यह स्वर्णवंगनामवाली अत्युत्तम रसायन तैयार होती है । यह सर्वप्रकारके प्रमेहोंको दूर करती है एवं अत्यन्त बलकारक, कान्तिजनक, मेधा वीर्य और उदराग्निको बढाती है ॥ ६८–७१ ॥

मेहकेशरी ।

मृतं वङ्गं सुवर्णं च कान्तलौहं च पारदम् ।
मुक्ता गुडत्वचं चैव सूक्ष्मैला पत्रकेशरम् ॥ ७२ ॥
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत् ।
द्विमाषां वटिकां खादेद् दुग्धान्नं प्रपिबेत्ततः ॥ ७३ ॥

वङ्गभस्म, सुवर्णभस्म, कान्तलोहभस्म, शुद्ध पारदभस्म, मोतीभस्म, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर इनको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करके घीग्वारके रसमें यथाविधि खरल करे । फिर दो दो माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली खाय और इसपर दूध भात भक्षण करे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

प्रमेहं नाशयेदाशु केसरी करिणं यथा ।
शुक्रप्रवाहं शमयेत्त्रिरात्रान्नात्र संशयः ॥ ७४ ॥

इसके सेवन करनेसे प्रमेह और वीर्यक्षीणतादि रोग तीन रातमें ही निस्सन्देह इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे सिंह गजेन्द्रको नष्ट करदेता है ॥ ७४ ॥

मेहान्तकरस।

रसगन्धकलोहं च तारं वङ्गं त्रिभागिकम्।
अभ्रकस्य त्रयो भागा भागार्द्धेन सुवर्णकम् ॥ ७५ ॥
सर्वचूर्णसमं दद्यात्तालमूलीसुचूर्णितम्।
नानारोगहरं श्रेष्ठं वातपित्तभवं महत् ॥
कान्तिपुष्टिकरं चैव रतिशक्तिविवर्द्धनम् ॥ ७६ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहा, रूपा, वङ्ग और अभ्रक ये प्रत्येक तीन तीन तोले एवं स्वर्णभस्म ६ माशे और मुसलीका चूर्ण १८॥ तोले लेकर एकत्र पीसकर जलमें खरल करके तीन तीन माशेकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस वात और पित्तसे हुए दुस्तर प्रमेहों तथा अनेक प्रकारकी उत्कट व्याधियोंको नाश करता है। इसी भाँति अत्यन्त पुष्टिकारक एवं कान्ति और रतिशक्तिकी वृद्धि करनेवाला ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सर्वेश्वररस।

स्वर्णं रौप्यं मौक्तिकं च विशुद्धं च शिलाजतु।
लोहमभ्रं तथा ताप्यं मधुयष्टी च पिप्पली ॥ ७७ ॥
मरिचं विश्वकं चेति सर्वमेकत्र कारयेत्।
विमर्द्य प्रहरं यत्नात्कज्जलाकृतिसन्निभम् ॥ ७८ ॥
केशराजभृङ्गराजशक्रासनरसे पृथक्।
प्रमेहं विविधं हन्ति मधुमेहं सुदुर्जयम् ॥ ७९ ॥
वातपित्तसमुद्भूतं तथा कफसमुद्भवम्।
सर्वेश्वरो रसो नाम्ना प्रमेहकुलनाशकः ॥ ८० ॥

सुवर्ण, चाँदी, मोती, शुद्धशिलाजीत, लोहा, अभ्रक, सोनामाखी, मुलहठी, पीपल, काली मिरच और सोंठ इन सबको समान भाग लेवे फिर एकत्र पीसकर काले भाङ्गरे, सफेद भागरे और भाँगके रसमें क्रमानुसार पृथक् पृथक् एक एक प्रहरतक खूब खरल करे। जब घुटकर काजलकी समान वर्ण होजाय तब दो दो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे। यह रस वातज, पित्तज, कफज एवं अन्यान्य दोषजात बीसों प्रकारके प्रमेह और दुर्जय मधुमेह रोगको मूलसहित नष्ट करता है। इसको सर्वेश्वररस कहते हैं ॥ ७७-८० ॥

वङ्गेश्वर रस १-२।

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म प्रयोजयेत्।
अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान्क्षौद्रसमन्वितम् ॥ ८१ ॥

१-शुद्ध पारेकी भस्म और वङ्गभस्म समान भाग लेकर एकत्र खरल कर लेवे। नित्यप्रति प्रातःसमय इसमेंसे दो माशे प्रमाण लेके शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

वङ्गं कान्तं च गगनं हेमपुष्पं समं समम्।
कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिषग्वरैः ॥ ८२ ॥
एष वङ्गेश्वरो नाम प्रमेहान्विंशतिं जयेत्।
मूत्रकृच्छ्रं सोमरोगं पाण्डुरोगं महाश्मरीम् ॥ ८३ ॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम् ॥ ८४ ॥

२-वंग, कान्तसारलोह, अभ्रक और नागकेशर इन सबको एक एक तोला लेकर घीग्वारके रसमें सातबार भावना देवे। फिर अच्छे प्रकार घोटकर तीन तीन मासेकी वटी प्रस्तुत करलेवे। यह मूत्रकृच्छ्र, सोमरोग, पाण्डु और अश्मरी-रोगको दूर करता है। इस सुन्दर रसायनको नागार्जुनमुनिने निर्माण किया है ॥ ८२-८४ ॥

बृहद्वङ्गेश्वररस १-२।

वङ्गभस्म रसं गन्धं रूप्यं कर्पूरमभ्रकम्।
कर्षं कर्षं मानमेषां सूतांघ्रि हेम मौक्तिकम् ॥
केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुञ्जाफलमानतः ॥ ८५ ॥

१-वङ्गभस्म, शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्ध गन्धक, रूपाभस्म, कपूर और अभ्रक ये प्रत्येक दो दो तोले, सुवर्णभस्म ६ माशे और मोतीभस्म ६ माशे लेवे। सबको एकत्रकर भाङ्गरेके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनावे ॥ ८५ ॥

प्रमेहान्विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः।
मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत् ॥ ८६
हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम्।
ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ८७ ॥
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८८ ॥

यह रस साध्य व असाध्य २० प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वात-पित्त और कफके रोग, संग्रहणी, आमवात, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि सम्पूर्ण विकारोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ८६-८८ ॥

सूतं गन्धं मृतं लोहं मृतमभ्रं समांशिकम् ।
हेम वङ्गं च मुक्ता च ताप्यमेषां समं समम् ॥ ८९ ॥
सर्वेषां चूर्णितं कृत्वा कन्यारसविमर्दितम् ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः ॥ ९० ॥

२-शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक, सुवर्ण, वङ्ग, मोती और सोनामाखी इन सबकी भस्म समान भाग लेकर एकत्र पीसकर घीग्वारके स्वरसमें यथाविधि खरल करे। तदनन्तर दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनालेवे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

बृहद्वङ्गेश्वरो ह्येष रक्तमूत्रे प्रशस्यते ।
बहुमूत्रं श्वेतमूत्रं मूत्रकृच्छ्रं तथैव च ॥ ९१ ॥
सर्वविधप्रमेहांस्तु नाशयेदविकल्पतः ।
अग्निवृद्धिं वयोवृद्धिं कान्तिवृद्धिं करोति च ॥ ९२ ॥
क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा ।
कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ९३ ॥
शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
क्रमेण शीलितो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ९४ ॥

यह बृहद्वङ्गेश्वरनामक रस रक्तगतमूत्रमें प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है। एवं बहुमूत्रादि उपर्युल्लिखितसर्वप्रकारकेमूत्रविकार तथा अन्यान्य रोगोंको ऐसे नष्ट करता है जैसे कि इन्द्रका वज्र वृक्षोंके समूहको नष्ट करदेता है। इससे अग्निकी वृद्धि, आयुकी वृद्धि और शरीरमें कान्ति उत्पन्न होती है ॥ ९१-९४ ॥

हरिशङ्कररस ।

मृतं सूताभ्रकं तुल्यं धात्रीफलनिजद्रवैः ।
सप्ताहं भावयेत्खल्ले योगोऽयं हरिशङ्करः ॥
माषमात्रां वटीं खादेत्सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ९५ ॥

रससिन्दूर और अभ्रकभस्म इन दोनोंको आमलेके रसमें सातदिनतक भावना (खरल) देकर एक एक मासेकी गोलियाँ निर्माण करे। इस योगका नाम हरिशंकर है। इसके खानेसे सब प्रमेह शान्त होते हैं ॥ ९५ ॥

बृहद्धरिशंकररस ।

रसगन्धकलौहं च स्वर्णं वङ्गं च माक्षिकम् ।
समभागं तु संपिष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ॥
सप्ताहमामलद्रावर्भावितोऽयं रसेश्वरः ॥ ९६ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहा, सोना, वङ्ग और सोनामाखी इनकी भस्मको समानांश लेवे । सबको आमलाके रसद्वारा एक सप्ताहपर्यन्त भावना देकर अच्छे प्रकार खरल करके एक एक माशा प्रमाण गोलियाँ बनालेवे ॥ ९६ ॥

हरिशङ्करनामाऽयं गहनानन्दभाषितः ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ९७ ॥

इस योगका हरिशंकरनाम है और यह सम्पूर्ण रसोंका ईश्वर है । इसको गहनानन्दनाथने प्रकाशित किया है । यह बीसों प्रकारके प्रमेहोंको सन्देहरहित नष्ट करदेता है । यह बिलकुल सत्य है ॥ ९७ ॥

मेहकुञ्जरकेशरीरस ।

रसगन्धायसाभ्राणि नगवङ्गौ सुवर्णकम् ।
वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ९८ ॥
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे ।
बद्ध्वा शुष्कं समुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत् ॥ ९९ ॥
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद्गर्तायां गोमयाग्निना ।
पुटेद्यामचतुःसङ्कंचमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम् ॥ १०० ॥
श्लक्ष्णखल्वे विनिक्षिप्य गोलं तु मर्दयेद्दृढम् ।
देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धृत्वाऽथ कूपिके ॥
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ १०१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक, शीशा, वङ्ग, सुवर्ण, हीरा और मोती इन सबकी भस्म समान भाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर शतावरके रसमें सबको विधिपूर्वक खरल करके गोलासा बनाकर धूपमें सुखालेवे । जब खूब सूख जाय तब उस गोलेका सुदृढ दो शरावोंमें स्थापन करे और मिट्टीसे शरावोंके छिद्रोंको लेसकर गड्ढेमें रख उपलोंकी अग्निद्वारा ४ प्रहरतक मृदु पुटपाक करे । जब पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब उक्त गोलेको निकालकर लोहेके खरलमें रखकर उत्तम विधिसे घोटलेवे । तदुपरान्त प्रतिदिन प्रातःकाल देवता तथा ब्राह्मणोंको पूजनकर और कुछ

कुएँ (कुप्पी) पर रखकर इस रसको दो दो रत्ती प्रमाण शीतल जलके साथ सेवन करे ॥ ९८-१०१ ॥

अष्टादश प्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः ।
तुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिं च दारुणाम् ॥ २ ॥
अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी ।
दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥

एक महीनेतक नियमानुसार इसका सेवन करनेसे १८ प्रकारके प्रमेह दूर होते हैं। मनमें प्रसन्नता, तेज, बल, वर्ण और वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि और जठराग्नि प्रबल होती है। यह दिव्य रसायन मेहरूपी हाथीको नष्ट करनेके लिये सिंहकी समान है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

अपूर्व मालिनीवसन्त ।

वैक्रान्तमभ्रं रवितार्प्यरौप्यवङ्गं प्रवालं रसभस्म लौहम् ।
सटङ्कणं कम्बुकभस्म सर्वं समांशकं सेव्यवरीहरिद्राः ॥ १०४ ॥
द्रवैर्विभाव्यं मुनिसंख्यया च मृगाङ्कजाशीतकरेण पश्चात् ।
वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभिर्जीर्णज्वरे धातुगते नियोज्यः ॥
गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ॥ १०५ ॥
कृच्छ्राश्मरीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गांघ्रिजैर्द्रवैः ।
रसो वसन्तनामाऽयमपूर्वो मालिनीपदः ॥ १०६ ॥

वैक्रान्तमणि, अभ्रक, ताँबा, सोनामाखी, चाँदी, वङ्ग, मोती, रससिन्दूर, लोहा, सुहागा और शङ्खभस्म इन सबको बराबर भाग लेवे। फिर एकत्र करके खस, शतावर और हल्दी इनके रसोंसे क्रमपूर्वक ७ दिनतक खरल करे। पश्चात् कस्तूरी और कपूरके जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसको धातुस्थित जीर्णज्वरमें शहद और पीपलके चूर्णमें, सर्वप्रकारके प्रमेहोंमें गिलोयके सत्त्व और मिश्रीके साथ एवं मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगमें बिजौरेनींबूकी जडके क्वाथमें मिलाकर सेवन करे तो उक्त रोग और अन्यतर उत्कट व्याधियाँ तत्क्षण नष्ट होती हैं। यह अपूर्वमालिनीवसन्त नामवाला अत्युत्तम रस है ॥ १०४-१०६ ॥

बृहत्कामचूडामणिरस ।

मौक्तिकं माक्षिकं चैव स्वर्णभस्म पृथक् पृथक् ।
कर्पूरं जातिकोषं च जातीफललवङ्गकम् ॥ १०७ ॥

वङ्गभस्म तथा ग्राह्यं रूप्यं चापि तथाऽर्द्धकम् ।
चातुर्जातं च संग्राह्यं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ १०८ ॥
शतमूलीरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम् ।
ततो गुञ्जाप्रमाणेन वटिका भिषजा कृता ॥ १०९ ॥
अनुपानविशेषेण रोगाकरविनाशिनी ।

मोती, स्वर्णमाक्षिक, सुवर्ण इनकी भस्म, कपूर, जावित्री, जायफल, लौंग, वङ्गभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला एवं रूप्यभस्म, दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर ये प्रत्येक छः छः माशे लेवे। फिर सबको एकत्र पीसकर शतावरके रसमें सातवार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल अनुपानविशेषके साथ सेवन करनेसे समस्त रोगोंके समूह नष्ट होते हैं ॥ १०७-११० ॥

शीतं पयोऽनुपानं च कामिनीः कामयेच्छतम् ।
वीर्यहीनो भवेद्यस्तु यो वा स्यात्पतितध्वजः ॥
सोऽशीतिवार्षिको भूत्वा युवेव रमतेऽङ्गनाः ॥ ११
भेषजैर्विविधैः किं स्यादन्यैश्च शतसंख्यकैः ।
फलं न किञ्चित्तत्रास्ति केवलं गौरवंमुहुः ॥ १२ ॥
नातः परतरं किञ्चिदन्ति पुष्टिकरं च तत् ।
अतः सर्वप्रयत्नेन सेव्यो भूमिभुजा सदा ॥ १३ ॥

शीतल दूधके साथ इसको भक्षण करे तो सैकडों स्त्रियोंमें गमन कर सकता है। जो वीर्य्यहीन हैं या जिनकी ध्वजा भङ्ग होगई है वे पुरुष अस्सी वर्षके बूढे होकर भी इस रसके सेवनसे युवा पुरुषके समान असंख्य रमणियोंके साथ रमण कर सकते हैं। अन्यान्य नाना प्रकारकी सैंकडों औषधियोंसे सिवा गुरुताके और फल नहीं होता। इससे बढकर पुष्टिकरनेवाली उत्तम औषधि कोई नहीं है, इसलिये राजा, महाराजाओंको इसका सप्रयत्न सेवन करना चाहिये ॥ ११-१३ ॥

विशेषाद्ध्वजभङ्गं च मन्दाग्निं श्वयथुं तथा ।
रक्तोद्भवश्च नारीणां पानाद्दोषो विनश्यति ॥
प्रमेहं मूत्ररोगं च सप्ताहेन विनाशयेत् ॥ ११४ ॥

यह रस विशेषकर ध्वजभङ्ग, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि, सूजन और स्त्रियोंके रक्तोत्पन्न दोषोंको एक सप्ताहमेंही नाश करता है ॥ ११४ ॥

प्रमेहचिन्तामणि।

मृतसूताभ्रवङ्गं च स्वर्णं लौहं प्रकल्पयेत्।
मौक्तिकं च प्रवालं च माक्षिकं सममाहरेत् ॥ १५ ॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य द्विगुञ्जाफलमानतः।
छायाशुष्का वटी कार्या भक्षणीया प्रयत्नतः ॥ १६ ॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च सोमकम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं सुदारुणम् ॥
वृष्यो बलकरो हृद्यः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥ ११७ ॥

पारद, अभ्रक, बङ्ग, सोना, लोहा, मोती, मूँगा और सोनामाखी इन सबकी भस्मको समान भाग लेकर घीग्वारके रसमें उत्तम विधिसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनावे। फिर छायामें सुखाकर रखलेवे। इसको यथानियम सेवन करनेसे बीसों प्रकारके प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ और दारुण मूत्राघातप्रभृति रोग शमन होते हैं। यह रस पुष्टिकारक, बलदायक, हृदयको हितकारी व वीर्य्यकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाला है ॥ ११५-११७ ॥

शाल्मलीघृत।

शाल्मलीद्रवसंयुक्तं सर्पिश्छागीपयोऽन्वितम्।
अश्वगन्धां वरीं रास्नां मुसलीं विश्वभेषजम् ॥ १८ ॥
अनन्तां मधुकं द्राक्षां दत्त्वा च पालमानतः।
पचेन्मन्दाग्निना वैद्यः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥ १९ ॥
प्रमेहान्निखिलान्हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः।
क्लैब्यं धातुक्षयं शोषं कासं चैतद्धरं घृतम् ॥ १२० ॥

सेमलकी मुसलीका रस दो सेर, बकरीका घी दो सेर, बकरीका दूध दो सेर एवं असगन्ध, शतावर, रायसन, मुसली, सोंठ, अनन्तमूल, मुलहठी और दाख इनके चार चार तोले चूर्णको लेवे। सबको ८ सेर जलमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे। पककर जब घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर स्वच्छ मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इस घृतको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह विशेषकर शुक्रप्रमेह, नपुंसकता, धातुक्षीणता, शोष, खाँसी आदि विकार जाय ॥

दाडिमाद्यघृत।

दाडिमस्य तु बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः।
रजनी चविकाऽजाजी त्रिफला नागरं कणा ॥ १२१ ॥

त्रिकण्टकस्य बीजानि यमानी धान्यकं तथा ।
वृक्षाम्लं चपला कोलं सिन्धूद्भवसमायुतम् ॥ २२ ॥
कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
पाने भोज्ये च दातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ २३ ॥

अनारदाने; वायविडङ्ग, हल्दी, चव्य, कालाजीरा, त्रिफला, सोंठ, पीपल, गोखुरूके बीज, अजवायन; धनियाँ, विषांबिल, पीपलामूल, बेर, और सेंधानमक इनका दो दो तोले कल्क एवं गोघृत १ प्रस्थ ले ८ सेर जलमें पकावे । जब अच्छे प्रकार पकवर सिद्ध होजाय तब इस घृतको पान और भोजनमें उचित मात्रासे देवे । यह घृत सब ऋतुओंमें सेवन किया जाता है ॥ २१–२३ ॥

प्रमेहान्विंशतिविधान् मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीम् ।
कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यादेतन्न संशयः ॥ २४ ॥
विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम् ।
दाडिमाद्यं घृतं नाम्ना अश्विभ्यां निर्म्मितं पुरा ॥ १२५ ॥

यह बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, विबन्ध, आनाह, शूल, कामला और ज्वरादि रोगोंको निश्चय नाश करता है । इस दाडिमाद्यनामक घृतको अश्विनीकुमारोंने बनाया है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

बृहद्दाडिमाद्यघृत ।

चतुःषष्टिपलं पक्वदाडिमस्य सुकुट्टितम् ।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥ २६ ॥
क्वाथेन वस्त्रपूतेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दाडिमं चविकाऽजाजी कृमिघ्नं रजनीद्वयम् ॥ २७ ॥
द्राक्षाखर्जूरमुञ्जातपुरपलं गजपिप्पली ।
अजमोदा महानिम्बं काकोली नागरं वचा ॥ २८ ॥
देवाह्वा चविका कुष्ठं काश्मरी मधुयष्टिका ।
श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा शुभा शृङ्गी धनीयकम् ॥ २९ ॥
कुलत्थं च महामेदा निम्बश्च बृहतीद्वयम् ।
इण्डोत्पलं वरा वासा सतला सिन्धुवारकम् ॥
कल्कं चैषां युक्तियोगाद्र् ग्राह्यं हि परिभाषया ॥ १३० ॥

उत्तम पकेहुए अनारके ६४ पल बीजोंको कूटकर २५६ पल जलमें पकावे। पकते २ जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। पुनः इस काथमें गोघृत ६४ तोले एवं अनारका छिलका, चव्य, कालाजीरा, बायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, दाख, खजूर, ताडका माथा, नीलकमल, गजपीपल, अजमोद, बकायन, काकोली, सोंठ, बच, देवदारु, चव्य, कूठ, कुम्भेर, मुलहठी, श्यामालता, इन्द्रवारुणी, मूर्वा, वंशलोचन, काकडासिंगी, धनियाँ, कुलथी, महामेदा, नीमकी छाल, कटाई, कटेरी, दण्डोत्पल, त्रिफला, अडूसा, सातला और निर्गुण्डीकी जड इन सब औषधियोंके कल्कको समान भाग मिलाकर एक सेर तथा पाकके लिये जल आठ सेर डालदेवे। फिर सबको एकत्रकर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे ॥ २६-१३० ॥

प्रमेहं वातिकं हन्ति पैत्तिकं श्लैष्मिकं तथा ।
हृच्छूलं वस्तिजं शूलं मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ ३१ ॥
हिक्कां श्वासं च कासं च यक्ष्माणं सर्वरूपिणम् ।
स्वरक्षयमुरोरोगं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ३२ ॥
ये च प्रमेहजा रोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि ।
दाडिमाद्यमिदं सर्वप्रमेहानां निषूदनम् ॥ ३३ ॥
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतत्प्रमेहकरिकेसरी ॥ १३४ ॥

यह दाडिमाद्यनामवाला घृत सर्वप्रकारके प्रमेहों और तज्जन्य उपद्रवों तथा उपर्युक्त सम्पूर्णरोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। इसको अश्विनीकुमारोंने रचा है, यह प्रमेहरूपी गजको हनन करनेके लिये सिंहके समान है ॥ ३१-१३४ ॥

महादाडिमाद्यघृत ।

दाडिमस्य फलप्रस्थं प्रस्थं च यवतण्डुलम् ।
कुलत्थप्रस्थमादाय घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३५ ॥
शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धं च तत्समम् ।
कल्कः सार्द्धपिचुर्द्राक्षा खर्जूरं त्रिफला तथा ॥ ३६ ॥
रेणुका चाष्टवर्गं च देवदारु निशाद्वयम् ।
बिम्बी कुष्ठकमेला च विदार्यतिबला तथा ॥
शिलात्वचमुशीरं च शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णकम् ॥ ३७ ॥

अनारके दाने १ प्रस्थ, जौके चावल १ प्रस्थ और कुलथी १ प्रस्थ लेवे। सबको अठगुने जलमें पृथक् पृथक् पकाकर चतुर्भागावशिष्ट क्वाथको ग्रहण करे। उस

क्वाथके साथ घी १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ एवं दाख, खजूर, त्रिफला, रेणुका, जीवकादि गणकी औषधियें, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, कन्दूरी, कूठ, इलायची, बिदारीकन्द, कंघी, शिलाजीत, दारचीनी, खस और शोधित कृष्णाभ्रककी भस्म इनके श्लक्ष्णतर कल्कको एक एक तोला मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे अच्छे प्रकार घृतको पकावे ॥ ३५-३७

प्रमेहान्विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्त्रयोदश ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ३८ ॥
वातजं पित्तजं चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम् ।
बृंहणं च विशेषेण सर्वमेहहरं परम् ॥ ३९ ॥
अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं दाडिमाद्यमिदं महत् ॥ ४० ॥

यह महादाडिमाद्य घृत यथाविधि सिद्ध कर सेवन करनेसे २० प्रमेह, १३ मूत्राघात, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, कठिनतर रक्तपित्त, वात पित्त कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुये अनेकों उपद्रव दूर होते हैं और वीर्यवृद्धि तथा पुष्टि होती है ॥

मेहमिहिरतैल ।

पञ्चमूल्यमृताधात्रीदाडिमानां तुलां पचेत् ।
जलद्रोणे स्थिते पादे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥
क्षीरं तैलसमं कल्कान् निम्बभूनिम्बगोक्षुरम् ।
दाडिमं रेणुकं बिल्वं दारु दार्वी बलाहकम् ॥
त्रिफला तगरं द्राक्षा जम्ब्वाम्रवल्कलाभयम् ॥ ४२ ॥

पञ्चमूल, गिलोय, आमले और अनारदाना ये सब ओषधें सौ पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे । पश्चात इस क्काथमें तिलका तेल १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ तथा कल्कार्थ नीमकी छाल, चिरायता, गोखुरू, अनारका वक्कल, रेणुका, बेलका गूदा, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, तगर, दाख, जामुनकी छाल, आमकी छाल और खस ये सब समान भाग मिश्रित आधसेर मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

नाम्नेदं मेहमिहिरं सर्वमूत्रामयापहम् ।
हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशतां तथा ॥ ४३ ॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्राः स्त्रीक्षीणाश्चापि ये नराः ।
तेषां वृष्यं च बल्यं च वयःस्थापनमेव च ॥ ४४ ॥

यह प्रमेहमिहिरनामक तैल सर्वप्रकारके मूत्रविकारोंको नष्ट करता है एवं हाथ, पाँव और शिरमें जलन, दुर्बलता, कृशता, इन्द्रियोंकी क्षीणता और वीर्यहीनताको दूर करता है जो पुरुष स्त्रियोंके साथ अधिक रमण करनेसे क्षीण होगये हैं उनके लिये यह तेल अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, वलकारक, आयुको स्थापन करनेवाला है ४३-४४

प्रमेहमिहिरतैल।

शतपुष्पा देवकाष्ठं मुस्तकं च निशाद्वयम्।
मूर्वा कुष्ठं वाजिगन्धा चन्दनद्वयरेणुकम् ॥ ४५ ॥
कटुकी मधुकं रास्ना त्वगेला ब्रह्मयष्टिका।
चविका धान्यकं वत्सं पूतिकागुरुपत्रकम् ॥ ४६ ॥
त्रिफला नलिका बाला बला चातिबला तथा।
मञ्जिष्ठा सरलं पद्मं लोध्रं मधुरिका वचा ॥ ४७ ॥
अजाजी चोशिरं जाती वासा तगरपादुका।
एतेषां कार्षिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत ॥ ४८ ॥
शतावर्या रसं तुल्यं लाक्षारसचतुर्गुणम्।
मस्तु लाक्षारसैस्तुल्यं क्षीरं तुल्यं प्रदापयेत् ॥
द्रव्यैरेतैः पचेत्तैलं गन्धं दत्त्वा यथाक्रमम् ॥ ४९ ॥

प्रथम सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, कूठ, असगन्ध, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, रेणुका, कुटकी, मुलहठी, रास्ना; दारचीनी, इलायची, भारङ्गी, चव्य, धनियाँ, इन्द्रजौ, पूतिकरञ्ज, अगर, पत्रज, त्रिफला, नली, सुगन्धवाला, खिरैंटी, कंघी, मंजीठ, धूपसरल, पद्माख, लोध, सौंफ, वच, कालाजीरा, खस; जायफल, अडूसेकी छाल और तगर इन सब ओषधियोंको दो दो तोले लेवे और खूब बारीक कूट पीसकर चूर्ण बनाकर रखलेवे। पश्चात् लाखको ४ प्रस्थ लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई हिस्सा जल बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। इस रसके साथ तिलका तेल १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, दहीका तोड ४ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ और उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर उत्तम रीतिसे तैलको सिद्ध करे। जब यथाविधि पककर सिद्ध होजाय तब पवित्र पात्रमें रखदेवे ॥ ४५-४९ ॥

एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गान्मारुतापहम्।
विषमाख्यान्ज्वरान्सर्वान्मेदोमज्जगतानपि ॥ १५० ॥

वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
क्षीणेन्द्रिये तथा शस्तं ध्वजभङ्गे विशेषतः ॥ ५१ ॥
दद्यात्तैलं विशेषेण फलमस्य च कथ्यते ।
दाहं पित्तं पिपासां च छर्दिं च मुखशोषणम् ॥ ५२ ॥
प्रमेहान् विंशतिं चैव नाशयेदविकल्पतः ।
प्रमेहमिहिरं नाम्ना रतिनाथेन भाषितम् ॥ ५३ ॥

इस सर्वश्रेष्ठ तेलकी मालिश करनेसे वायुजनित समस्त उत्कट व्याधियाँ दूर होती हैं। एवमेव वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज, मेदोगत, मज्जागत सर्वप्रकारके विषमज्वर नष्ट होते हैं। यह तेल नष्टेन्द्रिय और ध्वजभङ्ग रोगमें विशेषकर लाभदायक है। इसके सेवनसे दाह, पित्तविकार, तृषा, वमनेच्छा, मुखमें शोष तथा बीसों प्रकारके प्रमेह निश्चय नाश होजाते हैं। इस प्रमेहमिहिरनामक तेलको कामदेवने प्रकाशित किया है॥ १५०-१५३ ॥

देवदार्वाद्यरिष्ट।

तुलार्द्धं देवदारु स्याद्वासायाः पलविंशतिः ।
मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं रजनीद्वयम् ॥ ५४ ॥
रास्ना कृमिघ्नं मुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनम् ।
भागान्दशपलान्दद्याद्यमान्या वत्सकस्य च ॥ ५५ ॥
चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च ।
भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ५६ ॥
द्रोणशेषे कषाये च शीतीभूते प्रदापयेत् ।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ५७ ॥
व्योषस्य द्विपलं दद्यात्त्रिजातकचतुःपलम् ।
चतुःपलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरात् ॥ ५८ ॥
सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ५९ ॥

देवदारु ५० पल बिसौंटेकी छाल २० पल, मंजीठ, इन्द्रजौ, दन्ती, तगर, हल्दी, दारुहल्दी , रास्ना, वायविडङ्ग, नागरमोथा, शिरसकी छाल, खैर, अर्जुनवृक्षकी छाल, ये प्रत्येक दस दस पल, अजवायन, कुडेकी छाल, लालचन्दन, गिलोय, कुटकी और चीतेकी जड ये प्रत्येक आठ आठ पल लेवे। सबको एकत्र

कर ८ द्रोण जलमें पकावे । जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । जब शीतल होजाय तब उस क्वाथमें धायके फूल १६ पल, शहद ३०० पल, त्रिकुटा २ पल, त्रिजातकचूर्ण ४ पल, फूलप्रियंगु ४ पल और नागकेशर २ पल इनका खूब बारीक चूर्ण करके डालदेवे और एक उत्तम घीके चिकने बासनमें भरकर मुख बन्द करके गाडदेवे ॥ ५४-५९ ॥

मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ।
वातरोगग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥
देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रूकुष्ठविनाशनः ॥ १६० ॥

फिर सवा महीनेके पीछे उसको निकालकर प्रतिदिन प्रातःकाल शुद्ध होकर उचित मात्रासे सेवन करे । यह देवदार्वाद्यरिष्ट दुर्जय प्रमेह, वातजरोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाद और कुष्ठादिरोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६० ॥

चन्दनासव ।

चन्दनं वालुकं मुस्तं गाम्भारीं नीलमुत्पलम् ।
प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां रक्तचन्दनम् ॥ ६१ ॥
पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधं पिप्पलं शठीम् ।
पर्पटं मधुकं रास्नां पटोलं काञ्चनारकम् ॥ ६२ ॥
आम्रत्वचं मोचरसं प्रत्येकं पलमात्रकम् ।
धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ ६३ ॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा शर्करायास्तुलां तथा ।
गुडस्यार्द्धतुलां चापि मासं भाण्डे निधापयेत् ॥ ६४ ॥
चन्दनासव इत्येष शुक्रमेहविनाशनः ।
बलपुष्टिकरो हृद्यो वह्निसन्दीपनः परः ॥ ६५ ॥

सफेद चन्दन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कुम्भेर, नीलकमल, फूलप्रियंगू, पद्माख, लोध, मंजीठ, लालचन्दन, पाढ, चिरायता, वडकी छाल, पीपलकी छाल, कचुर, पित्तपापडा, मुलहठी, रायसन, परवल, कचनारकी छाल, आमकी छाल और मोचरस (सेमलका गोंद) ये प्रत्येक चार चार तोले एवं धायके फूल १६ पल, दाख २० पल, शुद्ध खाँड १०० पल और गुड ५० पल लेवे । इन सबको दो द्रोण जलसे परिपूर्ण एक उत्तम पात्रमें भरदेवे और उसका मुँह बन्द करके गाडदेवे । इस प्रकार एक महीनेतक रखा रहनेदेवे । पश्चात् उसको निकालकर छानलेवे । इसको

चन्दनासव कहते हैं। यह शुक्रप्रमेहको नाश करता है। बल-पुष्टिकारक हृदयको हितकारी व अग्निदीपक है ॥ ६१-६५ ॥

प्रमेहमें पथ्य।

प्राग्लङ्घनानि वमनानि विरेचनानि प्रोद्वर्त्तनानि शमनानि च दीपनानि। नीवारकङ्गुयववैणवकोरदूषश्यामाकजीर्णकुरुविन्दमुकुन्दकाश्च ॥ ६६ ॥ गोधूमशालिकलमाश्चिरजाः कुलत्था मुद्गाढकीचणयूषरसास्तिलाश्च। लाजाः पुरातनसुरा मधुवाटचमण्डस्तक्रं च रासभजलं महिषीजलं च ॥६७॥ लट्वाकपोतशशतित्तिरिलावबर्हिभृङ्गैणवर्तकशुकादिजाङ्गलाश्च। शोभाञ्जनानि कुलकानि कठिल्लकानि कर्कोटकानि बृहतीफलतालकानि ॥ ६८ ॥ औदुम्बराणि लशुनानि नवीनमोचपत्तूगोक्षुरकमूषिकपर्णिशाकम्। मन्दारपत्रममृता त्रिफला कपित्थं जम्बूकशेरुकमलोत्पलकन्दबीजम् ॥ ६९ ॥ खर्ज्जूरलाङ्गलिकतालतरूत्तमाङ्गं व्योषं च तिन्दुकफलं खदिरः कलिङ्गः। तिक्तानि चापि सकलानि कषायकाणि हस्त्यश्ववाहनमतिभ्रमणं रवित्विट्॥ व्यायाम इत्यपि गणो भवति प्रकामं मित्रं प्रमेहगदपीडितमानवानाम् ॥ १७० ॥

प्रमेहरोगमें प्रथम लङ्घन, वमन, विरेचन और उबटन करावे। पश्चात् रोगको शमन करनेवाली और अग्निको बढानेवाली औषधियाँ देवे। एवं नीवारधान्य, कंगुनीके चावल, जौ, बाँसीके चावल, कोदों, सामाधान्य, पुराने उडद, सांठीके चावल, गेहूँ, शालिधान, कलमीधान, पुरानी कुलथी, मूँग, अरहर और चनोंका यूष इनका भोजन, तिल, खीलें, पुरानी मदिरा, शहद, भुने जौका मांड, मठा, गर्दभमूत्र, भैंसका मूत्र, गाँवकी चिडियें, कबूतर, खरगोश, तीतर, लवा, मोर, भौंरा, काला हिरन, बत्तक और तोता आदि जङ्गली जीवोंका मांसरस, सहिंजना, परवल, करेला, ककोडा, बृहतीके फल, ताडके फल, गूलर, लहसन, नवीन केलेकी फली, पतङ्गके पत्तोंका शाक, गोखुरू, मूषाकानीका शाक, फरहदके पत्ते, गिलोय, त्रिफला, कैथ, जामुन, कसेरू,

कमल और नीलकमलका कन्द (भसींडा), कमलगट्टा, खजूर, कलिहारी, ताडका माथा, त्रिकुटा तेन्दुके फल, खैर, इन्द्रजौ एवं सम्पूर्ण कडुवे और कषैले रसवाले पदार्थ, हाथी और घोडेपर सवार होकर भ्रमण करना, धूपका सेवन और व्यायाम (दण्ड-कसरत आदि परिश्रम) करना ये सब खाद्य, ओषधें तथा क्रियायें प्रमेहरोगियोंके विशेष हितकारी हैं ॥ ६६-१७० ॥

प्रमेहमें अपथ्य।

मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम्।
सदाऽऽसनं दिवानिद्रां नवान्नानि दधीनि च ॥ ७१ ॥
आनूपमांसं निष्पावं पिष्टान्नानि च मैथुनम्।
सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ॥ ७२ ॥
तुम्बीं तालास्थिमज्जानं विरुद्धान्यशनानि च।
कूष्माण्डमिक्षुं दुष्टाम्बु स्वाद्वम्ललवणानि च॥
अभिष्यन्दीनि यत्नेन प्रमेही परिवर्जयेत् ॥ १७३ ॥

मूत्रके वेगको रोकना, धूमपान, स्वेदप्रदान, रुधिर निकलवाना, हरवख्त बैठें रहना, दिनमें शयन करना, नये अन्न, दही, अनूपदेशके प्राणियोंका मांसरस, सेमकी फली, पिट्ठीके पदार्थ, मैथुन, करना, सौवीरनामक काँजी, मद्य, सिरका, तेल, दूध, घी, गुड, लौकी, ताडकी गिरी, प्रकृतिविरु भोजन, पेठा, ईखका रस दूषित जल एवं मधुर, खट्टे, नमकीन और कफको बढानेवाले इत्यादि समस्त पदार्थोंको प्रमेहरोगी सप्रयत्न तत्काल त्यागदेवे। क्योंकि ये सब अत्यन्त हानिकर हैं ॥ ७१-१७३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहाचिकित्सा ॥

सोमरोगकी चिकित्सा।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाद्वापि श्रमादपि।
आभिचारिकदोषाच्च गरदोषात्तथैव च ॥ १ ॥
आपः सर्वशरीरेभ्यः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च।
तस्मात्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति च ॥
प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः ॥२॥

अत्यन्त मैथुन, शोथ, अधिक परिश्रम, आभिचारिक (उच्चाटनादि) और विषदोषादि कारणोंसे स्त्रियोंके सब शरीरमें स्थित जल क्षोभित होकर गिरते हैं और वे जल अपने स्थानसे हटकर मूत्रमार्गसे निकलते हैं। ये जल प्रसन्न, विमल, शीतल गन्धरहित, वेदनारहित और सफेद वर्णके होते हैं॥ १॥ २॥

स्रवन्ति चातिमात्रं तु दौर्बल्यं गतिहीनता।
शिरसः शिथिलत्वं च मुखतालुविशोषणम्॥ ३॥
सोमरोग इति ज्ञेयो देहे सोमक्षयान्नृणाम्।
सोऽतिक्रान्तः क्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णम्॥ ४॥
मूत्रातीसारमप्येवं तमाहुर्बलनाशनम्।
तेन तृष्णाभिभूताऽसौ जलं पिबति चाधिकम्॥ ५॥

अधिक परिमाणमें जलस्राव होनेपर दुर्बलता, शक्तिक्षीणता, शिरमें शिथिलता, मुख और तालुमें शोष उत्पन्न होता है। सोमके क्षय होजानेसे स्त्रियोंके शरीरमें यह सोमरोग होता है। सोमरोगकी अधिकता होनेपर बारबार मूत्र आता है। इसको मूत्रातिसार भी कहते हैं। इस रोगमें बलनाश होजानेके कारण तृषा अधिक लगनेसे जल बहुत पियाजाता है॥ ३–५॥

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसो मधु।
शर्करापयसा पीतमपां धारणमुत्तमम्॥ ६॥

केलेकी पकी फली, आमलोंका रस, शहद, खाँड और दूध इन सबोंको समभाग एकत्र मिलाकर सेवन करे तो सोमधातुका निकलना बन्द होजाताहै॥ ६॥

कदलीनां फलं पक्वं विदारीं च शतावरीम्।
क्षीरेण पाययेत्प्रातरपां धारणमुत्तमम्॥ ७॥

केलेकी पकी फली, विदारीकन्द और शतावर इनके चूर्णको समान भाग लेकर दूधके साथ पीवे तो स्त्रियोंका बहुमूत्ररोग नष्ट होजाता है॥ ७॥

धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबेत्सदा।
बहुमूत्रक्षयं कुर्यात्क्षारेण वासकस्य च॥ ८॥

आमलोंके रसको शहदमें मिलाकर अथवा अडूसेके रसको जवाखारके साथ मिलाकर सेवन करनेसे बहुमूत्ररोग नाश होता है॥ ८॥

तालकन्दं च तरुणं खर्जूरं कदलीफलम्।
पयसा पाययेत्प्रातर्मूत्रातीसारनाशनम्॥ ९॥

कच्चे ताडकी जड, खरजूकी जड और केलेकी पकी फली इनको बराबर २ लेकर दूधके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल पान करे तो मूत्रातीसार दूर होय ॥ ९ ॥

माषचूर्णं समधुकं विदारी शर्करा मधु ।
पयसा पाययेत्प्रातः सोमरोगविनाशनम् ॥ १० ॥

उडदोंका चूर्ण, मुलहठीका चूर्ण, विदारीकन्दका चूर्ण, चीनी और शहद ये सब समानांश लेकर दूधके साथ प्रातःसमय पान करे तो सोमरोग शमन होता है ॥

बहुमूत्रं तथा चान्यान् रोगांश्चैव तदुद्भवान् ।
तृष्णाधिके प्रदातव्यं शृतशीतमिदं शुभम् ॥ ११ ॥
सारिवा मधुकं द्राक्षा दर्भः सरलचन्दने ।
पथ्या मधुकपुष्पं च सर्वं च समभागकम् ॥ १२ ॥
जले संस्थाप्य रजनीं पराहे वस्त्रगालितम् ।
प्रोक्तं गहननाथेन सद्यस्तृष्णाहरं परम् ॥ १३ ॥

बहुमूत्ररोगमें अन्यान्य उपद्रवोंके उत्पन्न होनेपर तृषा अधिक लगे तो सारिवा, मुलहठी, दाख, कुशा, धूपसरल, लालचन्दन, हरड और महुएके फूल इन सबको समान भाग मिश्रित दो तोले लेवे और रात्रिके समय मिट्टीके स्वच्छ पात्रमें कुछ थोडासा जल डालकर भिगो देवे । फिर अगले दिन प्रातःकाल वस्त्रमें छानकर इस शीतल जलको पीनेसे तृषाका वेग शीघ्र शान्त होता है । श्रीगहनानन्दनाथने ऐसा कहा है ॥ ११-१३ ॥

तारकेश्वररस ।

मृतं सूत मृतं लौहं मृत वङ्गाभ्रकं समम् ।
मर्दयेन्मधुना चैव रसोऽयं तारकेश्वरः ॥ १४ ॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये ।
औदुम्बर फलं पक्वं चूर्णितं मधुना लिहेत् ॥ १५ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, लोहभस्म, वंगभस्म और अभ्रकभस्म इनको समान भाग लेकर शहदमें खरल करलेवे । इस प्रकार इस तारकेश्वररसको सिद्ध कर इसको एक एक माशा नित्यप्रति प्रातःसमय शहदमें मिलाकर सेवन करे और पीछेसे गूलरके पके फलोंके १ तोला चूर्णको शहदके साथ मिश्रितकर चाटे तो बहुमूत्ररोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

गगनादिलौह।

गगनं त्रिफला लौहं कुटजं कटुकत्रयम्।
पारदं गन्धकं चैव विषटङ्कणसर्जिकाः॥ १६॥
त्वगेला तेजपत्रं च वङ्गं जीरकयुग्मकम्।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ १७॥
तदर्द्धं चित्रकं चूर्णं कार्षिकं मधुना लिहेत्।
अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोमकम्॥ १८॥

अभ्रकभस्म, त्रिफला, लोहभस्म, कुडेकी छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागा, सज्जी, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, वंगभस्म, जीरा और कालाजीरा ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे और सब चूर्णसे आधा चीतेकी जडका चूर्ण मिलालेवे। प्रतिदिन इस चूर्णको एक कर्ष परिमाण शहदमें मिलाकर चाटे तो मुत्रातीसार और सोमरोग अवश्यमेव दूर होता है॥ १६-१८॥

सोमनाथरस।

कर्षं जारितलौहं च तदर्द्धं रसगन्धकम्।
एला पत्रं निशायुग्मं जम्बु वीरणगोक्षुरम्॥ १९॥
विडङ्गं जीरकं पाठा धात्री दाडिमटङ्कणम्।
चन्दनं गुग्गुलुर्लोध्रं शालार्जुनरसाञ्जनम्॥
छागीदुग्धेन वटिकां कारयेद्दशरक्तिकाम्॥ २०॥

लोहेकी भस्म २ तोले, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक एक एक तोला एवं छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुनकी छाल, खसका मूल, गोखुरू, वायविडंग, जीरा, पाढ, आमले, अनारदाना, सुहागा, चन्दन, गूगल, लोध, राल, अर्जुनछाल और रसौंत इन औषधियोंके चूर्णको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें यथाविधि खरल करके दस दस रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे॥ १९॥ २०॥

निर्मितो नित्यनाथेन सोमनाथरसस्त्वयम्।
सोमरोगं बहुविधं प्रदरं हन्ति दुर्जयम्॥ २१॥
योनिशूलं मेढ्रशूलं सर्वजं चिरकालजम्।
बहुमूत्रं विशेषेण दुर्जयं हन्त्यसंशयम्॥ २२॥

इस सोमनाथरसको महाराज नित्यनाथने निर्माण किया है। यह रस अनेक प्रकारके सोमरोग, दुर्जय प्रदर, योनिगतशूल, लिङ्गशूल तथा अन्य सर्वप्रकारके शूलः विशेषकर बहुत पुराने और दुस्तर बहुमुत्ररोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २१ ॥ २२॥

वृहत्सोमनाथरस ।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं पालिधारसमर्दितम् ।
रण्डाशोधितगन्धं च तेनैव कज्जलीकृतम् ॥ २३ ॥
तद्द्वयोर्द्विगुणं लोहं कन्यारसविमर्दितम् ।
अभ्रकं वङ्गकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा ॥ २४ ॥
सुवर्णं च समं सर्वं प्रत्येकं च रसार्द्धकम् ।
तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद्भावयेत्ततः ॥ २५ ॥
भेकपर्णीरसेनैव गुञ्जाद्वयवटीं ततः ।
मधुना भक्षयेच्चापि सोमरोगनिवृत्तये ॥ २६ ॥

हिंगुलसे निकले हुए पारेकी फरहदके पत्तोंके स्वरसमें खरल करे और शुद्ध गन्धकको मूषाकानीके रसमें खरल करे। इन दोनोंको एक एक तोला लेकर कज्जली बनावे। तदनन्तर कज्जलीसे दुगुनी लोहभस्म ४ तोले मिलाकर घीग्वारके रससे घोटे। फिर इनमें अभ्रक, वंग, रूपा, खपरिया, सोनामखी और सुवर्ण इन सबकी भस्म पारेसे आधी आधी भाग मिलाकर घीग्वारके रससे खरल कर मण्डूकपर्णीके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक गोली शहदमें मिलाकर खाय तो सोमरोग शान्त होता है ॥ २३-२६ ॥

प्रमेहान्विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च सोमकम् ।
मूत्रातिसारं कृच्छ्रं च मूत्राघातं सुदारुणम् ॥ २८ ॥
बहुदोषं बहुविधंप्रमेहं मधुसंज्ञकम् ।
हन्ति मेहमिक्षुमेहं लालामेहं विनाशयेत् ॥ २८ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञकम् ।
नाशयेद्बहुमूत्रं च प्रमेहमविकल्पतः ॥ २९ ॥

यह रस बीसों प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, मूत्रातीसार, मुत्रकृच्छ्र, मुत्रघात, अनेक उपद्रवोंसे युक्त नानाप्रकारके प्रमेह, मधुमेह, शर्करामेह, लालामेह, वातज, पित्तज और कफजन्य सोमरोगको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ २७-२९ ॥

सोमेश्वररस।

शालार्जुनकलोध्रं च कदम्बागुरुचन्दनम्।
अग्निमन्थं निशायुग्मं धात्रीदाडिमगोक्षुरम्॥ ३०॥
जम्बूवीरणमूलं च भागमेषां पलार्द्धकम्।
रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं तथाऽभ्रकम्॥ ३१॥
लौहं रसाञ्जनं पाठा विडङ्गं टङ्कजीरकम्।
प्रत्येकं शाणकं ग्राह्यं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि॥ ३२॥
घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत्षोडशरक्तिकाम्।
गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्मितः॥ ३३॥

साल, कोहकी छाल, लोध, कदमकी छाल, अगर, रक्तचन्दन, अरणी, हल्दी, दारुहल्दी, आमले, अनारके, छिल्के, गोखुरू, जामुनकी छाल और खसकी मूल ये प्रत्येक दो दो तोले एवं शुद्ध पारा, गन्धक, धनियाँ, नागरमोथा, इलायची, तेजपात, अभ्रक, लोहा, रसौंत, पाढ, वायविडङ्ग, सुहागा और जीरा ये प्रत्येक चार चार माशे और गूगल दो तोले लेवे। इन सबको एकत्र कूट पीसकर घृतमें खरल करके सोलह सोलह रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति सुबहको एक एक गोली खाय। श्रीमान् गहनानन्दनाथने इस रसको विस्तृत किया है॥ ३०-३३॥

सोमेश्वरो महातेजाः सोमरोगं निहन्त्यलम्।
एकजं द्वन्द्वजंचोग्रं सन्निपातसमुद्भवम्॥ ३४॥
उपद्रवसमायुक्तं चिरकालसमुद्भवम्।
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां च हलीमकम्॥ ३५॥
भगन्दरोपदंशौ च विविधान्‌ पिडकान्‌ व्रणान्।
विस्फोटार्बुदकण्डूश्च सर्वमेहं विनाशयेत्॥ ३६॥
यकृत्प्लीहोदरं गुल्मशूलार्शःकासविद्रधिम्।
सोमरोगं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनम्॥ ३७॥
बलवर्णाग्निजननो ग्रहवैगुण्यनाशनः।
छागीदुग्धानुपानेन नारिकेलोदकेन वा॥ ३८॥
शीतेन पाकतैलेन यवयूषादियोगतः।
युक्त्या प्रयोज्यो भिषजा रसो दोषविदाह्वयम्॥ ३९॥

अत्यन्त तेजवान् यह सोमेश्वररस सोमरोग, एकदोषज, द्विदोषज, अत्युग्र सान्निपातिक और अनेक उपद्रवोंसे युक्त, बहुत पुराना मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश, नाना प्रकारकी पीडाजनक व्रण, फोडे, अर्बुदरोग, कण्डू (खुजली), सर्वप्रकारके प्रमेह, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, शूल, अर्श, खाँसी, विद्रधि और चिरकालोत्पन्न सोमरोगादि कष्टोंको तत्क्षण नष्ट करता है तथा बल, कान्ति और जठराग्निको उत्पन्न करता है और इससे ग्रहपीडा भी दूर होती है । इसमें बकरीका दूध, नारियलका जल, पकाया हुआ शीतल तेल और जौका यूष प्रभृति अनुपानोंको दोषानुसार प्रयोग करे । यह रस सब दोषोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ३४–३९ ॥

बहुमूत्रान्तकरस १–२ ।

रसश्च शाल्मलीमूलचूर्णं कदलिमूलजम् ।
उदुम्बरबीजचूर्णं लौहं वङ्गं च विद्रुमम् ॥ ४० ॥
मुक्ताहिफेनसारौ च प्रत्येकं समभागिकम् ।
मर्दयेन्मालती पुष्परसेन कुशलो भिषक् ॥ ४१ ॥
रक्तिद्वयमितां कुर्याद्वटिकामतिशोभनाम् ।
बहुमूत्रान्तको नाम रसः परमशोभनः ॥
मधुमेहं सोमरोगं हन्ति भास्वान् यथा तमः ॥ ४२ ॥

१–रससिन्दूर, सेमलकी मुसलीका चूर्ण, केलेकी मूलका चूर्ण, गूलरके बीजोंका चूर्ण, लोहा, वङ्ग, मूगा, मोती और अफीम ये प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेवे । सबको एकत्र मालतीके फूलोंके स्वरसमें अच्छे प्रकार खरल करके दो दो रत्तीकी उत्तम गोलियाँ तैयार करलेवे । यह अत्यन्त सुन्दर बहुमूत्रान्तकनामवाला रस मधुमेह और सोमरोगको इस प्रकार नष्ट करता है, जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे अन्धेरेको दूर करदेता है ॥ ४०–४२ ॥

सिन्दूरं च तथा लौहं वङ्गाहिफेनसारकौ ।
उदुम्बरभवं बीजं बिल्वमूलं सुरप्रिया ॥ ४३ ॥
सर्वं समं जन्तुफलरसैः सम्मर्दितं भवेत् ।
रक्तिद्वयमितां खादेद्वटिकामनुपानतः ॥ ४४ ॥
दद्यादौदुम्बरफलरसं पथ्यविधिं शृणु ।
मांसप्रधानं भक्ष्यं च तथा गोधूमपिष्टकम् ।
बहुमूत्रान्तकरसो नाशयेदविकल्पतः ॥ ४५ ॥

२-रससिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अफीम, गूलरके बीज, बेलमूलकी छाल और कबाबचीनी इन सबको समान भाग लेकर और एकत्र पीसकर गूलरोंके रसमें विधिपूर्वक खरल करे, फिर दो दो रत्तीकी वटी प्रस्तुत करे। नित्यप्रति प्रातःकाल एक गोली खाय और ऊपरसे गूलरोंका रस तथा मधु एकत्र मिलाकर सेवन करे। इसपर मांसके साथ गेहूँकी रोटी भक्षण करे। यह रस सोमरोगको निश्चय दूर करता है॥ ४३-४५॥

हेमनाथरस।

सूतं गन्धं हेम ताप्यं प्रत्येकं कोलसम्मितम्।
अयश्चन्द्रं प्रवालं च वङ्गं चार्द्धं विनिक्षिपेत्॥ ४६॥
फणिफेनस्य तोयेन कदलीकुसुमेन च।
उदुम्बररसेनापि सप्तधा परिमर्दयेत्॥ ४७॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुवर्ण, सोनामाखी ये प्रत्येक एक एक तोला, लोहभस्म, कपूर, मूँगा और वङ्गभस्म ये प्रत्येक छः छः मासे लेवे। सबको एकत्र पीसकर अफीम, केले और गूलरके रसमें सातबार यथाक्रम खरल करे॥ ४६॥ ४७॥

वल्लमात्रां वटीं खादेद्यथाव्याध्यनुपानतः।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं सुदारुणम्॥ ४८॥
सोमरोगं क्षयं चैव श्वासं कासमुरःक्षतम्।
हेमनाथरसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण भाषितः॥ ४९॥
"रसगन्धकयोः स्थाने षड्गुणो जारितो वलिः।
प्रयोजितो भवेन्नॄणां विशेषफलदायकः॥"

पश्चात् दो रत्ती प्रमाण गोलियां बनावे। वातादि दोषोंके अनुसार अनुपानभेदसे प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे। यह बीसों प्रमेह, दारुण बहुमूत्र, सोमरोग, क्षय, खाँसी, श्वास और उरःक्षत इत्यादि सब रोगोंको नष्ट करता है। इस हेमनाथरसको कृष्णात्रेयमुनिने कहा है। "इसमें पारे और गन्धककी अपेक्षा यदि रससिन्दूर १ तोला डालदियाजाय तो विशेष लाभ होता है"॥ ४८॥ ४९॥

मालतीकुसुमाकर।

चन्द्रभागाः सुवर्णस्य कर्पूरं युग्मभागिकम्।
वङ्गशीशकलौहानां भागत्रयमुदाहृतम्॥ ५०॥

अभ्रप्रवालमुक्तानां भागाश्चत्वार ईरिताः ।
गव्येन पयसा चैव कदलीपुष्पजै रसैः ॥ ५१ ॥
रसेनेक्षुसमुत्थेन तथा पद्मरसेन च ।
उदुम्बररसेनैव भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥ ५२ ॥

सुवर्णभस्म १ तोला, कपूर २ तोले, वंग, शीशा और लोहभस्म तीन तीन तोले, अभ्रक, मूँगा और मोतीकी भस्म चार चार तोले लेकर सबको एकत्र पीसलेवे । फिर गोदुग्ध केलेका मोचा, ईखका रस, कमलका रस और गूलरोंका रस इन रसोंमें अलग अलग क्रमपूर्वक सातवार खरल करे ॥ ५०-५२ ॥

रक्तिद्वयमितो हन्ति मालतीकुसुमाकरः ।
रसः सर्वप्रमेहांश्च बहुमूत्रादिकं तथा ॥
सोमरोगांश्च संहन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ५३ ॥

यह मालतीकुसुमाकर नामवाला रस दो रत्ती प्रमाण खानेसे सर्वप्रमेह, बहुमूत्ररोग और सोमरोगको दूर करता है ॥ ५३ ॥

वसन्तकुसुमाकररस ।

वैक्रान्तस्य च भागैकं द्विभाग हेमभस्मनः ।
अभ्रकस्य च भागौ द्वौ मुक्ताविद्रुमयोस्तथा ॥ ५४ ॥
वङ्गभस्म त्रिभागं स्याद्रसस्य भस्मनस्तथा ।
चत्वारोऽस्य च भागाश्च सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ ५५ ॥
जम्बीराद्भिश्च गोदुग्धैरुशीरैर्नववारिभिः ।
वृषद्रवैरिक्षुनीरैः सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥ ५६ ॥

वैक्रान्तमणिकी भस्म १ तोला, सुवर्णभस्म, अभ्रक, मोती और मूँगाभस्म प्रत्येक दो दो तोले, वंगभस्म तीन तोले और पारेकी भस्म चार तोले लेवे । फिर सबको एकत्रकर जम्बीरीनिम्बूके रस, गौके दूध, खसकी मूलके रस, सोंठके स्वरस अडूसेके पत्तोंके रस और ईखके रसमें क्रमशः सातवार भावना देवे । तदनन्तर रसौंतके रसमें भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ निर्माण करे ॥ ५४-५६ ॥

भावितो रसराजः स्याद्वसन्तकुसुमाकरः ।
वल्लोऽस्य मधुना लीढः सोमरोगं क्षयं नयेत् ॥ ५७ ॥
ध्वजभङ्गं शुक्रमेहं मेहांश्च बहुमूत्रकम् ।
तृष्णां दाहं तालुशोथं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ५८ ॥

बल्यः पुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिवर्हणः ।
हन्ति जीर्णज्वरं श्वासं क्षयरोगं कृशाङ्गताम् ॥
नातः परतरं किञ्चिद्रसायनमिहेष्यते ॥ ५९ ॥

इस प्रकार सिद्ध किये हुए वसन्तकुसुमाकरनामक रसकी एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल शहदके साथ सेवन करे तो सोमरोग, ध्वजभंग, शुक्रप्रमेह, अन्यान्यप्रमेह बहुमूत्र, तृषा, दाह, तालुका सूखना, पुराना ज्वर, श्वास, क्षयरोग, और शरीरकी कृशताप्रभृति समस्त विकार नष्ट होते हैं एवं बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और व्याधियोंको क्षय करनेके लिये यह अत्युत्तम रसायन है ॥ ५७–५९ ॥

कस्तूरीमोदक ।

कस्तूरी वनिता क्षुद्रा त्रिफला जीरकद्वयम् ।
एलाबीजं त्वचं यष्टिमधुकं मिषिबालकम् ॥ ६० ॥
शतपुष्पोत्पलं धात्री मुस्तकं भद्रसञ्ज्ञकम् ।
कदलीनां फलं पक्कं खर्जूरं कृष्णकं तिलम् ॥ ६१ ॥
कोकिलाक्षस्य बीजं च माषमात्रं समं समम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणा सितशर्करा ॥ ६२ ॥
धात्रीरसेन पयसा कूष्माण्डस्वरसेन च ।
विपचेत्पाकविद्वैद्यो मन्दमन्देन वह्निना ॥ ६३ ॥
अवतार्य सुशीते च यथालाभं विनिक्षिपेत् ।
अक्षमात्रां प्रयुञ्जीत सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ६४ ॥

कस्तूरी, फूलप्रियंगु, कटेरी, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, छोटी इलायचीके दाने, दारचीनी, मुलहठी, सौंफ, सुगन्धवाला, सोआ, नीलकमल, धायके फूल, नागरमोथा, केलेकी पकी फली, खजूर, काले तिल और तालमखाने इन सबको अलग अलग एक एक माशा लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णसे दुगुनी अत्युज्वल मिश्री तथा आमलोंका रस दूध और पेठेका रस ये तीनों सबसे चौगुने लेवे । इन औषधियोंको एकत्रकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब अच्छे प्रकार पाक समाप्त होजाय तब उतारकर शीतल होजानेपर एक एक तोलेके लड्डू बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक लड्डू खावे तो सर्वप्रकारके प्रमेह शान्त होते हैं ॥ ६०–६४ ॥

वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
सोमरोगं बहुविधं मूत्रातीसारमुल्बणम् ॥ ६५ ॥
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु मूत्राघातं तथाऽश्मरीम् ।
ग्रहणीं पाण्डुरोगं च कामलां कुम्भकामलाम् ॥ ६६ ॥
वृष्यो बलकरो हृद्यः शुक्रवृद्धिकरः परः ।
कस्तूरीमोदकश्चायं चरकेण च भाषितः ॥ ६७ ॥

एवं वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज सोमरोग, अनेक प्रकारका मूत्रातीसार, दारुण मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, संग्रहणी, पाण्डु, कामला और कुम्भकामलादि विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। यह मोदक बलकारी, हृदयको हितकारी, अत्यन्त वीर्यवृद्धिकारी और विशेष पुष्टिकर है। यह कस्तूरीमोदकयोग चरकमहाराजने कहा है ॥ ६५–६७ ॥

धात्रीघृत ।

विना कल्कं स्वल्पधात्रीघृतमेतन्निगद्यते ।
सर्वतुल्यं गुणैरेव पथ्यापथ्यं तदेव हि ॥ ६८ ॥

घृत, आमलोंका रस, पेठेका रस, शतावरका रस, तृणपञ्चमूलका काथ और गोदुग्ध इनको समान भाग लेकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। यह विना कल्कका घृत है, इसको स्वल्पधात्रीघृत कहते हैं, किन्तु गुणोंमें बृहद्धात्री घृतके समान है। इसपर पथ्य व अपथ्य सब वस्तुयें तदनुसारही हैं ॥ ६८ ॥

बृहद्धात्रीघृत ।

धात्रीफलरसप्रस्थं विदारीस्वरसं तथा ।
क्षीरस्यापि शतावर्याः प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च ॥ ६९ ॥
तृणपञ्चरसप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं घृतस्य च ।
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यः पाकं ज्ञात्वा विधानतः ॥ ७० ॥
एलालवङ्गत्रिफलाकपित्थफलमेव च ।
सजलं सरसं मांसी कदलीकन्दमेव च ॥ ७१ ॥
उत्पलस्य च कन्दानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः ।
ततः कल्कं परिस्राव्य चूर्णं दद्यात्पलं पलम् ॥ ७२ ॥
मधुकं त्रिवृतौ चैव क्षारकं वृद्धदारकम् ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनश्च पलाष्टकम् ॥
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥ ७२ ॥

आमलोंका रस १ प्रस्थ (६४ तोले), विदारीकन्दका रस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, तृणपञ्चमूलका रस १ प्रस्थ और गोघृत १ प्रस्थ लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा पडजाय तब उसमें इलायची, लौंग, त्रिफला, कैथ, सुगन्धवाला, धूपसरल, बालछड, पकी केलेकी फली और नीलकमलकी जड इन सब औषधियोंके समान भाग मिश्रित १ सेर कल्कको छानकर डाले और फिर पाक करे। जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब मुलहठी, निसोत, जवाखार, विधारा प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, खाँड ८ पल तथा शहद ८ पल डालकर करछीसे चलाकर सबको एकमएक करलेवे। फिर घृतसे चिकने मिट्टीके बासनमें रखदेवे॥ ६९-७३॥

सोमरोगं निहन्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम्॥ ७४॥
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं नाशयेद्बहुमूत्रकम्।
पित्तजान्विविधान्व्याधीन्वातजांश्च सुदारुणान्॥ ७५॥
करोति शुक्रोपचयं बलवर्णकरं परम्।
नानारूपविकारघ्नं विशेषाद्बहुमूत्रनुत॥ ७६॥

यह धात्रीघृत सोमरोग, तृषा, दाह, अरुचि, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ, बहुमूत्र, पित्तजन्य अनेक रोग, दारुण वातसम्बन्धी विकार, अन्यान्य सर्वप्रकारके रोग, विशेषकर बहुमूत्ररोगको तत्काल विध्वंस करता है। वीर्य्यकी वृद्धि, बल और कान्तिको उत्पन्न करता है॥ ७४-७६॥

कदल्यादिघृत।

कदलीकन्दनिर्यासे तत्प्रसूनतुलां पचेत्।
चतुर्भागावशेषेऽस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत॥ ७७॥
चन्दनं सरलं मांसी कदली मूलकं तथा।
एला लवङ्गत्रिफलाकपित्थफलमेव च॥ ७८॥
औदकानि च कन्दानि न्यग्रोधादिगणस्तथा।

---

१ न्यग्रोधादिगणो यथा—न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपियालप्लक्षवेतसम्।
आम्रो जम्बूद्वयं कोलं मधुकं तिन्दुकोऽर्जुनः॥
तिलकःकट्वको नीपो गर्दभाण्डोऽथ किंशुकः॥

बड, गूलर, पीपल, चिरौजीका वृक्ष, पाखर, वेंत, आम, दोनों जामुन, बेर, महुआ, तेन्दु, अर्जुनवृक्ष, मरुआवृक्ष, कुटकी, कदम, सिरस और ढाक।

कल्केनानेन संसिद्धं सोमरोगनिवारणम् ॥ ७९ ॥
मूत्ररोगानशेषांश्च प्रभूतान् शुक्रपिच्छिलान् ।
प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ ८० ॥
बहुमूत्रं विशेषेण मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् ।
पीतं घृतं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥
कदल्यादिघृतं नाम विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ ८१ ॥

केलेके १०० पल फूलोंको केलेके ६४ सेर रसमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर गौका घी एक प्रस्थ, चन्दन, धूपसरल, बालछड, केलेकी जड, इलायची, लौंग, त्रिफला, कैथ, जलोत्पन्न कन्द (कमलकन्द, कसेरू, नीलकमलकी जड, सिंघाडे, सालग आदि) और न्यग्रोधादिगणकी समस्त औषधियाँ लेवे । इन सबको दो दो तोले कूट पीसकर पूर्वोक्त क्वाथमें डालदेवे । और शनैः शनैः मृदु अग्नि द्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध करे । इस घृतको प्रतिदिन नियमानुकूल सेवन करनेसे सोमरोग, सर्वप्रकारके मूत्रविकार, वीर्यकी पिच्छिलता, २० प्रमेह, १३ मूत्राघात, विशेषकर बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीआदिरोग तत्काल इस प्रकार नष्ट होते हैं, जिसप्रकार विष्णुभगवान्का सुदर्शनचक्र असुरदलको नाश करदेता है । यह कदल्यादिनामक घृत विष्णुभगवान्ने प्रकाशित किया है ॥ ७७–८१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सोमरोगचिकित्सा ॥

मेदोरोगकी चिकित्सा ।

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥ १ ॥
अस्वप्नं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥ २ ॥

परिश्रम, चिन्ता, स्त्रीसम्भोग, रास्ताचलना, शहदको पीना, रात्रिमें जागना, जौ और सामा अन्नका भोजन इन सब कृत्योंके करनेसे शरीरकी स्थूलता नष्ट होती है । जो मनुष्य स्थूलताको नष्ट करना चाहते हैं वे रात्रिमें जागना, मैथुन करना, व्यायाम (दंड–कसरत आदि), चिन्ता इनको दिन प्रतिदिन बढानेकी चेष्टा करे, १-२

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ।
उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥ ३ ॥

प्रतिदिन प्रातःसमय शहदको जलमें मिलाकर पान करे तो स्थूलता नष्ट होती है अथवा उष्ण अन्नका माँड पीवे तो स्थूलता दूर होजाती है ॥ ३ ॥

सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ।
मस्तुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ ४ ॥

चव्य, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, कालानमक और चीतेकी जड इनको समान भाग लेकर एकत्र पीस लेवे फिर इस चूर्णको १६ गुना जौके चूर्णमें मिलाकर दहीके तोडके साथ पान करनेसे स्थूलता नष्ट होती है और अग्नि प्रवृद्ध होती है॥४॥

विडङ्गनागरक्षारकान्तलौहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥ ५ ॥

वायविडङ्ग, सोंठ, जवाखार, कान्तलोहभस्म, जौ और आमले इन सब औषधियोंके चूर्णको एक एक तोला, किन्तु भस्म सबसे दुगुनी लेवे । फिर सबको एकत्र मधुके साथ मिलाकर चाटनेसे स्थूलता दूर होती है ॥ ५ ॥

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ।
स्थौल्यनुत्स्यात्साग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ ६ ॥

बेरीके पत्तोंको पीसकर काँजीमें पकाकर पेया बनावे । इसको पीनेसे स्थूलता नष्ट होती है।एवं शिलाजीतको अरणीके रसमें मिलाकर पीनेसे स्थूलपन दूर होता है॥६॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः ।
पत्राम्बुलोहाभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥७॥

शिरसकी छाल, खस, नागकेशर और लोध इनके समान भाग मिले हुए चूर्णको शरीरपर मालिश करे तो त्वचाके दोष ओर अधिक पसीना निकलना बन्द होता है । तेजपात, सुगन्धवाला, अगर, खस, और चन्दन इनको समान भाग लेकर एकत्र खूबबारीक पीसकर मालिश करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर होय ॥ ७ ॥

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ।
बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ८ ॥

अडूसेके पत्तोंके रस अथवा बेलपत्रीके रसमें शंखभस्म मिलाकर शरीरपर लेप करनेसे देहकी दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ८ ॥

हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलं च।
एषोऽङ्गरागःकथितोऽङ्गनानां जङ्घाकषायश्च नराधिपानाम्॥९

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इन सबको समान भाग लेकर दूधमें पीसलेवे। फिर इसका उबटन करे तो स्त्री और पुरुषोंके मेदजन्य दुर्गन्ध दूर होकर शरीर अत्यन्त कान्तिमान् होता है ॥ ९ ॥

गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम्।
कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥१०॥

हरितालको गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट हो, एवं गोदुग्धमें हरितालको पीसकर लेप करनेसे शरीरका वर्ण शोभायमान होता है और कोख आदि स्थानोंकी दुर्गन्ध दूर होती है। यदि गोदुग्धके साथ हरिताल और दारुहल्दी एकत्र घिसकर मस्तकपर तिलक लगावे तो स्त्री वशीभूत हो ॥ १० ॥

चिञ्चापत्रस्वरसं म्रक्षितकक्षादियोजितं जयति।
पुटितहरिद्रोद्वर्तनमचिराद्देहस्य दौर्गन्ध्यम् ॥ ११ ॥

इमलीके पत्तोंका रस शरीरपर मालिश करके पश्चात् पुटद्वारा भस्म कीहुई हल्दीको उद्वर्त्तन करनेसे बगल, कुक्षि आदि स्थानोंकी बहुत पुरानी दुर्गन्ध शीघ्र नष्ट होती है ॥ ११ ॥

दलजललघुमलयाभयविलेपनं हरति देहदौर्गन्ध्यम्।
विमलारनालसहितं पीतमिवालम्बुषाचूर्णम् ॥ १२ ॥

तेजपात, सुगन्धवाला, अगर, श्वेत चन्दन और खस इनको समान भाग लेकर जलमें पीसकर लेप करे अथवा गोरखमुण्डीके चूर्णको निर्मल काँजीके साथ पान करे तो शरीरकी दुर्गन्ध दूर होती है ॥ १२ ॥

व्योषाद्य सक्तुप्रयोग।

व्योषं विडङ्गशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम्।
बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ १३ ॥
हिङ्गुकेबूकमूलानि यमानी धान्यचित्रकम्।
सौवर्चलमजाजीं च हबुषां चेति चूर्णयेत् ॥ १४ ॥
चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः।
सक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत् ॥ १५ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, सहिंजनेकी जड, त्रिफला, कुटकी, कटाई, कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, केउंआकी जड, अजवायन, धनियाँ, चीता, कालानमक, कालाजीरा और हाऊबेर ये सब समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। फिर तिलका तेल, घृत और शहद ये प्रत्येक समस्त चूर्णकी बराबर भाग और जाक सत्तू चूर्णसे १६ गुने लेवे। सबको एकत्र शीतल जलके साथ मिलाकर पान करे ॥ १३-१६ ॥

प्रयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ।
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ १६ ॥
प्लीहा पाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ।
हृद्रोगा राजयक्ष्मा च कासः श्वासो गलग्रहः ॥ १७ ॥
क्रिमयो ग्रहणीदोषः श्वैत्रः स्थौल्यमतीव च ।
नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ १८ ॥

इसके सेवनसे बीसों प्रमेह, मूढवातरोग, कोढ, बवासीर, कामला, तिल्ली, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, गलेकी पीडा, कृमिरोग, संग्रहणी, सफेद कुष्ठ और स्थूलतादिरोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा अग्निदीपन, स्मरणशक्ति और बुद्धि बढती है एवं अत्यन्त तृप्ति होती है ॥ १६-१८ ॥

विडङ्गाद्यलौह ।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणा नागरकेण च ।
बिल्वचन्दनह्रीबेरं पाठोशीरं तथा बला ॥ १९ ॥
एषां सर्वसमं लौहं जलेन वटिका शुभा ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहमष्टगुणं पयः ॥ २० ॥

वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, बेलगिरी, चन्दन, सुगन्धवाला, पाढ, खस और खिरैंटी इनके चूर्णको एक एक तोला और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म लेवे। पश्चात् सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दस दस रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाय और ऊपरसे लोहभस्म एक तोला एवं दूध आठ तोले मिलाकर पीवे ॥ १९ ॥ २० ॥

सर्वमेदोहरं बल्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ।
अग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २१ ॥

सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
विडङ्गाद्यमिदं लौहं सर्वरोगनिषूदनम् ॥ २२ ॥

इससे सर्वप्रकारके मेदरोग दूर होते हैं। यह विडंगाद्यलोह बल अवस्था और कान्तिको बढानेवाला अग्निको दीपन करनेवाला एवं अत्युत्तम वाजीकरण है। यह सोमरोग और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकारके पुञ्जको छिन्नभिन्न करदेता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

त्र्यूषणादिलौह।

त्र्यूषणं विजया चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्।
वाकुजी सैन्धवं चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥ २३ ॥
अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २४ ॥
मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम्।
नाहारे यन्त्रणा कार्य्या न विहारे तथैव च ॥
त्र्यूषणाद्यमिदं लौहं रसायनवरोत्तमम् ॥ २५ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, भाँग, चव्य, चीता, विरियासञ्चरनोन, साँभरनोन, बाकुची, सैंधानमक और कालानमक इन सबोंका चूर्ण समान भाग एवं समस्त चूर्णकी बराबर लोहभस्म मिलाकर एकत्र पीसलेवे। फिर इसको तीन रत्ती प्रमाण लेके शहद और घीमें मिलाकर भक्षण करे तो स्थूलताका ह्रास होता है तथा बल वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है। प्रमेह, कुष्ठ एवं अन्यान्य अनेक प्रकारके विकार दूर होते हैं। इसके सेवन करनेपर आहार विहारका कुछ परहेज नहीं करे। यह त्र्यूषणाद्यलोह सर्वोत्तम रसायन है ॥ २३-२५ ॥

लौहरसायन।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम्।
त्रिवृताऽलम्बुषा स्नुक् च निर्गुण्डी चित्रकं शठी ॥ २६ ॥
एषां दशपलान् भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत्।
पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ २७ ॥
पलद्वादशकं देयं तीक्ष्णलौहस्य चूर्णितम्।
पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलानि च ॥ २८ ॥

पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।
प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ २९ ॥
एलात्वचोः पलार्द्धं च विडङ्गानां पलद्वयम् ।
मरिचं चाञ्जनं कृष्णा द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ ३० ॥
पलद्वयं तु कासीसं श्लक्ष्णचूर्णीकृतं बुधः ।
चूर्णं कृत्वाऽथ मथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥३१॥
ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ।
अनुपानं पिबेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥ ३२ ॥

पोटलीमें बँधीहुई गूगल, मुसली, त्रिफला, खैर, अडूसा, निसोत, गोरखमुण्डी थूहरका जड, निर्गुण्डी, चीता और कचूर इन औषधियोंको दस दस पल लेकर ४० सेर जलमें पकावे। पकते २ जब १० सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें अच्छे प्रकार पीसीहुई कान्तलोहकी भस्म ४८ तोले, पुराना घी ६४ तोले और चीनी ३२ तोले डालकर तांबेके पात्रमें यथाविधि पाक करे। जब पककर शीतल होजाय तब उतारकर उसमें शहद ३२ तोले, शिलाजीत ८ तोले, इलायची, २ तोले, दारचीनी २ तोले, वायविडङ्ग ८ तोले, मिरच, रसौंत, पीपल, हरड, बहेडा, आमला और कसीस ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले लेकर खूब बारीक कूट पीसकर डालदेवे। फिर करछीसे चलाकर सबको एकमएक करके स्वच्छ घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। प्रथम वमन, विरेचनादिसे शरीर को शुद्ध करलेवे पश्चात् इसको नित्यप्रति प्रातःकाल दो दो तोलेकी मात्रासे भक्षण करे। इसपर दूध और जङ्गली जीवोंके मांसका रस अनुपान करे ॥ २६-३२ ॥

वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहज्वरापहम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ ३३ ॥
मूर्च्छामोहत्रिषोन्मादं गराणि विविधानि च ।
स्थूलानां कर्शनं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ ३४ ॥
कर्शयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् ।
बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३५ ॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ।
नाश्नीयात्कदलीं कन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ॥
करीरं कारवेल्लं च षट् ककाराणि वर्जयेत् ॥ ३६ ॥

यह लोहरसायन वात कफनाशक, कुष्ठ, प्रमेह और ज्वरको नाश करनेके लिये अत्युत्तम है। एवं कामला, पाण्डु, सूजन, भगन्दर, मुर्च्छा, मोह, विष, उन्माद और नाना प्रकारके विषदोषोंको हरता है। स्थूलपुरुषोंकी स्थूलताको कृश करनेवाली, मेदरोगकी परमोत्कृष्ट औषधि एवं उदरको अत्यन्त पतला करनेवाली है। अत्यन्त बलकारक, रसायन, मेधाजनक उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीजनक, पुत्रको उत्पन्न करनेवाली, वली (शरीरमें झुर्रियोंका पडना) और पलित (असमय बालोंका सफेद होना) इत्यादि रोगोंको नाश करती है। इस औषधिके सेवन करनेपर केला, कन्द (आलू, काँदू आदि), काँजी, करौंदा, करीर (बाँसके अंकुर) और करेला इन छः ककारवाले पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ३३-३६ ॥

नवकगुग्गुलु।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडंगैर्गुग्गुलुं समम्।
खादन्सर्वाञ्जयेद् व्याधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥३७॥

सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और वायविडङ्ग ये सब समान भाग और इन सबकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको सेवन करनेसे मेदरोग, कफ और आमवातजन्य सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

अमृताद्यगुग्गुलु।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं कलिंगपथ्यामलकानि गुग्गुलुः।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिडिकास्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥३८॥

गिलोय १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, वायविडङ्ग ३ तोले, कुडेकी छाल ४ तोले, इन्द्रजौ ५ तोले, हरड ६ तोले, आमले ७ तोले और शुद्ध गूगल ८ तोले इन सबको कूट पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे पिडिका, स्थूलता और भगन्दररोग नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

त्रिफलाद्यतैल।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ ३९ ॥
गुडूचीन्द्रसुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः।
तैलमेभिः शनैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम ॥ ४० ॥

पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजयेत् ।
स्थूलतालस्यकण्डूवादीन् जयेत्कफकृतान् गदान् ॥ ४१ ॥

त्रिफला, अतीस, मुर्वा, निसोत, चीता, अडूसा, नीमकी छाल, अमलतासकी छाल, वच, सतवन, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, निर्गुण्डी, पीपल, कूठ, सरसों और सोंठ इनके समान भाग मिले एक सेर कल्कके द्वारा सुरसादिगणकी औषधियोंके क्वाथमें तिलके तेलको यथाविधि धीरे धीरे सिद्ध करे। इस तेलको पान, अभ्यंग गण्डूष, नस्य और वस्तिकर्ममें प्रयोग करना चाहिये। यह तेल स्थूलता, आलस्य, खुजली आदिरोग एवं कफजनित सम्पूर्ण रोगोंको हरता है ॥

मेदोरोगमें पथ्य ।

चिन्ता श्रमो जागरणं व्यवायः प्रोद्वर्त्तनं लङ्घनमातपश्च । हस्त्यश्वयानं भ्रमणं विरेकः प्रच्छर्दनं चाप्यपतर्पणानि ॥ ४२ ॥ पुरातना वैणवकोरदूषश्यामाकनीवारप्रियङ्गवश्च । यवाः कुलत्थाश्चणका मसूरा मुद्गास्तुवर्योऽपि मधूनि लाजाः ॥ ४३ ॥ कटूनि तिक्तानि कषायकाणि तक्रं सुरा चिङ्गटमत्स्य एव । दग्धानि वार्ताकुफलानि चापि फलत्रयं गुग्गुलु वायसश्च ॥४४॥ कटुत्रयं सार्षपतैलमेला रूक्षाणि सर्वाणि च मुख्यतैलम् । पत्रोत्थशाकोऽगुरुलेपनानि प्रतप्तनीराणि शिलाजतूनि ॥
प्राग्भोजनस्यापि च वारिपानं मेदोगदं पथ्यमिदं निहन्ति ॥

चिन्ता, अत्यन्त परिश्रम, रात्रिमें जागना, मैथुन, शरीरपर जोरसे उबटन करना, लङ्घन, धूपका सेवन, हाथी और घोडे आदिकी सवारीपर चढना, भ्रमण करना, जुल्लाब लेना, वमन और अपतर्पण करना, पुराने बाँसीके चावल, कोदों, सामा, नीवार और कँगुनीके चावल, जौ, कुलथी, चने, मसूर, मूँग, अरहर, शहद, खीलें, चरपरे, कडवे और कषायरसवाले पदार्थोंका भोजन, मट्ठा, मदिरा, चिङ्गटमत्स्य (मछली विशेष), बैंगनोंका भुर्त्ता, त्रिफला, गूगल, राल, त्रिकुटा, सरसोंका तेल, इलायची, सम्पूर्ण रूक्ष पदार्थ, तिलका तेल, पत्रशाक, अगरका लेप, उष्ण जलसे स्नान, पान, शिलाजीत सेवन और भोजन करनेसे पूर्व जलका पीना ये सब मेदरोगमें हितकारक पदार्थ हैं । इनके सेवन करनेसे उक्त रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४२-४९ ॥

मेदोरोगमें अपथ्य ।

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान्सुखशीलताम् ।
क्षीरेक्षुविकृतीर्माषांल्लौहित्यं स्नेहनानि च ॥ ४६ ॥
मत्स्यं मांसं दिवानिद्रां स्रग्गन्धौ मधुराणि च ।
भोजनस्य समग्रस्य पश्चात्पानं जलस्य च ॥ ४७ ॥
अतिमात्रं तूपचितो विशेषाद्वमनक्रियाम् ।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

स्नान करना, रासायनिक औषधियोंका सेवन, शालिके चावल, गेहूँ, सुखपूर्वक उपभोग, दूधकी खीर, ईखके रसकी खीर, उडद, लौहित्य (मसूर, सांठी आदिके चावल) द्रव्योंका आहार, स्नेह (घृत, तैलादिका पान, अभ्यंग आदि) क्रिया, मछली, मांसभक्षण, दिनमें सोना, मालाधारण करना, सुगन्धित द्रव्योंका सेवन, मधुररसंयुक्त पदार्थोंका भक्षण और समस्त भोजन करलेनेके बाद जलको पीना, अत्यन्त बढे हुए मेदमें विशेषकर वमन क्रिया स्वभावजन्य इच्छा शक्तिको पूर्ण न करना, इन सब द्रव्योंको मेदरोगी त्यागदेवे । क्योंकि ये सब उक्त रोगमें अपथ्य हैं ॥ ४६-४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मेदोरोगचित्सा ॥

उदररोगकी चिकित्सा ।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः ।
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्र शस्यते ॥ १ ॥

प्रायः वात, पित्त और कफादि दोषोंके संग्रह होनेसे सर्वप्रकारके उदररोग उत्पन्न होते हैं, अतः सम्पूर्ण उदरविकारोंमें वातादि तीनों दोषोंको शमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनलः ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ २ ॥

उदररोगमें वातादिदोष रोगीकी कुक्षिमें प्राप्त होकर, अग्निको मन्द करते हैं । इस कारण रोगीको अग्निप्रदीपक और हलके पदार्थ भोजन करनेके लिये देवे ॥ २ ॥

रक्तशालीन्यवान्मुद्गान् जाङ्गलांश्च मृगद्विजान् ।
पयोमूत्रासवारिष्टमधु सीधु च शीलयेत् ॥ ३ ॥

लालशालिके चावल, जौ, मूँग आदि अन्न, मृग और जंगली पशुपक्षियोंके मांस-रस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और सीधुनामक मद्यप्रभृति पदार्थ उदर-रोगीको भोजन करने चाहिये ॥ ३ ॥

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात् ।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥
पाययेत्तैलमेरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ॥ ४ ॥

वातादिदोषोंके अधिक सञ्चय होनेसे रक्तको बहानेवाले स्रोत बन्द होजाते हैं । इस कारण उदररोग उत्पन्न होते हैं । अतः रोगीको नित्यप्रति गोमूत्र अथवा दूध मिला हुआ अण्डीका तेल उचित मात्रास पान कराकर दस्त करावे ॥ ४ ॥

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् ।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥ ५ ॥
हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
यथाऽस्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयत्पुनः ॥ ६ ॥

वातजनित उदररोगमें यदि रोगी बलवान् हो तो प्रथम उसको स्नेह (घृतादि) द्रव्य पान कराकर स्निग्ध करे । पश्चात् स्वेदक्रिया करके स्निग्ध (अण्डीका तेल आदि) विरेचन देवे । इस प्रकार करनेसे दोषोंके नष्ट होजानेपर जब पेट मुरझाजाय तब उसको वस्त्रसे लपेट देवे । अच्छे प्रकार बाँधनेसे उदर वायुद्वारा फिर नहीं फूल सकता ॥ ५ ॥ ६ ॥

विरिक्ते च यथादोषहरैः पेया शृता हिता ॥

विरेचन देनेके पश्चात् रोगीको वातादिदोषनाशक द्रव्योंके द्वारा पेया बनाकर देनेसे विशेष हित होता है ॥

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ।
शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ ७ ॥
यमानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं तु निचयोदरी ॥ ८ ॥

वातजन्य उदररोगमें पीपल और सैंधानमकका चूर्ण मिलाकर तक्र पान करे । मिश्री और कालीमिरचके चूर्णसे युक्त मधुर तक्रको पित्तोदररोगी पीवे ।

कफोदरवाला रोगी अजवायन, सैंधानमक, कालाजीरा, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णको मिलाकर तक्र पान करे और त्रिदोषोत्पन्न उदररोगमें त्रिकुटा, जवाखार तथा सैंधानोन इनका चूर्ण डालकर तक्र पान करावे ॥ ७ ॥ ८ ॥

गौरवारोचकार्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ।
तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ९ ॥
वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दाशमूलिकः ।
सोदावर्त्ते वातघ्नाम्लशृतैरण्डानुवासनः ॥ १० ॥

शरीरमें भारीपन, अरुचि, मन्दाग्नि अतीसार आदि लक्षणोंसे आक्रान्त और वातकफसे पीडित रोगीको तक्रपान करना अमृतके समान उपकारी है । वातसे उत्पन्न उदररोगमें बल बढनेके लिये रोगीको दूध अधिक सेवन करावे । जब शरीर सबल होजाय तब दशमूलकी औषधियोंके क्काथद्वारा निरूहवस्ति प्रयोग करे । उदावर्त्तयुक्त वातोदरमें वातनाशक और काँजी आदि अम्लद्रव्योंसे पकाये हुए अण्डीके तेलकी अनुवासनवस्ति प्रदान करे ॥ ९ ॥ १० ॥

स्नुक्पयसा सह भाविततण्डुलचूर्णेन निर्मितः पूवः ।
उदरमुदारं हिंस्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ ११ ॥

थूहरके दूधमें चावलोंके चूर्णको पकाकर मालपुये बनावे । इन पुओंको सेवन करनेसे सातदिनमें ही अत्यन्त प्रबल उदररोग दूर होता है ॥ ११ ॥

सक्षीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिबेन्नरः ।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः ॥ १२ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल समस्त अन्नजलादिका परित्याग करके भैंसके मूत्रको दूधमें मिलाकर पान करनेसे उदररोग एक सप्ताहमें निश्चय नाश होता है ॥ १२ ॥

मानमण्ड।

पुराणं मानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम् ।
साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्पायसं तु तत् ॥ १३ ॥
हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि ।
सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः ॥ १४ ॥

पुराने मानकन्दका चूर्ण एक भाग और चावल दो भाग लेवे । दोनोंको एकत्र पीसकर समान भाग दूध और जलके द्वारा पकावे । इस प्रकार सिद्ध की हुई खीरको सेवन करनेसे वातज उदररोग, सूजन, संग्रहणी, पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं । इस खीरके सेवनमें अन्य सर्वप्रकारके भोजन त्याग देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

सामुद्राद्यचूर्ण ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारं यमानीमजमोदकं च ।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं हिङ्गुं विडं चेति समानि कुर्यात् ॥ १५
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवले प्रशस्तम् ।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभक्तं वातास्रकोपं ग्रहणीं प्रदुष्टाम् ॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं चापि निहन्ति सद्यः १६

समुद्रनमक, कालानमक, सेंधानमक, जवाखार, अजवायन, अजमोद, पीपल, चीता, सोंठ, हींग और विरियासञ्चरनमक इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको घृतमें मिलाकर भोजनके पहले ग्रासमें खावे । यह चूर्ण वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातरक्तका कोप, संग्रहणी, दुष्ट बवासीर, पाण्डु और भगन्दरप्रभृतिरोगोंको तत्काल दूर करता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

इच्छाभेदीरस १-२ ।

शुण्ठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटङ्कणम् ।
जैपालास्त्रिगुणाः प्रोक्ताः सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ १७ ॥
इच्छाभेदी द्विगुञ्जा स्यात्सितया सह पाययेत् ।
पिबेत्तु चुलकं यावत्तावद्वारान्विरेचयेत् ॥
तक्रौदनं च दातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ॥ १८ ॥

१-सोंठ, मिरच, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और सुहागा ये प्रत्येक एकएक तोला एवं शुद्ध जमालगोटा ३ तोले लेवे । फिर सबको एकत्र जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक गोली मिश्रीके साथ सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल पीवे । इसपर जितने घूंट जल पीवेगा उतनी ही बार दस्त होंगे । जब उत्तम रूपसे दस्त होजाय तब यथारुचि मट्ठा मिलाहुआ अन्न भोजन करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

सूतं गन्धं च मरिचं टङ्कणं नागराभये ।
जैपालबीजसंयुक्तं क्रमोत्तरगुणं भवेत् ॥ १९ ॥
सर्वतुल्यो गुडो देय इच्छाभेदी स्वयं रसः ।
द्वित्रिगुञ्जापरिमिता वटी कार्या विचक्षणैः ॥ २० ॥

२-शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोले, काली मिरच ३ तोले सुहागा ४ तोले, सोंठ ५ तोले, हरड ६ तोले और जमालगोटा ७ तोले लेकर एकत्र

चूर्ण करलेवे । इस समस्त चूर्णकी बराबर भाग पुराना गुड मिलाके अच्छे प्रकार घोटकर दो या तीन रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनालेवे । यह इच्छाभेदी रस है । यह भी पूर्वोक्त रसके समान गुणोंवाला है ॥ १९ ॥ २० ॥

शुद्धसूतस्य भागैकं गन्धकान्माषकत्रयम् ।
विभीतकस्य माषैकं धात्र्याश्चैव तु माषकम् ॥ २१ ॥
माषद्वयं च पिप्पल्याः शुण्ठीनां माषकत्रयम् ।
जैपालबीजमज्जाया गुडकं विंशतिं तथा ॥ २२ ॥
अम्ललोणीरसैः पिष्ट्वा वटिकां कारयेद्भिषक् ।
कलायपरिमाणां तु भक्षयेद्रेचनार्थकम् ॥ २३ ॥
अम्ललोणीरसैः सार्द्धं तोयमुष्णं पिबेदनु ।
तावद्विरिच्यते वेगान् यावच्छीतं न सेवते ॥ २४ ॥

३–शुद्ध पारा एक मासा, शुद्ध गन्धक ३ मासे, बहेडा एक मासा, आमले एक मासा, पीपल दो मासे, सोंठ ३ मासे, जमालगोटेकी मींग और पुराना गुड बीस मासे लेवे । इन सबको एकत्र नोनियाके रसमें खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक गोली खाय और ऊपरसे नोनियाके रसके साथ उष्ण जल पान करे । इसपर जबतक शीतल जल न पिया जायगा तबतक बराबर दस्त होते रहेंगे ॥ २१–२४ ॥

भेदिनावटी ।

त्रिकण्टकस्नुक्पयसा पिप्पल्या वटिका कृता ।
भेदनीया सिद्धिमता महागदनिषूदनी ॥ २५ ॥

गोखुरू और पीपल इनको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें यथाविधि खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनावे । इसके सेवन करनेसे विरेचन होकर अति-प्रबल उदरादि रोग नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

नाराचरस ।

सूतं टङ्कणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।
गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥२६॥
सर्वतुल्यं क्षिपेदन्तीबीजं निस्तुषमेव च ।
द्विगुञ्जो रेचने सिद्धो नाराचोऽयं महारसः ॥
गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २७ ॥

शुद्ध पारा, सुहागा और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक भाग, शुद्ध गन्धक, पीपल और सोंठ ये प्रत्येक दो दो भाग तथा सबकी बराबर भूसीरहित जमालगोटा लेवे । फिर सबको एकत्र जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उसकी एक गोली चावलोंके धोवनके साथ सेवन करे तो उससे दस्त होकर गुल्म, प्लीहा और उदररोग दूर होते हैं । यह महानाराचरस विरेचनमें बाणकी समान तीक्ष्ण है ॥ २६ ॥ २७ ॥

जलोदरारिरस ।

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयुतम् ।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्य तुल्यं जैपालबीजकम् ॥
निष्कं खादेद्विरेकः स्यात्सद्यो हन्ति जलोदरम् ॥ २८ ॥

पीपल, कालीमिरच, ताम्रभस्म और हल्दीका चूर्ण इन सबोंको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें एक दिनतक अच्छे प्रकार खरल करे । फिर सबकी बराबर जमालगोटा मिलाकर पीसलेवे । इस रसको चार माशे प्रमाण खाय तो दस्त होकर जलोदररोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २८ ॥

दस्तको बन्द करनेके उपाय ।

रेचनानां च सर्वेषां दध्यन्नं स्तम्भने हितम् ।
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥ २९ ॥

यदि दस्तोंको बन्द करना हो तो दही और भातका भोजन करे । अर्थात् औषधिको सेवन करनेपर जब उत्तम प्रकारसे दस्त होजायँ तब सन्ध्याकालमें दही और भात अथवा मूँगके यूष और भातको भक्षण करे ॥ २९ ॥

वह्निरस ।

सूतस्य गन्धकस्याष्टौ रजनीत्रिफलाशिलाः ।
प्रत्येक च द्विभागाः स्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकम् ॥ ३० ॥
प्रत्येक स्यात्त्रिभागं च व्योषं दन्तिकजीरकम् ।
प्रत्येक सप्तभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः ।
प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥
महावह्निरसो नाम्ना निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ॥ ३२ ॥

शुद्ध पारा तथा गन्धक प्रत्येक आठ आठ भाग, हल्दी, त्रिफला और मैनसिल प्रत्येक दो दो भाग, निसोत, जमालगोटा एवं चीता तीन तीन भाग,

त्रिकुटा, दन्ती, और जीरा ये प्रत्येक सात सात भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्णको जयन्तीके पत्तोंके रस, थूहरक दूध, भाङ्गरेके रस, चीतेकी जडके रस और अण्डीके तेलमें अलग अलग क्रमानुसार सातवार सात सात भावना देवे। तदनन्तर इसको चार माशे प्रमाण गरम जलके साथ सेवन करे ॥

विरेचनं भवेत्तेन तक्रयुक्तं ससैन्धवम् ॥ ३३ ॥
दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ।
सर्वोदरहरः प्रोक्तः श्लेष्मवातहरः परः ॥ ३४ ॥

इसके सेवनसे जब अच्छे प्रकार दस्त होजायँ तब शामके वक्त सेंधेनमकसे युक्त मट्ठे और भातका पथ्य देवे। इसपर शीतल जल पान न करे। यह रस सर्वप्रकारके उदररोग और कफ-वातजन्य रोगोंको दूर करता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

चुलिकावटी ।

रसो गन्धो विषं तालं त्रिकटु त्रिफला तथा ।
टङ्कणं समभागं च जयपालं चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥
भृङ्गराजरसेनाथ केशराजरसेन वा ।
मधुना वटिका कार्य्या पञ्चगुञ्जामिता शुभा ॥ ३६ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, शुद्ध मीठातेलिया, हरिताल, त्रिकुटा, त्रिफला और सुहागा ये प्रत्येक समभाग और शुद्ध जमालगोटा सब द्रव्योंसे चौगुना लेवे। सबको एकत्रितकर भाङ्गरेके रस और शहदके साथ अथवा केशराज (काले भाँगरे) के रस और शहदके साथ उत्तम रीतिसे खरल करके पाँच पाँच रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चुलिकाख्या वटी ख्याता शोथोदरविनाशिनी ।
कामलां पाण्डुरोगं च आमवातं हलीमकम् ।
हन्याद्भगन्दरं कुष्ठं प्लीहानं गुल्ममेव च ॥ ३७ ॥

इसका चुलिकावटी नाम है। यह सूजन, उदररोग, कामला, पाण्डु, आमवात, हलीमक, भगन्दर, कोढ, प्लीहा और गुल्म आदि रोगोंको नष्ट करती है ॥ ३७ ॥

श्रीवैद्यनाथादेशवटिका ।

त्रिकटुकपारदपथ्यासमभागं कानकं फलं द्विगुणम् ।
माषप्रमाणवटिका कार्या स्वरसेन चाम्ललोणस्य ॥ ३८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, रससिन्दूर और हरड ये प्रत्येक समान भाग और दुगुना जमालगोटा लेवे। फिर सबको एकत्र चूर्णकर लोनियाके रसमें विधिपूर्वक खरल करके एकएक मासेकी गोलियाँ बनावे ॥ ३८ ॥

प्रवलजलोदरगुल्मज्वरपाण्ड्वामयविनाशिनी प्रोक्ता ।
तिमिराणि पटलविद्रधिप्रबलोदावर्त्तशूलहारी ॥ ३९ ॥
कृमिकोठकुष्ठकण्डूपिडकाश्च निहन्ति रोगचयम् ।
सिद्धगुडी प्रथिता भुवि श्रीवैद्यनाथपादाज्ञा ॥ ४० ॥

यह वटी प्रबलतर जलोदर, गुल्म, ज्वर, पाण्डु, तिमिर, पटल, विद्रधि, दुस्तर उदावर्त्त और शूलादि रोग एवं कृमिरोग, उदररोग, कुष्ठ, खुजली, पिडका प्रभृति समस्त रोगोंके समूहको शीघ्र नष्ट करती है । इसके सेवन करनेसे यदि ज्यादा दस्त होवें तो रोगीके हाथ पैर धुलाकर उसको दही और भातका थोडा भोजन करावे। यह श्रीवैद्यनाथ महाराजकी आज्ञासे निर्माण कीगई है, इसलिये इसको श्री वैद्यनाथादेशवटिका कहते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अभयावटी ।

अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणं च समांशिकम् ।
सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात्कानकजं फलम् ॥ ४१ ॥
स्नुहीक्षीरेण संकुर्याद्वटीं स्विन्नकलायवत् ।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ॥
उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ ४२ ॥

हरड, कालीमिरच, पीपल, और सुहागा ये सब समान भाग और सबके समान शुद्ध जमालगोटा, एकत्र मिलाकर पीसलेवे । फिर सबको थूहरके दूधमें अच्छे प्रकार खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ प्रस्तुत करे । इनमेंसे दो गोली और एक हरडको चावलोंके जलमें पीसकर खाय और ऊपरसे गरमजल पीवे तो इससे दस्त होते हैं । इसपर शीतलजल पीनेसे दस्त बन्द होजाते हैं ॥

जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टावुदराणि च ॥ ४३ ॥
वातोदरे प्रशस्तेयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति ।
कामलां पाण्डुरोगं च तथैव कुम्भकामलाम् ॥ ४४ ॥

यह गोली पुराने ज्वर, तिल्ली, ८ प्रकारके उदररोग, वातोदर, सर्व प्रकारकी अजीर्णता, कामला, पाण्डु, कुम्भकामलादि रोगोंको दूर करती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

शोथोदरारिलौहं ।

पुनर्नवामृतावह्निगवाक्षीमानशिग्रवः ।
सूर्यावर्त्तार्कमूलं च पृथगष्टपलं जले ॥ ४५ ॥
पादशेषे शृतं द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते ।
लौहचूर्णाष्टपलकं पचेदाज्यसमं भिषक् ॥ ४६ ॥
अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्नुहीक्षीरं चतुःपलम् ।
पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य पलं तथा ॥ ४७ ॥
पलार्द्धं पारदं सिद्धे वक्ष्यमाणं तु निक्षिपेत् ॥ ४८ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, चीता, इन्द्रायण, मानकन्द, सहिंजना, हुलहुलकी जड और आककी जड इन औषधियोंको अलग २ आठ आठ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्वाथमें लोहेकी भस्म ८ पल, गौका घी ८ पल, आकका दूध २ पल, थूहरका दूध ४ पल, शुद्ध गूगल ८ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और यथाविधि शोधित पारा २ तोले डालकर ताँबेके पात्रमें उत्तम रूपसे पाक कर । जब पाक भलीभाँति पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर शीतल होजानेपर उसमें निम्नोक्त औषधियोंके चूर्णको डालदेवे ॥ ४५-४८ ॥

जयपालं ताम्रमभ्रं शुद्धमत्र प्रदापयेत ।
कंकुष्ठवह्निकन्दानां शराख्याद्र घण्टकर्णकात् ॥
पलाशस्य च बीजानि कञ्चुकी तालमूलिका ॥ ४९ ॥
त्रिफलायाः कृमिरिपोस्त्रिवृद्दन्तीभवं तथा ।
सूर्यावर्त्तगवाक्ष्योश्च वर्षाभूर्वज्रवल्लिका ॥ ५० ॥
एषां लौहसमां मात्रां स्निग्धे भाण्डे निधापयेत ।
अतोऽस्य भक्षयेन्मात्रामनुपानं च युक्तितः ॥ ५१ ॥

यथा-जमालगोटा, शुद्ध ताँबे और अभ्रककी भस्म, मुरदाशंख, चीतेकी जड, जिमीकन्द, शरपता, मोखावृक्ष, ढाकके बीज, क्षीरकंचुकी, मुसली, त्रिफला, वायविडङ्ग, निसोत, दन्तीकी जड, हुलहुल, इन्द्रायणकी जड, पुनर्नवा और हडसकरी ये प्रत्येक औषधि लोहेकी समान भाग लेकर बारीक कूट पीसकर अच्छेप्रकार मिलादेवे । फिर उत्तम घृतसे चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे । पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल उपयुक्त मात्रासे सेवन करे और देश, काल तथा दोषोंके बलाबलको विचारकर अनुपानकी कल्पना करे ॥ ४९-५१ ॥

हन्ति सर्वोदरं शीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ।
ये च शोथाः सुदुर्वाराश्चिरकालानुबन्धिनः ॥ ९२ ॥
तान्सर्वान्नाशयत्याशु तमः सूर्योदये यथा ।
नातः परतरं किञ्चिच्छोथोदरविनाशनम् ॥ ९३ ॥
उदराणि पाण्डुरोगं कामलां च हलीमकम् ।
अर्शो भगन्दरं कुष्ठं ज्वरं गुल्मं च नाशयेत् ॥ ९४ ॥

यह सब उदररोगोंको तत्क्षण नाश करता है । जो पुराने और दुर्निवार्य्य शोथ हैं उन सबको यह औषधि इस प्रकार नष्ट करती है, जिस प्रकार सूर्य्यकी प्रखरतम् किरणोंके उदय होनेपर अन्धकार नष्ट होजाता है । शोथ और उदररोगकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । इससे पाण्डु, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर, कुष्ठ, ज्वर और गुल्मादि सब विकार दूर होते हैं ॥ ९२–९४ ॥

वज्रक्षार ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम् ।
टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारं तुल्यं सर्वं विचूर्णयेत् ॥ ९५ ॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैरातपे भावयेत् त्र्यहम् ।
तेन लिप्त्वाऽर्कपत्रं च रुद्ध्वा चान्तःपुटे पचेत् ॥ ९६ ॥
तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चात् त्र्यूषणं त्रिफलारजः ।
जीरकं रजनी वह्निर्नवभागं समं समम् ॥ ९७ ॥
क्षारार्द्धमेव सर्वं च एकीकृत्य प्रयोजयेत् ।
वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ९८ ॥

समुद्रनोन, सैंधानोन, कचियानोन, जवाखार, कालानमक, सुहागा और सज्जी इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे । फिर इस चूर्णको धूपमें रखकर आकके दूध और थूहरके दूधमें तीन दिनतक भावना देवे । तदनन्तर गोलासा बनालेवे । और उसको आकके पत्तोंसे लपेट हांडीमें रखकर मुँह बन्द करदेवें और अन्तःपुटमें स्थापन कर उत्तम रूपसे पकावे । जब यथाविधि पककर शीतल होजाय तब उक्त गोलेको निकालकर चूर्ण करलेवे । उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, जीरा, हल्दी और चीता इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण सब खारसे आधा भाग लेकर एकत्र मिलादेवे । इस प्रकार वज्रक्षार सिद्ध होता है । इसको शिवजी महाराजने कहा है ॥ ९५–९८ ॥

सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूलदोषेषु योजयेत् ।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् ॥५९॥
वाताधिके जलं कोष्णं घृतं वा पैत्तिके हितम् ।
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालं त्रिदोषजे ॥ ६० ॥

इसको समस्त उदररोग, गुल्म, शूल, मन्दाग्नि और अजीर्णादि रोगोंमें ४-४ माशेकी मात्रासे देवे तो उक्त सब विकार नष्ट होते हैं । अनुपान-वाताधिक्यमें गरम जल, पित्ताधिक्यमें घृत, कफाधिक्यमें गोमूत्र और त्रिदोषमें काँजीके साथ देवे ॥ ५९ ॥ ६०

बिन्दुघृत ।

अर्कक्षीरपले द्वे च स्नुहीक्षीरपलानि षट् ।
पथ्या काम्पिल्लकं श्यामा शम्याकं गिरिकर्णिका ॥६१॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शंखिनी चित्रकं तथा ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ६२ ॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ।
यावतोऽस्य पिबेद्बिन्दूंस्तावद्वारान् विरिच्यते ॥ ६३ ॥

आकका दूध ८ तोले, थूहरका दूध २४ तोले, हरड, कबीला, श्यामालता, अमलतास, सफेद अपराजिताकी जड, नीली, निसोत, दन्ती, शंखपुष्पी और चीता ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेवे । इनके कल्कद्वारा गौके १ प्रस्थ घृतको अच्छे प्रकार पकावे । इसकी केवल एक बूँद लेकर मलिन कोष्ठवाले रोगीको देवे । इस घृतकी जितनी बूँदें पीवे उतनीही वार दस्त होंगे ॥ ६१-६३ ॥

कुष्ठगुल्ममुदावर्त्तं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ६४ ॥

यह बिन्दुघृत कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, सूजन, भगन्दर और आठों प्रकारके उदररोगोंको शीघ्र शमन करता है । इस घृतको शरीरमें मालिश करनेसे भी दस्त हों ॥ ६४ ॥

महाबिन्दुघृत ।

स्नुहीक्षीरपले कल्के प्रस्थार्द्धं चैव सर्पिषः ।
काम्पिल्लकं पलं चैकं पलार्द्धं सैन्धवस्य च ॥ ६५ ॥

त्रिवृतायाः पलं चैकं कुडवं धात्रिकारसात् ।
तोयप्रस्थेन विपचेच्छनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ६६ ॥

गौका घी ३२ तोले एवं थूहरका दूध ८ तोले, थूहरका कल्क ८ तोले कवीला ४ तोले, सैंधानमक २ तोले, निसोत ४ तोले, आमलोंका रस १ कुडव (१६ तोले) और पाकके लिये जल १ प्रस्थ लेवे। फिर सबको एकत्रकर मन्दमन्द अग्निद्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

कर्षप्रमाणं दातव्यं जठरे प्लीहगुल्मयोः ।
तथा कच्छपरोगेषु युञ्जीत मतिमान् भिषक् ॥ ६७ ॥
एतद् गुल्मान्सनिचयान्न समूलान्सपरिग्रहान् ।
छिन्दन्त्येष प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव ॥ ६८ ॥
पञ्चगुल्मवधार्थाय वज्रमुक्तं स्वयम्भुवा ।
महाबिन्दुघृतं नाम सिद्धं सिद्धैश्च पूजितम् ॥ ६९ ॥

इस घृतमेंसे उदररोग, तिल्ली, गुल्म और कच्छपरोगवाले मनुष्योंको दो दो तोले प्रमाण देवे। यह घृत संपूर्ण उपद्रवोंसहित सर्वप्रकारके गुल्मोंको इस प्रकार समूल नष्ट करता है, जिस प्रकार वायु मेघोंके समूहको छिन्न भिन्न करदेता है । पांचों प्रकारके गुल्मोंको नाश करनेके लिये यह वज्रकी समान है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। यह महाबिंदुनामक घृत सिद्ध जनोंसे पूजनीय है ॥

नाराचघृत ।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्गसिंहीत्रिवृच्चित्रककल्क-
युक्तम् । घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याक्षमथा-
र्द्धमक्षम् ॥ ७० ॥ पीत्वोष्णमम्भोऽनु पिबेद्विरिक्तः पेयां
सुखोष्णां प्रपिबेद्विधिज्ञः । नाराचमेतज्जठरामयानां
युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिष्टम् ॥ ७१ ॥

थूहरका दूध, दन्तीमूल, त्रिफला, वायविडङ्ग, कटेरी, निसोत और चीतेकी जड इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर कल्क बनालेवे। फिर इस कल्कके द्वारा १६ तोले घृतको पकावे। इस नाराचघृतको जलके साथ एक तोला अथवा दो तोले प्रमाण सेवन करे और ऊपरसे गरम जल पीवे। जब अच्छेप्रकार दस्त होजावें तब बुद्धिमान् पुरुष मन्दोष्ण पेयाको पान करे। युक्तिसे प्रयोग कियाहुआ यह नाराचघृत उदरके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करदेता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

बृहन्नाराचघृत ।

लोध्रचित्रकचव्यानि विडङ्गं त्रिफला त्रिवृत् ।
शङ्खिन्यतिविषा व्योषमजमोदा निशाद्वयम् ॥ ७२ ॥
दन्ती च कार्षिकं सर्वं गोमूत्रस्य पलाष्टकम् ।
चतुःपलं स्नुहीक्षीरं राजवृक्षफलं तथा ॥ ७३ ॥
एतैश्चतुर्गुणे तोये घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
उदरं चोष्णवातं च गुल्मप्लीहभगन्दरान् ॥ ७४॥
निहन्त्यचिरयोगेन गृध्रसीं स्तम्भमूरुजम् ।
बृहन्नाराचकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम् ॥ ७५ ॥

लोध, चीता, चव्य, वायविडङ्ग, त्रिफला, निसोत, चोरपुष्पी, अतीस, त्रिकुटा, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्ती ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर कल्क बनालेवे । फिर यह कल्क एवं गोमूत्र ८ पल, थूहरका दूध ४ पल और अमलतासका गूदा ४ पल चौगुने जलमें डालकर एक प्रस्थ घृतको उत्तम विधिसे पकावे । इसके सेवन करनेसे उदररोग, उष्णवात, गुल्म, प्लीहा, भगन्दर, गृध्रसी और ऊरुस्तम्भादिरोग अल्प समयमें ही दूर होते हैं । यह बृहन्नाराचनामवाला घृत अमृतके समान गुणकारी है ॥ ७२-७५ ॥

उदररोगमें पथ्य ।

विरेचनं लङ्घनमब्दसम्भवाः कुलत्थमुद्गारुणशालयो
यवाः । मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञयाऽन्विता पेयासुरा-
माक्षिकसीधुमाधवाः ॥७६॥ तक्रं रसोनो रुबुतैलमार्द्रकं
शालिञ्चशाकं कुलकं कठिल्लकम् । पुनर्नवा शिग्रुफलं
हरीतकी ताम्बूलमेला यवशूकमायसम् ॥७७॥ अजाग-
वोष्ट्रीमहिषीपयो जलं लघूनि तिक्तानि च दीपनान्यपि ।
वस्त्रेण संवेष्टनमन्निकर्मतो विषप्रयोगोऽनुयुतो यथायथम् ॥

विरेचन, लङ्घन, पुरानी कुलथी, मूँग, लालशालिके चावल, जौ एवं जङ्गली-पशु-पक्षियोंका मांसरस, पेया, मदिरा, शहद, सीधु, माधव (मद्यविशेष), मट्ठा, लहसन, अण्डीका तेल, अदरख, शालिञ्चशाक, परवल, करेला, पुनर्नवा, सहिंजनेकी फली, हरड, पान, इलायची, जवाखार, लोहा, बकरी गौ ऊँटनी और भैंसका, दूध एवं इन सबका मूत्र, हलके, कडुवे और पाचकद्रव्य, वस्त्रसे उदरको लपेटना

अग्निद्वारा सेंकना और विषप्रयोग इत्यादि क्रिया, आहार तथा औषधियाँ उदररोगमें दोषानुसार व्यवहार करनेसे विशेष उपकार होय ॥

उदररोगमें अपथ्य ।

संस्नेहनं धूमपानं जलपानं शिराव्यधः ।
छर्दियानं दिवानिद्रां व्यायामं पिष्टवैकृतम् ॥ ७९ ॥
उदकानूपमांसानि पत्रशाकांस्तिलानपि ।
उष्णानि च विदाहीनि लवणान्यशनानि च ॥ ८० ॥
शिम्बीधान्यं विरुद्धान्नं दुष्टनीरं गुरूणि च ।
महेन्द्रगिरिजातानां सरितां सलिलानि च ॥ ८१ ॥
विष्टम्भीनि विशेषात्तु स्वेदं छिद्रसमुद्भवे ।
वर्जयेदुदरव्याधौ वैद्यो रक्षन् निजं यशः ॥ ८२ ॥

स्नेहद्रव्योंका पान, धूमपान, अधिक जलपान, शिरावेध (फस्तखुलवाना) वमन करना, हाथी, घोडे आदिपर चढना, दिनमें शयन, कसरत करना, पिट्ठीके बने द्रव्य, जलमें रहनेवाले और अनूपदेशके जीवोंका मांस, पत्रवाले शाक, तिल, गरम, दाहकारक द्रव्य, नमक, शिम्बीधान्य (अडहर, मोठ आदि), प्रकृतिविरुद्ध और पचनेमें भारी पदार्थोंका भोजन, दूषित जल, हिमालयसे निकली हुई नदियोंका जल, अजीर्णकारक द्रव्य, (और विशेषकर छिद्र होजानेवाले उदररोगमें स्वेदक्रिया करना) इत्यादि सम्पूर्ण कृत्य, आहारादिकोंको त्याग देवे ॥ ७९-८२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदररोगचिकित्सा ।

प्लीहा और यकृत्की चिकित्सा ।

प्लीहोद्दिष्टां क्रियां सर्वां यकृन्नाशाय योजयेत् ।

यकृत (जिगर) रोगमें प्लीहारोगोक्त विधिके अनुसार चिकित्सा करे ।

तालपुष्पोद्भवः क्षारः सुगुडः प्लीहनाशनः ॥ १ ॥

ताडके फूलोंके खारको पुराने गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे प्लीहा (तिल्ली) रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूलं पिष्ट्वा चित्रकस्य कृत्वा तु वटिकात्रयम् ।
कदलीपक्वमध्येन भक्षणात्प्लीहनाशनम् ॥ २ ॥

चीतेकी छः मासे जडको जलमें पीसकर तीन गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली पकीहुई केलेकी फलीमें रखकर तीन दिनतक सेवन करनेसे प्लीहा नाश होती है ॥ २ ॥

गुडैश्चित्रकमूलं वा रजन्यर्कदलं तथा ।
धातकीपुष्पचूर्णं वा प्रत्येकं प्लीहनाशनम् ॥ ३ ॥

चीतेकी जड, हल्दी, आकके पत्ते अथवा धायके फूलोंका चूर्ण इनमेंसे किसी एकको गुडके साथ खावे तो प्लीहा दूर होती है ॥ ३ ॥

रसेन जम्बीरफलस्य शङ्खनाभीरजः पीतमशेषमेव ।
कर्षप्रमाणं शमयेत्सशूलं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ ४ ॥

शंखनाभिके चूर्णको एक तोला प्रमाण लेकर जम्बीरी नींबूके रसके साथ पीनेसे शूलसहित कूर्मके समानवाली सर्वप्रकारकी प्लीहा शीघ्र नष्ट होय ॥ ४ ॥

दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक् ।
विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ॥ ५ ॥
प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तं प्रवर्त्तयेत् ॥ ६ ॥

प्लीहाको नष्ट करनेके लिये प्रथम रोगीको दहीसहित अन्न भक्षण करावे । पश्चात् बाँये हाथकी कूर्परसन्धिके बीचकी शिराको वेधे और यकृतको दूर करनेके लिये दहिने हाथकी शिराको वेधे । शिरावेध करके दूषित रक्तको निकालनेके लिये प्लीहा और यकृत् स्थानको जोरसे दबावे ॥ ५ ॥ ६ ॥

लशुनं पिप्पलीमूलमभयां चैव भक्षयेत् ।
पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगनिवृत्तये ॥ ७ ॥

प्लीहारोगको निवारण करनेके लिये लहसन, पीपलामूल और हरड इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर गोमूत्रके साथ पान करे ॥ ७ ॥

प्लीहजिच्छंखपुष्पायाः कल्कस्तक्रेण सेवितः ॥ ८ ॥

शंखपुष्पीकी जडको जलमें पीसकर मट्ठेमें मिलाकर पीवे तो प्लीहा दूर होय ८

यमानिकादिचूर्ण ।

यमानिका चित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् ।
प्लीहानमेतद्विनिहन्तिचूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ ९ ॥

अजवायन, चीतेकी जड, जवाखार, पीपलामूल, दन्ती और पीपल इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको गरम जल, दहीका तोड, मदिरा अथवा आसवके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

गुडूच्यादिचूर्ण ।

गुडूच्यतिविषा शुण्ठी भूनिम्बयवतिक्तकम् ।
मुस्ता कणा यवक्षारः कासीसं भ्रमरातिथिः ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥
यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ११ ॥
नानादोषोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा ।
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ १२ ॥

गिलोय, अतीस, सोंठ, चिरायता, महातिक्तक, नागरमोथा, पीपल, जवाखार कसीस और चम्पावृक्षकी छाल इन सबको समान भाग ग्रहण करके एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णको उपयुक्त मात्रासे सेवन करनेपर यकृत, प्लीहा, पाण्डु, मन्दाग्नि, अरुचि, आठों प्रकारके ज्वर, साध्य व असाध्य अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वर, जलके दोषसे अथवा प्रकृतिविरुद्ध औषधि सेवन करनेसे उत्पन्न हुए ज्वरादि रोग तत्काल नाश होते हैं ॥ १०-१२ ॥

रोहीतकाद्यचूर्ण ।

रोहीतकं यवक्षारो भूनिम्बं कटुरोहिणी ।
मुस्तकं नरसारं च वीरा विश्वं सुचूर्णितम् ॥ १३ ॥
माषमात्रं ततः खादेच्छीततोयानुपानतः ।
यकृद्रोगं निन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४ ॥

रोहेडा वृक्षकी छाल, जवाखार, चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, नौसादर, अतीस और सोंठ इनको समानांश लेकर उत्पन्न चूर्ण बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इस चूर्णको एक एक मासा शीतल जलके साथ खाय । यह चूर्ण यकृत्रोगको एकदम इस भाँति नष्ट कर देता है, जिस प्रकार सूर्य तमको ॥ १३ ॥ १४ ॥

मानकादिगुडिका ।

मानमार्गामृता वासा स्थिरा सैन्धवचित्रकम् ।
नागरं तालपुष्पं च प्रत्येकं च त्रिकार्षिकम् ॥ १५ ॥

विडसौवर्चलक्षारपिप्पलयश्चापि कार्षिकाः ।
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढके पचेत् ॥ १६ ॥
सान्द्रीभूते गुडीः कुर्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ।
यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः ॥
योगः परिकरो नाम्ना ह्यग्निसन्दीपनःपरः ॥ १७ ॥

मानकन्द, चिरचिरेकी जडकी भस्म, गिलोय, अडूसेकी छाल, शालपर्णी, सेंधानमक, चीता, सोंठ और ताडके फूलोंका खार ये प्रत्येक तीन तीन तोले, विड नमक, कालानमक, जवाखार और पीपल ये प्रत्येक औषधि एकएक तोला लेवे सबको एकत्र चूर्ण करके ८ सेरगोमूत्रमें पकावे । पकते २ जब गाढा होजाय तब उतारलेवे और शीतल होजानेपर १२ तोले शहद डालकर गोलियाँ बनालेवे । यह गुटिका यकृत् प्लीहा, उदररोग गुल्म, अर्श और संग्रहणी आदि रोगोंको नाश करती है एवं अग्निको दीपन करती है ॥ १५-१७ ॥

बहन्मानादिगुडिका ।

मानमार्गस्थिरावह्निस्नुहीनागरसैन्धवम् ।
तालरण्डं कृमिघ्नं च हबुषं चविका वचा ॥ १८ ॥
विडसौवर्चलक्षारपिप्पलीशरपुङ्खकम् ।
जीरकं पारिभद्रं च प्रत्येकं कर्षकद्वयम् ॥ १९ ॥
सार्द्धाढके गवां मूत्रे पचेत्सर्वं सुचूर्णितम् ।
सान्द्रीभूते क्षिपेदेषां चूर्णकं कर्षसंमितम् ॥ २० ॥
अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पुष्करं शठी ।
त्रिवृद्दन्ती विशाला च दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥
खाददग्निबलापेक्षी बुद्ध्वा चानु पिबेन्नरः ॥ २१ ॥

पुराना मानकन्द, चिरचिरा, शालपर्णी, चीता, थूहरकी जड, सोंठ, सेंधानमक, ताडकी जटाओंकी भस्म, वायविडङ्ग, हाऊबेर, चव्य, वच, विडनमक, कालानमक, जवाखार, पीपल, शरफोंका, जीरा और फरहद इन औषधियोंके दो दो कर्ष बारीक पिसेहुए चूर्णको डेढ आढक गोमूत्रमे पकावे। पकते २ जब गाढा पडजाय तब निम्नलिखित औषधियोंके उत्तम प्रकारसे पीसे हुए एक एक कर्ष परिमाण चूर्णको डालदेवे । कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, अजवायन, पोहकरमूल, कचूर,

निसोत, दन्ती और इन्द्रायणकी जड इनके चूर्णको डालकर उतार लेवे। पुनः शीतल होजानेपर १२ तोले शहद मिलादेवे। तदनंतर इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय अपनी अग्निका बलाबल विचारकर उपयुक्त परिमाणमें सेवन करे और दोषानुसार अनुपान प्रयोग करे ॥ १८–२१ ॥

यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मं पाण्डुं सकामलम् ॥ २२ ॥
कुक्षिशूलं च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम्।
शोथं च श्लीपदं हन्ति जीर्णं च विषमज्वरम् ॥ २३ ॥

इससे यकृत, प्लीहा, उदररोग अफारा, गुल्म, पाण्डु, कामला, कुक्षिशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, सूजन, श्लीपद, जीर्णज्वर, और विषमज्वरादि विकार शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

अर्कलवण।

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेन्नरः।
मस्तुना तत्पिबेत्क्षारं प्लीहगुल्मोदरापहम् ॥ २४ ॥

आकके पत्ते और सैंधानमक इनको समान भाग लेकर अन्तर्धूम (जिसमें धुआँ न निकले) पात्रमें दग्ध करे। फिर इस खारको दहीके तोडके साथ पान करे तो प्लीहा, गुल्म, और उदररोग दूर होते हैं ॥ २४ ॥

अभयालवण।

पारिभद्रपलाशार्कस्नुह्यपामार्गचित्रकान्।
वरुणाग्निमन्थवसुश्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ २५ ॥
पूतिकास्फोतकुटजकोषातक्यः पुनर्नवा।
समूलपत्रशाखाश्च क्षोदयित्वा उदूखले ॥ २६
तिलनालप्रदीप्ताग्निसुदग्धं भस्म शीतलम्।
क्षारप्रस्थं गृहीत्वा तु न्यसेत्पात्रे दृढे नवे ॥ २७ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्।
पूर्ववत्क्षारकल्केन स्रावयित्वा विचक्षणः ॥ २८ ॥
प्रस्थमेकं च लवणं तदर्द्धां च हरीतकीम्।
तुल्याम्बुभागं गोमूत्रं साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ २९ ॥
किञ्चित्सबाष्पसान्द्रे च सम्यक् सिद्धेऽवतारिते।

अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पौष्करं शठी ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैश्चूर्णं कृत्वा प्रदापयेत् ॥ ३० ॥

फरहदकी छाल, ढाककी छाल, आक, थूहर, चिरचिटा, चीतेकी जड, वरनाकी छाल, अरणी, बकवृक्षकी छाल, गोखुरू, कटाई, कटेरी, दुर्गन्धकरञ्ज, आस्फोतलता (कोरल इति महाराष्ट्रभाषा), कुडेकी छाल, कडवी तोरई और पुनर्नवा इन सबको पञ्चाङ्गसहित समान भाग लेकर ओखलीमें कूटलेवे । फिर एक हाँडीमें रख उसका मुँह बन्द करके तिलोंकी लकडियोंके द्वारा भस्म कर लेवे । जब शीतल होजाय तब उसमेंसे नितारकर १ प्रस्थ खारको ग्रहण कर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें सुदृढ और नवीन पात्रमें भरकर पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर पूर्वोक्त क्षारपाककी विधिके अनुसार इस जलको पकावे और इसमें सैंधानमक एक प्रस्थ, हरड ३२ तोले और गोमूत्र ८ सेर डालकर मन्द-मन्द अग्निद्वारा अच्छे प्रकारसे पकावे । जब पाक यथाविधि पककर तैयार होजाय तब उतार लेवे और भाफ उठतेहुए पाकमें कालाजीरा, त्रिकुटा, हींग, अजवायन, पोहकरमूल तथा कचूर इनके दो दो तोले चूर्णको खूब बारीक पीसकर मिलादेवे ॥

अभयालवणं नाम भक्षयेच्च यथाबलम् ॥ ३१ ॥
व्याधिं संवीक्ष्य मतिमाननुपानं यथाहितम् ।
ये च कोष्ठगता रोगास्तान्निहन्ति न संशयः ॥ ३२ ॥
यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्माष्ठीलाग्निमान्द्यजित् ।
हन्याच्छिरोऽर्त्तिं हृद्रोगं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३३ ॥

रोगीके बलानुसार इस अभयालवणको भक्षण कराना चाहिये । एवं बुद्धिमान् वैद्य रोगको भलीभाँति विचारकर हितप्रद अनुपानकी कल्पना करे । यह अभयालवण कोष्ठस्थित रोगों तथा यकृत्, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, अष्ठीला, मन्दाग्नि, वमन, शिरोरोग, हृदयरोग, शर्करायुक्त प्रमेह और अश्मरीप्रभृति रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ३१-३३ ॥

वर्द्धमानपिप्पली ।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलकं दिनम् ।
वर्द्धयेत्पयसा सार्द्धं तथैवापनयेत्पुनः ॥ ३४ ॥
जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ।
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनः ॥ ३५ ॥

पहले दिन १० पीपल और दूसरे दिन २० इस क्रमसे दूधके साथ सेवन करता-हुआ दस दिनतक दस दस पीपलोंकी मात्रा बढाकर सौतक करलेवे। फिर इसी प्रकार प्रतिदिन दसदस पीपल घटाता जावे। एवं पूर्वोक्त नियमानुसार दूसरीबार प्रतिदिन दस दस पीपलोंकी वृद्धि करे। इसतरह न्यूनाधिकता करते करते एक हजारकी संख्या तक पीपलोंको सेवन करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

दशपैप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्त्तितः।
यस्त्रिपिप्पलिपर्यन्तः प्रयोगः सोऽवरः स्मृतः ॥ ३६ ॥
बृंहणं वृष्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम्।
वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥
पञ्चपिप्पलिकं चापि दृश्यते वर्द्धमानकम् ॥ ३७ ॥

पीपल सेवन करनेकी विधि तीन प्रकारकी हैं। जैसे—प्रतिदिन १० पीपल सेवन करना उत्तम, प्रतिदिन छः पीपल सेवन करना मध्यम और प्रतिदिन तीन पीपल सेवन करना कनिष्ठ मात्राविधि है। यह प्रयोग रसायन, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, आयुको स्थापन करनेवाला, मेधाजनक तथा प्लीहा और उदररोगको नष्ट करनेवाला है। किसी किसी आयुर्वेदिक ग्रंथोंमें प्रतिदिन पांच पांच पीपलोंको वृद्धिकरनेका नियम वर्णन किया है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

" पिष्ट्वा च बलिभिः पेया शृता मध्यबलैर्नरैः ॥
शीतीकृत्य ह्रस्वबलैर्देहदोषामयान्युति ॥ "

" बलवान् रोगीको पीपलका चूर्ण, मध्यम अवस्थावाले रोगीको पीपलका क्वाथ और दुर्बल रोगीको पीपलका क्वाथ शीतल करके सेवन करावे। "

इसपर औषधिके जीर्ण होनेपर सांठीके चावल, दूध और घृतके साथ भक्षण करे। इसप्रकार वर्णन कियेहुए पीपलके प्रयोगको सेवन करनेकी प्रथा वर्त्तमानकालमें नहीं है, इसलिये एक रत्तीसे लेकर दो, तीन, चार, पाँच अथवा छःरत्ती परिमाणतक प्रतिदिन बढाकर दसदिनतक बढावे। फिर इसी क्रमसे घटाताजावे। इस तरह सेवन करनेसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है ॥

गुडपिप्पली।

तुलैकं गुडमादाय पिप्पलीं च तथैव च।
हिङ्गु त्रिकटुकं मानं सैन्धवानां द्विकार्षिकम् ॥ ३८ ॥
चित्रकं च विडं चैव द्वौ क्षारौ शिखरी तथा।

तालपुष्पं कोकिलाक्षं चिञ्चाक्षारं सफेनकम् ॥
स्नुहीक्षीरसमायुक्तं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ ३९ ॥

गुड १०० पल, पीपलका चूर्ण १०० पल, हींग, त्रिकुटा, मानकन्द, सैंधानमक प्रत्येक दो दो कर्ष, चीता, विडनमक, जवाखार, सज्जी, चिरचिटेकी मूलकी भस्म, ताडके फूलोंकी भस्म, तालमखाना, इमलीका खार, समुद्रफेन और थूहरका दूध इन सबको दो दो कर्ष परिमाण लेकर कूटपीसकर पाँच पाँच रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसको सेवन करनेसे प्लीहा और ज्वर दूर होता है ॥ ३९ ॥

बृहद्गुडपिप्पली ।

विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्ठं हिङ्गुलवणपञ्चकम् ।
त्रिक्षारं फेनकं वह्नि श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४० ॥
तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाडचः कूष्माण्डकस्य च ।
अपामार्गस्य चिञ्चायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च ॥ ४१ ॥
सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम् ।
एतस्माद्द्विगुणाच्चूर्णात्पुराणो द्विगुणो गुडः ॥ ४२ ॥
मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत ।
भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ ४३ ॥
यकृतं पञ्चगुल्मं च उदरं सर्वरूपकम् ।
जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा ॥
अश्विभ्यां निर्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली ॥ ४४ ॥

वायविडङ्ग, त्रिकुटा, कूठ, हींग, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, समुद्रफेन, चीतेकी जड, गजपीपल, कालाजीरा, ताडके फूलोंकी भस्म, पेठेकी डंडी, चिरचिटेकी जडकी भस्म और इमलीकी छालकी भस्म इन सब ओषधियोंका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णके समान भाग पीपलका चूर्ण एवं सब चूर्णसे दुगुना पुराना गुड मिलाकर एकत्र दृढ पात्रमें उत्तम प्रकारसे खरल करके १ आना भरके लड्डू बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल गरम जलके साथ एक मोदक सेवन करे तो यह मोदक दुस्तर प्लीहा, यकृत्, पाँचों प्रकारके गुल्म, सर्वप्रकारके उदरविकार, जीर्णज्वर, शोथ और पाँचों प्रकारकी खाँसी इत्यादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है । यह गुडपिप्पली बालकोंके लिये अत्यन्त हितकारी है । इसको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ ४०–४४ ॥

रसराज।

गन्धकेन मृतं ताम्रं शुद्धगन्धकतुल्यकम्।
द्वयोः पादं शुद्धरसं मर्दयेच्छूरणद्रवैः॥
पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥ ४५॥

गन्धकद्वारा भस्म किया ताँबा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला शुद्ध पारा ६ माशे इन सबोंको जिमीकन्दके रसमें खरल करके गजपुटमें रख पुटपाक करे। जब पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे॥ ४५॥

गुञ्जाद्वयं लिहेत्क्षौद्रैः प्लीहगुल्मविनाशनम्।
यकृच्छूलं ज्वरं हन्ति कान्तपुष्टिविवर्द्धनः॥ ४६॥
रसराज इति ख्यातो रोगवारणकेसरी॥ ४७॥

इसको दो रत्तीभर शहदमें मिलाकर चाटे तो प्लीहा, गुल्म, यकृत्रोग, शूल और ज्वरादि विकार नष्ट होते हैं। यह रसराज रोगरूपी हाथीको नाश करनेके लिये सिंहके समान है तथा कान्तिवर्द्धक और पुष्टिकारक है॥ ४६॥ ४७॥

प्लीहान्तकरस।

हतशुल्बं च तारं च गगनायसमौक्तिकाः।
दरदं पुष्पकं सूतं गन्धकं नवमं तथा॥ ४८॥
गुग्गुलुस्त्रिकटू रास्ना तथा जैपालबीजकम्।
त्रिफला कटुका दन्ती देवदाली तु सैन्धवम्॥ ४९॥
त्रिवृता तु यवक्षारो वातारितैलमर्दितम्।
अष्टोदराणि पाण्डुत्वमानाहं विषमज्वरम्॥ ५०॥
अजीर्णं कफमामं च क्षयं च सर्वशूलकम्।
कासं श्वासं च शोथं च सर्वमाशु व्यपोहति॥
प्लीहान्तको रसो नाम प्लीहोदरविनाशनः॥ ५१॥

ताँबेकी भस्म, चाँदीकी भस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, मोतीकी भस्म, सिंगरफ, काँसीकी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध गूगल, त्रिकुटा, रायसन, जमालगोटा त्रिफला, कुटकी, दन्ती, कडवी तोरई, सैंधानोंन, निसोत और जवाखार इन औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर अण्डीके तेलमें अच्छे प्रकार खरल करे। इस रसको प्रतिदिन दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो यह आठों प्रकारके उदररोग, पाण्डुरोग, अफारा, विषमज्वर, अजीर्ण, कफरोग, आमवात, क्षय, सब

शूलरोग, खाँसी, श्वास, सूजन प्लीहोदर एवं सर्व प्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है । इसका नाम प्लीहान्तक रस है ॥ ९१ ॥

वासुकीभूषणरस ।

सूतेन वङ्गं तु समं नियोज्य तत्तुल्यशुल्बेन च गन्धकेन ।
विमर्दयेदर्करसेन यामं मृदा च संलिप्य पुटं ददीत ॥ ९२ ॥
वासारसैस्तं परिभावयेच्च रसो भवेद्वासुकिभूषणोऽयम् ।
प्लीह्नश्च गुल्मस्य च शान्तयेऽस्य वल्लं प्रदद्याद्वसुचूर्णयुक्तम् ॥९३॥

शुद्ध पारा, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध गन्धक इन द्रव्योंको समान भाग लेकर आकके पत्तोंके रसमें एक प्रहरतक यथाविधि खरल करे । फिर गोलासा बनाकर मूषायन्त्रमें रखे और मृत्तिकासे लहेसकर पुटपाक करे। जब शीतल होजाय तब निकालकर अडूसेके रसमें भावना देवे । इस प्रकार यह वासुकिभूषण नामवाला रस तैयार होता है । प्लीहा और गुल्मरोगको निवारण करनेके लिये इस रसकी दो रत्ती मात्राको सैंधेनमकमें मिलाकर सेवन करावे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

विद्याधररस ।

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला ।
शुद्धसूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ ९४ ॥
पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ।
वल्लं च भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् ॥
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ॥ ९५ ॥

शुद्ध गन्धक, हरिताल, सोनामाखी, ताँबेकी भस्म, मैनसिल, और शुद्ध पारा ये सब औषधियाँ बराबर बराबर लेकर एकत्र खरल करे । फिर पीपलके क्वाथ और थूहरके दूधमें अलग अलग एक एक दिन भावना देवे । इस रसको दो रत्ती प्रमाण शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे तो इससे गुल्म प्लीहा आदि दूर होते हैं। इसका नाम विद्याधर रस है। इसके सेवन करनेपर गोदुग्ध पान करे ॥ ९४॥९५ ॥

लोकनाथरस १-२ ।

पारदं गन्धकं चैव समभागं विमर्दयेत् ।
मृताभ्रं रसतुल्यं च पुनस्तत्रैव मर्दयेत् ॥ ९६ ॥
रसत्रिगुणलौहं च लौहतुल्यं च ताम्रकम् ।
वराटिकाया भस्माथ पारदत्रिगुणं कुरु ॥ ९७ ॥

नागवल्लीरसेनैव मर्दयेद्यत्नतो भिषक् ।
पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ५८ ॥
मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडां वा हरीतकीम् ।
अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदनुपानतः ॥ ५९ ॥
यकृद्गुल्मोदरहरः प्लीहश्वयथुनाशनः ।
जीर्णज्वरं तथा पाण्डु कामलां च विनाशयेत् ॥
अग्निमान्द्यं च शमयेल्लोकनाथो रसोत्तमः ॥ ६० ॥

१–शुद्ध पारा, गन्धक और ताँबेकी भस्म ये सब समान भाग लेकर खरल कर लेवे। फिर इसमें पारेसे तिगुनी लोहेकी भस्म, ताम्रभस्म और कौडीकी भस्म एकत्र मिलाकर पानके रसमें खरल करके गजपुटमें रखकर फूँकदेवे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर पीसलेवे । इसको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण खाय और ऊपरसे पीपलका चूर्ण, मधुके साथ या पुराना गुड और हरडका चूर्ण अथवा काले जीरेका चूर्ण गुडके साथ मिलाकर सेवन करे । यह रस यकृत्, गुल्म, उदर, प्लीहा, सूजन, पुराना बुखार, पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि आदि विकारोंको नष्ट करता है । यह लोकनाथनामवाला रस सर्वोत्तम है ॥ ५६–६० ॥

रसगन्धौ समौ कृत्वा मर्दयेदर्द्धयामकम् ।
रसतुल्यं मृतं चाभ्रं द्विगुणं लौहताम्रकम् ॥ ६१ ॥
ताम्रस्य द्विगुणं भस्म कपर्दकसमुद्भवम् ।
नागवल्लीरसैर्यामं मर्दयेदतिनिर्जने ॥ ६२ ॥
ततो लघुपुटं दत्त्वा सुशीतं ग्राहयेत्तथा ।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैः खदिरत्वग्रसं पिबेत ॥ ६३ ॥
यकृत्प्लीहोदरं शोथमग्निमान्द्यादिकं जयेत् ।
लोकनाथो रसो नाम सर्वज्वरविनाशनः ॥ ६४ ॥

२–शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर अर्द्ध प्रहरतक खरल करे । फिर इसमें पारेकी बराबर अभ्रकभस्म एवं लोहे और ताँबेकी भस्म पारेसे दुगुनी और ताँबेकी भस्मसे दुगुनी कौडीकी भस्म मिलाकर पानाके रसम एक प्रहरतक खरल करके लघुपुटमें पकावे । जब स्वयं शीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको दो रत्ती भर लेकर अदरखके रसमें मिलाकर खावे और पीछेसे खैरके रसको पीवे तो यकृत् विकार,

प्लीहोदर, शोथ, मन्दाग्नि और सर्व प्रकारके ज्वर नाश होते हैं। इसका नाम लोकनाथ रस है ॥ ६१-६४ ॥

बृहल्लोकनाथरस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कुर्याच्च कज्जलम्।
सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना ॥ ६५ ॥
ततो द्विगुणितं दद्यात्ताम्रं लोहं प्रयत्नतः।
सूताभ्रवगुणं देयं वराटीसम्भवं रजः ॥ ६६ ॥
काकमाचीरसेनैव सर्वं तद्गोलकीकृतम्।
ततो गजपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ६७ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोले दोनोंको एकत्रकर कज्जली बनावे। फिर उसमें अभ्रकभस्म १ तोला मिलाकर घीग्वारके रससे खरल करे। तदनन्तर ताँबे और लोहेकी भस्म दो दो तोले एवं कौडीकी भस्म ९ तोले मिलावे। सबोंको मकोयके रसमें उत्तम प्रकार खरल करके गोला बनालेवे। पुनः इस गोलेको गजपुटमें स्थापन कर पकावे। जब पककर स्वाङ्गशीतल होजावे तब निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे ॥ ६५-६७ ॥

शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजातीन्परितोष्य च।
भक्षयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना सह ॥ ६८ ॥
प्लीहानमुग्रमामं च यकृतं सर्वरूपिणम्।
जीर्णज्वरं तथा गुल्मं कामलां हन्ति दारुणाम् ॥ ६९ ॥

इसके उपरान्त प्रतिदिन प्रातःकाल शिवजी महाराजका पूजन कर और ब्राह्मणोंको दान मानादिसे प्रसन्नकर इस चूर्णको दो रत्तीप्रमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे तो यह बृहल्लोकनाथरस प्लीहा, अत्युग्र आमवात, सर्वप्रकारके यकृद्रोग, जीर्णज्वर, गुल्म और दारुण कामलादि रोगोंको दूर करता है ॥ ६९ ॥

प्लीहारिरस।

पारदं गन्धकं टङ्कं विषं व्योषं फलत्रयम्।
तोलकस्य समोपेतं जैपालं च तदर्द्धकम् ॥ ७० ॥
किंशुकस्य रसेनैव माषमात्रं तु मर्दयेत्।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा छायायां शोषयेत्ततः ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला एवं शुद्ध जमालगोटा सबसे आधा भाग लेवे । फिर सबको एकत्र पीसकर ढाकके रसमें एकमासपर्य्यन्त खरल करे और एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे ॥

वाटिकैका प्रदातव्या शृङ्गवेररसेन च ।
गुदांकुरे गुल्मशूले प्लीहशोथे कफात्मके ॥ ७२ ॥
उदावर्ते वातशूले श्वासकासज्वरेषु च ।
रसः प्लीहारिनामाऽयं कोष्ठामयविनाशनः ॥
आमवातगदच्छेदी श्लेष्मामयविनाशनः ॥ ७३ ॥

इस रसकी प्रतिदिन एक २ गोली अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे गुदांकुर, गुल्मशूल, प्लीहा, शोथ, कफजन्य उदावर्त्त, वातशूल, श्वास, खाँसी और ज्वरादि रोगोंमें शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है । यह प्लीहारिनामकरस कोष्ठस्थित विकार, आमवात और कफोत्पन्न समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

लौहमृत्युञ्जयरस ।

रसगन्धकलौहाभ्रं कुनटी मृतताम्रकम् ।
विषमुष्टिवराटं च तुत्थं शङ्खो रसाञ्जनम् ॥ ७४ ॥
जातीफलं च कटुकी द्विक्षारं कानकं तथा ।
हिङ्गु व्योषं सैन्धवं च प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ ७५ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वमेकत्र भावयेत्ततः ।
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ॥ ७६ ॥
सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः ।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्ठीलां च विनाशयेत् ॥ ७७ ॥
अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वोदराणि च ।
वातरक्तं च जठरमन्तर्विद्रधिमेव च ॥ ७८ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, मैनसिल, ताँबेकी भस्म, कुचला, कौडीकी भस्म, नीलाथोथा, शंखभस्म, रसौंत, जायफल, कुटकी, जवाखार, सज्जी, जमालगोटा, त्रिकुटा, हींग और सेंधानमक ये प्रत्येक एकएक तोला लेकर एकत्र कूट पीसलेवे । पश्चात् इस चूर्णको हुलहुल और बेलके पत्तोंके रसमें भावना देवे । फिर हुलहुलके रसद्वारा यथाविधि खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ

तैयार करलेवे । यह रस यथाविधि सेवन करनेपर प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अष्ठील, अग्रमांस, सूजन, सर्व प्रकारके उदरसम्बन्धी रोग, वातरक्त, जठराग्नि और अन्तर्विद्रधि रोगको दूर करता है ॥ ७४–७८ ॥

रोहीतकलोह ।

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः ।
प्लीहानमग्रमांसं च शोथं हन्ति न संशयः ॥ ७९ ॥

रोहेडेकी छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीतेकी जड इन सबको समान भाग और सबको बरावर लोहभस्म मिलाकर शहदके साथ लोहेके पात्रमें खरल कर लेवे । यह लोह प्लीहा (तिल्ली), अग्रमांस तथा सूजनको सन्देहरहित नष्ट करता है ॥ ७९ ॥

चित्रकादिलौह ।

चित्रकं नागरं वासा गुडूची शालपर्णिका ।
तालपुष्पमपामार्गो मानकं कार्षिकत्रयम् ॥ ८० ॥
लौहमभ्रं कणा ताम्रं क्षारको लवणानि च ।
पृथक् कर्षांशमेतेषां चूर्णमेकत्र चिक्कणम् ॥ ८१ ॥
चतुःप्रस्थे गवां मूत्रे पचेन्मन्देन वह्निना ।
सिद्धशीतं समुद्धृत्य माक्षिकं द्विपलं क्षिपेत् ॥ ८२ ॥
चित्रकादिरयं लौहो गुल्मप्लीहोदरामयम् ।
यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोथं मन्दानलं ज्वरम् ॥
कामलां पाण्डुरोगं च गुदभ्रंशं प्रवाहिकाम् ॥ ८३ ॥

चीतेकी जड, सोंठ, अडूसा, गिलोय, शालपर्णी, ताडके, फूल, चिरचिटा और मानकन्द ये प्रत्येक तीन तीन कर्ष, लोहा, अभ्रकभस्म, पीपल, ताम्रभस्म, जवाखार और पाँचोंनमक इनको पृथक् पृथक् एकएक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको चार प्रस्थ (२५६ तोले) गोमूत्रमें मन्द मन्द अग्निद्वारा पकावे । जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतारले और शीतल होजानेपर उसमें ८ तोले उत्तम शहद मिलादेवे । इसका नाम चित्रकादि लोह है । यह गुल्म, प्लीहा, उदरविकार, यकृत्, संग्रहणी, सूजन, अग्निकी मन्दता, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, गुदभ्रंश, प्रवाहिका इत्यादि व्याधियोंको नाशता है ॥

यकृत्प्लीहारिलौह।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं लौहमभ्रकम्।
तुल्यं द्विगुणताम्रं तु शिला च रजनी तथा ॥ ८४ ॥
जयपालं टङ्कणं च शिलाजतु समं रसात्।
एतत्सर्वं समाहृत्य चूर्णीकृत्य विमिश्रयेत् ॥ ८५ ॥
दन्ती त्रिवृच्चित्रकं च निर्गुण्डी त्र्यूषणं तथा।
आर्द्रकं भृङ्गराजश्च रसैरेषां पृथक् पृथक् ॥
भावयित्वा वटीं कुर्याद्बदरास्थिमितां भिषक् ॥ ८६ ॥

सिंगरफसे निकलाहुआ पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक ये प्रत्येक एक एक तोला, ताँबा, मैनसिल और हल्दी ये प्रत्येक दो दो तोले, शुद्ध जमालगोटा, सुहागा और शिलाजीत ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे। इन सबोंको एकात्रितकर बारीक चूर्ण करलेवे। अनन्तर इस चूर्णको दन्ती, निसोत, चीता, निर्गुण्डी, त्रिकुटा, अदरख और भाङ्गरा इनके रसमें अलग अलग भावना देकर बेरकी गुठलीकी समान गोलियाँ बनालेवे ॥ ८४-८६ ॥

प्लीहानं यकृतं चैव चिरकालानुबन्धिनम्।
एकजं द्वन्द्वजं चैव सर्वदोषभवं तथा ॥ ८७ ॥
हन्यादष्टोदरानाहज्वरं पाण्डुं च कामलाम्।
शोथं हलीमकं हन्ति मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ८८ ॥
यकृत्प्लीहारिनामेदं लौहं जगति दुर्लभम् ॥ ८९ ॥

इसकी प्रतिदिन १-१ गोली सेवन करे तो यह प्लीहा, यकृत्रोग, बहुत पुरानी प्लीहा, एकदोषजन्य, द्विदोषजन्य या त्रिदोषोत्पन्न आठों प्रकारके उदररोग, अफारा, ज्वर, पाण्डु, कमलवाय, हलीमक, सूजन, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंका विनाश करती है। यह यकृत्प्लीहारिनामक लौह संसारमें दुर्लभ है ॥ ८७-८९ ॥

यकृदारिलौह।

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य गगनस्य पलार्द्धकम्।
कर्षं शुद्धं मृतं ताम्रं लिम्पाकाग्नित्वचः फलम् ॥ ९० ॥
मृगाजिनभस्मपलं सर्वमेकत्र कारयेत्।
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९१ ॥

लोहभस्म दो कर्ष, अभ्रकभस्म दो तोले, ताँबेकी भस्म एक कर्ष, विहारी नींबूकी जडकी छाल ४ तोले और मृगछालाकी भस्म ४ तोले इन सबको एकत्र जलमें खरल करके नौ नौ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ९० ॥ ९१ ॥

यकृत्प्लीहोदरं चैव कामलां च हलीमकम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हन्ति बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
यकृदरिनाम लौहं सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥ ९२ ॥

यह यकृदरिनामक लौह यकृत, प्लीहा और उदरके रोग, एवं कामला, हलीमक, खाँसी, श्वास, ज्वर तथा अन्य सर्वप्रकारकी दुस्तर व्याधियोंको नष्ट करनेवाला और बल, वर्ण एवं जठराग्निको बढानेवाला है ॥ ९२ ॥

महामृत्युञ्जयलौह ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं जारिताभ्रं समं तथा ।
गन्धस्य द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥ ९३ ॥
द्विक्षारं सैन्धवविडं वराटीशंखभस्मकम् ।
चित्रकं कुनटी तालं रामठं कटुकं तथा ॥ ९४ ॥
रोहीतं त्रिवृता चिञ्चा विशाली धवलाङ्कठः ।
अपामार्गं तालरण्डमम्लिका च निशाद्वयम् ॥ ९५ ॥
प्रियंग्विन्द्रयवं पथ्या चाजमोदा यमानिका ।
तुत्थकं शरपुङ्खा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् ॥ ९६ ॥
प्रत्येकं शाणमानेन भावयेदार्द्रके रसैः ।
गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुनः कुडवार्द्धकम् ॥ ९७ ॥
वटिकां कारयेद्वैद्यो गुञ्जाष्टप्रमितां पुनः ॥ ९८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक औषधि एकएक भाग, लोहभस्म दो भाग, ताम्रभस्म ४ भाग एवं जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, विडनमक कौडीकी भस्म, शंखकी भस्म, चीता, मैनसिल, हरिताल, हींग, कुटकी, रोहिडावृक्षकी छाल, निसोत, इमलीकी भस्म, इन्द्रायनकी जड, सफेद ढेरा वृक्षकी छाल, चिरचिटेका खार, ताडकी जडका खार, अमलबेंत, हल्दी, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, इन्द्रजौ, हरड, अजमोद, अजवायन, तूतिया, शरफोंका, रोहेडेकी छाल और रसौंत ये प्रत्येक चार चार माशे लेवे । फिर सबको एकत्र चूर्ण करके अदरख और गिलो-

यके रसमें उत्तम प्रकार खरल करे । तदनन्तर ८ तोले शहदमें खरल कर आठ आठ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ९३-९८ ॥

भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् ।
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ॥
प्लीहानं ज्वरमुग्रं च कासं च विषमज्वरम् ॥ ९९ ॥
आमवातं यकृच्छूलं श्वासमर्शः शिरोरुजम् ।
गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसं यकृत्क्षयम् ॥ १०० ॥
सकामलं पाण्डुरोगमुदरं च सुदारुणम् ।
रोगानीकविनाशाय केसरी करिणो यथा ॥ १०१ ॥
मृत्युञ्जयो महालोहः प्लीहगुल्मविनाशनः ।
प्राणिनां तु हितार्थाय शम्भुना परिकीर्त्तितः ॥ १०२ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे एक गोला खाय और पीछेसे दोषोंके बलाबलको विचारकर अनुपान सेवन करे । यह सम्पूर्ण रोगोंके समूहको नष्ट करता है एवं प्लीहा, अत्युग्र ज्वर, खाँसी, विषमज्वर, आमवात, यकृत्का शूल, श्वास, बवांसीर, शिरःपीडा, गुल्म, शोथ, दारुण उदररोग, अफ़ारा, हृदयरोग, यकृत्, क्षय, कामला, पाण्डु और नानाप्रकारके उत्कट रोगसमूहरूपी हस्तीको नाश करनेके लिये मृगेन्द्रकी समान है । यह महालोह प्लीहा तथा मृत्युको जीतनेवाला और गुल्मको शीघ्र नष्ट करनेवाला है । समस्त प्राणियोंके सुखके लिये शिवजी महाराजने इस योगको कथन किया है ॥ ९९-१०२ ॥

सर्वेश्वरलौह ।

शुद्धसूतं पलं गन्धं द्विपलं तु मृताभ्रकम् ।
त्रिपलं मृतताम्रं च पलार्द्धं स्वर्णमाक्षिकम् ॥ १०३ ॥
जैपालं चित्रकं मानं शूरणं घण्टकर्णकम् ।
ग्रन्थिकं त्रिफला व्योषं त्रिवृता खरमञ्जरी ॥ १०४ ॥
दण्डोत्पला वृश्चिकाली कुलिशं नागदन्तिका ।
सूर्यावर्त्त च सञ्चूर्ण्य कर्षमात्रं विमर्दयेत् ॥ १०५ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव चूर्णयित्वा पुनः क्षिपेत् ।
त्रिपलं लौहचूर्णस्य ततः खादेच्छुभेऽहनि ॥ १०६ ॥

सम्पूज्य भास्करं विष्णुं गणनाथं द्विजोत्तमम् ।
माषमात्रं च मधुना कृत्वा शीतजलं पिबेत् ॥ १०७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म प्रत्येक चार चार तोले, ताम्रभस्म १२ तोले, सोनामाखी २ तोले एवं जमालगोटा, चीता, मानकन्द, जिमीकन्द, घंटाकर्णक (क्षुद्रक्षुपविशेष), पीपलामूल, त्रिफला, त्रिकुटा, निसोत, चिरचिटा, श्वेतदण्डोत्पल, बिछूटीवृक्षकी जड, हडसंकरी, हाथीसुंडा और हुलहुल ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । प्रथम इस चूर्णको अदरखके रसमें अच्छे प्रकार खरल करले पश्चात् इसमें १२ तोले लोहेकी भस्म डालकर फिर खरल करे । तदनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर गणेश, सूर्य और विष्णुभगवान्को पूजकर तथा ब्राह्मणों को प्रसन्नकर इस लोहकी एक मासाप्रमाण मात्राको शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल पान करे ॥ १०३-१०७ ॥

चूर्णं सर्वेश्वरं नाम सर्वरोगहरं पिबेत् ।
कठोरप्लीहनाशाय गुल्मोदरहरं तथा ॥ १०८ ॥
कामलां पाण्डुमानाहं यकृत्कृमिकृतामयान् ।
विचर्चीमम्लपित्तं च कण्डूं कुष्ठं विनाशयेत् ॥ १०९ ॥
प्लीहानमस्रपित्तं चाप्यग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ।
श्रीकरं कान्तिजननं शुक्रायुर्बलवर्द्धनम् ११० ॥

यह सर्वेश्वरनामक लोह सर्वप्रकारके रोग, कठिनतर तिल्ली, गुल्म, उदरविकार, कामला, पाण्डु, आनाह, यकृत, कृमिरोग, विचर्चिका, अम्लपित्त, खुजली, कुष्ठ, प्लीहा, रक्तपित्त और दुस्तर मन्दाग्नि आदि व्याधियोंको नष्ट करनेवाला तथा शोभावर्द्धक, कान्त्युत्पादक, बल, वीर्य और आयुकी उन्नति करनेवाला है ॥१०८-११०॥

यकृत्प्लीहोदरहरलौह ।

लौहार्द्धमभ्रकं शुद्धं सूतमप्यर्द्धभागिकम् ।
त्रिगुणामयसश्चूर्णात् त्रिफलामभ्रकात्तथा ॥ ११ ॥
द्विरष्टं वारिणो भागमवशिष्टं तु कारयेत् ।
तेन चाष्टावशिष्टेन समेनाज्येन यत्नतः ॥ १२ ॥

रसेन बहुपुत्राया द्विगुणक्षीरसंयुतम् ।
लौहमय्या पचेद् दर्व्या पात्रे चायसि मृन्मये ॥ १३ ॥
अभ्रकं निहितं शुद्धं पारदं च सुमूर्च्छितम् ।
अयसोऽर्द्धमितं चूर्णमादौ पाके विनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥

लोहा एक तोला, अभ्रकभस्म आधा तोला, शुद्ध रससिन्दूर अभ्रकसे आधा भाग और लोहेके चूर्ण तथा अभ्रकसे तिगुना त्रिफला लेवे । इन सबको एकत्र कर १६ गुने जलमें पकावे । पकते पकते जब अष्टम भाग रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्वाथके साथ समान भाग गौका घी, शतावरका रस घीके बराबर और रससे दुगुना दूध मिलाकर विधिपूर्वक लोहेके या मिट्टीके पात्रमें करके मन्दमन्द अग्निसे पाक करे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय ॥

कन्दं कपालिकां चव्यं विडङ्गं सवृहद्दलम् ।
शरपुङ्खा च पाठा च चित्रकं समहौषधम् ॥ १५ ॥
लवणानि च सर्वाणि सक्षारं वृद्धदारकम् ।
दीप्यकं च तथा स्नूहीं लौहाभ्रकसमां क्षिपेत् ॥ १६ ॥

फिर इसमें जिमीकन्द, कपालिका (कन्दविशेष), चव्य, वायविडङ्ग, लोध, शरफोंका, पाढ, चीता, सोंठ, पाँचों नमक, जवाखार, विधारा, अजवायन और थूहर की जड इन सब औषधियोंको अलग अलग लोहे और अभ्रककी बराबर लेकर एकत्र मर्दन करके उपर्युक्त पाकमें डालकर उत्तम प्रकारसे पाक करे ॥ १५॥१६ ॥

प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् हन्ति शस्त्राग्निभिर्विना ।
प्रयोज्योऽयं महावीर्यो लौहो लौहविदां वरैः ॥
प्लीहोदरविनाशाय दद्याद् द्वे द्वे पुटे पृथक् ॥ १७ ॥

इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह यकृत्प्लीहोदरहरनामक लोह सर्व प्रकारकी प्लीहा, उदररोग, यकृत्रोग और गुल्मादिरोगोंको विना शस्त्र व अग्निके नष्ट करता है। यह प्रयोग अत्यन्त वीर्यवान् और सर्व लोहोंमें उत्तम लोह है । इसमें औषधि सिद्ध होनेपर दो बार पुटपाक करलेवे तो प्लीहा और उदरविकार अवश्य शमन होते हैं ॥ १७ ॥

शङ्खद्रावरस ।

योगिनीभैरवाभ्यां च बलिमादौ प्रदापयेत् ।
पश्चाद्यन्त्रं प्रकर्त्तव्यमाहैवं परमेश्वरी ॥ १८ ॥

रसः शङ्खद्रवो नाम शम्भुदेवेन भाषितः ।
गुह्याद् गुह्यतमं गुह्यमिदानीं कथ्यते मया ॥ १९ ॥

इसको बनानेसे प्रथम योगिनी और भैरवोंको बलिदान देवे पश्चात् यन्त्र बनावे, ऐसा महाराणी पार्वतीने कहा है । यह शंखद्रावरस शिवजी महाराजका प्रकट किया हुआ है । यह रस गोप्य वस्तुओंमें भी अत्यन्त गोप्य है, अतः इसको गुप्त रखना चाहिये । अब मैं इस गुप्त रसका वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥ १९ ॥

शङ्खचूर्णं यवक्षारं सर्जिकाक्षारटङ्कणम् ।
समं च पञ्चलवणं स्फटिकारिर्निशादलः ॥ १२० ॥
काचकुप्यां ततः क्षिप्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ।
यामार्द्धं द्रावयत्येव शङ्खशुक्तिवराटिकाः ॥ २१ ॥
अर्शांसि नाशयेत्षट् च मूत्रकृच्छ्राश्मरीस्तथा ।
उदराष्टविधं हन्ति गुल्मप्लीहोदराणि च ॥ २२ ॥
अजीर्णं नाशयेच्छीघ्रं ग्रहणीं च विषूचिकाम् ।
भुक्तशेषे च भोक्तव्यो माषमात्रो रसोत्तमः ॥ २३ ॥
क्षणमात्राद्भवेद्भस्म पुनर्भोजनमिच्छति ।
प्रत्यहं भोजनान्ते च संसेव्योऽयं रसोत्तमः ॥ २४ ॥
न रुजायां भयं क्वापि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
न देयं यस्य कस्यापि सदा गोप्यं च कारयेत ॥
रसः शङ्खद्रवो नाम वैद्यानामुपकारकः ॥ २५ ॥

शंखका चूर्ण, जवाखार, सज्जी, सुहागा, पाँचों नमक, फटकरी और नौसादर इन सबोंको समान भाग लेवे । फिर एकत्र कूट पीसकर इस चूर्णको काँचकी शीशीमें भरकर वारुणीयन्त्रमें द्रवीभूत करे । यह-शंख, सीपी और कौडीको आधे प्रहरमें ही गलादेता है । इसको भोजनके पश्चात् एक मासा प्रमाण सेवन करे तो तत्क्षण भोजन भस्म होजाता है और फिर भोजन करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है । इससे छः प्रकारके अर्श, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, ८ प्रकारके उदररोग, गुल्म, प्लीहोदर अजीर्ण, संग्रहणी और विषूचिका आदि रोग बहुत जल्द नष्ट होते हैं । इस उत्तम रसायणको प्रतिदिन प्रातःकाल और भोजनके पश्चात् सेवन करे । इसको सेवन करनेवाले मनुष्यको फिर कभी रोग आक्रमण नहीं करते, मैं बिल्कुल सत्य

कहता हूँ। इस लिये यह रस हर किसीको नहीं देवे, सदैव गुप्त रखे। शंखद्राव-नामवाला यह रस वैद्योंको अत्यन्त उपकारक है॥ १२०-२५॥

शंखद्रावक।

अर्कः स्नुही तथा चिञ्चा तिलारग्वधचित्रकम्।
अपामार्गभस्म समं वस्त्रपूतं जलं हरेत्॥ २६॥
मृद्वग्निना पचेत्तत्तु तावल्लवणतां गतम्।
लवणेन समौ ग्राह्यौ द्वौ क्षारौ टङ्कणं तथा॥ २७॥
समुद्रफेनं गोदन्तं कासीसं सोरका तथा।
द्विगुणं पञ्चलवणं मातुलुङ्गरसेन च॥ २८॥
काचकुप्यां तु सप्ताहं वासयेदम्लयोगतः।
शङ्खचूर्णपलं दत्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत्॥ २९॥
सर्वधातून् हरेच्छीघ्रं वराटीशङ्खकादिकान्।
रोगानामुदरादीनां सद्यो नाशकरः परः॥ १३०॥

आक, थूहर और इमलीकी छाल, तिल, अमलतास, चीतेकी जड और चिरचिटा सबकी भस्मको समान भाग लेकर जलमें घोललेवे। फिर वस्त्रमें छानकर जलको ग्रहण करे। पश्चात् इस जलको मन्द मन्द अग्निद्वारा पकावे। जब पकते पकते खारीपन आजाय तब जवाखार, सज्जी, सुहागा, समुद्रफेन, गोदन्ती, हरिताल, कसीस और सोरा ये सब समान भाग और पञ्च लवण सबसे दुगुने लेकर एकत्र कूट पीसकर काँचकी शीशीमें भरदेवे और ऊपरसे बिजौरे नींबूका रस डालदेवे। इस प्रकार खट्टे रसको मिश्रित करके एक सप्ताहतक रखा रहनेदेवे। फिर उसमें ४ तोले शंखका चूर्ण डालकर वारुणीयन्त्रके द्वारा अर्क खींचे। यह रस धातुगत सर्वदोष तथा उदरादि रोगोंको तत्काल नष्ट करता है और यह द्राव, शंख अथवा कौडी, सीपी आदिको शीघ्र द्रवीभूत करता है॥ १२६-१३०॥

महाशंखद्रावक।

चिञ्चाऽश्वत्थः स्नुही ह्यर्कोऽपामार्गश्च हि पञ्चमः।
पृथग् भस्मजलं कृत्वा तूद्धृत्य लवणानि च॥ ३१॥
टङ्कणं च यवक्षारं सर्ज्जं लवणपञ्चकम्।
रामठं तालकं चैव लवङ्गं नरसारकः॥ ३२॥

जातीफलं च गोदन्तं ताप्यं गन्धरसं तथा।
विषं समुद्रफेनं च सोरका स्फटिकारिका ॥ ३३ ॥
शंखचूर्णं शंखनाभिचूर्णं पाषाणसम्भवम्।
मनःशिला च कासीसं समभागं च कारयेत् ॥ ३४ ॥
भावयेद्वेतसरसैः काचकुप्यां क्षिपेत्ततः।
अत्र द्रवं च तद्दत्त्वा चोष्णस्थाने च धारयेत् ॥
वस्त्रेणाच्छादयेत्तावद्यावत्स्यात्सप्तवासरम् ॥ ३५ ॥

इमली, पीपलवृक्ष, थूहर, आक और चिरचिटा इन पाँचोंकी छालकी भस्मोंको समान भाग लेकर पानीमें अलग २ घोलकर छान लेवे। फिर इन क्षारजलोंको मन्द मन्द अग्निसे पकावे। पकते २ जब खारद्रव्य बाकी रहजाय तब उतारलेवे। पश्चात् यह खार एवं पाँचों नमक, सुहागा, जवाखार, सज्जी, हींग, हरिताल, लौंग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती, हरिताल, सोनामाखी, बोल, शुद्ध मीठा तेलिया, समुद्रफेन, सोरा, फटकरी, शंखचूर्ण, शंखनाभिचूर्ण, पाषाणभेदका चूर्ण, मैनसिल और हीराकसीस इन सबको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे और फिर समस्त चूर्णको अम्लवेतके रसमें भावना देकर कपरौटी कीहुई काँचकी शीशीमें भरकर उष्ण स्थानमें रखदेवे और उसके मुखको अच्छेप्रकार वस्त्रसे ढककर ७ दिन-तक रखा रहनेदेवे ॥ ३१-३५ ॥

पश्चान्मन्दाग्निना देयं वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ॥ ३६ ॥
काचकुप्यां जलं दत्त्वा रक्षयेद्यत्नतः सुधीः।
गुञ्जैकं पर्णखण्डेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ३७ ॥
कासं श्वासं क्षयं प्लीहमजीर्णं ग्रहणीगदम्।
रक्तपित्तं क्षतं गुल्ममर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ३८ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च शूलमष्टविधं तथा।
आमवातं वातरक्तं खञ्जवातं धनुस्तथा ॥ ३९ ॥
उदरामयमामं च स्थूलतां कृमिकोष्ठताम्।
वातपित्तकफान्सर्वान्नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४० ॥
भुक्त्वा च कण्ठपर्यन्तं गुञ्जैकं च रसं लिहेत्।
तत्क्षणात्कारयेद्भस्म तृणराशिमिवानलः ॥ ४१ ॥

तदनन्तर वारुणीयन्त्रमें स्थापन कर धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निद्वारा पाक कर द्रवीभूत करे अर्थात् अर्क खींचे। जब शीतल होजाय तब उस जलको काँचकी शीशीमें भरकर यत्नपूर्वक रक्खे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इसको रत्तीभर मात्राको पानमें लगाकर सेवन करे। यह—खाँसी, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, संग्रहणी, रक्तपित्त, क्षत, गुल्म, बवासीर, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, आठों प्रकारके शूल, आमवात, वातरक्त, खञ्जवात, धनुस्तम्भ, उदररोग, स्थूलता, कृमिरोग, कोष्ठबद्धता, वात पित्त और कफजन्य रोग तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको संशयरहित तत्काल नाश करता है। कण्ठपर्यन्त भोजन करके रत्तीभर इस रसको चाटलेवे तो उसी क्षण किया हुआ भोजन इस प्रकार भस्म होजाता है, जिस प्रकार तृणोंके समूहको अग्निकण भस्म कर देता है॥ ३६-४१॥

यामार्द्धं द्रावयेत्सर्वं शंखशुक्तिवराटकान्।
पूर्वोक्तविधिना तत्र दद्यान्निशि चतुष्पथे॥ ४२॥
योगिनीभैरवाभ्यां च बलिं माषतिलानथ।
महाशंखद्रवो नाम्ना शम्भुदेवेन भाषितः॥ ४३॥
गुह्याद् गुह्यतमं गोप्यं पुत्रस्यापि न कथ्यते।
लोकानां कौतुकात्कर्त्रा प्रकाश्यो राजसन्निधौ॥ ४४॥

यह रस शंख, शुक्ति और कौड़ियोंको अर्द्धप्रहरमें ही गलादेता है। इसको सेवन करनेसे पहले पूर्वोक्त विधिके अनुसार अर्द्धरात्रिमें चौहारेपर योगिनी और भैरवोंके लिये उड़द और तिलोंकी बलि देवे। इस महाशंखद्रावनामक रसको श्रीशिवजीमहाराजने निर्म्मित किया है। यह गुप्तवस्तुसे भी अत्यन्त गुप्त है, इसको पुत्रसे भी नहीं कहना चाहिये। सांसारिक जीवोंको आश्चर्य चकित करनेके लिये केवल राजाओंके सामने प्रकाशित करे॥ ४२-४४॥

महाद्रावक १-२।

यवक्षारस्य भागौ द्वौ स्फटिकारेस्त्रयो मताः।
एकीकृत्य प्रपिष्यापि मूत्रैर्वत्सतरीभवैः॥ ४५॥
शुष्कं कृत्वा क्षिपेत्पात्रे सैसके वस्त्रलेपिते।
अन्यसीसकपात्रं तु द्विमुखं मेलयेद् बुधः॥ ४६॥
वृद्धवैद्योपदेशेन पचेत्पात्रस्थमौषधम्।
ततः सान्निध्यसंस्थाप्यं रसः पात्रान्तरं लभेत्॥ ४७॥
ततो रसं विनिष्कृष्य स्थापयेत्स्निग्धभाजने॥ ४८॥

१-जवाखार २ भाग और फटकरी ३ भाग इन दोनोंको एकत्र बछियाके मूत्रमें पीसकर धूपमें सुखालेवे। फिर इस कल्कको कपरौटी कियेहुए शीशेके बर्त्तनमें भरदेवे और ऊपरसे दूसरा शीशेका ढकना ढककर दोनोंके मुखको मिलाकर सन्धिस्थानोंको अच्छे प्रकार बन्द करदेवे। पश्चात् नीचेके सीसेमें एक छिद्र करदेवे, फिर एक गढा खोदकर उसमें एक स्वच्छ पात्रको रक्खे। उस पात्रके ऊपर उक्त दोनों शीशेके पात्रोंको स्थापन करे और ऊपरसे आग जलादेवे। तदनन्तर जब अग्निके सन्तापसे सीसेके पात्रके द्रव्य पिघलकर नीचेके पात्रमें चले जायँ तब उस रसको निकालकर चिकने बासनमें भरकर रखदेवे ॥ ४५-४८ ॥

लवङ्गेन सह खादेदथवा मृतताम्रकैः।
प्लीहादिस्थूलरोगेषु दापयेद्रक्तिकां भिषक् ॥
दूरीकरोति रोगं च महाद्रावकसंज्ञकः ॥ ४९ ॥
श्वित्रे च दद्रुरोगे च प्रलेपं द्रावकस्य च।
वह्निवज्ज्वलनं तस्य दधि दत्त्वा प्रलेपयेत् ॥ १५० ॥

इस रसकी प्रतिदिन प्रातःकाल एक रत्ती मात्राको लौङ्गके चूर्ण अथवा ताँबेकी भस्मके साथ सेवन करे तो इससे प्लीहा, स्थूलतादि दारुण रोग अल्पकालमेंही द्रव अर्थात् गलकर नष्ट होजाते हैं। यह रस अत्यन्त कठिनतम रोगोंको द्रवीभूत करता है। इसलिये इसको महाद्रावक कहते हैं। यदि लेप करनेपर जलन मालूम हो तो पहले दही मललेवे बादमें इसको लगावे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वृषश्चित्रमपामार्गश्चिश्चा कूष्माण्डनाडिका।
स्नुही तालस्य पुष्पं च वर्षाभूर्वेतसं तथा ॥ ५१ ॥
एतेषां क्षारमाहृत्य लिम्पाकस्वरसेन च।
क्षालयित्वा क्षारतोयं वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ ५२ ॥
चण्डातपेन संशोष्य ग्राह्यं तद्द्रवणोचितम्।
एतस्य द्विपलं ग्राह्यं यवक्षारपलद्वयम् ॥ ५३ ॥
स्फटिकारिपलं चैव नवसारपलं तथा।
पलार्द्धं सैन्धवं ग्राह्यं टङ्कणं तोलकद्वयम् ॥ ५४ ॥
कासीसं तोलकं चैव मुद्राशङ्खं च तोलकम्।
दारुमोचं कर्षकं च तोलं सामुद्रफेनकम् ॥ ५५ ॥

सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य बकयन्त्रेण साधयेत् ।
महाद्रावकमेतद्धि योज्यं च रसजारणे ॥ ५६ ॥
हन्ति गुल्मादिकान्रोगान् यकृत्प्लीहोदराणि च ॥ ५७ ॥

२-अडूसा, चीतेकी जड, चिरचिटा, इमली, पेठेकी डण्डी, थूहर, ताडके फूल, पुनर्नवा और बेंत इन सबकी भस्मको बराबर २ भाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें घोलकर कपडेमें छानकर क्षारयुक्त जलको ग्रहण करे । फिर इस जलको तीक्ष्ण धूपमें सुखाकर इसके ८ तोले खारको लेवे । एवं जवाखार ८ तोले, फटकरी ४ तोले, नौसादर ४ तोले, सैंधानमक २ तोले, सुहागेकी खीलें २ तोले, कसीस १ तोला, मुद्राशंख, (अरघा) १ तोला, दारुमोच विष १ कर्ष और समुद्रफेन १ तोला लेवे । सबको एकत्र चूर्ण करके बकयन्त्रद्वारा चुवाकर अर्क ग्रहण करे । इस महाद्रावकको रसादिके जारणमें प्रयोग करे । यह गुल्म, यकृत्, प्लीहा और उदरप्रभृति सम्पूर्ण विकारोंको नष्ट करता है ॥ ५१-५७ ॥

शुद्धं कांचनमाक्षिकं मृदुतरं कांस्याभिधं तत्तथा
सिन्धूत्थं विमलं रसाञ्जनवरं फेनः स्रवन्तीपतेः ।
क्षारौ सर्ज्जिकसाम्भलौ सुविमलौ भागास्त्वमीषां समाः
सप्तानां सदृशं तु टङ्कणमिहास्याद्धों नृसारः सितः ॥५८॥
तत्तुल्या स्फटिकारिका त्रिसदृशः शुक्ला यवस्याग्रजः
कासीसत्रितयं यवाग्रजसमं सञ्चूर्ण्य सर्वं न्यसेत् ।
पात्रे काचमये मृदम्बरवृते यन्त्रे बकाख्ये भिषक्
ज्वालेन क्रमवर्द्धितान्यवहितोऽमीषां रसं पातयेत् ॥ ५९ ॥

३-शुद्ध सोनामाखी, कांस्यमाखी, सैंधानमक, रसौंत, समुद्रफेन, सज्जी और साँभलखार इन सातोंको समान भाग और सबके बराबर भाग सुहागा एवं सुहागेसे आधा भाग नौसादर और इतनीही फिटकिरी लेवे । फिर शुभ्रवर्णका जवाखार पूर्वोक्त तीनों वस्तुओंके समान, तीनों कसीस जवाखारके चूर्णके समान भाग लेवे । फिर सबोंको एकत्र अच्छे प्रकार कूटपीसकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णको कपडमिट्टी की हुई काँचकी शीशीमें भरकर बकयन्त्रमें स्थापन करके अग्निके सन्तापसे द्रावकों निकाले अर्थात् उक्त औषधोंका अर्क खींचे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

यो द्राग्भस्म वराटिकां प्रकुरुते सोऽयं महाद्रावकः
को वक्तुं प्रभवेदमुष्य नितरां सम्यग्गुणान्भूतले ।

एतद्वल्लचतुष्टयं सह गिलेच्छुण्ठ्या लवङ्गेन वा ।
तत्पश्चात्परिभावितं बहुगुणं ताम्बूलकं भक्षयेत् ॥ १६० ॥

यह महाद्रावक रस कौडियोंको बहुत शीघ्र भस्म करदेता है । संसारमें इसके संपूर्ण गुणोंका वर्णन करनेको कोई भी समर्थ नहीं है । इसकी ८ माशे परिमाण मात्राको सोंठके चूर्ण अथवा लौंगके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करे । पश्चात् सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित नागरपान भक्षण करे ॥ १६० ॥

प्रासङ्ग्यात्कथयामि तान्छृणु गुणानस्यैव कांश्चित्परान्
निःशेषं विनिहन्त्यसौ चिरभवान्यष्टोदराणि ध्रुवम् ।
गुल्मं पाण्डु हलीमकं सुकठिनामष्ठीलिकां कामलां
मन्दाग्निं विषमाग्नितां बहुविधान् शोथांश्च शूलानपि ॥ ६१ ॥
सर्वार्शांसि भगन्दरान्कृमिगदान्पञ्चैव कासांस्तथा
हिक्काश्लीपदकोषवृद्धिमरुचिव्याधिं महादारुणम् ।
नव्यं वा चिरजं ज्वरं बहुविधं छर्दिं कृमीन्विंशतिं
यक्ष्माणं चिरजामवात पिडिकातीसारविस्फोटकम् ॥ ६२ ॥
उन्मादं स्वरभेदमर्बुदमपि स्वेदं च हृत्पाणिजं
जिह्वास्तम्भगलग्रहं चिरभवं ग्रीवारुजामुल्बणाम् ।
नासाकर्णशिरोऽक्षिवक्त्रजगदान्क्षुद्रामयांश्चापरान्
हन्यादेव चिरोत्थितान्बहुविधानन्यांश्च रोगानपि ॥ ६३ ॥

प्रसङ्गसे इसके कुछ थोडेसे श्रेष्ठ गुणोंको कहता हूँ उनको सुनो—यह रस बहुत पुराने आठों प्रकारके उदररोग, गुल्म, पाण्डु, हलीमक, कठिनतम अष्ठीला, कामला, मन्दाग्नि, विषमाग्नि, सर्वप्रकारके शोथ, शूल, बवासीर, भगन्दर, कृमिरोग, खाँसी, हिचकी, प्लीहा, श्लीपद, अण्डकोषवृद्धि, अरुचि, नया अथवा पुराना सर्व प्रकारका ज्वर, वमन, राजयक्ष्मा, आमवात, पिडिका, विसर्प, विस्फोटक, उन्माद, स्वरक्षय, अर्बुद, हृदय और हाथोंसे उत्पन्नहुआ स्वेदरोग, जीभका जकडना, गलग्रह, दारुण ग्रीवापीडा, नाक, कान, शिर, नेत्र और मुखके रोग, अन्य क्षुद्ररोग एवं नानाप्रकारके नये और पुराने सम्पूर्ण उत्कट विकारोंको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ६१-६३ ॥

एकः स्यादपरो हि टङ्कणमुखैर्द्रव्यैः परैः सप्तके-
रन्यस्तु स्फटिकारिटङ्कणयवक्षाराग्रकासीसकैः ।

जानीयाद् गुरुतो विभागमनयोर्यन्त्रादिकं चापरं
निर्दिष्टास्त्रय एव भेषजवराः स्वल्पो महान्मध्यमः ॥ ६४ ॥
स्फटिकाद्यादिकासीसान्तचतुर्द्रव्यैः स्वल्पः ।
स्वर्णमाक्षिकादिकासीसन्त्रितयान्तैर्महान् ।
टङ्कणादिकासीसान्तैः सप्तभिर्द्रव्यैर्मध्यमः ॥

सोनामाखीसे लेकर कसीसतक औषधियोंका द्रव निकालना उत्तम महाद्राव कहलाता है। एवं सुहागेसे लेकर कसीसतक औषधोंका द्रव निकालना मध्यम द्राव और फटकरिसे लेकर कसीसपर्यन्त चार औषधोंका द्रव निकालना अल्पद्राव कहा-जाता है ॥ १९८-१६४ ॥

चित्रकघृत।

चित्रकस्य तुलाक्काथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
आरनालं तद्द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥
पञ्चकोलकतालीशक्षारैर्लवणसंयुतैः ।
द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत् ॥ ६६ ॥

सौ पल चीतेके क्काथमें ६४ तोले घृतको पकावे। फिर काँजी १२८ तोले, दहीका तोड २५६ तोले एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीशपत्र, जवाखार, सैन्धानमक, जीरा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिरच इनके चूर्णको समान भाग लेकर उसमें डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

प्लीहगुल्मोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
वस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्तपीनसान् ॥ ६७ ॥
हन्यात्पीतं तदर्शोऽघ्नं शोथघ्नं वह्निदीपनम् ।
बलवर्णकरं चापि भस्मकं च नियच्छति ॥ ६८ ॥

यह घृत यथाविधि सेवन करनेसे तिल्ली, गुल्म, उदररोग, अफरा, पाण्डु, अरुचि, ज्वर, वस्ति, हृदय, पसली, कमर और जंघाका शूल, उदावर्त्त, पीनस, बवासीर, सूजन और भस्मकादि रोगोंको शीघ्र दूर करता है तथा अग्निको बढाता और बल-वर्णको उत्पन्न करता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पिप्पलीघृत।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम् ।
पचेत्प्लीहाग्निसादादियकृद्रोगहरं परम् ॥ ६९ ॥

पीपलका कल्क एक सेर, घृत एक सेर और दूध ४ सेर इनको एकत्र मिलाकर घृतको सिद्ध करे । यह प्लीहा, मन्दाग्नि, यकृतरोगको नाश करता है ॥ ६९ ॥

चित्रकपिप्पलीघृत ।

पिप्पलीचित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत् ।
घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ॥ १७० ॥

पीपल और चीतेकी जड समान भाग मिश्रित इनका चूर्ण एक सेर, घृत एक सेर और दूध ४ सेर लेवे । फिर सबको एकत्रकर उत्तम प्रकार घृतको पकावे । यह घृत यकृत, प्लीहा और उदरविकारको दूर करता है ॥ १७० ॥

रोहीतकघृत ।

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिः ।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ॥ ७१ ॥
पलिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वैश्चापि तुल्यया ।
रोहीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७२ ॥
प्लीहाभिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम् ।
तथा गुल्मज्वरश्वासकृमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ ७३ ॥

रोहेडा वृक्षकी छाल २५ पल और बडीबेरकी छाल २ प्रस्थ (१२८ तोले) लेकर चौगुने जलमें पकावे । चतुर्भागावशिष्ट जल रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर इस काढेमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, रोहेडेकी छालका चूर्ण २० तोले और घृत ६४ तोले डालकर पकावे । यह रोहीतकघृत बढीहुई तिल्ली, गुल्म, ज्वर, श्वास, कृमि, पाण्डु और कामलाप्रभृति व्याधियोंको तत्काल शमन करता है ॥ ७१-७३ ॥

महारोहीतकघृत ।

रोहितकात्पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम् ।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषितम् ॥ ७४ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागीक्षीरं चतुर्गुणम् ।
तस्मिन्दद्यादिमान्कल्कान्सर्वांस्तानक्षसंमितान् ॥ ७५ ॥
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यमानी तुम्बुरुर्विडम् ।
अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ ७६ ॥
पुनर्नवा विशाला च यवक्षारं तु पौष्करम् ।

विडङ्गं चित्रकं चैव हबुषा चविका वचा ॥
एभिर्घृतं विपक्कं तु स्थापयेद्भाजने शुभे ॥ ७७ ॥
पाययेत्रिपलां मात्रां व्याधिं बलमवेक्ष्य च ।
रसकेनाथयूषेण पयसा वापि भोजयेत् ॥ ७८ ॥

रोहेडेकी छाल १०० पल, बडीबेरीकी छाल ४ सेर इन दोनोंको कुचलकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इसमें गोघृत ६४ तोले, बकरीका दूध २५६ तोले, कल्कके लिये त्रिकुटा, त्रिफला, हींग, अजवायन, धनियाँ, विडनमक, कालाजीरा, कालानमक, अनार देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायण, जवाखार, पोहकरमूल, वायविडङ्ग, चीता, हाऊबेर, चव्य और वच इन औषधियोंको दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करके डालदेवे फिर यथाविधि घृतको सिद्ध कर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस घृतको १२ तोले मात्राको सेवन करनेका ऋषियोंने निर्देश किया है, किन्तु वातादि दोषोंकी उल्बणता और रोगीके बलाबलको विचारकर इसकी उपयुक्त मात्राको सेवन करावे और रसवाले यूष अथवा दूधके साथ भोजन करावे ॥ ७४–७८ ॥

उपयुक्ते घृते ह्यस्मिन् व्याधीन्हन्यादिमान्बहून् ।
यकृत्प्लीहोदरं चैव प्लीहशूलं यकृत्तथा ॥ ७९ ॥
कुक्षिशूलं च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥
विबद्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ १८० ॥
हृद्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम् ।
महारोहितकं नाम प्लीहानं हन्ति दारुणम् ॥ ८१ ॥

नियमपूर्वक इसका सेवन करे तो यह महारोहीतक नामवाला घृत यकृद्विकार, प्लीहोदर, प्लीहाशूल, कुक्षिशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, विबद्धशूल, पाण्डुरोग, कामला, हृदयरोग, अतीसार, शूल, तन्द्रा, ज्वर, विशेषकर दारुण प्लीहा और अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥

रोहीतकारिष्ट ।

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥ ८२ ॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता ।
पञ्चकोलं त्रिजातं च त्रिफलां च विनिक्षिपेत् ॥ ८३ ॥

चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ।
मासादूर्ध्वं च पिबतां सर्वोदररुजां जयेत् ॥ ८४ ॥
प्लीहगुल्मोदराष्ठीलाग्रहण्यर्शांसि कामलाम् ।
कुष्ठशोथारुचिहरो रोहीतारिष्टसंज्ञकः ॥ १८५ ॥

रोहेडा वृक्षकी १०० पल छालको लेकर चार द्रोण (१२८ सेर) जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग अर्थात् ३२ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर इस क्वाथमें गुड २०० पल, धायके फूल १६ पल, एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, हरड, बहेडा और आमला इन सब औषधियोंको चार चार तोले लेकर बारीक चूर्ण करके डालदेवे । पुनः इन सब द्रव्योंको एक उत्तम एवं नवीन पात्रमें भरदेवे और उस पात्रका मुख बन्द करके गाड देवे । इसको एक महीनेके बाद निकालकर उचित मात्रासे सेवन करे तो यह अरिष्ट उदरके सब रोग, तिल्ली, गुल्मोदर, अष्ठीला, संग्रहणी, बवासीर, कामला, कोढ, सूजन, और अरुचिप्रभृति रोगोंको दूर करता है । इसका नाम रोहीतका है ॥ उदररोगके समानही प्लीहा, यकृद्रोगका पथ्य वा अपथ्य जानना ॥ ८२-१८५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्लीह-यकृच्चिकित्सा ।

शोथकी चिकित्सा ।

लङ्घनं पाचनं शोथे शिरःकायविरेचनम् ।
वमनं च यथासन्नं यथादोषं प्रकल्पयेत ॥ १ ॥
स्नेहोऽथ वातिके शोथे बद्धविट्के निरूहणम् ।
पयो घृतं पैत्तिके तु कफजे रूक्षणः क्रमः ॥ २ ॥

शोथरोगमें प्रथम लंघन, पाचन, नस्य, विरेचन और वमनादि क्रियाओंका वात पित्तादि दोषोंका बलाबल विचारकर प्रयोग करे । जैसे वातोत्पन्न शोथमें स्निग्धक्रिया, मलबद्ध रोगमें निरूहणवस्ति, पित्तजन्य शोथमें दूध और घृतपान एवं कफजनित शोथरोगमें रूक्षकर्म प्रयोग करने चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अथामजं लंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्बणदोषमादितः ।
शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधो विरेचनैरूर्द्धहरैस्तथोर्द्धकम् ॥
उपाचरेत्स्नेहभवं विरूक्षणैः प्रकल्पयेत्स्नेहविधिं च रूक्षिते ३

आमजनित शोथमें लंघन और पाचन क्रिया करे । किन्तु दोषोंकी अधिकता होनेपर संशोधकद्रव्य प्रयोग करे। शिरोगतशोथमें नस्य प्रदान करे, शरीरके अधोभागस्थित शोथमें विरेचन और ऊर्ध्वभागस्थित शोथमें वमनक्रिया करे। तेल और घृतादि स्नेहद्रव्योंके सेवन करनेसे उत्पन्नहुए शोथमें रूक्षक्रिया करे। एवं रूक्षक्रिया द्वारा उत्पन्न शोथमें स्निग्ध क्रिया प्रयोग करे ॥ ३ ॥

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेषतः ।
वातजे तैलमेरण्डं विड्ग्रहे पयसा पिबेत् ॥ ४ ॥

वातजशोथमें दशमूलका काढा पीवें। विशेषकर उक्त रोगमें मलबद्धता होनेपर अण्डीके तेलको दूधमें डालकर पीवे ॥ ४ ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः ।
यवागुर्मानकन्दस्य प्रायशश्चातिशोथजित् ॥ ५ ॥

गोमूत्रको सूजनवाले स्थानपर मलनेसे अथवा पान करनेसे सूजन तत्काल दूर होती है एवं पुराने मानकन्दकी यवागू सेवन करनेसे अत्यन्त प्रवृद्ध सूजन दूर होती है ॥ ५ ॥

बिल्वपत्ररसं पातुं सोषणं श्वयथौ त्रिजे ।
विट्संगे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात्कामलासु च ॥ ६ ॥

बेलपत्रोंके रसमें मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करे तो त्रिदोषजन्य सूजन, कोष्ठबद्धता, बवासीर और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

भूनिम्बविश्वकल्कं जग्ध्वा पेयःपुनर्नवाक्राथः ।
अपहरति नियतमाशु शोथं सर्वाङ्गिकं नृणाम् ॥ ७ ॥

चिरायता और सोंठ इनके कल्कको भक्षण कर ऊपरसे पुनर्नवेका क्वाथ पान करे। इससे सर्वशरीरगत शोथ शीघ्र दूर होता है ॥ ७ ॥

शोथनुत्कोकिलाक्षस्य भस्म मूत्रेण वाऽम्भसा ।

तालमखानेकी भस्मको, कफजन्य शोथमें गोमूत्रके साथ एवं पैत्तिक शोथमें जलके साथ पान करनेसे शोथरोग नष्ट होता है ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसाऽऽलोड्य पाययेत् ।
प्लीहामयहरं चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित ॥ ८ ॥

स्थलकमल अथवा पुराने मानकन्दके कल्कको दूधमें मिलाकर पान करानेसे प्लीहारोग, सर्वाङ्गगत शोथ और एकाङ्गगत शोथ दूर होता है ॥ ८ ॥

सिंहास्यादि।

सिंहास्यमृतभण्टाकीक्वाथं कृत्वा समाक्षिकम्।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥ ९ ॥

अडूसेकी छाल, गिलोय और कटेरी इनके क्वाथको बनाकर मधुके साथ पान करनेसे श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन और सूजन दूर होती है ॥ ९ ॥

पटोलादि।

पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्वाथः सगुग्गुलुः।
तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवं तथा ॥ १० ॥

परवल, त्रिफला, नीमकी छाल और दारुहल्दी इनके क्वाथमें गूगल डालकर पान करानेसे पित्तज और कफज सूजन नाश होती है ॥ १० ॥

त्रिफलादि।

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव साधितम्।
वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद् वृषणसम्भवम् ॥ ११ ॥

हरड, बहेडा और आमला इनके क्वाथको गोमूत्रमें सिद्ध करके पीनेसे वातकफजन्य शोथ और अण्डकोषजन्य शोथरोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

पथ्यादि।

पथ्यानिशाभार्ङ्ग्यमृताग्निदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम्।
क्वाथःप्रसह्योदरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेणशोथम् ॥१२॥

हरड, हल्दी, भारङ्गी, गिलोय, चीता, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करले तो उदर, हाथ, पैर और मुखस्थित सूजन अल्पकालमें नष्ट होजाती है ॥ १२ ॥

पुनर्नवाष्टक।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः।
सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्वशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति॥१३॥

श्वेत पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवल, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी और हरड इनके क्वाथको यथाविधि बनाकर सेवन करनेसे सर्वशरीरगत शोथ, उदररोग, पार्श्वशूल, श्वास, कास और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

शुण्ठी-पुनर्नवादि।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलीशृतं जलम्।
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ १४ ॥

सोंठ, सफेद पुनर्नवा, अण्डकी जड, बेलकी छाल, शोनापाठा, कम्भारी, पाढर और अरणी इनका काढा बनाकर पीवे अथवा इन औषधियोंके अर्द्धभागावशिष्ट जलमें पेया आदि भोज्य पदार्थ सिद्ध कर भक्षण करनेसे वातज शोथ दूर होता है ॥ १४ ॥

पुनर्नवा-दशक ।

पुनर्नवा मागधजा कटुत्रयं निम्बाऽभया च कटुका च पटोलदार्वी । क्वाथः सुखोष्णः कथितो विपाकैः शोथो जहाति जठरं च नरस्य शीघ्रम् ॥ १५ ॥

पुनर्नवा, पीपल, त्रिकुटा, नीमछाल, हरड, कुटकी, परवल और दारुहल्दी इन औषधियोंके मन्दोष्ण क्वाथको पान करनेसे सूजन और उदररोग दूर होते हैं ॥१५॥

पुनर्नवापुटस्वेद ।

पुनर्नवा निम्बपत्रं निष्पावपारिभद्रके ।
एतैश्च पुटसंस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् ॥ १६ ॥
अपमार्गः कोकिलाक्षो निर्गुण्डी विजया तथा ।
एतैरपि पुटस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् ॥ १७ ॥

पुनर्नवा, नीमके पत्ते, सेमके पत्ते और फरहदकी छाल इन सबको एकत्र कूटकर गरम करके पसीना देनेसे दारुण शोथ दूर होता है । एवं चिरचिटा, तालमखाना, सिह्मालु और भाँग इनको कुचलकर पोटलीमें बाँधले, फिर अग्निपर गरम करके स्वेदप्रदान करनेसे दुस्तर सूजन नष्ट होती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

पुनर्नवादिचूर्ण ।

पुनर्नवा दार्वभया पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका ।
बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ चित्रकं वृषम् ॥ १८ ॥
समभागानि सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् ।
बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ॥
हन्ति शोथोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ १९ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, हरड, पाढ, बेलकी जड, गोखुरू, कटाई, कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, गजपीपल, चीता और अडूसा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके गोमूत्रके साथ पान करे तो यह चूर्ण सब शरीरमें फैलीहुई एवं अन्यान्य अनेक प्रकारकी सूजन, आठ प्रकारके उदररोग और अत्युत्कट व्रणोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

शोथारिचूर्ण ।

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटुस्त्रिफला तथा ।
दन्ती च त्रिमदं चैव प्रत्येकं च समं समम् ॥ २० ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय बिल्वपत्ररसेन च ।
पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथं चैव सुदारुणम् ॥ २१ ॥

सूखी मूली, चिरचिटा, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्तीकी जड, वायविडङ्ग, चीतेकी जड और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस चूर्णको बेलपत्रीके रसमें मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डुरोग, दुस्तर सूजन दूर होती है ॥ २० ॥ २१ ॥

पुनर्नवादिलेह ।

पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ २२ ॥
तत्सिद्धं व्योषपत्रैलात्वक्चव्यैः कार्षिकैः पृथक् ।
चूर्णीकृतैः क्षिपेच्छीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥ २३ ॥
पुनर्नवादिलेहोऽयं शोथशूलनिषूदनः ।
कासश्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ २४ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, देवदारु और दशमूलकी समस्त औषधियोंका रस क्वाथ ८ सेर, अदरखका स्वरस १ प्रस्थ और पुराना गुड १०० पल लेवे। सबोंको एकत्रकर यथा-नियम पाक करे। पकते २ जब गाढा पडजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तेजपात, इलायची, दारचीनी और चव्य इन सबोंको दो दो तोले चूर्ण करके डालदेवे एवं शीतल होजानेपर १६ तोले शहद डालकर मिलादेवे। यह पुनर्नवाना-मक अवलेह सूजन, शूल, खाँसी, श्वास और अरुचिको हरता है तथा बल, वर्ण और जठराग्निको बढाता है ॥ २२–२४ ॥

त्रिनेत्राख्यरस ।

टङ्कणं शोधितं गन्धं मृतशुल्बायसं रसम् ।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं लघुपुटे पचेत् ॥ २५ ॥
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम चासाध्यं श्वयथुं जयेत् ।
माषमात्रं पिबेच्चानु एरण्डशिखरीरसम् ॥ २६ ॥

सुहागा, शुद्ध गन्धक, ताँबे और लोहेकी भस्म एवं पारा इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रससे एक दिनतक उत्तम प्रकार खरल करे फिर लघुपुटमें रखकर पकावे। यह त्रिनेत्राख्यनामवाला रस असाध्य सूजनको भी दूर करता है। इसको प्रतिदिन एकएक माशा भक्षण करे और ऊपरसे अण्डकी जडका रस या क्वाथ अथवा चिरचिटेका रस पान करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

त्रिकट्वादिलौह।

त्रिकटु त्रिफला दन्ती विडङ्गं कटुका तथा।
चित्रको देवकाष्ठं च त्रिवृद्धारणपिप्पली ॥ २७ ॥
चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः।
क्षीरेण पीतमेतच्च परं श्वयथुनाशनम् ॥ २८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्तीमूल, वायविडङ्ग, कुटकी, चीता, देवदारु, निसोत और गजपीपल इन औषधियोंके चूर्णोंको समान भाग, चूर्णसे दुगुना लोहचूर्ण लेवे। सबको एकत्र मिलाकर पीसलेवे। इसको तीन रत्ती प्रमाण लेकर दूधके साथ पान करनेसे अतिप्रबल सूजन शीघ्र दूर होय ॥ २७ ॥ २८ ॥

शोथारिलौह।

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकचूर्णं च पीतं त्रिफलारसेन।
शोथं निहन्यात्सहसा नरस्य यथाऽशनिर्वृक्षमुदग्रवेगः ॥ २९॥

लोहेका चूर्ण, सोंठ, मिरच, पीपल और जवाखार ये प्रत्येक औषधि समान भाग किन्तु लोहचूर्ण सब चूर्णके बराबर भाग लेकर एकत्र पीसलेवे। फिर इस चूर्णको ३ रत्ती प्रमाण लेकर त्रिफलेके रसके साथ पान करे तो अत्युग्र सूजन बहुत शीघ्र नष्ट होती है। जैसे अत्यन्त वेगवान् वज्रसे वृक्षोंका नाश होता है ॥ २९ ॥

शोथांकुशरस।

रसेन्द्रगन्धं मृतलौहताम्रं नागं तथाऽभ्रं समसंख्यकं च।
निर्गुण्डिकास्फोतकपित्थचिञ्चाः पुनर्नवाश्रीफलकेशराजम् ॥ ३० ॥ एषां रसैर्भावितमेकशश्च कोलप्रमाणा वटिका विधेया। शोथज्वरारोचकपाण्डुरोगं सर्वाङ्गशोथं विनिवारयेच्च ॥ पित्तान्वितान्वातभवान्कफोत्थान्शोथाङ्कुशो नाम निहन्ति रोगान् ॥ ३१ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म और अभ्रकभस्म ये सब समान भाग लेवे। फिर सबोंको एकत्रितकर सिह्माळु, लाल आकके वृक्ष,

कैथ, इमलीकी छाल, पुनर्नवा, बेलकी छाल और काला भाँगरा इनके रसोंमें एक एक बार भावना देकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह शोथांकुश-नामक रस सब प्रकारकी सूजन, ज्वर, अरुचि, पाण्डुरोग, सर्वशरीरस्थित शोथ एवं वात, पित्त और कफोत्पन्न रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पञ्चामृतरस ।

शुद्धसूतं समादाय गन्धकं भागतः समम् ।
त्रिभागं टङ्कणं देयं विषभागत्रयं तथा ॥ ३२ ॥
भागत्रयं तथा देयं मरिचस्य प्रयत्नतः ।
चूर्णीकृतं जलेनापि पिष्ट्वा रक्तिमितां वटीम् ॥
शृङ्गवेररसेनैव भक्षयेद्वटिकामिमाम् ॥ ३३ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक ये दोनों एक एक भाग एवं सुहागा ३ भाग, शुद्ध मीठातेलिया ३ भाग और मिरच ३ भाग इन सबको एकत्र चूर्णकर जलके साथ खरल करके रत्ती रत्तीभरकी गोलियाँ तैयार करलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक वटी अदरखके रसके साथ भक्षण करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

जलदोषोद्भवे शोथे घोरेऽत्युग्रे जलोदरे ।
सन्निपातेषु घोरेषु विंशतिश्लेष्मिके गदे ॥ ३४ ॥
ज्वरातीसारसंयुक्ते शोथे चैव गलग्रहे ।
शिरःशूलगदे घोरे नासारोगे सपीनसे ॥
पञ्चामृतरसो ह्येष सर्वरोगोपशान्तिकृत् ॥ ३५ ॥

यह पञ्चामृत नामवाला रस जलके दोषसे उत्पन्नहुए घोरतर शोथ, अत्युग्र जलोदर, दारुण सन्निपात, बीस प्रकारके कफजन्य रोग, ज्वर, अतीसारयुक्त शोथ, गलेके रोग, शिरःशूल, नासारोग, पीनसप्रभृति रोगोंमें शीघ्र उपकार करता है । एवं अन्य सर्वप्रकारके रोगोंको शान्त करनेवाला है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

शोथकालानलरस ।

चित्रजं कुटबीजं च श्रेयसी सैन्धवं तथा ।
पिप्पली देवपुष्पं च सजातीफलटङ्कणम् ॥ ३६ ॥
लौहमभ्रं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम् ।
एतेषां कर्षमात्रेण वटीं गुञ्जामितां शुभाम् ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षरसेन तु ॥ ३७ ॥

चीतेकी जड, इन्द्रजौ, गजपीपल, सैंधानमक, पीपल, लौंग जायफल, सुहागा, लोहा, अभ्रक, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा इनको अलग अलग दो दो तोले लेवे। फिर सबको एक जगह कूटपीसकर जलके योगसे उत्तम प्रकार खरल करके एक एक रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय एक एक गोली तालमखानेके रसके साथ खावे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ ३८ ॥
मेहं मन्दानलं शूलं संग्रहग्रहणीं तथा ।
अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा ॥ ३९ ॥
शोथकालानलो नाम रोगानीकविनाशनः ॥ ४० ॥

इससे आठों प्रकार साध्य व असाध्य ज्वर, खाँसी, सूजन, तिली दुस्तर प्रमेह, मन्दाग्नि, शूलरोग, संग्रहणी, विशेषकर सूजन एवं अन्यान्य सम्पूर्ण रोगोंके समूह निश्चय नाश होते हैं। जिस प्रकार सूर्य्य अपनी तीक्ष्णतर किरणोंके अग्रभागसे कीचको एकदम सुखादेता है। इसका नाम शोथकालानल रस है ॥ ३८-४० ॥

क्षेत्रपालरस ।

हिङ्गुलं च विषं ताम्रं लौहं तालकटङ्कणम् ।
जीरकं चाहिफेनं च समभागं विमर्दयेत् ॥ ४१ ॥
यवार्द्धा वटिका कार्या पथ्यं दुग्धौदनं हितम् ।
वारिहीनं ह्यलवणं दातव्यं भिषजां वरैः ॥ ४२ ॥
गुरुशोथमग्निमान्द्यं ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।
ज्वरं च विषमं जीर्णं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥

सिंगरफका पारा, शुद्ध मीठा तेलिया, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हरताल, सुहागा, जीरा और अफीम इन सबको समान भाग लेकर एकत्र जलसे खरल करलेवे। फिर आधे जौकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। तदुपरान्त नित्यप्रति प्रातःकाल एक एक गोली दूधके साथ सेवन करे। इसके सेवन करनेपर रोगी जबतक आरोग्य न हो तबतक वैद्योंको नमक और जलका त्याग करके प्यास लगनेपर दूध और क्षुधा लगनेपर दूध भातका पथ्य देना चाहिये। यह रस भारी सूजन, मन्दाग्नि, दुस्तर संग्रहणी, पुराने और विषम ज्वरको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४१-४३ ॥

कल्पलतावटी ।

अमृतं हिङ्कुलं धूर्त्तबीजं द्वादशरक्तिकम् ।
प्रत्येकमहिफेनं च षट्त्रिंशद्रक्तिकं नयेत् ॥ ४४ ॥
पिष्ट्वा दुग्धेन गुञ्जैकां वटीं दुग्धेन पाययेत् ।
दुग्धं पाने भोजने च न देयं लवणं जलम् ॥ ४५ ॥
ग्रहणीं चिरकालीनां हन्ति शोथं सुदुर्जयम् ।
चिरज्वरं पाण्डुरोगं नाम्ना कल्पलता वटी ॥ ४६ ॥

शुद्ध मीठातेलिया, सिंगरफ और धतूरेके बीज ये प्रत्येक बारह बारह रत्ती एवं अफीम ३६ रत्ती लेवे । इन सबको दूधके साथ खूब बारीक पीसकर एक एक रत्ती की गोलियाँ तैयार करलेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःसमय एक गोली दूधके साथ भक्षण करे । इसपर भोजन करनेके लिये दूध भात और पीनेके लिये दूध देवे तथा लवण व लवणयुक्त पदार्थ और जल बिल्कुल न देवे । यह कल्पलतानामवाली वटी बहुत पुरानी संग्रहणी, दुर्जय शोथ, जीर्णज्वर और पाण्डुरोगको तत्काल नष्ट करती है ॥ ४४-४६ ॥

दुग्धवटी १-२ ।

अमृतं सूर्यगुञ्जं स्यादहिफेनं तथैव च ।
पञ्चरक्तिकलोहं च षष्टिरक्तिकमभ्रकम् ॥ ४७ ॥
दुग्धैर्गुञ्जाद्वयमिता वटी कार्य्या भिषग्विदा ।
दुग्धानुपानं दुग्धैश्च भोजनं सर्वथा हितम् ॥ ४८ ॥
शोथं नानाविधं हन्ति ग्रहणीं विषमज्वरम् ।
मन्दाग्निं पाण्डुरोगं च नाम्ना दुग्धवटी परा ॥
वर्जयेल्लवणं वारि व्याधिनिःशेषतावधि ॥ ४९ ॥

१-शुद्ध मीठातेलिया १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोहभस्म ५ रत्ती और-अभ्रकभस्म ६० रत्ती इनको दूधके योगसे उत्तम प्रकार खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी दूधके साथ सेवन करे । इस औषधिके सेवन करते समय दूधके साथ भोजन करना हितकर है । यह दुग्धवटी अनेक प्रकारकी सूजन, संग्रहणी, विषमज्वर, मन्दाग्नि और पाण्डुरोगादि व्याधियोंको शीघ्र दूर करतीहै । जबतक रोग अच्छे प्रकारसे नष्ट न होजाय तबतक नमक और जलका सर्वथा त्याग करदेना चाहिये ॥ ४७-४९ ॥

अमृतं धूर्त्तबीजं च हिङ्गुल च समं समम् ।
धूर्त्तपत्ररसेनैव मर्दयेद्याममात्रकम् ॥ ९० ॥
मुद्गोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सह पाययेत् ।
दुग्धेन भोजयेदन्नं वर्जयेल्लवणं जलम् ॥ ९१ ॥
शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं सकामलम् ।
सेयं दुग्धवटी नाम्ना गोपनीया प्रयत्नतः ॥ ९२ ॥

२–शुद्ध मीठातेलिया, धतूरेके बीज और हिंगुलोत्पन्न पारा इनको समानांश लेकर धतूरेके पत्तोंके रसमें एक पहरतक अच्छेप्रकार खरल करे । फिर मूंगकी बराबर गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक वटी दूधके साथ पान करे । इसपर केवल दूधके साथ अन्न भक्षण करे । नमक, जल और अन्य सर्वप्रकारके अहितकर पदार्थ त्यागदेवे । इससे विविध भाँतिके शोथ, पाण्डु और कामलारोग नाश होते हैं । यह दुग्धवटी सप्रयत्न गुप्त रखने योग्य है ॥ ९०–९२ ॥

गृहीत्वा दरदात्कर्षं तदर्द्धं देवपुष्पकम् ।
फणिफेनं विषं जातीफलं धुस्तूरबीजकम् ॥ ९३ ॥
संमर्द्य विजयाद्रावैर्मुद्गमात्रां वटीं चरेत् ।
अनुपानं प्रदातव्यं शोथे क्षीरं भिषग्वरैः ॥ ९४ ॥
ग्रहण्यां विजयाक्वाथं पथ्यं दुग्धान्नमेव हि ।
जलं च लवणं चापि वर्जनीयं विशेषतः ॥ ९५ ॥
प्रबलायामुदन्यायां सलिलं नारिकेलजम् ।
पातव्यं वटिका चैषा शोथं हन्ति न संशयः ॥
ग्रहणीमतिसारं च ज्वरं जीर्णं निहन्ति च ॥ ९६ ॥

३–सिंगरफ दो तोले, लौंग, अफीम, शुद्ध मीठा तेलिया, जायफल और धतूरेके बीज ये प्रत्येक एकएक तोला लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर भाँगके रसमें उत्तम विधिसे खरल करे, फिर मूँगसरीखी गोलियाँ बनालेवे । सुवैद्य इस वटीको शोथरोग में दूधके साथ और संग्रहणीमें भाँगके क्वाथके साथ देवे । दूध, भात भोजन करना इसपर पथ्य है । जल और लवण सेवन करना बिल्कुल छोडदेवे । अधिक प्यास लगनेपर नारियलका जल पान करावे । यह वटी सूजन, संग्रहणी, अतीसार और जीर्णज्वरको निस्सन्देह नष्ट करती है ॥ ९३–९६ ॥

तक्रवटी ।

रसस्य माषकं ग्राह्यं गन्धकस्य च माषकम् ।
द्विमाषकं रसस्यापि ताम्रं माषचतुष्टयम् ॥ ५७ ॥
तोलकं पिप्पलीचूर्णं मण्डूरस्य च तोलकम् ।
क्वाथेन कृष्णजीरस्य भावयेत्सप्तवासरम् ॥ ५८ ॥
वल्लप्रमाणां वटिकां तक्रेण सह पाययेत् ।
तक्रेण भोजनं पानं लवणाम्भोविवर्जितम् ॥
निहन्ति शोथं ग्रहणीं मन्दाग्निं पाण्डुतामपि ॥ ५९ ॥

शुद्ध पारा १ माशा, शुद्ध गन्धक १ माशा, शुद्ध मीठा तेलिया २ माशे, ताँबेकी भस्म ४ माशे, पीपलका चूर्ण १ तोला और मण्डूरभस्म १ तोला लेवे । फिर सबको एकत्रकर काले जीरेके क्वाथमें ७ दिनतक भावना देवे । पश्चात् दो दो रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत करलेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक वटी मट्ठेके साथ सेवन करावे । मट्ठेके साथ भोजन करे तथा प्यास लगनेपर भी मट्ठा ही पीवे । नमक और जलको आरोग्य लाभपर्यन्त कदापि सेवन न करे । यह वटी सूजन, संग्रहणी, मन्दाग्नि और पाण्डुरोगको दूर करती है ॥ ५७-५९ ॥

दधिवटी ।

पक्वेष्टकाहारिद्राभ्यामागारधूमकेन च ।
शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुलया घृतम् ॥ ६० ॥
भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं सूततुल्यकम् ।
हरितालं विषं तुत्थमेलवालुकताम्रकम् ॥ ६१ ॥
खर्परं माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
सर्वार्द्धा कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः पुनः ॥ ६२ ॥
सिन्दुवाररसे चैव ज्योतिष्मत्या रसे तथा ।
रसेऽपराजितायाश्च जयन्त्याः स्वरसे तथा ॥ ६३ ॥
रक्तचित्रकमूलोत्थरसे च परिभावयेत् ।
वटिकां सर्षपाकारां योजयेत्कुशलो भिषक् ॥ ६४ ॥

पकीहुई ईंट, हल्दी और घरका धुआँ इनसे शुद्ध किया हुआ पारा १ तोला, भाँगरेके रससे शोधित गंधक १ तोला और घी १ तोला एवं हरताल, शुद्ध मीठा

तेलिया, तूतिया, एलुआ, ताम्रभस्म, खपरिया, सोनामाखी और कांतलोह इनको एक एक तोला लेवे। फिर सबको एकत्रित करके कज्जली बनालेवे। इसमेंसे आधी कज्जली अलग रखदेवे और आधीको सिम्हालु, मालकाँगनी, कोयल, अरंणी और लालचीतेकी जड इनके रसोंमें क्रमशः पृथक्क पृथक्क भावना देवे। तदनंतर सरसोंके दानेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ६०–६४ ॥

ततः सप्त वटीर्दद्यादुष्णेन सह वारिणा।
अनुपानं च कर्त्तव्यं कज्जल्याः कणया सह ॥ ६५ ॥
सन्निपातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगदे।
पाण्डुरोगेऽग्निमान्द्ये च विविधे विषमज्वरे ॥ ६६ ॥
शुक्रमज्जागते दद्यान्न तु कासे कदाचन।
नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता नित्यं तथैव च ॥ ६७ ॥
स्नातव्यं ह्यभिया नित्यं वयोदोषानुसारतः।
अलवणं वारिहीनं दधि पथ्यं सदा भवेत् ॥ ६८ ॥

इनमेंसे सात गोलियोंको गरम जलके साथ सेवन करे और ऊपरसे रक्खी हुई कज्जलीमें पीपलका चूर्ण मिलाकर अनुपान करे। इस वटीको संनिपातज्वर शोथ-युक्त संग्रहणी, पांडुरोग, मंदाग्नि, विषमज्वर, वीर्य्य और मज्जागत ज्वरमें देवे। किंतु खाँसीमें कदापि न देवे। इसपर प्रतिदिन दहीके साथ मिश्री मिलाकर भोजन करे और रोगीको अपनी अवस्था तथा वातपित्तादि दोषोंकी अनुकूलताको विचार-कर नित्य स्नान करना चाहिये। इस औषधिपर नमक और जल अपथ्य है तथा दही सर्वथा पथ्य है ॥ ६५–६८ ॥

शोथभस्मलोह।

त्रिकटु त्रिफला द्राक्षा पौष्कर सजलं शठी।
लौहं वचा लवङ्गं च शृङ्गी त्वक् शतपुष्पिका ॥ ६९ ॥
विभीतकं विडङ्गं च धातकीपुष्पमेव च।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ७० ॥
सर्वद्रव्यसमं चात्र सुशुद्धं लौहकिट्टकम्।
कुटजस्य रसेनापि म्रक्षयेत्परियत्नतः ॥ ७१ ॥
वेष्टितं जम्बुपत्रेण पङ्केन परिलेपयेत्।
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ७२ ॥

प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा भक्षयेच्छुक्तिमानतः ।
निहन्ति सर्वजं शोथं ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ७३ ॥
उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु च विधानतः ।
विविधा व्याधयश्चान्ये सेवनाद्यन्ति साध्यताम् ॥ ७४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दाख, पोहकरमूल, सुगन्धवाला, कचूर, लोहा, वच, लौंग, काकडासिंगी, दारचीनी, सौंफ, बहेडा, वायविडङ्ग और धायके फूल इन सबको समान भाग लेकर महीन चूर्ण कर लेवे । फिर इस सब चूर्णके समान भाग शुद्ध लोहेके मैलको लेवे और उसको प्रथम स्वच्छ पात्रमें रखकर कूडेकी छालके रससे अच्छे प्रकार खरल करके गोलासा बनालेवे । पश्चात् उक्त गोलेको जामुनके पत्तोंसे लपेटकर चिकनी मिट्टीका लेप करके गजपुटमें पकावे । जब पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालले और चूर्ण करके पूर्वोक्त चूर्णमें मिलादेवे । तदनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल शुद्ध होकर इसमेंसे दो दो तोले प्रमाण खाय । यह लोह सर्व प्रकारके शोथ और संग्रहणीको नष्ट करता है । विशेषकर सब उदररोग, सर्व शोथ और अन्यान्य दुस्तर अनेकों रोग इसका सेवन करतेही नाश होजाते हैं ॥६९-७४ ॥

सुधानिधि ।

धान्यकं बालकं मुस्तं विश्वं सिन्धुं समांशकम् ।
मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा भावयेत्तु चतुर्दश ॥ ७५ ॥
गोमूत्रं केशराजश्च शोथघ्नी भृङ्गराजकः ।
निर्गुण्डी भेकपर्णी च रसैरेषां विभाव्य च ॥ ७६ ॥

धनियाँ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ और सैंधानमक ये प्रत्येक समान भाग और लोहमण्डूर सब औषधियोंसे दुगुना लेकर सबोंको एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको गोमूत्र, कालाभाँगरा, पुनर्नवा, भाँगरा, निर्गुण्डी और मण्डूकपर्णी इनके रसमें यथाक्रम चौदहबार भावना देवे । पश्चात् धूपमें सुखाकर उत्तम प्रकार खरल करलेवे । ७५ ॥ ७६ ॥

निष्कं चूर्णं प्रयुञ्जीत तक्रेण सह बुद्धिमान् ।
केशराजरसैर्वापि भोजनं लवणं विना ॥ ७७ ॥
तक्रेण भोजयेदन्नं पाने तक्रं च दापयेत् ।
कमलाज्वरशोथघ्नो वह्निसन्दीपनः परः ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नः सर्वव्याधिविनाशनः ॥ ७८ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल इस चूर्णको चार माशे परिमाण लेकर मट्ठेके साथ अथवा भाँगरेके रसके साथ सेवन करे। इसपर नमक और जलका परित्याग कर तक्रके साथ भोजन करे और तृषा लगनेपर भी तक्रही पान करे। यह सुधानिधि रस कामला, ज्वर, सूजन, संग्रहणी, पाण्डुरोग और सर्वप्रकारके विकारोंको नष्ट करनेवाला एवं अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अग्निमुखमण्डूर।

पलद्वादशमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्।
पञ्चकोलं देवदारु मुस्तं व्योषं फलत्रयम् ॥ ७९ ॥
विडङ्गं पलमात्रं तु पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत्।
पाययेदक्षमात्रं तु तक्रेण सह बुद्धिमान् ॥ ८० ॥
असाध्यं श्वयथुं हन्ति पाण्डुरोगं चिरोद्भवम्।
स्वयमग्निमुखं नाम सर्पिःक्षौद्रेण पाययेत् ॥ ८१ ॥

लोहेके मण्डूर (मैल) को ४८ तोले लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें पीपल पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, देवदारु नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडङ्ग इनके चार चार तोले चूर्णको डालकर अच्छे प्रकार मिलादेवे। इसमेंसे प्रतिदिन दो दो तोले लेकर घी और शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे तक्र पान करे। इस प्रकार नियमबद्ध होकर इसका सेवन करे तो यह अग्निमुखनामक मण्डूर असाध्य सूजन और चिरकालीन पाण्डुरोगको शीघ्र दूर कर देता है ॥ ७९-८१ ॥

शोथारिमण्डूर।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं निर्गुण्डीरसभावितम्।
मानकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ ८२ ॥
त्रिफला व्योषचव्यानां चूर्णं कर्षद्वयं पृथक्।
चूर्णाद्द्विगुणमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ ८३ ॥
सिद्धे चूर्णं क्षिपेच्छीते मधुनश्च पलद्वयम्।
निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गोत्थं न संशयः ॥ ८४ ॥

गोमूत्रमें शुद्ध किये हुए मण्डूरको ९६ तोले लेकर पहले निर्गुण्डीके रसमें भावना देवे। फिर मानकन्द, अदरख और जिमीकन्द इनके रसोंमें क्रमशः भावना देकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब पाक पकते २ गाढा होजाय

तब उसमें त्रिफला, त्रिकुटा और चव्य इन औषधियोंके चार चार तोले चूर्णको डालदेवे एवं शीतल होनेपर ८ तोले शहद डालकर सबको एकमएक करलेवे । इसको प्रतिदिन उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो यह सर्वशरीरगत शोथ एवं अन्य सर्वप्रकारके शोथको सन्देहरहित दूर करता है ॥ ८२-८४ ॥

तक्रमण्डूर ।

पलार्द्धं विजयाचूर्णं पलार्द्धं शुद्धलौहजम् ।
वंशकालीयकारिष्टं त्रिषताडकमूलकम् ॥ ८५ ॥
महासमुद्रजं चैव प्रदेयं कार्षिकं तथा ।
तेजपत्रं लवङ्गैला शतपुष्पा मधूरिका ॥ ८६ ॥
मरिचं चामृता यष्टी जातीनागरसिन्धुजम् ।
सर्वं तोलमितं दद्याद् व्याधिविद्भिषजां वरः ॥
वर्षाभूस्वरसेनैव बदरास्थिप्रमाणतः ॥ ८७ ॥

भाँगका चूर्ण २ तोले, शुद्ध लोहमण्डूर २ तोले एवं बासकी जड, काली अगर, नीमकी छाल, बीजताडककी जड और समुद्रफेन ये प्रत्येक दो दो तोले, तेजपात, लौङ्ग, इलायची, साया, सौंफ, मिरच, गिलोय, मुलहठी, जायफल, सोंठ और सैंधानमक ये सब एक एक तोला लेवे । तदनन्तर सुयोग्य चिकित्सक इन सब द्रव्योंको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करे और उस चूर्णको पुनर्नवेके रसमें अच्छेप्रकार खरल करके वेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥

केशराजानुपानेन तक्रेणैव च दापयेत् ॥ ८८ ॥
तक्रेण दापयेत्पथ्यं तक्रं भुक्तं निरन्तरम् ।
लवणेन विना तक्रं शोथघ्नं परमौषधम् ॥ ८९ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातः समय एक वटी भाँगरेके रस अथवा मठेके साथ पान करे । इसका सेवन करनेपर मठेके साथ भोजन करे और खान पानमें निरन्तर लवण रहित तक्रका सेवन करना विशेष हितकर है । शोथरोगको नष्ट करनेके लिये यह परमोत्कृष्ट औषधि है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अभ्रमण्डूर ।

गन्धकाम्बरसूतानां प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ।
संशोध्य चूर्णितं कृत्या मण्डूरं मुष्टिकद्वयम् ॥ ९० ॥

प्रसूतं च हरीतक्याः पाषाणजतुनः पिचुम् ।
तोलकं कान्तलौहस्य सर्वं रौद्रे विभावयेत् ॥ ९१ ॥
भृङ्गराजरसप्रस्थे केशराजरसे तथा ।
निर्गुण्डीमानकन्दानामार्द्रकस्य रसेष्वपि ॥ ९२ ॥
त्रिकटुत्रिफलाचव्यमुस्तकानां पृथक् पृथक् ।
कर्षं कर्षं क्षिपेच्चूर्णं मर्दयेन्मधुसर्पिषा ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय मात्रया युक्तितः पुमान् ॥ ९३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म इनको दो दो तोले लेकर पीस लेवे। इसमें गोमूत्रमें शुद्ध किया लोहमण्डूर ८ तोले, हरड ८ तोले, शिलाजीत दो तोले और कान्तलोहकी भस्म एक तोला मिलाकर सबको एकत्र पीसलेवे । पुनः इस चूर्णको भाँगरेके एक प्रस्थ रस और केशराजके एक प्रस्थ रसमें भावना देकर धूपमें सुखालेवे। इसी क्रमसे द्वितीय बार निर्गुण्डी, मानकन्द, जिमकिन्द और अदरखके रसोंमें यथाक्रम भावना देकर धूपमें सुखावे । पश्चात् इसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, और नागरमोथा इनके दो दो तोले चूर्णको डालकर सबोंको एकत्रित करके खूब बारीक पीसलेवे । तदुपरान्त नित्यप्रति प्रातःसमय इसकी उपयोगी मात्राको शहद और घृतमें मिलाकर भक्षण करे ॥ ९०-९३ ॥

निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयम् ।
कासश्वासतृषादाहमोहच्छर्दियुतं तथा ॥ ९४ ॥
अम्लपित्तं निहन्त्येव शूलमष्टविधं जयेत् ।
अग्निवृद्धिकरं वृष्यं हृद्यं वातानुलोमनम् ॥ ९५ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च श्लेष्मकुष्ठारुचिज्वरम् ।
प्लीहगुल्मोदरं हन्ति ग्रहणीं सप्रवाहिकाम् ॥ ९६ ॥

यह औषधि सब तरहके शोथ, सर्वशरीरमें अथवा एक अङ्गमें स्थित शोथ, खाँसी, श्वास, तृषा, दाह, मोह, वमनयुक्त अम्लपित्त, ८ प्रकारके शूल, कामला, पाण्डुरोग, कफोत्पन्न रोग, कुष्ठ, अरुचि, ज्वर, तिल्ली गुल्म, उदररोग, संग्रहणी और प्रवाहिका प्रभृति सम्पूर्ण रोगोंको भस्मीभूत करती है तथा जठराग्निकी वृद्धि करनेवाली, हृदयको हितकारी, वायुको अनुलोमन करनेवाली और अत्यन्त पुष्टिकारी है ॥ ९४-९६ ॥

पुनर्नवादि गुग्गुलु ।

पुनर्नवां दार्वभयां गुडूचीं पिबेत्समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम् ।
त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्द्धकफामयेषु ॥ ९७ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, हरड और गिलोय ये प्रत्येक समान भाग और इन सबोंके बराबर भाग गूगल लेकर एकत्र सूक्ष्म चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको अण्डीके तेलमें तरल करके गोमूत्रके साथ पान करे । यह गूगल त्वचासम्बन्धी रोग, सूजन, उदररोग, पाण्डुता, स्थूलता, प्रसेक और कफजनित समस्त विकारोंमें अधिकतर उपयोगी है ॥ ९७ ॥

दशमूलहरीतकी ।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ।
तुलां गुडाद् घने दद्यात् व्योषक्षारं चतुष्पलम् ॥
त्रिसुगन्धं सुवर्णांशं प्रस्थार्द्धं मधुनो हिमे ॥ ९८ ॥

दशमूलके एक आढक परिमाण क्वाथमें १०० हरडोंको पोटलीमें बांधकर पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और पोटलीमेंसे खोलकर हरडोंकी गुठली निकालडाले । फिर इस क्वाथमें १०० पल पुराना गुड एवं पूर्वोक्त हरडें डालकर पकावे । पकनेपर जब पाक गाढा पडजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार ये प्रत्येक आठ आठ तोले तथा दारचीनी, इलायची और तेजपात ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले परिमाण लेवे और सबको एकत्र कूट पीसकर डालदेवे और जब पाक शीतल हो जाय तब ३२ तोले शहद डालकर अच्छे प्रकार मिलादेवे ॥ ९८ ॥

दशमूलहरीतक्याः शोथान्हन्युः सुदारुणान् ।
ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान् ॥ ९९ ॥
प्रत्येकमेव कर्षांशं त्रिसुगन्धे मितो भवेत् ॥ १०० ॥
कंसहरीतकी चैषा चरके पठ्यतेऽन्यथा ।
एतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि वर्ण्यते ॥ १ ॥

यह दशमूलहरीतकी कठिनतम शोथ, ज्वर, अरुचि, गुल्म, अर्श, प्रमेह, पाण्डु और उदरके सब विकारोंको नाश करनेवाली है । चरकमें इसका 'कंसहरीतकी' ऐसा पाठ है । वहाँभी इसी मानके समान औषधियाँ लेनी चाहिये ॥ ९९-१०१ ॥

शुण्ठीघृत ।

विश्वौषधस्य कल्केन दशमूलजले शृतम् ।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं पाण्डुतामयम् ॥ १०२ ॥

सोंठके कल्कद्वारा दशमूलके क्वाथमें घीको सिद्ध कर सेवन करनेसे सूजने, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होते हैं ॥ १०२ ॥

स्वल्प-पुनर्नवाद्यघृत ।

पुनर्नवाक्वाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ॥

पुनर्नवेके क्वाथ और कल्कद्वारा सिद्ध किया हुआ घृत शोथको हरता है ॥

पुनर्नवाद्यघृत १--२ ।

पुनर्नवातुलां गृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।
चतुर्भागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०३ ॥
भूनिम्बविजयाशुण्ठीशोथघ्नामरदारुभिः ।
कासं श्वासं ज्वरं हन्ति शोथं चापि सुदारुणम् ॥ १०४ ॥

१-सौ पल विषखपरेको लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानले । फिर उसमें १ प्रस्थ घृत एवं चिरायता, भाँग, सोंठ, पुनर्नवा और देवदारु इनके समान भागसे मिलेहुए आधसेर चूर्णको डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इस घृतका सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर और दारुण शोथ नष्ट होता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुपञ्चोषणक्षारहरीतकीनाम् ।
कल्केन पक्वं दशमूलतोये घृतोत्तमं शोथनिषूदनं च ॥ ५ ॥

२-पुनर्नवा, चीतेकी जड, देवदारु, पञ्चोषण (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ), जवाखार, हरड इनके कल्कको समान भाग डालकर दशमूलके काढेमें गौके उत्तम घृतको पकावे । यह घृत शोथका नाश करनेवाला है ॥ ५ ॥

माणकघृत ।

माणकक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषजमपोहति ॥ ६ ॥

माणकन्दके क्वाथ और कल्कके द्वारा १ प्रस्थ घृतको उत्तम रीतिसे पकावे । यह घृत एकदोषज, द्विदोषज और सान्निपातिक शोथको शीघ्र दूर करता है ॥ ६ ॥

चित्रकाद्यघृत।

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः सदीप्यकत्र्यूषणवेत-
साम्लाः। बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूल-
मथापि चव्यम् ॥ ७ ॥ पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुक्तम्। शोथं च गुल्मानि च
मूत्रकृच्छ्रं निहन्ति वह्निं च करोति दीप्तम् ॥ ८ ॥

चीतेकी जड, धनियाँ, अजवायन, पाढ, जीरा, सोंठ, पीपल, मिरच, अम्लबेंत, बेलगिरी, अनार, जवाखार, पीपलामूल और चव्य इनको दो दो तोले एवं घृत १ प्रस्थ लेवे। फिर सब औषधोंको एकत्र पीसकर एक आढक जलमें डालकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। इस घृतको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो यह सूजन, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र एवं अन्यान्य विविधप्रकारके रोगोंको नाश करता है तथा अग्निको अत्यंत प्रदीप्त करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

शुष्कमूलकाद्यतैल।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः।
पक्वमभ्यञ्जनात्तैलं सशूलं श्वयथुं जयेत् ॥ ९ ॥

सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन और सोंठ इन औषधियोंके द्वारा तिलके तेलको पकाकर मालिश करनेसे शूलसहित सूजन दूर होती है ॥ ९ ॥

बृहच्छुष्कमूलकाद्यतैल १-२।

मूलकं दशमूलं च कणामूलं पुनर्नवा।
प्रत्येकं प्रस्थमाहृत्य वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥ १० ॥
तेन पादावशेषेण तैलस्यार्द्धाढकं पचेत्।
दापयेत्तैलतुल्यं च गोमूत्रं कुशलो भिषक् ॥ ११ ॥
मूलकं चामृता शुण्ठी पटोलं चपला बला।
पाठा पुनर्नवामूलं बालोशीरं च शिग्रुजम् ॥ १२ ॥
निर्गुण्डीन्द्राशनं श्यामा करञ्जं वासकं तथा।
कणा हरीतकी चैव वचा पुष्करमूलकम् ॥ १३ ॥
रास्ना विडङ्गं चव्यं च द्वे हरिद्रे च धान्यकम्।
द्विक्षारं सैन्धवं चैव देवदारु सपद्मकम् ॥ १४ ॥

शठी करिकणा बिल्वं मञ्जिष्ठा च ततः क्रमात् ।
प्रत्येकार्द्धपलं चैषां पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ १५ ॥

१–सूखीमूली, दशमूल, पीपलामूल और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि एक एक प्रस्थ (६४ तोले) लेकर अठगुने जलमें अलग अलग पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्काथमें तिलका तेल १ आढक (८ सेर), गोमूत्र १ आढक एवं सूखीमूली, गिलोय, सोंठ, परवल, पीपलामूल, खिरैंटी, पाढ, पुनर्नवामूल, सुगंधवाला, खस, सहिंजनके बीज, निर्गुण्डी, भाँग, सारिवा, करंजुआ, अड्डूसा, पीपल, हरड, वच, पोहकरमूल, रायसन, वायविडंग, चव्य, हल्दी, दारुहल्दी, धनियाँ, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, देवदारु, पद्माख, कचूर, गजपीपल, बेलकी छाल और मंजीठ इन औषधियोंके दो दो तोले भागको एकत्र बारिक पीसकर डालदेवे और फिर उत्तम प्रकार तेलको सिद्ध करे ॥ ११०–१५ ॥

अभ्यङ्गनास्य तैलस्य ये गुणास्तांस्ततः शृणु ।
नानाशोथा विनश्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ १६ ॥
मलोद्भवाश्च ये केचिद्विशेषेण जलाश्रयाः ।
अवश्यं निर्जरा देहा भविष्यन्ति न संशयः ॥ १७ ॥

इस तेलके जो गुण हैं उनको कहता हूँ सुनो–शरीरपर इसकी मालिश करनेसे अथवा नस्य देनेसे अनेक प्रकारसे उत्पन्न हुए शोथ, जैसे कि वातज पित्तज और कफज शोथ, मलोत्पन्न शोथ, विशेषकर जलदोषोत्पन्न शोथ अवश्य नाश होते हैं । इसके प्रभावसे रोगी जन जरारहित अर्थात् देवसमान तरुणशरीरवाले होजाते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

शुष्कमूलरसप्रस्थं शिग्रुधुस्तूरयोस्तथा ।
सिन्दुवाररसप्रस्थं दशमूलरसं तथा ॥ १८ ॥
पारिभद्ररसप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ।
करञ्जस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च ॥ १९ ॥
तैलप्रस्थं समादाय भिषग्यत्नाद्विपाचयेत् ।
कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः ॥ १२० ॥
पुनर्नवाकाकमाचीशैलूत्वक्पिप्पलीयुगैः ।
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी रास्ना यासश्च कारवी ॥ २१ ॥

हरिद्राद्वयपूतीकद्वयानन्तायुगैः पृथक् ।
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ २२ ॥

२–सूखी मूलीका रस १ प्रस्थ (६४ तोले), सहिंजनेका रस १ प्रस्थ, धतूरेका रस १ प्रस्थ, सिह्मालूका रस १ प्रस्थ, दशमूलकी सब औषधोंका क्वाथ १ प्रस्थ, फरहदका रस १ प्रस्थ, पुनर्नवेका रस १ प्रस्थ, करञ्जुएकी छालका रस १ प्रस्थ, और तिलका तेल १ प्रस्थ लेवे । फिर सबको एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे । पकते समय उसमें–सोंठ, मिरच, सैंधानमक, पुनर्नवा, मकोय, लसौडेकी छाल, पपिल, गजपीपल, कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, करंजुआ, काँटाकरञ्ज, अनन्तमूल और सारिवा इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको डालकर तेलको सिद्ध करे । जब उत्तम प्रकारसे पककर तैयार होजाय तब किसी उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ १८–१२२ ॥

वातश्लेष्मकृतं दोषं सन्निपातभवं तथा ।
निहन्ति सर्वजं शोथमुदरश्वासनाशनम् ॥ २३ ॥
विरुद्धभेषजभवं शोथमाशु व्यपोहति ।
व्रणशोथाक्षिशूलघ्नं कामलापाण्डुनाशनम् ॥ २४ ॥
ये चान्ये व्याधयः सन्ति श्लेष्मजाः सन्निपातजाः ।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ २५ ॥

इस तेलको मर्दन करनेसे वात–कफजन्य शोथ, सन्निपातजन्य शोथ और अन्य सर्व प्रकारके शोथ एवं उदररोग, श्वास और प्रकृतिविरुद्ध औषध व्यवहार करनेसे उत्पन्न हुआ शोथ तत्काल नाश होता है तथा व्रणजन्य शोथ, नेत्रशूल, कामला, पाण्डुरोग, कफोत्पन्न रोग, त्रिदोषज रोग एवं अन्यान्य अनेको प्रकारकी जो अति-दारुण व्याधियें हैं उन सबोंको यह तेल इस प्रकार नाश करदेता है, जिस प्रकार सूर्योदयके होतेही अंधकारका समूह नष्ट होजाता है ॥

शोथशार्दूल तेल ।

धुस्तूरो दशमूलं च सिन्दुवारो जयन्तिका ।
पुनर्नवा करञ्जश्च षट् पलानि प्रगृह्य च ॥ २६ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ।
प्रस्थं च कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत् ॥ २७ ॥

रास्ना पुनर्नवा दारु मूलकं नागरं कणा ।
सिद्धं तैलवरं ह्येतन्नाशयत्यस्य सेवनात ॥ २८ ॥
शोथं सुदारुणं घोरं वातपित्तकफोद्भवम् ।
असाध्यं सर्वदेहस्थं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ २९ ॥
श्लीपदं च ज्वरं पाण्डुं कृमिदोषं विनाशयेत् ।
क्लिन्नव्रणप्रशमनं नाडी दुष्टव्रणापहम् ॥
शोथशार्दूलकं तैलं बलवर्णप्रसादनम् ॥ १३० ॥

धतूरा, दशमूल, सिहालू, जयन्ती, पुनर्नवा, करंजुआ इन सबको छः छः पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस क्वाथमें सरसोंका तेल १ प्रस्थ और कल्कके लिये रायसन, विषखपरा, देवदारु, सूखीमूली, सोंठ एवं पीपल इन औषधियोंको समान समान भाग मिश्रित आधसेर डालदेवे । पश्चात् यथाविधि तेलको सिद्ध करे । इस तेलको सेवन करनेसे वात, पित्त और कफोत्पन्न अतिदारुण तथा घोरतर शोथ, सर्वशरीरगत सन्निपातजन्य असाध्य शोथ, श्लीपदरोग, ज्वर, पाण्डु, कृमिरोग, तरलव्रण, नाडीगत दुष्ट व्रण इत्यादि रोग शीघ्र नाश होते हैं । यह शोथशार्दूलनामक तेल बल-वर्णको उज्ज्वल बनाता है ॥ २६-१३० ॥

पुनर्नवाद्यतैल ।

पुनर्नवा पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत ।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं पचेद्भिषक् ॥ ३१ ॥
त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी धान्यकं कट्फलं तथा ।
शठी दार्वी प्रियङ्गुश्च पद्मकाष्ठं हरेणुकम् ॥ ३२ ॥
कुष्ठं पुनर्नवा चैव यमानी कारवी तथा ।
एला त्वचं सलोध्रं च पत्रकं नागकेशरम् ॥ ३३ ॥
वचा ग्रन्थिकमूलं च चव्यं चित्रकमूलकम् ।
शतपुष्पाम्बु मञ्जिष्ठा रास्ना यासस्तथैव च ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैः पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ ३४ ॥

पुनर्नवा १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उस काढेमें तिलका तेल ६४ तोले एवं

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा आमला, काकडासिंगी, धनियाँ, कायफल, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, पद्माख, मठर, कूठ, पुनर्नवा; अजवायन, कालाजीरा, इलायची, दारचीनी, लोध, तेजपात, नागकेशर, वच, पपिलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोया, सुगन्धवाला, मंजीठ रास्ना और जवासा इनको अलग अलग दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करके डालदेवे फिर मन्द मन्द अग्निद्वारा अच्छेप्रकार तेलको सिद्ध कर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ ३१-३४ ॥

कामलां पाण्डुरोगं च हलीमकमथारुचिम् ।
रक्तपित्तं महाघोरं कासं श्वासं भगन्दरम् ॥ ३५ ॥
प्लीहानमुदरं चैव जीर्णज्वरमपोहति ॥
तैलं पुनर्नवाख्यातं सर्वान्व्याधीन्व्यपोहति ॥ ३६ ॥

यह तेल कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, रक्तपित्त, अत्यन्त घोर श्वास खाँसी भगन्दर, प्लीहा, उदररोग, पुराना ज्वर एवं अन्य विविधभाँतिके समस्त विकारोंको बहुत शीघ्र दूर करता है ॥ १३५ ॥ ३६ ॥

शैलेयाद्यतैल ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः ।
प्रियङ्गुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥३७॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः पृक्कानखैर्वापि यथोपलाभम् ।
वातान्वितेऽभ्यङ्गमुशंति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहः॥३८॥

भूरिछरीला; कूठ अगर, देवदारु, रेणुका, दारचीनी, पद्माख, इलायची, सुगन्धबाला, कचूर, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, गठिवन, नागकेशर, बालछड, तालीशपत्र, केवटी मोथा, तेजपात, धनियाँ, धूपसरल, रोहिषतृण, पीपल, असवरग और नखी-सुगन्धद्रव्य इन औषधियोंमेंसे जितनी प्राप्त हो सकें उन औषधोंके कल्कद्वारा यथा-विधि तिलके तेलको सिद्ध करे। इस तेलको मर्दन करनेसे वा इन्हीं औषधियोंको तेलमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे वातजन्य सूजन नष्ट होय ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

समुद्रशोषणतैल ॥

निर्गुण्डी दशमूली च धुस्तूरककरञ्जकौ ।
शुष्कमूलजयाविश्वरास्नादारुपुनर्नवाः ॥ ३९ ॥
एषां च प्रकृते क्वाथे क्वाथे शास्तोटजे तथा ।
कटुतैलं पचेत्प्रस्थं सैन्धवं कल्कपादिकम् ॥ १४० ॥

निर्गुण्डी, दशमूलकी सब औषधें, धतूरा, करंजुआ, सुखीमूली, जयन्ती, सोंठ, रास्ना, देवदारु और पुनर्नवा इन औषधियोंके ८ सेर क्वाथमें और सहोरावृक्षकी छालके ८ सेर क्वाथमें सरसोंका तेल एक प्रस्थ और सैंधानमक दो सेर डालकर उत्तम प्रकार तेलको सिद्ध करे ॥ ३९ ॥ १४० ॥

सन्निपातोद्भवाः शोथा ये चान्ये श्लेष्मपित्तजाः ।
शिरःकर्णगता ये च श्लीपदानि तथैव च ॥ ४१ ॥
गलगण्डं ब्रध्नवृद्धिं शोथं सर्वाङ्गसम्भवम् ।
कर्णशोथं दन्तशोथं हनुमूलास्थिसम्भवम् ॥ ४२ ॥
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वाडवाग्निरिवाम्बुदम् ।
समुद्रशोषणं नाम तैलं केनापि कीर्तितम् ॥ ४३ ॥

इस तेलकी मालिश करनेसे सन्निपातजन्य शोथ एवं कफ-पित्तकी सूजन, शिरकी सूजन, कर्णशोथ, श्लीपद, गलगण्ड, अण्डवृद्धि, सर्वशरीरजन्य शोथ, दन्तशोथ ठोडीकी सूजन और अस्थिकी सूजन इत्यादि समस्त विकार इस प्रकार तत्काल नाश होते हैं, जिस प्रकार वाडवाग्नि समुद्रके जलको सुखादेती है। इसका नाम समुद्रशोषणतैल है। ऐसा किसी ऋषिने कहा है ॥ ४१–४३ ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट।

पुनर्नवे द्वे च बले सपाठे वासा गुडूची सह चित्रकेण ।
निदिग्धिका च त्रिपलानि पक्त्वा द्रोणावशेषे सलिले
ततस्तु ॥४४॥ पूत्वा रसं द्वे च गुडात्पुराणात्तुले मधु-
प्रस्थयुतं सुशीतम्।मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं राशौ
यवानां परतश्च मासात् ॥४५॥ चूर्णीकृतैरर्धपलांशिके-
स्तं हेमत्वगेलामरिचाम्बुपत्रैः । गन्धान्वितं क्षौद्रघृत-
प्रदिग्धं जीर्णे पिबेद् व्याधिबलं समीक्ष्य ॥ ४६ ॥
हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहज्वरारोचकमेहगुल्मान् ।
भगन्दरं षड् जठराणि कासं श्वासं ग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः
॥ ४७ ॥ शाखानिलं बद्धपुरीषतां च हिक्कां किलासं च
हलीमकं च । क्षिप्रं जयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजोऽन्वितो
मांसरसान्नभोजी ॥ ४८ ॥

श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, खिरैंटी, कंघी, पाढ, अडूसा, गिलोय, चीतेकी जड और कटेरी ये प्रत्येक औषधि बारह बारह तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्काथमें २०० पल पुराना गुड और एक प्रस्थ शहद डालकर मृत्तिकाके घृतसे चिकने बासनमें भरदेवे और उस बर्त्तनके मुखको अच्छेप्रकार बाँधकर जौकी राशिमें गाडदेवे । फिर एक महीनेके बाद उसको निकाले और उसमें नागकेशर, दारचीनी, इलायची, कालीमिरच, सुगन्धवाला, पत्रज इन औषधियोंके दो दो तोले चूर्णको बारीक पीसकर मिलावे एवं घृत और शहद एक एक प्रस्थ मिलादेवे । इस अरिष्टको भोजनके पचजानेपर रोगका बलाबल विचारकर उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो हृदयरोग, पाण्डुरोग, अत्यन्त बढीहुई सूजन, तिल्ली, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, छः प्रकारके उदररोग, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, कोठ, खुजली, शाखाश्रित वायु, मलबद्धता, हिचकी, किलासरोग, हलीमक और अनेकों रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा बल, रूप, आयु और ओजकी वृद्धि होती है एवं निर्मल कान्ति उत्पन्न होती है । इसपर मांसरसके साथ अन्न भोजन करना पथ्य है ॥ ४४–४८ ॥

शोथमें पथ्य ।

संशोधनं लङ्घनमस्रमोक्षः स्वेदः प्रलेपः परिषेचनं च । पुरातनाः शालियवाः कुलत्थाः मुद्गाश्च गोधाऽपि च शल्लकोऽपि ॥ ४९ ॥ भुजङ्गभुक्तित्तिरिताम्रचूडलावादयो जाङ्गलमिष्किराश्च । कूर्म्मोऽपिशृङ्गी प्रपुराणसर्पिस्तक्रं सुरा माक्षिकमासवश्च ॥ १५० ॥ निष्पावकारवेल्लकरक्तशिग्रुरसालकर्कोटकमाणमूलम् । सुवर्चला गृञ्जनकं पटोलं वेत्राग्रवातिङ्गनमूलकानि ॥ ५१ ॥ पुनर्नवाचित्रकपारिभद्रश्रीपर्णनिम्बक्षुरपल्लवानि । एरण्डतैलं कटुका हरिद्रा हरीतकी क्षारनिषेवणं च ॥ ५२ ॥ भल्लातकं गुग्गुलु वायसं च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि । मूत्राणि गोऽजामहिषीभवानि कस्तूरिका चापि शिलाजतूनि ॥५३॥ यत्पाण्डुरोगिष्वपि वह्निकर्म पुरा

प्रदिष्टं तु तदेव चापि । यथामलं पथ्यमिदं प्रदिष्टं
शोथामयं सत्वरमुच्छिनत्ति ॥ ९४ ॥

दोषोंका शमन करनेवाली औषधें; लंघन, रक्तमोक्षण, स्वेदप्रदान, शरीरपर लेप और सिञ्चन क्रिया करना, पुराने शालिके चावल, जौ, कुलथी और मूँग आदि अन्नोंका भोजन, गोह, सेई, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा एवं जंगली जीवोंका मांस और विष्किरजीवोंका मांस, कछुएका मांस, शृङ्गीमत्स्य, पुराना घी, मट्ठा, मदिरा, शहद, आसव, सेमकी फली, करेला, लाल सहिंजना, आम, ककोडा, मानकन्दकी घुइयाँ, हुलहुलके पत्ते, गाजर, परवल, वेतका अग्रभाग, बैंगन-मूली, पुनर्नवा, चीता, फरहद, अरणी, नीमके पत्ते, तालमखानेके पत्ते, अण्डीका तेल, कुटकी, हल्दी, हरड, खारवाले द्रव्य, भिलावा, गूगल, अगर तथा कडवे चरपरे और पाचक द्रव्य, गौ, बकरी और भैंसका मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत और पाण्डुरोगाधिकारमें कहा हुआ अग्निकर्म ये सम्पूर्ण वस्तुयें शोथरोगीको दोषानुसार विचारपूर्वक सेवन करानेसे शोथरोग शीघ्र छिन्न भिन्न होजाता है ॥ ४९–१९४ ॥

शोथमें अपथ्य ।

नित्यं दुष्टं पवनसलिलं वेगरोधाद्विरुद्धं
सर्वं पानं विषममशनं मृत्तिकाभक्षणं च ।
ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं
गौडं पिष्टं दधि सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम्-
धाना वल्लूरं समशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाह्य-
स्वप्नं रात्रौ श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ १९५ ॥

प्रतिदिन दूषित वायुसेवन, दूषित जल पान करना, मल मूत्रादिके वेगको रोकना, सर्व प्रकारके विरुद्ध पानीय द्रव्य, विषम भोजन, मृत्तिका भक्षण, गाँवके और अनूप-देशीय जीवोंका मांस, नमक, सूखे शाक, नया नाज, गुडकी बनी वस्तुयें, पिट्टीवाले अन्न, खिचडीके साथ दही, बिना जलकी मदिरा, खट्टे पदार्थ, खीलें, शुष्क मांस, भारी, अहितकर और दाहकारी पदार्थोंका भोजन, रात्रिमें जागना, स्त्रीप्रसंग करना शोथयुक्त रोगी इन सबको त्यागदेवे ॥ १९५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोथचिकित्सा ।

वृद्धिरोगकी चिकित्सा ।

गुग्गुलुं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥

गूगल और अण्डके तेलको गोमूत्रके साथ पीवे तो बहुत पुराना वातजन्य अण्डवृद्धि तत्काल नष्ट होती है ॥ १ ॥

सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ।
पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा ॥
पाने वस्तौ रुबोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ॥ २ ॥

दूध और अण्डीके तेलको एकत्र मिलाकर एक महीनेतक सेवन करे अथवा पुनर्नवेके क्काथ और कल्कद्वारा सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल तथा नारायणतेल पीनेमें और वस्तिकर्म्ममें प्रयोग करे किम्वा दशमूलके काढेके साथ अण्डीके तेलको पीवे । इससे अण्डवृद्धिरोग दूर होता है ॥ २ ॥

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद्दाहशोथरुजापहः ॥ ३ ॥

रक्तचन्दन, मुलहठी, कमलकेशर, खस और नीलकमल इन औषधियोंको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर वृद्धिस्थानपर लेप करनेसे दाह, सूजन और पीडा दूर होती है ॥ ३ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ।
सर्वपित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ ४ ॥

बड, गूलर पीपल, पाखर और बेंत इनकी छालको समान भाग ले एकत्र पीसकर घृतके साथ मिलाकर लेप करे और समस्त पित्तनाशक क्रिया करे तो पित्तज अण्डवृद्धि दूर होती है एवं रक्तजनित अण्डवृद्धिमें रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) करावे ॥४॥

श्लेष्मवृद्धिं तूष्णवीर्य्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥ ५ ॥

कफोत्पन्न अण्डवृद्धिरोगमें उष्णवीर्य्य अर्थात् गरम अजगन्धादि औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे तथा देवदारुके गरम क्काथको गोमूत्रके साथ पान करे तो उक्त विकार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

स्विन्नं मेदःसमुत्थं च लेपयेत्सुरसादिना ।
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ६ ॥

मेदजन्य अण्डवृद्धिरोगमें कोषोंमें गरम गोबरसे स्वेद देकर निर्गुण्डी, तुलसी आदि सुरसादिगणकी औषधियोंका लेप करे । अथवा पीपल और कालीमिरच आदि शिरोविरेचक औषधियोंको मन्दोष्ण गोमूत्रके साथ पीसकर नस्य देवे ॥ ६ ॥

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम् ।
आध्मानशूलाग्निमान्द्यमन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ७ ॥

खिरैंटी २ तोले, दूध ८ तोले और जल ३२ तोले इनको एकत्रकर पाक करे । जब पकते २ दुग्धमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इस दुग्धमें अण्डीका तेल डालकर पान करनेसे अफारा, शूलरोग, मन्दाग्नि और अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥७॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमसौ दृढम् ॥ ८ ॥

सफेद आककी जडकी छालको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त प्रबल वृद्धिरोग भी नष्ट होता है ॥ ८ ॥

भृष्टो रुबुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ ९ ॥

हरडके कल्कको अण्डीके तेलमें भूनकर पीपल और सैंधेनमकके चूर्णके साथ सेवन करे । इससे अत्यन्त प्रवृद्ध वृद्धिरोग नाश होता है ॥ ९ ॥

लज्जागृध्रमलाभ्यां च लेपो वृद्धिहरः परः ।

छुइमुई और गिद्धकी विष्ठा इन दोनोंको एकत्र पीसकर अण्डकोषोंपर लेप करनेसे वृद्धिरोग शमन होता है ।

ब्रध्नलक्षण ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नसेवनान्निचयं गतः ।
करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणसन्धिषु ॥
ज्वरशूलाङ्गदाहाढ्यं तं ब्रध्नमिति निर्दिशेत् ॥ १० ॥

अत्यन्त कफवर्द्धक, भारी, स्निग्ध और कच्चे अन्नादि पदार्थोंके खानेसे वातादि दोष कुपित होकर वंक्षणकी सन्धि अर्थात् वस्तिके नीचे एवं जंघाके उपरिभागमें सूजन उत्पन्न करते हैं । जिस सूजनमें ज्वर, पीडा और सम्पूर्ण शरीरके अवयवोंमें दाह होती है उसको ब्रध्नरोग कहते हैं ॥ १० ॥

अजाक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा।
प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्नशूलहरं परम् ॥ ११ ॥

गेहूँ अथवा कुन्दुरुको बकरीके दूधके साथ पीसकर मन्दोष्ण लेप करे। इससें ब्रध्नरोग और उसकी अतिशीघ्र पीडा नष्ट होती है ॥ ११ ॥

मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते तु प्रवेशयेत्।
ब्रध्नं मुहूर्त्तं मेधावी तत्क्षणादरुजं भवेत् ॥ १२ ॥

तत्काल मरेहुए कौएके हृदयके मांसको कुछ गरम करके वंक्षणकी सन्धिपर लेप करे तो ब्रध्नरोग और उसकी पीडा तत्क्षण दूर होती है ॥ १२ ॥

अजाजी हबुषा कुष्ठं गोधूमं बदराणि च।
काञ्जिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद्ब्रध्ने प्रलेपनम् ॥ १३ ॥

कालाजीरा, हाऊबेर, कूठ, गेहूँ और सूखे बेरोंको समभाग ले काँजीमें पीसकर लेप करनेसे ब्रध्नरोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥

गव्यं घृतं सैन्धवसंप्रयुक्तं शम्बूकभाण्डे निहितं तदेव।
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं हन्यात्कुरण्डं चिरजं प्रवृद्धम् ॥ १४ ॥

पुराने गोघृत और सैंधनमकके चूर्णको शंखमें भरकर सातदिनतक धूपमें रक्खे। पश्चात् इस घृतको कोषोंपर लेप करे तो इससे बहुत पुराना वृद्धिरोग शीघ्र नाश होता है। इसमें सैंधानमक घृतसे चौथाई भाग लेवे ॥ १४ ॥

सैन्धवं च घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे।
प्रतप्तमूर्णया घृष्टं तन्मलं च समाहरेत् ॥ १५ ॥
कुरण्डं म्रक्षयेत्तेन स निर्विघ्नं दिवानिशम्।
कुरण्डं तेन संलिप्तं नास्तीत्याह पुनर्वसुः ॥ १६ ॥

ताँबेके पात्रमें घी और सैंधेनोनको भरकर प्रचण्ड धूपमें तपावे। फिर भेडके ऊनसे उक्त पात्रस्थ घृतको घिसे। उससे जितना मल निकले उसको ब्रध्नपर लेप करे। एवं निर्विघ्नपूर्वक नित्यप्रति प्रातः और सायं समय अण्डकोषोंको धोवे और उक्त मलकी मालिश करे तो फिर अण्डकोषवृद्धि नहीं होती ऐसा पुनर्वसु ऋषिने कहाहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवसंप्रयुक्ताम्।
पिबेन्नरः कोष्णजलानुपानं निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥

गोमूत्रमें पकाईहुई हरडको अण्डीके तेलमें भूनलेवे फिर उसमें सैंधेनमकका चूर्ण मिलाकर मन्दोष्ण जलके साथ पान करे । यह औषधि दीर्घकालसे उत्पन्नहुई अण्डवृद्धिको तत्काल नष्ट करती है ॥ १७ ॥

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम् ।
त्र्यहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिहरं परम् ॥
वचासर्षपकल्केन लेपो वृद्धिविनाशनः ॥ १८ ॥

इन्द्रायनकी जडके चूर्णको अण्डीके तेलमें खरल कर परिमाणमें गोदुग्धके साथ तीन दिनतक सेवन करे । इससे सब प्रकारका वृद्धिरोग नष्ट होता है अथवा वच और सरसोंको जलमें पीसकर लेप करे तो उक्त रोग शीघ्र दूर होता है ॥ १८ ॥

बहुवारस्य बीजं च पिष्ट्वा तच्चार्द्रकैः सह ।
कुरण्डं नाशयेद्भद्रे लेपनान्नात्र संशयः ॥ १९ ॥

लहसौडेके बीजोंको अदरखके रसमें पीसकर लेप करनेसे कुरण्डरोग नाश होता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

घृतैर्नीलोत्पलं मूलं पिष्ट्वा लिम्पेत्कुरण्डकम् ।
अथवा लेपनं कुर्याद् गृहमण्डूकशोणितैः ॥ २० ॥

नीले कमलकी जडको घीमें पीसकर लेप करे अथवा घरमें पैदाहुए मेंढकके रुधिरका लेप करे तो अण्डवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ २० ॥

रास्नादि ।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः ।
क्काथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ २१ ॥

रायसन, मुलहठी, गिलोय, अण्डकी जड, खिरैंटी और गोखुरू इनके क्वाथको अण्डीके तेलके साथ मिलाकर पीनेसे अन्त्रवृद्धिरोग तत्काल नष्ट होता है ॥ २१ ॥

त्रिकट्वादि ।

त्रिकटुत्रिफलाक्काथं सक्षारलवणं,पिबेत् ।
विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥ २२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल हरड, बहेडा, आमला इनके काढेमें जवाखार, सैंधानमक डालकर पीवे । इससे विरेचन होकर कफजन्य अन्त्रवृद्धि नाश होय ॥ २२ ॥

बिल्वादिचूर्ण।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः
श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम्।
कृष्णाग्रन्थिकचव्यपंचलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतं ब्रध्नजित् ॥२३॥

बेल, कैथ, शोनापाठा, चीता, कटाई, कटेरी, विधारा, काँटाकरञ्ज और सहिंजना इन सबकी जड एवं सोंठ, भिलावा, पपिल, पीपलामूल, चव्य, पाँचों नमक, जवाखार और अजमोद इन सबको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णकी उपयुक्त मात्राको गरम काँजीमें मिलाकर पान करनेसे ब्रध्नरोग दूर होता है ॥ २३ ॥

भक्तोत्तरयिचूर्ण।

अभ्रकं गन्धकं चैव पिप्पली लवणानि च।
त्रिक्षारं त्रिफला चैव हरितालं मनःशिला ॥ २४ ॥
पारदं चाजमोदा च यमानी शतपुष्पिका।
जीरकं हिङ्गु मेथी च चित्रकं चविका वचा ॥ २५ ॥
दन्ती च त्रिवृता मुस्तं शिला च मृतलौहकम्।
अञ्जनं निम्बबीजानि पटोलं वृद्धदारकम् ॥ २६
सर्वाणि चाक्षमात्राणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शतं कानकबीजानि शोधितानि प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, पपिल, पाँचोंनमक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, हरड, बहेडा, आमला, हरताल, मैनसिल, शुद्ध पारा, अजमोद, अजवायन, सौंफ, जीरा, हींग, मेथी, चीतेकी जड, चव्य, वच, दन्तीमूल, निसोत, नागरमोथा, शिलाजीत, लोहेकी भस्म, रसौंत, नीमके बीज, परवल और विधारा ये सब औषधियाँ दो दो तोले लेकर एकत्र करके कूटपीस लेवे। फिर इसमें शोधित धतूरेके सौ बीज मिलाकर बारीक चूर्ण तैयार करलेवे ॥ २४–२७ ॥

एतदग्निविवृद्धचर्थमृषिभिः परिकीर्तितम्।
श्लीपदान्यन्त्रवृद्धिं च वातवृद्धिं च दारुणाम् ॥ २८ ॥

अरुचिं चामवातं च शूलं वातसमुद्भवम्।
गुल्मं चैवोदरान् व्याधीन्नाशयत्याशु तत्क्षणात्॥
भक्तोत्तरमिदं चूर्णमश्विभ्यां निर्मितं पुरा॥ २९॥

इस चूर्णको अग्निकी वृद्धि करनेके लिये ऋषियोंने कहा है। यह श्लीपद, अन्त्र-वृद्धि, दारुण वातकी वृद्धि, अरुचि, आमवात, वातज शूल, गुल्म, उदररोग एवं अन्यान्य नानाप्रकारकी व्याधियोंको तत्क्षण नाश करता है। इस भक्तोत्तरनामक चूर्णको अश्विनीकुमारोंने बनाया है॥ २८॥ २९॥

शशिशेखररस।

लौहमभ्रं च सिन्दूरं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना।
अस्य रक्तिद्वयं दद्यादन्त्ररोगनिवृत्तये॥ ३०॥

लोहा, अभ्रक और रससिन्दूर इनको घीग्वारके रसमें खरल करे। फिर इसकी दो दो रत्ती मात्राका सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धिरोग निवारण होता है॥ ३०॥

वातारिरस।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः।
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः॥ ३१॥
गुग्गुलुः पञ्चभागः स्यादेरण्डतैलमर्दितः।
क्षिप्त्वाऽत्र पूर्वकं चूर्णं तेनैव सह मर्दयेत्॥ ३२॥
गुडिकां कर्षमानां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि।
नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत्॥ ३३॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता, ४ भाग और अण्डीके तेलमें घोटीहुई गूगल ५ भाग लेवे। पूर्वोक्त औषधियोंके चूर्णको गूगलमें मिलाकर अण्डीके तेलके द्वारा उत्तम रूपसे खरल करे। फिर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनाकर रखले। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे। पीछेसे सोंठ और अण्डकी जडके क्वाथको पान करे॥ ३१-३३॥

अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम्।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत्॥ ३४॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः।
अन्त्रवृद्धिं निहन्त्येव ब्रह्मचर्यपुरःसरम्॥
अनुपानं च तिलजमार्द्रकद्रवसंयुतम्॥ ३५॥

इसके सेवन करनेपर रोगीके पीठपर अण्डीके तेलकी मालिश करके स्वेद देवे। इससे दस्त होजानेपर स्निग्ध और गरम पदार्थ भक्षण करावे। इस वातारिनामवाले रसको वातरहित स्थानमें सेवन करे तो यह अन्त्रवृद्धि रोगको अवश्य नाश करता है। इसपर तिलके फूलोंमें अदरखका रस मिलाकर अनुपान करे और सदा ब्रह्मचर्यका पालन करता रहे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वृद्धिबाधिकावटी।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत्।
लौहं वङ्गं तथा ताम्रं कांस्यं चाथ विशोधितम् ॥ ३६ ॥
तालकं तुत्थकं चापि तथा शङ्खवराटिकम्।
त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम् ॥ ३७ ॥
कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहबुषां वचाम्।
एलाबीजं देवकाष्ठं तथालवणपञ्चकम् ॥ ३८ ॥
एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत्।
कषायेण हरीतक्या वटिकांटङ्कसम्मिताम् ॥ ३९ ॥
एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह।
अन्त्रवृद्धिरसाध्याऽपि तस्य नश्यति सत्वरम् ॥ ४० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लोहभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, हरताल, तूतिया, शंखभस्म, कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, आमला, बहेडा, चव्य, वायविडङ्ग, विधारा, कचूर, पीपलामूल, पाढ, हाऊबेर, वच, छोटी इलायचीके दाने, देवदारु और पाँचों नमक इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करलेवे। अनन्तर हरडके क्राथमें खरल करके चारचार माशेकी गोलियाँ तैयार करलेवे। इसकी प्रतिदिन प्रातःसमय एकएक गोली जलके साथ निगलनेसे असाध्य भी अन्त्रवृद्धिरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३६-४० ॥

रसराजेन्द्र।

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बुशोधितम्।
रसार्द्धं हेम तारं च नागं हेमार्द्धकं तथा ॥ ४१ ॥
क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद्वासाक्राथेन भावयेत्।
काकमाच्याश्चित्रकस्य निर्गुण्ड्याः कुटजस्य च ॥ ४२ ॥

स्थलपद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्वो द्रवैः पृथक्।
ततो रक्तिमिताः कुर्याद्वटीश्चण्डांशुशोषिताः ॥ ४३ ॥
अन्त्रजान्निखिलान्रोगान्सर्वदोषोद्भवांस्तथा।
हन्त्ययं रसराजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान् ॥ ४४ ॥

सिंगरफसे निकाला हुआ पारा एक तोला, भाँगरेके रसमें शुद्ध कीहुई गंधक एक तोला, सुवर्णभस्म ६ मासे, चाँदीकी भस्म ६ मासे और शीशेकी भस्म २ मासे लेवे। सबको खरलमें रख अडूसेके क्वाथद्वारा भावनादेवे। तदनन्तर मकोय, चीता, निर्गुण्डी, कुडा, मानकन्द और कमल इनके रसोंसे यथाक्रम अलग अलग भावना देवे। फिर धूपमें सुखाकर एकएक रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। यह रसराजेन्द्रयोग यथाविधि सेवन करनेसे अन्त्रसम्बन्धी अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुए सम्पूर्ण रोगोंको इस भाँति नष्ट करता है, जिसतरह मृगेन्द्र मृगोंके समूहको तत्काल नष्ट करदेता है॥ ४१-४४ ॥

शतपुष्पाद्यघृत।

शतपुष्पाऽमृता दारु चन्दनं रजनीद्वयम्।
जीरके द्वे वचा नागं त्रिफला गुग्गुलुत्वचम् ॥ ४५ ॥
मांसी सकुष्ठपत्रैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम्।
कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥ ४६ ॥
सैन्धवं तगरं चैव कुष्ठं जातीबिसे समे।
एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४७ ॥
वृषमुण्डितिकैरण्डबिल्वपत्रभवं रसम्।
कण्टकार्यास्तथा क्षीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ ४८ ॥

सौंफ, गिलोय, देवदारु, लालचंदन, हल्दी, दारुहल्दी, जीरा, कालाजीरा, वच, नागकेशर, त्रिफला, गूगल, दारचीनी, बालछड, कूठ, पत्रज, इलायची, रास्ना, काकडासिंगी, चीता, वायविडङ्ग, असगन्ध, शैलज, कुटकी, सैंधानमक, तगर, कूठ, जावित्री और भसींडा ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनालेवे। फिर अडूसा, गोरखमुण्डी, अण्डकी जड, बेलके पत्ते और कटेरी इनका रस एक एक प्रस्थ एवं गौका दूध और घी एक एक प्रस्थ लेवे। फिर सबको एकत्रकर उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे ॥ ४५-४८ ॥

सिद्धमेतद् घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ।
वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापि वा ॥ ४९ ॥
मुष्कवृद्धिं श्लीपदं च यकृत्प्लीहानमेव च ।
शतपुष्पाद्यमेतद्धि घृतं हन्ति न संशयः ॥ ५० ॥

इस घृतको प्रतिदिन यथानियम सेवन करनसे अंत्रवृद्धि, वायुवृद्धि, पित्तवृद्धि, मेदवृद्धि और मूत्रवृद्धि दूर होती है एवं श्लीपदरोग, यकृत् और तिल्ली आदि रोगोंको भी यह शतपुष्पाद्यघृत निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

त्रिवृतादिघृत ।

त्रिवृतामधुयष्ट्यम्बुपयोधरयमानिकाः ।
श्यामाविदारीनिश्रेयापिप्पलीगिरिमल्लिकाः ॥ ५१ ॥
घृतप्रस्थं पयःप्रस्थं दध्याढकसमन्वितम् ।
शतावरीरसप्रस्थं सर्वाण्येकत्र संपचेत् ॥ ५२ ॥

निसोत, मुलहठी, सुगंधवाला, नागरमोथा, अजवायन, श्यामालता, विदारीकन्द, सोंफ, पीपल और कुडेकी छाल इन सबका समान भाग मिला हुआ कल्क आधसेर, गोघृत और दुग्ध एक एक प्रस्थ, दही १ आढक और शतावरका रस १ प्रस्थ सबको एकत्रित करके विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

त्रिवृतादिघृतं चैतदन्त्रजान् निखिलान् गदान् ।
प्रमेहान्विंशतिं श्वासान्कुष्ठान्यर्शांसि कामलाम् ॥५३॥
हलीमकं पाण्डुरोगं गलगण्डं तथाऽर्बुदम् ।
विद्रधिं व्रणशोथं च हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५४ ॥

यह त्रिवृतादिघृत अन्त्रजन्य सम्पूर्ण रोग, बीसों प्रकारके प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, बवासीर, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, गलगण्ड, अर्बुद, विद्रधि और व्रणशोथप्रभृति विकारोंको तत्काल नाश करता है। इसमें कुछभी सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

बृहद्दंतीघृत ।

जलद्रोणे पचेत्सम्यग्दन्त्याः पलशतं भिषक् ।
पादशिष्टं गृहीत्वेमं क्वाथं सर्पिः पयस्तथा ॥ ५५ ॥
दन्तीमूलं बलां द्राक्षां सहदेवीं शतावरीम् ।
सरलं शारिवां श्यामां प्रत्येकं कुडवोन्मितम् ॥ ५६ ॥

विदार्यास्तालमूल्याश्च शाल्मल्याः कुटजस्य च।
रसाढकं परिक्षिप्य साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ५७ ॥

दन्तीकी जडको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते २ चतुर्थ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर यह क्वाथ एवं घी और दूध ८-८ सेर तथा दन्तीमूल, खिरैंटी, दाख, सरदेई, शतावर धूपसरल, अनन्तमूल और श्यामालता ये प्रत्येक १६-१६ तोले और विदारीकन्द, मुसली, सेमलकी मुसली, तथा कुडेकी छालका रस ८-८ सेर लेवे। पश्चात् सबोंको एकत्र मिश्रित कर मन्द २ अग्निद्वारा सम्यक् प्रकार घृतको सिद्ध करे ॥ ५५-५७ ॥

अन्त्रवृद्धिमन्त्ररोगमन्त्रदाहं सुदारुणम्।
मुष्कवृद्धिं तथा ब्रध्नं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥ ५८ ॥
आमवातं वातरक्तं मुखनासाशिरोरुजः।
रेतःशोणितदोषांश्च हन्ति दन्तीघृतं महत् ॥ ५९ ॥

यह बृहद्दंतीनामक घृत अन्त्रवृद्धि, अन्त्रसम्बन्धी रोग, अन्त्रदाह, दारुण अण्डकोषवृद्धि, ब्रध्नरोग, व्रणशोथ, भगंदर, आमवात, वातरक्त मुख-नासिका-शिरके रोग और शुक्र-रक्तसम्बन्धी समस्त रोगोंको नाशता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

गन्धर्वहस्तकतल।

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्या यवाढकम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ६० ॥
तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च।
प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलाच्च चतुष्पलम् ॥ ६१ ॥
त्रिपलं शृङ्गवेरं च गर्भं दत्त्वा विपाचयेत्।
तत्पिबेत्प्रयतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् सदा ॥
अन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥ ६२ ॥

अण्डकी जड १०० पल, सोंठ १०० पल और जौ आठ सेर लेकर अलग अलग बत्तीस सेर जलमें पकावे। पकते पकते जब चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथके साथ दूध ८ सेर, अण्डीका तेल ६४ तोले, एवं कल्कार्थ अण्डकी जड १६ तोले और अदरख १२ तोले मिलाकर यथारीति तेलको पकावे। जब उत्तम रूपसे पककर तैयार होजाय तब घीके चिकने बासनमें भरके रखदेवे। पश्चात् नित्यप्रति प्रातःकाल शुद्ध होकर उपयुक्त परिमाणसे इन तेलको सेवन

करे और इसपर दूध भात सर्वदा भक्षण करे। यह गंधर्वहस्तकनामवाला तेल अन्त्रवृद्धिरोगको बहुत शीघ्र नाश करता है॥

वृद्धिरोगमें पथ्य ।

संशोधनं वस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च । एरण्डतैलं सुरभीजलं च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ ६३ ॥ पुनर्नवा गोक्षुरकोऽग्निमन्थस्ताम्बूलपथ्या सरलं रसोनम् । वातिङ्गनो गृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलं च तक्रम् ॥ यथाश्रुतं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्ध्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥ ६४ ॥

दोषशमनकारक औषधि प्रयोग, पिचकारी लगाना, रक्त निकलवाना, पसीना देना, लेप करना, लाल शालिके चावलोंका भोजन, अण्डीका तेल, गोमूत्र, मरुदेशके पशु पक्षियोंका मांस, सहिंजनेकी फली, परवल, पुनर्नवा, गोखुरू, अरणी, पान, हरड, धूपसरल, लहसुन, बैंगन, गाजर, शहद, १० वर्षका पुराना घी, गरम जल, मट्ठा इनका सेवन और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार शस्त्रक्रिया करना ये समस्त उपचार ब्रध्न और अण्डवृद्धिवाले रोगियोंके सुखके वास्ते हैं॥

वृद्धिरोगमें अपथ्य ।

विरुद्धपानान्नमसात्म्यसेवा संक्षोभणं हस्तिहयादियानम् ।
आनूपमांसानि दधीनि माषा दुग्धानि पिष्टान्नमुपोदिका च ॥
गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधः स्युर्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनाममित्राः॥ ६५ ॥

स्वभावक विरुद्ध और अहितकर अन्न पान सेवन करना, क्षोभ करना, हाथी या घोडेकी सवारी करना, अनूपदेशवाले जीवोंका मांस, दही, दूध, उडद, पिसेहुए अन्न, पोईका शाक, भारी पदार्थोंका सेवन करना तथा वीर्यके वेगको रोकना; ये सब ब्रध्न और वृद्धिवाले रोगियोंको अहितकर हैं ॥ ६५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वृद्धिरोगचिकित्सा ।

गलगण्डादिकी चिकित्सा ।

यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षं च भोजनम् ।
छर्दिं सरक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

गलगण्डरोगमें जौ, मूँग, परवल, चरपरे और रूखे द्रव्योंका भोजन एवं वमन और रक्तमोक्षण क्रिया करे ॥ १ ॥

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ २ ॥

हस्तिकर्णनामक ढाकलकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर लेप करनेसे गलगण्ड-रोग शान्त होता है ॥ २ ॥

सर्षपान् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पाययेत् ॥ ३ ॥
गलगण्डो ग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः ।
प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात ॥ ४ ॥

सरसों, सहिंजनेके बीज, सनके बीज अलसी, जौ और मूलीके बीज इन सबको समान भाग लेवे और एकत्रित करके खट्टे मट्ठेके साथ पीसकर पान करावे और लेप करे तो इससे बहुत पुरानी गलगण्ड, ग्रन्थिरोग और दारुण गण्डमाला आदि रोग तत्काल नाश होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः ।
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ५ ॥

पुराने भेलियाकद्दूके रसमें विरियासञ्चरनमक और सैंधानमक मिलाकर नास देनेसे नवीन गलगण्डरोग निस्सन्देह दूर होता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम् ।
पिबेत्कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीकी भस्मको गोमूत्रमें पकाकर और वस्त्रमें छानकर पीवे और इसपर कोदों अन्नका भोजन करे तो गलगण्डको शीघ्र शान्त करता है ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्तरसोनाभ्यां गलगण्डापनाहनः ।
स्फोटास्रावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥ ७ ॥

हुलहुल और लहसुनको समान भाग लेकर पीसलेवे । फिर इनके रसको गल-गण्डपर लेप करके स्वेद देवे । इससे फोडेके समान बहकर गलगण्डरोग निश्चय नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

तिक्तालाबूफले पक्के सप्ताहमुषितं जलम् ।
मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यानुसेविनः ॥ ८ ॥

पकी और कडवी तोम्बीमें जल अथवा मदिरा भरकर ७ दिनतक रखा रहनेदेवें, ७ दिनके पश्चात् उसको पान करनेसे एवं हितकर पदार्थ भक्षण करनेसे गलगण्ड-रोग शीघ्र दूर होता है ॥ ८ ॥

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डामयं हन्ति ।
घृतविमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

कायफलके चूर्णको गलेपर मलनेसे अथवा सफेद किणहीवृक्षकी जडके चूर्णको घीमें मिलाकर खानेसे गलगंडरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रमिश्रितं लौहमलं संस्थितं घटे मासम् ।
अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यान्मधुनाऽथ गलगण्डे ॥ १० ॥

शुद्ध लोहेके मैलको भैंसके मूत्रमें मिलाकर घडेमें भरकर रखदेवे । फिर एक महीनेके बाद निकालकर उसको अन्तर्धूममें भस्म कर शहदके साथ सेवन करे तो गलगण्डरोगमें शीघ्र उपकार होता है ॥ १० ॥

जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्त्तिताः ।
तासां स्थूलशिरे कृष्णे छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः ॥ ११ ॥
बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥ १२ ॥
भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ।
कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्याशे स्थितं च यत् ॥
उपर्युपरि तच्छिन्द्याद्गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १३ ॥

जीभके दोनों तरफ नीचेके भागमें जो १२ शिरायें हैं, उनमेंकी स्थूल और कृष्णवर्णकी दो शिराओंको बडिश (सँडासी) यन्त्रसे खींचकर कुशपत्रनामक शस्त्रसे धीरे धीरे काटे । जब दूषित रक्त निकलजावे तब व्रणपर गुड और अदरख मिलाकर लेप करे । तदनन्तर रोगीको कफनाशक द्रव्य और कुलथीका यूष भोजन करनेके लिये देवे । एवं दोनों कानोंके बाहरकी संधिके समीप ऊपरके भागमें तीन शिरायें हैं, उनको शनैः शनैः छेदन करनेसे गलगंडरोग शांत होता है ॥११-१३॥

गण्डमालाकी चिकित्सा ।

माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ।
गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥

वरनाकी जडके मंदोष्ण क्वाथको मधुमिश्रित कर पान करे तो बहुत पुरानी गंडमाला तत्काल दूर होती है ॥ १ ॥

पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पीताः काञ्चनारत्वचःशुभाः ।
विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ २ ॥

कचनारकी छाल और सोंठ इनको चावलोंके माँडमें पीसकर पीनेसे गलगंड और गंडमालारोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ ३ ॥
गण्डमालामयार्त्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
निर्गुण्डयास्तु शिफां सम्यग् वारिणा परिपेषिताम् ॥ ४ ॥

अमलतासकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर नास देनेसे और लेप करनेसे गंडमाला दूर होती है अथवा निर्गुंडीकी जडको जलमें अच्छे प्रकार पीसकर नस्य देनेसे उक्त रोग शमन होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलिसंयुतेन ।
तैलेन वाऽरिष्टभवेन कुर्याद्गजोपकुल्या सह माक्षिकेण ॥ ५ ॥

घिया तोरईके रस या तुंबीके रस और पीपलके चूर्णको एकत्र मिलाकर अथवा नीमके तेलमें पपिलका चूर्ण डालकर किंवा गजपीपल और शहदको मिलाकर नास देनेसे गलगंडरोगमें बहुत जल्द लाभ होता है ॥ ५ ॥

ऐन्द्र्या वा गिरिकर्ण्या वा मूलं गोमूत्रयोगतः ।
गण्डमालां हरेत्पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ ६ ॥

इन्द्रायणकी जड अथवा श्वेत अपराजिताकी जडको गोमूत्रमें पीसकर पीनेसे तत्क्षण बहुत दिनोंकी पुरानी गंडमाला दूर होती है ॥ ६ ॥

अलम्बुषादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत् ।
अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥ ७ ॥

गोरखमुण्डीके पत्तोंका स्वरस ८ तोले प्रमाण सेवन करे तो अपची, गंड माला और कामलारोगका नाश होता है ॥ ७ ॥

पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना लेपान्मूलं ब्राह्मणयष्टिजम् ।
गलगण्डं गण्डमालां कुरण्डं च विनाशयेत् ॥ ८ ॥

भारङ्गीकी जडको चावलोंके पानीमें पीसकर लेप करनेसे यह औषधि गलगण्ड, गण्डमाला और कुरण्डरोगको नष्ट करती है ॥ ८ ॥

अपचीकी चिकित्सा ।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् ।
पक्त्वा पूपलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥ १ ॥

वनकपासकी १ तोला जडको चावलोंके २ तोले चूर्णके साथ पीसकर पूये बनाकर खावे तो अपचीरोग दूर होता है ॥ १ ॥

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ।
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ २ ॥

सहिंजनेकी जड और देवदारुको एकत्र काँजीमें पीसकर सुहाता सुहाता लेप करनेसे अत्यन्त कठिन अपची नाश होती है ॥ २ ॥

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ३ ॥

सरसों, नीमके पत्ते और भिलावोंका एक अन्तर्धूम उत्तम पात्रमें दग्धकर और बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करे तो अपची दूर होती है ॥ ३ ॥

अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तं च दाहयेत् ।
वराहमज्जसंपृक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ४ ॥

पीपलके वृक्षकी छाल, समुद्रफल और गोदन्तोंको एकत्र भस्म करलेवे । भस्ममें सुअरकी चर्बी मिलाकर प्रलेप करनेसे अपचीके व्रण शीघ्र भरजाते हैं ॥ ४ ॥

पार्ष्णि प्रति द्वादश चाङ्गुलानि मित्वेन्द्रवस्तिं परिवर्ज्य सम्यक् । विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो निकृष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥ ५ ॥

एँडीसे लेकर १२ अंगुल परिमाण स्थानमें २ अँगुल परिमित इन्द्रवस्तिनामका मर्मस्थल है । उसको छोडकर शेष १० अंगुलवाले स्थानमें क्रियाकुशल वैद्य तीक्ष्ण शस्त्रसे छेदन करे । फिर मछलीके अंडेकी समान आकृतिवाले चर्बीके जालको निकालकर व्रणस्थानको अग्निसे दग्ध करदेवे । इस प्रकार करनेसे अपचीरोग समूल नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ६ ॥

बगल या कूर्परसन्धिगत अपचीरोगमें पहुँचेके ऊपरके भागमें एक एक अंगुलके अन्तरसे यथाक्रम तीन रेखा करे। इससे रुधिरका स्राव होकर अपचीरोग दूर होता है ॥ ६ ॥

दण्डोत्पलभवं मूलं बद्धं पुष्येऽपचीं जयेत् ।
अपामार्गस्य वा छिन्द्याज्जिह्वातलगते शिरे ॥ ७ ॥

श्वेतदंडोत्पलकी जडको पुष्यनक्षत्रमें लाकर देहमें बाँधे अथवा उक्त विधिके अनुसार चिरचिटेकी जडको बाँधे किंवा चिरचिटेकी जडसे जीभके नीचेके भागमें स्थित दोनों शिराओंको छेदन करे तो अपची नष्ट होती है ॥ ७ ॥

ग्रन्थिकी चिकित्सा ।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम् ।
पक्वानुत्पाट्य संशोध्य रोपयेद्व्रणभेषजैः ॥ १ ॥

अपक्व ग्रन्थिरोगमें वक्ष्यमाण व्रणशोथरोगकी समान चिकित्सा करे और जब वह पकजाय तब छेदकर राध, पीव आदिको निकालकर घावको भरनेवाली औषधि भरदेवे ॥ १ ॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृता च भर्ङ्गी श्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः ।
गोपित्तपिष्टाः सह तालपर्ण्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः २

कटेरी, कुटकी, गिलोय, भारङ्गी, शोनापाठा, बेलकी छाल, अगर, सहिंजनेकी छाल और मुसली इन औषधियोंको समान भाग लेके गोपित्तमें पीसकर वातजन्य ग्रंथिपर लेप करनेसे शीघ्र उपकार होता है ॥ २ ॥

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ।
काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि चूर्णं पिबेद्वारि हरीतकीनाम् ॥ ३ ॥

पित्तजनित ग्रन्थिरोगमें जौंक लगवाकर रक्त निकलवावे और जलमिश्रित दूध पीवे एवं काकोल्यादिगणकी औषधियोंका शीतल क्वाथ मिश्री मिलाकर पान करें अथवा दाखके शीतल क्वाथ किंवा ईखके रसमें हरडोंका चूर्ण डालकर पान करे ॥ ३ ॥

मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ।
हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुद्भवे तु ॥
स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्यादङ्गुष्ठवेणूद्दषदीसुतैश्च ॥ ४ ॥

कफजन्य ग्रन्थिपर महुआ, जामुन, अर्जुन और बेंत इनकी समान भाग मिश्रित छालको अच्छे प्रकार एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे कफज ग्रन्थि दूर होती है । कफग्रन्थिमें वमनादि क्रिया और रक्तमोक्षण क्रिया करके आनुपूर्विकासे स्नेह तथा स्वेद प्रदान करे और स्वेदित होनेपर अंगूठे, बाँस एवं पत्थरसे दबाकर विम्लापन क्रिया करे ॥ ४ ॥

विकङ्कतारग्वधकाकणन्तीकाकादनीतापसवृक्षमूलैः ।
आलेपयेदेनमलाबुभार्ङ्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥५॥

कण्टाई, अमलतास, घुँघुची, काकादनीवृक्ष और हिंगोटवृक्ष इनकी जड अथवा कडवी तोंबी, भारङ्गी, करंजुआ और काला मैनफल इन सबोंकी लेप करनेसे ग्रन्थि-रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दन्तीचित्रकमूलत्वक्सुधार्कपयसा गुडः ।
भल्लातकास्थि काशीशं लेपाच्छिन्द्याच्छिलामपि ॥ ६ ॥

दन्तीमूल, चीतेकी जडकी छाल, थूहरका दूध, आकका दूध, गुड, भिलावोंकी गिरी और हीराकसीस इन सबोंको एकत्र पीसकर किया हुआ प्रलेप पत्थरको भी फोड देता है ॥ ६ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः ।
सर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः ॥
प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ॥ ७ ॥

पिद्देनामक कीटको पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्बुदरोग दूर होता है एवं सज्जी, मूलीका खार और शङ्खभस्म इनको एकत्र मिलाकर कियाहुआ लेप तीक्ष्ण ग्रन्थि और अर्बुदादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ७ ॥

ग्रन्थीनमर्म्मप्रभवानपक्वानुद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः ।
क्षारेणचैतान्प्रतिसारयेत्तु संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥८॥

जो मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न नहीं हुई हैं और पकी नहीं हैं ऐसी ग्रन्थियोंको छेदकर उस व्रणमें अग्निसे दग्ध करे और फिर खारादि पदार्थोंका प्रलेप करे, दग्धक्रिया वातज और वात-कफजन्य ग्रन्थिरोगमें ही करनी चाहिये । पित्तजनित ग्रन्थिमें शस्त्र-द्वारा चीरकर क्षारादिका लेप करना उचित है ॥ ८ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा ।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः ।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥१॥

ग्रन्थि और अर्बुद (रसौली) के निकलनेका स्थान, कारण, आकृति, वातादि-दोष और दूष्य ये सब लक्षण प्रायः समान रूपसे मिलते जुलते होते हैं। अतएव चतुरवैद्य अधिक विशेषता न होनेके कारण केवल हेतु और आकृतिको विचारकर ग्रन्थिरोगके समान अर्बुदकी चिकित्सा करे ॥ १ ॥

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धैश्च मांसैरथ वेशवारैः।
स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्याः शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च॥२

वातजन्य अर्बुदरोगमें चिकने मांस और वेसवार मसाले आदिका लेप करके उपनाह (अर्थात् पिण्डी बन्धन) स्वेद देवे। फिर सींगी लगवाकर नाडियोंका दूषित रक्त निकलवावे ॥ २ ॥

स्वेदोपनाहामृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनं च॥३॥

पित्तजनित रसौलीमें मृदु स्वेद, मृदु प्रलेप, मृदु और पित्तहर भोजन एवं मृदु विरेचक और मृदु वमनकारक औषधि देवे ॥ ३ ॥

विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत्।
श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गुपतङ्गलोध्रार्जुनयष्टिकाह्वैः ॥४॥

गूलर और गोजियाशाकके पत्तोंके कल्कको शहदमें अच्छे प्रकार मिलाकर रसौलीपर लेप करे वा राल, फूलप्रियंगु, पतङ्ग, लोध, अर्जुन, मुलहठी ये सब समान भाग एकत्र बारीक पीसकर लेप करे तो अर्बुदरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

लेपनं शङ्खचूर्णेन सह मूलकभस्मना।
कफार्बुदापहं कुर्याद्ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ ५ ॥

शंखका चूर्ण और मूलीकी भस्म एकत्र पीसकर लेप करनेसे कफसे उत्पन्न हुआ अर्बुद एवं कफकी ग्रन्थि नष्ट होती है ॥ ५ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च।
लेपं विदध्यात्कृमयो यथाऽत्र मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा॥
यल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात्।
अदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः संवेष्ट्य पत्रैरथवाऽऽयसैर्वा ॥ ७ ॥

सफेद सेम, तिलोंकी खल और कुलथीका कल्क इनको मांस और दहीमें अच्छे प्रकार मर्दन करके रसौलीपर लेप करे तो कीडे ओर मक्खियाँ अपनी अपनी सन्तानोंको छोडकर रसौलीके अधिकांश भागको भक्षण करती हैं। फिर कृमि आदिकोंके खानेसे कुछेक बाकी बचेहुए अर्बुदको शस्त्रसे चीरकर अग्निद्वारा दग्ध करे। कदाचित्

उक्तक्रिया करनेसे भी अर्बुदरोग समूल नष्ट न हो तो उसको राँग, ताँवा, सीसाअथवा लोहेके पत्रोंसे बाँध देवे ॥ ६ ॥ ७ ॥

क्षाराग्निशस्त्राण्यवतारयेच्च मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्षमाणः ।
यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ८ ॥

तदनंतर बारंबार क्षार, अग्नि और शस्त्रक्रिया करे । किंतु प्राणोंकी बारबार रक्षा करता रहे । यदि अर्बुद स्वयं पकजावे तो व्रणपाकोक्त विधिके अनुसार छेदन और संशोधनादि क्रिया करे ॥ ८ ॥

उपोदिकारसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः ।
प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडिकार्बुदजातयः ॥ ९ ॥

पोईके शाकका स्वरस निकालकर रसौलीपर लेप करे, फिर पोईके पत्तोंको बाँध देवे । इससे अर्बुदकी पिडिका तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ९ ॥

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तक्रोपनाहो लवणेन मिश्रः ।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद् दिनेदिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥

पोईशाकको काँजी और मट्ठेमें पीसकर और उसमें सैंधानमक डालकर दिनमें लेप करनेसे अर्बुदरोग एवं रात्रिमें लेप करनेसे मर्मस्थलमें उत्पन्न हुआ अर्बुदरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १० ॥

लेपोऽर्बुदजिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्णकृतः ।
सरटरुधिरार्द्रगन्धकयवाग्रजविडङ्गनागरैर्वाथ ॥ ११ ॥

केलेके मोचेकी भस्म, धानोंकी भूसी और शंखभस्म इनको एकत्र पीसकर लेप करे अथवा गिरगटके लोहूमें गंधक, जवाखार, वायविंडग और सोंठ इनका चूर्ण मिलाकर लेप करे तो अर्बुद (रसौली) रोग दूर होता है ॥ ११ ॥

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च ।
सीसकेनाथ लवणैः पिण्डारुकफलेन च ॥ १२ ॥

थूहरके डंडेको गरम करके स्वेद देनेसे अर्बुदरोग नाश होता है अथवा सीसे और नमकका गरम लेप करके स्वेद देनेसे किंवा पिंडार (सफेद रतालु) के फलों को पोटलीमें बाँधकर सेंकनेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः ।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥ १२ ॥

हल्दी, लोध, पतङ्ग, घरका धुआँ और मैनसिल इन सबोंको समान भाग लेवे। फिर एकत्र मधुमें उत्तम प्रकार खरल करके गाढा गाढा लेप करे तो मेदजनित अर्बुदरोग शान्त होता है ॥ १३ ॥

एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ १४ ॥

शर्कराजन्य अर्बुदरोगमें पूर्वोक्त संपूर्ण क्रियाओंको ही करना चाहिये ॥ १४ ॥

रौद्ररस।

शुद्धसूतं समं गन्धं मर्द्यं यामचतुष्टयम्।
नागवल्लीदलयुतं मेघनादः पुनर्नवा ॥ १५ ॥
गोमूत्रपिप्पलीयुक्तं मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेल्लघु।
लिहेत्क्षौद्रे रसो रौद्रो गुञ्जामात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र चार प्रहरतक खरल करे। फिर इनको पानोंके रस, चौलाईके रस, पुनर्नवेके रस, गोमूत्र और पीपलके क्वाथमें अलग अलग सात सात बार उत्तम रूपसे खरल करके लघुपुटमें रखकर मंदमंद अग्निसे पकावे। जब शीतल होजाय तब निकालकर पीसलेवे। इसको प्रतिदिन एक रत्तीप्रमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है। इसको रौद्ररस कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

काञ्चनारगुटिका।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणो मतः।
तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥ १७ ॥
एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो दद्योऽथ गुग्गुलुः।
क्षौद्रं दशगुणं दद्यात् त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥ १८ ॥

त्रिफला ३ तोले, त्रिकुटेकी प्रत्येक औषधि दो दो तोले और कचनारकी छाल १२ तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर समस्त चूर्णके बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर ३० तोले शहदमें उत्तम प्रकारसे खरल करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे तथैव च।
नाडीव्रणेषु गण्डेषु गुडिकेयं प्रशस्यते ॥ १९ ॥

इसको सर्वप्रकारकी गंडमाला, गलगंडरोग और नाडीव्रणादि रोगोंमें विधिपूर्वक सेवन करनेसे शीघ्र उपकार होता है ॥ १९ ॥

काञ्चनारगुग्गुलु ।

काञ्चनारस्य गृह्णीयात्त्वचं पञ्चपलोन्मिताम् ।
नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ २० ॥
पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्द्धं पृथक् पृथक् ।
वरुणस्याक्षमेकं च पत्रकैला त्वचं पुनः ॥ २१ ॥
टङ्कं टङ्कं समादाय सर्वानेकत्र चूर्णयेत् ।
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ २२ ॥
संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत् ।
गुटिकाः शाणिकाः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ २३ ॥
गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च ।
ग्रन्थीन्व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ २४ ॥
प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डितिकाभवः ।
क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णोऽभयाभवः ॥ २५ ॥

कचनारकी छाल २० तोले, सोंठ, पीपल, मिरच ये प्रत्येक चार चार तोले, हरड, बहेडा, आमला प्रत्येक दो दो तोले, बरनाकी छाल दो तोले, तेजपात, छोटी इलायची और दारचीनी इनको चार चार माशे लेकर सबोंको एकत्र कूटपीस लेवे। फिर समस्त चूर्णके समान भाग शुद्ध गूगल मिलाकर जलके योगसे खरल करके चार चार माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे और पीछेसे गोरखमुण्डी, खैरसार अथवा हरडका उष्ण क्वाथ पान करे। यह औषधि गलगण्ड, अत्युग्र अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, व्रणरोग, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दरादि रोगोंको शीघ्र दूर करती है ॥ २०–२५ ॥

सिन्दूरादितैल ।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत ।
केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना ॥ २६ ॥
पाकशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ।
एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ २७ ॥

भाँगरेके रसमें चकवडकी जडके कल्क और कडवे तेलको डालकर मन्द मन्द अग्निद्वारा पकावे। पकते पकते जब तेलमात्र शेष रहजाय तब उसमें सिन्दूर डाल-कर उतारलेवे। इस तेलको मलनेसे दारुण गण्डमाला दूर होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

तुम्बीतैल।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः।
कटुतुम्बीफलरसैः कटुतैलं विपाचयेत्।
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ २८ ॥

वायविडङ्ग, जवाखार, सैंधानमक, रास्ना, चीता, त्रिकुटा और देवदारु इनके कल्क और कडवी तोम्बीके फलोंके रसद्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे। इस तेलकी नास देनेसे बहुत पुराना गलगंडरोग नाश होता है ॥ २८ ॥

अमृतादितैल।

तैलंपिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहंसाह्वलावृक्षकपिप्पलीभिः।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगी॥२९॥

गिलोय, नीमकी छाल, हंसपदी, कुडेकी छाल, पीपल, खिरैंटी, कंघी और देवदारु इनके समान भाग मिश्रित कल्कको आधसेर, पाकके लिये जल ८ सेर और तिलका तेल दो सेर लेकर एकत्र पकावे। जब पकते पकते तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारले। इस तेलको मर्दन करनेसे गलगंडरोगी आरोग्य होय ॥ २९ ॥

छुछुंदरीतैल।

अभ्यङ्गान्नाशयेत्क्षिप्रं गण्डमालां सुदारुणाम्।
छुछुन्दर्या विपक्वं च क्षणात्तैलवरं ध्रुवम् ॥ ३० ॥

छुछुंदरके मांसमें तिलके तेलको पकाकर मालिश करनेसे अत्यन्त दारुण गंडमालारोग तत्क्षण नाश होता है ॥ ३० ॥

शाखोटकतैल।

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचः।

सहोरावृक्षकी छालके क्काथ और कल्कद्वारा तिलके तेलको सिद्धकर मलनेसे गलगंड, गंडमालादि रोग नष्ट होते हैं।

बिम्ब्यादितैल।

बिम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वापि नावनम् ॥ ३१ ॥

कंदूरीकी जड, कनेरकी छाल और निर्गुंडीकी जड इनके रसमें सिद्ध किये तेलकी नास लेनेसे गंडमालादि विकार दूर होते हैं ॥ ३१ ॥

निर्गुंडीतैल।

निर्गुण्डीस्वरसे वाऽथ लाङ्गलीमूलकल्कितम्।
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ३२ ॥

निर्गुंडीके रसमें कलिहारीकी जडका कल्क और तिलका तेल डालकर यथाविधि पकावे। इस तेलकी नस्य ग्रहण करनेसे दुस्तर गंडमालादि रोग शीघ्र नाश होते हैं ॥ ३२ ॥

व्योषाद्यतैल।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च।
तैलमेभिः शृतं नास्यात्कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत् ॥ ३३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलहठी, सैंधानमक और देवदारु इनके कल्कद्वारा सिद्ध किये हुए तिलके तैलकी नस्य लेनेसे अत्यन्त कठिन अपचीरोग अल्पकालमें नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

चन्दनाद्यतैल।

चन्दनं चाभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी।
एभिस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ ३४ ॥

रक्तचन्दन, हरड, लाख, वच और कुटकी इनके द्वारा तिलके तेलको उत्तम प्रकारसे पकाकर पान करे तो अपचीरोग समूल नाश होता है ॥ ३४ ॥

गुञ्जाद्यतैल।

गुञ्जाह्वयारिश्यामार्कसर्षपैर्मूत्रसाधितम्।
तैलं तु दशधा पश्चात्कणालवणपञ्चकैः ॥ ३५ ॥
मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत्।
अभ्यङ्गादपचीं नाडीं वल्मीकार्शोऽर्बुदव्रणान् ॥ ३६ ॥

चिरमिठी, कनेर, विधारेकी जड, आकका दूध और सफेद सरसों इन सबका कल्क समान भाग और गोमूत्र सबसे अठगुना लेकर इनसे दसबार तिलके तेलको उत्तम रूपसे पकावे। फिर उस तेलमें पीपल, पाँचों नमक और मिरचोंका चूर्ण डालकर मालिश करनेसे सर्वप्रकारका अपचीरोग, नाडीव्रणरोग, वल्मीकरोग, अर्शरोग, अर्बुद और व्रणरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

गलगण्डादिरोगोंपर पथ्य।

छर्दिर्विरेचनं नस्यं स्वेदो धूमः शिराव्यधः।
अग्निकर्म क्षारयोगः प्रलेपो लङ्घनानि च ॥ ३७ ॥
पुराणघृतपानं च जीर्णलोहितशालयः।
यवा मुद्गाः पटोलं च रक्तशिग्रु कठिल्लकम् ॥ ३८ ॥

शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च।
दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु॥ ३९॥
गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदातुरे।
यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्त्तितम्॥ ४०॥

वमन, विरेचन, नस्य, स्वेद, धूमपान, फस्तखुलवाना, दागदेना, क्षारप्रयोग, लेप और लङ्घनादि क्रिया करना, पुराने घीका पीना, पुराने लाल शालिके चावल, जौ, मूँग, परवल, लाल सहिंजना, करेला, शान्तिशाक, बेंतकी कोंपल, रूखे चरपरे और सर्वप्रकारके पाचक द्रव्योंका भोजन करना, गूगल और शिलाजीत औषधियोंका सेवन ये सब पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुदरोगमें दोष तथा अवस्थाके अनुसार हितकर कहे हैं॥ ३७-४०॥

गलगण्डादिरोगोंपर अपथ्य।

क्षीरेक्षुविकृतिः सर्वा मांसं चानूपसम्भवम्।
पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दकारि च॥ ४१॥
गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान्।
चिकित्सन्नगदङ्कारो यशोर्थी परिवर्जयेत्॥ ४२॥

सबप्रकारकी दूधकी बनी हुई (दूध, दही, मही, खीरादि) वस्तुएँ तथा ईखके रसकी बनी (खीर, रस, गुड, चीनीआदि) चीजें, अनूपदेशके पशुपक्षियोंका मांस, पिसेहुए अन्न, खट्टे, मीठे, भारी और सर्वप्रकारके कफकारक पदार्थ इन सबोंको गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुदादि रोगोंकी चिकित्सा करताहुआ, यशको चाहनेवाला वैद्य तत्काल त्याग देवे॥ ४१॥ ४२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सा।

श्लीपदरोगकी चिकित्सा।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः।
प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत्॥ १॥

श्लीपदरोगमें लंघन, प्रलेप, स्वेद, विरेचन, फस्तखुलवाना और कफनाशक उष्ण क्रियाद्वारा चिकित्सा करे॥ १॥

धुस्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः।
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम्॥ २॥

धतूरा, अण्डकी जड, सह्मालू, पुनर्नवा, सहेंजनेकी जडकी छाल और सफेद सरसों इनको समान भाग ले एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे बहुत पुराना अतिकठिन श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि स्थिरम् ॥ ३ ॥

सफेद आककी जडकी छालको काँजीमें बारीक पीसकर लेप करनेसे बद्धमूल और पुराना श्लीपदरोग नाश होता है ॥ ३ ॥

पिण्डारकतरुसम्भववन्दाकशिफा जयति सर्पिषा पीता ।
श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥ ४ ॥

पिण्डारवृक्षपर उत्पन्न होनेवाले बंदेकी जडको पीसकर घृतके साथ पान करे और उक्त जडको लाल सूतसे जाँघमें बाँध देवे तो अतिप्रबल श्लीपदरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा ।
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ५ ॥

चीतेकी जड और देवदारु अथवा सफेद सरसों और सहेंजनेकी छालको गोमूत्रमें पीसकर कुछ गरम करके लेप करे तो श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्यात्सचतुरङ्गुले ॥ ६ ॥

वातसे उत्पन्नहुए श्लीपदरोगमें स्निग्धपदार्थोंका प्रलेप करके गुल्फ (पाँवकी गाँठ) के ऊपर ४ अंगुलवाली शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करे ॥ ६ ॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्याच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ७ ॥

पित्तजनित श्लीपदमें गुल्फके नीचेकी शिराको वेधकर रुधिर निकाले । फिर पित्तज अर्बुद तथा पित्तज विसर्परोगमें कही हुई पित्तनाशक चिकित्सा करे ॥ ७ ॥

मञ्जिष्ठां मधुकं रास्नां सहिंस्रां सपुनर्नवाम् ।
पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ ८ ॥

पित्तज श्लीपदको दूर करनेके लिये मंजीठ, मुलहठी, रास्ना, कटेरी और पुनर्नव इनको काँजीमें पीसकर लेप करे ॥ ८ ॥

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ।
मधुयुक्तानि वा तीक्ष्णकषायाणि पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

पित्तज श्लीपद रोगमें पैरके अँगूठेकी शिराको वेधे और कफनाशक तीक्ष्णद्रव्योंके क्वाथको शहद मिलाकर पीवे ॥ ९ ॥

पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये ।
पूतीकरञ्जच्छदजं रसं वापि यथाबलम् ॥
अनेनैव प्रकारेण पुत्रञ्जीवकजं रसम् ॥ १० ॥

पूतीकरञ्जके पत्तोंके रसको अथवा जियापोतेके पत्तोंके स्वरसको सरसोंके तेलके साथ अपनी अग्निका बलाबल विचारकर पान करे तो श्लीपदरोग निवृत्त होता है १०

काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारजम् ।
रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥
वर्षोत्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशेषतः ॥ ११ ॥

विधारेके चूर्णको काँजी अथवा गोमूत्रके साथ पान करे या हल्दी और गुडको गोमूत्रमें मिलाकर पान करे तो एक वर्षके पुराने श्लीपदरोग, दाद और विशेषकर कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति ।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १२ ॥

हरडोंको अण्डीके तेलमें भूनकर गोमूत्रके साथ सात दिनतक सेवन करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है ॥ १२ ॥

धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् ।
दीपनं चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥ १३ ॥

काँजी और कडवे तेलको एकत्र मिलाकर पीनेसे कफ-वातजन्य रोग, आमदोष विशेषकर श्लीपदरोग नष्ट होते हैं और अग्नि दीपन होती है ॥ १३ ॥

गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषण्डरीं नरः ।
जयेच्छ्लीपदकेनोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः ॥ १४ ॥

हंसपदीकी जडके १ तोला चूर्णको उडदोंकी इमरतीमें मिलाकर खानेसे श्लीपदसे उत्पन्न हुआ ज्वर शीघ्र नाश होता है ॥ १४ ॥

श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद् गुडूच्यास्तैलसंयुतः ॥ १५ ॥

गिलोयके स्वरसको कडवे तैलके साथ प्रतिदिन पान करनेसे श्लीपदरोग बहुत जल्द नष्ट होता है ॥ १५ ॥

वृद्धदारकचूर्ण ।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्वी वरुणगोक्षुरम् ।
अलम्बुषां गुडूचीं च समभागानि चूर्णयेत् ॥ १६ ॥
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम् ।
काञ्जिकेन च तत्पेयमक्षमात्राप्रमाणतः ॥ १७ ॥
जीर्णे च परिहारः स्याद्भोजनं सर्वकामिकम् ।
नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातं च दारुणम् ॥ १८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, दारुहल्दी, वरनाकी छाल, गोखुरू, गोरखमुण्डी और गिलोय ये सब औषधि समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे। फिर समस्त चूर्णके बराबर भाग विधारेका चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र पीस लेवे। इस चूर्णको दो तोले प्रमाण लेकर काँजीके साथ सेवन करे। औषधि जीर्ण अर्थात् पचजानेपर इच्छानुसार भोजन करे। यह चूर्ण दारुण श्लीपद, स्थूलता और आमवातादि विकारोंको नष्ट करता है ॥ १६-१८ ॥

पिप्पल्याद्यचूर्ण ।

पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्नवम् ।
भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारुकम् ॥ १९ ॥
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः ।
जीर्णे च परिहारं स्याद्भोजनं सर्वकामिकम् ॥ २० ॥
श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च ।
अग्निं च कुरुते घोरं भग्नकं च नियच्छति ॥ २१ ॥

पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले और सबोंके बराबर भाग विधारा लेवे। फिर सबोंको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे। प्रतिदिन एक तोले चूर्णको काँजीके साथ पान करे। इसके जीर्ण (हज्म) होनेपर यथारुचि भोजन करे। यह चूर्ण श्लीपद, वातजरोग, तिल्ली, भग्नकरोगको दूर करता तथा जठराग्निकी अत्यन्त वृद्धि करता है ॥

श्लीपदारि ।

निम्बं खदिरसारं च मधुना चाष्टमाषकम् ।
गवां मूत्रेण पिष्ट्वा तु पिबेच्छ्लीपदशान्तये ॥ २२ ॥

नीमकी छाल और कत्थेको आठ आठ माशे लेकर एकत्र गोमूत्रमें पीसलेवें। फिर शहदके साथ मिलाकर पान करे तो श्लीपदरोग शमन होता है ॥ २२ ॥

श्लीपदगजकेशरी ।

व्योषामृतयमानी च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला ।
सौभाग्यं जयपालं च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥
भृङ्गगोक्षुरजम्बीरार्द्रकतोयैर्विमर्दयेत् ॥ २३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, शुद्ध मीठा तेलिया, अजवायन, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चीता, मैनसिल, सुहागा और जमालगोटा इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। पश्चात् इस चूर्णको भाङ्गरा, गोखुरू, जम्बीरीनींबू और अदरख इनके रसद्वारा उत्तम प्रकार खरल करलेवे ॥ २३ ॥

अस्य रक्तिद्वयं खादेदुष्णतोयानुपानतः ।
श्लीपदं दुस्तरं हन्ति प्लीहानं हन्ति सेवितः ॥ २४ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल इसकी दो रत्ती मात्राको उष्ण जलके साथ सेवन करे तो दुस्तर श्लीपद और प्लीहारोग नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

नित्यानन्दरस ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम् ।
कांस्यं वङ्गं हरीतालं तुत्थं शङ्खं वराटिका ॥ २५ ॥
त्रिकटु त्रिफलं लौहं विडङ्गं पटुपञ्चकम् ।
चविका पिप्पलीमूलं हबुषा च वचा तथा ॥ २६ ॥
शठी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् ।
त्रिवृता चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक् ॥२७॥
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य गुडकीकृतम् ।
हरीतकीरसं दत्त्वा दशगुञ्जोन्मितं शुभम् ॥
एकैकं भक्षयेन्नित्यं शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ २८ ॥

सिंगरफसे निकलाहुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताँबे, काँसे और बङ्गकी भस्म, हरताल, नीलाथोथा, शङ्खभस्म, कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड,

बहेडा, आमला, लोहभस्म, वायविडङ्ग, पाँचों नमक, चव्य, पीपलामूल, हाऊबेर, बच, कचूर, पाढ, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा, निसोत, चीता और दन्तीकी जड इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूटपीस कर चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्णको हरडोंके क्वाथ और गुडमें अच्छे प्रकार खरल करके दस दस रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल पीवे॥ २५-२८॥

श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितं च यत्।
मेदोगतं धातुगतं निहन्ति नात्र संशयः॥ २९॥
अर्बुदं गण्डमालां च वातरक्तं सुदारुणम्।
कफवातोद्भवं रोगमन्त्रवृद्धिं चिरन्तनीम्।
वातरक्ते वातकफे गुदरोगे कृमौ तथा॥ ३०॥
अग्निवृद्धिं करोत्येष बलवर्णं च सुस्थताम्।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे॥ ३१॥
नित्यानन्दरसश्चायं महाश्लीपदनाशनः।
रक्तजे पित्तजे चापि श्लीपदे योजयेदमुम्॥
नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते श्लीपदामये॥ ३२॥

यह औषधि कफवातजन्य अथवा दूषितरक्त और मांससे उत्पन्न हुए श्लीपद, मेदोगत तथा धातुगत श्लीपद, अर्बुद, गण्डमाला, दारुण वातरक्त, कफ और वातसे होनेवाले रोग, अन्त्रवृद्धि, वातकफका वातरक्त, बवासीर और कृमिरोगको निश्चय नाश करती है एवं अग्निकी वृद्धि, बल, वर्ण और आरोग्यताको उत्पन्न करती है। सांसारिक जीवोंके कल्याणके लिये श्रीमान् गहनानन्दनाथने इसको निर्माण किया है। यह नित्यानन्दरस अत्यन्त कठिन और पुराने श्लीपदको तत्काल नष्ट करता है। इसको रक्तज और पित्तज श्लीपदरोगमें भी प्रयोग करना चाहिये। श्लीपदरोगको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर शक्तिशाली दूसरी औषधि नहीं है॥ २९-३२॥

कृष्णाद्यमोदक।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धपलं पलम्।
विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य तु पलद्वयम्॥
मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम्॥ ३३॥

पीपल १ तोला, लाल चीतेकी जडका चूर्ण दो तोले, दन्तीकी जडका चूर्ण ४ तोले, हरडें २० और पुराना गुड ८ तोले लेवे। सबोंको एकत्र कूट पीसकर लड्डू बनालेवे। प्रतिदिन एक लड्डू शहदके साथ खानेसे दुस्तर श्लीपद रोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

सौरेश्वरघृत।

सुरसा देवकाष्ठं च त्रिकटुत्रिफले तथा।
लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ३४ ॥
चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हबुषा वचा।
जवाग्रजं च पाठा च शठयेला वृद्धदारकम् ॥ ३५ ॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलकषायेण धान्याम्लेन द्रवेण च ॥ ३६ ॥
दधिमस्तुसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्।
पक्वं स्यादुद्धृतं कल्कात्पिबेत्कर्षत्रयं हविः ॥ ३७ ॥

काली तुलसी, देवदारु, त्रिकुटा, त्रिफला, पाँचों नमक, वायविडंग, चीता, चव्य, पीपलामूल, गूगल, हाऊबेर, वच, जवाखार, पाढ, कचूर, छोटी इलायची और विधारा इन औषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं दशमूलका काढा एक प्रस्थ, काँजी एक प्रस्थ और दहीका तोड एक प्रस्थ लेवे। फिर इन सबोंके द्वारा गौके एक प्रस्थ उत्तम घृतको अच्छेप्रकार पकावे। नित्यप्रति प्रातःसमय इस घृतको तीन तीन तोलेकी मात्रासे सेवन करे ॥ ३४–३७ ॥

श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत्।
मेदःश्रितं च वातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ ३८ ॥
अपचीं गण्डमालां च अन्त्रवृद्धिं तथाऽर्बुदम्।
नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजानि च ॥
परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठक्रिमिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

यह घृत कफवातजन्य श्लीपद, मांस और रक्तगत श्लीपद, मेदोगत श्लीपद, वातोत्पन्न श्लीपदरोग, अपची, गंडमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, संग्रहणी, सूजन, बवासीर आदि गुदाके रोग तथा कोष्ठस्थित कृमियोंको तत्क्षण नष्ट करता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। उदराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला और हृदयको परम हितकारी है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

विडङ्गादितैल ।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ।
भद्रदार्वेलकाह्वे च सर्वेषु लवणेषु च ॥
तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ४० ॥

वायविडङ्ग, कालीमिरच, आककी जड, सोंठ, चीता, देवदारु, इलायची और सर्वप्रकारके लवण इनके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे । इस तेलको पान और मर्दन करनेसे श्लीपदरोग शीघ्र शमन हो जाता है ॥ ४० ॥

श्लीपदरोगमें पथ्य ।

प्रच्छर्दनं लङ्घनमस्रमोक्षः स्वेदो विरेकः परिलेपनं च ।
पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम् ४१
वार्त्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लपुनर्नवामूलकपूतिकाश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि॥४२॥

वमन, लंघन, रक्तमोक्षण, स्वेदप्रदान, जुल्लाब, प्रलेपादिक्रियायें करना, पुरानें साठी और शालिधानोंके चावल, जौ, कुलथी, लहसन, परवल, बैंगन, सहिंजनेकी फली, करेलादि, पदार्थोंका भोजन, पुनर्नवा, मूली, पूतीकरञ्जके पत्ते, अण्डीका तेल, गोमूत्रादि औषधियें, कडवे चरपरे तथा सर्वप्रकारके पाचक पदार्थ ये सब चीजें श्लीपदरोगमें हितकारी हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्लीपदरोगमें अपथ्य ।

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम् ।
स्वादुरसं पारियात्रसह्यविन्ध्यनदीजलम् ॥
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

पिसेहुए अन्न, दूधके बने (दही, मट्ठा आदि) पदार्थ, गुड, अनूपदेशक प्राणियों का मांस, मीठेरस एवं पारियात्र, सह्याचल और विन्ध्याचलसे निकली हुई नादियों का जल, पिच्छिल (चिकने और चिपकते हुए) द्रव्य, भारी और कफकारक पदार्थ इन सबको श्लीपदरोगी त्यागदेवे ॥ ४३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां श्लीपदरोगचिकित्सा ।

विद्रधिकी चिकित्सा।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ।
मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदं पित्तोत्तरं विना॥ १॥

सर्व प्रकारकी विद्रधिमें प्रथम जौंक लगवाकर दूषित रक्त निकलवावे। फिर मृदु विरेचन देकर हलके अन्नका भोजन और पित्तज विद्रधिको छोडकर स्वेद प्रदान करे॥ १॥

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः।
सुखोष्णौ बहुशो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ॥ २॥

वातकी विद्रधिमें, वातनाशक दशमूलकी औषधियोंके कल्कसे वसा (चर्बी) तेल और घृतादिको सिद्ध करके वारंवार सुहाता सुहाता लेप करना चाहिये॥२॥

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः॥ ३॥

सहिंजनेकी जडकी छालको वेसवार या काँजीमें पीसकर विद्रधिपर लेप और स्वेदक्रिया करे॥ ३॥

यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत्।
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः॥ ४॥

जौ, गेहूँ और मूँग इनको एकत्र पकाकर और पीसकर लेप करे तो अपक्व विद्रधि क्षणमात्रमें ही नष्ट होजाती है॥ ४॥

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलभवाम्भसा।
गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ॥ ५॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ और दशमूल इनके क्वाथमें गूगल अथवा अण्डीका तेल मिलाकर पीनेसे वातजनित विद्रधिरोगमें शीघ्र उपकार होता है॥ ५॥

पैत्तिके शर्करालाजमधुकैः शारिवायुतैः।
प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयसोशीरचन्दनैः॥ ६॥

पित्तकी विद्रधिमें खांड, खीलें, मुलहठी और सारिवा इनको एकत्र दूधमें पीसकर अथवा क्षीरकाकोली, खस और चन्दन इनको पीसकर लेप करे तो पित्तज विद्रधि दूर होती है॥ ६॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ।
यष्ट्याह्वशारिवादूर्वानलमूलैः सचन्दनैः ॥
क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिनाशनः ॥ ७ ॥

बड, पीपल, पाखर, गूलर और बेंत इनकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करे अथवा मुलहठी, गौरसिर, दूब, नलमूल और लालचन्दन इनको दूधमें पीसकर लेप करे तो पित्तकी विद्रधि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

इष्टकासिकतालौहगोशकृत्तुषपांसुभिः ।
मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ८ ॥

ईटका चूरा, रेता, लोहेका चूरा, गोबर, भूसी और धूल इन सबोंको गोमूत्रमें मिलाकर गरम करले फिर अण्डके पत्तेपर फैलाकर कफकी विद्रधिमें सुहाता २ निरन्तर स्वेद देवे ॥ ८ ॥

पित्तविद्रधिवत्सर्वां क्रियां निरवशेषतः ।
विद्रध्योः कुशलं कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ९ ॥

रक्तज और आगन्तुक विद्रधिरोगोंमें पित्तकी विद्रधिकी समान समस्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ।
अचिराद्विद्रधीन्हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ १० ॥

सहिंजनेकी छालके क्वाथमें हींग और सेंधानमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे तो बहुत शीघ्र विद्रधिरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत् ।
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ ११ ॥

सहिंजनेकी जडको जलमें धोकर पत्थरपर पीसकर वस्त्रमें छानलेवे । फिर उस रसको शहदके साथ पान करे तो अन्तर्विद्रधिरोग नाश होता है ॥ ११ ॥

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च ।
जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ १२ ॥

सफेद पुनर्नवेकी जड और वरनावृक्षकी जडके क्वाथको बनाकर पान करे तो अपक्व (बिनापकी) विद्रधि दूर होती है ॥ १२ ॥

शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम् ।
अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १३ ॥

पाढकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर एवं शहदमें मिलाकर पीनेसे अन्तर्विद्रधिरोग शीघ्र शमन होता है॥ १३॥

अपक्के त्वेतदुद्दिष्टं पक्के तु व्रणवत् क्रिया॥ १४॥

ये सब उपर्य्युक्त उपचार अपक्क विद्रधिमें कहे हैं अतः उसी अवस्थामें प्रयोग करे। किन्तु पक्क विद्रधिमें व्रणशोथके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥ १४॥

स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुरासवैः।
पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुद्रुमोऽथवा॥ १५॥

अन्तर्विद्रधि विदीर्ण होकर उसमेंसे ऊपर अथवा नीचेको पीब, रक्तादि बहुत हों तो ईखके रसकी मदिरा, काँजी, मद्य और आसव इनको वरुणादि गणकी औषधियोंके क्काथमें मिलाकर अथवा लाल सहिंजनेके उष्ण क्काथके साथ पान करे॥ १५॥

वरुणादिघृत।

सिद्धं वरुणादिगणैर्विधिना तत्कल्कपाचितं सर्पिः।
अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यं च॥ १६॥
गुल्मानपि पञ्चविधान्नाशयतीदं यथाऽम्बु वायुसखम्।
एतत्प्रातः प्रपिबेद्भोजनसमये निशास्येऽपि॥ १७॥

वरुणादिगणकी औषधियोंके क्काथ और कल्कद्वारा विधिपूर्वक घृतको पकावे, यह घृत यथानियम पान करनेसे अत्युग्र अन्तर्विद्रधि शिरःशूल मन्दाग्नि और पाँचों प्रकारके गुल्मादि रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार जल अग्निको तत्क्षण नष्ट कर देता है। इस घृतको प्रातः मध्याह्न और सन्ध्यासमय भोजनके पश्चात सेवन करे॥ १६॥ १७॥

विद्रधिरोगमें पथ्य।

आमावस्थे रेचनानि लेपः स्वेदोऽस्रमोक्षणम्।
जीर्णाः श्यामाककलमाः कुलत्थलशुनानि च॥ १८॥
रक्तशिग्रुश्च निष्पावः कारवेल्लं पुनर्नवा।
श्रीपर्णं चित्रकः क्षौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः॥ १९॥

विद्रधिकी अपक्क अवस्थामें जुल्लाव देना, प्रलेप, पसीना और रक्त निकलवाना, पुराने समा धान और कलमी धानोंके चावल, कुलथी, लहसन, लाल-

सहिंजना, सेमकी फली, करेला, पुनर्नवा, कुम्भेर, चीता शहद और शोथरोगमें कहीहुई सम्पूर्ण औषधियें हितकारी हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

पक्वावस्थे शस्त्रकर्म्म पुराणा रक्तशालयः ।
घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपो धन्वजा रसाः ॥ २० ॥
शालिञ्चशाकं कदलं पटोलं हिमवालुका ।
चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वं चापि व्रणोदितम् ॥ २१ ॥
नराणां विद्रधिव्याधौ यथावस्थं यथामलम् ।
पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः ॥ २२ ॥

एवं विद्रधिकी पक्व अवस्थामें शस्त्रक्रिया करना, पुराने लाल शालिके चावल, घी, तेल, मूँगका यूष, विलेपी और मरुदेशके पशु-पक्षियोंका मांसरस, शालिञ्चशाक, केलेकी कच्ची फली, परवल, कपूर, चन्दन, गरम करके शीतल किया हुआ जल और व्रणरोगके अधिकारमें कहेहुए सब पदार्थ दोषोंकी न्यूनाधिकता तथा अवस्थानुसार देवे । प्राचीन आयुर्वेदाचार्य महर्षिगणने पूर्वलिखित सब पदार्थोंको हितकर विधान किया है ॥ २०-२२ ॥

विद्रधिरोगमें अपथ्य ।

शोथिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामहितानि च ।
क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥ २३ ॥

शोथाधिकारमें जो द्रव्य अपथ्य विधान कियेगये हैं उनको अपक्वविद्रधिमें और व्रणरोगमें जिनको अहितकर कहा है उन सब पदार्थोंको पक्व विद्रधिमें त्याग देवे२३

इति भैषज्यरत्नावल्यां विद्रधिचिकित्सा ।

व्रणशोथकी चिकित्सा ।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् ।
तृतीयमुपनाहं तु चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥ १ ॥
पञ्चमं शोधनं कुर्य्यात्षष्ठं रोपणमिष्यते ।
एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥ २ ॥

व्रणशोथरोगमें प्रथम विम्लापन (अँगूठेसे तेल लगाकर रगडना) क्रिया करे, दूसरे रक्तमोक्षण, तीसरे उपनाह अर्थात् (पुलटिस बाँधना, प्रलेप, स्वेद और पकानेकी औषधि लगाना), चौथे व्रणको चीरना, पाँचवें दूषित रक्त पीव आदिका शोधन, छठे रोपण (व्रणको भरनेवाली औषधि लगाना) और सातवें विकृतिनाश (अर्थात् व्रणके स्थानमें जो गूथ पडजाती है उसको शारीरिक त्वचाके वर्णमें मिला-देना) इस प्रकार व्रणकी चिकित्सा करनेकी ये सात क्रियायें कही हैं ॥ १ ॥ २ ॥

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ।
तौ च रुक् च दिवास्वप्नात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥३॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन तथा रात्रिमें जागनेसे सूजन और लाली अधिक उत्पन्न होती हैं । दिनमें सोनेसे सूजन, लाली और पीडा एवं स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे सूजन, लाली, पीडा और मृत्यु भी होती हैं ॥ ३ ॥

धुस्तुरमूलं सलवणमुष्णं व्रणस्थित्यारम्भे ।
दत्तं लेपान्नियतं व्रणशोथं हरति बहुदुष्टम् ॥ ४ ॥

व्रणकी प्रथमावस्थामें धत्तूरेकी जड और सैंधानमकको एकत्र पीसकर गरम करके लेप करनेसे अत्यन्त बढीहुई व्रणकी सूजन निश्चय दूर होती है ॥ ४ ॥

कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्धशाखोटकत्वचः ।
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ ५ ॥

सहोरावृक्षकी छालको काँजीमें पीसकर घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे जैसे गरुडजी सर्पोंको तत्काल नष्ट करदेते हैं उसी प्रकार वातकी सूजन नष्ट होती है ॥ ५ ॥

न्युग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ।
ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः परः ॥ ६ ॥

" समभागपिष्टैर्घृतमिश्रैर्लेपः ॥ "

बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंत इनकी छालको समान भाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर उसको घृतमें मिलाकर लेप करे तो अत्यन्त वृद्धिगत व्रणकी सूजन दूर होती है ॥ ६ ॥

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ।
न च पर्युषितं शुष्यमाणं नैवात्रधारयेत ॥ ७ ॥

शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदाहं पीडनं प्रति ।
न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ॥ ८ ॥

रात्रिमें लेप नहीं करे । यदि लेप कीहुई औषधि नीचे पृथ्वीपर गिरपडे तो फिर उसका लेप नहीं करे । एवं बासी और सूखी औषधिका भी लेप नहीं करे । सूखेहुए लेपको तत्काल छुडादेना चाहिये । क्योंकि सूखाहुआ लेप दाह और पीडा उत्पन्न करता है । व्रणके मुखपर लेप नहीं करे क्योंकि उसके मुखके द्वाराही रस रक्तादि दोष बाहर निकलते हैं । अतः व्रणके चारों तरफ लेप करना चाहिये॥७॥८॥

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः ।
शोथे महति संवृद्धे वेदनावति च व्रणे ॥ ९ ॥
यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः ।
सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ १० ॥
एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रुक् ॥ ११ ॥

व्रणरोगमें अधिकतर बढीहुई सूजन और पीडा होनेपर प्रथम रुधिरका निकालना उचित है । क्योंकि, जो सूजन लेप करनेसे, स्वेद देनेसे, सेकनेसे और अपतर्पणादि क्रियाओंके करनेसे भी दूर नहीं होती, वह एकमात्र रुधिर निकालनेसे तत्क्षण नष्ट होजाती है । व्रणशोथमें अन्यान्य सर्वप्रकारकी चिकित्साओंकी अपेक्षा केवल एकमात्र रुधिरका निकालना सर्वोत्तम चिकित्सा हैं । क्योंकि रुधिरके दूषित होनेसे फोडे, फुन्सी आदि रक्तविकार उत्पन्न होते हैं, अतः उस दुष्ट रुधिरके निकाल देनेसे तज्जन्यपीडा शीघ्र नष्ट होती है ॥ ९-११ ॥

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत् ।
तस्योपनाहैः पक्वस्य साधनं हितमुच्यते ॥ १२ ॥

यदि उपर्युक्त क्रियाओंके करनेसे भी सूजन दूर नहीं हो तो उसको प्रलेप, स्वेदादि द्वारा पकाकर छेदन और शोधन कर्म करना हितकारी है ॥ १२ ॥

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ।
मर्मोपरि च जाते च पक्वे भेदनलेपनम् ॥ १३ ॥

बालक, वृद्ध, असहनशील, क्षीण मनुष्य, डरपोक और स्त्रियोंके उत्पन्नहुए व्रणों एवं मर्मस्थानोंमें उत्पन्नहुए व्रणोंको पकनेपर विदीर्णकारक औषधियोंके लेपसे भेदन करे । शस्त्रद्वारा कदापि छेदन नहीं करे ॥ १३ ॥

गवां दन्तं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपयेत् ।
अत्यन्तकठिने वापि शोथे पाचनभेदनम् ॥ १४ ॥

गौके दाँतको जलमें घिसकर एक बूँद भर लगादेनेसे अत्यन्त कठिन सूजन तत्काल पककर फूट जाती है ॥ १४ ॥

कटुतैलान्वितैर्लेपात्सर्पनिर्मोकभस्मभिः ।
चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ॥
कपोतकङ्कगृध्राणां पुरीषमपि दारुणम् ॥ १५ ॥

साँपकी कैंचलीको अन्तर्धूमवाले पात्रमें जलाकर भस्म करलेवे । उस भस्मको कडवे तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा कबूतर, कङ्क और गिद्ध इनमेंसे किसी एककी बीटका लेप करनेसे अत्यन्त दारुण गण्डका समूह नष्ट होता है और व्रणकी गाँठ तत्काल पककर फूट जाती है ॥ १५ ॥

निम्बपत्रं तिलं दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ १६ ॥

नीमके पत्ते, काले तिल, दन्तीकी जड, निसोत और सैन्धानमक इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र पीस लेवे । फिर शहदमें मिलाकर लेप करे तो दुष्ट व्रण नष्ट होता है । व्रणको शुद्ध करनेके लिये यह अत्युत्कट औषधि है ॥ १६ ॥

एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ १७ ॥

केवल एकमात्र सारिवाकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके व्रणोंका संशोधन होता है ॥ १७ ॥

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं लेपात् ।
मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपिणी कथिता ॥ १८ ॥

सतौनेका दूध लगानेसे अथवा शरफोंकेकी जडको पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके दुष्ट व्रण शान्त होते हैं ॥ १८ ॥

मानुषशिरः कपालं तदस्थि वा लेपनं मूत्रेण ।
रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ १९ ॥

मनुष्यके शिरके कपालकी हड्डीको गोमूत्रमें अच्छे प्रकार घिसकर लेप करे । यह प्रयोग जो सैकडों उपायोंके करनेसे भी असाध्य होगये हैं ऐसे व्रणोंको तत्काल भर देता है ॥ १९ ॥

सुषवीपत्रपत्तूरकर्णमोटकुठारके।
पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥ २० ॥

करेलेके पत्ते, शान्तिशाकके पत्ते, बबूरके पत्ते, वनतुलसीके पत्ते इनमेंसे किसी एकको बारीक पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त गम्भीर व्रण शीघ्र भरते हैं ॥२० ॥

लौहकुद्दालके घृष्ट्वा लिम्पाकफलवारिणा।
श्वेतार्कसम्भवं मूलं लेपं दद्यात्क्षतोपरि ॥
अपि योगशतासाध्यं क्षतं हन्ति न संशयः ॥ २१ ॥

सफेद आककी जडको लिम्पाकफल (एक प्रकारका नींबू) के रससे लोहेके हमामदस्तेमें खरल करके व्रणपर लेप करे। यह औषधि सैकडों प्रयोगोंके करनेसे भी सिद्ध न होनेवाले व्रणको निस्सन्देह दूर करती है ॥ २१ ॥

श्वेतकरवीरमूलस्वरसं द्विपलोन्मितम्।
पलाष्टकमितं गव्यक्षीरमेकत्र मिश्रयेत् ॥ २२ ॥
दधि कृत्वा तदावर्त्त्य निर्मथ्य नवनीतकम्।
गृहीत्वा तेन लेपेन क्षतं हन्ति चिरोत्थितम् ॥ २३ ॥

सफेद कनेरकी जडका रस ८ तोले और गौका दूध ३२ तोले लेकर एकत्र मिलाकर दही जमादेवे। फिर उस दहीको मथकर नौनी घी निकाले। उस घृतका लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना घाव शीघ्र नष्ट होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

त्रिफला-गुग्गुलु।

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणाश्चिरोत्थाः सरुजःसशोथाः।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्ति त्रिफलारसेन२४

जो बहुत पुराने, पीडायुक्त, सूजनवाले व्रण हों और जिनमें पाक क्लेदयुक्त (अर्थात् गीला) हो, स्राव होय तथा दुर्गन्ध आती हो ऐसे व्रण शुद्ध गूगल मिले हुए त्रिफलेका रस पीनेसे शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

तिलाष्टक।

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्घृतम्।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥ २५ ॥

काले तिल, सैंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, निसोत, मुलहठी और नीमके पत्ते इन सबको समान भाग लेवे, फिर एकत्र बारीक पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ २५ ॥

निर्वापनं घृतं क्षौद्रं तैलं मधुकचन्दनम्।
लेपनं शोथरुग्दाहरक्तं निर्वापयेद्व्रणात्॥ २६॥

घी, शहद, तेल, मुलहठी और चन्दन इन सबोंको एकत्र मिश्रणकर व्रणमें भरनेसे सूजन, पीडा, दाह और दूषितरक्त तत्काल नष्ट होजाता है॥ २६॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद् व्रणक्रिमीन्।

करञ्ज, नीमके पत्ते, निर्गुंडी इनके रसका लेप करे तो व्रणके कृमि नष्ट होय॥

सप्ताङ्ग-गुग्गुलु।

विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम्।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनम्॥ २७॥

वायविडङ्ग, त्रिफला, सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण एक एक तोला और शुद्ध गूगल ७ तोले लेवे। फिर सबोंको एकत्र घृतमें खरल करके गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन नियमानुसार इस औषधिका सेवन करे और इसपर हितकारी भोजन करे तो दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नाडीव्रणादि सब विकार नष्ट होते हैं॥ २७॥

जात्याद्यघृत और तैल।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशाशारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्म्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च २८
"एवं तैलमपि"

चमेली और नीमके पत्ते, परवल, तेजपात, कुटकी, दारुहलदी, हल्दी, सारिवा, मंजीठ, हरड, मोम, नीलाथोथा, मुलहठी और करञ्जके बीज इनको समान भाग लेकर पीसलेवे। इस कल्कद्वारा एक सेर गोघृत अथवा तिलके तेलको ८ सेर जलमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे। फिर उस घृत या तेलको लगानेसे मर्म्मस्थानमें उत्पन्न हुए व्रण, झिरते हुए, अत्यन्त पीडावाले, अत्यन्त बढे हुए व्रण शीघ्र सूखजाते हैं और अंकुर उग आते हैं॥ २८॥

बृहज्जात्यायतैल ।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः ।
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ २९ ॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया पद्मकेशरम् ।
तुत्थकं शारिवा बीजं नक्तमालस्य दापयेत ॥ ३० ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ ३१ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, करञ्जके पत्ते, मोम, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, पद्माख, लोध, हरड, कमलकेशर, नीलाथोथा, अनन्तमूल और करञ्जके बीज इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र कूटपीस लेवे । फिर इस कल्क और एक सेर तिलके तेलको मिलाकर विधिपूर्वक पकावे ॥ २९-३१ ॥

दद्रुवीसर्परोगेषु कीटरोगेषु सर्वशः ।
विषव्रणे समुत्पन्ने कुष्ठरोगेषु सर्वशः ॥
सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दंष्ट्राविद्धेषु चैव हि ॥ ३२ ॥
नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम् ।
म्रक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ३३ ॥

इस तेलको दाह, विसर्प, सर्व प्रकारके कृमिरोग, विषयुक्त व्रण, सम्पूर्ण कुष्ठरोग तत्काल शस्त्रसे किये हुए व्रण, दाढ, दाँत, और नखोंसे विद्ध हुए व्रण और भयङ्कर स्फोटकादिके व्रणोंमें लेप करे । यह बिगडे हुए मांसादि समस्त क्षतोंको शुद्ध करके शीघ्र भरदेता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

गौराद्यघृत और तैल ।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च ।
प्रपौण्डरीकं ह्रीबेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ॥
जातीनिम्बपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणी ॥ ३४ ॥
मधूच्छिष्टं समधुकं महामेदा तथैव च ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ३५ ॥

वड, गूगल, पीपल, पिलखन और बेंत इन सबोंकी छालको सम भाग लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । पकते २ जब ८ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छान-लेवे । फिर इस क्वाथमें एक प्रस्थ घी अथवा तेल तथा हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ,

जटामांसी, मुलहठी, पौंडा, सुगंधवाला, नागरमोथा, लालचन्दन, चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, बडी करञ्जके बीज, कुटकी, मोम, महुआ और महामेदा इन औषधियोंके समान भाग मिले हुए कल्कको डालकर यथाविधि पाक करे। जब अच्छे प्रकार पकजाय तब उतारकर उत्तम पात्रमें रखदेवे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

एष गौरो महायोगः सर्वव्रणविशोधनः ॥ ३६ ॥
आगन्तुसहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः ।
विषमामपि नाडीं तु शोधयेच्छीघ्रमेव च ।
गौराद्य जातिकाद्यं च तैलमेवं प्रसाध्यति ।
तैलं सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च ॥ ३८ ॥

यह गौराद्यनामक घृत अथवा तेल सर्व प्रकारके व्रणोंको सुखानेवाला है । आगन्तुक, सहज और बहुत पुराने घाव और विषम नाडीव्रणको बहुत शीघ्र शुद्ध करता है । ये गौराद्य और जातिकाद्य तेल छोटे मुखवाले, अत्यन्त विगडे हुए और गंभीर व्रणपर लगानेसे शीघ्र उपकार होता है ॥ ३६-३८ ॥

विपरीतमल्लतैल ।

सिन्दुरकुष्ठविषहिङ्गुरसोनचित्रबाणांघ्रिलाङ्गलिककल्कपक्वतैलम् । प्रासादमन्त्रयुतफूत्कृतलूनफेनं क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमल्लः ॥ ३९ ॥ खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंशनाडीव्रणक्षतविचर्चिककुष्ठपामाः । एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥

सिन्दूर, कूठ, शुद्ध मीठातेलिया, हींग, लहसन, लाल चीता, शरफोंकेकी जड और कलिहारीकी जड इन सब औषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ एक सेर तिलके तेलको ८ सेर जलमें पकावे । पकाते समय इस (ओं ह्रां ह्रीं ह्रैं ह्रौं शिवाय स्वाहा) प्रासाद मंत्रको पढता जावे । यदि पकते हुए तेलमें झाग आवें तो उनको फूँकसे मिटादेवे । जब तेल यथाविधि पककर सिद्ध होजाय तब उत्तम पात्रमें करके रखदेवे । इस तेलको मलनेसे क्लिन्न (ग्लानि) युक्त व्रण शमन होता है । एवं तलवारका घाव, दारुण गण्डरोग, भयङ्कर उपदंश, नाडीव्रण, क्षत, विचर्चिका, कोढ, खुजली आदि रोगोंको यह तेल शीघ्र नष्ट करता है । इसको विपरीतमल्लतेल कहते हैं। इसपर यथेच्छ खान पान और शयनादि कार्य करने चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

व्रणराक्षसतैल।

सूतकं गन्धकं तालं सिन्दूरं च मनःशिला।
रसोनं च विषं ताम्रं प्रत्येकं कर्षमाहरेत्॥
कुडवं सार्षपं तैलं साधयेत्सूर्यतापतः॥ ४१॥

पारा, गंधक, हरिताल, सिंदूर, मैनसिल, लहसन मीठातेलिया और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले और सरसोंका तेल १६ तोले लेवे। फिर इन सबोंको एकत्रकर धूपमें उक्त तेलको तपाकर सिद्ध करे॥ ४१॥

नाडीव्रणं च विस्फोटं मांसवृद्धिं विचर्चिकाम्॥ ४२॥
दद्रुकुष्ठापचीकण्डूमण्डलानि व्रणांस्तथा।
व्रणराक्षसनामेदं तैलं हन्ति गदान् बहून्॥ ४३॥

यह व्रणराक्षसनामवाला तेल नासूर, फोडे, फुन्सी, मांसकी वृद्धि, दाद, कोढ, अपची, खुजली, चकत्ते, सर्व प्रकारके व्रण एवं अन्यान्य अनेकों उत्कट व्याधियोंको नष्ट करता है॥ ४२॥ ४३॥

बृहद्व्रणराक्षसतैल।

कुडवं सार्षपं तैलं तदर्द्धं गोघृतस्य च।
एकीकृत्य पचेत्तत्तु सूर्यावर्त्तरसेन तु॥ ४४॥
चित्रपत्रपलं कल्कं दत्त्वा तत्र विपाचयेत्।
तत्कल्कं स्रावयित्वा तु चूर्णमेषां विनिक्षिपेत्॥ ४५॥
गन्धकं शुद्धसिन्दूरं हरितालं मनःशिला।
हरिद्रा गैरिकं राजी कर्षार्द्धं प्रतिभागिकम्॥ ४६॥
भागार्द्धं पारदं चापि कज्जलीकृत्य मिश्रयेत्।
सुतप्ते मिश्रयित्वा तु तप्तं कृत्वा प्रलेपयेत्॥ ४७॥
कण्डूं विचर्चिकां पामां क्लेदं कुष्ठं सुदुस्तरम्।
वातरक्तं व्रणान्सर्वान्विषविस्फोटदद्रुकान्॥
निहन्त्याशु महाश्वित्रं तैलं तु व्रणराक्षसम्॥४८॥

सरसोंका तेल १६ तोले और गौका घी ८ तोले और चीतेके पत्तोंका कल्क ४ तोले लेवे। इन सबोंको एकत्र हुलहुलके रसमें यथाविधि पकावे। अच्छे प्रकार पकजानेपर तेलको वस्त्रमें छान लेवे। पश्चात् शुद्ध गंधक, सिंदूर, हरिताल, मैनसिल,

हल्दी, गेरू और राई इन औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला एवं छः माशे पारेकी कज्जली बनाकर उक्त गरम तेलमें मिलादेवे। इस तेलको गरम करके लेप करे। यह तेल खुजली, विचर्चिका, पामा, क्लेदयुक्त व्रण, कठिनतर कुष्ठ, वातरक्त, सर्व प्रकारके व्रण, बडे बडे फोडे, शीतलाके व्रण, दाद और अत्यन्त बढा हुआ सफेद कोढ प्रभृति रोगोंको तत्काल ध्वंस करता है। इसका नाम बृहद्व्रणराक्षस तेल है॥ ४४–४८॥

विडङ्गारिष्ट।

विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक् फलानि च।
पाठैलावालुकं धात्री भागान्पञ्चपलान्पृथक्॥ ४९॥
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद् द्रोणावशेषितम्।
पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम्॥ ५०॥
धातकी विंशतिपलं त्रिजातं द्विपलं तथा।
प्रियङ्गुकाञ्चनारागणां सलोध्राणां पलं पलम्॥ ५१॥
व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत्।
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत्॥ ५२॥

वायविडङ्ग, पीपलामूल, रास्ना, कुडेकी छाल और फूल, पाढ, एलुआ और आँवले ये प्रत्येक औषधि बीस तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावे। पकते पकते जब एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर शीतल हो जानेपर उसमें शहद तीन सौ पल, धायके फूल २० पल, इलायची, तेजपात, दारचीनी इनका चूर्ण ८ तोले, फूलप्रियंगु, कचनार, लोध प्रत्येक चार चार तोले, सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण ८ पल लेवे और सबोंको एकत्र बारीक कूटपीसकर डालदेवे। पश्चात् घीके चिकने उत्तम पात्रमें भरकर धानोंकी राशिमें गाडदेवे। और एक महीनेतक इसी प्रकार रखा रहनेदेवे॥ ४९–५२॥

ततः पिबेद्यथार्हं तु जयेद्विद्रधिमुत्थितम्।
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान् प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान्॥
गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसंज्ञकः॥ ५३॥

एक मासानन्तर उसको निकालकर प्रतिदिन उचित मात्रासे सेवन करे तो यह विडङ्गनामक अरिष्ट विद्रधि, ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, गण्डमाला व्रण और हनुस्तम्भादि विकारोंको शीघ्र दूर करता है॥ ५३॥

व्रणरोगमें पथ्य ।

यवषष्टिकगोधूमा जाङ्गला मृगपक्षिणः ।
विलेपी लाजमण्डश्च कटुतैलं घृतं मधु ॥ ५४ ॥
तिलं मसूरतुवरीमुद्गयूषाश्च शर्करा ।
आषाढफलवार्त्ताकुकर्कोटकपटोलकम् ॥ ५५ ॥
कारवेल्लं निम्बपत्रं वेत्राग्रं बालमूलकम् ।
सुनिषण्णकशालिञ्चतण्डुलीयकवास्तुकम् ॥ ५६ ॥
त्रिफला पनसं मोचं दाडिमं कटुकीफलम् ।
जीवन्ती सैन्धवं द्राक्षा स्वादुतिक्तकषायकः ॥ ५७ ॥
समस्तमेतदन्नं तु स्निग्धमुष्णं द्रवोत्तरम् ।
एषणं शमनं दाहः स्वेदनं बन्धनक्रिया ॥ ५८ ॥
व्रणावचूर्णनं लेपो धूपनं पत्रधारणम् ।
उशीरबालव्यजनं चन्दनं तिललेपनम् ॥ ५९ ॥
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम् ।
व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥ ६० ॥

व्रणके शोथ, व्रण, सद्योव्रण और नाडीव्रणमें-जौ, साठीके चावल, गेहूँ, जङ्गली पशुपक्षियोंका मांस, विलेपी, खीलोंका मांड, सरसोंका तेल, घी, शहद, तिल, मसूर, अरहर और मूँगका यूष इनका आहार, खाँड, ढाकके बीज, बैंगन, ककोडे, परवल, करेला, नीमके पत्ते, बेंतकी कोंपल, कच्चीमूली, शिरिआरीशाक, शालिञ्चशाक, चौलाईशाक, बथुआ, त्रिफला, कटहल, केलेका मोचा, अनार, कुटकी, जीवन्ती, सेंधानमक, दाख, मधुर, तीखे और कषैले रसवाले पदार्थ, स्निग्ध, गरम और पतले बने अन्न, एषण (लोहेकी सलाईसे नाडीगति देखना), शमनकारक औषधि, व्रणस्थानको अग्निसे दग्ध, स्वेदप्रदान, बन्धनक्रिया (व्रणपर वायु न लगे इस प्रकार बाँधना), व्रणपर ओषधियोंका चूर्ण, लेप, धूम और पत्तोंका लगाना, नवीन खसका बनाहुआ चँवर डुलाना, लाल चन्दन और तिलोंको पीसकर लेप करना ये सब हितकर पदार्थ अवस्था तथा दोषानुसार मनुष्योंको व्रणशोथ, व्रणरोग, सद्योव्रण और नाडीव्रणादि (नासूर) रोगोंमें सेवन करने चाहिये ॥ ५४-६० ॥

व्रणरोगमें अपथ्य ।

नवानि धान्यानि तिलान्कलायान्माषान्कुलत्थान्कृशरान् हिमाम्भः । क्षीरेक्षुजातान्विविधान्विकारान्मद्यानि शाकानि च पत्रवन्ति ॥६१॥ अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं विदाहि विष्टम्भि गुरूणि चापि । कट्वम्लशीतं लवणं व्यवायमायासमुच्चैः परिभाषणं च ॥ ६२ ॥ प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां प्रजागरं चंक्रमणं नितान्तम् । सदास्थितिं प्रागधिरोपणं च नस्यानि ताम्बूलमजीर्णतां च ॥ ६३ ॥ प्रचण्डवातातपधूमवृष्टिरजोभयक्रोधवमिप्रहर्षान् । शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं तीक्ष्णोष्णरूक्षाणि विघट्टनं च ॥६४॥ कण्डूयनं काष्ठनखादितोदं निरन्नभावं विषमोपचारम् । वैद्यश्चिकित्सन् व्रणशोथरोगं व्रणं च सद्योव्रणमामयं च ॥ नाडीव्रणं चापि यशोऽभिलाषी विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥६५॥

सब प्रकारके नये अन्न, तिल, मटर, उडद, कुलथी, खिचडी, शीतल जल, भाँतिभाँतिके दूधके बने अथवा ईखके रसके बने पदार्थ, मदिरा, पत्तोंवाले शाक, जङ्गलभिन्न अन्यान्यदेशीय जीवोंका मांस, असात्म्य अन्न, दाहकारक, विष्टम्भकारक, गुरुपाकी; कडवे, खट्टे, शीतल और लवण (नमकीन, चरपरे) खाद्य पदार्थ, मैथुन, कसरत करना, जोरसे बोलना, सुन्दरी स्त्रियोंको देखना, दिनमें शयन, रात्रिमें जागरण और हरवक्त टहलना, फोडे फुन्सीको सर्वदा बैठालनेका प्रयत्न करना, व्रणको शुद्ध किये विना ही घावको भरनेवाली औषधि लगाना, नस्य लेना, पान खाना, अजीर्णकारक द्रव्योंका भक्षण, अत्यंत तीक्ष्ण वायु और तीव्रधूपका सेवन, धूम्रपान, वर्षाका जल, धूलि, भय, क्रोध, वमन, अत्यन्त हर्ष, शोक, अपने स्वभावके प्रतिकूल खान पान, तीखे, गरम, रूखे और पिसेहुए द्रव्योंका सेवन, लकडीसे अथवा नाखुनोंसे खुजलाना, लंघन और वैषम्य चिकित्सा करना इन सब अहितकर पदार्थों व क्रियाओंको व्रणशोथ, व्रणरोग, सद्योव्रण और नाडीव्रणादिरोगोंकी चिकित्सा करताहुआ यशको चाहनेवाला वैद्य तत्काल त्यागदेवे ॥ ६१–६५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां व्रणशोथचिकित्सा ॥

सद्योव्रणकी चिकित्सा ।

सद्यःक्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ।
यष्टीमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥ १ ॥

सद्यःक्षत अर्थात् तत्कालके उत्पन्नहुए शूलसहित व्रणमें मुलहठीका चूर्ण मिलाकर मन्दोष्ण घृतसे सेचन करे ॥ १ ॥

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन तु ।
सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ २ ॥

सद्योव्रणमें चिरचिटेके पत्तोंका रस सिंचन करनेसे लोहू बहना बन्द होता है॥२॥

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं संप्ररोहति ।
सद्यःशस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥ ३ ॥

तत्काल शस्त्रादिके लगनेसे उत्पन्नहुए व्रणमें सौबार धोयेहुए घृतके साथ कपूर मिलाकर भरदेवे और उसको बाँधदेवे तो इससे विशेष पीडा नहीं होती और घाव पकता नहीं है ॥ ३ ॥

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यःक्षतविरोहणः ॥ ४ ॥

कुत्तेकी जीभको सुखाकर चूर्ण बनालेवे, उस चूर्णको भरनेसे सद्योव्रण भर जाता है ॥ ४ ॥

इतिसाप्ताहिकं कार्यः सद्योव्रणहितो विधिः ।
साप्ताहात्परतः कुर्याच्छारीरव्रणवत्क्रियाः ॥ ५ ॥

तत्कालजनित घावमें जो चिकित्साविधि कही गई है वे सब एक सप्ताहपर्यन्त करे । तदनन्तर शारीरिकव्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अग्निदग्धव्रणकी चिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् ।
अग्निदग्धव्रणे सम्यक् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ६ ॥

पित्तज विद्रधि और पित्तज विसर्प रोगनाशक प्रलेपादिकोंको अग्निसे जलेहुए व्रणपर यथाविधि प्रयुक्त करे ॥ ६ ॥

तिलं चैवाग्निना दग्धं यवभस्मसमन्वितम् ।
अग्निदग्धव्रणं नश्येदनेनैवानुलेपनात् ॥ ७ ॥

तिलोंकी भस्म और जौकी भस्म इन दोनोंको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे अग्निद्वारा जलाहुआ व्रण सूख जाता है ॥ ७ ॥

तिलतैलैर्यवान्दग्ध्वा समं कृत्वा तु लेपयेत् ।
तेनैव लेपनादाशु वह्निदग्धः सुखी भवेत् ॥ ८ ॥

जौकी भस्म और तिलका तेल इन दोनोंके समान भागको एकत्र मिलाकर प्रलेप करनेसे अग्निसे जलाहुआ व्यक्ति शीघ्र आरोग्य होता है ॥ ८ ॥

सद्योदग्धं च मधुना लेपं कृत्वा भिषग्वरः ।
तत्पृष्ठे यवचूर्णेन लेपः स्याद्दाहशान्तये ॥ ९ ॥

जलेहुए व्रणपर तत्काल शहदका लेप करके ऊपरसे जौका चूर्ण बुरका देवे, इससे व्रणकी जलन दूर होती है ॥ ९ ॥

माहिषीनवनीतेन क्षीरेण पेषयेत्तिलम् ।
तेन लेपेन दग्धाङ्गं सदाहं सुखमश्नुते ॥ १० ॥

तिलोंको भैंसके दूधमें पीसकर और भैंसके ही नैनीघीमें मिलाकर लेप करनेसे जलेहुए अङ्गकी दाह दूर होकर रोगी शीघ्र सुखभोग करता है ॥ १० ॥

महाराष्ट्रीजटालेपाद्दग्धपिष्टावचूर्णनम् ।
जीर्णगेहतृणाच्चूर्णं दग्धव्रणहरं परम् ॥ ११ ॥

जलपीपलकी जडको अथवा जलपीपलकी भुनीहुई पिट्ठीके चूर्णको किम्वा घरके पुराने फूंसकी भस्मको पीसकर लगानेसे अग्निदग्धक्षत तत्काल भरजाता है ॥११॥

कालीयफलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ।
लेपः सगोमयरसः सवर्णीकरणः परः ॥ १२ ॥
चतुष्पदां हि लोमत्वक्खुरशृङ्गास्थिभस्मना ।
तैलाक्ता लेपिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥ १३ ॥

पीलाचन्दन, फूलप्रियंगु, आमकी गुठली, नागकेशर और मंजीठ इन औषधियोंके समान भाग मिश्रित रसोंमें गौके गोबरका रस मिलाकर लेप करनेसे घावके सूखजानेपर उसकी त्वचा समानवर्णवाली होजाती है । चौपायें जानवरोंके रोम, खाल, खुर, सींग और हड्डी इन सबोंकी भस्मोंको तिलके तेलमें मिलाकर मलनेसे शुष्कहुए व्रणके स्थानमें रोम उत्पन्न होते हैं । यदि इन पूर्वोक्त भस्मोंको यथाविधि लेप करे तो भूमिमें भी रोम उत्पन्न होजाते हैं; फिर घावकी कौन कहे ॥ १२ ॥ १३ ॥

अन्तर्दग्धकुठारको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणम्
अश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात् ॥ १४ ॥

सफेद वनतुलसीको अन्तर्धूमपात्रमें भस्म करके अग्निद्वारा जले हुए व्रणपर लेप करनेसे अथवा पीपलकी सूखी छालको उस विधिके अनुसार भस्म करके बारीक पीसकर लेप करनेसे अग्निदग्धव्रण शीघ्र नष्ट होता है ॥ १४ ॥

अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं
पिष्ट्वा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा वालुकाः ॥ १५ ॥

केंचुओंको और तिलोंके तेलको एकत्र विधिपूर्वक पकाकर मालिश करनेसे अथवा सेमलकी रुईको जलमें पीसकर या जलकी रेणुकाको पीसकर लेप करनेसे अग्निसे जला हुआ घाव तत्काल शुष्क होता है ॥ १५ ॥

जीरकघृत ।

जीरकपक्कं पश्चात् सिक्थकसर्ज्जरसमिश्रितं हरति ।
घृतमभ्यङ्गात्पावकदग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन ॥ १६ ॥

जीरेके कल्कको १ सेर लेकर ८ सेर जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्काथमें मोम १६ तोले राल १६ तोले और घृत दो सेर डालकर विधिपूर्वक पकावे । इस घृतको लगानेसे जले हुए घावकी पीडा क्षणमात्रमें ही दूर होती है ॥ १६ ॥

पाटलीतैल ।

सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्याः कटुतैलकम् ।
दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १७ ॥

पाढलके कल्क और क्काथद्वारा सिद्ध किया हुआ कडवा तेल, दग्धव्रणकी वेदना, रक्तका निकलना, जलन और भयंकर फोडोंको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

मंजिष्ठाद्यतैल ।

मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥ १८ ॥

मंजीठ, लालचन्दन और मूर्वा इनको समान भाग मिश्रित एक सेर लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर इस कल्कके द्वारा उपर्युक्त विधिके अनुसार दो सेर सरसोंके तेलको सिद्ध करे । यह तेल सर्व प्रकारके अग्निसे जले हुए घावोंपर व्यवहार किया जाता है । सद्योव्रणरोगमें पथ्य और अपथ्य व्रणशोथरोगकी भाँति करना चाहिये ॥ १८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सद्योव्रणचिकित्सा ॥

भग्नकी चिकित्सा।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना।
पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम्॥
सुश्रुतोक्तं तु भग्नेषु वीक्ष्य बन्धनमाचरेत्॥ १॥

सुश्रुतमें कही हुई विधिके अनुसार भग्न (टूटे) स्थानको जानकर प्रथम उक्त स्थानमें शीतल जल सिञ्चन करे। पुनः कर्दमका लेप कर कुशादिसे बंधन करे अथवा उक्त ग्रन्थमें प्रतिपादित रीतिसे भग्नस्थानको भले प्रकार देखकर बंधन करना उचित है॥ १॥

अवनामितमुन्नह्येदुन्नतं चावपीडयेत्।
आञ्छेदतिक्षिप्तमधये गतं चोपरि वर्त्तयेत्॥ २॥
आलेपनार्थं मञ्जिष्ठां मधुका चाम्लपेषितम्।
शतधौतघृतोन्मिश्रं सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम्॥ ३॥
कर्त्तव्यं स्यात्त्रिरात्राच्च तत्राग्नेयेषु जानता।
काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत्॥ ४॥

भग्नस्थानकी टूटी हुई हड्डीको नीचे दबजानेपर ऊँचा करे और अधिक ऊंची होनेपर तत्क्षण नीचेको दबा देवे। हड्डीके ऊपरको हटजानेपर नीचेको दबावे और नीचेको झुकजानेपर उसे धीरे धीरे दबाकर ऊपरको खींचे और शनैः शनैः मलकर यथास्थानमें करदेवे मझीठ और मुलहठीको काँजीमें पीसकर अथवा शालिधानके चावलोंको पीसकर सौबार धुले हुए घृतमें मिलाकर भग्नस्थानमें लेप करके बाँध-देवे। इस बंधनको हेमन्त और शीतकालमें ७ दिनके बाद, ग्रीष्मकालमें ३ दिनके बाद तथा वर्षा और शरत्कालमें ५ दिनके बाद खोले॥ २-४॥

न्यग्रोधादिकषायं च सुशीतं परिषेचने।
पञ्चमूलीविपक्वं तु क्षीरं दद्यात्सवेदने॥ ५॥
सुखोष्णमवतार्य वा तत्र तैलं विजानता।
मांसं मांसरसः सर्पिः क्षीरं यूषं सतीनजः॥
बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं भग्नाय जानता॥ ६॥

न्यग्रोधादिगणकी औषधियोंके क्वाथको शीतल करके भग्नस्थानपर सेचन करे। भग्नस्थानमें पीडा होनेपर पञ्चमूलके काढेमें दूधको पकाकर शीतल करके सेचन करे और सुहाते सुहाते तेलकी मालिश कर सेंके। एवं मांस, मांसका रस, घी, दूध और मटरका यूष आदि बृंहण पदार्थ रोगीको भोजन करावे ॥ ५ ॥ ६ ॥

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम्।
शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ ७ ॥
सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम्।
सन्धियुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत्क्षीरेण मानवः ॥ ८ ॥

भग्नरोगी काकोल्यादिगणोक्त औषधियोंके साथ एकवारकी व्याईहुई गौका दूध और घी मिलाकर सिद्ध कियाहुआ शीतल दूध अथवा लाखके चूर्णके साथ गौका घी मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करे। यदि सन्धिस्थानकी हड्डी टूटगई हो तो हडसंहारी, लाख, गेहूँ और अर्जुनवृक्षकी छालको समान भाग पीसकर घी और दूधमें मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं समश्नुताम्।
छिन्नभिन्नच्युतास्थनां च सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ ९ ॥

लहसन शहद, लाख, घृत, और मिश्री इनके समान भाग कल्कको एकत्र कर भक्षण करनेसे कटी, टूटी व अपनेस्थानसे हटीहुई हड्डियाँ जुड जाती हैं ॥ ९ ॥

पीतवाराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम् ॥
अपक्कक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ १० ॥

पीलीकौडीकी भस्मके दो या तीन रत्ती चूर्णको कच्चे दूधके साथ मिलाकर पीनेसें टूटीहुई हड्डी जुडती है ॥ १० ॥

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः स्याज्जीवनीयं च सुखावहं च।
भग्नः पिबेत्त्वक्पयसाऽर्जुनस्य गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ ॥ ११ ॥

दूध, लाख, मुलहठी, घी और जीवनीयगणकी औषधियाँ इन सबोंको एकत्र पकाकर सुखोष्ण पान करनेसे अथवा अर्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको दूधके साथ पीनेसे किम्वा गेहूँके आटेको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे भग्नरोगी शीघ्र आरोग्य होता है ॥ ११ ॥

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः।
प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १२ ॥

भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

भग्नस्थानमें यदि व्रण होगया हो तो न्यग्रोधादिगणकी औषधोंके काढे या कल्कमें घी और शहद मिलाकर लेप करे, पश्चात् भग्नरोगकी समान चिकित्सा करे । टूटीहुई हड्डी जिसप्रकार पकने न पावे इसपर वैद्यको विशेष लक्ष्य रखना चाहिये । भग्नरोगमें वातव्याधिरोगोक्त स्नेहद्रव्य (घृत, तैलादि) प्रयोग करे ॥

लाक्षागुग्गुलु ।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाश्चूर्णीकृता नागबला
पुरश्च । सम्भग्नमुक्तास्थिरुजो निहन्यादङ्गानि कुर्यात्
कुलिशोपमानि ॥ १४ ॥

लाख, हडसंहारी, अर्जुनकी छाल, असगन्ध, गंगेरन और शुद्ध गूगल इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको खानेसे टूटी हुई हड्डीकी पीडा दूर होती है । अस्थि जुडकर अङ्ग वज्रके समान दृढ होय ॥ १४ ॥

आभागुग्गुलु ।

आभाफलत्रिकैर्व्योषैः सर्वैरेभिः समीकृतः ।
तुल्यो गुग्गुलुना योज्यो भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥ १५ ॥

बबूलकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबोंको समान भाग और सब औषधियोंकी बराबर भाग शुद्ध गूगल लेकर एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण नियमानुकूल सेवन करनेपर टूटे हुए सन्धिस्थानोंको जोड देता है ॥ १५ ॥

गन्धतैल ।

रात्रौ रात्रौ तिलान्कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ।
दिवा दिवैवं संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥ १६ ॥
तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकाम्बुना ।
ततः क्षीरं पुनः पीतान्छुष्कान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् ॥१७॥
काकोल्यादिं श्वदंष्ट्राह्वं मञ्जिष्ठां सारिवां तथा ।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ १८ ॥
शतपुष्पां च सञ्चूर्ण्य तिलचूर्णानि योजयेत् ।
पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ १९ ॥

चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ।
एलामंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा ॥ २० ॥
लोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिवाम् ।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ २१ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना ॥ २२ ॥

काले तिलोंको एक स्वच्छ वस्त्रकी पोटलीमें बाँधकर प्रतिदिन रात्रिमें नदी आदि के बहतेहुए जलमें डुबोकर रक्खे और प्रतिदिन प्रातःकाल उनको जलमेंसे निकालकर धूपमें सुखाके गोदुग्धमें भावना देवे । इस प्रकार सात दिनतक भावना देवे । फिर पूर्वोक्त अवधितक दूधमें भावना देकर सुखालेवे । फिर उनको खूब बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णके साथ काकोल्यादि गणकी औषधियाँ, गोखुरू मंजीठ, सारिवा, कूठ, सफेदराल, बालछड, देवदारु, लालचन्दन और सोया इनको समानभाग लेकर चूर्ण करके मिलादेवे । तदनन्तर तेल निकालनेके लिये समस्त चूर्णको कोल्हूमें डालकर पेले और पेलते समय तेल निकालनेको जल न डाले, किन्तु सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे सिद्ध किये हुए जलको डालकर तेल निकाले । फिर उस तेलको चौगुने दूध एवं छोटी इलायची, शालपर्णी, तेजपत्र, जीवन्ती, असगन्ध, लोध, पुण्डरीक, तगर, भूरिछरीला, श्वेतविदारीकन्द, अनन्तमूल, मूर्वा, सिंघाडे और पूर्वोक्त काकोल्यादि गणकी औषधियाँ, इन सबोंके कल्कके साथ शास्त्रविधिको जाननेवाला वैद्य मन्दमन्द अग्निसे पकावे ॥ १६-२२ ॥

एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथाऽर्दिते ॥ २३ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ २४ ॥
पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥ २५ ॥
मुखं च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ २६ ॥

राजार्हमेतत्कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः।
तिलचूर्णसमं त्वत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ २७ ॥

यह तेल अस्थिभग्नवाले रोगियोंको सर्वदा पथ्य है। इसको सर्व प्रकारके कर्म्मोंमें प्रयोग करना चाहिये तथा आक्षेपकवात, पक्षवात, तालुशोष, अर्दितवात, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बधिरता, तिमिररोग और अत्यधिक स्त्रीप्रसङ्गकरनेसे उत्पन्न हुई क्षीणतामें यह तेल विशेष हितकारी है। पान, अभ्यङ्ग, नस्य, वस्तिकर्म्म और भोजनमें इसको सेवन करे। इसके मर्दनसे, कन्धे और छातीकी वृद्धि होती है, मुख कमलकी समान कान्तिमान् और सुगन्धित श्वासयुक्त होजाता है। यह गन्धतेल सर्व प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है। यह तेल राजाओंके योग्य है, अतः प्रतिभाशाली वैद्य इसको राजाओंके लिये ही बनावे। इसमें तिलोंके चुर्णके बराबर भाग सब चूर्ण लेने चाहिये ॥ २३-२७ ॥

भग्नरोगमें पथ्य।

शीताम्बुसेचनं पंकप्रदेहो बन्धनक्रिया।
शालिप्रियङ्गुगोधूमा यूषो मुद्गसतीनयोः ॥ २८ ॥
नवनीतं घृतं क्षीरं तैलं माषरसो मधु।
पटोलं लशुनं शिग्रुः पत्तूरो बालमूलकम् ॥ २९ ॥
द्राक्षा धात्री वज्रवल्ली लाक्षा पञ्चापि बृंहणम्।
तत्सर्वं भिषजा नित्यं देयं भग्नाय जानता ॥ ३० ॥

शीतल जल छिडकना, कीचका लेप, पट्टी बाँधना, शालिधानोंके चावल, मालकांगनी और गेहूँका भोजन, मूँग और मटरका यूष, नैनी घी, दूध, तेल, उडदोंका यूष, शहद, परवल, लहसन, सहिंजना, शान्तिशाक, कच्ची मूली, दाख, आँवले, हडसंहारविल, लाख और पुष्टिकर सब द्रव्योंको सुयोग्य वैद्य भग्नअस्थिवाले रोगीके लिये प्रतिदिन विचारपूर्वक देवे। ये सब उक्तरोगमें विशेष हितप्रद हैं ॥ २८-३० ॥

भग्नरोगमें अपथ्य।

लवणं कटुकक्षारमम्लं मैथुनमातपम्।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ३१ ॥

भग्नास्थिवाला रोगी नमक, कडवे, खारी और खट्टेरसवाले पदार्थ, स्त्रीसहवास, धूपका सेवन, कसरत एवं रूखेअन्नोंके भोजनको तत्काल त्याग देवे ॥ ३१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भग्नचिकित्सा।

नाडीव्रणकी चिकित्सा ।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित् ।
सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडीव्रण (नासूर) की गतिको (अर्थात् राध कहाँतक फैली है) जानकर उस स्थानको शस्त्रसे चीरकर सम्पूर्ण राधआदिको निकाल देवे । फिर व्रणरोगमें कही हुई विधिके अनुसार सब प्रकारकी रोपण, शोषण आदि चिकित्सा करे ॥ १ ॥

नाडीं वातकृतां साधु पाटितां लेपयेद्भिषक् ।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ २ ॥
पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशायुगैः ।
श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥
शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम् ॥ ३ ॥

वातजन्य नाडीव्रणको प्रथम शस्त्रसे उत्तम प्रकार चीरकर लेखन क्रिया करे । पश्चात् श्वेत चिरचिटेके बीज और तिलोंको एकत्र पीसकर लेप करे । पित्तज नाडीव्रणमें तिल, मंजीठ, हाथी सुण्डा लता, हल्दी और दारुहल्दी इनको पीसकर लेप करे । कफजनित नाडीव्रणमें तिल, मुलहठी जमालगोटेकी जड, नीमके पत्ते और सैंधानमक इनको पीसकर लेप करे । शल्य (काटाँ, शस्त्रादि) के विद्ध होनेसे उत्पन्न हुए नाडीव्रणको शस्त्रसे चीरकर शल्यको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करे । फिर तिल, शहद, घी, एकत्र पीसकर लेप करे ॥ २ ॥ ३ ॥

आरग्वधनिशाकालचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ।
सूत्रवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधिनी गतिनाशिनी ॥ ४ ॥

अमलतासके पत्ते, हल्दी और काकादनीवृक्षकी छाल इन सबोंके १ तोला चूर्णमें घी दो तोले, शहद दो तोले और गोमूत्र ८ तोले डालकर एकत्र पकावे फिर इसमें सूतकी बत्तीको भिगोकर व्रणमें रक्खे । यह बत्ती व्रणको शुद्ध करनेवाली और राधकी गतिको नष्ट करनेवाली है ॥ ४ ॥

घोण्टाफलत्वङ्मदनात्फलानि
पूगस्य च त्वग्लवणं च मुख्यम् ।

स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैव कल्को
वर्त्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ५ ॥

वनबेरकी छाल, मैनफल, सुपारीकी छाल और सैंधानमक इनके समान भाग चूर्णको थूहरके दूध और आकके दूधमें पीसकर कुछके गरम करके बत्ती बनालेवे। यह बत्ती व्रणमें रखनेसे नासूरको बहुत शीघ्र नष्ट करती है ॥ ५ ॥

वर्त्तीकृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा ।
दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥६॥

सैंधानोन और शहदको एकत्र अग्निमें पकाकर उससे सूतकी बत्ती बनाक व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण शुष्क होता है । दुष्टव्रणमें जो तेल कहे हैं उनको प्रयोग करनेसे राधकी गति शीघ्र नष्ट होती है ॥ ६ ॥

जात्यर्कशम्याककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः ।
वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा सहमाक्षिकेण॥

चमेलीके पत्ते, आककी जड, अमलतासके पत्ते, करञ्ज, दन्तीकी जड, सैंधानोन कालानोन और जवाखार इनको बराबर बराबर लेकर थूहरके दूध और शहदमें खरल करके बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको व्रणमें प्रवेश करनेसे नासूररोग तत्काल नाश होता है ॥ ७ ॥

माहिषं दधि कोद्रवभक्तमिश्रितं हरति चिरविरूढाम् ।
भक्तं कङ्गुनिकाभवमतिदारुणां नाडीं शमयेत् ॥ ८ ॥

भैंसका दही, कोदोंका चूर्ण और मालकाँगुनीकी जडका चूर्ण इनको सेवन करनेसे चिरकालोत्पन्न दारुण नाडीव्रणरोग शीघ्र शमन होता है ॥ ८ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या ।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ९ ॥

कृश, निर्बल और डरपोकरोगियोंके उत्पन्न हुए एवं मर्मस्थानोंमें उत्पन्नहुए नाडीव्रणको क्षारमें भीजे हुए डोरेसे फोडे, किन्तु शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे ॥ ९ ॥

एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् ।
सूचीं विदध्याद्गत्यन्ते चोन्नाम्य चाशु निर्हरेत् ॥ १० ॥
सूत्रस्यान्तं समानीय गाढबन्धं समाचरेत् ।
ततः क्षीणबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ११ ॥

क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो यावन्न छिद्यते गतिः।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ १२ ॥

एषणी (लोहेकी सलाई) से नाडीव्रणकी गतिको जानकर क्षारसूत्र पिरोई हुई सुईको व्रणकी गतिके अन्तमें छेद देवे। फिर सुईको भीतरतक प्रवेश करके बाहर निकाल लेवे और सुईमेंसे डोरेको अलग करके उसके दोनों सिरोंको मिलाकर अच्छे प्रकार गाँठ देकर बाँध देवे। यदि इस क्षारसूत्रसे नाडीव्रणका मार्ग छिन्न न हो तो दूसरा क्षारसूत्र उल्लिखित विधिसे प्रवेश करे। जबतक नाडीकी गति छिन्न भिन्न न होवे तबतक इसी प्रकार बराबर क्षारसूत्र प्रविष्ट करता रहै। वैद्य इस विधिको भगंदररोगमें भी करे ॥ १०-१२ ॥

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत्।
सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः ॥
मूलं सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद् व्रणम् ॥ १३ ॥

अर्बुदादि रोगोंमें ग्रंथि रसौली आदिको ऊँचा करके उनकी जडमें क्षारसे भीगा हुआ डोरा बाँधे अथवा जौकी समान मुखवाली सुईसे चारों ओरको छेदकर उसकी मूलको क्षारसूत्रसे बाँध देवे। व्रणके छिदजानेपर व्रणरोगोक्त अन्यान्य चिकित्सा करे ॥ १३ ॥

गुणवतीवर्त्ति।

तुल्यं सर्वरसं लोध्रं सिन्दूरातिविषे निशा।
अक्षं कपित्थश्रीवासो गुग्गुलुर्घृततैलकैः ॥ १४ ॥
तुल्यांशं पेषयेत्पिण्डं तत्तुल्यं सिक्थकं भवेत्।
वर्त्तिर्गुणवती नाम जुष्टा शीतजलान्विता ॥ १५ ॥
दुःसाध्यव्रणगण्डेषु तथा नाडीव्रणेषु च।
शोधने रोपणे चैव स्वास्थ्यमुत्पादयत्यसौ ॥ १६ ॥

राल, लोध, सिंदूर, अतीस, हल्दी, तूतिया, कच्चा कैथ, तार्पीनका तेल और गूगल ये प्रत्येक एक एक तोला एवं मोम सब द्रव्योंके बराबर भाग लेवे। फिर इन सबोंको तेल और घृतके साथ कढाईमें डालकर पकाकर बत्ती बनालेवे। यह गुणवतीनामवाली बत्ती दुःसाध्य व्रण और नासूरमें प्रलेप करनेसे व्रणको शुद्ध और शुष्क कर शीघ्र आरोग्यप्रदान करती है ॥ १४-१६ ॥

सप्तांगगुग्गुलु ।

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः ।
नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः ॥ १७ ॥

हरड़, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल ये सब समान भाग और शोधित गूगल सब द्रव्योंके बराबर लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । पुनः इस चूर्णको घीमें खरल करके गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन एक एक गोलीको सेवन करनेसे नासूर, दुष्टव्रण, शूल, भगन्दर आदिरोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

श्यामाघृत ।

श्यामात्रिभण्डीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया तिल्वकवृक्षकेण ।
घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगतापि या स्यात् १८

अनन्तमूल, निसोत, त्रिफला, हल्दी, लोध और कुडेकी छाल इनके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्कके द्वारा दो सेर घृतको ८ सेर दूधमें पकावे । इस घृतसे नाडीव्रणको तृप्त करनेसे कोष्ठतक पहुँची हुई राधकी गति नष्ट होकर व्रण शीघ्र सूख जाता है ॥ १८ ॥

स्वर्जिकाद्यतैल ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिकाः ।
खरमञ्जरिबीजानि तैलं गोमूत्रपाचितम् ॥
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १९ ॥

सज्जी, सैंधानमक, दन्ती, चीता, सफेद आक, नलमूल, नीलवृक्षकी जड और चिरचिटेके बीज इन सबोंके कल्क द्वारा तिलके तेलको गोमूत्रमें पकावे । यह तेल दुष्टव्रण और कफजन्य नाडीव्रणको दूर करता है ॥ १९ ॥

कुम्भीकाद्यतैल ।

कुम्भीकखर्ज्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां च शलाटु-
कल्कैः । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्ता-
सरलप्रियंगूः ॥ २० ॥ सौगन्धिकामोचरसाहि–पुष्प-
लोध्राग्नि दत्त्वा खलु धातकीं च । एतेन शल्यप्रभवा हि
नाडी रोहेद्व्रणो वै सुखमाशु चैव ॥ २१ ॥

पुन्नागवृक्षकी लता, खजूर, कैथ, बेल, बड और गूलर इन सबोंको कच्चे फलोंके द्वारा यथाविधि क्वाथ बनावे । फिर इस क्वाथमें तिलका तेल तथा

नागरमोथा, धूपसरल, फूलप्रियंगु. अनन्तमूल, मोचरस, नागकेशर, लोध चीता और धायके फूल इन सबोंको कल्क डालकर यथानियम तेलको सिद्ध करे । इस तेलको लगानेसे शल्योत्पन्न नाडीव्रण और नानाप्रकारके व्रण भरजाते हैं और रोगी शीघ्र सुखी होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

भल्लातकाद्यतैल ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वय-
चित्रकैश्च । स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं
कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ २२ ॥

भिलावे, आककी जड, कालीमिरच, सैंधानोन, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी और चीतेकी जड इनका समान भाग मिलाहुआ कल्क १ सेर, तिलका तेल ४ सेर और भाँगरेका रस १६ सेर लेवे । सबको एकत्रकर उत्तम रूपसे तेलको पकावे । यह तेल व्यवहार करनेसे कफज और वातज नाडीव्रण, अपचीरोग एवं सर्वप्रकारके व्रणोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २२ ॥

निर्गुण्डीतैल ।

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु ।
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीव्रणविशोधनम् ॥ २३ ॥
हितं पामापचीनां तु पानाभ्यञ्जननावनैः ।
विविधेषु च रोगेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥ २४ ॥

जड और पत्तोंसहित निसोतको कूटकर निकालाहुआ रस २ सेर और तिलका तेल २ सेर इन दोनोंको एकत्र पकाकर पान, मालिश अथवा नस्यग्रहण करनेसे सर्वप्रकारके नाडीव्रण (नासूर), खुजली, अपची, व्रणरोग और अन्यान्य विविध प्रकारके रोग तत्काल नाश होते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

हंसपदीतैल ।

हंसपद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसैः ।
तत्कल्कैश्च पचेत्तैलं नाडीव्रणविरोहणम् ॥ २५ ॥

हंसपदीके पत्ते, नीमके पत्ते और चमेलीके पत्ते इनका समान भाग मिश्रित क्वाथ १६ सेर एवं इन्हींका कल्क १ सेर लेवे । इनके द्वारा ४ सेर तिलके तेलको विधिपूर्वक सिद्ध करे । यह तेल नाडीव्रणको तत्काल सुखा देता है ॥ २५ ॥

नरास्थितैल ।

नरास्थितैललेपेन स्फुटितः शुष्यति व्रणः ॥ २६ ॥

मनुष्यके शिरकी हड्डीको पीसकर उसके द्वारा सिद्ध किये हुए तेलको लगानेसे फूटा हुआ व्रण शीघ्र सूखता है ॥ २६ ॥

नाडीव्रणमें पथ्य और अपथ्य व्रणशोथकी समान करना चाहिये ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नाडीव्रणचिकित्सा ।

भगन्दरकी चिकित्सा ।

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोधयेत्ततः ।
रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥

गुदाकी सूजनको देखकर तत्काल रोगीको लंघन कराकर सुखावे और दस्त कराकर शुद्ध करे । यदि इस प्रकार करनेसे सूजन कम न हो तो शोथस्थानमें जौंक लगवाकर रुधिरको निकलवावे । इस प्रकार करनेसे शोथ पकता नहीं है ॥ १ ॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ।
सुपिष्टाः पिडिकान्ते च लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ २ ॥

बडके पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इन सबोंको समान भाग लेके एकत्र पीसकर भगन्दरकी गूमडियें जहाँतक फैली हों वहाँतक लेप करना ॥ २ ॥

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ।
भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः ॥
एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ ३ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहल्दी इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर बहते हुए भगन्दरमें सप्रयत्न प्रवेश करे । यह बत्ती शरीरकी सम्पूर्ण नाडियोंके विकारोंको दूर करती है ॥ ३ ॥

तिलाभयाकुष्ठमरिष्टपत्रं निशे वचा लोध्रमगारधूमः ।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ४ ॥

तिल, हरड, कूठ, नीमके पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, वच, लोध और गृहधूम इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर इस चूर्णको भगन्दर, नाडीव्रण और उपदंशके दुष्ट व्रणोंपर लेप करनेसे उक्तव्रण शुद्ध होकर भरते हैं ॥ ४ ॥

त्रिफलारससंपिष्टं बिडालास्थिप्रलेपनम् ।
भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ ५ ॥

त्रिफलाके क्काथमें बिलावकी हड्डीको घिसकर लेप करनेसे भगन्दरका दुष्टव्रण अल्पकालमें नष्ट होता है ॥ ५ ॥

भगन्दरं प्रत्यहं तु सुधौतं त्रिफलाम्बुना ॥ ६ ॥

प्रतिदिन त्रिफलेके क्काथसे भगन्दरको धोना चाहिये ॥ ६ ॥

खरास्रपक्कभूनागचूर्णलेपो भगन्दरम् ।
हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥ ७ ॥

गधेके खूनमें केंचुओंके चूर्णको पकाकर लेप करनेसे भगन्दर रोग नष्ट होता है अथवा दन्तीकी जड, आककी जड और अतीस इनको एकत्र पीसकर लेप करें किम्वा कुत्तेकी हड्डीको त्रिफलेके क्काथमें घिसकर प्रलेप करे तो भगन्दर दूर होता है ॥ ७ ॥

शम्बूकस्य च मांसानि भक्षयेद्व्यञ्जनादिभिः ।
अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते स भगन्दरात् ॥ ८ ॥

जो अजीर्णकारक द्रव्योंको छोडकर अनेक प्रकारके व्यञ्जन और आहारके साथ शम्बूक (घोंघा) के मांसको एक महीनेतक भक्षण करे तो वह भगन्दररोगी भगन्दररोगसे मुक्त होता है ॥ ८ ॥

नारायणरस ।

दरदं पार्वतीपुष्पं कुनटी पुरुषो रसः ।
शोणितं गन्धको दैत्यः सैन्धवातिविषे चवी ॥ ९ ॥
शरपुङ्खा विडङ्गश्च यमानी गजपिप्पली ।
मरिचार्कौ च वरुणो धूनकं च हरितकी ॥
सम्मर्द्य कटुतैलेन गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥ १० ॥

सिंगरफ, गोपीचन्दन, रसौंत, मैनसिल, सुवर्ण, शुद्ध पारा, ताँबा, शुद्ध गन्धक, लोहा, सैन्धानमक, अतीस, चव्य, शरफोंका, वायविडङ्ग, अजवायन, गजपीपल, कालीमिरच, आककी मूल, वरुणाकी जड, सफेद राल और हरड इन सब द्रव्योंको १-१ तोला ले सरसोंके तेलमें खरलकरके गोलियाँ बनालेवे ॥ १० ॥

नाडीव्रणं प्रदुष्टं च गण्डमालां विचर्चिकाम् ।
चिरदुष्टव्रणं दद्रुं पूतिकर्णं शिरोगदम् ॥ ११ ॥
हस्तपादपरिस्फोटं दुःसाध्यं च भगन्दरम् ।
एतान्रोगान्निहन्त्याशु गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १२ ॥

यह औषधि नासूर, गण्डमाला, विचर्चिका, बहुत पुराना दुष्टव्रण, दाद, पूतिकर्ण, शिरोरोग, हाथ पैरके फोडे और दुःसाध्य भगन्दर इत्यादि रोगोंको तत्क्षण इस प्रकार नष्ट करती है जिस प्रकार मृगेन्द्र गजेन्द्रको नष्ट कर देता है ॥ ११ १२ ॥

चित्रविभाण्डक रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम्।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं तेन प्रलेपयेत् ॥ १३ ॥
द्वयोः समं भस्म पूर्णभाण्डे रुद्ध्वा विपाचयेत्।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥
जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत् ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा एक तोला और शुद्ध गन्धक दो तोले, इनको घीग्वारके रसमें तीन दिनतक खरल करके गोलासा बनाले, फिर उस गोलेसे तीन तोले शुद्ध ताँबेके पत्रको लीपे और इन दोनोंके बराबर भाग उपलोंकी राखको एक हाँडीमें भरकर ऊपरसे उक्त पत्रको रक्खे और उसके ऊपर फिर राख भरकर हाँडीके मुखको अच्छेप्रकार बन्द करके दो प्रहरतक तीव्र अग्निमें पकावे। जब पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे। पश्चात् इस चूर्णको जम्बीरीनीम्बूके रसमें पीसकर मूषायन्त्रमें रखकर सातवार पुटपाक करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

गुञ्जैकं मधुनाऽऽज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम्।
मुषली लवणं चानु चारनालयुतं पिबेत् ॥ १५ ॥
कर्त्तव्यो मधुराहारो दिवास्वप्नं च मैथुनम् ॥
वर्जयेच्छीतलाहारं रसे चित्रविभाण्डके ॥ १६ ॥

इसकी एक एक रत्ती मात्राको मधु और घृतमें मिलाकर चाटनेसे भगन्दररोग नष्ट होता है। औषधि सेवन करनेके पीछे मुसली और सैंधानमकको काँजीमें पीसकर पान करे। इसपर मधुर पदार्थोंका भोजन करे। किन्तु दिनमें सोना, मैथुन करना और शीतल द्रव्योंका आहार करना त्यागदेवे ॥ १५ ॥ १६ ॥

ताम्रप्रयोग।

ताम्रपत्रं रविक्षीरे निर्गुण्डीस्वरसे तथा।
त्रिकण्टजे स्नुहिरसे ताम्रं दग्ध्वा क्षिपेत्त्रिधा ॥ १७ ॥
रसस्यार्द्धपलं शुद्धं गन्धकस्य पलं तथा।
कज्जल्यार्द्धेन जम्बीरप्लुतेन ताम्रतः पलम् ॥ १८ ॥

परिलिप्यान्धमूषायां दद्यात्पञ्च पुटाँल्लघून् ।
सम्मर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां ततो रक्तिद्वयं लिहेत् ॥
भगन्दरे सर्वभवे कार्यं सर्वव्रणेषु च ॥ १९ ॥

चार तोले ताँबेके पत्रको आकके दूध, निर्गुण्डीके स्वरस, गोखुरूके क्काथ और थूहरके दूधमें यथाक्रम तीन तीन बार भावना देकर तीन तीन बार अग्निमें भस्म करे। पश्चात् शुद्ध पारा दो तोले और शुद्धगन्धक चार तोले लेकर कज्जली बनाकर तीन तोले जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करलेवे। फिर पूर्वोक्त ताम्रपत्रको इस कज्जलीसे लिप्त करके अन्धमूषायन्त्रमें रख हलके हलके पाँच बार पुटदेवे। तदनन्तर उसको निकालकर शहद और घृतमें खरल करके प्रतिदिन प्रातःकाल दो रत्ती भर सेवन करे। इस प्रयोगको भगन्दर और सर्वप्रकारके व्रणोंमें सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है ॥ १७-१९ ॥

नवकार्षिक गुग्गुलु ।

त्रिफलापूरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ।
गुडिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ २० ॥

हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक तीन तीन तोले, गूगल, पाँच तोले और पीपल एक तोला लेवे। पुनः सबको एकत्र खरल करके गोलियाँ बनालेवे। यह गोली सूजन, गुल्म, अर्श और भगन्दररोगवाले रोगियोंके लिये विशेष हितकारी है ॥ २० ॥

सप्तविंशतिकगुग्गुलु ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तविडङ्गामृतचित्रकम् ।
शठ्येला पिप्पलीमूलं हबुषा सुरदारु च ॥ २१ ॥
तुम्बुर्वरुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम् ।
विडसौवर्चलौ क्षारौ सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २२ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः ।
कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ २३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, गिलोय, चीता, कचूर, छोटी इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर (अभावमें धनियाँ), देवदारु, धनियाँ, भिलावेका फल, चव्य, इंद्रायणकी जड, हल्दी; दारुहल्दी, विरियासञ्चरनमक, काला-

नमक, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक और गजपीपल इन सम्पूर्ण औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और समस्त चूर्णसे दुगुनी गूगल लेवे । फिर सबोंको एकत्र उत्तम प्रकार खरल करके बेरकी बराबर गोलियाँ तैयार करलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली मधुके साथ सेवन करे ॥ २१-२३ ॥

कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम् ॥ २४ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमिम् ।
चिरज्वरोपहृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ २५ ॥
आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च ।
नाडीं दुष्टव्रणान्सर्वान् प्रमेहं श्लीपदं तथा ॥
सप्तविंशतिको हन्ति सर्वरोगनिषूदनः ॥ २६ ॥

यह सप्तविंशतिकनामक गूगल खाँसी, श्वास, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलीका शूल, कुक्षि, वस्ति और गुदाके रोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमिरोग एवं बहुत पुराने ज्वर, क्षयसे पीडित मनुष्योंके आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदररोग, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको तत्काल नष्ट करता है ॥ २४-२६ ॥

विष्यन्दनतैल ।

चित्रकार्कस्त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ।
सुधां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥
ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ २७ ॥

चीता, आक, निसोत इनकी जड, पाढ, गूलरकी जड, कनेरकी जड, थूहरकी जड, बच, कलिहारी, हरताल, सज्जी और मालकाङ्गनी इन सबोंको समान भाग लेकर कल्क बनावे और इसी कल्कके द्वारा चौगुने जलमें यथाविधि तिलके तेलको सिद्ध करे ॥ २७ ॥

एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं परम् ॥ २८ ॥

इस विष्यन्दननामवाले तेलको भगन्दर रोगमें व्यवहार करनेसे व्रण शुद्ध होकर शीघ्र भर जाता है और त्वचाका वर्ण अत्युत्तम होजाता है ॥ २८ ॥

करवीराद्यतैल।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वै पचेत्तैलं भगन्दरे॥ २९॥

कनेरकी जड, हल्दी, दन्तीकी जड, कलिहारी, सैंधानमक, चीता, बिजौरे नींबूकी जड, आकका जड और कुडेकी छाल इनके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ तेलको पकाकर लगानेसे भगन्दररोगमें अत्यन्त लाभ होता है॥ २९॥

निशाद्यतैल।

निशार्कक्षीरसिन्धवग्निपुराश्वहनवत्सकैः।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम्॥ ३०॥

हल्दी, आकका दूध, सैंधानोन, चीता, गूगल, कनेरकी जड और कुडेकी छाल इन सबोंका कल्क समान रूपसे मिलाहुआ एक सेर, जल आठ सेर और तिलका तेल दो सेर लेकर सबको एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे। इस तेलको लगानेसे भगन्दररोग शीघ्र नष्ट होता है॥ २९॥

सैन्धवाद्यतैल।

सैन्धवं चित्रकं दन्ती पलाशं चेन्द्रवारुणी।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्यमष्टावशेषितम्॥ ३१॥
क्वाथपादं पचेत्तैलं कल्कः कृष्णायसं मृतम्।
पचेत्तैलावशेषं च तेन लेप्यं भगन्दरम्॥
असाध्यं साधयत्याशु पक्वं कृमिकुलान्वितम्॥ ३२॥

सैंधानमक, चीता, दन्तीकी जड, ढाक और इन्द्रायणकी जड इनको समान भाग लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब पकते पकते आठवाँ भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इसमें क्वाथसे चौथाई भाग तिलका तेल और कल्कके लिये कृष्णलोहकी भस्म ८ तोले मिलाकर तेलको पकावे। जब तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारलेवे। इस तेलको लगानेसे कृमियुक्त और असाध्य भगन्दर-रोग तत्काल नाश होता है। ३१॥ ३२॥

भगन्दररोगमें पथ्य।

आमे संशोधनं लेपो लंघनं रक्तमोक्षणम्।
पक्वे पुनः शस्त्रवह्निक्षारकर्म यथाविधि॥ ३३॥

सर्वेऽपि शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलोरसः ।
पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं पत्तुरो बालमूलकम् ॥ ३४ ॥
तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु ।
एतत्पथ्यं यथादोषं नरैः सेव्यं भगन्दरे ॥ ३५ ॥

भगन्दररोगकी अपक्व (कच्ची) अवस्थामें संशोधन, औषधियोंका लेप, लंघन और रुधिरका निकलवाना आदि कर्म हितकर हैं । और भगन्दरके पकजानेपर शस्त्रक्रिया, अग्निदग्ध एवं क्षारादिकर्म विधिपूर्वक करे । पक्व और अपक्व दोनों अवस्थाओंमें शालिधानके चावल, मूंग, विलेपी, जंगली पशु पक्षियोंका मांसरस, परवल, सहिंजना, बेतकी कोंपल, शान्तिशाक, कच्चीमूली, तिल और सरसोंका तेल, तिक्तवर्ग, घृत और शहद इन सब पथ्य वस्तुओंको दोषानुसार सेवन करना चाहिये ॥ ३३–३५ ॥

भगन्दररोगमें अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि विषमाशनमातपम् ।
व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥
संवत्सरं परिहरेदपि रूढव्रणो नरः ॥ ३६ ॥

स्वभावविरुद्ध अन्नपान और विषम भोजन, धूपका सेवन, कसरत, मैथुन, युद्ध, घोडे, ऊँट, हाथी आदिकी सवारी करना, बोझ उठाना और गुरुपाकी द्रव्योंका सेवन इन सबोंको भगन्दर रोगी व्रणके भरजानेपर भी एक वर्षतक सेवन नहीं करे ॥ ३६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भगन्दररोगकी चिकित्सा ।

उपदंशकी चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः ।
जलौकापातनं वा स्यादूर्द्ध्वाधः शोधनं तथा ॥ १ ॥
सद्यो निर्जितदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ २ ॥

उपदंश (गरमी) रोगमें प्रथम रोगीको स्निग्ध द्रव्य पान कराकर स्वेदित करे । पश्चात् लिंगकी बीचकी शिराको वेधे अथवा जौंक लगवाकर रक्तमोक्षण

करावे । फिर वमन कराकर ऊपरसे और दस्त करवाकर नीचेसे शरीरकी शुद्धि करे । इस प्रकार करनेसे दोषोंकी शान्ति होजानेपर रोगीकी पीडा और सूजन तत्काल नष्ट होती है । लिङ्गकी सूजन जिस प्रकार पके नहीं इसका विशेष यत्न करना चाहिये क्योंकि पकजानेपर लिङ्गेन्द्रियका नाश होजाता है ॥ १ ॥ २ ॥

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ३ ॥

त्रिफलेके काढेसे अथवा भाँगरेके रससे प्रतिदिन उपदंशके व्रणोंको धोवे तो उपदंशरोग शमन होता है ॥ ३ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां समां समधुसंयुताम् ।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ४ ॥

लोहेकी कढाईमें समान भागसे मिलेहुए त्रिफलेको भूनलेवे, फिर शहदमें पीसकर उपदंशपर लेप करे तो शीघ्र व्रण भरजाते हैं । किसी ऋषिका ऐसा मत है कि, समान भाग त्रिफलेको नवीन हाँडीमें रखकर सकोरेसे उसके मुखको अच्छे प्रकार बन्दकरके मिश्रितकरके अग्निमें भस्म करलेवे । पश्चात् उस भस्मको शहदमें मिलाकर उपदंशपर लेप करे तो तत्काल व्रण शुष्क होते हैं ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ।
सक्षौद्रं वा प्रलेपोऽयं सर्वलिङ्गगदापहः ॥ ५ ॥

रसौंतको सिरसकी छाल अथवा हरडके साथ शहदमें पीसकर व्रणपर लेप करे । किंवा रसौंतको शहदमें मिलाकर प्रलेप करे तो सर्वप्रकारके उपदंशविकार दूर होते हैं ॥ ५ ॥

बब्बोलदलचूर्णेन उपदंशहरं परम् ।
गुण्डनं त्वस्थिचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ॥ ६ ॥
लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा ।
सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव च ॥ ७ ॥

बबूरके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छालका चूर्ण किंवा मनुष्यकी हड्डीका चूर्ण व्रणपर लगानेसे उपदंशरोग शीघ्र नष्ट होता है । सुपारीको जलमें घिसकर अथवा कनेरकी छालको पीसकर लेप करे तो उपदंशके व्रण शुष्क होते हैं । उपदंशरोगीको प्रतिदिन जौका भोजन और कुएँका जल सेवन करना चाहिये, इससे

वक्तरोग शीघ्र शान्त होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

जयाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् ।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

उपदंशमें लिङ्गके पकजानेपर जयन्ती, चमेली, कनेर, आक और अमलतास इनके पत्तोंका अलग अलग क्काथ बनाकर व्रणोंको धोवे ॥ ८ ॥

धूप ।

बदरार्कमपामार्गस्तथा ब्राह्मणयष्टिका ।
हिङ्गुलं च समं चैषां भागं कृत्वा तु धूपनम् ॥
दोषजं कर्मजं हन्यादुपदंशादिकं व्रणम् ॥ ९ ॥

बडीबेरकी छाल, आक, चिरचिटा, भारङ्गी और सिंगरफ इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर धूनी देवे । इससे दोषज और कर्मज दोनों प्रकारके उपदंशोंके व्रण नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

धूप ।

रसं वङ्गं च खदिरं हरीतक्याश्च भस्मकम् ।
कोमलं कदलीभस्म गुवाकफलभस्म च ॥ १० ॥
एतत्तोलकमानं स्याद्धिङ्गुलं हरितालकम् ।
गन्धकं तुत्थकं चापि पद्मकं सरलं तथा ॥ ११ ॥
द्वे चन्दने देवदारु वकमं काष्ठमेव च ।
तथा केशरकाष्ठं च माषमानं प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
एकीकृत्य च सञ्चूर्ण्य सर्वं चाङ्गेरिकाद्रवैः ।
तुलसीपत्रजरसैः पुरातनगुडेन च ॥ १३ ॥
घृतेन सह षट् कार्या वटिका मन्त्ररक्षिताः ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा, वङ्ग, सफेद खैर, हरडकी, भस्म; कोमल केलेकी भस्म और सुपारीकी भस्म ये प्रत्येक एक एक तोला, सिंगरफ, हरिताल, शुद्ध गन्धक, तुतिया, पद्माख, धूपसरल, लालचन्दन, सफेद चन्दन, देवदारु, अगस्तिया और नागकेशर ये प्रत्येक एक एक माशा लेवे । फिर सबोंको एकत्र पीसकर लोहेके पात्रमें नोनियाघासके रस और तुलसीके रसको डालकर लोहेके डंडेसे खरक कर पुराने गुड और घृतमें मर्दन करके छः गोलियाँ बनालेवे ॥ १०-१४ ॥

वेदनायामुत्कटायां चतस्रः शुक्लवाससा ।
वेष्टयित्वा च निर्द्धूमाङ्गारोपरि च दापयेत् ॥
तं धूमं परिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादिवेष्टितः ॥ १५ ॥
मुखनासाकर्णबहिर्निश्वासस्य निरोधतः ।
स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायंप्रातर्दिनत्रयम् ॥
मासमात्रं तु पथ्याशी शाकाम्लदधिवर्ज्जनम् ॥ १६ ॥
गुर्वन्नपायसादीनि अपथ्यानि विवर्ज्जयेत् ।
दिनत्रये व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ॥ १७ ॥

तदनन्तर उपदंशमें दारुण पीडा होनेपर रोगी चारोंओरसे सफेद कपडेसे शरीरको ढककर तथा वस्त्रके मध्य सिकोरे आदिमें धूमरहित अग्निके अँगारेको रख उसमें एक गोली डालकर धूमपान करे । किन्तु रोगीको मुख, नासिका और कान वस्त्रसे खुले रखने चाहिये । यदि रोगकी अधिक प्रबलता हो तो दो अथवा चार गोलियोंको डालकर धूमपान करे । इस प्रकार प्रातः और सन्ध्यासमय तीन दिनतक धूमपान करे । धूमग्रहण करनेपर जो पसीना निकले उसको सूखे कपडेसे भीतरही भीतर पोंछलेवे । इसपर एक महीनेतक पथ्यद्रव्योंका भोजन करे और शाक, खटाई, दही, गुरुपाकी अन्न और खीर आदि अपथ्य पदार्थोंको त्यागदेवे । तीन दिनके पश्चात् गरम जलमें स्नान करे ॥ १५-१७ ॥

एवं धूमे कृते शान्ता व्रणाश्च पिडका अपि ।
तथा शोथश्चामवातः खञ्जता पङ्गुतापि च ॥
कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं भैरवेण प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

इस भाँति धूमपान करनेसे उपदंशके व्रण, पिडिका, सूजन, आमवात, खञ्जता, पंगुता, कुष्ठ और उपदंश प्रभृति सम्पूर्ण विकार बहुत शीघ्र नष्ट होते हैं । इस योगको भैरवाचार्यने निर्माण किया है ॥ १८ ॥

लेप ।

विषतिन्दुं लौहपात्रे मलाक्तं निम्बुकद्रवैः ।
घर्षेत्कृष्णसुधामूलं प्रत्येकं माक्षिकं दृढम् ॥ १९ ॥
तुत्थं तदनु सूतं च लौहदण्डेन तद्युतम् ।
सर्वं तदेकतां यातं तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥ २० ॥

लेपे शुष्के पुनर्लेपं दद्याच्छुष्के पुनस्तथा।
शुष्कं न स्रंसयेल्लेपं शुष्कस्योपरि दापयेत् ॥ २१ ॥

मलयुक्त लोहेके पात्रमें कागजीनींबूके रसद्वारा कुचले, थूहरकी जड, सोनामाखी तूतिया और पारेको एक एक माशा लेकर यथाक्रम लोहेके डंडेसे खरल करे। जब ये सब औषधियाँ एकरूप होजावे तब लिंगपर लेप करे। लेपके सूखजानेपर दूसरा लेप करे। फिर जब वह भी सूखजाय तब उस सूखे हुएपरही और लेप करे। सूखे हुए लेपको छुडावे नहीं, किन्तु उसीपर बार बार लेप करता रहै ॥ १९-२१ ॥

भैरवरस।

शुद्धसूतं ग्रहीतव्यं रक्तिकाशतमात्रकम्।
त्रिगुणां शर्करां लौहे निम्बदण्डेन मर्दयेत् ॥ २२ ॥
याममात्रं तत्र दद्याच्छ्वेतं खदिरचूर्णकम्।
सूततुल्यं ततः कुर्यान्मर्दनात्कज्जलोपमम् ॥ २३ ॥
विंशतिर्वटिकाः कार्य्याः स्थाप्या गोधूमचूर्णके।
निःशेषं निःसृता ज्ञात्वा पिडकास्ताः कलेवरे ॥ २४ ॥
भैरवं देवमभ्यर्च्य बलिं तस्मै प्रदाय च।
विधाय योगिनीपूजां दुर्गामभ्यर्च्य यत्नतः ॥ २५ ॥
वटिकास्ताः प्रयोक्तव्या भिषजा जानता क्रियाम्।
दिवसत्रितयं दद्यात्तिस्रस्तिस्रो विजानता ॥ २६ ॥
चतुर्थाच्च समारभ्य एकामेकां प्रयोजयेत्।
एवं चतुर्दशदिनैर्नीरोगो जायते नरः ॥ २७ ॥
पथ्यं शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च।
कुर्यात्साकांक्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते ॥ २८ ॥
जलपानं जलस्पर्शं न कदाचन कारयेत्।
दुःसहायां तु तृष्णायामिक्षुदाडिमकादिकम् ॥ २९ ॥
शौचमुष्णाम्बुना कार्य्यं वाससा प्रोञ्छनं द्रुतम्।
वातातपाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३० ॥

शुद्ध किया हुआ पारा १०० रत्ती और शुद्ध खाँड ३०० रत्ती दोनोंको लोहेके पात्रमें एकत्रकर नीमके डंडेसे एक प्रहरतक अच्छे प्रकार घोटे। फिर उसमें १०० रत्ती सफेद खैरका चूर्ण डालकर घोटे। जब घुटते घुटते कज्जलकी समान बारीक होजाय तब उसकी बीस गोलियाँ बनाकर गेहूंके आटेमें रखदेवे। जब शरीरमें उपदंशके विषद्वारा सब फुन्सियाँ निकलीहुई मालूम हों तब प्रथम भैरवदेवको पूजकर और उनके लिये बलि देकर तथा योगिनी और दुर्गाका विधिपूर्वक पूजन करके पश्चात् उक्तगोलियोंको सुवैद्य यत्नके साथ प्रयोग करे। तीन दिनतक नित्य तीन तीन गोली देवे और चौथे दिनसे एक एक गोली देवे। इस प्रकार १४ दिन तक इन गोलियोंको सेवन करानेसे रोगी शीघ्रही आरोग्य होता है। इसपर खाँडके साथ थोडा घृत मिलाकर अधपका अन्न और सुगन्धियुक्तद्रव्योंका पथ्य देवे। जब इच्छा हो तब उठे बैठे और एकबार भोजन करे। शीतल जलपान और शीतल जलका स्पर्शतक कदापि नहीं करना चाहिये। यदि अधिक तृषा मालूम हो तो ईख और अनारका रस पान करे। शौचके समय उष्णजलसे शुद्धि करे और तत्काल सूखे अँगोछेसे पोंछडाले। शीतलवायु, धूप और अग्नि इनके सम्पर्कको दूर हीसे त्याग देवे ॥ ३० ॥

मेघागमे च शीते वा कार्यमेतद्विजानता ।
मुखरोगे तु सञ्जाते मुखरोगहरी क्रिया ॥ ३१ ॥
श्रमाध्वभाराध्ययनस्वप्नालस्यं विवर्जयेत् ।
ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ३२ ॥
क्रिया श्लेष्महरी युक्ता वातपित्ताविरोधिनी ।
लवणं वर्जयेदम्लं दिवानिद्रां तथैव च ॥ ३३ ॥
रात्रौ जागरणं चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा ।
सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ॥ ३४ ॥
पथ्यं कुर्याद्धितमिदं जाङ्गलानां रसादिभिः ।
व्यायामाद्यं वर्जनीयं यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ॥ ३५ ॥

वर्षा होनेपर अथवा शीतकालमें उपर्युक्त औषधि और धूपादि वस्तुओंको विधिपूर्वक सेवन करे। इस औषधिके सेवन करनेसे यदि मुख पकजाय तो मुखरोगको हरनेवाली चिकित्सा करना श्रेष्ठ है। उपदंशरोगी परिश्रम करना, मार्गमें चलना, बोझ उठाना, पढना, दिनमें सोना और आलस्य इनको त्याग देवे। एवं कपूरादि सुगन्धिवाले द्रव्योंसे सुवासित ताम्बूलको प्रतिदिन भक्षण करे। इस औषधिको

सेवन करनेके अनन्तर कफनाशक और वात पित्तकी मिलीहुई क्रिया करे । नमक, खटाई, दिनमें सोना, रात्रिमें जागना और स्त्री प्रसंग करना तत्क्षण परित्याग करदेवे । उक्त प्रकारसे १४ दिनतक औषधि सेवनके पश्चात् गरमजलसे स्नानकरना और जङ्गलीजीवोंके मांसरसके साथ पथ्य अन्नोंका भोजन करना हितकारी है । जबतक रोगीकी पहले जैसी अवस्थान होजाय तबतक व्यायामादि परिश्रमजन्य कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ३९ ॥

एवं कृतविधानं तु यः करोत्येतदौषधम् ।
स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥
पिडका विलयं यान्ति बलं तेजश्च वर्द्धते ।
रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थि शोथश्च शाम्यति ॥ ३७ ॥
अस्थांभवति दाढर्यं च आमवातश्च शाम्यति ।
भैरवेन समाख्यातो रसोऽयं भैरवः स्वयम् ॥ ३८ ॥

जो जितेन्द्रिय रोगी इस निर्दिष्ट रीतिके अनुसार रहता हुआ औषधि सेवन करता है वहही इस पापरोगको जीतकर सुखी होता है । इस औषधिसे उपदंशकी पिडिकायें नाश होती हैं और बल तथा तेज बढता है । एवं अन्यान्य सब रोग शान्त होजाते हैं, ग्रन्थि और सूजन नष्ट होती हैं, हड्डियें अत्यन्त दृढ होती हैं और आमवातरोग शान्त होता है । इसको भैरवजीने कहा है इससे यह रस भैरवनामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६-३८ ॥

रसगुग्गुलु ।

ग्राह्याः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चन्द्रसमो रसः ।
रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा भवेत् ॥ ३९ ॥
ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः ।
घृतं रससमं दद्यान्मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥ ४० ॥
विंशतिर्वटिकाः कार्यास्तिस्रस्तिस्रो दिनत्रयम् ।
एकादश दिनैरन्या देया एकादशैव ताम् ॥
सप्ताहद्वयमेवं च कारयेद्भिषजां वरः ॥ ४१ ॥

पातनयन्त्रमें शुद्ध किया हुआ पारा १०० रत्ती, चीनी ३०० रत्ती, शुद्ध भैंसिया गूगल ४०० रत्ती और घृत १०० रत्ती लेवे । फिर सबोंको एकत्र लोहेके पात्रमें

लोहेके डंडेसे उत्तम प्रकार खरल करके २० गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके सेवन करनेकी विधि इसप्रकार है-प्रथम तीन दिनतक तीन तीन गोलियाँ भक्षण करे, फिर चौथे दिनसे ११ दिनतक एक एक गोली खावे, इसप्रकार १४ दिनमें यह समस्त औषधि रोगीको सेवन करानी चाहिये ॥ ३९-४१ ॥

लवणं वर्जयेदम्भः पादार्द्धांशनमिष्यते ।
दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्यमाचरेत् ॥ ४२ ॥
मसूरसूपं सगुडं व्यञ्जनं चाथ कल्पयेत् ।
पुनर्नवा पटोलानि तिक्तपत्री च गोक्षुरम् ॥ ४३ ॥
पुटपत्री कोकिलाक्षं शाकार्थे घृतभर्जितम् ।
शर्करा लवणस्थाने वेसवारे धनीयकम् ॥ ४४॥
लवङ्गाजाजिहिंगूनि धान्यकं जीरकाणि च ।
पाकार्थे सम्प्रदातव्यं संस्कारार्थं भिषग्वरैः ॥ ४५ ॥

इसपर लवण और जलको त्यागकर वक्ष्यमाण विधिसे आहार करे। पहले दिन खूराकसे चौथाई, दूसरे दिन आधा और दोदिनके पश्चात् पौन पौन भाग भोजन करे। गुडके साथ व्यञ्जन और मसूरकी दालका यूष पथ्य है। शाकोंमें घीमें भुने-हुए पुनर्नवे, परवल, ककोडे, गोखरू, पुटपत्री और तालमखानेको खाना श्रेष्ठ है। शाकमें नमककी जगह खाँड और मसालेकी जगह धनियाँ डाले। पाकको सुगन्धित करनेके लिये लौंग, कालाजीरा, हींग, धनियाँ और जीरेको एकत्र पीस-कर डाले ॥ ४२-४५ ॥

भैरवस्य रसस्यान्याः क्रिया अत्र प्रयोजयेत् ।
रसगुग्गुलुरेवं हि सर्वाञ्जित्वाऽऽमयानयम् ॥ ४६ ॥
कुष्ठोपदंशनामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ।
कामदेवप्रतीकाशश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥ ४७ ॥

इसमें अन्य सर्व क्रियायें भैरवरसकी समान करे। इस प्रकार व्यवहार किया हुआ यह रसगूगल सर्वप्रकारके रोगोंको नष्टकर उपदंश, कुष्ठ तथा वातादि युक्त रोगोंके व्रणोंको शीघ्र सुखाता है। इसके सेवन करनेसे शरीर कामदेवकी समान कान्तिमान् होता है और वह मनुष्य बहुत कालतक जीता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

सारिवाद्यवलेह ।

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तस्मिन्पादावशेषे तु गुडूची शतमूलिका ॥ ४८ ॥

विदारी जीवनी त्रिवृत्कटुकी त्रिफला तथा ।
क्षुद्रैला त्रायमाणा च प्रत्येकार्द्धपलं मितम् ॥ ४९ ॥
सुपिष्टं निक्षिपेत्तत्र शीते मधुपलाष्टकम् ।
क्षीरानुपानयोगेन पिबेत्तोलकसम्मितम् ॥ ५० ॥

अनन्तमूलको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। पकते पकते जब ८ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस काथमें गिलोय, शतावर, विदारीकन्द, जीवनीयगणकी समस्त औषधियाँ, निसोत, कुटकी, त्रिफला, छोटी इलायची और त्रायमाणा इनके दो दो तोले चूर्णको खूब बारीक पीसकर डालदेवे और उत्तम प्रकार पकावे। जब पककर गाढा होजाय तब उतारले और शीतल होजानेपर आठ पल शहद मिलादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला प्रमाण गोदुग्धके साथ सेवन करे ॥ ४८-५० ॥

प्रमेहाश्चोपदंशश्च मूत्रकृच्छ्रं च पीडिकाः ।
नश्यन्ति त्वपरे रोगा रक्तदुष्टा भवन्ति ये ॥ ५१ ॥
पारदाद्विकृतिश्चापि सन्देहो नात्र कश्चन ।
मुक्तश्च सर्वरोगेभ्यो बलवर्णाग्निसंयुतः ॥
मानवः सिद्धकामोऽस्माच्छीघ्रं भवति निश्चितम् ॥५२॥

इससे बीसोंप्रकारके प्रमेह, उपदंश, मूत्रकृच्छ्र, फुन्सियें एवं अन्यान्य दूषित रक्तसे होनेवाले रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके सेवनसे पारेके खानेसे उत्पन्न हुए विकारभी निस्सन्देह दूर होते हैं। इसको सेवन करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त होकर बल, वर्णयुक्त और अत्यन्त प्रदीप्त अग्निवाला होता है। एवं शीघ्रही इष्टसिद्धिको प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

रसशेखर ।

पारदं चाहिफेनं च द्विर्द्वादश च रक्तिकम् ।
आयसे निम्बकाष्ठेन मर्दयेत्तुलसीरसैः ॥ ५३ ॥
तस्मिन्सम्मूर्च्छिते दद्याद्दरदं रससम्मितम् ।
मर्दयेच्च तुलस्यैव ततश्चैतानि दापयेत ॥ ५४ ॥
जातीकोषफले चैव पारसीययमानिकाम् ।
आकारकरभं चैव द्वात्रिंशद्रक्तिका प्रति ॥ ५५ ॥

मर्दयेत्तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम् ।
दद्यात्खदिरसत्त्वं च वटिका चणकप्रभा ॥ ५६ ॥

पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती लेकर दोनोंको लोहेके बर्त्तनमें नीमके डंडेसे तुलसीका रस डालकर घोटे । जब पारा मूर्च्छित होजाय तब उसमें दो रत्ती सिंगरफ मिलाकर तुलसीके ही रससे दुबारा खरल करे । फिर जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवायन और अकरकरा ये प्रत्येक बत्तीस बत्तीस रत्ती और सबोंसे दुगुना उत्तम प्रकारका खैरसार डालकर तुलसीके रसमें यथाविधि खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ५३-५६ ॥

सायं ह्युभे प्रयोज्ये च लवणाम्लं च वर्जयेत् ।
गलत्कुष्ठं तथा स्फोटान्दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥ ५७ ॥
ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसराः ।
तान् सर्वान्नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसशेखरः ॥ ५८ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन सायङ्कालमें दो दो गोली खाय; नमक और खटाईका त्याग करे, यह रसशेखरनामक सिद्धरस गलत्कुष्ठ, दुष्ट स्फोटक, मर्दभिका, उपदंशके व्रण और अन्य सर्वप्रकारके व्रणोंको तत्काल नाश करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

करञ्जाद्यघृत ।

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ ५९ ॥

करञ्जकी जड, नीम, अर्जुन, शालवृक्ष; जामुन, बड, गूलर, पीपल; पिलखन और बेंत इन सबोंकी छालके कल्क और क्काथके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको सेवन करनेसे दाह, पाक और राधका स्राव होना आदि दोषोंसहित उपदंशरोग नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

भूनिम्बाद्यघृत ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम् ।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ ६० ॥

चिरायता, नीम, त्रिफला, परवल, करंजुआ, जावित्री, खैर और आसना इनके क्काथ और कल्कके साथ विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह घृत नियमानुसार सेवन करनेपर सर्वप्रकारके उपदंशों (आतशक) को बहुत शीघ्र हरता है ॥ ६० ॥

अनन्ताद्यघृत ।

अनन्तामलकीद्राक्षाः काकोलीयुगलं वरीम् ।
एलाद्वयं विदारीं च मधुकं मधुकं मुराम् ॥ ६१ ॥
त्रिफलां स्वर्णपर्णीं च बीजं गोक्षुरसम्भवम् ।
दशमूलं तालमूलीं त्रिवृतामिन्द्रवारुणीम् ॥ ६२ ॥
नीलिनं शूकशिम्ब्याश्च बीजं कर्षप्रमाणतः ।
कल्कीकृत्य पचेत्प्रस्थे सर्पिषः सारिवाम्भसा ॥ ६३ ॥
घृतमेतदनन्ताद्यमुपदंशविनाशनम् ।
रसायनं परं वृष्यमस्रदोषनिषूदनम् ॥ ६४ ॥

प्रथम ४ सेर अनन्तमूलको लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते २ आठ सेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे । फिर कल्कके लिये अनन्तमूल, आमले, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, शतावर, छोटी इलायची, बडी इलायची, विदारी कन्द, मुलहठी, महुआ, कपूरकचरी, त्रिफला, सनाय, गोखुरूके बीज, दशमूलकी सब औषधियाँ, मुसली, निसोथ, इन्द्रायन, नीलवृक्षकी जड और कौंछके बीज इन सब औषधियोंको एक एक कर्ष लेवे और सबोंको एकत्र कूटपसिकर कल्क बनाले । पश्चात् इस कल्क और उपर्य्युक्त क्वाथके द्वारा एक प्रस्थ गोघृतको उत्तम प्रकार पकावे । इस अनन्ताद्य घृतको सेवन करनेसे उपदंशका और तज्जन्य दूषित रक्तका तत्काल नाश होता है । यह घृत अत्यन्त बल, वीर्यवर्धक और परमरसायन औषध है ॥ ६१-६४ ॥

आगारधूमाद्यतैल ।

आगारधूमो रजनी सुराकिण्वं च तैस्त्रिभिः ।
भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ ६५ ॥

घरका धुआ एक पल, हल्दी दो पल और मदिराका मैल तीन पल लेवे । इन सबोंके द्वारा एक प्रस्थ तिलके तैलको विधिपूर्वक पकावे । यह तैल खुजली सूजनको दूर करता है एवं उपदंशके व्रणोंकी राधादिको निकालकर उनको शुष्क कर त्वचाको सुन्दरवर्णवाली बनाता है ॥ ६५ ॥

उपदंशरोगमें पथ्य ।

छर्दिर्विरेको ध्वजमध्यनाडीवेधो जलौकःपरिपातनं च ।
सेकः प्रलेपो यवशालयश्च धन्वामिषं मुद्गरसो घृतानि ॥

कठिल्लकं शिग्रुफलं पटोलं शालिञ्चशाकं नवमूलकं च ।
तिक्तं कषायं मधु कूपवारि तैलं च हन्यादुपदंशरोगम् ६७

वमन, विरेचन, लिङ्गके बीचकी शिराको छेदना, जौंक लगवाना, सेचन, सेंक और लेप करना, जौ, शालिधान, धन्वदेशके पशु पक्षियोंका मांस, मूँगका यूष, घृत, करेला, सहिंजनेकी फली, परवल, शालिञ्चशाक, कच्ची मूली, तीखे और कषैले-रसवाले पदार्थ, शहद, कुएका जल तथा तेल ये सब उपदंशरोगमें हितकारी हैं । इनके सेवनसे उक्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

उपदंशरोगमें अपथ्य ।

दिवानिद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम् ।
आयासमम्लं तक्रं च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ ६८ ॥

उपदंशरोगी दिनमें सोना, मूत्रके वेगको रोकना, भारीअन्न और गुड खाना, मैथुन, कसरत करना, खटाई या खट्टे द्रव्य और मट्ठेका सेवन करना त्यागदेवें; क्योंकि ये सब इसरोगमें विशेष अनिष्टकर हैं ॥ ६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् उपदंशचिकित्सा ।

शूकदोषकी चिकित्सा ।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् ।
हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघु भोजनम् ॥ १ ॥

शूकदोषमें औषधियों द्वारा पकाये हुए घृतको पीना, जुल्लावलेना, रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) और हलका भोजन करना विशेष हितकारी है ॥ १ ॥

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत् ।
तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद्व्रणरोपणम् ॥ २ ॥
क्रियेयमधिमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः ।
अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ३ ॥

शूकदोषरोगमें सर्षपिकानामक पिडिकाको सिहोंडे आदिके पत्तोंसे मर्दनकर ढाक, मंजीठ, पीपल, वडआदि कषायद्रव्योंके चूर्णसे घावको भरे और उपर्युक्त कषायवृक्षोंकी छालके क्काथ तथा कल्कद्वारा पकायेहुए तैलको लगावे तो व्रण शीघ्र सूख जाता है । यह क्रिया अधिमन्थरोगमें भी करे । सर्षपी और अधिमन्थ इन

दोनों रोगोंमें रक्तमोक्षण कराना विशेष उपयोगी है । अष्ठीला रोगमें फस्त-खुलवाकर कफज ग्रन्थिरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।
तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ४ ॥

पकी हुई कुम्भिकामें रक्तमोक्षण करे और राधआदिको निकालकर व्रणको शुद्ध करे । फिर तेंदू, त्रिफला, लोध इन सबोंको एकत्र पीसकर लेप करे अथवा उक्त द्रव्योंके कल्कद्वारा तेलको पकाकर लगावे । इससे व्रण शीघ्र भरता है ॥ ४ ॥

अलज्यां क्रूररक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ।
स्वेदयेद् ग्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ॥
सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ ५ ॥

अलजीरोगमें रक्त दूषित हो तो कुम्भिकाके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । ग्रथित नामक शूकदोषमें स्निग्धद्रव्योंसे रोगीको स्निग्धकर नाडीमें स्वेद प्रदान करके स्निग्ध और सुखोष्ण प्रलेप करे ॥ ५ ॥

उत्तमाख्यां तु पिडकां सञ्छिद्य बडिशोद्धृताम् ।
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥ ६ ॥

उत्तमानामक पिडका (फुन्सी विशेष) को मत्स्यधारण नामवाले यन्त्रसे उखाडकर चीरे । पश्चात् शुद्धकर उसकी कषायद्रव्योंके कल्क अथवा चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करे ॥ ६ ॥

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ।
त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेन्मृदितं पुनः ॥
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ७ ॥

पुष्करी और मूढनामक शूकदोषोंमें पित्तविसर्परोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । एवं त्वक्पाकरोग और स्पर्शहानिशूकमें सेचन करे और मृदित रोगमें खिरैंटीके क्वाथ तथा कल्कद्वारा सिद्ध किये हुए तेलको थोडा गरम करके मलें अथवा मधुरादि गणकी औषधियोंसे उपनाह (स्वेद) देवे ॥ ७ ॥

रसक्रिया विधातव्या लिखिता शतपोनके ।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धं च तैलं देयमनन्तरम् ॥ ८ ॥

शतपोनकनामक शूकदोषकी पिडिकाओंमें लेखन क्रिया करके रसक्रिया करे। एवं पृश्निपर्णी आदि औषधोंके क्वाथ और कल्कद्वारा सिद्ध कियेहुए तैलको लगावे ॥ ८ ॥

रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियाशोणितजेऽर्बुदे।
कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ॥
शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावतारयेत् ॥ ९ ॥

रक्तजनित अर्बुदरोगमें रक्तज विद्रधिरोगकी चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करे। इस रोगमें क्वाथ, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण और रस इन सबोंको शोधन, रोपण कर्ममें अच्छे प्रकार विचारपूर्वक निरीक्षणकर प्रयोग करे ॥ ९ ॥

अर्बुदं मांसपाकं च विद्रधिं तिलकालकम्।
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ १० ॥

अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये असाध्य हैं अतः इन रोगोंको त्यागकर अन्यान्य शूकदोषोंकी चिकित्सा करे ॥ १० ॥

सर्वेषां शूकदोषाणां क्रियां व्रणवदाचरेत्।
उपदंशाधिकारोक्तमौषधं शूकदोषतः ॥ ११ ॥

सर्वप्रकारके शूकदोषोंकी चिकित्सा व्रणरोगोक्त विधिके अनुसार करे और उपदंशरोगमें कही हुई औषधियाँ प्रयोग करे ॥ ११ ॥

दार्वीतैल।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वगृहधूमनिशायुगैः।
तैलमभ्यञ्जने पाने मेढ्ररोगं निवारयेत् ॥ १२ ॥

देवदारु, तुलसी, मुलहठी, घरका धुआँ, हल्दी और दारुहल्दी इनके समान भाग मिश्रित कल्कसे यथाविधि पकाये हुए तैलका पान और मालिश करनेसे लिङ्गके समस्त विकार दूर होते हैं ॥ १२ ॥

शूकदोषमें पथ्य।

लेपो विरेकोऽसृङ्मोक्षः सर्पिःपानं च शालयः।
यवा जाङ्गलमांसानि मुद्गयूषः कठिल्लकम् ॥ १३ ॥
पटोलं शिग्रुकर्कोटं पत्तूरं बालमूलकम्।
वेत्राग्रमाषाढफलं दाडिमं सैन्धवं वरा ॥ १४ ॥

कूपोदकं गन्धसारः कस्तूरी हिमवालुका ।
तिक्तं कषायं तैलं च स्यात्पथ्यं शूकरोगिणाम् ॥ १५ ॥

प्रलेप, विरेचन, रुधिरमोक्षण, घृतपान, शालिधान, जौ, जङ्गली जीवोंका मांस, मूँगका यूष, करेला, परवल, सहिंजनेकी फली, ककोडे, पतंगका वृक्ष, कच्ची मूली, बेंतका अग्रभाग, ढाकके बीज, अनार, सैन्धानमक, त्रिफला, कुँएका जल, सफेद-चन्दन, कस्तूरी, कपूर, तीखे कषायरसवाले द्रव्य और तेल ये सब शूकदोषवाले रोगियोंको हितकारी हैं ॥ १३–१५ ॥

शूकदोषमें अपथ्य ।

मूत्रवेगं दिवानिद्रां व्यायामं मैथुनं गुडम् ।
विदाहि गुरु तक्रं च शूकदोषामयी त्यजेत् ॥ १६ ॥

शूकदोषयुक्त रोगी मूत्रवेगको रोकना, दिनमें शयन, व्यायाम, स्त्रीप्रसङ्ग करना, गुड, दाहकारक, गुरुपाकी अन्न, मट्ठेका सेवन इन सबोंको त्यागदेवे ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूकदोषचिकित्सा ।

कुष्ठरोगकी चिकित्सा ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम् ॥ १ ॥
प्रच्छन्नमल्पे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम् ।
बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ॥ २ ॥

वाताधिक्य कुष्ठरोगमें प्रथम घृतपान, कफाधिक्य कुष्ठमें वमन कराना और पित्ताधिक्य कुष्ठमें रक्तमोक्षण एवं विरेचन कराना हितकारी है । अल्पकुष्ठरोगमें पँछनेके द्वारा अथवा जौंकके द्वारा रक्तमोक्षण करे और महाकुष्ठमें शिराको वेधकर दूषित रक्त निकाले । कुष्ठरोगी यत्नपूर्वक प्राणोंकी रक्षा करता हुआ सम्पूर्ण दोषोंको शुद्ध करे ॥ १ ॥ २ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ३ ॥

जिनका दूषित रक्त निकल गया है और वमन, विरेचनके द्वारा जिनका आमाशय शुद्ध होगया है ऐसे कुष्ठरोगियोंको कुष्ठरोगनाशक प्रलेप करनेसे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः।
एभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलं कण्डूं च दद्रूं च निवारयन्ति ४॥

दूब, हरड, सेंधानमक, चकवड और वनतुलसी इनको एकत्र कांजी अथवा मट्ठेके साथ पीसकर लेप करे। इस प्रकार लेप करनेसे बद्धमूल खुजली और दादरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

तुल्यो रसः शालतरोस्तुषेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः।
पानीयभक्तेन तदम्बुपिष्टो लेपः कृतो दद्रुगजेन्द्रसिंहः ॥५॥

राल, धानोंकी भूसी, चकवड, हरड और मांड इन सबोंको समान भाग लेकर मांडमें पीसकर लेप करे तो यह औषधि दादरूपी गजेन्द्रको सिंहके समान नष्ट करता है ॥ ५ ॥

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः।
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६ ॥

वायविडङ्ग, चकवड, कूठ, हल्दी, सेन्धानमक और सफेद सरसों इनको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रुकुष्ठ दूर होता है ॥ ६ ॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः कृमिघ्नैः।
कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ७ ॥

पमार, कूठ, सेंधानोन, कांजी, सरसों और वायविडंग इन सबोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कृमि, सिध्म, दद्रुमण्डल, कोढ इत्यादिरोग जाय ॥ ७ ॥

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः।
तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठान्युद्वर्त्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ८ ॥

शरीरमें तेलकी मालिश करके अमलतासके पत्तोंका अथवा मकोयके पत्तोंको मट्ठेमें पीसकर किम्वा कनेरके पत्तोंको पीसकर लेपकरे तो कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥

विडङ्गसैन्धवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभिश्च।
गोजलपिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ ९ ॥

वायविडङ्ग, सैंधानमक, हरड, सोमराजीके बीज, सफेद सरसों, करञ्जुआ और हल्दी इनको बराबर २ लेकर एकत्र गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग इस प्रकार नष्ट होजाता है जिसप्रकार सूर्यसे अन्धकारसमूह दूर होता है ॥

कासमर्दकमूलं च काञ्जिकेन प्रपेषितम् ।
दद्रूकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १० ॥

कसौंदीकी जडको काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे दाद, किटिभ और कोढ नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत् ।
दद्रूकिटिभकुष्ठानि निहन्ति सिध्ममेव च ॥ ११ ॥

अमलतासके पत्तोंको काँजीमें पीसकर लेप करे तो दाद, किटिभ, कुष्ठ और सिध्मकुष्ठरोग दूर होते हैं ॥ ११ ॥

चक्राह्वयं स्नुहीक्षीरं भावितं मूत्रसंयुतम् ।
रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनं किटिभापहम् ॥ १२ ॥

चकवडके बीजोंको थूहरके दूधमें ७ दिनतक भावना देकर गोमूत्रमें पीसलेवें । फिर उसको धूपमें कुछ गरम करके लेप करे तो किटिभकुष्ठ जाता है ॥ १२ ॥

शिखरिरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपितं सिध्म ।
क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १३ ॥

मूलीके बीजोंको चिरचिटेके पत्तोंके रसमें बारीक पीसकर अथवा केलेके खारके साथ हल्दीको पीसकर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ शमन होता है ॥ १३ ॥

सक्षारं गन्धकं लेपात्कटुतैलेन सिध्मजित् ।
कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ॥
गन्धाश्मचूर्णमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ १४ ॥

जवाखार और गन्धकको समान भाग लेकर सरसोंके तेलमें पीसकर लेप करे अथवा कसौंदीके बीज, मूलीके बीज और गन्धक इनको बराबर २ लेकर काँजीमें पीसकर लेप करे । यह सिध्मकुष्ठ रोगको नष्ट करनेके लिये परमोत्कृष्ट औषधि है ॥ १४ ॥

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपास्तथा रजनी ।
एतत्केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ १५ ॥

कूठ, मूलीके बीज, फूलप्रियंगू, सफेद सरसों, हल्दी और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर लेप करे तो इससे बहुत दिनोंका पुराना सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है ॥

नीलकुरण्टकपत्त्रैरालिप्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पन्मूलकबीजैः पिष्टैस्तक्रेण सिध्मनाशाय ॥ १६ ॥

नीलीकटसरैयाके पत्तोंको पीसकर बारबार शरीरपर लेप करे। पश्चात् मूलीके बीजोंको मट्ठेके साथ पीसकर प्रलेप करे तो सिध्मकुष्ठ दूर होता है ॥ १६ ॥

एडगजातिलसर्षपकुष्ठं मागधिकालवणत्रयमस्तु।
पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रुककुष्ठम् ॥ १७॥

चकवडके बीज, तिल, सफेद सरसों, कूठ, पीपल, सैंधानमक, कालानमक और विरियासञ्चर नमक इन सबोंको समान भाग लेकर दहीके तोडमें ३ दिनतक भिगो-देवे। जब उसमें दुर्गन्ध आनेलगे तब पीसकर लेप करे तो इससे बिचर्चिका, दद्रु और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसंयुतं बहुशः।
लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा ॥ १८ ॥

सिन्दूर और कालीमिरचोंके चूर्णको भैंसके नैनीघीमें मिलाकर बारबार लेप करनेसे अथवा कनेरकी जडके कल्कद्वारा पकाकर तेलको मलनेसे पामा (खुजली) रोग दूर होता है ॥ १८ ॥

पारदं शङ्खगन्धं च शिला चोत्तरवारुणी।
प्रपुन्नाटश्च सर्पाक्षी मेघनादाग्निलाङ्गली ॥ १९ ॥
भल्लातं गृहधूमं च मुनिगुञ्जा स्नुहीपयः।
अरिष्टं च गुडक्षौद्रं वाकुचीबीजतुल्यकम् ॥ २० ॥
गोमूत्रैरारनालैर्वा पिष्ट्वा लेपं च कारयेत्।
दद्रूमण्डलकण्डूं च विचर्चिं च विनाशयेत् ॥ २१ ॥

पारा, गन्धक, शंखभस्म, मैनसिल, इन्द्रायनकी जड, पमारके बीज, गन्धनाकुली, ढाककी जड, चीतेकी जड, कलिहारी, भिलावे, घरका धुआँ, अगस्तियाकी जड, चोंटली, थूहरका दूध, नीमकी छाल, पुराना गुड, शहद, बापचीके बीज इन सबोंको समान भाग लेकर गोमूत्र अथवा काँजीके साथ पीसकर लेप करे। यह प्रयोग दद्रुमण्डल, खुजली और विचर्चिकाको नष्ट करता है ॥ १९-२१ ॥

मनःशिलाले मरिचं तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रलेपः ॥ २२ ॥

मैनसिल, हरिताल, कालीमिरच, तिलतैल और आकका दूध इनको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूमं
ह्यनलमरिचदूर्वाः क्षीरमर्कस्नुहीभ्याम् ।
दहति पतितमात्रं कुष्ठजातीरशेषाः
कुलिशमिव सुरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ २३ ॥

विष, वरनाकी छाल, हल्दी, चीता, गृहधूम, भिलावे, कालीमिरच, दूब इन सबोंको एकत्र आकके दूध और थूहरके दूधमें अच्छेप्रकार खरल करके लेप करे तो सर्वप्रकारके कुष्ठरोग इसके लगातेही इसप्रकार नष्ट होजाते हैं जिस प्रकार अत्यन्तक्रोधसे छोडा हुआ इन्द्रका वज्र वृक्षसमूहको नष्ट करदेता है ॥ २३ ॥

भल्लातकं द्वीपिसुधार्कमूलं गुञ्जाफलं त्र्यूषणशङ्खचूर्णम् ।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च क्षारद्वयं लाङ्गलिकां च पक्त्वा २४
स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थं शलाकया तद्विदधीत लेपम् ।
कुष्ठे किलासे तिलकालके चाप्यशेषदुर्नामसु चर्मकीले ॥२५॥

भिलावे, चीता, थूहरकी जड, आककी जड, चोंटली, सोंठ, मिरच, पीपल, शंखचूर्ण, तूतिया, कूठ, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जी और कलिहारी इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको थूहरके दूध और आकके दूधके साथ लोहेके स्वच्छ पात्रमें पकाकर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस मरहमको किलास, तिलकालक और चर्मकीलनामक कुष्ठ एवं बवासीररोगमें सलाई द्वारा लगानेसे उक्त रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

स्नुक्काण्डे सुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् ।
अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥ २६ ॥

थूहरके मुद्देमें घरका धुआँ और सैंधानमक भरकर पुटपाककी रीतिसे अग्निमें भस्म करे । फिर उसको सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे विचर्चिकानामक कुष्ठ दूर होता है ॥ २६ ॥

स्नुक्काण्डे सर्षपात्कल्कः करीषानलपाचितः ।
लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥ २७ ॥

थूहरकी शाखामें सरसोंका कल्क भरकर आरने उपलोंकी अग्निमें पकावे । पश्चात् उसको सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे विचर्चिकारोग इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार प्रीतिका वेग लज्जाको दूर करदेता है ॥ २७ ॥

नारिकेलोदरे न्यस्तस्तण्डुलः पूतितां गतः ।
लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ २८ ॥

जलपूर्ण नारियलमें चावलोंको भिजोदेवे । जब वह अच्छे प्रकार फूल जाँय और दुर्गन्ध आनेलगे तब पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना विपादिका-कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २८ ॥

तिलकुसुमलवणगोजलकटुतैलं लोहभाजने कृत्वा ।
शोषितमर्कमयूखैः पादस्फुटनं निहन्ति लेपेन ॥ २९ ॥

तिलपुष्प और सैंधानमक इन दोनोंको बराबर २ लेकर गोमूत्र और सरसोंके तेलके साथ लोहेके बर्त्तनमें उत्तम प्रकार खरल करे। फिर उसको धूपमें सुखाकर लेप करे तो पादस्फुटन कुष्ठरोग शमन होता है ॥ २९ ॥

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुगम् ।
माणिमन्थं च तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ।
कण्डूं कच्छुं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३० ॥

बापची, कसौंदी, चकवड, हल्दी, दारुहल्दी और सैन्धानमक इन सबोंको समान भाग लेकर दहीके तोड और काँजीमें पीसकर लेप करे तो यह प्रयोग खुजली और अत्युग्र कच्छुनामक कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुडिका कृता ।
बस्तमूत्रेण संपिष्टा लेपाच्छ्वित्रविनाशिनी ॥ ३१ ॥

मकोय, चकवड, कूठ और पीपल इनको एकत्र बकरेके मूत्रमें खरल करके गोली बनालेवे । इस गोलीको घिसकर लगानेसे श्वित्रकुष्ठ दूर होता है ॥ ३१ ॥

पूतीकार्कस्नुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां मूत्रैः पिष्टाः पल्लवाः सौमनाश्च ।
लेपाच्छ्वित्रं हन्ति दद्रुव्रणांश्च कुष्ठान्यर्शांस्यस्रनाडीव्रणांश्च ॥

पूतिकरञ्ज, आक, थूहर, आमलतास और चमेली इन वृक्षोंके कोमल पत्तों और फूलोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ, दाद, व्रण, कुष्ठ, बवासीर, रक्त-विकार, नासूर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

गजचित्रव्याघ्रचर्ममसीतैलावलेपनात् ।
श्वित्रं नाशं व्रजेत्किं वा पूतिकीटविलेपनात् ॥ ३३ ॥

हाथी, चीता और सिंह इनकी चर्मकी भस्मको सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा पिद्दे नामक कीडेकी तेलमें मर्दन कर लेप करनेसे सफेद कोढ दूर होता है ॥ ३३ ॥

कुडवं वागुजीबीजं हरितालपलान्वितम्।
गवां मूत्रेण संपिष्य लेपनाच्छ्वित्रनाशनम्॥ ३४॥

बापचीके बीज १६ तोले और हरिताल चार तोले इन दोनोंको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर लगानेसे श्वेतकुष्ठका नाश होता है और त्वचाका वर्ण पूर्ववत् स्वच्छ होजाता है॥ ३४॥

धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा च मधुसंयुतम्।
शङ्खकुन्देन्दुधवलं जयेच्छ्वित्रं न संशयः॥ ३५॥
धात्रीखदिरयोः क्वाथमवल्गुजरजोऽन्वितम्।
पीत्वा शंखेन्दुकुन्दाभं हन्ति श्वित्रं न संशयः॥ ३६॥

आमले और खैरका काढा बनाकर शहदमें मिलाकर पान करनेसे अथवा उक्त औषधियोंके क्वाथमें बापचीका चूर्ण डालकर पीनेसे शंख, चमेली और चन्द्रमाकी समान सफेद कुष्ठरोग निस्सन्देह नष्ट होता है॥ ३५॥ ३६॥

क्षारे सुदग्धे गजलण्डजे च गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च।
द्रोणप्रमाणं दशभागयुक्तं दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य॥ ३७॥
एतद्यदा चिक्कणतामुपैति तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रकुर्यात्।
श्वित्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं तदा व्रजत्याशु सवर्णभावम्॥ ३८॥

हाथीकी लीदकी भस्मको १६ सेर लेकर हाथीके ९६ सेर मूत्रमें पकावे। जब पकते पकते बत्तीस सेर जल शेष रहजाय तब उस क्षार जलको ७ बार या २१ बार हाथीके मूत्रमें टपका लेवे। पश्चात् उक्त एक द्रोण परिणाम क्षार जलमें दशवां भाग बापचीके बीजोंका चूर्ण डालकर उत्तम प्रकार पकावे। जब वह पकते पकते चिकनासा होजाय तब सिद्धहुआ जानकर नीचे उतारकर गोलियाँ बनालेवे। प्रथम श्वेतकुष्ठवाले स्थानको खुजलाकर फिर इस गोलीका लेप करे तो सफेद कोढ बहुत शीघ्र दूर होता है और स्थानकी त्वचा उत्तमवर्णवाली होजाती है॥ ३७॥ ३८॥

श्वेतजयन्तीमूलं पीतं पिष्टं तदा च पयसैव।
श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा॥ ३९॥

वैद्यनाथजीकी आज्ञासे रविवारके दिन सफेद जयन्तीकी जडको लाकर दूधके साथ पीसकर पीनेसे श्वेतकुष्ठ निश्चय नाश होता है॥ ३९॥

गुञ्जाफलाग्निचूर्णं तु लेपितं श्वेतकुष्ठनुत् ।
शिलापामार्गभस्मापि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत् ॥ ४० ॥

चोंटली और चीतेकी जडका चूर्ण अथवा मैनसिल और चिरचिटेकी भस्मको एकत्र पीसकर लेप करनेसे श्वेतकुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ४० ॥

पिबति मकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामनो यः पलार्द्धम् ।
त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्तिः कामरूपी मनुष्यः ॥ ४१ ॥

यदि दो तोले शुद्ध आमलासारगन्धकको सरसोंके तेलमें मिलाकर और धूपमें सुखाकर तीन दिन अथवा सातदिनतक पीवे, मालिश करे एवं दूधका भोजन करता रहे तो वह मनुष्य पामारोगसे मुक्त होकर सुवर्णकी समान कान्तिमान् तथा कामदेवकी समान रूपवान् होता है ॥ ४१ ॥

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो यः सोमराजीं नियमेन खादेत् ।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां स सोमराजीं वपुषाऽधिशेते ॥ ४२ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण कुष्ठके होनेसे जिसका शरीर विकृत होगया हो वह रोगी बापची और काले तिल इनको समान भाग लेकर बनाकर प्रतिदिन नियमसे एक वर्षपर्यन्त सेवन करे तो कुष्ठका नाश होकर उसका शरीर चंद्रमाकी समान उज्ज्वल कांतियुक्त होजाता है ॥ ४२ ॥

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वाकुचीं पिबेत् ।
क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात्कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥ ४३ ॥
अवल्गुजाद्बीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा ।
भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ४४ ॥

कुष्ठरोगी धूपको सेवन करता हुआ बापचीके चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ पान करे और निरन्तर दूधका भोजन करे तो सातदिनमें ही कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है । बापचीके बीजोंके १ तोला चूर्णको गुनगुने जलके साथ पीवे और घृतके साथ भोजन करे तो सर्वप्रकारके कुष्ठ नाश होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

छिन्नायाः स्वरसो वापि सेव्यमानो यथाबलम् ।
जीर्णे घृतेन भुञ्जीत मुद्गयुषोदनेन च ॥ ४५ ॥
अतिपूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेन्नरः ॥ ४६ ॥

अपनी अग्निके बलानुसार प्रतिदिन गिलोयके रसको पान करे। उसके पचनेपर घृतमिश्रित मूँगका यूष और भातका भोजन करे तो इससे अत्यन्त दुर्गन्धि युक्त कुष्ठ भी दूर होकर शरीर विशेषकान्तिमान् होजाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि वा।
स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्द्ध्वं न संशयः ॥ ४७ ॥

जो हरडोंके चूर्ण और नीमके पत्तोंके चूर्णको अथवा नीमके पत्ते और आमलोंके चूर्णको एकत्र पीसकर यथानियम एक महीनेतक सेवन करे तो वह सर्वप्रकारके कुष्ठरोगोंसे शीघ्र मुक्त होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥

आरग्वधादि।

आरग्वधं धातकिकर्णिकारधवार्ज्जुनैः सर्ज्जककिंशुकानाम्। कदम्बनिम्बकुटजाटरूषाः खदिरेण युक्ताश्च तथैव मूर्वा ॥ ४८ ॥ मूलानि चैषामुपहृत्य सम्यगष्टावशेषः क्वथितः कषायः। घृतेन तुल्यं प्रतिमानमस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥ कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥ ४९ ॥

अमलतास, धायके फूल, कर्णिकार पुष्पविशेष, धौंवृक्ष, अर्जुन, सालवृक्ष, ढाक, कदम, नीम, कुडा, अडूसा, खैर, मूर्वा इन सब वृक्षोंकी जडका समान भाग लेकर अठगुने जलमें अच्छे प्रकार पकावे। जब पकते पकते आठमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्काथमें समान भाग घृत मिलाकर पान करनेसे विसर्प, दद्रु और विचार्चिका आदि सर्व प्रकारके कुष्ठरोग तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

लघुमञ्जिष्ठादि।

मञ्जिष्ठात्रिफलातिक्तावचादारुनिशाभयाः।
निम्बश्चैव कृतः क्वाथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥ ५० ॥
वातरक्तं तथा कण्डुं पामानं रक्तमण्डलम्।
दद्रुवीसर्पविस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ ५१ ॥

मंजीठ, त्रिफला, कुटकी, वच, दारुहल्दी, हरड और नीमकी छाल इनका क्काथ बनाकर सेवन करनेसे समस्त कुष्ठ, वातरक्त, कण्डू, पामा, रक्तमण्डल, दाद, विसर्प और विस्फोटक आदि विकार दूर होते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मध्यमञ्जिष्ठादि ।

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः ।
हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ ९२ ॥
बलानागबला यष्टिमधुकं क्षुरकोऽपि च ।
पटोलं च लतोशीरं गुडूचीं रक्तचन्दनम् ॥ ९३ ॥
मञ्जिष्ठादिरयं क्काथो मध्यः कुष्ठविनाशनः ।
वातरक्तस्य संहर्त्ता कण्डूमण्डलनाशनः ॥ ९४ ॥

मंजीठ, बापची, चकवड, नीमकी छाल, हरड, हल्दी, आमले, अडूसा, शतावर, खिरैंटी, गंगेरन, मुलहठी, गोखुरू, परवल, खस, गिलोय और लाल चन्दन इनका समान भाग ले यथाविधि क्काथ बनाकर सेवन करे। यह मध्यम मञ्जिष्ठादि क्काथ सर्व प्रकारके कोढ, वातरक्त और खुजली, चकत्ते आदि रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ९२–९४ ॥

बृहन्मञ्जिष्ठादि ।

मञ्जिष्ठा कुटजाऽमृता घनवचा शुण्ठी हरिद्राद्वयं
क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुका भार्ङ्गी विडङ्गाम्लिकम् ।
मूर्वा दारु कलिङ्गभृङ्गमगधात्रायन्ति पाठा वरी
गायत्री त्रिफला किरातकमहानिम्बासनारग्वधाः ॥ ९५ ॥
श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं
वासापर्पटशारिवाप्रतिविषाऽनन्ता विशाला जलम् ॥९६॥

मंजीठ, कुडा, गिलोय, नागरमोथा, वच, सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी, नीमकी छाल, परवल, कुटकी, भारङ्गी, वायविडङ्ग, इमलीकी छाल, मूर्वा, देवदारु, इन्द्रजौ, भाँगरा, पीपल, त्रायमाणलता, पाढ, शतावर, खैर, त्रिफला, चिरायता, बकायन, विजयसार, अमलतास, फूलप्रियंगु, बापची, लालचन्दन, बरनाकी छाल, दन्तीकी जड, सहोरावृक्षकी छाल, अडूसा, पित्तपापडा, कालीसर, अतीस, धमासा, इन्द्रायन, और सुगन्धवाला, इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्काथ बनावे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

मञ्जिष्ठाप्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु
त्वग्दोषाः सुचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ।

नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामया
वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ५७॥

इस क्वाथको प्रतिदिन नियमानुसार सेवन करनेसे त्वचासम्बन्धी सर्वरोग, अष्टादश कुष्ठ, सम्पूर्ण वातरक्त तथा रक्तसम्बन्धी अन्यान्य विकार, विसर्प, त्वचाकी सुन्नी एवं नेत्रोंके सर्वप्रकारके रोग बहुत शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥

पञ्चनिम्ब १-२।

निम्बस्य पत्रं मूलानि सत्वक्पुष्पफलानि च।
चूर्णितानि घृतक्षौद्रसंयुतानि दिने दिने ॥ ५८ ॥
लिह्यात्पिबेद्वा मूत्रेण संयुक्तान्युदकेन वा।
मदिरामलतोयेन पयसा वा यथाबलम् ॥ ५९ ॥
भुञ्जीत घृतयूषाद्यैः शाल्यन्नं पयसापि वा।
सर्वकुष्ठविसर्पार्शोनाडीदुष्टव्रणानपि ॥ ६० ॥
कामलां च गदान्हन्यात्तथा पित्तकफास्रजान्।
संवत्सरप्रयोगेण सर्ववर्ज्यविवर्जितः ॥
जयत्येतत्पञ्चनिम्बं रसायनमनुत्तमम् ॥ ६१ ॥

१-नीमके पत्ते, जड, छाल, फूल, और फल इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको घी, शहद, गोमूत्र, जल, मद्य, आमलोंके क्वाथ अथवा दूधके साथ मिलाकर अपनी अग्निके बलानुसार प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करे। इसको अविच्छिन्न रूपसे एक वर्षतक सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कोढ, विसर्प, बवासीर, दुष्ट नाडीव्रण, कामला, पित्त-कफ और रुधिरके विकारोंसे उत्पन्न होनेवाले रोग एवं अन्यान्य विविधभाँतिके रोगसमूह नष्ट होते हैं। इसपर घृत, दुग्ध, मूँगका यूष और शालिचावलोंका भात पथ्यरूपसे खाना चाहिये तथा मछली, खटाई और शाकादि द्रव्य त्यागदेने चाहिये। यह पञ्चनिम्ब अत्युत्तम रसायन है ॥ ५८-६१ ॥

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च।
सञ्चूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ६२ ॥
द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत्।
त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्कराग्निकाः ॥ ६३ ॥

विडङ्गसारवाराहीलौहचूर्णामृताः समाः ।
हरिद्राद्वयवाकुचीव्याधिघाताः सशर्कराः ॥ ६४ ॥
कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसंयुतम् ।
खदिरासननिम्बानां घनक्वाथेन भावयेत् ॥ ६५ ॥
सप्तधा पञ्चनिम्बं च मार्कवस्वरसेन च ।
स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान् योजयेच्च शुभे दिने ॥ ६६ ॥
मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा ।
सेव्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्धया पलं पिबेत् ॥ ६७ ॥
जीर्णे च भोजनं कार्यं स्निग्धं लघु हितं च यत् ॥६८॥

२–नीमके फूल, फल, छाल, पत्ते और मूल ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको भाँगरेके रसमें ७ बार भावना देवे । (इसमें फूलोंके समयमें फूल और फलोंके समयमें फल संग्रह करके रखलेने चाहिये ।) फिर हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गोखुरू, भिलावे (अथवा लालचन्दन चीता, वायविडङ्गका सार, वाराहीकन्द, लोहचूर्ण गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, बापची, अमलतास, मिश्री, कूठ, इन्द्रजौ और पाढ इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण बनाले फिर उस चूर्णको खैर, विजयसार और नीमकी छालके गाढे क्वाथमें ७ बार भावना देवे । पश्चात् भाँगरेके रसमें ७ बार भावित करे । फिर पूर्वोक्त पञ्चनिम्बका चूर्ण दो भाग और इन हरडादि औषधोंके चूर्णको एक भाग लेकर दोनोंको एकत्र करके शहदमें किंवा पञ्चतिक्त घृतमें या खैर तथा विजयसार के क्वाथमें अथवा मन्दोष्ण जलके साथ मिलाकर शुभदिनमें सेवन करे । इस औषधिको सेवन करानेसे पूर्व बुद्धिमान् वैद्य रोगीके शरीरको वमन और विरेचनादि से शुद्ध करके स्निग्धक्रियाद्वारा स्निग्धकर लेवे । पश्चात् इसका उपयोग करना चाहिये और इसकी मात्राको १ तोलेसे लेकर ४ तोलेतक बढाना चाहिये । जब यह अवलेह पचजाय तब हलका स्निग्ध और हितकारी भोजन करना श्रेष्ठ है ॥ ६२–६८ ॥

विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीककापालदद्रुं किटिभालसादि ।
शतारुविस्फोटविसर्पपामाः कुष्ठप्रकोपं विविधं किलासम् ॥ ६९ ॥
भगन्दरं श्लीपदवातरक्तं जडान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान् दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥७०॥

स्थूलोदरः सिंहकृशोदरश्च सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।
समोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ॥
जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभे रतश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥७१॥

यह अवलेह विचर्चिका, औदुम्बर, पुण्डरीक, कापाल, दद्रु, किटिभ, अलस आदि, शतारु, विस्फोट, विसर्प, खुजली, कुष्ठका प्रकोप, अनेकप्रकारके किलासकुष्ठ, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडता, अन्धता, नासूर, शिरकी पीडा, सर्वप्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके प्रदर, सर्वप्रकारके स्थावर और जंगम विषोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। इस अवलेहको शहदमें मिलाकर चाटनेसे बहुत मोटे पेटवाले मनुष्य सिंहकी समान पतले पेटवाले होजाते हैं और उनकी सन्धियें एवं पुट्ठे अत्यन्त दृढ़ होजाते हैं। इसके सेवनकर्ता पुरुषको जो सर्पादि विषधर जन्तु काट खायँ तो वे सर्पादि तत्काल मरजाते हैं और वह पुरुष सम्पूर्ण रोग एवं बुढ़ापेके चंगुलसे छूटकर बहुत समयतक जीता है तथा चन्द्रमाकी समान अत्यन्त सुन्दर शरीरकी कान्ति होजाती है ॥ ६९-७१ ॥

श्वेतारि ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्रिफलां भृङ्गवागुजीम् ।
भल्लातकं तिलं कृष्णं निम्बबीजं समं समम् ॥ ७२ ॥
मर्दयेद्भृङ्गजद्रावैः शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः ।
इत्थं कुर्युस्त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ॥ ७३ ॥
मध्वाज्यैर्निष्कमात्रं तु खादेच्छ्वेतं विनाशयेत् ॥ ७४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हरड, बहेडा, आमला, भाँगरा, बापचीके बीज, भिलावे, कालेतिल और नीमकी निबौली इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको भाँगरेके रसमें भावना देवे और सुखालेवे। इस प्रकार २१ दिन तक करे। फिर खूब बारीक पीसकर चार चार माशेकी गोलियां बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ शीघ्र दूर होता है ॥ ७२-७४ ॥

तालकेश्वररस ।

कूष्माण्डत्रिफलातैलकन्याकाञ्जिकभावितम् ।
तालकं तुल्यगन्धं स्यादर्द्धपारदमर्दितम् ॥ ७५ ॥

अजाक्षीरेण निम्बूककन्यातोयैर्दिनत्रयम् ।
प्रत्येकं भावयेच्छुद्धं चक्रिकाकारतां गतम् ॥ ७६ ॥
विपचेद्दण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्यगम् ।
यामान्द्वादश शीतेऽस्मिन्न प्रयोज्यं रक्तिकाद्वयम् ॥ ७७ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा ।
द्विविधं वातरक्तं च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ७८ ॥

पेठेका स्वरस, त्रिफलेका क्वाथ, तिलका तेल, घीग्वारके रस और काँजीमें क्रमानुसार भावना दीहुई हरिताल एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला और शुद्ध पारा ६ मासे लेकर बकरीके दूधमें, नींबूके रसमें और घीग्वारके रसमें तीन दिनतक अच्छे प्रकार खरल करके चक्रिकाकार बनाकर सुखालेवे । तदनन्तर उस चक्रिकाकारको ढाककी राखसे भरीहुई हाँडीमें रक्खे, उसके ऊपर और राख भरकर हाँडीका मुख बन्द करके १२ प्रहरतक पकावे । जब पककर शीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक पीसलेवे । इसको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण सेवन करनेसें १८ प्रकारके कोढ, रोमका नष्ट होना, दो प्रकारके वातरक्त और नाडीव्रणरोग नष्ट होते हैं ॥ ७५–७८ ॥

तालकेश्वर ।

दद्रुघ्नबाणांघ्रिरसं दत्त्वा तालं सुचूर्णितम् ।
पुनः पुनश्च सम्मर्द्य शुष्कं कृत्वा पुटे दहेत् ॥ ७९ ॥
दृढस्थाल्यां धृतं क्षारं पालाशं चाप्युपर्य्यधः ।
ततो ज्वाला प्रदातव्या दिनरात्रे मृतं भवेत् ॥ ८० ॥

एक तोले हरितालको चकवडके पत्तोंके रसमें और शरफोंकाके रसमें बारबार खरल करे और बारबार सुखावे । फिर उसको एक नवीन और अत्यन्त दृढ हाँडीमें ढाककी राखके बीचमें रखे और उस हाँडीका मुख बन्दकरके एक दिन और एकराततक बराबर पकावे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शुक्लवर्णं यदा च स्यादग्नौ दत्ते न धूमकम् ।
तदा ज्ञेयं मृतं तालं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ८१ ॥
गलत्कुष्ठं वातरक्तं ताम्रवर्णं च मण्डलम् ।
शीतपित्तं महादद्रुच्छुछुन्दरविनाशनम् ॥
पथ्यं मसूरं चणकं मुद्गसूपं यथेच्छया ॥ ८२ ॥

जब पककर सफेद रंगकी भस्म होजाय और अग्निमेंसे धुआँ न निकले तब हरितालको भस्महुआ जानना चाहिये । इसको आधी आधी रत्तीकी मात्रासे सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, वातरक्त, लाल लाल चकत्तोंका पडना, शीतपित्त, महादद्रु और छुछुन्दरप्रभृति रोगोंका नाश होता है । इसपर मसूर, चना और मूँगकी दालका भोजन करना पथ्य है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

महातालकेश्वर ।

सम्मर्द्य तालकं शुष्कं वंशपत्राख्यमुच्चकैः ।
कूष्माण्डनीरैः सम्भाव्य त्रिदिनं शोधयेत्पुनः ॥ ८३ ॥
घृतकन्याद्रवैर्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम् ।
सम्मर्द्य काञ्जिकेनैव दध्नाऽम्लेन विमर्दयेत् ॥ ८४ ॥
सम्मर्द्य चूर्णसलिले रसे पौनर्नवे पुनः ।
त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेद्वटिकाकृतिम् ॥ ८५ ॥
स्थाल्यां दृढतरायां तु पलाशक्षारसञ्चयम् ।
उपर्यधस्तालकस्य क्षारं दत्त्वा शरावकैः ॥ ८६ ॥
पिधाय लेपयेद्यत्नात्पूरयेत्क्षारसञ्चयम् ।
पुना रुद्धं शरावेण लेपयेत्तद्दृढं ततः ॥ ८७ ॥
द्वात्रिंशद्यामपर्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीयते ।
एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ॥
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत् ॥ ८८ ॥

वंशपत्री हरितालको एक तोला लेकर पेठेके रसमें और फिर घीग्वारके रसमें यथाक्रम तीन तीन दिनतक भावना देवे । फिर काँजी, खट्टे दही और चूनेके पानीमें खरल करके पुनर्नवेके रसमें खरल करे । इस प्रकार तीन दिन खरल करके खडियाकी समान बनालेवे । पश्चात् एक मजबूत हाँडीमें ढाककी राखको भरे और उसके ऊपर पूर्वोक्त हरितालको रख सिकोरे ढकदेवे । फिर उसपर राखको भरकर हाँडीके मुँहपर शिकोरा ढक सन्धिस्थानोंको मिट्टीसे लहेसकर अच्छे प्रकार बन्दकर देवे और उसपर राख बुरका देवे । जिससे किसीप्रकार भी हाँडीका मुख नहीं खुले । फिर उसको ३२ प्रहरतक अग्निमें पकावे । जब उत्तम प्रकार पककर स्वयं शीतल होजाय तब निकालकर उस हरितालके साथ शुद्ध गन्धक एक

तोला और पुराना ताँबा दो तोले मिलाकर वालुकायन्त्रमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब बारीक चूर्ण करलेवे ॥ ८३–८८ ॥

अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि वातशोणितनाशनः ॥ ८९ ॥
रक्तमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा ।
बहुरूपं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः ॥ ९० ॥
दुष्टव्रणं च वीसर्पं त्वग्दोषं च विनाशयेत् ।
दृष्टो वारसहस्रं च रोगवारणकेसरी ॥ ९१ ॥

यह महातालेश्वरनामक रस संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है । यह १८ प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, रक्तमण्डल (पित्ती), अत्युग्र स्फुटित और गलितकुष्ठ तथा सर्वदोषजन्य नानाप्रकारके कुष्ठ, दुष्टव्रण, विसर्प और त्वचासम्बन्धी रोगोंको तत्काल नाश करता है । यह हजारोंवार परीक्षा करके देखागया है । रोगरूपी हाँथियोंको नाश करनेके लिये यह रस सिंहकी समान है ॥ ८९–९१ ॥

उदयभास्कर ।

गन्धकेन हतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।
ऊषणं पञ्चभागं स्यादमृतं च द्विभागिकम् ॥ ९२ ॥
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ।
गलिते स्फुटिते चैव विपुले मण्डले तथा ॥
विचर्चिकादद्रुपामासर्वकुष्ठप्रशान्तये ॥ ९३ ॥

गन्धकके द्वारा मारा हुआ ताँबा १० तोले, काली मिरच ५ तोले और शुद्ध मीठातेलिया २ तोले लेवे । सबोंको एकत्र जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन एक एक गोली दोषानुसार अनुपानभेदसे सेवन करावे इससे गलितकुष्ठ, स्फुटितकुष्ठ, विपुल मण्डल, विचर्चिका, दद्रु, पामा आदि सर्वप्रकारके कुष्ठविकार नष्ट होते हैं ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अमृतांकुरलौह ।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै ।
पलं लौहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य च ॥ ९४ ॥

गन्धकस्य पलं चैकमभ्रकस्य च गुग्गुलोः ।
हरीतकीविभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥ ९५ ॥
अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याःपाणितलानि षट् ।
घृतं द्व्यष्टगुणं लौहाद् द्वात्रिंशत्त्रिफलाजलम् ॥ ९६ ॥
एवं कृत्वा पचेत्पात्रे लौहे च विधिपूर्वकम् ।
पाकमेतस्य जानीयात्कुशलो लौहपाकवित् ॥ ९७ ॥

अग्निद्वारा शुद्ध कियाहुआ पारा १ पल, लोहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, भिलावे, शुद्ध गन्धक और गूगल ये प्रत्येक एकएक पल, हरड और बहेडेका चूर्ण दो दो तोले, आँवले १२ तोले ८ माशे, घी ८ पल और त्रिफलेका क्वाथ ३२ पल लेवे । इन सबोंको एकत्रकर लोहेकी कढाईमें विधिपूर्वक पकावे । फिर पाकविधिको जाननेवाला चतुर वैद्य लोहपाककी समान इसके पाकको सिद्ध हुआ जानकर उतारलेवे ॥ ९४-९७ ॥

विशुद्धः प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चनः ।
रक्तिकादिक्रमेणैव घृतभ्रामरमर्दितम् ॥ ९८ ॥
लौहे लौहस्य दण्डेन खादेदेतद्रसायनम् ।
अनुपानं च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥ ९९ ॥
सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् ।
पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्तरुजापहम् ॥ १०० ॥
कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातरोगनुत् ।
क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम् ॥
अग्निसन्दीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बलवृद्धिकृत् ॥ १ ॥

पश्चात् वमन, विरेचनादिके द्वारा शुद्ध हुआ रोगी प्रातःकाल उठकर शौचादिसे निवृत्त होकर गुरुओं, देव और ब्राह्मणोंका पूजन करके इसकी एक रत्ती मात्राको लोहेके बर्त्तनमें लोहेके डंडेसे घृतके साथ खरल करके सेवन करे और इसी क्रमसे प्रतिदिन इसकी एकएक रत्ती मात्राको बढाकर खाय । इसके ऊपरसे नारियलका जल अथवा दूध पान करे । यह सर्वप्रकारके कुष्ठोंको नाश करनेके लिये अत्युत्तम रसायन औषधि है तथा वली (शरीरमें झुर्री पडना), पलित (असमय बालोंका पकना), पाण्डु, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, कृमिरोग, शोथ, बवासीर, पथरी, शूल, वातजन्य रोग, क्षय और

महाश्वास आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है। एवं जठराग्निको दीपन करनेवाली, हृदयको हितकारी और बल, वर्ण, वीर्य तथा आयुकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाली है ॥ ९८-१०१ ॥

विवर्ज्य शाकाम्लमपि स्त्रियं च सेव्यो रसो जाङ्गल-
जीविकानाम्। शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गक्षौद्रं गुड-
क्षीरमिह क्रियायाम् ॥२॥ शालिं च गुर्वादिबृहत्करञ्ज-
शिलाजतुक्षौद्रयुतं पयश्च । सर्पिर्युतान्भक्षयतो विह-
ङ्गान्प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः ॥ कृष्णस्य पक्षस्य सिते तु
पक्षे त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥ ३ ॥

इस औषधिको सेवन करते समय शाक, खटाई और स्त्रीप्रसङ्गको सर्वथा त्याग-देवे और जङ्गली जीवोंके मांसका रस, लवादि पक्षियोंका मांस, शालिचावलोंका और साठीके चावलोंका भात, मूंग, घी, शहद, गुड और दूध इनका भोजन करे। शहद मिलाहुआ और घी मिलाहुआ दूध पान करना हितकारी है। इससे दुर्बल और क्षीणधातुवाले मनुष्य अत्यन्त वीर्यवान् होते हैं। जिस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन-दिन और शुक्लपक्षमें पाँचदिन पूरा चन्द्रमा रहता है उसी प्रकार इसका सेवनकर्त्ता जन पूर्णचन्द्रकी समान पूर्णवीर्य और अत्यन्त कान्तिमान् होता है ॥ १०२ ॥१०३॥

पाकलक्षण।

वस्त्रे निष्पीडितं सूक्ष्मे स्थूलतन्तौ घने दृढे ।
समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः ॥
न च शब्दायते वह्नौ तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥

पाकका लक्षण इस प्रकार जानना चाहिये तथा-घने बुने हुए और मजबूत महीन कपडेको मोटे डोरेसे अच्छे प्रकार बाँधे। जब वह मुद्राके समान हो जाय और सन्धियोंसे न निकले एवं अग्निमें शब्द न हो तब पाक सिद्धहुआ जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

रसमाणिक्य।

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत् ।
सप्तधा वा त्रिधा वापि दध्नाऽम्लेन तथैव च ॥ ५ ॥

शोषयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत्तण्डुलाकृतिम् ।
ततःशरावके यन्त्रे स्थापयेत्कुशलो भिषक् ॥ ६ ॥
बदरीपल्लवोत्थेन सन्धिलेपं च कारयेत् ।
अरुणाभमधःपात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥ ७ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्रसः ।
घृतक्षौद्रेण सम्मद्य खादयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ८ ॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ।
स्फुटितं गलीतं कुष्ठं वातरक्तं भगन्दरम् ॥ ९ ॥
नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम् ।
नासास्यसम्भवान्रोगान्क्षतान्हन्यात्सुदारुणान् ॥
पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा ॥ ११० ॥

वंशपत्रा हरितालको पेठेके रसमें और खट्टे दहीमें डालकर सातबार अथवा तीनबार भावना देवे । फिर सुखाकर चावलोंकी समान चूर्ण करलेवे । तदनन्तर इस चूर्णको एक सिकोरेमें रखकर ऊपरसे दूसरा सिकोरा ढकदेवे और बेरीके पत्तोंको पीसकर उसकी सन्धियोंमें लेप करके तबतक अग्निमें पकावे जबतक नीचेका पात्र लाल न होजाय । जब पककर स्वाङ्गशीतल होकर माणिक्की समान देदीप्यमान होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इस प्रकार यह माणिक्यरस सिद्ध होता है । प्रतिदिन प्रातःकाल महादेवजीका पूजन करके इसकी दो रत्ती मात्राको घी और शहदमें मिलाकर खावे तो कुष्ठरोगसे शीघ्र मुक्त होजाता है । यह रस स्फुटित, गलितकुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नासूर, दुष्टव्रण, उपदंश, विचर्चिकाकुष्ठ, नाक और मुखमें होनेवाले रोग, क्षय, पुण्डरीक, चर्माख्य, विस्फोटक और मण्डलादि सर्वप्रकारके कोढोंको नष्ट करता है ॥

अमृतभल्लातक ।

भल्लातकानां पवनोद्धतानां वृन्तच्युतानां च यदाढकं स्यात् । तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्य प्रक्षाल्य शोषाय सृजेत् प्रवाते ॥ ११ ॥ शुष्कं पुनस्तद्द् विदलीकृतं च ततः पचेदप्सु चतुर्गुणासु । तत्पादशेषं पुनरेव शीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु ॥ १२ ॥ तत्पादशेषं पुनरेव शीतं

घृतेन तुल्येन पुनः पचेत्तु। तदर्द्धया शर्करया विकीर्णं
ततः खजेनोन्मथितं विधाय॥ १३॥ तत्सप्तरात्रादुप-
जातवीर्यं सुधारसादप्यधिकत्वमेति। प्रातर्विशुद्धः
कृतदेवकार्यो मात्रां च खादेत्स्वशरीरयोग्याम्॥ १४॥

अच्छे प्रकार पकेहुए, वायुसे टूटकर स्वयं गिरे हुए आठसेर भिलावोंको लेकर उनके डंठलोंको तोड देवे। फिर उनको ईंटोंके चूर्णसे घिसकर पानीसे धोकर हवामें सुखालेवे। तदुपरान्त उन भिलावोंको दो दो टुकडे करके चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर शीतल होनेपर छान लेवे। फिर इसीप्रकार इसको आठसेर दूधके साथ पकावे। दो सेर भाग अवशिष्ट रहनेपर उतारकर छानलेवे। पश्चात् इस क्वाथको आठ सेर घृतके साथ पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें चारसेर खाँड डालकर करछीसे एकमएक करके किसी उत्तम पात्रमें भरकर सातदिनतक रखा रहनेदेवे। सातदिन पीछे यह औषधि अमृतके समान अथवा इससे भी अधिक गुणवाली होजाती है। अनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल शौचादिसे शुद्ध हो और अपने इष्टदेवका पूजन करके अपनी अग्निके बलाबलको विचार कर इसकी मात्राको निरूपण करके भक्षण करे॥ ११-१४॥

न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने
च। यथेष्टचेष्टोविहितोपयोगाद्भवेन्नरः काञ्चनराशिगौरः
॥ १५॥ अनन्यमेधा नरसिंहतेजा हृष्टेन्द्रियोऽव्याहत-
बुद्धिसत्त्वः। दन्ताश्च शीर्णाःपुनरुद्भवन्ति केशाश्च शुक्लाः
पुनरेव दिव्याः॥ १६॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि
कृम्यर्दितोभिन्नगलोऽपि कुष्ठी। सोऽपि क्रमादङ्कुरिताग्र-
शाखस्तरुर्यथा भाति नवाम्बुसिक्तः॥ १७॥

इसको सेवन करनेपर आहार विहार तथा धूप, मार्गमें चलना और मैथुनकरना इनका कुछ भी परहेज नहीं है। इसपर इच्छानुसार खानपान करनेसे भी मनुष्य सुवर्णके समान अत्यन्त कान्तिमान् होजाता है। एवं अद्वितीय मेधावान्, नृसिंहके समान तेजवान्, हृष्टपुष्ट और प्रसन्न इन्द्रियोंवाला तथा विशेष प्रतिभाशाली होता है। इससे टूटेहुए दाँत फिर निकल आते हैं, सफेद बाल फिर काले होकर अत्यन्त दिव्य होजाते हैं, बिगडीहुई शरीरकी त्वचा नीलवर्णकी होजाती है, एवं कीडोंके

पडनेसे गलेहुए कान, अंगुलियाँ, नाक और गलितकुष्ठरोगी फिरसे इस प्रकार नवयौवनयुक्त और सुन्दर शरीरवाला होजाता है, जिस प्रकार सूखा हुआ वृक्ष वर्षाकालमें पानीके पडनेसे नवीन अंकुर युक्त होकर हराभरा होजाता है ॥ १६-१७ ॥

उष्ट्रान्मयूराञ्जयति स्वरेण बलेन नागस्तुरगो जवेन ।
रसायनस्यास्य नरःप्रसादाद्बृहस्पतेरप्यधिकःसुबुद्ध्या ॥ १८ ॥
ग्रन्थान्विशालान्पुनरुक्तिदोषान् गृह्णाति शीघ्रं न च नश्यते तु ।
कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धिर्जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च ॥
राजा ह्ययं सर्वरसायनानां चकार योगं भगवानगस्त्यः ॥ १९ ॥

उसका स्वर ऊँट और मोरके स्वरकी समान सुन्दर होजाता है। इस रसायनके प्रतापसे रोगी हाथीके समान बलवान्, घोडेके समान वेगवान् और बृहस्पतिसे भी अधिक बुद्धिमान् होजाता है तथा बडे बडे ग्रन्थोंके आशयोंको समझने और उनको कण्ठमें करनेकी शक्तिवाला होता है। इसके प्रभावसे मनुष्य ५०० वर्षतक जीता है। यह सब रसायनोंका राजा है। इस उत्तम कल्पवृक्षके समान फलदायक योगको श्रीभगवान् अगस्त्यजीने कल्पित किया है। इससे कुष्ठरोग अवश्य दूर होते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

महाभल्लातकगुड ।

निम्बं गोपाऽरुणा कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम् ।
पर्पटावल्गुजानन्ता वचा खदिरचन्दनम् ॥ १२० ॥
पाठा शुण्ठी शठी भार्ङ्गी वासा भूनिम्बवत्सकम् ।
श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा विडङ्गेन्द्रविषानलम् ॥ २१ ॥
हस्तिकर्णा मृताद्रैका पटोलं रजनीद्वयम् ।
कणारग्वधसप्ताह्वकृष्णवेत्रोच्चटाफलम् ॥ २२ ॥
भूकन्दं तृणपर्णं च जिङ्गी पद्माटमूषली ।
विष्वक्सेना च कैटर्यं शरपुङ्खा च कञ्चुकी ॥ २३ ॥
एषां द्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ २४ ॥

नीमकी छाल, अनन्तमूल, अतीस, कुटकी, त्रायमाणा, त्रिफला, नागरमोथा, पर्पटा, बापची, अनन्तमूल, वच, खैर, लालचन्दन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारङ्गी, अडूसा, चिरायता, कुडेकी छाल, निसोत, इन्द्रायण, मूर्वा, वायविडङ्ग, इंद्रजौ, विष, चीता, हस्तिकर्ण (पलाश), गिलोय, बकायन, परवल, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, अमलतास, सतौना, कालाबेंत, लालचोंटली, जिमीकन्द, गन्धेजघास, मंजीठ, चकवडके बीज, मुसली, फूलप्रियंगु, कायफल, शरफोंका और शिरषकी छाल इनको अलग अलग आठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते आंठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे ॥ १२०–२४ ॥

भल्लातकसहस्राणि त्रीणि छित्त्वाऽर्मणेऽम्भसि ।
चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ २५ ॥
तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत् ।
गुडस्य तु तुलां ताभ्यां कषायाभ्यां पचेद्भिषक् ॥ २६ ॥
भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत् ।
त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम् ॥ २७ ॥
दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलांशिकम् ॥
सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेदत्र गन्धकं च चतुःपलम् ॥ २८ ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य स्थापयेत्कुशलो भिषक् ।
महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥ २९ ॥
जगतस्तु हितार्थाय–

फिर इसी प्रकार ३००० भिलावोंको टुकडे करके ३२ सेर जलमें पकावे । जब ८ सेर जल रहजाय तब उतारकर छानलेवे । पश्चात् दोनों क्वाथोंको मिलालेवे और उनमें १००पल पुराना गुड और उपर्युक्त भिलावोंकी १००० गिरी डालकर पकावे । जब पकते पकते अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, सैंधानमक और अजवायन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले तथा दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर इनका चूर्ण पृथक् पृथक् एक एक तोला और शुद्ध गन्धक १६ तोले इन सबोंको एकत्र बारीक पीसकर डालदेवे और करछीसे सबको एकमएक मिलादेवे । जब अच्छेप्रकार सिद्ध होजाय तब इस अवलेहको उत्तम चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । यह महाभल्लातकनामक योग देवाधिदेव श्रीमहादेवजीने सांसारिक प्राणियोंके हितके लिये पूर्वकालमें निर्माण किया है ॥

—जयेच्छीघ्रं निषेवितः।
श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृक्षजिह्वं सकाकणम् ॥ १३० ॥
पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा।
कण्डूं कपालकुष्ठं च पामानं सविपादिकम् ॥ ३१ ॥
वातरक्तमुदावर्त्तं पाण्डुरोगं व्रणं क्रिमीन्।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम् ॥ ३२ ॥
तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नाक्काथं पयोऽथवा ॥
भोजने च तथा योज्यमुष्णं चान्नं विशेषतः ॥ ३३ ॥

यह अवलेह नियमपूर्वक सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋक्षजिह्व-कुष्ठ, काकण, पुण्डरीक, चर्माख्य, विस्फोट, मण्डल, कण्डू, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमिरोग, छहोंप्रकारकी बवासीर, खाँसी, श्वास, भगन्दर, बहुत समयतक सेवन करनेसे पलित रोग और दुस्तर आमवात (गठिया) इत्यादिरोगोंको बहुत जल्द नष्ट करता है। इसपर गिलोयका क्वाथ अथवा दूधका अनुपान करे और सदैव उष्णवीर्य अन्नोंका उष्ण भक्ष्य भोजन करे ॥ १३०-१३३ ॥

अमृतागुग्गुलु।

अमृतायाः पलशतं दशमूलयास्तथा शतम्।
पाठामूर्वाबलातिक्तादार्वी गन्धर्वहस्तकाः ॥ ३४ ॥
एषां दशपलान्भागान् विभीतक्याः शतं हरेत्।
द्वे शते च हरीतक्या आमलक्यास्तथा शतम् ॥ ३५ ॥
जलद्रोणद्वये पक्त्वा अष्टभागावशेषितम्।
प्रस्थं गुग्गुलुमाहृत्य प्रस्थार्द्धं च घृतं पचेत् ॥ ३६ ॥
पाकसिद्धौ प्रदातव्यं गुडूच्याः सत्त्वमेव च।
पलद्वयं तथाशुण्ठ्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ॥ ३७ ॥

गिलोय १०० पल, दशमूल १०० पल तथा पाढ, मूर्वा, खिरैंटी, कुटकी, दारुहल्दी और अण्डकी जड ये प्रत्येक, दस दस पल, बहेडे सौ, हरडें दो सौ

और आमले सौ लेवे। इन सबोंको एकत्रकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चार सेर जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें एक प्रस्थ शुद्ध गूगल और एक प्रस्थ घृत डालकर दूसरीबार पकावे। जब पाक सिद्धहुआ जाने तब गिलोयका सत्त्व दो पल सोंठ दो पल और पीपल दो पल इनको एकत्र पीसकर डाल देवे और सबोंको अच्छे प्रकार मिलाकर स्वच्छ चिकने बासनमें करके रखदेवे ॥ ३४-३७ ॥

ततो मात्रां प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम्।
अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तगदेषु च ॥ ३८ ॥
कामलामामवातं च अग्निमान्द्यं भगन्दरम्।
पीनसं च प्रतिश्यायं प्लीहानमुदरं तथा ॥
एतान् रोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३९ ॥

पश्चात् दोषोंके बलाबलको विचारकर इसकी मात्राको उचित परिमाणसे सेवन करे। यह अठारह प्रकारके कोढ, वातरक्त, कामला आमवात, मंदाग्नि, भगन्दर, पीनस, प्रतिश्याय, प्लीहा तथा उदररोग इन सम्पूर्ण विकारोंको तत्काल नाश करता है। जिस प्रकार सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे अन्धकार समूहको तत्क्षण नष्ट करदेते हैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

वज्रकघृत।

वासा गुडूचीत्रिफलापटोलकरञ्जनिम्बासनकृष्णवेत्रम्।
तत्क्काथकल्केन घृतं विपक्कं तद्वज्रवत्कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ १४० ॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः।
पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवेदव्याहतो वर्षशतं च कुष्ठी ॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला, परवल, करजुंआ, नीमकी छाल, विजयसार और कालावेंत इनको समानभाग लेकर अठगुने जलमें औटावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें उक्त औषधियोंका चूर्ण एक सेर और घी दो सेर डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। यह घृत वज्रके समान कुष्ठरोगको हरता है इस लिये इसको वज्रकघृत कहते हैं, इसके सेवनसे कीडोंके पडनेसे गलकर गिरेहुए कान, अंगुलियें, हाथ, पैर और भिन्नगल तथा मृत्युको प्राप्तहुआ भी कुष्ठरोगी शीघ्र आरोग्य होता है। एवं जैसी पहलेकी शोभाको प्राप्तकर अव्याहतरूपसे सौ वर्ष पर्यन्त जीता है ॥ १४० ॥ ४१ ॥

तिक्तकघृत।

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटकूलकान्।
त्रायन्तीकटुकानिम्बान् प्रत्येकं द्विपलोन्मितम् ॥ ४२ ॥
क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु।
घृतप्रस्थं पचेत्कल्कैः पिप्पलीघनचन्दनैः ॥
त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम् ॥ ४३ ॥
हन्तिकुष्ठं ज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम् ॥
पाण्डुरोगं विसर्पं च क्लीबानामपि शस्यते ॥ ४४ ॥

हरड, वहेडा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, बिसोंटा, धमासा, पित्तपापडा, परवल, त्रायमाण, कुटकी और नीमकी छाल इन सबोंको आठ आठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते आठ सेर जल रहजाय तब उतारकर छानलेवे। पश्चात् उस क्वाथमें एक प्रस्थ घी एवं पीपल, नागरमोथा, लालचन्दन, त्रायमाणालता, इन्द्रजौ और चिरायता इनके समानभाग मिश्रित कल्कको डालकर पकावे। यह तिक्तक घृत यथाविधि सेवन करनेसे कुष्ठ, ज्वर, बवासीर, सूजन, संग्रहणी, पाण्डु और विसर्परोगोंको शीघ्र नष्ट करता है और नपुंसकोंके लिये विशेष हितकारी है ॥ ४२–४४ ॥

महातिक्तकघृत।

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्।
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ ४५ ॥
धन्वयासं सचन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च।
षड्ग्रंथां सविशालां शतावरीं सारिवे चोभे ॥ ४६ ॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तकं च।
कल्कान्कुर्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च ॥ ४७ ॥
कल्कस्तु चतुर्भागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्।
द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ ४८॥

सतौनेकी छाल, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ, नागरमोथा, खस, त्रिफला, परवल, नीमकी छाल, पित्तपापडा, धमासा, लालचन्दन, पीपल, गजपीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावर, उसवा,

अनन्तमूल, इन्द्रजौ, अडूसा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलहठी और त्रायमाणा इन सबोंको समान भाग लेकर कल्क बनालेवे । फिर कल्कसे चौगुना जल, अठगुना पटोलपत्रोंका क्वाथ और दुगुना घृत लेकर सबोंको यथाविधि मिलाकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे ॥ ४५-४८ ॥

कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।
वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ४९ ॥
विस्फोटकान्सपामानुन्मादकान्कामलां ज्वरं कण्डूम् ।
हृद्रोगगुल्मपिडिकामसृग्दरं गण्डमालां च ॥ १५० ॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः ।
योगशतैरप्यजितान्महाविकारान् महातिक्तम् ॥ ५१ ॥

फिर इसको पान करावे तो समस्त कुष्ठविकार, रक्तपित्त, जिसमें रुधिर बहता हो और अतिप्रबल ऐसी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, तरखुजली, उन्माद, कामला, ज्वर, खुश्क खुजली, हृदयरोग, गुल्म, पिडिका, रक्तप्रदर, उदररोग, गण्डमालाप्रभृति अत्युत्कट व्याधियोंको और जो सैकडों औषधोंके करनेसे भी आरोग्य नहीं होते ऐसे भयङ्कर रोगोंको अपनी अग्निके बलानुसार प्रतिदिन प्रातःसमय विधिपूर्वक सेवन कियाहुआ यह महातिक्तक घृत तत्काल नष्ट करता है ॥ ४९-१५१ ॥

सोमराजीघृत ।

खदिरस्य पलान्यष्टौ सोमराज्याः पलद्वयम् ।
त्रिफला पिचुमर्दश्च दारु दार्वी च पर्पटम् ॥ ५२ ॥
पृथक् पलं समुद्धृत्य सिंहिकायाः पलद्वयम् ।
जलाढकद्वये साध्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ५३ ॥
क्वाथेनानेन मृद्वग्नौ घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
चतुःपलं सोमराज्याः खदिरस्य पलं पृथक् ॥ ५४ ॥
पटोलमूलं त्रिफलां त्रायमाणां दुरालभाम् ।
कल्कार्थं कटुकं चैव कर्षांशान् श्लक्ष्णकुट्टितान् ॥ ५५ ॥
पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ।
सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवानलम् ॥ ५६ ॥

खैर ३२ तोले और बापची ८ तोले, त्रिफला, नीमकी छाल, देवदारु, दारुहल्दी और पित्तपापडा ये प्रत्येक चार चार तोले तथा कटेरी ८ तोले इन सबोंको एकत्र कर १६ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें घी १ प्रस्थ एवं बापची १६ तोले, खैर ४ तोले तथा पटोलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, त्रायमाणा, धमासा और कुटकी प्रत्येकके एकएक कर्ष बारीक पिसेहुए कल्क और आठ तोले शुद्ध गूगल सबोंको एकत्र खूब बारीक पीसकर मिलादेवे। फिर यथाविधि मन्दमन्द अग्निमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत श्वेतकुष्ठको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार जल अग्निको तत्काल शान्त करदेता है ॥ ९२-९६ ॥

अष्टादशानां कुष्ठानां भेषजं परमं मतम् ।
आमवातापतन्त्राणां पाण्डुप्रदररोगिणाम् ॥ ९७ ॥
मेहपीनसकण्डूघ्नं पीतं दीपनपाचनम् ।
सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ॥ ९८ ॥

यह घृत अठारहों प्रकारके कुष्ठोंकी परमोत्कृष्ट औषधि है। यह आमवात, अपतन्त्र, पाण्डु, प्रदर, प्रमेह, पीनस, खुजली इत्यादि रोगोंको पान करतेही दूर करता है और अग्निको अत्यन्त दीपन करताहै एवं पाचनशक्तिको बढाता है। इस सोमराजीनामक घृतको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण किया है॥ ९७ ॥ ९८ ॥

पञ्चतिक्तघृत ।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा ।
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ ९९ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ १६० ॥
पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ६१ ॥
विंशतिं श्लेष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति ।
दुष्टव्रणकृमीनर्शः पञ्च कासांश्च नाशयेत् ॥ ६२ ॥

नीमकी छाल, पटोलपात, कटेरी, गिलोय और अडूसा ये प्रत्येक दस दस पल लेवे । सबोंको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल अवशिष्ट रहे तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें ताजा घी १ प्रस्थ

और त्रिफलेका चूर्ण समान भाग मिलित आधसेर डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह पञ्चतिक्तनामक घृत सर्वप्रकारके कुष्ठ, ८० प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग और २० प्रकारके कफरोग तथा दुष्टव्रण, कृमिरोग, बवासीर, पाँचों प्रकारकी खाँसी इन सबोंको पीते ही नष्ट करदेता है॥५९-१६२॥

पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां भागान् पृथक् दश-
पलान्विपचेद् घटेऽपाम् । अष्टांशशेषितरसेन सुनिः-
सृतेन प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ ६३ ॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्याद्विक्षारनागरनिशामिषि-
चव्यकुष्ठैः । तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्निरोहिण्य-
रुष्करवचाकणमूलयुक्तैः । मञ्जिष्ठयाऽतिविषया
वरया यमान्या संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः ॥ ६४ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, अडूसा, परवल और कटेरी ये प्रत्येक औषधि चालीस तोले लेकर बत्तीस सेर जलमें पकावे । जब अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । पश्चात् गोघृत एक प्रस्थ एवं नीमकी छालका कल्क, पाढ, वायविडङ्ग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जी, सोंठ, हलदी, सोंफ, चव्य, कूठ, तेजबल, मिरच, इन्द्रजौ, जीरा, चीता, कुटकी, भिलावा, वच, पीपलामूल, मंजीठ, अतीस, हरड, बहेडा, आँवला और अजवायन इन प्रत्येकके एक एक तोला चूर्णको तथा २० तोले शुद्ध गूगलको लेकर पूर्वोक्त क्वाथके साथ मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

तत्सेवितं विषमतिप्रबलं समीरं सन्ध्यस्थिमज्जगत-
मप्यथ कुष्ठमीदृक् । नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमालाजत्रू-
र्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ॥ ६५ ॥ यक्ष्मारुचिश्वसन-
पीनसकासशोषहृत्पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम् ॥ ६६ ॥

इस घृतको प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल वातरोग, सन्धि अस्थि और मज्जागत कुष्ठरोग, नाडीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ठोडीसे ऊपरके सब रोग, गुल्म, गुदाके रोग, प्रमेह, राजयक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खाँसी, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग, गलेके रोग, विद्रधि और वातरक्तप्रभृति सब रोग शीघ्र नाश होते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

महाखदिरकघृत।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले।
तुलार्द्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः॥ ६७॥
पर्पटैःकुटजैश्चैव वृषः क्रिमिहरस्तथा।
हरिद्रेकृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत्॥ ६८॥
सप्तपर्णश्च संक्षुण्णो दशद्रोणे च वारिणः।
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ ६९॥
धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत्।
महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः पलसम्मितैः॥ १७०॥
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात्।
महाखदिरमित्येतत्सर्वकुष्ठविनाशनम्॥ ७१॥

उत्तम और नवीन गौका घी एक आढक लेवें। खैर ५०० पल, सीसम और विजयसार एक एक तुला परिमाण, करञ्ज, नीमकी छाल और बेंत ये सब पचास पचास पल, पित्तपापडा, कुडेकी छाल, अडूसा, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, अमलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोत, सतवन इन सबोंको भी पचास पचास पल लेकर एकत्र कूटकर दश द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब काढेको उतारकर छानलेवे। फिर इसमें आँवलोंका रस १ आढक परिमाण, पूर्वोक्त घृत तथा महातिक्तक घृतमें कहीहुई सब औषधियोंका कल्क चार चार तोले डालकर उत्तम प्रकार घृतको मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे। यह घृत पान करनेसे और मालिश करनेसे सर्वप्रकारके कोढोंको तत्काल नष्ट करताहै। इसको महाखदिर घृत कहते हैं॥ ६७-१७१॥

श्वेतकरवीराद्यतैल।

श्वेतकरवीरमूलं विषांशसाधितं गोमूत्रे।
चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटकृमिकिटिभजित्तैलम्॥ ७२॥

सफेद कनेरकी जड और मीठा तेलिया इन दोनोंके समान भाग मिलित कल्कके साथ गोमूत्रमें कडवे तेलको विधिपूर्वक पकावे। यह तेल मर्दन करनेसे चर्मदल, सिध्म, पामा, विस्फोट, कृमि और किटिभनामक कुष्ठ दूर होते हैं॥

कृष्णसर्पतैल ।

मृतस्य कृष्णसर्पस्य शिरःपुच्छान्त्रवर्जितम् ।
अन्तर्धूमकृतं भस्म वागुजीतैलमिश्रितम् ॥
एतस्य मर्दनादेव गलत्कुष्ठं विनश्यति ॥ ७३ ॥

मरेहुए काले साँपके शिर, पूँछ और आँतोंको छोडकर शेष अङ्गको मिट्टीकी हाँडीमें रखकर उसको बन्द करके इस प्रकार जलावे जिस प्रकार धुआँ हाँडीसे बाहर न निकले। फिर उस भस्मको बापचीके तेलमें मर्दन कर लगावे तो इस तेलके लगातेही गलत्कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ७३ ॥

कुष्ठकालानलतैल ।

सूतं गन्धं शिला तालं काञ्जिकैर्मर्दयेद्दिनम्।
तल्लिप्तवस्त्रवर्त्ति तां तैलाक्तां ज्वालयेदधः ॥ ७४ ॥
स्थिते पात्रे पचेत्तैलं गृहीत्वा लेपयेत्ततः ।
कुष्ठस्थानं विशेषेण सर्वकुष्ठं हरत्यलम् ।
इदं कालानलं तैलं वातकुष्ठे महौषधम् ॥ ७५ ॥

पारा, गन्धक, मैनशिल और हरिताल इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर चार तोले काञ्जीमें एक दिनतक खरल करे। फिर सफेद कपडेके ऊपर लेप कर उसको धूपमें सुखाकर बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको तिलके तेलमें भिजोकर चीमटेसे पकडकर जलावे और उसके ऊपर थोडा थोडा तिलका तेल डालता जाय। बत्ती जलानेसे पहले एकपात्र नीचे रखलेवे, जिससे बत्तीका टपकताहुआ तेल उसी पात्रमें पडता रहे। इस प्रकार चुरे हुए तेलको लेकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठरोग अल्पकालमें ही निस्सन्देह नष्ट होते हैं और यह कालानलतैल वातकुष्ठरोगकी अत्यन्त उत्कृष्ट महौषधि है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

कुष्ठराक्षसतैल ।

सूतकं गन्धकं कुष्ठं सप्तपर्णं च चित्रकम् ।
सिन्दूरं च रसोनं च हरितालमवल्गुजम् ॥ ७६ ॥
आरग्वधस्य बीजानि जीर्णताम्रं मनःशिला ।
प्रत्येकं कर्षमेतेषां कटुतैलं पलाष्टकम् ॥ ७७ ॥
साधयेत्सूर्यतापेन सर्वकुष्ठविनाशनम् ।
श्वित्रमौदुम्बरं कच्छुं मांसवृद्धिं भगन्दरम् ॥ ७८ ॥

विचर्चिकां च पामानं वातरक्तं सुदारुणम् ।
गम्भीरं च तथोत्तानं नाशयेदस्य मृक्षणात् ॥ ७९ ॥
कुष्ठराक्षसनामेदं सावर्ण्यकरणं परम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहकांक्षया ॥ १८० ॥

पारा, गन्धक, कूठ, सतौना, चीता, सिन्दूर, लहसन, हरिताल, बापचीके बीज, अमलतासके बीज, ताँबेकी भस्म और मैनशिल इन सबोंको दो दो तोले और सरसोंका तेल ८ पल लेवे। सबोंको एकत्र मिलाकर सूर्यताप (धूप) में पकावे। यह तेल मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके कोढ, सफेदकोढ, औदुम्बरकुष्ठ, कच्छू, कुष्ठ, मांसवृद्धि, भगन्दर, विचर्चिका, पामा, दारुण वातरक्त तथा गम्भीर और उत्तानवातरक्तप्रभृति विकारोंको लगाते ही नष्ट करता है और व्रणस्थानको त्वचाके वर्णकी समान बना देता है। इस कुष्ठराक्षसनामक तेलको अश्विनीकुमारोंने सांसारिकके लिये बनाया है ॥ ७६-१८० ॥

षड्बिन्दुतैल ।

सिन्दूरामृततालगैरिकहलाजाजीगदत्र्यूषणै-
र्ह्रत्पाषाणरसोनबाणदहनस्नुह्यर्कदुग्धैर्निशा ।
राजीगन्धकहिङ्गुभिः परिमितैः शुक्त्या पचेत्सार्षपं
तैलं प्रस्थमितं घृतस्य कुडवं पात्रं तथाऽर्काद्रसम् ॥
गोमूत्रं च तथा विनीय सकलं पूतं शृतं रोगिणे
दद्यात्कुष्ठविचर्चिकादिषु भिषङ् नाम्ना तु षड्बिन्दुकम् ॥८१

सिन्दूर, मीठा विष, हरिताल, गेरू, कलिहारी, काला जीरा, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, मैनसिल, लहसन, सरफोंका, चीता, थूहरका दूध, आकका दूध, हल्दी राई, गन्धक और हींग इन सबोंको चार चार तोले लेकर कल्क बनावे। फिर इस कल्कके साथ सरसोंका तेल ६४ तोले, घी १६ तोले, आकके पत्तोंके रस ८ सेर इन सबोंको अच्छेप्रकार मिलाकर तेलको पकावे। जब उत्तम प्रकार पककर शीतल होजाय तब छानकर इस षड्बिन्दुनामक तेलको रोगीके लिये सेवन करावे। इससे कुष्ठ और विचर्चिका कुष्ठरोगमें शीघ्र लाभ होता है ॥ ८१ ॥

उन्मत्ततैल ।

उन्मत्तकस्य बीजेन माणकक्षारवारिणा ।
कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हन्ति विपादिकाम् ॥ ८२ ॥

धतूरेके बीज और मानकन्दके खार जलके साथ कडवे तेलको पकावे। इस तेलको लगानेसे विपादिकाकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ८२ ॥-

मरिचाद्यतैल।

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत्।
शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥ ८३ ॥
कटुतैलात्पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः।
सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्वित्रविनाशनम् ॥
सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रशस्यते ॥ ८४ ॥

काली मिरच, हरिताल, मैनसिल, नागरमोथा, आकका दूध, कनेरकी जड, बालछड, निसोत, गोबरका रस, इन्द्रायनकी जड, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु और लाल चन्दन ये प्रत्येक दो दो तोले और मीठा विष चार तोले, सबोंको एकत्र पीसकर कल्क बनालेवे। पश्चात् इस कल्कके साथ सरसोंका तेल ६४ तोले और गोमूत्र ८ सेर मिलाकर विधिपूर्वक तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे दाद और श्वेतकुष्ठ नष्ट होते हैं। यह तेल अन्य सर्व प्रकारके कुष्ठोंमें भी हितकर है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

बृहन्मरिचाद्यतैल।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ८५ ॥
विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला।
चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ ८६ ॥
शिरीषं कुटजो निम्बः सप्तपर्ण स्नुहाऽमृता।
शम्याको नक्तमालोऽब्दं खदिरं पिप्पली वचा ॥ ८७ ॥
ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्।
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम्।
मृत्पात्रे लौहपात्रे च शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८८ ॥

मिरच, निसोत, दन्तीकी जड, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, बालछड, कूठ, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, हरिताल, मैनसिल, चीता, कलिहारी, वायविडङ्ग, चकवडके बीज, सिरसकी छाल, कुडेकी छाल, नीमकी

छाल, सतौनेकी छाल, थूहरका दूध, गिलोय, अमलतास, करञ्ज, नागरमोथा, खैर, पीपल, वच और मालकांगुनी ये औषधियाँ पृथक् पृथक् चार चार तोले और मीठा तेलिया ८ तोले, कडवा तेल १ आढक और गोमूत्र ४ आढक परिमाण लेवे । प्रथम पूर्वोक्त औषधियोंका कल्क बनालेवे फिर सबोंको यथाविधि एकत्रकर मिट्टीके अथवा लोहेके पात्रमें मन्द मन्द अग्निद्वारा तेलको सिद्ध करे ॥ ८५–८८ ॥

पक्त्वा तैलवरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कुष्ठकान् व्रणान् ।
पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ॥ ८९ ॥
वलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गस्तथैव च ।
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ १९० ॥
प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यञ्च दीयते ।
परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम् ॥ ९१ ॥
बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वायुनिपीडितः ।
एभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ ९२ ॥

उत्तम प्रकारसे पकाकर सिद्ध किये हुए इस तेलको कुष्ठके व्रणोंपर लगावे तो कुष्ठव्रण शीघ्र नष्ट होते हैं । यह तेल पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू, विस्फोटक, वली, पलित, छाया, नीली और व्यङ्ग इन सब रोगोंको अभ्यंगमात्रसेही नष्ट कर देताहै तथा सुकुमारताको उत्पन्न करताहै । जिन स्त्रियोंकी बाल्यावस्थामेंही इस तेलको नास दिया जाताहै उनके अत्यन्त वृद्धताको प्राप्त होनेपर भी स्तन नम्रताको प्राप्त नहीं होते । यदि बैल, घोडा अथवा हाथी वायुरोगसे पीडित हों तो उनके अंगोंपर इस तेलका गाढा गाढा लेप करे तो वे वायुके वेगके समान पराक्रमी होजाते हैं ॥ ८९–१९२ ॥

सोमराजीतैल ।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्षपाः कुष्ठमेव च ।
करञ्जैडगजाबीजं पत्राण्यारग्वधस्य च ॥ ९३ ॥
विपचेत्सार्षपं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ।
अनेनाशु प्रशाम्यन्तिकुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ ९४ ॥
नीलिका पिडिका व्यङ्गा गम्भीरं वातशोणितम् ।
कण्डूकच्छूप्रशमनं दद्रुपामानिवारणम् ॥ ९५ ॥

बापची, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद सरसों, कूठ, करञ्ज, चकवडके बीज, और अमलतासके पत्ते इन औषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको पकावे । यह तेल मर्दन करनेसे नासूरको शीघ्र दूर करता है तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ, नीलिका, पिडिका, व्यंग, गम्भीर वातरक्त, कण्डू, कच्छू, दद्रु और पामा इत्यादिरोग इस तेलके लगानेसे तत्काल नष्ट होते हैं ॥

वृहत्सोमराजीतैल ।

सोमराजीतुलाक्काथे तथा दद्रुहणस्य च ।
गोमूत्रस्य तथा पात्रे कल्कं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ९६ ॥
विपचेत्कार्षिकैर्भागैः प्रस्थं तैलं तु सार्षपम् ।
चित्रकं लाङ्गलाख्या च नागरं कुष्ठमेव च ॥ ९७ ॥
हरिद्रा नक्तमालं च हरितालं मनःशिला ।
आस्फोतार्ककरवीरं सप्तपर्णं च गोमयम् ॥ ९८ ॥
खदिरो निम्बपत्रं च मरिचं कासमर्दकम् ।
एतानि श्लक्ष्णपिष्टानि कल्कंदत्त्वा विचक्षणः ॥ ९९ ॥

बापचीका क्वाथ १०० पल, चकवडके बीजोंका क्वाथ १०० पल, गोमूत्र ३२ सेर, सरसोंका तेल ६४ तोले और चीता, कलिहारी, सोंठ, कूठ, हल्दी, करञ्ज, हरिताल, मैनसिल, आस्फोत (लता विशेष), आककी जड, सफेद कनेरकी जड, सतौनेकी छाल, गोबरका रस, खैर, नीमके पत्ते, मिरच और कसौंदी इनको दो दो तोले लेकर खूब बारीक पीसकर कल्क बनावे । फिर सबोंको एकत्र मिलाकर अच्छेप्रकार तेलको पकावे ॥ ९६-९९ ॥

हन्ति सर्वाणि कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानि च ॥ २०० ॥
किटिभं दद्रुजातं च गात्रवैवर्ण्यमेव च ।
विशीर्णचर्ममांसादिदृढीकरणमुत्तमम् ।
पाण्डुरोगं तथा कण्डूं विसर्पं हन्ति दारुणम् ।
ये चान्ये त्वग्गता रोगास्तांस्तु शीघ्रं व्यपोहति ॥ १ ॥

यह यथाविधि सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठ, कृमिराग, दुष्टव्रण, किटिभकुष्ठ, दद्रुकुष्ठ, शरीरकी विवर्णता, त्वचाका फटना, पाण्डुरोग, कण्डू और दारुण विसर्प इत्यादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करताहै और अन्यान्य जितने त्वचासम्बन्धी रोग हैं उन

सबोंको तत्काल नाश करता है एवं मांसादि धातुओंको अत्यन्त दृढ़ करता है ॥ २०० ॥ २०१ ॥

विषतैल ।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे अर्कं तगरमेव च ।
करवीरं वचा कुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ २ ॥
मालतीसिन्दुवारं च मञ्जिष्ठा सप्तपर्णकम् ।
एषामर्द्धपलान्भागान्विषस्य द्विपलं तथा ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३ ॥
श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः ।
कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ॥ ४ ॥
ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्योदये यथा ।
विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ५ ॥

करंजुआ, हल्दी, दारुहल्दी आकका दूध, तगर, कनेरकी जड, वच कूठ, आस्फोतानामक लता, लालचन्दन, चमेलीके पत्ते, सिह्मालू, मंजीठ, सतौना इन सबोंको दो दो तोले और मीठा तेलिया ८ तोले लेकर एकत्र पीस लेवे । फिर इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेलको चौगुने गोमूत्रमें विधिपूर्वक मिलाकर पकावे । इस तेलको लगानेसे श्वेतकुष्ठ, विस्फोटक, किटिभ, कीटरोग, लूतादोष, विचर्चिका, कण्डू, कच्छूआदि विकार और विषदूषित व्रण यह सब रोग इस प्रकार शीघ्र नाशको प्राप्त होते हैं; जिस प्रकार सूर्योदयके समय अन्धकारसमूह तत्काल छिन्न-भिन्न होजाता है । यह विषतेल विशेषकर सर्व प्रकारके व्रणोंको शुद्ध करनेवाला है ॥ २-५ ॥

श्वित्रपञ्चाननतैल ।

एरण्डतुलसीबीजं वागुजी चक्रमर्दकम् ।
तिक्तकोषातकीबीजं कृष्णाङ्कोटस्य बीजकम् ॥ ६ ॥
कल्कं दत्त्वा शिलाकाशी पथ्या कुष्ठं विडङ्गकम् ।
गोमूत्रदधिदुग्धैश्च पचेदप्याजमूत्रकैः ॥ ७ ॥
कटुतैलं च तल्लेपादीषद् घृष्ट्वा विलेपनैः ।
पञ्चाननमिदं तैलं श्वेतकुष्ठकुलापहम् ॥ ८ ॥

अण्डीके बीज, तुलसीके बीज, बापची, चकवड, कडवी तोरईके बीज, पीपल, ढेरावृक्षके बीज, मैनसिल, हीराकसीस, हरड, कूठ और वायविडंग ये सब औषधियाँ समान भाग मिलित एक सेर लेकर एकत्र पीसकर कल्क बनालेवे। फिर यह कल्क एवं गोमूत्र; दहीका तोड, गौका दूध, बकरेका मूत्र और कडवा तेल ये प्रत्येक चार चार सेर, सबोंको एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकार पकावे। श्वेतकुष्ठपर प्रथम खुजलाकर पश्चात् इस तेलको मर्दन करे तो श्वेतकुष्ठरोग समूल नष्ट होजाता है और त्वचाका वर्ण पूर्ववत् अत्यन्त सुन्दर हो जाता है ॥ २०६–२०८ ॥

आरग्वधाद्यतैल ।

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालंमनःशिला ।
रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित् ॥
एतेनाभ्यञ्जनादेव क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥ ९ ॥

अमलतासके बीज, धौंवृक्षकी छाल, कूठ, हरिताल, मैनशिल, हल्दी; दारुहल्दी इन औषधियोंके समान भाग मिश्रित १ सेर कल्कके द्वारा १ प्रस्थ तेलको यथाविधि पकावे। इस तेलके मर्दन करनेसेही श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २०९ ॥

वासारुद्रतैल ।

त्रिफला निम्बभण्टाकी बृहत्यौ सपुनर्नवे ।
हरिद्रे वृषनिर्गुण्ड्यौ पटोलकनकाह्वयौ ॥ २१० ॥
हरितालं शिलाकुष्ठौ लाङ्गलीदाडिमाह्वयौ ।
अपामार्गो विषं चैव जयन्ती पूतिकट्फलौ ॥ ११ ॥
एषां कर्षद्वयैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणे गुडूच्याश्च रसे वैद्यः समाहितः ॥ १२ ॥
चतुर्गुणं तु गोक्षीरं वृषपत्ररसं तथा ।
दत्त्वाऽवतारयेद्वैद्यो रुद्रमन्त्रं समाजपेत् ॥ १३ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, मुसली, कटाई, कटेरी, श्वेतपुनर्नवा, लालपुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, अडूसा, निर्गुण्डी, परवल, धतूरेकी जड, हरिताल, मैनसिल, कूठ, कलिहारी, अनार, चिरचिटा, मीठा विष जयन्ती, दुर्गन्धकरञ्ज और कायफल इन सबोंको दो दो तोले लेकर एकत्र कल्क बनावे। इस कल्कके साथ तिलका तेल १ प्रस्थ, गिलोयका रस ४ प्रस्थ, अडूसेके पत्तोंका रस ४ प्रस्थ

और गौका दूध ४ प्रस्थ मिलाकर तेलको पकावे। जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतार लेवे और यथाशक्ति शिवजीके मन्त्रका जप करे। पश्चात् इस तेलको प्रतिदिन नियमबद्ध होकर सेवन करे॥

दद्रुं कुष्ठं दुष्टव्रणं विसर्पं विद्रधिं तथा।
नाडीव्रणं व्रणं घोरं वातरक्तं सुदुर्जयम्॥ १४॥
सन्निपातज्वरं चैव शिरोरोगं सुदारुणम्।
शोथं च गलगण्डं च श्लीपदं त्वर्बुदं तथा॥ १५॥
वातरोगानशेषांश्च अन्त्रवृद्धिं सुदारुणाम्।
पीनसश्वासकासं च सुदारुणभगन्दरम्॥ १६॥
उपदंशं महाघोरं चक्षुःशूलं च नाशयेत्।
चर्मोत्थान्सर्वरोगांश्च तैलमेतद्विनाशयेत्
रुद्रतैलमिदं नाम्ना स्वयं रुद्रेण भाषितम्॥ १७॥

यह तैल दाद, कोढ, दुष्टव्रण, विसर्प, विद्रधि, नासूर, भयङ्कर व्रण; दुर्जय वातरक्त, सन्निपातज्वर, शिरोरोग, सूजन, गलगण्डरोग, श्लीपद, अर्बुद, वातजन्य सब रोग, दारुण अन्त्रवृद्धि, पीनस, श्वास, खाँसी, दारुण भगन्दर, अत्यन्त कठिन उपदंश और नेत्रोंकी पीडाप्रभृति उत्कट व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है। यह तेल चर्ममें उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण विकारोंको अल्पकालमें ही नाश करदेता है। इस तेलको स्वयं शिवजी महाराजने वर्णन किया है; इसलिये इसको रुद्रतैल कहते हैं॥ २१४-२१७॥

कन्दर्पसारतैल।

सप्तपर्णस्तथा काली गुडूची पिचुमर्दकम्।
शिरीषं च महातिक्ता जया तुम्बी मृगादनी॥ १८॥
निशा दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्।
तैलप्रस्थं समादाय गोमूत्रं च चतुर्गुणम्॥ १९॥
आरग्वधो भृङ्गराजो जयाधुस्तूररात्रयः।
ऐन्द्रासनाग्निः खर्ज्जूरं गोमयार्कस्नुहीच्छदम्॥ २२०॥
तैलतुल्यं प्रदातव्यं स्वरसं च पृथक् पृथक्।
महाकालवचाब्राह्मीतुम्ब्यग्निगृहपुत्रिकाः॥ २१॥

कुचेला कुलको रात्रिर्मेघनामा च ग्रन्थिका ।
शम्याकमर्कक्षीरं च कासुन्देश्वरमूलकम् ॥ २२ ॥
आचजिङ्गी महातिक्ता विशालाच्छविपत्रकम् ।
पूतिकास्फोतमूर्वा च सप्तपर्णशिरीषकम् ॥ २३ ॥
कुटजं पिचुमर्दश्च महानिम्बं तथैव च ।
गुडूची चन्द्ररेखा च सोमराट् चक्रमर्दकम् ॥ २४ ॥
तुम्बुरुर्भृङ्गयष्ट्याह्वकन्दं कटुकरोहिणी ।
शठी दार्वी त्रिवृत्पद्मग्रन्थिकागुरुपुष्करम् ॥ २५ ॥
कर्पूरं कटफलं मांसी मुरैलाटरूषाभयम् ।
एतेषां कार्षिकैः कल्कैर्नाम्ना कन्दर्प उच्यते ॥ २६ ॥

सतौनेकी छाल, पीला चन्दन, गिलोय, नीमकी छाल, सिरसकी छाल, बकायन, जयन्ती, कडवीतोंबी, सेंधिनी और हल्दी इनको चालीस चालीस तोले लेकर बत्तीस सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्वाथमें सरसोंका तेल एक प्रस्थ, गोमूत्र चार प्रस्थ, अमलतास, भाङ्गरा, जयन्ती, धतूरा, हल्दी, भाँग, चीता, खजूर, गोबरका रस, आक और थूहर इन सबोंके पत्तोंका रस एक एक प्रस्थ तथा कल्कके लिये महाकाल (लताविशेष), वच, ब्राह्मी, कडवीतोंबी, चीतेकी जड, घीग्वार, कुचला, परवल, हल्दी, नागरमोथा, पीपलामूल, अमलतासका गूदा, आकका दूध, कसौंदी, कलिहारीकी जड, रञ्जनद्रुम (पुष्पवृक्ष विशेष), मञ्जीठ, पाढ, इन्द्रायनकी जड, बिछुआके पत्ते, करञ्जकी जड, आस्फोतनामकी लता, मूर्वाकी जड, सतवनकी छाल, सिरसकी छाल, कुडेकी छाल, नीमकी छाल, बकायनकी छाल, गिलोय, बापचीके बीज, चकवडके बीज, धनियाँ, भाँगरा, मुलहठी, जिमीकन्द, कुटकी, कचूर, दारुहल्दी, निसोत, पद्माख, गठिवन, अगर, पोहकरमूल, कपूर, कायफल, बालछड, कपूरकचरी, इलायची, अडूसेकी छाल और खस इन औषधियोंको दो दो तोले, परन्तु सोमराजीके बीज चार तोले लेवे और सबोंको एकत्र कूटपीसकर, यथाविधिसे मिलाकर तेलको पकावे । इस प्रकार सिद्ध किये हुए तेलको कन्दर्पतेल कहते हैं ॥

अष्टादशविधं कुष्ठं ग्रन्थिमज्जगतं तथा ।
हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं सर्वसंधिषु ॥ २७ ॥

यस्य गात्रे भविष्यन्ति मांसानि चाधिकानि च।
नासाकर्णस्य वैकल्यं भेकाकारवपुस्त्वचम् ॥ २८॥
श्वेतं रक्तं तथा कुष्ठं नानावर्णं विपादिकाम्।
श्वित्रं चतुर्विधं चैव वातशोणितमेव च ॥ २९॥
कापालं कृमिजं कुष्ठं कण्डूं दद्रुं विचर्चिकाम्।
पामाविस्फोटकानीलीकृमिवृद्धिं तथैव च ॥ २३०॥
कीटकुष्ठमसूरीश्च किटिभं रक्तमण्डलम्।
कुष्ठमौदुम्बरं पद्मं महापद्मं तथैव च ॥ ३१॥
गलगण्डार्बुदं हन्याद्गण्डमालां भगन्दरम्।
वातजं पित्तजं चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम्॥
एकोल्बणं द्व्युल्बणं च कुष्ठं हन्यान्न संशयः ॥ ३२॥

यह तेल अठारहों प्रकारके कोढ, ग्रन्थि और मज्जागत कुष्ठ, हाथ, पैर, अंगुली और सन्धियोंका गलजाना, शरीरके किसी अङ्गमें मांस अधिक बढजाना, नाक और कानोंकी विकलता, मेंडककी समान त्वचाका होजाना, श्वेत अथवा लालकुष्ठ, अनेक वर्णका कुष्ठ, विपादिका, चार प्रकारका सफेदकुष्ठ, वातरक्त, कापाल और कृमिजनितकुष्ठ, कण्डू, दद्रु, विचर्चिका, पामा, विस्फोटक, कृमिवृद्धि कीट, मसूरिका, किटिभ, रक्तमण्डल, औदुम्बर कुष्ठ, पद्म, महापद्म कुष्ठ, गलगण्ड, अर्बुद, गण्डमाला, भगन्दर, वातजकुष्ठ, पित्तजश्लैष्मिककुष्ठ, त्रिदोषजकुष्ठ, एकोल्बणकुष्ठ द्व्युल्बणकुष्ठ इत्यादि सर्वप्रकारके कुष्ठोंको निश्चय नष्ट करदेता है ॥ २२७-२३२॥

खदिरारिष्ट।

खदिरस्य तुलार्द्धं तु देवदारु च तत्समम्।
वागुजी द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥३३॥
त्रिफलाविंशतिपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्।
कषाये द्रोणशेषे च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ ३४॥
तुलाद्वयं माक्षिकस्य तुलैका शर्करा तथा।
धातक्या विंशतिपलं कक्कोलं नागकेशरम् ॥ ३५॥
जातीफलं लवङ्गैला त्वक्पत्राणि पृथक् पृथक्।
पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्टयम्॥
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः ॥ ३६॥

महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदं तथा।
गुल्मं ग्रन्थिकृमीन्कासं तथा प्लीहोदरं जयेत् ॥ ३७ ॥
एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठविनाशनः ॥ ३८ ॥

खैर ५० पल, देवदारु ५० पल, बापची १२ पल, दारुहल्दी २० पल और त्रिफला २० पल सबोंको एकत्र कूटकर आठ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते एक द्रोण जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर इस क्वाथमें शहद २०० पल, खाँड १०० पल, धायके फूल २० पल, शीतलचीनी, नागकेशर, जायफल, लौंग, इलायची, दारचीनी और तेजपात ये प्रत्येक चार चार तोले तथा पीपल १६ तोले इन औषधियोंको बारीक कूटपीसकर डालदेवे । पश्चात् सबोंको विधिपूर्वक एकत्र मिलाकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसका मुख बन्दकरके एक महीनेतक रखा रहनेदेवे । एक महीनेके अनन्तर इसमेंसे प्रतिदिन बलानुसार उचितमात्रासे सेवन करे । इसके सेवनसे अत्यन्त भयङ्कर सम्पूर्ण कुष्ठरोग तथा हृद्यरोगें, पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म, ग्रन्थि, कृमि, खाँसी, तिल्ली, उदरविकार आदिरोग शीघ्र दूर होते हैं । यह खदिरारिष्ट सर्वप्रकारके कुष्ठोंको विनासन्देह नष्ट करनेवाला है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कुष्ठरोगमें पथ्य ।

पक्षात्पक्षाच्छर्दनानि मासान्मासाद्विरेचनम् ।
नस्यं त्र्यहात्त्र्यहान्मासि षष्ठे षष्ठेऽस्रमोक्षणम् ॥ ३९ ॥
सर्पिर्लेपश्चिरोत्पन्ना यवगोधूमशालयः ।
मुद्गाढकीमसूराश्च माक्षिकं जाङ्गलामिषम् ॥ ४० ॥
आषाढफलवेत्राग्रं पटोलं बृहतीफलम् ।
काकमाची निम्बपत्रं लशुनं हिलमोचिका ॥ ४१ ॥
पुनर्नवा मेषशृङ्गी चक्रमर्ददलानि च ।
भल्लातकं पक्वतालं खदिरश्चित्रको वरा ॥ ४२ ॥
जातीफलं नागपुष्पं कुंकुमं प्रतनं हविः ।
कोषातकी करञ्जोऽपि तिलसर्षपनिम्बजम् ॥ ४३ ॥
तैलं तथेङ्गुदोत्थं च लघून्यन्यानि यानि च ।
स्नेहाः सरलदेवाह्वशिंशपागुरुसम्भवाः ॥ ४४ ॥

मूत्राणि गोखरोष्ट्राश्वमहिषीजनितानि च।
कस्तूरिकागन्धसारस्तिक्तानि क्षारकर्म च॥
यथादोषं समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठिनाम्।

कुष्ठरोगमें एक एक पक्ष पीछे वमन, एक एक महीने पीछे विरेचन (जुल्लाव) देवे, तीन तीन महीनें बीतें नस्य और छः छः महीनेके अन्तरसे रक्तमोक्षण (फस्तखुलवाना) करावे। घीका लेप करे एवं पुराने जौ, गेहूँ, शालिचावल, मूँग अरहर, मसूर इनका भोजन, शहद, जंगली जीवोंका मांस ढकपन्ना, बेंतकी कोंपल, परबल, बडी कटेरीके फल, मकोय, नीमके पत्ते, लहसन, हुलहुलका शाक, पुनर्नवा मेढ़ासिंगी, चकवडके पत्ते, भिलावे, पके ताडके फल, खैर, चीता त्रिफला, जायफल, नागकेशर, केशर, पुराना घी, तोरई, करञ्ज, तिल, सरसों, नीम और हिंगोट इनका तेल, हलके पदार्थ, धूपसरल, देवदारु, शीशम और अगर इनका तेल, गौ, गधा, ऊँट, घोडा और भैंस इन सबोंके मूत्र; कस्तूरी, सफेदचन्दन, तीखेरसवाले द्रव्य और क्षारकर्म ये सब दोषानुसार सेवन करनेसे कुष्ठरोगियोंके लिये हितकारी है॥ ३९-२४५॥

कुष्ठरोगमें अपथ्य।

पापानि कर्माणि कृतघ्नभावं निन्दां गुरूणां गुरुधर्षणं च।
विरुद्धपानाशनमह्नि निद्रां चण्डांशुतापं विषमाशनं च॥ ४६॥
स्वेदं रतं वेगनिरोधमिक्षुं व्यायाममम्लानि तिलांश्च माषान्।
द्रवान्नगुर्वन्ननवान्नभुक्तं विदाहि विष्टंभि च मूलकानि॥ ४७॥
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिसमुद्भवानां तरङ्गिणीनामुदकानि चापि।
आनूपमांसं दधिदुग्धमद्यं गुडं च कुष्ठामयिनस्त्यजेयुः॥४८॥

पापकर्म, कृतघ्नता, गुरुओंकी निन्दा, गुरुजनोंका तिरस्कार करना, स्वभावविरुद्ध भोजन-पान करना, दिनमें सोना, प्रचण्ड धूपका सेवन, विषम भोजन, स्वेद-देना, स्त्रीप्रसंग, मल-मूत्रादिके वेगको रोकना, ईखके रसका पान, कसरत करना, खट्टे पदार्थ, तिल, उडद, पतले पदार्थ, दुष्पाच्य अन्न, नये नाजोंका भोजन, दाहकारक-विबन्धकारक द्रव्य, मूली, सह्याचल और विन्ध्याचलसे निकली हुई नदियोंका जल, अनूपदेशजात जीवोंका मांस, दही दूध, मदिरा और गुड ये सब अपथ्य पदार्थ कुष्ठरोगियोंको त्याग देना चाहिये॥ ४६-२४८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कुष्ठरोगचिकित्सा॥

शीतपित्त उदर्द और कोठरोगकी चिकित्सा ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्तथा ।
उदर्दे वमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ १ ॥
त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
अमृतादिं विसर्पोक्तं भिषगत्र प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

उदर्दरोगमें सरसोंके तेलकी मालिशकर गरम जलसे सेंक करे, फिर पटोलपत्र और नीमकी छालके काढेमें मैनफलका चूर्ण डालकर रोगीको पान कराकर वमन करावे । पश्चात् हरड, बहेडा, आमला, गूगल और पीपल इनके क्काथद्वारा विरेचन (जुलाब) करावे । इस रोगमें विसर्परोगाधिकारमें कहा हुआ अमृतादिक्वाथ पान करानेसे विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥ २ ॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः ।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहगः ॥ ३ ॥

पथ्य द्रव्योंका भोजन करनेवाला मनुष्य यदि पुराना गुड और अजवायन इन दोनोंको एकत्र मर्दनकर सात दिनतक खाय तो उसका सर्वशरीरगत उदर्दरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

दूर्वानिशायुते लेपः कण्डूपामाविनाशनः ।
कृमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः ॥
क्षारसैन्धवतैलेन गात्राभ्यङ्गं प्रकारयेत् ॥ ४ ॥

दूब और हल्दीको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कण्डू (खुश्क खुजली) और पामा (तर खुजली) नष्ट होती है । जवाखार और सैंधनमकको तिलके तेलमें मिलाकर मालिश करनेसे कृमि, दद्रुकुष्ठ और शीतपित्तरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा ।
शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ ५ ॥

अरणीकी जडको पीसकर घीमें मिलाकर पान करे तो शीतपित्त, उदर्द और कोठरोग सात दिनमें ही नाश होजाते हैं ॥ ५ ॥

कुष्ठोक्तं च क्रमं कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च।
उदर्दोक्तां क्रियां सर्वां कोठरोगे समासतः।
सर्पिः पीत्वा माहतिक्तं कार्यं रक्तस्य मोक्षणम् ॥ ६ ॥

इस रोगमें कुष्ठरोगोक्त चिकित्सा और अम्लपित्तनाशक औषधियोंका सेवन करे। एवं उदर्दरोगमें कही हुई चिकित्साके अनुसार कोठरोगकी चिकित्सा करे। कोठरोगमें महातिक्तघृतका पान और रक्तमोक्षण करना उपयोगी है ॥ ६ ॥

कर्षं गव्यघृतस्यापि कर्षार्द्धं मरिचस्य च।
एकीकृत्य पिबेत्प्रातः शीतपित्तविनाशनः ॥ ७ ॥

छः मासे काली मिरचोंको छः मासे गौके घीमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

हरिद्राखण्ड।

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ षट्पलं हविषस्तथा।
क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द्धतुलां तथा ॥ ८ ॥
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृन्मये दृढे।
कटुत्रिकं त्रिजातं च कृमिघ्नं त्रिवृता तथा ॥ ९ ॥
त्रिफला केशरं मुस्तं लौहं प्रति पलं पलम्।
सञ्चूर्ण्यं प्रक्षिपेत्तत्र कर्षमेकं तु भक्षयेत् ॥ १० ॥
कण्डूविस्फोटदद्रूणां नाशनं परमौषधम्।
प्रतप्तकाञ्चनाभासो देहो भवति नान्यथा ॥ ११ ॥
शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत्।
हरिद्रानामकः खण्डः कण्डूनां परमौषधम् ॥ १२ ॥

हलदीका चूर्ण ३२ तोले, गोघृत २४ तोले, गोदुग्ध ८ सेर और चीनी ५० पल इन सबोंको एकत्र मिलाकर स्वच्छ और दृढ मिट्टीके बर्त्तनमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे। फिर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडङ्ग, निसोत, हरड, बहेडा, आमला, नागकेशर, नागरमोथा और लोहभस्म ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेवे और सबोंको बारीक पीसकर मिला देवे। इसको प्रतिदिन एक एक तोला प्रमाण सेवन करनेसे कण्डू, विस्फोटक और दद्रु रोगोंका शीघ्र नाश होता है तथा शरीर तपे हुए सुवर्णकी

समान अत्यन्त देदीप्यमान होजाता है। यह औषधि शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगोंको सात दिनमें ही नष्ट करदेता है। इसको हरिद्राखण्ड कहते हैं। यह हरिद्राखण्ड खुजलीरोगकी अत्युत्तम औषधि है ॥ ८-१२ ॥

बृहद्धरिद्राखण्ड ।

निशाचूर्णस्य कुडवं त्रिवृत्पलचतुष्टयम् ।
अभया तत्समा देया सार्द्धप्रस्थद्वयी सिता ॥ १३ ॥
दार्वी मुस्ता यमान्यौ द्वे चित्रकं कटुरोहिणी ।
अजाजी पिप्पली शुण्ठी त्रिजातं कृमिकण्टकम् ॥ १४ ॥
अमृता वासकं कुष्ठं त्रिफला चव्यधान्यकम् ।
मृतलोहं मृताभ्रं च प्रत्येकं कोलसंमितम् ॥ १५ ॥
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृन्मये नवे ।
कर्षार्द्धं च ततः खादेदुष्णतोयानुपानतः ॥ १६ ॥
शीतपित्तोदर्दकोठकण्डूपामाविचर्चिकाः ।
जीर्णज्वरकृमीन्पाण्डुशोथादींश्च विनाशयेत् ॥ १७ ॥

हल्दीका चूर्ण १६ तोले, निसोत १६ तोले, हरड १६ तोले, मिश्री १६० तोले, दारुहल्दी, नागरमोथा, अजवायन, अजमोद, चीता, कुटकी, कालाजीरा, पीपल, सोंठ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडङ्ग, गिलोय, अडूसा, कूठ, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एकएक तोला लेवे। फिर सबोंको एकत्र कूटपीसकर यथाविधिसे मिलाकर मिट्टीके नये और उत्तमप्रकारसे दृढ पात्रमें पाक करे। प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे छः छः माशे लेकर मन्दोष्ण जलके साथ भक्षण करे तो यह बृहद्धरिद्राखण्डावलेह शीतपित्त (पित्ती), उदर्द, कोठ, कण्डू, पामा, विचर्चिका, जीर्णज्वर, कृमिरोग, पाण्डु और शोथप्रभृति रोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है ॥

शीतपित्तोदर्दकोठरोगोंमें पथ्य ।

छर्दिर्विरेचनं लेपोऽसृङ्मोक्षो जीर्णशालयः ।
जाङ्गलैरामिषैर्मुद्गैः कुलत्थैर्वा कृता रसा ॥ १८ ॥
कर्कोटकं कारवेल्लं शिग्रुमूलकपोतिकाः ।
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं दाडिमं त्रिफला मधु ॥ १९ ॥

कटुतैलं तप्तनीरं पित्तश्लेष्महराणि च।
कटुतिक्तकषायाणि सर्वाणीति गणः सखा॥
शीतपित्तोदर्दकोठरोगिणां स्याद्यथाबलम्॥ २०॥

वमन, विरेचन, प्रलेप और रक्तमोक्षण कराना, पुराने शालिचावल, जङ्गली पशु-पक्षियोंका मांसरस, मूँगका यूष, कुलथीका यूष, ककोडे, करेले, सहिंजनेकी फली, मूली, पोईका शाक, शालिञ्चशाक, बेंतकी कोंपल, अनार, त्रिफला, मधु, सरसोंका तेल, गरमजल, कफ-पित्तनाशक द्रव्य और समस्त कडवे तीखे तथा कषायरसवाले पदार्थ ये सब शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगवाले व्यक्तियोंको दोषानुसार सेवन करनेसे सुखावह कहेगये हैं॥ १८-२०॥

शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगोंमें अपथ्य।

क्षीरेक्षुजाता विविधा विकारा मत्स्योदकानूपभवामिषाणि।
नवीनमद्यं वमिवेगरोधः प्राग्दक्षिणाशापवनोऽह्नि निद्रा॥ २१॥
स्नानं विरुद्धाशनमातपश्च स्निग्धं तथाऽम्लं मधुरं कषायम्।
गुर्वन्नपानानि च शीतपित्तकोठामयोदर्दवतां विषाणि॥ २२॥

दूधके बने द्रव्य (दही, मलाई आदि), ईखके रससे बने (गुडादि) नानाप्रकारके द्रव्य, मछली, जलचर और अनूपदेशवासी जीवोंका मांस, नईमदिरा, वमन (कै) के वेगको रोकना, पूर्वदिशा और दक्षिणदिशाकी वायुका सेवन, दिनमें शयन, स्नान, विरुद्धभोजन, धूपका सेवन, चिकने, खट्टे, मीठे और कषैले पदार्थ, गुरुपाकी अन्न-पान ये सब वस्तुएँ शीतपित्त, कोठ और उदर्द, रोगाक्रान्त मनुष्योंको विषके समान अहितकर हैं॥ २१॥ २२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शीतपित्तोदर्दकोठरोगचिकित्सा॥

अम्लपित्तकी चिकित्सा।

वान्तिं कृत्वाऽम्लपित्ते तु विरेकं मृदु कारयेत्।
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्॥ १॥

अम्लपित्तरोगमें वमन और मृदु विरेचन करावे। जब उक्तक्रियाओंके द्वारा शरीरकी अच्छे प्रकार शुद्धि होजाय तब रोगीको स्निग्धद्रव्य पान कराकर अनुवासनवस्ति लगावे॥ १॥

आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया ।
क्रियाशुद्धस्य शमनं ह्यनुबन्धव्यपेक्षया ॥
दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना ॥ २ ॥

पुराने अम्लपित्तरोगमें दोषोंको विचारकर निरूहणवस्ति प्रयोग करना उपयोगी है । अम्लपित्तमें मिलेहुए दोषोंका प्रकोप होनेपर उपर्युक्त विधिके अनुसार रोगीको शुद्धकर दोषोंको शमन करनेवाली औषध और आहारकी कल्पना करे ॥ २ ॥

ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत् ।
अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः ॥ ३ ॥
कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोल्बणे ।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें वमन और अधोगत अम्लपित्तमें विरेचन कराना श्रेष्ठ है, कफप्रधान अम्लपित्तरोगमें परवलके पत्ते, नीमके पत्ते, मैनफल, शहद, सैन्धानमक इनका क्काथ पान कराकर रोगीको वमन करावे एवं आमलोंके क्काथमें शहद और निसोतका चूर्ण डालकर रोगीको पान कराकर दस्त करावे ॥ ३ ॥ ४ ॥

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं चापि प्रकल्पयेत् ।
यवगोधूमविकृतितीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥
यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ५ ॥

अम्लपित्तरोगमें कडवेरसवाले द्रव्योंके साथ आहार और पान मिश्रित करके देवे । एवं मिष्ट पदार्थोंके साथ जौ और गेहूँके बनाये हुए खाद्यपदार्थ देवे, किन्तु उनके साथ नमक, लालमिरच और खटाई आदि तीक्ष्णद्रव्य मिलाकर सेवन न करे । अम्लपित्तरोगी मिश्री और शहद मिलाकर खीलोंके सत्तुओंको यथेच्छरूपसे पान करे ॥ ५ ॥

निस्तुषयववृषधात्रीक्काथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः ।
हन्त्यम्लपित्तमचिराद् यदि भुक्तं मुद्गयूषेण ॥ ६ ॥

भूसीरहित जौ, अडूसेके पत्ते और आमले इनके क्काथमें दारचीनी, इलायची और तेजपात इनका चूर्ण एवं शहद मिलाकर पान करे और मूँगके यूषका पथ्य करे तो अम्लपित्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६ ॥

कफपित्तवमिकण्डूज्वरविस्फोटदाहहा ।
पाचनो दीपनः क्वाथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ७ ॥

अदरख, परवल इनका सुखोष्ण क्वाथ पान करनेसे कफ-पित्तजन्य वमन, खुजली, ज्वर, विस्फोट दाहादिरोग नष्ट होते हैं। यह क्वाथ पाचन, दीपन है ॥ ७ ॥

पटोलं नागरं धान्यं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
कण्डूपामार्त्तिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ ८ ॥

पटोलपात, सोंठ और धनियाँ इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे कण्डू, पामा, शूल, कफ, पित्तजन्य रोग और मन्दाग्निप्रभृति विकार दूर होते हैं ॥ ८ ॥

पटोलविश्वामृतरोहिणीकृतं जलं पिबेत्पित्तकफाश्रयेषु ।
शूलभ्रमारोचकवह्निमान्द्यदाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत् ॥ ९ ॥

परवल, सोंठ, गिलोय और कुटकी इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर पान करें तो पित्तकफोत्पन्न अम्लपित्त एवं शूल, भ्रम, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, ज्वर और वमनरोग शान्त होते हैं ॥ ९ ॥

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
नाशयेदम्लपित्तं चारुचिं च वमनं तथा ॥ १० ॥

जौ, पीपल और परवल इनका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे अम्लपित्त, अरुचि और वमन नष्ट होती है ॥ १० ॥

छिन्नाखदिरयष्ट्याह्वदार्व्यम्भो मृदुना पिबेत् ।
सद्राक्षामभयां खादेत्सक्षौद्रां सगुडां च ताम् ॥ ११ ॥

गिलोय, खैर, मुलहठी और दारुहल्दी इनके मंदोष्ण क्वाथमें मधु मिश्रित कर पान करे। दाख और हरडको एकत्र पीसकर सेवन करे अथवा हरडोंके चूर्णमें शहद मिलाकर किम्वा पुराना गुड मिलाकर सेवन करे। इसके सेवनसे अम्लपित्त दूर होता है ॥ ११ ॥

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम् ।
क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपं सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥१२॥

गिलोय, नीमकी छाल, पटोलपात, हरड, बहेडा, आमला इनका उत्तम प्रकारसे क्वाथ बनावे। फिर शीतल होजानेपर उसमें शहद मिलाकर पान करे तो यह अनेक प्रकारके दारुण अम्लपित्तरोगको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

हिंगु च कतकफलान्यपि चिञ्चायास्त्वग् घृतं च पुष्टदग्धम्।
शमयति तदम्लपित्तमम्लभुजो यथोत्तरं द्विगुणम्॥ १३॥

हींग १ तोला, निर्मलीके फल दो तोले, इमलीकी छाल ४ तोले और घी ८ तोले इन सबोंको एकत्र अन्तर्धूमअग्निमें पुटपाककी रीतिसे पकाकर उष्णजलके साथ सेवन करे और इसपर खट्टे रसवाले पदार्थ भक्षण करे तो अम्लपित्तरोग शमन होता है॥ १३॥

कान्तपात्रे वराकल्को व्युषितोऽभ्यासयोगतः।
सिताक्षौद्रसमायुक्तः कफपित्तहरः स्मृतः॥ १४॥

लोहपात्रमें हरड, बहेडा और आमला इनके समान भाग मिश्रित रातभर रखे-हुए बासी कल्कको मिश्री और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे कफपित्तजन्य अम्लपित्त विकार नष्ट होता है॥ १४॥

वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च।
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं खण्डकूष्माण्डकं तथा॥ १५॥
पङ्क्तिशूलापहा योगस्तथा खण्डामलक्यपि।
पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी॥
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम्॥ १६॥

अम्लपित्तरोगमें वासाघृत, तिक्तघृत, पिप्पलीघृत, खण्डकूष्माण्डक, खण्डामलकी और परिणाम शूलनाशक योग प्रयोग करने चाहिये। पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे अथवा सायंकालमें चीनी मिश्रित जम्बीरीनींबूका रस पान करनेसे अम्लपित्तरोग नाश होता है॥ १५॥ १६॥

दशांग।

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः।
त्रिफलाकूलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा॥ १७॥

अडूसेकी छाल, गिलोय, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता, भाँगरा, त्रिफला और परवल इनके काढेको शहद मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है॥ १७॥

पञ्चनिम्बादिचूर्ण।

एकोंऽशः पञ्चनिम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः।
सक्तुर्दशगुणो देयः शर्करामधुरीकृतः॥ १८॥

शीतेन वारिणा पीतं शूलं पित्तकफोच्छ्रितम्।
निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ १९ ॥

नीमकी छाल, पत्ते, फल, फूल और मूल ये सब एक २ तोला, विधारा दो तोले और जौंके सक्तु १० तोले, इनमें कुछ खाँड मिलाकर इनको मधुर बनालेवे। फिर इस चूर्णको मधुर मिश्रितकर शीतल जलके साथ दो तोले प्रमाण सेवन करे। यह चूर्ण पित्त-कफोद्भवशूल और दारुण अम्लपित्तको नष्ट करता है॥

अविपत्तिकरचूर्ण।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडं चैव विडङ्गकम्।
एलापत्रं च चूर्णानि समभागानि कारयेत् ॥ २० ॥
सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गं तत्समं भवेत्।
सर्वचूर्णं द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २१ ॥
सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयाऽन्वितम्।
भोजनादौ तथा मध्ये खादेन्माषाष्टकं शुभम् ॥ २२ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, विरियासञ्चरनोन, वायविडङ्ग, इलायची और तेजपात इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णके बराबर भाग लौंगका चूर्ण एवं सबसे दुगुना निसोतका चूर्ण और जितना इन सब औषधियोंका चूर्ण हो उतनी खाँड मिलाकर सबोंको एकमएक करलेवे। इस चूर्णको आठ आठ माशेकी मात्रासे प्रतिदिन भोजनके आदि और मध्यमें सेवन करे, ऊपरसे शीतल जल अथवा नारियलका जल पान करे ॥ २०-२२ ॥

अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबन्धं मलमूत्रयोः।
अग्निमान्द्यभवान्रोगान् नाशयेदविकल्पतः ॥ २३ ॥
प्रमेहान्विंशतिं चैव सर्वदुर्नामनाशनम्।
अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम् ॥ २४ ॥

यह चूर्ण अम्लपित्त, मल मूत्रका विबन्ध, मन्दाग्निसे उत्पन्न होनेवाले रोग, बीसोंप्रकारके प्रमेह और सर्वप्रकारके बवासीरादि रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। इस अविपत्तिकरनामक उत्तम चूर्णको अगस्त्यजीने विधान किया है ॥ २३ ॥ २४ ॥

लीलाविलास।

रसो बलिर्व्योम रविश्च लौहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य।
तदल्पघृष्टं मृदु मार्कवेण संमर्दयेदस्य हि वल्लयुग्मम् ॥ २५ ॥

हन्त्यम्लपित्तं विविधप्रकारं लीलाविलासो रसराज एषः ।
छर्दिं सशूलं हृदयस्य दाहं निवारयेदेव न संशयोऽत्र ॥
दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्रीफलं समेतं ससितं भवेद्वा ॥ २६ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, ताँबा और लोहा इनकी भस्मको एक एक तोला लेके फिर सबोंको एकत्र मिलाकर आमले और बहेडेके रस (अभावमें क्वाथ) में पृथक् पृथक् तीन दिनतक खरलकर कुछ थोडी देरतक भाँगरेके रसमें खरल करे पश्चात् इस रसको प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो रत्तीप्रमाण सेवन करे और ऊपरसे दूध, पेठेका रस, आमलोंका रस अथवा चीनी पडाहुआ नारियलका जल पान करे । यह लीलाविलास सम्पूर्ण रसोंका राजा है । यह नानाप्रकारके अम्लपित्त, वमन, शूल और हृदयकी दाहादि रोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अम्लपित्तान्तकरस ।

मृतसूतार्कलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत् ।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ २७ ॥

रससिंदूर, ताँबा और लोहा ये प्रत्येक एक एक तोला और इनके बराबर भाग हरड लेकर सबोंको यथाविधि एकत्र मिलाकर पीसलेवे । पश्चात् इसको एक एक माशा प्रमाण शहदमें मिलाकर चाटनेसे अम्लपित्त शान्त होता है ॥ २७ ॥

भास्करामृताभ्र ।

वासामृताकेशराजः पर्पटी निम्बभृङ्गके ।
वृश्चीरं बृहती मुस्तं वाट्यालकशतावरी ॥ २८ ॥
एषां सत्त्वैः पलोन्मानैर्मर्दितं विमलाभ्रकम् ।
सहस्रपुटितं तत्र शतावर्या रसं क्षिपेत् ॥
वारद्वादशकं दत्त्वा वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ २९ ॥

अडूसा, गिलोय, काला भाँगरा, पित्तपापडा, नीमकी छाल, भाँगरा, सफेद पुनर्नवा, बडी कटेरी, नागरमोथा, खिरैंटी और शतावर इनके चार चार तोले सत्त्वको निकाले और उससे एक हजार बार फूँकीहुई निर्मल अभ्रकको खरल करे । फिर उसमें बारह बार शतावरका रस डालकर उत्तम प्रकारसे खरल करके गोलियाँ बनालेवे ॥ २८ ॥ २९ ॥

भास्करामृतनामेदमम्लपित्तं नियच्छति ।
शूलमन्नद्रवं शूलंशूलं च परिणामजम् ॥ ३० ॥
छर्दिं हृल्लासमरुचिं तृष्णां कासं च दुर्जयम् ।
हृद्रहं कामलां रक्तपित्तं यक्ष्माणमेव च ॥ ३१ ॥
दाहं शोथं भ्रमं तन्द्रां विस्फोटं कुष्ठमेव च ॥
श्वासं मूर्च्छां च मन्दाग्निं यकृत्प्लीहोदरं तथा ॥ ३२ ॥

यह भास्करामृतनामक अभ्रक अम्लपित्त, अन्नद्रवभवशूल, शूल, परिणामशूल, वमन, हृल्लास; अरुचि, तृषा, दुर्जय खाँसी, हृदयरोग, कामला, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, दाह, शोथ, भ्रम, तन्द्रा, विस्फोट, कुष्ठ, श्वास, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, यकृत्, प्लीहा और उदररोग इन रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३०-३२ ॥

सर्वतोभद्रलौह ।

लौहं चूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकं च पलं पलम् ।
शुद्धसूतं च कर्षैकं गन्धकार्द्धपलं तथा ॥ ३३ ॥
माक्षिकस्य विशुद्धस्य कर्षं शुद्धा शिला परा ।
सार्द्धकर्षं विशुद्धं चशिलाजतु तथा परम् ॥ ३४ ॥
गुग्गुलोश्चापि कर्षैकं शाणमानं परस्य च ।
चूर्णं विडङ्गभल्लातवह्निश्वेतार्कमूलजम् ॥ ३५ ॥
करिकर्णं पलाशं च तालमूली पुनर्नवा ।
घनामृता नागबला चक्रमर्दकमुण्डिरी ॥ ३६ ॥
भृङ्गकेशशतावर्यौ वृद्धदारं फलत्रिकम् ।
त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकं च [illegible]नयेद्भिषक् ॥ ३७ ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य घृतेन मधुना सह ।
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य ततः कुर्याद्विधानवित ॥ ३८

लोहे, ताँबे और अभ्रककी भस्म चार चार तोले, शुद्ध पारा एक तोला, शुद्धगन्धक दो तोले, शुद्ध सोनामखी एक तोला, शुद्ध मैनसिल एक तोला, शुद्ध शिलाजीत डेढ तोला, शुद्ध गूगल एक तोला, एवं वायविडंग, भिलावे, चीतेकी जड, सफेद आककी जड, हस्तिकर्ण, पलाशकी छाल, मुसली, सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, गंगरेन, चकवड, गोरखमुण्डी, सफेदभाँगरा, काला-

भाँगरा, शतावर, विधारा, त्रिफला और त्रिकुटा इन औषधियोंको अलग अलग चार चार मासे लेवे । फिर सबोंको घी और शहदके साथ एकत्र मर्दन करके घीसे चिकने बासनमें भरकर रखदेवे ॥ ३३-३८ ॥

माषकादिक्रमेणैव लौहं सर्वरसायनम् ।
अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ३९ ॥
तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भगन्दरम् ।
पंक्तिशूलं च शूलं च तथाऽऽमं कुक्षिसंभवम् ॥ ४० ॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
आमवातं तथा शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥ ४१ ॥
कामलां वातगुल्मं च पिडिकागरगृध्रसीः ।
कासश्वासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥ ४२ ॥
सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहारसेविनः ।
यक्ष्माणं रक्तपित्तं च वातरोगं विनाशयेत् ।
संज्ञया सर्वतोभद्रलौहो रसवरः स्मृतः ॥ ४३ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन चार रत्तीसे प्रारम्भ कर एक माशेतक मात्राको बढाताहुआ सेवन करे तो यह रसायन सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त अम्लपित्तरोगको तत्काल नष्ट करती है । तथा सर्वप्रकारकी बवासीर, भगन्दर, पंक्तिशूल, आमशूल, कुक्षिगत-शूल, वातरक्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग, हलीमक, आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, कामला, वातगुल्म, पिडका, विषजरोग, गृध्रसी, खाँसी, श्वास, अरुचि और अन्यान्य सर्व प्रकारके विकारोंको दूर करती है । विशेषकर बल, वीर्यको बढाती एवं पुष्टि करती है । इसपर स्वेच्छापूर्वक आहार विहार करना चाहिये । यह औषधि राजयक्ष्मा-रक्तपित्त और वातरोगको नष्ट करती है । इस उत्तम रसायनको सर्वतोभद्रलोह कहते हैं ॥ ३९-४३ ॥

पानीयभक्तवटिका ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा ।
प्रत्येकं कार्षिकं दद्यात्सूतगन्धौ तदर्द्धकौ ॥ ४४ ॥
लौहाभ्रकविडंगानां दद्यात्कर्षद्वयं तथा ।
त्रिफलायाः कषायेण गुटीं कुर्याद्विधानतः ॥ ४५ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, निसोत, चीता, ये प्रत्येक दो दो तोले, शोधित पारा और गन्धक एक एक तोला, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वायविडङ्ग प्रत्येक चार चार तोले लेवे। इन सबोंको एकत्र त्रिफलेके क्वाथमें उत्तम प्रकार खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे॥

तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु।
हन्ति शूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं विशेषतः॥ ४६॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम्।
श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी॥ ४७॥

पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षणकर ऊपरसे काँजी पान करे। यह गोलियाँ त्रिदोषजन्य शूल, विशेषकर अम्लपित्त, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षि और वस्तिगत शूल, गुदाके रोग, श्वास, खांसी, कुष्ठ और संग्रहणी आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती हैं॥ ४६॥ ४७॥

पञ्चाननगुटिका।

शुद्धसूतं पलार्द्धं च तत्समं शुद्धगन्धकम्।
तयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं लिप्त्वा मूषोदरे क्षिपेत॥ ४८॥
आच्छाद्य पञ्चलवणैर्लिप्त्वा गजपुटे पचेत्।
सिद्धं ताम्रं समादाय पलमेकं विचूर्णयेत्॥ ४९॥
पारदस्य पलं चैकं गन्धकस्य पलं तथा।
पुटदग्धस्य लोहस्य गगनस्य पलं पलम्॥ ५०॥
यमानी शतपुष्पा च त्रिकटु त्रिफलानि च।
त्रिवृता चविका दन्ती शिखरी जीरकद्वयम॥ ५१॥
एतेषां पलिकैर्भागैर्घण्टकर्णकमानकम्।
ग्रन्थिकं चित्रकं चैव कुलिशानां पलार्द्धकम्॥
आर्द्रकस्वरसैः पिष्ट्वा गुटिकां माषसम्मिताम्॥ ५२॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दो दो तोले लेकर दोनोंकी कज्जली बनाले फिर उस कज्जलीसे चार तोले ताँबेके पत्रको लहेसकर मूषायन्त्रमें रक्खे और उसके मुँहको पाँचों नमकोंके द्वारा लहेसकर गजपुटमें स्थापन करके पकावे। इस प्रकार भस्म कियाहुआ ताँबा चार तोले तथा पारा गन्धक पुटदग्ध लोह अभ्रक अजवायन, सोया, त्रिकुटा, त्रिफला, निसोत, चव्य, दन्ती, चिरचिटा, जीरा, काला-

जीरा ये प्रत्येक चार चार तोले एवं घण्टावृक्ष, मानकन्द, पीपलामूल, चीता और हडसंकरी इनको दो दो तोले लेवे । सबोंको एकत्र अदरखके रसके साथ अच्छे प्रकार खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे ॥ ४८–५२ ॥

पञ्चाननगुटी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ।
अम्लपित्तमहाव्याधिनाशिनी च रसायनी ॥ ५३ ॥
महाग्निकारिका चैषा परिणामव्यथापहा ।
शोथपाण्ड्वामयानाहप्लीहगुल्मोदरापहा ॥ ॥ ५४ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हिताः ॥ ५५ ॥

यह पञ्चाननगुटिका सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाली है । भयंकर अम्लपित्त, मन्दाग्नि, सूजन, पाण्डु, आनाह, प्लीहा, गुल्म, उदररोग और परिणाम शूल इन सम्पूर्ण रोगोंको यह वटी तत्काल दूर करती है । यह जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली और परम रसायन है । इसपर भारी वीर्यवर्द्धक पदार्थ दूध और मांसरस इनका भोजन हितकर है ॥ ५३–५५ ॥

लघुक्षुधावतीगुटिका १–२ ।

रसगन्धकमभ्राणि यमानी त्र्यूषणं तथा ।
त्रिफला शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ ५६ ॥
पुनर्नवा वचा दन्ती त्रिवृता घण्टकर्णकम् ।
दण्डोत्पला सारिवे द्वे चाक्षमात्राणि कारयेत् ॥ ५७ ॥
मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा पेषणीयं प्रयत्नतः ।
स्वरसेनार्द्रकस्यैता आलोड्य गुडिकां कुरु ॥ ५८ ॥

१–शुद्ध किया पारा, गन्धक, अभ्रक, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, सोंफ, चव्य, जीरा, कालाजीरा, पुनर्नवा, वच, दन्ती, निसोत, घण्टाकर्णकी जड, सफेद दण्डोत्पलकी जड, उसवा, अनन्तमूल प्रत्येक दो दो तोले और मण्डूर चार तोले लेकर सबोंको एकत्र पीसलेवे । फिर अदरखके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ५६–५८ ॥

प्रत्यहं भक्षयेदेकां भक्तवारि पिबेदनु ।
वटी क्षुधावती नाम्ना चाम्लपित्तविनाशिनी ॥ ५९ ॥

अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं विनाशयेत् ॥ ६० ॥
परिणामभवं शूलं कासं पञ्चविधं तथा।
जगतस्तु हितार्थाय वाग्भटेन प्रकीर्त्तिता ॥ ६१ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाय ऊपरसे काँजीको पीवे। यह क्षुधावतीनामवाली वटी अम्लपित्तको नष्ट कर अग्निको दीपनकर तेज और बलको बढाती है। तिल्ली, श्वास, अफरा, आमवात, परिणामजन्य शूल और पाँचों प्रकारकी खाँसीको शीघ्र दूर करती है। श्रीवाग्भटाचार्यने जीवोंको हितके लिये इसको निर्माण किया है ॥ ५९-६१ ॥

रसायोगन्धकाभ्राणि त्र्यूषणं त्रिफला वचा।
यमानी शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ ६२ ॥
प्रत्येकं पलमेषां तु घण्टकर्णः पुनर्नवा।
माणकं ग्रन्थिकं चेन्द्रं केशराजः सुदर्शनी ॥ ६३ ॥
दण्डोत्पला त्रिवृद्दन्ती जामातृ रक्तचन्दनम्।
भृङ्गापामार्गकुलका मण्डूकं च पलार्द्धकम् ॥
आर्द्रकस्वरसेनाथ गुटिकां संप्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥

२-शुद्ध पारा, लोहा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक, त्रिकुटा, त्रिफला, वच, अजवायन, सौंफ, चव्य, जीरा, कालाजीरा ये प्रत्येक चार चार तोले तथा घण्टाकर्णकी जड, साँठी, मानकन्द, पिपलामूल, इन्द्रजौ, कालाभाँगरा, सुदर्शनवृक्षकी लता, सफेद दण्डोत्पल, निसोत, दन्तीकी जड, हुलहुलकी जड, लालचन्दन, भाँगरा, चिरचिटा, पटोलपत्र और पीलेफूलवाली मुण्डी इनको दो दो तोले लेवे। फिर सबोंको एकत्र अदरखके रसके साथ उत्तम प्रकार खरलकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे। ६२-६४ ॥

बदरास्थिसमां चैकां भक्षयित्वा पिबेदनु।
वारि भक्तजलं चैव प्रातरुत्थाय मानवः ॥ ६५ ॥
वटी क्षुधावती नाम्ना सर्वाजीर्णविनाशिनी।
अग्निं च कुरुते दीप्तं भस्मकं च नियच्छति ॥ ६६ ॥

अम्लपित्तं च शूलं च परिणामकृतं च यत् ।
तत्सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६७ ॥
मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात्क्षीरशर्करे ॥ ६८ ॥

प्रत्येकदिन प्रातःसमय एक गोली खाकर ऊपरसे काँजीको पीवे । यह क्षुधावती सर्वप्रकारके अजीर्णोंको नष्ट करती है तथा जठराग्निको दीपन और भस्मक रोगको दूर करती है एवं अम्लपित्त, शूल और परिणामशूल इन सबोंको शीघ्र शमन करती है । सेवन करते समय मिष्टपदार्थ विशेषकर दूध खाँड इनको त्याग देवे ॥ ६९–६८ ॥

बृहत्क्षुधावतीगुटिका ।

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम् ।
लौहकिट्टपलार्द्धं च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ६९ ॥
मण्डूकपर्णीवशिरतालमूलीरसैस्तथा ।
भृङ्गवेरीकेशराजकालमारिषजैरथ ॥
त्रिफलाभद्रमुस्ता त्रिःस्थालीपाकाद्विचूर्णयेत् ॥ ७० ॥

अभ्रकभस्म ८ तोले, लोहभस्म ४ तोले और लोहेका मैल २ तोले इनको एकत्र मिलाकर मण्डूकपर्णी, सफेद हुलहुल और मुसली इनके मिलेहुए ३२ तोले रसके साथ प्रथम स्थालीपाक करे । फिर भाङ्गरा, शतावर, कालाभाँगरा, नाडीका शाक और मरसेका शाक इनके ३२ तोले रसमें द्वितीय स्थालीपाक करे । पश्चात् त्रिफलेके क्राथ और नागरमोथेके मिलेहुए ३२ तोले रसमें तृतीय स्थालीपाक कर औषधिका चूर्ण करलेवे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

रसगन्धकयोः कर्षं प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥ ७१ ॥
मसृणे तच्छिलाखल्ले यत्नतः कज्जलीकृतम् ।
वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका ॥ ७२ ॥
व्योषं मुस्तं विडङ्गं च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी ।
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्त्तः सितस्तथा ॥ ७३ ॥
भृङ्गमानककन्दाश्च घण्टकर्णक एव च ।
दण्डोत्पला केशराजकालीककोंटकोऽपि च ॥ ७४ ॥

एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् ।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्धं पलमेव च ॥ ७५ ॥
एतत्सर्वं समालोड्य लौहपात्रे च भावयेत् ।
आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ॥ ७६ ॥
तद्रसेन शिलापिष्टां गुडिकां कारयेद्भिषक् ।
बदरास्थिमितां शुष्कां सुनिगुप्तां निधापयेत् ॥ ७७ ॥

तदनन्तर पारा और गन्धक इनको एक एक कर्ष लेकर यथाविधि एकत्र कज्जलीकर उपर्युक्त चूर्णमें मिलादेवे । फिर बच, चव्य, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, सोंफ, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, पीपलामूल, चिरचिटेकी जड़, निसोत, चीता, दन्ती, सफेद हुलहुलकी जड, भाँगरा, मानकन्द, जिमीकन्द, घण्टाकर्ण वृक्ष, दण्डोत्पल, कुकुरभाङ्गरा, पीलेचन्दनकी जड और काकडासिंगी इन औषधियोंको अलग २ दो दो तोले लेकर सबोंको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे । हरड, बहेडा और आमलेका चूर्ण छः छः तोले इन सबको एकत्रितकर लोहेके पात्रमें धूपमें रखकर अदरखके रसद्वारा तीन बार भावना देवे, फिर उक्त रसमेंही उत्तमप्रकार खरलकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनाकर सुखाकर शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ ७१-७७ ॥

तत्प्रातर्भोजनादौ च सेवितं गुडिकात्रयम् ।
अम्लोदकानुपानं तु हितं मधुरवर्जितम् ॥ ७८ ॥
दुग्धं च नारिकेलं च वर्जनीयं विशेषतः ।
भोज्यं यथेष्टमिष्टं च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥ ७९ ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलं च परिणामजम् ।
पाण्डुरोगं च गुल्मं च शोथोदरगुदामयान् ॥८०॥
यक्ष्माणं पंचकासं च मंदाग्नित्वमरोचकम् ।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं स्वरामयम् ॥
गुडी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥ ८१ ॥

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल भोजन करनेसे पहले तीन तीन गोलियाँ सेवन कर और ऊपरसे काँजीको पान करे । इसपर मिष्टपदार्थोंका भोजन, दूध और नारियलका जल सेवन करना त्यागदेना चाहिये तथा चावलोंका जल, खट्टे पदार्थ और काँजी इनका यथेष्ट भोजन करे । यह गुटिका अनेकप्रकारके अम्ल-

पित्त, शूल, परिणामशूल, पाण्डु, गुल्म, शोथ, उदर और गुदाके रोग, यक्ष्मा, ५ प्रकारकी खाँसी, मन्दाग्नि, अरुचि, तिल्ली, श्वास, अफारा, आमवात और स्वरभङ्गप्रभृति रोगोंको नष्ट करती है । इसको क्षुधावती गुटिका कहते हैं। यह सर्वप्रकारके रोगोंको नाश करनेवाली है ॥ ७८-८१ ॥

खण्डकूष्माण्डकावलेह ।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् ।
रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ८२ ॥
धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम् ।
मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद्भवति पिण्डितम् ॥ ८३ ॥
पलार्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम् ।
खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम् ॥ ८४ ॥

पेठेका रस १०० पल, गौका दूध १०० पल, आमलोंका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले और गौका घी ८ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तब उतारलेवे। इस अवलेहको प्रतिदिन प्रातःसमय दो दो तोले प्रमाण सेवन करे। यह खण्डकूष्माण्डनामक अवलेह अम्लपित्तको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ८२-८४ ॥

अम्लपित्तान्तकमोदक ।

नागरस्य कणायाश्च पलान्यष्टौ प्रदापयेत् ।
गुवाकस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ८५ ॥
घृतं क्षीरं ततः पश्चात् प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ।
लवङ्गं केशरं कुष्ठं यमानी कारवी वचा ॥ ८६ ॥
चन्दनं मधुकं रास्ना देवदारु फलत्रिकम् ।
पत्रमेला वराङ्गं च सैन्धवं हबुषं शठी ॥ ८७ ॥
मदनं कट्फलं मांसी गगनं वङ्गरूप्यकम् ।
तालीशं पद्मकं मूर्वा समङ्गा वंशलोचना ॥ ८८ ॥
ग्रन्थिकं शतपुष्पा च शतमूली कुरण्टकम् ।
जातीफलं जातिकोषं कक्कोलमम्बुदं कणा ॥ ८९ ॥

कर्पूरं च विडङ्गं च अजमोदा बलाऽमृता।
मर्कटी क्षुरबीजं च चन्दनं देवताडकम् ॥ ९० ॥
लौहं कांस्यं प्रदातव्यं कर्षमात्रं भिषग्विदा।
अन्यत्सर्वं कर्षमात्रं कर्षार्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥ ९१ ॥
चतुर्धातुविधानेन मारितं ग्राहयेत्सुधीः।
अम्लपित्तान्तको ह्येष मोदको मुनिभाषितः ॥ ९२ ॥

सोंठ, पीपल और सुपारी इनका चूर्ण बत्तीस बत्तीस तोले, घी और दूध एक एक प्रस्थ इन सबोंको एकत्र मिलाकर पकावे। जब पकते पकते अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें लौंग, केशर, कूठ, अजवायन, कालाजीरा, वच, लालचन्दन, मुलहठी, रायसन, देवदारु, त्रिफला, पत्रज, इलायची, दारचीनी, सैंधानमक, धनियाँ, कचूर, मैनफल, कायफल, बालछड, अभ्रकभस्म, वंगभस्म, रौप्यभस्म, तालीशपत्र, पद्माख, मूर्वा, वराहक्रान्ता, वंशलोचन, पीपलामूल, सौंफ, शतावर, पीलीकटसरैया, जायफल, जावित्री, शीतलचीनी, नागरमोथा, पीपल, कपूर, वायविडंग, अजमोद, खिरैंटी, गिलोय, कौंछके बीज, तालमखाना, सफेदचन्दन, देवताड, लोहेकी भस्म और कासका भस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला और चतुर्धातुविधिसे जारित सुवर्णभस्म छः माशे इन सबको एकत्र खूब बारीक पीसकर मिलादेवे, फिर करछीसे एकमएक करके मोदक बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उचित मात्रासे सेवन करे ॥ ८९-९२ ॥

वान्तिं मूर्च्छां च दाहं च कासं श्वासं भ्रमं तथा।
वातजं पित्तजं चैव कफजं सान्निपातिकम् ॥ ९३ ॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु प्रमेहं सूतिकागदम्।
शूलं च वह्निमान्द्यं च मूत्रकृच्छ्रं गलग्रहम् ॥ ९४ ॥

यह अम्लपित्तान्तक मोदक वमन, मूर्च्छा, दाह, श्वास, खाँसी, भ्रम, वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज सर्वरोग, प्रमेह, सूतिकारोग, शूल, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र, गलग्रह इत्यादि विकारोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक।

त्रिकटु त्रिफला भृङ्गजीरकद्वयधान्यकम्।
कुष्ठाजमोदा लौहाभ्रं शृंगी कट्फलमुस्तकम् ॥ ९५ ॥

एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम् ।
गन्धमात्रा शठी यष्टिलवङ्गं रक्तचन्दनम् ॥ ९६ ॥
एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णं तु तत्समम् ।
सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ९७ ॥
तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा ।
अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिषूदनम् ॥ ९८ ॥
शूलहृद्रोगशमनं कण्ठदाहं नियच्छति ।
हृद्दाहं च शिरःशूलं मन्दाग्नित्वं विनाशयेत ॥ ९९ ॥
हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्थवस्तिशूलं गुदे रुजम् ।
बलपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ १०० ॥
विशेषादम्लपित्तं च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम् ।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दारचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, कूठ, अजमोद, लोहा, अभ्रक, काकडासिंगी, कायफल, नागरमोथा, इलायची, जायफल, बालछड, तेजपात, तालीसपत्र, नागकेशर, गन्धमात्रा, (एक प्रकारका सुगन्धिद्रव्य), कचूर, मुलहठी, लौंग और लालचन्दन, इन औषधियोंके चूर्णको समान भाग और सब चूर्णके बराबर भाग सोंठका चूर्ण लेवे, फिर समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री और गौका दूध सबसे चौगुना भाग लेकर सबोंको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पाक करे। जब पाक पूर्ण होजाय तब एक एक तोलेके लड्डू बनालेवे। पश्चात् एक मोदक प्रतिदिन दूधके अथवा जलके साथ खानेसे अम्लपित्त, अरुचि, शूल, हृदयरोग, कण्ठदाह, हृदयकी दाह, शिरदर्द, मन्दाग्नि, हृदय, पसली, कुक्षि और वस्तिगत शूल, गुदाके रोग, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, भ्रमादि रोग विशेषकर अम्लपित्तरोग निश्चय नष्ट होते हैं। यह मोदक बल, पुष्टिकारक और उत्तम वशीकरण औषधि है ॥ ९५-२०१ ॥

सितामण्डूर ।

धमनविधिविशुद्धं गोजले सप्तवारान्
तरणिकिरणशुष्कं श्लक्ष्णमण्डूरचूर्णम् ।
विमलकवलमेकं पञ्चसंख्यं सितायाः ।
अनवघृतपलाष्टौ द्व्यष्टकं गव्यदुग्धम् ॥ २ ॥

मृदुदहनशिखाभिर्मन्दमन्दं कटाहे
विगतसलिलशेषं पाचयेत्पाकविज्ञः ।
वितरितगुडपाके किञ्चिदुष्णेऽवतीर्णे
द्दषदि दृढमभीक्ष्णं चूर्णितं देयमाशु ॥ ३ ॥
त्रिकटुकमधुकैलायासवैडङ्गसारं
त्रिफलगदलवङ्गं कर्षमेकैकशश्च ।
तदनु शिशिरकाले द्वे पले माक्षिकस्य
तदनु पटनिघृष्टं गालितं संप्रदद्यात् ॥ ४ ॥

चार तोले मण्डूरको धमनविधिसे सात बार गोमूत्रमें शुद्ध कर तीक्ष्ण, धूपमें सुखाकर चूर्ण करलेवे। फिर मिश्री २० तोले, पुराना घी ३२ तोले और गौका दूध ६४ तोले इन सबको कढाईमें डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते गुडके पाकके समान गाढा पडजाय तब नीचे उतारकर उस मन्दोष्ण पाकमें सोंठ, मिरच, पीपल, मुलहठी, इलायची, जवासा, वायविडङ्ग, त्रिफला, कूठ और लौंग इनको एक एक तोला लेकर पत्थरपर खूब बारीक पीसकर मिलादेवे। जब शीतल होजाय तब इसको ८ तोले शहदको कपडेमें छानकर उसीमें मिलाकर शुभतिथि और शुभदिनमें भोजन करनेसे पहले सेवन करे ॥ २-४ ॥

शुभतिथिदिवसादौ भोजनादौ निषेव्यं
प्रथमदिवसमेकं शाणमानं तदूर्ध्वम् ।
अहरहरनुवृद्ध्या यावदक्षं प्रयोज्यं
हिमकररुचिशीतं गव्यदुग्धं च पेयम् ॥ ५ ॥
नियतमयमसाध्यानम्लपित्तोत्थशूलान्
वमिनिवहसदाहानाहमोहप्रमेहान् ।
विविधरुधिररोगान् पित्तयुक्तानशेषा-
नपहरति सिताख्यो दिव्यमण्डूरयोगः ॥ ६ ॥

इसको प्रथम दिन ४ मासे और पश्चात् प्रतिदिन मात्राकी वृद्धि करतेहुए दो तोलेतक सेवन करे और ऊपरसे शीतल गोदुग्ध पान करे। यह दिव्य मण्डूर निरन्तर सेवन करनेपर असाध्य अम्लपित्त, तज्जन्यशूल, वमन, निवाही,

दाह, आनाह, मोह, प्रमेह, अनेक प्रकारके रुधिरविकार और पित्तजनित सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करता है । इसको सितामण्डूर कहते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

शुण्ठीखण्ड ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समाचरेत् ।
दत्त्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ॥ १०७ ॥
लेह्येऽवतारिते दद्याद्धात्रीधान्यकमुस्तकम् ।
अजाजी पिप्पली वांशी त्रिजातं कारवी शिवा ॥१०८॥
त्रिशाणं मरिचं नागं षण्माषं तु पृथक् पृथक् ।
पलत्रयं च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ॥ १०९ ॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ।
शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः ॥ ११० ॥

सोंठका चूर्ण १६ तोले, खाँड ६४ तोले, घी ३२ तोले और दूध १२८ तोले इन सबको एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे । जब पकते पकते लेहके समान होजाय तब चूल्हेसे उतारकर उसमें आमले, धनियाँ, नागरमोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, इलायची, तेजपात, कालाजीरा, और हरड ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला एवं कालीमिरच और नागकेशर इनको छः छः मासे लेकर खूब महीन पीसकर डालदेवे और पाकके शीतल होजानेपर १२ तोले शहद डालकर सबको अच्छे प्रकार मिलादेवे । इसकी प्रतिदिन युक्तियुक्त मात्राको सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल हृदयरोग, वमन और आमवातरोग जाता है ॥ १०७-११० ॥

पिप्पलीखण्ड ।

कणाचूर्णस्य कुडवं षट्पलं हविषस्तथा ।
शतावरीरसस्याष्टौ पलान्यत्र प्रदापयेत् ॥ १११ ॥
खण्डप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ।
त्रिजातमुस्तधन्याकशुण्ठीवांशीद्विजीरकम् ॥ १२ ॥
अभयाऽऽमलकं चैव चूर्णं द्वादशमाषकम् ।
तदर्द्धं मरिचं नागं सारं खदिरमेव च ॥
पलत्रयं च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ॥ १२ ॥

पीपलका चूर्ण १६ तोले घी २४ तोले, शतावरका रस ३२ तोले, खाँड ६४ तोले और दूध १२८ तोले लेकर सबको एकत्र पकावे । जब पाक सिद्ध होजाय तब दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, वंशलोचन, जीरा, कालाजीरा, हरड, आमले इनका चूर्ण एक एक तोला, मिरच, नागकेशर और खैरसार ये छः छः मासे इन सबको एकत्र कूटपीसकर डालदेवे एवं शीतल होनेपर १२ तोले शहद मिलादेवे ॥ १११-१३ ॥

ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ १४ ॥
शूलारोचकहृल्लासच्छर्दिपित्ताम्लशूलनुत् ।
अग्निसन्दीपनो हृद्यः खण्डपिप्पलिको मतः ॥ १५ ॥

फिर अम्लपित्तकी निवृत्तिके लिये उचितमात्रासे सेवन करे । इससे शूल, अरुचि, हल्लास, वमन, अम्लपित्त और शूलरोग नष्ट होते हैं । यह पिप्पलीखण्ड जठराग्निको दीपन करनेवाला और हृदयको हितकारी है ॥ ११४ ॥ १५ ॥

बृहत्पिप्पलीखण्ड ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम् ।
पलषोडशिकं खण्डाद्रसे वर्य्याः पलाष्टके ॥ १६ ॥
पलषोडशिके चैव आमलक्या रसस्य च ।
क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूते ततः क्षिपेत् ॥ १७ ॥
त्रिजातकाभयाजाजी धन्याकं मुस्तकं शुभा ।
धात्री च कार्षिकं चूर्णं कर्षार्द्धं चापि जीरकम् ॥ १८ ॥
कुष्ठं नागरकं नागं सिद्धशीतेऽवचूर्णितम् ।
जातीफलं समरिचं मधुनश्च पलद्वयम् ॥ १९ ॥

पीपलका चूर्ण १६ तोले, घी ३२ तोले, चीनी ६४ तोले, शतावरका रस ३२ तोले और आमलोंका रस ६४ तोले इनको दो प्रस्थ गोदुग्धमें उत्तमप्रकार पकावे । जब पाक पकते पकते लेहके समान होजाय तब उसमें त्रिजातक, हरड, कालाजीरा, धनियाँ, नागरमोथा, वंशलोचन, और आमले इनका चूर्ण एक एक तोला एवं जीरा, कूठ, सोंठ, नागकेशर, जायफल और मिरच इनको छः छः मासे लेकर, सबोंको एकत्र बारीक पीसकर डालदेवे और शीतल होनेपर ८ तोले मधु डालकर सबको एकमएक करलेवे ॥ १६-१९ ॥

उपयुञ्ज्यात्ततो धीमानम्लपित्तनिवृत्तये।
हृल्लासारोचकच्छर्दिश्वासकासक्षयापहम्॥
अग्निसन्दीपनं हृद्यं पिप्पलीखण्डसंज्ञितम्॥ १२०॥

तदुपरान्त बुद्धिमान् पुरुष अम्लपित्तरोगकी शान्तिके लिये अग्निका बलाबल विचारकर इसको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे। इसके सेवनसे उबकाई आना, अरुचि, वमन, श्वास, खाँसी, क्षयप्रभृति विकार दूर होते हैं। यह बृहत्पिप्पलीनामक खण्ड अत्यन्त अग्निदीपक और हृदयको हितकारी है॥ १२०॥

जीरकाद्यघृत।

पिष्ट्वाऽजाजीं सधन्याकं घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत्॥ २१॥

घी एक प्रस्थ, कल्कके लिये कालाजीरा और धनियाँ इनको पीसकर कल्क करलेवे। फिर इस कल्कके द्वारा विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह जीरकाद्यघृत कफ, पित्त, अरुचि, मन्दाग्नि और वमनको दूर करता है॥ २१॥

शतावरीघृत।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम्।
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्॥ २२॥

शतावरकी जडका कल्क चार प्रस्थ, घी एक प्रस्थ और दूध चार प्रस्थ सबोंको मिलाकर यथाविधिसे मन्द मन्द अग्निद्वारा घृतको सिद्ध करे॥ २२॥

नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोद्भवान् गदान्।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च॥ २३॥

यह घृत अम्लपित्त, वात और पित्तसे उत्पन्न रोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्च्छा, श्वास और सन्तापको हरता है॥ २३॥

नारायणघृत।

जलैर्दशगुणैः क्वाथ्यं पिप्पलीपलषोडश।
पादशेषं हरेत्क्वाथं क्वाथ्यतुल्यं घृतं पचेत्॥ २४॥
रसप्रस्थं गुडूच्याश्च धात्र्याः षष्टिपलं रसम्।
द्राक्षा धात्री पटोलं च विश्वं च कटुका वचा॥
पलप्रमाणं कल्कं च दत्त्वा सर्पिःसमुद्धरेत्॥ २५॥

६४ तोले पीपलोंको दसगुन जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथकी बराबर घृत, गिलोयका रस १ प्रस्थ, आमलोंका रस ६० पल एवं दाख, आँवले, परवल, सोंठ, कुटकी और वच इन सबका चार चार तोले कल्क लेकर एकत्रित करके उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे॥ २४॥ २५॥

अम्लपित्तहरं खादेद्दाहच्छर्दिनिवारणम्।
असाध्यं साधयेत्सद्यो नाम्ना नारायणं घृतम्॥ २६॥

इस घृतको सेवन करनेसे अम्लपित्त, दाह और वमन होना दूर होती है। यह नारायणनामवाला घृत असाध्यरोगको भी तत्काल नष्ट करता है॥ २६॥

अम्लपित्तरोगमें पथ्य।

ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम्।
सर्वत्र शस्यते पश्चान्निरूहश्चापि शालयः॥ २७॥
यवगोधूममुद्गाश्च पुराणो जाङ्गलो रसः।
जलानि तप्तशीतानि शर्करामधुसक्तवः॥ २८॥
कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका।
वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं रम्भापुष्पं च वास्तुकम्॥ २९॥
कपित्थं दाडिमं धात्री तिक्तानि सकलानि च।
अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः॥ १३०॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तरोगमें प्रथम वमन और अधोगत अम्लपित्तमें विरेचन कराकर पश्चात दोनों प्रकारके अम्लपित्तमें निरूहवस्तिका प्रयोग करना चाहिये। पुराने शालिचावल जौ गेहूँ मूँग जाङ्गलजातप्राणियोंका मांसरस औटाकर शीतल कियाहुआ जल खाँड और शहद मिलेहुए सत्तू बेल करेला परवल हुलहुलका शाक बेंतकी कोंपल पकापेठा केलेका मोचा बथुआ कैथ अनार आमले और सर्व प्रकारके तिक्तरसयुक्त पदार्थ; ये सब अम्लपित्तरोगमें प्रतिदिन सेवन करने चाहिये॥ २७-१३०॥

अम्लपित्तरोगमें अपथ्य।

नवान्नानि विरुद्धानि कफपित्तकराणि च।
वमिवेगं तिलान्माषान् कुलत्थांस्तैलभक्षणम्॥ १३१॥
अविदुग्धं च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च।
गुर्वन्नं दधि मद्यं च वर्जयेदम्लपित्तवान्॥ १३२॥

अम्लपित्तवाला रोगी नवीन अन्न स्वभावविरुद्ध और कफपित्तकारक द्रव्योंका भोजन वमनादिके वेगको रोकना तिल उडद कुलथी तेल भेंडका दूध काँजी नमकीन द्रव्य खट्टे चरपरे और गुरुपाकी द्रव्य दही और मद्य इन सब पदार्थोंको तत्काल छोडदेवे ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां अम्लपित्तचिकित्सा ।

विसर्पकी चिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ।
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ १ ॥

विसर्परोगमें विरेचन, वमन, प्रलेप, सेचन, रक्तमोक्षण और जो दाहकारक न हों ऐसे उपचार दोषानुसार प्रयोग करने चाहिये ॥ १ ॥

पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन च ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥ २ ॥

पटोलपत्र और नीमकी छालके क्वाथके साथ पीपल और मैनफलका चूर्ण तथा इन्द्रजौका चूर्ण मिलाकर विसर्परोगमें वमन होनेके लिये देवे ॥ २ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥
रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

विसर्पज्वरकी निवृत्तिके लिये त्रिफलेके क्वाथमें घी और निसोतका चूर्ण डालकर विरेचनार्थ प्रदान करे अथवा आमलोंके स्वरसमें घी डालकर देवे तो इससे दस्त होकर विसर्परोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् ।
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंप्लुतम् ॥ ४ ॥

नागरमोथा, नीमकी छाल और पटोलपातका क्वाथ अथवा आमले, परवल और मूँग इनका क्वाथ घृत मिलाकर सेवन करनेसे विसर्प रोग जाय ॥ ४ ॥

अमृतादि ।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं

निम्बपत्रं हरिद्रे। विविधविधविसर्पान् कुष्ठविस्फोट-
कण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरं च॥ ५॥

गिलोय, अडूसा, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतवन, खैर, सारिवा, नीमके पत्ते, हल्दी और दारुहल्दी इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पान करनेसे नानाप्रकारके विसर्परोग, कोढ, विस्फोटक, खुजली, मसूरी, शीतपित्त और ज्वर इत्यादि रोग दूर होते हैं॥ ५॥

नवकषाय-गुग्गुलु।

अमृतवृषपटोलं निम्बवल्कैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं
व्याधिघातं च तुल्यम्। क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोर्भाग-
युक्तं जयति विषविसर्पान्कुष्ठमष्टादशाख्यम्॥ ६॥

गिलोय, अडूसेकी छाल, परवल, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, खैरसार और अमलतासका गूदा इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। उस क्वाथमें एक तोला शुद्ध गूगल डालकर पान करे तो यह क्वाथ विषजन्य विसर्प, १८ प्रकारके कोढ तथा अन्य समस्त विकारोंको शीघ्र जीतता है॥ ६॥

कालाग्निरुद्ररस।

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्म गंधकमाक्षिकम्।
वन्यकर्कोटकद्रावैस्तुल्यं मर्द्यं दिनावधि॥ ७॥
वन्यकर्कोटिकाकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः।
भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दिनैकं तद्विपाचयेत्॥ ८॥
दशमांशं विषं योज्यं माषमात्रं तु भक्षयेत्।
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत्॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत्॥ ९॥

शुद्ध पारा, अभ्रक, कान्तलोहभस्म, शुद्ध गन्धक और सोनामाखी इनको समान भाग लेकर वनककोडेके रसमें एक दिनतक खरलकर वनककोडेके कन्दमें रक्खे और ऊपर मिट्टीसे लहेसकर भूधरयन्त्रमें एक दिनतक पुटपाक करे। जब पककर शीतल होजाय तब सम्पूर्ण औषधिके दशभागकी बराबर विष मिलाकर एकत्र पीसलेवे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इसको एक मासा प्रमाण लेकर पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर भक्षण करे तो यह कालाग्निरुद्ररस दस दिनमें ही विसर्परोगको नष्ट करता है॥ ७-९॥

वृषखदिरपटोलपत्रनिम्बत्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति विसर्पगदान्सकुष्ठगुल्मान् ॥

अडूसा, खैर, पटोलपात, नीमकी छाल, गिलोय और आमले इनके क्वाथ और कल्कके साथ शुद्ध और नवीन गोघृतको विधिपूर्वक पकावे । यह घृत विसर्प, कुष्ठ और गुल्मरोगको तत्काल शान्त करता है ॥ १० ॥

करञ्जतैल ।

करञ्जसप्तच्छदलाङ्गलीकस्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः ।
तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ११ ॥

करंजुआ, सतौना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीतेकी जड और भाँगरा इनके क्वाथमें हल्दीका कल्क, गोमूत्र और विष डालकर तिलके तेलको पकावे । यह तेल विसर्प विस्फोटक और विचर्चिका रोगको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

विसर्परोगमें पथ्य ।

विरेको वमनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् ।
पुराणा यवगोधूमकङ्गुषष्टिकशालयः ॥ १२ ॥
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गलो रसः ।
नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् ॥ १३ ॥
वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेशरः ।
लाक्षा शिरीषः कर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् ॥ १४ ॥
ह्रीबेरकं मुस्तकं च तिक्तानि सकलानि च ।
यथादोषमिदं पथ्यं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥ १५ ॥

विरेचन, वमन, लेप, लंघन और रक्तमोक्षण करना, पुराने जौ, गेहूँ, मालकाङ्गनी, साँठी और शालिके चावल मूँग, मसूर, चने, अडहर, जंगली जीवोंका मांसरस, नैनी घी, दाख, अनार, करेला, बेंतके अंकुर, पटोलपत्र, आमले, खैर, नागकेशर, लाख, सिरस, कपूर, चन्दन, शरीरपर तेलकी मालिश, सुगन्धवाला, नागरमोथा और कडवे पदार्थ ये सब दोषानुसार सेवन करनेसे विसर्प रोगियोंको हितकारी हैं ॥ १२-१५ ॥

विसर्परोगमें अपथ्य ।

व्यायाममह्नि शयनं सुरतं प्रवातं क्रोधं शुचं वमन-

वेगमसूयनं च। शाकं विरुद्धमशनं दधि कूर्चिकां च सौवीरमासवमनेकविधं किलाटम् ॥ १६ ॥ गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलत्थान् माषांस्तिलान्सकलमांसमजाङ्गलं चाऽस्वेदं विदाहि लवणाम्लकटूनि मद्यान्यर्कप्रभामपि विसर्पगदी त्यजेत्तु ॥ १७ ॥

कसरत करना दिनमें सोना स्त्रीप्रसङ्ग प्रबलवायु या पुर्वाई हवाका सेवन क्रोध शोक करना वमनके वेगको रोकना ईर्ष्या करना शाक विरुद्ध भोजन दही कूचिका (जो पदार्थ दही और दूधको औटाकर बनाये जाते हैं) काँजी अनेक प्रकारके आसव किलाट (फटे दूधका मावा) सर्वप्रकारके गुरुपाकी अन्न और पानीयद्रव्य लहसुन कुलथी उडद तिल जङ्गलीजीवोंके मांसके अतिरिक्त अन्य सर्वप्रकारके मांस स्वेद लानेवाले दाहकारक द्रव्य लवण खटाई और कडवे द्रव्य मदिरा तथा धूप इनको विसर्परोगी शीघ्र त्याग देवे ॥ १६ ॥ १७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् विसर्पचिकित्सा ॥

विस्फोट--चिकित्सा।

विस्फोटे लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्।
यथादोषबलं वीक्ष्य युक्तियुक्तं विरेचनम् ॥ १ ॥

विस्फोटरोगमें दोषोंका बलाबल विचारकर लंघन वमन पथ्यभोजन और विरेचन करना युक्तियुक्त कहा है ॥ १ ॥

पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः।
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटार्त्तिज्वरापहः ॥ २ ॥

पटोलपत्र, गिलोय, चिरायता, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, पित्तपापडा, खैर और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे विस्फोट (एक प्रकारका विषैलाफोडा) की पीडा और ज्वर दूर होता है ॥ २ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः।
समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥ ३ ॥
कषायं पाययेदेतच्छ्लेष्मपित्तज्वरापहम्।
कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ ४ ॥

परवल, त्रिफला, नीमकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ, हल्दी और धमासा इनका क्वाथ बनाकर पान करावे तो यह क्वाथ कफपित्तजन्य ज्वर, खुजली, त्वचाके विकार, विस्फोटक और विसर्प रोगको नष्ट करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

व्रणारिगुग्गुलु।

पलं कृष्णा पुरः पञ्च त्रिफला त्रिपलं भवेत्।
भस्मसूतपलं चास्य कर्षः सर्वव्रणापहः ॥ ५ ॥

पीपल ४ तोले, गूगल २१ तोले, हरड बहेडा, आमला प्रत्येक चार चार तोले और रससिन्दूर ४ तोले इन सबोंको एकत्रकर उत्तमप्रकार खरल करलेवे। इसको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो यह सर्वप्रकारके व्रणोंको दूर करता है ॥ ५ ॥

पञ्चतिक्तकघृत।

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम्।
तत्पंचतिक्तं घृतमाशु हन्ति त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥६॥

पटोलपत्र, सतौना, निम्बछाल, अडूसा और गिलोय इनके क्वाथ तथा त्रिफलाके कल्कद्वारा यथाविधि घृतको पकावे। यह पञ्चतिक्तकघृत यथानियम पान करे तो यह त्रिदोषोत्पन्नविसर्प, विस्फोटक और खुजलीको तत्काल नाश करता है ॥

विस्फोटरोगमें पथ्य।

विरेचनच्छर्दनलेपलङ्घनं पुरातनाः षष्टिकशालयो यवाः। मुद्गा मसूराश्चणका मुकुष्टका धन्वामिषं गव्यघृतं कठिल्लकम्॥७॥ वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलकं ज्योतिष्मती निम्बदलानि चन्दनम्। तैलं सिताभ्रं तिललेपनं घनं बालं च विस्फोटगदं विनाशयेत् ॥ ८ ॥

जुल्लाब देना, वमन कराना, लेप करना, लंघन, पुराने साँठी और शालिके चावल, जौ, मूँग, मसूर, चने, मोठ, मरुदेशजन्य जीवोंका मांसरस, गौका घी, करेला, बेंतकी कोंपल, ढाकके बीज, परवल, मालकांगनी, नीमके पत्ते, लालचन्दन, तेल, कपूर, तेलकी मालिश, नागरमोथा और सुगन्धवाला ये सब पदार्थ विस्फोटरोगको नष्ट करनेवाले हैं, इसलिये उक्तरोगीको ये सब सेवन करने चाहिये ॥७॥ ८॥

विस्फोटरोगमें अपथ्य।

स्वेदं व्यवायं व्यायामं क्रोधं गुर्वन्नमातपम्।
वमिवेगं पत्रशाकं प्रवातं स्वपनं दिवा ॥ ९ ॥
ग्राम्यौदकानूपमांसं विरुद्धान्यशनानि च।
तिलान्यवान्कुलत्थांश्च लवणाम्लकटूनि च ॥
विदाहि रूक्षमुष्णं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

पसीना निकलना, मैथुन, कसरत और क्रोधकरना, दुष्पाच्य अन्न, धूपका सेवन, वमनके वेगका रोध, पत्तोंवाले शाक, अत्यन्ततीक्ष्ण वायुका सेवन, दिनको सोना, ग्रामीण जीव, जलचर और अनूपदेशके प्राणियोंका मांस विरुद्ध खान पान, तिल, जौ, कुलथी, नमक, खट्टे और चरपरे, दाहकारी, रूक्खे और गरम ये सब पदार्थ विस्फोटवाला रोगी बहुत शीघ्र छोड देवे ॥ ९ ॥ १० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विस्फोटचिकित्सा।

मसूरिकाकी चिकित्सा।

चैत्रासितभूतदिने रक्तपताकान्विता स्नुहिभवेन।
धवलितकलशे न्यस्ता पापरोगं दूरतो धत्ते ॥ १ ॥

चैत्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन शुभ्रवर्णवाले कलसेके ऊपर लालरंगके वस्त्रसे बनाई हुई थूहरके वृक्षकी शाखाकी पताका स्थापन करनेसे मसूरिका (वसन्त) रोग दूर भाग जाता है ॥ १ ॥

नारीणां वामपार्श्वस्थं नराणामपसव्यगम्।
पापरोगमयं दूरात् शिवास्थि विनिवारयेत् ॥ २ ॥

स्त्रियोंकी बाई पसलीमें और पुरुषोंके दहिनी पसलीपर हरडका बीज (किसीके मतमें गीदडकी हड्डी) धारण करनेसे पापरोग समूह जाता रहता है ॥

ज्वरे जाते स्पृशेन्नाम्बु तिष्ठेन्निर्वातवेश्मनि।
म्रक्षयेद्विजयाचूर्णैर्गात्रं वस्त्रेण बन्धयेत् ॥ ३ ॥

मसूरिकारोगमें ज्वर उत्पन्न होनेपर जलका स्पर्श न करे और वातरहित स्थानमें निवास करे। भाँगके चूर्णको शरीरमें मलकर वस्त्रसे ढकदेवे ॥ ३ ॥

रुद्राक्षं मरिचैर्युक्तं पीतं पर्युषिताम्भसा।
त्र्यहात्पापरुजं हन्ति दृष्टं वारसहस्रशः ॥ ४ ॥

रुद्राक्ष और कालीमिरचके चूर्णको बासीजलके साथ पान करनेसे तीन दिनमेंही पापरोग (मसूरिका) नष्ट होता है । यह हजारों वार अनुभव कर देखागया है ॥ ४ ॥

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवत्सकैः ।
कषायैश्च वचावत्सयष्टयाह्वफलकल्कितैः ॥ ५ ॥

सर्वप्रकारकी मसूरिकामें पटोलपात, नीमके पत्ते और इन्द्रजौ इनके क्काथमें वच; इन्द्रजौ, मुलहठी और मैनफलका चूर्ण डालकर वमन कराना हितकर है ॥५॥

सक्षौद्रं पाययेद्ब्रह्म्या रसं वा हैलमोचिकम् ।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनं चाबले नरे ॥ ६ ॥

ब्रह्मीके रस अथवा हुलहुलके रसमें शहद मिलाकर पान कराकर वमन करावे, पश्चात् विरेचन करावे । किन्तु दुर्बलरोगीको शमनकारक औषधि देना ॥ ६ ॥

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ ७ ॥

करेलेके पत्तोंके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण डालकर पान करे तो रोमान्ती (जिससे रोम खडे होजायँ) ज्वर, विस्फोट और मसूरिकारोग शान्त होते हैं ॥ ७ ॥

उष्ट्रकण्टकमूलं वाप्यनन्तामूलमेव वा ।
विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम् ॥ ८ ॥

ऊँटकटेलीकी जड अथवा अनन्तमूलको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे मसूरिकारोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

तद्वच्छृगालकण्टकमूलं च व्युषिताम्भसा ।
निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव च ॥
व्युषिताम्बुना मरिचं पिबेत्पीतकपर्दकम् ॥ ९ ॥

शृगालकटेरीकी जडको बासीपानीके साथ पीसकर अथवा हल्दी और इमलीके पत्तोंको शीतलजलमें पीसकर किम्वा कालीमिरच और पीली कौडीके चूर्णको बासी जलके साथ पान करनेसे मसूरिका रोग दूर होता है ॥ ९ ॥

यावत्संख्या मसूर्यङ्गे तावद्भिः शैलुजैर्दलैः ।
छिन्नैरातुरनाम्ना तु गुडिकेति न वर्द्धते ॥ १० ॥

रोगीके शरीरपर मसूरिकाके जितने दाने हों उतने ही लिसौडेके पत्ते लावें रोगीके नामके अक्षरोंकी संख्याके अनुसार उनमेंसे प्रत्येकके उतनेही टुकडे करलेवे । इस प्रकार करनेसे मसूरिकाकी संख्या वृद्धिगत नहीं होती ॥ १० ॥

व्युषितं वारि सक्षौद्रं पीतं दाहगुडीहरम् ॥ ११ ॥

बासीजल और शहद एकत्र मिलाकर पीनेसे मसूरिकाकी दाह और गूमडियें दूर होती हैं ॥ ११ ॥

तर्पणं वातजायां प्राक् लाजचूर्णैः सशर्करैः ।
भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन वा ॥ १२ ॥

वातज मसूरिकामें प्रथम खीलोंके चूर्णमें खाँड मिलाकर तृप्तिके लिये देवे । तथा कडवेद्रव्योंके यूष और प्रतुद (जो पृथ्वी खुरच खुरच कर या चोंचोंसे वितरित-कर खाते हैं) पक्षियोंके मांसरसके साथ भोजन करावे ॥ १२ ॥

सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥
प्रलेपात्पातयन्त्याशु दाहं चाशु नियच्छति ॥ १३ ॥

बिजौरेनींबूकी केशरको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे मसूरिकारोग और उसकी दाह शीघ्र नष्ट होती है ॥ १३ ॥

पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसम्भवा ।
तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तण्डुलाम्बुना ॥ १४ ॥

पैरोंमें मसूरिकाकी गूमडियें उत्पन्न होनेसे पैरोंमें दाह होती है उसको दूर करनेके लिये चावलोंके पानीसे बारबार सेंकना चाहिये ॥ १४ ॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः ।
तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम् ॥ १५ ॥

मसूरिकाके पकनेके समय वायु उसकी गूमडियोंको सुखा देता है । उस समय वायु शमन करनेके लिये रोगीको पौष्टिक आहार देवे । पथ्य द्रव्य और शोषण क्रिया नहीं करे ॥ १५ ॥

गुडूचीं मधुकं द्राक्षां मोरटं डिमैः सह ।
पाककाले तु दातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥ १६ ॥

मसूरिकाके पकते समय गिलोय, मुलहठी, दाख, ईखकी जड और अनारदाना इन औषधियोंके क्वाथमें गुड डालकर पान करावे । इससे मसूरिका शीघ्र पकजाती है और वायु कुपित नहीं होता ॥ १६ ॥

लिहेद्वा बादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु ।
अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः ॥ १७ ॥

बेरकी गुठलीकी मींगके चूर्णको गुडके साथ मिलाकर पाचनके लिये भक्षण करे। इससे त्रिदोषजनित मसूरिका बहुत जल्द पकती है ॥ १७ ॥

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना ।
धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ १८ ॥

यदि वायुके कुपित होनेके कारण शूल, उदरमें अफारा और कम्प हो तो रोगीको कुछ थोडासा सेंधानमक डालकर मरुदेशके पशु पक्षियोंका मांसरस भोजन करावे ॥ १८ ॥

पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खदिराशनैः ।
शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रीबहुवारजम् ॥१९॥

खैर १ तोला और विजयसार १ तोला इन दोनोंको २ सेर जलमें औटावे। जब औटते औटते एक सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर शीतलकर प्यास लगनेपर इस जलको पीवे शौचके लिये खैर तथा कीकडके पत्तोंके द्वारा उल्लिखित विधिके अनुसार जल पकाकर शीतल करके प्रयोग करे ॥ १९ ॥

जातीफलं समञ्जिष्ठं दार्वी पूगफलं शमी ।
धात्रीपत्रं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम् ॥
मुखरोगे कण्ठरोगे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ २० ॥

जायफल, मञ्जीठ, दारुहल्दी, सुपारी, सेमलकी छाल, आमले और मुलहठी इनके क्वाथमें शहद डालकर मुखरोग और कण्ठरोगमें गण्डूष धारण करे ॥ २० ॥

अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥ २१ ॥

गरहेडुआ और मुलहठीको जलमें पीसकर कपडेमें बांधकर रस निचोड लेवे। फिर कुछ गरम कर उससे मसूरिका रोगीकी आँखोंको सेके ॥ २१ ॥

पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवचूर्णयेत् ।
भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ २२ ॥

गीली मसूरिकाकी फुन्सियोंपर पञ्चवल्कल (बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंतकी छाल) के चूर्णको बुरकना चाहिये अथवा उपलोंकी राख या उपलोंका चूरा छिडकनेसे भी उपकार होता है ॥ २२ ॥

कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सरलादिभिः ।
वेदनादाहशान्त्यर्थं सुतानां च विशुद्धये ॥ २३ ॥

सगुग्गुलुं वराक्काथं युञ्ज्याद्वा खदिराष्टकम्।
कृष्णाभयारजो लिह्यान्मधुना कण्ठशुद्धये॥
तथाऽष्टाङ्गावलेहश्च कवलश्चार्द्रकादिभिः॥ २४॥

कीडे पडनेके भयसे सरलवृक्षकी धूप देवे तो इससे कीडे उत्पन्न नहीं होते। एवं मसूरिकाकी पीडा और दाहकी शान्तिके लिये तथा स्रुत (फुन्सियां) के झिरनेकी शुद्धिके लिये त्रिफलेके क्वाथको शुद्ध गूगलमें मिलाकर सेवन करे। अथवा खदिराष्टक क्वाथको पान करे या पीपल और हरडके चूर्णको शहदमें मिलाकर कण्ठकी शुद्धिके लिये चाटे तथा अष्टाङ्गावलेहके खानेसे और अदरख आदिका कवल धारण करनेसे भी कण्ठकी शुद्धि होती है॥ २३॥ २४॥

पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः।
कुर्याद् व्रणविधानं च तैलादीन्वर्जयेच्चिरम्॥ २५॥

पान, अभ्यङ्ग और भोजनके वास्ते कुष्ठाधिकारोक्त पञ्चतिक्त घृत प्रयोग करे और व्रणरोगकी विधिके अनुसार चिकित्सा करे। इस रोगमें तैलादि द्रव्य सर्वथा त्याज्य हैं॥ २५॥

घण्टाकर्णं शिवं गौरीं विष्णुं विप्रं च पूजजेत्।
आचरेज्जपहोमादीन्व्रतं रोगनिवृत्तये॥ २६॥

इस रोगमें घण्टाकर्ण, शिव, पार्वती, विष्णु भगवान् और ब्राह्मणोंको पूजे। एवं जप, होमादि अनुष्ठान और मसूरिकारोगकी शान्तिके लिये व्रतादि करे॥ २६॥

अगदानि विषघ्नानि रत्नानि विविधानि च।
धारयेद्वाचयेच्चापि वैनतेयस्य संहिताम्॥ २७॥

तदनन्तर रोगनाशक और विषहरण भाँतिभाँतिके रत्नोंको धारण करें और गरुडपुराणका पाठ करे॥ २७॥

तेषु दुष्टव्रणेष्वेव जलौकाभिर्हरेदसृक्।
व्रणशोथहरं योगमाचरेत्तत्प्रशान्तये॥ २८॥

दुष्टव्रण होजानेपर जौंक लगवाकर रुधिर निकलवावे और व्रणकी सूजनको दूर करनेके लिये शोथनाशक चिकित्सा करे॥ २८॥

विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रमृज्यात्तु पुनः पुनः।
भक्त्या पठेत्पाठयेच्च शीतलायाः स्तवं शुभम्॥ २९॥

विषको हरण करनेवाले सिद्धमन्त्रोंसे बारबार मार्जन करे और श्रद्धाभक्तिसे शीतलाके शुभ स्तोत्रको स्वयं पढे तथा दूसरोंसे पढावे॥ २९॥

पटोलादि ।

पटोलकुण्डलीमुस्तवृषधन्वयवासकैः ।
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ३० ॥
मसूरीं शमयेदासां पक्वं चैव विशोषयेत् ।
नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये॥ ३१ ॥

पटोलपत्र, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, धमासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और पित्तपापडा इनके द्वारा औटाकर शीतल कियाहुआ जल पान करनेसे अपक्व मसूरिका शमन और पकीहुई मसूरिका शुष्क होती हैं। विस्फोट और ज्वरको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर कोई औषधि नहीं है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अमृतादि ।

अमृतादिकषायश्च विसर्पोक्तं प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

इसमें विसर्परोगमें कहाहुआ अमृतादिक्काथ भी सेवन कराना चाहिये ॥ ३२ ॥

इन्दुकलावटिका ।

शिलाजत्वयसी हेम सम्मर्द्यार्जकवारिणा ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कुर्याच्छायाविशोषिताम् ॥ ३३ ॥
मसूरिकायां विस्फोटे ज्वरे लोहितसंज्ञके ।
एकैकां दापयेदासां सर्वव्रणगदेषु च ॥ ३४ ॥

शिलाजीत, लोहभस्म और स्वर्णभस्म इनको समान भाग लेकर वनतुलसीके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इनमेंसे मसूरिका, विस्फोट, ज्वर, रक्तविकार और सर्वप्रकारके व्रणरोगोंमें एक एक गोली देवे। इसके सेवनसे उक्तरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मसूरिकारोगमें पथ्य ।

पूर्वं लङ्घनवान्तिरेचनशिरावेधाश्शशाङ्कोज्ज्वला
जीर्णाष्षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः ।
सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटका दात्यूहक्रौञ्चादयो
जीवञ्जीवशुकादयोऽपि कुलकं कार्वेल्लमाषाढकम् ॥१५॥
कर्कोटं कदलं च शिग्रुरुचकं द्राक्षाफलं दाडिमं
मेध्यं बृंहणमन्नपानमखिलं कोलानि माषो रसः ।

अक्ष्णोः सेकविधौ गवेधुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं
शम्बूकोदरकोषनीरमपि वा कर्पूरचूर्णानि वा ॥ ३६ ॥

मसूरिका रोगमें प्रथम लंघन, वमन, विरेचन, शिरावेध कराना (फस्तखुलवाना) चाहिये। पश्चात् निर्मल चन्द्रमाकी कान्तिके समान उज्ज्वल पुराने साँठी और शालिधानोंके चावल, चने, मूँग, मसूर, जौ तथा कबूतर, चिडिया, दात्यूह (पक्षि-विशेष) अथवा पपैहा, कुररपक्षी, चकोर, तोता और अन्य सर्व प्रकारके प्रतुद (चोंचसे फोड़कर खानेवाले, कौआ, मोर, श्येनादि) पक्षियोंका मांस, पटोलपात, करेला, ढाकके बीज. ककोडा, कच्चा केला, सहिंजना, बिजौरानीम्बू, दाख, अनार, पवित्र और पुष्टिकर अन्नपान, पकेहुए सूखे बेर और उडदोंका यूष इनका भोजन एवं गवेधु (तृणधान्यविशेष) और मुलहठीके द्वारा सिद्ध कियेहुए शीतल जलसे अथवा घोंघेके भीतरके जलसे आँखोंपर सेंक करना या कपूरका चूर्ण मिलाकर जलसे छींटे देने चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

पक्वे मुद्गरसोऽपि जाङ्गलरसः शालिञ्चशाकं घृतं
निर्गुण्डीदलयक्षधूपविहितो धूपो मृदुर्मुक्तितः।
शश्वद्गोमयभस्मगुग्गुलुमथो शुष्के शिलापिष्टयो-
रालेपः पिचुमर्दपत्रनिशयोः शेषे व्रणोक्ताः क्रियाः ॥३७॥
इत्थं सर्वदशाविभागविहितं पथ्यं यथादोषतः
संयुक्तं मुदमाननोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥ ३८ ॥

पकीहुई मसूरिकामें मूँगका रस, जङ्गलीजीवोंका मांसरस, शान्तिशाक, घृत, सिह्लालूक पत्ते और राल इनका धूप बनाकर विधिपूर्वक धूनी देवे, शरीरपर निरन्तर उपलोंकी राख और गूगलको सूखी शिलपर पीसकर मर्दन करे। मसूरिकाकी फुन्सियोंके सूखजानेपर नीमके सूखे पत्ते और कच्ची हल्दीको पीसकर लेप करे, पश्चात् व्रणरोगोक्त चिकित्सा करे। इस प्रकार सब अवस्थाओंके विभागमें विधानकियेहुए पथ्यको यथादोषानुसार सेवन करनेसे मसूरिकायुक्त रोगियोंको आरोग्यरूपी आनन्दलाभ होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मसूरिकारोगमें अपथ्य।

रतिं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम्।
दुष्टाम्बु दुष्टपवनं विरुद्धान्यशनानि च ॥ ३९ ॥

निष्पावमालुकं शाकं लवणं विषमाशनम् ।
कट्वम्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्त्यजेत् ॥ ४० ॥

मसूरीरोगवाला मनुष्य मैथुन, स्वेदक्रिया, परिश्रम, तेल, भारी अन्नोंका सेवन, क्रोध, धूपका सेवन, दूषितजल, दूषितवायु, विरुद्धभोजन, सेमकी फली, आलू, शाक, नमक, विषम आहार, चरपरे और खट्टे द्रव्य एवं मलमूत्रादिके वेगको रोकना इन सबको तत्काल त्यागदेवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मसूरिकाचिकित्सा ।

क्षुद्ररोगोंकी चिकित्सा ।

अजगल्लिका-चिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥१॥

प्रथम अपक्वअजगल्लिकाके रुधिरको जौंक लगवाकर निकलवादे, पश्चात् सीप, सोरठदेशकी मिट्टी और जवाखार इनको एकत्र पीसकर वारबार लेपकरे ॥ १ ॥

नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः ।
किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजगल्लिकाः ॥ २ ॥

नवीन कटेरीके काँटोंके द्वारा अजगल्लिकाको विद्धकरनेसे वह शीघ्र ही पच कर नष्ट होजाती है ॥ २ ॥

वृषमूलविशालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम् ।
कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ॥ ३ ॥

अडूसेकी जड और इन्द्रायणकी जडकी छाल इन दोनोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अजगल्लिकारोग दूर होता है । यदि अजगल्लिका अत्यन्त कठिन हो तो उसको क्षारादि औषधियोंके द्वारा नर्म करे ॥ ३ ॥

अनुशयी विवृतेन्द्रविद्धादि रोगोंकी चिकित्सा ।

श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेदनुशयीं भिषक् ।
विवृतामिन्द्रविद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम् ॥ ४ ॥

इरिवेल्लिं गन्धमालां जयेत्पित्तविसर्पवत् ।
मधुरौषधिसिद्धेन सर्पिषा शमयेद्व्रणम् ॥ ५ ॥

अनुशयी नामक क्षुद्ररोगकी कफजविद्रधिकी चिकित्साके समान चिकित्सा करनी चाहिये। विवृता, इन्द्रविद्धा, गर्दभी, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका और गन्धमाला आदि रोगोंकी पित्तजविसर्पकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। मधुरौषधि अर्थात् काकोल्यादिगणकी औषधियोंके साथ घृतको पकाकर व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

विदारिका पनसिकादि–क्षुद्र-रोगोंकी चिकित्सा ।

रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ।
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ ६ ॥
पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक् ।
अन्त्रालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ॥
साधयेत्कठिनानन्याञ्शोथान्दोषसमुद्भवान् ॥ ७ ॥

प्रथम विदारिका, पनसिका और कच्छपिका नामक क्षुद्ररोगकी चिकित्सा अधिक रक्तमोक्षण, स्वेदन और अपतर्पणादि क्रियाओंके द्वारा करनी चाहियें पश्चात् सहिंजनेकी छाल और देवदारुको एकत्र पीसकर लेप करना चाहिये। शोथयुक्त अन्त्रालजी, कच्छपिका और पाषाणगर्दभरोगकी भी चिकित्सा इसी विधिसे करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

पाषाणगर्दभकी चिकित्सा ।

सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ ८ ॥

पाषाणगर्दभरोगमें प्रथम स्वेदन करके पश्चात् देवदारु, मैनसिल और कूठ इन औषधियोंको एकत्र पीसकर गरम करके लेप करे। यह लेप कफ, वात और शोथको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

वल्मीकरोगकी चिकित्सा ।

शस्त्रेणोद्धृतवल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ।
मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ ९ ॥

जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्।
वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ १० ॥
सशोथं व्रणगन्धं च प्रवृद्धं मर्मसु स्थितम्।
हस्तपादस्थितं चापि वल्मीकं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

वल्मीकरोगको अस्त्रके द्वारा काटकर क्षार और अग्निका प्रयोग करे। मैनसिल, भिलावा, हरिताल, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और चमेलीके पत्ते इन औषधियोंके कल्कद्वारा नीमके तेलको पकाकर व्रणस्थानमें लेप करे। इस तेलको मर्दन करनेसे बहुत छिद्र और बहुत पीववाला वल्मीकरोग नष्ट होता है। शोथयुक्त, जिसमें व्रणके समान गन्ध आती हो, अत्यन्त बढाहुआ, मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुआ और हाथपावोंमें उत्पन्न हुआ वल्मीकरोग असाध्य है, इसलिये इनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ९-११ ॥

पाददारी (बिबाई की) चिकित्सा।

पाददारीषु च शिरां वेधयेत्तलशोधिनीम् ॥ १२ ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जघृतक्षारैर्विमिश्रितैः ॥ १३ ॥

पाददारीरोगमें प्रथम पैरके तलुएँकी शिराको विद्ध करके रक्त निकलवावे। पश्चात् स्निग्धस्वेद देकर मोम, चर्बी, मज्जा, घृत और क्षार इनका प्रलेप करे ॥ १३ ॥

गुडलवणघृतं चेत्तिन्तिडीयुक्तमेतद्
द्विगुणमिह विदध्यान्मूत्रमेकत्र कृत्वा।
दिनकतिचिदथेदं किञ्चिदाशोष्य लेपात्
स्फुटितपदतलं स्यात्पद्मपत्राभमाशु ॥ १४ ॥

गुड, सेंधानमक, घी और इमलीकी छाल ये प्रत्येक एकएक तोला और गोमूत्र ४ तोले लेकर सबको एकत्र पीसकर धूपमें सुखालेवे। फिर स्फुटित पद-तल (बिवाई) पर इसका लेप करे तो इससे पैरके तलुएँ कमलके पत्रके समान कान्तियुक्त और कोमल होजाते हैं ॥ १४ ॥

सर्ज्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम्।
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्ज्जनम् ॥ १५ ॥

राल और सेंधेनमकके चूर्णको शहद, घृत और कडवे तेलमें मिलाकर बिवाईपर मर्दन करना हितकारी है ॥ १५ ॥

उपोदिकाक्षारतैल ।

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचककर्कारुकैर्वारुकभस्मतोये ।
तैलं विपक्वं लवणांशयुक्तं यत्पाददारीं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥१६॥

पोईका शाक, सफेदसरसों, नीमकी छाल, केलेका मोचा, पीले पेठे और ककोडेका डंठल इन सबको समान भाग लेकर अन्तर्धूमकी विधिसे दग्ध करके भस्म करलेवे। फिर भस्मके द्वारा क्षारजलको निकाललेवे। इस प्रकार निकालेहुए आठ सेर जलमें एक सेर सैंधानमक और दो सेर तिलका तेल डालकर तेलको सिद्ध करे। यह तेल पाददारीरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १६ ॥

अलसकी चिकित्सा ।

अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत् ।
पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥

अलसरोगमें दोनों पैरोंको काँजीमें कुछदेरतक भिगोये रक्खे, पश्चात् पटोलपत्र, नीमकी छाल, कसीस और त्रिफला इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर बारम्बार लेप करे ॥ १७ ॥

करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु ।
रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १८ ॥

करञ्जके बीज, हल्दी, हीरा कसीस, मुलहठी, शहद, गोरोचन और हरताल इनको बराबर भाग लेकर बारीक पीसकर लेप करना अलसरोगमें हितकर है ॥ १८ ॥

लाक्षाभयारसालेपः कार्यं रक्तस्य मोक्षणम् ।
बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥
शिलारोचनकासीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १९ ॥

अलसरोगमें लाख, हरड और गन्धरस इनको एकत्र पीसकर लेप करे और रुधिर निकलवावे। फिर बडीकटेरीके रसमें कडवे तेलको पकाकर मालिश करे, एवं उक्ततेलके साथ मैनसिल, गोरोचन और कसीसके चूर्णको मिलाकर लगावे। इससे अलस रोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

कदरकी चिकित्सा ।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ २० ॥

कदर (पैरोंमें कङ्कड या काँटेके लगनेसे बेरके समान ऊँची गाँठ होजाती है, उसको कदर कहते हैं) काटकर गरम तेलसे या अग्निसे दग्धकर देवे ॥ २० ॥

चिप्पकी चिकित्सा ।

चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम् ।
दत्त्वा सर्ज्जरसं चूर्णं बद्ध्वा व्रणवदाचरेत् ॥ २१ ॥

चिप्परोगमें प्रथम उष्णजलसे स्वेदन कर अस्त्रक्रिया करे, पश्चात् तेलको लगाकर उसपर रालका चूर्ण बुरका देवे और व्रणको अच्छे प्रकार बाँधदेवे । इसमें रोगीको व्रणरोगकी समान पथ्य देवे और उसीके समान अन्य उपचार करे ॥ २१ ॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ।
घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

लोहेके बर्त्तनमें हल्दीके स्वरसके साथ हरडको घिसकर उससे चिप्पपर बारबार लेप करे ॥ २२ ॥

अङ्गुलीवेष्टककी चिकित्सा ।

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः ।
अङ्गुलीवेष्टकः पुंसो ध्रुवमाशु व्यपोहति ॥ २३ ॥

कुम्भेरके कोमल सात पत्तोंको बाँधनेसे मनुष्यके अंगुलिवेष्टक नामवाला रोग तत्काल नष्ट होता है ॥ २३ ॥

पद्मिनीकण्टककी चिकित्सा ।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम् ।
निम्बोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥ १४ ॥

पद्मिनीकण्टकरोगमें प्रथम नीमकी छालके काथको पान कराकर वमन कराना, पश्चात् उक्त काथके साथ घृत पकाकर उसमें शहद मिलाकर पान कराना अतीव हितकारी है ॥ २४ ॥

पद्मनालकृतक्षारं पद्मिनीं हन्ति लेपनात् ।
निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्त्तनं हितम् ॥ २५ ॥

कमलनालको भस्म करके उसके क्षारका लेप करनेसे अथवा नीमकी छाल, अमलतासके पत्तोंको एकत्र पीसकर बारबारमलनेसे पद्मिनीकण्टकरोग जाता है ॥ २५ ॥

जालगर्दभकी चिकित्सा ।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम् ।
जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम् ॥ २६ ॥

जालगर्दभरोगमें नीलवृक्ष और पटोलपातकी जडको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे उक्त रोगकी पीडा तत्काल शान्त होती है ॥ २६ ॥

अहिपूतनककी चिकित्सा।

अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत्।
त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा ॥ २७ ॥

अहिपूतनकरोगमें प्रथम प्रसूतास्त्रीके स्तन्य (दूध) को शुद्ध करे, पश्चात् त्रिफला और खैर इनके काढेसे निरन्तर व्रणोंको धोवे ॥ २७ ॥

करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ २८ ॥

करञ्जकी छाल, त्रिफला और पटोलपात इनके द्वारा उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध कर बालकको पिलाना हितकर है। एवं रसौंतके चूर्णको सेवन कराना और अहिपूतनकरोगके व्रणोंपर लगाना विशेष उपयोगी है ॥ २८ ॥

गुदभ्रंशकी चिकित्सा।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत्।
प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धं गोस्फणया भृशम् ॥ २९ ॥

गुदभ्रंश (काँछका बाहर निकलना) रोगमें गुदाको तेलसे मलकर शीघ्रही भीतरको प्रवेश करदेवे। जब वह प्रवेश होजाय तब स्वेद देवे और गोस्फणनामक बन्धनसे अच्छे प्रकार बाँधदेवे ॥ २९ ॥

कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्।
एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ ३० ॥

जो कमलिनीके कोमल पत्तोंको खाँडमें मिलाकर भक्षण करे तो उसके गुदाका बाहर निकलना निस्सन्देह बन्द होता है ॥ ३० ॥

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीविश्वपाठायवाग्रजम्।
तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ ३१ ॥

इमली, चीता, चूक, सोंठ, पाढ और जवाखार इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर मट्ठेके साथ पान करे तो इससे गुदभ्रंशरोग दूर होता है और अग्नि दीपन होती है ॥ ३१ ॥

गुदं च गव्यवसया म्रक्षयेदविशङ्कितः।
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥ ३२ ॥

काँछके बाहर निकल आनेपर गौकी चर्बीसे गुदाको निश्शंक होकर मले, फिर उसको भीतर प्रवेश करदेवे तो गुदभ्रंशरोग तत्काल नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक् प्रलेपनम् ।
स्विन्नमूषिकमांसेन अथवा स्वेदयेद् गुदम् ॥ ३३ ॥

चुहियोंकी चर्बीसे गुदापर अच्छेप्रकार मालिश करे अथवा मूसोंके मांसको पकाकर उसके द्वारा स्वेद देकर गुदाको भीतर प्रविष्ट करदेवे ॥ ३३ ॥

चाङ्गेरीघृत ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥
शुण्ठीक्षारावत्र कल्कौ शिष्टस्तु द्रवमिष्यते ॥ ३४ ॥

अम्लनोनियाका रस, सूखे बेरोंका क्वाथ और खट्टा दही ये समान भाग मिश्रित ८ सेर, सोंठ और जवाखार इनका कल्क १ सेर तथा घृत दो सेर लेवे। सबको एकत्रकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पान करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

मूषिकाद्यतैल ।

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम् ।
पक्त्वा तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम् ॥
गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात्प्रसाधयेत् ॥ ३५ ॥

दूधमें बेल, शोनापाठा, कुम्भेर पाढर और अरणी इनकी छाल समान भाग तथा आँतों रहित चूहेका मांस डालकर पकावे। जब पकते पकते केवल दूध शेष रहजाय तब उसमें वातनाशक औषधियें डालकर तिलके तैलको पकावे। इस तैलको पीनेसें और मालिश करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

चर्मकील-जतुमणिआदिकी चिकित्सा।

चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् ।
उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ ३६ ॥

चर्मकील, जतुमणि, मशक और तिलकालकादि क्षुद्ररोगोंको शस्त्रसे काटकर क्षार और अग्निके द्वारा दग्ध करना चाहिये ॥ ३६ ॥

रुबुनालस्य चूर्णेन घर्षो मशकनाशनः ।
निर्मोकभस्मघर्षाद्वा मशः शान्तिं व्रजेद ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

अण्डकी नालके द्वारा शंखके चूर्णको लेकर घर्षण करे अथवा सर्पकी केंचुलीकी भस्मको घर्षण करे तो इससे मशक (मसा) रोग बहुत शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३७॥

युवानपिडका-न्यच्छादिकी चिकित्सा।

युवानपिडकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः।
शिराव्यधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्याञ्जनैस्तथा ॥ ३८ ॥

युवानपिडका, न्यच्छ, नीलिका, व्यङ्ग और शर्करा इन रोगोंमें प्रथम शिरावेध (फस्तखुलवाना), फिर लेप और तेलादिकी मालिश करना हितकारी है ॥ ३८ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडकापहः।
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनम् ॥
वमनं च निहन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥ ३९ ॥

लोध, धनियाँ और वच इनको एकत्र पीसकर लेप करे अथवा गोरोचन और कालीमिरच इन दोनोंको एकत्र पीसकर मुखपर लेप कर वमन करावे तो इससे युवावस्थामें उत्पन्नहुई पिडिकायें (मुहासे) तत्काल नष्ट होती हैं ॥ ३९ ॥

व्यङ्गेषु चार्ज्जनत्वग् वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका।
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥ ४० ॥

व्यङ्गरोगमें अर्जुनकी छाल, मञ्जीठ, श्वेत अपराजिता इनका चूर्ण अथवा सफेद घोडेकी खुरकी भस्म इनमेंसे किसी एकको शहद और नैनीघीमें मिलाकर लेप करे तो व्यङ्गरोग दूर होता है ॥ ४० ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः।
वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ४१ ॥

लाल चन्दन, मञ्जीठ, कूठ, लोध, फूलप्रियंगु, बडके अंकुर और मसूरकी दाल ये सब द्रव्य एकत्र पीसकर लेप करनेसे व्यंगरोगको नष्ट करते हैं और मुखकी शोभाको बढाते हैं ॥ ४१ ॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ॥

खरगोशके बधिरका लेप करनेसे सब व्यंगरोगोंका नाश होता है ॥

केवलान्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्छाल्मलिकण्टकान्।
आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ ४२ ॥

एकमात्र सेमलके काँटोंको दूधके साथ पीसकर लेप करनेसे तीन दिनमें ही मुख कमलकी समान सुन्दर होजाता है ॥ ४२ ॥

मसूरैः सर्पिषा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्वितैः।
सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ४३ ॥

मसूरकी दालको घृतमें भूनकर और दूधमें पीसकर लेप करनेसे सात दिनमें मुख कमलपत्रकी कान्तियुक्त होजाता है। यह बिल्कुल सत्य है ॥ ४३ ॥

मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो रसः।
मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥ ४४ ॥

बिजौरेनींबूकी जड, घी, मैनसिल, गोबरका रस इन सबका लेप पिडका और तिलकालकरोगको जीतता है तथा मुखकी कान्तिको उज्ज्वल बनाता है ॥ ४४ ॥

नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जप्रलेपनम्।
व्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागक्षीरप्रपेषिता ॥ ४५ ॥

नैनीघी, गुड शहद और बेरकी गुठलीकी मींग इनको एकत्र पीसकर लेप करे अथवा बरनाकी छालको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे, यह लेप व्यङ्ग रोगको हरनेवाला है ॥ ४५ ॥

जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादिनाशनः।
सायं च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसाधनः ॥ ४६ ॥

जायफलको पीसकर लेप करनेसे नाली और व्यङ्गादिरोग नाश होते हैं। सन्ध्यासमय सरसोंके तेलकी मुखपर मालिश करनेसे मुख उज्ज्वल और कान्तियुक्त होता है ॥ ४६ ॥

कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफलिनीभिः।
लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ४७ ॥

सुगन्धितकाष्ठ अथवा दारुहलदी, कमल, कूठ, दहीका तोड, बेरकी गुठलीकी मींग और फूलप्रियंगु इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करे तो सात दिनमें ही मुख चन्द्रमण्डलके समान शोभायमान होता है ॥ ४७ ॥

तुषरहितमसृणयवचूर्णसमयष्टिमधुकलोध्रलेपेन।
भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ॥ ४८ ॥

भूसीरहित जौका चूर्ण, मुलहठी और लोध इनको बराबर भाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करनेसे मुखकी पिडिकायें दूर होकर मुख सुवर्णके समान अत्यन्त मनोहर और सुभग होजाता है ॥ ४८ ॥

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यबस्तपयः।
सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्रविबिम्बवद् भाति ॥ ४९ ॥

सफेद सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, गेरु, घी और बकरीका दूध इन सबको समानांश ले एकत्र कूट पीसकर लेप करे तो मुख चन्द्रबिम्बके समान निर्मल कान्तिपूर्ण होता है ॥ ४९ ॥

परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः ।
मुखकमलकान्तिकारी भ्रुकुटीतिलकालकाञ्जयति ॥ ५० ॥

सरफोंका, कमलपत्र, कूठ, लालचन्दन और खस इन सबको दहीके तोडमें पीसकर लेप करे। यह लेप मुखको कमलपत्रके समान सुशोभित करता है और भ्रुकुटिजन्य तथा तिलकालकरोगको जीतता है ॥ ५० ॥

वर्णकघृत।

मधुकं चन्दनं कङ्गु सर्षपं पद्मकं तथा ।
कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमेभिश्च कल्कितैः ॥ ५१ ॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत्पक्कं वस्त्रगालितम् ।
पादांशं कुङ्कुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत् ॥ ५२ ॥
तत्सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत्ततः ।
तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वक्त्रप्रसादनम् ॥ ५३ ॥
अनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीभूतमपि क्रमात् ।
निष्कलङ्केन्दुबिम्बाभं स्याद्विलासवतीमुखम् ॥ ५४ ॥

मुलहठी, लालचन्दन, मालकाङ्गनी, सरसों, पद्माख, कालाचन्दन, हल्दी और लोध इन सबका कल्क आधसेर, घी दो सेर और पाकके लिये जल ८ सेर लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उसमें केशर आठ तोले और मोम आठ तोले डालकर दुबारा मन्दमन्द अग्निपर पकावे। जब पकते पकते जल बिलकुल न रहे तब उस घृतपात्रको उतारकर शीतल जलमें रखकर ठंढा करे। इस प्रकार यह वर्णक नामवाला घृत सिद्ध होता है। इसको मुखमें लगानेसे मुखमें प्रसन्नता होती है और वली (झुर्रियोंका पडना) रोग दूर होता है। एवं विलासिनी स्त्रियोंका मुख निर्मल चन्द्रमाकी समान कान्तियुक्त होता है ॥ ५१–५४ ॥

द्विहरिद्राद्यतैल।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुङ्कुमैः ॥ ५५ ॥

कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोन्वितैः ।
लेपयेत्कल्कितैरेभिस्तैलं चाभ्यञ्जनं चरेत् ॥ ५६ ॥
विप्लुवं नीलिकाव्यङ्गास्तिलकान्मुखदूषिकान् ।
नित्यसेवी जयेत्क्षिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम् ॥ ५७ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, पीलाचन्दन, लालचन्दन, पुण्डरिया, मंजीठ, कमल पत्र, पद्माख, केशर, कैथके पत्ते, तेंदुके पत्ते, पाखर और बडके पत्ते इनके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा तिलके तेलको उत्तम प्रकार सिद्ध कर मालिश करे। यह तेल नीलिका, व्यंग तिलकालक और मुखके सब विकारोंको नष्ट करता है। इसको निरन्तर सेवन करनेसे मुख अत्यन्त मनोहर होता है ॥ ५५-५७ ॥

कुंकुमाद्यतैल ।

कुंकुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ।
कालीयकं पद्मकं च मातुलुङ्गं सकेशरम् ॥ ५८ ॥
कुसुम्भं मधुयष्टी च फलिनी मदयन्तिका ।
निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलंच मनःशिला ॥ ५९ ॥
काकोल्यादिसमायुक्तैरेतैरक्षसमैर्भिषक् ।
लाक्षारसपयोभ्यां च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६० ॥
कुंकुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपमम् ।
करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिकम् ॥
सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

टेसूके फूल, लाख, मंजीठ, लालचन्दन, पीलाचन्दन, पद्माख, बिजौरेनींबूकी जड, बिजौरे नींबूकी केशर, कसूमके फूल, मुलहठी, फूल प्रियंगू, मदयन्तिका (मल्लिका विशेष), हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचन, नीलकमल, मैनसिल और काकोल्यादिगणकी समस्त औषधियाँ इन प्रत्येकको दो दो तोले लेकर एकत्र कूटपीसकर कल्क बनालेवे। इस कल्कको लाखके ४ सेर रस और चार सेर दूधके साथ मिलाकर एक प्रस्थ तिलके तेलको उत्तम प्रकार पकावे। जब पाक सिद्ध होजाय तब उसमें दो तोले नागकेशर मिलादेवे। यह कुंकुमाद्य तेल निरन्तर मालिश करनेसे मुखको सुवर्णकी समान कान्तिमान्, पुष्ट और रूपलावण्यतासे युक्त बनादेता है एवं सौभाग्य और लक्ष्मीकी वृद्धि करता है। यह उत्तम वशीकरण योग है ॥ ५८-६१ ॥

अरुंषिकाकी चिकित्सा ।

अरुंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा ।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥

अरुंषिकारोगमें प्रथम शिरा वेधकर या जौंकद्वारा रुधिरका निकलवाना, पश्चात् नीमकी छालके अधपके क्काथसे शिरको सिंचनकर घोडेकी लीदके रस और सैन्धे-नमकको एकत्र मिलाकर लेप करना हितकारी है ॥ ६२ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा ।
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥
अरुंषिघ्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तैलेन संयुतम् ॥ ६३ ॥

तिलकी पुरानी खल अथवा मुर्गेकी विष्ठाको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे । या कूठकी भस्मको तिलके तेलमें मिलाकर लगानेसे अरुंषिका दूर होती है ॥ ६३ ॥

त्रिफलाद्यतैल ।

त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलशारिवैः ।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गोऽरुंषिकां जयेत् ॥ ६४ ॥

त्रिफला, लोहभस्म, मुलहठी, भाँगरा, नीलकमल, अनन्तमूल और सैंधानमक इनके कल्कद्वारा विधिपूर्वक तेलको सिद्ध कर मालिश करनेसे अरुंषिकारोग दूर होता है ॥ ६४ ॥

दारुणककी चिकित्सा ।

दारुणे तु शिरां विध्यात्स्निग्धां स्विन्नां ललाटजाम् ।
अवपीडाशिरोवस्तीनभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥ ६५ ॥

दारुणकरोगमें मस्तककी शिराको स्निग्ध स्वेद देकर छेदन करे । इस रोगमें नस्य, शिरोवस्ति और तैलादिकी मालिश सर्वदा करनी चाहिये ॥ ६५ ॥

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने ।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ ६६ ॥

कोदोंकी भूसीके क्षारजलसे मस्तकको सिञ्चन करे और उक्त क्षारको शहदमें मिलाकर शिरपर लेप करे । इससे अरुंषिकारोग दूर होता है ॥ ६६ ॥

पियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ।
काञ्जिकस्थास्त्रिसप्ताहं माषा दारुणकापहाः ॥ ६७ ॥

चिरौंजी, मुलहठी, कूठ, उडद और सैंधानमक इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करे या उक्त औषधोंको २१ दिनतक उडदोंकी काँजीमें भिजोकर फिर पीसकर लेप करे तो दारुणकरोग शीघ्र नष्ट होता है ६७

सहनीलोत्पलकेशरयष्टिमधुतिलैः सहृशमामलकम्।
चिरजातमपि च शीर्षे दारुणकरोगं शमं नयति ॥ ६८ ॥

नीलेकमलकी केशर, मुलहठी, तिल और आमले इनको समभाग लेकर एकत्र पीसकर शिरपर लेप करे तो इससे बहुत पुराना दारुणकरोगभी शान्त होता है ॥

इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा।

इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः ॥
परितो लेपयेत्कल्कैस्तैलं चाभ्यञ्जने हितम् ॥
कुटन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरजैः ॥ ६९ ॥

इन्द्रलुप्तरोगमें शिराको वेधकर (फस्त खुलवाकर) मैनंसिल, कसीस और तूतिया इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करे। अथवा नागरमोथर, चीतेकी जड, चमेलीके फूल, करञ्जकी छाल और सफेद कनेरकी जड इन सबको एकत्र कूट पीसकर लेप करे। इसमें तेलकी मालिश करना हितकर है ॥ ६९ ॥

अवगाढपदं चैव प्रच्छयित्वा पुनः पुनः।
गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत्केशभूमिं समन्ततः ॥ ७० ॥

पहले इन्द्रलुप्तको सुईसे छेदन करे, पश्चात् चोंटलियोंको जलमें अच्छे प्रकारसे पीसकर बार बार बालोंकी जगह लेप करे। इससे बाल उगआते हैं ॥ ७० ॥

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम्।
लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि ॥ ७१ ॥

हाथीके दाँतकी भस्म करके उसको रसौंतके चूर्ण और जलमें मिलाकर लेप करे। जब इससे मनुष्योंकी हथेलीमेंभी रोम उत्पन्न होजाते हैं तब अन्य स्थानका तो कहनाही क्या ? ॥ ७१ ॥

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा तैलेन सह योजयेत्।
हस्तेष्वपि प्रजायन्ते केशा नास्त्यत्र संशयः ॥ ७२ ॥

हाथिदांतकी भस्मको तिलके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्तरोग नष्ट होकर बाल निकल आते हैं। इसके प्रयोगसे हाथोंमेंभी बाल उत्पन्न होजाते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ७२ ॥

भल्लातकबृहतीफलगुञ्जामूलफलेभ्यस्त्वेकेन ।
मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ ७३ ॥

भिलावे, बडीकटेरीके फल, चोंटली और चोंटलीकी जड इनमेंसे किसीएकको शहदके साथ मर्दनकर लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग शमन होता है ॥ ७३ ॥

बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जाफलमिन्द्रलुप्तस्य ।
कनकफलनिघृष्टस्य सतोयं दातव्यं प्रच्छितस्य सदा॥७४

पकीहुई बडी कटेरीके फलके रसमें चोंटलीको अथवा चोंटलीकी जडको पीसकर शिरावेध कियेहुए इन्द्रलुप्तवाले स्थानपर धतूरेके फल अथवा गूलर आदिके कैडे पत्तोंसे घर्षण करके लेप करना चाहिये ॥ ७४ ॥

घृष्टस्य कर्कशैः पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्डनम् ।
चूर्णितैर्मरिचैः कार्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥ ७५ ॥

इन्द्रलुप्तके स्थानको गूलर आदिके करैं पत्तोंसे घिसकर उसपर काली मिरचोंके चूर्णको बुरकादेनेसे इन्द्रलुप्तरोग नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

छागक्षीररसाञ्जनपुटदग्धगजदन्तमसीलिप्ताः ।
जायन्ते सप्तदिनात्खल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥ ७६ ॥

रसौंत और पुटपाक द्वारा भस्म कीहुई हाथीदाँतकी स्याही, इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे तो सात दिनमें इन्द्रलुप्त नष्ट होकर बाल निकल आते हैं ॥ ७६ ॥

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ।
अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायतानृजवः ॥ ७७ ॥

मुलेठी, नीलकमल, मूर्वा, कालेतिल और भाँगरा इनको गौके दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे घने, मजबूत और घुंघुरवाले बाल बहुत शीघ्र उत्पन्न होते हैं ॥ ७७ ॥

केशरञ्जकयोग ।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहं भृङ्गरजः समम् ।
अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ७८ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीलवृक्षके पत्ते, लोहभस्म और भाँगरा इन सबको समान भाग लेकर भेडके मूत्रमें मिलाकर शिरपर लेप करनेसे बाल काले होते हैं ॥

धात्र्याम्रमज्जलेपात्स्यात्स्थिरता स्निग्धकेशता ॥ ७९ ॥

आमले और कच्चे आमका गूदा इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसें बाल कालें मजबूत और चिकने होजाते हैं ॥ ७९ ॥

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लौहचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
ईषत्पक्के नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते ॥ ८० ॥
मासमेकं तु निक्षिप्य सम्यग्गर्त्तात्समुद्धरेत् ।
ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दत्त्वा भिषग्वरः ॥ ८१ ॥
संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने ।
क्षालयेत्त्रिफलाक्काथैः क्षीरमांसरसाशनः ॥
कपालरञ्जनं चैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ८२ ॥

हरड, बहेडा, आमला और लोहचूर्ण इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर भांगरेके रसमें डालकर कुछ थोडे पकेहुए नारियलमें भरदेवे फिर उसको एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे । पश्चात् शिरको मुँडवाकर उक्त औषधिका लेप करकें केलेके कोमल पत्ते बाँधदेवे । फिर उनको सातवें दिन खोलकर त्रिफलेके क्काथसें शिरको धोवे । इस औषधिका व्यवहार करते समय सात दिनतक दूध और मांस-रसका भोजन करे । यह प्रयोग शिरके सफेद बालोंको काला करनेके लिये सर्वोत्तम है ॥ ८०-८२ ॥

उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत् ।
केशानां स्नेहनं कृष्णीकरणं च विधीयते ॥ ८३ ॥

नीले कमलको दूधके साथ पीसकर लोहेके बर्त्तनमें भरकर भूमिमें गाडदेवे । फिर एक महीने पीछे निकालकर उसको शिरपर मले तो इससे बाल काले और चिकने होजाते हैं ॥ ८३ ॥

भृङ्गपुष्पं जवापुष्पं मेषदुग्धप्रपेषितम् ।
तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यधःकृतम् ॥ ८४ ॥
सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद्भृङ्गराजरसेन तु ।
आलोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ॥८५॥
प्रातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्यान्मूर्द्धरञ्जनम् ।
एवं सिन्दूरबालाभ्रशङ्खभृङ्गरसैः क्रिया ॥ ८६ ॥

भाँगरेके फूल और जवापुष्प इन दोनोंको भेडके दूधमें खरल करके फिर भेडके दूधमें मिलाकर लोहेके पात्रमें भरकर पृथ्वीमें गाड देवे। फिर एक सप्ताहके अनन्तर उसको निकालकर भाँगरेके रसके साथ मिलाकर रात्रिके समय शिरपर मालिश कर केलेके कोमल पत्तोंको बाँधदेवे। पश्चात् प्रातःकाल पत्तोंको खोलकर त्रिफलेके क्वाथसे शिरको प्रक्षालन करे। इससे सम्पूर्ण केश कृष्णवर्ण होजाते हैं-। इसी प्रकार सिन्दूर, कच्चे आमकी गुठलीकी मींग और शंखचूर्ण इनको भाँगरेके रसमें मिलाकर लेप करनेसे भी बाल काले होजाते हैं॥

रसाञ्जनं शङ्खचूर्णकाञ्जिकरससंयुक्तं हिसीसकं घृष्ट्वा।
लेपात्कचानर्कदलावनद्धान् शुभ्रान्करोति हि नीलतरान्॥ ८७॥

रसौंत और शंखचूर्ण दोनोंको सीसेके पात्रमें काँजीके साथ घोटकर बालोंपर लेप करे और आकके पत्तोंको बाँधदेवे। यह योग सफेद्बालोंको अत्यन्त कृष्ण-वर्णके करदेता है॥ ८७॥

लौहमलामलकल्कैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी।
पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि॥ ८८॥

मण्डूर, आमले और गुडहलके फूल इनको एकत्र पीसकर प्रतिदिन प्रातःसमय स्नान करके मस्तकपर लेप करे। इससे पलितरोग (बालोंका असमय पकना) इस प्रकार नष्ट होजाता है, जिस प्रकार गङ्गामें स्नान करनेवाला मनुष्य पाप दूर होजानेसे नरकको नहीं जाता है॥ ८८॥

निम्बस्य बीजानिहि भावितानिभृङ्गस्य तोयेन तथा-
ऽसनस्य। तैलं तु तेषांविनिहन्ति नस्याद्दुग्धान्नभोक्तुः
पलितं समूलम्॥ ८९॥

नीमके बीजोंको विजयसारके क्वाथ और भाँगरेके रसमें यथाविधि सात दिनतक भावना देकर उनको निचोडकर तेल निकाललेवे। फिर इस तेलको नस्यद्वारा प्रयोग करे तो पलितरोग समूल नष्ट होजाता है। किन्तु, इसपर दूध और भातका भोजन करता रहे॥ ८९॥

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्तो निषिक्तं विधिना यथावत्।
मासेन गोरक्षीभुजो नरस्य जराग्रभूतं पलितं निहन्ति॥ ९०॥

निरन्तर गौके दूधको पान करता हुआ मनुष्य यदि एक महीनेतक प्रकृति स्थित नीमके तेलको विधिपूर्वक निकालकर नस्यद्वारा व्यवहार करे तो उसके प्रकृति के अनुसार वृद्धावस्थाके प्रारम्भमें उत्पन्न हुआभी पलितरोग नष्ट होता है॥

काञ्जिकपिष्टशेलुफलमज्जनि सच्छिद्रलौहगे।
यदर्कतापात्पतति तैलं तन्नस्यम्रक्षणात् ॥ ९१ ॥
केशा नीलालिसंकाशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च।
नयनश्रवणग्रीवादन्तरोगांश्च हन्त्यदः ॥ ९२ ॥

लिसौडेकी मींगको काँजीमें पीसकर लोहेकी छलनीमें करके धूपमें रक्खे धूपकी तेजीसे छलनीमें जो तेल नीचे गिरताजाय उसको दूसरे पात्रमें ग्रहण करता जाय। फिर इस तेलको नस्यद्वारा और शिरपर मर्दनकर प्रयोग करे। इससे सफेदबाल भौरोंकी पंक्तिके समान तत्काल काले और चिकने होजाते हैं। यह तेल, नेत्र, श्रवण गर्दन और दाँतोंके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ९२ ॥

भृङ्गराजघृत।

भृङ्गराजरसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कितम्।
घृतं नस्येन पलितं हन्यात्सप्ताहयोगतः ॥ ९३ ॥

भाँगरेके रसमें मोरके पित्तका कल्क डालकर घृतको पकावे इस घृतका सात दिनतक नस्य लेनेसे पलितरोग नष्ट होता है ॥ ९३ ॥

महाभृङ्गराजतैल।

आनूपदेशसम्भूतं गृहीत्वा मार्कवं शुभम्।
सुधौतं जर्जरीकृत्य स्वरसं तस्य चाहरेत् ॥ ९४ ॥
चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
एभिर्द्रव्यैः क्षीरपिष्टैः संयोज्य मतिमान् भिषक् ॥९५॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रं चन्दनं गैरिकं बला।
रजन्यौ केशरं चैव प्रियङ्गु मधुयष्टिका ॥ ९६ ॥
प्रपौण्डरीकं गोपी च पलिकान्यत्र दापयेत्।
सम्यक्पक्वं ततो ज्ञात्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ९७ ॥
केशपाते शिरोदुष्टे मन्यास्तम्भे गलग्रहे।
शिरःकर्णाक्षिरोगेषु नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत् ॥ ९८ ॥
कुञ्चिताग्राननतिस्निग्धान् कचान्कुर्याद्दृढांस्तथा।
खालित्यमिन्द्रलुप्तं च तैलमेतद् व्यपोहति ॥ ९९ ॥

अनूपदेश (खादर) में उत्पन्न हुए भाँगरेको लाकर जलसे धोकर, कुचलकर उसका रस निकाले। फिर १ आढक परिमाण उक्तरसके साथ एक प्रस्थ तिल

तेलको पकावे । पकते समय उसमें दूधमें पीसेहुए मंजीठ, पद्माख, लोध, चन्दन, गेरू, खिरैंटी, हल्दी, दारुहल्दी, नागकेशर, फूलप्रियंगु, मुलहठी, पुण्डरिया और अनन्तमूल इन औषधियोंके कल्कको डाल देवे । जब पाक अच्छे प्रकार सिद्ध होजाय तब उतारकर स्वच्छपात्रमें भरकर रख देवे । इस तेलको बालोंका गिरना, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, शिर, कान और नेत्ररोगमें नस्य और अभ्यङ्गद्वारा प्रयोग करे । यह तेल बालोंको घुँघुरवाले, अत्यन्त स्निग्ध घने बनाता है तथा खालित्य और इन्द्रलुप्तरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ९४-९९ ॥

आदित्यपाकगुडूचीतैल ।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ।
गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात्केशरोपणम् ॥ १०० ॥

गिलोयके स्वरसमें बडकी डाढी और बालछडका चूर्ण डालकर धूपमें रखकर उत्तमप्रकार तेलको पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे केश उत्पन्न होते हैं ॥

चन्दनाद्यतैल ।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
कान्ता वटावरोहश्च गुडूची बिसमेव च ॥ १०१ ॥
लौहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च ।
मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ १०२ ॥
शिरस्युपचिताः केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः ।
स्निग्धाश्च दृढमूलाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः ॥
नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ॥ १०३ ॥

भाँगरेके रसमें रक्तचन्दन, मुलहठी, मूर्वा, त्रिफला, नीलकमल, फूलप्रियंगु, बडकी कोंपल, गिलोय, भसींडा, लोहचूर्ण, भूतकेशी, उसवा और अनन्तमूल इनका समानभाग मिश्रित चूर्ण एवं तिलका तेल डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । इस तेलको शिरपर मलनेसे अत्यन्त घने और घुँघुरवाले बाल उत्पन्न होते हैं । एवं स्निग्ध दृढमूलवाले और भौंरेके समान काले होते हैं । इस तेलको सूँघनेसे असमय बालोंका पकना नष्ट होता है ॥ १०१-१०३ ॥

महानीलतैल ।

आदित्यवल्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च ।
सुरस्य चैव पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च ॥ ४ ॥

मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च ।
पृथक् दशपलांशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ ५ ॥
प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम् ।
आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥ ६ ॥
नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ।
सोमराज्यसनं शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ ॥७॥
पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्योराम्रजम्बुफलानि च ।
पृथक् पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत् ॥ ८ ॥
वैभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः ॥ ९ ॥
लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत् ।
पाने नस्ये क्रियायां च शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च ॥ ११० ॥
एतच्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।
महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

सूर्यावर्त्त (हुलहुल) की जड, नीलापियाबाँसा, वनतुलसी, कालीसनक फल, भाँगरा, मकोय, मुलहठी, देवदारु ये प्रत्येक औषधि दसदस पल, पीपल, त्रिफला, रसौंत, पुण्डरिया, मंजीठ, लोध, कालीअगर, नीलोत्पल, आमकी गुठली, कमलिनीकी जडकी कीचड, कमलनाल, लालचन्दन, नील, भिलावेकी मींग, कसीस, मोतिया, बावची, विजयसार, लोहचूर्ण, कृष्णचूडा (पुष्पवृक्ष विशेष), मैनफलकी छाल, चीतेकी जड, अर्जुन और कुम्भेरके फूल आम और जामुनके फल इन सबको पृथक् पृथक् पांच २ पल लेकर खूब बारीक कूट पीसकर चूर्ण करलेवे । बहेडेका तेल १ आढक और आमलोंका रस ४ आढक परिमाण सबोंको यथाविधि मिलाकर जबतक रस न सूखजाय तबतक सूर्य तापद्वारा पाक करे । फिर उत्तम प्रकार सिद्ध होजानेपर उस तेलको वस्त्रमें छानकर लोहेके पात्रमें भरकर रखदेवे । इस तेलको पान, नस्य और शिरोमर्दनद्वारा प्रयोग करे । यह तेल नेत्रोंको हितकारी, आयुवर्द्धक और शिरके सम्पूर्णरोगोंको नष्ट करनेवाला है । यह महानील तेल पलितरोगको नष्ट करनेके लिये सर्वोत्तम है ॥ १०४-१११ ॥

कच्छू और अहिपूतनककी चिकित्सा।

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः।
अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं वृषकच्छ्वहिपूतयोः ॥ १२ ॥

हीराकसीस, गोरोचन, तूतिया, हरिताल और रसौंत इनको समानभाग लेकर काँजीमें पीसकर लेप करे। यह लेप बृषण कच्छू और अहिपूतनक रोगको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ॥ १३ ॥

पटोलपात, हरड, बहेडा, आमला और रसौंत इनके द्वारा घृतको यथाविधि सिद्धकर पान करनेसे अहिपूतन रोग दूर होता है ॥ १३ ॥

शूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम्।
हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ १४ ॥

हल्दी और भाँगरेकी जड इन दोनोंको बराबर भाग लेकर शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त घोर शूकरदंष्ट्र और विसर्परोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

नाडीचबीजकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः।
शमयति शूकरदंष्ट्रं सदाहपाकज्वरं घोरम् ॥ १५ ॥

नारीशाकके बीजोंको पीसकर प्रातःकाल गौके घीमें मिलाकर सेवन करे। इससे दाह और पाकज्वरसहित भयङ्कर शूकरदंष्ट्ररोग शमन होता है ॥ १५ ॥

विसर्पोक्तप्रतीकारः कार्यः शूकरदंष्ट्रके ॥ १६ ॥

शूकरदंष्ट्ररोगमें विसर्परोगकी चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करे ॥ १६ ॥

शय्यामूत्रकी चिकित्सा।

कृतमूत्रार्द्रभूभागमृदमाकृष्य खोलके।
संभर्ज्य मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेन्मूत्रितं जनम् ॥
शय्यायां मूत्ररोधः स्यान्मूत्रितस्य न संशयः ॥ ११७ ॥

जो मनुष्य खाटपर मूते रहताहो उसको जहाँ उसने पेशाब किया हो उसी खाटके नीचेकी गीली मिट्टीको खुरचकर खोलमें भूनकर शहद और घीमें मिलाकर चटावे। इससे खाटपर मूतना निस्सन्देह बन्द होता है ॥ ११७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां क्षुद्ररोग चिकित्सा ॥

मुखरोगकी चिकित्सा ।

ओष्ठगत-मुखरोगकी चिकित्सा ।

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वणेनोपनाहनम् ।
मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः शृतम् ॥
स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते ॥ १ ॥

वातजन्य ओष्ठरोगमें मृदु प्रलेप एवं वातनाशक औषधियोंके द्वारा बनाये हुए तैलसे शिरमें बस्ति और नस्य देवे । तथा सेंक, तैलादिका मर्दन, स्नेहपान और रसायन क्रिया करे ॥ १ ॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च ।
शीतान्प्रलेपान्परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधिकेषु कुर्यात् ॥ २ ॥

पित्तज ओष्ठरोगमें ओष्ठकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण तथा वमन, विरेचन कराकर तिक्तघृतका पान और तिक्तरसमिश्रित पदार्थोंका भोजन करावे । शीतल पदार्थोंको प्रलेप और सेचनद्वारा प्रयोग करे ॥ २ ॥

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ।
हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ३ ॥

कफजनित ओष्ठरोगमें ओष्ठकी समीपवर्त्तिनी शिराको वेधकर रुधिर निकलवावें । फिर नस्य, धूम, सेंक और कफनाशक द्रव्योंका कवल धारण करे ॥ ३ ॥

त्रिकटुः सर्जिकाक्षारः क्षारश्च यावशूकजः ।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, सज्जी और जवाखार इनको समान भाग लेकर शहदमें मिलाकर पीडास्थानपर घर्षण करे ॥ ४ ॥

पित्तरक्ताभिघातोत्थाञ्जलौकाभिरुपाचरेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्यादशेषतः ॥ ५ ॥

रक्तपित्त और अभिघातसे उत्पन्नहुए ओष्ठरोगमें जोंक लगवाकर किञ्चित् रुधिर निकलवावे और शेषक्रिया पित्तजविद्रधिरोगके समान करे ॥ ५ ॥

दन्तगत-मुखरोगकी चिकित्सा।

चलदन्तस्थिरकरं कुर्याद्वकुलचर्वणम्।
आर्त्तगलदलक्काथगण्डूषो दन्तचालनुत्॥
दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा॥ ६॥

जिसके दाँत हिलते हों तो वह मौलसिरीके फल चर्वण करे अथवा नीलीकटसरैयाके पत्तोंका क्काथ बनाकर उसका गण्डूष धारण करे। इससे दाँतोंका हिलना बन्द होजाता है। दाँतोंके हिलनेपर तिल और वच इन दोनोंको एकत्र मिलाकर निरन्तर चर्वण करना हितकारी है॥ ६॥

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम्।
सपञ्चलवणः क्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम्॥ ७॥

नवीन दन्तपुप्पुटरोगमें रक्तमोक्षण करावे, फिर पाँचों नमक और जवाखार इनको पीसकर शहदमें मिलाकर दन्तमार्जन करे॥ ७॥

दन्तानां तोदहर्षे च वातघ्नाः कवला हिताः॥

गरम तेल, घी और स्नेहयुक्त दशमूलका क्काथ इनके द्वारा कवल धारण करनेसे दाँतोंकी पीडा और दन्तहर्षरोग दूर होता है॥

माक्षिकं पिप्पली सर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे।
दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम्॥ ८॥

पीपलके चूर्णको ६ माशे लेकर एक तोले घी और दो तोले शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करे। यह औषधि दन्तशूलको हरनेके लिये सर्वप्रधान है॥ ८॥

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत्।
लोध्रपत्तुङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः॥
गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः॥ ९॥

दन्तवेष्टरोगमें जोंक आदिके द्वारा रक्तमोक्षण कराकर लोध, लालचन्दन, मुलहठी और लाख इनको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर व्रणस्थानपर लगावे और शहद, घृत एवं चीनी मिलाकर दूधवाले बड, गूलर आदि वृक्षोंके क्काथद्वारा गण्डूष (कुल्ले) करे। इससे दन्तवेष्टरोगके व्रण अच्छे होते हैं॥ ९॥

शैशिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तरसाञ्जनैः।
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः॥ १०॥

शैशिररोगमें जौंक लगवाकर रक्त निकलवावे । फिर लोध, नागरमोथा और रसौंत इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर लेप करे । और गण्डूषमें बडआदि क्षीरीवृक्षों का क्वाथ प्रयोग करना हितकर कहा है ॥ १० ॥

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥

परिदर नामक दन्तरोगमें शीतादरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥

संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे ततः ।
काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेद्भिषक् ॥ ११ ॥
क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ।
पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् ॥
सुखोदकेन संमर्द्य कवलं तस्य योजयेत् ॥ १२ ॥

अपकुशनामकदन्तरोगमें प्रथम वमन, विरेचन और नस्य देकर शरीरकी शुद्धि करे । पश्चात् गूलरके पत्ते और गोजियाके पत्तोंसे मसूडोंको घिसकर रुधिर निकाले। फिर पाँचोंनमक और त्रिकुटेके चूर्णको शहदमें मिलाकर घिसे और पीपल, सफेद सरसों, सोंठ और समुद्रफल इनको एकत्र पीसकर किञ्चित् उष्ण जलके साथ मिश्रितकर रोगीको कवल धारण करनेके लिये देवे ॥ १२ ॥

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ १३ ॥

दन्तवैदर्भरोगमें शस्त्रसे दाँतोंकी जडमेंसे पीप आदिको निकालकर क्षार प्रयोग करे और सब शीतल क्रिया करे ॥ १३ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् ।
कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्या विजानता ॥ १४ ॥

अधिकदन्तरोगमें अधिक दाँतको उखाडकर, व्रणस्थानको अग्निसे दग्ध कर देवे । फिर कृमिदन्तरोगकी समान सम्पूर्ण चिकित्सा करे ॥ १४ ॥

छित्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् ।
पाठावचातेजवतीसर्जिकायावशूकजैः ॥
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः ॥१५॥

दाँतोंके अधिकमांसको शस्त्रद्वारा काटकर पाढ, वच, चव्य, सज्जी और जवाखार इनके चूर्णको समानभाग लेकर शहदमें मिलाकर व्रणस्थानपर लगावे और पीपलके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर कवल धारण करे ॥ १५ ॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने ।
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ १६ ॥

अधिमांसरोगमें पटोलपात, नीमके पत्ते और त्रिफला इनके क्वाथसे दन्तव्रणोंको धोवे और नस्य तथा कफनिस्सारक धूमपान करे ॥ १६ ॥

नाडीव्रणहरं कर्म्म दन्तनाडीषु कारयेत् ।
यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत् ॥ १७ ॥
छित्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् ।
शोधयित्वादहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ १८ ॥

दन्तनाडीरोगमें नाडीव्रणरोगकी समान चिकित्सा करे । और जिस दाँतमें नाडी उत्पन्न हुई हो उस दाँतको उखाड डाले । यदि नाडी बहुत भीतरको हो तो वहाँके मांसको शस्त्रसे काटकर पीव आदिको निकाल डाले, फिर क्षारसे अथवा अग्निसे उस घावको दग्ध करदेवे ॥ १७ ॥ १८ ॥

गतिर्हिनस्ति हन्वस्थि दशने समुपेक्षिते ।
तस्मात्समूलदशनं निर्हरेद्भग्नमस्थि च ॥ १९ ॥

नीचेके दाँतोंकी नाडीकी उपेक्षाकर दांतको नहीं उखाडे, किन्तु ठोंडीकी अस्थि-तक शस्त्रसे चीर देवे । यदि दांत हड्डी और बीचमेंसे टूटगया हो तो उस हड्डीको और दाँतको जडसहित निकाल डाले ॥ १९ ॥

उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं संप्रसिच्यते ।
रक्तातियोगात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ॥
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नोपहरेद्भिषक् ॥ २० ॥

ऊपर दाँतको उखाडनेसे रुधिर अधिक निकलता है । और अधिक रुधिरके निकलनेसे पूर्वोक्त भयङ्कररोग उत्पन्न होजाते हैं । इस कारण ऊपरका दाँत हिलता हो तो भी नहीं उखाडना चाहिये ॥ २० ॥

कषायं जातिमदनकटुकास्वादुकण्टकैः ।
लोध्रखादिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ २१ ॥

चमेलीके पत्ते, मदनवृक्षका काँटा, कुटकी और कण्टाई इनका क्वाथ बनाकर कवल धारण करे और लोध, खैर, मंजीठ तथा मुलहठी इनके कल्कद्वारा

यथाविधि तेलको सिद्ध करके दाँतोंको मर्जित करे इससे पीव आदि दूर होकर दन्तनाडीरोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य वा ।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ।
स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥ २२ ॥

दन्तहर्षरोगमें घी, तेल, चर्बी और मज्जा इनमेंसे किसी एक द्रव्यको कुछ गरम-कर निसोतके घृत अथवा वातनाशक औषधियोंके क्वाथमें मिलाकर कवल धारण करे। इसमें स्निग्धद्रव्योंका धूमपान तथा स्निग्धद्रव्योंका नस्य लेना हितकर है ॥ २२ ॥

अहिंसन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ।
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ २३ ॥
दन्तहर्षक्रियां चापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ २४ ॥

दन्तशर्करामें वैद्य दाँतोंकी जडको नहीं चीरे, किन्तु शर्कराको चीरकर निकाल देवे। फिर लाखके चूर्णके साथ शहद मिलाकर उक्त स्थानपर घिसे। पश्चात् दन्त-हर्ष रोगमें कहीहुई चिकित्साके अनुसार समस्त क्रिया करे ॥ २३ ॥ २४ ॥

कपालिका कृच्छ्रसाध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥

कपालिकारोग कृच्छ्र साध्य है तथापि उसमें दन्तहर्षकी समान चिकित्सा करे ॥

जयेद्विस्रावणैश्छिन्नमचलं कृमिदन्तकम् ।
तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ २५ ॥
भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ।
हिङ्गु सोष्णं तु मतिमान् कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥ २६ ॥

अचलकृमिदन्तकनामरोगमें प्रथम स्वेद देकर रुधिर निकाले। फिर वातनाशक द्रव्योंसे नस्य देवे और स्नेहद्रव्योंके कुल्ले करवावे। तथा भद्रदारु आदि गणकी औषधों और पुनर्नवेका लेप करे एवं स्निग्धद्रव्योंका भोजन करे। कृमिदन्तरोगमें हींगको कुछ गरम करके डाढके नीचे दबानेसे विशेष लाभ होता है ॥

बृहतीभूमिकदम्बकपञ्चाङ्गुलकण्टकारिकाक्काथः ।
गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तकवेदनापहरः ॥ २७ ॥

बडी कटेरी, भुईकदम, अण्डकी जड और कटेरी इनका क्काथ बनाकर उसमें कडवा तेल डालकर कुल्ले करे। इससे कृमिदन्तकी पीडा दूर होती है ॥ २७ ॥

नीलीवायसजङ्घास्नुकदुग्धीनां तु मूलमेकैकम् ।
सञ्चर्व्य दशनविधृतं दशनक्रिमिशातनं प्राहुः ॥ २८ ॥

नीलवृक्ष, काकजंघा, थूहर और दुद्धी इनमेंसे प्रत्येककी जडको लेकर यथाक्रम चर्वणकर दाँतोंमें रखनेसे दाँतोंके कीडे गिरपडते हैं ॥ २८ ॥

चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्तु सुषिरस्य वा ।

हिलतेहुए दाँतको उखाडकर उस स्थानको और कीडेवाले दाँतके छेदको अग्निसे दग्ध करे ॥

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत् क्रिया ॥ २९ ॥

हनुमोक्षरोगमें अर्दितरोगके समान सम्पूर्ण क्रिया करे ॥ २९ ॥

कर्कटाङ्घ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति ।
दन्तशब्दः कर्कटाङ्घ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ॥३०॥

कैंकडेके एक पैरको लेकर दूध और घृतमें मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इस घृतकी दाँतोंमें मालिश करनेसे अथवा कैंकडेके पैरको पीसकर लेप करनेसे दाँतोंका कडकडशब्द होना दूर होता है ॥ ३० ॥

चरणौ कर्कटस्यापि गोक्षीरेण विपाचयेत् ।
घनतां च गते तस्मिन् रात्रौ चरणलेपनात् ॥
दन्तानां कड्मडीं हन्ति सत्यं सत्यं च पार्वति ॥ ३१ ॥

हे पार्वति ! कैंकडेके दो पैरोंको पीसकर गौके दूधमें पकावे । पकते २ जब पाक गाढा होजाय तब उसको उतारलेवे, फिर रात्रिमें उसका चरणोंपर लेप करे तो इससे दाँतोंकी कडकडाहट दूर होती है । यह बिलकुल सत्य है ॥ ३१ ॥

कृष्णवर्णाश्वपुच्छस्य सप्तकेशेन वेणिका ।
तां बद्ध्वा च गले दन्तकड्मडीं हन्ति मानवः ॥ ३२ ॥

काले रंगवाले घोडेकी पूँछके सात बालोंकी एक वेणी बनावे । उसको गलेमें बाँधनेसे दाँतोंका कडकडाना बन्द होता है ॥ ३२ ॥

जिह्वागत-मुखरोगकी चिकित्सा ।

ओष्ठकोपे त्वनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ३३ ॥

वातज ओष्ठरोगमें जो पूर्व चिकित्सा कहीगई है तदनुसारही वातजनित जिह्वाके काँटोंपर चिकित्सा करे ॥ ३३ ॥

पित्तजेषु निघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते ।
प्रतिसारणगण्डूषनस्यं च मधुरं हितम् ॥ ३४ ॥

पित्तजजिह्वारोगमें सिहोडा आदिके कैडे पत्तोंसे जिह्वाको घिसकर दूषित रक्त निकाल देवे । फिर काकोल्यादिगणकी औषधियोंके चूर्णसे प्रतिसारण, गण्डूष और नास ग्रहण करे ॥ ३४ ॥

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ।
पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यं तु प्रतिसारणम् ॥ ३५ ॥

कफजनित कण्टकरोगमें काँटोंको शस्त्रसे कटवाकर उनका रुधिर निकलवादे । फिर पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर जिह्वापर घिसे ३५

गृह्णीयात्कवलान्वापि गौरसर्षपसैन्धवैः ।
पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयुक्तैश्च भोजयेत् ॥ ३६ ॥

सफेद सरसों और सैंधेनमकको एकत्र पीसकर उष्णजलमें मिलाकर इनका कवल धारण करे । अथवा पटोलपात, नीमके पत्ते, बैंगन और क्षार इनको मिलाकर कुलथी आदिका यूष भोजन करे ॥ ३६ ॥

जिह्वाजाड्यं चिरजं माणकभस्मलवणतैलघर्षणं हन्ति ।
ईषत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ३७ ॥

मानकन्दकी भस्म, सैंधानमक और तेल इनको एकत्र मिलाकर जिह्वापर घर्षण करे । अथवा जम्बीरीनींबूकी केशरमें कुछ थोडासा थूहरका दूध मिलाकर चर्वण करे । इससे जिह्वाकी जडता नष्ट होती है ॥ ३७ ॥

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ३८ ॥

उपजिह्वा (काग) को सिहोरा आदिके पत्तोंसे खुरचकर उसपर जवाखारको घिसे । फिर नस्य, गण्डूष और धूमपान आदि उपचारोंको करके उपजिह्वारोगको जीते ॥ ३८ ॥

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ।
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतैस्तैलं विपाचयेत् ॥ ३९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, हरड और चीतामूल इनके चूर्णको जिह्वा पर घिसे । अथवा उक्त औषधियोंके चूर्णद्वारा तेलको पकाकर वह तेल मर्दन करे तो उपजिह्वारोग शमन होता है ॥ ३९ ॥

तालुगत-मुखरोगकी चिकित्सा।

छित्त्वा घर्षेद्गलशुण्डीं व्योषोग्राक्षौद्रसिन्धुजैः।
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैरपि॥
सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्ठ्याः प्रघर्षणम्॥ ४०॥

गलशुण्ठी (कण्ठशुण्ठी) रोगको शस्त्रसे काटकर सोंठ, मिरच, पीपल, वच और सैंधेनमकके चूर्णको शहदमें मिलाकर अथवा कूठ, कालीमिरच, वच, सेन्धानमक, पीपल, पाढ और नागरमोथा इनके समानभाग चूर्णको शहदमें मिश्रितकर गलशुण्ठीपर घिसे॥ ४०॥

उपनासाव्यधो हन्ति गलशुण्ठ्या विशेषतः।
गलशुण्ठीहरं तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम्॥ ४१॥

नासिकाके समीपकी चौथी शिराको छोडकर अन्य शिराको वेधे। अथवा निर्गुण्डीकी जडको चाबे तो गलशुण्ठीरोग दूर होता है॥ ४१॥

वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम्।
निःक्वाथ्य पिचुमर्दं च कवलं तत्र योजयेत्॥ ४२॥

वच, अतीस, पाढ, रास्ना, कुटकी और नीमकी छाल इनका क्वाथ बनाकर उसका कवल धारण करे॥ ४२॥

क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः।
तुण्डिकेर्यध्रुषे कूर्मसंघाते तालुपुप्पुटे॥
एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्म्मणि॥ ४३॥

तुण्डिकेरी, अध्रुव, कूर्मसंघात और तालुपुप्पुटरोगमें जवाखारादिक्षारद्रव्योंके द्वारा सिद्ध किया हुआ मूँगका यूष भोजन करे। इन समस्तरोगोंमें गलशुण्ठी रोगके समान चिकित्सा करे और विशेषकर शस्त्रक्रिया करे॥ ४३॥

तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम्।
स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः॥ ४४॥

तालुपाकरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और तालुशोषरोगमें स्नेह तथा स्वेद प्रयोगकर वातनाशकक्रिया करनी चाहिये॥ ४४॥

कण्ठगत-मुखरोगकी चिकित्सा।

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम्।
छर्दनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च॥ ४५॥

चिकित्सासाध्य रोहिणीरोगमें रक्तमोक्षण, वमन, धूमपान, गण्डूष और नस्य इत्यादि प्रयोग करने हितकारी हैं ॥ ४५ ॥

वातिकीं तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत ।
सुखोष्णांस्तैलकवलान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥

वातज रोहिणीमें पहले रक्तमोक्षण कर फिर पञ्चलवण द्वारा घर्षण करे और निरन्तर मन्दोष्ण तेलके कवल धारण करे ॥ ४६ ॥

पत्तुङ्गशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ।
द्राक्षापरूषकक्काथो हितश्च कवलग्रहे ॥ ४७ ॥

पित्तकी रोहिणीमें लालचन्दन, चीनी और शहद इनको एकत्र मिलाकर प्रतिसारण करे । एवं दाख और फालसोंका क्वाथ बनाकर कवल धारण करे ॥

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।
श्वेताविडङ्गदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् ॥
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ॥ ४८ ॥

कफजनित रोहिणीरोगमें घरके धुएँ और कुटकीके चूर्णको घिसे । एवं श्वेत अपराजिता, वायविडङ्ग, दन्तीकी जड और सैंधानमक इनके कल्कद्वारा सिद्ध कियाहुआ तेल नस्यकर्ममें और कवलधारण करनेमें प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥ ४९ ॥

रक्तसे उत्पन्नहुए रोहिणीरोगकी पित्तजरोहिणाके समान चिकित्सा करे ॥

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ।
एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ५० ॥

कण्ठशालूकरोगमें अल्परक्तमोक्षण कराकर तुण्डिकेरीरोगके समान चिकित्सा करे और एक वक्तमें थोडासा जौका बना स्निग्ध अन्न भोजन करे ॥ ५० ॥

उपजिह्विकवच्चापि साधयेदिरिवेल्लिकाम् ॥ ५१ ॥

इरिवेल्लिकारोगकी उपजिह्विकरोगके समान चिकित्सा करे ॥ ५१ ॥

उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्वकम् ।
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥ ५२ ॥

अधिजिह्वारोगमें जिह्वाको ऊपरको उठाकर और बडिशयन्त्र (संडासी) से अधिजिह्वाको खींचकर मण्डलाग्रशस्त्रसे छेदन करे । फिर तीक्ष्ण और गरम औषधियोंसे घिसकर थोडासा रक्त निकालकर संशोधनक्रिया करे ॥ ५२ ॥

अमर्मस्थं सुपक्वं च भेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ५३ ॥

गलविद्रधि यदि मर्मस्थानमें न हो तो उसको अच्छे पक्व होनेपर वेध देवे ॥ ५३ ॥

कण्ठरोगे असृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च।
क्वाथपानं तु दार्वीत्वङ्निम्बतार्क्ष्यकलिङ्गतः ॥ ५४ ॥

कण्ठरोगमें रक्तमोक्षण अथवा तीक्ष्ण औषधियोंका नस्य देना चाहिये। फिर दारुहल्दीकी छाल, नीमकी छाल और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें रसौतका चूर्ण डालकर पान करावे ॥ ५४ ॥

हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः।
कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः ॥
गोमूत्रक्वथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ५५ ॥

हरडके क्वाथमें शहद डालकर पान करे अथवा कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ, नागरमोथा और इन्द्रजौ इन सबका गोमूत्रमें यथाविधि क्वाथ बनाकर पान करे। यह क्वाथ कण्ठरोगनाशक है ॥ ५५ ॥

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम्।
क्षौद्रेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ ५६ ॥

जवाखार, चव्य, पाढ, रसौत, दारुहल्दी और पीपल इनके चूर्णको शहदमें खरल करके गोली बनालेवे। फिर उस गोलीको मुखमें धारण करे तो सर्वप्रकारके कण्ठ-रोग दूर होते हैं ॥ ५६ ॥

दशमूलं पिबेदुष्णं यूषं मूलककुलत्थयोः।
क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ५७ ॥
विदध्यात्कवलान्वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ॥ ५८ ॥

गलेके रोगमें दशमूलका उष्ण क्वाथ पान करे। एवं मूली और कुलथीका यूष भोजन करे। दोषोंका बलाबल विचारकर दूध, ईखका रस, गोमूत्र, दहीका तोड, खट्टी काँजी तेल और घी इनका कवल धारण करावे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सर्वसरमुखरोगकी चिकित्सा।

मूत्रसिक्तां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठबालकैः।
अभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ५९ ॥

गोमूत्रमें भावना दीहुई हरड, सौंफ, कूठ और सुगन्धवाला इन औषधियोंको समान भाग लेकर गोमूत्रमेंही क्वाथ बनाकर मुखमें धारण करे तो मुखकी विरसता और सर्वप्रकारके मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ६० ॥

वातज सर्वसर (मुखपाक) रोगमें सैंधेनमकका चूर्ण घिसे, वातनाशक औषधियोंके साथ तेलको सिद्ध कर नस्य देना, कवल धारण कराना हितकरहै ॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।
सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ६१ ॥

पित्तज सर्वसररोगमें वमन और विरेचनादिके द्वारा रोगीका शरीर शुद्ध कर सर्वप्रकारकी मधुर और शीतल औषधियोंसे पित्तनाशक चिकित्सा करे ॥६१॥

प्रतिसारणगण्डूषधूमं संशोधनानि च ।
कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ ६२ ॥

कफज सर्व रसमें कफनाशक औषधियोंके द्वारा घर्षण, गण्डूप, धूम, वमन और विरेचनादि सम्पूर्ण क्रियायें यथाक्रम करे ॥ ६२ ॥

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ।
कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ ६३ ॥

मुखपाकरोगमें फस्त खुलवाना, नस्य देना और विरेचन कराना और वारम्वार चमेलीके पत्तोंको चाबना उपयोगी है ॥ ६३ ॥

जातीपत्रामृताद्राक्षापाठादार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ ६४ ॥

चमेलीके पत्ते, गिलोय, दाख, पाढ, दारुहल्दी और त्रिफला इनके शीतल क्वाथमें शहद डालकर कुल्ले करनेसे मुखपाकरोग नष्ट होताहै ॥ ६४ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवाः ।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ ६५ ॥

पटोलपत्र, नीमके पत्ते, जामुनके पत्ते, आम और चमेली इनके कोमल पत्ते समान भाग लेकर क्वाथ बनावे । इस क्वाथसे मुख धोना मुखपाकमें हितकरहै ॥

पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफला क्वाथ एव वा ।
मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥ ६६ ॥

मुखपाकमें वड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंत इनकी छालके क्वाथ अथवा हरड, बहेडा आमला इनके क्वाथमें शहद मिलाकर मुखधावन करना चाहिये ॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया।
सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ ६७ ॥

दारुहल्दीके स्वरसका गाढा २ क्वाथ बनाकर मधुमिश्रित कर मुखमें धारण करनेसे मुखरोग, रक्तप्रदर और नाडीव्रणरोग नष्ट होते हैं ॥ ६७ ॥

क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः।
निषेव्या भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा ॥ ६८ ॥

हरड, बहेडा, आमला, पाठ, दाख, और चमेलीके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर पान करे। अथवा त्रिफलेकी औषधियोंको सम भाग लेकर एकत्र पीसकर भक्षण करे तो मुखपाकरोग दूर होता है ॥ ६८ ॥

कृष्णाजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहम्।
मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ६९ ॥

पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रजौ इन सबको एकत्र मिलाकर चर्वण करनेसे तीनदिनमेंही मुखपाक, व्रण, क्लेद और मुखकी दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ६९ ॥

तिलं नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च।
सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहपाकहा ॥

मुख जल गया हो तो तिलोंका क्वाथ, नीलकमलका क्वाथ, घृत, चीनी अथवा दूध इनमें शहद डालकर कुल्ले करे। इससे मुखकी दाह और पाक दूर होता है॥

तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥ ७० ॥

तिलके तेलका अथवा काँजीका गण्डूष धारण करनेसे अधिक चूनेके खानेसें उत्पन्नहुई दाह शान्त होती है ॥ ७० ॥

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेलवालुकाकवलः।
वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालशुनगन्धं च ॥ ७१ ॥

नागरमोथा, कूठ, छोटी इलायची, धनियाँ, मुलहठी, और एलुआ इनके क्वाथका कवल धारण करनेसे मुखकी दुर्गन्ध और मद्यपान तथा लहसुन खानेसे उत्पन्न हुई दुर्गन्ध तत्क्षण दूर होतीहै ॥ ७१ ॥

सप्तच्छदादि।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ७२ ॥

सतौनेकी छाल, खस, परवल, नागरमोथा, हरड, कुटकी, मुलहठी, अमलतास और लालचन्दन इनका क्वाथ बनाकर पान करे तो मुखपाकरोग आराम होता है ॥ ७२ ॥

पटोलादि ।

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृ-
तानाम् । पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चा-
स्यगदानशेषान् ॥ ७३ ॥

पटोलपात, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायणकी जड, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी और गिलोय इनके क्वाथको मधुके साथ मिश्रितकर पान करनेसे अथवा मुखमें धारण करनेसे मुखके समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ७३ ॥

कालकचूर्ण ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसाञ्जनम् ।
तेजोह्वा त्रिफला लौहं चित्रकं चेति चूर्णितम् ॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ७४ ॥

घरका धुआँ, जवाखार, पाढ, त्रिकुटा, रसौत, चव्य, त्रिफला, लोहा और चीता इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह कालकचूर्ण गलेके, दाँतोंके और मुखके सम्पूर्ण विकारोंको नष्ट कर देता है ॥

पीतकचूर्ण ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दार्वीत्वक्च चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ ७५ ॥
मूर्च्छितं घृतयोगेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नामकीर्तितम् ॥ ७६ ॥

मैनासिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानमक और दारुहल्दीकी छाल इनके चूर्णको समान भाग लेकर शहद और घृतमें मिलाकर मुखमें धारण करे। यह पीतकनामवाला चूर्ण कण्ठरोगमें और मुखरोगमें अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

दशनसंस्कारचूर्ण ।

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घनसारकम् ।
गुवाकभस्म मरिचं देवपुष्पं तथा त्वचम् ॥ ७७ ॥

एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ।
तत्समं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं कठिनसम्भवम् ॥
एतद्दशनसंस्कारचूर्णं दन्तास्यरोगजित् ॥ ७८ ॥

सोंठ, हरड, नागरमोथा, खैर, कपूर, सुपारीकी भस्म, मिरच, लौंग और दारचीनी इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णकी बराबर उसमें खडियामिट्टी मिलालेवे । यह दशनसंस्कारचूर्ण है । इसको प्रतिदिन दाँतोंमें मलनेसे दन्तरोग और मुखरोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

दन्तरोगाशनिचूर्ण ।

जातीपत्रपुनर्नवा तिलकणा कौरुण्टमुस्ता वचा
शुण्ठी दीप्यहरीतकी च सघृतं चूर्णं मुखे धारयेत् ॥
वातघ्नं कृमिकण्डुशूलदहनं सर्वामयध्वंसनं
दौर्गन्ध्यादिसमस्तदोषहरणं दन्तस्य रोगाशनिः ॥ ७९ ॥

चमेलीके पत्ते, पुनर्नवा, तिल, पीपल, पीलीकटसरैयाके पत्ते, नागरमोथा, वच, सोंठ, अजवायन और हरड इनके चूर्णको समान भाग लेकर घृतमें मिश्रित कर मुखमें धारण करे । इससे वातजदन्तरोग, दाँतोंके कीडे, खुजली, शूल, दाह और मुखकी दुर्गन्धप्रभृति जितने दन्तसम्बन्धी रोग हैं वे सब ध्वंस हो जाते हैं । यह चूर्ण दन्तरोगके लिये वज्रके समान है ॥ ७९ ॥

क्षारगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः ।
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ॥ ८० ॥
गुडे पुराणे क्वथिते द्विगुणे गुडिकाः कृताः ।
कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ॥
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्याः स्युरमृतोपमाः ॥ ८१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीसपत्र, तेजपात, इलायची, मिरच, दारचीनी, ढाकका खार, मोखावृक्षका खार और जवाखार इनके चूर्णको समान भाग लेवे और समस्त चूर्णसे दुगुना पुराना गुड लेवे । सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर पाक करे । जब पाक पूर्ण होजाय तब उतारकर बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको मोखावृक्षकी भस्ममें मिलाकर रख देवे । फिर सात दिनके बाद निकालकर उन गोलियोंको सर्व प्रकारके कण्ठरोगमें

व्यवहार करे । यह गुटिका उक्त रोगमें अमृतके समान गुणकारी है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

स्वल्पखदिरवटिका ।

खदिरस्य तुलां सम्यक् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ ८२ ॥
जातीकर्पूरपूगानि कक्कोलकफलानि च ।
इत्येषा गुडिका कार्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी ॥
दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च ॥ ८३ ॥

खैरको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथको दुबारा चूल्हेपर चढाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । पकते पकते जब वह गाढा पडजाय तब उसमें जावित्री, कपूर, सुपारी, काकोली और जायफल इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालकर सबको अच्छे प्रकार मिलाकर गोलियाँ बनालेवे । यह वटी मुखमें धारण करनेसे मुखकी शोभाको बढाती है एवं दन्त, ओष्ठ, मुख, जिह्वा और तालु आदि सब मुखरोगोंमें विशेष हितकारी है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

बृहत्खदिरवटिका ।

गायत्रिसारतुलमेरिमवल्कलानां सार्द्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः । निःक्वाथ्य पादमवशिष्टसुवस्त्रपूतं भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ ८४ ॥ तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवलग्रहभागिकानाम् ।एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बुश्यामातमालविकषाघनलोहयष्टी ॥ ८५ ॥ लज्जाफलत्रयरसाञ्जनधातकीनां श्रीपुष्पगैरिककटङ्कटकट्फलानाम्। पद्माह्वलोध्रवटरोहयवासकानां मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ ८६ ॥ कक्कोलजातिफलकोषलवङ्गकानि चूर्णीकृतानि विदधीत पलांशिकानि । शीतेऽवतार्यघनसारचतुःपलं च क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्गुडिकाः प्रकुर्यात्॥८७॥शुष्का मुखे विनिहिता विनिवारयन्ति

रोगान्न गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान् । कुर्युर्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिं च स्थैर्यं परं दशनगं रसनालघुत्वम् ॥ ८८ ॥

खैरसार १०० पल और दुर्गन्ध खैरकी छाल २५० पल लेकर इनको चार द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इसको दुबारा मृदु अग्नि द्वारा पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा हो जाय तब उसमें छोटी इलायची, खस, सफेद चन्दन, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सारिवा, तमालवृक्षकी छाल, मंजीठ, नागरमोथा, अगर, मुलहठी, बराहक्रान्ता, त्रिफला, रसौत, धायके फूल, लौंग, गेरू, दारुहल्दी, कायफल, पद्माख, लोध, बडके अंकुर, धमासा, बालछड, हल्दी, कुन्दुरुनामक गन्धद्रव्य और दारचीनी ये प्रत्येक दो दो तोले एवं शीतलचीनी, जायफल, जावित्री और लौङ्ग इन सब औषधियोंको आठ आठ तोले लेकर खूब बारीक कूटपीसकर डालदेवे । पश्चात् नीचे उतारकर सबको एकमएक करलेवे और शीतल होनेपर चार पल कपूर डालकर मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । फिर इन गोलियोंको सुखाकर मुखमें धारण करे तो ये गोलियाँ गलरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग, तालुरोग तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके मुखरोगोंको नष्ट करती हैं । एवं मुखमें सुगन्धि, पटुता, रुचि, दाँतोंमें दृढता और जिह्वामें हल्कापन उत्पन्न करती हैं ॥ ८४-८८

मुखरोगहररस ।

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणं च शिलाजतु ।
गोमूत्रेण विमर्द्याथ सप्तधाऽर्कद्रवेण च ॥
जातीनिम्बमहाराष्ट्रीरसैः सिध्यति पाकहा ॥ ८९ ॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ तोले और शिलाजीत ४ तोले इन दोनोंको गोमूत्र, आकके पत्तोंके रस, चमेलीके पत्तों नीमके पत्तोंके रस और जलपीपलके क्वाथमें यथाक्रम ७-७ बार खरल करके ८-८ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ८९ ॥

कणामधुयुता हन्ति मुखपाकं सुदारुणम् ।
अष्टगुञ्जा धृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी गदान् ॥ ९० ॥
महाराष्ट्र्याश्च कल्केन मुखं च प्रतिसारयेत् ।
धारणात्सेवनादेव वटी हन्ति मुखामयान् ॥ ९१ ॥

यह वटी पीपलके चूर्ण और शहदमें मिश्रितकर मुखमें धारण करनेसे अथवा भक्षण करनेसे दारुण मुखपाकरोगको तत्काल नष्ट करती है । इसको

सेवन करनेके पश्चात् जलपीपलके कल्कसे मुखको अच्छेप्रकार घर्षण करे तो मुखके सब रोग दूर होते हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥

महासहचरतैल ।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत् ।
पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥ ९२ ॥
कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्य्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ९३ ॥

नीलीकटसैरयाको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें यथाविधि पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस क्वाथमें तिलका तेल दो सेर एवं अनन्तमूल,खैरसार, दुर्गन्ध खैरकी छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, मुलहठी और नीलकमल इन औषधियोंके दो दो तोले प्रमाण कल्कको डालकर उत्तम प्रकार तेलको सिद्ध करे । इस तेलको मुखमें धारण करनेसे तत्काल दाँतोंकी जडें दृढ होजाती हैं ॥९२॥९३॥

बकुलाद्यतैल ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरुण्टकम् ॥
चतुरङ्गुलबब्बोलवाजिकर्णैरिमासनम् ॥ ९४ ॥
एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् ।
स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥९५॥

मौलसिरीके फल, लोध, हडसंहारी, नीली कटसरैया, अमलतास, बबूलकी छाल, शालवृक्षकी छाल, दुर्गन्ध खैरकी छाल, और विजयसार इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करके मुखमें धारण करे अथवा नास लेवे तो यह तेल हिलतेहुए दाँतोंको शीघ्र स्थिर करदेता है ॥९४॥९५॥

मुखरोगमें पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम् ।
कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणी ॥ ९६ ॥
तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गला रसाः ।
बृहत्प्रोष्ठी कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम् ॥ ९७ ॥
कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम् ।
कटु तिक्तं च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम् ॥ ९८ ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, गण्डूष, मुखमें घर्षण और कवल धारण करना, रुधिर निकलवाना, नस्य, धूमपान, शस्त्रक्रिया, अग्निकर्म करना, तृणधान्य (धान्यविशेष) पुराने जौ, मूँग, कुलथी, जङ्गली जीवोंका मांसरस, शफरीमछली, करेला, परवल, कच्चीमूली, अर्ककपूर, ताम्बूल, गरम जल, खैर, घृत, चरपरे और कडुवे द्रव्य यह सब द्रव्यसमूह मुखरोगवाले मनुष्योंको हितकर हैं ॥९६-९८॥

मुखरोगमें अपथ्य।

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम् ॥
दधि क्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम् ॥ ९९ ॥
अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारि च।
मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत् ॥ १०० ॥

सर्वप्रकारके मुखरोगमें दातौन और स्नान करना, खट्टे पदार्थ, मछली, अनूपदेशीय प्राणियोंका मांस, दही, दूध, गुड, उडद, रूखा अन्न, कठिन भोजन, नीचेको मुँहकरके सोना, गुरुपाकी और कफकारी पदार्थ एवं दिनमें सोना इन सबको दन्तरोगी तत्काल त्याग देवे ॥९९॥१००॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मुखरोगचिकित्सा ॥

कर्णरोगकी चिकित्सा।

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः।
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

कैथ, बिजौरे नींबूका रस, काँजी अथवा अदरखका रस इनमेंसे किसी एकको कुछ गरम करके कानमें डालनेसे कानकी पीडा दूर होती है ॥ १ ॥

शृङ्गवेरं च मधु च सैन्धवं तैलमेव च।
कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ २ ॥

अदरखका रस, शहद, सैंधानमक और तिलका तेल इनको एकत्र पकाकर सुहाता २ कानोंमें डाले तो कानकी पीडा नष्ट होती है ॥ २ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरङ्ग्या मूलकस्य च।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥
समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यवचूर्णयेत् ॥ ३ ॥

लहसुन, अदरख, सफेद सहिंजना, कच्चीमूली और केलेका स्वरस इनमेंसे किसी एकके रसको मन्दोष्णकर अथवा समुद्रफेनका चूर्ण कानमें पूरनेसे कर्णरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

आर्द्रकसूर्यावर्त्तकशोभाञ्जनमूलकस्वरसाः।
मधुतैलसैन्धवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥ ४ ॥

अदरख, हुलहुल, सहिंजना अथवा कच्चीमूली इनमेंसे किसीके रसको शहद तेल और सैंधेनमकके साथ यथाक्रम मिलाकर कानमें डाले। ये प्रयोग कर्ण-शूलको हरनेवाले हैं ॥ ४ ॥

शोभाञ्जनस्य निर्यासस्तिलतैलेन संयुतः।
व्यक्तोष्णः पूरणः कर्णे कर्णशूलोपशान्तये ॥ ५ ॥

सहिंजनेके क्वाथको तिलके तेलमें मिलाकर सुहाता सुहाता कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त होता है ॥ ५ ॥

अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च।
कोष्णेन पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलोपशान्तये ॥ ६ ॥

कर्णशूलको शान्तकरनेके लिये हाथी, घोडा, ऊँट, भेड, बकरी, गधा, गौ और भैंस इनमेंसे किसी एकके मूत्रको कुछ गरम करके कानमें डाले ॥ ६ ॥

अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्रकम्।
तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ ७ ॥
यत्तैलं च्यवते तस्मात्खल्लादङ्गारतापितात्।
तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ८ ॥

पीपलके बहुतसे पत्ते लेकर उनका छिद्रविशिष्ट एक दोना बनावे। उसमें तेलको भरकर उसपर जलता हुआ अङ्गार रक्खे और उस दोनेको कानके छिद्रपर रख-देवे। जिससे अग्निके तापसे तपाहुआ दोनेसे टपकताहुआ तेल बूंदकर कानमें गिराताजाय। इस बूंदसे वेदना तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अर्कपत्रपुटे दग्धस्नुहीपत्रोद्भवो रसः।
कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥ ९ ॥

आकके पत्तोंके दोनेमें थूहरके पत्तोंका रस दग्धकर सुहाता २ कानमें डाल-नेसे कानका दर्द दूर होता है ॥ ९ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनाऽवतप्तम् ।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनं च ॥१०॥

पकेहुए आकके पत्तेको घीसे लहेसकर अग्निमें गरमकर उसके रसको निकाले । उस रसको कानमें डालनेसे कर्णशूल और अत्यन्त पीडा नष्ट होती है ॥ १० ॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ।
बस्तमूत्रं क्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ ११ ॥

बकरेके मूत्रको सैंधेनमकके चूर्णके साथ मिलाकर कुछ एक गरम करके कानमें डाले । इससे कानकी तीव्रपीडा, शब्दका होना, पीवका वहना आदि कर्णरोगोंमें शीघ्र लाभ होता है ॥ ११ ॥

हिङ्गुतुम्बरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलं तु सार्षपम् ।
कर्णशूले प्रधानं तु पूरणं हितमुच्यते ॥ १२ ॥

हींग, धनियाँ और सोंठ इनके कल्क और चौगुने जलके साथ सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे । यह तेल कानमें डालनेसे कर्णशूलको दूर करता है ॥१२॥

कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे कटुतैलेन पूरणम् ।
नादबाधिर्ययोः कुर्याद्वातशूलोक्तमौषधम् ॥ १३ ॥

कर्णनाद और कर्णक्ष्वेडरोगमें सरसोंके तेलको कानमें डाले और वातशूलोक्त औषधियोंका प्रयोग करनेसे कर्णनाद एवं बधिरताका नाश होता है ॥ १३ ॥

एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः ।
गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ १४ ॥

कर्णमें अत्यन्त नाद होनेपर प्रथम यथाविधि नस्य देवे, फिर बधिरतानाशक क्रिया करे । दोनोंप्रकारके कर्णनादरोगोंमें गुड और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर नस्य देना हितकारी है ॥ १४ ॥

वातोक्तं माषतैलादि बाधिर्यादौ तु योजयेत् ।
वर्जयेन्मैथुनं क्रोधं रूक्षं बाधिर्यपीडितः ॥ १५ ॥

बधिरतासे पीडित मनुष्य वातव्याधि अधिकारमें कहेहुए माषतैलका प्रयोग करे । इस रोगमें मैथुन और क्रोध करना एवं रूक्ष पदार्थोंका भोजन करना तत्क्षण त्याग देवे ॥ १५ ॥

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम् ।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ १६ ॥

पञ्चवल्कलके चूर्ण और कैथके रसको शहदमें मिलाकर कानमें डालनेसे कानका बहना दूर होता है ॥ १६ ॥

मालतिदलरसमधुना पूरितमथवा गवां मूत्रैः ।
दूरेण परिह्रियेत श्रवणयुगं पूतिरोगेण ॥ १७ ॥

चमेलीके पत्तोंके रसको शहदके साथ मिलाकर अथवा गोमूत्रके साथ मिलाकर कानोंमें डालनेसे कानोंका पूतिरोग बहुत जल्द नष्ट होता है ॥ १७ ॥

हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित्।

हरितालको गोमूत्रमें घिसकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग दूर होता है ॥

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः ।
मधुना संयुतः साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ १८ ॥

कपासके फलोंका रस, शालवृक्षकी छालका चूर्ण और शहद इनको एकत्र मिलाकर कर्णरन्ध्रमें डालनेसे कर्णस्रावरोग शीघ्र आरोग्य होता है ॥ १८ ॥

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलं च सार्द्रम् ।
क्षुत्त्वा रसं तं मधुना विमिश्रं स्रावापहं तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥१९॥

जामुन और आमके नवीन कोमल पत्ते कैथ और कपासके गीले फल इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूटकर रस निकाले, फिर उस रसको शहदमें मिलाकर कानमें डाले तो कानका बहना दूर होता है ॥ १९ ॥

पुटपाकविधिस्विन्नो हस्तिविड्जातछत्रजः ।
रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥ २० ॥

हाथीकी लीदमें उत्पन्नहुए छत्र (साँपकी छतरी)के रसको पुटपाककी विधिसे पकाकर उसमें सरसोंका तेल और सैंधेनमकका चूर्ण मिश्रितकर कानमें भरनेसे कानका स्राव होना निवृत्त होता है ॥ २० ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत् ॥ २१ ॥

कर्णप्रतीनाहरोगमें प्रथम स्नेहद्रव्य और स्वेददेवे, पश्चात् नस्य देकर यथादोषानुसार चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात्क्षतविसर्पवत् ।
विधिश्च कफहा सर्वः कर्णकण्डूं व्यपोहति ॥ २२ ॥

कर्णपाकरोगकी क्षत और विसर्परोगकी समान चिकित्सा करे । एवं कर्णकण्डूरोगको सर्वप्रकारकी कफनाशक चिकित्सा कर दूर करे ॥ २२ ॥

क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रविलाप्य च ।
शोधयेत्कर्णगूथं तु भिषक् सम्यक् शलाकया ॥ २३ ॥

कर्णगूथरोगमें कानमें तेल डालकर और स्वेदितकर सूक्ष्म शलाकासे कानके मैलको खींचकर निकालदेवे ॥ २३ ॥

निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः ।
पूरणात्पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ॥ २४ ॥

सिह्मालुके पत्तोंका रस, कडवा तेल, सैंधानमक, घरका धुँआ, पुराना गुड और शहद इनको एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकारोग अथवा कर्णपाकरोग शमन होता है ॥ २४ ॥

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ।

चमेलीके पत्तोंके रसमें कडवे तेलको पकाकर कानमें भरनेसे पूतिकर्णरोग दूर होता है ॥

वरुणार्ककपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम् ।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा ॥ २५ ॥

वरना, आक, कैथ, आम और जामुन इनके पत्तोंके द्वारा तेलको पकाकर अथवा केवल चमेलीके पत्तोंके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग आराम होताहै ॥ २५ ॥

सूर्यावर्त्तकस्वरसं सिन्दुवाररसं तथा ।
लाङ्गलीमूलस्वरसं त्र्यूषणेनावचूर्णितम् ॥
पूरयेत्कृमिकर्णं तु जन्तूनां नाशनं परम् ॥ २६ ॥

हुलहुलका रस, सिह्मालूके पत्तोंका रस अथवा कलिहारीकी जडका रस इनमेंसे किसी एकके रसमें त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर कानमें डालनेसे कानके कृमि नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

कृमिकर्णकनाशार्थं कृमिघ्नं योजयेद्विधिम् ।
वार्त्ताकोश्च हितो धूमः सार्षपस्नेह एव च ॥ २७ ॥

कानके कृमियोंको नष्ट करनेके लिये कृमिरोगनाशक चिकित्सा करे । एवं सूखे बैंगनके चूर्णको अग्निमें डालकर उसका धुआँ नलीद्वारा कानमें छोडे या सरसोंका तेलही डाले । इससे कृमिकर्णरोग दूर होता है ॥ २७ ॥

हलिसूर्यावर्त्तयोः स्वरसेनातिपूरिते ।
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु कृमिजातयः ॥ २८ ॥

कलिहारीके रस और सूर्यावर्त्तके रसमें सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण मिश्रित कर कानमें पूरनेसे सर्वप्रकारके कृमि तत्काल निकल पडते हैं ॥ २८ ॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ।
प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि सास्रावे पूतिकर्णके ॥ २९ ॥

स्त्रीके दूधमें रसौत घिसकर उसमें शहद मिलाकर कानमें डालनेसे बहुत पुराना और स्रावयुक्त पूतिकर्णरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९ ॥

दीपिकातैल ।

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च ।
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ ३० ॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्प्रयोजयेत् ।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ३१ ॥
एवं कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम् ॥ ३२ ॥

बेल, सोनापाठा, कुम्भेर, पाढल और अरणी इनमेंसे किसी एक वृक्षकी आठ अँगुल लम्बी लकडी लेकर उसको रेशमीवस्त्रसे लपेटकर और तेलमें भिगोकर बत्तीके समान जलावे। उसमेंसे जो बूँदें टपकें उनको सुहाता सुहाता कानमें डाले। इस प्रकार करनेसे यह दीपिकातेल कानकी पीडाको तत्काल नष्ट करता है। इसी प्रकार देवदारु, कूठ और सरलकाठका दीपिकातेल बनाकर कानमें डालनेसे भी कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ३०-३२ ॥

स्वर्जिकाद्यतैल ।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिङ्गु कृष्णा महौषधम् ।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तं चतुर्गुणम् ॥
प्रणादशूलबाधिर्यं स्रावं चाशु व्यपोहति ॥ ३३ ॥

सज्जी, सूखीमूली, हींग, पीपल, सोंठ और सोया इनके समान भाग मिश्रित एकसेर कल्क और चौगुनी काँजीके द्वारा दो सेर तिलके तेलको विधिपूर्वक पकावे। यह तेल कानमें डालनेसे कर्णनाद, कर्णशूल, कर्णस्राव और बाधिर्य दूर होते हैं ॥ ३३ ॥

लशुनाद्य तैल।

लशुनामलकं तालं पिष्ट्वा तैले चतुर्गुणे।
तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं पाच्यं तैलावशेषकम् ॥
तत्तैलं पूरयेत्कर्णे बाधिर्यं परिणाशयेत् ॥ ३४ ॥

लहसुन, आमले और हरिताल इनको समान भाग मिश्रित एक सेर लेवे, सबको एकत्र पीसकर कल्क बनावे फिर उस कल्क एवं एक सेर तिलके तेल और तेलसे चौगुने बकरीके दूधको चौगुने जलमें डालकर उत्तम प्रकार पकावे जब पकेत २ तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारलेवे। उस तेलको कानमें डालनेसे बहरापन दूर होजाता है ॥ ३४ ॥

शम्बूकतैल।

शम्बूकस्य च मांसेन कटुतैलं विपाचितम्।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

शम्बूक (घोंघे) के मांसद्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाडीरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

कुष्ठाद्यतैल।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः।
पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ३६ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ और सैंधानमक इनके कल्क और बकरीके मूत्रके सहयोगसे सिद्ध कियाहुआ तेल पूतिकर्ण रोगको हरता है ॥ ३६ ॥

क्षारतैल।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु सनागरम्।
शतपुष्पा वचा कुष्ठदारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ ३७ ॥
सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्।
भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ ३८ ॥
मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च।
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ ३९ ॥
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः।
पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ॥ ४० ॥

क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥ ४१ ॥

कच्चीमूलीको सुखाकर उसका क्षार निकाले । फिर वह क्षार, हींग, सोंठ, सोंया, बच, कूठ, देवदारु, सहिंजनेकी छाल, रसौत, काला नमक, जवाखार, सज्जी, रेहगमा (?) या समुद्र नमक, सैंधानमक, भोजपत्र, पीपलामूल, विरियासञ्चरनमक और नागरमोथा इन सब औषधियोंका कल्क समान भाग मिश्रित एक सेर और मधुशुक्तनामक काँजी कल्कसे चौगुनी लेवे । इनके साथ बिजौरेनींबूके रस, केलेके रस और तिलके तेलको दो दो सेर परिमाण मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्धकरे। प्रतिदिन नियमसे इस तेलको कानमें डालनेसे यह क्षार तेल कर्णशूल, बधिरता, कर्णनाद एवं दारुण पूयस्रावको तत्काल नष्ट करता है । इससे कानके कृमि शीघ्र पतित होजाते हैं ऐसा कृष्णात्रेय महाराजने कहा है यह तेल मुख और दाँतोंके रोगोंको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥३७-४१॥

कर्णरोगमें पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः ।
गोधूमाः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥ ४२ ॥
लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरिर्वन्यकुक्कुटः ।
पटोलं शिग्रु वार्त्ताकुः सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥ ४३ ॥
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम् ।
उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामयं हरेत् ॥ ४४ ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, धूम, और शिरावेध करना, गेहूँ, शालिचावल, मूँग, जौ पुराना घी, लवा, मोर, हिरण, तीतर और जंगली मुर्गा इनका मांस, पटोलपात,

---

१-मधुशुक्तलक्षण-मधुप्रधानं शुक्तं तु मधुशुक्तं तथाऽपरम् ।
जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीग्रन्थिसंयुतम् ॥
मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् ।
मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥

जम्बीरीनींबूका स्वरस १ प्रस्थ, पीपरामूल १६ तोले और शहद ; ३२ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मिट्टीके घीसे चिकने बासनमें भरकर धानोंकी राशि (ढेर) में गाडदेवे । फिर एक महीनेके बाद उसको निकाले । इस प्रकार बनायेहुए पदार्थमेंसे जो रस निकलता है उसको मधुशुक्त कहते हैं ॥

सहिंजना, बैंगन, शिरिआरीका शाक, करेला, सब प्रकारकी रसायनक्रिया, ब्रह्मचर्य धारण और अल्पभाषण ये सब यथादोषानुसार उपचार करनेसे कर्णरोगको दूर करते हैं ॥ ४२-४४ ॥

कर्णरोगमें अपथ्य।

विरुद्धान्यन्नपानानि वेगरोधं प्रजल्पनम्।
दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु॥
कण्डूयनं तुषारं च कर्णरोगी परित्यजेत्॥ ४५॥

विरुद्ध अन्नपान, मल मूत्रके वेगको रोकना, अधिक बोलना दातौन, सिरसे स्नान और व्यायाम करना, कफकारक तथा गुरुपाकी द्रव्योंका सेवन, कानको खुजलान। और शीतका सेवन करना इन सबको कर्णरोगी त्यागदेवे॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कर्णरोगचिकित्सा।

नासारोगकी चिकित्सा।

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निर्वातागारगो भवेत्।
स्नेहनस्वेदवमनं धूमगण्डूषधारणम्॥ १॥

सर्वप्रकारके पीनसरोगमें प्रथम रोगीको वातरहित स्थानमें रक्खे, पश्चात् स्नेह स्वेद, धूम, वमन कराकर गण्डूषधारण करावे॥ १॥

वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम्।
लघूष्णं लवणं स्निग्धमुष्णभोजनमद्रवम्॥ २॥

पीनसरोगमें भारी, गरम और घने वस्त्रसे शिरको अच्छे प्रकार बाँध लेवे और भोजनके लिये हल्के, गरम, नमकीन, स्निग्ध और जो पतले न हों ऐसे पदार्थ सुहाते सुहाते भोजन करे॥ २॥

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी।
सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये॥ ३॥

पीनसरोगको शान्त करनेके लिये पञ्चमूलकी औषधियोंद्वारा सिद्ध किया हुआ दूध, चीता, हरड, घी, गुड, षडङ्ग यूष इनमेंसे किसी एकको सेवन करावे॥

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च।
हत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके सर्पिषश्च प्रदेहाः॥ ४॥

नासारोगके पकजानेपर रक्तमोक्षण कराकर बाहर तथा भीतर सर्व प्रकारकी पित्तनाशक चिकित्सा करे। एवं क्षीरीवृक्षोंकी छालको पीसकर घृत मिलाकर लेप करे और उक्त छालका क्वाथ बनाकर उससे सेंके ॥ ४ ॥

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च ॥

नाकमेंसे पीब निकले तो रक्तपित्तनाशक क्वाथ और नस्य प्रयोग करे ॥

दीप्ते रोगे पैत्तिके संविधानं कार्यं कुर्यान्मधुरं शीतलं च।
नासादाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमा ऊर्द्ध्ववस्तिश्च नित्यम् ॥

पित्तज दीप्तरोगमें पित्तनाशक मधुर और शीतल क्रिया करे। एवं नासादाहमें स्नेहपान, स्निग्धधूम और ऊर्ध्ववस्ति प्रतिदिन प्रयोग करे ॥ ५ ॥

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम्।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम् ॥ ६ ॥

वातज प्रतिश्यायमें पञ्चलवणद्वारा सिद्ध किया हुआ अथवा विदारीगन्धादिगणोक्त औषधियोंके क्वाथ और कल्कद्वारा सिद्ध किया हुआ घृत पान करे और अर्दितरोगमें कहीहुई औषधियोंके द्वारा नस्य प्रदान करे ॥ ६ ॥

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम्।
परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् ॥ ७ ॥

पित्तज और रक्तज प्रतिश्यायमें काकोल्यादिगणोक्त औषधोंके द्वारा घृतको सिद्ध कर पान करे और शीतल द्रव्योंसे परिषेक तथा प्रलेप करे ॥

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया।
यवाग्वा वामयित्वा वा कफघ्नं क्रममाचरेत् ॥ ८ ॥

कफजनित प्रतिश्यायमें रोगीको घृत पान कराकर स्निग्ध करे, तिल और उडदोंके द्वारा यवागूको सिद्ध कर उसमें मैनफलका चूर्ण डालकर पान करावे। इससे जब रोगीको अच्छे प्रकार वमन होजाय तब कफनाशक चिकित्सा करे ॥ ८ ॥

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सुरसेन च।
वर्त्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ॥ ९ ॥

दारुहल्दी, हिङ्गोट, दन्तीके बीज, चिरचिटा, सिह्माळु इन सबको एकत्र कूटपीस कर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीका प्रतिश्यायमें यथाविधि धूमपान करे ॥

अथवा सघृतान्सक्तून् कृत्वा मल्लिकसम्पुटे।
नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

नवीन प्रतिश्यायरोगमें प्रथम घीमें मिलेहुए जौके सत्तुओंको एक सकोरेमें भरकर अग्निपर रक्खे और उसके ऊपर एक छेदवाला दूसरा सकोरा ढकदेवे। फिर उसमेंसे जो धुआँ निकले उसको चमेलीके पत्तोंकी निर्मित नलीके द्वारा रोगीके नासारन्ध्रमें प्रवेश कराना हितकर है ॥ १० ॥

यः पिबति शयनकाले शयनारूढः सुशीतलं भूरि।
सलिलं पीनसयुक्तः समुच्यते तेन रोगेण ॥ ११ ॥

जो पुरुष शयन करते समय शय्यापर बैठा बहुतसा शीतल जल पीवे तो वह पीनसरोगसे मुक्त होजाता है ॥ ११ ॥

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमायुतम्।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ १२ ॥

जयन्तीके पत्तोंको पुटपाककी रीतिसे पकाकर रस निकालले, उसमें सेंधानमक और कडवातेल मिलाकर सर्वप्रकारके प्रतिश्यायोंमें पान करावे ॥ १२ ॥

सोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम्।
नवप्रतिश्यायहरं विशेषात्कफपाचनम् ॥ १३ ॥

गुडमिश्रित कालीमिरचोंका चूर्ण, स्निग्धपदार्थ, दही और खट्टे पदार्थोंका भोजन करनेसे नूतन प्रतिश्याय दूर होता है और विशेषकर कफ पकता है ॥

प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिञ्चाच्छदोद्भवः।
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ॥ १४ ॥

नये प्रतिश्याय (जुकाम) में इमलीके पत्तोंका यूष पान करना श्रेष्ठ है। जो कफ पकगया हो तो उसको शिरोविरेचन अर्थात् नस्य देकर दूर करे ॥ १४ ॥

शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः।
वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥ १५ ॥

इस रोगमें शिरमें मालिश, स्वेद, नस्य तथा चरपरे और खट्टे पदार्थोंका भोजन, एवं वमन और घृतपान इत्यादि क्रियाओंका यथेच्छ उपचार करे ॥ १५ ॥

भक्षयति भुक्तमात्रे सलवणसुस्विन्नमाषमत्युष्णम्।
स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातं च प्रतिश्यायम् ॥ १६ ॥

भोजन करनेके अनन्तर सैंधनमकके साथ उसीजेहुए उडद सुहाते सुहाते भक्षण करे । इससे बहुत पुराना सर्वप्रकारका प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च ।
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ॥ १७ ॥

पीपल, सहिंजनेके बीज, वायविडङ्ग और कालीमिरच इनके चूर्णको समान भाग लेकर उसका नस्य ग्रहण करे तो प्रतिश्याय दूर होता है ॥ १७ ॥

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः ।
व्योषोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ १८ ॥

इन्द्रजौ, हींग, मिरच, लाख, तुलसी, कायफल, त्रिकुटा, वच, सहिंजनेके बीज, वायविडङ्ग इनका चूर्ण एकत्र मिश्रितकर नास देवेतो नासारोग जाय ॥

तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपाचयेत् ।
प्रपीनसे पूतिनस्ये शमनं परिकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥

उक्त औषधियोंके चूर्णको गोमूत्रमें डालकर उसके द्वारा कडवे तेलको विधि-पूर्वक पकावे । उस तेलको नस्य देनेसे पीनसरोग शमन होता है ॥ १९ ॥

समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत् ।
नावनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥
शेषाणां तु विकाराणां यथास्वं स्याच्चिकित्सितम् ॥ २० ॥

नाकमें कीडे पडगये होंतो कृमिनाशक औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर नस्य देवे अथवा सुरसादिगणोक्त औषधोंके क्वाथद्वारा नस्य देवे तो नाकके कृमि तत्काल नष्ट होजाते हैं । नासार्बुद और नासार्श आदि अन्यान्य सर्वप्रकारके नासिकाके विकारोंमें यथाक्रम अर्बुद और अर्शरोगके समान चिकित्सा करे ॥

चित्रक-हरीतकी ।

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम् ।
शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात ॥ २१ ॥
शतं पचेद्घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत् ।
व्योषत्रिजातयोः क्षारात्पलार्द्धमपरेऽहनि ॥ २२ ॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतन्द्रितः ।
वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं कृमीन् ॥
गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान्हन्ति सुदारुणान् ॥ २३ ॥

लालचीतेकी जडका रस, आमलोंका रस, गिलोयका रस और दशमूलका क्वाथ इन सबोंको पृथक्‌ पृथक्‌ सौ सौ पल लेकर एकत्र मिलादेवे। फिर उसमें हरडका चूर्ण एक आढक और गुड सौ पल डालकर विधिपूर्वक पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची और तेजपात इन समस्त औषधियोंके १२ पल चूर्ण और दो तोले जवाखारको डालकर सबको चलाकर एकमएक करलेवे। फिर दूसरे दिन उसमें एक प्रस्थ उत्तम शहद मिलाकर स्वच्छ पात्रमें करके रखदेवे। उसमेंसे प्रतिदिन अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे तो जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती है। यह चित्रकहरीतकी क्षय, खाँसी, पीनस, दुस्तर कृमिरोग, गुल्म, उदावर्त्त, बवासीर, दारुण श्वासप्रभृतिरोगोंको नष्ट करती है ॥ २१-२३ ॥

पाठाद्यतैल।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः।
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं संपक्वपीनसम् ॥ २४ ॥

पाढ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दन्तीकी जड इनके कल्कद्वारा सरसोंके तेलको यथाविधि पकाकर पक्व पीनसरोगमें नस्यद्वारा प्रयोग करे ॥ २४ ॥

व्याघ्र्याद्यतैल।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसैन्धवैः।
पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदापहम् ॥ २५ ॥

कटेरी, दन्ती, वच, सहिंजना, सिह्माल्लु, त्रिकुटा और सेंधानमक इनके कल्कद्वारा पकायाहुआ तेल नस्यद्वारा ग्रहण करनेसे पूतिनासारोगको हरता है ॥

त्रिकट्वाद्यतैल।

त्रिकटुकविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीभिः।
तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात्पूतिनस्यस्य ॥ २६ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडङ्ग, सेंधानमक, बडीकटेरीके फल, सहिंजनेके बीज सिह्माल्लु और दन्तीके बीज इनके कल्क और गोमूत्रके साथ सरसोंके तेलको सिद्ध कर नास देवे तो इससे पूतिनस्यरोगका नाश होता है ॥ २६ ॥

चित्रकतैल।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्जबीजलवणाद्यैः।
गोमूत्रयुतैः सिद्धं तैलं नासार्शसां शान्त्यै ॥ २७ ॥

चीता, चव्य, अजवायन, कटेरी, करञ्जके बीज सैंधानमक और आकका दूध इन औषधियोंके कल्क एवं गोमूत्रके द्वारा कडवे तैलको यथारीति सिद्ध करे। फिर उस तेलको नासार्शरोगकी शान्तिके लिये नस्यद्वारा व्यवहार करे॥

नासारोगमें पथ्य।

स्थितिर्निर्वातनिलये प्रगाढोष्णीषधारणम्।
गण्डूषो लंघनं नस्यं धूमश्छर्दिः शिराव्यधः॥ २८॥
कटुचूर्णं नासारन्ध्रे निक्षिप्यान्तः प्रवेशनम्।
स्वेदः स्नेहःशिरोऽभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः॥ २९॥
कुलत्थमुद्गयोर्यूषो ग्राम्यजाङ्गलजा रसाः।
वार्त्ताकुः कुलकं शिग्रुः कर्कोटं बालमूलकम्॥ ३०॥
लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम्।
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं लघु च भोजनम्॥
नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथामलम्॥ ३१॥

वायुरहित स्थानमें रहना, शिरमें पगडी या मोटा कपडा बाँधना, गण्डूष, लंघन, नस्य, धूमपान वमन और शिरावेध करना, कटुद्रव्योंका चूर्ण नासिकाके छिद्रोंमें डालकर छीकें लेना, स्वेद देना, स्नेहप्रयोग, शिरमें मालिश करना, पुराने जौ, शालिचावल, कुलथीका और मूँगका यूष, ग्रामीण और जङ्गली जीवोंका मांसरस, बैंगन, परवल, सहिंजना, ककोडे. कच्ची मूली, लहसुन, दही, गरम जल, मद्य, त्रिकुटा, चरपरे, खट्टे, नमकीन, स्निग्ध, गरम और हलका भोजन ये सब वस्तुएँ यथादोषानुसार सेवन करनेसे पीनस और नासारोगमें हित करनेवाली हैं॥२८-३१॥

नासारोगमें अपथ्य।

विरुद्धानि दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरूणि च।
स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रबाष्पवेगाञ्छुचं द्रवम्॥
भूशय्यामपि यत्नेन नासारोगी परित्यजेत॥ ३२॥

विरुद्ध द्रव्योंका भोजन, दिनमें सोना, कफकारक और गुरुपाकी द्रव्य, स्नान, क्रोध करना, मल, मूत्र, और आँसुओंके वेगको रोकना, शोक करना, पतले पदार्थोंका सेवन और पृथ्वीमें सोना इन सबको नासारोगी यत्नपूर्वक त्याग देवे॥ ३२॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् नासारोगचिकित्सा॥

नेत्ररोगकी चिकित्सा।

लङ्घनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ।
उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥ १ ॥

लङ्घन (लघु अन्नका आहार या उपवास), प्रलेप, स्वेद, शिरावेध विरेचन, अञ्जन और आश्च्योतन (औषधियोंका रस टपकाना) आदि उपचारोंसे नेत्राभिष्यन्दरोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीवामातिविलोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः ।
अव्यक्तेऽक्षिगदे कार्यं प्रोतस्थैर्गुण्डनं बहिः ॥ २ ॥

नेत्ररोगके पूर्वरूपमें देवदारु, अतीस, लोध इनके चूर्णको समान भाग लेकर उसमें कुछ थोडासा सैंधानमक मिलाकर पोटली बनाले । फिर उस पोटलीको पलकोंके ऊपर बारम्बार फिरावे ॥ २ ॥

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः ।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

नेत्ररोग, कुक्षिजन्यरोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर ये पाँच प्रकारके रोग लङ्घन करनेसे पाँचदिनमें शान्त होजाते हैं ॥ ३ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् ।
लङ्घनं चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ॥
अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ॥ ४ ॥

स्वेद, प्रलेप, तिक्त द्रव्योंका भोजन, सेंक करना, चार दिनतक उपेक्षा करना (अर्थात ४ दिनतक आँखमें न कुछ लगाना और न डालना) तथा लङ्घन ये छः कर्म्म नेत्रोंके आमदोषको पकाते हैं । आम (नेत्रोंकी अपक्व अवस्था) में नेत्रोंमें अञ्जन आँजना या अन्य किसी प्रकारकी औषधि डालना और क्वाथ पान करना श्रेष्ठ नहीं है । तात्पर्य यह है कि, उपर्युक्त सेकादि पाँच प्रकारकी क्रिया नेत्रोंकी अपक्व अवस्थामें ४ दिनतक करनी चाहिये । चार दिनके बाद रोगीके अञ्जन लगाना, आँखें भरना और क्वाथ पान कराना आदि व्यवस्था करनी चाहिये ॥४॥

धात्रीफलनिर्यासो नवहृक्कोपं निहन्ति पूरणतः ।
सक्षौद्रसैन्धवो वा शिग्रुद्रवपत्ररससेकः ॥ ५ ॥

आमलोंका रस आँखोंमें डाले अथवा सहिंजनेके पत्तोंका रस, शहद और कुछ सैंधानमक इनको एकत्र मिलाकर आँखोंपर सेक करे तो नवीन नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दार्वीं रसाञ्जनं वापि स्तन्ययुक्तं प्रपूरणम् ।
निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्यन्दसम्भवाः ॥ ६ ॥

दारुहल्दीके क्वाथमें रसौत और स्त्रीका दूध डालकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी दाह, जलस्राव और पीडा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

करवीरतरुणकिसलयभेदोद्भवसलिलसम्पूर्णम् ।
नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात्कुपितम् ॥ ७ ॥

कनेरके नवीन पत्तोंको तोडनेसे जो रस निकले उसको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्र तत्काल आरोग्य और दृढ होजाते हैं ॥ ७ ॥

शिखरिजमूलं ताम्रकभाजन ईषच्च सैन्धवोन्मिश्रम् ।
मस्तुनिघृष्टं भरणाद्धरति च नवलोचनोत्कोपम् ॥ ८ ॥

चिरचिटेकी जडको दहीके तोडके साथ ताँबेके पात्रमें घिसकर उसमें कुछएक अर्थात् रत्तीभर सैंधेनमकका चूर्ण मिलाकर आँखोंमें भरनेसे नया नेत्राभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः ।
दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥ ९ ॥

दारुहल्दी, गेरू, हरड और रसौत इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर उसमें किञ्चित् सैंधानमक मिलाले, फिर सबको बारीक कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे । उस पोटलीको नेत्रोंके बाहर अर्थात् पलकोंपर फिरानेसे नेत्रोंके समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

तथा सावरकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः ।
कार्या हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टो बिडालकः ॥
शालक्योऽक्ष्णोर्बहिर्लेपो बिडालक उदाहृतः ॥१०॥

घीमें भुनेहुए सफेद लोधको घीमें पीसकर पलकोंपर लेपकरे अथवा घीमें भुनीहुई हरडको पीसकर नेत्रोंके पलकोंपर लेप करे तो नेत्ररोग नष्ट होता है । नेत्रोंके बाहर पलकोंपर जो औषधि लगाई जाती है उसको बिडालक कहते हैं ॥ १० ॥

गिरिमृच्चन्दननागरखटिकामृदंशतो बहिर्लेपः ।
कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः ॥ ११ ॥

गेरू, लालचन्दन, सोंठ, खडिया मिट्टी और वच इनको सम भाग लेकर एकत्र पीसकर आँखोंके बाहर पलकोंपर लेप करनेसे नेत्ररोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥

भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे ।
याता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम् ॥ १२ ॥

भुईं आमला और सैंधानमक इनको काँजीके द्वारा ताँबेके पात्रमें घिसे । जब घिसते घिसते खूब गाढा होजाय तब उसका नेत्रोंपर लेप करे । यह लेप नेत्रपीडाको दूर करता है ॥ १२ ॥

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः ।
कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ १३ ॥

वातज नेत्ररोगमें बिल्वादिपञ्चमूल, अण्डकी जड, बडी कटेरी, जयन्ती और सहिंजनेकी छाल इनके क्वाथमें शहद डालकर उसके द्वारा आश्च्योतनकर्म करना अर्थात् सुहाता २ नेत्रोंमें डालना हितकर है ॥ १३ ॥

एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाऽऽजापयः शृतम् ।
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ॥ १४ ॥

अण्डके पत्ते, जड, छाल और कटेरीकी जड इन सबके साथ बकरीके दूधको पकाकर उसको सुहाता २ लेकर नेत्रोंमें सेकन करनेसे सुख होता है ॥ १४ ॥

संपक्वेऽक्षिगदे कार्यमञ्जनादिकमिष्यते ।
प्रशस्तवर्मता चाक्ष्णोः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥
मन्दवेदनता कण्डूः पक्वाक्षिगदलक्षणम् ॥ १५ ॥

नेत्ररोगकी पक्व अवस्थामें अञ्जनादिका व्यवहार करना हितकारी है । नेत्रोंके मार्गमें प्रशस्तता, शोथ, आँसुओंके वेगकी शान्ति एवं खुजली और वेदनाका मन्द मन्द होना ये सब पक्व नेत्ररोगके लक्षण जानने चाहिये ॥ १५ ॥

बृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रोर्मूलं ससैन्धवम् ।
अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ १६ ॥

बडी कटेरीकी जडकी छाल, अण्डकी जडकी छाल, सहिंजनेकी जडकी छाल और सैंधानमक इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें खरल करके बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको आँखोंमें लगानेसे वातज नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ १६ ॥

हरिद्रे मधुकं द्राक्षां देवदारु च पेषयेत् ।
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १७ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, दाख और देवदारु इन सबको बकरीके दूधके स. ५ पीसकर आँखोंमें आँजनेसे अभिष्यन्द (नेत्रोंका दुखना) रोग दूर होता है ॥

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा तगरं च यथोत्तरम् ।
पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाऽञ्जनमिष्यते ॥ १८ ॥

गेरू एक माशा, सैंधानोन दो मासे, पीपल चार मासे और तगर आठ माशे इनको एकत्र बकरीके दूधमें अथवा जलमें पीसकर गोली बनालेवे । उस गोलीको घिसकर आँखोंमें लगानेसे नेत्ररोगमें शीघ्र लाभ होता है ॥ १८ ॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः ।
शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत् ॥ १९ ॥

पुण्डरिया, मुलहठी, हल्दी, आमले और पद्माख इनके शीतल क्वाथमें मधु मिश्रित कर नेत्रोंपर सेचन करनेसे पित्तज नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः ।
प्रातराश्च्योतनं शस्तं शोथशूलाक्षिरोगिणाम् ॥ २० ॥

दाख, मुलहठी, मंजीठ और जीवनीयगणकी समस्त औषधि इन सबके साथ यथानियम दूधको पकाकर प्रातःसमय उससे नेत्रोंको सिञ्चन करे । इससे नेत्रोंकी सूजन और शूल नष्ट होता है ॥ २० ॥

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेद्याग्निना चूर्णमथापि कल्कम् । आश्च्योतनं मानुषदुग्धयुक्तं पित्तास्रवाता-पहमक्ष्यमुक्तम् ॥ २१ ॥

नीमके पत्तोंको पीसकर उसका गोलासा बनाले, उस गोलेमें लोधका चूर्ण भरकर और उसको केलेके पत्तोंसे लपेटकर प्रज्वलित अग्निमें पकावे । फिर कुछ देरके बाद निकालकर उसमें स्त्रीका दूध मिलाकर तरल करके उसको वस्त्रमें छान लेवे । इसको नेत्रोंमें टपकानेसे रक्तपित्त और चक्षुरोग शमन होता है ॥ २१ ॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तान्नभोजनम् ।
तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम् ॥ २२ ॥

कफजनित चक्षुरोगमें लंघन, स्वेद, नस्य, तिक्तरसवाले अन्नोंका भोजन एवं तीक्ष्ण द्रव्योंसे प्रधमन (नलद्वारा फूँकना) और तीक्ष्ण द्रव्योंका प्रलेप करना उपयोगी है ॥ २२ ॥

फणिज्झकास्फोतकपित्थबिल्वपत्तूरपीलूसुरसार्जभङ्गैः ।
स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं बर्हिष्ठशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः ॥ २३ ॥

वनतुलसी विशेष, आस्फोतलता, कैथ, बेल, शालिश्चशाक, पीलुवृक्ष, तुलसी और अर्ज (तुलसभिेद) इनमेंसे किसी एक वृक्षके पत्तोंको पीसकर कुछएक गरम करके नेत्रोंके बाहर पलकोंपर सेक करे अथवा सुगन्धवाला, सोंठ, देवदारु और कूठ इनको एकत्र पीसकर पलकोंपर लेप करे तो नेत्ररोग दूर होता है ॥२३॥

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः ।
धार्यश्चक्षुषि संक्षेपाच्छोथकण्डूव्यथापहः ॥ २४ ॥

सोंठ और नीमके पत्तोंको एकत्र पीसकर उसमें थोडासा सैंधानमक डालकर गोलासा बनाले। उस गोलेको गरम करके सुहाता २ कपडेमें बांधकर आँखोंके ऊपर धारण करनेसे नेत्रोंकी सूजन, खुजली और पीडा नष्ट हो जाती है ॥

वल्कलं पारिजातस्य तैलकाञ्जिकसैन्धवम् ।
कफोद्भूताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥ २५ ॥

फरहदकी छालका रस, कडवा तेल, काँजी और सैंधानमक इन सबको एकत्र मिलाकर जब खूब गाढा न हो जाय तबतक ताँबेके पात्रमें कौडीसे खरल करे। फिर इस अञ्जनको आँखोंमें आँजे तो यह कफसे उत्पन्नहुए नेत्रोंके शूलको इस प्रकार नष्ट करदेता है, जिसप्रकार वज्र वृक्षको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ २५ ॥

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कार्यं कण्डूं च दाहं च रुजां च हन्यात् ॥

सैंधानमक और लोध इनको घृतमें भूनकर काँजीमें पीसकर सफेद कपडेमें बांधकर पोटली बनालेवे। फिर उस पोटलीमेंसे निष्पीडित रसको नेत्रोंमें टपकावे। इससे खुजली, दाह और नेत्रपीडा कम होती है ॥ २६ ॥

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्थः पित्तजो मृदुशीतलैः ।
तीक्ष्णरूक्षोष्णविशदैः प्रशाम्यन्ति कफात्मकः ॥
तीक्ष्णोष्णमृदुशीतानां शान्तः स्यात्सान्निपातिकः ॥ २७ ॥

वातज नेत्ररोगमें स्निग्ध और उष्णक्रिया, पित्तज नेत्ररोगमें मृदु और शीतल क्रिया, कफज नेत्ररोगमें तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष क्रिया एवं त्रिदोषज नेत्ररोगमें तीनों दोषोंकी मिलीहुई चिकित्सा करनेसे उक्त रोग शमन होते हैं ॥ २७ ॥

तिरीटत्रिफलायष्टिशर्कराभद्रमुस्तकैः ।
पिष्टैःशीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ २८ ॥

सफेद लोध, हरड, बहेड़ा, आमला, मुलहठी, चीनी और नागरमोथा इनको एकत्र उत्तम प्रकारसे कूट पीसकर कुछ एक शीतल जलमें घोलकर नेत्रोंपर सेचन करे तो इससे रक्तजनित नेत्ररोग नाश होता है ॥ २८ ॥

कशेरुमधुकानां च चूर्णमम्बरसंवृतम् ।
न्यस्तमप्स्वान्तरिक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥२९॥

कशेरू और मुलहठीके चूर्णकी पोटली बनाकर उसको वर्षाके जलमें भिजोकर नेत्रोंमें सेचन करे तो रक्तज चक्षुरोग आराम होता है ॥ २९ ॥

दार्वी पटोलं मधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम् ।
प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ३० ॥
विपाच्य पादशेषं तु तं पुनः कुडवं पचेत् ।
शीतीभूते तत्र मधु दद्यात्पादांशिकं ततः ॥
रसक्रियैषा दाहाश्रुरोगशोथरुजापहा ॥ ३१ ॥

दारुहल्दी, पटोलपत्र, मुलहठी, नीमके पत्ते, पद्माख, नील कमल और पुण्डरिया इन सबको समान भाग मिश्रित चार पल लेकर चौगुने जलमें पकावे । जब पककर चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर एक कुडव परिणाम उस काथको दूसरीवार पकावे । जब पकते पकते गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें चार तोले शहद मिलादेवे । यह रसक्रिया है । इसको आँखोंमें लगानेसे दाह, अश्रुपात, सूजन, वेदना और रक्तज अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ।
अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनं तु जलौकसः ॥
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ ३२ ॥

रक्तज अभिष्यन्दमें तिक्त (वक्ष्यमाण पटोलादि) घृतको पान करना, वारंवार विरेचन और नेत्रोंके चारों ओर जोंक लगवाकर रक्त निकलवाना एवं पित्तज अभिष्यन्दनाशक समस्त क्रिया करना श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे ।
घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ३३ ॥

सहिंजनके पत्तोंके रसको ताँबेके संपुटमें घिसे । फिर घृतमें मिलाकर उसकी धूप देवे तो इससे नेत्रोंकी सूजन, पीडा और आँसुओंका गिरना दूर होता है ॥ ३३ ॥

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रै-
रन्तर्गर्भे दधाना पटुतरगुडिका पिष्टलोध्रेण भृष्टा।
तूलैः सौवीरसान्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ता-
च्चक्षुःकोपप्रशान्तिं चिरमुपरि दृशोर्भ्राम्यमाणा करोति ॥३४॥

नीमके पत्ते, चमेलीके फूल और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर गोलासा बनालेवे। उस गोलेके बीचमें घीमें भूनकर लोधके चूर्णको रखकर गुटिका बनालेवे। फिर उस गुटिकाको काँजीमें भिजोई हुई रुइके द्वारा चारों ओरसे लपेटकर नेत्रोंके ऊपर बारबार फिरावे। यह गुटिका बहुत पुराने चक्षुरोगको शीघ्र नष्ट कर देती है ॥ ३४ ॥

बिल्वपत्ररसं साम्लं निघृष्टं ताम्रभाजने।
सिन्धूत्थकटुतैलाक्तं कुर्यान्नेत्रस्रवादिषु ॥ ३५ ॥

बेलपत्रीके रस, काँजी, सैंधनमक और कडवे तेलको एकत्रकर ताँबेके बर्त्तनमें अच्छेप्रकार घिसकर नेत्रोंमें लगावे। यह प्रयोग नेत्रस्राव होनेमें विशेष हितकर है॥

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे घनितमुपलघृष्टं
धूपितं गोमयाग्नौ। सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं
जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ३६ ॥

सैंधानमक, कडवा तेल और काँजी इनको काँसेके पात्रमें पत्थरसे घोटे, जब घोटते २ खूब गाढा होजाय तब आरने उपलोंकी अग्निमें डालकर धूप देवे और बकरीके दूधमें मिलाकर आँखोंमें लगावे। इससे वातज और कफज नेत्रशूल, स्राव, शोथ और लाली दूर होती है ॥ ३६ ॥

तरुस्थविद्धामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत्।
पुराणं सर्वथा सर्पिः सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ३७ ॥

आमलोंके पेडमें सुई छेदकर रस निकाले, उस रसको आँजनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं। एवं पुराने घीको पान, नस्य और लगानेसे सर्वनेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते।
अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ ३८ ॥

यही उपर्युक्त समस्त विधि अधिमन्थरोगमें भी करनी चाहिये। यदि उक्तक्रियाके द्वारा अधिमन्थरोग शान्त न हो तो दोनों भौंहोंके ऊपर दाग देवे॥

जलौकापातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम् ।
शिरावेधं प्रकुर्वीत सेकलेपांश्च शुक्रवत् ॥ ३९ ॥

नेत्ररोगकी पक्व अवस्थामें जौंक लगवाकर रक्तमोक्षण, विरेचन (दस्त) और शिरावेध करे एवं नेत्रशुक्रकी समान सेक और प्रलेप करे ॥ ३९ ॥

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः ।
क्काथो गुग्गुलुना पेयःशोथपाकाक्षिशूलहा ॥ ४० ॥
पिल्लं च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत् ।
एतैश्चापि घृतं पक्कं रोगांस्तांश्च व्यपोहति ॥ ४१ ॥

बहेडा, हरड, आमला, पटोलपात, नीमकी छाल, और अडूसेकी छाल इनके द्वारा सिद्ध कियाहुआ क्काथ गूगल डालकर पीनेसे नेत्रोंकी सूजन, नेत्रपाक, शूल, पिल्ल, व्रण, शुक्र, और लालीको नष्ट करता है अथवा उक्त समस्त द्रव्योंके क्काथ और गूगलके कल्क द्वारा सिद्ध कियेहुये घृतको सेवन करनेसेभी उल्लिखित सम्पूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादिकम् ॥

अभिघातजनित नेत्ररोगमें शीतलद्रव्यों द्वारा नेत्रमें आश्च्योतनादि कर्मकरे ॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात् स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः । स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभितापैरभ्याहतानपि तथैव भिषक् चिकित्सेत् ॥ ४२ ॥

धूप, अग्नि, धुआँ, भय, शोक, आघात और अभिताप इन कारणोंसे उत्पन्न हुए नेत्ररोगमें स्निग्ध, शीतल और मधुरद्रव्योंका प्रयोग एवं दृष्टिको निर्मल करनेवाली विधि शीघ्रही करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्यकार्यं वक्रोष्मणा स्वेदनमादितस्तु । आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात् ॥ ४३ ॥

धूल आदिके पडजानेसे नेत्राभिष्यन्द हुआ हो तो प्रथम मुँहकी भापसे फूँक फूँककर स्वेद देवे । फिर स्त्रीका दूध आँखोंमें टपकावे और पित्तज अभिष्यन्द तथा रक्ताभिष्यन्दके समान चिकित्सा करे ॥ ४३ ॥

सूर्योपरागानलविद्युदादिविलोकनेनापि हतेक्षणस्य ।
सतर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥

सूर्यग्रहण, अग्नि और बिजली इनको अधिक देखनेसे नेत्रोंमें पीडा होनेपर सन्तर्पण एवं स्निग्ध और शीतल क्रिया करे। सायंकालमें त्रिफलेके क्वाथसे नेत्रोंको सिञ्चन करने अथवा उक्त क्वाथको पीनेसे विशेष उपकार होता है ॥ ४४ ॥

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुतम् ।
अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ४५ ॥

हल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, दारुहल्दी, मिश्री, और मुलहठी इनके चूर्णको समान भाग लेकर स्त्रीके दूधमें मिलाकर आँखोंमें भरनेसे अभिघातज नेत्रशूल नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

वाताभिष्यन्दवच्चापि वाते मारुतपर्यये ।
पूर्वभक्तं हितं सर्पिःक्षीरं चाप्यथ भोजने ॥ ४६ ॥

अन्यतोवात और वातपर्यायरोगमें वातज अभिष्यन्दके समान चिकित्सा करे और भोजन करनेसे पहले घृतपान तथा भोजनके पश्चात् दुग्धपान करे ॥

वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ।
सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चापि पिबेद् घृतम् ॥ ४७ ॥

बाँदा, कैथ, बृहत्पञ्चमूल इनके कल्क और काकडासिंगीके क्वाथमें दूध सहित घृतको पकावे। इस घृतको आगन्तुक नेत्ररोगमें पान करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ४७ ॥

अधिमन्थमभिष्यंदं रक्तोत्थमथवाऽर्जुनम् ।
शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चोग्रभवान् गदान् ॥
स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥ ४८ ॥

रक्तज अभिष्यन्द, अधिमन्थ, अर्जुन, शिरोत्पात, शिराहर्ष एवं अन्यान्य घोरतर नेत्ररोगोंको दस वर्षके पुराने घृतको सेवनकर और मस्तककी शिराको वेधकर तथा पित्तज अभिष्यन्दनाशक अन्यान्य क्रियाओंको करके नष्ट करना ॥

अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान्सुशीतलान् ।
तैन्दुकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं हितम् ।
शिरावेधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ ४९ ॥

अम्लाध्युषितरोगकी शान्तिके लिये शीतल औषधियोंका प्रलेप करे। इसमें तन्दुकघृत, त्रिफलाघृत किंवा एकमात्र पुराना घृत पान करना हितकारी है। इसमें शिरावेध न कर पित्तज अभिष्यन्दनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

सर्पिः क्षौद्राञ्जनं च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥ ५० ॥

शिरोत्पातरोगमें घृत और मधुके साथ मर्दनकर सौवीराञ्जन एवं स्त्रीके दूधमें सैन्धेनमक और हीराकसीसको पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे शिरोत्पात रोगका नाश होता है ॥ ५० ॥

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात्फाणितं मधुसंयुतम् ।
मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम् ॥ ५१ ॥
व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत् ।
कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूपमेव च ॥
कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्त्तिरोगजित् ॥ ५२ ॥

शिराहर्षरोगमें राव और शहदका अञ्जन बनाकर नेत्रोंमें लगावे । अथवा रसौंतको शहदके साथ किंवा हीराकसीसको शहदके साथ मिलाकर आँखोंमें आँजे व्रण और शुक्ररोगकी शान्तिके लिये षडङ्गगुग्गुलुको पान करे । निर्मलीके फल, शङ्ख-चूर्ण, तेन्दु और चाँदी इनको समान भाग लेकर काँसीके पात्रमें स्त्रीके दूधके साथ खरलकर नेत्रोंमें लेप करनेसे नेत्रव्रण, शुक्र, लाली, पीडा दूर होय ॥

शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात् ।
अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ॥ ५३ ॥

शुक्ररोगमें नेत्रोंकी शिरामेंसे जौंक लगवाकर रक्त निकलवावे । फिर बहेडेकी गिरीको नारीके दूधके साथ पीसकर और शहद मिलाकर सन्ध्यासमय आँखोंमें लगावे । इससे शुक्ररोग नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

एकं वा पुण्डरीकं च छागीक्षीरावसेचितम् ।
रागाश्रुवेदनां हन्यात् क्षतपाकात्ययाजकाः ।
तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्याक्षिपूरणात् ॥ ५४ ॥

केवल एकमात्र पुण्डेरियाको पीसकर वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनालेवे, उस पोटलीको बकरीके दूधमें डुबोकर रखदेवे । जब दूध पीला होजाय तब उससे नेत्रोंको सिञ्चन करे । यह प्रयोग नेत्रोंकी लाली, अश्रुपात, वेदना क्षत एवं पाकादिकों निवारण करता है । तूतियाको जलमें घिसकर आँखोंमें पूरनेसे शुक्ररोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

समुद्रफेनदक्षाण्डत्वक्सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्त्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा ॥ ५५ ॥

समुद्रफेनका चूर्ण, मुर्गीके अण्डेका छिलका, सैंधानमक और सहिंजनेके बीज इन सबको शहद और सहिंजनेके रसमें खरल करके बत्ती बनालेवे। यह बत्ती नेत्रोंमें लगानेसे शुक्ररोगको नष्ट करती है ॥ ५५ ॥

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च। क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तं सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ ५६ ॥

आमले, नीमके पत्ते, कैथके पत्ते, मुलहठी, लोध, खैर और तिल इनके शीतल क्वाथके द्वारा नेत्रोंमें छींटे लगानेसे यह क्वाथ सर्वप्रकारके शुक्ररोगको नष्टकरताहै॥

क्षुण्णपुन्नागपत्रेण परिभावितवारिणा।
श्यामाक्काथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम् ॥ ५७ ॥

नागकेशरके पत्तोंको कुचलकर भावना देकर निकालेहुए रससे अथवा श्यामलताके क्वाथसे नेत्रोंको सिञ्चन करनेसे कुसुमनामक नेत्ररोग दूरहोताहै ॥

दक्षाण्डत्वक्शिलाशङ्खकाच चन्दनगैरिकैः।
तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्म्मादिविलेखनः ॥ ५८ ॥

मूर्गीके अण्डेका छिल्का, मैनसिल, शंखचूर्ण, कांच, लालचन्दन और गेरू इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे यह योग कुसुम और अर्मादि रोगको विनाश करता है ॥ ५८ ॥

शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि।
शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ५९ ॥

सिरसके बीज, कालीमिरच, पीपल और सैंधानमक इनके चूर्णको समान भाग लेकर शहदमें खरल करके सलाईसे नेत्रोंमें लगावे अथवा सैंधेनमकसे घर्षण करे तो शुक्र (फूली) रोग नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात्।
नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि ॥ ६० ॥

करञ्जके बीजोंके चूर्णको ढाकके फूलोंके स्वरससे सात दिनतक भावना देकर बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे बहुत पुराना कुसुमरोगभी तत्काल नष्ट होता है ॥ ६० ॥

सैन्धवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खनाभयः ।
सताम्ररजसो वर्त्तिः पिष्टा शुक्रविनाशिनी ॥ ६१ ॥

सैंधानमक, त्रिफला, पीपल, कुटकी, शंखनाभि, ताँबेकी भस्म इन सबको शहदमें घोटकर बत्ती बनालेवे। फिर उसके द्वारा अंजन लगावे तो नेत्र शुक्र दूर होय ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम् ।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम् ॥ ६२ ॥

लालचन्दन, सैंधानमक, हरड और ढाकका गोंद इन सबको क्रमशः बढाता हुआ लेवे। फिर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सलाईसे लगावे तो नेत्रोंका शुक्र और अर्मादिरोग नाश होता है ॥ ६२ ॥

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रार्मतिमिरेषु च ॥ ६३ ॥

शंखनाभि ४ भाग, मैनसिल २ भाग, कालीमिरच १ भाग और सैंधानमक आधाभाग इन सबके चूर्णको शहदमें मिलाकर सलाईके द्वारा नेत्रोंके शुक्र, अर्म और तिमिर रोगमें आँजना श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥

ताप्यंमधुकसारो वा बीजमक्षस्य सैन्धवम् ।
मधुनाऽञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥ ६४ ॥

सोनामाखी, मुहलठीका सत्त, बहेडेकी गुठलीकी मींग और सैंधानमक इन चारोंमेंसे किसी एकको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे शुक्ररोग शमन होता है। ये चारों ही योग शुक्ररोग नाशक हैं ॥ ६४ ॥

वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं चापि घनोन्नतम् ॥६५॥

कपूरको खूब बारीक पीसकर बडके दूधमें मिश्रित करके आँखोंमें आँजनेसें अत्यन्त घन और उन्नत शुक्ररोगभी तत्काल नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च ।
करीषस्य च वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥ ६६ ॥
करभास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम् ।
सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत् ॥ ६७ ॥

एतच्छुक्रेष्वसाध्येषु कृष्णीकरणमुत्तमम् ।
यानि शुक्राणि साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ ६८ ॥

ताडकी जटा, नारियलकी गिरी, भिलावे और बाँसके अंकुर इन सबको तिलनालकी अग्निके द्वारा पृथक्क पृथक्क भस्मकर सबका क्षार ग्रहण करे। फिर उस क्षारको अठगुने जलमें पकावे। जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उसको २१ बार छाने, उस जलमें ऊँटकी हड्डीका चूर्ण डालकर सात अथवा आठ दिनतक खरल करे। जब अच्छे प्रकार घुटकर बारीक होजाय तब सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उसको शहदमें मिलाकर सलाईसे आँखोंमें लगावे तो यह असाध्य शुक्ररोगमें फूलीको दूरकर तत्काल कृष्णताको उत्पन्न करता है और साध्यशुक्रको नष्ट करनेके लिये तो यह परमोत्तम अञ्जन है ॥ ६६-६८ ॥

अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम् ।
व्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत्सर्पिषा सह ॥ ६९ ॥

अजकानामक नेत्ररोगमें नेत्रके समीपकी शिराको सुईसे बेधकर जल निकाले उस व्रणको उपलोंके चूर्णके साथ घृत मिलाकर लगानेसे नेत्रव्रण शीघ्र भरजाता है ॥ ६९ ॥

सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमन्वितम् ।
शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ७० ॥

सैंधानमक, घोडेकी खुर और गोरोचन इनको समान भाग लेकर लसौडेकी छालके रसमें मिलाकर आँखोंमें भरनेसे अजकारोग दूर होता है ॥ ७० ॥

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरे-
ऽथ पित्तजे । समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां
विदधीत युक्तितः ॥ ७१ ॥

पित्तजतिमिररोगमें त्रिफलेके चूर्णको घृतके साथ, वातजतिमिरमें तेलके साथ और कफजतिमिररोगमें मधुके साथ मिलाकर युक्तिपूर्वक भक्षण करे ॥ ७१ ॥

कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।
मधुना सर्पिषा वापि समस्ततिमिरापहम् ॥ ७२ ॥

त्रिफलेका कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण, मधु और घृतके साथ मिश्रितकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके तिमिररोग नष्ट होते हैं ॥ ७२ ॥

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम् ।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥ ७३ ॥

जो पुरुष पथ्यद्रव्योंका भोजन करता हुआ प्रतिदिन सन्ध्यासमय त्रिफलेके चूर्णको घृत और मधुके साथ मिलाकर भक्षण करे तो वह मनुष्य सम्पूर्ण नेत्र रोगोंसे इस प्रकार मुक्त होता है, जैसे धनहीन मनुष्य सेवकोंसे छूटजाता है ॥ ७३ ॥

सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ॥

तिमिररोगी निरन्तर घृत डालकर त्रिफलेके क्राथको पान करे ॥

त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ।
जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥ ७४ ॥

प्रतिदिन प्रातःकालमें त्रिफलेके क्राथसे नेत्रोंको धोनेसे उत्पन्नहुए नेत्ररोग नष्ट होजाते हैं और फिर नेत्ररोग कभी पैदा नहीं होते हैं ॥ ७४ ॥

जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरन्ध्रम् ।
निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः ॥ ७५ ॥

प्रातः समय बहुतसे शीतल जलको मुखमें भरकर उस जलके द्वारा निर्दयी बनकर जोर जोरसे रोगीके नेत्रोंपर कुल्ले करे इस प्रकार करनेसे तिमिररोग बहुत जल्द नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्दीयते यदि ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ७६ ॥

भोजन करनेके बाद हाथकी हथेलीको जलसे घिसकर नेत्रोंमें बारम्बार लगावे तो शीघ्रही वह जल तिमिररोगको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥

पत्त्रगैरिककर्पूरयष्टिनीलोत्पलाञ्जनम् ।
नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम् ॥ ७७ ॥

तेजपात, गेरू, कपूर, मुलहठी, नील कमल, रसौत और नागकेशर इनको समान भाग लेकर एकत्र कूटपीसकर आँखोंमें आँजनेसे समस्त तिमिररोग नष्ट होते हैं ॥

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मनः शिला ।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥ ७८ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ।
पिच्चिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम् ॥ ७९ ॥

शंख चार भाग, मैनसिल दो भाग, मिरच एक भाग और सैंधानमक आधा भाग इनको एकत्र कूट पीस छानकर अञ्जन बनालेवे। इस अञ्जनको जलके साथ मिलाकर लगानेसे तिमिररोग, दहीके तोडके साथ लगानेसे अर्बुदरोग, शहदमें

मिलाकर लगानेसे पिच्चिटरोग और स्त्रीके दूधमें मिलाकर लगानेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च ।
भद्रमुस्तं विडङ्गानि ससमं विश्वभेषजम् ॥ ८० ॥
गोमूत्रेण गुडी कार्या छागमूत्रेण चाञ्जनात् ।
ज्वरांश्च निखिलान्हन्ति भूतावेशं तथैव च ॥ ८१ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा
नक्तान्ध्यं भृङ्गराजेन नारीक्षीरेण पुष्पकम् ॥
शिशिरेण परिस्रावमध्रुषं पिच्चिटं तथा ॥ ८२ ॥

हल्दी, नीमके पत्ते, पीपल, मिरच, नागरमोथा, वायविडङ्ग और सोंठ इनको समान भाग लेकर एकत्र गोमूत्रके साथ उत्तम प्रकार खरल करके गोली बना-लेवे । इस गोलीको बकरीके मूत्रमें घिसकर लगानेसे सर्व प्रकारके आगन्तुक ज्वर और भूतावेश तथा जलके साथ लगानेसे तिमिररोग, मधुके साथ लगानेसे पटलरोग, भाँगरेके स्वरसके साथ लगानेसे रतौंधा, स्त्रीके दूधके साथ लगानेसे पुष्पकरोग और शीतलजलके साथ मिलाकर लगानेसे परिस्राव, अध्रुष और पिच्चि-टरोग नष्ट होते हैं ॥ ८०-८२ ॥

भूमौ निघृष्टयाऽङ्गुल्या अञ्जनं शमनं तयोः ।
तैमिर्यकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम् ॥८३॥

पृथ्वीमें अंगुलीको घिसकर फिर अञ्जन लगानेसे तिमिर, काच, अर्म और धूमिकारोगका नाश होता है ॥ ८३ ॥

त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयसि गोमूत्रे ।
नागं सप्तनिषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥ ८४ ॥

सीसेको अग्निमें तपाकर त्रिफलेके क्वाथ, भाँगरेके स्वरस, सोंठके क्वाथ, शहद, घी, बकरीके दूध और गोमूत्र इनमें क्रमपूर्वक सातवार बुझाकर उसकी सलाई बनालेवे । फिर उस सलाईको पत्थरपर घिसकर अञ्जन लगावे तो इससे गरुडके समान दृष्टिशक्ति अत्यन्त सूक्ष्म होजाती है ॥ ८४ ॥

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले त्वौडुम्बरे भाजने
मलं तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौञ्जं विशोष्यातपे ।

तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जने शस्यते
काचार्मार्ज्जुनपिच्चिटे सतिमिरे स्रावं च निर्वापयेत् ॥८५॥

इमलीके पत्तोंके स्वरसको ताँबेके पात्रमें (या गूलरकी लकडीके बने पात्रमें) रखकर उसमें पोहकर मूल और सैंधानमक डालकर खरल करे। फिर धूपमें सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे। उस चूर्णको काले सुरमेके साथ मिलाकर सलाईसे आँखोंमें आँजे तो इससे काच, अर्म, अर्जुन, पिच्चिट और तिमिररोग एवं नेत्रोंमेंसे जलका गिरना नष्ट होजाता है ॥ ८५ ॥

चित्राषष्ठीयोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य तेनाक्षि।
सममञ्जनेन तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि ॥ ८६ ॥

चित्रानक्षत्रयुक्त षष्ठी (छठ) तिथिमें सैंधेनमकको बारीक पीसकर आँखोंमें आँजनेसे एक वर्षका पुराना असाध्य तिमिररोगभी नष्ट होता है ॥ ८६ ॥

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम्।
तत्स्रुतं सघृतं तत्र भूयः क्षौद्रं क्षिपेद्घने॥
शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥ ८७ ॥

खसके क्वाथमें पीपलका चूर्ण, सैन्धानमकका चूर्ण और घृत डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद मिलालेवे। फिर इसको नेत्रोंमें लगावे। यह अञ्जन सर्व प्रकारके तिमिररोगोंमें हितकारी है ॥ ८७ ॥

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया।
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥ ८८ ॥

आमलेका क्वाथ, रसौत, शहद और घृत इनको एकत्र यथाविधि पकाकर नेत्रोंमें डालनेसे पित्तज. वातज चक्षुरोग एवं तिमिर और पटल नष्ट होता है ॥

शृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम्।
नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ ८९ ॥

अदरख, भाङ्गरा इनके रसको और मुलहठीके चूर्णको तिलके तेलमें मिलाकर सूँघनेसे महापटल रोगका नाश होता है ॥ ८९ ॥

लिङ्गनाशे कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम्।
विद्धा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत् ॥ ९० ॥

ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ।
नयनं सर्पिषाऽभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ९१ ॥
ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च ।
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥
तत्कालं नाचरेदूर्द्ध्वं यन्त्रणा स्नेहपीतवत् ॥ ९२ ॥

कफसे उत्पन्न हुए लिङ्गनाश (दृष्टिनाशक) रोगमें विधिपूर्वक स्वभावजन्य छिद्र-को ताँबेकी सलाईसे वेधकर नेत्रोंको स्त्रीके दूधसे भरदेवे। जब कुछ स्वरूप दीखने लगे तब सलाईको धीरे धीरे निकाललेवे और नेत्रोंको घीसे चुपडकर कपडेकी पट्टी से बाँधदेवे। रोगीको धूप, धुआँ और वायुसे रहित स्थानमें चित्त लिटाकर सुला-देवे। एक सप्ताह पर्यन्त रोगीको उद्गार (डकार), खाँसी, छींक, थूकना और कम्प न हो इस विषयमें विशेष लक्ष्य रखना चाहिये और स्नेहपान करनेवालेकी समान पथ्यादिका प्रयोग करना चाहिये॥ ९०–९२ ॥

त्र्यहात्त्र्यहाद्धावयेत्तत् कषायैरनिलापहैः ॥ ९३ ॥
वायोर्भयात् त्र्यहादूर्ध्वं स्नेहयेदक्षि पूर्ववत् ।
दशरात्रं तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥ ९४ ॥
पश्चात्कर्म च सेवेत लङ्घनं चापि मात्रया ।
रागश्चोषोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराक्षता ॥ ९५ ॥
अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः ।
अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ ९६ ॥

फिर तीन तीन दिनके पश्चात् नेत्रोंके बन्धनको खोलकर वातनाशक औषधियोंके क्काथसे नेत्रोंको धोवे और वायु लगनेके भयसे तीसरे दिन घृतसे नेत्रोंको चुपडकर पूर्ववत् बाँधदेवे। इस प्रकार करते करते जब दश दिन बीत जाएँ तब दृष्टिप्रसन्नता-कारक क्रिया करे और हलके अन्नको मात्रानुसार देवे। यदि नेत्रोंको कुविधिसे बेधनेसे अथवा रोगीके अहित आचरण करनेसे नेत्रोंमें लाली, चोष, अर्बुद, सूजन, बुद्बुद, केकडेकी समान नेत्रोंका होना और अधिमन्थादि दुष्ट रोग उत्पन्न होजायँ तब विधिपूर्वक चिकित्सा कर उनको दूर करे॥ ९३–९६ ॥

रुजायामक्षिरोगे वा भूयो योगान्निबोध मे ।
कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकशारिवाः ॥
सुखालेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥ ९७ ॥

नेत्ररोगमें उक्त पीडा होनेपर क्या करना चाहिये इसको कहते हैं:-दूब, जौ, गेरू और अनन्तमूल इनको समान भाग लेकर घृतमें पीसकर नेत्रोंपर लेप करे तो नेत्रोंकी पीडा और लाली दूर होती है ॥ ९७ ॥

पयस्याशारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि ।
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ॥ ९८ ॥

क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, तेजपात, मंजीठ और मुलहठी इनको समानांश लेकर बकरीके दूधमें खरल करके अग्निपर कुछ एक गरम कर नेत्रोंपर सुहाता२लेप करें तो शीघ्र आराम होता है ॥ ९८ ॥

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
काकोल्यादिप्रतीवापं तद्युञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ॥ ९९ ॥

भद्रदार्व्यादिगणोक्त औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ दूध चार सेर और काकोल्यादिगणकी औषधियोंका कल्क समान भाग मिश्रित सोलह तोला तथा घृत एक सेर लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे इस घृतको नस्य, पान और अभ्यंजनादि सर्व कर्मोंमें प्रयोग करना चाहिये ९९

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।
ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान् कीर्त्तितं यथा ॥ १०० ॥

यदि उपर्युक्त क्रियासेभी नेत्रोंका शूल न शान्त हो तो स्निग्धस्वेद देकर रोगीकें ललाटकी शिराका वेधकर रक्तमोक्षण करे और उस स्थानको दग्ध करदेवे १००

दृष्टेरथ प्रसादार्थमञ्जनं शृणु मे शुभे ।
मेषशृङ्गस्य पत्राणि शिरीषधवयोरपि ॥ १ ॥
मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तां वैदूर्यमेव च ।
अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत् ॥
प्रणिधाय तु तद्वर्त्तिं योजयेदञ्जने भिषक् ॥ २ ॥

अब मैं दृष्टिकी प्रसन्नताके लिये अञ्जन कहता हूँ उसको सुनो । मेढासिङ्गी, सिरस, धव और चमेली इन सबके फूल, मोती और वैडूर्यमणि इन सबोंको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर ताँबेके बर्त्तनमें सात दिनतक रक्खे, फिर उसकी बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रगत सर्व प्रकारकी पीडा नष्ट होती है ॥ १०१-२ ॥

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला।
मरिचानि च तां वर्तिं कारयेद्वापि पूर्ववत् ॥ ३ ॥

रसौत, मूँगा, समुद्रफेन, मैनसिल और काली मिरच इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर और ताँबेके पात्रमें सात दिनतक रखकर बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी सब पीडा शान्त होती है ॥ ३ ॥

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालीशं स्वर्णगैरिकम्।
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ ४ ॥

रसौत, घी, तालीसपत्र, शहद और पीलागेरू ये सब समान भाग लेकर गौके गोबरके रसमें खरल करले, फिर उसकी बत्ती बनाकर पित्तजदृष्टि दोषको शमन करनेके लिये नेत्रोंमें लगावे ॥ ४ ॥

नलिनोत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम्।
गुडिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ ५ ॥

कमलकेशर और नीलोत्पलकी केशर इनको गौके गोबरके रसमें घोटकर गोली बनालेवे। उस गोलीको घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे दिनकी और रात्रिकी अन्धता नष्ट होजाती है ॥ ५ ॥

नदीजशंखत्रिकटून्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे
गवां यकृत्। सचन्दनेयं गुडिकेक्षणाऽञ्जने प्रशस्यते
रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ ६ ॥

सैंधानमक, शंखनाभि, सोंठ, मिरच, पीपल, रसौत, मैनसिल, हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचन और लालचन्दन इनको समान भाग लेकर जलमें पीसकर गोली बनावे। उस गोलीको नेत्रोंमें आँजनेसे दिन और रात्रि दोनोंकी अन्धता दूर होकर अच्छे प्रकार दीखने लगता है ॥ ६ ॥

कणा छागयकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेषिता।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ ७ ॥

पीपलको, बकरीके यकृत् (जिगर) में पकाकर और उसीके रसमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे अथवा उक्त प्रकारसे कालीमिरचको पकाकर और शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे रात्र्यन्धता (रतौंधा) तत्काल नष्ट होती है ॥ ७ ॥

पचेत्तु गोधां हि यकृत्प्रकल्पितं प्रपूरितं मागधिकाभिरग्निना।
निषेवितं तद् यकृदञ्जनेन च निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ८

गोहके यकृत (पिल्ली) को पीपलके चूर्णसे भरकर जलमें मन्दमन्द अग्निद्वारा पकाकर भक्षणकरे अथवा उसी पकायेहुए जलमें उसको घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो नक्तान्ध्य (रतौंधा) निश्चय दूर होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

दध्ना निघृष्टं मरिचं रात्र्यन्धाञ्जनमुत्तमम् ॥

दहीके साथ काली मिरचोंको घिसकर नेत्रोंमें आँजना रतौंधेकी अत्युत्तम है ॥

ताम्बूलयुक्तखद्योतभक्षणं च तदर्थकृत् ॥ ९ ॥

पानके रसमें पटबीजनेको घिसकर भक्षण करनेसे भी रात्र्यन्धता दूरहोती है ॥

शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यमञ्जनाद्विनिहन्ति ॥

शफरीमत्स्य (एक प्रकारकी मछली) को अन्तर्धूमकी रीतिसे दग्धकर उसके क्षारको शहदमें मिलाकर आँजनेसे रतौंधी नष्ट होती है ॥

तद्वद्रामठटङ्कणकर्णमलं चैकशोऽञ्जनान्मधुना ॥ ११० ॥

हींग, सुहागेकी खील और कानका मैल इनको एकत्र शहदके साथ खरलकर नेत्रोंमें आँजनेसे रात्र्यन्धताका नाश होता है ॥ ११० ॥

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम् ।
नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम् ॥ ११ ॥

पथ्यद्रव्योंका सेवन करनेवाले मनुष्योंकी नक्तान्धता (रतौंधी) रोहितमछलीके अण्डेको भाँगरेके रसमें पकाकर सातदिन सेवन करनेसे नष्ट होती है ॥

घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथा च तैलं पवनासृगुत्थयोः ॥

पित्तज तिमिररोगमें एकमात्र घृतका नस्य और वातज तथा रक्तज तिमिर रोगमें तेलका नस्य देना हितकर है ॥ १२ ॥

अर्मं तु च्छेदनीयं स्यात्कृष्णप्राप्तं भवेद्यथा ।
बडिशाविद्धमुन्नम्य त्रिभागं चात्र वर्जयेत् ॥ १३ ॥

यदि अर्मनामक चक्षुरोग बढकर नेत्रके कृष्णभागमें पहुँच गया हो तो त्रिभाग अर्थात् कनीनिकाको त्यागकर सुईसे उसको ऊँचाकर बडिशयन्त्रसे वेध देवे और मण्डलके अग्रभागको अस्त्रसे छेदन करे ॥ १३ ॥

पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोहचूर्णं ससैन्धवम् ।
भृङ्गराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ १४ ॥

पीपल, हरड, बहेडा, आमला, लाख, लोहचूर्ण और सैंधानमक इनको समान भाग लेकर भाँगरेके रसमें खरल करके गोली बनालेवे ॥ १४ ॥

अर्मं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथाऽर्ज्जुनम् ।
अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ १५ ॥

यह गोली घिसकर आँखोंमें लगानेसे अर्म, तिमिर, काच, खुजली, शुक्र, अर्जुन, अजका और अन्यान्य सम्पूर्ण नेत्रविकारोंको समूल नष्ट करदेती है ॥ १५ ॥

पुष्पाख्याताक्ष्र्यजसितोदधिफेनशङ्खसिन्धूत्थगैरिकशिला-
मरिचैः समांशैः। पिष्टैश्च माक्षीकरसेन रसक्रियेयं हन्त्य
र्मकाचतिमिरार्ज्जुनवर्त्मरोगान् ॥ १६ ॥

पुष्पकसीस, रसौत, मिश्री, समुद्रफेन, शंखनाभि, सैंधानमक, गेरू, मैनसिल और मिरच सबको समान भाग लेकर शहदके साथ खरल करके नेत्रोंमें आँजनेसे अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मादिनेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १६ ॥

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनैः ।
स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकामञ्जनैस्ततः ॥ १७ ॥

शुक्तिकानामक नेत्ररोगको दस वर्षका पुराना घृत पानकर तथा विरेचन, प्रलेप, सेचन और मधुर तथा शीतल द्रव्योंके अञ्जनका प्रयोग इत्यादि क्रियाओंका उपयोग करके शमन करे ॥ १७ ॥

प्रवालमुक्तावैदूर्यशङ्खस्फटिकचन्दनम् ।
सुवर्णरजतक्षौद्रमंजनं शुक्तिकापहम् ॥ १८ ॥

मूँगा, मोती, वैदूर्यमणि, शंखनाभि, स्फटिकमणि, लालचन्दन, सोना और चाँदी इनको समान भाग लेकर शहदमें खरल करके अञ्जन बनालेवे। यह अंजन नियमपूर्वक लगानेसे शुक्तिकारोगको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

शंखः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन च ।
सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्ज्जुने ॥ १९ ॥

शंखनाभिकी भस्मको शहदमें मिलाकर अथवा निर्मलीके चूर्णको सैंधेनमकके साथ किम्वा समुद्रफेनके चूर्णको मिश्रीके साथ मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे अर्जुन-नामक नेत्ररोगमें लाभ होता है ॥ १९ ॥

पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्ज्जुनशान्तये ।

अर्जुनरोगको नष्ट करनेके लिये पित्तनाशक सम्पूर्ण क्रियाकरे ॥

वैदेही श्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं समम् ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टमंजनं पिष्टकापहम् ॥ १२० ॥

पीपल, सहिंजनेके बीज, सैंधानमक और सोंठ इनको बराबर बराबर लेकर बिजौरे नींबूके रसमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे पिष्टकारोग दूर होता है ॥ १२० ॥

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः ।
विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥ २१ ॥

कफजउपनाहरोगको; व्रीहिमुखनामक अस्त्रसे विदीर्ण करके पीपलके चूर्ण शहद और सैंधनमकको एकत्र पीसकर मण्डलके अग्रभागपर अस्त्रद्वारा लेखन करे फिर चारों ओरसे बाँधदेवे ॥ २१ ॥

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्तिम् ।
तयाऽञ्जयेदश्रुमति प्रगाढमक्ष्णोर्हरेत्कोपमतिप्रवृद्धम् ॥ २२ ॥

हरडकी गुठलीकी मींग ३ तोले, बहेडेकी मींग २ तोले और आमलोंकी मींग १ तोला लेकर जलमें खरल करके बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको शहदके साथ घिसकर आँखोंमें लगानेसे नेत्रोंके अत्यन्त वृद्धिगत समस्तरोग नष्ट होते हैं ॥२२॥

स्रावेषु त्रिफलाक्काथं यथादोषं प्रयोजयेत् ।
क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्याच्छिरां तथा ॥ २३ ॥

पित्तज और रक्तजनित नेत्रोंके स्राव होनेमें त्रिफलेका काढा शहदके साथ, वातज, पित्तज और रक्तजनेत्रस्रावमें उक्त क्वाथ घीके साथ एवं कफज नेत्रस्रावमें पीपलके चूर्णके साथ पान कराना चाहिये । यदि इससेभी स्राव होना बन्द न होतो शिराको वेधना चाहिये ॥ २३ ॥

त्रिफलामूत्रकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः ।
रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥ २४ ॥

त्रिफलेका क्वाथ १६ तोले, गोमूत्र १६ तोले एवं हीराकसीस, सैंधानमक और रसौत इनका चूर्ण समान भाग मिश्रित ८ तोले । सबको एकत्र मिलाकर लेहकी समान पाक करे । फिर कृमिग्रंथिरोगमें इस अवलेहके द्वारा प्रतिसारण क्रिया करे ॥ २४ ॥

वासकादि ।

अटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः ।
रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुषां वासकादिकम् ॥ २५ ॥

अडूसेकी छाल, हरड, नीमकी छाल, आमले, नागरमोथा, बहेडा, परवल इन सबका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उससे नेत्रोंको सेचन करे, गूगलको डालकर पान करे तो यह वासकादि क्वाथ कफसे उत्पन्नहुए नेत्रस्रावको नष्टकरताहै ॥ २५ ॥

बृहद्वासकादि।

वासाघनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक्। कलिङ्गदार्वीदहनानि शुंठीभूनिम्बधात्रीत्वभयाविभीतम्। श्यामायवक्काथमथाष्टभागं पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ॥२६॥ तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदं च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणं च। निहन्ति सर्वान्नयनामयांश्च भृगूपदिष्टं नयनामयेषु॥ २७॥

अडूसेकी छाल, नागरमोथा, नीमकी छाल, परवल, कुटकी, गिलोय, लाल चन्दन, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, दारुहल्दी, चीता, सोंठ, चिरायता, आमले, हरड, बहेडा, शारिवा और जौ इन सब औषधियोंका अष्टावशेष क्वाथ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करनेसे तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुद, शुक्र, व्रण और अव्रणादि समस्त नेत्रसम्बन्धीरोग नष्ट होतेहैं। यह क्वाथ सर्व प्रकारके नेत्ररोगमें हितकारी है ऐसा भृगुजीने कहा है॥ २६॥ २७॥

कज्जल।

संगृह्योपरतानलक्तकरसेनामृज्य गण्डूपदान्
लाक्षारञ्जिततूलवर्तिमिलितान्यष्टीमधून्मीलितान्।
प्रज्वाल्योत्तमसार्पिषाऽनलशिखासन्तापजं कज्जलं
दूरासन्ननिशान्ध्यसर्वतिमिरप्रध्वंसकृच्चोदितम्॥ २८॥

मरेहुए केंचुएको लेकर आलके जलमें सात दिनतक भिजोकर धूपमें सुखा लेवे। जब वह अच्छे प्रकार सूखजाय तब उसका चूर्ण करके उसकी बराबर भाग मुलहठीका चूर्ण मिलालेवे। फिर उस समस्त चूर्णको आलके बीचमें रखकर डोरेसे बाँधकर बत्ती बनालेवे। फिर उसबत्तीको घमिं सानकर अग्निपर तपावे और उसके नीचे एक काँचका बर्त्तन रखदेवे। इसप्रकार करनेसे उस बर्त्तनमें जो कज्जल गिरे उसको लेकर नेत्रोंमें आँजनेसे दूरान्ध्य, आसन्नान्ध्य और सर्वप्रकारका तिमिररोग नष्ट होता है॥ २८॥

श्रीनागार्ज्जुनाञ्जन।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टितुत्थरसाञ्जनम्।
प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश॥ २९॥
द्रव्याण्येतानि सञ्चूर्ण्य वर्त्तिः कार्या नभोऽम्बुना।
नागार्ज्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके॥ १३०॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक, मुलहठी, तूतिया, रसौत, पुण्डेरिया, वायविडंग, लोध और ताम्रभस्म इन चौदह औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर वर्षाके जलमें खरल करके बत्ती बनालेवे । पटना नगरमें इस बत्तीको श्रीनागार्जुनजीने शिलास्तम्भपर लिखाहै ॥ ३०॥

नाशिनी तिमिराणां च पटलानां विशेषतः ।
सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥३१॥
किंशुकस्वरसेनाथ पिष्टं पुष्पं च रक्तताम् ।
अञ्जनाल्लोध्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥३२॥
चिरं सञ्छादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता ।
उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥ ३३ ॥

इसको स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे तिमिररोग, पटलरोग, विशेषकर नेत्रोंके समस्त रोगोंका निश्चय नाश होता है । टेसूके फूलोंके स्वरसमें घिसकर आँजनेने पिल्व, पुष्प और लाली दूर होती है, लोधके क्वाथमें मिश्रितकर लगानेसे आसन्न-तिमिर और बकरेके मूत्रमें घिसकर लगानेसे पुराना जाला और नेत्रोंका कठिनतासे मिचना दूर हो जाता है एवं दृष्टि अत्यन्त निर्मल होजाती है ॥ ३१-३३ ॥

व्योषाद्यञ्जन ।

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाञ्जनसंयुता ।
त्रिफलाजलसंपिष्टा कोकिला तिमिरापहा ॥३४॥

सोंठ, पीपल, मिरच, लोहभस्म, सैंधानान, त्रिफला और काला सुरमा इनको समान भाग लेकर त्रिफलेके क्वाथमें खरलकर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे कोकिला और तिमिररोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

त्रिकट्वाद्यञ्जन ।

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि द्वे च निशे सह सैन्धवकं च ।
विल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥ ३५ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, करञ्जके फल, हल्दी, दारुहल्दी, सैंधानमक, बेलकी जड, वरनाकी जड और शंखनाभि इन दशों औषधोंको समान भाग लेकर जलमें पीसकर अञ्जन बनालेवे ॥ ३५ ॥

हन्ति तमस्तिमिरं पटलं वै पिच्चिटशुक्रमथार्बुदकं च ।
अञ्जनकं जनरञ्जनकं च दृङ् न विनश्यति वर्षशतेऽपि ॥३६॥

यह अञ्जन नेत्रोंमें नित्यशः आँजनेसे तिमिर, पटल, अन्धकार, पिच्चिट, शुक्र और अर्बुदादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है और दृष्टिको प्रसन्न करता है। इसको निरन्तर सेवन करनेसे सौ वर्षतक भी दृष्टिशक्ति नष्ट नहीं होती ॥ ३६ ॥

व्रणशुक्रहरीवर्त्ति ।

चन्दनगैरिकलाक्षामालतीकलिकाः समाः ।
व्रणशुक्रहरी वर्त्तिः शोणितस्य प्रसादनी ॥ ३७ ॥

लालचन्दन, गेरू, लाख और चमेलीकी कलियें इन सबको समानांश लेकर वर्षाके जलमें खरल करके छायामें सुखाकर बत्ती बनावे। इस बत्तीको शहदमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे रक्तज व्रण शुक्ररोग दूर होता है ॥ ३७ ॥

दन्तवर्त्ति ।

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ।
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ॥
क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्तिर्निवर्त्तयेत् ॥ ३८ ॥

हाथी, सूकर, ऊँट, गौ, घोडा, बकरा और गधा इनमेंसे किसी एक जीवका दाँत एवं शंख, मोती और समुद्रफेन ये प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला और काली-मिरच तीन माशे लेवे। सबको एकत्र जलके साथ बारीक पीसकर बत्ती प्रस्तुत करे। यह दन्तवर्ति यथाविधि प्रयोग करनेसे नेत्रोंके क्षतशुक्र रोगको निवारण करती है ॥ ३८ ॥

सुखावतीवर्त्ति ।

कतकस्य फलं शंखः त्र्यूषणं सैन्धवं सिता ।
फेनो रसांजनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥३९॥
कुक्कुटाण्डकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोहति ।
तिमिरं पटलं काचमर्म शुक्रं तथैव च ॥
कण्डूक्लेदाऽर्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥ १४० ॥

निर्मलीके फल, शंखनाभिकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानोन, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, वायविडङ्ग, मैनशिल और मुर्गीके अण्डेके छिलके इन सबको बराबर बराबर लेकर शीतल जलमें खरल करके बत्ती बनालेवे। यह बत्ती शहदमें मिलाकर लगानेसे नेत्रोंके तिमिर, पटल, काच, अर्म, शुक्र, कण्डू, क्लेद, अर्बुद और मैलादि विकारोंको तत्काल हरण करती है ॥ ३९ ॥ १४० ॥

चन्द्रोदयावर्त्ति।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च।
विभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनःशिला॥
सर्वमेतत्समाहृत्य च्छागीक्षीरेण पेषयेत्॥ ४१॥

हरड, वच, कूठ, पीपल, मिरच, बहेडेकी गुठलीकी मींग, शंखनाभि और मैनसिल सबको समान भाग लेकर, बकरीके दूधमें खरल करके बत्ती बनालेवे॥

नाशयेत्तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्बुदानि च।
अधिकानि च मांसानि यश्च रात्रौ न पश्यति॥ ४२॥
अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन नश्यति।
वर्त्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी॥ ४३॥

यह चन्द्रोदयानामवाली बत्ती निरन्तर प्रयोग करनेसे तिमिर, कण्डू, पटल, अर्बुद, अधिमांस, रात्र्यन्ध, और जो दो वर्षकाभी होगया हो ऐसे पुष्प आदि नेत्ररोगोंको एक मासमेंही नष्ट कर देती है और दृष्टिको प्रसन्न करती है॥४२॥४३॥

कुमारिकावर्त्ति।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः।
जातिपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि च षोडश॥
एषा कुमारिकावर्तिर्गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत्॥ ४४॥

तिलके फूल ८०, पीपलके चावल, ६०, चमेलीके फूल ५० और कालीमिरचें १६ लेवे। सबको एकत्रकर जलके साथ खरल करके बत्ती बनालेवे। यह कुमारिका बत्ती आँजनेसे नष्ट हुए नेत्रोंको फिर दुबारा दीप्तिमान् बनादेती है॥

दृष्टिप्रदावर्त्ति।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसो रजः।
नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनं च सरितां पतेः॥ ४५॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने।
सप्तरात्रस्थितो भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्त्तयेत्॥
एषा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः॥ ४६॥

हरड, बहेडा, आमला, मुर्गीके अण्डेके छिल्के, हीराकसीस, लोहचूर्ण, नीलोफर वायविडङ्ग और समुद्रफेन इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधके साथ

ताँबेके बर्त्तनमें खरल करके सात दिनतक उसीमें रक्खा रहने देवे। सात दिनके बाद फिर उसको बकरीके दूधमें घोटकर बत्ती निर्माण करे। इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे दृष्टिशक्ति बढती है। इससे अन्धे और काने पुरुषके भी नेत्र शक्तिशाली होजाते हैं॥ ४५॥ ४६॥

नयनसुखावर्त्ति।

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा।
वर्त्तिरियं नयनसुखाऽर्म्मतिमिरपटलकाचाश्रुहरी॥ ४७॥

पीपल एक तोला और हरड दो तोले दोनोंको जलमें पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे नेत्रोंको सुख देती है एवं अर्म, तिमिर, पटल, काच और अश्रुपात होना प्रभृति विकारोंको हरती है॥ ४७॥

चन्द्रप्रभावर्त्ति।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका।
विभीतकस्य मध्यं तु शङ्खनाभिर्मनःशिला॥ ४८॥
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत्।
छायाशुष्कां कृतां वर्त्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत्॥ ४९॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम्।
अधिमांसाम्मणी चैव पञ्चरात्रौ न पश्यति॥
वर्त्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि नाशयेत्॥ १५०॥

रसौत, सहिंजनेके बीज, पीपल, मुलहठी, बहेडेकी गिरी, शंखनाभि और मैनसिल इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसलेवे फिर छायामें सुखाकर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीको नेत्रोंमें आँजनेसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, अर्म, रतौंधा और अन्धापन इत्यादि समस्त नेत्रव्याधियाँ नाश होजाती हैं॥ ४८-१५०॥

पञ्चशतिकावर्त्ति।

नीलोत्पलपत्रशतं मुद्गशतं यवशतं च निस्तुषं ग्राह्यम्।
मालत्याः कुसुमशतं पिप्पलीतण्डुलशतं च॥ ५१॥
पञ्चशतैर्वर्त्तिर्विहिताऽञ्जनं कुर्य्यात्सर्वात्मके नयने।
तिमिराश्रुकाचपटलानां नास्त्यपरः साधनोपायः॥५२॥

नीलेकमलके पत्ते १००, मूँगके दाने १००, भूसीरहित जौ १००, चमेलीके फूल १०० और पीपलके चावल १०० इन सबको एकत्र जलके साथ खरल करके बत्ती बनालेवे । यह बत्ती सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें आँजनी चाहिये । तिमिर, अश्रुपात, काच और पटलादि रोगोंको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर अन्य उपाय नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

सप्तामृतलौह ।

त्रिफलारज आयसं च चूर्णं सहयष्टीमधुकं समांशयुक्तम् । मधुना सह सर्पिषा दिनान्तेपुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥ ५३ ॥ तिमिरक्षतरक्तराजिकण्डूक्षणदान्ध्यार्बुदतोददाहशूलान् । पटलं सहरक्तकाचपिल्वं शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ ५४ ॥

हरड, आमला, बहेडा और मुलहठी इनका चूर्ण एक एक तोला, लोहचूर्ण ४ तोले लेकर जलमें पीसकर पुनः शहद और घीमें मिलाकर सायङ्कालमें सेवन करे । यह लोह तिमिर, क्षत, रक्तराजि, कण्डू, रात्र्यन्धता, अर्बुद, तोद दाह, शूल, पटल, रक्त, काच और पिल्बादि रोगोंको सेवन करतेही शमन करता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिबर्हणाय पुंसाम् । दशनश्रवणोर्द्धकण्ठजानां प्रशमे हेतुरयं महागदानाम् ॥ ५५ ॥ दयिताभुजपंजरोपगूढः स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु । सुरतानि चिरं निषेवतेऽसौ पुरुषो योगवरं निषेवमाणः ॥ ५६ ॥ मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरुहैरंजनमेचकप्रभैः । भवेच्च गृध्रस्य समानलोचनःसुखैर्नरोवर्षशतं च जीवति ॥ ५७ ॥

यह लोह केवल नेत्ररोगोंकोही दूर करनेके लिये नहीं विधान किया गया है, बल्कि दन्त, कर्ण, शिर और कण्ठजन्यरोग तथा अन्यान्य बडे बडे भयंकर रोगोंके नाशका मुख्य हेतु है । इस उत्तम प्रयोगका सेवन करनेवाला पुरुष स्त्रीके भुजारूपी पींजरेमें छिपा हुआ, खिली हुई चाँदनीवाली रात्रियोंमें विषयसुखको चिरकालतक भोगता है । इससे मुख नीलकमलकी समान मनोरम सुगन्धियुक्त होता है और शिरके बाल अञ्जनके समान काले होजाते हैं तथा दृष्टिशक्ति गिद्धके समान

अत्यन्त सूक्ष्म होती है। इसका सेवन कर्त्ता पुरुष सुखपूर्वक सौ वर्षतक जीता है ॥ ५५–५७ ॥

नयनामृतलौह।

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी शठी रास्ना महौषधम्।
द्राक्षा नीलोत्पलं चैव काकोली मधुयष्टिका ॥ ५८ ॥
वाटचालकं केशरं च कण्टकारीद्वयं तथा।
लौहाभ्रयोः पलं दत्त्वा भावयेद्वक्ष्यमाणजैः ॥ ५९ ॥
त्रिफलाक्काथतैलेन भृङ्गराजरसेन च।
भावयित्वा वटी कार्या बदरास्थिमिता शुभा ॥
यावन्तो नेत्ररोगाश्च तान्निहन्ति न संशयः ॥ १६० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, काकडासिंगी, कचूर, रायसन, सोंठ, दाख, नीलेकमलकी जड, काकोली, मुलहठी, खिरैंटी, नागकेशर, कटेरी, बडी कटेरी इन सब औषधियोंका चूर्ण समान भाग मिश्रित ८ तोले और लोहे तथा अभ्रकका चूर्ण चार चार तोले लेकर एकत्र कूट पीसलेवे। फिर समस्त चूर्णको त्रिफलेके क्वाथ, तिलके तेल और भाँगरेके रसमें सातबार क्रमपूर्वक भावना देकर उसकी बेरकी गुठलीके बराबर उत्तम गोलियाँ बनालेवे। यह वटी प्रतिदिन नियमबद्ध होकर आँजनेसे जितने नेत्रसम्बन्धी रोग हैं उन सबको निस्सन्देह नष्ट करती है ॥ ५८–१६० ॥

नेत्राशनिरस।

अभ्रं ताम्रं रसं लौहं माक्षिकं च रसाञ्जनम्।
पातनायन्त्रसंशुद्धं गन्धकं नवनीतकम् ॥ ६१ ॥
पलप्रमाणं प्रत्येकं गृह्णीयाच्च विधानवित्।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं वैद्यैः कुशलकर्मभिः ॥ ६२ ॥
ततस्तु भावना कार्या त्रिफलाभृङ्गराजकैः।
ततः प्रपिष्य चूर्णं च पिप्पलीमूलयष्टिका ॥ ६३ ॥
एला पुनर्नवा दारु पाठा भृङ्गशठी वचा।
नीलोत्पलं चन्दनं च श्लक्ष्णचूर्णं च दापयेत् ॥ ६४ ॥
माषमेकं प्रदातव्यं घृतश्रीमधुमर्दितम्।
मर्दनं लौहदण्डेन पात्रे लौहमये दृढे ॥ ६५ ॥

अभ्रक, ताँबा, पारा, लोहा, सोनामाखी इनकी भस्म, रसौत और पातनयन्त्रसे शुद्ध कीहुई आमलासारगन्धक ये प्रत्येक औषधि चारचार तोले लेकर एकत्र कूट पीसलेवे । फिर उस चूर्णको त्रिफले और भाँगरेके रसमें क्रमशः ७ बार भावना देकर सुखालेवे । पश्चात् उसका चूर्णकर उसके साथ पीपलामूल, मुलहठी, इलायची, पुनर्नवा, देवदारु, पाढ, भाँगरा, कचूर, वच, नीलकमल और लालचन्दन इनका खूब बारीक चूर्ण कर दसदस रत्तीप्रमाण मिलावे एवं घृत, लौङ्ग और शहद इनको एकएक माशा लेवे । सबको दृढतर और स्वच्छ लोहेके पात्रमें रख लोहेके दण्डेसे अच्छे प्रकार खरल करलेवे ॥ ६१-६५ ॥

अनुपानं प्रदातव्यमुष्णेन वारिणा तथा ।
यावन्तो नेत्ररोगांश्च पानादेव विनाशयेत् ॥ ६६ ॥
सरक्ते रक्तपित्ते च रक्ते चक्षुस्स्रुतेऽपि च ।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥ ६७ ॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पिष्टे चैव चिरन्तने ।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ॥
सर्वनेत्रामयं हन्याद्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६८ ॥

इस रसको प्रतिदिन उचित मात्रानुसार उष्ण जलके साथ सेवन करे । यह रस पान करतेही जितने नेत्ररोग हैं उन सबको नष्ट करदेता है । इसको रक्तज नेत्ररोग, रक्तपित्त, रक्तज नेत्रस्राव, रात्र्यन्धता, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, नेत्राभिष्यन्द, अधिमन्थ, पुराने पिष्टक एवं वातज, पित्तज और कफज आदि सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह रस समस्त नेत्रविकारोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जिस प्रकार वज्राहत वृक्ष तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ६६-६८ ॥

पटोलाद्यघृत ।

पटोलं कुटकीं दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम् ।
दुरालभां पर्प्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥ ६९ ॥
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ १७० ॥
कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धमत्यन्तं नेत्रयोर्हितम् ॥ ७१ ॥

घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम् ।
कामलाकुष्ठवीसर्पगण्डमालापहं परम् ॥ ७२ ॥

पटोलपात, कुटकी, दारुहल्दी, निम्बकी छाल, अडूसेकी छाल, त्रिफला, धमासा, पित्तपापडा और त्रायमाणालता प्रत्येकका चूर्ण ४-४ तोले एवं सूखे आमले १ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्रकर १ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें घृत एक प्रस्थ एवं चिरायता, कुडेकी छाल, नागरमोथा, मुलहठी, लालचन्दन और पीपल इन सबका समान भाग मिश्रित कल्क एक सेर डालकर विधिपूर्वक घृतको पकालेवे। यह घृत नेत्रोंको परम हितकारी है एवं नाक, कान, अक्षिवर्त्म, त्वचा और मुख इनके रोग, व्रण, कामला, कूठ, विसर्प, गण्डमालाआदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६९-१७२ ॥

शशकाद्यघृत ।

शशकस्य कषाये तु सर्पिषः कुडवं पचेत् ।
यष्टिप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम् ॥ ७३ ॥
छागल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः ।
हन्ति भ्रूशंखमूलं च दाहरोगं विशेषतः ॥ ७४ ॥

खरगोशके एक सेर क्वाथमें घी १६ तोले, मुलहठी और पुण्डेरियाका कल्क चारचार तोले तथा बकरीका दूध एकसेर डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। इस घृतको नेत्रोंमें आँजनेसे शुक्र, क्षत, पाकात्यय, अजका, भ्रूशंखमूल और विशेषकर दाहरोग नष्ट होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

त्रिफलाद्यघृत १-२ ।

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम् ।
सर्पिःसमं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ॥७५॥

हरड, बहेडा और आमला इनका क्वाथ ८ सेर, शतावरका स्वरस दो सेर और मुलहठीका कल्क एक सेर सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक दोसेर घृतको सिद्ध करे। जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें घीसे चौथाई भाग शहद मिलादेवे। यह घृत अत्यन्त प्रबल त्रिदोषज तिमिररोगको नष्ट करता है ॥ ७५ ॥

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥ ७६ ॥

नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ॥ ७७ ॥

२–त्रिफला, त्रिकुटा, दाख, मुलहठी, कुटकी, पुण्डेरिया, छोटी इलायची, वायविडङ्ग, नागकेशर, नीलकमल, उसवा, अनन्तमूल, लालचन्दन, हल्दी और दारुहल्दी, इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क, एक एक कर्ष, दूध एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ और त्रिफलेका क्वाथ तीन प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत सर्व प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम्।
विसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च ॥ ७८ ॥
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा।
विषमज्वरमर्म्माणि शुक्रं चाशु व्यपोहति ॥ ७९ ॥
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १८० ॥
न चैतस्मात्परं किञ्चिद्दृषिभिः कश्यपादिभिः।
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ ८१ ॥

इसके सेवनसे तिमिररोग, स्राव होना, कामला, काच, अर्बुद, विसर्प प्रदर, खुजली, रक्तविकार, सूजन, खालित्य, पलित, केशोंका गिरना, विषमज्वर, अर्म और शुक्र आदि रोग तत्काल नाश होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेकों प्रकारके नेत्र तथा वर्त्मजन्य रोगोंको यह घृत इस भाँति नष्ट करता है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकारसमूहको तत्क्षण नष्ट करदेते हैं। कश्यपादि ऋषियोंनें कहा है कि, दृष्टिको प्रसन्न करनेवाली इस त्रिफलाघृतसे बढकर अन्य औषधि नहीं है ॥ १७८–१८१ ॥

महात्रिफलाद्यघृत।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ ८२ ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ ८३ ॥

कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ ८४ ॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ ८५ ॥

त्रिफलेका क्वाथ १ प्रस्थ, भाँगरेका रस, १ प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, गिलोयका रस १ प्रस्थ और आमलोंका रस १ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्रकर इनमें एक प्रस्थ घी तथा पीपल, चीनी, दाख, त्रिफला, नीलकमल, मुलहठी; क्षीरकाकोली, गिलोय, कटेरी, इनके समान भाग मिलित कल्कको एक सेर डालकर यत्नपूर्वक घृतको पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर, सिद्ध होजाय तब उसको उतारकर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे। इस घृतको भोजन करनेसे पहले, मध्यमें और अन्तमें पान करना चाहिये ॥ ८२-८५ ॥

यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति ।
रक्तजे रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ ८६ ॥
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे च दारुणे ॥ ८७ ॥
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।
अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम् ॥ ८८ ॥
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ।
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥ ८९ ॥

यह घृत नेत्रसंबंधी जितने रोग हैं उन सबको पान करतेही नष्ट करदेता है। रक्तज नेत्ररोग, दूषितरक्त, रक्तस्राव, रतौंधा, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, दारुण पक्ष्मरोग, वातज, पित्तज और कफजादि सर्व प्रकार के चक्षुरोगोंमें यह घृत विशेष उपयोगी है तथा अन्धता, मन्ददृष्टि, कफ और वातसे दूषित दृष्टि, नेत्रस्राव, वातपित्तजन्य खुजली और समीपवर्ती वस्तुका दूर दीखना इत्यादि विकारोंको दूर करके तत्काल गिद्धकीसी दृष्टि करदेता है। इससे बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है। यह महात्रिफलाद्यघृत सर्वप्रकारके नेत्ररोगों को नष्ट करता है ॥ ८६-१८९ ॥

नृपवल्लभतैल और घृत ।

जीवकर्षभकौ मेदे द्राक्षांशुमती निदिग्धिकाबृहती ।
मधुकं बला विडङ्गं मञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना ॥ ९० ॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् ।
पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ ९१ ॥
तैलं यदि वा सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्वम् ।
आत्रेयनिर्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं सिद्धम् ॥ ९२ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, दाख, शालपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी, मुलहठी, खिरैटी, वायविडङ्ग, मंजीठ, चीनी, रास्ना, नीलकमल, गोखुरू, पुण्डेरिया, पुनर्नवा, सैंधानमक और पीपल इन सबको छः छः तोले लेकर एकत्र कूटपीसकर कल्क बनालेवे। इस कल्कके साथ तिलका तेल अथवा घी एक प्रस्थ और दूध चार प्रस्थ मिलाकर उत्तम प्रकार पकावे। इस नृपवल्लभ तेलको श्रीमान् आत्रेयजीने निर्माण किया है ॥ ९०-९२ ॥

तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं दिवान्ध्यं च ।
श्वेतं च लिङ्गनाशं नाशयति च नीलिकां व्यङ्गम् ॥९३॥
मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितं चाकालजं हनुस्तम्भम् ।
श्वासं कासं शोषं हिक्कां तथाऽत्ययं नेत्रे ॥ ९४ ॥
मुखजिह्वयमूर्ध्वभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरस्तम्भम् ।
रोगानथोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥ ९५ ॥
पक्तव्यं कुडवं तैलं नस्यार्थं नृपवल्लभम् ।
अक्षांशैः पाणिकैः कल्कैरन्यैर्भृङ्गादितैलवत ॥ ९६ ॥
सिद्धफलमिदम् ।

यह तेल या घी तिमिर, पटल, काच, नक्तान्ध्य, अर्बुद, दिवान्ध्य, श्वेत, लिङ्गनाश, नीलिका, व्यङ्ग, मुख और नाककी दुर्गन्धि, असमय बालोंका पकना, हनुस्तम्भ, श्वास, खाँसी, शोष, हिचकी, नेत्रोंमें अन्धकार दीखना; मुख और जीभके रोग, ऊर्ध्वभेदरोग, बाहुस्तम्भ, शिरस्तम्भ, ऊर्ध्वजत्रु एवं अन्यान्य सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करता है । इस तेलको नस्यके लिये एक कुडव परिमाण लेकर पकावे, अक्षांश के कहनेसे कल्ककी प्रत्येक औषधि चार चार मासे लेवे ।

शेष विधि भृङ्गराजादितैलकी समान करनी चाहिये । यह शीघ्र सिद्धफलको देनेवाला है ॥ ९३-९६ ॥

भृङ्गराजतैल ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च ।
तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ॥
नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ ९७ ॥

भाँगरेके एक प्रस्थ रसमें मुलहठीका कल्क चार तोले और तिलका तेल एक कुडव (१६ तोले) डालकर विधिपूर्वक पकावे । इस तेलकी नास लेनेसे वली और पलितरोग; एक मासमें ही निस्सन्देह नष्ट होजाते हैं तथा दृष्टिशक्ति प्रसन्न होती है ॥ ९७ ॥

नेत्ररोगमें पथ्य ।

आश्च्योतनं लंघनमञ्जनं च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणं च ।
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥९८॥
सेको मनोनिर्वृतिरङ्घ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च ।
लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽपि कपिञ्जलश्च ॥९९॥
कौम्भं हविर्वन्यकुलत्थयूषः पेया विलेपी लशुनं पटोलम् ।
वार्त्ताकुकर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकं च ॥ २०० ॥
पुनर्नवामार्कवकाकमाचीपत्तूरशाकानि कुमारिका च ।
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थं लोध्रं वराक्षौद्रमुपानहश्च २०१
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ।
विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रगदान्निहन्ति २०२ ॥

आश्च्योतन (नेत्रोंमें औषधि टपकाना), लंघन करना, अञ्जन आँजना; स्वेद, विरेचन, प्रतिसारण, नेत्रोंमें औषधि भरना, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रकर्म, प्रलेप, घृतपान, परिषेचन, मनकी स्थिरता, दोनों पैरोंको जलसे धोकर और पोछकर साफ रखना, मूँग, जो लालशालिके चावल, लवा, मोर, जङ्गली मुर्गा, कछुआ, केंकडा और कपिञ्जल आदि जीवोंका मांस, पुराना घी, वन-कुलथीका यूष, पेया, विलेपी, लहसुन, परवल, बैंगन, ककोडे, करेला, केलेका नया; मोचा,; कच्ची मूली, पुनर्नवा, भाँगरा, मकोय, शान्तिशाक, घीग्वार, दाख, धनियाँ, सेंधानमक, लोध, त्रिफला,; शहद, खडाऊँ पहरना, स्त्रीका

दूध लाल चन्दन, कपूर, सर्वप्रकारके तीखे और हल्के पदार्थ ये सब क्रियायें अन्नपान और औषधियें यथादोषानुसार सेवन करनेसे समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करती हैं ॥ ९८–२०२ ॥

नेत्ररोगमें अपथ्य।

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान्।
सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणं च स्नानं निशाभोजनमातपं च ॥ ३ ॥
द्रवं रजोधूमनिषेवणं च दृक्स्वेदनं चापि विरुद्धमन्नम्।
प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ॥ ४ ॥
कालिन्दपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरां मांसमजाङ्गलं च।
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम्।
नरो न सेवेत हिताभिलाषी रोगेषु सर्वेषु दृगाश्रयेषु ॥२०५॥

क्रोध शोक, स्त्रीप्रसङ्ग, आँसू, अपानवायु, मल, मूत्र, निद्रा, और वमन इनके वेगोंको रोकना, बहुत सूक्ष्म वस्तुको देखना, दन्तमञ्जन करना, स्नान, रात्रिमें भोजन, धूपका सेवन, पतले पदार्थ, धूल और धुएँका सेवन, नेत्रोंको स्वेद देना, विरुद्ध अन्न-पान, बहुत, बोलना, वमन करना, अधिक जल पान, महुएके फूल, दही, पत्तोंवाले शाक, तरबूज, तिलकुट, जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अन्न, मछली, मदिरा, जङ्गलीजीवोंके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंका मांस, ताम्बूल, खटाई या खट्टे पदार्थ, नमकीन, दाहकारक, तीक्ष्ण चरपरे गरम और गुरुपाकी अन्न और पानीय द्रव्य इन सबको हितकी अभिलाषा करनेवाला नेत्ररोगी सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें कदापि सेवन न करे ॥ ३–२०५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नेत्ररोगचिकित्सा।

शिरोरोगकी चिकित्सा।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान्सनावनान्।
पानान्नमुपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥१॥

वातज शिरोरोगमें तेलादिस्नेहद्रव्योंकी मालिश, वातहर द्रव्योंके द्वारा सेक नस्य और वातनाशक अन्न पान एवं प्रलेपादि उपचार करने चाहिये ॥ १ ॥

कुष्ठमेरण्डमूलं च लेपात्काञ्जिकयोजितम् ।
शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २ ॥

कूठ और अण्डकी जडको काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे अथवा मुचुकुन्दके फूलोंको पीसकर लेप करनेसे शिरकी पीडा तत्काल दूर होती है ॥ २ ॥

पैत्ते घृतं पयः सेकाः शीतलेपाः सनावनाः ।
जीवनीयानि सर्पींषि पानान्नं चापि पित्तनुत् ॥ ३ ॥

पित्तज शिरोरोगमें घी और दूधका पान, शीतल द्रव्योंद्वारा सेचन, शीतल द्रव्यों का लेप, नस्य, जीवनीयगणोक्त औषधियोंके द्वारा सिद्धकियाहुआ घृतपान और पित्तनाशक अन्न-पान प्रयोग करने चाहियें ॥ ३ ॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः ।
तीक्ष्णावपीडधूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवलग्रहाः ॥ ४ ॥

कफज शिरोरोगमें लङ्घन, रूक्ष और उष्ण द्रव्योंसे परिषेक, दशमूलादिपाचन तीक्ष्णद्रव्योंद्वारा नस्य, धूम और कवल धारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

सूर्यावर्त्तकी चिकित्सा ।

सूर्यावर्त्तभवं बीजं तद्रसेन सुपेषितम् ।
वेदनानाशनो लेपः सूर्यावर्त्तार्द्धभेदयोः ॥ ५ ॥

हुलहुलके बीजोंको हुलहुलके पत्तोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक शिरोरोगकी वेदना नष्ट होती है ॥ ५ ॥

सूर्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् ।
पाययेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भोजयेत् ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्तरोगमें औषधियोंका नस्य देकर गुड मिलाहुआ घृत पान करे और घीसे भरेहुए मालपुओंको भक्षण करे ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्ते शिरोवेधो नावनं क्षीरसर्पिषा ।
हितः क्षीरघृताभ्यांसस्ताभ्यां चैव विरेचनम् ॥ ७ ॥

सूर्यावर्त्तनामक शिरोरोगमें शिराको वेधना, दूधमेंसे निकलेहुए मक्खनद्वारा नास लेना, दूध और घीको पीना एवं दुग्ध, घृतके साथ ही शिरोविरेचक औषधि देकर नस्य प्रयोग करना हितकारी है ॥ ७ ॥

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरीकल्कसिद्धं नवनीतम् ।
नस्येन जयति नित्यं सूर्यावर्त्तं सुदुर्वारम् ॥ ८ ॥

अमलतासके पत्तोंके रसमें चिरचिटेके बीजोंका कल्क और नैनी घी डालकर विधिपूर्वक पकावे । फिर इसकी प्रतिदिन नस्य लेनेसे दारुण सूर्यावर्त्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८ ॥

दशमूलीकषायैस्तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ।
नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्यावर्त्तशिरोऽर्त्तिजित् ॥ ९ ॥

दशमूलके काढेमें सैंधानमक, घृत डालकर एकत्र पकालेवे । पश्चात् उस घृतको नस्यद्वारा प्रयोग करे तो अर्द्धावभेदक सूर्यावर्त्तशिरोरोग दूर होताहै ॥ ९ ॥

शिरीषमूलबीजैरवपीडं च योजयेत् ।
अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः कृतः ॥ १० ॥

सिरसकी छाल और मूलीके बीज ये प्रत्येक छः छः माशे लेकर एकत्र पीस लेवे फिर उनमेंसे रस निचोड लेवें । उस रसकी नास लेनेसे अथवा वच, पीपलके चूर्णको एकत्र मिलाकर नास लेनेसे सूर्यावर्त्तरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् ।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्यावर्त्तः सुदारुणः ॥ ११ ॥

जङ्गलीजीवोंके मांस और वातनाशक औषधियोंको एकत्र पकाकर उसमें सैंधानमक और तिलका तेल डालकर मन्दोष्ण लेप करे । इससे दारुण सूर्यावर्त्त (आधाशीशी) रोग शमन होता है ॥ ११ ॥

भृङ्गराजरसच्छागक्षीरांशोऽर्कप्रतापितः ।
सूर्यावर्त्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् ॥ १२ ॥

भाँगरेका रस और बकरीका दूध इनको समान भाग लेकर एकत्र करके धूपमें गरम कर नास लेनेसे सूर्यावर्त्तरोग तत्काल नाश होता है ॥ १२ ॥

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा ।

एष एव विधिः कृत्स्नः कार्यश्चार्द्धावभेदके ॥ १३ ॥

यह ही उक्त सब विधि अर्द्धावभेदक शिरोरोगमें करनी चाहिये ॥ १३ ॥

पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ।
सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ॥१४॥

अर्द्धावभेदक और सूर्यावर्त्तरोगमें चीनी मिलाहुआ दूध अथवा नारियलका जल पान करे अथवा शीतल पानीयद्रव्योंमें घृत मिलाकर नास लेवे तो उक्त दोनों प्रकारका शिरोरोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

तिलात्कल्कं सनलदं सक्षौद्रलवणान्वितम् ।
तेनास्य लेपयेच्छीर्षमर्द्धभेदो व्यपोहति ॥१५॥

कालेतिल और बालछड दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर शहद, सैंधानमकके साथ मिश्रित करके लेपकरनेसे अर्द्धावभेदक शिरोरोग दूर होताहै ॥

सविडङ्गं तिलं कृष्णं समं कृत्वा प्रपेषयेत् ।
नस्यकर्मणि दातव्यमर्द्धभेदं विनाशयेत् ॥१६॥

वायविडङ्ग और काले तिल इनको सम भाग लेकर बारीक पीसकर इनकी नस्य लेवे तो इससे अर्द्धावभेदक रोग नाश होता है ॥ १६ ॥

दग्धचुल्लीमृत्तिकायाश्चूर्णं मरिचचूर्णकम् ।
समांशं मिलितं कुर्यान्नस्यमर्धावभेदके ॥ १७ ॥

चूल्हेकी जलीहुई मिट्टी और कालीमिरच दोनों समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। उक्त चूर्णकी नास लेनेसे आधाशीशी) शिरोरोग शान्त होता है ॥१७॥

अनन्तवातकी चिकित्सा ।

अनन्तवाते कर्त्तव्यः सूर्यावर्त्तहितो विधिः ॥
शिरावेधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥
आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥ १८ ॥

अनन्तवातरोगको शान्त करनेके लिये सूर्य्यावर्त्तरोगनाशक औषधियोंसे चिकित्सा करनी एवं रोगीको वात-पित्तनाशक भोजन करना और शिरावेध कर रुधिर निकालना चाहिये ॥ १८ ॥

शङ्खककी चिकित्सा ।

सूर्यावर्त्ते हितं यच्च शंखके स्वेदवर्जितम् ।
क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्यं पानं च शंखके ॥ १९ ॥

शङ्खकरोगमें स्वेदक्रियाको छोडकर सूर्यावर्त्तमें कहीहुई विधिके अनुसार समस्त चिकित्सा और क्षीरसर्पि (मक्खन) का पान करना तथा नासलेना ॥ १९ ॥

शतावरीं कृष्णतिलान्मधुकं नीलमुत्पलम्।
दूर्वां पुनर्नवां चापि लेपं साध्ववतारयेत्॥
शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च शीतलान्॥ २०॥

शतावर, काले तिल, मुलहठी, नीलकमल, दूब और पुनर्नवा इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर शिरपर लेप करे और शीतल जल तथा शीतल दूधसे शिरपर सेचन क्रिया करे तो शंखरोग दूर होता है॥ २०॥

कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखकस्य प्रलेपनम्।

शंखकरोगमें बड, पीपल, गूलर, पाखर और बेंत आदि क्षीरीवृक्षोंकी छालके कल्कद्वारा लेप करना चाहिये॥

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शरार्याः कच्छपस्य च।
रसैः सुविहितस्याथ तस्य शंखकसन्धिजाः॥
ऊर्ध्वास्तिस्रः शिराः प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत् २१

बगला, हंस, कलहंस, शराल (पक्षीविशेष) और कछुआ इनके मांसरसका पान कराकर रोगीको पुष्ट करके शंखसन्धिके ऊपरकी तीन शिराओंको वेधना चाहिये किन्तु उसको तोडना नहीं चाहिये॥ २१॥

गिरिकर्णीफलरसं मूलं च नस्यमाचरेत्।
मूलं वा बन्धयेत्कर्णे शीघ्रं हन्ति शिरोव्यथाम्॥ २२॥

अपराजिताके फलोंके रस अथवा उसकी मूलके रसद्वारा नास लेवे किम्वा उक्त औषधिकी ज़डको कानमें बांध देवेतो शिरका दर्द शीघ्र नष्ट होता है॥ २२॥

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम्।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम्॥ २३॥

सोंठको दूधमें पीसकर नस्य लेनेसे अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुई दारुण शिरकी पीडा तत्काल शमन होती है॥ २३॥

शिरोवस्ति।

आशिरो व्यायतं चर्म्मं कृत्वाऽष्टाङ्गुलमूर्च्छितम्।
तेनावेष्टय शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत्॥ २४॥
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत्।
धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा॥ २५॥

शिरोवस्तिर्जयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम् ।
हनुमन्याक्षिकर्णार्त्तिमर्दितं मूर्द्धकम्पनम् ॥ २६ ॥

जितने चमडेसे मस्तक पूरा पूरा ढकजाय इतना लम्बा और आठ अँगुल चौडा चमडा लेकर उससे रोगीके मस्तकको बाँधकर उसके नीचे उडदोंके कल्कका लेप करदेवे । पश्चात् रोगीको निश्चल बैठाकर सुहाता सुहाता तिलका तेल उस चमडेमें भरदेवे । जबतक शिरकी पीडा शान्त न हो तबतक अथवा एक प्रहरतक किम्वा चार घडीतक तेलको धारण करे । यह शिरोवास्ति वातज शिरोरोग, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, नेत्र और कर्णरोग अर्दित और मस्तकका काँपना आदि रोगोंको शमन करती है ॥ २४–२६ ॥

अर्द्धनाडीनाटकेश्वर ।

वराटं टङ्कणं शुद्धं पञ्चभागसमन्वितम् ।
नवभागं मरीचस्य विषभागत्रयं मतम् ॥ २७ ॥
स्तन्येन वटिकां कृत्वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ।
शिरोविकारान्विविधान् हन्ति श्लेष्मोत्तरानपि ॥ २८ ॥

कौडीकी भस्म २॥ भाग, सुहागेकी खील २॥ भाग, कालीमिरच ९ भाग और विष ३ भाग लेवे । इन सबको एकत्र स्त्रीके दूधके द्वारा खरल करके गोलियाँ बनालेवे । फिर इस गोलीको दूधमें घिसकर नास लेवे तो यह शिरके नानाप्रकारके कफप्रभृति दोषजनित विकारोंको नष्ट करती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

चन्द्रकान्तरस ।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं समम् ।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्य भक्षयेन्माषमात्रकम् ॥ २९ ॥
मधुना मर्दितं सेव्यं लौहपात्रे दिने दिने ।
सूर्यावर्त्तादिकान्हन्ति शिरोरोगान्न संशयः ॥ ३० ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताँबा इनकी भस्म और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें एक दिनतक खरल करके उडदकी बराबर गोली बनालेवे । उस गोलीको प्रतिदिन लोहेके बर्त्तनमें शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे तो यह सूर्यावर्त्तादि समस्त शिरके रोगोंको निसन्देह नष्टकर देता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

शिरःशूलाद्रिवज्ररस ।

पलं रसं पलं गन्धं पलं लौहं पलं रविः ।
गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं त्रिफलारजः ॥ ३१ ॥

कुष्ठं मधु कणा शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम् ।
दशमूलं च प्रत्येकं तोलकं वस्त्रपेषितम् ॥ ३२ ॥
क्वाथने दशमूल्याश्च यथास्वं परिभावयेत् ।
घृतयोगात्प्रकर्त्तव्या माषिका वटिका शुभा ॥ ३३ ॥

शुद्ध पारा चार तोले, शुद्ध गन्धक चार तोले, लोहभस्म चार तोले, ताम्रभस्म चार तोले, शुद्ध गूगल सोलह तोले, त्रिफलेका चूर्ण ८ तोले, एवं कूठ, शहद, पीपल, सोंठ, गोखरू, वायविडङ्ग और दशमूल ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे । सबको एकत्र कूटपीस और वस्त्रमें छानकर दशमूलके काथमें सात बार भावना देवे । फिर घृतमें मिलाकर एक एक मासेकी सुन्दर गोलियाँ बना लेवे ॥ ३१-३३ ॥

छागीदुग्धानुपानेन पयसा मधुनाऽथवा ।
शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं चण्डनाथेन भाषितः ॥ ३४ ॥
एकजं द्वन्द्वजं चैव त्रिदोषजनितं तथा ।
वातिकं पैत्तिकं सर्वं शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ ३५ ॥

प्रतिदिन प्रातःसमय १-१ गोली बकरीके दूध या जल अथवा शहदके साथ मिलाकर सेवन करे । इस शिरःशूलाद्रिवज्रनामक रसको श्रीचण्डनाथने निर्माण किया है । यह एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा वात, पित्त, कफ इनसे उत्पन्नहुए सर्व प्रकारके शिरोरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

महालक्ष्मीविलास ।

लौहमभ्रं विषं मुस्तं फलत्रयकटुत्रयम् ।
धुस्तूरं वृद्धदारं च बीजमिन्द्राशनस्य च ॥ ३६ ॥
गोक्षुरकद्वयं चैव पिप्पलीमूलमेव च ।
एतत्सर्वं समं ग्राह्यं रसो धुस्तूरकस्य च ॥ ३७ ॥
भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
महालक्ष्मीविलासोऽयं सन्निपातनिवारकः ॥ ३८ ॥

लोहा, अभ्रक, मीठातेलिया, नागरमोथा, त्रिफला, त्रिकुटा, धतूरा, विधारा भाँगके बीज, गोखुरू, बडा गोखुरू और पीपलामूल इन सबको समान भाग लेकर धतूरेके पत्तोंके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे । यह महालक्ष्मीविलासरस यथाविधि सेवन करनेसे त्रिदोषज शिरोरोग नष्ट होय ॥

मयूराद्यघृत।

शतं मयूरमांसस्य दशमूलाबलातुलाम्।
द्रोणेऽम्भसः पचेत्क्षुत्त्वा तस्मिन्पादस्थिते ततः ॥ ३९ ॥
निषिच्य पयसो द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम्।
प्रपौण्डरीकवर्गोक्तैर्जीवनीयैश्च भेषजैः ॥ ४० ॥
मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्द्ध्वजत्रुगदापहम्।
मायूरमेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥ ४१ ॥
मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्मारनाशनम्।
विषवाताक्षयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥ ४२ ॥

मोरका मांस १०० पल, दशमूल और खिरैंटी समान भाग मिश्रित १०० पल लेकर सबको एकत्र कुचलकर एक द्रोणजलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें एक द्रोण दूध और एक आढक घृत तथा पुण्डेरिया, मुलहठी, पीपल, लालचन्दन, नीलकमल, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहठी, मुगवन और मषवन इन समस्त औषधियोंका कल्क समान भाग मिश्रित दो सेर डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। यह घृत मेधा, बुद्धि और स्मृतिशक्तिको बढाता है तथा ऊर्ध्वजत्रुरोग, मन्यास्तम्भ, कर्ण शिर और नेत्ररोग, अपस्मार, विषज और वातजरोग, श्वास, विषमज्वर, खाँसी और सर्व प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है। इसको मयूराद्यघृत कहते हैं ॥ ३९-४२ ॥

षड्बिन्दुतैल।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्ति रास्ना सहसैन्धवं च। भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥४३॥ आजं पयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्। षड्बिन्दवो नासिकया विधेया निहन्ति शीघ्रं शिरसो विकारान् ॥४४॥ च्युतांश्च केशान् पलितांश्च दन्तान्दुर्बद्धमूलांश्च दृढीकरोति। सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुर्बाह्वोर्बलं चाप्यधिकं ददाति ॥ ४५ ॥

अण्डकी जड, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सैंधानमक भाँगरा, वायविडङ्ग, मुलहठी, सोंठ और कालेतिलोंका तेल और बकरीका दूध इन सबको

समान भाग लेकर यथाविधिसे मिश्रित करके तेलको पकावे। इस षड्बिन्दुनामक तेलको नस्यद्वारा प्रयोग करे। यह शिरके समस्त विकारोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है तथा बालोंका गिरना और पलितरोगको दूरकर हिलतेहुए दाँतोंकी जडोंको मजबूत करता है। एवं नेत्रोंकी दृष्टिशक्तिको गरुडकी समान अत्यन्त सूक्ष्म और भुजाओंमें अनन्त बलकी वृद्धि करता है॥ ४३-४५॥

दशमूलतैल १-२।

दशमूलक्काथकल्काभ्यां तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ४६ ॥
दशमूलमिति ख्यातं शोथं हन्ति सुदारुणम्।
नस्येनाकालपलितं ज्वरारोचकनाशनम्॥ ४७॥
अभ्यङ्गेनैव सर्वं च शिरःशूलं विनाशयेत्॥ ४८॥

१-दशमूलकी औषधियोंके क्वाथ और कल्कके साथ कडवातेल एक प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे यथाविधि तेलको पकावे। इसको दशमूल तेल कहते हैं। यह तेल दारुण शोथको नष्ट करता है और नस्यद्वारा उपयोग करनेसे असमय बालोंका पकना, ज्वर, अरुचि आदि विकारोंका तथा मालिश करनेसे सर्वप्रकारके शिरःशूलको शीघ्र नष्ट करता है॥ ४६-४८॥

दशमूलीकषायेण अष्टाङ्गकल्कसंयुतम्।
क्षीरं च द्विगुणं दत्त्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ ४९॥

२-दशमूलके क्वाथके साथ जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन औषधियोंका कल्क तथा एक प्रस्थ कडवा तेल और दो प्रस्थ दूध मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे॥ ४९॥

शिरोऽर्त्तिं नाशयेदेतद्भास्करस्तिमिरं यथा।
वातशूलं पित्तशूलं कफशूलं त्रिदोषजम्॥ ५०॥
सूर्यावर्त्तमभिष्यन्दं जलदोषं च नाशयेत्।
दशमूलमिदं तैलं शिरोरोगनिषूदनम्॥ ५१॥

यह तेल शिरोरोगको इस प्रकार नाश करदेता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकार-पुञ्जको तत्क्षण नष्ट करता है। इससे वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषजशूल, सूर्यावर्त्तशिरोरोग, नेत्राभिष्यन्द और जलदोष दूर होता है। यह दशमूलतेल समस्त शिरोरोगोंका नाश करनेवाला है॥ ५०॥ ५१॥

मध्यमदशमूलतैल।

दशमूली करञ्जश्च निर्गुण्डी च जयन्तिका।
धुस्तूरः षट्पलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषे रसे तस्मिन् कटुतैलं विपाचयेत्।
तत्कल्कान्दापयेदत्र भागान्षट्तोलकान्पृथक्॥ ५३॥

दशमूल, करंजुआ, निर्गुण्डी जयन्ती और धतूरा इनके पत्ते छः छः पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें कडवातेल एक प्रस्थ और उक्त औषधियोंका कल्क छः छः तोले डालकर यथानियम तेलको पकावे॥ ५२॥ ५३॥

वातश्लेष्मसमुद्भूतं शिरोरोगं व्यपोहति।
कासं पञ्चविधं शोथं जीर्णज्वरमपोहति॥ ५४॥
दशमूलमिदं तैलं शिरःकर्णाक्षिरोगनुत्।
मन्यास्तम्भमन्त्रवृद्धिं श्लीपदं च विनाशयेत्॥
दशमूलमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा॥ ५५॥

यह तेल वात और कफसे उत्पन्नहुए शिरोरोगको दूर करताहै। तथा पाँच प्रकारकी खाँसी, सूजन, जीर्णज्वर, शिर, कान और नेत्रोंके रोग, मन्यास्तम्भ, अन्त्र-वृद्धि और श्लीपदरोगको नष्ट करता है। इस दशमूल तेलको पूर्वकालमें अश्विनी-कुमारोंने निर्म्माण किया है॥ ५४॥ ५५॥

बृहद्दशमूलतैल १–२।

पञ्च पञ्च पलं नीत्वा पञ्चमूलीयुगात्पृथक्।
विपाचयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम्॥ ५६॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थं निर्गुण्ड्यास्तत्समं भवेत्।
त्र्यूषणं पञ्चकोलं च जीरकद्वयसर्षपम्॥ ५७॥
सैन्धवं च यवक्षारं त्रिवृता च निशाद्वयम्।
तोयं च द्विगुणं दत्त्वा कल्कमक्षसमं विदुः॥ ५८॥
सर्वैरेभिः पचेत्तैलं शिरोरोगं व्यपोहति।
ऊर्ध्वजत्रुजरोगघ्नं वातश्लेष्मगदापहम्॥ ५९॥

एकजे द्वन्द्वजे चैव तथैव सान्निपातिके।
अर्द्धावभेदके चैव सूर्यावर्त्ते प्रशस्यते॥
पानाभ्यञ्जननस्येन कर्णरोगे च शस्यते॥ ६०॥

१-दशमूलकी प्रत्येक औषधिको बीस बीस तोले लेकर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें पकावे। जब पकते २ आठवाँ हिस्सा जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें अदरखका रस १ प्रस्थ, निर्गुण्डीके पत्तोंका रस एक प्रस्थ तथा त्रिकुटा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, जीरा, कालाजीरा, सफेद सरसों, सेंधानमक, जवाखार, निसोत, हल्दी और दारुहल्दी इन औषधियोंका कल्क दोदो तोले और पाकके लिये रसोंसे दुगुना जल डालकर सबको यथाविधिसे एकत्र करके तेलको पकावे। यह तेल सम्पूर्ण शिरोरोग, ऊर्ध्वजत्रुजनित रोग और वात तथा कफजन्य रोगोंको दूर करता है। इसको एकदोषज, द्विदोषज तथा त्रिदोषज अर्द्धावभेदक और सूर्यावर्त रोगमें तथा कर्णरोगमें पान, अभ्यञ्जन और नस्यद्वारा प्रयोग करना॥

दशमूलीशतं ग्राह्यं तथा धुस्तूरकस्य च॥
शतं पुनर्नवायाश्च निर्गुण्डयाश्च शतं तथा॥ ६१॥
एतैः कषायैर्विपचेत्कटुतैलाढकं भिषक्।
वासा वचा देवदारु शठी रास्ना सयष्टिका॥ ६२॥
मरिचं पिप्पली शुण्ठी कारवी कट्फलं तथा।
करञ्जं शिग्रु कुष्ठं च चिञ्चा च वनशिम्बिका॥ ६३॥
चित्रकं च पृथग् भागान् दत्त्वा चैषां पलोन्मितान्॥६४

२-दशमूल, धतूरा, पुनर्नवा और निर्गुण्डी ये प्रत्येक औषधि सौ सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर उसमें कडवा तेल एक आढक तथा अडूसा, वच, देवदारु, कचूर, रास्ना, मुलहठी, मिरच पीपल, सोंठ, कालाजीरा, कायफल, करञ्ज, सहिंजना, कूठ, इमली, वनसेम और चीतेकी जड इन सबका कल्क पृथक् पृथक् चार चार तोले डालकर उत्तम प्रकार तेलको सिद्ध करे॥ ६१-६४॥

श्लैष्मिकं सन्निपातोत्थं वातश्लेष्मोद्भवं तथा।
कर्णशूलं शिरःशूलं नेत्रशूलं च दारुणम्॥
निहन्ति दशमूलाख्यं तैलमेतन्न संशयः॥ ६५॥

यह तेल कफसे, वातकफसे और त्रिदोषसे उत्पन्न हुए कर्णशूल शिरःशूल और दारुण नेत्रशूलको तत्काल नष्ट करता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६५ ॥

महादशमूलतैल।

दशमूलं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेषेण कटुतैलाढकं पचेत् ॥ ६६ ॥
जम्बीरार्द्रकधुस्तूरस्वरसं तैलतुल्यतः।
कल्कं कणाऽमृता दार्वी शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ६७ ॥
शिग्रुपिप्पलिका तिक्ता करञ्जं कृष्णजीरकम्।
सिद्धार्थकं वचा शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शठी ॥ ६८ ॥
देवदारु बला रास्ना सूर्यावर्त्तककट्फलम्।
निर्गुण्डी चविका गैरि ग्रन्थिकं शुष्कमूलकम् ॥ ६९ ॥
यमानी जीरकं कुष्ठमजमोदा च ताडकम्।
एतेषां पलिकैर्भागैर्विपचेन्मतिमान्न भिषक् ॥ ७० ॥
निहन्ति विविधान्व्याधीन्कफवातसमुद्भवान्।
शिरोमध्यगतान्रोगाञ्छोथान्हन्ति व्रणानपि ॥ ७१ ॥
"सिद्धफलमिदम्" ॥

दशमूलकी समस्त औषधियोंको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। चौथाई भाग जल शेष रहजानेपर उसको उतारकर छानलेवे। फिर उसमें कडवा तेल १ आढक, जम्बीरीनींबूका रस, अदरख और धतूरेका रस इनको भी एक एक आढक तथा कल्कके लिये पीपल, गिलोय, दारुहल्दी, सौंफ, पुनर्नवा, सहिंजना, पीपल, कुटकी, करंजुआ, कालाजीरा, सफेद सरसों, वच, सोंठ, गजपीपल, चीता, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, रास्ना, हुलहुल, कायफल, निर्गुण्डी, चव्य, गेरू, पीपलामूल, सुखीमूली, अजवायन, जीरा, कूठ, अजमोद और विधारेके बीज बुद्धिमान् वैद्य इन औषधियोंके चार चार तोले कल्कको डालकर यथाविधि तेलको पकावे। प्रतिदिन नियमपूर्वक मर्दन करनेसे यह तेल कफ और वातसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके रोगोंको तथा शिरःसम्बन्धी सब रोगों एवं सूजन और क्षतोंको तत्क्षण नष्ट करता है। यह तत्काल इष्ट फलको देनेवाला है। इसको पान करनेसे भयानक खाँसी दूर होती है ॥

महाकनकतैल।

कनकस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वर्षाभुवस्तथा।
निर्गुण्डीस्वरसप्रस्थं दशमूलरसस्य च॥ ७२॥
पारिभद्ररसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च।
तैलप्रस्थं समादाय भिषग् यत्नाद्विपाचयेत्॥ ७३॥
कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः।
पुनर्नवाकर्कटकशेलुत्वक्पिप्पलीयुगैः॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे पात्रे निधापयेत्॥ ७४॥

धतूरेका रस, पुनर्नवेका रस, निर्गुण्डीका रस, दशमूलका क्वाथ, फरहदका रस और बरनाकी छालका क्वाथ इन सबको अलग अलग एक एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्रकर इनमें सरसोंका तेल १ प्रस्थ तथा सोंठ, मिरच, सैंधानमक, पुनर्नवा काकडासिंगी, लहसौडेके वृक्षकी छाल, पीपल और गजपीपल इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले डालकर तेलको पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर स्वच्छपात्रमें भरकर रखदेवे॥ ७२-७४॥

वातश्लेष्मकृतं सर्वमामवातं भगन्दरम्।
सन्निपातभवं रोगं शोथमाशु विनाशयेत्॥ ७५॥
ये केचिद्व्याधयः सन्ति श्लैष्मिकाः सान्निपातिकाः।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥ ७६॥

यह तेल वात कफजन्यरोग, आमवात, भगन्दर, सन्निपातज रोग और शोथको दूर करता है तथा कफसे और सन्निपातसे होनेवाले जितने रोग हैं उन सबको यह तेल सेवन करतेही इसप्रकार नष्ट करता है जिसप्रकार उदय हुआ सूर्य अपने तेजःपुञ्जसे अन्धकार समूहको तत्क्षण नष्ट करदेता है॥७५॥७६॥

रुद्रतैल।

जैपालद्रोणधुस्तूरशिग्रुशक्राशनस्य च।
सूर्यावर्त्तस्य सूर्यस्य पत्राणां स्वरसं पृथक्॥ ७७॥
जम्बीरशृङ्गवेरस्य रसं दत्त्वा समं समम्
कटुतैलस्य पात्रं तु शोषयित्वा पचेद्भिषक्॥ ७८॥
रजनीद्वयमञ्जिष्ठा कट्फलं कृष्णजीरकम्।
त्रिकटुः पिप्पलीमूलं शारिवे द्वे विडङ्गकम्॥ ७९॥

रास्ना दारु बला निम्बं मुस्तकं चन्दनं तथा।
परशू द्वौ स्नुहीमूलं मूर्वाऽपामार्गमूलकम् ॥ ८० ॥
स्वरसद्रव्यमेतेषां कल्कं दत्त्वा तु पादिकम्।
मृत्पात्रे सुदृढे चैव पाचयेत्तीव्रवह्निना ॥ ८१ ॥

जमालगोटेके पत्तोंका रस, गूमाका रस, धतूरेके पत्तोंका रस, सहिंजनेके पत्तोंका, भाँगके पत्तोंका, हुलहुलके पत्तोंका और आकके पत्तोंका रस इनको पृथक्, पृथक् आठ आठ सेर, जम्बीरीनींबूका रस, और अदरखका रस ये प्रत्येक आठ आठ सेर, कडवा तेल ३२ सेर, तथा हल्दी, दारुहल्दी. मंजीठ, कायफल, कालाजीरा त्रिकुटा पीपलामूल, उसवा, अनन्तमूल, वायविडङ्ग, रास्ना, देवदारु, खिरैंटी, नीमकी छाल, नागरमोथा, लालचन्दन, पेटाली लता, कुड्डुलियालता, थूहरकी जड, मूर्वा, चिरचिटा, सूखीमूली, जमालगोटा, गूमा, धतूरा, सहिंजना इनकी जड, भाँग, हुलहुल, और आक इनके पत्ते, जंबीरीनींबूकी जड और सोंठ ये सब औषधियें समान भाग मिश्रित दो सेर लेवे, फिर सबको एकत्र पीसकर, यथाविधिसे मिलाकर तेलको तीव्र अग्निसे पकावे। जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब अत्यन्त दृढ और चिकने मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥ ७७ ॥ ८१ ॥

बलासमूर्द्धगं चैव नाशयेत्त्रिदिनाद्ध्रुवम्।
मुखकर्णाक्षिरोगांश्च कफशोणितसंस्रवान् ॥ ८२ ॥
शिरोरोगं सन्निपातं श्लीपदं गलगण्डकम्।
अभ्यङ्गान्नाशयेदेतान्पानात्कासं व्यपोहति ॥
कालाग्निरुद्रेण प्रोक्तं रुद्रतैलमिदं पुरा ॥ ८३ ॥

इस तेलको नियमपूर्वक मर्दन करनेसे ऊर्ध्वजत्रुगत श्लेष्मा, मुखरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, कफजरोग, रक्तस्राव, शिरोरोग, सन्निपातज रोग. श्लीपद और गलगण्ड ये सब रोग तीन दिनमें निश्चय नष्ट होते हैं और इसको पान करनेसे खाँसी दूर होती है। पूर्वकालमें इस रुद्रतेलको कालाग्निरुद्रने वर्णन किया है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

तप्तराजतैल।

धुस्तूरं पूतिकं पीता जयन्ती सिन्धुवारकम्।
शिरीषं हिज्जलं शिग्रुर्दशमूलं समं भवेत् ॥ ८४ ॥

प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम् ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ८५ ॥
गोमूत्रं चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत ।
मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजी विश्वभेषजम् ॥ ८६ ॥
कट्फलं वरुणं मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च ।
हरितालं जवापुष्पममृतं कुनटी तथा ॥ ८७ ॥
कर्कटं चन्दनं शिग्रु यमानी व्याघ्रपादपि ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ ८८ ॥

धतूरा, दुर्गंध करंज, पीला पियाबाँसा, जयंती, सिह्माळु, सिरस, समुद्रफल, सहिंजना; और दशमूल इन सब औषधियोंको एक एक प्रस्थ लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर उस क्वाथमें तिलका तेल एक प्रस्थ, गोमूत्र एक आढक तथा मैनफल, सोंठ, मिरच, पीपल, कूठ, जीरा, सोंठ, कायफल, वरनाकी छाल, नागरमोथा, समुद्रफल, बेलगिरी, हरिताल, गुडहल के फूल, विष, मैनसिल, काकडासिंगी, लालचंदन, सहिंजनेकी छाल, अजवायन और हुलहुलकी जड इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको डालकर मन्द मन्द अग्निद्वारा यथाविधि तेलको पकावे ॥ ८४-८८

तन्त्रराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम् ।
सन्निपातं महारोगं शिरोरोगं महोत्तरम् ॥ ८९ ॥
शिरःशूलं नेत्रशूलं कर्णशूलं च दारुणम् ।
ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदं चैव महोत्तरम् ॥ ९० ॥
कामलां पाण्डुरोगं च सहलीमकपीनसम् ।
त्रयोदश सन्निपातं हन्ति सद्यो न संशयः ॥ ९१ ॥

इस तेलको शिवजी महाराजने निर्म्माण किया है। यह तन्त्रराजनामसे प्रसिद्ध है। यह तेल सन्निपात, अत्यन्त प्रबल शिरोरोग, शिरःशूल, नेत्रशूल, दारुण कर्णशूल, ज्वर, दाह, अत्यन्त स्वेद आना, कामला, पाण्डु, हलीमक पीनस और तेरह प्रकारके सन्निपात इन सब रोगोंको सन्देहरहित तत्काल नष्ट करता है ८९-९१

कुमारीतैल।

कुमार्याः स्वरसे प्रस्थे धूस्तूरस्य रसे तथा ।

भृङ्गराजस्य च रसे प्रस्थद्वयसमायुते ॥ ९२ ॥
चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
कल्कैर्मधुकह्रीबेरमञ्जिष्ठाभद्रमुस्तकैः ॥ ९३ ॥
नखकर्पूरभृङ्गैलाजीवन्तीपद्मकुष्ठकैः ।
मार्कवासकतालीशसर्जनिर्यासपत्रकैः ॥ ९४ ॥
विडङ्गशतपुष्पाश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः ।
शोकहन्नारिकेलाभ्यां कर्षमानैर्विपाचिते ॥
उत्तार्य वस्त्रपूतं च शुभे भाण्डे सुधूपिते ॥ ९५ ॥

घीग्वारका रस १ प्रस्थ, धतूरेके पत्तोंका रस एक प्रस्थ, भाँगरेका रस दो प्रस्थ और ४ प्रस्थ दूध इनमें १ प्रस्थ तिलका तेल एवं मुलहठी, सुगन्धवाला, मंजीठ, नागरमोथा, नखद्रव्य, कपूर, दारचीनी, छोटीइलायची, जीवन्ती, पद्माख, कूठ, भाँगरा, अडूसा, तालीशपत्र, राल, तेजपात, वायविडङ्ग सौंफ, असगन्ध, अण्डकी जड, अशोककी छाल और नारियलकी जड इन औषधियोंको अलहिदा दो दो तोले लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर मिलालेवे । फिर विधिपूर्वक शनैः शनैः तेलको पकावे । जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान-कर धूप आदिसे सुवासित उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ ९२-९५ ॥

त्रिरात्रमथ गुप्तं च धारयेद्विधिविद्भिषक् ।
ततस्तु तैलमभ्यङ्गे मूर्ध्नि क्षेपे नियोजयेत् ॥ ९६ ॥

फिर विधिको जाननेवाला वैद्य उस पात्रको तीन दिनतक मिट्टीमें गाडकर रक्खे, पश्चात् निकालकर उसकी शरीरपर और शिरपर मालिश करे ॥ ९६ ॥

शमयेदर्दितं गाढं मन्यास्तम्भशिरोगदान् ।
तालुनासाक्षिजातं तु शोषमूर्च्छाहलीमकम् ॥ ९७ ॥
हनुग्रहगदत्वं वा बाधिर्यं कर्णवेदनम् ॥ ९८ ॥

यह तेल घोरतर अर्दितरोग, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग तथा तालु नासिका और नेत्रगतरोग, शोष, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, बधिरता और कानकी पीडा आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

शिरोरोगमें पथ्य ।

स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपश्छर्दिर्लङ्घनं शीर्ष-

वस्तिः । रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो जीर्णं सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च ॥ ९९ ॥ यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रु-द्राक्षा वास्तुकं कारवेल्लम् । आम्रं धात्री दाडिमं मातुलुङ्गं तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम् ॥ १०० ॥ पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी मुस्तोशीरं चन्द्रिका गन्धसारः । कर्पूरं च ख्यातिमानेष वर्गः सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम् ॥ १०१ ॥

शिरोरोगमें स्वेद, नस्य देना, धूमपान, विरेचन, लेप, वमन, लंघन, शिरोवस्ति, रक्तमोक्षण, अग्निकर्म, शिरपर लेप करना, पुराना घी, शालिके चावल और सांठीके चावल, मूँगका यूष, दूध, मरुदेशके जीवोंका मांस, परवल, सहिंजना, दाख, बथुआ, करेला, आम, आमले, अनार, बिजौरानींबू, तेल, मट्ठा, काँजी, नारियल, हरड, कूठ, भाँगरा, घीग्वार, नागरमोथा, खस, इलायची, सफेदचंदन और कपूर इन समस्त औषधियोंको यथादोषानुसार सेवन करे ॥ १०१॥

शिरोरोगमें अपथ्य ।

क्षवजृम्भामूत्रबाष्पनिद्राविड्वेगमञ्जनम् ।
दुष्टनीरं विरुद्धान्नं सह्यविन्ध्यसरिज्जलम् ॥
दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥ १०२ ॥

छींक, जमुहाई, मूत्र, आँसू, निद्रा और मल इनके वेगको रोकना, अंजन लगाना, दूषित जलपान, विरुद्ध अन्न भोजन, सह्य और विन्ध्य आदि पर्वतोंकी नदियोंका जल, दातोन और दिनमें शयन करना इन सबको शिरोरोगी त्यागदेवे ॥१०२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शिरोरोगचिकित्सा ॥

प्रदररोगकी चिकित्सा ।

दध्ना सौवर्चलाजाजी मधुकं नीलमुत्पलम् ।
पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १ ॥

वातज प्रदररोगमें उक्तरोगसे पीडित स्त्री कालानमक, जीरा, मुलहठी, नीलाकमल और शहद इन सबको समान भाग लेकर दहीके साथ खरल करके प्रतिदिन पान करे ॥ १ ॥

पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ॥

काले हिरनके रक्तको खाँड और मधुमें मिश्रित करके पान करनेसे अधिक स्राव युक्त पित्तज रक्तप्रदररोग दूर होता है ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ।
एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ २ ॥

कुशाकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे तीन दिनमें ही स्त्री प्रदर-रोगसे मुक्त होजाती है ॥ २ ॥

अशोकवल्कलक्काथे शृतं दुग्धं सुशीतलम् ।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ ३ ॥

अशोकके वृक्षकी छालके क्काथमें दूधको पकाकर शीतल होजानेपर अग्निके बलाबलको विचारकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करनेसे स्त्रियोंका तीव्र प्रदररोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोडुम्बरजं पिबेत् ।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ ४ ॥

शहदके साथ गूलरके रसको अथवा चीनी और दूधके साथ अन्नको भोजन करनेसे रक्तप्रदररोग शान्त होता है ॥ ४ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम् ।
कुशवाटचालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ५ ॥

खिरैंटीकी जडको जलमें पीसकर और दूधमें मिलाकर पान करे । अथवा कुशा और खिरैंटीकी जडको चावलोंके पानीमें पीसकर पान करे तो रक्तज प्रदर दूर होता है ॥ ५ ॥

गुडेन बदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः ।
पीता लाक्षा च सघृता पृथक् प्रदरनाशनम् ॥ ६ ॥

बेरीके पत्तोंके चूर्णको गुडके साथ, कच्चा केलेकी फलीके चूर्णको दूधके साथ किम्वा लाखके चूर्णको घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे प्रदररोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत् ।
रक्तातीसारवच्चाथ रक्तार्शोवत्तथैव च ॥ ७ ॥

रक्तपित्त, रक्तातीसार और रक्तार्शरोगकी चिकित्साके अनुसारही रक्तप्रदररोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टकमिष्यते ॥

विशेषकर रक्तप्रदररोगमें अतीसारमें कहाहुआ कुटजाष्टक उपयोगी है ॥

रोहितकमूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत् ।
जलेनामलकीबीजकल्कं वा ससितामधु ॥ ८ ॥

रोहेडा वृक्षकी जडकी छालको पीसकर मिश्री और शहदमें मिलाकर अथवा आमलोंकी गुठलीकी मींगको जलमें पीसकर, मिश्री और शहदमें मिलाकर पान करना पाण्डुप्रदररोगमें हितकारी है ॥ ८ ॥

धातक्याश्चाक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम् ।
काकजानुकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा ॥
पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ९ ॥

श्वेतप्रदरको नष्ट करनेके लिये धायके फूल अथवा आमलोंको दो तोले प्रमाण लेकर जलमें पीसकर शहदके साथ किंवा काकजङ्घाकी जडको या कपासकी जडको पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करे ॥ ९ ॥

शर्करामधुकं शुण्ठी तैलं दधि च तत्समम् ।
खजेन मथितं पीतं हन्याद्वातोत्थितं रजः ॥ १० ॥

खाँड, मुलहठी, सोंठ, तिलका तेल और दही; इनको समान भाग लेकर सबको एकत्र करछीसे मथकर पीवे तो वातज रक्तप्रदर दूर होता है ॥ १० ॥

वासकस्वरसं पित्ते गुडूच्या रसमेव वा ।
धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ॥ ११ ॥

पैत्तिकप्रदररोगमें अडूसेके स्वरसको अथवा गिलोयके स्वरसको पान करे और आमलोंके स्वरसको मिश्री डालकर पान करनेसे योनिदाह दूर होता है ॥

भूम्यामलकचूर्णं च पीतं तण्डुलवारिणा ।
दिनत्रयान्तरेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ १२ ॥

भुईआमलेके चूर्णको चावलोंके जलके साथ पीनेसे ३ दिनमेंही स्त्रियोंका प्रदररोग निश्चयरूपसे नष्ट होता है ॥ १२ ॥

रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे नूतने विधिः ।
रक्तातीसारयोगं च सर्वमत्र प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

नवीन प्रदररोगमें रक्तपित्तनाशक और रक्तातीसार रोगकी भाँति सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

मूलं च शरपुंखायाः पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ।
पीत्वा च कर्षमात्रं तु अतिरक्तं प्रशान्तयेत् ॥ १४ ॥

शरफोंकाकी जडको दो तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे रक्त-का स्राव होना बन्द होता है ॥ १४ ॥

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् ।
शेलुच्छदमिश्रपिष्टं भक्षणं च तदर्थकृत् ॥ १५ ॥

आमले, रसौत और हरड इनके चूर्णको पीसकर अथवा लहसौडोंके पत्तोंको मिलाकर चावलोंके बडेके साथ भक्षण करनेसे रक्तस्राव दूर होता है ॥१५॥

वासाकषायसहितं रसभस्म प्रयोजितम् ।
प्रदरं हन्ति वेगेन सक्षौद्रं नात्र संशयः ॥ १६ ॥

अडूसेके क्काथके साथ शहद और रससिंदूर मिलाकर सेवन करनेसे वेगसे होनेवाला प्रदररोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ १६ ॥

दार्व्यादि ।

दार्वी--रसाञ्जनवृषाब्दकिरातविल्वभल्लातकैरवकृतो
मधुना कषायः । पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं
पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ १७ ॥

दारुहल्दी, रसौत, अडूसेकी छाल, नागरमोथा, चिरायता, बेलगिरी और लाल चंदन इनका एकत्र क्काथ बनाकर शहदमें मिलाकर पान करनेसे शूलयुक्त अतिप्रबल पीतप्रदर असितप्रदर रक्तप्रदर विलोहितप्रदर नीलप्रदर और श्वेतप्रदरादि सब प्रकारके प्रदर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

चंदनादिचूर्ण ।

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम् ।
नागपुष्पं च बिल्वं च भद्रमुस्तं च शर्करा ॥ १८ ॥
ह्रीबेरं चैव पाठा च कुटजस्य फलत्वचम् ।
शृङ्गबेरं सातिविषा धातकी च रसाञ्जनम् ॥ १९ ॥
आम्रास्थि जम्बुसारास्थि तथा मोचरसोद्भवः ।
नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमोद्भवम् ॥ २० ॥
चतुर्विंशतिमेतानि समभागानि कारयेत् ।
तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ २१ ॥

लालचंदन, जटामांसी, लोध, खस, कमलकी केशर, नागकेशर, बेलगिरी, नागरमोथा, खाँड, सुगंधवाला, पाढ, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, सोंठ, अतीस, धायके फूल, रसौत, आमकी गुठलीकी मींग, जामुनकी गुठलीकी मींग, मोचरस, नीले कमलका फूल, वराहक्रान्ता, छोटी इलायची और अनारकी छाल इन चौवीसों औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर कपड छान करके चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन तीन तीन मासे परिमाण लेकर चावलोंके जल और मधुमें मिश्रित करके सेवन करे ॥ १८–२१ ॥

चतुःप्रकारं प्रदरं रक्तातीसारमुल्बणम् ।
रक्तार्शांसि निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
अश्विन्योः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ २२ ॥

यह चूर्ण चार प्रकारके प्रदररोगको तथा दारुण रक्तातिसार और रक्तार्शको तत्काल नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अंधकारराशिको शीघ्र नष्ट कर देता है । इसको अश्विनीकुमारोंने रचा है । यह योग रक्तपित्तनाशक है ॥ २२ ॥

पुष्यानुगचूर्ण ।

पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम् ।
अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गा पद्मकेशरम् ॥ २३ ॥
बाह्लिकातिविषामुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम् ।
कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥ २४ ॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकी मधुकार्ज्जुनम् ।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥
तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ २५ ॥

पाढ, जामुन और आमकी गुठलियोंकी मींग, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठकी (मोईयावृक्ष), मोचरस, वराहक्रान्ता, कमलकेशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध, गेरू, कायफल, मिरच, सोंठ, दाख, लालचंदन, सोनापाठेकी छाल, इन्द्रजौ, अनंतमूल, धायके फूल, मुलहठी और अर्जुनकी छाल इन सब औषधियोंको पुष्यनक्षत्रमें उद्धृत करके समान भाग लेकर बारीक कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे । फिर उस चूर्णको शहद और चावलोंके जलके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ २३–२५ ॥

अर्शस्सु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ।
दोषागन्तुकता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ॥ २६ ॥

योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम् ।
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्त्तयेत् ॥ २७ ॥
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ।
अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्षणाः ॥ २८ ॥

अर्श और रक्तातीसारमें इसको प्रयोग करना उपयोगी है। यह चूर्ण बालकोंके जितने भी आगन्तुक रोग हैं उन सबको और स्त्रियोंके योनिदोष, श्वेत, नील, पीत, श्याम और अरुण प्रदररोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। यह पुष्यानुगनामक चूर्ण उक्त रोगोंमें विशेष हितकारी है और आत्रेय करके पूजित है ॥ २६–२८ ॥

उत्पलादि ।

कन्दं रक्तोत्पलस्याथ रक्तकार्पासमूलकम् ।
करवीरस्य मूलानि तथा रक्तोड्रमूलकम् ॥ २९ ॥
बकुलस्य तथा मूलं गन्धमातृकजीरकौ ।
रक्तचन्दनकं चैव समभागं च कारयेत् ॥ ३० ॥
तण्डुलोदकसंपिष्टं रक्तमूत्राय दापयेत् ।
योनिशूलं कटीशूलं कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥
योनिशूलहरः प्रोक्त उत्पलादिर्न संशयः ॥ ३१ ॥

लालकमलकी जड, लालकपासकी जड, लालकनेरकी जड, लालगुडहलकी जड, बक वृक्षकी जड, गन्धमात्रा, जीरा और लाल चन्दन इनको बराबर २ लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे। इसको चावलोंके पानीमें पीसकर और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे रक्तमूत्र, योनिशूल, योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल नाश होता है। यह उत्पलादि चूर्ण योनिशूलको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥

मधुकाद्यवलेह ।

मधुकं चन्दनं लाक्षा रक्तोत्पलरसाञ्जनम् ।
कुशवीरणयोर्मूलं बलावासकयोस्तथा ॥ ३२ ॥
कोलमज्जाम्बुदं बिल्वं पिच्छा दार्वी च धातकी ।
अशोकवल्कलं द्राक्षा जवाकुसुममस्फुटम् ॥ ३३ ॥
आम्रजम्बूकिसलयं कोमलं नलिनीदलम् ।
शतमूली विदारी च रजतं लौहमभ्रकम् ॥ ३४ ॥

एषां कोलमितं चूर्णं द्विगुणा सितशर्करा।
वरीरसस्य प्रस्थार्द्धं पचेन्मन्देन वह्निना ॥ ३५ ॥
घनीभूते क्षिपेच्चूर्णं शीतीभूते पलं मधु।
मधुकाद्यवलेहोऽयं महादेवेन भाषितः ॥ ३६ ॥

मुलहठी, लालचन्दन, लाख, लालकमल, रसौत, कुशमूल, वीरणमूल, वालिआर्की जड, अडूसेकी मूल, बेरकी गुठलीकी मींग, नागरमोथा, बेलगिरी, मोचरस, दारुहल्दी, धायके फूल, अशोकवृक्षकी छाल, दाख, गुडहलके फूलकी कली, आम और जामुनके कोमल पत्ते, कमलपत्र, शतावर, विदारीकन्द, रौप्यभस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म इनके चूर्णको दोदो तोले और सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। प्रथम मिश्रीको शतावरके एक प्रस्थ रसमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें उपर्युक्त औषधियोंका चूर्ण डाले; फिर शीतल होजानेपर चार तोले शहद डालकर सबको एकमएक करलेवे। श्रीमहादेवजीने इस मधुकाद्यवलेहको कथन किया है ॥ ३२-३६ ॥

दुस्तरं प्रदरं हन्ति नानावर्णं सवेदनम्।
योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं सुदुःसहम् ॥ ३७ ॥
रक्तातिसारं रक्तार्शो रक्तपित्तं चिरोद्भवम्।
मूत्ररोगानशेषांश्च दाहं मोहं वमिं भ्रमिम् ॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३८ ॥

यह अवलेह दुस्तर और वेदनायुक्त विविधप्रकारके प्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, दुस्सह वस्तिशूल, रक्तातीसार, रक्तार्श, पुराने रक्तपित्त, मूत्रके समस्त विकार, दाह, मोह वमन और भ्रमादि सर्वप्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट कर देता है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको दूर करता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

प्रदरान्तकरस।

शुद्धसूतं तथा गन्धं शुद्धवङ्गकरूप्यकम्।
खर्परं च वराटं च शाणमानं पृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥
त्रितोलकमितं चैव लौहचूर्णं क्षिपेत्सुधीः।
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं भिषग्वरः ॥
असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः ॥ ४० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वङ्गभस्म, रौप्यभस्म, खपरियाभस्म और कौडीकी भस्म इन सबको अलग अलग चार चार माशे और लोहेका चूर्ण तीन तोले लेवे। फिर सबको एकत्रकर घीग्वारके रसके साथ एक दिनपर्यन्त खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियां बनालेवे। इस रसको सेवन करनेसे सर्वप्रकारका असाध्य प्रदररोग भी सन्देहरहित नष्ट होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

प्रदरारिलौह।

वत्सकस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागावशिष्टं च कषायमवतारयेत् ॥ ४१ ॥
वस्त्रपूते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत्।
समङ्गा शाल्मलं पाठा बिल्वं मुस्तं च धातकी ॥ ४२ ॥
अरुणा व्योमकं लोहं प्रत्येकं च पलं पलम्।
कोलमात्रं प्रयुञ्जीत कुशमूलं पयो ह्यनु ॥ ४३ ॥
श्वेतं रक्तं तथा नीलं पीतं प्रदर दुस्तरम्।
कुक्षिशूलं कटीशूलं देहशूलं च सर्वगम् ॥ ४४ ॥
प्रदरारिरयं लौहो हन्ति रोगान्सुदुस्तरान्।
आयुःपुत्रकरश्चैव बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ४५ ॥

कुडेकी छालको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उस क्राथको दुबारा चूल्हेपर रखकर पकावे। जब पाक गाढा होजाय तब उसमें वराहक्रान्ता, मोचरस, पाढ, बलगिरी, नागरमोथा, धायके फूल, अतीस, अभ्रक और लोहा इन औषधियोंको चार चार तोले लेकर बारीक पीसकर डालदेवे और सबको एकमएक करदेवे। इसको एक तोला प्रमाण लेकर कुशाकी जडको जलमें पीसकर उस जलके साथ सेवन करे तो यह प्रदरारिलोह श्वेत, लाल, नीले और पीले दुस्तर प्रदरको तथा कुक्षिशूल, कटिशूल, सर्व शरीरगत शूल, इनके अतिरिक्त अन्यान्य दुस्तर रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। एवं आयु, बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि करता है तथा पुत्रको उत्पन्न करता है ॥ ४१-४५ ॥

सर्वाङ्गसुन्दररस।

गगनं शोधितं ग्राह्यं पलैकमिष्टकासमम्।
टङ्कणं स्याच्चतुर्थांशं शाणार्द्धं त्रिसुगन्धिकम् ॥ ४६ ॥

कर्पूरं नलदं चैव जातीकोषं जलं घनम् ।
नागेश्वरं लवङ्गं च कुष्ठं सत्रिफलं तथा ॥
जलेन वटिका कार्या छायया शोषयेत्तु ताम् ॥ ४७ ॥

शुद्ध अभ्रक चार तोले, सुहागेकी खील एक तोला तथा दारचीनी, इलायची, तेजपात, कपूर, खस, जावित्री, सुगन्धवाला, नागरमोथा, नागकेशर, लौंग, कूठ और त्रिफला इन प्रत्येक औषधिको दो दो माशे लेकर सबको एकत्र जलके द्वारा खरल कर गोलियाँ बनालेवे । फिर उनको छायामें सुखाकर रखलेवे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

प्रदरं नाशयेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ।
अशीतिं वातजान्रोगान्मन्दाग्निमतिदारुणम् ॥ ४८ ॥
सज्वरग्रहणीं चैव रक्तपित्तमरोचकम् ॥
कासान्पञ्च प्रतिश्यायं श्वासं हृद्रोगमेव च ॥४९॥

इस रसको सेवन करनेसे अङ्गोंका टूटना और वेदनायुक्त सर्वप्रकारका प्रदर-रोग नष्ट होता है । यह अस्सी प्रकारके वातज रोग, मन्दाग्नि, दारुण ज्वरसहित संग्रहणी, रक्तपित्त, अरुचि, पाँच प्रकारकी खाँसी, प्रतिश्याय (जुकाम), श्वास और हृदयरोगको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

रत्नप्रभावटिका ।

स्वर्णमौक्तिकमभ्रं च नागं वङ्गं च पित्तलम् ।
माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालं च खर्परम् ॥ ॥ ५० ॥
कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च ।
स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च ॥ ५१ ॥
भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रमतः परम् ।
सम्मर्द्यातन्द्रितः कुर्याद्भिषग्गुञ्जामिता वटीः ॥ ५२ ॥

सुवर्ण, मोती, अभ्रक, सीसा, वङ्ग, पीतल, सोनामाखी, चाँदी, हीरा, लोहा, हरिताल और खपरिया इन सबकी भस्मोंको समान भाग लेकर केलेकी जड, मकोय, अडूसेकी छाल, कमल और जयन्तीके पत्ते इन सबोंके स्वरस तथा कपूरकें जलमें यथाक्रम भावना देकर शास्त्रोक्त विधिसे एक दिनरात्रिपर्यन्त निरालस्य होकर उत्तम प्रकार खरल करे, फिर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ५०-५२ ॥

एकैकां च प्रयुञ्जीत प्रातराशं बलाम्बुना।
उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा ॥ ५३ ॥
इयं रत्नप्रभानाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा।
सर्वस्त्रीरोगहन्त्री च बल्या वृष्या रसायनी ॥ ५४ ॥

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोलीको खिरैंटीके क्वाथ अथवा कुकुरभाँगरेके रस किम्वा मन्दोष्ण दूधके साथ सेवन करे। यह रत्नप्रभानामवाली वटी सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली और स्त्रियोंके समस्त रोगोंको हरनेवाली तथा बलकारक, पुष्टिकारक और रसायन है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

सितकल्याणघृत।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमं रक्तशालयः।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ ५५ ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्।
विदारी शतपुत्री च शालपर्णी सजीरका ॥ ५६ ॥
फलं त्रपुषबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम्।
एषामर्द्धपलान्भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ५७ ॥
पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५८ ॥

कमोदनीके फूल, पद्माख, खस, गेहूं, लाल शालिचावल, मुगवन, क्षीर काकोली, कुम्भेर, मुलहठी, खिरैंटी, कंघीकी जड, लालकमल, ताडका मस्तक, विदारीकन्द, शतावर, शालपर्णी, जीरा, त्रिफला, ककडीके बीज और कच्ची केलेकी फली इन सबको दो दो तोले लेकर एकत्र कूटपीसकर कल्क बनाले, फिर घृतसे चौगुना गोदुग्ध, दुगुना पानी और एक प्रस्थ घी लेवे, सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करना चाहिये ॥ ५५-५८ ॥

प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके।
बहुरूपं च यत्पित्तं कामलायां च शोणिते ॥
अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ५९ ॥
तरुणी चाल्पपुष्पा च या च गर्भं न विन्दति।
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६० ॥

यह घृत प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, अनेक प्रकारके पित्तरोग, कामला, रक्तस्राव, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, मद और भ्रमादि रोगोंमें सेवन

करना परमोपयोगी है । जो तरुणी स्त्री अल्प पुष्पशाली होती है और गर्भको धारण नहीं करती उसके इस घृतके प्रभावसे अवश्य गर्भधारण होता है । इससे स्त्रियोंकी दिनप्रतिदिन प्रीति उत्पन्न होती है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

न्यग्रोधाद्यघृत ।

न्यग्रोधाश्वत्थपार्थामृत-वृषकटुकाप्लक्षजम्बूपियालाः
श्योनाकोडुम्बराख्यामधुकतरुबलावेतसं केन्दुनीपौ ।
रोहीतं पीतसारं विधिविहितहृतं सर्वमेषां तरूणां प्रत्येकं
वल्कलं तद्युगपलमखिलं क्षोदयित्वा भिषग्भिः ॥६१॥
क्वाथ्यं द्रोणाम्भसा तद्दढविमलकटाहेऽत्र पादावशेषं
सर्पिः प्रस्थं च पाच्यं पचनकुशलिना मन्दमन्दानलेन ।
प्रस्थं धात्रीरसानां विधिविहितजलप्रस्थमेकं च शाले-
र्दत्त्वा त्र्यक्षं तु कल्कं मधुकमपि मधोः पुष्पखर्ज्जूरदार्वी ।
जीवन्तीकाश्मरीणां फलमपि युगलं क्षीरकाकोलियुग्मं
रक्ताख्यं चंदनं यत्तदपरममलं चाञ्जनं शारिवा च ॥६२॥

वड, पीपल, अर्जुन, गिलोय, अडूसा, कुटकी, पाखर, जामुन, चिरौंजी श्योनाक, गूलर, महुआ, खिरैंटी, बेंत, कुचिला, कदम, रोहेडा और शाल इन समस्त औषधियोंकी छाल पृथक् पृथक् आठ आठ तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ, आमलोंका रस एक प्रस्थ विधिपूर्वक बनाया हुआ शालिचावलोंका क्वाथ एक प्रस्थ तथा कल्कके लिये मुलहठी, महुएके फूल, पिण्डखजूर, दारुहल्दी, जीवन्ती, कुम्भेर, काकोली और क्षीरकाकोली इन चारोंके फल, लालचन्दन, सफेद चन्दन, रसौत, अनन्तमूल ये प्रत्येक औषधि तीन तीन तोले लेकर बारीक पीसकर डालदेवे । फिर पचनक्रियामें कुशल वैद्य यथाविधिसे मन्द मन्द अग्निद्वारा घृतको पकावे । जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उसको चिकने बर्तनमें भरकर रख-देवे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

न्यग्रोधाद्यं घृतं ह्येतद्देहं प्राप्यामृतायते ।
दुस्तरं प्रदरं हन्ति नीलं रक्तं सितासितम् ॥ ६३ ॥
योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं सुदुःसहम् ।

अङ्गदाहं योनिदाहमक्षिकुक्षिभवं च यम् ॥ ६४ ॥
मन्ददृष्टिमश्रुपातं तिमिरं वातसम्भवम् ।
आध्मानानाहशूलघ्नं वातपित्तप्रकोपजित् ॥ ६५ ॥
अम्लपित्तं च पित्तं च योनिरोगं विनाशयेत् ।
दृष्टिप्रसादजननं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ ६६ ॥

यह न्यग्रोधाद्यनामक घृत शरीरमें पहुँचकर अमृतके समान गुण करता है । तथा स्त्रियोंके दुस्तर नीलप्रदर, लालप्रदर, श्वेतप्रदर, कृष्णप्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, दुस्सह वस्तिशूल, अङ्गोंकी दाह, योनिदाह, नेत्रदाह, कुक्षिदाह, दृष्टिकी हीनता, अश्रुपात, वातज तिमिररोग, आध्मान, आनाह (अफारा) शूल, वातपित्तजन्य रोग, अम्लपित्त, पित्त और योनिरोगको शीघ्र नष्ट करता है एवं दृष्टिको प्रसन्न, बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि करता है ॥ ६३–६६ ॥

विश्ववल्लभघृत ।

केशराजस्य निर्गुण्ड्याः शतावर्याः कुशस्य च ।
विदार्याः स्वरसेनापि च्छागेन पयसा तथा ॥ ६७ ॥
कल्कैर्दाडिमबिल्वाब्दैर्लवङ्गैलाफलत्रिकैः ।
महता पञ्चमूलेन द्राक्षाचन्दनचम्पकैः ॥ ६८ ॥
निशादारुनिशाभ्यां च वह्निना लवणैरपि ।
तोयपिष्टैः पचेत्सर्पिः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥
विश्ववल्लभनामेदं घृतं स्त्रीगदसूदनम् ॥ ६९ ॥

कुकुरभाँगरा, निर्गुण्डी, शतावर, कुश और विदारीकन्द इनके स्वरस तथा बकरीके दूधको एकएक प्रस्थ लेकर सबके साथ अनारका बक्कल, बेलगिरी नागरमोथा, लौंग, इलायची, त्रिफला, बृहत्पञ्चमूल, दाख, लालचंदन, चम्पा वृक्षकी छाल, हल्दी, दारुहल्दी, चीतेकी जड और पाँचौंनमक इन सब औषधियोंको समान भाग मिश्रित एक सेर लेकर जलमें पीसकर यथाविधि मिश्रित करके घृतको पकावे । जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब मिट्टीके उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । यह विश्ववल्लभनामक घृत स्त्रियोंके सब रोगोंको नष्ट करता है ॥

अशोकघृत ।

अशोकवल्कलं प्रस्थं तोयाढकविपाचितम् ।
पादस्थेन घृतप्रस्थं जीरकक्वाथसंयुतम् ॥ ७० ॥

तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं घृततुल्यं प्रदापयेत् ।
तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः ॥ ७१ ॥
जीवनीयैः पियालैस्तु परुषैः सरसाञ्जनैः ।
यष्ट्याह्वाशोकमूलं च मृद्वीका च शतावरी ॥ ७२ ॥
तण्डुलीयकमूलं च कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥ ७३ ॥

अशोककी छालको एक प्रस्थ लेकर एक आढक जलमें पकावे । जब पकते हुए चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथके साथ घी एक प्रस्थ, जीरेका क्वाथ एक प्रस्थ, चावलोंका जल एक प्रस्थ, बकरीका दूध एक प्रस्थ और कुकुरभाँगरेका रस एक प्रस्थ तथा जीवनीयगणकी औषधियें, चिरौंजी, फालसे, रसौत, मुलहठी, अशोककी जडकी छाल, दाख शतावर और चौलाईकी जड इन सब औषधियोंके दो दो तोले कल्कको मिलाकर यथारीति घृत को पकावे । जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें ८ पल चीनी मिलादेवे ॥ ७०-७३ ॥

पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोषसमुद्भवम् ।
श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ॥ ७४ ॥
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलं च सर्वगम् ।
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वासकासकम् ॥ ७५ ॥
आयुःपुष्टिकरं बल्यं बलवर्णप्रसादनम् ।
देयमेतत्परं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ७६ ॥

इस घृतको पीतेही सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ श्वेतप्रदर नीलप्रदर तथा दुस्तर कृष्णप्रदर नष्ट होता है । यह घृत कुक्षिशूल, कटिशूल, सर्व प्रकारके योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग कृशता, श्वास, खाँसी प्रभृति विकारोंको नष्ट करता है । एवं आयुवर्धक, पुष्टिकारक, बल और वर्णको उत्पन्न करनेवाला है । इस घृतको श्रीविष्णुभगवान्ने रचा है ॥ ७४-७६ ॥

अशोकारिष्ट ।

अशोकस्य तुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥ ७७ ॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम् ।
अजाजीं मुस्तकं शुण्ठीं दार्व्युत्पलफलत्रिकम् ॥ ७८ ॥

आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनं च विनिक्षिपेत्।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥ ७९ ॥
मासादूर्द्ध्वं च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत्।
ज्वरं च रक्तपित्तार्शो मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥
मेहशोथारुचिहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ॥ ८० ॥

अशोककी छालको १०० पल लेकर चार द्रोण (१२८ सेर) जलमें पकावे। जब पकते २ एक द्रोण (३२ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें शीतल होजानेपर २०० पल गुड, धायके फूल ६४ तोले एवं काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, लालकमलकी जड, त्रिफला, आमकी गुठलीकी गिरी, जीरा, अडूसा और लालचन्दन इन सबको एक एक तोला लेकर और एकत्र कूटपीसकर डालदेवे। फिर उस पात्रके मुखको बन्द करके रखदेवे। एक महीनेके बाद उसको निकालकर और छानकर उपयुक्त मात्रासे दिनमें दो तीन बार पान करे तो यह अशोकारिष्ट सर्व प्रकारके प्रदररोग, ज्वर, रक्तपित्त, बवासीर मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह, सूजन और इनके अतिरिक्त अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको शीघ्र हरता है ॥ ७९-८० ॥

प्रदरमें पथ्यापथ्यविधि।

यत्पथ्यं यदपथ्यं च रक्तपित्तेषु कीर्त्तितम्।
प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तन्नारी भजेत्त्यजेत् ॥ ८१ ॥

रक्तपित्तरोगमें जो पथ्यपदार्थ वर्णन किये हैं उनको स्त्री प्रदररोगमें दोषानुसार सेवन करे और जो उक्तरोगमें अपथ्य कहे गये हैं उन सबको प्रदररोगमें भी त्यागदेवे ॥ ८१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रदररोगचिकित्सा।

योनिव्यापद्की चिकित्सा।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्।
वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १ ॥

योनिव्यापद्रोगमें वायुनाशक शीतलक्रिया तथा वस्तिक्रिया, तैलादिकी मालिश, सेचन, प्रलेप और पिचु (फोया) धारणादि उपचार करे ॥ १ ॥

वचोपकुञ्चिकाजाजीकृष्णावृषकसैन्धवम् ।
अजमोदां यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ २ ॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोड्य खादेत्तद् घृतभर्जितम् ।
योनिव्यापत्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ ३ ॥

वच, कालाजीरा, जीरा, पीपल, अडूसा, सैंधानमक, अजमोद, जवाखार, चीतेकी जड इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसलेवे । फिर उस चूर्णको घीमें भूनकर खाँड और सुराके मंडके साथ मिलाकर भक्षण करे । इससे योनिव्यापद्रोग, हृदयरोग, गुल्म और अर्शादिरोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ।
नतवार्त्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ॥
तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ ४ ॥

गिलोय, त्रिफला और दन्ती इनके क्वाथसे योनिको सिञ्चन करे । एवं तगर बडीकटेरी, कूठ, सैंधानमक और देवदारु इन सब औषधियोंके द्वारा तेल पकाकर उसमें फोया भिजोकर योनिमें रक्खे तो योनिव्यापद्रोग दूर होय ॥ ४ ॥

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ।
शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ५ ॥

पित्तलानामक योनिव्यापद्रोगमें योनिपर सेचन, तेलादिकी मालिश, फोया रखना, घृतादि स्नेहद्रव्योंका प्रयोग और पित्तनाशक शीतल क्रिया करे ॥ ५ ॥

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ।
पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥
वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधिनी ॥ ६ ॥

कफजनित योनिव्यापद्रोगमें सर्वप्रकारकी रूखी और गरम औषधियाँ उपयोग करे । पीपल, कालीमिरच, उडद, सोया, कूठ, सैंधानोन इन सबको एकत्र पीसकर तर्जनी अंगुलीकी समान बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे । यह बत्ती योनिको शुद्ध करती है ॥ ६ ॥

हिंस्राकल्कस्य वातार्त्तां कोष्णमभ्यज्य धारयेत् ।
पञ्चवल्कस्य पित्तार्तां श्यामादीनां कफोत्तरा ॥ ७ ॥

वातज योनिव्यापद्रोगमें कटेरीकी जडको पीसकर उसकी बत्ती बनाकर कुछ एक गरम करके योनिमें रक्खे । इसीप्रकार पित्तज योनिमें बडादि पाँचों वृक्षोंकी

छालकी बत्ती और कफज योनिरोगमें श्यामालतादिकी बत्ती बनाकर योनिमें धारण करे तो विशेषोपकार होता है ॥ ७ ॥

मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम् ।
अभ्यङ्गाद्धन्ति योन्यर्शः स्वेदस्तन्मांससैन्धवैः ॥ ८ ॥

चूहेके मांसको ८ तोले लेकर उसके साथ आध सेर तिलके तेलको धूपमें रखकर ७ दिनतक पकावे । फिर उस तेलको योनिमें मले तो योन्यर्शरोग दूर होता है । एवं चूहेके मांस और सैंधानमकको एक जगह पकाकर अण्डके पत्तेपर रखकर योनिमें स्थापन करके स्वेद प्रदान करे ॥ ८ ॥

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं सप्ताहभावितम् ।
मधुना किण्वचूर्णं वा दद्यादचरणापहम् ॥ ९ ॥

रेशमके टुकडेको गौके पित्तमें अथवा मछलीके पित्तमें ७ दिनतक भावना देकर योनिके मध्यमें प्रवेश करे अथवा सुराबीजके चूर्णको शहदमें मिलाकर योनिमें लगावे तो अचरणानामक योनिरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

वामिन्याः पूतियोन्याश्च कर्त्तव्यः स्वेदनोऽपि वा ।
क्रमः कार्यस्ततः स्नेहः पिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥
स्रोतसां शोधनं कण्डूक्लेदशोथहरं च तत् ॥ १० ॥

वामिनी और पूतियोनिरोगमें स्वेद देवे और तेलमें भिजोकर रुईका फोया रक्खे । इससे स्रोतोंकी शुद्धि होती है तथा खुजली, क्लेद, सूजन दूर होती है ॥ १० ॥

शल्लकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चपल्लवैः ।
कषायैः साधितः स्नेहः पिचुः स्याद्विप्लुतापहः ॥ ११ ॥

शालईवृक्ष, जिङ्गिनीवृक्ष, जामुन और धौंवृक्ष इनकी छाल एवं आम, जामुन, कैथ, जम्बीरी नींबू और बेंत इनके पत्ते समान भाग लेवे । इन सबके क्वाथके साथ तेल पकाकर उसमें रुईके फोयेको भिजोकर योनिमें रक्खे तो विप्लुतरोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

कर्णिन्यां वर्त्तिका कुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः ।
बस्तमूत्रकृता धार्या सर्वं च कफनुद्धितम् ॥ १२ ॥

कर्णिनीरोगमें कूठ, पीपल, आकके पत्ते और सैंधानमक इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाकर उस बत्तीको योनिमें धारण करना और सर्वप्रकारकी कफनाशक चिकित्सा करना हितकारी है ॥ १२ ॥

त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्त्तानिलार्त्तिषु ।
तदेव च महायोन्यां स्रस्तायां च विधीयते ॥ १३ ॥

उदावर्त्त और वातज योनिरोगमें निसोतके चूर्णको तेलादि स्नेहद्रव्योंके साथ मिलाकर लगावे और स्वेदप्रदान करे । इसीप्रकार महायोनि और स्रस्तयोनिमेंभी क्रिया करना श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं तत्
तैले पाच्यं भवति नियतं यावदेतन्न सम्यक् ।
तत्तैलाक्तं वमनमनिशं योनिभागे दधाना
हन्ति व्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ १४ ॥

चूहेके मांसके टुकडे टुकडे करके उसके द्वारा तिलके तेलको पकावे । उस तेलमें फायेको भिजोकर योनिमें रखनेसे योनिकन्दरोग नष्ट होता है । इसमें किश्चिन्मात्रभी सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

शतपुष्पातैललेपात्तुवरीदलजात्तथा ।
पेटिकामूललेपेन योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १५ ॥

सोयेको तेलमें खरलकर लेप करनेसे अथवा अडहरके पत्तोंको किंवा पेटारीवृक्षकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे विदीर्णयोनि फिर जुड जाती है ॥

सुषवीमूललेपेन प्रविष्टा तु बहिर्भवेत् ।
योनिर्मूषवसाभ्यङ्गान्निःसृता प्रविशेदपि ॥ १६ ॥

करेलेकी जडको पीसकर लेप करनेसे भीतरको प्रविष्टहुई योनि बाहरको निकल आतीहै और चूहेकी चर्बीकी मालिश करनेसे बाहरको निकलीहुई योनि भीतरको प्रवेश करजाती है ॥ १६ ॥

लोध्रतुम्बीफलालेपो योनेर्दार्ढ्यं करोति च ।
वेतसमूलनिःक्काथक्षालनेन तथैव च ॥
मूषिकावल्गुलीवसाम्रक्षणं योनिदार्ढ्यदम् ॥ १७ ॥

लोध और कडवी तोरई इनको बराबर भाग लेकर एकत्र पीसकर योनिमें लेप करे अथवा बेंतकी छालके क्वाथसे योनिको सिञ्चन करे किंवा चूहे या पिद्दकी चर्बीको योनिपर मले तो शिथिलयोनि दृढ होजाती है ॥ १७ ॥

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च ।
अश्वगन्धा हरिद्रा च दृढीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥

वच, नीलकमल, कूठ, कालीमिरच, असगन्ध और हल्दी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसेभी योनि दृढ होती है ॥ १८ ॥

पलाशोडुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्।
मधुना योनिमालिप्य दृढीकरणमुत्तमम् ॥ १९ ॥

ढाकके बीज, गूलर, तिलका तेल और शहद इनको पीसकर लेप करना उत्तम दृढीकरणयोग है ॥ १९ ॥

मदनफलमधुकर्पूरप्रपूरितं कामिनीजनस्य।
चिरगलितयौवनस्य वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥२०॥

मैनफल, शहद और कपूर इनको एकत्र पीसकर स्त्रियोंकी योनिमें लगानेसे बहुत दिनोंसे शिथिलहुई और यौवनरहित योनि अत्यन्त दृढ, कोमल होतीहै ॥ २० ॥

पञ्चपल्लवयष्ट्याह्वमालतीकुसुमैर्घृतम्।
रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धनिवारणम् ॥ २१ ॥

आम, जामुन, कैथ, जम्बीरीनीम्बू और बेल इनके पत्ते तथा मुलहठी और चमेलीके पत्ते इनके कल्कद्वारा धूपमें अथवा अग्निमें घृतको पकाकर योनिमें मलनेसे योनिकी दुर्गन्ध दूर होती है ॥ २१ ॥

सुतनुं करोति मध्यं पीतं मथितेन माधवीमूलम् ॥

माधवीलताकी जडको जलमें पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके शरीरका मध्यभाग क्षीण होकर सुन्दर शरीर होजाताहै ॥

स्याच्छिथिलापि च दृढा सुरगोपाज्याभ्यङ्गतो योनिः॥२२

वीरबहूटीनामक कीडेको घृतके साथ पीसकर लेप करनेसे शिथिलयोनि दृढ होजातीहै ॥ २२ ॥

वेतसस्य तु मूलानि क्वाथयेन्मृदुनाऽग्निना।
भगं प्रक्षालितं तेन गाढत्वमुपजायते ॥ २३ ॥

बेंतकी जडके क्वाथको मन्दमन्द अग्निसे पकाकर उसके द्वारा योनिको सींचे तो योनिमें दृढता उत्पन्न होती है ॥ २३ ॥

रजःप्रवर्त्तक योग।

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनफलकिण्वयष्ट्याह्वैः।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसंजननी ॥ २४ ॥

कडवी तोरईके बीज, दन्तीकी जड, पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज और मुलहठी इनके चूर्णको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें सबको अच्छेप्रकार खरल करके बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको योनिमें रखनेसे ऋतुधर्म उत्पन्न होता है ॥

सकाञ्जिकं जवापुष्पं भृष्टं ज्योतिष्मतीदलम् ।
दूर्वापिष्टं च सम्प्राश्य वनिता त्वार्त्तवं लभेत् ॥ २५ ॥

गुडहलके फूलोंको काँजीमें पीसकर अथवा, मालकाङ्गनीके पत्तोंको काँजीमें भूनकर या केवल दूबको चावलोंके जलद्वारा पीसकर उसके बडे बनाकर खानेसे स्त्री आर्तव (रजोधर्म) को प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपुष्पस्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम् ।
पीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥ २६ ॥

मालकाङ्गनीके फूल, सज्जी, वच और विजयसार इन सबको दूधमें पीसकर तीन दिनतक सेवन करनेसे निश्चय रजोत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥

रजःप्रवर्त्तिनीवटी ।

टङ्कणं हिङ्गु कासीसं कन्यासारं समांशकम् ।
कुमारीस्वरसेनैव चणकप्रमिता वटी ॥ २७ ॥
रजोरोधं कष्टरजो वेदनाश्च तदुद्भवाः ।
रजःप्रवर्त्तिनी नाम वटी चूर्णं विनाशयेत ॥
भाषिता नीलकण्ठेन वह्निः काष्ठचयं यथा ॥ २८ ॥

सुहागा, हींग, हीराकसीस और वनककोडा इनको समान भाग लेकर घीग्वारके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रजःप्रवर्त्तिनी नाम वटीके सेवन करनेसे अथवा उक्त द्रव्योंके चूर्णको सेवन करनेसे रजका रुकना, कष्टसे रजक होना और उसके द्वारा पीडा होनी दूर होती है । इसको श्रीशिवजीने कहा है । यह वटी जिस प्रकार अग्नि काष्ठके समूहको तत्क्षण नष्ट करदेता है इसी प्रकार रजोदोष को तत्काल दूर करदेती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

गर्भाजनक-भेषज ।

पिप्पली विडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा ।
ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायते क्वापि ॥ २९ ॥

पीपल वायविडङ्ग और सुहागा इनके चूर्णको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर ऋतुकालमें पान करनेसे कदापि गर्भोत्पत्ति नहीं होती ॥ २९ ॥

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं या जवाकुसुममत्ति पुष्पिणी ।
सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमङ्गना३०॥

ऋतुमती स्त्री गुडहलके फूलोंको काँजीमें पीसकर और पुराने गुडमें मिलाकर तीन दिनतक सेवन करे तो उसके कभी भी गर्भधारण नहीं होता ॥३०॥

पाठापत्रमृतुस्नाता पीत्वा गर्भं न धारयेत् ॥

रजस्वला स्त्री स्नान करके पाढके पत्तोंको जलमें पीसकर पान करे तो गर्भस्थिति नहीं होती ॥

धात्र्यर्जुनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् ।
शेलुच्छदमिश्रपिष्टभक्षणं च तदर्थकृत् ॥ ३१ ॥

आमले, अर्जुनकी छाल, और हरड इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको जलके साथ ऋतुकालमें सेवन करनेसे अथवा लहसौडेके पत्तोंको मिलाकर उक्त औषधियोंके बडे बनाकर खानेसे आर्त्तवका होना बन्द होता है और गर्भको धारण करनेकी शक्ति नष्ट होजाती है ॥ ३१ ॥

रसाञ्जनं हैमवतीवयःस्थाचूर्णीकृतं शीतजलेन पीतम् ।
रजोविनाशं नियतं करोति शङ्का च का गर्भसमागमस्य॥

रसौत, हरड और आमले इनको एकत्र पीसकर शीतल जलके साथ पान करनेसे स्त्रियोंके नियमित समयमें होनेवाला ऋतु बन्द होजाता है । फिर गर्भोत्पत्ति होनेकी और सम्भावना क्या है ? ॥ ३२ ॥

नष्टपुष्पान्तकरस ।

रसेन्द्रगन्धकं लौहं वङ्गं सौभाग्यमेव च ।
रजतश्चाभ्रताम्रं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ३३ ॥
गुडूची त्रिफला दन्ती शेफाली कण्टकारिका ।
दारुसैन्धवकुष्ठं च बृहती काकमाचिका ॥ ३४ ॥
नतं तालीशवेत्राग्रं श्वदंष्ट्रा वृषकं बला ।
एतेषां स्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं च पृथक् पृथक् ॥ ३५ ॥
जीवन्तीं मधुकं दन्तीं लवङ्गं वंशलोचनम् ।
रास्नां गोक्षुरबीजं च शाणमानं विचूर्णयेत् ॥ ३६ ॥
सर्वमेकीकृतं पेष्यं जयन्तीतुलसीरसैः ।
मर्दयित्वा वटीं कुर्यान्नष्टपुष्पकयोषिते ॥ ३७ ॥

नष्टपुष्पे नष्टशुक्रे योनिशूले च शस्यते ।
ऋतुकाले क्लेदयोन्यां विशेषे चाममारुते ॥
एतान्रोगान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३८ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहा, वङ्ग, सुहागा, चाँदी, अभ्रक और ताँबा इन प्रत्येक द्रव्यको चारचार तोले लेकर गिलोय, त्रिफला, दन्तीकी जड, नील सिह्माळु, कटेरी, देवदारु, सैंधानमक, कूठ, बडीकटेरी, मकोय, तगर, तालीशपत्र, बेंतकी कोंपल, गोखुरू, अडूसा और खिरेंटी इन सबके स्वरस अथवा क्वाथमें तीनतीन बार अलग अलग क्रमपूर्वक भावना देवे । पश्चात् जीवन्ती, मुलहठी, दन्ती, लौंग, बंशलोचन, रास्ना और गोखुरूके बीज इनको चारचार माशे लेकर चूर्ण करले और सबको एकत्र मिलाकर जयन्ती और तुलसीके रसमें उत्तमप्रकार खरलकर गोलियाँ बनालेवे । फिर इस रसको स्त्रियोंके रजके नष्ट होनेपर, वीर्य्यके नष्ट होजानेपर, योनिशूल, ऋतुकालगत शूल, क्लेदयुक्त योनि और आमवातरोगमें प्रयोग करना चाहिये । यह रस इन समस्त रोगोंको इसप्रकार नष्ट करदेता है जिसप्रकार सूर्य अन्धकारसमूहको ॥ ३३-३८ ॥

फलघृत ।

त्रिफलां द्वे सहचरे गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥ ३९ ॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरचतुर्गुणम् ।
तत्सिद्धं प्रपिबेन्नारी योनिशूलनिपीडिता ॥ ४० ॥

त्रिफला, नीलापियाबाँसा, पीलापियाबाँसा, गिलोय, पुनर्नवा, शोनापाठ, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा और शतावर ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर उस कल्कके सहयोगसे एक प्रस्थ घृतको चौगुने दूधमें पकावे । जब अच्छे प्रकार सिद्ध होजाय तब उस घृतको योनिशूलसे पीडित स्त्री पान करे ॥३९॥४०॥

पिण्डिता चलिता या च निःसृता विवृता च या ।
पित्तयोनिश्च विस्रस्ता षण्ढयोनिश्च या स्मृता ॥ ४१ ॥
प्रपद्यन्ते तु ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् ।
एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् ॥ ४२ ॥

इससे पिण्डाकार, चलायमान, बाहरको निकली हुई, भीतरको प्रविष्टहुई योनि, पित्तजयोनि, विस्रस्ता और षण्ढयोनि ये सर्वप्रकारकी योनियें यथास्थानको

प्राप्त होती हैं और गर्भको शीघ्र धारण करती हैं। यह फलघृत अल्पकालमेंही सर्वप्रकारके योनिके दोषोंको हरण करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

फलकल्याणघृत।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला।
मेदा पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ ४३ ॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गुः कटुकरोहिणी।
उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ४४ ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥

मंजीठ, मुलहठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, खिरैंटी, मेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, असगन्धकी जड, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, लालकमल, बबूला, दाख, क्षीरकाकोली, काकोली, श्वेतचंदन, रक्तचन्दन और लक्ष्मणाकी जड अभावमें सफेद कटेरीकी जड) इन सब औषधियोंको दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। फिर घी १ प्रस्थ, शतावरका रस और दूध ४-४ प्रस्थ लेवे, सबको यथाविधि मिलाकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे ॥४३-४५॥

सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते।
पुत्रान्संजनयेन्नारी मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ४६ ॥
या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या च वा जनयेन्मृतम्।
अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ४७ ॥
योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते।
प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ४८ ॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् ॥ ४९ ॥
"अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः।
जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमत्र तु गृह्यते ॥
आरण्यगोमयेनापि वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ ५० ॥"

पुरुष इस घृतको पान करके प्रतिदिन स्त्रियोंमें वृषभके समान रमण करता है और स्त्री इस घृतको पान करे तो मेधावी और प्रियदर्शन पुत्रोंको उत्पन्न करती है। जो स्त्री अस्थिरगर्भा हो और जिसके मृत या अल्पायुवाली संतान

किंवा कन्यायेंही उत्पन्न होती हो ऐसी स्त्रियोंको इस घृतका पान करना चाहिये। यह घृत योनिदोष, रजोदोष और योनिस्त्रावरोगोंमें भी हितकारी है। एवं संपूर्ण दोषोंको निवारण करनेवाला संतानकी वृद्धि और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। इस फलकल्याणनामक घृतको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है। "इस घृतमें लक्ष्मणाका उल्लेख न होनेपर भी वैद्यलोग लक्ष्मणाकी जडका कल्क डालते हैं। इसमें जीववत्सा और एक वर्णवाली गौका दूध तथा घृत लेवे। एवं आरने उपलोंकी अग्निसे घृतको पकावे" ॥ ४६–५० ॥

सोमघृत।

सिद्धार्थकं वचा ब्राह्मी शङ्खपुष्पा पुनर्नवा।
पयस्यामययष्ट्याह्वं कटुका च फलत्रयम्[1] ॥ ५१ ॥
शारिवे रजनी पाठा भृङ्गदारुसुवर्चलाः।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्यामा[2] वृषपुष्पं सगैरिकम् ॥
धीमान् पक्का घृतप्रस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ ५२ ॥
मन्त्रश्चायं यदाह सुश्रुतः–
"ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं
देहि देहि रुद्रवचनेन स्वाहा ॥" इति सप्तधाऽभिमंत्रयेत्।
यत्र नोदीरितो मन्त्रो येषु योगेषु सारणैः।
सर्वत्र गदिता तत्र गायत्री फलसिद्धिदा ॥ ५३ ॥

सफेद सरसों, वच, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, लाल पुनर्नवा, क्षीरकाकोली, कूठ, मुलहठी, कुटकी, दाख, कुम्भेर, फालसे, उसवा, अनंतमूल, हल्दी, पाढ, भाँगरा, देवदारु, कालानमक, मंजीठ, त्रिफला, फूलप्रियंगु, अडूसेके फूल और गेरू इन सब औषधियोंका कल्क समान भाग मिश्रित १ सेर लेवे। इस कल्कके साथ एक प्रस्थ घृतको विधिपूर्वक पकाकर उपर्युक्त "ओं नमो महाविनायकायेति" मन्त्रसे ७ बार अभिमन्त्रित करलेवे। यह सुश्रुतका मन्त्र है और जहाँपर केवल मंत्रही कहा है वहाँ गायत्रीमंत्रसे ७ बार अभिमंत्रण करे ५१–५३

द्विमासगर्भिणी नारी षण्मासानुपयोजयेत्।
सर्वज्ञं जनयेत्पुत्रं सर्वामयविवर्जितम् ॥ ५४ ॥

---

१ फलत्रयम्–द्राक्षाकाश्मरीपरूषकाणि। २ श्यामा–प्रियंगुः।

अस्य प्रयोगात्कुक्षिस्थस्फुटवन्ध्यां हरत्यपि।
योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः ॥ ९५ ॥
स्त्रीणां पुंसां दोषहरं घृतमेतदनुत्तमम्।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् ॥ ९६ ॥

फिर गर्भवती स्त्री इस घृतको दूसरे महीनेसे प्रारंभकर छः महीनेतक पान करे तो सब रोगोंसे रहित, सर्वज्ञ पुत्रको उत्पन्न करती है। इस घृतको प्रयोग करनेसे कुक्षिस्थ स्फुटवन्ध्यापन दूर होता है। यह उत्तम घृत स्त्रियोंके सर्वप्रकारके योनिदोष तथा पुरुषोंके शुक्रदोषोंको हरता है। इसके सेवनसे बाँझ स्त्री भी शूर वीर और पण्डितमानी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ९४-९६ ॥

जडगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति।
सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतधरो भवेत् ॥ ९७ ॥
नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमुपहन्ति च।
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञिकम् ॥ ९८ ॥

इस घृतको पान करतेही जडता, गद्गदवाणी और गूँगापन दूर होता है तथा ७ दिनतक सेवन करनेसे सुनीहुई बातको तत्काल धारण करनेकी शक्ति अर्थात् स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र होजाती है। जिस घरमें यह सोमनामक घृत होता है उस गृहको अग्नि नहीं जलासकता और न वज्र आघात कर सकता है और उस गृहमें बालककी कभी मृत्यु नहीं होती है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

कुमारकल्पद्रुमघृत।

पञ्चाशच्छागमांसस्य दशमूल्यास्तथैव च।
जलमष्टगुणं दत्त्वा क्वाथेन मृदुनाऽग्निना ॥ ९९ ॥
चतुर्भागावशेषं च क्वाथं संगृह्य यत्नतः।
गव्यं प्रस्थद्वयं सर्पिर्गृह्णीयात्कुशलो भिषक् ॥ ६० ॥
क्षीरं घृतसमं दद्यान्नारायण्या रसं तथा।
ताम्रे वा मृन्मये पात्रे तदेकत्र पचेच्छनैः ॥ ६१ ॥

बकरेका मांस ५० पल और दशमूलकी सब औषधियाँ ५० पल लेकर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें नवीन गोघृत दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ

और शतावरका रस दो प्रस्थ डालकर ताँबेके या मिट्टीके पात्रमें करके मन्द मन्द अग्निसे पकावे ॥ ५९-६१ ॥

कुष्ठं शठी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
प्रियङ्कु त्रिफला दारु पत्रमेला शतावरी ॥ ६२ ॥
काश्मीरं मधुकं क्षीरकाकोली मुस्तमुत्पलम् ।
जीवन्ती चन्दनं चैवं काकोली शारिवायुगम् ॥ ६३ ॥
श्वेतवाट्यालजं मूलं मूलं च शरपुङ्खजम् ।
विदारीद्वयमञ्जिष्ठा पर्णिनीद्वयमेव च ॥ ६४ ॥
नागपुष्पं तथा दारुहरिद्रा रेणुकं तथा ।
ज्योतिष्मतीभवं मूलं शङ्खिनी नीलिनी वचा ॥ ६५ ॥
अगुरुत्वग्लवङ्गं च कुङ्कुमं निक्षिपेत्ततः ।
एतेषां कार्षिकं कल्कं दत्त्वा-शुभदिने सुधीः ॥ ६६ ॥

जब पाक पककर गाढा होजाय तब कूठ, कचूर, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, फूलप्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपात, इलायची, शतावर, कुम्भेर, मुलहठी, क्षीरकाकोली, नागरमोथा, लालकमल, जीवन्ती, लालचंदन, काकोली, सारिवा, अनन्तमूल, सफेद खिरैंटीकी जड, शरफोंकाकी जड, पेठा, विदारीकन्द, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मंजीठ, नागकेशर, दारुहल्दी, रेणुका, मालकाङ्गनीकी जड, शंखपुष्पीकी जड, नीलवृक्षकी जड, वच, अगर, दारचीनी, लौंग और केशर इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको लेकर उसमें डालदेवे ॥ ६२-६६ ॥

शुभनक्षत्रयोगे च सम्पूज्य गणनायकम् ।
शङ्करं च मुरारिं च नमस्कृत्याभिभक्तितः ॥ ६७ ॥
पाकं कुर्यात्प्रयतेन विजानन्मन्त्रपूर्वकम् ।
सिद्धशीते क्षिपेत्तत्र पारदं परिनिर्म्मलम् ॥ ६८ ॥
सुजीर्णं शोधितं चाभ्रं गन्धकं कार्षिकं न्यसेत् ।
ततः पुष्परसं तत्र प्रस्थार्द्धं च विनिक्षिपेत् ॥ ६९ ॥
काचसम्पुटके वाऽन्यपात्रे वा स्थापयेत्सुधीः ॥ ७० ॥

फिर शुभदिन शुभनक्षत्र और शुभयोगमें गणेशजीको सविधि पूजकर तथा शंकर और विष्णुभगवान्‌को भक्तिसहित अभिवादन करके पूर्वोक्त मन्त्रको जपता हुआ

बुद्धिमान् वैद्य उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे । जब घृत विधिपूर्वक पककर सिद्ध होजाय तब शीतल होजानेपर उसमें शुद्ध पारा, शुद्ध पुरानी अभ्रक और शुद्ध गंधक ये प्रत्येक दो दो तोले परिमाण एकत्र पीसकर एवं शहद ३२ तोले मिला-देवे । फिर सबको एकमएक करके काँचकी शीशीमें या मिट्टी आदिके पात्रमें भरकर रखदेवे ॥ ६७-७० ॥

पराशरमुनिः प्रीतिकरुणावारिधिर्मुदा ।
वन्ध्यामयविनाशाय शिशुकल्पद्रुमं घृतम् ॥
चकारास्य प्रसादेन जन्मवन्ध्या लभेत्सुतम् ॥ ७१ ॥
खादेत्कर्षद्वयं सर्पिर्दत्त्वा विप्राय सादरम् ।
अनुपानं प्रकुर्वीत पयश्छागं विशेषतः ॥ ७२ ॥
गव्यं वाऽपि पिबेत्क्षीरं शीतं पलयुगं तथा ।
घृतस्यास्य सुसिद्धस्य गुणाञ्छृणु समाहितः ॥ ७३ ॥

इस कुमारकल्पद्रुम घृतको करुणासागर श्रीपराशरमुनिने दया करके वन्ध्या-स्त्रियोंके वन्ध्यात्वदोषको निवारण करनेके लिये निर्म्माण किया है । इस घृतके प्रभावसे जन्मकी वन्ध्यास्त्री पुत्रको उत्पन्न करती है । प्रथम दानमानादिसे ब्राह्म-णोंको संमानपूर्वक पूजकर पश्चात् प्रतिदिन इस घृतको दो दो तोले प्रमाण लेकर सेवन करे और ऊपरसे बकरीका अथवा गौका शीतल दुग्ध ८ तोले परिमाण पान करे । अब इस सिद्ध घृतके गुणोंको कहते हैं सावधान होकर सुनो-॥

अस्य प्रसादात्षण्ढोऽपि वन्ध्यायां जनयेत्सुतम् ।
रजोदोषेण या दुष्टा शुक्रदोषेण योऽपि च ॥७४॥
स्त्री भगस्थगदेनैव पीडिता या च सर्वदा ।
या च पुष्पं न विन्देत ऋतुना पीडिता च या ॥७५॥
भूत्वा भूत्वा च नश्यन्ति मृतास्तासां मुहुर्मुहुः ।
अनेकौषधयोगेन मन्त्रयोगेन वा पुनः ॥ ७६ ॥
अनेकव्रतयोगेन यासां पुत्रो न जायते ॥
तासां कामसमाः पुत्राः जायन्ते चिरजीविनः ॥७७॥

इस घृतके प्रसादसे हिजडा पुरुषभी वन्ध्यास्त्रीमें पुत्र उत्पन्न कर सकता है । जो स्त्री रजोदोषसे या योनिरोगसे पीडित हो अथवा जो पुरुष वीर्यदोषसे

दुःखित हो जो स्त्री ऋतुमती न होती हो या जिसके ऋतुकालमें पीडा होती हो, जिसके बारबार सन्तान होकर मरजाती हो वा मरीहुई हो तथा अनेक प्रकारकी औषधियोंके प्रयोगसे अथवा यन्त्र, मन्त्रादिके करनेसे और नाना प्रकारके कठिन व्रतादिकोंके करनेसेभी जिनके पुत्र उत्पन्न नहीं होता हो उनके इस घृतको पान करनेसे कामदेवकी समान और दीर्घायुषी पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥

एतद् घृतं गृहे यस्य न तस्य कुलिशाद्भयम् ।
न राक्षसैः पिशाचैश्च गृह्यते तस्य बालकः ॥
नोपसर्पति सर्पोऽपि दर्पात्तस्य गृहान्तरम् ॥ ७८ ॥

जिसके घरमें यह घृत हो उसको वज्रसे भय नहीं करना चाहिये । उसका बालक राक्षस और पिशाचादिकोंसे ग्रसित नहीं होता एवं सर्पभी उसके घरमें भयसे प्रवेश नहीं करता ॥ ७८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां योनिव्यापच्चिकित्सा ।

लोमशातनविधिः ।

हरितालचूर्णकणिकालेपात्तप्तेन वारिणा सद्यः ।
निपतन्ति लोमनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं मन्ये ॥ १ ॥

हरिताल और चूनेको गरम पानीमें मिलाकर लेप करनेसे तत्काल बाल गिरजाते हैं । इसको मैं अद्भुत कौतुक मानता हूँ ॥ १ ॥

दग्ध्वा शङ्खं क्षिपेद्रम्भास्वरसे तच्च पेषितम् ।
तुल्यालं लेपनं हन्ति लोम गुह्यादिसम्भवम् ॥ २ ॥

शङ्खको दग्धकर उसकी भस्मको केलेके स्वरसमें डालकर और शंखभस्मकी बराबर हरितालका चूर्ण डालकर पीसकर लेप करनेसे गुह्यस्थानोंके बाल गिरजाते हैं ॥ २ ॥

रक्ताञ्जनपुच्छचूर्णयुक्तं तैलं तु सार्षपम् ।
सप्ताहमुषितं हन्ति मूलाद्रोमाण्यसंशयम् ॥ ३ ॥

लाल अञ्जनीकी पुच्छके चूर्णको सरसोंके तेलमें ७ दिनतक भिजोकर रक्खे । फिर उसको पीसकर लेप करनेसे जडसहितबाल गिरजाते हैं ॥ ३ ॥

पलाशभस्मान्वितताल मूले रम्भाम्बुमिश्रैरुपलिप्य भूयः।
कन्दर्पगेहे मृगलोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव ४

ढाककी छालकी भस्म और हरिताल इन दोनोंको बराबर भाग लेकर केलेकी जडके रसमें पीसकर लेप करनेसे स्त्रियोंकी योनिपर कभी भी रोम उत्पन्न नहीं होवें हैं ॥ ४ ॥

एकः प्रदेयो हरितालभागः पञ्चप्रदेया जलजस्य भागाः।
रक्षस्तरोर्भस्मन एव पञ्च प्रोक्ताश्च भागाः कदली-
जलार्द्राः ॥ ५ ॥ संमिश्र्य पात्रे मुनि (सप्त) घस्रमात्रं
कृत्वा स्मरागारविलेपनं च । रोमाणि सर्वाणि विला-
सिनीनां पुनर्न रोहन्ति कदाचिदेव ॥ ६ ॥

हरिताल १ भाग, शंखभस्म ५ भाग और ढाकली छालकी भस्म ५ भाग इन सबको यथाविधि लेकर केलेके रसमें एकत्र खरल करके किसी बर्त्तनमें भरकर ७ दिनतक रक्खा रहनेदेवे । रोमस्थानपर उसका लेप करे तो विलासिनी स्त्रियोंके बाल गिरजाते हैं । फिर आजन्म कदापि बाल उत्पन्न नहीं होते ॥५॥६॥

रम्भाजले सप्तदिनं विभाव्य भस्मानि कम्बोर्मसृणानि
पश्चात् । तालेन युक्तानि विलेपनेन लोमानि निर्मू-
लयति क्षणेन ॥ ७ ॥

शंखभस्म और हरितालको समान भाग ले केलेके रसमें सात दिनतक भावना देकर फिर उसका लेप करे तो क्षणमात्रमेंही सब बाल निर्मूल होजाते हैं ॥ ७ ॥

कुसुम्भतैलाभ्यङ्गो वा रोम्णामुत्पाटकोऽन्तकृत् ॥

कुसुम्भ (कसूम) के तेलकी मालिश करनेसे रोमकूप नष्ट होते हैं ॥

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानां च मनःशिला च ।
तैलं सुपक्वं हरितालमिश्रं रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥८॥

कपूर, भिलावे, शंखभस्म, जवाखार और मैनसिल इन सबके चतुर्थांश कल्कद्वारा १ सेर कडवे तेलको पकाकर उसमें हरितालका चूर्ण मिश्रित करलेवे । फिर उस तेलका लेप करे तो तत्क्षण समस्त रोम समूल नष्ट होजाते हैं ॥८॥

आरग्वधाद्यतैल ।

आरग्वधमूलपलं कर्षद्वितयं शंखचूर्णस्य ।
हरितालस्य च मूत्रखरजत्रप्रस्थेन कटुतैलम् ॥ ९ ॥

पक्वं तैलं तदथ शंखहरीतालचूर्णितं लेपात् ।
निर्म्मूलयति रोमाण्यन्येषां सम्भवो नैव ॥ १० ॥

अमलतासकी जड चार तोले, शंखभस्म दो तोले और हरिताल दो तोले इनके कल्कद्वारा एक प्रस्थ गधेके मूत्रमें एक सेर कडवे तेलको विधिपूर्वक पकावे । फिर उस तेलमें शंखभस्म और हरितालका चूर्ण दो दो तोले मिलाकर उसका लेप करनेसे सकल रोम निर्मूल होते हैं । यह कोई असम्भव नहीं ॥

क्षारतैल ।

शुक्तिशम्बूकशङ्खानां दीर्घवृन्तात्समुष्ककात् ।
दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत् ॥ ११ ॥
खाराष्टभागं विपचेत्तैलं वै सार्षपं बुधः ।
इदमन्तःपुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम् ॥ १२ ॥
बिन्दुरेकः पतेद्यत्र तत्र लोमापुनर्भवः ।
मदनादिव्रणे तैलमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १३ ॥
अर्शसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रुविचर्चिकाम् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदरुजापहम् ॥ १४ ॥

सीपी, घोंघा, शंख, शोनापाठा और मोखा इन सबको समान भाग लेकर अन्तर्धूम की विधिसे दग्धकर क्षार करलेवे । उस क्षारको एक सेर प्रमाण लेकर अठगुने गधेके मूत्रमें भावना देकर २१ बार उस क्षार जलको टपकावे । पश्चात् उक्त क्षारजलके द्वारा सरसोंके तेलको यथाविधि सिद्ध करे । यह तेल आत्रेयकरके पूजित है । इसको अन्तःपुरमें लोमनाशनार्थ देना चाहिये । इस तेलकी एक बूँद जिस किसी स्थानमें गिरजाती है फिर वहाँ बाल उत्पन्न नहीं होते । इस तेलको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है । यह क्षार तेल मदनादि व्रणरोगमें प्रयोग करना चाहिये । यह बवासीर, कुष्ठ, खुजली, दाद, विचर्चिका और सर्व प्रकारके क्लेदयुक्त रोगोंको नष्ट करनेके लिये सर्वोत्तम है ॥ ११-१४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां लोमशातनविधिः ।

वन्ध्याकी चिकित्सा ।

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्रङ्गायास्तु कन्यका ।
पिष्टं मूलं दुग्धघृतमृतौ पीतं तु पुत्रदम् ॥ १ ॥

पुष्यनक्षत्रमें लक्ष्मणाकी मूलको उखाडकर उसको घीग्वारके रसमें पीसकर दुग्ध और घृतके साथ मिश्रित करके ऋतुकालमें स्नानानन्तर पान करनेसे पुत्रोत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

सुवर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णं ताम्रस्य चाज्यसंमिश्रे ।
पीते शुद्धे क्षेत्रे भेषजयोगाद्भवेद्गर्भः ॥२ ॥

रजस्वला स्त्री स्नान करके सुवर्णभस्म, रूप्यकभस्म और ताम्रभस्मको घृतमें मिलाकर सेवन करे तो इससे गर्भोत्पत्ति होती है ॥ २ ॥

कृत्वा शुद्धौ स्नानं विलङ्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः ।
स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा भक्त्या सम्पूज्य लोकनाथेशम् ३
श्वेतबलाङ्घ्रियष्टिकं कर्षं पलं तु शर्करायाः ।
पिष्ट्वैकवर्णजीवद्वत्साया गोस्तु दुग्धेन ॥ ४ ॥
समधिकघृतेन पेयं नात्र दिने देयमन्यच्च ।
समदिवसे शुभयोगे दक्षिणपार्श्वावलम्बिनी धीरा ॥५॥
त्यक्तस्त्र्यन्तरसङ्गप्रहृष्टमनसोऽतिवृद्धधातोश्च ।
पुरुषस्य सङ्गमात्राल्लभते पुत्रं ततो नियतम् ॥ ६ ॥

ऋतुमती स्त्री ऋतुकालके तीन दिनोंको बिताकर चौथे दिन शुद्ध स्नान करके व्रत करे । फिर पाँचवें दिन प्रातःसमय भगवान्का पूजनकर और ब्राह्मणोंको दान देकर सफेद खिरैंटीकी जड दो तोले, मुलहठी २ तोले और मिश्री ४ तोले इनको एकत्र पीसकर एकवर्ण और जीवितबछडेवाली गौके दूधमें बराबर भागसे कुछ अधिक घी और उक्त औषधिको मिलाकर पान करे । उस दिन और किसी प्रकारके खाद्यको भक्षण नहीं करे । केवल दूध भात खावे । इसके अनन्तर समतिथि और शुभयोगमें दहिने भागसे स्थित होकर धैर्यचित्ता स्त्री बलवान् प्रसन्नचित्तवाले और जिसने अन्य स्त्रीसे संगम न करता हो ऐसे पतिके साथ समागम करे । इस योगके प्रभावसे पुरुषके सङ्गम करतेही निश्चय गर्भ रहजाता है और पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ३–६ ॥

गोष्ठजातवटस्य प्रागुदक्शाखाभवे शुभे ।
शुङ्गे माषौ तथा गौरसर्षपौ दधियोजितौ ॥
पुष्यपीतौ द्रुतापन्नसत्त्वायाः पुत्रकारकौ ॥ ७ ॥

बडके वृक्षकी ईशान कोणमें स्थित शाखाके दो अंकुर, उडद दो और सफेद सरसोंके दाने दो इनको एकत्र पीसकर दहीमें मिलाकर पुष्यनक्षत्रमें पान करनेसे पुत्रजन्म होता है ॥ ७ ॥

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणीपयसाऽन्वितम् ।
पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवन्तं न संशयः ॥ ८ ॥

स्त्री गर्भिणीके दूधमें ढाकके एक पत्रको पीसकर पीवे तो रूपवान् पुत्रको पाती है । इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः ।
ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ ९ ॥

असगन्धकी जडके क्वाथके साथ घृत मिलाकर दूधको सिद्ध करलेवे । उस दूधको ऋतुमती स्त्री स्नान करनेके अनन्तर पान करे तो निस्सन्देह गर्भको धारण करती है ॥ ९ ॥

पिप्पली शृङ्गवेरं च मरिचं नागकेशरम् ।
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्याऽपि लभते सुतम् ॥ १० ॥

ऋतुकालमें स्नान करके पीपल, सोंठ, कालीमिरच, नागकेशर इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको घृतके साथ सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्रीभी पुत्रवती होतीहै ॥

कृष्णापराजितामूलं बस्तक्षीरेण संपिबेत् ।
ऋतुस्नाता त्रिधा या तु वन्ध्या गर्भवती भवेत् ॥ ११ ॥

काली अपराजिताकी जडको बकरीके दूधमें पीसकर रजस्वला स्त्री तीन दिनतक पीवे तो वन्ध्यास्त्री गर्भवती होती है ॥ ११ ॥

काकोल्यौ लक्ष्मणामूलं तथा षष्टिकतण्डुलम् ।
नार्येकवर्णापयसा पीत्वा गर्भवती ऋतौ ॥ १२ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, लक्ष्मणाकी जड और सांठीके चावल इन सबको एकत्र पीसकर एकरंगवाली गौके दूधके साथ ऋतुकालमें सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री गर्भवती होती है ॥ १२ ॥

गोक्षुरस्य तु बीजं तु पिबेन्निर्गुण्डिकारसैः।
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा वन्ध्या भवति पुत्रिणी॥ १३॥

गोखरूके बीजोंको निर्गुण्डीके रसमें पीसकर ऋतुस्नानके पश्चात् तीन दिन अथवा सात दिनतक पान करे तो बाँझ स्त्री पुत्रवती होती है॥ १३॥

पुष्यार्कयोगोद्धृतलक्ष्मणाया मूलं तथा वज्रतरोश्च पिष्ट्वा।
अप्येकवर्णापयसा निपीतं स्त्रियाः स्मृतं पुत्रकरं मुनीन्द्रैः १४

पुष्यनक्षत्रयुक्त रविवारके दिन लक्ष्मणाकी जड अथवा सफेद खिरैंटीकी जडको उखाडकर एक रंगवाली गौके दूधमें पीसकर जो ऋतुमती स्त्री पान करे तो निश्चय पुत्र उत्पन्न होता है, ऐसा मुनियोंने कहा है॥ १४॥

पुष्योद्धृतं लाक्ष्मणमेव चूर्णं पुंसा निपिष्टं सघृतं निपीय।
क्षीरौदनं प्राश्य पतिप्रसङ्गाद्गर्भं विदध्यात्तरुणी न चित्रम्॥

पुष्यनक्षत्रमें लक्ष्मणाकी जडको उखाडकर उसका चूर्ण करलेवे। फिर घृतमें खरल करके उसको भक्षण करे। फिर इसपर दूध भात भोजन कर पतिके साथ प्रसङ्ग करनेसे वन्ध्या स्त्री निश्चयही गर्भको धारण करती है॥ १५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वन्ध्याचिकित्सा॥

गर्भिणीरोगकी चिकित्सा।

प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
चन्दनं शतपुष्पा च शर्करा मदयन्तिका॥ १॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा।
पाययेत्पयसाऽऽलोड्य गर्भिणीं मात्रया भिषक्॥ २॥
तथा तिलान्पद्मकं च शालूकं शालितण्डुलान्।
क्षीरेण पिष्ट्वा क्षीरेण सिताक्षौद्रान्वितेन च॥ ३॥
आलोड्य पाययेन्नारीं ततः सम्पद्यते शुभम्।
तस्मिन्सुजीर्णे दातव्यं भोजनं क्षीरसंयुतम्॥ ४॥

गर्भवती स्त्रीके यदि पहले महीनेमें पीडा हो तो सफेदचन्दन, सोया, खाँड और मैनफल इनको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर और दूधमें मिलाकर उचितमात्रासे गर्भिणीको पान करावे। एवं तिल, पद्माख,

भसींडा और शालिचावल इनको सम भाग ले दूधमें पीसकर मिश्री और शहद मिलेहुए दूधके साथ पान करावे तो उक्त वेदना दूर होती है। औषधिके पचजानेपर स्त्रीको दुग्धमिश्रित अन्नका भोजन कराना श्रेष्ठ है ॥ १-४ ॥

द्वितीये मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना ।
तदोत्पलस्य कल्कं तु शृङ्गाटककशेरुकम् ॥ ५ ॥
तण्डुलोदकपिष्टं तु पाययेत्तण्डुलाम्बुना ।
निवार्य गर्भशूलं च स्थिरं गर्भं करोति च ॥ ६ ॥

यदि द्वितीय मासमें अकस्मात् गर्भिणीके वेदना उत्पन्न हो तो कमल, सिंघाडा और कसेरू इनको समानांश ले चावलोंके जलमें पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे गर्भशूल दूर होकर गर्भ स्थिर होजाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तृतीये क्षीरकाकोली काकोल्यामलकीफलम् ।
पिष्टमुष्णोदकेनैतत् पाययेद्गर्भिणीं भिषक् ॥७॥
शाल्यन्नं पयसा जीर्णे भोजयेदनु गर्भिणीम् ।
तथा पद्मोत्पलं कुष्ठं शालूकं च समांशिकम् ॥ ८ ॥
सितोदकेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
तेन शूलं निवर्त्तेत न गर्भो व्यथते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

तीसरे महीनेमें गर्भवती स्त्रीके पीडा उत्पन्न हो तो वैद्य, क्षीरकाकोली, काकोली और आमले इनको समान भाग लेकर गरम जलके साथ पीसकर उक्त स्त्रीको पान करावे और औषधिके पचजानेपर शालिचावलोंका भात दूधके साथ भोजन करावें अथवा नीलकमल, पद्माख, कूठ और भसींडा इनको बराबर भाग ले मिश्रीके शर्बतद्वारा पीसकर दूधमें मिलाकर पान करावे। इस प्रकार करनेसे उपर्युक्त पीडा शान्त होजाती है, फिर गर्भ व्यथित नहीं होते ॥ ७-९ ॥

चतुर्थे तु विधानज्ञः पाययेदिदमौषधम् ।
पिष्टोत्पलं च शालूकं कण्टकारीं त्रिकण्टकम् ॥ १० ॥
यथाग्नि मात्रया काले गर्भिणीं पयसा सह ।
तथा गोक्षुरकं सिंहीं बालकं नीलमुत्पलम् ॥
पिष्ट्वा क्षीरेण पातव्यं गर्भशूलनिवारणम् ॥ ११ ॥

चौथे महीनेमें गर्भिणीके पीडा होनेपर वैद्य नलिकमल, भसींडा, कटेरी और गोखुरू इन औषधियोंको समान भाग लेकर सबको दूधमें खरल करके अग्निका

बलाबल विचारकर उचित मात्रासे प्रातःसमय गर्भिणीस्त्रीको पान करावे। एवं गोखुरू, कटेरी, सुगन्धवाला और नीलकमल इनको एकत्र दूधमें पीसकर पान करानेसेभी गर्भका शूल निवृत्त होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

पञ्चमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
तत्र नीलोत्पलं वीरां पिष्ट्वा क्षीरेण पाचनम् ॥१२॥
घृतक्षौद्रान्वितं पीत्वा गर्भस्य च रुजं हरेत्।
तथा नीलोत्पलं नारीं काकोलीं समभागिकाम् ॥१३॥
शीततोयेन पिष्ट्वा च क्षीरेणालोड्य पाययेत्।
अनेन विधिना गर्भः स्थिरः स्याद्रुक् प्रशाम्यति ॥१४॥

जो पाँचवें महीनेमें गर्भवतीके गर्भवेदना हो तो नीलकमल और क्षीरकाकोली इनको दूधके साथ पीसकर घृत और शहदमें मिलाकर पान करानेसे गर्भकी पीडा दूर होती है तथा नीलकमल घीग्वार और काकोली इन तीनोंको समान भाग लेकर शीतल जलके साथ पीसकर और दूधमें मिलाकर गर्भवती स्त्रीको पान करावे। इससे गर्भ स्थिर होजाता है, समस्त पीडा शमन होती है ॥

षष्ठे मासि यदा गर्भे वेदना जायते तदा।
मातुलुङ्गस्य बीजानि प्रियङ्गुं चन्दनोत्पलम् ॥
क्षीरेणालोड्य पातव्यं गर्भशूलनिवारणम् ॥ १५ ॥
तथा पियालबीजानि मृद्वीका लाजसक्तवः।
एतत्सुशीतलं काले पीत्वा च सुखमश्नुते ॥ १६ ॥

यदि छठे मासमें गर्भिणीके वेदना हो तो बिजौरेनींबूके बीज फूलप्रियंगु, लालचन्दन और नीलकमल समान भाग मिश्रित इनको एकत्र पीसकर दूधके साथ मिलाकर पीवे अथवा चिरौंजी, दाख और खीलोंके सत्तू शीतल दूधमें पीसकर प्रातःसमय पीवे तो गर्भकी पीडा दूर होती है और सुख प्राप्त होताहै ॥

सप्तमे शतपुत्रीं च मृणालसहितां पिबेत्।
पिष्ट्वा क्षीरेण शूलार्त्ता गर्भिणी या सुखार्थिनी ॥१७॥
कपित्थकमुकान्मूलं सलाजं शर्करायुतम्।
शीततोयेन संपिष्टं क्षीरेणालोड्य पाययेत् ॥
पीत्वा हन्त्यबला शीघ्रं शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥ १८ ॥

सातवें महीनेमें गर्भकी पीडासे पीडित, सुखकी इच्छा करनेवाली गर्भवती स्त्री शतावर और भसींडेको समान भाग ले दूधमें पीसकर अथवा कैथकी जड सुपारीकी जड, खीलें और चीनी इनको बराबर लेकर शीतल जलमें पीसकर दूधमें मिश्रित करके पान करे तो गर्भजन्य शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अष्टमे तु यदा मासे गर्भे भवति वेदना ।
तदा पिष्ट्वा तु धन्याकं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥
शूलं निवर्त्तते तेन गर्भः सन्धार्यते स्त्रियाः ॥ १९ ॥
एवं पलाशस्य दलं सुपिष्टं संपीय तोयेन सुशीतलेन ।
अत्यन्तघोराष्टममासगर्भव्यथातुरा यान्ति सुखं तरुण्यः ॥२०

आठवें महीनेमें गर्भिणीस्त्रीके किसी प्रकारकी पीडा हो तो उसको धनियाँ चावलोंके जलमें पीसकर पान कराना चाहिये । इससे पीडा दूर होती है और गर्भ स्थिर होजाता है। एवं ढाकके पत्तोंको शीतल जलमें पीसकर पीनेसे आठवें महीनेकी अत्यन्त घोर पीडासे दुःखित स्त्रियें तत्काल आनन्दित होती हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

गर्भिण्या नवमे मासे यदा भवति वेदना ।
एरण्डमूलं काकोलीं पिष्ट्वा शीतोदकेन च ॥ २१ ॥
पीत्वा शूलाद्विमुच्येत तदा नारी न संशयः ।
तथा पलाशबीजं च सकाकोलीकुरुण्टकम् ॥
भक्तेन वारिणा पिष्ट्वा गर्भशूलं व्यपोहति ॥ २२ ॥

नववें महीनेमें जो गर्भवती स्त्रीके वेदना हो तो अण्डकी जड और काकोलीको समान भाग लेकर शीतल जलमें खरल करके पान करावे तो वह स्त्री निश्चय उक्त पीडासे मुक्त होजाती है अथवा ढाकके बीज, काकोली और पीलीकटसैरैया इनको काँजीमें पीसकर पान करे तो गर्भगत शूल दूर होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथवा दशमे मासि वेदना जायते यदा ।
तथा नीलोत्पलं यष्टिमधुकं मुद्गसंयुतम् ॥ २३ ॥
ससितं चाम्भसा पिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
दोषं च नाशयेदेषा शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥ २४ ॥

दशवें महीनेमें यदि गर्भिणीके अकस्मात पीडा उत्पन्न होजाय तो उसको नीलकमल, मुलहठी, मूँग और मिश्री ये औषधियाँ समान भाग लेकर शीतल जलमें

पीसकर और दूधमें मिलाकर पिलानी चाहिये। इससे गर्भोत्पन्नशूल और तत्सम्बन्धी दोष नष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

तथा चैकादशे मासि गर्भे भवति वेदना ।
मधुकं पद्मकं चैव मृणालं नीलमुत्पलम् ॥ २५ ॥
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
तेनैव वेदनाऽतीव नाशमायाति सत्वरम् ॥ २६ ॥
क्षीरिकामुत्पलं कुष्ठं समङ्गामूलकं सिताम् ।
पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ २७ ॥

ग्यारहवें महीनेमें जो गर्भमें पीडा हो तो उसमें मुलहठी, पद्माख, कमलकी नाल और नीलकमल ये औषधियें समानांश मिलित ले शीतल जलमें पीसकर और दूधमें मिलाकर गर्भिणी स्त्रीको पान करावे। इससे उक्त मासकी दारुण पीडा तत्काल शमन होती है तथा गर्भशूलको निवारण करनेके लिये गर्भवती स्त्री क्षीरकाकोली, नीलकमल, कूठ, वराहक्रान्ताकी जड और मिश्री इनको एकत्र पीसकर दूधके साथ मिलाकर पान करे ॥ २५–२७ ॥

सिता विदारी काकोली तथा क्षीरविदारिका ।
गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ २८ ॥

बारहवें महीनेमें गर्भवाली स्त्री गर्भकी पीडाको निवारणार्थ मिश्री विदारीकन्द, काकोली और क्षीरकाकोली इन औषधियोंको समान भाग लेकल जलमें पीसकर पान करे ॥ २८ ॥

मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु च ।
अश्मन्तकं कृष्णतिलस्ताम्रवल्ली शतावरी ॥२९॥
वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा ।
अनन्ता शारिवा रास्ना मधुकं पद्ममेव च ॥३०॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो बिसम् ।
पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ॥ ३१ ॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ।
मासेषु सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापकाः ॥
यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोऽन्विताः ॥ ३२ ॥

पहले महीनेमें—मुलहठी, सागौनके बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु इनको समान भाग लेकर जलमें पीसकर दूधके साथ पान करावे । एवं दूसरे महीनेमें अम्लोट, कालेतिल, मंजीठ और शतावरका, तीसरे महीनेमें-बाँदा, क्षीरकाकोली, नीलकमल और अनन्तमूल, चौथे महीनेमें—अनन्तमूल, श्यामलता, रास्ना, कमलनाल और मुलहठी, पाँचवें महीनेमें—बडीकटेरी, कटेरी, कुम्भेर, बडादिक्षीरीवृक्षोंके अंकुर और छाल तथा भसींडा, छठे महीनेमें—पिठवन, खिरैंटी, सहिंजना, गोखुरू और मुलहठी, सातवें महीनेमें— सिंघाडा, भसींडा, दाख, कसेरू, मुलहठी और मिश्री ये सात प्रयोग आधे आधे श्लोकोंमें जो समाप्त किये गये हैं इनकी प्रत्येक औषधिको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर दूधके साथ मिलालेवे । फिर इनमेंसे हरएक प्रयोग प्रत्येक मासमें क्रमानुसार उत्तम रीतिसे सात महीनेतक गर्भिणी स्त्रीको सेवन करावे । ये प्रयोग गर्भस्रावमें अत्यन्त हितकारी हैं ॥ २९–३२ ॥

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः ।
मूलानि क्षीरपिष्टानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥ ३३ ॥

आठवें महीनेमें—गर्भस्राव हो तो वैद्य कैथकी जड, बेलकी जड, बडी कटेरीकी जड, परवल, ईखकी जड और कटेरीकी जड इन सबको दूधमें पीसकर गर्भिणीस्त्रीको सेवन करावे । इससे गर्भस्राव होना दूर होता है ॥३३॥

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेत् ॥ ३४ ॥

नवमें महीनेमें—गर्भ पतित होता जान पडे तो गर्भवती स्त्री मुलहठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और उसवा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर दूधके साथ पान करे तो गर्भस्राव होना दूर होता है ॥३४॥

पयस्तु दशमे शुण्ठ्याः शृतं शीतं प्रशस्यते ।
सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ।
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् च प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

दशवें महीनेमें—सोंठ एक तोला और दूध ८ तोले लेकर ३२ तोले जलमें पकावे। जब पकते पकते दूधमात्र शेष रहजाय तब उस दूधको शीतल कर पान करावें अथवा सोंठ, मुलहठी और देवदारु इनको समान भाग लेकर इनके द्वारा उक्त विधिसे दूधको पकाकर और शीतल करके गर्भिणीस्त्री पान करे तो गर्भस्राव होना और उसकी तीव्र पीडा शमन होती है ॥ ३५ ॥

कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ ३६ ॥

कुशा, काँस, अण्ड और गोखुरू इनकी जडोंको समान भाग मिलित दो तोले लेवे। फिर इनके द्वारा आठ तोले दूधको ३२ तोले जलमें पकावे। जब दूध मात्र अवशिष्ट रहजाय तब शीतल होनेपर मिश्री डालकर गर्भिणीको पान करावे। इससे गर्भशूल निवारण होता है ॥ ३६ ॥

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयैः पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः।
सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णवेगम् ॥३७॥

कसेरू, सिंघाडे, जीवनीयगणकी औषधियें, कमलकेशर, नीलोफर, अण्डकी जड और शतावर इनके द्वारा विधिपूर्वक दूधको सिद्ध कर उसमें मिश्री मिलाकर शीतल करके गर्भवतीस्त्रीको पान करावे तो इससे गर्भपातका दारुण वेग रुक जाता है और गर्भ स्थिर होजाता है ॥ ३७ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्रपर्णीमधुकं सशर्करम्।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताऽङ्गना पयोविमिश्रं पयसाऽन्नभुक्पिबेत्

कसेरू, सिंघाडे, पद्माख, नीलकमल, मुगवन, मुलहठी और मिश्री इनको समान भाग लेकर सबको एकत्र पीसकर दूधके साथ पानकरे और दूध, भातका भोजन करे तो गर्भस्रावकी पीडासे पीडित स्त्री सुखी होती है ॥ ३८ ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम्।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ ३९ ॥

वातदोषके कारण गर्भिणी अथवा गर्भमें बालक सूखता हो तो मुलहठी और कुम्भेरके कल्कद्वारा दूधको पकाकर शीतल होजानेपर उसमें मिश्री डालकर पीना हितकारी है। इससे गर्भ पुष्ट होता है ॥ ३९ ॥

आम्रजम्बुत्वचः क्वाथं लेहयेल्लाजसक्तुभिः।
अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ ४० ॥

आमकी छाल और जामुनकी छाल इनके क्वाथको यथाविधि बनाकर उसमें खीलोंके सत्तुओंको मिलाकर चाटनेसे ही गर्भिणीकी संग्रहणी दूर होती है ४०

" अत्र सामान्यज्वरोक्ताः कषायाश्च बुद्ध्वा देयाः। "

सिंहास्यादिर्गुडूच्यादिः पञ्चमूलीरसोऽपि वा।
मधुना शमयन्त्येते गर्भिण्या ज्वरमाशु च ॥ ४१ ॥

गर्भिणीस्त्रीको ज्वर हो तो सामान्यज्वरमें कहेहुए क्वाथ विचारपूर्वक देवे । ज्वराधिकारोक्त सिंहास्यादि, गुडूच्यादि अथवा पंचमूली आदिके क्वाथको शहदके साथ किंवा पंचमूलके द्वारा सिद्ध किया हुआ शतिल दूध गर्भवती स्त्रीको पान करावे । ये सब ज्वरको तत्काल नष्ट करते हैं ॥ ४१ ॥

रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वे समुच्छ्रिता ।
कन्यां तस्या विजानीयाद्दक्षिणे च तथा सुतम् ॥ ४२ ॥

जिस गर्भिणीस्त्रीके बाईं पसलीमें रोमपंक्ति उत्पन्न हो उसके कन्या और जिसके दहिनी पसलीमें रोम उत्पन्न हों उसके पुत्र होना जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

धन्वन्तरिमतेनैव साध्वाज्ञातश्च शास्त्रवित् ।
सम्प्राप्ते चाष्टमे मासे मैथुनं परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥
यदि गच्छति दुर्मेधाः काममोहादचेतनः ।
विपद्यते तदा गर्भो गर्भिणी च विनश्यति ॥
अन्धमूकादिबधिरो जायते कुब्ज एव ना ॥ ४४ ॥

धन्वन्तरिके मतसे शास्त्रके जाननेवाला विद्वान् आठवें महीनेके उपस्थित होनेपर मैथुनको सर्वथा त्यागदेवे । यदि दुष्टबुद्धि पुरुष कामके मोहसे असावधान होकर स्त्रीके पास गमन करता हैतो गर्भ और गर्भिणी दोनों नष्ट होजाते हैं अथवा अन्धी, गूँगी, बहिरी और कुबंडी सन्तान होती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् ।
नाभिवस्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४५ ॥

पाढ, कलिहारीकी जड, अडूसेकी जड और चिरचिटेकी जटा इनमेंसे किसीएक वस्तुको पीसकर गर्भिणीकी नाभि, वस्ति और भगमें लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ४५ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्या सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४६ ॥

बिजौरेनींबूकी जड और मुलहठीको पीसकर शहद और घीके साथ मिलाकर गर्भिणीको पान करानेसे सुखसे प्रसव होता है ॥ ४६ ॥

अथोभयपञ्चदशकं दर्शयेत्-

यथा वसुगुणाब्ध्येकबाणनवषट्सप्तयुगैः क्रमात् ।
सर्वपञ्चदशं द्विस्तु त्रिंशकं नवकोष्ठके ॥ ४७ ॥

माडीऋतुवसुभिः सहपक्षदिगष्टादशभिरेव च।
अर्कभुवनाब्धिसहितैरुभयत्रिंशकमाश्चर्यम्॥
उभयोरेकतरं शरावे लिखित्वा प्रदर्शयेत॥४८॥

जब प्रसवकालमें जीवितगर्भके प्रसव होनेमें बिलम्ब होतो गर्भिणी स्त्रीको उल्लिखित उभय पञ्चदशक उभय त्रिंशकयन्त्र नवीन सकोरेमें लिखकर दिखावे। प्रथम नौ कोठोंमें लिखित, वसु ८, गुण ३, वेद ४, इन्दु १, बाण ५, अंक ९, षडानन ६, समुद्र ७, मिथुन २ इन अङ्कोंवाला कोष्ठक उभय पंचदशक और दूसरे नव कोष्ठकमें लिखित नाडी १६, ऋतु ६, वसु ८, पक्ष २, दिशा १०, अङ्क १८, आदित्य १२, भुवन १४ और समुद्र ४ अङ्कोंवाला यन्त्र उभयत्रिंशक कहलाता है। ये दोनों आश्चर्यप्रद यन्त्र अलग अलग सकोरेमें लिखकर दिखावे और निम्नलिखित श्लोकका पाठ करे॥

उभयपञ्चदशक.

८	३	४
१	५	९
६	७	२

उभयत्रिंशक.

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

प्रसवमन्त्र।

गङ्गाया उत्तरे तीरे जम्भला नाम राक्षसी।
तस्याः स्मरणमात्रेण सद्यो नारी प्रसूयते॥४९॥

श्रीगंगाजीके उत्तर तटपर जम्भलानामवाली राक्षसी है। उसके स्मरण करनेसे स्त्रीकी तत्काल सन्तान उत्पन्न होतीहै। ऊपर लिखे यन्त्रोंकी क्रिया और श्लोक पाठ किसी सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मणद्वारा कराना चाहिये॥४९॥

गृहाम्बुना गृहधूमपानं गर्भापकर्षणम्॥५०॥

काँजीके साथ घरके धूमको पान करनेसे विघ्नरहित शीघ्र प्रसव होताहै॥५०॥

पुटदग्धसर्पकञ्चुकमसृणमसीकुसुमसारसहिताक्षी।
झटिति विशल्या जायते गर्भिणी मूढगर्भापि॥५१॥

साँपकी कैंचलीको अन्तर्धूमकी रीतिसे दग्ध करके उस भस्मको शहदमें मिलाकर गर्भवती स्त्रीके नेत्रोंमें आँजनेसे मूढगर्भभी तत्काल उत्पन्न होताहै॥५१॥

स्नुहीक्षीरं तथा स्तोकं गर्भिण्याः शिरसि क्षिपेत्।
मृतगर्भं तथा सूते गर्भिणी रमणी द्रुतम्॥५२॥

गर्भिणीस्त्रीके शिरपर थोडासा थूहरका दूध डालेतो मृतगर्भ बिनाक्लेशके बहुत जल्द प्रसव होजाता है॥५२॥

गृहाम्बुना हिङ्गुसिन्धुपानं गर्भापकर्षणम् ॥

काँजीके साथ हींग और सैंधेनमकको मिलाकर पान करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥

करिदमनदहनमूलं पिष्टं सलिलेन पीतं सद्यः।
चिरमचिरजं गर्भं मृतममृतं वा निपातयति ॥ ५३ ॥

नागदौनकी जड और चीतेकी जड इन दोनोंको जलमें पीसकर पीनेसे (पूर्णगर्भा-या अपूर्णगर्भा) स्त्रीके मृत अथवा जीवित सन्तान निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र पतित होती है ॥ ५३ ॥

पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन वा।
योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ५४ ॥

पोईशाककी जडको तिलके तेलमें पीसकर स्त्रीकी योनिके भीतर लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसववती होती है ॥ ५४ ॥

वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतिसमयेऽपि वा।
गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥ ५५ ॥
कुट्टयेन्मुसलेनैषा कृत्वा धान्यमुदूखले।
विषमं चाशनं पानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ ५६ ॥

वायुके कारण गर्भके संकोच होनेसे निर्दिष्ट समयमें सन्तान उत्पन्न न हो तो ओखलीमें मूसलसे धान कूटकर गर्भिणी स्त्रीको सेवन करावे और विषम अन्न पानका व्यवहार करावे ॥ ५५ ॥ ५६

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम्।
कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥ ५७ ॥

प्रसव होनेमें बहुत देर होजाय तो काले साँपकी कैंचली अथवा मैनफलके द्वारा योनिके चारों ओर धूप देवे ॥ ५७ ॥

ह्रीबेरातिविषामुस्तामोचशक्रैः शृतं जलम्।
दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ ५८ ॥

सुगन्धवाला, अतीस नागरमोथा, मोचरस और इन्द्रजौ इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर उसको शीतल करके चलायमानगर्भ, प्रदर और कुक्षिशूलमें पान कराना चाहिये ॥ ५८ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं मदिरां लाभतः पिबेत् ।
सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवारिणीम् ॥ ५९ ॥

कालीजीरा, पीपल और काला नमक इनके चूर्णको मदिरामें मिलाकर पान करनेसे गर्भवती स्त्रीकी योनिका शूल निवारण होताहै ॥ ५९ ॥

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतबोधनसर्षपैः ।
कटुतैलान्वितैर्धूपो योनौ पातयतेऽमराम् ॥ ६० ॥

कडवीतोंबी, साँपकी कैंचली, तोरईके फल और सरसों इनको सरसोंके तेलमें मिलाकर इनके द्वारा योनिमें धूप देवे तो इससे अमरा पतित होती है ॥

कचवेष्टितयाऽङ्गुल्या घृष्टे कण्ठे पतत्यमरा ।
मूलेन लाङ्गलिक्याः सँल्लिप्ते पाणिपादे च ॥ ६१ ॥

अंगुलिमें गर्भिणीके बालोंको लपेटकर उससे कण्ठमें घर्षण करे तो जेर गिर जाती है अथवा कलिहारीकी जडको पीसकर हाथ, पैरोंमें मलनेसे जेर आदि पतित होती है ॥ ६१ ॥

अमरापतनं मद्यैः पिप्पल्यादिरजः पिबेत् ।
शालिमूलाक्षमात्रं वा मद्येनाम्लेन वा प्लुतम् ॥ ६२ ॥

पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके चूर्णको मदिराके साथ पान करनेसे अथवा शालिधानोंकी जडको दो तोले लेकर मद्य या काँजीमें मिलाकर पीनेसे जेर पतित होजाती है ॥ ६२ ॥

एरण्डादि ।

एरण्डमूलममृता मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ।
दारुपद्मयुतः क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशनः ॥ ६३ ॥

अण्डकी जड, गिलोय मंजीठ, लालचन्दन, देवदारु और पद्माख इनका क्वाथ गर्भिणस्त्रीके ज्वरको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥

मधूकादि ।

मधूकचन्दनोशीरसारिवापद्मपत्रकैः ॥
शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥ ६४ ॥

मुलहठी, लालचन्दन, खस, अनन्तमूल, पद्माख और तेजपात इनके द्वारा बनाये हुए क्वाथको शर्करा और शहदके साथ मिलाकर पान करनेसे गर्भिणीका ज्वर दूर होता है ॥ ६४ ॥

लवङ्गादिचूर्ण ।

लवङ्गं टङ्कणं मुस्तं धातकी बिल्वधान्यकम् ।
जातीफलं सर्जकं च शताह्वा दाडिमं तथा ॥ ६५ ॥
जीरकं सैन्धवं मोचं नीलोत्पलरसाञ्जनम् ।
अभ्रकं वङ्गकं चैव समङ्गा रक्तचन्दनम् ॥ ६६ ॥
विश्वं चातिविषा शृङ्गी खदिरं बालकं समम् ।
एतच्चूर्णं पाययेत संग्रहग्रहणीहरम् ॥
छागीदुग्धेन मतिमान् गर्भिणीमनुपानतः ॥ ६७ ॥
नानावर्णमतीसारं ज्वरं चैव नियच्छति ।
आमरक्तातिसारघ्नं शूलशोथनिषूदनम् ॥ ६८ ॥

लौंङ्ग, सुहागा, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी, धनियाँ, जायफल, राल, सोया, अनारका वल्कल, जीरा, सैंधानमक, मोचरस, नीलकमलकी जड, रसौत, अभ्रक, वङ्ग, वराहक्रान्ता, लालचन्दन, सोंठ, अतीस, काकडासिंगी, खैर, सुगंधवाला इनके चूर्णको समान भाग लेकर एकत्र करलेवे । बुद्धिमान् वैद्य गर्भिणीस्त्रीको यह चुर्ण बकरीके दूधके साथ सेवन करावे । यह स्त्रियोंकी संग्रहणी, अनेक प्रकारके अतीसार, ज्वर, आमरक्त, शूल और शोथको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६५–६८ ॥

गर्भविलासरस ।

रसगन्धकतुत्थं च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम् ।
त्रिर्भावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ६९ ॥
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम् ।
तुत्थस्थाने यदि स्वर्णं चिन्तामणिरसः स्मृतः ॥ ७० ॥

शोधित पारा, गन्धक और तूतिया इनकों एकत्र जम्बीरीनींबूके रसमें तीन दिन तक खरल करे फिर त्रिकुटेके क्राथमें तीन बार भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । । यह रस गर्भवतीस्त्रीके शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्णादि विकारोंमें प्रयोग करना चाहिये । इस औषधिमें यदि तूतियेकी जगह सुवर्ण डाला जाय तो यही रस "गर्भचिन्तामणि" कहलाता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

गर्भविनोदरस ।

देयं त्रिभागं त्रिकटु चतुर्भागं च हिङ्गुलम् ।
जातीकोषं लवङ्गं च प्रत्येकं च त्रिकार्षिकम् ॥ ७१ ॥

सुवर्णमाक्षिकं चैव पलार्द्धं प्रक्षिपेद् बुधः ।
जलेन मर्दयित्वा च चणमात्रा वटी कृता ॥
निहन्ति गार्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक एकएक तोला और सिंगरफ चार तोले, जावित्री तीन कर्ष, लौंग तीन कर्ष एवं सोनामाखी दो तोले इन सबको एकत्र जलके साथ खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह रस यथाविधि सेवन करनेसे गर्भवतीस्त्रीके समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

गर्भचिन्तामणि ।

जातीफलं टङ्कणं च व्योषं दैत्येन्द्ररक्तकम् ।
तच्चूर्णं समभागेन मर्दितं प्रहरद्वयम् ॥ ७३ ॥
जम्बीररसयोगेन वटीं कुर्याद्विचक्षणः ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणां तु खलु वैद्यः प्रयत्नतः ॥ ७४ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव भक्षयेदुष्णवारिणा ।
निहन्ति सर्वरोगं च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७५ ॥

जायफल, सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल और सिंगरफ इनको समान भाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें दो प्रहरतक उत्तम प्रकार खरल करे, फिर इसकी दो दो रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ प्रस्तुत करे । प्रतिदिन एक एक वटी अदरखके रस अथवा गरम जलके साथ भक्षण करे तो इससे गर्भिणीस्त्रीके अशेषरोग निश्चय नाश होते हैं ॥ ७३-७५ ॥

गर्भचिन्तामणिरस ।

रसं तारं तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमात्रकम् ।
कर्षद्वयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥ ७६ ॥
जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरं च शतावरी ।
बलातिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ ७७ ॥
वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥
गार्भिण्या ज्वरदाहं च प्रदरं सूतिकामयम् ॥ ७८ ॥

रससिन्दूर, रूपा और लोहा ये प्रत्येक एक एक कर्ष, अभ्रक दो कर्ष, कपूर, वङ्ग, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखुरू, शतावर तथा खिरैंटी और कंघी

इन दोनोंकी जड ये प्रत्येक द्रव्य एकएक तोला लेवे । सबको जलके द्वारा एकत्र खरल करके दो दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनालेवे । यह रस गर्भवाली स्त्रियोंके सन्निपात ज्वर, दाह, प्रदर और सूतिकारोगको तत्काल नष्ट करता है ॥७६-७८॥

बृहद्गर्भचिन्तामणिरस ।

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लौहं रजतमाक्षिकम् ।
हरितालं वङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम् ॥ ७९ ॥
भावना खलु दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् ।
ब्राह्मी वासा भृङ्गराजं पर्पटं दशमूलकम् ॥ ८० ॥
सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुञ्जामानां वटीं चरेत् ।
गर्भचिन्तामणिरसः पूर्ववद् गुणकारकः ॥ ८१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुवर्ण, लोहा, चाँदी, सोनामाखी, हरिताल, वङ्ग और अभ्रक इनकी भस्मोंको समान भाग लेवे । फिर सबको ब्राह्मी, अडूसा, भाँगरा, पित्तपापडा और दशमूल, इनके क्वाथमें अलग अलग क्रमशः सातबार भावना देवे । पश्चात् रत्ती रत्ती भरकी वटी बनाकर सेवन करे तो यह बृहच्चिन्तामणिरस पूर्वोक्त रसके समान ही गुण करता है ॥ ७९-८१ ॥

इन्दुशेखररस ।

शिलाजत्वभ्रसिन्दूरप्रवालायोरजांसि च ।
माक्षिकं च तथा तालं समभागानि मर्दयेत् ॥ ८२ ॥
भृङ्गराजस्य पार्थस्य निर्गुण्ड्या वासकस्य च ।
स्थलपद्मस्य पद्मस्य कुटजस्य च वारिणा ॥ ८३ ॥
भावयित्वा वटीं कृत्वा कलायपरिमाणतः ।
यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु प्रयोजयेत् ॥ ८४ ॥
गर्भिणीनां ज्वरं घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम् ।
रक्तातीसारग्रहणीं वान्ति वह्नेश्च मन्दताम् ॥ ८५ ॥
आलस्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेव न संशयः ।
कलेरादौ ससर्जेमं भगवानिन्दुशेखरः ॥ ८६ ॥

शिलाजीत, अभ्रक, रससिंदूर, मूँगा, लोहा, सोनामाखी और हरिताल इनको समानांश लेकर भाँगरा, अर्जुनकी छाल, निर्गुंडी, अडूसा, गेंदा, कमल और

कुडकी छाल इन सबके क्वाथमें यथाक्रम भावना देकर मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस रसको दोषोंके अनुसार अनुपान कल्पितकर गर्भिणीके रोगोंमें प्रयोग करे। यह गर्भवती स्त्रियोंके ज्वर, घोरतर श्वास, खाँसी, शिरोरोग, रक्तातीसार, संग्रहणी, वमन, अग्निकी मन्दता, आलस्य, दुर्बलता आदि विकारोंको निस्सन्देह नष्ट करता है। इस रसको कलियुगके आदिमें कलियुगी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये चन्द्रमौलि भगवान् शङ्करने बनाया है॥ ८२-८६॥

गर्भिणीरोगमें पथ्य।

शालयः षष्टिका मुद्गा गोधूमा लाजसक्तवः।
नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा॥ ८७॥
पनसं कदलं धात्री द्राक्षाऽऽम्रं स्वादु शीतलम्।
कस्तूरी चन्दनं माल्यं कर्पूरमनुलेपनम्॥ ८८॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः।
सन्तर्पणं प्रिया वाचो विहाराश्च मनोरमाः॥ ८९॥
प्रियङ्करं चान्नपानं गर्भिणीभ्यो हितं भवेत्॥ ९०॥

शालिधानोंके और सांठीके चावल, मूँग, गेहूँ, खीलोंके सत्तू, नैनीघी, घी, दूध, रसाला, शहद, चीनी, कटहल, केला, आमले, दाख, आम, मीठे और शीतल पदार्थ, कस्तूरी, चंदन, फूलमाला, कपूरका लेप, चाँदनी, स्नान, अभ्यंजन, कोमल-शय्या, शीतलवायु, संतर्पण, प्रियवाक्य, मनोहरविहार और रुचिकर अन्नपान ये सब वस्तुएँ गर्भवती स्त्रियोंके लिये हितकारी हैं॥८७-९०॥

गर्भिणीरोगमें अपथ्य।

स्वेदनं वमनं क्षारं कलहं विषमाशनम्।
असात्म्यं नक्तसञ्चारं चौर्यं चाप्रियदर्शनम्॥ ९१॥
अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु।
अकालजागरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम्॥ ९२॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम्।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टम्भिभोजनम्॥ ९३॥
नक्तं निरशनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम्।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत्त्यजेत्॥ ९४॥

स्वेदप्रदान, वमन करना, खारीपदार्थोंका सेवन, वाद विवाद, विषम-भोजन, असात्म्यद्रव्योंका सेवन, रात्रिमें टहलना, चोरीकरना, अप्रिय वस्तुके

देखना, अत्यंत मैथुन, परिश्रम करना, बोझ उठाना, बहुत भारी वस्त्र पहरना, रात्रिमें जागना, दिनमें सोना, कठिनस्थानमें अथवा उत्कट रूपसे बैठना, शोक; क्रोध, भय, उद्वेग, मूत्र-मलादिका वेगधारण, इच्छित वस्तुकी अप्राप्ति, व्रत करना, मार्ग चलना, तीक्ष्ण, गरम, भारी और विष्टम्भकारी द्रव्योंका भोजन, रात्रिमें अभोजन, छिद्र देखना, कुएँमें झाँकना, मद्य पीना, मांस खाना, चित्त होकर सोना ये सब और जो स्त्रियोंको अप्रिय हों उन सब वस्तुओंको गर्भिणी स्त्रियें त्यागदेवें ॥ ९१–९४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गर्भिणीरोगचिकित्सा ॥

सूतिकारोगकी चिकित्सा ।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ।
दशमूलकृतक्वाथं कोष्णं दद्याद् घृतान्वितम् ॥ १ ॥

सूतिकारोगको शान्त करनेके लिये वातनाशक चिकित्सा करे और दशमूलके मन्दोष्ण क्वाथको घृत मिलाकर प्रसूताके लिये देवे ॥ १ ॥

सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञितम् ।
यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥
पिप्पल्यादिगणक्वाथं पिबेद्वा लवणान्वितम् ॥ २ ॥

प्रसूतास्त्रीके हृदय, शिर और वस्तिस्थानमें जो शूल उत्पन्न होता है उसको मक्कल्लशूल कहते हैं । इस रोगमें जवाखारको घी या गरम जलके साथ अथवा पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके क्वाथको सैंधानोन मिलाकर पान करे ॥ २ ॥

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा ।
गर्भपातानन्तरोत्थरक्तस्रावनिवारणम् ॥ ३ ॥

कबूतरकी बीठको शालिचावलोंके जलके साथ पान करनेसे गर्भपातके पीछें उत्पन्न हुआ रक्तस्राव दूर होता है ॥ ३ ॥

जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैरुद्वर्त्तनालेपौ ।
किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादथो विहितौ ॥ ४ ॥

वरनाके पत्तोंको जलमें पीसकर उनमें घृत मिलाकर, मालिश, लेप अथवा गोबरके साथ घिसनेसे किक्किशरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सहचरकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः।
दीपनो ज्वरदोषामसूतिकारोगनाशनः॥ ५॥

पीले पियाबाँसेके क्वाथको पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे प्रसूता स्त्रीका ज्वर, प्रसूत और आमदोष नष्ट होकर अग्नि दीपन होती है॥ ५॥

पीतकुरुण्टक्वथितं रजनी पर्युषितं शीतमपहरति।
सूतीरोगान्सहस्रं तन्मूलं चर्वितं तद्वत्॥ ६॥

पीलीकिटसरैयाके बासी क्वाथको हल्दीका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल पान करे अथवा एकमात्र पीलीकिटसरैयाकी जडको चाबे तो प्रसूताके हजारों रोग नष्ट होजाते हैं॥ ६॥

दशमूलक्वाथ।

दशमूलीकृतः क्वाथः साज्यः सूतिरुजापहः॥ ७॥

दशमूलके काढेको घृत मिलाकर पीनेसे प्रसूतरोग नष्ट होता है॥ ७॥

अमृतादि।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम्।
पीतं मधुसंयुक्तं निवारयति सूतिकातङ्कम्॥ ८॥

गिलोय, सोंठ, पियाबाँसा, पसरन, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडीकटेरी, गोखुरू, नागरमोथा और सुगन्धवाला इनका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे सूतिकारोग नाश होता है॥ ८॥

सहचरादि १-२।

सहचरपुष्करवेतसमूलं विकङ्कतदारुकुलत्थसमम्।
जलमत्र ससैन्धवहिङ्गुयुतं सद्योज्वरसूतिकशूलहरम्॥९॥

१-पीलापियाबाँसा, पोहकरमूल, बेतकी जड, कण्टाई, देवदारु और कुलथी इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। उसमें सैंधानमक और हींग डालकर सुहाता २ पान करे तो सूतिकाजन्य ज्वर और शूल तत्काल दूर होता है॥ ९॥

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटविश्वबालकैः क्वथितम्।
पेयमिदं मधुमिश्रं सद्योज्वरशूलनुत्सूत्याः॥ १०॥

१-पियाबाँसा, नागरमोथा, गिलोय, पसरन, सोंठ और सुगन्धवाला इनके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे प्रसूताका ज्वर और शूल जल्द नष्ट होता है॥

सूतिकादशमूल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
दासी प्रसारणी विश्वं गुडूची मुस्तकं तथा ॥
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरदाहसमन्वितम् ॥ ११ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडीकटेरी, गोखुरू, पीलापियाबाँसा, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय और नागरमोथा इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे ज्वर और दाहसहित प्रसूतरोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

बृहद्द्रीबेरादि ।

ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामये शस्यते ॥ १२ ॥

सुगन्धवाला, शोनापाठा, लालचन्दन, खिरैंटी, धनियाँ, गिलोय, नागरमोथा, खस, धमासा, पित्तपापडा और अतीस इनका क्वाथ बनाकर गर्भिणी स्त्री पान करे । यह क्वाथ अनेक दोषोंसे युक्त अतीसाररोगमें, रक्तस्राव और ज्वरमें हितकारी है । इस योगको पूर्वकालमें आयुर्वेदाचार्योंने सूतिकारोगको नष्ट करनेके लिये वर्णन किया है ॥ १२ ॥

देवदार्वादि ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
भूनिम्बकट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्या हरीतकी ॥ १३ ॥
गजकृष्णा सदुस्पर्शा गोक्षुरो धन्वयासकः ।
बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ १४ ॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ।
क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ १५ ॥

देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, चिरायता, कायफल, नागरमोथा, कुटकी, धनियाँ, हरड, गजपीपल, कटेरी, गोखुरू, धमासा, बडीकटेरी, अतीस, गिलोय, काकडासिंगी और कालाजीरा इन सबको समान भाग लेकर अष्टमांशावशेष क्वाथ बनावे । उसमें हींग और सैंधानमक डालकर प्रसूतास्त्रीको पान करावे ॥ १३–१५ ॥

शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्त्तिभिः ।
युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ १६ ॥

निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम्।
कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ १७ ॥

यह देवदार्वादिक्वाथ शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरोरोग, प्रलाप, तृषा, दाह, तन्द्रा, अतीसार, वमन आदि रोगोंसे युक्त वात पित्त कफजन्य सूतिकारोगको नष्ट करता है। यह प्रसूताकी उत्कृष्ट औषधि है ॥ १६ ॥ १७ ॥

वज्रकाञ्जिक।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यमानिका।
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ॥ १८ ॥
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ॥ १९ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, विरियासञ्चरनमक और काला नमक इन औषधियोंको समान भाग मिश्रित ८ तोले लेकर सबको काँजीके साथ एकत्र पीसकर एकसेर काँजी और २ सेर जलमें पकावे। जब पकते २ काँजीमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे ॥१८॥१९॥

एतदामहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम्।
काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्द्धनम् ॥
मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीराभिवर्द्धनम् ॥ २० ॥
"क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥२१॥"

यह वज्रनामक काँजी प्रसूतास्त्रियोंके आम कफजरोगोंको हरती है तथा अत्यन्त पुष्टिकर जठराग्निकी वृद्धि करनेवाली है। इससे मक्कल्लशूल नष्ट होता है और स्तनोंमें अधिकतर दुग्धवृद्धि होती है। "क्षीरपाकविधिके अनुसार इस वज्रकाञ्जिकको भी सिद्ध करना चाहिये" ॥ २० ॥ २१ ॥

भद्रोत्कटाद्यवलेह।

भद्रोत्कटतुलाक्काथे पादशेषे विनिक्षिपेत्।
शर्करायाः पलत्रिंशच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ २२ ॥
वत्सकं धान्यकं मुस्तमुशीरं बिल्वमेव च।
शाल्मलीवेष्टकं चैव पिप्पली मरिचानि च ॥ २३ ॥
बला चातिविषा मांसी ह्रीबेरं सदुरालभम्।
एषां च पलिकैर्भागैश्चूर्णैरेतत्समाचरेत् ॥ २४ ॥

संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकां च सुदुस्तराम्।
वह्निं च कुरुते दीप्तं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ २५ ॥

प्रसारणीको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब चतुर्थांश शेष रह-जाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें चीनी ३० पल तथा इन्द्रजौ, धनियाँ, नागरमोथा, खस, बेलगिरी, मोचरस, पीपल, मिरच, खिरेंटी, अतीस, बालछड, सुगन्धवाला और धमासा इनको चार चार तोले ले बारीक चूर्ण करके डालदेवे। फिर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। यह अवलेह यथाविधि सेवन करनेसे दुस्तर संग्रहणी, शूल, अफारा और विबन्धआदिसे युक्त सूतिकारोगको नष्ट करता है और अग्निको दीपन करता है ॥ २२-२५ ॥

सौभाग्यशुण्ठी १-२।

कशेरुशृङ्गाटविराटमुस्तं द्विजीरकं जातिफलं सकोषम्। लवङ्गशैलेयसनागपुष्पं पत्रं वराङ्गं च शठी सधातकी ॥२६॥ एला शताह्वा धनिकेभकृष्णा सपिप्पली सोषणका सभीरुः। प्रत्येकमेषामिह कर्षयुग्मं लौहं तथाऽभ्रं पलभागयुक्तम् ॥ २७ ॥ महौषधीचूर्णपलानि चाष्टौ पलानि त्रिंशत्सितशर्करायाः। फलानि चाष्टावपि सर्पिषश्च प्रस्थद्वयं क्षीरमिह प्रयुक्तम् ॥२८॥ पचेद्विधिज्ञः परमादरेण खादेदिदं कर्षमथार्द्धकर्षम्। कर्षद्वयं वापि समीक्ष्य शस्तं सौभाग्यशुण्ठी कथिता भिषग्भिः। अग्निप्रदा सूतिगदापहा च सर्वातिसारग्रहणीहरा च ॥ २९ ॥

१-कसेरु, सिंघाडे, कमलगट्टा, नागरमोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, भूरिछरीला, नागकेशर, तेजपात, दारचीनी, कचूर, धायके फूल, इलायची, सोया, धनियाँ, गजपीपल, पीपल, कालीमिरच और शतावर ये प्रत्येक दो दो तोले एवं लोहा और अभ्रक चार चार तोले, सोंठका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री ३० पल, घी ३२ तोले और दूध २ प्रस्थ लेवे। इन सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर विधिवेत्ता वैद्य मन्दमन्द अग्निद्वारा प्रेमपूर्वक पाकको सिद्ध करे। इसमेंसे प्रतिदिन १ कर्ष अथवा आधाकर्ष और जठराग्निका बल देखकर आधा कर्ष या

एक कर्ष अथवा दो कर्ष परिमाणतक सेवन करे । यह सौभाग्यशुण्ठी अग्निको दीपन करती है एवं सूतिकारोग, सब प्रकारके अतीसार और स्त्रियोंकी संग्रहणीको हरती है ऐसा भिषगाचार्योंने कहा है ॥

त्रिकटु त्रिफलाऽजाजी चातुर्जातकमुस्तकम् ।
जातीकोषफलं धान्यं लवङ्गं शतपुष्पिका ॥ ३० ॥
नलिका मादनफलं यमानीद्वयधातकी ।
शतावरी तालमूली लोध्रं वारणपिप्पली ॥ ३१ ॥
पियालबीजममृता कर्पूरं चन्दनद्वयम् ।
कर्षप्रमाणान्येतेषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत ॥ ३२ ॥
नागरस्य च चूर्णस्य पलं षोडशकं क्षिपेत् ।
घृतमष्टपलं दद्यात्क्षीरप्रस्थद्वयं तथा ॥ ३३ ॥
सार्द्धप्रस्थद्वयं चात्र शर्करायास्ततः क्षिपेत् ।
दृढे च मृन्मये पात्रे पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥
यत्नतः पाकविद्वैद्यो गुडिकां कारयेत्ततः ॥ ३४ ॥

२–सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, कालाजीरा दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, नागरमोथा, जावित्री, जायफल, धनियाँ, लौंग, सोया, नली, मैनफल, अजवायन, अजमोद, धायके फूल, शतावर, मुसली, लोध, गजपीपल, चिरौंजी, गिलोय, कपूर, सफेदचन्दन और लालचन्दन इन औषधियोंको दो दो तोले लेकर बारीक पीसलेवे । फिर सोंठका चूर्ण १६ पल, घी ८ पल, दूध दो प्रस्थ; और खाँड २॥ प्रस्थ लेवे । पाकविधिको जाननेवाला वैद्य यत्नपूर्वक सबको दृढ मिट्टीके पात्रमें एकत्र करके मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पाक पककर गाढा होजाय तब उतारकर उसकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ३०–३४ ॥

भक्षयेत्प्रातरुत्थाय अजाक्षीरं पिबेदनु ।
आमवातं निहन्त्याशु कासं श्वासं सपीनसम् ॥ ३५ ॥
ग्रहणीमम्लपित्तं च रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
स्त्रीरोगान्विंशतिं चैव तत्क्षणादेव नाशयेत् ॥ ३६ ॥
अहन्यहनि च स्त्रीणां स्तनदार्ढ्यकरं परम् ।
सौभाग्यजननं स्त्रीणां पुष्टिदं धातुवर्द्धनम् ॥ ३७ ॥

प्रतिदिन प्रातः काल उठकर एक गोली भक्षण करे और ऊपरसे बकरीका दूध पीवे तो इससे आमवात, खाँसी, श्वास, पीनस, संग्रहणी; अम्लपित्त, रक्तपित्त, व्रण, क्षय और बीसप्रकारके स्त्रीरोग सेवन करतेही नष्ट होते हैं और प्रतिदिन स्त्रियोंके स्तन दृढतर होते हैं । यह सौभाग्यशुण्ठी योग्यस्त्रियोंके सुहागको बढानेवाली, पुष्टि देनेवाली और धातुवृद्धि करनेवाली है ॥ ३५-३७ ॥

बृहत्सौभाग्यशुण्ठी ।

बृहच्छुण्ठीं समादाय चूर्णयित्वा विधानतः ।
पलषोडशिकां नीत्वा क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥ ३८ ॥
क्रमेण पाकशुद्धिः स्याद् घृतप्रस्थे च भर्जयेत् ।
लघुपाकः प्रकर्त्तव्यो न खरो मोदकेष्वपि ॥ ३९ ॥
शतावरी विदारी च मुसली गोक्षुरो बला ।
छिन्नासत्त्वं शताह्वा च जीरके व्योषचित्रकौ ॥ ४० ॥
त्रिसुगन्धि यमानी च तालीशं कारवी मिसिः ।
रास्ना पुष्करमूलं च वंशी दारु शताह्वयम् ॥ ४१ ॥
शठी मांसी वचा मोचा त्वक् पत्रं नागकेशरम् ।
जीवन्ती मेथिका यष्टिश्चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ ४२ ॥
कूर्मिघ्नं तोयसिंहास्यधन्याकं कट्फलं घनम् ।
कर्षद्वयमितं भागं प्रत्येकं पट्टघर्षितम् ॥ ४३ ॥
सर्वचूर्णाद्द्विगुणिता प्रदेया सितशर्करा ।
युक्त्या पाकविधानज्ञो मोदकान् परिकल्पयेत् ॥४४॥
शुद्धे भाण्डे निधायाथ खादेन्नित्यं यथाबलम् ।
वीक्ष्याग्निबलकोष्ठं च नारीणां च विशेषतः ॥
क्षौद्रानुपानतः प्रातर्गुरुदेवान् समर्च्य च ॥ ४५ ॥

बडी बडी सोंठकी गाँठोंको १६ पल लेकर चूर्ण करके दसगुने दूधमें पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा पडजाय तब उसको २ प्रस्थ घीके साथ मन्द-मन्द अग्निसे शनैः शनैः भूने । फिर उसकी तरल अवस्थामें ही उसमें शतावर, विदारीकन्द, मुसली, गोखुरू, खिरेंटी, गिलोयका सत्त्व, सोया, छोटाजीरा, बडा जीरा, त्रिकुटा, चीता, छोटी इलायची, दारचीनी, तेजपात, अजवायन, तालीशपत्र, कालाजीरा,

सौंफ, रायसन, पोहकरमूल, वंशलोचन, देवदारु, सोया, कचूर, बालछड, वच, मोचरस, दारचीनी, नागकेशर, जीवंती, मेथी, मुलहठी, दोनों चन्दन, वायविडङ्ग, सुगन्धवाला, अडूसेकी छाल, धनियाँ, कायफल और नागरमोथा, ये प्रत्येक औषधि दो दो कर्ष लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्णकर कपडेसे छान ले फिर समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे । सबको मिलाकर एकमएक करके लड्डू बनालेवे और शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे । पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल गुरु और देवताओंको यथाविधि पूजकर अपनी जठराग्निके बलानुसार मात्राका निरूपण करके इस औषधिको शहदके साथ भक्षण करे ॥ ३८–४५ ॥

तद्वर्ण्यं बल्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ।
वयसः स्थापनं प्रोक्तमग्निदीप्तिकरं परम् ॥ ४६ ॥
वृष्याणामतिवृष्यं च रसायनमिदं शुभम् ।
विशेषात्स्त्रीगदे प्रोक्तं प्रसूतानां यथामृतम् ॥ ४७ ॥

यह औषधि बल, वर्ण और आयुको बढाती है और वली तथा पलितरोगका नाश करती है । एवं आयुको स्थापन करनेवाली अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली, पुष्टिकर योगोंमें विशेष पुष्टिकर और उत्तम रसायन है । विशेषकर स्त्रियोंके रोगोंमें इसको प्रयोग करे, प्रसूता स्त्रियोंके लिये तो यह अमृतके समान है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

विंशतिर्व्यापदो योनेः प्रदरं पञ्चधाऽपि च ॥ ४८ ॥
योनिदोषहरं स्त्रीणां रजोदोषहरं तथा ।
पापसंसर्गजं दोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४९ ॥
आमवातहरं चैव शिवःशूलनिवारणम् ।
सर्वशूलहरं चैव विशेषात्कटिशूलनुत ॥ ५० ॥
वीर्यवृद्धिकरं पुंसां सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ ।
वातपित्तकफोत्पन्नान्द्वन्द्वजान्सन्निपातजान् ॥ ५१ ॥
हन्ति सर्वगदानेषा शुण्ठी सौभाग्यदायिनी ।
सौभाग्यदायिनी स्त्रीणामतः सौभाग्यशुण्ठिका ॥५२॥

यह बीस प्रकारके योनिरोग, ५ प्रकारके प्रदर, रजोदोष, पापदोषजन्य रोग, आमवात, शिरःशूल, कटिशूल, एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके शूलरोगोंको

निस्सन्देह नष्ट करती है। पुरुषोंके वीर्यकी वृद्धि करनेवाली और स्त्रियोंके सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाली तथा वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज और सन्निपातज सर्वप्रकारके कठिन विकारोंको नष्ट करनेवाली है। यह सौभाग्य शुण्ठी स्त्रियोंके सुहागको बढाती है, इसी कारण इसको सौभाग्य शुण्ठी कहते हैं॥४८–५२॥

पञ्चजीरकगुड।

जीरकं हवुषा धान्यं शताह्वा बदराणि च।
यमानी क्रुष्टिको हिङ्गु पत्रिका कासमर्दकम् ॥ ५३ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाऽथ बाष्पिका।
चित्रकं च पलांशानि तथाऽन्यच्च चतुःपलम् ॥ ५४ ॥
कशेरुकं नागरं च कुष्ठं दीप्यकमेव च।
गुडस्य च शतं दद्याद् घृतप्रस्थं तथैव च ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ५५ ॥

जीरा, हाऊबेर, धनियाँ, सोया, बेर. अजवायन. राई, हिंगुपत्री, कसौंदी, पीपल पीपलामूल, अजमोद, नाडी, हींग और चीता ये प्रत्येक चार चार तोले तथा कसेरू, सोंठ, कूठ और मोरशिखा ये चार चार पल लेवे। सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करके १०० पल गुड, एक प्रस्थ, घी और दो प्रस्थ दूधके साथ मिलाकर यथाविधिसे मृदु अग्निद्वारा पाक करे॥५३–५५॥

पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते।
गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीये समारुते ॥ ५६ ॥
विंशतिर्व्यापदो योनेः कासं श्वासं ज्वरं क्षयम्।
हलीमकं पाण्डुरोगं दौर्गन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रताम् ॥ ५७ ॥
हन्ति पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः।
उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिताः ॥ ५८ ॥

यह पञ्चजीरकगुड प्रसूता स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है। गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको अत्यन्त पुष्टिकारक है तथा बीस प्रकारके योनिरोग, खाँसी, श्वास, ज्वर, क्षय, हलीमक, पाण्डुरोग· योनिदुर्गंध, मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंको नष्ट करता है।

इसको नित्यप्रति सेवन करनेसे स्त्रियें अलक्ष्मी और मलसे रहित होकर पुष्ट और उन्नतस्तनोंवाली तथा कमलपत्रके समान सुंदर नेत्रोंवाली होजाती हैं ॥५६-५८॥

जीरकाद्यमोदक।

जीरकस्य पलान्यष्टौ शुण्ठी धान्यं पलत्रयम्।
शतपुष्पा यमानी च कृष्णजीरं पलं पलम् ॥ ५९ ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं पलम्।
घृतस्यापि पलान्यष्टौ शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६० ॥

जीरा ८ पल, सोंठ ३ पल, धनियाँ ३ पल तथा सोया, अजवायन और कालाजीरा प्रत्येक चार चार तोले, दूध २ प्रस्थ, खाँड ५० पल और घी ८ पल लेवे, सबको विधिपूर्वक एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे ॥ ५९-६० ॥

व्योषं त्रिजातकं चैव विडङ्गं चव्यचित्रकम्।
मुस्तकं च लवङ्गं च पलांशं संप्रकल्पयेत् ॥ ६१ ॥
मन्देन वह्निना पक्त्वा मोदकं कारयेद्भिषक्।
सर्वयोषिद्विकाराणां नाशनं वह्निदीपनम् ॥
सूतिकारोगशमनं विशेषाद्ग्रहणीहरम् ॥ ६२ ॥

जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडङ्ग, चव्य, चीता, नागरमोथा और लौंग इनके बारीक चूर्णको चार चार तोले परिमाण डालदेवे और मृदु अग्निसे पकाकर लड्डू बनालेवे। यह मोदक स्त्रियोंके सब रोगोंको नष्ट करते हैं और अग्निको प्रदीप्त करते हैं। विशेषकर सूतिकारोग और संग्रहणी रोगको हरनेवाले हैं ॥

सूतिकाविनोदरस।

रसगन्धकतुत्थं च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्।
त्रिर्भावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु योजयेत् ॥ ६३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और तूतिया इनको समान भाग लेकर तीन दिनतक जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके त्रिकुटके क्वाथमें तीन बार भावना देवे। पश्चात् चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनाकर गर्भिणीस्त्रीके उल्लिखितरोगोंमें प्रयोग करे। यह रस शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्णादिरोगोंमें परमोपयोगी है ॥ ६३ ॥

बृहत्सूतिकाविनोदरस।

शुण्ठ्या भागो भवेदेको द्वौ भागौ मरिचस्य च।
पिप्पल्याः स्यात्त्रिभागं च अर्द्धभागं च व्योमकम् ॥६४॥
जातीकोषस्य भागौ द्वौ द्वौ भागौ तुत्थकस्य च।
सिन्धुवारजलेनैव मर्दयेदेकयामतः ॥
मधुना सह भोक्तव्यः सूतिकातङ्कनाशनः ॥ ६५ ॥

सोंठ १ भाग, मिरच २ भाग, पीपल ३ भाग, अभ्रक आधाभाग, जावित्री दो भाग और तूतिया दो भाग इन सबको एकत्र कर सिह्मालूके रस अथवा क्वाथसे एक प्रहरतक खरल करे। फिर इस रसको दो रत्ती प्रमाण ले शहदमें मिलाकर भक्षण करे तो प्रसूताके सर्व रोग नष्ट होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

सूतिकारिरस।

रसगन्धककृष्णाभ्रं तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
चूर्णितं मर्दयेद्यत्नाद्भेकपर्णीरसेन च ॥ ६६ ॥
छायाशुष्का गुडी कार्या कलायसदृशी ततः।
मात्रया कटुना देया सूतिकातङ्कनाशिनी ॥
ज्वरतृष्णारुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपनी ॥ ६७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक और काली अभ्रक ये प्रत्येक एक एक तोला और ताम्रभस्म छः माशे लेवे। फिर सबको एकत्र कर मण्डूकपर्णीके रसद्वारा यत्नपूर्वक खरल करे और छायामें सुखाकर मटरकी बराबर सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके साथ खानेसे प्रसूतिरोग नष्ट होता है तथा ज्वर, तृषा, अरुचि और शोथ दूर होता है, अग्नि दीपन होती है ॥६६॥६७॥

सूतिकाघ्नरस।

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोषं सुवर्णकम्।
समांशं मर्दयेत्खल्ले छागीदुग्धेन पेषयेत् ॥ ६८ ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः।
ज्वरातीसाररोगघ्नः सूतिकातङ्कनाशनः ॥
सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्त्तितः ॥ ६९ ॥

शोधित पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, जावित्री और धतूरेके बीज इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करे। फिर दो दो

रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे तो ज्वर, अतीसार और सूतिकारोग नष्ट होता है। इस सूतिकाघ्न रसको ब्रह्माजीने कथन किया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

सूतिकाहररस।

लवङ्गं रसगन्धौ च यवक्षारं तथाऽभ्रकम्।
लौहं ताम्रं सीसकं च पलमानं समाहरेत् ॥ ७० ॥
जातीफलं केशराजं वरैला भृङ्गमुस्तकम्।
धातकीन्द्रयवं पाठा शृङ्गी बिल्वं च बालकम् ॥ ७१ ॥
कर्षमानं च सञ्चूर्ण्य सर्वमेकत्र कारयेत्।
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ७२ ॥
गन्धालिकापत्ररसैरनुपानं प्रदापयेत्।
सर्वातीसारहरणः सर्वशूलनिवारणः ॥
सूतिकाहरनामाऽयंसूतिकां नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ७३ ॥

लौंग, शुद्ध पारा, गन्धक, जवाखार, अभ्रक, लोहा, तांबा और सीसा ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे तथा जायफल, कुकुरभाँगरा, त्रिफला, इलायची, भाँगरा, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ, पाढ काकडासिंगी, बेलगिरी और सुगन्धवाला ये औषधियाँ दो दो तोले ले सबको कूट पीसकर और जलमें खरल कर इनकी बेर की गुटलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। फिर प्रतिदिन पसरनके रसके साथ एक एक गोली सेवन करे तो सर्वप्रकारका अतीसार और सर्वशूल नष्ट होते हैं। यह रस सूतिकारोगको तो निश्चय नष्ट करता है ॥ ७०-७३ ॥

रसशार्दूल।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसं तथा।
गन्धटङ्कमरीचं च यवक्षारं समांशकम् ॥ ७४ ॥
तथाऽत्र तालकं चैव त्रिफलायाश्च तोलकम्।
तोलकं चामृतं चैव षड्गुञ्जाप्रमिता वटी ॥ ७५ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च।
भावयेत्सप्तधा हन्ति ज्वरकासाङ्गसंग्रहम् ॥
सूतिकातङ्कशोथादिस्त्रीरोगं च विनाशयेत् ॥ ७६ ॥

अभ्रक, ताँबा, लोहा, चुम्बकपत्थर, पारा, गन्धक, सुहागा, मिरच, जवाखार, हरिताल, त्रिफला और शुद्ध मीठातेलिया ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे।

फिर सबको गूमाशाकके रस और पानके रसमें यथाक्रम सातबार भावना देवे । अनन्तर छः छः रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रसशार्दूल ज्वर, खाँसी, शरीरपीडा प्रसूत और सूजन आदि स्त्रियोंके सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करता है ॥

महारसशार्दूल ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं स्वर्णं गन्धं च पारदम् ।
शिला टङ्कं यवक्षारं त्रिफलायाः पलं पलम् ॥ ७७ ॥
गरलस्य तथा ग्राह्यमर्द्धतोलकसंमितम्
त्वगेला पत्रकं चैव जातिकोषलवङ्गकम् ॥ ७८ ॥
मांसी तालीशपत्रं च माक्षिकं च रसाञ्जनम् ।
एषां द्विकार्षिकं भागं देयं चापि विचक्षणैः ॥ ७९ ॥
द्रवे किञ्चित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ।
भावना च प्रदातव्या पूर्वोक्तेन रसेन च ॥ ८० ॥
निहन्ति विविधान्रोगाञ्ज्वरं दाहान्वमिं भ्रमिम् ।
तथाऽतीसारकं चैव वह्निमान्द्यमरोचकम् ॥
विशेषाद्गर्भिणीरोगं नाशयेदचिरेण च ॥ ८१ ॥

अभ्रक, ताँबा और सुवर्णकी भस्म, गन्धक, पारा, मैनसिल, सुहागा, जवाखार और त्रिफला इनको चार चार तोले, मीठातेलिया ६ माशे, दारचीनी, इलायची, तेजपात, जावित्री, लौंग, बालछड, तालीशपत्र, सोनामाखी और रसौत इनको दो दो तोले लेवे । सबको एकत्रकर गूमाशाकके रस और पानके रसमें पृथक् पृथक् ७ बार भावनादेवे । जब कुछ तरल अवस्था होजाय तब उसमें ४ तोले कालीमिरचोंका चूर्ण मिलालेवे । यह रस यथाविधि सेवन करनेसे ज्वर, दाह, वमन, भ्रम, अतीसार, मन्दाग्नि, अरुचि आदि अनेक प्रकारके रोगोंको विशेषकर गर्भिणीस्त्रियोंके रोगोंको अल्पकालमेंही नाश करताहै ॥ ७७–८१ ॥

महाभ्रवटी ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् ।
कुनटी टङ्कणं क्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥ ८२ ॥
गरलं च तथा माषचतुष्कं चैव चूर्णितम् ।
तत्सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ८३ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूषकस्य क्रमेण च

रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च दलोत्थैर्भावितं पृथक् ॥
द्रवे किञ्चित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ॥ ८४॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, गन्धक, पारा, मैनासिल, सुहागा, जवाखार और त्रिफला ये प्रत्येक चार चार तोले, शुद्ध मीठातेलिया ४ माशे लेकर सबको एकत्र पीस लेवे । फिर सब चूर्णको गूमा, अडूसा और नागवल्ली इनके पत्तोंके एक पल रसमें अलग २ क्रमशः भावना देवे । जब कुछ पतला रहजाय तब उसमें १ पल मिरचोंका चूर्ण डालकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ॥ ८२-८४ ॥

सर्वातीसारशमनं सर्वशूलनिवारणम् ॥ ८५ ॥
सूतिकाशोथपाण्डुघ्नं सर्वज्वरविनाशनम् ।
नाशयेत्सूतिकातङ्कं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८६ ॥

इस वटीको सेवन करनेसे सर्वप्रकारका अतीसार, सब शूल, सूतिकारोग, सूजन पाण्डुरोग और सब प्रकारका ज्वर नष्ट होताहै । जिस प्रकार वज्रसे वृक्षोंका नाश होताहै उसी प्रकार सूतिकारोग नष्ट होताहै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

सूतिकारिरस ।

टङ्कणं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं हेम तारकम् ।
जातीफलं तथा कोषं लवङ्गैला च धातकी ॥ ८७ ॥
वत्सकेन्द्रयवं पाठा शृङ्गी विश्वाजमोदिका ।
गुडी प्रसारणिरसैश्चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ ८८ ॥
भक्षयेत्तद्रसैः प्रातः सूतिकातङ्कशान्तये ।
जीर्णज्वरं तथा शोथं ग्रहणीप्लीहकासनुत् ॥ ८९ ॥

सुहागा, फुँकाहुआ पारा, गन्धक, सुवर्ण, रूपा, जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, धायके फूल, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, पाढ, काकडासिंगी, सोंठ और अजमोद इनके चूर्णको समान भाग लेकर प्रसारणीके रसमें खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियां बनालेवे । फिर सूतिकारोगको शान्त करनेके लिये प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक वटी प्रसारणीके रसके साथ सेवन करे । इससे पुराना ज्वर, सूजन, संग्रहणी, तिल्ली और खाँसी आदि सब विकार दूर होते हैं ॥

भद्रोत्कटाद्य घृत ।

समूलपत्रशाखं तु शतं भद्रोत्कटस्य च ।
वारिद्रोणेन संसाध्य स्थाप्यं पादावशेषितम् ॥ ९० ॥

घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गर्भं दत्त्वा तु कार्षिकम् ।
सव्योषं पिप्पलीमूलं चित्रकं जीरकं तथा ॥ ९१ ॥
पञ्चमूलं कनिष्ठं च रास्नैरण्डसमन्वितम् ।
बला सिन्धुयवक्षारस्वर्जिकाकृष्णजीरकम् ॥ ९२ ॥
सिद्धमेतद् घृतं सद्यो निहन्यात्सूतिकामयान् ।
ग्रहणीं पाण्डुरोगं च अर्शांसि विविधानि च ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं स्त्रीणां स्तन्यविशोधनम् ॥ ९३ ॥

जड, पत्ते और शाखासहित प्रसारणीको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी १ प्रस्थ तथा त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता, जीरा, लघु पञ्चमूल, रास्ना, अण्डकी जड, खिरेंटी, सैंधानमक, जवाखार, सज्जी और कालाजीरा इनके दोदो तोले चूर्णको डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे । यह घृत नित्यप्रति सेवन करनेसे प्रसूतिरोग, संग्रहणी, पाण्डु और अनेकप्रकारके अर्शादिविकारोंको तत्काल नष्ट करता है और अग्निको दीपन करता है । तथा स्त्रियोंके स्तन्य (दूध) को शुद्ध करता ॥ ९०–९३ ॥

सूतिकादशमूलतैलम् ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
दासी प्रसारणी विश्वं गुडूची मुस्तकं तथा ॥ ९४ ॥
एतानि समभागानि प्रस्थं च कटुतैलकम् ।
चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरदाहसमन्वितम् ॥ ९५ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडीकटेरी, गोखुरू, पीलीकटसरैया, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय और नागरमोथा इनको समान भाग मिश्रित १०० पल लेकर ५० सेर जलमें पकावे । अर्द्धावशेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर उसमें कडवातेल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ और उक्त औषधियोंका कल्क १ सेर डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । इस तेलको मर्दन करनेसे ज्वर और दाहसहित सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सूतिकारोगचिकित्सा ।

स्तनरोगकी चिकित्सा।

वनकार्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा।
विदारिकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥

वनकपासकी जड और ईखकी जडको काँजीमें पीसकर अथवा विदारीकन्दके चूर्णको मद्यके साथ पान करनेसे स्तनोंमें दूध बढता है ॥ १ ॥

शालितण्डुलचूर्णस्य पानं दुग्धेन वर्द्धयेत्।
स्तन्यं सप्ताहतः क्षीरसेविन्यास्तु न संशयः ॥ २ ॥

दूधके साथ शालिचावलोंके चूर्णको पान करे और दूध भातका भोजन करे तो सात दिनमें ही स्तनोंमें दूधकी वृद्धि होती है ॥ २ ॥

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत्स्तन्यविवृद्धये ॥ ३ ॥

स्तनोंमें दुग्धवृद्धि करनेके लिये हरिद्रादि या वचादि क्वाथ पान करे ॥ २ ॥

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत्।
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम् ॥
धात्री कुमारश्च पिबेत्क्वाथयित्वा सशारिवाम् ॥ ४ ॥

वातजनित स्तनरोगमें दशमूलके काढेको पीवे, पित्तज स्तनरोगमें गिलोय, शतावर, परवल, नीमकी छाल, लालचन्दन और अनन्तमूल इनका क्वाथ बनाकर धाय और बालकको पिलाना चाहिये ॥ ४ ॥

कफे वा त्रिफला मुस्ता भूनिम्बं कटुरोहिणी।
भार्ङ्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः।
धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशना ॥ ५ ॥

कफजन्य स्तनरोगमें त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, भारँगी, देवदारु, वच, पाढ और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पान करे और मूँगके यूषका भोजन करे तो धायके स्तनोंमें दूधकी वृद्धि होती है ॥ ५ ॥

कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चर्वितमास्ये विधारितं जयति।
सप्ताहात्स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥ ६ ॥

गंगेरनकी जडको चाबकर मुखमें धारण करनेसे सात दिनके भीतर ही स्तनोंकी कील निकलकर दूधकी वृद्धि होती है ॥ ६ ॥

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्यद्विद्रधावभि-
हितं बहुधा विधानम् । आमे विदह्यति तथैव गते च
पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव हि निर्दुहीत ॥ ७ ॥

स्त्रीके स्तनोंमें सूजन होजानेपर वैद्य प्रायः विद्रधिरोगकी समान चिकित्सा करें और सूजनकी अपक्व अथवा पक्व अवस्थामें दाह होती हो तो भी उसके स्तनोंमेंसे दूध निकाल देवे ॥ ७ ॥

विशालमूललेपं तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् ।
निशाकनकफलाभ्यां लेपश्चापि स्तनार्त्तिहा ॥ ८ ॥

इन्द्रायणकी जड, हल्दी और धतूरेके फल इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे स्तनजन्य पीडा दूर होती है ॥ ८ ॥

मूषिकवसया शूकरमहिषगजमांसचूर्णयुतया ।
अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां सुकठिनपीनस्तनौ भवतः ॥ ९ ॥

सूअर, भैंसा और हाथीके मांसके चूर्णको चूहेकी चर्बीमें मिलाकर स्तनोंमें मालिश और लेप करनेसे स्त्रीके स्तन अत्यन्त कठिन तथा स्थूल होते हैं ॥ ९ ॥

महिषीभवनवनीतं व्याधिबलोग्रा तथैव नागबला ।
पिष्ट्वा मर्दनयोगात्पीनं कठिनं स्तनं कुरुते ॥ १० ॥

भैंसका नैनीघी, कूठ, खिरैंटी, वच और गंगेरन इनको एकत्र पीसकर मालिश करनेसे स्तन कठिन और स्थूल होते हैं ॥ १० ॥

प्रथमर्त्तौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात्स्तनौ स्थिरौ ।

पहलेकी ऋतुकालमें चावलोंके जलकी नास लेनेसे स्तन स्थिर होजाते हैं ॥

गोमहिषीघृतसहितं तैलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः ।
त्रिकटुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनवर्द्धनं परम् ॥ ११ ॥

गोघृत, भैंसका घी और तिलका तेल ये समान भाग मिलित एक सेर, कल्कके लिये फूलप्रियंगु, लज्जावन्ती, वच, सोंठ, मिरच, पीपल और हल्दी इनको समान भाग मिश्रित (आधसेर और) दो सेर लेवे । सबको यथाविधि मिलाकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल नस्यद्वारा प्रयोग करनेसे स्तनोंको बढातीहै ॥

काशीशाद्यतैल ।

काशीशतुरगगन्धाशावरगजपिप्पलीविपक्वेन ।
तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥ १२ ॥

कसीस, असगन्ध, लोध और गजपीपल इनके कल्कद्वारा उत्तम विधिसे तेलको सिद्ध कर मर्दन करनेसे स्तन, कान, योनि और लिङ्गकी वृद्धि होतीहै ॥

श्रीपर्णीतैल ।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
तत्तैलं तूलकेनैव स्तनस्योपरि धारयेत् ॥
पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेतां च पयोधरौ ॥ १२ ॥

कुम्भेरकी जडके क्वाथ और कल्कद्वारा तिलके तेलको विधिपूर्वक पकावे । उस तेलको रुईके फोयेसे स्तनोंपर लगानेसे गिरेहुए स्तन फिर उन्नत होजातेहैं ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्तनरोगचिकित्सा ।

बालरोगकी चिकित्सा ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः ।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥१॥
क्षीरपाय्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः ।
अन्नेन वा शिशौ देयं भेषजं भिषजा सदा ॥ २ ॥

बालक तीन प्रकारके होते हैं, जैसे—एक दूध पीनेवाले, दूसरे—दूध और अन्न खानेवाले और तीसरे—केवल अन्नको खानेवाले । दूषित दूध और दूषित अन्नके होनेसे ही बालक रोगी होते हैं और दूध तथा अन्नके निर्दोष होनेसे बालक स्वस्थ रहते हैं । दूध पीनेवाले बालकको रोग हो तो धाय (बालकको दूध पिलानेवाली) को औषधि सेवन करावे और दूधपायी तथा अन्नभोजी बालकके रोग होनेपर बालक और धाय दोनोंको औषधि सेवन करावे । पर अन्नखानेवाले बालकको रोग होनेपर धायको कदापि औषधि सेवन न करावे । अन्नके साथ औषध मिलाकर बालकको सेवन करावे ॥१॥२॥

मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नेष्टं विशोषणम् ।
सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं तु न निवार्यते ॥ ३ ॥

बालकके रोग उत्पन्न होनेपर आवश्यकतानुसार धायको लंघन करावे और बालकको लंघन या दस्त कदापि न करावे। बालकको अन्यान्य सर्वप्रकारकी वस्तुओंसे वर्जित करे; किन्तु माताका दूध पीना कभी बन्द न करे ॥ ३ ॥

भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु ।
देयं तदेव बालानां मात्रा तस्य कनीयसी ॥ ४ ॥

मनुष्योंके ज्वरादिरोगोंमें पहले जो औषधियें कही हैं वे ही औषधियें बालकोंके ज्वरादिरोगोंमें अल्पमात्रासे देनी चाहियें ॥ ४ ॥

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ ५ ॥
एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावदाषोडशाब्दिकः ॥ ६ ॥

एक महीनेके बालकको एक रत्ती प्रमाण औषधि शहद, दूध, मिश्री अथवा घृतके साथ मिलाकर चटानी चाहिये । दूसरे महीनेसे सालभर तकके बालकको प्रत्येक मासमें एक एक रत्ती मात्रा बढाकर देवे और सालभरकी अवस्थावाले बालकसे सोलह वर्षतककी अवस्थावाले बालकोंको प्रत्येकवर्ष एकएक माशेकी मात्रा बढाकर सोलह माशेतक औषधि देनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

यो बालोऽचिरजातःस्तनं न गृह्णाति तस्य सहसैव ।
धात्रीमधुघृतपथ्याकल्केनाघर्षयेज्जिह्वाम् ॥ ७ ॥

जो थोडे दिनोंका बालक माताके दूधको नहीं पीवे तो आमले और हरडके बारीक चूर्णको शहद और घीमें मिलाकर उसकी जिह्वापर घिसे । इससे दूध पीने लगता है ॥ ७ ॥

कुष्ठं वचाऽभया ब्राह्मी कनकं क्षौद्रसर्पिषा ।
वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥ ८ ॥

कूठ, वच, हरड, ब्राह्मी और सुवर्णभस्म इनके चूर्णको समान भाग लेकर घी और शहदमें मिलाकर बालकको चटावे । इससे वर्ण, आयु और कान्तिकी वृद्धि होती है ॥ ८ ॥

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥ ९ ॥

माताके या धायके स्तनोंमें दूधका अभाव होनेपर बालकको बकरीका अथवा गौका दूध हलका करके पिलावे । किम्वा लघुपञ्चमूल या शालपर्णीका क्वाथ दूध और मिश्रीके सहयोगसे पान कराना चाहिये ॥ ९ ॥

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा।
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १० ॥

मिट्टीके ढेलेको तपाकर और गरम दूधमें डालकर उससे सुहाता २ नाभिपर स्वेद देवे तो बालककी नाभिकी सूजन दूर होती है ॥ १० ॥

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम्।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ ११ ॥

बालककी नाभि पकजानेपर हल्दी, लोध, फूलप्रियंगु और मुलहठी इनके कल्कद्वारा तेलको पकाकर नाभिपर मालिश करे अथवा उक्त औषधियोंके चूर्णको नाभिपर घर्षण करे ॥ ११ ॥

सोमग्रहणे विधिवत्केकिशिखामूलमुद्धृतं बद्धम्।
जघनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्यहिण्डिकां नियतम् ॥ १२ ॥

चन्द्रग्रहण होनेपर चिरचिटेकी जड उखाड बालककी जाँघ अथवा गर्दनमें बाँध देवे तो अहिण्डिकारोग निस्सन्देह दूर होता है ॥१२॥

सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम्।
पीतं तद्वत्तण्डुलभक्तकृतो दग्धपिष्टकप्राशः १३ ॥

सतौनेके फूल, मिरच और गोरोचन इनको एकत्र पीसकर पान करावे अथवा अन्नके साथ चावलोंको पीसकर केलेके पत्तेपर रख कुशासे बाँधकर दग्ध करके भक्षण करावे तो अहिण्डिकारोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषनुत् ॥ १४ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी; कटेरी, इंद्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पान करानेसे बालकका ज्वर, अतीसार (दस्त) और धायके स्तन्यदोषादिविकार जाते हैं ॥१४॥

रजनी दारु सरलं श्रेयसी बृहतीद्वयम्।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ १५ ॥
ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम्।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित् ॥ १६ ॥

हल्दी, देवदारु, धूपसरल, गजपीपल, कटेरी, बडीकटेरी, पृश्निपर्णी और सोया इनके चूर्णको समान भाग लेकर शहद और घीमें मर्दन करके बालकको

चटानेसे ग्रहणी, वातरोग, कामला, ज्वर, दस्त, पाण्डु और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकार नष्ट होते हैं तथा अग्नि दीपन होती है ॥१५-१६॥

मिषीकृष्णाञ्जनं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ।
लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः ॥ १७ ॥

सौंफ, पीपल, रसौत, खीलोंका चूर्ण, काकडासिङ्गी और काली मिरच इनके चूर्णको समान भाग लेकर शहदमें खरलकरके भक्षण करानेसे बालकके वमन, खाँसी और ज्वरादिविकार नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा ।
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ॥ १८ ॥

जो बालक दूधको पीते २ ही डालदेवे तो उसको बडीकटेरी और कटेरीके फलोंका रस घी और शहदके साथ मिलाकर पान करे अथवा पञ्चकोलका चूर्ण घी और शहदमें मिश्रितकर चटावे ॥ १८ ॥

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत ॥ १९ ॥

आमकी गुठलीकी गिरी, खीलें और सैंधानमक इनके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चटानेसे वमन (कै) होना दूर होता है ॥ १९ ॥

पिप्पलीमरिचानां च चूर्णं समधुशर्करम् ।
रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काच्छर्दिनिवारणम् ॥ २० ॥

पीपल, काली मिरच इनके चूर्णको शहद और खाँडमें मिलाकर बिजोरेनींबूके रसके साथ पान करानेसे हिचकी और वमन होना बन्द होता है ॥२०॥

पेठीपाठामूलं जम्बूसहकारवल्कलतः ।
इत्येकशश्च पिण्डो विधृतो हृन्नाभिताल्वादौ ॥
छर्द्यतिसारजवेगं प्रबलं धत्ते तदेव नियमेन ॥ २१ ॥

पेटारीवृक्ष, पाढकी जड, जामुनकी छाल और आमकी छाल, इनमेंसे किसीएक चीजको पीसकर गोलासा बनालो । उसको बालकके हृदय, नाभि और तालुआदि स्थानोंमें रखनेसे वमन और अतीसारका प्रबल वेगसहित होना दूर होता है ॥२१॥

पत्रैर्बदरचाङ्गेरीकाकमाचीकपित्थजैः ।
शिशोरुग्वम्यतीसारनाशनं मूर्द्धलेपनम् ॥ २२ ॥

बेर, अम्ल नोनिया, मकोय और कैथ इनके पत्तोंको एकत्र पीसकर मस्तकपर लेपकरनेसे बालकके कै और दस्त होना आदि विकार नष्ट होते हैं ॥२२॥

क्षीरादस्य शिशोरामं शुष्कं दृष्ट्वा तु दारुणम्।
माषयूषं पिबेद्धात्री पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ २३ ॥

दूधको पीनेवाले बालकके दस्तोंके साथ २ दारुण सूखीआम निकलती माल्म हो तो उसकी धायको पीपलका चूर्ण डालकर उडदोंका यूष पान करावे ॥२३॥

स्तन्यपस्य कुमारस्य सर्वस्यामातिसारिणः।
धात्रीं विलङ्घयेद्धीमान् देहदोषाद्यपेक्षया ॥
पञ्चकोलकसिद्धं वा पेयादिं च प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥

दूध पीनेवाले बालकके आमसहित दस्त होते हों तो उसकी धायको लंघन करावे। अथवा पञ्चकोलके द्वारा सिद्धकर पेया पान करनेको देवे ॥ २४ ॥

वचा मुस्तं भद्रदारुनागरातिविषागणः।
हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ॥ २५ ॥
एतौ वचाहरिद्रादिगणौ स्तन्यविशोधनौ।
आमातिसारशमनौ कफमेदोविशोषणौ ॥
मात्रा क्राथजलं पेयं किञ्चिद्देयं शिशोरपि ॥ २६ ॥

वच, भद्रमोथा, देवदारु, सोंठ और अतीस इन औषधियोंके समुदायको वचादिगण कहते हैं। एवं हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, कटेरी और इन्द्रजौ इनके समूहको हरिद्रादिगण कहते हैं। इन दोनों गणोंका क्वाथ स्तन्यविशोधक, आमातीसारनाशक तथा कफ और मेदको शुष्क करनेवाला है। उक्त गणोंका क्वाथ धायको पान करावे और बालकको भी कुछ थोडासा देवे ॥२५॥२६॥

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गज-
पिप्पली च। क्राथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु
योज्यावतिसारितेषु ॥ २७ ॥

बेलगिरी, धायके फूल, सुगन्धवाला, लोध और गजपीपल इनका क्वाथ या चूर्ण शहदमें मिलाकर बालकको सेवन करानेसे अतीसाररोग नष्ट होता है ॥ २७ ॥

आम्रातकाम्रजम्बूनां त्वचमादाय चूर्णयेत्।
मधुना लेहयेद्बालमतीसारविनाशनम् ॥ २८ ॥

अम्बाडेकी छाल, आमकी छाल और जामुनकी छाल इनको एकत्र पीसकर और शहदमें मिलाकर बालकको चटावे तो दस्त होने बन्द होते हैं ॥ २८ ॥

सितजीरकसर्ज्जचूर्णं बिल्वदलोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम् ।
हन्त्यामरक्तशूलं गुडसहितं श्वेतसर्ज्जो वा ॥ २९ ॥

सफेद जीरा और राल इनके चूर्णको बेलपत्रीके रसमें अथवा केवल श्वेतरालके चूर्णको गुडके साथ मर्दन करके बालकको सेवन करानेसे आमरक्त और उसकी पीडा नष्ट होती है ॥ २९ ॥

समङ्गा धातकी पद्मं वयस्था कच्छुरा तथा ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यादतीसारविनाशिनी ॥ ३० ॥

वराहाक्रान्ता, धायके फूल, कमलकेशर, गिलोय और कौंछकी जड इनको एकत्र पीसकर इनली यवागू बनावे । यह यवागू बालकको पान करानेसे अतीसारको नष्ट करती है ॥ ३० ॥

बिल्वमूलकषायेण लाजांश्चैव सशर्करान् ।
आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ३१ ॥

बेलकी जडके क्वाथमें खीलोंका चूर्ण और चीनी मिलाकर बालकको पिलानेसे वमन और अतीसार दूर होते हैं ॥ ३१ ॥

कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः ।
क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥ ३२ ॥

फूलप्रियंगु, बेरकी गुठलीकी मींग, नागरमोथा और रसौत इन सबके चूर्णको एकत्र शहदके साथ खरल करके बालकको चटानेसे कै प्यास और दस्त होने बन्द होते हैं ॥ ३२ ॥

मोचरसं समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम् ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ ३३ ॥

मोचरस, वराहक्रान्ता, धायके फूल और कमलकेशर इन सबको एकत्र पीस कर इनके द्वारा यवागू बनाकर बालकको सेवन करावे तो रक्तातिसार नष्ट होय ॥ ३३ ॥

लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितः ।
बालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम् ॥ ३४ ॥

तिलका तेल, मिश्री, शहद, तिल और मुलहठी इन सबको एकत्र पीसकर बालकको सेवन करानेसे रक्तस्राव और प्रवाहिकारोग निश्चय दूर होते हैं ॥ ३४ ॥

लाजाः सयष्टिमधुकशर्कराः क्षौद्रमेव च ।
तण्डुलोदकसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ ३५ ॥

खीलें, मुलहठी, चीनी और शहद इन सबको एकत्र मर्दनकर चावलोंके जलके साथ बालकको पान करानेसे प्रवाहिकारोग तत्काल नाश होता है ॥ ३५ ॥

अङ्कोटमूलमथवा तण्डुलसलिलेन वटजमूलं वा ।
पीतं हन्त्यतिसारं ग्रहणीरोगं च दुर्वारम् ॥ ३६ ॥

ढेरावृक्षकी जड अथवा वडकी जडको चावलोंके पानीके साथ पीसकर पान करानेसे बालकके दस्त और संग्रहणीरोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

मरिचमहौषधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः ।
गुडतक्रयुक्तमेतद्ग्रहणीरोगं निहन्त्याशु ॥ ३७ ॥

काली मिरच एक भाग, सोंठ दो भाग और कुडेकी छाल ४ भाग इनको यथाक्रमसे लेकर गुड और मट्ठेके साथ खरल करके पान करानेसे संग्रहणी तत्काल नष्ट होती है ॥ ३७ ॥

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाजं पयः शिशोः ।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्त्रिरात्रितः ॥ ३८ ॥

बेलगिरी, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, मोचरस और नागरमोथा इन सबको समान भाग मिलाकर दो तोले परिमाण ले १६ तोले बकरीके दूध और एक सेर जलमें पकावे । जब दूधमात्र शेष रहजाय तब उस दूधको सेवन करानेसे बालकके आम-सहित और रक्तसहित संग्रहणीरोग तीन दिनमें ही नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

तद्वदजाक्षीरसमो रसो जम्बूत्वगुद्भवः ॥

बकरीका दूध और जामुनकी छालका रस इन दोनोंको समान भाग ले एकत्र मिश्रितकर पान करानेसे बालककी संग्रहणी नष्ट होती है ॥

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ३९ ॥

बालककी गुदा पकगई हो तो पित्तनाशक चिकित्सा करे और रसौतको पीस-कर गुदापर लेप करे तथा पान करावे ॥ ३९ ॥

दुष्टमन्नादिभिर्मातुः स्तन्यं संपिबतः शिशोः ।
यदा प्रकुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ॥ ४० ॥

तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः।
व्रणःसदाहो व्यक्तोष्मा तदाऽस्य स्याज्ज्वरः परः ॥४१॥
हरितं पीतकं वापि वर्चस्तेन भवेद् ध्रुवम्।
व्रणः पश्चाद्रुजो नाम व्याधिः परमदारुणः ॥ ४२ ॥

दूषित अन्नादिका सेवन करनेसे माताका दूध दूषित होजाता है। उस दूषित दूध को पीनेसे बालकका पित्त कुपित होकर गुदामें पहुँचकर जौंकके उदरकी समान लाल लाल व्रण उत्पन्न करता है। उस व्रणमें–गुदामें दाह, सन्ताप और ज्वर होता है और हरा अथवा पीला मल निकलता है। इस रोगका पश्चाद्व्रण नाम है। यह व्याधि बालकोंके लिये अतिभयंकर है ॥४०–४२॥

चन्दनं सारिवे द्वे च शङ्खिनीति समायुतैः।
पश्चाद्रुजे प्रलेपोऽयमवलेहस्तु शस्यते ॥४३॥

पश्चाद्व्रणरोगमें लालचन्दन, उसवा, अनन्तमूल, और शङ्खपुष्पी इन औषधियोंके द्वारा प्रलेप और अवलेह सिद्ध कर प्रयोग करना चाहिये ॥ ४३ ॥

कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ४४ ॥

पीपल, कालीमिरच, मिश्री, शहद, छोटी इलायची और सैंधानमक इनका अवलेह बनाकर बालकके मूत्रावरोधमें प्रयोग करना उत्तम है ॥ ४४ ॥

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्ङ्गीरजो लिहन्।
आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशुः ॥ ४५ ॥

सैंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, हींग और भारंगी इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको घीमें मिलाकर अथवा मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे बालकका वातज शूल और आनाहरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम्।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥ ४६ ॥

हरड, वच और कूठ इनको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर माताके दूधके साथ पान करानेसे बालक तालुपातरोगसे मुक्त होता है ॥ ४६ ॥

मुखपाके तु बालानां साम्रसारमयोरजः।
गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ ४७ ॥

अश्वत्थत्वग्दलैः क्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ।
दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथाऽपरम् ॥ ४८ ॥

बालकोंके मुखपाकरोगमें आमकी गुठलीकी गिरी, लोहचूर्ण, गेरू और रसौत इन औषधियोंको पीसकर, शहदमें मिलाकर, अथवा, पीपलकी छाल और पत्तोंको पीसकर शहदके साथ किम्वा दारुहल्दी, मुलहठी, हरड और जाविन्त्री इनके चूर्ण को शहदके साथ मिलाकर मुखपाकमें प्रलेप करे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सह जम्बीररसेन स्नुग्दलरसघर्षणं सद्यः ।
कृतमपहन्ति हि पाकं मुखजं बालस्य चाश्वेव ॥ ४९ ॥

थूहरके पत्तोंके रस और जम्बीरीनींबूके रसको एकत्र मिलाकर मुखमें लगानेसे बालकका मुखपाकरोग तत्काल नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

लावतित्तिरिवल्लूररजः पुष्परसार्दितम् ।
द्रुतं करोति बालानां दन्तं केशरवन्मुखम् ॥ ५० ॥

लवा और तीतरके मांसके चूर्णको शहदमें मिलाकर मलनेसे बालकका दन्तक्षतरोग दूर होकर मुख केशरकी समान कान्तिमान् होता है ॥ ५० ॥

दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियन्त्रयेत् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति जातदन्तस्य ते गदाः ॥ ५१ ॥

दाँतोंके निकलते समय बालकोंके अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं । उस समय उन रोगोंमें चिकित्सा अथवा आहारादिका कोई कठिन नियम करके बालकको पीडित नहीं करना चाहिये । क्योंकि दाँतोंके निकल आनेपर वे सब रोग स्वयं ही शान्त हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

विभीतकफलं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
एभिस्तैलं विपक्तव्यं बालानां पूतिकर्णके ॥ ५२ ॥

बहेडा, कूठ, हरिताल और मैनसिल इनके कल्क द्वारा कडवे तेलको पकाकर बालकोंके पूतिकर्णरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह ।
लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दितः शिशुः ॥ ५३ ॥

अत्यन्त लालरंगके गेरूके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चटानेसे बालकको हिचकी आना शीघ्र दूर होती है ॥ ५३ ॥

चित्रकं शृङ्गवेरं च तथा दन्ती गवाक्ष्यपि ।
चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुखोष्णेनाम्बुना पिबेत् ॥
कासं श्वासमथो हिक्कां कुमाराणां प्रणाशयेत् ॥ ५४ ॥

चीतेकी जड, सोंठ, दन्तीकी जड और इन्द्रायनकी जड इनके चूर्णको एकत्र पीसकर सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे बालकोंकी खाँसी, श्वास और हिचकी आना बन्द होती हैं ॥ ५४ ॥

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा ।
लीढं कासं निहन्त्याशु श्वासं च तमकं तथा ॥ ५५ ॥

दाख, धमासा, हरड और पीपल इनके चूर्णको शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंकी खाँसी, श्वास और तमकरोग शीघ्र नष्ट होताहै ॥५५॥

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नागकेशरम् ।
चूर्णितं शर्कराक्षौद्रलीढं तृष्णानिवारणम् ॥ ५६ ॥

अनारके बीज, जीरा और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर चीनी और शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी तृषा निवारण होती है ॥ ५६ ॥

मायूरपक्षभस्मव्युषितजलं तेन भावितं पेयम् ।
तृष्णाघ्नं वटकाष्ठजभस्मजलं वक्त्रशोषजिद्वक्त्रे ॥ ५७ ॥

मोरपंखकी भस्मको जलमें भिजोकर अगलेदिन वह बासी जल बालकको पान करावे अथवा बडकी छालकी भस्म जलमें भिजोकर उसके बासी जलको पान करावें तो बालककी तृषा और मुखशोषरोग नष्ट होताहै ॥ ५७ ॥

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वीमुस्तकगैरिकैः ।
बहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामयार्त्तिजित् ॥ ५८ ॥

दारुहल्दी, नागरमोथा और गेरू इनको बकरीके दूधमें पीसकर नेत्रोंके बाहर पलकोंपर लेप करनेसे बालकोंके नेत्ररोगकी पीडा शान्त होती है ॥५८॥

मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् ।
वर्त्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बाले सर्वाक्षिरोगनुत् ॥ ५९ ॥

मैनसिल, शङ्खनाभि, पीपल और रसौत इनको समान भाग लेकर शहदकेसाथ खरल करके इनकी बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको बालककी आँखोंमें आँजनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥५९॥

मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भावितो जयेत्।
स्वेदाद्दीपशिखोत्तप्तो नेत्रामयमलक्तकः॥ ६०॥

माताका दूध, कडवा तेल और महावर इनको क्रमसे ७ बार काँजीमें भावना देकर धूपमें सुखा लेवे। फिर दीपककी लोयपर गरम करके उससे नेत्रोंमें स्वेद देनेसे बालकोंका कुकूणनामक नेत्ररोग शमन होताहै॥६०॥

शुण्ठीभृङ्गनिशाकल्कः पुटपाकः ससैन्धवः।
कुकूणकेऽक्षिरोगेषु तद्रसाश्च्योतनं हितम्॥ ६१॥

सोंठ, भाँगरा और हल्दी इनको एकत्र पुटपाककर भस्म करलेवे। फिर उस भस्मके जलमें सैंधानमक डालकर उस रसको कुकूणक नामक नेत्ररोगमें नेत्रोंके भीतर टपकाना हितकर है॥६१॥

कृमिघ्नालशिला दार्वी लाक्षा काञ्चनगैरिकः।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च॥ ६२॥

वायविडङ्ग, हरिताल, मैनसिल, दारुहल्दी, लाख और लालगेरू इनको समानांश ले बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको शहदमें मिलाकर सलाईसे आँखोंमें आँजे तो बालकोंके कुकूणक और पोथकीमें शीघ्र लाभ होताहै॥६२॥

सुदर्शनामूलचूर्णाञ्जनं स्यात्तु कुकूणके॥

कुकूणकरोगमें सुदर्शनवृक्षकी जडका चूर्ण आँजनेसे आराम होताहै॥

गृहधूमनिशाकुष्ठवाजिकेन्द्रयवैः शिशोः।
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः॥ ६३॥

घरका धुआँ, हल्दी, कूठ, असगन्ध और इन्द्रजौ इनको समान भाग ले सबको मट्ठेके साथ एकत्र पीसकर लेप करनेसे बालकके सिध्म, खुजली और विचर्चिकादि विकार बहुत जल्द नष्ट होते हैं॥६३॥

सारिवादि।

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च।
संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा॥ ६४॥

अनन्तमूल, तिल, लोध और मुलहठी इनका काढा बनाकर उससे मुख धोवे तो बालकका मुखस्रावरोग नष्ट होताहै॥६४॥

मुस्तकादि।

मुस्तकातिविषाशुण्ठीबालकेन्द्रयवैः कृतम्।
क्वाथं शिशुः पिबेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम्॥ ६५॥

नागरमोथा, अतीस, सोंठ, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ प्रातःकाल बालकको सेवन करानेसे सर्वप्रकार अतीसाररोग नाश होता है ॥ ६५ ॥

हरिद्रादि ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषजित् ॥ ६६ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, कटेरी और इन्द्रजौ इनके कल्कद्वारा क्वाथ बनाकर बालककी माता अथवा धायको पान करानेसे ज्वर, अतीसार और स्तन्यदोष दूर होता है ॥ ६६ ॥

भद्रमुस्तादि ।

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः ।
क्वाथः कोष्णः शिशोरेष निश्शेषज्वरनाशनः ॥ ६७ ॥

भद्रमोथा, हरड, नीमकी छाल, पटोलपात और मुलहठी इन औषधियोंका मन्दोष्ण क्वाथ बालकको सेवन करावे तो यह समग्रज्वरको नष्ट करता है ॥६७॥

समङ्गादि ।

समङ्गाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम् ।
दुर्द्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ६८ ॥

वराहक्रान्ता, धायके फूल, लोध और अनन्तमूल इनके द्वारा बनाया हुआ क्वाथ शहदके साथ मिलाकर दुर्द्धर अतीसारमें बालकको देना चाहिये ॥ ६८ ॥

नागरादि ।

नागरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैः कृतम् ।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ ६९ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर सुहाता २ प्रातःसमय बालकको पान करावे तो सर्वप्रकारके दस्त बन्द होते हैं ॥६९॥

बिल्वादि ।

बिल्वचूतकषायेण लाजांश्चैव सशर्करान् ।
आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ७० ॥

बेलगिरी और आमकी छाल इनके काढेमें खीलोंका चूर्ण और खांड डालकर सबको एकमएक करके बालकको सेवन करानेसे कै, दस्त दूर होते हैं ॥ ७० ॥

पटोलादि ।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राक्वथितं पिबेत् ।
क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशुः ॥७१॥

क्षत, वीसर्प, विस्फोट और ज्वरादिरोगोंको शान्त करनेके लिये बालकको परवल, त्रिफला, नीमकी छाल, और हल्दी इनका क्वाथ पान कराना हितकारी है ॥

पञ्चमूलादि ।

पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम् ।
सशृङ्गवेरं सगुडं पीतं हिक्कार्दितः पिबेत् ॥ ७२ ॥

बेल, शोनापाठा, कुम्भेर, पाढर, अरणी इनकी छालोंको समान भागसे मिश्रित दो तोले, जल ३२ तोले और दूध १६ तोले लेकर सबको एकत्र कर पकावे । जब दूधमात्र अवशिष्ट रहे तब उसको उतारकर उसमें घी, अदरखका रस और गुड डालकर पान करानेसे बालकको हिचकी आना दूर होती ह ॥ ७२ ॥

बिल्वादि ।

बिल्वशक्राम्बुमोचादसिद्धमाजं पयः शिशोः ।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्त्रिरात्रतः ॥ ७३ ॥

बेलगिरी, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, मोचरस और नागरमोथा इन औषधियोंके क्वाथद्वारा बकरीके दूधको सिद्ध कर पान करानेसे बालककी आम और रक्तसहित संग्रहणी तीन दिनमें ही नष्ट होती है ॥ ७३ ॥

शृङ्ग्यादि ।

शृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् । कालज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम् ॥ ७४ ॥

काकडासिङ्गी, नागरमोथा और अतीस इनको चूर्णकरके शहदमें मिलाकर अथवा केवल अतीसके चूर्णको ही शहदमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे बच्चोंकी खाँसी, ज्वर और वमनादि रोगोंकी निवृत्ति होती है ॥ ७४ ॥

रजन्यादि ।

रजनी दारु सरलं श्रेयसी बृहतीद्वयम् ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥७५ ॥

ग्रहणीं दीपनं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम् ।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित् ॥ ७६ ॥

हल्दी, देवदारु, धूपसरल, गजपीपल, कटेरी, बडीकटेरी, पृश्निपर्णी और सोंया इनके चूर्णको बराबर भाग ले घी और शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंके संग्रहणी, मन्दाग्नि, वातरोग, कामला, ज्वर अतीसार, पाण्डु एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ७२ ॥ ७६ ॥

कर्कटादि ।

कर्कटातिविषा शुण्ठी धातकी बिल्वबालकम् ।
मुस्तं मज्जा च कोलस्य मधुना सह मेलयेत् ॥ ७७ ॥
हन्ति ज्वरमतीसारं दुर्वारं ग्रहणीगदम् ।
छर्दिं रक्तस्रुतिं कासं श्वासं पश्चाद्रुजं तथा ॥ ७८ ॥

काकडासिंगी, अतीस, सोंठ, धायके फूल, बेलगिरी, सुगन्धवाला, नागरमोथा और बेरकी गुठलीकी गिरी इन औषधियोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करानेसे बालकोंकी ज्वर, दस्त, दुस्तर, संग्रहणी, वमन, रक्तस्राव, खाँसी, श्वास और पश्चाद्रोग प्रभृति व्याधियाँ, शमन होती हैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

बालचतुर्भद्रिका ।

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकासवमीहरम् ॥ ७९ ॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडासिंगी इन सबके बारीक चूर्णको शहदके साथ मिश्रित कर चटानेसे बालकके ज्वर, दस्त, श्वास, खाँसी और वमनादि विकार नष्ट होते हैं ॥ ७९ ॥

धातक्यादि ।

धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयवबालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिजित् ॥ ८० ॥

धायके फूल, बेलगिरी, धनियाँ, लोध, इन्द्रजौ और सुगन्धवाला इनको समान भाग ले एकत्र पीसकर शहदके साथ मिलाकर चटानेसे बालकोंके ज्वर, दस्त और वमनरोग दूर होते है ॥ ८० ॥

पुष्करादि ।

पुष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः ।
तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥ ८१ ॥

पोहकरमूल, अतीस, काकडासिंगी, पीपल और धमासा इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटावे तो बालकोंकी पाँचों प्रकारकी खाँसी नष्ट होती हैं ॥ ८१ ॥

बालरोगान्तकरस।

शाणं सूतस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च तत्समम्।
सुवर्णमाक्षिकस्यापि चार्द्धभागं विनिक्षिपेत् ॥ ८२ ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रे दृढे नवे।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पत्रसम्भवम् ॥८३॥
स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च।
सूर्य्यावर्त्तकशालिञ्चभेकपर्णीरसं तथा ॥ ८४ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक चार चार माशे और सोनामाखी दो माशे लेवे। फिर इनकी एकत्र कज्जली बनाकर उसको लोहेके पात्रमें रख कुकुरभाँगरा, भाँगरा, निर्गुण्डी, मकोय, गूमा शाक, हुलहुल, शालिञ्चशाक और मण्डूकपर्णी इनके रसमें यथाक्रम एक एक बार भावना देवे ॥ ८२–८४ ॥

श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ८५ ॥
शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
शुष्कमातपसंयोगाद्वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८६ ॥
प्रमाणं सर्षपस्येव बालानां विनियोजयेत्।
हन्ति त्रिदोषकं चैव ज्वरमामं सुदारुणम् ॥ ८७ ॥
कासं पञ्चविधं चापि सर्वरोगंनिहन्ति च।
शिशूनां रोगनाशाय निर्मितोऽयं महारसः ॥ ८८ ॥

फिर उसमें सफेद अपराजिताकी जडका चूर्ण दो माशे और काली मिरचका चूर्ण दो माशे मिलाकर उसको उत्तम पत्थरके बर्त्तनमें रख लोहेके दण्डेसें अच्छे प्रकार खरल करे। पश्चात् धूपमें सुखाकर सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करानेसे बालकोंके त्रिदोषजनित ज्वर दारुण आम ज्वर, पाँच प्रकारकी खाँसी एवं अन्य सर्व प्रकारकें रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह महारस बालकोंके रोगोंको दूर करनेके लिये रचा गया है ॥ ८५–८८ ॥

कुमारकल्याणरस ।

सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमायः स्वर्णमाक्षिकम् ।
कन्यारसेन संमर्द्य कुर्यान्मुद्गमिता वटीः ॥ ८९ ॥
वटिकां वटिकार्द्धं वा वयोऽवस्थां विवेच्य च ।
क्षीरेण सितया सार्द्धं बालरोगे प्रयोजयेत् ॥ ९० ॥
कुमाराणां ज्वरं श्वासं कसनं च सुदारुणम् ।
ग्रहदोषांश्च विविधान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा ॥ ९१ ॥
कामलामतिसारं च कृशतां मन्दवह्नितास् ।
रसः कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ९२ ॥

रससिन्दूर, मोतीकी भस्म, सुवर्ण, अभ्रक, लोहा और सोनामाखी इन सबकी भस्मको समान भाग ले घीग्वारके रसमें उत्तम प्रकार खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःसमय बालककी अवस्था और रोगका विचारकर एक गोली अथवा आधी गोली दूध और मिश्रीके साथ सेवन करावे तो यह बालकोंके ज्वर, श्वास, दारुण खाँसी, अनेक प्रकारके ग्रहदोष, स्तन्यदोष, कामला, अतीसार, कृशता, मन्दाग्नि और अन्य सब प्रकारके रोगोंको यह कुमारकल्याणरस निश्चय नष्ट करता है ॥ ८९-९२ ॥

अश्वगन्धाघृत ।

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणं पचेत् ।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्णकृत् ॥ ९३ ॥

असगन्धके १ सेर कल्क और दशगुने दूधमें यथाविधि २ सेर घृतको पकावे । इस घृतको पीनेसे बालकोंके अङ्गोंकी पुष्टि होतीहै तथा बल, वर्ण उत्पन्न होता है ॥ ९३ ॥

बालचाङ्गेरीघृत ।

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिश्छागक्षीरं समैः पचेत् ।
कपित्थव्योषसिन्धूत्थसमङ्गोत्पलवालकैः ॥ ९४ ॥
सबिल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारजित् ।
ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति बालानां तु विशेषतः ॥ ९५ ॥

अम्लनोनियाके २ सेर रसमें घी २ सेर, बकरीका दूध २ सेर एवं कैथ, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक, वराहक्रान्ता, लालकमल, सुगन्धवाला, बेलगिरी, धायके

फूल और मोचरस इन सबका समान भाग मिश्रित कल्क एक सेर डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करलेवे। यह घृत सर्वप्रकारके अतीसार और विशेषकर बालकोंकी दुस्तर संग्रहणीको नष्ट करता है॥ ९४॥ ९५॥

अष्टमंगलघृत।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा।
सारिवा सैन्धवं चैव पिप्पलीघृतमष्टकम्॥ ९६॥
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिनेदिने।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधः कुमारो बुद्धिमान् भवेत्॥ ९७॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम्॥ ९८॥

वच, कुठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैंधानमक और पीपल इनका समान भाग मिलाहुआ चूर्ण १ सेर और घी २ सेर लेकर आठ सेर जलमें पकावें जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब यह घृत प्रतिदिन उचित मात्रासे बालकको पान करावे। इसके सेवनसे बालक दृढ स्मृतिवाला, मेधावान् कुशाग्र बुद्धिवाला होताहै। इस अष्टमङ्गलनामक घृतको पीनेवाले बालकोंको पिशाच, राक्षस, भूत और षोडशमातृकायें बाधनेके लिये समर्थ नहीं होती हैं॥ ९६-९८॥

कुमारकल्याणघृत।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह।
द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला॥ ९९॥
शठी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसा स्थिरा।
मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला गजपिप्पली॥ १००॥
एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कषाये कण्टकार्याश्च क्षीरे तस्मिंश्चतुर्गुणे॥ १०१॥

शंखपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला, दाख, चीनी, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खिरैंटी, कचूर, धमासा, बेलगिरी, अनारका बक्कल, तुलसी, शालपर्णी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपल इन प्रत्येकको एकएक कर्ष लेकर चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्ण और एक प्रस्थ घृतको कटेरीके दो प्रस्थ क्काथ और ४ प्रस्थ दूधमें डालकर विधिपूर्वक पकावे॥ ९९-१०१॥

एतत्कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम् ।
बलपुष्टिकरं धन्यं पुष्ट्यग्निबलवर्द्धनम् ॥ १०२ ॥
छायासर्वग्रहालक्ष्मीकृमिदन्तमदापहम् ।
सर्वबालामयं हन्ति दन्तोद्भेदं विशेषतः ॥ १०३ ॥

यह कुमारकल्याण नामक घृतरत्न सुखको देनेवाला, बल और पुष्टिको करनेवाला, अग्निबलको बढानेवाला तथा छाया, समस्त ग्रह, अलक्ष्मी, कृमिरोग, दन्तरोग बालकोंके सब रोग और विशेषकर दन्तोद्भेदरोगको नष्ट करनेवाला है ॥१०२॥॥१०३॥

लाक्षादितैल ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुगैः ॥ १०४ ॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।
बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत् ॥ १०५ ॥

लाखका रस १ प्रस्थ, तिलका तेल १ प्रस्थ और दहीका तोड ४ प्रस्थ एवं रायसन, लालचन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगन्ध, हल्दी, दारुहल्दी, सोया, देवदारु, मुलहठी, मूर्वा, कुटकी और रेणुका इनका कल्क समान भाग मिलित एक सेर लेवे । सबको यथाविधि एकत्र करके उत्तम प्रकार तेलको पकावे । यह तेल बालकोंके शरीरपर मालिश करनेसे जीर्णज्वर और राक्षसादिकी बाधा नष्ट होती हैं तथा बल और वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां बालरोगचिकित्सा ॥

विषकी चिकित्सा ।

स्थावरेण विषेणार्त्तं नरं यत्नेन वामयेत् ।
वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ १ ॥

स्थावरविषसे पीडित मनुष्यको प्रथम यत्नपूर्वक वमन करावे । क्योंकि वमन करानेके समान विषनाशक अन्य औषधि नहीं है ॥१॥

विषमत्यन्तमुष्णञ्च तीक्ष्णं च कथितं यतः ।
अतः सर्वविषे युक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ २ ॥

औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत् ।
वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च ॥ ३ ॥

विष स्वभावतः अत्यन्त उष्ण अत्यन्त तीक्ष्णवीर्य होता है इस कारण सर्वप्रकारके विषोंमें शीतलक्रिया करे । विष अत्यन्त उष्ण होनेसे पित्तको कुपित करदेता है इसलिये वमन करानेके पीछे रोगीको शीतल जलसे सेचनकरे ॥ ३ ॥

पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम् ।
भोक्तुमम्लरसं दद्यात्सितया च समन्वितम् ॥ ४ ॥

घृत तथा शहदके साथ विषनाशक औषधि शीघ्र प्रयोग करे अथवा मिश्रीके साथ खटाई मिलाकर भक्षण करानी चाहिये ॥ ४ ॥

सर्वैरेवोदितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः ।
दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले ॥ ५ ॥
न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ।
दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ॥ ६ ॥

यदि किसी मनुष्यके हाथ अथवा पाँवमें साँप काटखाय तो तत्क्षण काटेहुए स्थानसे ४ अंगुल ऊपर उसके रस्सीसे अथवा डोरेसे खूब कसकर बन्धन बाँधदेवे । इससे विष सब शरीरमें नहीं फैल सकेगा । जिस दंशस्थानमें बन्ध न बँध सकता हो उस स्थानको अस्त्रसे चीरकर दागदेवे ॥ ५ ॥ ६ ॥

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवं
निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः ।
दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलयन्
स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ॥ ७ ॥

आषाढके महीनेमें पुष्यनक्षत्र और शुभदिनमें सिरसकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर जो पुरुष पीता है उसको कहीं भी सर्पका भय नहीं रहता । यदि क्रोधके कारण सर्प उस पुरुषको काट भी लेता है तो वह सर्प मोहको प्राप्त होकर गिरपडता है और वह उसी स्थानमें बहुत जल्द यमराजके मुँहका ग्रास होता है ॥ ७ ॥

मसूरनिम्बपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवौ ।
अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषात्तस्य न संशयः ॥ ८ ॥

जो पुरुष वैशाखके महीनेमें मेषकी संक्रान्तिके दिन मसूरकी दालके दो दाने और नीमके दो पत्तोंको एकत्र पीसकर भक्षण करे तो उसको एक वर्ष पर्यन्त सर्पके विषसे भय नहीं रहता ॥ ८

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे ।
अपहरति खलु विषधरोपद्रवमावत्सरं पुंसाम् ॥ ९ ॥

पुष्यनक्षत्रमें सफेद पुनर्नवेकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर सेवन करनेसे मनुष्योंको एकवर्षतक सर्पका भय कदापि नहीं होता ॥ ९ ॥

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम् ।
अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृताप्लुतम् ॥ १० ॥

घरका धुआँ, हल्दी, दारुहल्दी और चौलाईकी जड इनको समान भाग ले एकत्र पीसकर दही और घीमें मिलाकर पीवे तो वासुकिसर्पद्वारा काटाहुआ भी पुरुष आरोग्य होता है ॥ १० ॥

कुलिकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ ११ ॥

कोकिलावृक्षकी जडको पीसकर सूंघनेसे साँपका काटाहुआ मृतप्राय पुरुष भी जीजाता है ॥ ११ ॥

शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं मरिचं सितम् ।
सप्ताहं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम् ॥ १२ ॥

सफेद मिरचको सिरसके फूलोंके रसमें ७ दिनतक भावना देकर पीसलेवे । फिर यह चूर्ण साँपसे काटे हुए मनुष्योंको पान, नस्य और अभ्यंजनादिरूपसे सेवन कराना हितकारी है ॥ १२ ॥

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रचतुःपलम् ।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥ १३ ॥

तगर और कूठ इन दोनोंको आठ आठ तोले लेकर खूब बारीक पीसले । फिर यह चूर्ण चार चार पल प्रमाण घी और शहदमें मिलाकर पान करे तो तक्षकसे काटे हुए पुरुषोंको भी सुख प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

वन्यकर्कोटजं मूलं छागमूत्रेण भावितम् ।
नस्यं काञ्जिकसंयुक्तं विषोपहतचेतसः ॥ १४ ॥

वनककोडेकी जडको बकरीके मूत्रमें भिजोकर और काँजीमें पीसकर साँपसे काटे हुए मनुष्यको नस्य देवे, इससे विष दूर होता है ॥ १४ ॥

पीते विषे स्याद्वमनं च त्वक्स्थे प्रदेहसेकादि सुशीतलं च ॥

जिस मनुष्यने विष पान किया हो उसको तत्काल वमन करानी चाहिये और जो त्वचामें विष स्थित हो तो उसके शरीरपर शीतल द्रव्योंका लेप और सेवन करना चाहिये ॥ १५ ॥

अगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनम् ॥ १६ ॥

घरका धुआँ, मञ्जीठ, हल्दी और सेंधानमक इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे चुहेका विष और कर्णिकानामक कीडेके अंकुर दूर होते हैं ॥ १६ ॥

सोमवल्कोऽश्वगन्धा च गोजिह्वा हंसपाद्यपि।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥ १७ ॥

सफेद खेर, असगन्ध, गोजिया (गाजुवाँ), लाल लज्जालु, हल्दी, दारुहल्दी और गेरू इनको समान भाग ले जलमें पीसकर लेप करनेसे नाखूनका और दाँतोंसे काटेका विष दूर होता है ॥ १७ ॥

यः कासमर्द्दनेत्रं वदने निक्षिप्य कर्णफूत्कारम्।
मनुजो ददाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः ॥ १८ ॥

जो पुरुष कसौंदीके वृक्षकी नलकालीसे रोगीके कानमें फूंक मारे तो बिच्छूका विष तत्काल उतरता है ॥ १८ ॥

उष्णं गव्यं घृतं चापि सैन्धवेन समन्वितम्।
वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपनात्पर्वतात्मजे ॥ १९ ॥

शिवजी कहते हैं कि, हे पार्वती ! गरम २ गौके घीको सेंधेनमकके साथ मिलाकर लेप करनेसे बिच्छूका विष शीघ्र नष्ट होता है ॥ १९ ॥

शिरीषस्य तु बीजं वै स्नुहीक्षीरेण घर्षितम्।
तल्लेपेन महादेवि नश्येत्कुक्कुरजं विषम् ॥ २० ॥

हे महेश्वरि ! सिरसके बीजोंको थूहरके दूधमें पीसकर वा घिसकर लेप करनेसे कुत्तेका विष निश्चय नाश होता है ॥ २० ॥

पिष्टतण्डुलमध्यस्थं भक्षितं मेषलोमकम्।
कुक्कुरस्य विषं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥

चावलोंको पीसकर उनमें भेंडका रुआँ भरकर भक्षण करनेसे कुत्तेका विष नष्ट होता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ।
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २२ ॥

वच, हींग, वायविडङ्ग, सैंधानमक, गजपीपल, पाढ, अतीस, सोंठ, मिरच और पीपल इन औषधियोंके समान भाग मिश्रित बारीक चूर्णको सेवन करनेसे सर्व प्रकार कीडोंके विष दूर होते हैं । इस चूर्णको कश्यप ऋषिने बनायाहै ॥२२॥

कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥ २३ ॥

कीडे आदिकोंकी विषनाशक चिकित्साके समान ही जलचर जीवोंके विषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अपराजितामूलं च घृतेन त्वग्गतं विषम् ।
पयसाऽसृग्गतं हन्ति मांसगं कुष्ठचूर्णतः ॥ २४ ॥
अस्थिगं रजनीयुक्तं मेदोगं काकोलीयुतम् ।
मज्जागं पिप्पलीयुक्तं चण्डालीकन्दसंयुतम् ॥
शुक्रगं हन्ति लौहित्यं तस्माद्याऽपराजिता ॥ २५ ॥

अपराजिता (कोयल) की जडको घीके साथ सेवन करनेसे त्वचामें स्थित विष, दूधके साथ खानेसे रक्तगत विष, कूठके चूर्णके साथ खानेसे मांसगत विष, हल्दीके चूर्णके साथ सेवन करनेसे अस्थिगत विष, काकोलीके साथ सेवन करनेसे मेदोगत विष, पीपलके साथ खानेसे मज्जागत विष और चण्डालकन्दके साथ सेवन करनेसे शुक्रगतविष नष्ट होता है । इस कारण सर्वप्रकारके विषोंमें अपराजिताकी मूलको सेवन करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

द्वे हरिद्रे शिला तालं कुङ्कुमं मुस्तकं जलैः ।
गुडिका लेपमात्रेण विषं हन्ति महाद्भुतम् ॥ २६ ॥

दोनों हल्दी, मैनसिल, हरिताल, केशर और नागरमोथा इनको जलमें पीस कर गोली बनालेवे । उस गोलीको जलमें घिसकर लगानेसे महाभयानक विष सहजमें ही नाश होता है ॥ २६ ॥

घृतमधुनवनीतं पिप्पलीशृङ्गवेरं मरिचमपि तु दद्यात्
सप्तमं सैन्धवेन । यदि भवति सरोषैस्तक्षकैर्वापि
दष्टोऽगदमिह खलु पीत्वा निर्विषं तत्क्षणेन ॥ २७ ॥

घी, शहद, नैनीघी, पीपल, सोंठ, मिरच और सेंधानमक इनको एकत्र पीसकर सेवनकरनेसे क्रोधयुक्त तक्षकसे कटाहुआ पुरुष भी तत्क्षण विषरहित होताहै २७

नक्तमालफलं व्योषं बिल्वमूलं निशाद्वयम् ।
सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥ २८ ॥

करञ्जके फल, त्रिकुटा, बेलकी जड, हल्दी, दारुहल्दी और तुलसीकी मञ्जरी इन सबको एकत्र बकरीके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आँजे तो सर्पके डसनेसे बेहोश हुआ पुरुष शीघ्र चैतन्यलाभ करता है ॥ २८ ॥

जलेन लाङ्गलीकन्दं नस्यं सर्पविषापहम् ।
वारिणा टङ्कणं पीतमथवाऽर्कस्य मूलकम् ॥ २९ ॥

कलिहारीकी जडको जलमें पीसकर सूँघनेसे या सुहागेको अथवा आककी जडको जलमें पीसकर पीनेसे सर्पविष दूर होता है ॥२९॥

कपोतमांसं ससिताक्षौद्रं कण्ठगते विषे ।
लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतम् ॥ ३० ॥

कबूतरके मांसके चूर्णको मिश्री और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे कण्ठ-गत विष दूर होता है और तगरके चूर्णको १ पल प्रमाण ले मिश्री तथा शहदके साथ भक्षण करनेसे आमाशयगतविष नष्ट होता है ॥ ३० ॥

विषे पक्वाशयगते पिप्पलीरजनीद्वयम् ।
मञ्जिष्ठां च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नरः पिबेत् ॥ ३१ ॥

पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ और गोरोचन ये प्रत्येक औषधियें समान भाग लेकर जलमें पीसकर सेवन करनेसे पक्वाशयगत विषको दूर करती है॥३१

रजनीसैन्धवक्षौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम् ।
पानं मूलविषार्त्तस्य दिग्धविद्धस्य चेष्यते ॥ ३२ ॥

हल्दी, सेंधानमक, शहद और उत्तम गोघृत इनको समान भाग ले एकत्र कर यथाविधिसे मर्दनकर मूलविषसे पीडित अथवा दिग्धविद्ध (विषलिप्त बाणादिसे हत) मनुष्यको पान कराना चाहिये ॥३२॥

सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा ।
लेहं प्रशमयत्युग्रं सर्वसंयोगजं विषम् ॥ ३३ ॥

शुद्ध ताँबेकी भस्म और स्वर्णभस्मको बराबर भाग ले मिश्री और शहदमें मिला-कर चाटनेसे सर्वप्रकारका उग्रविष शमन होताहै ॥३३॥

अङ्कोटमूलनिःक्काथं फाणितं सघृतं लिहेत् ।
तैलाक्तः स्विन्नसर्वाङ्गो गरदोषविषापहम् ॥ ३४ ॥

अङ्कोलकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें राब और घृत डालकर पान करे और अपने सब शरीरमें तेलकी मालिश करे तो गरदोष विष नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

कटभ्यर्ज्जुनशैरेयशेलुक्षीरिद्रुमत्वचः ।
चूर्णं कल्कः कषायो वा कीटलूताव्रणापहा ॥ ३५ ॥

मालकाङ्गनी, अर्जुनकी छाल, पीलापियाबाँसा, वड और गूलरकी छाल इनके चूर्ण कल्क अथवा क्वाथको सेवन करनेसे कीडे और मकडी आदिका विष दूर होता है ॥ ३५ ॥

दंशे भ्रामणविधिना वृश्चिकविषहृत्कुठेरपादगुटिका ।
पुरधूमपूर्वमर्कच्छदमिव पिष्ट्वा कृतो लेपः ॥ ३६ ॥

काली तुलसीकी जडको जलमें पीसकर गोली बनावे । उस गोलीको जलमें घिसकर बिच्छूसे काटे हुए स्थानपर लेप करे अथवा पहले दंशस्थानपर गूगलकी धूप देकर पश्चात आकके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे बिच्छूका विष जाय ॥ ३६ ॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ।
सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां स्याल्लेपो वेदनापहः ॥ ३७ ॥

जीरेको पीसकर घृत और सैंधानमकमें मिलाकर बिच्छके काटेहुए स्थानपर गरम करके लेप करनेसे उसकी पीडा कम होती है ॥ ३७ ॥

कुङ्कुमकुनटीकर्कटपलहरितालैः कुसुम्भसम्मिलितैः ।
कृतगुडिका भ्रामणतो वृश्चिकगोधासरटादिविषजित् ॥ ३८

केशर, मैनसिल, केंकडेका मांस, हरिताल और कसूमके फूल इन सबको एकत्र मर्दन कर गोली बनालेवे । फिर उक्त गोलीको जलमें घिसकर दंशस्थान पर लगानेसे बिच्छू, गोह और गिरगटादि जीवोंका विष नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

लेप इव भेकगरलं शिरीषबीजैः स्नुहीपयःसिक्तैः ।
प्रणुदन्ति त्र्यहमशिता अङ्कोटजटाः कुष्ठसम्मिलिताः ॥ ३९

सिरसके बीजोंको पीसकर उनको थूहरके दूधमें भिजोकर लेप करनेसे अथवा अङ्कोलकी जड, बालछड और कूठ इनके क्वाथ या कल्कको तीन दिनतक भक्षण करनेसे मेंडकका विष दूर होता है ॥ ३९ ॥

मरिचमहौषधबालकनागाह्वैर्मक्षिकाविषे लेपः ॥

मिरच, सोंठ, सुगन्धवाला और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे मक्खिका विष नष्ट होता है ॥

लालाविषमपनयतो मूले मिलिते पटोलनीलिकयोः ॥४०॥

परवलकी जड और नीलवृक्षकी जड इन दोनोंको एकत्र पीसकर लेप करे तो लालाविष नाश होता है ॥ ४० ॥

शुष्मणः कर्णगूथस्य वामानामिकया कृतः।
लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रासेचनं ततः ॥ ४१ ॥

बायें हाथकी अनामिका अंगुलिसे मुँहके थूकको अथवा कानके मैलको निकालकर दंशस्थानपर लगानेसे अथवा उस स्थानपर मनुष्यके मूत्रको सेचन करनेसे सर्पादि सर्वप्रकारके जन्तुओंका उग्र विष शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विषचिकित्सा ॥

अथरसायनाधिकारः।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।
पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ॥ १ ॥

जो औषध जरा (बुढापा) और रोगको नष्ट करनेवाली हैं उनको रसायन कहते हैं। युवावस्थाके प्रारम्भमें अथवा मध्यमें वमन और विरेचनादिसे शरीरको अच्छेप्रकार शुद्ध कर रासायनिक औषधि सेवन करे ॥ १ ॥

नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः।
न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥ २ ॥

यदि शरीरको विना शुद्धकिये ही रसायन औषधि सेवन की जाती है तो वह इस प्रकार गुण नहीं करती जिस प्रकार मलिन वस्त्रमें रंग देनेसे उसपर अच्छेप्रकार रँग नहीं चढता है ॥ २ ॥

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ॥ ३ ॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात्।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ ४ ॥

रसायनको सेवन करनेसे दीर्घायु, स्मृतिशक्ति, मेधा, आरोग्यता, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण, स्वरकी सुन्दरता, उदारता, शरीर और इन्द्रियोंमें बल, वाक्पटुता, वृष्यता और कान्तिलाभ होता है। देहमें स्थित रस और रक्तादि उत्तम पदार्थोंकी जिस उपायके करनेसे प्राप्ति हो उसको ही रसायन कहते हैं ॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम् ।
क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः समाशतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥५॥

केवल दूधको ही पान करते हुए जो पुरुष प्रतिदिन नियमसे एक मास पर्यन्त भागरेके रसको पान करते हैं वे बल, वर्ण और दीर्घायुसे युक्त होकर सौवर्षतक जीते हैं ॥ ५ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ॥६॥ आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥ ७ ॥

मण्डूकपर्णीके स्वरस अथवा मुलहठीके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे या जड और पुष्पसहित गिलोयके रस वा शंखपुष्पीके कल्कको उक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे आयुकी वृद्धि होती है, सब रोग नष्ट होते हैं तथा बल, वर्ण, जठराग्नि और स्वरकी वृद्धि होती है। ये सब रसायन औषधें मेधाजनक हैं तो भी शंखपुष्पीसे विशेषकर मेधावृद्धि होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

पीताऽश्वगन्धा पयसाऽर्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाऽम्बुवृष्टिः॥

असगन्धके चूर्णको दूध, घी, तिलतेल अथवा उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे कृश मनुष्यके शरीरकी इस भाँति पुष्टि होती है जैसे वर्षाके जलसे धान्यके नवीन अंकुर पुष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

धात्रीतिलान्भृङ्गरजोविमिश्रान् ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण ।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयुः ॥

जो मनुष्य आमलों और तिलोंके चूर्णको भाँगरेके रसमें मिलाकर यथानियम भक्षण करें तो वे पुरुष कृष्णवर्णके केशोंवाले और निर्मल इन्द्रियवाले नीरोग होकर सौ वर्षपर्यन्त जीते हैं ॥ ९ ॥

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शतावर्या रसेनैव सप्तवारांश्च भावयेत् ॥ १० ॥
अक्षमात्रं तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह योजयेत्।
मासमात्रोपयोगेन मतिमान् जायते नरः ॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितवर्जितः ॥ ११ ॥

विधारेकी जडको कूटपीस बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उसको शतावरके रसमें सातबार भावना देकर प्रतिदिन एकएक तोलेकी मात्रासे घीमें मिलाकर सेवन करे। इसको एक महीने यथाविधि सेवन करनेसे मनुष्य अत्यन्त बुद्धिमान्, मेधावान्, स्मृतिमान् होता है और वली तथा पलितरोगका नाश होता है॥

हस्तिकर्णरजः खादेत्प्रातरुत्थाय सर्पिषा।
यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ १२ ॥
मेधावी बलवान् कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ।
मधुना त्वश्ववेगः स्याद्बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः ॥
मन्त्रश्चासौ प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभिमन्त्रणे ॥ १३ ॥

मंत्रो यथा—"ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष
मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा ॥"

हस्तिकर्ण (पलास) की जडके चूर्णको उपर्युक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके घृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल भक्षण करे और यथेच्छ आहार विहार करे तो वह पुरुष हजारवर्षकी आयुवाला, मेधावाला, बलवान् कामी, सैंकडों स्त्रियोंसे रमण करनेवाला होता है और उक्त चूर्णको शहदके साथ खानेसे घोडेके समान अत्यन्त बलवान् और हजार स्त्रियोंमें गमन करनेवाला होता है॥

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कृष्णया लवणेन वा।
द्वे द्वे खादन्सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १४ ॥

दो हरडों और दो पीपलोंको सोंठके चूर्ण, सैंधेनमक, गुड और शहदके साथ नियमितरूपसे प्रतिदिन सेवन करे तो वह मनुष्य सुखपूर्वक सौ वर्षतक जीता है॥ १४ ॥

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

पाँच, आठ, सात अथवा दस पीपलोंको घृत और शहदके साथ मिलाकर एक वर्षपर्यन्त सेवन करनेसे रसायन औषधिके समान गुण होता है ॥ १५ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे तथाऽग्रे भोजनस्य च ।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥ १६ ॥
प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा ।
जेतुं कासं क्षयं शोषं श्वासं हिक्कां गलामयम् ॥ १७ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुतां विषमज्वरम् ।
वैस्वर्यं पीनसं शोथं गुल्मं वातबलासकम् ॥ १८ ॥

रसायनके गुणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य छः पीपलोंको ढाकके क्षारजलमें ७ दिनतक भावना देकर धूपमें सुखालेवे। फिर उनको घीमें भूनकर शहदमें मिलाकर तीन पीपलें प्रातःकाल और तीन दोपहरको भोजन करनेसे पहले भक्षण करे। इससे खाँसी, क्षय, शोष, श्वास, हिचकी, गलेके रोग, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डु, विषमज्वर, विरसता, पीनस, सूजन, गुल्म, वातज और बलासका रोग नष्ट होते हैं ॥ १६–१८ ॥

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी वचाभयाशुण्ठिशतावरी समा। घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ १९ ॥

गिलोय, चिरचिटा, वायविडङ्ग, शंखपुष्पी, वच, हरड, सोंठ और शतावर इनके चूर्णको समान भाग लेकर घृतमें मिलाकर तीन दिनतक चाटनेसे ही यह चूर्ण हजारों श्लोकोंकी धारणा करनेवाली मनुष्यकी स्मरणशक्तिको बढाता है ॥

व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासहरम् ।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजनकं च ॥ २० ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल बासी शीतल जलका नस्य लेनेसे व्यङ्गरोग, झुरीं पडना, असमय बालोंका पकना, पीनस, स्वरभङ्ग और खाँसी आदि विकार नष्ट होते हैं और दृष्टिशक्ति बढती है ॥ २० ॥

अम्भसः प्रसृतान्यष्टौ रवावनुदिते पिबन् ।
वातपित्तगदान् हत्वा जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ २१ ॥

प्रातःकाल ८ प्रसृत प्रमाण बासी शीतल जलको पीनेसे वात-पित्तसम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं और वह मनुष्य सौवर्षतक जीवित रहता है ॥ २१ ॥

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसमपि शतं क्षौद्रसर्पिः समांशं
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतयुतमिदं स्थापितं भस्मराशौ।
वर्षान्ते तत्समश्नन्भवति विपलितो रूपवर्णप्रतापै-
र्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबलस्थैर्यसत्त्वैरुपेतः ॥ २२ ॥

आमलोंके चूर्णको एक आढक परिमाण लेकर एक हजार आमलोंके स्वरसमें २१ बार भावना देवे। फिर उसमें घी १ आढक, शहद १ आढक, पीपलका चूर्ण १ सेर और मिश्री २ सेर डालकर सबको एकमएक कर मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर वर्षाऋतुमें राखके ढेरमें गाड देवे। फिर शरदृऋतुमें उसको निकालकर सेवन करे। इसके सेवनसे नानाप्रकारकी व्याधियें नष्ट होकर मनुष्य रूप रङ्ग और प्रतापसे युक्त हो अत्यन्त बुद्धिमान्, मेधावान्, स्मृतिमान्, वाक्सिद्ध, बलवान् और स्थिर-वीर्यवाला होता है ॥ २२ ॥

ऋतुहरीतकी।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥ २३ ॥

हरडको वर्षाऋतुमें सैंधेनमक, शरदऋतुमें चीनी, हेमन्तऋतुमें सोंठके चूर्ण, शिशिरऋतुमें पीपलके चूर्ण, वसन्तऋतुमें शहद और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ छहों ऋतुओंमें यथाविहित अनुपानोंके साथ सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल पान करे तो इससे जरा और सर्वव्याधि नष्ट होजाती हैं। यह अत्युत्तम रसायन है ॥ २३ ॥

भृङ्गराजादिचूर्ण।

श्लक्ष्णीकृतं भृङ्गराजस्य चूर्णं तिलार्द्धकं चामलकार्द्धकं च।
सशर्करं भक्षयतो गुडैर्वा न तस्य रोगा न जरा न मृत्युः॥२४

अन्धः पश्येद्भ्रमनरहितो मत्तमातङ्गगामी
मूको वाग्ग्मी श्रवणरहितो दूरशब्दानुसारी।
नीरुङ्ग मर्त्यो भवति पलिती नीलजीमूतकेशो
जीर्णा दन्ताः पुनरपि नवाः क्षीरगौरा भवन्ति ॥ २५ ॥

जो भाँगरेका बारीक पिसा चूर्ण एक तोला, तिल छः माशे आमलोंका चूर्ण ६ माशे इनको एकत्र करके चीनीके अथवा गुडके साथ मिलाकर भक्षण करे तो उसके कोई रोग नहीं होता और न वृद्धावस्था आती है। वह पुरुष

सदा अमर रहता है । इस रसायनको सेवन करनेसे अन्धा आदमी देखने लगता है, लँगडा आदमी उन्मत्त हाथीकी समान चलने लगता है, गूंगा बोलने लगता है, बहरा दूरके शब्दको सुनने लगता है, पलितरोग नष्ट होता है । मनुष्य नीरोग होकर बादलके समान नीलकेशोंवाला होता है । एवं जीर्ण शीर्ण दाँत फिर नवीन होकर दूधके समान श्वेत होते हैं ॥ २५ ॥ २५ ॥

अमृतवर्तिका ।

त्रिफलात्रिकटुब्राह्मीगुडूचीरक्तचित्रकम् ।
नागकेशरचूर्णं च शृङ्गवेरं समार्कवम् ॥ २६ ॥
सिन्धुवारो हरिद्रे द्वे शक्राशनगुडत्वचौ ।
एला मधुकपर्णी च विडङ्गं चोग्रगन्धिका ॥ २७ ॥
चूर्णं प्रत्येकमेतेषां समादाय पलद्वयम् ।
कामरूपसमुद्भूतैर्गुडैः पञ्चाशता पलैः ॥
सषष्टिस्त्रिशती कार्या वर्त्तिस्तेन समानतः ॥ २८ ॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गिलोय, लालचीता, नागकेशरका चूर्ण, अदरख, भाँगरा, निर्गुण्डीकी जड, हल्दी, दारुहल्दी, भाँग, दारचीनी, छोटी इलायची, कम्भारी, वायविडङ्ग और वच इन प्रत्येक औषधियोंके आठ आठ तोले चूर्णको लेकर २०० तोले सफेद गुडमें मिलाकर खरल करे, फिर समान भाग मिलित उसकी ३६० बत्तियें बनालेवे ॥ २६–२८ ॥

चन्द्रताराविशुद्धौ च पूजयित्वेष्टदेवताम् ।
सुकृती प्रज्ञया प्रीतो वर्त्तिमेकां तु भक्षयेत् ॥ २९ ॥
ततोऽनुपानं पानीयं सलिलं च सुशीतलम् ।
कट्वम्ललवणं चैव नातिमात्रां कदाचन ॥ ३० ॥
यः प्रत्यहमिदं खादेत्कर्षमानं निरन्तरम् ।
भोजनादौ प्रदोषे वा शृणु यादृक् फलं भवेत् ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर जिस दिन चन्द्रमा और नक्षत्र शुभ हो उस दिन प्रातःकाल अपने इष्टदेवको पूजकर पुण्यकर्मा मनुष्य एक बत्ती भक्षण करे और ऊपरसे शीतल जल पान करे । इस औषधिको सेवन करते समय अत्यन्त चरपरे, खट्टे और नमकीन पदार्थ कदापि सेवन न करे । जो पुरुष प्रतिदिन नियमसे इस औषधिको एक

कर्ष परिमाण भोजनके पहले अथवा सायंकालमें खाता है तो उसको जो फल प्राप्त होता है वह सुनो ॥ २९-३१ ॥

नष्टवह्निस्तु दीप्ताग्निर्वडवानलसन्निभः ।
इष्टापि भास्वती कान्तिश्चन्द्रिकेव निशामुखे ॥ ३२ ॥
काशपुष्परुचः केशाः शिखिकण्ठमनोरमाः ।
पटलावहतं चक्षुर्लक्षयोजनदर्शनम् ॥ ३३ ॥
जराविश्लथदेहोऽपि लेपनिर्माणशाद्वलः ।
निर्व्याधिर्निर्जरः पङ्गुर्वेगेनोच्चैःश्रवा इव ॥ ३४ ॥

नष्ट हुई अग्नि पुनर्वार दीपन होकर वडवानलकी समान होजाती है और चन्द्रमाकी चाँदनीकी समान कान्ति होती है, बाल काँसके फूलोंके समान (हैं सो) सुन्दर और मोरके कण्ठकी समान मनोहर होते हैं । एवं पटलरोगसे नष्ट नेत्रोंवाला मनुष्य इसको सेवन करनेसे ४ लाख कोसतककी वस्तुको देख सकता है । इसका शरीरपर लेप करनेसे बुढापेसे शिथिल देहवाला पुरुष भी हरित-तृणकी समान कांतिमान् हो जाता है और समस्त व्याधियोंसे रहित होकर तरुण होजाता है, लँगडा मनुष्य आरोग्य होकर उच्चैःश्रवा घोडेके समान वेगवान् होता है ॥ ३२-३४ ॥

दिनेश इव तेजस्वी कन्दर्प इव रूपवान् ।
सहस्रायुर्महासत्त्वो गन्धर्व इव गायनः ॥ ३५ ॥
स्त्रीशतं रमते नित्यं नावसादं व्रजत्यसौ ।
न भजन्त्यापदः काश्चित्कामरूपी भवेदसौ ॥ ३६ ॥
पद्मगन्धि वपुस्तस्य पुष्पस्येव सुकोमलम् ।
जराचर्यैः सुजीर्णस्य नखकेशादयो यथा ॥ ३७ ॥
प्रभवन्ति बलादुग्रादथ कन्दा इवाम्बुदात् ।
हृष्टः पुष्टश्च पापघ्नः शान्तो भवति मानवः ॥ ३८ ॥

इससे सूर्यके समान तेजस्वी, कामदेवके समान रूपवाला, हजारों वर्षकी आयुवाला, गन्धर्वकी समान गान करनेवाला, प्रतिदिन सैंकडों स्त्रियोंसे रमण करनेपर भी नहीं हारनेवाला, किसी भी आपत्तिको नहीं भोगनेवाला, कामदेवके समान सुन्दर, कमलकेशरकी समान सुगन्धित और फूलके समान कोमल शरीरवाला होता है । बुढापेके कारण सफेद हुए नख और केश इसके उग्र

नतापसे फिर उत्तम होते हैं जैसे बादलोंके जलसे कन्दलियें हरीभरी होजाती हैं। मनुष्य हृष्टपुष्ट अङ्गवाला, पापरहित और शान्त होता है ॥ ३५-३८ ॥

अमृतवर्त्तिका नाम मृत्युञ्जयमुखोदिता ।
रसायनानां श्रेष्ठयं सर्वव्याधिनिषूदनी ॥ ३९ ॥

इस अमृतनामवर्त्तिको शिवजीने कहाहै। यह सम्पूर्ण रसायनोंमें श्रेष्ठ रसायन है और सब रोगोंको नाश करनेवाली है ॥ ३९ ॥

श्रीसिद्धमोदक ।

त्रिकटोस्त्रिपलं चूर्णं त्रिफलायाः पलत्रयम् ।
गुडूच्याश्च विडङ्गानां ग्रन्थिकग्रन्थिपर्णयोः ॥ ४० ॥
रक्तचित्राङ्घ्रिजं चूर्णं ग्राह्यं चापि पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकं द्विपलं चैषां गृह्णीयान्मतिमान्नरः ॥ ४१ ॥
कामरूपोद्भवा ग्राह्या गुडस्यार्द्धतुला तथा ।
सर्वमेकत्र संमर्द्य सषष्टित्रिशतं शुभम् ॥ ४२ ॥
मोदकं कारयेद्धीमान्समभागेन यत्नतः ।
प्रत्यहं प्रातरेवैतत्पानीयेनैव भक्षयेत् ॥ ४३ ॥

त्रिकुटा ३ पल, त्रिफला ३ पल, गिलोय, वायावेडंग, पीपलमूल, गाँडर दूब और लालचीतेकी जड इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल और गुड ५० पल लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर बुद्धिमान् वैद्य यथाविधिसे समान भाग मिश्रित तीनसौ साठ लड्डू बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक लड्डू शीतल जलके साथ भक्षण करे ॥ ४०-४३ ॥

एवं निरन्तरं कार्यं संवत्सरमतन्द्रितः ।
प्रथमे मासि वाग्युक्तो द्वितीये बलवर्णवान् ॥ ४४ ॥
तृतीये नाशयेत्कुष्ठं श्वासकासौ तुरीयके ।
पञ्चमे स्त्रीप्रियत्वं च षष्ठे च पलितक्षयः ॥ ४५ ॥
सप्तमे कान्तियुक्तश्च अष्टमे बलवान्भवेत् ।
नवमे च शतायुः स्याद्दशमे च स्वरान्वितः ॥ ४६ ॥
महाबलस्त्वेकादशे अदृश्यो द्वादशे भवेत् ।
इच्छाहारविहारी स्यात्ततो दैत्यरिपोः समः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार जो एक वर्षपर्यन्त निरालस्य हो निरन्तर इनको सेवन करे तो वह मनुष्य एक महीनेमें वाचाल, दूसरेमें बल और वर्णकरके युक्त होता है, तीसरे महिनेमें उसका कुष्ठरोग, चौथेमें श्वास और खांसी रोग नष्ट होते हैं, पाँचवेंमें स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय, छठेमें बालोंका पकना दूर होता है, सातवेंमें अत्यन्त शोभायमान, आठवेंमें बलवान्, नवेंमें सौवर्षकी आयुवाला, दसवेंमें सुन्दरस्वरवाला, ग्यारहवेंमें महाबलवान् और बारहवें महीनेमें मुक्त होजाता है। इसपर इच्छानुसार आहार और विहार करनेवाला मनुष्य विष्णुके समान पराक्रमी होता है ॥ ४४–४८ ॥

षडूर्मिरहितो देही प्राप्नोति कल्पजीवितम्।
युवा निरन्तरं तिष्ठेद्यावत्कालं च जीवति ॥ ४८ ॥
भवन्ति सिद्धयोऽस्याष्टौ याश्चापि परिकीर्त्तिताः।
श्रीसिद्धमोदको ह्येष सिद्धादिभिर्निषेवितः ॥ ४९ ॥

एवं वह मनुष्य षड् ऊर्मियोंसे रहित होकर एक कल्पपर्यंत जीता है और जबतक जीता है तबतक जवान बना रहता है। इसको सेवन करनेवाले पुरुषको अष्ट सिद्धियें प्राप्त होती हैं। ये श्रीसिद्धमोदक सिद्धादिकोंने सेवन किये हैं ४८॥४९॥

निर्गुण्डीकल्प।

ॐ सिद्धिः पिङ्गलायोगिनीकथितम्। निर्गुण्डीमूलचूर्णमष्टपलं गृहीत्वा षोडशपलमधुमिश्रितं घृतभाण्डे कृत्वा शरावेण निबिडलेपनं दत्त्वा मर्दयित्वामासमेकं धान्यमध्ये स्थापयेत्। तन्मासमेकं भक्षितमात्रेण नरः कनकवर्णो गृध्रदृष्टिः सर्वरोगविवर्जितो वलीपलितहीनः संवत्सरं खादिते चन्द्रार्कं यावज्जीवेद्बद्धशुक्रः स्त्रीशतं कामयितुं क्षमो भवति। शाकाम्लं विहाय यथेच्छया भोज्यम् ॥

निर्गुण्डीकी जडके चूर्णको ३३ तोले लेकर ६४ तोले शहदमें मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरदेवे। फिर सकोरेसे उस पात्रके मुखको ढककर और मिट्टीसे उसके सन्धिस्थानोंको बन्द करके उसको एकमहीनेतक धानोंके बीचमें गाडकर रक्खे। फिर उसको निकालकर प्रतिदिन प्रातःकाल उचित मात्रासे निरन्तर एक वर्षतक सेवन करनेवाला मनुष्य सुवर्णके समान वर्णवाला गिद्धकीसी दृष्टि-

वाला, सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त, वली और पलितरोगसे रहित, वर्षभरतक सेवन करलेनेपर चन्द्र और सूर्यकी समान (कान्तिमान्) जबतक जीवे तबतक स्थिरवीर्य और सैंकडों स्त्रियोंके भोगनेके समर्थ होता है । इसपर शाक और खट्टे रसवाले पदार्थ त्यागकर अन्यान्य द्रव्योंको यथेच्छ सेवन करे ॥

तच्चूर्णं गोमूत्रेण सह यः पिबति, हन्त्यष्टादश कुष्ठानि पामाविचर्चिकादीनि नाडीव्रणगुल्मशूलप्लीहोदराणि च ॥ तच्चूर्णं तक्रेण सह यः पिबति स सर्वरोगविवर्जितो गृध्रदृष्टिर्वराहबलो वलीपलितवर्जितः पवनवेगो दिव्यमूर्तिर्भवति । मासद्वयप्रयोगेण पण्डितश्च न संशयः ॥

जो पुरुष निर्गुण्डीके चूर्णको गोमूत्रके साथ पान करे तो उसके १८ प्रकारके कोढ, खुजली, विचर्चिका, नाडीव्रण, गुल्म, शूल, तिल्ली और उदररोग नष्ट होते हैं । एवं तक्रके साथ सेवन करे तो वह सब प्रकारके रोगोंसे रहित, गिद्धकीसी दृष्टिवाला, शूकरकी समान बलवान्, वली तथा पलितरोगविहीन, वायुके समान वेगवाला और दिव्यमूर्त्ति होता है । दो महीनेतक इसका सेवन करनेसे धुरन्धर पण्डित होजाता है इसमें सन्देह नहीं । यह निर्गुण्डीकल्प पिङ्गला योगिनीने वर्णन किया है ॥

कार्श्यहरलौह ।

श्वेतापुनर्नवादन्तीवाजिगन्धात्रिकत्रयैः ।
शतमूलीबालयुक्तैरेभिर्लौहं प्रसाधितम् ॥ ९० ॥
हिनस्ति नियतं कार्श्यमपि भृङ्गरसैः सह ।
नास्त्यनेन समं लौहं सर्वरोगान्तकं शुभम् ॥
दीपनं बलवर्णाग्निर्वृष्यदं चोत्तमोत्तमम् ॥ ९१ ॥

सफेद, पुनर्नवा, दन्ती, असगन्ध, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, चीता, वायविडङ्ग, शतावर और खिरैंटी इनको समान भाग और सबके बराबर लोहभस्म लेवे । फिर सबोंको यथाविधि एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवें । इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल भांगरेके रसके साथ नियमपूर्वक सेवन करनेसे मनुष्यकी कृशता नष्ट होती है । इस लोहके समान सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला अन्य लोह नहीं है । यह अग्निदीपक, बलवर्णकारक, वीर्यवर्द्धक और अत्युत्तम लोह है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अमृतार्णवरस ।

सूतभस्म चतुर्भागं लौहभस्म तथाऽष्टकम् ।
अभ्रभस्म च षड्भागं गन्धकस्य च पञ्चमम् ॥ ५२ ॥
भावयेत्रिफलाक्काथैस्ततस्सर्वं भृङ्गजैर्द्रवैः ।
शिग्रुवह्निकटुक्काथैर्भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥ ५३ ॥
सर्वतुल्या कणा योज्या गुडैर्मिश्र्यं पुरातनैः ॥ ५४ ॥

रससिन्दूर ४ तोले, लोहभस्म ८ तोले, अभ्रकभस्म ६ तोले और शुद्ध गन्धक ५ तोले लेवे । सबको एकत्र पीसकर त्रिफलेके क्काथ, भाँगरेके रस, सहिंजनेकी छाल, चीतेकी जड और कुटकी इनके क्वाथमें अलहिदा २ सात बार भावना देवे । फिर उपर्युक्त औषधियोंके चूर्णके बराबर भाग पीपलका चूर्ण और समस्त चूर्णके बराबर पुराना गुड मिलावे ॥ ५२–५४॥

निष्कमात्रं सदा खादेज्जरामृत्युनिवारणम् ।
ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासे रसोऽयममृतार्णवः ॥
कौरण्टकस्य पत्राणि गुडेन भक्षयेदनु ॥ ५५ ॥

इसमेंसे प्रतिदिन चार चार माशे परिमाण सेवन करे और ऊपरसे पीले पियाबाँसेके पत्तोंके क्वाथको गुड डालकर पान करे । इसको खानेसे वृद्धता और अकालमृत्यु नहीं होती । इस अमृतार्णवरसको चार महीनेतक सेवन करनेवाला मनुष्य ब्रह्माजीके समान आयुवाला होता है ॥ ५५ ॥

नीलकण्ठरस ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषं चित्रकपद्मकम् ।
वराङ्गरेणुकामुस्तं ग्रन्थ्येला नागकेशरम् ॥ ५६ ॥
त्रिकटु त्रिफला चैव शुल्वभस्म तथैव च ।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुड इष्यते ॥ ५७ ॥
सम्मर्द्य वटकं कृत्वा भक्षयेच्चणकोन्मितम् ।
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ॥ ५८ ॥
हिक्कायां ग्रहणीदोषे शोषे पाण्ड्वामये तथा ।
मूत्रकृच्छ्रे मूढगर्भे वातरोगे च दारुणे ॥ ५९ ॥

नीलकण्ठो रसो नाम ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगहरो भवेत् ॥ ६० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, चीतेकी जड, पद्माख, दारचीनी, रेणुका, नागरमोथा, पीपलामूल, छोटी इलायची, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला और ताम्रभस्म ये सब औषधियें समान भाग और सबसे दुगुना पुराना गुड लेवे । सबको एकत्र मर्दन करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रसको खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, हिचकी, संग्रहणी, शोथ, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूढगर्भ और दारुण वातरोगोंमें अनुपानभेदसे सेवन करनेसे सब रोग नष्ट होते हैं । इसका नाम नीलकण्ठरस है, इसको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥ ५६-६० ॥

महानीलकण्ठरसः।

पलैकं नागभस्माथ भावयेत्तिमिपित्ततः ।
तन्नागं सुमृतं स्वर्णं तोलैकं वापि मिश्रयेत् ॥ ६१ ॥
द्विपलं भस्म सूतस्य त्रिपलं मृतमभ्रकम् ।
त्रिपलं लौहभस्माथ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ६२ ॥
भावयेच्च पृथक्कन्या ब्राह्मी निर्गुण्डिका शमी ।
मुण्डीशतपराच्छिन्नाकोकिलाक्षस्य बीजकैः ॥ ६३ ॥
मुसली वृद्धदार्वग्निद्रवैरेभिर्भिषग्वरः ।
ततः सञ्चूर्णयेत्सर्वं तुल्यमेकादशाभिधम् ॥
वराव्योषाब्दवह्न्येलाजातीफललवङ्गकम् ॥ ६४ ॥

सीसेकी भस्मको ४ तोले लेकर तिमिमत्स्यके पित्तमें सातवार भावना देके फिर उस सीसेको १ तोले सुवर्णभस्मके साथ मिलावे । पश्चात् रससिन्दूर ८ तोले, अभ्रकभस्म १२ तोले और लोहभस्म १२ तोले इन सबको उसके साथ मिलाकर घीग्वार, ब्राह्मी, सिह्मालु, छोंकर, गोरखमुण्डी, शतावर, गिलोय, तालमखानेके बीज, मुसली, बिधारेके बीज और चीतेकी जड इनके रसमें पृथक्‌ पृथक्‌ क्रमशः सात सात बार भावना देवे । फिर त्रिफला, त्रिकुटा, नागरमोथा, चीता, इलायची, जायफल और लौंग इन ग्यारहों औषधियोंका समान भाग मिश्रित चूर्ण उपर्युक्त चूर्णके बराबर भाग लेकर मिलादेवे ॥ ६१-६४ ॥

पूजयेद् वृषपुष्पाद्यैर्नीलकण्ठं महेश्वरम् ।
द्विगुञ्जं भक्षयेदस्य मृत्युञ्जयमनुस्मरन् ॥ ६५ ॥

क्षयमेकादशविधं ग्रहणीं रक्तपित्तकम्।
विविधान्वातजान्रोगाँश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ६६ ॥
हन्ति सर्वामयानेव कामिनीनां शतं व्रजेत्।
एकविंशतिरात्राद्धं परिहार्यं त्यजेदिह ॥ ६७ ॥
यथेष्टाहारचेष्टो हि कन्दर्पसदृशो नरः।
मेधावी बलवान्प्राज्ञो बह्वाशी भीमविक्रमः ॥ ६८ ॥
पुत्रार्थिनी तथा नारी सैव पुत्रं प्रसूयते ॥
अस्य सूतस्य माहात्म्यं वेत्ति शम्भुर्न चापरः ॥ ६९ ॥

तदनन्तर प्रथम अडूसेके फूलोंसे प्रातःकाल मृत्युञ्जयमहादेवको पूजकर और उनका ध्यान कर इस रसकी दो रत्ती प्रमाण मात्राको भक्षण करे। इसके सेवनसे ग्यारह प्रकारका क्षय, संग्रहणी, रक्तपित्त, अनेक प्रकारके वातज रोग, ४० प्रकारके पित्तज रोग और इनके अतिरिक्त अन्यान्य सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं। इससे सैंकडों स्त्रियोंको भोगनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसपर ग्यारह दिनतक परहेज करके पश्चात् यथारुचि आहार और विहार करे तो मनुष्य कामदेवके समान सुन्दर, मेधावान्, बलवान्, विद्वान्, बहुभोजी और भीमके समान पराक्रमी होता है। पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री इसको सेवन करनेसे पुत्रको उत्पन्न करती है। इस रसके माहात्म्यको शिवजीके सिवा और कोई नहीं जानता ॥ ६५–६९ ॥

मकरध्वजरसायन।

स्वर्णस्य भागौ वङ्गं च मौक्तिकं कान्तलौहकम्।
जातीकोषफले रूप्यं कांस्यकं रससिन्दुरम् ॥ ७० ॥
प्रवालं कस्तुरी चन्द्रमभ्रकं चैकभागिकम्।
स्वर्णसिन्दूरतो भागांश्चतुरः कल्पयेद्बुधः ॥ ७१ ॥

सुवर्णकी भस्म २ तोले एवं वङ्ग, मोती, कान्तलोह, जावित्री, जायफल, रूपा, काँसा, रससिन्दूर, मूँगा, कस्तूरी, कपूर और अभ्रक ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला और स्वर्णसिन्दूर ४ तोले लेवे। इन सबको जलके द्वारा उत्तम प्रकारसे एकत्र खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर यथोचित अनुपानके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

नातः परतरः श्रेष्ठः सर्वरोगनिषूदनः।
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ ७२ ॥

सब प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेके लिये इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है। सर्व प्राणियोंके कल्याणके निमित्त शिवजीने इस रसको कहा है। ७२॥

बृहत्पूर्णचन्द्ररस।

द्विकर्षं शुद्धसूतं तु गन्धकं च द्विकार्षिकम्।
लोहभस्म पलं चैकं जारिताभ्रं पलांशिकम् ॥ ७३ ॥
द्वितोलं रजतं चैव वङ्गभस्म द्विकार्षिकम्।
सुवर्णं तोलकं चैव ताम्रं कांस्यं च तत्समम् ॥ ७४ ॥
जातीफलं चेन्द्रपुष्पमेला भृङ्गं च जीरकम्।
कर्पूरं वनितां मुस्तं कर्षं दद्यात्पृथक् पृथक् ॥ ७५ ॥
सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम्।
भावयित्वा वरातोये रुबूकानां रसैस्तथा ॥ ७६ ॥
एरण्डपत्रैः संवेष्टय धान्यराशौ दिनत्रयम्।
उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां चणसंमिताम् ॥ ७७ ॥

शुद्ध पारा दो कर्ष, शुद्ध गन्धक दो कर्ष, लोहभस्म एक पल, अभ्रकभस्म एक पल, चाँदी दो तोले, वङ्गभस्म दो कर्ष, सोना एक तोला, ताँबा एक तोला, काँसा एक तोला, जायफल, लौंग, इलायची, दारचीनी, जीरा, कपूर, फूलप्रियंगु और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष लेवे। फिर सबको खरलमें डालकर घीग्वारके रसद्वारा घोटकर त्रिफलेके क्वाथ और अण्डीकी जडके रसमें सातबार भावना देवे। पश्चात् अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंके ढेरमें गाडकर तीन दिनतक रक्खे। फिर उसको निकालकर और पीसकर उसकी चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ॥ ७३–७७ ॥

खादेच्च वटिकामेकां पर्णखण्डेन संयुताम्।
सर्वव्याधिविनाशाय काशिराजेन भाषितः ॥ ७८ ॥
पूर्णचन्द्ररसो नाम्ना सर्वरोगेषु योजयेत्।
बल्यो रसायनो वृष्यो वाजीकरण उत्तमः ॥ ७९ ॥

इसकी प्रतिदिन एक गोली पानके साथ खावे तो सब रोग नष्ट होते हैं। सम्पूर्ण आधिव्याधियोंको नष्ट करनेके लिये शिवजीने यह औषधि कही है। इसको पूर्णचन्द्ररस कहते हैं। यह सब रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। यह रस बलकारक, वीर्यवर्द्धक और उत्तम वाजीकरण है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अयमष्ठीलिकां हन्ति कासं श्वासमरोचकम् ।
आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पंक्तिशूलकम् ॥ ८० ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णं च ग्रहणीं चिरजामपि ।
आमवातमम्लपित्तं भगन्दरमपि द्रुतम् ॥ ८१ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च प्रमेहं वातशोणितम् ।
वातं बहुविधं चैव मन्दाग्नित्वं वमिं भ्रमिम् ॥
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यते वाजिकर्मणि ॥ ८२ ॥

यह रस अष्ठीला, खाँसी, श्वास अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृदयशूल, पंक्तिशूल, मन्दाग्नि, अजीर्ण, बहुत पुरानी संग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह, वातरक्त, नानाप्रकारके वातरोग, वमन, भ्रम और अग्निकी हीनतादि विकारोंको तत्काल नष्ट करता है । वाजीकरण औषधियोंमें इससे बढकर अन्य कोई औषधि नहीं है ॥ ८०–८२ ॥

महालक्ष्मीविलासरस ।

पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धकं भवेत् ।
तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धं पारदं तथा ॥ ८३ ॥
तत्समं हरितालं च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम् ।
रसतुल्यं च कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥ ८४ ॥
वृद्धदारकबीजं च बीजं स्वर्णफलस्य च ।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णं च शाणकम् ॥
निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥ ८५ ॥
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरांश्चतुर्विधान् ।
वातोत्थान्पैत्तिकांश्चैव नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥८६॥

वज्राभ्रककी भस्म चार तोले, शुद्धगन्धक दो तोले, वङ्गभस्म एक तोला, शुद्ध पारा ६ माशे, हरिताल ६ माशे, ताम्रभस्म ३ माशे कपूर ६ माशे तथा जावित्री और जायफल छः मासे, विधारेके बीज धतूरेके बीज प्रत्येक एक एक कर्ष और सोनेकी भस्म चार माशे सबको एकत्र कूटपीसकर पानके रस द्वारा खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सन्निपातसे उत्पन्नहुए घोररोग तथा वात, पित्त, कफ और द्वन्द्वजादि चारों प्रकारके विकारोंसे उत्पन्नहुए रोगोंको नष्ट करता है । इसपर किसी प्रकारका परहेज नहीं है ॥ ८३–८६

कुष्ठमष्टादशाख्यं च प्रमेहान्विंशतिं तथा ॥ ८७ ॥
नाडीव्रणं व्रणं घोरं मूत्रामयभगन्दरम् ।
श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितं च यत् ॥ ८८ ॥
मेदोगतं धातुगतं चिरजं कुलसम्भवम् ।
गलशोथमन्त्रवृद्धिमतीसारं सुदारुणम् ॥ ८९ ॥
आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ।
उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैकृत्यमेव च ॥ ९० ॥
कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यनाशनः ।
सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां गदनिषूदनः ॥ ९१ ॥

यह अठारह प्रकारके कोढ, २० प्रकारके प्रमेह, नासूर, घोर व्रण, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, श्लीपद, कफ-वातजन्य रोग, रक्त और मांसगत रोग, मेदागत, धातुगत, कुलपरम्परासे होनेवाले बहुत पुराने रोग, गलेके रोग, सूजन, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतीसार, सब प्रकारकी आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदर, कर्ण, नासिका, नेत्र और मुखके रोग, खाँसी, पीनस, राजयक्ष्मा, बवासीर, स्थूलता, दुर्गंधि, सब प्रकारका शूल, शिरःशूल और स्त्रियोंके सब रोगोंको बहुत शीघ्र दूर करता है ॥ ८७-९१ ॥

वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् ।
अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥ ९२ ॥
वारितक्रसुरासीधुसेवनात्कामरूपधृक् ।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्शी न च शुक्रस्य संक्षयः ॥ ९३ ॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम् ।
नित्यं स्त्रीणां शतं गच्छेन्मत्तवारणविक्रमः ॥ ९४ ॥
द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः ।
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ ९५ ॥
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवे जगत्पतौ ।
प्रसादादस्य भगवान् लक्ष्नारीषु वल्लभः ॥ ९६ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल जठराग्निके बलानुसार इसकी एक गोली भक्षण करें और मांस, पिट्ठी, दूध, दही, जल, मट्ठा, मदिरा और सीधुनामक काँजी इनके

अनुपानरूपसे सेवन करे । इससे वृद्ध पुरुष भी कामदेवके समान स्वरूपवान् हो स्त्रियोंमें रमण करताहै, वीर्यका नाश, लिंगकी शिथिलता नहीं होती तथा बाल पक्कावस्थाको कभी प्राप्त नहीं होते । मनुष्य उन्मत्त हाथीके समान पराक्रमी होकर सैंकडों स्त्रियोंको प्रतिदिन भोगता है । दो लाख योजनकी वस्तुको देखनेकी दृष्टि-शक्ति और अत्यन्त पुष्टि होती है । इस महालक्ष्मीविलासरसनामक प्रयोगराजको महात्मा नारदने जगत्पति भगवान् कृष्णचन्द्रसे वर्णन किया है । इसीके प्रतापसे भगवान् कृष्णचन्द्र एकलाख स्त्रियोंमें सर्वप्रिय हुए थे ॥

वसन्तकुसुमाकररस ।

द्विभागं हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तकाः ।
चतुर्भागं शुभ्रमभ्रं प्रवालं मौक्तिकं तथा ॥ ९७ ॥
भावयेद्गव्यदुग्धेन भावनेक्षुरसेन च ।
वासालाक्षारसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥ ९८ ॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुङ्कुमोदकैः ।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुगन्धिरससम्भवैः ॥ ९९ ॥

सोनेकी भस्म और चाँदीकी भस्म प्रत्येक दो दो तोले, वंग, सीसा और लोहा इनकी भस्म तीन तीन तोले, श्वेत अभ्रक, मूँगा और मोतीकी भस्म चार चार तोले लेवे । फिर सबको एकत्र पीसकर गौके दूध, ईखके रस, अडूसेकी छालके रस, लाखके क्काथ और सुगन्धवालाके क्काथ, केलेकी जडके रस, मोचरस, कमलके रस मालतीके फूलोंके रस, केशरके जल और कस्तूरीके क्काथमें यथाक्रमसे अलग अलग सात सात बार भावनादेवे । फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे ॥

कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः ।
गुञ्जाद्वयेन संसेव्यः सितामध्वाज्यसंयुतः ॥ १०० ॥
मेहघ्नः कान्तिदश्चैव कामदः पुष्टिदस्तथा ।
वलीपलितनाशश्च श्रुतिभ्रंशं विनाशयेत् ॥ १०१ ॥
पुष्टिदो बल्य आयुष्यः पुत्रप्रसवकारणम् ।
प्रमेहान्विंशतिं चैव क्षयमेकादशं तथा ॥
तथा सोमरुजं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ २ ॥

इसको वसन्तकुसुमाकररस कहते है । इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक मिश्री, शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करे तो यह प्रमेहको नाश

करता है, शरीरमें कान्ति, काम और पुष्टि करता है, वली और पलितरोग तथा बह-रैपनको नष्ट करता है एवं पुष्टिके देनेवाला, बलकारक, वीर्यवर्द्धक और पुत्रको उत्पन्न करनेवाला है। बीस प्रकारके प्रमेह, ग्यारह प्रकारके क्षय तथा साध्य अथवा असाध्य सोमरोगको यह रस तत्काल नाश करता है ॥ १००–२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसायनाधिकारः ॥

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः ।
व्रजेच्चाप्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥ १ ॥

जिस औषधिके द्वारा मनुष्य स्त्रियोंमें घोडेके समान रमण करनेकी सामर्थ्यको पाता है और बार बार मैथुन करता है तथा जिसके द्वारा अधिक वीर्य उत्पन्न हों उसको वाजीकरण कहते हैं ॥ १ ॥

चिन्तया जरया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्षणात् ।
क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥ २ ॥

अधिक चिन्ता, बुढापा, रोग, दुःखदायी कर्म, लंघन और अधिक स्त्रीप्रसंग करना इत्यादि कारणोंसे वीर्य नष्ट होजाता है ॥ २ ॥

अतिव्यवायशीलो यो न च वृष्यक्रियारतः ।
ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य अधिकतर मैथुन करता है रसायन एवं वाजीकरण औषधि नहीं खाता है तो वह अधिक वीर्यके क्षय होनेके कारण नपुंसकताको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

ग्लानिः कम्पोऽवसादस्तदनु च कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणां
शोषोच्छ्वासोपदंशज्वरगुदजगदाः क्षीणता सर्वधातौ ।
जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः क्लीबता लिङ्गभङ्गो
वामा वश्यातियोगाद्व्रजत इह सदा वाजिकर्मच्युतस्य ॥४॥

अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्ग करनेके कारण वीर्य नष्ट होजानेपर वाजीकरण औषधि सेवन न करनेसे मनुष्यके शरीरमें ग्लानि, कम्प, खेद, दुर्बलता, इन्द्रियोंकी शिथिलता, शोथ, उच्छ्वास, उपदंश, ज्वर, गुदाके रोग संपूर्ण धातुओंमें क्षीणता और दारुण वातरोग तथा नपुंसकता और लिंगनाश प्रभृति विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ ५ ॥

जो मीठी, चिकनी, आयुकारक, वीर्यवर्द्धक, गुरुपाकी और मनको प्रसन्न करनेवाली वस्तु होती है उसको वृष्य कहते हैं ॥ ५ ॥

नरो वाजीकरान् योगान्सम्यक् शुद्धो निरामयः ।
सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥ ६ ॥
आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ।
न च वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च ॥ ७ ॥

वस्थ और वमन, विरेचनादि करके शुद्ध शरीरवाला मनुष्य सोलह वर्षकी अवस्थासे लेकर सत्तर वर्षकी अवस्थातक वाजीकरण औषधियोंको यथाविधि सेवन करे तो वह मनुष्य दीर्घायु और स्त्रियोंके साथ रमण करने योग्य होता है । सोलह वर्षसे कम उम्रवाले बालकको और सत्तर वर्षके पीछे वृद्ध मनुष्यको वाजीकरण औषधि सेवन नहीं करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च ।
गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ ८ ॥
कामिनी सान्द्रतिलका कामिनी नवयौवना ।
गीतं श्रोत्रमनोज्ञं च ताम्बूलं मदिराः स्रजः ॥ ९ ॥
गन्धा मनोज्ञरूपाणि चित्राण्युपवनानि च ।
मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥ १० ॥

तृप्तिजनक और बलकारक नाना प्रकारके भोज्य और पानीय द्रव्योंका सेवन, कानोंको प्रिय लगनेवाले गीत, स्त्रियोंके प्रिय वाक्य, स्त्रियोंका सुखपूर्वक स्पर्श, तिलकको धारण करनेवाली नौजवान, स्त्रीके साथ प्रसङ्ग, मनोहर और कर्णप्रिय गान, ताम्बूलभक्षण, मदिरापान, सुगन्धित मालायें धारण करना, मनोरम और चित्रविचित्र पुष्पोंसे युक्त बगीचेमें भ्रमण एवं मनके खेदको हरनेवाले साधन ये सब मनुष्यको वाजीकरणके लिये प्रयोग करनी चाहिये ॥ ८–१० ॥

योगान्संसेव्य वृष्यास्तदुपरि च पयः शीतलं चाम्बु पीत्वा
गच्छेन्नारीं रसज्ञां स्मरशरतरुणीं कामुकः काममाद्ये ।
यामे हृष्टः प्रहृष्टां व्यपगतसुरतस्तत्समुत्पाद्य सद्यः ।
कान्तः कान्ताङ्गसङ्गान्महदपि नच वै धातुवैषम्यमेति ॥११॥

वाजीकरण औषधियोंको सेवन करके दूध और शीतल जल पान करे, फिर कामदेवके बाणोंसे विद्ध और रसको जाननेवाली नवयौवना तथा प्रसन्न चित्तवाली सुन्दरीको कामी पुरुष आनन्दसे एक प्रहरतक भोगे । जब मैथुन करते २ ग्लानि उत्पन्न होजाय तब वह पुरुष स्त्रीके अङ्गपर अङ्ग रखकर शयन करे । इस प्रकार करनेसे धातुवैषम्य नहीं होता ॥ ११ ॥

सुरूपा यौवनस्था च लक्षणैर्यदि भूषिता ।
वयस्या शिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमा मता १२॥

जो स्त्री सुन्दर, जवान, शुभलक्षण और आभूषणोंसे सुसज्जित, थोडी अवस्थावाली और सुशिक्षित होती है उसको वृष्यतमा कहते हैं ॥ १२ ॥

विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् ।
नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ १३ ॥
स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् ।
योषित्प्रसङ्गात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् ॥ १४ ॥
हिता वाजीकरा योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः ।
एतेऽपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ १५ ॥

जो पुरुष विलासी, धनाढ्य, रूप तथा यौवनसे सम्पन्न और जो बहुतसी स्त्रियोंवाले हों उनको वाजीकरणविधि हितकारी है । एवं जो वृद्ध तथा स्त्रीके अभिलाषी, स्त्रियोंके प्रिय होनेकी इच्छा करनेवाले, अधिक स्त्रीप्रसङ्गसे अथवा वीर्यके नष्ट होनेसे क्षीणदेहवाले, नपुंसक और अल्पवीर्यवाले जो पुरुष हैं उनको वाजीकरण प्रयोग विशेष हितकर, प्रीतिकर और बलप्रद होते हैं । हृष्टपुष्ट शरीरवाले मनुष्योंको भी ये वाजीकर प्रयोग देश, काल और मात्रानुसार सेवन करने चाहिये ॥१३-१५॥

घृतभृष्टमाषद्विदलं दुग्धसिद्धं च शर्कराविमिश्रम् ।
भुक्त्वा सदैव कुरुते तरुणीशतमैथुनं पुरुषः ॥ १६ ॥

उडदकी दालको घीमें भूनकर दूधमें पकाकर उसमें चीनी मिलाकर भक्षण करनेसे मनुष्य निरन्तर सौ स्त्रियोंके साथ प्रसङ्ग करनेको समर्थ होता है ॥ १६ ॥

शतावरीशृतं क्षीरं प्रपिबेत्सितया युतम् ।
रममाणस्य विरतिं मृदुतां याति नेन्द्रियम् ॥ १७ ॥

शतावरको १ तोला ले ८ तोले दूध और ३२ तोले जलमें पकावे । जब पकते २ दूधमात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर शीतल करके मिश्री डालकर पान करे तो इससे अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्ग करनेवाले मनुष्यकी इन्द्रिय शिथिल नहीं होती ॥ १७ ॥

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करया समम् ।
प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः ॥ १८ ॥

पुराने सेमलके वृक्षकी जडके रसको चीनी मिलाकर ७ दिनतक सेवन करनेसे वीर्यकी जलके समान वृद्धि होती है ॥ १८ ॥

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीं सुचूर्णिताम् ।
सर्पिषा पयसा पीते रतौ चटकवद्भवेत् ॥ १९ ॥

छोटे छोटे सेमलके पौधोंकी जडका चूर्ण और मुसली इन दोनोंको समान भाग ले एकत्र कूटपीसकर घृत और दूधके साथ पान करनेसे चिरौंटेके समान रतिशक्ति बढती है ॥ १९ ॥

विदारीकन्दचूर्णं च घृतेन पयसा पिबेत् ।
उडुम्बररसेनैव वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २० ॥

विदारीकन्दके चूर्णको घी, दूध और गूलरके रसके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी तरुण होता है ॥ २० ॥

सप्तधाऽऽमलकीचूर्णमामलक्यम्बुभावितम् ।
घृतेन मधुना लीढ्वा पिबेत्क्षीरपलं नरः ॥ २१ ॥

आमलोंके चूर्णको आमलोंकेही रसमें सात बार भावना देकर घृत और मधुके साथ प्रतिदिन भक्षण करे और पीछेसे ४ तोले गोदुग्ध पीवे तो कामशक्ति बढती है ॥ २१ ॥

अत्यन्तमुष्णकटुतिक्तकषायमम्लं क्षारं च शाकमथवा
लवणाधिकं च । कामी सदैव रतिमान्वनिताभिलाषी
नो भक्षयेदिति समस्तजनप्रसिद्धिः ॥ २२ ॥

अत्यन्त गरम, चरपरे, तीखे, कषैले, खट्टे और खाररसवाले पदार्थ, शाक अथवा अधिक परिमाणमें लवण इन पदार्थोंको कामी पुरुष कदापि सेवन न करे । क्योंकि ये सब रतिशक्तिका ह्रास करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा ।
साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ २३ ॥

जो बकरेके दोनों अण्डकोषोंको दूधमें पकाकर और घृतमें भूनकर पीपलका चूर्ण और सैंधानमक मिलाकर भक्षण करे तो वह सौ स्त्रियोंको भोगनेके लिये समर्थ होता है ॥ २३ ॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ।
यः खादेत्स नरो गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ २४ ॥

जो पुरुष बकरेके अण्डकोषोंके द्वारा सिद्ध कियेहुए दूधमें भूसीरहित तिलोंको सातबार भावना देकर, भक्षण करे तो वह सैंकडों स्त्रियोंमें गमन करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है ॥ २४ ॥

चूर्णं विदार्याः सुकृतं तद्रसेनैव भावितम् ।
सर्पिःक्षौद्रयुतं भुक्त्वा शतं गच्छेन्नरोऽङ्गनाः ॥ २५ ॥

विदारीकन्दके चूर्णको उसके ही स्वरसमें ७ बार उत्तमप्रकार भावना देकर घी, दूधके साथ मिलाकर सेवनेसे मनुष्य सैंकडों स्त्रियोंको भोगनेवाला होता है ॥

एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् ॥
एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ॥ २६ ॥

आमलोंके चूर्णको आमलोंके ही स्वरसमें भावना देकर खाँड, शहद और घीके साथ मिलाकर चाटे, ऊपरसे दूध पिये तो इससे अस्सीवर्षका बूढा आदमी भी युवाकी समान आनन्दको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

विदारीकन्दकल्कं तु घृतेन पयसा नरः ।
उडुम्बरसमं खादेद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २७ ॥

विदारीकन्द और गूलर इन दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर कल्क बनालेवे । फिर घृत और दूधके साथ उक्त कल्कको भक्षण करे तो वृद्ध मनुष्य भी युवाके समान रमण करता है ॥ २८ ॥

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजं समधुशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ २८ ॥

कौंछके बीजोंका चूर्ण और तालमखानेके चूर्णको समभाग लेकर शहद और चीनी तथा धारोष्ण दूधके साथ मिलाकर पान करनेसे वीर्य क्षीण नहीं होता है ॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते ।
शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखार्थिना ॥ २९ ॥

केवल उच्चटाके चूर्णको अथवा उच्चटा और शतावरके चूर्णको एकत्र मिलाकर सुखकी इच्छा करनेवाला मनुष्य दूधके साथ पान करे तो वीर्यवृद्धि होती है ॥

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः समो भवेत् ॥ ३० ॥

मुलहठीके १ कर्ष चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दूध पीवे तो प्रतिदिन कामशक्ति प्रबल होती है ॥ ३० ॥

आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभर्जिताः ।
तप्ते सर्पिषि यः खादेत्स गच्छेत्स्त्रीषु न क्षयम् ॥३१॥

जो मनुष्य गीले मांस मछली अथवा शफरीमछलीको घृतमें भूनकर भक्षण करे तो उसके स्त्रीसहवास करनेपर भी वीर्य क्षय नहीं होता ॥ ३१ ॥

गोक्षुराद्यचूर्ण ॥

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वानरिनागबलाऽतिबला च ।
चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥३२॥

जिसके घरमें सौ स्त्रियें हों वह मनुष्य गोखुरू, तालमखाना, शतावर कौंछ, गंगेरन, कंघी इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको दूधके साथ रात्रिमें सेवन करे ॥

नरसिंहचूर्ण ।

शतावरीरजः प्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ।
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ॥ ३३ ॥
भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु ।
तिलानां शोधितानां च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ॥ ३४ ॥
त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः ।
माक्षिकं शर्कराद्धेन माक्षिकार्द्धेन वै घृतम् ॥ ३५ ॥
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः ।
एतदेकीकृतं चूर्णं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥ ३६ ॥

शतावरका चूर्ण १ प्रस्थ, गोखुरूका चूर्ण १ प्रस्थ, वाराहीकन्द २० पल, गिलोय २५ पल, भिलावे ३२ पल, चीता १० पल, धुले हुए तिलोंका चूर्ण

१ प्रस्थ, त्रिकुटा ८ पल, चीनी ७० पल, शहद ३९ पल, घी १७॥ पल और विदारीकन्दका चूर्ण एक प्रस्थ लेवे । इस सबको एकत्र मिलाकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥३३–३६॥

पलार्द्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चापि भोजनम् ।
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥ ३७ ॥
वलीपलितखालित्यमेहपाण्ड्वाढ्यपीनसान् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि तथाऽष्टावुदराणि च ॥ ३८ ॥
भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं गृध्रसीं च हलीमकम् ।
क्षयं चैव महाव्याधिं पञ्च कासान्सुदारुणान् ॥ ३९ ॥
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान्सान्निपातिकान् ॥
सर्वानर्शोगदान्हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४० ॥
स काञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गमं चाप्यनुयाति वेगतः ।
स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरेकं प्रहृष्टपुष्टश्च यथा विहङ्गः ४१
पुत्रान्सञ्जनयेद्धीमान् नरसिंहनिभांस्तथा ।
नरसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम् ॥ ४२ ॥

फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे दो दो तोले प्रमाण सेवन करे और यथेच्छ आहार विहार करे । इस प्रकार एक महीनेतक सेवन करनेसे यह चूर्ण सब प्रकारके रोगों और बुढापेको तथा वली, पलितरोग, गञ्ज, प्रमेह, पाण्डुरोग, आढ्यवात, पीनस, अठारह प्रकारके कुष्ठ, आठ प्रकारके उदररोग, भगन्दर मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसीवात, हलीमक, अत्यन्त भयङ्कर क्षयरोग, पाँच प्रकारकी दारुण खाँसी, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तरोग, बीस प्रकारके कफरोग, द्वन्द्वज, त्रिदोषजरोग और सर्वप्रकारके अर्शरोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार वज्रपात वृक्षोंको तत्काल नाश करदेता है । इस चूर्णके प्रभावसे मनुष्य सुवर्णके समान कान्तिमान्, सिंहके समान पराक्रमी, घोडेके समान वेगसे चलनेवाला, सैंकडों स्त्रियोंको भोगनेवाला, बलवान् और गरुडके समान हृष्टपुष्ट होताहै । एवं बुद्धिमान् पुरुष नृसिंहके समान शोभायमान पुत्रोंको उत्पन्न करता है । यह नरसिंहनामक चूर्ण मनुष्योंके सब रोगोंको हरनेवाला है ॥३७–४२॥

कामदीपक ।

सितं पुनर्नवामूलं शाल्मलीरसभावितम् ।
शाल्मलीसत्त्वनिर्यासं दद्यात्तत्र समं समम् ॥ ४३ ॥
गन्धकं सर्वतुल्यं च भक्षयेच्छाणमात्रकम् ।
अनुपानं प्रकुर्वीत ततः क्षीरं पलद्वयम् ॥ ४४ ॥
अयं चण्डालिनीयोगोऽगम्याप्यत्र हि गम्यते ।
निषेधान्निधनं याति करणात्कामरूपधृक् ॥ ४५ ॥

सफेद पुनर्नवेकी जडका चूर्ण और मोचरस इन दोनोंको समान भाग और दोनोंके बराबर भाग शुद्ध गन्धक लेवे, फिर सब चूर्णको एकत्र मिलाकर सेमलके रसमें सात बार भावना देवे । इसको प्रतिदिन चार चार माशेकी मात्रासे भक्षण करे और ऊपरसे आठ तोले प्रमाण गोदुग्धका अनुपान करे । यह चंडालिनीयोग अगम्यास्त्रीसे भी गमन करता है और स्त्रीसेवन न करनेसे मृत्यु होती है एवं सेवन करनेसे कामदेवके समान रूपलावण्य करके युक्त होता है ॥

कामधेनु ।

गन्धमामलकं चूर्णं धात्रीरसविभावितम् ।
सप्तधा शाल्मलीतोयैः शर्करामधुयोजितम् ॥ ४६ ॥
लीढ्वा चानु पयःपानं प्रत्यहं कुरुते तु यः ।
एतेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रियः ॥ ४७ ॥

शुद्ध गन्धक और आमलोंका चूर्ण समान भाग ले, दोनोंको एकत्र मिलाकर आमलोंके रसमें और सेमलके रसमें ७ बार भावना देवे । फिर धूपमें सुखाकर चूर्ण करके उसको चीनी और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे । इस प्रकार जो प्रतिदिन इसको सेवन करे तो अस्सी वर्षका बूढा भी सैंकडों स्त्रियोंके साथ रमण करने लगताहै ॥४६॥४७॥

हरशशांक ।

शाल्मल्यास्त्वचमादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शुद्धगन्धकचूर्णानि तद्रसेनैव भावयेत् ॥ ४८ ॥

सेमलकी छालको लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर उस चूर्णके बराबरही शुद्ध गन्धकका चूर्ण मिलाकर दोनोंको सेमलके रसमें ७ बार भावना देवे । पश्चात् धूपमें सुखाकर पीसलेवे ॥ ४८ ॥

मासमात्रप्रयोगेण शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः ।
मकरध्वजरूपोऽपि स्त्रीशतानन्दवर्द्धनः ॥
शतायुश्च भवेद्देवि वलीपलितवर्जितः ॥ ४९ ॥
तेजस्वी बलसम्पन्नो वेगेन तुरगोपमः ।
सततं भक्षयेद्यस्तु तस्य मृत्युर्न जायते ॥ ५० ॥

इस चूर्णको एक महीनेतक सेवन करनेसे जो गुण होते हैं उनको कहता हूँ सुनो-हे देवि ! इसके प्रतापसे मनुष्य सौ वर्षकी आयुवाला, वली तथा पलितरोगसे मुक्त, तेजस्वी, बलवान् और घोडेके समान वेगवान् होता है । जो पुरुष इसको सर्वदा भक्षण करे तो उसकी कभी मृत्यु नहीं होती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

लक्ष्मणालौह ।

लक्ष्मणाहस्तिकर्णाभ्यां त्रिकत्रयसमन्वयात् ।
अश्वगन्धासमायोगाल्लौहं पुंसवनं मतम् ॥ ५१ ॥
पुत्रोत्पत्तिकरं वृष्यं कन्यासूतिनिवर्त्तकम् ।
कृशस्य बलदं श्रेष्ठं सर्वामयहरं परम् ॥ ५२ ॥

लक्ष्मणाकी जड, हस्तिकर्ण (पलाश) की छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, चीता, नागरमोथा और असगन्ध इनके चूर्णको समान भाग और सब चूर्णके बराबर भाग लोहा लेवे । सबको जलके द्वारा खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह लोह पुरुषत्वको उत्पन्न करता है । स्त्रियोंके इसके सेवनसे कन्योत्पत्ति निवृत्त होकर पुत्रोत्पत्ति होती है । इससे वीर्य-वृद्धि और कृश मनुष्यके बलकी वृद्धि होती है तथा सर्वप्रकारके रोगोंका नाश होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

सिद्धशाल्मलीकल्प ।

भूकूष्माण्डं तालमूली धात्री चैव पुनर्नवा ।
समभागं समाहृत्य भागार्द्धं गन्धकं तथा ॥ ५३ ॥
तदर्द्धं पारदं शुद्धं कज्जलीकृत्य निक्षिपेत् ।
श्वेतशाल्मलितोयेन सप्तधा भावयेत्ततः ॥ ५४ ॥
माहिषेण च दुग्धेन तच्चूर्णं भावयेत्पुनः ।
शुष्कं तच्चूर्णयेद्यत्नाल्लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ५५ ॥
अनेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रियः ।

ऊर्ध्वलिङ्गः सदा तिष्ठेत्कामदेव इव स्वयम् ॥ ९६ ॥
ज्वरादिरोगनिर्मुक्तः संसारसुखमश्नुते ।
शाणमेकं तु कर्त्तव्य दुग्धमत्रानुपानकम् ॥ ९७ ॥

विदारीकन्द, मुसली, आमले और सफेद पुनर्नवा ये प्रत्येक एक एक तोला एवं गन्धक ६ माशे और शुद्ध पारा ३ माशे लेवे । प्रथम पारे और गन्धककी एकत्र कज्जली बनालेवे, फिर सबको एकत्रकर सफेद सेमलकी जडके क्काथ और भैंसके दूधमें अलग २ क्रमशः सातबार भावना देवे । पश्चात् धूपमें सुखाकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन चार चार माशे प्रमाण लेकर शहद और घीके साथ सेवन करे । इसके सेवनसे अस्सी वर्षका वृद्ध मनुष्य भी सैंकडों स्त्रियोंको भोगता है और लिङ्ग सदा खडा रहता है । मनुष्य कामदेवके समान सुन्दर हो और ज्वरादि रोगोंसे मुक्त होकर सांसारिक सुखको भोगता है । इसपर दुग्धपान करना चाहिये ॥ ९३-९७ ॥

पञ्चशर ।

रसेन वै शाल्मलिजेन सूतं त्रिसप्तवाराणि बलिं विमद्य ॥ पृथक् तयोः कज्जलिकां विपक्कां घृते रसः पञ्चशरोऽयमुक्तः ॥ ९८ ॥ वल्लोऽहिवल्लीदलसंप्रयुक्तो वीर्यातिवृद्धिं कुरुतेऽस्य नूनम् । मांसान्नमद्यं गुरु पायसं च पयः पिबेन्माहिषमत्र सिद्धम् ॥ ९९ ॥

सेमलकी मुषलीके रसमें समान भाग मिश्रित पारे और गन्धकको पृथक् पृथक् इक्कीसबार भावना देवे । फिर दोनोंकी कज्जली बनाकर घीमें पकालेवे । पश्चात् इसको दो दो रत्तीप्रमाण ले पानके रसमें मिलाकर सेवन करे तो यह निश्चय वीर्यकी वृद्धि करता है । इसपर मांस, उडदके बने पदार्थ, मदिरा, भारी पदार्थ, खीर और उत्तमप्रकार सिद्ध किया हुआ भैंसका दूध इत्यादि पदार्थ सेवन करने चाहिये । इस योगको पञ्चशररस कहते हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

कामिनीमदभञ्जन ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कह्लारकद्रवैः ।
मर्दितं वालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत् ॥ १०० ॥
रक्ताङ्गस्य द्रवैर्भाव्यं दिनैकं तु सितायुतम् ।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ १०१ ॥

शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली बनाले, फिर उसको लाल कमलके पत्तोंके रसमें तीन दिनतक खरल करके वालुकायन्त्रमें रखकर एक प्रहरतक पकावे। पश्चात् उसमेंसे औषधिको निकालकर केशरके क्वाथमें एक दिनतक भावना देवे। इस रसको प्रतिदिन उचित मात्रासे मिश्रीमें मिलाकर सेवन करे और यथेच्छ आहार विहार करे तो सौ स्त्रियोंसे प्रसंग करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

कामिनीदर्पघ्न।

कज्जलीकृतसुगन्धकशम्भोस्तुल्यमेव कनकस्य हि बीजम्।
मर्दयेत्कनकतैलयुतं स्यात्कामिनीमदविधूनन एषः ॥ ६२ ॥
अस्य वल्लकमथो सितयाऽक्तं सेवितं हरति मेहगदौघान्।
वीर्यदार्ढ्यकरणं कमनीयं द्रावणं निधुवने वनितानाम् ॥ ६३ ॥

शुद्ध गन्धक एक तोला और शुद्ध पारा एक तोला लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली बनालेवे, फिर उसमें दो तोले धतूरेके बीजोंका चूर्ण मिलाकर धतूरेके तेलमें अच्छेप्रकार खरल कर उसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक दो गोली मिश्रीके साथ सेवन करे तो यह रस स्त्रीके मदको ध्वंस करता है और प्रमेहके समूहको तत्काल नष्ट कर वीर्यस्तम्भन करता है। इसके सेवनसे मनुष्य अत्यन्त मनोहर और स्त्रियोंके दर्पको तत्क्षण नष्ट करनेमें प्रबल होता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

पुष्पधन्वा।

हरजभुजगलोहं चाभ्रकं वङ्गचूर्णं कनकविजययष्टी
शाल्मली नागवल्ली। घृतमधुसितदुग्धं पुष्पधन्वा
रसेन्द्रो रमयति शतरामा दीर्घमायुर्बलं च ॥ ६४ ॥

रससिन्दूर, सीसा, लोहा, अभ्रक और वंग इनकी भस्मोंको समान भाग लेकर धतूरा, भांग, मुलहठी, सेमलकी मुसली और पान इनके रसमें एक एक बार क्रमसे भावना देवे। फिर इसको घी, शहद, मिश्री और दूधके साथ मिलाकर सेवन करे। इससे आयु और बलकी वृद्धि होती है तथा मनुष्य सैकडों स्त्रियोंके भोगनेको समर्थ होता है। यह पुष्पधन्वारस सब रसोंका राजा है ॥ ६४ ॥

पूर्णचन्द्ररस।

सूताभ्रलोह सशिलाजतु स्याद्विडङ्गताप्यं मधुना सितेन।
सम्मर्द्य सर्वं खलु पूर्णचन्द्रो माषोऽस्य वृष्यो भवति प्रयुक्तः ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, शिलाजीत, वायविडंग और सोनामाखी इन सबको बराबर भाग ले एकत्र पीसलेवे । फिर शहद और मिश्रीमें मिलाकर एक एक माशे प्रमाण प्रतिदिन भक्षण करे तो मनुष्य पूर्णचन्द्रमाके समान वीर्यकी वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

अनङ्गकुसुमाकर ।

निरुत्थभस्म सौवर्णं मुक्ता कस्तूरिका तथा ।
तालसत्त्वं च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥६६॥
कन्यारसेन संमर्द्य चतुर्गुञ्जामिता वटी ।
वटिकां वटिकार्द्धं वा सर्वरोगेषु योजयेत् ॥६७॥
अनुपानादिकं दद्याद् बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ।
अयथावीर्यपातेन शुक्रमेहादिभिस्तथा ॥६८॥
क्लीबत्वं ध्वजभङ्गं च रोगांश्चाशु तदुद्भवान् ।
नाशयेदेव विख्यातोऽनङ्गकुसुमसंज्ञितः ॥ ६९ ॥

उत्तमप्रकार मारेहुये सोनेकी भस्म, मोतीकी भस्म, कस्तूरी और वंशपत्री, हरिताल इन सबको एकएक तोला प्रमाण लेकर घीग्वारके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके चारचार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर इसकी एक अथवा आधी गोली सेवन करे और दोषोंके बलाबलको विचारकर अनुपानकी कल्पना करे । यह रस सर्व रोगोंमें हितकारी है । अकारण वीर्यपात होनेसे, शुक्रक्षय वा प्रमेहादिसे उत्पन्न हुई क्लीबता, ध्वजभंग और उससे होनेवाले अन्यान्य सब रोगोंको यह प्रसिद्ध अनंगकुसुमनामवाला रस नष्ट करता है ॥ ६६–६९ ॥

हेमसुन्दररस ।

शुद्धसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत् ।
क्षीराज्यदधिसंमिश्रं माषैकं कांस्यपात्रके ॥ ७० ॥
लेहयेन्माषषट्कं तु जरामरणनाशनम् ।
वाकुचीचूर्णकर्षैकं धात्रीफलरसाप्लुतम् ॥
अनुपानं पिबेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और सुवर्णभस्म ३ माशे लेकर काँसीके पात्रमें रख उसमें दूध, घी और दही प्रत्येक एक एक माशा डालकर अच्छे प्रकार खरल करें । इस रसको प्रतिदिन छः छः माशेकी मात्रासे सेवन करे तो जरा और मृत्युकी

निवृत्ति होती है । इसपर आपचीके एक कर्ष चूर्णको आमलोंके रसमें मिलाकर अनुपान करे । यह हेमसुन्दरनामवाला रस है ॥७०॥७१॥

अनङ्गसुन्दररस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कह्लारजैर्द्रवैः ।
मर्दितं वालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत् ॥ ७२ ॥
रक्तागस्त्यद्रवैर्भाव्यं दिनमेकं सिताम्बुजैः ।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ७३ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर लाल कमलके रसमें तीन दिनतक खरल करे । फिर वालुकायन्त्रमें रखकर एक प्रहरतक पुटपाक करे । पश्चात् लाल अगस्तियाके रसमें एक दिनतक भावना देकर प्रतिदिन इस रसको उचित मात्रासे मिश्रीके जलके साथ सेवन करे और यथेच्छ भोजन करे तो सौ स्त्रियोंको भोगनेकी शक्ति सम्पन्न होता है ॥७२॥७३॥

गन्धामृतरस ।

भस्मसूतं द्विधा गन्धं कन्यकाद्भिर्विमर्दयेत् ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यमुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥ ७४ ॥
वल्लं खादेज्जरामृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः ।
समूलं भृङ्गराजं च छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥ ७५ ॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ।
पलैकं भक्षयेच्चानु सेवनाच्च जरापहः ॥ ७६ ॥

रससिन्दूर एक तोला और शुद्ध गन्धक दो तोले इन दोनोंको एकत्र घीग्वारके रसके साथ खरलकर पश्चात् लघुपुटमें रखकर पकावे । जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इस औषधिको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण ले घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे तो यह गन्धामृत रस वृद्धावस्था और मृत्युको नाश करता है । इस औषधको सेवन करनेके पश्चात् जडसहित भाँगरेको छायामें सुखाकर चूर्ण करले, फिर उस चूर्णके समान भाग त्रिफलेका चूर्ण और सब चूर्णके बराबर भाग मिश्री मिलाकर उसमेंसे चार तोले नित्य सेवन करें तो वृद्धता दूर होती है ॥७४–७६॥

सिद्धसूत ।

मुक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च ।
यवक्षारं च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥ ७७ ॥

रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत्पुत्तलीकृतम् ।
मर्दयेच्च पुनर्दत्त्वा गन्धकं तदनन्तरम् ॥ ७८ ॥
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम् ।
सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतं तु भक्षयेत् ॥
पञ्चरक्तिप्रमाणेन मुषलीशर्करान्वितम् ॥ ७९ ॥

मोती, शुद्ध पारा, सोना, चांदी इनकी भस्म और जवाखार ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर लालकमलके पत्तोंके रसमें खरल करे । फिर सब औषधिके बराबर शुद्ध गन्धक मिलाकर पूनर्वार उक्त रसमें खरल करे । पश्चात् उसको एक बोतलमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकार बन्द करके बालुकायन्त्रमें ३ प्रहरतक पकावे । जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर इस सिद्ध पारेको पाँच रत्ती प्रमाण ले मुसली और मिश्रीके चूर्णमें मिलाकर भक्षण करे ॥७७-७९॥

शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत् ।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ॥ ८० ॥
मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमामिषम् ।
पारावतस्य मांसं च तित्तिरिश्च सदा हितः ॥ ८१ ॥

यह वीर्यकी वृद्धि करता है और ध्वजभङ्गको दूर करता है इसी प्रकार दुर्बल मनुष्यको अत्यन्त बलवान् बनाता है । इसपर मूँगकी दाल, घी, दूध, शालिचावल, स्निग्ध मांस, कबूतरका मांस और तीतरका मांस इन पदार्थोंका सेवन सदैव हितकारी है ॥८०॥८१॥

मकरध्वजवटी ।

सुवर्णं रजतं लौहं कस्तूरी मौक्तिकं तथा ।
जातीफलं च सर्वेषां प्रत्येकं तुल्यभागिकम् ॥ ८२ ॥
लौहाच्च द्विगुणं देयं भस्मसूतं भिषग्वरैः ।
तत्तुल्यं चन्द्रसंज्ञं च प्रवालं च तथैव च ॥८३॥
सहस्रपुटितं चाभ्रं मतं लोहाच्चतुर्गुणम् ।
सर्वद्रव्यसमं देयं मकरध्वजचूर्णितम् ॥ ८४ ॥
वारिणा वटिकां कृत्वा भक्षयेच्च विधानतः ।
सर्वरोगहरो ह्येष नात्र कार्या विचारणा ॥ ८५ ॥

सोना, रूपा, लोहा, कस्तूरी, मोती और जायफल ये प्रत्येक एकएक तोला एवं रससिन्दूर, कपूर और मूँगा प्रत्येक दो दो तोले तथा सहस्रपुटित अभ्रक ४ तोले और सब द्रव्योंके समान भाग स्वर्णसिन्दूर लेवे । सबको जलद्वारा एकत्र खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह औषधि अनुपानभेदसे अनेक प्रकारके रोगोंमें विधिपूर्वक प्रयोग करनी चाहिये। इससे सब रोग नष्ट होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८२–८५ ॥

वातपित्तोद्भव वापि श्लेष्माणं च विशेषतः ।
आर्द्रकस्य रसैश्चानु सन्निपातविनाशनः ॥ ८६ ॥
प्राकृतं वैकृतं द्वन्द्वं त्रिदोषं च विशेषतः ।
उन्मादं चानेकविधमज्ञानं वाक्प्ररोधकम् ॥ ८७ ॥
कान्तिपुष्टिकरो ह्येष वलीपलितनाशनः ।
मकरध्वजवटी ख्याता स्वयं नाम्ना च भाषिता ॥८८॥

इसको अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ और त्रिदोषजन्य विकार, प्राकृतिक, विकृत, द्वन्द्वजरोग, अनेक प्रकारका उन्माद, मोह और मूर्च्छादि व्याधि शीघ्र नष्ट होती हैं । यह स्वनामख्यात मकरध्वजवटी कान्ति और पुष्टिको उत्पन्न करती है तथा वली और पलितरोगको नष्ट करती है ॥ ८६–८८ ॥

श्रीमन्मथाभ्ररस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं पलमेकं सुशोधितम् ।
अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात्पलार्द्धं च विचक्षणः ॥ ८९ ॥
कर्पूरं तोलकं दद्याद्वङ्गं च कोलसम्मितम् ।
ताम्रं तोलार्द्धकं तत्र निश्शेषं मारितं पुनः ॥९० ॥
लौहकर्षं सुजीर्णं च वृद्धदारकजीरकम् ।
विदारीं शतमूलीं च क्षुरबीजं बलां तथा ॥ ९१ ॥
मर्कटचतिविषां चैव जातीकोषफले तथा ।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जं यमानिकाम् ॥ ९२ ॥
शाणभागान् गृहीत्वैतानेकीकृत्यैव पेषयेत् ।
गुञ्जाद्वयं तु कर्त्तव्यं कोष्णं क्षीरं पिबेदनु ॥ ९३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक प्रत्येक एकएक तोला, निश्चन्द्र अभ्रक दो तोले, भीमसेनी कपूर और वङ्गभस्म प्रत्येक एकएक तोला, ताँबेकी भस्म ६ माशे, लोहेकी भस्म एक कर्ष, पुराने विधारेके बीज, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाने, खिरैंटी, कौंछके बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भाँगके बीज, सफेद राल और अजवायन इन सबको चार चार माशे ले एकत्र पीस लेवे । इस औषधिको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण ले सुखोष्ण दूधके साथ सेवन करे ॥ ८९-९३ ॥

गृहे यस्य शतं नार्यो विद्यन्तेऽतिव्यवायिनः ।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यमौषधस्यास्य सेवनात् ॥ ९४ ॥
न च शुक्रं क्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत् ।
कामरूपी भवेन्नित्यं वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ९५ ॥
रसः श्रीमन्मथाभ्रोऽयं महेशेन प्रकाशितः ।
अस्य भक्षणमात्रेण काष्ठं जीर्यति तत्क्षणात् ॥
नाशयेद् ध्वजभङ्गादीन् रोगान् योगकृतानपि ॥ ९६ ॥

जिसके घरमें सौ स्त्रियें हों और जो अत्यन्त मैथुन करनेवाले हैं उनको यह रस सेवन करना चाहिये । इसके सेवनसे लिङ्ग कभी शिथिल नहीं होता, न वीर्य नष्ट होता है और न बलका ह्रास होता है । एवं मनुष्य कामदेवके समान रूपवान् और बूढा सोलह वर्षके युवाके समान होता है । इस श्रीमन्मथाभ्ररसको श्रीमहादेवने प्रकट किया है । इसको भक्षण करनेसे काष्ठभी जीर्ण होजाता है तथा ध्वजभङ्गादिरोग तत्क्षण नष्ट होते हैं ॥ ९४-९६ ॥

श्रीकामदेवरस ।

पारदं पलमेकं स्याद् द्विपलं शुद्धगन्धकम् ।
रक्तकार्पासतोयेन घृष्ट्वा काचस्य कुप्यतः ॥ ९७ ॥
निक्षिप्य टङ्कणेनैव मुखं तस्य निरोधयेत् ।
वालुकायन्त्रमध्यस्थं कुप्यं च कुरुते दृढम् ॥ ९८ ॥
अहोरात्रं पचेदग्नौ शास्त्रवित्कुशलो भिषक् ।
शीते चादाय पात्रस्थं कूपिकान्तरलम्बितम् ॥ ९९ ॥
दरदेन समं रक्तं सोज्ज्वलं भस्म यद्भवेत् ।
भक्षयेन्माषमेकं च घृतेन मधुना सह ॥ १०० ॥

पश्चाद् दुग्धं गुडं चाज्यं कृष्णेक्षुमपि शर्कराम् ।
द्राक्षाखर्जूरमधुकप्रभृतीनथ भक्षयेत् ॥ १ ॥

शुद्ध पारा चार तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले इन दोनोंको लाल कपासके रसमें खरल करके बोतलमें भरकर सुहागेसे उसके मुँहको बन्द कर देवे । फिर उस बोतलको वालुकायन्त्रमें रखकर शास्त्रवेत्ता वैद्य एक दिनरात्रितक अग्निमें पकावे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब उसको शीशीमेंसे निकाले । वह हिंगुलके समान लाल-रंगवाली और अति उज्ज्वल भस्म होगी । उस भस्मको प्रतिदिन एक एक माशा ले घी और शहदमें मिलाकर चाटे और पीछेसे दूध, गुड, घी, काली ईखका रस, चीनी, दाख, खजूर और मुलहठी आदि द्रव्योंका सेवन करे ॥ ९७-१०१ ॥

त्रिफला मधुना शान्तिं याति पित्तं चिरोद्भवम् ।
निर्गुण्डिकारसेनात्र दुर्वारा वातवेदना ॥ २ ॥
प्रशमं याति वेगेन नूतनं च वपुर्भवेत् ।
अर्द्धावर्त्तितदुग्धेन गृह्यते यद्ययं रसः ॥ ३ ॥
वन्ध्यापि च भवत्येव जीववत्सा सुपुत्रिका ।
कामदेवमथो सूतं कामिनां कामदं सदा ॥
अस्य प्रसादतो बल्यो रम्यश्च रमते स्त्रियः ॥ ४ ॥

त्रिफलेके क्वाथ और शहदके साथ इस रसको खानेसे बहुत पुराना दुष्ट पित्त शान्त होता है । निर्गुण्डीके रसके साथ खानेसे दुष्टवातकी वेदना दूर होती है और शरीर नवीन हो जाता है । यदि इस रसको एक बारकी ब्याई हुई गौके अध ओटे दूधके साथ सेवन करे तो वन्ध्यास्त्री भी जीवितवत्सा और सुयोग्य पुत्रवाली होती है । यह कामदेव रस कामी पुरुषोंको कामके देनेवाला है । इसके प्रसादसे निर्बल मनुष्यभी प्रबल और रमणीय होकर स्त्रियोंको भोगता है ॥ २-१०४ ॥

मकरध्वजरस ।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेत्त्रिकगन्धकम् ।
रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्याद्भिर्विमर्दयेत् ॥ ५ ॥
शुष्कं काचघटीं रुद्ध्वा वालुकायन्त्रगं हठात् ।
भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्ककिरणोपमम् ॥ ६ ॥

भागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः ।
लवङ्गं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ॥ ७ ॥
मेलयेन्मृगनाभिं च गद्यानकमितं तथा ।
श्लक्ष्णपिष्टो रसो नाम जायते मकरध्वजः ॥ ८ ॥

सोना १ भाग, शुद्ध पारा ८ भाग और पारेसे तिगुनी शुद्ध गन्धक इनको एकत्र खरल कर कज्जली बनालेवे । फिर उसको लालकपासके फूलोंके रस और घीग्वारके रसमें उत्तम प्रकार खरल करके छायामें सुखाले, पश्चात् काँचकी शीशीमें भरकर उस शीशीके मुँहको बन्दकर वालुकायन्त्रमें नवीन उदय हुए सूर्यकी किरणोंके समान लाल वर्णकी विधिपूर्वक भस्म करे । जब स्वांगशीतल होजाय तब उक्त भस्म १ भाग, कपूर ४ भाग, लौंग, मिरच और जायफल ये प्रत्येक कपूरके बराबर भाग एवं कस्तूरी ८ माशे लेकर सबको एकत्र पीस लेवे । इस प्रकार यह मकरध्वजनामक रस सिद्ध होता है ॥ ५-८ ॥

वल्लं वल्लद्वयं वाथ ताम्बूलीदलसंयुतम् ।
भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं मृदु मांसलवातलम् ॥ ९ ॥
शृतशीतं सितायुक्तं दुग्धं गोभवमाज्यकम् ।
मध्वाद्यं पिष्टमपरं मद्यानि विविधानि च ॥ ११० ॥
करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः ।
मेधायुःकान्तिजननः कामोद्दीपनकृन्महान् ॥
अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः ॥ ११ ॥

इसको प्रतिदिन दो रत्तीभर अथवा चार रत्तीभर पानमें रखकर सेवन करे । इसपर मधुर, स्निग्ध, हलका और वातल मांसल एवं औटाकर स्वयं शीतल हुआ मिश्रीमिला गोदुग्ध और घृत, शहद, पिष्टक और अनेक प्रकारके मद्यादि पदार्थ सेवन करे । यह रस मनुष्योंकी अग्निको दीपन करता, वली और पलितरोगको नष्ट करता है एवं मेधा, आयु, कान्ति और कामको बढानेवाला है । इसके सेवनसे मनुष्य नित्य सौ स्त्रियोंको भोगता है ॥ ९-१११ ॥

रतिकाले रतान्ते च पुनः सेव्यो रसोत्तमः ।
मानहानिं करोत्यासां प्रमदानां सुनिश्चितम् ॥ १२ ॥
कृत्रिमं स्थावरविषं जङ्गमं विषवारि च ।
न विकाराय भवति साधकानां च वत्सरात् ॥ १३ ॥

मृत्युञ्जयो यथाऽभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम् ।
तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥१४॥

इस उत्तम रसको मैथुनके आदि और अन्तमें सेवन करे । यह स्त्रियोंके मानको निस्सन्देह दूर करताहै । एक वर्ष पर्यन्त इस रसको सेवन करनेसे कृत्रिम, स्थावर, जङ्गम और जलीय जीवोंका विष कुछ भी असर नहीं करता, जिस प्रकार मृत्युञ्जय मन्त्रका जप करनेसे मनुष्योंकी मृत्यु दूर होजाती है उसी प्रकार यह रसेन्द्र भी प्राणियोंके जरा और मरणोको नष्ट करता है ॥१२-१४॥

महेश्वररस ।

रसं भस्मीकृतं कोलं गन्धकं शोधितं समम् ।
लौहं कर्षद्वयं ताम्रमर्द्धतोलकसम्मितम् ॥ १५ ॥
सुवर्णं जारितं दद्याच्छाणार्द्धं सुविचक्षणः ।
अभ्रं कर्षद्वयं दद्याच्छाणार्द्धं चन्द्रचूर्णकम् ॥ १६ ॥
श्यामाबीजं वरीं चैव बलामतिबलां तथा ।
एलां च शङ्खपुष्पं च शाणमानं विनिक्षिपेत् ॥
जलेन वटिकां कृत्वा गुञ्जामात्रां प्रदापयेत ॥ १७ ॥
सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः ।
सहस्रं याति नारीणामुत्साहो जायतेऽधिकः ॥ १८ ॥

रससिंदूर १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, लोहा २ तोले, तांबा ६ माशे, जारणकिया सोना २ माशे, अभ्रक २ तोले, कपूर ६ माशे एवं विधारेके बीज, शतावर, खिरैंटी, कंघी, इलायची और शंखपुष्पी ये प्रत्येक चार चार माशे लेवे । सबको जलके द्वारा एकत्र खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे मनुष्य कामदेवके समान रूपवान् होता है और हजारों स्त्रियोंको भोगनेका उत्साह उत्पन्न होताहै ॥१५-१८॥

नित्यं स्त्रीसेवनाद्यस्तु क्षीणशुक्रो भवेन्नरः ॥ १९ ॥
महाशुक्रो भवेत्सोऽपि सेवनादस्य नान्यथा ।
महाबलो महाबुद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥ १२० ॥
स्थूलानां कर्शकः श्रेष्ठः कृशानां पुष्टिकारकः ।
रसो विनाशयेद्रोगान्सप्तसप्ताहभक्षणात् ॥ २१ ॥

जो पुरुष नित्यप्रति स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे नष्टवीर्य होगया हो वह भी इसके सेवनसे अत्यन्त वीर्यवान्, महाबलवान् और बुद्धिमान् होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं। इस रसको सात सप्ताह पर्यन्त सेवन करनेसे सब रोग नष्ट होते हैं एवं स्थूल पुरुषोंकी स्थूलता और कृश मनुष्योंकी कृशता दूर होकर शरीर पुष्ट होताहै॥१९-२१॥

स्वर्णसिंदूर।

पलं रसेन्द्रस्य च गन्धकस्य हेम्नोऽपि कर्षं परिगृह्य सम्यक्।वटप्ररोहस्य रसेन यामं यामं विमर्द्याथ कुमारिकायाः ॥२२॥ तत्काचकुप्यां निहितं प्रयत्नात्पचेद्विधिज्ञः सिकताख्ययन्त्रे। ततो रजश्चोर्द्धगतं सुरम्यं प्रगृह्य यत्नादरुणप्रभं यत् ॥२३॥ तद्योजयेत्सर्वगदेषु वीक्ष्य धातुं बलं वह्निवृद्धिं वयश्च। रसायनं वृष्यतरं च बल्यं मेधाग्निकान्तिस्मरवर्द्धनं च ॥ २४ ॥

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गंधक एक पल और सोना एक तोला लेवे। सबको एकत्र वडके अंकुरोंके रसमें एक प्रहरतक एवं घीग्वारके रसमें एक प्रहरतक खरल करे। फिर एक बोतलमें विधिपूर्वक बुद्धिमान् वैद्य उसको वालुकायंत्रमें पकावे। जब स्वयं शीतल होजाय तब सूर्योदयकी लाल लाल कान्तिके समान उस औषधिको बोतलमेंसे निकालकर पीस लेवे। इस स्वर्णसिन्दूरनामक रसको सब प्रकारके रोगोंमें विचारपूर्वक प्रयोग करे। यह रसायन धातु, बल, अग्नि और आयुकी वृद्धि, शरीरमें पुष्टि, वीर्य तथा बलकी वृद्धि करती है। मेधा, जठराग्नि और कामशक्तिको प्रबल करती है॥२१-२४॥

स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज।

जातीफलं लवङ्गं च कर्पूरं मरिचं तथा।
प्रत्येकं तोलकं दत्त्वा सुवर्णस्य च माषकम् ॥ २५ ॥
अण्डजं माषमानं च सर्वतुल्यमथेश्वरम्।
यत्नतो मर्दयेत्खल्वे चतुर्गुञ्जावटीं चरेत् ॥ २६ ॥
एष चन्द्रोदयो नाम रसो वाजीकरः परः।
हन्ति रोगानशेषांश्च बलवीर्याभिवर्द्धनः ॥ २७ ॥

जायफल, लौंग, कपूर और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक तोला, सोना एक माशा, कस्तूरी एक माशा और सब औषधोंके बराबर भाग रससिंदूर

लेवे। सबको खरलमें रखकर उत्तम प्रकार मर्दन करे पश्चात् चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह स्वल्प चन्द्रोदयनामक रस अत्यन्त वाजीकरण, सर्वरोग नाशक, बल, वीर्य एवं अग्निवर्द्धक है। इसको माखन, मिश्री अथवा पानके रसके साथ सेवन करना चाहिये॥ २५-२७॥

वृहच्चन्द्रोदयमकरध्वज।

पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रात्पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य। शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सव विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः॥ २८॥ तत्काचकुम्भे निहित सुगाढे मृत्कर्पटीभिर्दिवसत्रयं च। पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम् ॥२९॥ संगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव। जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाणमेकम्॥ १२०॥

सोनेके वक चार तोले, शुद्ध पारा ३२ तोले, शुद्ध गन्धक ६४ तोले इनको एकत्र कर कज्जली बनाले, फिर लालवर्णकी वनकपासके फूलोंके रस और घीग्वारके रसमें खरल कर उसको कांचकी शीशीमें भर ऊपरसे कपरामिटी करके धूपमें सुखालेवे। पश्चात् उस बोतलको वालुकायन्त्रमें रखकर मृदु, मध्य और तीक्ष्ण इस क्रमसे तीन दिनतक अग्निदेवे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब उसमेंसे लालवर्णके कोमल पत्तोंके समान रमणीय भस्मको निकाललेवे। तदनन्तर यह भस्म चार तोले, कपूर १६ तोले एवं जायफल, त्रिकुटा, लौंग, कस्तूरी ये प्रत्येक चार चार माशे लेवे, सबको जलद्वारा एकत्र खरल कर गोलियाँ बनालेवे॥ २८-१३०॥

चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य वल्लो भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्त्ती। मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे॥ ३१॥ घृतं घनीभुतमतीव दुग्धं मृदूनि मांसानि समस्तकानि। मांसान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यानन्ददायीन्यपराणि चात्र॥ ३२॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः समस्तगदखण्डनः प्रचुररोगपञ्चाननः। गृहेऽपि गृहभूपतिभवति यस्य चन्द्रोदयः स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः॥ ३३॥

इसको बृहच्चन्द्रोदयरस कहते हैं । इस रसको प्रतिदिन दो या तीन रत्ती प्रमाण ले पानमें रखकर सेवन करे । इसके सेवनसे मनुष्य सैंकडों मन्दोन्मत्त स्त्रियोंके मदको असमयमें दूर करता है । इसपर घृत, खूब औटकर गाढा हुआ दूध, मृदु मांस, अन्नके और पिठीके बने पदार्थ एवं अन्यान्य सब प्रकारके आनन्ददायक पथ्य पदार्थ हितकारी हैं । यह रस वली और पलितरोगको नष्ट करनेवाला, मनुष्योंकी आयुको स्थापन करनेवाला, समस्त रोगोंको नाश करनेके लिये मृत्युञ्जय है । यह चन्द्रोदय जिसके घरमें भी होता है वह घरका राजा होता है । वह मृगनयनी स्त्रियोंका प्यारा और कामदेवके गर्वको दूर करता है ॥ ३१-३३ ॥

खण्डाभ्रक ।

पक्वचूतरसद्रोणः पात्रं स्याच्छुद्धखण्डतः ।
घृतमर्द्धं ततो ग्राह्यं चतुर्थांशं च नागरम् ॥ ३४ ॥
तदर्द्धं मरिचं प्रोक्तं तदर्द्धा पिप्पली मता ।
तोयं खण्डसमं दद्यात्सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ३५ ॥
विपचेन्मृन्मये पात्रे यदा दर्वीप्रलेपनम् ।
चूर्णान्येषां ततो दद्यात्पत्रं पलचतुष्टयम् ॥ ३६ ॥
ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं धन्याकं जीरकद्वयम् ।
त्र्यूषणं जाति तालीशं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ ३७ ॥
त्वगेलाकेशराणां च प्रत्येकं च पलं तथा ।
सिद्धशीते च मधुनः प्रस्थं दत्त्वा विघट्टयेत् ॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ३८ ॥

उत्तम प्रकार पकेहुए आमोंका रस ३२ सेर, मिश्री ८ सेर, गौका घी चार सेर, सोंठका चूर्ण दो सेर, मिरचोंका चूर्ण एक सेर, पीपलका चूर्ण आध सेर और जल आठ सेर लेवे । सबोंको मिट्टीके उत्तम पात्रमें एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा होकर करछीसे लगने लगे तब उसमें तेजपात १६ तोले, गठिवन, चीतेकी जड, नागरमोथा, धनियाँ, जीरा, काला जीरा, त्रिकुटा, जायफल, तालीशपत्र, दारचीनी, छोटी इलायची और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंको चार चार तोले ले बारीक पीसकर मिलादेवे । जब अच्छे प्रकार पकजाय तब उतारकर शीतल होजानेपर उसमें एकप्रस्थ शहद डालकर सबको एकमएक करके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥ ३४-३८ ॥

भोजनादादितः खादेत्पलमानं प्रमाणतः ।
गच्छेत्कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलेन्द्रियः ॥ ३९ ॥
शतं वापि तदर्द्धं वा रमेत्स्त्रीणां पुमानयम् ।
संसेव्य भेषजं ह्येतद्वन्ध्यायां जनयेत्सुतम् ॥ १४० ॥
वीरं सर्वगुणोपेतं शतायुश्च भवेदयम् ।
मृतवत्सा च या नारी या च गर्भोपघातिनी ॥ ४१॥
साऽपि सूते सुतं सत्यं नारायणपरायणम् ।
वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ४२ ॥
कुरङ्ग इव संहृष्टो मातङ्ग इव विक्रमः ।
सदा भेषजसंसेवी भवेन्मारुतवेगवान् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर प्रतिदिन भोजन करनेसे पहले इसको चार चार तोले प्रमाण सेवन करें । इसके सेवनसे कामदेवके मदसे अन्धीभूत और रागके वेगसे व्याकुल इन्द्रियवाला मनुष्य सौ या पचास स्त्रियोंको भोगता है । इस औषधिको सेवनकर वन्ध्या स्त्री भी वीर, सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त और शतायुषी पुत्रको उत्पन्न करती है । जिस स्त्रीके सन्तान होकर मरजाती है और जिसके गर्भ पतित होजाता है वह स्त्रीभी सत्य और नारायण परायण पुत्रको जनती है । इसके प्रतापसे वन्ध्या स्त्री पुत्रवाली और वृद्ध मनुष्य तरुण होता है । इस औषधिको सर्वकालमें नियमितरूपसे सेवन करनेवाला मनुष्य हिरनके समान हृष्ट पुष्टाङ्ग तथा प्रसन्न, हाथीके समान पराक्रमी और वायुके समान वेगवाला होता है ॥ ३९–१४३ ॥

हन्ति सर्वामयं घोरं कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ ४४ ॥
दुर्नामाजीर्णकं चैव अम्लपित्तं सुदारुणम् ।
तृष्णां छर्दिं च मूर्च्छा च शूलमष्टविधं जयेत् ॥ ४५ ॥
खण्डाभ्रकमिदं प्रोक्तं भार्गवेण स्वयम्भुवा ।
वयस्यं मेध्यमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ ४६ ॥
ग्रहरक्षःपिशाचघ्नमपस्मारविनाशनम् ।
पाण्डुरोगं प्रमेहं च मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥ ४७ ॥
वश्या योषिद्भवेत्पुंसां पुमान् वश्यश्च योषिताम् ।
दृष्टं वारसहस्रं च कथमत्र विचारणा ॥ ४८ ॥

यह सर्वप्रकारके भयङ्कर रोग, खाँसी, श्वास, क्षय, बवासीर अजीर्ण, अम्लपित्त, तृषा, वमन, मूर्च्छा और आठ प्रकारके शूल इत्यादि रोगोंको जीतता है। इस खण्डाभ्रकरसायनको ब्रह्माके पुत्र भृगुऋषिने कहा है। यह आयु और मेधाको बढानेवाला तथा सब पापोंको हरनेवाला है। ग्रह, राक्षस और पिशाचोंकी बाधा, अपस्मार, पाण्डुरोग, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि विकारोंको शीघ्र नष्ट करता है। इससे स्त्री पुरुषोंके और पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत होजाता है यह हजारों बार परीक्षाकर देखागया है इसमें सन्देह नहीं ॥

गुडकूष्माण्ड ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
प्रस्थं च घृततैलस्य तस्मिंस्तप्ते निधापयेत् ॥ ४९ ॥
त्वक्पत्रधान्यकव्योषजीरकैलाद्वयानलम् ।
ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १५० ॥
शृङ्गाटकं कशेरुं च प्रलम्बं तालमस्तकम् ।
चूर्णीकृतं पलांशं च गुडस्य तुलया पचेत् ॥
शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत् ॥ ५१ ॥

छीलकर उसीजे हुए पेठेके टुकडे १०० पल, घी और तिलका तेल एक एक प्रस्थ और पुराना गुड १०० पल लेवे। प्रथम उक्त पेठेके टुकडोंको सुखाकर घी तेलमें भूनलेवे, फिर सबको एकत्रकर पेठेके रसमें पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें दारचीनी, तेजपात, धनियाँ, त्रिकुटा, जीरा, दोनों तरहकी इलायची, चीतेकी जड, पीपलामूल, चव्य, गजपीपल, पीपल, सोंठ, सिंघाडे, कसेरू खीरेके बीज और ताडका मस्तक ये प्रत्येक चार चार तोले चूर्ण कर डाल देवे और शीतल होनेपर आठ पल शहद मिलाकर चिकने बासनमें भरकर रखदेवे ॥ १४९–१५१ ॥

कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नौ च प्रशस्यते ।
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ।
क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम् ॥ ५३ ॥
कासं श्वास ज्वरं हिक्कां हन्ति छर्दिमरोचकम् ।
गुडकूष्माडकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
खण्डकूष्माण्डवत्पाच्यः स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः ॥५५ ॥

इसके सेवनसे कफ, पित्त और वातजन्य रोग नष्ट होते हैं। यह मन्दाग्निमें सेवन करना हितकर है। कृश मनुष्योंको अत्यन्त पुष्टिकारक और उत्तम वाजीकरण है। जो पुरुष निरन्तर स्त्रियोंमें आसक्त होनेसे क्षीणवीर्य होगये हों और जो क्षयरोगसे ग्रसित हों उनका यह औषध परमोपयोगी है तथा खाँसी श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन और अरुचि आदि विकारोंको नष्ट करती है। इस गुडकूष्माण्डनामक औषधको अश्विनीकुमारोंने वर्णन किया है। इसमें खण्डकूष्माण्डके समान आठ सेर पेठेको उबालकर रस बनावे ॥ ९२–९५ ॥

कामेश्वरमोदक।

धात्रीसैन्धवकुष्ठकट्फलकणाशुण्ठीयमानीद्वयं
यष्टीजीरकयुग्मधान्यकशठीशृङ्गीवचाकेशरम्।
तालीशं त्रिसुगन्धिकं समरिचं पथ्याक्षमेभिः समं
चूर्णीकृत्य मनाक् स्वबीजसहितं भृष्ट्वा तु शक्राशनम् ॥९६॥
सर्वेषां द्विगुणां सितां सुविमलां यत्नाद्भिषङ् निक्षिपेत्
क्षौद्रं चापि घृतं प्रशस्तदिवसे कुर्याच्छुभान्मोदकान्।
कर्पूरैरवचूर्णितानपि हितान्दत्त्वा तिलान्भर्जितान्
गोप्योऽयं क्षितिमण्डलेऽमितधिया पाखण्डिनामग्रतः॥९७॥

आमले, सैंधानमक, कूठ, कायफल, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, मुलहठी जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, कचूर, काकडासिंगी, वच, नागकेशर, तालीशपत्र, दारचीनी, इलायची, तेजपात, मिरच, हरड और बहेडा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर बीजोंसहित भुनीहुई भाँगका चूर्ण सबकी बराबर और समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री, शहद तथा घृत लेकर सबको यथाविधिसे पकावे। पश्चात् सुगन्धिके लिये कपूरका चूर्ण और भुनेहुए तिलोंका चूर्ण मात्रानुसार डालकर उत्तम मोदक बनालेवे। बुद्धिमान् वैद्योंको यह योग पाखण्डियोंसे गुप्त रखना चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

आधिव्याधिहरः परं क्षयहरः कुष्ठापहो बृंहणः स्त्रीणां
तोषकरो मुखद्युतिकरः शुक्राग्निवृद्धिप्रदः। कासश्वास-
बलासरोगनिचयप्रध्वंसनः प्राणिनां प्रोक्तो ब्रह्मसुतेन
सर्वसुखदः कामेश्वरो मोदकः ॥ ९८ ॥ ग्रहगणपरिहीनः
सर्वशास्त्रप्रवीणो ललितविमलकीर्त्तिः प्राप्तकन्दर्पमूर्त्तिः।

विगतसकलभीतिर्गीतवाद्याङ्गनीतिर्भवति भुवि स
देवो येन भुक्तः प्रयत्नात् ॥ ५९ ॥

इसको शुभ दिनमें सेवन करनेसे मानसिक और शारीरिक सब विकार, क्षय और कुष्ठरोग दूर होते हैं। यह अत्यन्त बृंहण है। स्त्रियोंको प्रसन्न करनेवाला, मुखकी कान्ति, वीर्य और जठराग्निकी वृद्धि करनेवाला है। इससे खाँसी, श्वास और बलास आदि मनुष्योंके रोगसमूह नष्ट होते हैं। इस सर्वसुखदायी कामेश्वर-मोदकको भृगुजीने कहा है। जो मनुष्य इसको विधिपूर्वक सेवन करता है वह सम्पूर्ण ग्रहोंकी बाधासे मुक्त, सर्वशास्त्रोंमें कुशल, निर्मल कीर्त्तिवाला, कामदेवके समान रूपवाला, समस्त भयोंसे रहित, गीत वाद्यादिको जाननेवाला और देवताके समान होता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

रहसि युवतिखेलासम्पुटाकर्षहर्षाद्रमयति युवतीनां
केलिकौतूहलेन। यदि कथमपि भुक्तो भोजनादा
वथान्ते सुरतरभसमुच्चैर्नष्टकामं प्रकामम् ॥ १६० ॥
यस्मान्नव्यबृहस्पतिस्तनुधियो यस्मात्सदा वीर्यवान्
यस्मादुन्मददाक्षिणात्ययुवतीसम्भोगकौतूहली।
यस्मात्काव्यकुतूहली सुकविता सञ्जायते लीलया
श्रीमद्भिः प्रतिवासरं क्षितितले संसेव्यतां मोदकः ॥ ६१ ॥

इसको सेवन करनेवाला बडे आनन्दसे स्त्रियोंमें रमण करता है। यदि इसको भोजनके आदि और अन्तमें सेवन करे तो सुरतसमय नष्ट हुआ काम फिर प्रबल होता है। जिससे मनुष्य बृहस्पतिके समान बुद्धिमान्, अत्यन्त वीर्यवान्, कामक्रीडा करनेमें चतुर, स्त्रियोंके साथ सम्भोगरूपी कुतूहल करनेवाला और सहजमें सुन्दर कविता तथा काव्य कुतूहलको प्राप्त होता है ऐसे मोदक श्रीमानोंको प्रतिदिन नियमसे सेवन करने चाहिये ॥ १६० ॥ १६१ ॥

अन्य कामेश्वरमोदक।

चूर्णांशं गगनं घनार्द्धविमलं गन्धं च कुष्ठामृता
मेथी मोचरसो विदारि मुषली गोक्षूरकं चेक्षुरः।
भीरुं चैव कशेरुकं यम (मा) निका तालाङ्कुरं धान्यकं
यष्टी नागबला तिला मधुरिका जातीफलं सैन्धवम् ॥ ६२ ॥

भार्ङ्गी कर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा करिकणा द्राक्षा शठी कट्फलम्।
शाल्मल्यंघ्रि फलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णयेत्
चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्यमिश्रं तु तत् ॥
कर्षार्द्धा गुडिकाथ कर्षमथवा सेव्या सतां सर्वदा
पेयं क्षीरमनु स्ववीर्यकरणे स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् ॥६३॥

कूठ, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मुसली, गोखुरू, तालमखाने, शतावर, कसेरू, अजवायन, ताडके अंकुर, धनियाँ, मुलहठी, गंगेरन, धुलेहुए तिल, सौंफ, जायफल, सैंधानमक, भारङ्गी, काकडासिंगी, त्रिकुटा, जीरा, कालाजीरा, चीतेकी जड, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पुनर्नवा गजपीपल, दाख, कचूर, कायफल, सेमलकी मुसली, त्रिफला, कौंछके बीज, इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णमें सब चूर्णसे चौथाई भाग अभ्रक, अभ्रकसे आधा भाग शुद्ध गन्धक और सब चूर्णसे आधी भांग एवं सबसे दुगुनी मिश्री, शहद और घी यथाविधि मिलाकर पकावे। फिर आधे कर्ष अथवा एक एक कर्षके लड्डू बनालेवे। प्रतिदिन एक एक लड्डू खावे और ऊपरसे दूध पीवे तो इससे कामी पुरुषोंके वीर्य स्तम्भन होता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

रतिवल्लभमोदक।

शक्राशनस्य बीजानां चूर्णानि पलपञ्च च।
हविषः कुडवं चैव सिताप्रस्थं प्रगृह्य च ॥ ६४ ॥
शतावरीरसप्रस्थं तथा शक्राशनस्य च।
गव्यमाजं पयः प्रस्थं ततः प्रस्थद्वयं पचेत् ॥ ६५ ॥

भाँगके बीजोंका चूर्ण २० तोले, गोघृत १६ तोले, मिश्री एक प्रस्थ, शतावरका रस एक प्रस्थ, भाँगका रस एक प्रस्थ, गौका दूध एक प्रस्थ और बकरीका दूध एक प्रस्थ, इन सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर मृदु अग्निके द्वारा पकावे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

धात्री द्विजीरकं मुस्तं त्वगेलापत्रकेशरम्।
आत्मगुप्ता चातिबला तालांकुरकशेरुकम् ॥ ६६ ॥
शृङ्गाटकं त्रिकटुकं धान्यमभ्रं च वङ्गकम्।
शृङ्गाटकं त्रिकटुकं धान्यमभ्रं च वङ्गकम्।

कटुका मधुक कुष्ठं लवङ्गं सारसैन्धवम्।
यमानी चाजमोदा च जीवन्ती गजपिप्पली ॥ ६८ ॥
प्रत्येकं कर्षमेकं तु चूर्णितानि शुभानि च।
कुडवार्द्धं पादशेषे मधुनः प्रक्षिपेत्तथा ॥
मृगाण्डजं सकर्पूरं यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥ ६९ ॥

जब पाक पकते पकते अवलेहके समान गाढा होजाय तब उसमें आमले, जीरा, काला जीरा, नागरमोथा, दारचीनी; इलायची, तेजपात, नागकेशर, कौंछके बीज, कंघी, ताडके अंकुर, कसेरू, सिंघाडे, त्रिकुटा, धनियाँ, अभ्रक, वङ्ग, हरड, दाख, काकोली, खजूर, तालमखाना, कुटकी, मुलहठी, कूठ, लौंग, सैंधानमक, अजवायन, अजमोद, जीवन्ती और गजपीपल इन प्रत्येक औषधोंके चूर्णको एक एक कर्ष डाल देवे। जब उत्तमप्रकार पाक पककर सिद्ध होजाय तब शीतल होजानेपर उसमें शहद् ८ तोले और सुगन्धिके लिये किञ्चित् कस्तूरी तथा कपूर मिलाकर लड्डू बनालेवे ॥ ६६-६९ ॥

रतिवल्लभनामाऽयं सेव्यमानो महारसः।
परमोजस्करो बल्यो वातव्याधिविनाशनः ॥ १७० ॥
वातपित्तहरो वृष्यो दृष्टिसन्दीपनः परः।
पित्तश्लेष्मास्रपित्तघ्नो विषगुल्मज्वरापहः ॥ ७१ ॥
यापयत्येष मन्दाग्निं रोगाणां क्षयहेतुकः ॥ ७२ ॥
न भवेल्लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां पुष्टिवर्द्धनम्।
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ७३ ॥
यस्य गेहे सदा बह्व्यः पत्न्यः स्युः सुमनोहराः।
तेन सेव्यः सदैवायं मोदको रतिवल्लभः ॥ ७४ ॥

यह रतिवल्लभनामक महारस उचित मात्रासे प्रतिदिन सेवन करना चाहिये। यह अत्यन्त ओजस्कर, बलकर, वातव्याधिनाशक, वात-पित्तहर, वृष्य, नेत्र-शक्तिवर्द्धक, पित्त, कफ, रक्तपित्त, विष, गुल्म ज्वर, मन्दाग्नि और क्षयरोगोंको नाश करनेवाला है। इससे लिङ्गमें शिथिलता नहीं होती। यह वृद्ध मनुष्योंको भी पुष्ट करता है। कृश मनुष्योंको बृंहण और उत्तम वाजीकरण है। जिसके घरमें बहुतसी सुन्दरी स्त्रियाँ हों उसको यह रतिवल्लभमोदकरस निरन्तर सेवन करना चाहिये ॥ १७०-१७४ ॥

कामाग्निसन्दीपनमोदक।

कर्षो रसो गन्धकमभ्रकं च द्विक्षारचित्रे लवणानि पञ्च। शठी यमानीद्वयकीटहारी तालीशपत्राण्यपरं द्विकर्षम् ॥ ७५ ॥ जीरं चतुर्जातलवङ्गजातीफलं च कर्षत्रयमेवमन्यत्। सवृद्धदारं कटुकत्रयं च तथा चतुःकर्षमितं निबोध ॥ ७६ ॥ धन्याकयष्टीमधुरीकशेरूकर्षाः पृथक् पञ्च वरी विदारी। वरेभकर्णेभकणात्मगुप्ताबीजं तथा गोक्षुरबीजयुक्तम् ॥ ७७ ॥ सबीजपत्रेन्द्ररजः समानं समा सिता क्षौद्रघृतं च तुल्यम्। कर्षैकमिन्दोरथ मोदकं तत्कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम् ॥ ७८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक, जवाखार, सज्जी, चीता, पाँचोंनमक, कचूर अजवायन, अजमोद, वायविडङ्ग और तालीशपत्र ये प्रत्येक एक एक कर्ष, जीरा दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जायफल ये दो दो कर्ष, विधारेके बीज, त्रिकुटा प्रत्येक तीन तीन कर्ष धनियाँ, मुलहठी, सौंफ, कसेरू ये चार चार कर्ष, शतावर, विदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण, पलाशकीजड, गजपीपल, कौंछके बीज, गोखुरू ये प्रत्येक पाँच पाँच कर्ष एवं बीज और पत्तोंसहित भाँगका चूर्ण सब औषधियोंके चूर्णके बराबर भाग तथा सबोंकी बराबर मिश्री, शहद और घीं लवे। सबको विधिपूर्वक मन्द मन्द अग्निसे पकावे फिर उसमें एक कर्ष कपूर डालकर करछीसे सबको एकम एक करके मोदक बनालेवें। इस रसको कामाग्निसन्दीपन कहते हैं ॥७५-७८॥

वृष्यस्त्वतः परतरं सततं न दृष्ट एनं निषेव्य मनुजः प्रमदासहस्रम्। गच्छेन्न लिङ्गशिथिलत्वमवाप्नुयाच्च नागाधिपं विजयते बलतः प्रमत्तम् ॥ ७९ ॥ कान्त्या हुताशनमपि स्वरतो मयूरान् वाहं जवेन नयनेन महाविहङ्गम्। वातानशीतिमथ पित्तगदं समग्रं श्लेष्मोत्थविंशतिरुजः परमग्निमान्द्यम्॥ १८०॥ दुर्नामकामलभगन्दरपाण्डुरोगमेहातिसारकृमिहृद्ग्रहणीप्रदोषान्। कासज्वरश्वसनपीनसपार्श्वशूलशूलाम्लपित्तसहिताञ्शिरजान् समस्तान् ॥८१॥ हत्वा गदानपि च तत्पुमपत्यकारि

सर्वर्त्तुपथ्यमथ सर्वसुखप्रदायि । वृष्यं वलीपलितहारि
रसायनं स्याच्छीमूलदेवकथितं परमं प्रशस्तम् ॥ ८२ ॥

इसके सेवनसे निरन्तर वीर्यकी वृद्धि होती है । मनुष्य हजारों स्त्रियोंको भोगता है तो भी उसका लिंग शिथिल नहीं होता बल्कि ऐरावत हाथीके समान दृढ और बलवान् होजाता है । अग्निके समान प्रदीप्त कान्ति, मोरके समान स्वर, घोडेके समान वेग और गरुडके समान दृष्टिशक्ति प्रबल होती है । यह मोदक अस्सी प्रकारके वातरोग, समस्तपित्तरोग, वीस प्रकारके कफरोगों एवं दुर्नामादि उल्लिखित सर्व प्रकारके रोगोंको तत्काल नष्ट करता है । अग्निको अत्यन्त प्रदीप्तकर पुरुषे सन्तानको बढाता है । यह सर्व ऋतुओंमें सेवन करने योग्य सब प्रकारके सुखोंको देनेवाला, वीर्यवृद्धि और पुष्टिकारक, वली और पलितरोगसंहारक एवं परमोत्तम रसायन है । इसको श्रीमूलदेवजीने वर्णन किया है ॥ १७९-१८२ ॥

बृहच्छतावरीमोदक ।

शतावरी श्वदंष्ट्रा च बला चातिबला तथा ।
मर्कटीक्षुरबीजं च विदारीकन्दजं रजः ॥ ८३ ॥
एतानि समभागानि पलिकानि विचूर्णयेत् ।
तस्माच्चतुर्गुणं देयं त्रैलोक्यविजयारजः ॥ ८४ ॥
एतदेकीकृतं यावत्तदर्द्धं माहिषं पयः ।
तावन्मात्रेण दातव्यः शतावर्य्या रसस्तथा ॥ ८५ ॥
विदार्य्याः स्वरसप्रस्थं सिता पलशतद्वयम् ।
गोलयित्वा सितां चैव पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ ८६ ॥
पाचयेत्पाकविद्वैद्यो मोदकं परमं हितम् ।
त्र्यूषणं त्रिफला दन्ती त्रिजातं सैन्धवं शठी ॥ ८७ ॥
धान्यकं बालकं मुस्तं कस्तूरी गोस्तनी तुगा ।
जातीकोषफलं मांसी पत्रं नागेन्द्रग्रन्थिकम् ॥ ८८ ॥
शतपुष्पा चवी दारु प्रियङ्गु सलवङ्गकम् ।
सरलं शैलजं कुष्ठं जातीपुष्पं यमानिका ॥ ८९ ॥
कट्फलं केशरं मेथी मधुरं सुरदारु च ।
मिषिस्तालीशपत्रं च खर्जूरं रसगन्धकौ ॥ १९० ॥

चन्दनं तगरं क्षारं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
आलोड्य त्रिसुगन्धेन कर्पूरेणाधिवासयेत्॥
काञ्चने राजते पात्रे स्थाप्यमेतद्भिषग्वरैः॥ ९१॥

शतावर, गोखुरू, खिरेंटी, कंघी, कौंछके बीज, तालमखाने और विदारीकन्द इनको चार चार तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णसे चौगुना बीजसहित भाँगका चूर्ण और समस्त चूर्णसे आधा भाग भैंसका दूध, शतावरका रस भी दूधके ही बराबर भाग, विदारीकन्दका स्वरस १ प्रस्थ और मिश्री २०० पल लेवे। सबोंको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर ताँबेके बर्त्तनमें पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, दन्तीकी जड, त्रिजातक सैंधानोन, कचूर, धनियाँ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कस्तूरी, दाख, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, बालछड, तेजपात, गठिवन, सोया, चव्य, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, लौंग, धूपसरल, भूरिछरीला, कूठ, चमेलीके फूल, अजवायन, कायफल, नागकेशर, मेथी, मुलहठी, देवदारु, सौंफ, तालीशपत्र, खजूर, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लालचन्दन, तगर और जवाखार ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष प्रमाण ले बारीक कूटपीसकर डालदेवे। पश्चात् दारचीनी, इलायची, तेजपात और कपूर इनका चूर्ण सुगन्धिके लिये डालकर सबको एकम एक करके उत्तम मोदक बनालेवे और उनको सोने या चाँदी अथवा मिट्टीके पात्रमें भरकर रखदेवे॥ ८३–९१॥

प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु विचक्षणः।
कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं क्षीरं चानु पिबेत्पलम्॥९२॥
शतं भजेद्वरस्त्रीणां न च शुक्रक्षयो भवेत्।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं शुक्रसञ्जननं परम्॥९३॥
क्षयं चैव महाव्याधिं पञ्च कासान्सुदुस्तरान्।
वातजान्पैत्तिकांश्चैव कफजान्सान्निपातिकान्॥९४॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि वातरक्तादिकानि च।
प्रमेहं श्लीपदं शोथं लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनम्॥९५॥
सर्वानर्शोगदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
व्याधीन्कोष्ठगतानन्याञ्जनार्दन इवासुरान्॥९६॥
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु।

स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ॥९७॥
क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम् ।
ओजस्तेजः स्वरं बुद्धिमायुः प्राणं विवर्द्धयेत् ॥९८॥

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा भोजनके समय एक एक तोला प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे चार तोले दूधका अनुपान करे । इसके सेवनसे सैंकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेपरभी वीर्य क्षय नहीं होता और न लिङ्ग शिथिल होता है । विशेषकर शुक्रकी वृद्धि होती है । क्षय, राजयक्ष्मा, पाँचप्रकारकी खाँसी, वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातजनितरोग, अठारह प्रकारका कुष्ठ, वातरक्त, प्रमेह, श्लीपद, सूजन और सब प्रकारका अर्श, कोष्ठगत रोग एवं अन्यान्य भयंकर व्याधियोंको यह औषध इस प्रकार तत्काल नष्ट करता है जिस प्रकार विष्णुभगवान् असुरोंको तत्क्षण नाश करदेते हैं । वाजीकर्ममें इससे बढकर अन्य औषधि नहीं है । यह लक्ष्मी तथा कान्तिको बढाती है तथा वन्ध्या स्त्रियों, दुर्बल मनुष्यों, नपुंसक, अल्पवीर्य, वृद्ध जनों और क्षीणवीर्य पुरुषोंको अत्यन्त हितकारी, ओज, तेज, स्वर, बुद्धि, आयु और प्राणोंको बढाती है ॥ ९२-९८ ॥

महाकामेश्वरमोदक ।

यथोक्तं द्रव्यसंचूर्णं प्रयोज्यं मृतमभ्रकम् ।
गगनार्द्धं शुद्धलौहंलौहार्द्धं वङ्गभस्मकम् ॥९९॥
जातीकोषफलं चैव तत्र संचूर्ण्य दापयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चातुर्जातकसैन्धवम् ॥२००॥
भृङ्गजीरकयुग्मं च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ।
मांसी शतावरी कुष्ठं तुगा द्राक्षा लवङ्गकम् ॥१॥
बलातिबलामूलं च चविका देवताडकम् ।
यमानी शतपुष्पा च मर्कटीबीजबिल्वयोः ॥२॥
काकोली क्षीरकाकोली तालांकुरसटङ्कणम् ।
शालपर्णी त्रिकण्टं च चित्रकं कुन्दुरुर्मुरा ॥३॥
पुनर्नवाऽश्वगन्धा च मोचकं गजपिप्पली ।
कट्फलं तालमस्तं च यष्टीमधुकमेव च ॥४॥

मधूरिका च तालीशमनन्ता च प्रियङ्गुकम् ।
बालकं वृद्धदारं च शाल्मली पिण्डखर्जुरम् ॥ ५ ॥
विदारी पृश्निपर्ण्यंघ्रि पद्मकं क्षुरबीजकम् ।
मेथी परुषकं चैव चन्दनं मरिचं तिलम् ॥ ६ ॥
शृङ्गी सरलकाष्ठं च कर्पूरं विश्वभेषजम् ।
समभागानि चैतानि चूर्णमेषां प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥
शोधितं विजयाचूर्णं सर्वचूर्णार्द्धसंयुतम् ।
सिता च द्विगुणा देया मोदकार्थं भिषग्वरैः ॥ ८ ॥
मध्वाज्यमिश्रितं कृत्वा कर्षमात्रं तु मोदकम् ।
प्रातश्च भक्षयेन्नित्य सर्वव्याधिविवार्जितम् ॥ ९ ॥

शुद्ध अभ्रककी भस्म एक तोला, शुद्ध लोहभस्म ६ माशे, वङ्गभस्म ३ माशे एवं जावित्री, जायफल, त्रिकुटा, त्रिफला; नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सैंधानोन, भांगरा, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, गठिवन, बालछड़, शतावर, कूठ, वंशलोचन, दाख, लौंग, खिरैंटी, कंघी, चव्य, देवदारु, अजवायन, सोया, कौंछके बीज, बेलगिरी, काकोली, क्षीरकाकोली, ताडके अंकुर, सुहागा, शालपर्णी, गोखुरू, चीता, कुन्दुरु, मुरा, मांसी, पुनर्नवा, असगन्ध, मोचरस, गजपीपल, कायफल, ताडका; मस्तक, मुलहठी, सौंफ, तालीशपत्र, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, सुगन्धवाला, सेमलकी मुषली, पिण्डखजूर, विदारीकन्द, पृश्निपर्णीकी जड़, पद्माख, तालमखाने, मेथी, फालसे, लालचन्दन, काली मिरच, तिल, काकडासिंगी, धूपसरल, कपूर और सोंठ इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और समस्त औषधियोंके चूर्णसे आधा भाग घीमें भुनाहुआ, भाँगका चूर्ण तथा मिश्री सम्पूर्ण चूर्णसे दुगुनी लेवे । सबोंको एकत्र कूट पीसकर और यथाविधि मिलाकर पकावे । जब उत्तम प्रकार पाक होजाय तब शीतल होनेपर घृत और शहदके योग से एक एक तोलेके लड्डू बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक लड्डू खावे और ऊपरसे सुखोष्ण दूध पीवे ॥ ९९-२०९ ॥

नानावर्णमतीसारं सद्यग्रहग्रहणीहरम् ।
प्रमेहं च महाव्याधिं यक्ष्माणं क्षयमेव च ॥ २१० ॥
नारीशतं च रमते न च शुक्रक्षयो भवेत् ।

न तस्य लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां परमौषधम् ॥ ११ ॥
बल्यं वृष्यं वातहरं शुक्रस्य जननं परम् ।
नैतत्परतरं किञ्चिद्विद्यते वाजिकर्मसु ॥ १२ ॥
स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ।
ओजस्थिरकरं चैव स्त्रीषु कायविवर्द्धनम् ॥ १३ ॥
मृत्युसञ्जीवनीतन्त्रे पातञ्जलमुनेर्मतम् ।
महाकामेश्वरो ह्येष बलपुष्टिविवर्द्धनः ॥
रोगानेताञ्जयेत्तेन महादेवेन निर्मितम् ॥ १४ ॥

इस औषधिके सेवनसे अनेक प्रकारके अतीसार, संग्रहणी, प्रमेह, यक्ष्मा, महाव्याधि, क्षयादि जैसे सर्व प्रकारके रोग नष्ट होते हैं। मनुष्य सैंकडों स्त्रियोंको भोगे तो भी उसका वीर्य क्षय नहीं होता, और न उसके लिङ्गमें शिथिलता आती है। वृद्ध मनुष्योंको यह औषध परमोपयोगी है। यह बल, वीर्य और पुष्टिको करती है, वातविकारको हरती है। वाजीकरण औषधोंमें इससे श्रेष्ठ अन्य औषध नहीं है। बाँझस्त्रियों, दुर्बल मनुष्यों, नष्टवीर्य, अल्पवीर्य और वृद्धजनोंके यह औषध ओजकी वृद्धि और स्थिरताको करती है। एवं स्त्रियोंके शरीरकी वृद्धि करती है। मृत्युञ्जय तन्त्रमें लिखा हुआ यह महाकामेश्वरमोदक पातञ्जलिमुनिके मतसे अत्यन्त बल पुष्टिको करनेवाला है। यह इन सब रोगोंको जीतता है इसीसें महादेवजीने इसको निर्माण किया है॥

श्रीमदनानन्दमोदक।

सूतो गन्धस्तथा लौहं त्रिसमं शुद्धमभ्रकम् ।
कर्पूरं सैन्धवं मांसी धात्र्येला च कटुत्रयम् ॥ १५ ॥
जातीकोषफलं पत्रं लवङ्गं जीरकद्वयम् ।
यष्टीमधु वचा कुष्ठं हरिद्रा देवताडकम् ॥ १६ ॥
ऐन्जलं टङ्कणं भार्ङ्गी नागरं पुष्पकेशरम् ।
शृङ्गी तालीशपत्रं च द्राक्षाऽग्निर्दन्तिबीजकम् ॥ १७ ॥
बला चातिबला चोचं धनिकेभकणा शठी ।
सजलं जलदं गन्धा विदारी च शतावरी ॥ १८ ॥
अर्को वानरिबीजं च गोक्षुरं वृद्धदारकम् ।
त्रैलोक्यविजयाबीजं समांशं पेषयेद्भिषक् ॥ १९ ॥

पारे और गन्धककी कज्जली दो तोले, लोहभस्म एकतोला, अभ्रकभस्म ३ तोले, एवं कपूर, सैंधानमक, वालछड, आमले, छोटीइलायची, सोंठ मिरच, पीपल, जावित्री, जायफल, तेजपात, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलहठी; बच, कूठ, हल्दी, देवदारु, हिज्जलके बीज, सुहागा, भारङ्गी, सोंठ, नागकेशर, काकडासिंगी, तालीशपत्र, दाख, चीता, दन्तीके बीज, खिरैंटी, कंघी, दारचीनी, धनियाँ, गजपीपल, कचूर, सुगन्धवाला, नागरमोथा, प्रसारणी, विदारीकन्द, शतावर, आककी जड, कौंछके बीज, गोखुरू, विधारा और भाँगके बीज इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे ॥ १५-१९ ॥

शतावरीरसं दत्त्वा श्लक्ष्णचूर्णं समाचरेत् ।
शाल्मलीमूलचूर्णं तु चूर्णाङ्घ्रिसममाहरेत् ॥ २२० ॥
चूर्णार्द्धं विजयाचूर्णं विशुद्धं तत्र दापयेत् ।
सर्वमेकत्र संयोज्य च्छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ २१ ॥
मोदकार्थं सिता देया पाकयोग्या तथा मधु ।
नातिबाह्यं च धूमान्ते पाचयेन्मन्दवह्निना ॥ २२ ॥
चातुर्जातं सकर्पूरं सैन्धवं सकटुत्रयम् ।
सञ्चूर्ण्य च ततो देयं हव्यं किञ्चिन्निधापयेत् ॥
पाकं ज्ञात्वा कर्षमितं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ २३ ॥

फिर उस चूर्णको शतावरके रसके साथ खरल करके धूपमें सुखाकर पुनर्वार चूर्ण करले और उसमें सेमलकी मुषलीका चूर्ण उक्त औषधियोंके चूर्णसे चौथाई भाग एवं घीमें भुनीहुई भाँगका चूर्ण समस्त चूर्णसे आधाभाग मिलाकर सबको एकत्रितकर बकरीके दूधमें खरल करे । तदनन्तर सब औषधिसे दुगुनी मिश्रीको बकरीके दूधमें मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें उक्त समस्त चूर्ण डालदेवे । एवं चातुर्जातकचूर्ण, कपूर, सैंधा नोन और त्रिकुटा इनका चूर्ण दो दो तोले तथा किञ्चित् घृत और मधु डालकर सबको एकमएक करदेवे । जब उत्तम प्रकार पाक सिद्ध होजाय तब शीतल होनेपर एकएक तोलेके लड्डू बनालेवे ॥ २२०-२२३ ॥

भूतनाथे सुरपतौ रतिनाथे तथैव च ।
गणनाथे हुतभुजि मोदकाग्रं निवेदयेत् ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य अर्पयेत्तु हुताशने ॥ २४ ॥

ततोऽभिमन्त्रणमन्त्रः ।

"ॐ ह्रीं शँ सः अमृतं कुरु कुरु अमृते अमृतोद्भवाय नमः ।
ह्रीं अमृतं कुरु कुरु अमृतेश्वराय स्वाहा ॐ स्वाहा ॥"
इति मन्त्रेणाभिमन्त्रितं कृत्वा पात्रान्तरे स्थापयेत् ॥
काञ्चने राजते काचे मृद्भाण्डे वा निधापयेत् ॥ २५ ॥

प्रथम एक एक मोदक शिव, इन्द्र, गणेश और अग्नि आदि देवताओंके लिये मूलमन्त्रको उच्चारण करके समर्पण करे । उल्लिखितमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके इन लड्डुओंको सुवर्ण, चाँदी, काँच अथवा मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे ॥

प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा हरगौर्यौ प्रपूजयेत ।
कालानलभवं बीजं सतिलं घृतसंयुतम् ॥
गव्यं क्षीरं सितायुक्तमनुपेयं च पायसम् ॥ २६ ॥
विलासाथ प्रदोषे च मोदकं परिसेवयेत ।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण कामान्धो जायते नरः ।
कामज्वरो भवेत्तावद्यावन्नारीं न गच्छति ॥ २७ ॥
"स सहस्रं वरारोहा रमयत्यपि सोद्गमः ॥ २८ ॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं वेगवीर्यं विवर्द्धयेत् ।
प्रमदाप्राणबाहल्यं मत्तवारणविक्रमः ॥ २९ ॥
वामावश्यकरो रम्य ऊर्ध्वरेता भवेन्नरः ।
कामतुल्यं भवेद्रूपं स्वरः परभृतोपमः ॥ ३० ॥
खगतुल्या भवेद्दृष्टिर्वृद्धोऽपि तरुणायते ।
अष्टोत्तरं भवेद्यस्तु भवेत्तस्य सुखोपमम् ॥ ३१ ॥
अपस्मारज्वरोन्मादभयानिलगदापहम् ॥ ३२ ॥
कास श्वासं सशोथं च भगन्दरगुदामयम् ।
अग्निमान्द्यमतीसारं विविधं ग्रहणीगदम् ॥ ३३ ॥
बहुमूत्रं प्रमेहं च शिरोरोगमरोचकम् ।
हन्ति सर्वान् गदान्घोरान् वातपित्तबलासजान् ॥ ३४ ॥
वन्ध्या च मृतवत्सा च नष्टपुष्पा च या भवेत् ।

बहुपुत्रा जीववत्सा भवेदस्य निषेवणात् ॥
हरते सूतिकारोगं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३५ ॥"

इसके अनन्तर प्रतिदिन प्रातः काल शौच, स्नानादिसे पवित्र होकर शिव और पार्वतीका पूजन करे फिर काले चीतेके बीज और तिलोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर तथा मिश्री मिलेहुए गोदुग्ध और खीर इनके अनुपानके साथ विलासके लिये सायङ्कालमें एकएक मोदक सेवन करे। इनको इक्कीसदिनतक सेवन करनेसे मनुष्य कामान्ध होजाता है और जबतक स्त्रीप्रसङ्ग नहीं करता तबतक उसको कामज्वर रहता है ॥ २६–२३५ ॥

मोदकं मदनानन्दं सर्वरोगे महौषधम्।
वीर्यवृद्धिकरं श्रेष्ठं जरामृत्युविनाशनम् ॥
कथितं देवदेवेन रावणस्य हितार्थिना ॥ ३६ ॥

यह मदनानन्दमोदक सर्वप्रकारके रोगोंकी परमोत्कृष्ट औषधि है। इसके प्रतापसें बल, वीर्य और पुष्टि होती है तथा जरा और मृत्यु निवारण होती है। रावणके हितैषी श्रीमहादेवजीने इस योगको वर्णन किया है ॥ ३६ ॥

मृत्युसञ्जीवनी सुरा।

नवं गुडं च संगृह्य शतमेकपलं तथा।
वावरीत्वचमादाय बदरीत्वचमेव च ॥ ३७ ॥
प्रस्थं प्रस्थं प्रदातव्यं पूगं देयं यथोचितम्।
लोध्रं च कुडवं दत्त्वा आर्द्रकं च पलद्वयम् ॥ ३८ ॥
तोयमष्टगुणं दत्त्वा गुडं संगोलयेत्सुधीः।
प्रथमे चार्द्रकं दद्याद्द्वितीये वावरीत्वचम् ॥ ३९ ॥
तृतीये बदरीं दत्त्वा गोलयित्वा भिषग्वरः।
मुखे शरावकं दत्त्वा यत्नात्कृत्वा च बन्धनम् ॥ २४० ॥
मुखसम्बन्धनं कृत्वा स्थापयेद्दिनविंशतिम्।
मृन्मये मेढिकायन्त्रे मयूराख्येऽपि यन्त्रके ॥ ४१ ॥
यथाविधिप्रकारेण मन्दमन्देन वह्निना।
चुल्लीमध्ये विधातव्यं मृत्तिकादृढभाजने ॥ २४२ ॥
तदौषधं च तन्मध्ये समुद्धृत्य विनिक्षिपेत्।
नलं च युगलं दत्त्वा कुम्भौ च गजकुम्भवत् ॥ २४३ ॥

नया गुड १०० पल, बबूरकी छाल, बेरीकी छाल और चिकनी सुपारी ये प्रत्येक एकएक प्रस्थ, लोध १६ तोले और अदरख ८ तोले इन सब द्रव्योंसे अठगुना जल लेवे । तदनन्तर गुडको जलमें घोलकर पहले उसमें अदरख, दूसरी बार बबूरकी छाल और तीसरीबार बेरीकी छालको घोले । फिर सुपारी और लोधको डालकर सकोरेसे बर्त्तनका मुँह बन्द करके उसको अच्छे प्रकार बाँध बीसदिनतक रक्खे । पश्चात् मिट्टीके बने मेहिका वा मयूराख्य यन्त्रमें उसको यथाविधि भरकर चूल्हेके ऊपर रख मन्दमन्द अग्निसे पकावे ॥ ३७–२४३ ॥

कुम्भमध्ये निधातव्यं पूगं च सैलवालुकम् ।
देवदारु लवङ्गं च पद्मकोशीरचन्दनम् ॥ ४४ ॥
शतपुष्पा यमानी च मरिचं जीरकद्वयम् ।
शठी मांसी त्वगेला च जातीफलं समुस्तकम् ॥४५॥
ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मिषी मेथी च चन्दनम् ।
एषामर्द्धपलान्भागान्कुट्टयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ ४६ ॥
यथाविधिप्रकारेण चालनं दापयेत्सुधीः ।
बुद्धिमान् सौजनं कृत्वा उद्धरेद्विधिवत्सुरान् ॥ ४७ ॥

फिर उसमें सुपारी, एलुआ, देवदारु, लौंग, पद्माख, खस, लालचन्दन, सोया, अजवायन, मिरच, जीरा, कालाजीरा, कचूर, बालछड, दारचीनी, इलायची, जायफल, नागरमोथा, गठिवन, सोंठ सोंफ, मेथी और सफेद चन्दन इनको पृथक् पृथक् दो दो तोले ले कूटकर डालदेवे । बुद्धिमान् वैद्य विधिपूर्वक सबको चलाकर मिट्टीके पात्रमें दो नल लगावे और हाथीकी सूँडकी समान दो घडे रक्खे उनमें उस औषधिके रसको खींचकर सुरा सिद्ध करे ॥ ४४–४७ ॥

एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथाधातुवयःक्रमम् ।
आरोग्यजननं देहदार्ढ्यकृद्बलवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥
मेधाग्निस्मृतिकृद्वीर्यशुक्रकृद्वातनाशनम् ।
बलपुष्टिकरं चैव कामसन्दीपनं परम् ॥ ४९ ॥
दश स्त्रियो रमेन्नित्यमानन्द उपजायते ।
रणे तेजोमयः सद्यो यथा भीमपराक्रमः ॥२५०॥
नातः परतरं किञ्चिद्रणोत्साहप्रदं महत् ।
दैवासुरे युद्धकाले शुक्रेण परिनिर्मितम् ॥ २५१ ॥

फिर उत्तम प्रकार सौंजनकर उस सुराको उतार ले और प्रतिदिन धातु एवं अवस्थाके अनुसार मात्राकी कल्पना कर सेवन करे । इससेः आरोग्यता, शरीरमें दृढता, बल, मेधा, अग्नि, स्मृति और वीर्यकी वृद्धि होतीहै । वातव्याधिका नाश होता है एवं अत्यन्त कामाग्नि दीपन होती है । नित्य दश स्त्रियोंको भोगे तो अधिक आनन्द उत्पन्न होता है । रणमें शीघ्र ही भीमसेनके समान तेज और पराक्रम उत्पन्न होता है । रणके उत्साहको बढानेवाली इससे बढकर अन्य कोई सुरा नहीं है । देवता और असुरोंके युद्धके समय शुक्राचार्यने इसको निर्माण किया था ॥ ४८-२५१ ॥

दशमूलारिष्ट ।

दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक् ।
पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा ॥ २५२ ॥
कुर्याद्विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् ।
पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ५३ ॥
खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक् पलैः ।
अष्टाभिर्गुणितं कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च ॥ ५४ ॥
विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा ।
चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम् ॥ ५५ ॥
त्रिवृता रेणुका रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी ।
हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम् ॥ ५६ ॥
मुस्तमिन्द्रयवं शुण्ठी जीवकर्षभकौ तथा ।
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ ५७ ॥
कुर्यात्पृथग् द्विपलिकान्पचेदष्टगुणे जले ।
चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे च निधापयेत् ॥ ५८ ॥

दशमूलकी प्रत्येक औषधि बीस बीस तोले, चीतेकी जड १०० तोले, पोहकरमूल १०० तोले, लोध ८० तोले, गिलोय ८० तोले, आमले ६४ तोले, धमासा ४८ तोले, खैरसार, विजयसार और हरड प्रत्येक ३२-३२ तोले, कूठ, मञ्जीठ, देवदारु, वायविडंग, मुलहठी, भारंगी, कैथ, बहेडा, पुनर्नवा, चव्य, बालछड, फूलप्रियंगु, अनन्तमूल कालाजीरा, निसोत, रेणुका, रास्ना, पीपल,सुपारी, कचूर,

हल्दी, सोया, पद्माख, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ; जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले लेकर एकत्र कूट ले फिर सबको अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर कपड छान करके शीतल होजानेपर उस क्वाथको मिट्टीके बर्तनमें भरकर रक्खे॥

ततः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे।
त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्काथे शृतं क्षिपेत्॥ ५९॥
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम्।
त्रिंशत्पलानि धातक्याः कक्कोलं जलचन्दनम्॥२६०॥
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम्।
पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक्॥ ६१॥
शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्।
भूमौ निखातयेद्भाण्डं ततो जातरसं पिबेत्॥
कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्॥२६२॥

फिर दाखको ६० पल लेकर चौगुने जलमें पकावे, तृतीयांश जल शेष रहनेपर उसको उतारकर वस्त्रमें छान शीतल करके पूर्व क्वाथमें मिलादेवे। पश्चात् उसमें शहद ३२ पल, गुड ४० पल, धायके फूल ३० पल, कंकोल, सुगन्धवाला, लालचन्दन, जायफल, लौंग, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और पीपल इनके आठ आठ तोले चूर्णको बारीक पीसकर एवं चार माशे कस्तूरीको डालकर सबको चलादेवे। फिर उस पात्रका मुंह अच्छे प्रकार बन्दकर पृथ्वीमें गाडदेवे। एक महीनेके पीछे जब उसमें रस उत्पन्न होगया हो तब निर्मलीके फलोंका चूर्ण डालकर रसको नितार लेवे। इस रसको प्रतिदिन उचित मात्रासे सेवन करे॥ ५९-२६२॥

ग्रहणीमरुचिं शूलं श्वासं भगन्दरम्।
वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम्॥६३॥
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च।
शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्॥ ६४॥
कृशानां पुष्टिजननो वन्ध्यानां पुत्रदः परः।
अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः॥२६५॥

यह अरिष्ट संग्रहणी, अरुचि, शूल, श्वास, खाँसी, भगन्दर, वातविकार, क्षय, वमन, पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षयादि रोगोंको नष्ट करता है । कृश मनुष्योंको पुष्टि और वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्र देता है । यह दशमूलाख्य अरिष्ट तेज, शुक्र और बलको अधिकतर बढानेवाला है ॥६३-६५॥

गोधूमाद्यघृत ।

गोधूमात्तु पलशतं निःक्वाथ्य सलिलाढके ।
पादशेषे च पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥६६॥
गोधूमं मुञ्जातफलं माषं द्राक्षा परूषकम् ।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी ॥ ६७ ॥
अश्वगन्धा सखर्जूरं मधुकं त्र्यूषणं सिता ।
भल्लातकं चात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥६८॥
घृतप्रस्थं पचेदेवं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
मृद्वग्निना तु सिद्धे च द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥६९॥
त्वगेला पिप्पली धान्य कर्पूरं नागकेशरम् ।
यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्र पलाष्टकम् ॥२७०॥
दत्त्वेक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत् ।
केवलस्य पिबेदस्य पलमात्रं प्रमाणतः ॥
शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा ॥ ७१ ॥

गेहूँ १०० पल लेकर १ आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे । फिर उस काथमें गेहूँ, मुञ्जातफल (अभावमें ताडका मस्तक), उडद, दाख, फालसे, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, शतावर, असगन्ध, खजूर, मुलहठी. त्रिकुटा, मिश्री, भिलावे और कौंछके बीज इनके चूर्णको समान भाग एवं घृत एक प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब घृत उत्तमप्रकार पककर सिद्ध होजाय तब दारचीनी, इलायची, पीपल, धनियाँ, कपूर और नागकेशर इनका चूर्ण यथालाभ तथा शीतल होनेपर मिश्री ८ पल और शहद ८ पल, डालकर ईखके दण्ड अर्थात् गन्नेसे सबको विधिपूर्वक चलाकर एकमएक करलेवे । इस घृतको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार तोले प्रमाण पान करे और शालिचावलोंके भात अथवा मांसरसके साथ भोजन करे ॥६६-२७१॥

न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ।
बल्यं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम् ॥ ७२ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते ।
पलद्वयं तदश्नीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः ॥७३॥
स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा चानु पिबेत्पयः ॥
अश्विभ्यां निर्मितं चैतद्गोधूमाद्यं रसायनम् ॥७४॥

इसके सेवनसे लिङ्गमें शिथिलता और वीर्यका क्षय नहीं होता । यह अत्यन्त बलकारक वीर्यवर्द्धक और वात व्याधि, मूत्रकृच्छ्र रोगको शमन करता है । वृद्ध पुरुषोंको भी विशेष हितकारी है । जो इसको आलस्यरहित होकर दस रात्रि पर्यन्त दो दो पल सेवन करे और ऊपरसे मन्दोष्ण दूध पीवे तो सैंकडों स्त्रियोंको भोगता है । इस गोधूमाद्यरसायनको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ७२—७४ ॥

बृहदश्वगन्धाघृत ।

अश्वगन्धापलशतं शुभदेशसमुद्भवम् ।
पुण्येऽहनि समाहृत्य साधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम् ॥ ७५ ॥
द्रोणेऽम्भसि पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम् ।
सर्पिःप्रस्थं पचेत्तेन गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ७६ ॥
कषायं छागमांसस्य दद्याच्छतद्वयस्य च ।
कल्कानि श्लक्ष्णपिष्टानि कर्षमानानि दापयेत् ॥७७॥
काकोलीयुग्ममृद्धी द्वे द्वे मेदे चाथ जीरकम् ।
स्वयंगुप्तामृषभकमेलां मधुकमेव च ॥ ७८ ॥
मृद्वीकां सूपपर्ण्यौ च जीवन्तीं चपलां बलाम् ।
नारायणीं विदारीं च दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥ ७९ ॥
सितामाक्षिकयोःशीते गृह्णीयात्कुडवौ पृथक् ।
लीढ्वा पाणितलं भुञ्ज्यात्परिहारविवर्जितम् ॥ २८० ॥

शुभ देशमें उत्पन्न हुई असगन्धको सौपल शुभ दिनमें लाकर बारीक कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें गोघृत १ प्रस्थ, गोदुग्ध ४ प्रस्थ, बकरेके मांसका क्वाथ २०० पल, एवं कल्कके लिये काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि मेदा, महामेदा,

जीरा, कौंछके बीज, ऋषभक, इलायची, मुलहठी, दाख, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, पीपल, खिरैंटी, शतावर और विदारीकन्द इनको एक एक कर्षप्रमाण बारीक पीसकर डालदेवे और मन्द मन्द अग्निद्वारा घृतको सिद्ध करे। जब उत्तम पकजाय तब उसमें शीतल होनेपर मिश्री १६ तोले और शहद १६ तोले मिलादेवे। प्रतिदिन इस घृतको दो दो तोले प्रमाण हथेलीपर रखकर चाटे और पीछेसे सुखोष्ण दूध पीवे। इसपर यथेच्छ आहार विहार करे॥ ७५-२८०॥

क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा वृद्धा बालास्तथाऽबलाः।
हीनमांसाश्च ये केचित्प्राश्येदं मात्रया घृतम्॥ ८१॥
ओजः स्वास्थ्यं च तेजश्च प्रसादं हीन्द्रियस्य च।
लभते सूर्यसङ्काशो भ्राजते विगतज्वरः॥ ८२॥
वृद्धो वृषायते स्त्रीषु नित्यं षोडशवर्षवत्।
नारीणां च शतं गच्छेन्न च शुक्रक्षयो भवेत॥ ८३॥
वन्ध्या च लभते पुत्रं बुद्धिमेधासमन्वितम्।
मासमात्रप्रयोगेण वलीपलितनाशनम्॥ ८४॥
खालित्यं तिमिरं व्याधीन्वातिकान्कफपित्तजान्।
पञ्च कासान्क्षयं श्वासं हिक्कां च विषमज्वरम्॥
हन्ति सर्वान्न गदाञ्छीघ्रमश्विभ्यां निर्मितं पुरा॥ ८५॥

जो नष्टेन्द्रिय, नष्टवीर्य, वृद्ध, दुर्बल और मांसहीन स्त्री अथवा पुरुष हो उनके यह घृत उचित मात्रासे सेवन करनेसे ओज, तेजकी वृद्धि, इन्द्रियोंकी प्रसन्नता और आरोग्यताको उत्पन्न करता है। ज्वरोंसे रहित होकर सूर्यके समान कान्तिमान् होता है। वृद्ध पुरुष नित्यप्रति स्त्रियोंमें सोलहवर्षके युवाके समान रमण करता है। सैंकडों स्त्रियोंको भोगनेपर वीर्यपात नहीं होता। वंध्या स्त्रीभी बुद्धिमान् और मेधावान् पुत्रको उत्पन्न करती है। इस घृतको एक महीनेतक सेवन करे तो यह वली, पलित, खालित्य, तिमिर, वात, पित्त कफसम्बन्धी रोग, पाँच प्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, हिचकी और विषमज्वर आदि विकारोंको तत्काल नाश करता है। इसको पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने रचा है॥ २८१-८५॥

अमृतप्राशघृत।

छागमांसतुलां चैव वाजिगन्धां तथैव च।
जलद्रोणे विपक्तव्यं कुर्यात्पादावशेषितम्॥ ८६॥

पचेत्तेन घृतप्रस्थमजाक्षीरं चतुर्गुणम् ।
मूर्च्छनार्थं प्रदातव्यं कुंकुमं च द्विकार्षिकम् ॥ ८७ ॥
बलामूलं च गोधूमं चाश्वगन्धा तथाऽमृता ।
गोक्षुरं च कशेरुं च त्रिकटू च सधान्यकम् ॥ ८८ ॥
तालांकुरं त्रैफलं च कस्तूरी बीजवानरी ।
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी ॥ ८९ ॥
दार्वी प्रियङ्गु मञ्जिष्ठा नतं तालीशपत्रकम् ।
एलापत्रत्वचं नागं जातीकुसुमरेणुकम् ॥ २९० ॥
सरलं जातिकोषं च सूक्ष्मैलोत्पलसारिवा ।
मूलं बिम्बस्य जीवन्ती ऋद्धिवृद्धी उदुम्बरः ॥ ९१ ॥
प्रत्येकं कर्षमानानि पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ।
वस्त्रपूते सुशीते च सितां दद्याच्छरावकम् ॥
कर्षमात्रं ततः खादेदुष्णदुग्धानुपानतः ॥ ९२ ॥

बकरेका मांस १०० पल और असगन्ध १०० पल लेकर दोनोंको एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । उस क्राथमें घी एक प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ मूर्च्छनार्थ केशर २ कर्ष एवं खिरैंटीकी जड, गेहूँ, असगन्धक, गिलोय, गोखुरू, कसेरू, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, ताडके अंकुर, त्रिफला, कस्तूरी, कौंछके बीज, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, मंजीठ, तगर, तालीशपत्र, बडी इलायची, तेजपात, दारचीनी, नागकेशर, चमेलीके फूल, रेणुका, धूपसरल, जावित्री, छोटी इलायची, लालकमल, अनन्तमूल, कन्दूरीकी जड, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गूलर ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष प्रमाण कूट पीसकर डालदेवे और पुनर्वार पकावे । जब घृत उत्तमप्रकार सिद्ध होजाय तब वस्त्रसे छानकर शीतल होजानेपर उसमें मिश्री ६४ तोले परिमाण डालकर मिलादेवे । इस घृतको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक कर्ष प्रमाण सेवन करे और मन्दोष्ण दुग्धका अनुपान करे ॥ २८६–२९२ ॥

बृंहणीयं विशेषेण बलपुष्टिकरं सदा ।
प्रमेहान्ध्वजभङ्गांश्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ९३ ॥
एतद् वृष्यकरं सर्पिः काशिराजेन निर्मितम् ।

हृष्टं सिद्धफलं ह्येतद्वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ९४ ॥
अमृतप्राशनामेदं सर्वामयनिषूदनम् ।
शिरोरोगे नष्टशुक्रे स्त्रीषु नष्टार्त्तवासु च ॥ ९५ ॥
न च शुक्रक्षयं याति बलं ह्रासं न च व्रजेत् ।
दशस्त्रीणां रमेन्नित्यमानन्द उपजायते ॥ ९६ ॥
कासार्शआमशूलघ्नं बद्धकोष्ठहरं परम् ।
सिद्धघृतप्रयोगेन स्थिरं भवति यौवनम् ॥ ९७ ॥

यह घृत बृंहणीय विशेषकर बल और पुष्टिको देनेवाला एवं प्रमेह और ध्वजभङ्गको निश्चय नष्ट करनेवाला है । अत्यन्त वीर्यवर्द्धक इस घृतको काशिराज शिवने निर्मित किया है । यह वाजीकरण और सिद्धफलको देनेवाला है ऐसा अनुभव कर देखागया है । यह अमृतप्राशनामक घृत सर्वप्रकारके रोगोंको दूर करता है । शिरोरोग, नष्टशुक्र और स्त्रियोंका नष्ट आर्त्तवमें यह परमोपयोगी है । इससे वीर्यक्षय और बलका ह्रास कभी नहीं होता । प्रतिदिन दश स्त्रियोंको भोगे तो भी अधिकाधिक आनन्द उत्पन्न होता है । खाँसी, बवासीर, आमशूल और कोष्ठबद्धताको शीघ्र हरता है । इस सिद्ध घृतके सेवनसे युवावस्था स्थिर होती है ॥ २९३-२९७ ॥

बृहच्छागलाद्यघृत ।

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम् ।
अश्वगन्धापलशतं वाट्यालकशतं तथा ॥ ९८ ॥
घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः ।
क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्छतावर्या रसं तथा ।
ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ९९ ॥

बकरीका माँस सौ १०० पल, दशमूलकी सब औषधियाँ १०० पल, असगन्ध १०० पल और खिरैंटी १०० पल इनको अलग अलग एक एक द्रोण जलमें पकावे । जब चतुर्थभागावशिष्ट जल रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर सबको एकत्र कर उस क्वाथमें घी १ आढक और शतावरका रस १ आढक परिमाण डालकर ताँबेके पात्रमें भरकर मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे ॥ ९९ ॥

अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥२००॥

जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम्।
मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिनीद्वयशारिवे ॥ १ ॥
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी।
दार्वी प्रियङ्गु त्रिफला नतं तालीशपद्मकौ ॥ २ ॥
एलापत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम्।
मञ्जिष्ठा दाडिमं दारु रेणुकं सैलवालुकम् ॥ ३ ॥
विडङ्गं जीरकं चैव पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम्।
निधापयेत्स्निग्धभाण्डे मृन्मये भाजने शुभे ॥ ४ ॥

उसी समय इस घृतमें जीवन्ती, मुलहठी, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलकमलकी जड, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, मुगवन, मषवन, अनन्तमूल, उसवा, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, त्रिफला तगर, तालीशपत्र, पद्माख, छोटी इलायची, तेजपात, शतावर, नागकेशर, चमेलीके फूल धनियाँ, मंजीठ, अनार, देवदारु, रेणुका, एलुआ, वायविडङ्ग और जीरा इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको बारीक पीसकर डालदेवे। जब घृत उत्तम प्रकार पककर सिद्धहोजाय तब वस्त्रमें छानकर शीतल होजानेपर उसमें चीनी एक प्रस्थ मिलाकर उसको शुद्ध और उत्तम मिट्टीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे॥३००-४॥

अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ५ ॥
देवदेवं नमस्कृत्य सम्पूज्य गणनायकम्।
पिबेत्पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥ ६ ॥
सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः।
पक्षाघातेषु चोन्मादे आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥ ७ ॥
कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके।
भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोदरे चाक्षिपातजे ॥ ८ ॥
पार्श्वशूले च हृच्छूले बाह्यायामार्दिते तथा।
वातकण्टकहृद्रोगे मूत्रकृच्छ्रे सपङ्गुके ॥ ९ ॥
क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्मानमिन्मिने।
अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्द्ध्वगे ॥ ३१० ॥

आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थकज्वरेऽपि च ।
हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवापबाहुके ॥ ११ ॥
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा ।
जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफःस्तम्भे मदात्यये ॥ १२ ॥
आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च ।
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ॥ १३ ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे ज्वरे भ्रमे ।
क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिःसरणे तथा ॥ १४ ॥
स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने ।
एकाङ्गस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ॥ १५ ॥
नागादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके ।
आभिचारिकदोषे च मनःसन्तापसम्भवे ॥ १६ ॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वादिसंस्थिताः ॥ १७ ॥
मातृग्रहाभिभूतश्च शिशुर्यश्च विशुष्यति ।
प्रक्षीणबलमांसश्च न वर्त्मगमनक्षमः ॥ १८ ॥
घृतेनानेन सिद्ध्यन्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान् ।
निहन्ति सकलान् रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥ १९ ॥

इस सिद्ध औषधिके गुणोंको कहता हूँ उसको सुनो-प्रतिदिन प्रातःकाल गणेश और देवाधिदेव महादेवको नमस्कार तथा पूजकर इस घृतको एक एक तोला प्रमाण पान करे और यथादोषानुसार अनुपानकी कल्पना करे तो यह घृत वातज, पित्तज और कफज तथा उल्लिखित सर्वप्रकारके भयङ्कररोगोंको तत्कालही इस प्रकार नष्ट करताहै जिसप्रकार इन्द्रका छोडाहुआ वज्र असुरोंका तत्क्षण नाश करदेताहै । यह परमदुर्लभ घृत है ॥९-३१९॥

रसायनं वह्निबलप्रदं च वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् ।
दत्त्वा बलं चेन्द्रसमानतेजो दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति ॥ ३२० ॥

स्त्रीणां शतं गच्छति चातिरेकं न याति तृप्तिं सरसः समाङ्गः।
अपुत्रिणीं पुत्रशतं करोति गतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥ २१ ॥
महद्घृतं नाम तु छागलाद्यं विनिर्मितं वातनिषूदनं च।
शिवं शुभं रोगभयापहं च चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः॥ ३२२ ॥

यह उत्तम रसायन—जठराग्नि, इन्द्रके समान बल, वीर्य और तेज देकर दीर्घायुवाले पुत्रोंकी वृद्धि करता है। एवं वन्ध्यास्त्रियोंको शतशः पुत्रवती, वृद्धोंको बलिष्ठ और कामदेवके समान सुन्दरबनाताहै। इस बृहच्छागलाद्यघृतको हारीतमुनिने बनाया है॥ ३२०-३२२॥

भल्लातकाद्यतैल।

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलवल्कलसाधितं कुरुते।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिंगाभम् ॥ ३२३ ॥

भिलावे, बड़ी कटेरीके फल और अनारके छिलके इनके कल्कद्वारा एक सेर सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकाकर लिङ्गपर मालिश करे तो लिङ्ग घोडेके लिङ्गके समान होता है॥ ३२३॥

अश्वगन्धातैल।

अश्वगन्धा वरीकुष्ठं मांसी सिंहीफलान्वितम्।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत्।
स्तनलिंगकर्णपालिवर्द्धनं म्रक्षणादिदम्॥ ३२४ ॥

असगन्ध, शतावर, कूठ, बालछड और बडी कटेरीके फल इनके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ और चौगुने दूधके साथ १ सेर तिलके तेलको यथाविधि पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे स्तन, लिङ्ग, कानकी पालिकी वृद्धि होती है॥ ३२४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वाजीकरणाधिकारः॥

वीर्यस्तम्भनाधिकारः।

शूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह भक्षयेत्।
न मुञ्चति नरो वीर्यमेकैकेन न संशयः॥ १ ॥

जिमीकन्द अथवा तुलसीकी जडके चूर्णको पानमें रखकर खानेसे मैथुन करते समय सहसा मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होता॥ १॥

कृष्णमार्जाररसव्यांघ्रिसम्भवास्थि रतोद्यमे ।
दक्षिणे ध्रियते येन तस्य वीर्यस्य न च्युतिः ॥ २ ॥

काली बिल्लीके बाँये पैरकी हड्डीको दहने अङ्गमें धारण करके स्त्रीप्रसङ्ग करे तो उस समय उस मनुष्यका वीर्य तत्काल स्खलन नहीं होता है ॥ २ ॥

चटकाण्डं तु संगृह्य नवनीतेन पेषयेत् ।
तेन लेपयतः पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुञ्चति ॥ ३ ॥

चिडियाके अण्डोंको नैनीघीके साथ पीसकर दोनों पावोंपर लेप करनेसे वीर्य-स्तम्भ होता है । और स्त्रीप्रसङ्ग करते समय जबतक मनुष्य भूमिका स्पर्श नहीं करता तबतक उसका वीर्य क्षरण नहीं होता ॥ ३ ॥

नीलोत्पलसितपङ्कजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन ।
सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो नाभिविवरेण ॥ ४ ॥

नीलकमल, सफेद कमलकी केशर, शहद और मिश्री इन सबको एकत्र पीसकर नाभिके ऊपर लेप करके बहुत कालतक स्त्रीप्रसंग करनेपर भी वीर्य स्खलित नहीं होता और लिंग अत्यन्त दृढ होता है ॥ ४ ॥

सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते ।
चरणाभ्यङ्गेन रतौ वीर्यस्तम्भादृढं लिङ्गम् ॥ ५ ॥

कसूमके फूलोंके तेलको कैंचुएके चूर्णके साथ मिलाकर सिद्ध करे उस तेलको चरणोंमें मालिश करके मैथुन करनेपर वीर्यस्तम्भ और लिङ्ग दृढ होता है ॥ ५ ॥

गोरेकोन्नतशृङ्गंत्वगुद्भवचूर्णेन धूपितं वस्त्रम् ।
परिधाय भजति ललनां नैकाण्डो भवति हर्षार्त्तः ॥ ६ ॥

गौके सींगके ऊपरकी छालको उतारकर चूर्णकर अग्निमें दग्धकरे । उसमेंसे जो धुआँ निकले उससे वस्त्रको धूपितकर शरीरपर धारण करे फिर आनन्दसे स्त्रीप्रसङ्ग करे तो वीर्यस्तम्भ होता है ॥ ६ ॥

उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो योगजध्वजभङ्गहरः ॥ ७ ॥

गौके उन्नत सींगके चूर्णको लेपकरनेसे योगजध्वजभङ्ग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

आकारकरभः शुण्ठी लवङ्गं कुंकुमं कणा ।
जातीफलं जातिपुष्पं चन्दनं कार्षिकं पृथक् ॥ ८ ॥
चूर्णयेदहिफेनं तु तत्र दद्यात्पलोन्मितम् ।
सर्वमेकीकृतं माषमात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत् ॥ ९ ॥
शुक्रस्तम्भकरं पुंसामिदमानन्दकारकम् ।
नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ १० ॥

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केशर, पीपल, जायफल, चमेलीके फूल और लाल चन्दन ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष और अफीम चार तोले प्रमाण लेवे सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको कामी पुरुष प्रतिदिन रात्रिमें एकएक माशे प्रमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे। यह चूर्ण अत्यन्त वीर्यस्तम्भ एवं पुरुष तथा स्त्रियोंके प्रेम और अत्यानन्दको बढानेवाली है ॥ ८-१० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वीर्यस्तम्भनाधिकारः ॥

इति श्रीवैद्य-शंकरलालकृतसरलाख्यया भाषाटीकया सहिता
भैषज्यरत्नावली सम्पूर्णा ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस
कल्याण-बम्बई